# तुलसी-शब्दसागर

संकलनकर्त्ता

स्वर्गीय पंडित हरगोविंद तिवारी

संपादक

श्री भोलानाथ तिवारी

हिंदुस्तानी एकेडमी, उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद

# प्रकाशकीय

'तुलसी शब्दसागर' का समहकार्य 'तुलसीग्रंथावली कोप' नाम से आगरा के एक वयोवृद्ध सज्जन स्वर्गीय श्री हरगोविंद तिवारी ने किया था। आप आगरा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के एकाउंटट थे और यह कार्य आपने लगभग ५० वर्षो में धीरे-धीरे पूरा किया था। कार्य सपन्न होने पर आपने इसके प्रकाशन के संबंध में एकेडेमी से पत्र-व्यवहार किया जिसके फलस्वरूप कोप की सामग्री ३०००) रुपये में एकेडेमी द्वारा खरीद ली गई।

यद्यपि स्वर्गीय श्री हरगोविंद तिवारी ने सामग्री बहुत परिश्रम और विस्तार से तैयार की थी किंतु वस्तुत यह व्यवस्थित कोप के रूप में न थी। नियमित कोप-सामग्री के अतिरिक्त उसमें पुरानी टीकाओ के ढग की कुछ अन्य सामग्री भी मिश्रित थी। एकेडेमी ने इसके सपादन पर विचार करने के लिए डा० धीरेंद्र वर्मा, डा० बलदेवप्रसाद मिश्र और डा० माताप्रसाद गुप्त, इन तीन व्यक्तियों का एक संपादक-मंडल बनाया, जिसने संपादन के संबंध में कुछ सिद्धात निर्धारित किए। सपादन का कार्य एकेडेमी के साहित्य सहायक श्री भोलानाथ तिवारी को सौंपा गया। उन्होंने मई सन् १९४९ में निर्धारित सिद्धांतों के आधार पर संपादन कार्य आरंभ किया और लगभग चार वर्षों के अनवरत परिश्रम के बाद अत्यत योग्यता से इसे पूर्ण किया।

प्रस्तुत कोप में लगभग २२,००० शब्द हैं। इनमें से लगभग १६,००० शब्द तो श्री हरगोविंद तिवारी की सामग्री से लिए गए हैं और शेप ६,००० श्री भोलानाथ तिवारी ने संगृहीत किए हैं। इन शेप शब्दों के संग्रह में जहाँ तक रामचरितमानस के शब्दों का संबध है डा० सूर्यकांत की 'रामायण शब्दसूची' से पूर्ण सहायता ली गई है। यदि गोस्वामी जी के अन्य ग्रंथों की भी इसी प्रकार पूर्ण शब्दसूचियाँ होतीं तो निस्संदेह यह शब्दसागर और भी समृद्ध हो सकता।

शब्दों का क्रम सामान्य कोपों की भाँति है किंतु एक शब्द के आधार पर काल, पुरुप, लिंग अथवा वचन आदि की दृष्टि से बने रूप अथवा यौगिक रूप पृथक्-पृथक् नहीं रक्खे गए हैं। कोप में आए हुए इस प्रकार के शब्दों में अक्षर क्रम से प्रथम आनेवाले शब्द मुख्य शब्द के रूप में दे दिए गए हैं और शेप शब्द उनके पेटे में रक्खे गए हैं। उदाहरणार्थ 'अघाना' क्रिया से बने विभिन्न रूपों में 'अघाइ' अक्षर क्रम की दृष्टि से प्रथम आता है, अत उसे मुख्य शब्द के रूप में दिया गया है और 'अघाई', 'अघाउँगो', 'अघाति' तथा 'अघाहीं' आदि उसके पेटे में दिए गए हैं। इसी प्रकार 'अनुज' के पेटे में अनुजनि' तथा 'अनुजन्ह' आदि रखे गए हैं। छद की आवश्यकता पूर्ति के लिए प्रयुक्त शब्दों के विकृत रूप पृथक् रक्खे गए हैं, जैसे 'अभिराम' और 'अभिरामा', आदि।

यदि किसी शब्द का एक अर्थ है तो वह बिना संख्या के दे दिया गया है, किंतु यदि अनेक अर्थों में शब्द प्रयुक्त होता है तो वे क्रम से संख्या देकर लिखे गए हैं। अर्थ के बाद तुलसी की रचनाओं से उदाहरण दिए गए हैं। अनेक अर्थवाले शब्दों में उदाहरण देते समय अर्थ की क्रम-संख्या का उल्लेख कर दिया

गया है। इस संबंध में इतना और बतला देना आवश्यक है कि जिन अर्थों के उदाहरण नहीं दिए गए हैं उनमें कुछ ऐसे भी निकल सकते हैं जो प्रयुक्त न हुए हों। इसी प्रकार यह भी असंभव नहीं कि ऐसे अर्थों में भी कुछ शब्दों का प्रयोग तुलसी ग्रंथावली में मिले जो इस कोष में नहीं दिये गए हैं। आशा है आगामी संस्करण में इन त्रुटियों को दूर किया जा सकेगा।

उदाहरणों के आगे कोष्ठक में संदर्भ दिया गया है। संदर्भ के आरंभिक अक्षर तो तुलसी की रचनाओं के संक्षिप्त नाम हैं, जिनका पूरा रूप संक्षेप-सूची में दिया गया है। उनके आगे दिए गए अंकों के संबंध में निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं। 'मानस', 'कवितावली' तथा 'गीतावली' के आगे दी गई पहली संख्या क्रम से कांडों की द्योतक है, अर्थात् बालकांड के लिए १, अयोध्या के लिए २, अरण्य के लिए ३, किष्किंधा के लिए ४, सुंदर के लिए ५, लंका के लिए ६, और उत्तर के लिए ७की संख्या प्रयुक्त हुई है। 'मानस' के संदर्भों की दूसरी संख्या दोहे की तथा तीसरी संख्या चौपाई की है। यदि तीसरी संख्या के साथ दो०, श्लो०, छं० अथवा सो० है तो वह क्रम से दोहा, श्लोक, छंद अथवा सोरठा की संख्या है। 'कवितावली' तथा 'गीतावली' की दूसरी संख्या छंद की है, अर्थात् यदि क० ७।४ लिखा है तो इसका आशय है कवितावली के उत्तरकांड का चौथा छंद और यदि मा०।२।१५६।२ लिखा है तो इसका अर्थ है रामचरित मानस के अयोध्याकांड के १५६ वें दोहे की दूसरी चौपाई। 'रामललानहछू', 'वैराग्यसंदीपनी', 'बरवै रामायण', 'पार्वतीमंगल', 'जानकीमंगल', 'दोहावली', 'कृष्णगीतावली', 'विनयपत्रिका', तथा 'तुलसी सतसई' में संक्षिप्त रूप के बाद केवल एक संख्या है और वह छंद की संख्या है। 'रामाज्ञा प्रश्न' में संक्षिप्त रूप के बाद तीन संख्याएँ हैं। पहली संख्या सर्ग की, दूसरी सप्तक की और तीसरी दोहे की है।

प्रस्तुत कोष में यथासंभव व्युत्पत्ति भी दी गई है। किंतु यदि एक व्युत्पत्तिवाले एक से अधिक शब्द पास-पास ही हैं तो कुछ अपवादों को छोड़कर किसी एक के साथ व्युत्पत्ति दी गई है। व्युत्पत्ति अज्ञात होने पर प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिया गया है। व्युत्पत्ति के साथ प्रश्नवाचक चिह्न अथवा तारा, क्रम से, अनिश्चित व्युत्पत्ति अथवा व्युत्पत्ति संबंधी कल्पित शब्द का द्योतक है।

प्रस्तुत कोष के प्रणयन में 'मानस' का गीता प्रेस का संस्करण, 'सतसई' का एकेडेमी द्वारा प्रकाशित डा० श्यामसुंदरदास के 'सतसई-सप्तक' का संस्करण तथा अन्य ग्रंथों के लिए नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की 'तुलसी-ग्रंथावली' के संस्करण काम में लाए गए हैं।

यह अत्यंत संतोष का विषय है कि अब गोस्वामी तुलसीदास के समस्त ग्रंथों में प्रयुक्त शब्दों का यह महत्त्वपूर्ण कोष हिंदुस्तानी एकेडेमी की रजत-जयंती के अवसर पर विशेष प्रकाशन के रूप में हिंदी संसार के समक्ष आ रहा है।

धीरेंद्र वर्मा
मंत्री तथा कोषाध्यक्ष
हिंदुस्तानी एकेडेमी, उत्तरप्रदेश

इलाहाबाद
जनवरी, १९५४

# संक्षेप-सूची

| | | | |
|---|---|---|---|
| ? | =संदिग्ध | ध्व० | =ध्वन्यात्मक |
| * | =कल्पित शब्द | पा० | =पार्वतीमंगल |
| अनु० | =अनुकरणात्मक | प्र० | =रामाज्ञा-प्रश्न |
| अप० | =अपभ्रंश | प्रा० | =प्राकृत |
| अर० | =अरबी | फा० | =फारसी |
| अ०मा० | =अर्धमागधी | ब० | =बरवै रामायण |
| उ० | =उदाहरण | मं० | =मंगोल |
| क० | =कवितावली | मा० | =रामचरितमानस |
| कृ० | =कृष्ण-गीतावली | मु० | =मुहावरा |
| गी० | =गीतावली | रा० | =रामललानहछू |
| ग्री० | =ग्रीक | वि० | =विनयपत्रिका |
| छं० | =छंद | वै० | =वैराग्यसंदीपनी |
| जा० | =जानकीमंगल | श्लो० | =श्लोक |
| तु० | =तुलना कीजिए | स० | =तुलसी-सतसई |
| तुर० | =तुर्की | सो० | =सोरठा |
| दे० | =देखिए | ह० | =हनुमानबाहुक |
| दो० | =दोहा, दोहावली | हिं० | =हिंदी |

# तुलसी-शब्दसागर

## अ

अंक-(सं०)-१ चिह्न, २ गिनती के १, २, ३ इत्यादि अंक, ३ गोद, ४ नाटक का एक अंश, ५ शरीर, ६ दुःख, ७ पाप, ८ दाग़, टीका, ९ लेख, १० भाग्य, ११ बार, १२ नौ की संख्या। उ० १ भौंहैं बंक मयंक अंक रुचि। (गी० ७।१७) २ अंक अगुन आखर सगुन समुझिय उभय प्रकार। (दो० २५२) ३ तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता। (मा० २।१९४।२) अंके-गोद में। उ० यस्यांके च विभाति। (मा० २। श्लो०१)

अंकमाल-(सं०)-आलिंगन, भेंट, गले लगाना। मु० अंकमाल देत-भेंटते, गले लगाते। उ० आसु जाये जानि सब अंकमाल देत हैं। (क० ५।२९)

अंका-दे० 'अंक'। उ० ९ तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अंका। (मा० १।१२१।४)

अंकित-(सं०)-१ चिह्नित, २ मुद्रित, ३ परखा हुआ, ४ लिखित, ५ वर्णित, ६ चित्रित। उ० १ भूमि बिलोकु राम पद-अंकित। (वि० २४) ४ राम नाम अंकित अतिसुंदर। (मा० ५।१३।१) ६ रामायुध अंकित गृह। (मा० ५।५)

अंकुर-(सं०)-१ अँखुआ, कोपल, २ डाभ, कल्ला, ३ आँसू, ४ कली, ५ रुधिर, ६ रोआँ, ७ पानी, ८ मांस के छोटे लाल लाल दाने जो घाव भरते समय उत्पन्न होते हैं। ९ अँखुआ निकले हुए जौ। उ० १ पाइ कपट जलु अंकुर जामा। (मा० २।२३।२) २ कंदमूल अनेक अंकुर स्वाद सुधा लजाइ। (गी० ७।३३) ९ अच्छत अंकुर लोचन लाजा। (मा० १।२४६।२)

अंकुरे-अंकुर की भाँति उपजे हुए, अंकुरित। उ० मर्दहिं दसानन कोटि कोटिन्ह कपट भू भट अंकुरे। (मा० ६।९६।छं०)

अंकुरेउ-अंकुरित हुआ, उदय हुआ। उ० उर अंकुरेउ गरब तरु भारी। (मा० १।१२९।२)

अंकुस-(सं० अंकुश)-अंकुश, हाथी को काबू में करने का एक दोमुँहा हथियार। उ० महामत्त गजराज कहुँ बस कर अंकुस खर्ब। (मा० १।२५६)

अँकोर-(सं० अङ्कपालि)-१ घूस, रिश्वत, २ गोद, छाती। उ० १ जनु सभीत दै अँकोर। (गी० ७।३)

अँखियनु-(सं० अक्षि)-आँखें, आँखों के। उ० चितवनि बसति कनखियनु अँखियन बीच। (ब० ३०) अँखियाँ-आँखें। उ० सिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै। (क० २।११)

अँग-दे० 'अंग' उ० २ पालइ पोसइ सकल अँग, (मा० २।३१५)

अंग-(सं०)-१ शरीर, २ अवयव, ३ भाग, अंश, ४ मित्र का संबोधन, ५ शास्त्र विशेष, ६ एक देश का नाम, ७ प्रकार, ८ उपाय, ९ सहायक, १० ओर, तरफ़, ११ स्वभाव, १२ प्यारा, १३ वेद के ६ अंग, १४ राज्य के ७ अंग, १५ योग के ८ अंग, १६ जन्मलग्न, १७ ध्रुव के वंश का एक राजा, १८ अंग प्रत्यंग। उ० १ अंग अनंग देखि सत लाजे। (मा० ७।११।४) ७ राखै सरनागत सब अंग बल बिहीन को। (वि० २७४) ८ दीन सब अंगहीन छीन मलीन अघी अघाइ। (वि० ४१) ९ रउरे अंग जोगु जग को है। (मा० २।२८१।३) १८ महिप मद भंग करि अंग तोरे। (वि० १५) मु० अंग लगाय-लिपटा कर। उ० अंग लगाय लिए बारे तें, (गी० २।८९) अंगन-अंगों, 'अंग' का बहुवचन। अंगनि-अंगों में। उ० बाल बिभूषन-बसन मनोहर अंगनि बिरचि बनैहौं। (गी० १।८)

अँगइ-(सं० अंग)-स्वीकार करके, अंगीकार करके, सहकर, सहन करके। उ० सहि कुबोल, साँसति सकल, अँगइ अनट अपमान। (दो० ४९९)

अंगकरयो-(सं० अंगीकार)-हृदय से लगाया, अपनाया। उ० ताको हरि दृढ़ करि अंगकरयो। (वि० २३२)

अंगद-(सं०)-१ बाहु पर पहिनने का एक गहना, बिजायठ, २ बालि नामक बन्दर का पुत्र जो राम की सेना में था। ३ लक्ष्मण के दो पुत्रों में से एक। उ० २ अंगद नाम बालि कर बेटा। (मा० ६।२१।२) अंगदहिं-अंगद को। उ० इहाँ राम अंगदहि बोलावा। (मा० ६।३८।२)

अंगन-(सं० अंगण)-१ आँगन, २ स्थान। उ० २ संग्राम अंगन सुभट सोवहिं। (मा ६।८८ छंद)

अँगना-(सं० अंगण)-आँगन। उ० छगन मगन अँगना खेलिहौ मिलि। (गी० १।८)

अंगना-(सं०)-स्त्री। उ० अर्द्ध अंग अंगना अनंग को महनु है। (क० ७।१६०)

अँगनाई-(सं० अंगण)-आँगन, घर के भीतर का सहन। उ० बरनि न जाइ रुचिर अँगनाई। (मा० ७।७६।२)

अँगनैया-(सं० अंगण)-दे० 'अँगनाइ'। उ० छबि छलकिहैं भरि अँगनैया। (गी० १।६)

अँगरी-(सं० अंग+रक्ष)-कवच, अंग की रक्षा करनेवाली। उ० अँगरी पहिरि कूँड़ि सिर धरहीं। (मा० २।१९१।३)

अँगवनिहारे-सहन करनेवाले। उ० सूल कुलिस असि अँगवनिहारे। (मा० २।२५।२)

अँगहीन-दे० 'अंगहीन'। उ० १ दीन सब अँगहीन छीन मलीन अघी अघाइ। (वि० ४१)

अंगहीन-(स०)-१ असहाय, २. लुंज, जिसका कोई अंग नष्ट हो गया हो। ३ कामदेव।
अंगा-(स० अंग)-१ अंग, २ अंगरखा, अचकन। उ० १ कीन्हा गरलनील जो अंगा। (वै० ४७)
अँगार-दे० 'अंगार'।
अंगार-(स०)-दहकता कोयला, चिनगारी। उ० जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ। (मा० ५।१२)
अँगारा-दे० 'अंगारा'।
अंगारा-दे० 'अंगार'। उ० देखियत प्रगट गगन अंगारा। (मा० ५।१२।४)
अँगारू-दे० 'अंगार'। उ० पाके छत जनु लाग अँगारू। (मा० २।१६१।३)
अंगारू-दे० 'अंगार'।
अंगीकार-(स०)-स्वीकार, ग्रहण। उ० किये अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज को। (क० ७।१३)
अंगीकारा-दे० 'अंगीकार'। उ० करहु तासु अब अंगीकारा। (मा० १।८६।२)
अँगुरिन-(स० अंगुलि)-१ उँगलियों से, २ उँगलियाँ। उ० १ अंगुरिन भ्रहि अकास। (व० २८)
अँगुरियाँ-उँगलियाँ। उ० सिसवति चनन अँगुरियाँ लाए। (गी० १।२६) मु० अँगुरियाँ लाए-उँगलियाँ पकड़कर।
अँगुरी-उगली।
अंगुलि-(स०)-उँगली। उ० चितव जो लोचन अंगुलि लाएँ। (मा० १।११७।२)
अंगुली-उँगली। उ० सुभग अँगुष्ठ अंगुली अविरल। (गी० ७।१७)
अंगुलित्रान-(स० अंगुलित्राण)-गोह के चमड़े का बना हुआ एक दस्ताना, जिसे बाण चलाते समय उँगलियों को रगड़ से बचाने के लिए पहिनते हैं। उ० अंगुलित्रान कमान बान छवि। (गी० ७।१७)
अँगुष्ठ-(स० अंगुष्ठ)-अँगूठा। उ० सुभग अँगुष्ठ अंगुली अविरल। (गी० ७।१७)
अंघ्रि-(स०)-१ पैर, २ वृक्ष की जड़। उ० १ भवदंघ्रि निरादर के फल ए। (मा० ७।१४।५)
अँचइ-(स० आचमन) १ आचमन करके, पीकर के, २ भोजन के बाद हाथ मुँह धोकर के। उ० २ अँचइ पान सब काहूँ पाए। (मा० १।३५१।१) अँचइअ-आचमन कीजिए, पीजिए। उ० अँचइअ नाथ कहहिं मृदुबानी। (मा० २।११५।१) अँचइ-१ पी गया, २ पीकर। उ० १ लाज अँचइ घोरि। (वि० १५८) अँचवत-आचमन करते ही, पीते ही। उ० जो अँचवत नृप मातहिं तेई। (मा० २।२३१।४) अँचवहिं-आचमन करते हैं, पीते हैं। अँचवै-पीता है। उ० जो अँचवै जल स्वाति को। (दो० ३०६)
अंचल-(स०)-१ साड़ी का छोर, आँचल २ सीमा के समीप के देश का भाग ३ किनारा, तट। उ० १ अंचल बात बुझावहिं दीपा। (मा० ७।११८।४) मु० अंचल पसारि-(स्त्रियाँ बड़े या देवता से कुछ माँगते समय स्त्रियाँ अंचल फैलाती हैं) दीनता दिखा विनती कर। विनय से माँग। उ० पुरनारि सकल पसारि अंचल बिधिहि बचन सुनावहीं। (मा० १।३११। छ०)
अँचवाइ-(सं० आचमन) आचमन करवा कर, हाथ धुलाकर। उ० अँचवाइ दीन्हे पान गवने बास जहँ जाको रह्यो। (मा० १।९९। छ०) अँचवायउ-आचमन करवाया। उ० पूजि कीन्ह मधुपर्क अमी अँचवायउ। (पा० १२५)
अंजन-(स०)-१ आँखों में लगाने का काजल या सुरमा, २ रात, ३ स्याही, ४ माया, ५ एक पर्वत का नाम, ६ छिपकली ७ लेप, ८ एक सर्प का नाम। उ० १ तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नयन सुखंजन जातक से। (क० १।१)
अंजनकेस-(स० अंजनकेश) दीप, चिराग जिसका केश अंजन हो। उ० अंजनकेस सिखा जुवती तहँ लोचन-सलभ पठायो। (वि० १४२)
अंजना-(स०)-१ कुंजर नामक बंदर की पुत्री और केसरी नामक बंदर की भार्या जिसके गर्भ से हनुमान उत्पन्न हुए थे। कहीं-कहीं इन्हें गौतम की पुत्री भी कहा गया है। २ आँख की पलक पर होनेवाली लाल फुंसी। ३ दो रंगों की छिपकली ४ एक मोटा धान। उ० १ जयति लसदंजनादितिज। (वि० २६) अंजनादितिज-(स० अंजना+अदिति+ज)-अंजनारूपी देव माता (अदिति) से जन्मे हुए, हनुमान। उ० जयति लसदंजनादितिज। (वि० २६)
अंजनी-(स०) अंजना हनुमान की माता। उ० जयति अंजनी-गर्भ अंभोधि-संभूत बिधु। (वि० २५)
अंजनीकुमार- स० -अंजनी के पुत्र, हनुमान। उ० बिगरी सँवार अंजनीकुमार कीजे मोहि। (ह०१५
अंजलि- (स०)-हाथ का संपुट, अंजुलि। उ० सुर साधु चाहत भाउ सिंधु कि तोष जल अंजलि दिएँ। (मा० १।३२६। छ० १) अंजलिगत-हस्तगत, अंजलि में रखे हुए या प्राप्त हुए। उ० अंजलिगत सुभसुमन जिमि। (मा०१।३६)
अंजली-दे०-'अंजलि'।
अंजि-(स० अंजन)-अंजन लगाकर आँजकर। उ० जथा सुअंजन अंजि दृग। (मा०१।१)
अंजुलि-(स० अंजलि)-हाथ का संपुट, अंजलि, अँजुरी।
अंजोर-(स०उज्ज्वल)-प्रकाश।
अँजोरि-(स० अंजलि)-१ खोज, निकाल, २ छीन, छीनकर। उ० १ पैठि उर बरबस दयानिधि दंभ लेत अंजोरि। (वि० १५८)
अंजोरि-(स० उज्ज्वल)-प्रकाश कर।
अंजोरी-प्रकाश, उजाला। उ० रवि सनमुख खद्योत अँजोरी। (मा० ३।११।१)
अंड-(स०)-१. ब्रह्माण्ड, २ अंडा, ३ अंडकोश, ४ वीर्य, ५ कस्तूरी का नाफा, ६ पंच आवरण, ७ कामदेव, ८ मकानों के ऊपर के कलश। उ० १ अंड अनेक अमल जसु छावा। (मा० २।१२६।१)। अंडन्हि-अंडों का। उ० अंडन्हि कमल हृदय जेहि भाँती। (मा० २।७।४)
अंडकटाह-(स०)-१ ब्रह्मांड, विश्व २ ब्रह्मांड का अर्ध भाग। उ० १ एहि बिधि देखत फिरउँ मैं अंडकटाह अनेक। (मा० ७।८०ख)
अंडकोस-(स० अंडकोश)-१ ब्रह्मांड, २ फोता, ३ सीमा। उ० १ अंडकोस समेत गिरि कानन। (मा० २।२१।२)
अंडज-(स०)-अंडे से उत्पन्न होनेवाले जीव, १ पक्षी, २

मछली, ३ सर्प। उ० १ उदर माझ सुनु अंडजराया। (मा० ७।८०।२)

अंडजराया—(सं० अंडज+राजन्)—पक्षियों के राजा। गरुड़। उ० उदर माझ सुनु अंडजराया। (मा० ७।८०।२)

अंत—(सं०)—१ अंतःकरण, मन, २ भीतर। उ० १ स्वांत सुखाय तुलसीरघुनाथगाथा। (मा० १।१।श्लो०७)

अंतःकरण—(सं०)—भीतरी इंद्रिय, जो दुःख, सुख, निश्चय, विकल्प आदि का अनुभव करती है। मन, चित्त।

अंत करन—दे० 'अंत करण'।

अंत—(सं०)—१ समाप्ति, अवसान, २ सीमा, ३ मृत्यु, ४ परिणाम, ५ शेष, बाकी। उ० १ जो पै अलि ! अंत इहै करिबे हो। (कृ० ३६) २ अंत नहीं तव चरित्र, (वि० ५०) अंतहु—अंत में, अंत में भी। उ० अंतहु कीच तहाँ जहँ पानी। (मा० २।१८२।२)

अंतअगार—(सं० अंत+आगार) अगार=धाम। धाम का अंतिम अक्षर 'म'। उ० दूसर अंतअगार। (स० २३७)

अंतक—(सं०) १ काल, २ यम, ३ नाशकर्ता, ४ सन्निपात का एक भेद, ५ ईश्वर, ६ शिव। उ० १ अनंत भगवंत जगदंत अंतक-त्रास-समन। (वि० ४६)

अंतकारी—(सं०)—अंत करनेवाला, संहारकारी, नाशकारी। उ० कलातीत कल्याण कल्पांतकारी। (मा० ७।१०८।छं०६)

अंतकाल—(सं०) मृत्यु, अंतिम समय।

अंतकृत—(सं०)—अंत करनेवाला, यमराज, धर्मराज। उ० भूमिजा-दुःख-संजात रोषांतकृत जातनाजंतु-कृत-जातुधानी। (वि० २६)

अंतर—(सं०)—१ अलगाव, २ भेद, फर्क, ३ भीतर, ४ बीच, ५ बीच की दूरी, ६ मन, ७ मद, ८ लुप्त, ९ ओट, आड़, १० छेद। उ० १ संत भगवंत अंतर निरंतर नहीं। (वि० ५७) २ ग्यानहि भगतिहि अंतर केता। (मा० ७।११५।६) ३ बसइ गरुड़ जाके उर अंतर। (मा० ७।१२०।१) ४ उभय अंतर एक नारि सोही। (गी० २।११)

अंतरअयन—(सं०)—१ काशी का मध्य भाग, २ अंतरगृही, ३ तीर्थों की एक परिक्रमा विशेष, ४ एक देश का नाम। उ० १ अंतरअयन अयन भल, थन फल बच्छ बेद बिस्वासी। (वि० २२)

अंतरगत—(सं० अंतर्गत)—१ हृदयस्थ, हृदय के भीतर, २ भीतर आया हुआ, ३ गुप्त। उ० १ सगुन रूप लीला बिलास-सुख सुमिरन करति रहति अंतरगत। (गी० २।६)

अंतरगति—(सं० अंतर्गति)—१ मन या हृदय की गति, २ अंतर्वासना। उ० १ यह बिचारि अंतरगति हारति। (गी० २।१६)

अंतरजामिहूँ—(सं० अंतर्यामी) १ अंत करण में स्थित होकर प्रेरणा करनेवाले भी, २ अंत करण की बात जाननेवाले भी। उ० १ अंतरजामिहूँ तें बड़ बाहरजामि हैं। (क० ७।१२९) अंतरजामी—हृदय की बात जाननेवाला। उ० मैं अपराध सिंधु करुणाकर जानत अंतरजामी। (वि० ११७)

अंतरदाठि—(सं० अंतर्दृष्टि)—अंतर्दृष्टि विवेक।

अंतरधान—(सं० अंतर्धान)—छिप जाना, गुप्त हो जाना। उ० यहु बिधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु तब भए अंतरधान। (मा० १।१३८)

अंतरधाना—दे० 'अंतरधान'। उ० तुरत भयउ खल अंतरधाना। (मा० ६।७६।६)

अंतरबल—(सं० अंतर्बल)—भीतरी बल, हिम्मत। उ० गर्जा अति अंतरबल थाका। (मा० ६।६२।१)

अंतरसाखी—(सं० अंतर्साक्षी)—मन या हृदय का साक्षी, भगवान। उ० प्रगट कीन्हि चह अंतरसाखी। (मा० ६।१०८।७)

अंतरसाल—रसाल=आम। आम का अंतिम अक्षर 'म'। उ० मरन दुतिय नासक निरय तुलसी अंतरसाल। (स० २८५)

अंतरहित—(सं० अंतर्हित) दृष्टि से ओझल, गुप्त। उ० कहि अस अंतरहित प्रभु भयऊ। (मा० १।१३३।१)

अंतरात्मा—(सं०)—जीवात्मा, जीव, आत्मा।

अंतरिक्ष—(सं०)—१ पृथ्वी और सूर्यादि लोकों के बीच का स्थान, दो ग्रहों या तारों के बीच का स्थान, २ आकाश, ३ स्वर्ग, ४ तीन प्रकार के केतुओं में से एक, ५ अंतर्द्धान, गायब।

अंतरु—दे० 'अंतर'। उ० २ हंस अंसीसहि अंतर तैसें। (मा० १।७०।१)

अंतर्जामिहि—अंतर्यामी को, भगवान को। उ० तुलसी क्यों सुख पाइए अंतर्जामिहि धूति ? (दो० ४११)

अंता—अंत, समाप्ति। उ० संतसंगति संसृति कर अंता। (मा० ७।४५।३)

अँतावरि—(सं० अंत्र + अवली) अँतड़ी। उ० धरि गाल फारहिं उर बिदारहिं गल अँतावरि मेलहीं। (मा० ६।८१। छं० २)

अंतावरीं—आँतें, अंतड़ियाँ। उ० अंतावरीं गहि उड़त गीध, (मा० ३।२०। छं० २)

अंतिम—(सं०)—आखीरी, अंत का, अंतवाला।

अँथइहि—(सं० अस्त)—अस्त होगा छिपेगा। उ० उदित सदा अँथइहि कबहूँ ना। (मा० २।२०९।१) अँथयउ—१ अस्त हो चला, २ अस्त हो गया। उ० १ रबिकुल रबि अँथयउ जियँ जाना। (मा० २।१५४।२) २ अँथयउ आजु भानुकुल भानू। (मा० २।१२६।३)

अँदेस—दे० 'अँदेसा'। उ० कमठपीठ धनु सजनी कठिन अँदेस। (ब० १४)

अँदेसा—दे० 'अँदेसा'। उ० असमंजस अस मोहि अँदेसा। (मा० १।१४।५)

अंदेसा—(फा० अंदेश)—संदेह, खटका सोच, डर।

अंध—सं०)—१ अंधकार, २ अज्ञानी, ३ अंधा, नेत्रहीन, ४ जल ५ उल्लू, ६ चमगादड़। उ० १ मोह अंध रबि बचन बहाये। (बै० २२) ३ अंध मैं मंद ब्याल गामी। (वि० ५६) ३ अंध कहे दुख पाइहै, डिठियारो केहि डीठि ? (दो०४८१) अंधउ—अंधा भी। उ० अंधउ बधिर न अस कहहिं। (मा० ६।३१) अंधहि—अंधे को। उ० अंधहि लोचन लाभु सुहावा। (मा०१।३५०।४)

अंधक—(सं०)—१ कश्यप और दिति का पुत्र एक दैत्य जिसके सहस्र सिर थे। यह मद के कारण अंधों की भांति चलने से अंधक कहलाता था। स्वर्ग से पारिजात लाते समय यह शिव द्वारा मारा गया। ईर्ष्याकारण शिव

अंधकरिपु कहे जाते हैं। २ एक यादव, ३ अंधा, ४ महाताप नामक एक ऋषि। उ० १ त्रिपुर-मद भंगकर, मत्तगज धर्म धर, अंधकोरग-ग्रसन पन्नगारी। (वि०४६)
अंधकार-(स०)-१ अँधेरा, २ अज्ञान, ३ उदासी। उ० १ मोहनिसि निविड़ यमांधकार। (वि० ६२)
अंधकारि-(स०)-अंधक का शत्रु, अंधक को मारनेवाला, शिव।
अंधकारु-दे० 'अंधकार'। उ० १ अंधकारु घर रविहि मसावै। (मा० ७।१२२।६)
अंधकूप-(स०)-१ अंधा कूआँ, जिसका जल सूख गया हो। २ अँधेरा, ३ एक नरक।
अंधतापस-दे 'अंधमुनि'।
अंधमुनि-श्रवण कुमार के पिता। एक दिन महाराज दशरथ सरयू के तट पर किसी जंगल में शिकार खेलने गये थे। समीप ही श्रवणकुमार अपने अंधे माता पिता को रखकर पानी लाने गया था। घड़ा डुबोने की आवाज सुनकर दशरथ को किसी हिंस्र जन्तु के होने का संदेह हुआ और उन्होंने बाण चला दिया। श्रवणकुमार के कराहने पर दशरथ को तथ्य का पता चला और वे उसे वहीं मरा छोड़कर उसके माता पिता को पानी पिलाने चले। उन लोगों से इन्हें पूरी कहानी बतलानी पड़ी, जिसके फल स्वरूप पुत्र वियोग में दोनों ने बिना जल ग्रहण किए शरीर छोड़ दिया। श्रवणकुमार के पिता ने मरते समय दशरथ को शाप दिया कि तुम भी पुत्र वियोग में मरोगे। उ० बिधि बस बन मृगया फिरत दीन्ह अंधमुनि साप। (प्र० १।२।३)
अँधिआर-दे 'अंधकार'। अँधिआरें-अँधेरे में, अँधेरा होने पर। उ० अवध प्रबेसु कीन्ह अँधिआरें। (मा० २।१४७।३)
अँधिआरी-(स० अंधकार)-अँधकारमयी, अँधेरी। उ० मानहु कालराति अँधिआरी। (मा० २।८३।३)
अँधियार-(स० अंधकार)-अंधकार, अंधेरा। उ० असुरन कहँ लखि लागत जग अँधियार। (ब० ३६)
अँधियारो-अंधेरा। उ० अँधियारो मेरी बार क्यों त्रिभुवन उजियारे। (वि० ३३)
अंधेर-(स० अंधकार)-१ अनीति, २ उपद्रव ३ गड़बड़।
अंब-(स०)-माता, अंबा। उ० कबहुक अंब अवसर पाइ। (वि० ४१) अंबनि-१ माताओं को, २ माताएँ। उ० १ देत परम सुख पितु अरु अंबनि। (गी० १।२८)
अंबक(१)-(स०)-१ आँख, २ ताँबा, ३ पिता। उ० १ नव अंबुज अंबक छबि नीकी। (मा० १। १४७।२)
अंबक (२)-(स० अंब + क)-माता का।
अंबर-(स०)-१ कपड़ा, २ आकाश, ३ एक कपास, ४ अभ्रक, ५ बादल। उ० १ बरषि दिये मनि अंबर सबहीं। (मा० ६।११७।३)
अंबरीष-(स०) १ एक सूर्यवंशी राजा। इक्ष्वाकु से २८ वीं पीढ़ी में नाभाग के पुत्र राजा अंबरीष बहुत बड़े भक्त थे। एक बार द्वादशी के दिन वे पारण करने जा ही रहे थे कि दुर्वासा अपनी शिष्यमंडली के साथ आ पहुँचे। राजा ने भोजन के लिए इन्हें निमंत्रित किया पर वे संध्या वंदन के लिए चले गये और वहाँ जाकर अधिक देर कर दी। इधर द्वादशी केवल एक पल बाकी रह गई। द्वादशी में पारण न करने से दोष लगता है' इस कारण राजा घबराए और अंत में विद्वान् ब्राह्मणों के परामर्श से भगवान का चरणामृत ग्रहण किया। थोड़ी देर में दुर्वासा आये और उस अवज्ञा के लिए बहुत बिगड़े। उन्होंने अपनी जटा से एक बाल तोड़कर पृथ्वी पर पटक दिया जो राक्षसी बनकर राजा के विनाश के लिए दौड़ी। उसी समय विष्णु के सुदर्शन चक्र ने प्रकट होकर, उस कृत्या नाम की राक्षसी को मार राजा की रक्षा की और कुपित होकर ऋषि के पीछे दौड़ा। ऋषि दुर्वासा क्रम से भागते हुए ब्रह्मा, शिव और विष्णु के पास अपनी रक्षा के लिए गए पर सभी ने अपनी असमर्थता प्रकट की। अंत में उन्हें अंबरीष की शरण में आना पड़ा और अंबरीष की प्रार्थना पर चक्र शांत होकर लौट गया। अंबरीष अब तक प्रतीक्षा कर रहे थे इस कारण दुर्वासा ने भोजन स्वीकार किया। और फिर उनकी प्रशंसा करते हुए अपने आश्रम पर लौट गये। २ भड़भूँजे का मिट्टी का बर्तन जिसमें वह अन्न भूनता है। ३ विष्णु, ४ शिव, ५ सूर्य, ६ ११ वर्ष से छोटा बालक, ७ पश्चाताप, ८ लड़ाई। उ० १ सुधि करि अंबरीष दुरबासा। (मा० २।२६४।२)
अंबा-(स०)-१ माता, २ दुर्गा, ३ पार्वती, ४ आम्रफल, ५ काशिराज इन्द्रद्युम्न की सबसे बड़ी लड़की जो विचित्र वीर्य की विवाहिता बनाई गई। उ० १ जगदंबा जहँ अवतरी। (मा० १।६४)
अँबारी-(अर० अमारी)-१ हाथी की पीठ पर रखने का हौदा, २ छज्जा। अँबारीं हौदे। उ० १ कलित करिबरन्हि परीं अँबारीं। (मा० १।३००।१)
अंबिका-(स०)-१ पार्वती, २ दुर्गा, ३ माता, ४ एक राष्ट्र की माता। उ० १ बासी नरनारि ईस अंबिका सरूप हैं। (क० ७।१७१) अंबिके-(स०)-हे माता, हे पार्वती! उ० १ दुसह-दुरघ-अवलि अगदंबिके। (वि० १५)
अंबिकापति-(स०) शिव, महादेव। उ० अंबिकापतिमभीष्ट सिद्धिदम्। (मा० ७।१।श्लो०३)
अंबु-(स०)-१ जल, २ सुगंधवाला, ३ जन्मकुंडली का चौथा घर, ४ चार की संख्या। उ० १ अंबु तू हौं अंबु चर, अंब तू हौं डिंभ। (ह० ३४) अंबुचर-पानी का जीव, जलचर। उ० अंबु तू हौं अंबुचर। (ह० ३४)
अंबुज-(स०)-१ कमल, २ बेंत, ३ ब्रह्मा। उ० १ नव अंबुज अंबक छबि नीकी। (मा० १।१४७।२)
अंबुद-(स०)-१ बादल, २ नागरमोथा। उ० १ बिधि महेस मुनि सुर सिहात सब, देखत अंबुद ओट दिये। (गी० १।७)
अंबुधर-(स०)-बादल, जो जल धारण करे। उ० नव अंबु धर बर गात अंबर पीत सुर मन मोहई। (मा० ७।१८ छं० २)
अंबुधि-(स०)-समुद्र, सागर। उ० नदी उमगि अंबुधि कहुँ धाई। (मा० १।८२।१)
अंबुनाथ-(स०)-समुद्र। उ०भयाम्बुनाथ मन्दरं। (मा० ३। ४। श्लो० २)
अंबुनिधि-(स०)-समुद्र। उ० कृपा अंबुनिधि अंतरजामी। (मा० २।२६७।१)

अबुपति-(स०)-१ वरुण, २ समुद्र। उ० १ आनन अनल अबुपति जीहा। (मा० ६।१५।३)

अंभोज-(स०)-१ कमल, २ चंद्रमा, ३ सारस पक्षी, ४ शंख, ५ कपूर। उ० १ बरन अंभोज लोचन विसाल। (वि० ५१)

अंभोद-(स०)-बादल, मेघ। उ० अचल अनिकेत अविरल अनामय अनारंभ अंभोदनादघ्न बधो। (वि० ५६) अंभोदनाद-(अंभोद+नाद)-मेघनाद, रावण का पुत्र, बादल की भाँति गरजनेवाला। उ० अनारंभ अंभोदनादघ्न बधो। (वि० ५६) अंभोदनादघ्न-(स० अंभोद+नाद+घ्न)-लक्ष्मण, मेघ की तरह गरजनेवाले मेघनाद को मारनेवाले। उ० अनारंभ अंभोदनादघ्न बधो। (वि० ५६)

अंभोधर-(स०)-बादल, मेघ।

अंभोधि-(स०)-समुद्र। उ० जयति अंजनी-गर्भ अंभोधि संभूत विधु, (वि० २५) अंभोधे-(स०)-समुद्र का। उ० भवांभोधेस्तितीर्षावतां। (मा० १।१। श्लो० ६)

अंभोरुह-(स०) कमल, जल से उपजा। उ० बदन इंदु अंभोरुह लोचन, (गी० १।५२)

अँबराई-(स० आम्रराजि)-आम की बगीचियाँ। उ० संत सभा चहुँ दिसि अँवराई। (मा० १।३७।६)

अंस-(स० अंश)-१ अंश, भाग, २ स्कंध, ३ कला, ४ चौथा भाग। उ० १ उपजहिं जासु अंस तें नाना। (मा० १।१४४।३) अंसनि-कंधों पर। उ० अंसनि सरासन लसत, सुचि कर सर, तून कटि, मुनि पट लूटक पटनि के। (क० २।१६) अंसन्ह-अंश का बहुवचन, अंशों, कलाओं, भागों। उ० अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। (मा०१।१८७।१)

अंसु-(स० अंशु)-किरण, प्रभा। उ० लेत अंसनि रवि अंसु कहँ देत अमिय अप-सार। (स० ४५३)

अँसुअन-(स० अश्रु)-१ आँसुओं से २ आँसुओं को। उ० १ अँसुअन पथिक निरास तें तट भुइँ सजल सरूप। (स० ६२४)

अंसुक-(स० अंशुक)-१ रेशमी वस्त्र, २ महीन, कपड़ा ३ दुपट्टा। उ० १ किंसुक बरन सुअंसुक सुषमा सुखनि समेत। (गी० ७।२१)

अइहहिं-आएँगे। उ० कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा। (मा० ५।१६।२)

अउर-(स० अपर)-और अन्य। उ० नहिं जानउँ कछु अउर कबारू। (मा० २।१००।४) अउरउ-और भी। उ० अउरउ ग्यान भगति कर भेद सुनहु सुप्रबीन। (मा० ७।११६ ख)

अकंटक-(स०)-निर्भय, निर्विघ्न निष्कंटक। उ० जोगी अकंटक भए पति गति सुनत रति मुरछित भइ। (मा० १।८७। छं० १)

अकंपन-(स०) १ रावण का एक सेनापति। यह रावण का अनुचर था। खर-दूषण के मारे जाने का समाचार रावण को सर्वप्रथम इसी ने सुनाया था। लंका के युद्ध में यह और अतिकाय दो प्रधान सेनापति थे। उसी युद्ध में हनुमान के हाथ से यह मारा गया। २ दृढ़। उ० १ अनिप अकंपन अरु अतिकाया। (मा० ६।४६।२)

अक-(स०) १ दुःख, २ पाप। उ० २ परबस करत विरोध हठि होत चहत अकहीन। (स० ४८८)

अकथ-(स०)-जो कहा न जा सके, अवर्णनीय। उ० सब विधि समर्थ महिमा अकथ तुलसिदास ससयसमन। (क० ७।११५)

अकथनीय-(स०)-जिसका वर्णन न हो सके। उ० अकथनीय दारुन दुखु भारी। (मा० १।६०।१)

अकनि-(स० आकर्ण)-सुनकर। उ० पुरजन आवत अकनि बराता। (मा० १।३४४।२)

अकरुन-(स० अकरुण)-दयारहित, निर्दय। उ० खर कुठार मैं अकरुन कोही। (मा०१।२७५।३)

अकरा-(स० अक्रय्य)-महँगा न लेने योग्य। अकरे-न मोल लेने योग्य महँगे। उ० नाम प्रताप महा महिमा, अकरे किये खोटेउ छोटेउ बाढ़े। (क० ७।१२७)

अकलंकता-(स०)-निर्दोषता निष्कलंकता। उ० अकलंकता कि कामी लहई। (मा०१।२६७।२)

अकलंका-(स० अकलंक)-कलंकरहित, निर्दोष। उ० सबहि भाँति संकर अकलंका। (मा० १।७२।२)

अकल-(स०)-१ अवयव रहित, २ कलारहित ३ संपूर्ण, ४ जिसका खंड न हो ५ कल्पना में न आनेवाला। उ० १ व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुण नाम न रूप। (मा० १।२०५)

अकस-(अर०)-१ बैर, २ बुरी उत्तेजना। उ०१ एते मान अकस कीबे को आपु आहि को? (क० ७।१००) २ यदि बोले विरद अकस उपजाइ कै। (गी० १।८२)

अकसर-(स० एक+सर)-अकेला एकाकी। उ० कवन हेतु मन व्यग्र अति अकसर आयहु तात। (मा० ३।२४)

अकसर-(अर०)-बहुधा, अधिकतर, प्रायः।

अकाज-(स० अकार्य)-१ बुराई, २ हर्ज ३ विघ्न, ४ खोटा काम, ५ निष्प्रयोजन। उ० १ मनहुँ अकाज आनै ऐसो कौन आन है। (क० ५।२२) मु०-अकाज काज-बनाव बिगाड़। उ० तुलसी अकाज काज रामही के रीझे खीझे। (वि० ७६)

अकाजा-दे० 'अकाज'। उ० २ जौं न कहउँ बड़ होइ अकाजा। (मा० १।४५।४)

अकाजू-दे० 'अकाज'। उ० २ जौं न जाउँ तव होइ अकाजू। (मा० १।१६७।३)

अकाजेउ-१ मरे हैं २ अकाज हुआ है, हर्ज हुआ है। उ० १ मानहुँ राजु अकाजेउ आजू। (मा० २।२४७।३)

अकाथ-(स० अकार्यार्थ) अकारथ, व्यर्थ, वृथा। उ० भयो सुगम तो को अमर अगम तनु समुझि धौं कत खोवत अकाथ। (वि० ८४)

अकाम-(स०)-१ निष्काम, कामनारहित, २ व्यर्थ। उ० १ भवहि अनल अकाम बनाई। (मा० ७।११७।७)

अकामा-दे० 'अकाम'। उ० १ षट विकार जित अनघ अकामा। (मा० ३।४५।४)

अकामिनां-(स०) किसी बात की इच्छा न रखनेवालों का। उ० भजामि ते पदांबुजं अकामिनां स्वधामदं। (मा० ३। ४। छं० १)।

अकारन-(स० अकारण) बिना कारण के। उ० काहि अनरा

पर प्रीति अकारन ? (वि० २०६) अकारनहीं-बिना कारण के ही। उ० अभिमान विरोध अकारनहीं। (मा० ७।१०७।२)

अकाल-(स०)-१ बे समय, बे मौसिम, २ दुर्भिक्ष, ३ कमी। उ० १ जिमि अकाल के कुसुम भवानी। (मा० ३।२७।४) मु० अकाल के कुसुम-बिना ऋतु के फूल। ऐसे फूल अशुभ समझे जाते हैं।

अकास-(स० आकाश)-आकाश, नभ, गगन, शून्य। उ० मृगावत सुरसरि बिहाय सठ, फिरि फिरि बिकल अकास निचोयो। (वि० २४५)

अकासबानी-(स० आकाशवाणी)-देव वाणी, जो वाणी आकाश से सुनाई पड़े। उ० भै अकासबानी तेहि काला। (मा० १।१७३।२)

अकासा-दे० 'अकास'। उ० भै बहोरि बर गिरा अकासा। (मा० १।१७४।२)

अकिंचन-(स०) १ अहंकार, ममता और मान इत्यादि से रहित, २ सर्वत्यागी, ३ निर्धन, ४ आवश्यकता से अधिक धन न संग्रह करनेवाला। उ० १ परम अकिंचन प्रिय हरि केरे। (मा० १।१६१।२) २ अचल अकिंचन सुचि सुखधामा। (मा० ३।४१।४)

अकुंठ-(स०) १ जो कुंठित न हो, तीव्र, तेज, पैना, २ श्रेष्ठ, उत्तम। उ० १ मति अकुंठ हरि भगति अखंडा। (मा० ७।६३।१)

अकुंठा-दे० 'अकुंठ'। उ० २ लागहि रघुपति भगति अकुंठा। (मा० ६।२६।४)

अकुल-(स०)-परिवार रहित, कुलहीन। उ० अकुल अगेह दिगंबर ब्याली। (मा० १।७९।३)

अकुलाइ-(स० आकुल)-व्याकुल होकर। उ० समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ। (मा० २।५७) अकुलाई-व्याकुल होकर, आकुल होकर। उ० मनहुँ उठेउ अतुषि अकुलाई। (मा० २।२७६।३) अकुलाति-व्याकुल होती है घबड़ाती है। अकुलातीं-व्याकुल होती हैं, व्याकुल होती हैं। अकुलान-अकुलाया, व्याकुल हुआ। उ० सर पैठत कपि पद गहा, मकरी तब अकुलान। (मा० ६। ५७) अकुलाना-१ व्याकुल हुआ घबराया, २ ऊबा, ३ आवेग में आया। उ० १ कहि न सकइ कछु अति अकुलाना। (मा० २।१००।२) अकुलानी-व्याकुल हो उठीं, व्याकुल हुई। उ० अति सुकुमारि देखि अकुलानी। (मा० २।५८।१) अकुलाने-१ मग्न हुए, २ व्याकुल हुए, ३ क्षुब्ध। उ० १ जानि बड़े भाग अनुराग अकुलाने हैं। (गी० १।२६) अकुलाहीं-व्याकुल होते हैं। घबड़ाते हैं। उ० पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। (मा० १।१३२।१)

अकुलीन-(स०) नीच कुल का, बुरे कुल का। उ० कुल अकुलीन को सुन्यो है, बद साखि है। (वि० ६६)

अकूपार-(स०)-१ समुद्र, २ बड़ा कछुआ। वह कच्छप जो पृथ्वी के नीचे माना गया है। ३ पत्थर या चट्टान।

अकृपाल-दे० 'अकृपालु'।

अकृपालु-(स०)-निर्दय, कृपा रहित। उ० प्रभु अकृपालु, कृपालु अलायक जहँ-तहँ चितहि डोलायों। (वि० २४२)

अकेल-(स० एक + हि० ला)-अकेला, एकाकी। उ० अति अकेल बन बिपुल कलेसू। (मा० १।१२०।३) अकेलि-अकेली, एकाकी, उ० बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू। (मा० १।५२।४) अकेले-एकाकी। अकेला। उ० को तुम्ह अस बन फिरहु अकेले। (मा० १।१२१।२)

अकोबिद-(स० अकोविद)-मूर्ख, अज्ञानी। उ० अस अकोबिद अध अभागी। (मा० १।११५।१)

अक्रूर-(स०)-१ दयालु, सरल, २ एक यादव जो श्रीकृष्ण के चचा लगते थे।

अक्ष-(स०)-१ रावण का पुत्र अक्षकुमार जिसे हनुमान ने लंका का प्रमोदवन उजाड़ते समय मारा था। २ आँख, ३ गाड़ी, ४ व्यवहार, ५ इंद्रिय, ६ आत्मा, ७ चौसर, पासा का खेल। उ० १ रूख निपातत, खात फल, रक्षक अक्ष निपाति। (प्र० ३।५।१)

अक्षत-(स०)-१ घायल, २ अखंडित, ३ जिसमें क्षत या घाव न किया गया हो।

अक्षय-(स०)-जिसका क्षय या नाश न हो। कल्प के अंत तक रहनेवाला। उ० अक्षय अकलंक सरद-चंद चंदिनी। (गी० २।४३)

अक्षर-(स०)-१ नित्य, अविनाशी, ब्रह्म, २ अकारादि वर्ण।

अक्षि-(स०)-आँख।

अखंड-(स०)-१ संपूर्ण, २ लगातार, ३ बेरोक। उ० १ अगुन अखंड अनंत अनादी। (मा० १।१४४।२)

अखंडल-(स० अखंड)-१ अखंड, पूरा, २ इंद्र। उ० १ पुर पुरमर, उर हरषेउ अचलु अखंडल। (पा० ११४)

अखंडा-दे० 'अखंड'। उ० १ सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा। (मा० ७।११८।१)

अखंडित-(स०)-जिसके टुकड़े न हुए हों। उ० मोह गुन गृह बिग्यान अखंडित। (मा० ७।४६।४)

अखत-(स० अक्षत)-चावल, पूजा के लिए उपयुक्त चावल जो टूटा नहीं रहता।

अखय-(स० अक्षय) अक्षय, जिसका नाश न हो। उ० परसि अखय बटु हरषहिं गाता। (मा० १।४४।३) अखय-बटु-(स० अक्षयवट)-वह बरगद का पेड़ जिसका नाश न हो। प्रयाग का प्रसिद्ध वट वृक्ष। उ० छुअ अखयबटु मुनि मनु मोहा। (मा० २।१०५।४)

अखाग-(स० अक्षवाट)-१ नाचने-गानेवालों की मंडली, २ मल्लयुद्ध के लिए बना स्थान, ३ साधुओं का अड्डा, ४ रंगभूमि, ५ आँगन। उ० १ भाँति बिविध सब होइ अखारा। (मा० ६।१०।४) अखारेन्ह-अखाड़ों में, मल्ल शालाओं में। उ० नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुबिधि एक एकन्ह तजहीं। (मा० ५।३। छं०२) अखारो-दे० 'अखारा'।

अखिल-(स०)-१ संपूर्ण, बिलकुल, पूरा, २ अखंड, सर्वांगपूर्ण। उ० १ अनरथ असगुन अघ अमुभ अनमल अखिल अकाज। (प्र० ३।१।४) २ सुखद समद सरद बिरज अनवद्य अखिल, बिपिन-आनंद-बीथिन बिहारी। (वि० ५१) अखिलविग्रह-(स०)-समस्त ब्रह्मांड जिसका शरीर हो। उ० अखिलविग्रह, उग्ररूप शिव भूपसुर, (वि० १०) अखिलेस्वर-(स० अखिलेश्वर)-समस्त संसार के ईश्वर। उ० पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी। (मा० १।१४८।१)

अखेटकी-(सं० आखेटक)-शिकारी। उ० अटत गहन बन अहन अखेटकी। (क० ७।९६)

अग-(सं०)-क न चलनेवाला, १ पहाड़, २ पेड़। ख टेढ़ा चलनेवाला, ३ सर्प, ४ सूर्य। उ० १ गये पूरि सरधूरि, भूरि भय अग थल जलधि समान। (गी० ५।२२) अगजग-जड़ और चेतन, चराचर। उ० अगजग जीव नाग नर देवा। (मा० ७।६४।४) अगजगनाथ-चराचर के स्वामी, भगवान। उ० अगजगनाथ अतुल बल जानहु। (मा० ६।३६।४) अगजगपालिके-हे स्थावर-जंगम को पालनेवाली देवी पार्वती, हे पार्वती। उ० रचत विरंचि, हरि पालत, हरतहर, तेरे ही प्रसाद जग अगजगपालिके। (क० ७।१७३) अगजगरूप-जड़ चैतन्यमय, सर्वव्यापी परमात्मा। उ० नयन निरखि कृपासमुद्र हरि अगजगरूप भूप सीतावर। (वि० २०५)

अगणित-(सं०) जिसकी गणना न हो सके, अपार। उ० कंदर्प-अगणित अमित छवि, नवनील नीरज-सुंदर। (वि० ४५)

अगति-(सं०)-दुर्गति, बुरी दशा। उ० ऋधि, सिधि, बिधि चारि सुगति जा बिनु गति अगति। (गी० २।८२)

अगनित-दे० 'अगणित'। उ० लावन्य-वपुष अगनित अनंग। (वि० ६४)

अगनि-(सं० अग्नि)-आग।

अगनी-(सं० अगणित)-दे० 'अगणित'।

अगम-(सं०)-१ जहाँ कोई जा न सके, २ न जानने योग्य, दुर्बोध। ३ कठिन, विकट, ४ दुर्लभ, अलभ्य, ५ अपार, बहुत, ६ अथाह, गहरा। उ० १ एक अग मग अगम गवन कर विलमु न छिन छिन छाहँ। (वि० ६५) २ मनिकुल अगम भरतगुन गाथा। (मा० २।२३३।१) ३ तुलसी महेस को प्रभाव भाव ही सुगम, निगम अगम हूँ को जानिबो गहनु है। (क० ७।१६०) ४ अगम जो अमरनि हूँ सो तनु तोहिं दियो। (वि० १३५) अगमै-दे० 'अगम'। उ० ५ ताकी महिमा क्यों कही है जाति अगमै। (क० ७।७६)

अगमनो-(सं० अग्रवान्)-आगे करके। उ० रावन करि परिवार अगमनो जमपुर जात बहुत सकुचैहै। (गी० ५।२१)

अगमु-दे० 'अगम'। उ० ३ अगमु न कछु प्रतीति मन मोरें। (मा० १।३४३।२)

अगम्य-(सं०)-दुर्गम, न जाने योग्य, अवघट।

अगर-(सं० अगरु)-१ एक प्रकार की सुगंधित लकड़ी। २ एक पेड़ का नाम जिसकी लकड़ी सुगंधित होती है। ३ उस लकड़ी का चूर्ण। उ० ३ कुंकुम अगर अरगजा छिरकहिं भरहिं गुलाल अबीर। (गी० १।२)

अगरज-(सं० अग्रज)-१ जो पहिले जन्मा हो, अग्रज, २ नायक, नेता, ३ ब्राह्मण। उ० १ ताहातें अगरज भएउ सब विधि तेहि प्रचार। (स० ५३५)

अगरु-(सं०)-दे० 'अगर' उ० अगर प्रसंग सुगंध बसाई। (मा० १।१०।५)

अगवान-(सं० अग्र+यान)-स्वागत के लिए नियुक्त व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह, अगवानी करनेवाला या करने वाले। उ० सजि गज रथ पदचर तुरग लेन चले अग वान। (मा० १।३०४)

अगवाना-अगवानी करनेवाले। उ० चले लेन सादर अग वाना। (मा० १।६५।१)

अगवानी-स्वागत, अभ्यर्थना, आगे बढ़कर लेना। उ० नियरानि नगर बरात हरषी लेन अगवानी गए। (जा० १२५)

अगस्ति-(सं० अगस्त्य)-१ अगस्त्य ऋषि, २ एक तारा जो भादों में सिंह के सूर्य के १७ अंश पर उदय होता है। इसका रंग पीला होता है। ३ एक पेड़। उ० १ सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए। (मा० ३।१२।५) २ उदित अगस्ति पंथ जल सोषा। (मा० ४।१६।२)

अगस्त्य-(सं०) एक ऋषि। मित्रावरुण एक बार उर्वशी को देखकर काम पीड़ित हो गए। उन्हें वीर्यपात हुआ जिसे घड़े में रखा गया। इसी घड़े से अगस्त्य ऋषि का जन्म हुआ इसी कारण कुंभज, घटयोनी आदि भी इनके नाम हैं। एक बार विंध्याचल को इस बात की ईर्ष्या हुई कि सुमेरु की प्रद-क्षिणा सभी करते हैं और उसकी कोई नहीं। वह रुष्ट होकर इतना बढ़ा कि सूर्य का मार्ग बंद हो गया और अँधेरा फैल गया। देवताओं की प्रार्थना पर अगस्त्य ऋषि उसके पास गए। विंध्य शाप के डर से इनके चरणों में गिर गया और योग्य सेवा के लिए प्रार्थना की। अगस्त्य यह कहकर कि जब तक मैं न आऊँ इसी प्रकार रहो उज्जैन की ओर चले गए और फिर न लौटे। तब से विंध्य उसी प्रकार पड़ा है। एक बार अगस्त्य समुद्र के किनारे पूजा कर रहे थे। समुद्र इनकी कुछ सामग्री बहा ले गया। इस पर रुष्ट होकर ऋषि उसे पी गए। फिर जब देवताओं ने प्रार्थना की तो लघुशंका के द्वारा समुद्र को अपने उदर से बाहर किया। इसी कारण समुद्र का जल नमकीन है। कई बार इन्होंने ऋषियों की राक्षसों से रक्षा की। अगस्त्य अपने लोक-कल्याणकारी चरित्र के लिए प्रसिद्ध हैं।

अगह-(सं० अग्राह्य)-जो गहने योग्य न हो, जो पकड़ा न जा सके। उ० नृपगति अगह, गिरा न जाति गही है। (गी० १।८५)

अगहु-दे० 'अगह'। उ० सब विधि अगहु अगाध दुराऊ। (मा० २।४७।४)

अगहुँड़-(सं० अग्र+हिं० हुड़)-१ अगुआ, आगे चलने वाला, २ आगे, आगे की ओर। उ० १ मन अगहुँड़ तन पुलकि सिथिल भयो नलिन नयन भरे नीर। (गी० २।६६) २ भय बस अगहुँड़ परइ न पाऊ। (मा० २।२५।१)

अगाऊ-(सं० अग्र+हिं० आऊ)-आगे, आगे ही। उ० यह तो मोहि खिझाइ कोटि विधि, उलटि बिवादन आइ अगाऊ। (कृ० १२)

अगाध-(सं०)-१ अथाह, २ बहुत, ३ गंभीर। उ० १ एमेउ अगाध बाध रावरे सनेह-बस। (गी० १।८५)

अगाधनि-अगाध का बहुवचन। उ० २ व्याध को साधुपनो कहिए, अपराध अगाधनि में ही जनाइ। (क० ७।१३)

अगाधा-दे० 'अगाध'। उ० १ बरनय माहि बर बारि अगाधा। (मा० १।३७।१)

अगाधु-दे० 'अगाध'। उ० १ तुलसी उतरि जाहु भव उदधि अगाधु। (ब० ६१)

अगाधू-दे० 'अगाध'। उ० २ बेद सम्य गुन विदित अगाधू। (वै० २२)

अगार-(सं० आगार)-१ आगार, घर, धाम, २ ढेर, राशि, ३ अगाड़ी, ४ प्रथम। उ० १ नगर नारि भोजन सचिव सेवक सखा अगार। (दो० ४७५)
अगिन-(सं० अग्नि)-आग।
अगिनि-(सं० अग्नि)-आग। उ० अगिनि थापि मिथिलेस कुसोदक लीन्हेउ। (जा० १६१) अगिनिसमाऊ-[सं० अग्नि + सामग्री (सं०) या सामान (फा०)] अग्निहोत्र की सारी सामग्री। उ० अरुंधती अरु अगिनिसमाऊ। (मा० २।१८७।३)
अगिले-(सं० अग्र)-१ आगे आनेवाले, आगामी, २ प्राचीन, पुरखे। उ० १ न करु बिलंब बिचार चारुमति, बरष पाछिले सम अगिले पलु। (वि० २४)
अगुआइ-(सं० अग्र) अग्रणी होने की क्रिया, मार्ग प्रदर्शन। उ० कियउ निषादनाथु अगुआई। (मा० २।२०३।१)
अगुण-(सं०)-१ गुणरहित, मूर्ख, २ निर्गुण, ब्रह्म।
अगुन-(सं० अगुण)-१ निर्गुण, सत रज और तम गुणों से रहित, ब्रह्म, २ मूर्ख, ३ दोष। उ० १ पेखि प्रीति प्रतीति जन पर अगुन अनघ अमाय। (वि० २२०) २ अगुन अलायक आलसी जानि अधम अनेरो। (वि० २७२) अगुनहि-१ अगुन या निर्गुण में, २ अगुन या निर्गुण को। उ० सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। (मा० १।११६।१)
अगुनी-[सं० अ + गुण (वर्णन)]-जिस पर गुना न जा सके, जिसका वर्णन न हो सके, अथाह, गंभीर। उ० ऐसी अनूप कहैं तुलसी रघुनायक की अगुनी गुन-गाहैं। (क० ७।११)
अगुह्य-(सं०)-जो गुह्य न हो, प्रकट।
अगेह-(सं०)-बिना घरबार का, जिसका ठिकाना कहीं न हो। उ० अकुल अगेह दिगंबर ब्याली। (मा० १।७६।३)
अगेहा-दे० 'अगेह'। उ० तुम्ह सम अधन भिखारि अगेहा। (मा० १।१६१।२)
अगोचर-(सं०)-जो इंद्रियों से न जाना जा सके, अव्यक्त। उ० मन बुद्धि बर बानी अगोचर, प्रगट कवि कैसे करै। (मा० १।३२३।२)
अग्य-(सं० अज्ञ)-मूर्ख, बेसमझ। उ० कीन्ह कपटु मैं संभु सन नारि सहज जड़ अग्य। (मा० १।५७ क)
अग्यता-(सं० अज्ञता)-अज्ञान, मूर्खता। उ० तव कृतज्ञ अग्यता भजन। (मा० ७।३४।३)
अग्या-(सं० आज्ञा)-आदेश, आज्ञा, हुक्म। उ० अग्या सिर पर नाथ तुम्हारी। (मा० १।७७।२)
अग्याता-(सं० अज्ञात)-अनजान में, न जानने से। उ० अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता। (मा० १।२८५।३)
अग्र-(सं०)-१ आगे, २ मुख्य, ३ एक वैश्य राजा का नाम, ४ सिरा, ५ अन्न की भिक्षा का एक परिमाण जो मोर के ४८ अंडों के बराबर होता है। उ० १ धर्मी अग्र करि निय सखि साइ। (मा० १।२२५।४) अग्रकृत-(सं०)-आगे का किया हुआ, पहले का बनाया हुआ। अग्रगण्य-(सं०)-जिसकी गणना पहले हो, श्रेष्ठ। उ० धनुर्भग्नकारानुज्ञानिनामग्रगण्यम्। (मा० ५।१श्लो०३)
अग्रणी-(सं०)-अगुआ, श्रेष्ठ। उ० जयति रुद्राग्रणी विश्व विद्याग्रणी। (वि० २७)
अघ-(सं०) १ पाप, २ दुःख, ३ व्यसन, ४ एक राक्षस सेनापति का नाम। उ० १ केहि अघ अवगुन आपनो करि डारि दिया रे। (वि० ३३) २ जदपि विश्व हानि करत, हरत ताप अघ प्यास। (दो० ३७८) अघमोचनि-(सं० अघ + मोचन)-पापों का नाश करनेवाली। उ० कीरति बिमल बिस्व अघमोचनि रहिहि सकल जग छाइ। (गी० १।१३) अघरूप-जिसका स्वरूप ही पाप हो, बहुत बड़ा पापी। उ० तदपि महीसुर श्राप बस भये सकल अघरूप। (मा० १।१७६) अघहारी-(सं० अघ + हर)-पापों के नाश करनेवाले। उ० गुनगाहक अवगुन अघहारी। (मा० २।२६८।२)
अघट-(सं० अ + घट)-१ जो घटित न हो सके, २ कठिन, ३ अयोग्य, ४ जो कम न हो, ५ एक रस। उ० १ अघट घटना-सुघट, सुघट बिघटन बिकट। (वि० २५)
अघटित-१ असंभव, २ जो हुआ न हो, ३ अवश्य होने वाला, अनिवार्य, ४ अनुचित, ५ बहुत अधिक। उ० १ तिन्हहि कहत कछु अघटित नाहीं। (मा० १।११५।२) ३ काल कर्म गति अघटित जानी। (मा० २।१६२।३)
अघटनघटन-असंभव को संभव करनेवाले। उ० अघटित घटन, सुघट बिघटन, ऐसी बिरुदावलि नहिं आन की। (वि० ३०)
अघाइ-(सं० आघ्राण = नाक तक)-१ छककर, पेट भर कर, तृप्त होकर, २ पूर्णतम, ३ ऊबकर। उ० १ सो तनु पाइ अघाइ किये अघ। (वि० १६४) २ दीन सब अंगहीन छीन मलीन अघी अघाइ। (वि० ४१) अघाई-१ प्रसन्न होकर, तृप्त होकर, २ पूर्णतम। उ० १ गुरु साहिब अनुकूल अघाई। (मा० २।२६०।१)। २ जनम लाभ कइ अवधि अघाई। (मा० २।५२।४) अघाउँगो-अघाऊँगा, तृप्त होऊँगा। उ० धरिहौं नाथ हाथ माथे एहि तें केहि लाभ अघाउँगो? (गी० ५।३०) अघाऊँ-तृप्त होऊँ, तृप्ति पाऊँ। उ० प्रभु बचनामृत सुनि न अघाऊँ। (मा० ७।८८।१) अघात-अघाते, तृप्त होते। उ० देत न अघात, रीझि जात पात आक ही के, भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत हैं। (क० ७।१५६) अघाता-तृप्त होता या तृप्त होते। उ० परम प्रेम लोचन न अघाता। (मा० ३।२१।२) अघाति-तृप्त होती है, तृप्ति होती। उ० चाहत मुनि-मन अगम सुकृत फल, मनसा अघ न अघाति। (वि० २३३) अघाती-तृप्त होती। उ० आसु तृषा नहिं तृषा अघाती। (मा० १।२८।२) अघान-तृप्त हुए। उ० भाय भगति आनंद अघान। (मा० २।१०८।१) अघानो-अघाया हुआ, तृप्त। उ० लखै अघानो भूख ज्यों, लखै जीति में हारि। (दो० ४४३) अघाय-अघाकर, पूर्ण। अघाहिं-अघाती हैं, तृप्त होती हैं या तृप्त होते हैं। उ० नहिं अघाहिं अनुराग भाग भरि भामिनि। (जा० १५०) अघाहीं-तृप्त होते हैं, भरते हैं या भरती हैं। उ० नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं। (मा० २।२५१।३) अघाहूँ-तृप्त हो। उ० रामभगत अब अमिअ अघाहूँ। (मा० २।२०९।३)
अघाउ-तृप्ति, संतुष्टि। उ० भरत सभा सनमानि सराहत होत न हृदय अघाउ। (वि० १००)
[illegible] आघात)- चोट, आघात। उ० सात के सहै जो मैं कहै 'हा है'। (क० ५।३)

अघी–(स०)–पापी, अधर्मी। उ० लाले पाले पोपे तोपे आलसी अभागी अघी। (वि० २५३)
अचचल–(स०)–चचलता रहित, स्थिर, शात। उ० भए विलोचन चारु अचचल। (मा० १।२३०।२)
अचंभव–(स० असंभव)–अचभा, आश्चर्य। उ० सुर मुनि सबहिं अचभव माना। (मा० ६।७१।४)
अचभा–आश्चर्य, अचरज।
अचइ–(स० आचमन)–आचमन करके, पी करके। उ० पैठि बिबर मिलि तापसिहि, अचइ पानि, फलु खाइ। (प्र० ३।७।२) अचवँत–आचमन करते ही पीते ही। उ० जो अचवँत नृप मातहिं तेइ। (मा०२।२३१।४) अचवै–आचमन करे।
अचगरि–(?)–१ चपलता, नटखटी, शरारत, अत्याचार। उ० १ जो लरिका कछु अचगरि करहीं। (मा० १।२७७।२)
अचर–(स०)–जो चल न सके, स्थावर, जड़, अचल। उ० अचर-चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत, इति बासना धूप दीजै। (वि० ४७)
अचरज–(स० आश्चर्य) अचभा, तअज्जुब। उ० बहुरि कहहु करुनायतन कीन्ह जो अचरज राम। (मा० १।११ )
अचरजु–दे० 'अचरज'। उ० आजु हमहि यह अचरजु लागा। (मा० २।३८।१)
अचल–(स०)–१ पहाड़, जो न चले, स्थिर, २ चिरस्थायी, सब दिन रहनेवाला, दृढ़, ३ आवागमन से मुक्त, ४ स्थिर बुद्धि। उ० १ भरत की कुसल अचल ल्यायो चलि कै। (क० ६।५५) २ रघुपति पद परम प्रेम तुलसी यह अचल नेम। (वि० १६) ३ होइ अचल जिमि जिव हरि पाइ। (मा० ४।१४।४) ४ अचल अकिंचन सुचि सुखधामा। (मा० ३।४५।४) अचलअहेरी–अचूक निशाना लगाने वाला शिकारी। उ० चित्रकूट जनु अचलअहेरी। (मा० २।१३३।२) अचलसुता–(स०)–पर्वत की लड़की, पार्वती। उ० अचल-सुता मन अचल बयारि कि डोलइ? (पा० ६५)
अचला–(स०)–पृथ्वी।
अचलु–दे० 'अचल'। उ० उचके उचकि चारि अगुल अचलु गो। (क० ५।१)
अचानक–सहसा, अकस्मात, बिना पूर्व सूचना के। उ० तुलसी कवि तून, धरे धनु बान, अचानक दीठि परी तिरछोहैं। (क० २।२५)
अचार–(स० आचार)–१ आचार, आचरण, व्यवहार, २ धर्म व्यवहार, ३ तरीका। उ० १ स्वारथ-सहित सनेह सब, रुचि अनुहरत अचार। (दो० ४४८) २ जे मद मार बिकार भरे ते अचार बिचार समीप न जाहीं। (क० ७।५४) आचारबिचार–(स० आचार विचार)–इन दो शब्दो का आज भी एक साथ प्रयोग मिलता है पर अर्थ यही होता है जो 'आचार' का। धार्मिक कृत्य, शौच, पूजा पाठ इत्यादि।
अचारा–दे० 'अचार'। उ० १ अस भ्रष्ट अचारा भा ससारा धर्म सुनिअ नहिं काना। (मा० १।१८३। छ १)
अचारू–दे० 'अचार'। उ० २ दुहुँ कुल गुर सब कीन्ह अचारू। (मा० १।३२३।४)
अचित(१)–(स०)–निश्चित, चिता रहित।
अचित (२)–(स० अचित्य)– दे० 'अचित्य'।

अचित्य–(स०)–१ जिसका चितन सभव न हो। २ अतुल, ३ चिंता रहित, ४ आशा स अधिक, ५ अकस्मात्।
अचेत–(स०) १ अज्ञात, २ बेसुध, सज्ञाहीन, ३ व्याकुल, ४ मूर्ख, अज्ञानी, बेसमझ, ५ अचेतन, जड़। उ० १ रावन भाइ जगाइ तब, कहा प्रसगु अचेत। (प्र० ५।७।१) ३ बदि विप्र गुर चरन प्रभु चले करि सबहि अचेत। (मा० १।७६) ४ समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत। (मा० १।३० क) ५ छोटे बड़े जीव जेते चेतन अचेत हैं। (ह० ३०)
अचेता–दे० 'अचेत'। उ०२ चले जाहिं सब लोग अचेता। (मा० २।३२०।४)
अच्छ–(स० अक्ष)–रावण का पुत्र, अक्षयकुमार। उ० अच्छ विमर्दन कानन भान दसानन आनन भान निहारो। (ह० १६)
अच्छकुमारा–(स० अक्षयकुमार)–रावण का पुत्र अक्षय कुमार। उ० पुनि पठयउ तेहिं अच्छकुमारा। (मा०५।१८।४)
अच्छत–(स० अक्षत)–अक्षत, चावल। जो क्षत न हो। उ० अच्छत अकुर लोचन लाजा। (मा० १।३४६।२)
अच्छम–(स० अक्षम)–असमर्थ, अयोग्य, शक्तिहीन। उ० सबहि समरथहि सुखद प्रिय, अच्छम प्रिय हितकारि। (दो० ७४)
अच्छर–(स०अक्षर)–१ अक्षर, क, ख, ग आदि, २ जिसका नाश न हो। उ० १ द्वादस अच्छर मत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग। (मा० १।१४३)
अच्युत–(स०) १ जो गिरा न हो, २ दृढ़, अटल, ३ अविनाशी, ४ विष्णु और उनके अवतारों का नाम। उ० ३ तज्ञ सर्वज्ञ यज्ञेश अच्युत, विभो। (वि० १०)
अछत–(स० अक्षत)–१ अक्षत, चावल, २ जो टूटा न हो, पूर्ण, ३ रहते हुए, उपस्थिति में। उ० ३ तुम्हहि अछत को बरनै पारा। (मा० १।२७४।३)
अछोभ–(स० अक्षोभ)–गभीर, शात, क्षोभ रहित, ग्लानि शून्य।
अछोभा–दे० 'अछोभ'। उ० बीर ब्रती तुम्ह धीर अछोभा। (मा० १।२७४।४)
अज–(स०)–१ अजन्मा, जन्म रहित, २ ब्रह्मा, ३ विष्णु, ४ शिव, ५ कामदेव, ६ दशरथ के पिता का नाम, ७ बकरा, ८ माया, ९ रोहिणी नक्षत्र, १० मेष। उ० १ अकल निरुपाधि निरगुन निरजन ब्रह्म कर्म पथमेकमज निर्विकार। (वि० १०) २ करता को अज जगत को, भरता को हरि जान। (स० २७३) ४ चद्रसेखर सूल पानि हर अनघ अज अमित अविछिन्न वृषभेषगामी। (वि० ४६) ७ तदपि न तजत स्वान अज खर ज्यों फिरत विषय अनुरागे। (वि० ११७) अजधामा–(स० अजधाम)–ब्रह्मलोक। उ० पद पाताल सीस अजधामा। (मा० ६।१५।१)
अजहि–अज को, ब्रह्मा को। उ० मसकहि करइ बिरचि प्रभु अजहि मसक त हीन। (मा० ७।१२२ ख)
अजगर–(स०)–१ एक प्रकार का बहुत मोटा सर्प, २ आलसी आदमी। उ० १ बैठ रहसि अजगर इव पापी। (मा० ७।१०७।४)

अजगव-(सं०)-शिव का धनुष, पिनाक।

अजय-(सं०) जिसे कोइ न जीत सके। उ० खल अति अजय देव दुखदाई। (मा० १।१७०।३) अजयमख-(सं०)-ऐसा यज्ञ जिसे कर देने से करनेवाला अजय हो जाय। उ० करौं अजय मख अस मन धरा। (मा० ६। ७२।१)

अजर-(सं०) १ जो जीर्ण या बूढ़ा न हो, २ जो न पचे, अजीर्ण, ३ ईश्वर का एक विशेषण, ४ ब्रह्मा, ५ देवता। उ० १ काल काल, कलातीतमजर हर। (वि० १२)

अजस-(सं० अयश)-अपयश, बदनामी, निंदा। उ० अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि। (मा० २।१२)

अजसी-(सं० अयशिन्)-अपयशी, यशरहित, निंदित। उ० अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा। (मा० ६।३१।१)

अजसु-दे० 'अजस'। उ० मोर मरन राउर अजसु नृप समुझिअ मन माहिं। (मा० २।३३)

अजहुँ-(सं० अद्य)-अब भी, आज भी, अब तक। उ० अजहुँ आपने राम के करतब समुझत हित होइ। (वि० १९३)

अजहूँ-आज भी, अब भी। उ० सुक सनकादि मुक्त विचरत तेउ भजन करत अजहूँ। (वि० ८६)

अजाँची-(सं० अयाचिन्)-याचनारहित, पूर्ण काम, सपन्न। उ० कपि, सबरी, सुग्रीव, बिभीषन को नहिं कियो अजाँची। (वि० १६३)

अजा-(सं०)-१ अजन्मा, जिसका कभी जन्म न हो, २ बकरी। उ० १ अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि। (मा० १।९८।२) २ जो सुमिरे गिरि-मेरु सिला-कन, होत अजा खुर बारिधि बाढ़े। (क० २।५) अजाखुर-(सं०)-बकरी के खुर का चिह्न।

अजाचक-(सं० अयाचक)-अयाचक, जिसे कुछ माँगने की आवश्यकता न हो। उ० जाचक सकल अजाचक कीन्हे। (मा० ७।१२।४)

अजाची-(सं० अयाचिन्)-जो न माँगे, जिसके यहाँ सब कुछ हो।

अजाति-(सं० अ+जाति)-बिना जाति का, जातिरहित। उ० अगुन अमान अजाति मातु पितु-हीनहि। (पा० ५५)।

अजान-(सं० अ+ज्ञान)-अनजान, अबोध, अनभिज्ञ, नासमझ। उ० पैंधत जानि अजान जिमि ब्यापेउ कापु सरीर। (मा० १।२६६)

अजानी-अज्ञानी, मूर्ख। उ० रानी मैं जानी अजानी महा, पवि पाहन हूँ ते कठोर हियो है। (क० २।२०)

अजान्यो-मूर्ख। उ० देखत बिपति बिषय न तजत हौं, तातें अधिक अजान्यो। (वि० ९२)

अजामिल-(सं०)-एक पापी ब्राह्मण। अजामिल कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इन्होंने समस्त वेद वेदांगों का अध्ययन किया था। एक दिन समिधा लेने जंगल में गये और वहीं एक वेश्या से प्रभावित होकर उससे फँस गये। धीरे धीरे सारा आचार विचार जाता रहा और उसे रखनी बनाकर घर लाये। उनकी पतितावस्था यहाँ तक पहुँची कि शराब, जुआ, चोरी और हिंसा से भी प्रेम हो गया। एक दिन कुछ साधु उनकी अनुपस्थिति में आये। उनकी गर्भवती पत्नी ने साधुओं का स्वागत किया। साधु जाते समय भावी पुत्र का नाम नारायण रख गए। लड़का पैदा हुआ और धीरे-धीरे बड़ा हुआ। मरते समय अजामिल के चारों ओर यम के दूत आकर खड़े हो गए। डरकर उसने अपने पुत्र 'नारायण' को पुकारा। किंतु 'नारायण' नाम लेने का इतना प्रभाव हुआ कि स्वर्ग के दूत आकर उसे स्वर्ग में ले गए। इतना पापी होने पर भी नाम लेने के कारण वह मुक्ति का भागी हुआ। उ० जौ सुतहित लिए नाम अजामिल के अघ अमित न दहते। (वि० ९७)

अजित-(सं०) १ जो जीता न गया हो, २ विष्णु, ३ शिव, ४ बुद्ध। उ० दीन हित अजित सर्वज्ञ समरथ प्रनत पाल। (वि० २११) अजितं-दे० 'अजित'। अजित को। उ० योगीन्द्र ज्ञानगम्य गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम्। (मा० ६। श्लो० १)

अजिन-(सं०)-१ वल्कल, छाल, २ मृगछाला, ३ चर्म, खाल। उ० १ अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात। (मा० २।२११) ३ गज अजिन दिव्य दुकूल जोरत सखी हँसि मुख मोरि कै। (पा० ९३)

अजिर-(सं०)-१ आँगन, सहन, २ वायु, ३ शरीर, ४ मेंढक, ५ इंद्रिया का विषय। उ० १ कपि उर अजिर नचावहिं बानी। (मा० १।१०५।३)

अजीता-(सं० अजित)-जो जीता न जा सके। उ० सब दरसी अनवद्य अजीता। (मा० ७।७२।३)

अजीरन-(सं० अजीर्ण)-१ अजीर्ण, अपच, बदहज़मी, २ अधिकता, ३ नया। उ० १ असन अजीरन को समुझि तिलक तज्यौ। (गी० २।३३)

अजे-(सं० अजय)-अजेय, जो जीता न जा सके। उ० रघुबीर महा रनधीर अजे। (मा० ७।१४।६)

अजै-(सं० अजय)-१ अजय, न जीतने योग्य, २ हार, उ० १ हा हार्यो करि जतन बिबिध बिधि, अतिसय प्रबल अजै। (वि० ८९)

अजोध्या-(सं० अयोध्या)-अयोध्या नगरी। उ० दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं। (मा० ७।२७।१)

अजौं-(सं० अद्य) अजहुँ, अब भी, अब तक।

अज्ञ-(सं०)-१ अज्ञानी, मूर्ख २ अनजान, अपरिचित। उ० २ जेहि अपराध असाधु जानि मोहि तजेउ अज्ञ की नाईं। (वि० ११२)

अज्ञता-(सं०)-मूढ़ता, मूर्खता, अज्ञान।

अज्ञा-(सं० आज्ञा)-आदेश, हुक्म।

अज्ञाता-अनजान में।

अज्ञान-(सं०) १ अविद्या, मोह, ज्ञान का अभाव, २ मूर्ख नासमझ। उ० भक्त-हृदि-भवन अज्ञान-तम-हारिणी। (वि० ४८)

अज्ञाना-दे० 'अज्ञान'।

अज्ञानी-(सं०)-जिसे ज्ञान न हो।

अज्ञानु-दे० 'अज्ञान'।

अज्ञानू-दे० 'अज्ञान'।

अट-(सं० अट्)-१ नाना योनियों में भ्रमण, २ घूमना, भ्रमण। उ० १ अट पट लट नट नाहिं जहँ, तुलसी रहित न जान। (स० २०१)

अटक-(?) रोक, रुकावट, अड़चन। उ० का करौं अटक कपि-कटक अमरषा ? (क० ६।७)

अटकठ–(अनु०)–बेढगा, टेढ़ा-मेढा, अटखट।

अटकत–अटकते हैं, रुकते हैं, उलझ जाते हैं। उ० भटकत पद अद्वैतता अटकत ग्यान गुमान। (स० ३४७) अटकै–१ फँसे, २ अड़े, रुके। उ० तुलसिदास भवत्रास मिटै तब जब मति यहि सरूप अटकै। (वि० ६३)

अटकल–(?) अनुमान, कल्पना, अंदाज़।

अटखट–(अनु०)–अटपट, अड बड, टूटा-फूटा। उ० बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे। (वि० १८९)

अटत–घूमता फिरता है। उ० जोग, जाग, जप, बिराग, तप, सुतीरथ, अटत। (वि० १२९) अटो–घूमो। उ० न मिटै भवसंकट दुघट है तप तीरथ जन्म अनेक अटो। (क ७।८९)

अटन–(स०)–घूमना, यात्रा करना। उ० चले राम बन अटन पयादें। (मा० २।३११।२)

अटनि–(स० अट्ट)अट्टालिकाओं पर, अटारियों पर। उ० निज निज अटनि मनोहर गान करहिं पिकबैनि। (गी० ७।२१)

अटन्ह–अटारियाँ, अट्टालिकाएँ। उ० प्रगटहिं दुरहिं अटन्ह पर भामिनि। (मा० १।३४७।२)

अटपटि–(?) १ अट पटी, टेढ़ी, २ गूढ़, कठिन। उ० १ जदपि सुनहिं मुनि अटपटि बानी। (मा० १।१३४।३)

अटपट–अनोखा, विचित्र। उ० सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे। (मा० २।१००)

अटल–(स०)–जो न टले दृढ़, स्थिर। उ० तुलसीस पवन नंदन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत। (क० ६।४७)

अटवी–(स०)–वन, जंगल। उ० वृष्णि कुल कुमुद-राकेस राधारमन कंस बंसाटवी धूमकेतू। (वि० ५२)

अटारिन्ह–(स० अट्टाली)–अटारियों पर। उ० बहुतक चढ़ीं अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान। (मा०७।३ख) अटारीं–कोठे पर, अटारियों पर। उ० निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारीं। (मा० ५।२२।५) अटारी–कोठा, बुर्ज, घर के ऊपर की कोठरी या छत।

अट्टनि–(स० अट्ट)–अटारियों पर। उ० हाट, बाट, कोट ओट, अट्टनि अगार पौरि, खोरि-खोरि दौरि दौरि दीन्ही अति आगि है। (क० ५।१४)।

अट्टहास–(स०)–ज़ोर की हँसी, खिलखिलाकर हँसना। उ० अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास। (मा० ५।२५)

अठारह–(स० अष्टादश)–एक संख्या, १८। उ० पदुम अठारह जूथप बंदर। (मा० ५।५५।२)

अडोल–(स० अ + दोल)–नहीं डोलने वाला, स्थिर, अटल।

अड़ुक–(?) ठोकर चोट। उ० फोरहिं सिल लोढ़ा सदन लागे अड़ुक पहार। (दो० ५६०)

अर्दुकि–लुढ़क कर, ठोकर खाकर। उ० अड़ुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछे। (मा० २।१४३।३)

अणिमा–(स०)–अष्ट सिद्धियों में पहली सिद्धि जिसमें योगी अणुवत् सूक्ष्मरूप धारण कर लेते हैं और किसी को दिखाई नहीं देते। अणिमादि–अणिमा आदि आठ सिद्धियाँ–१ अणिमा–बहुत छोटा होने की शक्ति। २ महिमा–बहुत बड़ा हो जाने की शक्ति। ३ गरिमा–बहुत भारी बन जाने की शक्ति। ४ लघिमा–बहुत हलका बन जाने की शक्ति। ५ प्राप्ति–सब कुछ पा जाने की शक्ति। ६ प्राकाम्य–सभी मनोरथ पूरा कर लेने की शक्ति। ७ ईशित्व–सब पर शासन करने की शक्ति। ८ वशित्व–सब को वश में करने की शक्ति। उ० ज्ञान विज्ञान बैराग्य ऐश्वर्य निधि, सिद्धि अणिमादि दे भूरि दानम्। (वि० ६१)

अणु–(स०)–परमाणु से बड़ा कण, अतिसूक्ष्म, रजकण।

अतक–(स० आतंक)–आतंक, भय, डर।

अतनु–(स०) १ तनरहित, बिना तन का, २ कामदेव। उ० रति अति दुखित अतनु पति जानी। (मा० १।२४७।३)

अतर्क–(स० अतर्क्य)–जिसके विषय में तर्क न किया जा सके।

अतर्क्य–(स०)–तर्करहित, जिसके विषय में तर्क न किया जा सके। उ० राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। (मा० १।१२१।२)

अति–(स०)–बहुत, अधिक, ज़्यादा। उ० मैं अतिदीन, दयालु देव, सुनि मन अनुरागे। (वि० ११०) अतिनास–(स० अति + नाश)–समूल नाश। उ० रामचरन अनुराग नीर बिनु मल अतिनास न पावै। (वि० ८२) अतिबल–(स० अति + बल)–अत्यंत बलवान। उ० बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहिं बनै। (मा० ५।३। छं०१) अतिबलो–अत्यन्त बलवान भी। उ० गनी-गरीब, बड़ो छोटो, बुध मूढ़ हीनबल अतिबलो। (गी० ५।४२)। अतिबलौ–(स०)–दोनों अत्यंत बलवान। उ० कुंदेन्दीवर सुन्दरावतिबलौ विज्ञान धामावुभौ। (मा० ४।१। श्लो०१)

अतिहि–अत्यंतही, बहुत ही। उ० ठाकुर अतिहि बड़ो सील सरल सुठि। (वि० १३५) अतिही–अत्यंत ही बहुत ही। उ० अतिही अनूप काहू भूप के कुमार हैं। (क० २।१४)

अतिउकुति–(स० अत्युक्ति)–बढ़ा चढ़ाकर कही गई बात। उ० सुनि अतिउकुति पवन सुत केरी। (मा० ६।१।२)

अतिकल्प–(स०)–महाकल्प पुराणानुसार उतना काल जितने में एक ब्रह्मा की आयु पूरी होती है। ३१ नील १० खरब ४० अरब वर्ष। उ० सत्य संकल्प अतिकल्प, कल्पांत कृत, कल्पनातीत अहितल्पवासी। (वि० ५४)

अतिकाय–(स०)–रावण का पुत्र, जो स्थूलकाय होने के कारण अतिकाय नाम से प्रसिद्ध था। ब्रह्मा की तपस्या करके इसने वरदान में कवच, अस्त्र दिव्य रथ और सुरों तथा असुरों से अवध्यत्व प्राप्त किया था। एक बार इसने इंद्र को परास्त किया था और वरुण पाश नामक अस्त्र उनसे छीन लिया था। कुंभकर्ण के मारे जाने पर इसने घोर युद्ध किया और अंत में लक्ष्मण के हाथ से मारा गया। उ० मेघनादु अतिकाय भट, परे महोदर खेत। (प्र० ५।७।१)

अतिकाया–दे० 'अतिकाय'। उ० मनिप अकंपन अरु अतिकाया। (मा० ६।४६।५)

अतिकाल–(स०)–१ काल का भी काल, महाकाल, २ कुसमय, ३ देर। उ० १ बाल अतिकाल, कलिकाल, व्यालादखग त्रिपुर मदन, भीम कर्म भारी। (वि० ११)

अतिक्रम–(स०)–सीमा पार कर जाना नियम या मर्यादा का उलंघन। उ० बालु सदा दुरतिक्रम भारी। (मा० ७।४।४)

अतिथि–(स०)–१ अभ्यागत जिसके आने की कोई तिथि न हो, मेहमान, पाहुन, २ एक प्रकार के संन्यासी, ३

अग्नि का एक नाम, ४ कुश के पुत्र का नाम। उ० १ सोह सका लरि अतिथि अनवसर राम कृशासन ज्यों दई। (गी० ५।३८)

अतिबात-(स०) आँधी, तूफान। उ० प्रतिमा स्रवहि पवि पात नभ अतिबात बह डोलति मही। (मा० ६।१०२। छं० १)

अतिमति अत्यंत बुद्धिमान। उ० जौ अतिमति चाहसि सुगति तौ तुलसी कर प्रेम। (स० २४६)

अतिरिक्त-(स०) १ सिवाय, अलावा, २ अधिक, ज्यादा, ३ न्यारा, अलग।

अतिसय-(स० अतिशय)-१ अतिशय, बहुत अधिक, २ बड़ा। उ० १ सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। (मा० ५।१७।४) २ जहि समान अतिसय नहिं कोई। (मा० ३।६।४)

अतिसै-दे० 'अतिसय'।

अतीत-(स०) १ बीता हुआ, २ त्यागी, ३ परे, ४ अलग, ५ मृत, ६ निर्लेप, ७ अतिथि, ८ अतिरिक्त, ९ बाहर। उ० २ तुलसी ताहि अतीत गनि, वृत्ति सांति लयलीन। (वै० ४८) ३ तुलसिदास दुख सुखातीत हरि। (गी० ५।१७)

अतीता-दे० 'अतीत'। उ० ३ अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। (मा० ७।७२।३)

अतीति-बीती। उ० रोग वियोग सोक-स्रम-संकुल, बहि बय वृथहि अतीति। (वि० २३४)

अतीव-(स०)-अधिक, अतिशय। उ० शर्वेद्रासमतीव सुंदर तनु शार्दूलचर्मांम्बर। (मा० ६।१। श्लो० २)

अतीवा-दे० 'अतीव'। उ० देखि भरत गति अकथ अतीवा। (मा० २।२३८।३)

अतुल-(स०)-१ जो तोला या कूता न जा सके, अमित, अधिक, असीम, २ बेजोड़, अद्वितीय, ३ एक प्रकार का नायक। उ० १ देखत कोमल कल अतुल विपुल बल। (गी० १।७२) २ अतुल मृगराज वपु धरित विद्दरित अरि। (वि० ५२) अतुलबल-(स० अतुल + बल)-अत्यंत बलवान। उ० राजन रामु अतुलबल जैसें। (मा० १।२९३।२)।

अतुलनीय-(स०)-१ जिसकी तुलना न हो सके, अद्वितीय, २ अपरिमित।

अतुलित-(स०)-१ जिसकी तुलना न हो सके, २ अपार, ३ अनेक। उ० १ अतुलित अतिथि राम लघु भाई। (मा० २।२१४।१) २ अतुलितबलधाम हेमशैलाभदेहं। (मा० ५।१। श्लो० ३)

अत्यंत-(स०)-अतिशय, बहुत। उ० नियम यम सकल-सुरलोक-लोकेस, लंकेस बस नाथ! अत्यंत भीता। (वि० ५८)

अत्युक्ति-(स०)-किसी बात को बहुत बढ़ाकर कहना।

अत्र-(स०)-यहाँ, इसमें, इस स्थान पर। उ० अजति मात्र संशय। (मा० ३।४।१२)

अत्रि-(स०)-१ सप्तर्षियों में से एक ऋषि जो ब्रह्मा की आँख से उत्पन्न हुए थे। ये विभिन्न मन्वंतरों में प्रजापति और सप्तर्षि के रूप में रहते हैं। भारत के दक्षिण प्रांत के रहनेवाले थे। अनसूया इनकी पत्नी थीं। ये इतने बड़े तपस्वी थे कि एक बार राहु के आक्रमण के कारण सूर्य पृथ्वी पर गिर रहे थे पर इन्होंने रोक दिया। कहा जाता है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने इनके यहाँ पुत्र होकर दत्तात्रेय, दुर्वासा और सोम नाम से जन्म ग्रहण किया था। वैदिक मंत्रों में इनका नाम है। इनकी एक अत्रि-संहिता भी है। २ सप्तर्षि-मंडल का एक तारा। उ० १ अत्रि आदि मुनिवर बहु बसहीं। (मा० २।१३२।४) अत्रितिय (स० अत्रि + स्त्री)-अत्रि मुनि की पत्नी अनसूया। कथा के लिए देखिए 'अनसूया'। उ० दिए अत्रितिय जानकिहि, बसन बिभूषन भूरि। (प्र० २।६।४) अत्रिप्रिया-(स०)-अत्रि ऋषि की स्त्री, अनसूया। कथा के लिए 'अनसूया' देखिए। उ० अत्रिप्रिया निज तपबल आनी। (मा० २।१३२।४)

अथ-(स०) १ आरंभ, अथ, २ एक मंगल-सूचक शब्द जो पहले ग्रंथारंभ में लिखा जाता था।

अथइहि-(स० अस्तमन)-अस्त होगा। अथयउ-डूब गया, अस्त हो गया। अथवत-अस्त होते ही, अस्त होने पर। उ० उदय विकस, अथयत सकुच, मिटै न सहज सुभाउ। (दो० ३१६)

अथर्वणी-(स० अथर्वणि)-१ अथर्ववेद का जाननेवाला, कर्मकांडी, पुरोहित, यज्ञ करानेवाला, २ वशिष्ठ जी। उ० १ बाल बिलोकि अथर्वणी हँसि हरहि जनायो (गा० १।६)

अथर्वन-(स० अथर्वन्)-अथर्ववेद, ४ था वेद जिसमें यज्ञ आदि का विधान कम है। शांति, पौष्टिक अभिचार, तथा मंत्र-तंत्र इसमें अधिक हैं।

अथर्वनी-(स० अथर्वणि)-अथर्वणी, पुरोहित।

अथवा-(स०)-या, वा, किंवा। उ० मरम होउ अथवा अति फीका। (मा० १।८।६)

अथाइ-(स० स्थायि)-१ बैठक, चौपाल, घर के बाहर का कमरा जहाँ लोग बैठते हैं। २ सभा, ३ घर के सामने का चबूतरा। उ० १ हाट बाट घर गली अथाई। (मा० २।११।२)

अथाह-(स० अ + स्था)-जिसे थाहा न जा सके, गहिरा, गंभीर।

अदंड-(स०)-१ जो दंड के योग्य न हो, २ जिस पर कर न लगे, ३ निर्भय। उ० केसरीकुमार सो अदंड कैसा डाँडिगो। (क० ६।२४)

अद-(स० अद्)-भोजन, खाना, अदन।

अदन-(स०)-भक्षण, भोजन, आहार। उ० मारुती नंदन, विष अदन मिव, मसि पतग पावकनयन। (क० ७।१२२)

अदभुत-(स० अद्भुत)-अनोखा, अपूर्व। उ० अदभुत सलिल सुनत गुनकारी। (मा० १।४३।१)

अदभ्र-(स०)-१ बहुत, अधिक, २ अपार अनंत, ३ समूह, ४ महान। उ० १ अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। (मा० ७।७२।३)

अदरस-(स० अदृश्य) अदृश्य, न दिखाई देने योग्य। उ० भरत दरस दरसत सबहि, पुनि अदरस सब काहु। (स० ३२४)

अदर्प-(स० अ + दर्प)-१ पापरहित, २ अभिमान रहित।

अदाग-(स० अ + फ़ार० दाग) बिना दाग का, निर्मल।

उ० त्याग को भूपन भाँति पद, तुलसी अमल अदाग। (वै० ४४)

अदाया-(स०अ + दया)-निर्दयता, कठोरता, निष्ठुरता। उ० भय अविवेक असौच अदाया। (मा० ६।१६।२)

अदिति-(स०)-अदिति दक्ष प्रजापति की पुत्री और प्रजापति कश्यप की पत्नी थीं। पति पत्नी ने तप के बल से भगवान को पुत्र रूप में पाने का वरदान भगवान से प्राप्त किया था। त्रेता में अदिति कौसल्या हुई और कश्यप दशरथ। वामन अवतार भी इसके पूर्व इन्हीं के गर्भ से हुआ था। सूर्य आदि ३३ देवताओं की माता भी यही कही जाती हैं। उ० सद्गुन सुरगन अब अदिति सी। (मा० १।३१।७)

अदिनु-(स० अ+ दिन)-बुरा दिन, कुसमय, अभाग्य। उ० अदिनु मोर नहिं दूपन काहू। (मा० २।१८१।४)

अदूपन-(स० अदूषण)-दोप रहित, शुद्ध। उ० मनहुँ मारि मनसिज पुरारि दिय, ससिहि चापसर मकर अदूपन। (गी० ७।१६)

अदरय-(स० अदृश्य)-अदृश्य, छिपा हुआ, लुप्त। उ० तब अदृस्य भए पावक सकल सभहि समुझाइ। (मा० १।१८६)

अदेख-(स० अ + हिं० देख)-बिना देखा हुआ। उ० देखेउ करहु अदेख इव अनदेखेउ बिसुआस। (स० ३४३)

अदेय-(स०)-जो देने योग्य न हो। उ० मेर कछु न अदेय राम बिनु। (गी० १।४७)

अदेह-(स०)-बिना देह का, कामदेव।

अदोप-(स०)-निर्दोप, दोपरहित।

अदोपा-दे० 'अदोप'। उ० राम प्रेम बिधु अचल अदोपा। (मा० २।३२१।३)

अद्भुत-(स०)-अनोखा, अपूर्व। उ० पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मरम न जानइ कोई। (मा० १।१८६।छं०१)

अद्य-(स०)-आज, अब।

अद्रस्य-(स० अदृश्य)-अदृश्य, अलख, जो दिखाइ न दे।

अद्रि-(स०)-पहाड़, पर्वत। उ० तुषाराद्रि सकाश गौर गभीरं। (मा० ७।१०८।३)। अद्रिचारी-(स० अद्रिचारिन्)-पर्वतों पर विचरनेवाला। उ० जयति निरुपाधि भक्तिभावयंत्रित-हृदय, बंधुहित चित्रकूटाद्रिचारी। (वि० ३६)

अद्वितीय-(स०)-जिसके जैसा कोई दूसरा न हो, विलक्षण, अनुपम। उ० अजित निरुपाधि गोतीतमव्यक्त विभुमेक मनवद्यमजमद्वितीय। (वि० ५२)

अद्वैत-(स०)-१ द्वितीय रहित, अकाकी, एक, २ अनुपम, बेजोड़। उ० २ अमल अनवद्य अद्वैत निर्गुन सगुन ब्रह्म सुमिरामि नरभूपरूप। (वि०५०) अद्वैतदरसी-(स० अद्वैतदर्शिन्)-सबत्र एक को ही देखनेवाले। ब्रह्मदर्शी, चराचर को ब्रह्म माननेवाला। उ० भवन भवजनित त्रैव्याधि भेपज भक्ति भैपज्यमद्वैतदरसी। (वि० ५७)

अधंग-(स० अर्द्धांग)-आधा अंग, अर्द्धांग। उ० सीस गंग, गिरिजा अधंग, भूपन भुजगवर। (क० ७।१४६)

अध (१)-(स० अध)-नीचे, तले। उ० अध उर्द्ध बानर, बिदिसि दिसि बानर है। (क० ५।१७) अधगो-(स० अध + गो)-नीच की इन्द्रिया, गुदा आदि। उ० उदर उदधि अधगो जातना। (मा० ६।१५।४) अधराधर-(स० अध + अधर)-नीचे का ओठ। उ० घर हत की पगति कुद कली, अधराधर-पल्लव खोलन की। (क० १।५)

अध(२)-(स० अर्द्ध)-आधा, दो बराबर भागों में से एक। अधजरति-(स० अर्द्ध + ज्वल)-आधी जलती हुई। उ० निवसि चिता तें अधजरति, मानहुँ सती परानि। (दो० २५३) अधबिच-(स० अर्द्ध + बीच)-बीच में। उ० तरु तमाल अधबिच जनु त्रिबिध कीर पाँति रुचिर। (गी० ७।३)

अधगति-(स० अधोगति)-अधोगति, नीची गति, बुरी गति, दुर्दशा। उ० रहु अधमाधम अधगति पाइ। (मा० ७।१०७।४)

अधन-(स० अ + धन)-निर्धन, गरीब। उ० सुहृद सम अधन भिखारि फकोहा। (मा० १।१६१।२)

अधम-(स०)-नीच बुरा, खोटा, पापी। उ० अधम आरत दीन पतित पातक पीन, सकृत नत मात्र कहे पाहि पाता। (वि० ४४)। अधमउँ-१ अधम भी २ अधम को भी। अधमाधम-अधम से भी अधम, नीच से भी नीच। उ० रहु अधमाधम अधगति पाई। (मा० ७।१०७।४)

अधमई-अधमता, खोटापन।

अधमाई-नीचता, अधमता, कमीनापन। उ० पर पीड़ा सम नहिं अधमाइ। (मा० ७।४१।१)। अधमाईहू-अधमाइ भी, नीचता भी। उ० तुलसी अधिक अधमाईहू अजामिल तें। (क० ७।८२)

अधमारे-(स० अर्द्ध + मारण)-अधमरे, आधे मरे, बुरी तरह घायल, आधे मारे हुए। उ० गये पुकारत कुछ अध मारे। (मा० ५।१८।३)

अधर-(स०)-१ ओठ, २ नीचे का ओठ, ३ बीच, ४ नीच, ५ छोटा ६ आकाश, ७ बिना आधार का, ८ पाताल, ९ द्विविधा में पड़ने की स्थिति। उ० १ अधर बिंबोपमा मधुर हास। (वि० ५१) अधरबुधि-(स० अधर + बुद्धि)-धारणा रहित या चचल बुद्धि, जिसकी बुद्धि स्थिर न हो। उ० गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि तीय अधरबुधि रानि। (मा० २।१६)

अधरम-(स० अधर्म)-अधर्म, पाप, कुकर्म। उ० ऊचे नीचे करम धरम अधरम करि। (क० ७।१६)

अधर्म-(स०)-धर्मविरुद्ध कार्य, पाप। उ० नर बिबिध कर्म अधर्म बहुमत सोकप्रद सब त्यागहू। (मा० ३।३६।छं०१)

अधार-(स० आधार)-आश्रय, सहारा। उ० बारि अधार मूल फल त्यागे। (मा० १।१४४।१)

अधारा-दे० 'अधार'। उ० रहेउ एक दिन अवधि अधारा। (मा० ७।१।१)

अधारी-१ आश्रय, सहारा, २ साधुओं का डंडा लगा हुआ काठ का पीढ़ा, ३ कधे पर रखने का झोला।

अधिक-(स०)-१ बहुत, ज़्यादा, २ अतिरिक्त, फालतू। उ० १ मदोदरी अधिक अकुलानी। (मा० ५।३६।२)

अधिकई-अधिकाइ, अधिकता। उ० हितनि के लाह की, उछाह की बिनोद मोद, सोभा की अवधि नहिं, अब अधिकई है। (गी० १।६४)

अधिका-दे० 'अधिक'।

अधिकाइ-१ अधिकता से, बढ़ती से, २ बढ़ती है। उ०१ निरख भूरह सरस फूलत फलत अति अधिकाइ। (गी० ७।२३)

२ बिरह आगि उर ऊपर जब अधिकाइ। (घ०३६) अधिकाति–बढ़ती जाती है। उ० उमगी अवध अनंद भरि अधिक-अधिक अधिकाति। (मा० १।३२६) अधिकान–बढ़ गया। उ० छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान। (मा० २।२१) अधिकानी–अधिक हो गई। उ० गावत नाचत सो मन भावत सुख सो अवध अधिकानी। (गी० १।४) अधिकाने–१ अधिक, बढ़े हुए। २ बढ़ गये। उ० १ सुक से मुनि, सारद से बकता, चिरजीवन लोमस तें अधिकाने। (क० ७।४३)

अधिकाई–१ ज्यादती अधिकता, २ बड़ाई, महिमा, महत्त्व, ३ अधिक। उ० १ जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई। (मा० ६।१०२।१) २ उमा न कछु कपि कै अधिकाई। (मा० ५।३।५) ३ तपइ अवाँ इव उर अधिकाई। (मा० १।२८२)

अधिकार–(स०)-१ कार्य भार २ प्रभुत्व, ३ प्रकरण, ४ क्षमता, ५ हक। उ० १ यह अधिकार सौंपिए औरहिं। (वि० ५)

अधिकारी–(स० अधिकारिन्)-१ उपयुक्त पात्र, २ स्वामी, ३ स्वत्वधारी। उ० १ रामभगत अधिकारी चीन्हा। (मा० १।३०।२)

अधिकु–दे० 'अधिक'। उ० अधिकु कहा जेहि सम जग नाहीं। (मा० २।२०३।४)

अधिकृत–(स०)-१ अधिकार में आया हुआ, उपलब्ध, २ अधिकारी।

अधिकौंहैं–अधिक, जो अधिक हो। उ० धँसति लसति हससेनि सकुन अधिकौंहैं। (गी० ७।४)

अधिप–(स०)- स्वामी, राजा, मालिक। उ० परम सती असुराधिप नारी। (मा० १।१२३।४)

अधिपति–(स०)-स्वामी, मालिक।

अधिभूत–(स० आधि + भूत)-१ आधिभौतिक शरीर धारियों द्वारा प्राप्त, २ शरीरधारी। उ० १ अधिभूत बेदन विषम होत, भूतनाथ! (क० ७।१६६)

अधिभौतिक–(स० आधिभौतिक)-आधिभौतिक, शरीर धारियों द्वारा प्राप्त तीन व्याधियों में से एक। उ० अधि भौतिक बाधा भइ, ते किंकर तोर। (वि० ८)

अधिवास– स०)-रहने का स्थान। उ० प्रसीद प्रभो सर्व भूताधिवास। (मा०७।१०८।७)

अधिष्ठाता–(स०)-अध्यक्ष, मुखिया, देख भाल करने-वाला।

अधीत–(स० -पढ़ा हुआ, बाँचा हुआ।

अधीन–(स०)-आधीन, मातहत, आश्रित। उ० दम दुर्गम, दान दया मख कर्म सुधर्म अधीन सबै धन को। (क० ७।८७)

अधीनता–(स० -परवशता, आज्ञाकारिता, अधीनता, परतंत्रता। उ० परि पाँय मरिमुख कहि अनाथा आप आप अधीनता। पा० ८२

अधीना–दे० 'आधीन'। उ० मम जीवन तिमि तुम्हहि अधीना। (मा० १।१५१।३)

अधीर–(स०)-धैर्यरहित, व्यग्र, बेचैन। उ० बोले जनक बिलोकि सीय तन दुखित सरोष अधीर। (गी० १।८७,

अधीरता–(स०)-व्याकुलता, बेचैनी, आतुरता।

अधीरा–दे० 'अधीर'। उ० अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा, मुख नहिं आवइ बचन कही। (मा० १।२४४। छ० १)

अधीश–(स०)-स्वामी, मालिक। उ० मृगाधीश चर्माम्बर मुण्डमाल। (मा० ७।१०८। श्लो० ४

अधीस–(स० अधीश,-स्वामी, मालिक, राजा। उ० माया धीस ग्यान गुन धामू। (मा० १।११७।४)

अधीसा–दे० 'अधीस'। उ० दरसन लागि कोसलाधीसा। (मा० ७।२७।१)

अधीस्वर– स० अधीश्वर। प्रभु मालिक, राजा।

अधोमुख– स०)-नीचे मुख किए हुए, औंधा, उलटा।

अध्यक्ष–(स०)-स्वामी मालिक। उ० सर्वरक्षक सर्वभक्ष काध्यक्ष कूटस्थ गूढ़ार्चि भक्तानुकूल। (वि० ५३)

अध्ययन–(स०, १ पठन पाठन, विद्याभ्यास, २ गंभीरता के साथ विचार।

अध्यातम–(स०)-ब्रह्म विचार, आत्मज्ञान।

अध्याहार–(स०)-तर्क वितर्क, ऊहापोह, बहस।

अनग–(स०)-कामदेव। उ० आछे मुनि बेष धरे लाजत अनंग हैं। (क० २।१५) अनंगअराती–(स० अनंग + अराति)- कामदेव के शत्रु शिव। उ० सादर जपहु अनंग अराती। (मा० १।१०८।४) अनंगअरि–(स० अनंग+ अरि)- शिव, कामदेव के शत्रु। उ० नग-जा-क, अनंगअरि-प्रिय, कपटु बटु बलि छरन। (वि० २१८)

अनंत–(स०) १ जिसका अंत न हो, अपार, २ विष्णु, ३ शेषनाग ४ लक्ष्मण, ५ बलराम, ६ अभ्रक ७ बाहु का एक गहना, ८ सूत का १४ गाँठों का गंडा। उ० १ अनंत भगवंत जगदंत अंतक-त्रास-समन। (मा० वि० ४१) ४ सानुकूल कोसलपति रहहुँ समेत अनंत। (मा० ६।१००)

अनंतबंधु– स० अनंत + बंधु)-लक्ष्मण के भाई, राम। उ० सुनु हनुमंत! अनंतबंधु करुना सुभाय सीतल कोमल अति। (गी० ५।१)

अनंता–दे० 'अनंत'। उ० १ यह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता। (मा० १।१९२। छ० २)

अनंद–(स० आनंद)-दे० 'आनंद'। उ० कहि न सकहिं सत सेष अनंद अनूपहि। (जा० १२७)

अनंदा–दे० 'अनंद'। उ० प्रति सवत अति होइ अनंदा। (मा० १।४५।१)

अनंदित–(स० आनंदित)-प्रसन्न। उ० राम सुग वृंद अनंदित रहहीं। (मा० ३।११।७)

अनंदु–दे० 'अनंद'। उ० एहि सुख ते सत कोटि गुन पावहिं मातु अनंदु। (मा० १।३२०क)

अनंदे–आनन्दित हुए। उ० तब मयना हिमवंतु अनंदे। (मा० १।९६।१)

अन(१)–(स० अन्य)-अन्य, और, दूसरा। उ० चातक मतिर्भो ना गर्वी, अन जल सींचे रूख। (दो० ३११)

अन(२)–(स०अन्)-बिना, बगैर। अनअहिवातु–(स अन + अभिवात)-विधवापन, रँडापा। उ० अनअहिवातु सूच जनु भावी। (मा० २।२५।२) अनइच्छित–(स० अन् इच्छित)-बिना इच्छा के। उ० अनइच्छित आवइ बरिआई। (मा० ७।११३।२) अनकुसल–(स० अन् + कुशल)-अम गल। उ० निदर अमय करि अनकुसल सीसवादु सम होय। (स० ५५१)

अनइस-(स० अनिष्ट)-बुरा। उ० करत नीक फल अनइस पाया। (मा० २।१६३।३)

अनक-(स० आनक)-१ ढोल, मृदंग, २ गरजता बादल। उ० १ पनवानक निर्झर अलि उपंग। (गी० २।४८)

अनख-(स० अन्+अक्षि) १ क्रोध, २ ईर्ष्या, द्वेष, ३ अप्रसन्नता, ४ ग्लानि, ५ डिठौना। उ० १ काको नाम अनख आलस कहे अघ अवगुननि बिछोहे। (वि०२३०) २ किमि सहि जाहि अनख तोहि पाहीं। (मा० ३।३०।८)

अनखानि-क्रोध, नाराज़गी। उ० रोवनि धोवनि, अनखानि, अनरसनि, डिठि मुठि निठुर नसाइहौं। (गी० १।१८)

अनखैहैं-अनख मानेंगे, बिगड़ेंगे। उ० खल अनखैहैं तुम्हैं सज्जन न गमिहै। (क० ७।७१)

अनखौहीं-क्रोध पैदा करनेवाली। उ० राम सदा सरनागत की अनखौहीं अनैसी सुभाय सही है। (क० ७।६)

अनगनी-(स० अन्+गणना)-अगणित, असंख्य, बहुत। उ० निज धाज सजत सँवारि पुर नर नारि रचना अन गनी। (गी० १।५)

अनघ-(स०)-निष्पाप, शुद्ध। उ० अनघ, अद्वैत अनवद्य अव्यक्त अज, अमित अविकार आनंदसिंधो। (वि० ५६)

अनचह्यो-बिना चाहा हुआ, आदर विहीन, अप्रिय। उ० नीके जिय जानि इहाँ भलो अनचह्यो हौं। (वि०२६०)

अनचाह-(स०अन्+चाह)-१ अप्रिय, अनचाहा, २ घृणा।

अनछिन्न-(स० अन्+छिन्न)-पूर्ण, अखंड।

अनजान-(स० अन्+ज्ञान)-१ अज्ञ, नादान, २ बिना जाना, ३ भोला भाला।

अनजानत-बिना जाने, अज्ञानत। उ० श्रीमद नृप-अभिमान मोहबस जानत अनजानत हरि लायो। (गी०६।२)

अनट-(स० अनृत)-उपद्रव, अत्याचार। उ० सो सिर धरि धरि करिहि सबु मिटिहि अनट अवरेब। (मा०२।२६९)

अनत-(स० अन्यत्र)-अन्यत्र और कहीं उ० उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं। (मा०१।११।२)

अनन्य-(स०)-अन्य से संबंध न रखनेवाला, एकनिष्ठ। उ० सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमत। (मा० ४।३) अनन्यगति-(स०)-जिसको दूसरा सहारा या उपाय न हो। उ० भवहिं भगति मन, बचन करम अनन्यगति हरचरन की। (रा०२७)

अनपायनी-(स० अनपायिनी)-सदा एक रस रहनेवाली। उ० प्रेम भगति अनपायनी, देहु हमहिं श्रीराम। (दो०१२५)

अनपावनी-(स० अन्+प्रापण)-अप्राप्य, जो दूसरे को न मिले।

अनबन-(स० अन्+वयन)-१ भिन्न भिन्न, नाना, अनेक, २ बिगाड़। उ० १ कदमूल जल-थलरुह अगनित अनबन भाँति। (गी०२।७७)

अनबोल-(स० अन्+प्रा० बुल्लइ)-१ मौन, २ गूँगा, ३ बेहोश।

अनभएँ-(स० अन्+भवन)-बिना हुए। उ० जागेउ नृप अनभएँ बिहाना। (मा०१।१७२।१)

अनभल-(स० अन्+भद्र)-अहित अमंगल। उ० अनभल देखि न जाइ तुम्हारा। (मा०२।१६।१)

अनभले-बुरे, निंदित उ० करहिं अनभले को भलो आपनी भलाई (वि०३५)।

अनभलो-बुरा, जो अच्छा न हो। उ० तो तुलसी तेरो भलो, नतु अनभलो अघाइ। (दो०१२१)

अनभाई-(स० अन्+?)-न भानेवाली, अप्रिय। उ० रुचि-भावती भभरि भागहि, समुहाहि अमित अनभाई। (वि० १६५)

अनभाए-असुहावने, बुरे। उ० अवध सकल नर नारि बिकल अति, अँकनि बचन अनभाए (गी०२।८८)

अनमन-(स०अन्य-मनस्क)-उदास। उ० का अनमनि हसि कह हँसि रानी। (मा०२।१३।३)

अनमायो-(?)-जिसकी माप न हो सके बहुत। उ० क्यों कहौं प्रेम अमित अनमायो। (गी०६।२१)

अनमिल-बेमेल, बे जोड़, अटपट। उ० अनमिल आखर अरथ न जापू। (मा०१।१५।३)

अनमोल-(स० अन्+मूल्य)-जिसका मूल्य गणना से परे हो, अमूल्य। उ० बिकटी भृकुटी बड़री अँखियाँ अनमोल कपोलनि की छबि है। (क०२।१३)

अनय-(स०)-१ अनीति अन्याय २ विपत्ति, ३ दुर्भाग्य। उ० १ अनय-अंभोधि-कुंभज, निशाचर निकर तिमिर घन घोर-खर किरण माली। (वि० ४४)

अनयन-(स० अ+नयन) बिना नेत्र के, बिना आँख के। उ० गिरा अनयन नयन बिनु बानी। (मा० १।२२६।१)

अनयास-(स० अनायास)-१ अनायास, बिना उद्योग बिना परिश्रम, २ अकस्मात्। उ० १ करिहैं राम भावतो मन का, सुख-साधन अनयास महाफलु। (वि० २४)

अनयासा-दे० 'अनयास'। उ० नाम सप्रेम जपत अनयासा। (मा० १।२४।३)

अनरथ-(स० अनर्थ)-अनर्थ, उत्पात। उ० लखन लखेउ भा अनरथ आजू। (मा० २।७४।४)

अनरथु-दे० 'अनरथ'। उ० अनरथु अवध अरमेउ जब तें। (मा० २।१५७।३)

अनरस-(स० अन्+रस)-१ निरस, शुष्क, २ रुखाई, कोप। उ० १ तौ नवरस, षटरस-रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे। (वि० १६९)

अनरसत-क्रोधित होते हैं। उ० हँसे हँसत अनरसे अनरसत प्रतिबिंबनि ज्यों झाँई। (गी० १।१६)। अनरसे-१ क्रोधित होने पर, २ क्रोधित मोधित हुए। उ० १ हँसे हँसत, अनरसे अनरसत प्रतिबिंबनि ज्यों झाइं। (गी० १।१६) २ आजु अनरसे हैं भोर के, पय पियत न नीके। (गी० १।१२)

अनरसनि-१ उदासीनता, २ शुष्कता ३ मनोमालिन्य। उ० १ रोवनि धोवनि अनखानि अनरसनि, डिठि-मुठि निठुर नसाइहौं। (गी० १।१८)

अनर्थ-(स०)-१ उत्पात, उपद्रव, २ उलटा अर्थ, अयुक्त अर्थ। उ० १ जानत अर्थ अनर्थ रूप, तमकूप परब यहि लागे। (वि० ११७)। अनर्थकारी-(स० अनर्थकारिन्) १ उपद्रवी २ हानिकारी, ३ उलटा अर्थ निकालनेवाला।

अनल-(स०)-१ आग, २ तीन की संख्या, ३ विभीषण का मंत्री, ४ चीता, ५ भिलावा। उ० १ भव अनल अकाम बनाइ। (मा० ७।११०।७)। अनलहि-आग को।

२ बिरह आगि उर ऊपर जब अधिकाइ। (व०३६) अधिकाति–बढ़ती जाती है। उ० उमगी अवध अनद भरि अधिक-अधिक अधिकाति। (मा० १।३५१) अधिकान–बढ़ गया। उ० छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनदु अधिकान। (मा० २।५१) अधिकानी–अधिक हो गई। उ० गावत नाचत सो मन भावत सुख सो अवध अधिकानी। (गी० १।४) अधिकाने–१ अधिक, बढ़े हुए। २ बढ़ गए। उ० १ सुक से मुनि, सारद से बक्ता, चिरजीवन लोमस तें अधिकाने। (क० ७।४३)

अधिकाई–१ ज्यादती अधिकता, २ बड़ाई, महिमा, महत्त्व, ३ अधिक। उ० १ निमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई। (मा० ६।१०२।१) २ उमा न कछु कपि कै अधिकाई। (मा० ५।३।५) ३ तपइ अवाँ इव उर अधिकाई। (मा० १।५८।२)

अधिकार–(स०)–१ कार्य भार २ प्रभुत्व, ३ प्रकरण, ४ क्षमता, ५ हक। उ० १ यह अधिकार सौंपिए औरहिं। (वि० ५)

अधिकारी–(स० अधिकारिन्)–१ उपयुक्त पात्र, २ स्वामी, ३ स्वत्वधारी। उ० १ रामभगत अधिकारी चीन्हा। (मा० १।३०।२)

अधिकु–दे० 'अधिक'। उ० अधिकु कहा जेहि सम जग नाहीं। (मा० २।२०३।४)

अधिकृत–(स०)–१ अधिकार में आया हुआ, उपलब्ध, २ अधिकारी।

अधिकौहैं–अधिक, जो अधिक हो। उ० धँसति लसति हसनि मकुल अधिकौहैं। (गी० ७।३)

अधिप–(स०)–स्वामी, राजा, मालिक। उ० परम सती असुराधिप नारी। (मा० १।१२३।४)

अधिपति–(स०)–स्वामी, मालिक।

अधिभूत–(स० आधि + भूत)–१ आधिभौतिक शरीर धारियों द्वारा प्राप्त २ शरीरधारी। उ० १ अधिभूत बेदन विषम होत, भूतनाथ ! (क० ७।१६६)

अधिभौतिक–(स० आधिभौतिक)–आधिभौतिक, शरीर-धारियों द्वारा प्राप्त तीन व्याधियों में से एक। उ० अधि भौतिक बाधा भई, ते किंकर तोर। (वि० ८)

अधिवास–(स०)–ठहरने का स्थान। उ० प्रसीद प्रभो सर्व भूताधिवास। (मा०७।१०८।७)

अधिष्ठाता–(स०)–अध्यक्ष, मुखिया, देख भाल करने-वाला।

अधीत–(स०)–पढ़ा हुआ, सोचा हुआ।

अधीन–(स०)–आधीन, मातहत, आश्रित। उ० दम दुगम, दान दया मख कर्म सुधर्म अधीन सबै धन को। (क० ७।८७)

अधीनता–(स०)–परवशता, आज्ञाकारिता, अधीनता, परतत्रता। उ० परि पाँय सखिमुख कहि जनायो आप आप अधीनता। (पा० ८३)

अधीना–दे० 'आधीन'। उ० मम जीवन तिमि तुम्हहि अधीना। (मा० १।१५१।३)

अधीर–(स०)–धैर्यरहित, व्यग्र, बेचैन। उ० बोले जनक बिलोकि सीय तन दुखित सरोष अधीर। (गी० १।८७)

अधीरता–(स०)–व्याकुलता, बेचैनी, आतुरता।

अधीरा–दे० 'अधीर'। उ० अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा, मुख नहिं आवइ बचन कही। (मा० १।२११। छं० १)

अधीश–(स०)–स्वामी, मालिक। उ० मृगाधीश चर्माम्बर मुण्डमाल। (मा० ७।१०८। श्लो० ४)

अधीस–(स० अधीश)–स्वामी, मालिक, राजा। उ० माया धीस ग्यान गुन धामू। (मा० १।११७।४)

अधीसा–दे० 'अधीस'। उ० दरसन लागि कोसलाधीसा। (मा० ७।२७।१)

अधीश्वर–स० अधीश्वर। प्रभु मालिक, राजा।

अधोमुख–स०)–नीचे मुख किए हुए, औंधा, उलटा।

अध्यक्ष–(स०)–स्वामी मालिक। उ० सर्वरक्षक सर्वभर काध्यक्ष कूटस्थ गूढ़ार्चि भक्तानुकूल। (वि० ५३)

अध्ययन–(स०)–१ पठन पाठन, विद्याभ्यास, २ गंभीरता के साथ विचार।

अध्यात्म–(स०)–ब्रह्म विचार, आत्मज्ञान।

अध्याहार–(स०)–तर्क वितर्क, ऊहापोह, बहस।

अनग–(स०)–कामदेव। उ० आछे मुनि बेष धरे लाजत अनग है। (क० २।१५) अनगअराती–(स० अनग + आराति)–कामदेव के शत्रु शिव। उ० सादर जपहु अनग अराती। (मा० १।१०८।४) अनगअरि–(स० अनग + अरि)–शिव, कामदेव के शत्रु। उ० गग-जनक, अनगअरि-प्रिय, कपटु बटु बलि छरन। (वि० २१८)

अनत–(स०) १ जिसका अत न हो, अपार, २ विष्णु, ३ शेषनाग ४ लक्ष्मण, ५ बलराम, ६ अभ्रक ७ बाहु का एक गहना, ८ सूत का १४ गाँठों का गडा। उ० १ अनत भगवत जगदत अतक-त्रास-समन। (मा० वि० ४१) ४ सानुकूल कोसलपति रहहुँ समेत अनत। (मा० ६।१००)

अनतबधु– स० अनत + बधु)–लक्ष्मण के भाई, राम। उ० सुनु हनुमत ! अनतबधु करुना सुभाव सीतल कोमल अति। (गी० ५।६)

अनता–दे० 'अनत'। उ० १ कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिध करौं अनता। (मा० १।१९२। छं० २)

अनद–(स० आनद)–दे० 'आनद'। उ० कहि न सकहिं सत सेष अनद अनूपहि। (जा० १३७)

अनदा–दे० 'अनद'। उ० प्रति सवत अति होइ अनदा। (मा० १।४५।१)

अनदित–(स० आनन्दित)–प्रसन्न। उ० खग मृग बृद अन दित रहहीं। (मा० ३।१३।२)

अनदु–दे० 'अनद'। उ० एहि सुख ते सत कोटि गुन पावहिं मातु अनदु। (मा० १।३५० क)

अनदे–आनन्दित हुए। उ० तब मयना हिमवतु अनदे। (मा० १। ६६।१)

अन(१)–(स० अन्य)–अन्य, और, दूसरा। उ० चातक बतियाँ ना रुचीं, अन जल सींचे रूख। (दो० ३११)

अन(२)–(स० अन्)–बिना, बगैर। अनअहिवातु–(स अन् + अभिवाद्य)–विधवापन रँडापा। उ० अनअहिवातु सूच जनु भावी। (मा० २।२५।४) अनइच्छित–(स० अन् इच्छित)–बिना इच्छा के। उ० अनइच्छित आवइ बरिआई। (मा० ७।११९।२) अनकुसल–(स० अन् + कुशल)–अम गल। उ० निदर अनय करि अनकुसल बीसबाहु सम होय। (स० ६६१)

अनइस-(स० अनिष्ट)-बुरा। उ० करत नीक फल अनइस पावा। (मा० २।१६३।३)
अनक-(स० आनक)-१ ढोल, मृदंग, २ गरजता बादल। उ० १ पनवानक निर्झर अलि उपंग। (गी० २।४८)
अनख-(स० अन्+अक्षि) १ क्रोध, २ ईर्ष्या, द्वेष, ३ अप्रसन्नता, ४ ग्लानि, ५ डिठौना। उ० १ काको नाम अनख आलस कहे अघ अवगुननि बिछोहे। (वि०२३०) २ किमि सहि जाहि अनख तोहि पाहीं। (मा० ३।३०।८)
अनखानि-क्रोध, नाराज़गी। उ० रोवनि, धोवनि, अनखानि, अनरसनि, डिठि मुठि निठुर नसाइहौं। (गी० १।१८)
अनखैहैं-अनख मानेंगे, बिगड़ेंगे। उ० खल अनखैहैं तुम्हैं सज्जन न गमिहैं। (क० ७।७१)
अनखौहीं-क्रोध पैदा करनेवाली। उ० राम सदा सरनागत की अनखौहीं अनैसी सुभाय सही है। (क० ७।६)
अनगनी-(स० अन्+गणना)-अगणित, असंख्य, बहुत। उ० निज काज सजत सँवारि पुर नर नारि रचना अन गनी। (गी० १।५)
अनघ-(स०)-निष्पाप, शुद्ध। उ० अनघ, अद्वैत अनवद्य अव्यक्त अज, अमित अविकार आनंदसिंधो। (वि० ५६)
अनचह्यो-बिना चाहा हुआ, आदर विहीन, अप्रिय। उ० नीके जिय जानि इहाँ भलो अनचह्यो हौं। (वि०२६०)
अनचाह-(स०अन्+चाह)-१ अप्रिय, अनचाहा, २ घृणा।
अनछिन्न-(स० अन्+छिन्न)-पूर्ण, अखंड।
अनजान-(स० अन्+ज्ञान)-१ अज्ञ, नादान २ बिना जाना, ३ भोला भाला।
अनजानत-बिना जाने, अज्ञानत। उ० श्रीमद नृप-अभिमान मोहबस जानत अनजानत हरि लायो। (गी०६।२)
अनट-(स० अनृत)-उपद्रव, अत्याचार। उ० सो सिर धरि धरि करिहि सबु मिटिहि अनट अवरेब। (मा०२।२६६)
अनत-(स० अन्यत्र)-अन्यत्र और कहीं उ० उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं। (मा०१।११।२)
अनन्य-(स०)-अन्य से संबंध न रखनेवाला, एकनिष्ठ। उ० सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमंत। (मा० ४।३) अनन्यगति-(स०)-जिसको दूसरा सहारा या उपाय न हो। उ० भजहिं भगति मन बचन करम अनन्यगति हरचरन की। (पा०२७)
अनपायनी-(स० अनपायिनी)-सदा एक रस रहनेवाला। उ० प्रेम भगति अनपायनी, देहु हमहि श्रीराम। (दो०१२५)
अनपावनी-(स० अन्+प्रापण)-अप्राप्य, जो दूसरे को न मिले।
अनबन-(स० अन्+वयन)-१ भिन्न भिन्न, नाना, अनेक, २ बिगाड़। उ० १ कंदमूल जल-थलरुह अगनित अनबन भाँति। (गी०२।४७)
अनबोल-(स० अन्+प्रा० बुल्ल)-१ मौन, २ गूँगा, ३ बेहोश।
अनभएँ-(स० अन्+भवन)-बिना हुए। उ० जागेउ नृप अनभएँ बिहाना। (मा०१।१७२।१)
अनभल-(स० अन्+भद्र)-अहित अमंगल। उ० अनभल देखि न जाइ तुम्हारा। (मा०२।१६।४)
अनभले-बुरे, निन्दित उ० करहिं अनभले को भलो आपनी भलाई (वि०३५)।
अनभलो-बुरा, जो अच्छा न हो। उ० तो तुलसी तेरो भलो, नतु अनभलो अघाइ। (दो०१५६)
अनभाइ-(स० अन्+?)-न भानेवाली, अप्रिय। उ० रुचि भावती भभरि भागहिं, समुहाहिं अमित अनभाई। (वि० १६५)
अनभाए-असुहावने, बुरे। उ० अवध सकल नर नारि बिकल अति, अँकनि बचन अनभाए (गी०२।८८)
अनमनि-(स०अन्य-मनस्क)-उदास। उ० का अनमनि हसि कह हँसि रानी। (मा०२।१३।३)
अनमायो-(?)-जिसकी माप न हो सके, बहुत। उ० क्यों कहौं प्रेम अमित अनमायो। (गी०६।२१)
अनमिल-बेमेल, बे जोड़, अटपट। उ० अनमिल आखर अरथ न जापू। (मा०१।१५।३)
अनमोल-(स० अन्+मूल्य)-जिसका मूल्य गणना से परे हो, अमूल्य। उ० बिकटी भृकुटी बड़री अँखियाँ अनमोल कपोलनि की छबि है। (क०२।१३)
अनय-(स०)-१ अनीति, अन्याय, २ विपत्ति, ३ दुर्भाग्य। उ० १ अनय-अंभोधि कुंभज, निशाचर निकर तिमिर घन घोर-खर किरण माली। (वि० ४४)
अनयन-(स० अ+नयन) बिना नेत्र के, बिना आँख के। उ० गिरा अनयन नयन बिनु बानी। (मा० १।२२९।१)
अनयास-(स० अनायास)-१ अनायास, बिना उद्योग, बिना परिश्रम, २ अकस्मात्। उ० १ करिहैं राम भावतो मन को, सुख-साधन अनयास महाफलु। (वि० २४)
अनयासा-दे० 'अनयास'। उ० नाम सप्रेम जपत अनयासा। (मा० १।२४।३)
अनरथ-(स० अनर्थ)-अनर्थ, उत्पात। उ० लखन लखेउ भा अनरथ आजू। (मा० २।७४।४)
अनरथु-दे० 'अनरथ'। उ० अनरथु अवध अरंभेउ जब तें। (मा० २।१५७।३)
अनरस-(स० अन्+रस)-१ निरस, शुष्क, २ रुखाई, कोप। उ० १ तौ नवरस, षटरस रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे। (वि० १६९)
अनरसत-क्रोधित होते हैं। उ० हँसे हँसत अनरसे अनरसत प्रतिबिंबनि ज्यों झाँई। (गी० १।१६) अनरसे-१ क्रोधित होने पर, २ क्रोधित, क्रोधित हुए। उ० १ हँसे हँसत, अनरसे अनरसत प्रतिबिंबनि ज्यों झाँई। (गी० १।१६) २ आजु अनरसे हैं भोर के, पय पियत न नीके। (गी० १।१२)
अनरसनि-१ उदासीनता, २ शुष्कता ३ मनोमालिन्य। उ० १ रोवनि धोवनि अनखानि अनरसनि, डिठि मुठि निठुर नसाइहौं। (गी० १।१८)
अनर्थ-(स०)-१ उत्पात, उपद्रव, २ उलटा अर्थ, अयुक्त अर्थ। उ० १ जानत अर्थ अनर्थ रूप, तमकूप परब यहि लागे। (वि० ११७)। अनर्थकारी-(स० अनर्थकारिन्) १ उपद्रवी २ हानिकारी ३ उलटा अर्थ निकालनेवाला।
अनल-(स०)-१ आग, २ तीन की संख्या, ३ विभीषण का मंत्री, ४ चीता, ५ भिलावा। उ० १ अपने अनल अकाम बनाइ। (मा० ७।११७।७)। अनलहि-आग को।

उ० तव प्रभाव बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल । (मा० ५।३३) । अनलहु-अनल भी, आग भी । उ० सब जगु ताहि अनलहु ते ताता । (मा० ३।२।४)

अनवद्यं-दे० 'अनवद्य' । उ० अमलमखिलमनवद्यमपार । (मा० ३।११।श्लो०६)

अनवद्य-(स०)-निर्दोष, अनिन्द्य, स्वच्छ । उ० अज अनवद्य अकाम अभोगी । (मा०१।६०।२)

अनवरत-(स०)-१ लगातार, अटूट, २ सदैव, अविराम । उ० १ देहि कामारि श्रीराम पद पंकजे भक्तिमनवरत गत भेद माया । (वि०१०)

अनबरषे-(स० अन्+वर्षा)-पानी न बरसने पर वर्षा न होने पर । उ० अति बरषे अनबरषे हूँ देहिं दैवहिं गारी । (वि०३४)

अनविचार-(स० अन्+विचार)-नासमझी से, बिना विचारे । उ० अनविचार रमनीय सदा, संसार भयंकर भारी । (वि०१२१)

अनवसर-(स०)-कुसमय, बुरे वक्त में । उ० सोइ लंका अतिथि अनवसर राम तृनासन ज्यों दई । (गी०५।३८)

अनवस्थित-(स०)-अस्थिर, अशांत, चंचल ।

अनसमुझे-(स० अन्+?)-बिना समझे, न समझने पर । उ० अनसमुझे अनुसोचनो, अवसि समुझिए आप । (दो० ४८६)

अनसूया-(स०)-१ अत्रि मुनि की स्त्री, ये दक्ष की चौबीस कन्याओं में से एक थीं । इनकी आराधना से प्रसन्न होकर विष्णु दत्तात्रेय के रूप में, ब्रह्मा चन्द्रमा के रूप में, और शिव दुर्वासा के रूप में इनके पुत्र हुए और इनकी गोद में खेले । अपने पातिव्रत धर्म के लिए अनसूया बहुत प्रसिद्ध हैं । मानस में जानकी से इनकी भेंट हुई है । जानकी ने इनसे उत्तम शिक्षाएँ ग्रहण कीं और इनको नाना प्रकार के उपहार दिए । २ पराए गुण में दोष न देखना ।

अनहित-(स० अन्+हित)-१ अहित, अपकार, बुराई, २ अहितचिंतक, शत्रु । उ० १ अनहित तोर प्रिया केहि कीन्हा । (मा०२।२६।१) २ बहुउँ संत समान चित हित अनहित नहिं कोय । (मा०१।३क) अनहितन-बैरियों, शत्रुगण । उ० याते बिपरीत अनहितन की जानि लीबी । (गी०१।६४) अनहितौ-बुराई भी, अहित भी, अनिष्ट भी । उ० निज गुन अरिकृत अनहितौ दास-दोष सुरति चित रहित न दिए दान की । (वि०४२)

अनाचार-(स०)-निन्दित आचरण, भ्रष्टता, दुराचार ।

अनाज-(स० अन्नाद्)-अन्न, गल्ला ।

अनाथ-(स०)-१ जिसका कोई नाथ न हो, नाथहीन, २ असहाय, ३ दीन, दुखी, मुहताज । उ० १ जरइ नगर अनाथ कर जैसा । (मा० ५।२६।३) अनाथनाथ-(स० अनाथ+नाथ)-अनाथों के नाथ, भगवान, दीनानाथ । उ० हाथ उठाइ अनाथ नाथ सों, पाहि पाहि प्रभु पाहि पुकारी । (कृ० ६०) अनाथनि-अनाथों की । उ० हति नाथ अनाथनि पाहि हरे । (मा० ७।१४। छं० ४) अनाथपति-अनाथों के स्वामी भगवान । उ० हौं सनाथ ह्वैहौं सही तुमहूँ अनाथपति, जो लघुतहि न भितैहौ । (वि० २७०)

अनाथपाल-अनाथों की रक्षा करनेवाले । उ० आलसी-अभागी अघी आरत-अनाथपाल, साहेब समर्थ एक नीके मन गुनी मैं । (क० ७।२१)

अनाथा-दे० 'अनाथ' । उ० तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा । (मा० ५।७।१)

अनादर-(स०)-असम्मान, बेइज्जती । उ० एते अनादर हूँ तोहि तें न हातो । (वि० १७६)

अनादि-(स०)-जिसकी आदि न हो । जो सर्वदा से हो । उ० अकथ अगाध अनादि अनूपा । (मा० १।२३।१) विशेष-शास्त्रकार ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों को अनादि मानते हैं ।

अनादी-दे० 'अनादि' । उ० कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी । (मा० १।१०८।३)

अनाम-(स०) बिना नाम का । उ० नाम अनेक अनाम निरंजन । (मा० ७।३४।३)

अनामय-दे० 'अनामय' । उ० रन जीति रिपुदल बंधुजुत पस्यामि राममनामय । (मा० ६।१०७।छं० १)

अनामय-(स०)-१ रोग रहित, स्वस्थ, २ विकार रहित, ३ स्वास्थ्य । उ० २ ब्रह्म अनामय अज भगवंता । (मा० ५।३६।१)

अनामा-दे० 'अनाम' । उ० एक अनीह अरूप अनामा । (मा० १।१३।२)

अनायास-(स०)-बिना परिश्रम, बैठे बिठाए । उ० अनायास उधरी तेहि काला । (मा० २।२१७।२)

अनारंभ-(स०)-१ कार्य आरंभ न करना, २ आसक्तिपूर्वक कार्य आरंभ न करना । उ० २ अनारंभ अनिकेत अमानी । (मा० ७।४६।३)

अनिंदिता-(स०)-निन्दा रहित, उत्तम । उ० जगद्या सततमनिंदिता । (मा० ७।२४।५)

अनिकेत-(स०)-स्थानरहित, बिना घर बार का, सर्वत्र विचरनेवाला, विरक्त । उ० अनारंभ अनिकेत अमानी । (मा० ७।४६।३)

अनित्य-(स०)-विनाशी, क्षणिक, नश्वर ।

अनिप-(स० अणिप)-सेनापति, सेनानी । उ० अनिप अकंपन अरु अतिकाया । (मा० ६।४६।५)

अनिमा-दे० 'अणिमा' । उ० तिय-बरवेष अली रमा सिधि अनिमादि कमाहिं । (गी० १।५)

अनियत-(स० आनयन) लाते, धारण करते । उ० महिमा समुझि उर अनियत है । (वि० प० १८३) अनिहैं-ले आयेंगे । उ० जौ जमराज काज सब परिहरि यही ख्याल उर अनिहैं । (वि० ६५) अनिहै-ले आवेगा ।

अनियारे-(स० अणि+हिं० आर)-अनीदार, नोकीले, पैने तेज़ । उ० कटितट पटपीत तून सायक अनियारे । (गी० १।३७)

अनिर्वाच्य-(स०) अकथनीय, बहुत । उ० माया अनिर्वाच्य मिथ्यामा । (मा० २।८।१)

अनिल-(स०)-वायु, पवन, हवा । उ० सोइ जल अनल अनिल संघाता । (मा० १।७।६)

अनिश्चय-(स०)-जिसका निश्चय न हो ।

अनिशं-(स०)-सर्वदा, लगातार, रोज़ । उ० ब्रह्मा शंभु फणीन्द्र सेव्यमनिशं । (मा० ५।१ श्लो०१)

अनिष्ट-(स०)-अहित, बुरा, हानि, अमंगल।
अनिस-(स० अनिश)-निरंतर, लगातार, सर्वदा।
अनी-(सं० अनीक)-१ सेना, २ समूह, ३ नोक, सिरा। उ० १ सुरकाज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी। (मा० २।१२६।छं० १)
अनीक-(स०)-१ सेना, २ युद्ध, ३ समूह, ४ बुरा, ख़राब। उ० १ रहे निज निज अनीक रचि रूरी। (मा० १।१८८।३)
अनीत-(स० अनीति)- अनीति, नीति के विरुद्ध।
अनीति-(स०) १ नीति के विरुद्ध कार्य, २ अन्याय, अत्याचार। उ० १ कहि अनीति ते मूदहिं काना। (मा० १।२६३।७)
अनीती-(सं० अनीति)-अत्याचार, अन्याय। उ० अति नय निपुन न भाव अनीती। (मा० २।४३।३)
अनीप-(हि० अनी + स० प)-सेनापति, सेनाध्यक्ष।
अनीस-(स० अनीश)-१ अनीश, अनाथ, २ असमर्थ, ३ सबसे ऊपर, सर्वश्रेष्ठ,। ४ बुरे स्वामी, ५ जीव, जो ईश्वर न हो। उ० १ अति अनीस नहीं जाए गनाए। (वि० १३६) ४ सुर स्वारथी अनीस, अलायक, निठुर दया चित नाहीं। (वि० १४५) अनीसहिं-जीव में। उ० ईस अनीसहि अंतर तैसें। (मा० १।७०।१)
अनीह-(स०)-१ इच्छारहित, निस्पृह, २ बेपरवाह। उ० १ व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुन नाम न रूप। (मा० १।२०५)
अनीहा-१ निष्कामता, अनिच्छा, २ निश्चेष्टता।
अनु-(स०)-१ हाँ, २ पीछे (अनुकरण), ३ सदृश (अनुकूल), ४ साथ (अनुकंपा), ५ प्रत्येक (अनुदिन), ६ बारबार (अनुशीलन)। उ० १ देहु उतरु अनु करहु कि नाहीं। (मा० २।३०।२)
अनुकंपा-(स०)-दया, अनुग्रह।
अनुकथन-(स०)-क्रमबद्ध वचन, कथा, वार्तालाप। उ० मुनि अनुकथन परस्पर होई। (मा० १।४१।२)
अनुकरन-(स० अनुकरण)-अनुकरण, नकल।
अनुकूल-(स०)-१ मुआफ़िक़, २ प्रसन्न, ३ हितकर। उ० १ है अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनि खल पतिहि भजै। (वि० ८१)
अनुकूला-दे०-'अनुकूल'। उ० २ मिलइ जो संत होईं अनुकूला। (मा० ३।१६।२)
अनुकूलेउ-अच्छे लगे, रुचिकर लगे। उ० मध्य बरात बिराजत अति अनुकूलेउ। (जा० १४०) अनुकूलो-१ अनुकूल हो, २ प्रसन्न हो। उ० १ राम गुलाम तुही हनुमान गुसाईं गुसाईं सदा अनुकूलो। (ह० ३६)
अनुक्रम-(स०) क्रम, सिलसिला तरतीब।
अनुगता-(स० अनु + गत)-पीछे पीछे चलनेवाला, आज्ञाकारी। उ० बचन चय चातुरी परसुधर गर्वहर, सर्वदा राम भद्रानुगता। (वि० ३८)
अनुग-(स०)-पीछे पीछे चलनेवाला, आज्ञाकारी। उ० लै धावौं, भजौं मृनाल ज्यौं तौ प्रभु अनुग कहावौं। (गी० १।८७) अनुगनि-सेवक गण। उ० उतरि अनुज अनुगनि समेत प्रभु, गुरु द्विजगन सिर नायो। (गी० ६।२१)

अनुगत-(स०)-पीछे-पीछे चलनेवाला। उ० अहि अनुगत सपने बिबिध जाइ पराय न जाहि। (स० ४१८)
अनुगामी-(स० अनुगामिन्)-१ दास, सेवक, २ पीछे पीछे चलनेवाला, ३ सहवास करनेवाला। उ० १ मोहि जानिअ आपन अनुगामी। (मा० १।२८१।४) २ सब सिधि तव दरसन अनुगामी। (मा० १।३४।३)
अनुगृहीत-(स०)-उपकृत, जिस पर अनुग्रह किया गया हो।
अनुग्रह-(स०)-१ दया, कृपा, २ अनिष्ट निवारण। उ० १ करउ अनुग्रह सोइ, बुद्धिरासि सुभ गुन सदन। (मा० १।१। सो० १) २ साप अनुग्रह होइ जेहि नाथ थोरेहीं काल। (मा० ७।१०८ घ)
अनुचर-(स०)-दास, सेवक। उ० मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया। (मा० १।२७८।१) अनुचरन्ह-अनुचरों ने, सेवकों ने। उ० मम अनुचरन्ह कीन्ह मख भंगा। (मा० ७।२६।२)
अनुचरी-(स०)-दासी, सेविका। उ० तव अनुचरी करउँ पन मोरा। (मा० ५।६।३)
अनुचित-(स०) जो उचित न हो, अयोग्य। उ० यह अनुचित नहिं नेवत पठाया। (मा० १।६२।१)
अनुज-(स०)-जिसका जन्म पीछे हो, छोटा भाई। उ० रिपु को अनुज बिभीषन निसिचर, कौन भजन अधिकारी। (वि० १६६) अनुजनि-छोटे भाइयों को। उ० गिरि घुटुरुनि टेकि उठि अनुजनि तोतरि बोलत पूप देखाए। (गी० १।२६) अनुजन्ह-छोटे भाइयों को। उ० आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई। (मा० १।२०५।३) अनुजबधू-(स० अनुज + बधू) छोटे भाइ की स्त्री। उ० अनुजबधू भगिनी सुतनारी। (मा० ४।६।४) अनुजहि-अनुज को। उ० राम देखावहिं अनुजहि रचना। (मा० १।२२५।२)
अनुजा-(स०)-बहिन, छोटी बहिन। उ० नहिं मानत क्वौ अनुजा तनुजा। (मा० ७।१०।२३)
अनुतप्त-(स०)-१ उत्तप्त, गरम, २ खेदयुक्त।
अनुताप-(स०)-१ पछतावा, २ तपन, दाह, ३ दुःख खेद।
अनुदिन-(स०)-नित्य प्रति, प्रतिदिन। उ० हेतुरहित अनुराग रामपद बढ़ै अनुदिन अधिकाई। (वि० १०३)
अनुपम-(स०) उपमारहित, बेजोड़। उ० कटितट रटति चारु किंकिनि रव अनुपम बरनि न जाई। (वि० ६२)
अनुपमेय-(स०)-अनुपम, उपमा रहित, बेजोड़।
अनुपान-(स०)-वह वस्तु जो औषधि के साथ या उसके बाद खाई जाय।
अनुबंध-(स०)-१ संसर्ग, लगाव, २ आरंभ, ३ अनुसरण, ४ होनेवाला शुभ या अशुभ।
अनुबादा-(स० अनुवाद)-पुनर्कथन, फिर स कहना। २ चर्चा, ३ कीर्तन। उ० ३ सुनत फिरउँ हरि गुन अनुबादा। (मा० ७।११०।६)
अनुभए-(स० अनुभव)-१ पीछे हो गए, २ प्राप्त हुए, ३ अनुभव किए, ४ उत्पन्न हुए। उ० ३ नए नए नेह अनुभए देहगेह बसि, परखे प्रपंची प्रेम परत उघरि सो। (वि० २६४) अनुभयउ-अनुभव किया। उ० नाहि सम महु अनुभयउ न दूजें। (मा० २।३।३) अनुभवत-अनुभव

करता है। उ० तुलसिदास अनुराग अवध आनँद, अनु भरत तव को सो अजहुँ अघाइ। (गी० १।२७) अनुभवति– अनुभव कर रही हैं, अनुभव करती है। उ० उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। (मा० १।२४२।४) अनुभवहिं–अनुभव करते हैं। उ० ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा। (मा० १।२२।१) अनुभवहीं–अनुभव कर रहे हैं। उ० बचन अगोचर सुख अनुभवहीं। (मा० ७।१०८।२) अनुभवे–अनुभव किए। उ० बधक विषय विविध तनु धरि अनुभवे सुने अरु डीठे। (वि० १६६) अनुभवै–अनुभव हो, जान पड़े, समझ में आवे। उ० सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख अतिसय द्वैत वियोगी। (वि० १६७) अनुभो–अनुभव करो, अनुभव कीजिए। उ० ऋषिराज जाग भयो महाराज अनुभो। (गी० १।६४)

अनुभव–(स०) साक्षात करने से प्राप्त ज्ञान, परीक्षा द्वारा प्राप्त ज्ञान। उ० जेहि अनुभव बिनु मोह-जनित दारुन भव विपति सतावै। (वि० ११६) अनुभवगम्य–(स०) अनुभव से जानने योग्य। उ० अनुभवगम्य भजहिं जेहि संता। (मा० ३।१३।६)

अनुभाऊ–(स० अनुभाव) प्रभाव, महिमा। उ० बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ। (मा० २।२८६।२)

अनुभाव–(स०)–१ प्रभाव, २ महिमा, बड़ाई।

अनुमत–(स० अनुमति)–१ आज्ञा, अनुमति, २ सम्मति।

अनुमति–(स०)–१ चतुर्दशीयुक्त पूर्णिमा जिसमें चंद्रमा की कला पूरी नहीं होती। २ आज्ञा, हुक्म।

अनुमान–(स०) १ अटकल, अंदाज, २ अटकल लगाओ, अनुमान करो। उ० २ सीतल बानी संत की, ससि हू ते अनुमान। (वै० २१) अनुमानि–अनुमान कर, विचार कर। उ० अघ अनेक अवलोकि आपने अनघ नाम अनुमानि डरौं। (वि० १४१) अनुमानी–१ अनुमान करके, विचार करके, २ अनुमान किया। उ० १ पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी। (मा० २।४४।२) अनुमाने–१ अनुमान किया, २ अनुमान से, ३ अनुमान या विचार करते हुए। उ० १ ते सब सिव पहिं मैं अनुमाने। (मा० १।६६।२) ३ पूजा लेत देत पलटे सुख हानि लाभ अनुमाने। (वि० २३६।२)

अनुमाना–दे० 'अनुमान'। उ० १ करत कोटि विधि उर अनुमाना। (मा० २।१२१।२)

अनुमोदन–(स०)–१ प्रसन्नता का प्रकाशन, २ समर्थन, ताईद। उ० १ कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। (मा० ७।१२६।३)

अनुरक्त–(स०)–आसक्त, लीन।

अनुराग–(स०)–प्रीति, प्रेम, आसक्ति। उ० जानि बड़े भाग अनुराग अकुलाने हैं। (गी० १।६६)

अनुरागइ–प्रेम करता है। उ० सो कि दोष गुन गनइ जो जेहि अनुरागइ। (पा० ६७) अनुरागऊँ–अनुरागी होऊँ, प्रेम करूँ। उ० जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ रामपद अनुरागऊँ। (मा० ४।१०। छं० २) अनुरागत–प्रेममय हो जाता है, प्रसन्न हो जाता है। उ० नरपा ऋतु प्रवेस विसेष गिरि देखन मन अनुरागत। (गी० २।५०) अनुरागहीं–अनुराग करें, प्रेम करें। उ० मन बचन कर्म विकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं। (मा० ७।१३। छं०१) अनुरागहू–अनुराग करो, प्रेम करो। उ० विस्वास करि कह दास तुलसी रामपद अनुरागहू। (मा० ३।३६। छं० १) अनुरागिहै–प्रेम करेगा। उ० मन रामनाम सों सुभाव अनुरागिहै। (वि० ७०) अनुरागीं–प्रेममय हो गई। उ० प्रेम पुलकि तन मन अनुरागीं। (मा० २।८८।१) अनुरागु–प्रेम कर। उ० अब नाथहि अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जी तें। (वि० १९८) अनुरागे–१ प्रेम के कारण, २ प्रेम किए। उ० १ सकहिं न कछु कहि अति अनुरागे। (मा० ७।१७।१) अनुरागेउँ–अनुरक्त हो गया प्रेम में पड़ गया। अनुरागै–प्रेम होता है, प्रेम करता है। अनुरागौं–प्रेम करूँ। उ० परिहरि पाँय काहि अनुरागौं। (वि० १७७) अनुराग्यो–अनुरक्ति, अनुराग में डूबा। उ० ज्यों छल छाँड़ि सुभाव निरंतर रहत विषय अनुराग्यो। (वि० १७०)

अनुरागा–दे० 'अनुराग'। उ० भयउ रमापति पद अनुरागा। (मा० १।१२४।२)

अनुरागी–प्रेम करनेवाले। उ० की तुम्ह रामु दीन अनुरागी। (मा० ४।१।४)

अनुरूप–(स०)–१ समान, सदृश २ योग्य, अनुकूल, उपयुक्त। उ० २ मति अनुरूप कहउँ हित ताता। (मा० २।३८।१)

अनुरोध–(स०)–१ रुकावट, बाधा, २ प्रेरणा, ३ आग्रह, दबाव, ४ विनय।

अनुरोधु–दे० 'अनुरोध'। उ० १ मोधु विनु अनुरोध अनु के, बोध विहित उपाउ। (गी० ४।४)

अनुरोधू–दे० 'अनुरोध'। उ० १ राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू। (मा० २।४४।२)

अनुलेपन–(स०)–१ लेपन, २ सुगंधित द्रव्यों का शरीर में मर्दन। उ० १ भृगुपद चिह्न पदिक उर सोभित, मुकुत माल कुंकुम अनुलेपन। (गी० ७।१६)

अनुवर्ती–(स० अनुवर्त्तिन्)–१ रक्षक, २ सेवक, ३ अनुयायी। उ० १ सामगातामनी कामजेतामनी, रामहित रामभक्तानुवर्ती। (वि० २७)

अनुवाद–(स०)–१ बार बार कहना २ सर्जुमा, उल्था, ३ निन्दा।

अनुशासन–(स०)–१ आज्ञा, २ उपदेश, ३ व्याख्यान।

अनुष्ठान–(स०)–१ आरंभ, २ प्रयोग।

अनुसंधाना–(स० अनुसंधान)–१ अनुसंधान, खोज, २ इच्छा, कामना, ३ प्रयत्न। उ० २ हृदयँ न कछु फल अनुसंधाना। (मा० १।१४६।१)

अनुसर–(स० अनुसार)–अनुसार, समान, मुआफिक। उ० जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाहीं। (मा० २।१४१।२)

अनुसरई–(स० अनुसरण)–अनुसरण करता, पीछे पीछे चलता। उ० जो नहिं गुर आयसु अनुसरई। (मा० २।१७२।४) अनुसरऊँ–१ अनुसरण करूँ, अनुसरण करता, २ जारी रखता। उ० २ तहँ तहँ राम भजन अनुसरऊँ। (मा० ७।११०।१) अनुसरहीं–अनुसरण करते हैं, अनुसार काम करते हैं। उ० फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं। (मा० १।३।४) अनुसरहुगे–अनुसार करोगे, अनुसरण करोगे। उ० दीन हित अजित सर्वज्ञ समरथ प्रनतपाल, चित मृदुल निज गुननि अनुसरहुगे। (वि० २११) अनु

सरहू–अनुसरण करो, अनुसार कार्य करो। उ० सिर धरि गुर आयसु अनुसरहू। (मा० २।१७६।३) अनुसरिए–अनुसरण कीजिए। उ० कपि सेवत कीन्हें सखा जेहि सील सरल चित तेहि सुभाव अनुसरिए। (वि० २७१) अनुसरी–१ अनुसरण करे, २ अनुसार बर्ताव करनेवाली। उ० १ धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी। (मा० ७।१२७।३) अनुसरु–अनुसरण कर, पीछे पीछे चल। उ० स्रवन कथा, मुखनाम, हृदय हरि, सिर प्रनाम सेवा कर अनुसरु। (वि० २०५) अनुसरे–अनुसार व्यवहार किया, अनुसरण किया। उ० अब प्रभु पाहि सरन अनुसरे। (मा० ६।११०।६) अनुसरेहु–अनुसरण करना, अनुसार चलना। उ० मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहु। (मा० ७।२०।१) अनुसरैं–अनुसार व्यवहार करते हैं, अनुकूल व्यवहार करें। उ० नीच ज्यों टहल करै राखै रुख अनुसरैं। (गी० १।६६)

अनुसार–(सं०)–अनुकूल, सदृश, समान, मुआफिक। उ० कहउँ नाम, बड़ राम तें निज बिचार अनुसार। (मा० १।२३)

अनुसारा–दे० 'अनुसार'। उ० सो सब कहिहउँ मति अनुसारा। (मा० १।१४१।३)

अनुसारी–(सं०)–१ आरंभ की २ पीछे पीछे चलनेवाला, ३ अनुकूल। उ० १ पुलकित तन अस्तुति अनुसारी। (मा० ७।३४।१) २ तिन्ह महुँ निगम धरम अनुसारी। (मा० ७।८६।३) ३ देसकाल अवसर अनुसारी। (मा० २।४४।३)

अनुसासन–(सं० अनुशासन) १ अनुशासन, आज्ञा, २ उपदेश, ३ व्याख्यान। उ० १ बोला बचन पाइ अनुसासन। (मा० ५।३८।२)

अनुसासनु–दे० 'अनुसासन'। उ० १ बैठे सब मुनि मुनि अनुसासनु। (मा० २।२४७।३)

अनुसुइया–(सं० अनसूया)–दे० 'अनसूया'। उ० अनुसुइया के पद गहि सीता। (मा० ३।५।१)

अनुसृत्य–(सं०)–१ अनुसार, २ पीछे चलते हुए, ३ अनुसरण, ४ प्रतिछाया, ५ प्रतिलिपि।

अनुसोचनो–(सं० अनु+शोचन)–बार बार सोचना, मनन करना। उ० अनसमुझे अनुसोचनो, अवसि समुझिए आपु। (दो० ४८६)

अनुहर–(सं० अनुहार)–सदृश समान, अनुहार।

अनुहरइ–बराबरी करता, समानता करता, समानता करता है। उ० सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही। (मा० १।२७७।४) अनुहरत–१ का अनुसार हो, समानता करते हुए, २ उपयुक्त, योग्य, अनुकूल। उ० १ स्वारथ सहित सनेह सब, रुचि अनुहरत अचार। (दो० ४६८) २ मोहि अनुहरत सिखावनु देहू। (मा० २।१७७।४) अनुहरति–सदृश, समान, मिलती-जुलती समानता रखती हुई। उ० बर अनुहरति बरात बनी हरि हँसि कहा। (मा० ११०) अनुहरि–अनुसार, समान, अनुसार काम करके। उ० अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा। (मा० २।२४१।२) अनुहरिया–समानता करनेवाला बराबरी करनेवाला। उ० मुख अनुहरिया केवल चंद समान। (ब० ६) अनुहारि–(सं० अनुहार)–१ समान, २ समानता करके, ३ अनुसार, योग्य, उपयुक्त। उ० १ चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि। (ब० १६) ३ मति अनुहारि सुबारि गुन, गन गनि मन अन्हवाइ। (मा० १।४३क)

अनुहार–(सं०)–१ सदृश, तुल्य, समान, २ आकृति।

अनुहारी (१)–(सं० अनुहार)–दे० 'अनुहार'। उ० १ सुकबि कुकबि निज मति अनुहारी। (मा० १।२८।४)

अनुहारी (२)–(सं० अनुहारिन्)–अनुकरण करनेवाला।

अनूठा–(सं० अनुत्थ)–१ अपूर्व विचित्र, २ सुन्दर।

अनूप–(सं०)–१ उपमारहित, अपूर्व, विचित्र, अनुपम, २ सुन्दर, ३ जलप्रायदेश, ४ भैंस। उ० १ अरथ अनूप सुभाव सुभासा। (मा० १।३७।३) अनूपहिं–अनूप को, अनोखे को। उ० कहि न सकहिं सत सेष अनद अनूपहिं। (जा० १३७)

अनूपम–(सं० अनुपम)–उपमारहित, सुन्दर। उ० अगुन अनूपम गुन निधान सो। (मा० १।१६।१)

अनूपा–दे० 'अनूप'। उ० पन्नगारि यह रीति अनूपा। (मा० ७।११६।१)

अनूपान–(सं० अनुपान)–अनुपान, दवा के साथ खाए जानेवाला पदार्थ। उ० अनूपान श्रद्धा मति पूरी। (मा० ७।१२२।४)

अनूमान–(सं० अनुमान)–अनुमान, अंदाज। उ० अनूमान साखी रहित होत नहीं परमान। (स० २०६)

अनृत–(सं०)–१ मिथ्या, असत्य, २ अन्यथा। उ० १ साहस अनृत चपलता माया। (मा० ६।१६।२)

अनेक–(सं०)–एक से अधिक, बहुत, असंख्य। उ० सुनहु तात मायाकृत गुन अरु दोष अनेक। (मा० ७।४१)

अनेका–दे० 'अनेक'। उ० मनिगन मंगल बस्तु अनेका। (मा० २।६।२)

अनेरे–(सं० अनृत)–१ झूठ, व्यर्थ, २ झूठा। उ० २ निपट बसेरे अघ औगुन घनेरे नर नारिऊ अनेरे जगदंब चेरी चेरे हैं। (क० ७।१७४)

अनेरो–दे० 'अनेरे'। उ० २ अगुन अलायक आलसी जानि अधम अनेरो। (वि० २७२)

अनै–(सं० अनय)–अनीति। उ० नाम प्रताप पतित पावन किये जे न अघाने अघ अनै। (गी० ५।४०)

अनैसी–(सं० अनिष्ट)–अप्रिय, अनिष्ट, बुरी। उ० राम सदा सरनागत की अनखौंहीं अनैसी सुभाय सही हैं। (क० ७।६)

अनैसें–टेढ़े, कुदृष्टि से, बुरी भाँति से। उ० अजहुँ अनुज तव चितव अनैसें। (मा० १।२७१।४)

अनैसो–बुरा, अप्रिय। उ० नाम लिए अपनाइ लियो, तुलसी सो कहौ जग कौन अनैसो। (क० ७।४)

अनोखा–(सं० अन्+ईक्ष)–१ अनूठा, निराला, २ नूतन, नया ३ सुंदर।

अन्न–(सं०)–१ अनाज, २ पकाया खाना, ३ सबभक्षी, ४ सूर्य, ५ पृथ्वी, ६ विष्णु ७ प्राण, ८ जल। उ० १ अन्न कनक भाजन भरि जाना। (मा० १।३०१।४)

अन्नपूरना–(सं० अन्नपूर्णा)–अन्नपूर्णा, अन्न की अधिष्ठात्री देवी। उ० जौना देवी मर्म न भवानी अन्नपूरना। (क० ७।१४८)

अन्नप्रासन–(सं० अन्नप्राशन)–बच्चों को सर्वप्रथम अन्न

घटाने का संस्कार। उ० नामकरन सुअन्नप्राशन वेद बाँधी नीति। (गी० ७।२४)
अन्ने-(स० अन्य)-और, दूसरे।
अन्य-(स०)-दूसरा, भिन्न, और कोइ।
अन्यत-(सं०)-१ किसी और जगह से, अन्यत्र से, २ किसी और से। उ० १ रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि। (मा० १।१।श्लो० ७)
अन्यथा-(स०)-१ विपरीत, उलटा, २ झूठ, असत्य। उ० १ किमि अन्यथा होइ नहिं विप्र श्राप अति घोर। (मा० १।१७४)
अन्याइ-(स० अन्यायिन्)-१ अन्याय करनेवाला, अधर्मी, २ नटखट। उ० २ या ब्रज में लरिका घने हौंही अन्याई। (कृ० ८)
अन्याउ-(स० अन्याय)-१ अन्याय, २ शरारत। उ० २ जे अन्याउ करहिं काहू को, ते सिसु मोहिं न भावहिं। (कृ० ४)
अन्याय-(स०)-न्याय के विरुद्ध, अधम, अनीति, अत्याचार।
अन्याव-(स० अन्याय)-दे० 'अन्याय'। उ० अन्याव न तिनको हौं अपराधी सब केरो। (वि० २७२)
अन्ये-(स० अन्य)-अन्य, और दूसरे। उ० असुर सुर नाग नर यक्ष गंधर्व खग रजनिचर सिद्ध ये चापि अन्ये। (वि० ५७)
अन्वह-(स०)-नित्य, सर्वदा, निरंतर। उ० सम सुसेव्य मन्वह। (मा० ३।४।छं०१०)
अन्वित-(सं०)-युक्त, सहित, शामिल।
अन्वेषण-(सं०)-खोज, ढूँढ़, तलाश। उ० सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि न। (मा० ४।१। श्लो०१)
अन्हवाइ-(स० स्नान)-स्नान कराकर। उ० मति अनुहारि सुवारि गुन गन गनि मन अन्हवाइ। (मा० १।४३क) अन्हवाइय-स्नान कराइए। उ० जुवतिन्ह मंगल गाइ राम अन्हवाइय हो। (रा० ३) अन्हवाई-१ स्नान कराकर, २ स्नान कराया। उ० २ बहु देखाइ सुरसरि अन्हवाई। (मा० २।१४४।४) अन्हवाएँ-१ स्नान कराए, २ स्नान कराए हुए। उ० २ रामचरित सर बिनु अन्हवाएँ। (मा० १।११।३) अन्हवाए-स्नान कराया। उ० एक बार जननी अन्हवाए। (मा० १।२०१।१) अन्हवावउँ-१ स्नान कराता हूँ, २ नहलाऊँ। उ० १ शंकर-चरित सुसरित मनहिं अन्हवावउँ। (पा० ३) अन्हवावहु-स्नान कराओ। उ० प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई। (मा० ७।११।१) अन्हवावा-स्नान कराया। उ० नृपतनु वेद विदित अन्हवावा। (मा० २।१७०।१)
अन्हवैया-नहानेवाले, स्नान करनेवाले। उ० भरत, राम रिपुदवन, लखन के चरित-सरित अन्हवैया। (गी० १।१)
अपंडित-(स०)- ज्ञानशून्य, मूर्ख।
अप (१)-(स० अप्)-जल, पानी। उ० रज अप अनल अनिल नभ जड़ जानत सब कोइ। (स० २०३)
अप (२)-(स०)-एक उपसर्ग जिसके लगाने से उलटा, विरुद्ध, बुरा, अधिक आदि का भाव आ जाता है।
अपकर्ष-(स०)-अवनति, घटाव, पतन।
अपकार-(स०)-१ अनुपकार, बुराई, अहित, २ अनादर, अपमान, ३ अत्याचार। उ० १ मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। (मा० १।१३७।४)
अपकारा-दे० 'अपकार'। उ० १ तदपि न तेहिं कछु कृत अपकारा। (मा० ६।२४।३)
अपकारी-(स० अपकारिन्)-हानि या अपकार करनेवाला, विरोधी। उ० जे अपकारी चार तिनकर गौरव मान्य तेइ। (दो० ४२१)
अपकीरति-(स० अपकीर्ति)-अपकीर्ति, बदनामी, अपयश। उ० बधें पाप अपकीरति हारें। (मा० १।२७३।४)
अपगत-(स०)-१ भागा हुआ, २ नष्ट, मृत। उ० १ अपगत हो सोई अवनि सो पुनि प्रगट पताल। (स०११०)
अपगति-(स०)-दुर्दशा, नीची गति।
अपचार-(स० अपचार)-१ अपचार, अनुचित बर्ताव, २ अहित, अनिष्ट, ३ अनादर, निंदा, ४ भूल, भ्रम, ५ कुपथ्य। उ० १ बिबुध बिमल बानि गगन, हेतु प्रजा अपचारु। (प्र० ६।५।३)
अपछरा-(स० अप्सरा)-अप्सरा, परी। उ० नृत्य करहिं अपछरा प्रबीना। (मा० ६।१०।५)
अपजस-(स० अपयश)-अपयश, बदनामी। उ० अपजस नहिं होय तुम्हारा। (वि० १२५)
अपजसु-दे० अपजस। उ० तजहु सत्य जग अपजसु लेहू। (मा० २।३०।३)
अपडर-(सं० अप+डर)-१ मिथ्या डर, २ डर, भय। उ० १ अपडर डरेउँ न सोच समूलें। (मा० २।२६७।२) अपडरनि-झूठे डरों से, मिथ्या डरों से। उ० अब अपडरनि डर्यो हौं। (वि० २६६) अपडरे-मिथ्या डर से डरे। डर गए। उ० बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे। (मा० ६।८८।छं० १)
अपत (१)-(स० अपात्र)-अपवित्र, अधम, पातकी, नीच। उ० पावन किय रावन रिपु तुलसिहु से अपत। (वि० १३०)
अपत (२)-(स०।अ+पत्र)-नग्न, निर्लज्ज, बेशर्म।
अपत (३)-(स अपत्)-विपत्ति, आपत्ति।
अपति (१)-(स० अ+पति) पतिहीन, विधवा।
अपति (२)-(स० अ+पति)- दुर्दशा, दुर्गति।
अपतु-दे० 'अपत' (१)। उ० अपतु अजामिलु गजु गनि काऊ। (मा० १।२६।७)
अपथ-(स०)-वह मार्ग जो चलने योग्य न हो, कुमार्ग।
अपदेश-(स०)-१ बहाना, व्याज, २ छल, ३ लक्ष्य।
अपन-(स० आत्मना)-अपना। उ० अपन करम धरमानि कै आयु बँधेउ सब कोइ। (स० ५८२)
अपनपउ-आत्मीयता, अपनापन। उ० हेतु अपनपउ जानि जियँ थकित रहे धरि मौनु। (मा० २।१६०)
अपनपा-१ अपनापन, २ आत्मसम्मान। अपनपो-अहं, अपनापा। उ० पितु मातु गुरु स्वामी अपनपो तिय तनय, सेवक सखा। (वि० १३५) अपनपौ-१ अपनापन, आत्मीयता, २ आत्मभाव, ३ चेतना सुधि, ज्ञान ४ अहंकार, गर्व, ५ आत्मगौरव। उ० ४ सदा रहहिं अपनपौ दुराएँ। (मा० १।१६१।१)
अपना-निज का। उ० सीतहि सेइ करहु हित अपना। (मा० २।११।१)

अपनाइ–अपनाकर, निज का बनाकर। उ० राखे अपनाइ, सो सुभाय महाराज को। (क० ७।१३) अपनाइअ–अपना लीजिए। उ० सब बिधि नाथ मोहि अपनाइअ। (मा० ६।११६।४) अपनाइए–अपना लीजिए, अपना कीजिए। उ० देव! दिनहूँ दिन बिगरिहै बलि जाउँ, बिलब किए अपनाइए सबेरो। (वि० २७२) अपनाई–१ वश में कर लिया, २ अपना लिया। उ० १ रचि प्रपंचु भूपहि अपनाई। (मा० २।१८।३) अपनाए–अपना लिया। उ० आगे परे पाहन कृपा, किरात कोलनी, कपीस, निसिचर अपनाए नाए माथ जू। (क० ७।१९) अपनाय–अपना करके। अपनायहि–अपना बना लेते ही। उ० ज्यों त्या तुलसिदास कोसलपति अपनायहि पर बनिहै। (वि० ६५) अपनाया–अपना लिया, अपना बना लिया। उ० जय ते रघुनायक अपनाया। (मा० ७।८९।२) अपनायो–अपना बना लिया, अपना लिया। उ० अवनि, रवनि धन, धाम, सुहृद, सुत, को न इन्हहि अपनायो। (वि० २००) अपनाव–१ अपनाने का भाव, २ अपना लेना, अपनाओ। अपनावा–अपना लिया। उ० निज जन जानि ताहि अपनावा। (मा० ५।५०।१)

अपनायत–आत्मीयता। उ० देखी सुनी न आजु लौं अपनायत ऐसी। (वि० १४७)

अपनियाँ–अपनी। उ० तुलसिदास प्रभु देखि मगन भई प्रेम बिबस कछु सुधि न अपनियाँ। (गी० १।२१)

अपनी–निजी, निज की। उ० लागि अगम अपनी कदराई। (मा० २।७२।१)

अपने–निज के। उ० कहउँ न तोहि मोह बस अपने। (मा० २।२०।३) अपनेनि–अपने का बहुबचन, अपनो। उ० अपनेनि को अपनो बिलोकि बन सकल आस बिस्वास बिसारी। (कृ० ६०)

अपनो–अपना। उ० महरि तिहारे पाँय परौं अपनो ब्रज लीजै। (कृ० ७)

अपनौ–अपनी बात भी अपना भी। उ० तुलसी प्रभु जिय की जानत सब, अपनौ कछुक जनावौं। (वि० २३२)

अपबरग–(सं० अपवर्ग)–अपवर्ग, मोक्ष, मुक्ति (४ प्रकार की मुक्ति–सालोक्य सामीप्य, सारूप्य सायुज्य)। उ० जनु अपबरग सकल तनुधारी। (मा० १।४१।२।३)

अपबरगु–दे० 'अपबरग'। उ० सरगु नरकु अपबरगु समाना। (मा० २।१३१।४)

अपबर्ग–(सं० अपवर्ग)–मुक्ति, मोक्ष। उ० नरक स्वर्ग अप बर्ग निसेनी। (मा० ७।१२१।५)

अपबर्गा–दे० 'अपबर्ग'। उ० तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा। (मा० ७।४६।४)

अपबाद–(सं० अपवाद)–कलंक, निन्दा, बुराई। उ० पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद। (मा० ७।३९)

अपबादा–दे० 'अपबाद'। उ० सत प्रभु श्रीपति अपबादा। (मा० १।६४।२)

अपबादू–दे० 'अपबाद'। उ० जसु जग जाइ होइ अपबादू। (मा० २।७७।२)

अपभय–(सं०)–१ अकारण भय, व्यर्थ भय, २ निर्भयता, ३ भय, डर। उ० १ अपभय कुटिल महीप डेराने। (मा० १।२८४।४) अपभयहुँ–भय ही, डर ही। उ० विनय करौं अपभयहुँ ते तुम्ह परम हितै हौ। (वि० २७०)

अपमान–(सं०)–अनादर, तिरस्कार, बेइज्जती। उ० अति अपमान बिचारि आपनो, कोपि सुरस पठाए। (कृ० १८) अपमानहि–१ अपमान को, २ अपमान से। उ० २ जौं न राम अपमानहि डरऊँ। (मा० ६।३०।४)

अपमानता–निरादर, अपमान। उ० अति अघ गुर अप मानता, सहि नहिं सके महेस। (मा० ७।१०६ ख)

अपमाना–दे० 'अपमान'। उ० सीता तैं ममकृत अपमाना। (मा० ५।१०।१)

अपमानु–दे० 'अपमान'।

अपमाने–अपमान करते हुए। उ० बोले पर सुधरहि अप माने। (मा० १।२७१।३)

अपर–(सं०)–१ जो परे न हो, पहिला, २ पूर्व का, पिछला, ३ अन्य, दूसरा। उ० ३ अपर तिन्हहि पूँछहि मगु जाता। (मा० २।११२।२)

अपरना–(सं० अपर्णा)–पार्वती का नाम। शिव जी को वर रूप में पाने के लिए पार्वती ने अन्न छोड़कर पत्ते खाना आरंभ किया फिर पत्ता भी छोड़ दिया। इस कारण उनका नाम 'अपरना' या 'अपर्णा' पड़ा। उ० उमहि नामु तब भयउ अपरना। (मा० १।७४।४)

अपरा–(सं०)–१ अध्यात्म विद्या के अतिरिक्त अन्य विद्या, २ पश्चिम दिशा, ३ ज्येष्ठ के कृष्ण पक्ष की एकादशी।

अपराध–(सं०)–१ दोष, पाप, २ भूल, चूक। उ० १ तुम्ह अपराध जोगु नहिं ताता। (मा० २।४३।२)

अपराधा–दे० 'अपराध'। उ० कहेउ जान धन केहिं अप-राधा। (मा० २।२५।४)

अपराधिनि–(सं० अपराधिनी)–अपराध करनेवाली। उ० जद्यपि हौं अति अधम कुटिल मति, अपराधिनि को जायो। (गी० २।७४)

अपराधिहि–अपराधी को। उ० जर्हि बिबेक, सुसील खलहिं अपराधिहि आदर दीन्हा। (वि० १७१) अपराधिहु–अपराधी भी। उ० अपराधिहु पर कोह न काऊ। (मा० २।२६०।३) अपराधी–(सं० अपराधिन्)–अपराध करनेवाला, दोषी। उ० जद्यपि मैं अनभल अप राधी। (मा० २।१८३।२)

अपराधु–दे० 'अपराध'। उ० १ समरथ कोउ न राम सा, तीय हरन अपराधु। (दो० ४४८)

अपराधू–दे० 'अपराध'। उ० १ कछु तजि रोषु राम अपराधू। (मा० २।३२।३)

अपरिमित–(सं०)–असीम, बेहद, अगणित।

अपलोक–(सं०)–१ अयश, अपयश, बदनामी, २ मिथ्या दोष। उ० १ सहत सुजस अपलोक बिभूती। (मा० १।२।४)

अपलोकु–दे० 'अपलोक'। उ० अब अपलोकु सोकु सुत तोरा। (मा० ६।६१।७)

अपवर्ग–(सं०)–मोक्ष, मुक्ति। उ० दे० 'अपबरग'।

अपवर्गद–(सं० अपवर्ग+द)–१ मोक्षदाता, २ ईश्वर, राम। उ० १ जयति धर्मार्थकामापवर्गद विभो! (वि० ३९)

अपवाद–(सं०)–१ निन्दा, २ प्रतिवाद, विरोध, ३

पाप, कलंक, ४ जो नियम के विरुद्ध हो। उ० १ निसि दिन पर अपवाद वृथा क्त रति रति राग बढ़ावहि। (वि० २३७)
अपसार-(सं०)-पानी के छींटे, शीतलता। उ० खेत अवनि रवि असु यहँ देत अमिय अपसार। (स० ४५३)
अपह-(सं०)-नाश करनेवाला। उ० मायामोहमलापह सुविमल प्रेमाम्बु पूर शुभम्। (मा० ७।१३१।श्लो०२)
अपहन-(सं०)-दूर करनेवाला, नाशक। उ० दनुज सूदन दयासिंधु दंभापहन दहन दुर्दोष दु पापहत्ता। (वि०५६)
अपहर-(सं०)-हरनेवाला, दूर करनेवाला। उ० जयति मंगलागार, संसार भारापहर वानराकार, विग्रह पुरारी। (वि० २७)
अपहरइ-अपहरण कर लेती है, हर लेती है। उ० जो ग्या नि द कर चित अपहरइ। (मा०७।५१।३) अपहरत-हरता, हरण करता। उ० दुरस दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को। (मा० २।३२१।छं०१) अपहरति-अपहरण करती है, छीनती है। उ० यत्र संभूत अति पूत जल सुर सरी दर्शनादेव अपहरति पाप। (वि० ५५) अपहरहीं-छीन लेते हैं, अपहरण कर लेते हैं। उ० भानु जान सोभा अपहरहीं। (मा० १।२११।२)
अपहरन-(सं० अपहरण)-अपहरण, छीनना, ले लेना। उ० मार करि मत्त-मृगराज त्रयनयन हर नौमि अपहरन संसार ज्वाला। (वि० ४०)
अपहर्त्ता-(सं०)-अपहरण करनेवाला, छीननेवाला। उ० उग्रमार्गयागर्व-गरिमापहर्त्ता। (वि०५०)
अपहारी-(सं० अपहारिन्)-अपहरण करनेवाला, लेने वाला। उ० व्यापक व्योम वद्यांघ्रि वामन विभो ब्रह्मविद् *ब्रह्मचिंतापहारी*। (वि० ५६)
अपहुँ-(सं० आत्मन्)-आपही, स्वय ही। उ० तुलसिदास तय अपहुँ से भय जड़ जय पलकनि हठ दगा दइ। (कृ० २४)
अपाउ-(सं० अपाय)-नटखटी, उपद्रव, अन्याय। उ० खेलत संग अनुज बालक नित जोगवत अनट अपाउ। (वि० १००)
अपान (१)-(सं०)-१ दस या पाँच प्राणों में से एक जो गुदा में रहता है। गुदा से निकलनेवाला वायु, अपान वायु, २ ईश्वर का एक विशेषण।
अपान (२)-(सं० आत्मन्)-आत्मभाव, अपनत्व। उ० भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान। (मा० २।२४०)
अपाय (१)-(सं० अ + पाद)-१ बिना पैर का, व्यर्थ। उ० १ कलिकाल अपर उपाय ते अपाय भए। (वि० १८४)
अपाय (२)-(सं० -१ विश्लेष, अलगाव २ नाश, ३ उपद्रव, अत्याचार विघ्न। उ० ३ अकनि याथ कपट करतब अमित अनय अपाय। (वि० २२०)
अपार-(सं०)-जिसका पार न हो, सीमारहित, बहुत। उ० सुख जन्मभूमि महिमा अपार। (वि० १२)
अपारा-दे० 'अपार'। उ० चिंता यह मोहि अपारा। (वि० १२५)
अपारू-दे० 'अपार'। उ० राम बियोग पयोधि अपारू। (मा० २।१५४।३)
अपारो-दे० 'अपार'। उ० मद, मत्सर, अभिमान, ज्ञान रिपु इनमें रहनि अपारो। (वि० ११०)
अपावन-(सं०)-अपवित्र, अशुद्ध। उ० तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरें। (मा० १।९३।छं०१)
अपावनि-(सं० अपावनी)-अपवित्र, अशुद्ध। 'अपावन' का स्त्रीलिंग। उ० सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ। (मा० ३।५क)
अपावनी-(सं०)-दे० 'अपावनि'। उ० कादर भयंकर रुधिर *सरिता चली परम अपावनी*। (मा० ६।८७ छं०१)
अपि-(सं०)-१ भी, ही, २ निश्चय, ठीक। उ० १ रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिय न ताहु। (मा० १।१७०)
अपी-दे० 'अपि'। उ० धनवंत कुलीन मलीन अपी। (मा० ७।१००।४)
अपीह-(सं० अपि + इह)-१ यह भी, २ यहाँ भी।
अपुनीत-(सं०)-अपावन, अपवित्र। उ० सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई। (मा० १।६९।४)
अपूर्व-(सं०)-१ अद्भुत, अलौकिक, २ श्रेष्ठ, उत्तम।
अपेक्षा-(सं०)-१ आकांक्षा, इच्छा, २ आवश्यकता, ३ आश्रय, भरोसा, ४ निस्बत, तुलना।
अपेल-(सं० अ + पीड़)-अचल, अटल, अमिट। उ० बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल। (मा० ७।१२२क)
अप्रतिहत-(सं०)-१ अपराजित, २ बिना रोक टोक की। उ० २ अप्रतिहत गति होइहि तोरी। (मा० ७।१०६।८)
अप्रमेय-(सं०)-अत्यंत विशाल, जो नापा न जा सके। उ० प्रमेोऽप्रमेय वैभव। (मा० ३।७। छं० ३)
*अप्रबीन-(सं० अप्रवीण)-मूर्ख, मूढ़। उ० सुनत समुझत* कहत हम सब भई अति अप्रबीन। (कृ० ५१)
अप्रिय-(सं०)-जो प्रिय न हो, कटु, बुरा। उ० सुनि राजा अति अप्रिय बानी। (मा० १।२०८।१)
अप्सरा-(सं०)-१ स्वर्ग की नर्तकी, २ वेश्या, नर्तकी।
*अफल-(सं०)-निष्फल व्यर्थ*। उ० परमारथ स्वारथ-साधन भए अफल सफल, नहिं सिद्धि सई है। (वि० १३६)
अब-(?)-१ इस समय, इस क्षण, २ भविष्य में। उ० १ करहु क्तहु अब ठाहर ठाढ़ू। (मा० २।१३३।१)
अबध-(सं० अयोध्या)-अवध, अयोध्या, यह देश जिसकी राजधानी अयोध्या थी।
अबध्य-(सं०)-न मारने योग्य।
अबर्त-(सं० आवर्त)-आवर्त, पानी का भँवर। उ० दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अबर्त बहति भयावनी। (मा० ६।८७ छं० १)
अबल-(सं०)-निर्बल, कमज़ोर। उ० अबला अबल सहज जड़ जाती। (मा० ७।११५।८)
अबलनि-(सं० अबला)-अबला का बहुवचन, अबलाओं स्त्रियाँ। उ० तौ अतुलित अहीर अबलनि को हठि न हिया हरिये हो। (कृ० ३६) अबलन्ह-अबलाओं, स्त्रियों। उ० अबलन्ह उर भय भयउ बिसेषा। (मा० १।९६।२) अबला-(सं०)-१ स्त्री, २ बलहीना। उ० १ अबला बालक बृद्ध जन कर मीजहिं पछितांहि। (मा० २।१२१)

अवलोकत–१ देखते ही, २ देखते हैं।
अवलोकन–(स० अवलोकन)–देखना।
अवलौं–(स० अव+लग्न)–अब तक, इतने दिन तक। उ० अबलौं नसानी अब न नसैहौं। (वि० १०५)
अवसहि–(स० अ+वश)–वश में न होनेवाले का। उ० निर्बान दायक क्रोध जाकर भगति अवसहि बसकरी। (मा० ३।२६। छ० १)
अवहिं–दे० 'अबहीं'। उ० अबहिं मातु मैं जाउँ लेवाई। (मा० ५।१६।२)
अवहीं–अभी, तुरत। उ० अबहीं समुझि परा कछु मोहीं। (मा० ६।२४।५)
अवहुँ–अब भी। उ० का पूँछहु तुम्ह अबहुँ न जाना। (मा० २।१६।१)
अवाधा–(स० अबाध)–१ बाधारहित, निर्बाध, २ अपार। उ० २ रघुपति महिमा अगुन अबाधा। (मा० १।३७।१)
अबाधी–बिना बाधा के, बे रोक-टोक। उ० बसइ जासु उर सदा अबाधी। (मा० ७।११६।३)
अबासू–(स० आवास)–आवास, घर। उ० बिनु रघुबीर बिलोकि अबासू। (मा० २।१७६।३)
अबिकारी–(स० अविकारिन्)–विकाररहित, शुद्ध। उ० अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी। (मा० १।२३।४)
अबिगत–(स० अविगत)–अविगत, जो जाना न जा सके। उ० अबिगत अलख अनादि अनूपा। (मा० २।६३।४)
अबिगति–न जाना जाने का भाव, अविगति। उ० तुलसी राम प्रसाद बिन, अबिगति जानि न जात। (स० ५१५)
अबिचल–(स० अविचल)–जो विचलित न हो, अचल, अटल। उ० जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी। (मा० ५।३५। छ० २)
अबिचारे–(स० अ+विचार)–बिना विचार किये हुए, अज्ञान से। उ० खग महँ सर्प बिपुल भयदायक, प्रगट होइ अबिचारे। (वि० १२२)
अबिछीन–(स० अविच्छिन्न)–एकतार, जो बीच से विच्छिन्न या टूटी न हो। उ० जो सुनि होइ रामपद प्रीति सदा अबिछीन। (मा० ७।११६ ख)
अबिद–(स०–अ+विद्)–अविद्वान, मूर्ख। उ० कारन अबिरल अल अपितु तुलसी अबिद भुलान। (स० ३२२)
अबिद्या–(स० अविद्या)–अज्ञान, एक प्रकार की माया जो बंधन में रखती है। उ० प्रथम अबिद्या निसा नसानी। (मा० ७।३१।२)
अबिधि–(स० अविधि)–विधि या नियम के विरुद्ध।
अबिनय–(स० अविनय)–धृष्टता, ढिठाई। उ० स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी। (मा० २।११६।४)
अबिनासिनि–(स० अविनाशिनि)–जिसका विनाश न हो अविनाशिनी। उ० अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि। (मा० १।६८।२)अबिनासिहि–अविनाशी को, ईश्वर को। उ० सदा एक रस अज अबिनासिहि। (मा० ७।३०।५)
अबिनासी–(स० अविनाशिन्)–अविनाशी, जिसका नाश न हो। उ० राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी। (मा० १।१२०।३)
अबिबेक–(स० अविवेक)–अज्ञान। उ० प्रभु अपने अबिबेक ते बूझउँ स्वामी तोहि। (मा० ७।६३ख) अबिबेकहि–अविवेक को, अज्ञान को। उ० बिधि बस हठि अबिबेकहि भजइ। (मा० १।२२२।२)
अबिबेका–दे० 'अबिबेक'। उ० कहत सुनत एक हर अबिबेका। (मा० १।११५।१)
अबिबेकी–(स० अविवेकिन्)–अज्ञानी, मूर्ख। उ० जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहि। (मा० २।१४२।१)
अबिरल–(स० अविरल)–१ घना, २ अखंड। उ० २ कारन अबिरल अल अपितु तुलसी अबिद भुलान। (स० ३२२)
अबिरलि–दे० 'अबिरल'।
अबिरुद्ध–(स० अविरुद्ध)–जिसका कोई विरोधी न हो। उ० नाम सुद्ध अबिरुद्ध अमर अनवद्य अदूषन। (क० ७।१२१)
अबिरोध–(स० अविरोध)–१ अनुकूल, मुवाफ़िक, २ अनुकूलता, मेल।
अबिरोधा–दे० 'अबिरोध'। उ० १ समय समाज धरम अबिरोधा। (मा० २।२६६।२)
अबिहित–(स० अविहित)–अनुचित, अयोग्य। उ० तहँ अस अति अबिहित तव बानी। (मा० १।११६।३)
अबीर–(अर०)–लाल रंग की बुकनी जिसे होली में इष्ट मित्रों पर डालते हैं। उ० उड़इ अबीर मनहुँ अरुनारी। (मा० १।१६५।३)
अबुझ–(स० अबुद्ध)–मूढ़। उ० कहेउ न सो समुझत अबुझ। (स० ३४१)
अबुध–(स०)–बुद्धिहीन, मूर्ख। उ० निपट निरंकुस अबुध असंकू। (मा० १।२७४।१)
अबूझ–दे० 'अबुझ'। उ० अयमय खाँड़ न ऊखमय अजहुँ न बूझ अबूझ। (मा० १।२७५)
अबेर–(स० अवेला)–देर, विलंब।
अबै–अभी, इसी समय। उ० जाको ऐसो दूत सो साहब अबै आवनो। (क० ५।६)
अबोध–(स०)–१ मूर्ख, अज्ञानी, २ अज्ञान, मूर्खता।
अबोल–(स० अ+ब्रू)–१ अवाक, मौन, चुप, २ बेबोल।
अब्ज–(स०) जल से उत्पन्न, १ कमल, २ शंख, ३ चंद्रमा, ४ धन्वंतरि। उ० १ पदाब्ज भक्ति देहि मे। (मा० ३।४। श्लो० ११)
अब्द–(स०)–१ वर्ष, साल, २ मेघ, बादल, ३ एक पर्वत, ४ कपूर, ५ आकाश।
अब्धि–(स०)–१ समुद्र, सागर, २ सात की संख्या। उ० १ यत्र तिष्ठति तत्रैव अजशर्व हरि सहित गच्छति क्षीराब्धिवासी। (वि० ५७)
अब्यक्त–(स० अव्यक्त)–जो प्रकट न हो, गुप्त। उ० अव्यक्त मूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने॥ (मा० ७।१३। छ० ५)
अब्याहत–(स० अव्याहत)–न रुकने योग्य, अबाध। उ० अब्याहत गति संभु प्रसादा। (मा० ७।११०।६)
अभगा–(स० अभग्न)–जो भंग न हो, अटूट अखंड। उ० धन्य जन्म द्विज भगति अभगा। (मा० ७।१२७।४)

अभंगू–दे० 'अभगा'। उ० मिन्हु न मलिन सुभाव अभंगू। (मा० १।७।२)

अभगत–(सं० अभक्त)– जो भक्त न हो, दुष्ट। उ० भगत अभगत हृदय अनुसारा। (मा० २।२१९।३)

अभच्छ–(सं० अभक्ष्य)–अखाद्य, न खाने योग्य। उ० असुभ बेष भूषन धरें भच्छ अभच्छ जे खाहिं। (दो० ५५०)

अभय–(सं०)–निर्भय, बेडर, बेखौफ। उ० सदा अभय, जय मुद मंगल मय जो सेवक रनरोर को। (वि०३१)–मु० अभय बाँह दीन्ही–भय से बचाने का वचन दिया। उ० लछिमन अभय बाँह तेहि दीन्ही। (मा०४।२०।१) अभयदाता–(सं०) अभय देनेवाला, भय को दूर भगानेवाला। उ० मांडवी चितचातक नवांबुदवरण, सरन तुलसीदास अभयदाता। (वि० ३९) अभयदान–(सं०)–भय से बचाने का वचन देना। उ० जेहि कर गहि सर चाप असुर हति अभयदान देवन दीन्हा। (वि० १३८)

अभाग–(सं०अभाग्य) दुर्दशा, दुर्भाग्य। उ० राम विमुख *विधि बामगति, सगुन अघाय अभाग।* (दो० ४२०) अभागहिं–अभागे को। उ० देहु अभागहिं भाग को, का राखै सरन सभीत। (वि० १६१)

अभागा–(सं०अभाग्य)–भाग्यहीन, बदकिस्मत। उ० एहि सर निकट न जाहिं अभागा। (मा० १।३८।२)

अभागिनि–(सं० अभागिनी)–बुरे भाग्यवाली। उ० परम अभागिनि आपुहि जानी। (मा० २।५७।३)

अभागी–(सं० अभागिन्)–बुरे भाग्यवाला, अभागा। उ० होइहि जब कर कीट अभागी। (मा० ५।५३।३)

अभागु–दे० 'अभाग'। उ० बूझिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभागु। (मा० २।२५५)

अभागे–१ अभाग्यवान लोग, २ रे अभागा! रे अभागे! उ० २ करिआ मुहँ करि जाहि अभागे। (मा० ६।४६।१)

अभाग्य–(सं०)–दुर्भाग्य, बुरा भाग्य। उ० मोर अभाग्य जिआवत ओही। (मा० ६।६१।३)

अभारू–(सं० आभार)–आभार, ज़िम्मेवारी। उ० देवँ दीन्ह सबु मोहि अभारू। (मा० २।२६६।२)

अभाव–(सं०) १ अविद्यमानता, असत्ता २ कमी, टोटा, ३ कुभाव, दुर्भाव।

अभास–(सं० आभास)–झलक। उ० तव मूरति विधु उर बसति, सोइ स्यामता अभास। (मा० ६।१२ क)

अभि–(सं०)–एक उपसर्ग, १ सब ओर से, २ सामने, ३ बुरा, ४ इच्छा, ५ समीप, ६ बारबार, ७ दूर, ८ ऊपर। उ० १ अभि अंतर मल कबहुँ न जाई। (मा० ७।४९।२)

अभिचार–(सं०) १ पुरश्चरण, मारने के लिए मंत्र का प्रयोग, २ छ प्रकार के तंत्र प्रयोग। उ० १ जयति पर-जंत्र मंत्राभिचार ग्रसन, कारमनि-कूट कृत्यादि-हंता। (वि० २६)

अभिजित–(सं०)–१ एक नक्षत्र जिसमें तीन तारे मिलकर सिंघाड़े के आकार के होते हैं। २ दिन में ग्यारह बजे से लेकर साढ़े बारह तक का समय। ३ विजयी। उ० १ सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता। (मा० १।१९१।१)

अभिज्ञ–(सं०)–चतुर, होशियार, विज्ञ।

अभिनंदनु–(सं० अभिनंदन)–१ सेवा तथा गुणों की प्रशंसा, २ आनंद, ३ संतोष, ४ उत्तेजना, प्रोत्साहन, ५ विनीत प्रार्थना। उ० ४ गुरु के वचन सचिव अभिनंदनु। (मा० २।१७६।४)

अभिप्राय–(सं०)–तात्पर्य, आशय, अर्थ।

अभिमत–(सं०)–१ मनोनीत, पसंद का, चाहा हुआ, २ मत, सम्मति, विचार। उ० १ तो अभिमत फल पावहिं करि स्रमु साधक। (पा० ६५)

अभिमान–(सं०) घमंड, गर्व। उ० मोहमूल बहु सूलप्रद त्यागहु तम अभिमान। (मा० ५।२३)

अभिमाना–दे० 'अभिमान'। उ० फिरि आवह समेत अभिमाना। (मा०१।१३६।२)

अभिमानी–(सं० अभिमानिन्) घमंड करनेवाला, दर्पी, अहंकारी। उ० बोला विहँसि महा अभिमानी। (मा०५।२४।१)

अभिमानु–दे० 'अभिमान'। उ० अति अभिमानु हृदयँ तब आवा। (मा० १।६०।४)

अभिमानू–दे० 'अभिमान'। उ० कहउँ सुभाव न कछु अभिमानू। (मा० १।२५३।२)

अभिरक्षय–(सं०)–रक्षा करो। उ० मामभिरक्षय रघुकुल नायक। (मा० ६।११२।१)

अभिराम–(सं०)–१ आनंददायक, सुंदर, २ सुख, आनंद, ३ मुक्ति। उ० २ सेए लोक समर्पेहु, विमुख भए अभिराम। (दो० २४८) अभिरामकारी–(सं० अभिरामकारिन्) आनंददायी, प्रसन्न करनेवाले। उ० संत संतापहर विश्वविश्राम कर राम कामारि अभिरामकारी। (वि० ५५) अभिरामहिं–आनंददायक को। उ० हरिमुख निरखि परुष बानी सुनि अधिक अधिक अभिरामहिं। (कृ० ५)

अभिरामा–आनंद देनेवाला, आनंददायी। उ० लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी। (मा० १।१९२। छं० १)

अभिरामिनी–(सं०)–आनंद देनेवाली, प्रसन्न करनेवाली। उ० हरित गंभीर बानीर दुहुँ तीरवर, मध्य धारा विशद विश्व अभिरामिनी। (वि० १८)

अभिलाष–(सं०) इच्छा, मनोरथ, कामना। उ० उर अभिलाष निरंतर होई। (मा० १।१४४।२)

अभिलाषा–(सं०)–इच्छा, कामना, आकांक्षा। उ० सब के हृदयँ मदन अभिलाषा। (मा० १।८५।१)

अभिलाषिहि–चाहेगा, इच्छा करेगा। उ० अस सुकृती नर चाहु जो मन अभिलाषिहि। (जा० ७६) अभिलाषे–लालायित हुए, चाहते हुए। उ० नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषें। (मा० २।२।२)

अभिलाषी–(सं० अभिलाषिणी) इच्छा चाहनेवाली, इच्छुक। उ० रहीं रानि दरसन अभिलाषीं। (मा० २।१७०।१)

अभिलाषु–दे० 'अभिलाष'। उ० अब अभिलाषु एकु मन मोरें। (मा० २।३।४)

अभिषेक–(सं०) १ राजतिलक के समय का स्नान, २ जल से सींचना, ३ यज्ञ की समाप्ति का स्नान, ४ शिवलिंग के ऊपर छेदवाले घड़े से पानी टपकाना। उ० १ बेद पुरान विचारि लगन सुभ महाराज अभिषेक कियो। (गी० ७।३८) ४ सिव अभिषेक करहिं विधि नाना। (मा० २।१२७।४) अभिषेकतः–(सं०)–अभिषेक से, अभिषेक के

निश्चय से। उ० प्रसन्नता या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखत। (मा० २।१। श्लो० २)

अभिषेका–दे० 'अभिषेक'। उ० १ जो जग जोगु भूप अभिषेका। (मा०२।६।२)

अभिषेकु–दे० 'अभिषेक'। उ० १ रामराज अभिषेकु सुनि हियँ हरषे नरनारि। (मा० २।८)

अभिषेकू–दे० 'अभिषेक'। उ० १ बधु बिहाय बड़ेहि अभिषेकू। (मा०२।१०।४)

अभीष्ट–(सं०)–अभिलषित, चाहा हुआ, मनोनीत। उ० ब्रह्मभवन सनकादि गे अति अभीष्ट बर पाइ। (मा०७।३५)

अभूत–(सं०)–१ जो न हुआ हो, २ अपूर्व, विलक्षण, ३ वर्तमान। अभूतरिपु–(सं०)–जिसका कोई संसार में वैरी न हो। उ० सम अभूतरिपु बिमद बिरागी। (मा०७।३८।१)

अभेद–(सं०)–१ भेदरहित, ऐक्य, एकत्व, २ समानता। उ० १ ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद। (मा० १।५०) अभेदबादी–(सं० अभेदवादिन्)–अद्वैतवादी, जीव और ब्रह्म को एक मानने वाले। उ० तेइ अभेदबादी ग्यानी नर। (मा० ७।१००।१)

अभेरा–(?) १ धक्का, टक्कर, २ मट्टी के सूखने पर फटी हुई दरार। उ० १ मद बिलद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा। (वि० १८६)

अभै–(सं० अभय)–निर्भय, निडर।

अभोगी–(सं० अभोगिन्)– भोग न करनेवाला, विरक्त। उ० अज अनवद्य अकाम अभोगी। (मा० १।६०।२)

अभ्यंतर–(सं०)–१ मध्य, बीच २ बीच की, हृदय की। उ० २ बाहिर कोटि उपाय करिय, अभ्यंतर ग्रंथि न छूटै। (वि० ११६)

अभ्यास–(सं०)–१ बार बार करना, अनुशीलन, २ आदत, बान। उ० जनम जनम अभ्यास निरत चित अधिक अधिक लपटाई। (वि० ८२)

अभ्र–(सं०)–१ मेघ, २ आकाश, ३ अभ्रक, ४ सोना, स्वर्ण।

अमंगल–(सं०)–अशुभ, अकल्याण, बुराई। उ० मिटिहहिं पाप प्रपंच सब, अखिल अमंगल भार। (मा० २।२६३)

अमर–(सं०)–१ जो मरे नहीं, चिरजीवी, २ देवता, ३ उनचास पवनों में से एक। उ० १ मंत्र सो जाइ जपहि जो जपत भे, अजर अमर हर अँचइ हलाहलु। (वि० २४) २ कहेहि बियाहन चलहु बुलाइ अमर सब। (पा० १००) अमरउ–देवता भी। उ० सकउँ तोर अरि अमरउ मारी। (मा०२।२६।२) अमरनि–१ देवताओं ने, २ देवताओं को। उ० १ बालमीकि ब्याध हे अगाध अपराध निधि मरा मरा जपे पूजे मुनि अमरनि। (वि०२४७) २ रूप-सुधा-सुख देत नयन अमरनि बरु। (जा० ४८) अमरपति–(सं०) देवताओं के राजा, इन्द्र। उ० ते भाजन सुख सुजस के, बसहिं अमरपति ऐन। (दो० ४४१) अमरपुर–(सं०)–अमरों की पुरी, स्वर्ग, इन्द्रलोक। उ० बेन्योधित करम धरम बिनु, अगम अति जद्यपि, जिय लालसा अमरपुर जानकी। (वि० २०६)

अमरताँ–दे० 'अमरता'। उ० सुधा सराहिअ अमरताँ गरल सराहिअ मीचु। (म०१।४)

अमरता–(सं०)–अमरत्व, अमर करने का धर्म, मरणहीनता। उ० मीच तें नीच लगी अमरता, छल को न बल को निरखि थल परुष प्रेम पायो। (गी०५।१५)

अमरष–(सं० अमर्ष)–१ अमर्ष, क्रोध, २ असहिष्णुता। अक्षमा। उ० लोभामरष हरष भय त्यागी। (मा० ७।३८।१)

अमरषत–क्रोध करते हैं। उ० बारहिं बार अमरषत करषत करकैं परीं सरीर। (गी० ५।२२) अमरषा–क्रोधित हुआ या हुई। उ० को करै अटक कपि-कटक अमरषा। (क० ६।७)

अमराई–(सं० आम्रराजि)–आम की बगीची, आम का बाग।

अमरावति–(सं० अमरावती)–देवपुरी, इन्द्रपुरी। उ० जाइ कीन्ह अमरावति बासा।(मा०१।१५२।४) अमरावतिपालू–(सं०अमरावती+पाल)–अमरावती के पालन करनेवाले, इन्द्र। उ० जेहि सिहात अमरावतिपालू। (मा० २।१३६।४)

अमरेश–(सं०)–अमरपति, इन्द्र।

अमर्ष–(सं०)–१ क्रोध, २ एक प्रकार का द्वेष, ३ अक्षमा।

अमल–(सं०)–१ निर्मल, स्वच्छ, २ पाप शून्य, निर्दोष, ३ अभ्रक। उ० १ अतुल बल बिपुल बिस्तार, बिग्रह गौर, अमल अति धवल धरणी धराभ। (वि० ११) २ अमल अविचल अकल सकल संतप्त कलि बिकलता भंजनानंदरासी। (वि०५५)

अमाइ–(सं० आ+मान)–समाता है। उ० सुनि सुनि मन हनुमान के, प्रेम उमँग न अमाइ। (प्र० ४।४।१) अमाइ–१ समाता था, २ अँटता है। उ० २ हृदयँ न अति आनदु अमाइ। (मा० १।३०७।२) अमाए–समाए, अँटे। उ० बाल-केलि अवलोकि मातु सब मुदित मगन आनँद न अमाए। (गी०१।२६) अमात–समाता। उ० जोरि पानि बोले बचन हृदयँ न प्रेमु अमात। (मा० १।२८४) अमाय–अँटे, समाय। अमाया–समाया, अँटा। अमायो–समाया। उ० लै लै गोद कमल-कर निरखत, उर प्रमोद न अमायो। (गी०१।१४)

अमान–(१) १ मानरहित, गर्वरहित, बिना अहंकार का, २ अपरिमित, बेहद, ३ अप्रतिष्ठित, तुच्छ। उ० १ गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान। (मा० ३।३५) २ अगुन अलेप अमान एकरस। (म० २।२१६।३) ३ अगुन अमान अजाति मातु पितु हीनहिं। (पा० ५५)

अमान (२)–(अर०)–१ रक्षा, बचाव, २ शरण।

अमाना–दे० अमान (१)। उ० २ माया गुन ग्यानातीत अमाना, बेद पुरान भनंता। (मा० १।१९२।छं०२)

अमानी–दे० 'अमान' (१)। उ० १ अनारंभ अनिकेत अमानी। (मा० ७।४६।३)

अमानुष–(सं०)–जो मनुष्य से न हो सके। उ० सकल अमानुष करम तुम्हारे। (मा० १।३५७।८)

अमाय (१)–(सं० अमाया)–१ मायारहित, निर्लिप्त, २ निष्कपट, नि स्वार्थ। उ० १ पेखि प्रीति प्रतीति जन पर अगुन अनघ अमाय। (वि० २२०)

अमाय (२)-(सं०)–अपरिमित, बेहद, बहुत।

अमाया–(सं०)–१ मायारहित, निर्लिप्त, २ निष्कपट,

निस्वार्थ। उ० २ प्रेमु नेमु व्रत धरमु अमाया। (मा० ७।२१६।३)
अमिअ-(स० अमृत)-दे० 'अमृत'। उ० १ कोउ प्रगट कोउ हिय कहिहि, 'मिलवत अमिअ माहुर घोरि कै'। पा० ६३) अमिअमूरि-(स० अमित + मूल)-अमृत की मूल, सजीवनी जड़ी। उ० अमियमूरिमय चूरन चारू। (मा०१।१।१)
अमिट-(?) जो न मिटे, स्थायी, अटल।
अमित-(सं०)-जिसका परिमाण न हो, असीम। उ० अनघ अद्वैत अनवद्य अव्यक्त अज अमित अविकार आनद सिंधो। (वि० ५६) अमितबोध-(स० अमित + बोध) अनन्तज्ञान वाले। उ० अमितबोध अनीह मितभोगी। (मा० ३।४५।४)
अमिति-(स० अमित)-असीम। उ० महिमा अमिति बेद नहिं जाना। (मा० ७।४८।३)
अमिय-(स० अमृत)-१ अमृत, २ पवित्र, ३ रोगी, ४ जीवन। अमियहु-अमृत भी। उ० अनुपम अमियहु तें अधिक अवलोकत अनुकूल। (गी० ३।१७)
अमिसदन-(स० अमृत + सदन)-अमर पद। उ० सतन को लै अमिसदन, ससुरहिं सुगति प्रवीन। (स० ४३३)
अमी-(स० अमृत)-दे० 'अमृत'। उ० २ पूजि पीन्ह मधु पर्कै, अमी अँचवायउ। (पा० १३५)
अमुक-(स०)-यह, फलां, ऐसा-ऐसा।
अमृत-(स०)-१ जिसके पीने से पीनेवाला अमर हो जाय, सुधा। पुराणानुसार समुद्र-मथन से निकले १४ रत्नों में यह माना जाता है। २ जल, ३ घी, ४ यज्ञ का बँचा अश, ५ धन, ६ मुक्ति, ७ दूध, ८ औषध, ९ विष, १० स्वर्ग ११ मीठी वस्तु। उ० १ परिहरि अमृत लेहिं बिषु मागी। (मा० २।४२।२)
अमृषा-(स०)-सत्य, जो झूठ न हो। उ० यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकल रज्जौ यथाहेर्भ्रमः। (मा० १।१। श्लो० ६)
अमेठत-(स० उद्वेष्टन)-उमेठता है, ऐंठता है।
अमोघ-(स०)-१ जो व्यर्थ न जाय, अचूक, २ अन्न। उ० १ जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। (मा० ५।१।४)
अमोल-(स० अमूल्य)-उत्तम, श्रेष्ठ। उ० सुचि अमोल सुंदर सब भाँती। (मा० ३।१।२)
अमोलिक-अमूल्य, कीमती। उ० तुलसी सो जानै सोई जासु अमोलिक चोप। (स० ५३३)
अमोले-अमूल्य। उ० देखि प्रीति सुनि बचन अमोले। (मा० १।१५०।१)
अम्ल-(स०)-१ खट्टा, २ खटाई।
अयं-(स०)-यह। उ० दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अयं। (मा० १।८५। छं० १)
अय-(स० अयस्)-लोहा। उ० अय इव जरत धरत पग धरनी। (मा० १।२६८।३) अयमय-लोहे की बनी हुई। उ० अयमय खाँड न ऊखमय अजहुँ न बूझ अबूझ। (मा० १।२७५)
अयन-(स०)-१ घर, २ गति, ३ सूर्य या चद्र की उत्तर या दक्षिण की गति या प्रवृत्ति जिसे उत्तरायण तथा दक्षिणायन कहते हैं। ४ मार्ग, ५ एक यज्ञ, ६ गाय-भैंस के थन का ऊपरी भाग, ७ अश, ८ काल। उ० १ कुंद इंदु सम देह, उमारमन, करुना अयन। (मा० १।१। सो० ४) ३ दिनमनि गवन कियो उत्तर अयन। (गी० १।९६) ६ अतरअयन अयन भल, थन फल, बच्छ बेद बिस्वासी। (वि० २२)
अयना-दे० 'अयन'। उ० १ सुनि सीतादुख प्रभु सुख अयना। (मा० ५।३२।१)
अयश-(स०)-कलक निन्दा, अपयश।
अयशी-बदनाम, कलकी।
अयस-(स०)-लोहा।
अयाची-(स० अयाचिन्)-अयाचक, न माँगनेवाला, सपन्न।
अयान-(स० अज्ञान)-अज्ञानी, मूर्ख, बेसमझ। उ० कहै सो अधम अयान असाधू। (मा० २।२०७।४) अयाने-मूर्ख, अज्ञानी। उ० अति ही अयाने उपखानो नहिं बूझैं लोग। (क० ७।१०७)
अयानप-१ अज्ञानता, मूर्खता, २ भोलापन। उ० १ यहाँ को सयानप अयानप सहस सम, सूधौ सत भाय कहे मिटति मलीनता। (वि० २६२)
अयाना-दे० 'अयान'। उ० तौ कि बराबरि करत अयाना। (मा० १।२७७।१)
अयानि-दे० 'अयानी'। उ० पापिनि चेरि अयानि रानि, नृप हित अनहित न बिचारो। (गी० २।६६)
अयानी-(स० अज्ञानी)-मूर्ख। उ० सो भावी बस रानि अयानी। (मा० २।२०७।३)
अयान्यो-मूर्ख, अज्ञानी।
अयुत-(स०)-दस हजार। उ० अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा। (मा० ७।१०७।३)
अयुध-(स० आयुध)-हथियार, शस्त्र।
अयोग्य-(स०)-जो योग्य न हो, अनुपयुक्त, अकुशल।
अयोध्या-(स०)-अवधपुरी, सूर्यवंशी राजाओं की राजधानी। पुराणानुसार यह हिन्दुओं की सप्तपुरियों में से है।
अरँडु-(सं० एरड)-रेंड का पेड़। उ० सवहिं अरँडु कलप तरु त्यागी। (मा० २।४२।२)
अरंभ-(स० आरभ)-शुरू, प्रारभ। उ० कथा अरभ करै सोइ चाहा। (मा० ७।६३।३)
अरंभा-दे० 'अरंभ'। उ० बिमल कथा कर कीन्ह अरभा। (मा० १।३५।३)
अरभेउ-आरभ हुए। उ० अनरथु अवध अरभेउ जब तें। (मा० २।१५७।३)
अरगजों-अरगजा से। उ० गली सकल अरगजाँ सिंचाई। (मा० १।३४४।३)
अरगजा-(स० अगद + जा)-केशर चदन कपूर आदि को मिलाकर बनाया गया एक सुगधित द्रव्य। उ० कुकुम अगर अरगजा छिरकहिं, भरहिं गुलाल अबीर। (गी० ७।२)
अरगाई-(स० अलग्न)-१ अलग करके, २ चुप होकर। उ० १ तहँ राखइ जननी अरगाई। (मा० ३।४३।३) २ सम कहि राम रहे अरगाई। (मा० २।२५६।४) अरगाना-१ अलग हुआ २ चुप हुआ। अरगानी-१ चुप हुई, चुप, २ अलग। उ० १ भुकी रानि अब रहु अरगानी। (मा० २।१५।४)
अरघु-(स० अर्घ)-१ पूजा की सामग्री, २ सोलह उपचारों

में से एक, ३ वह जल जिसे फूल अक्षत दूब आदि के साथ किसी देवता के सामने गिराते हैं। उ० २ करि आरती अरघु तिन्ह दीन्हा। (मा० १।३१६।२) अरघनि-अर्घों से, जल से, पूजा करने से। उ० अरपत करपत आयु-जल, हरपत अरघनि भानु। (दो० ४५५)

अरचना-(सं० अर्चन)-१ पूजा, २ सेवा।

अरज-(अर० अर्ज़)-विनय, विनती, निवेदन। उ० गरज आपनी सबन को, अरज करत उर आनि। (दो० ३००)

अरणि-(सं०)-एक प्रकार का वृक्ष जिसकी लकड़ी बहुत जलती है।

अरण्य-(सं०)-जंगल, बन। उ० सीताराम गुणग्राम पुण्यारण्यविहारिणौ। (मा० १।१।श्लो० ४)

अरत-(सं० अल)-अड़ जाता है, मचल जाता है। उ० तदपि कबहुँक सखी ऐसेहि अरत जब परत दृष्टि दुष्ट ती के। (गी० १।१२) अरनि-अड़ना, हठ करना। उ० मेरे तो माय बाप दोउ आखर हौं सिसु अरनि अरो। (वि० २२६) अरे-अड़ गए, अड़े। उ० विरुझे विरुदैत जे खेत अरे, न टरे हठि बैर बढ़ावन के। (क० ६।३४) अरैं-अड़ते हैं, हठ करते हैं। उ० कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं। (क० १।४) अरो-अड़ता हूँ, हठ करता हूँ। उ० मेरे तो माय बाप दोउ आखर हौं सिसु अरनि अरो। (वि० २२६) अर्‌यो-अड़ गया, ठहर गया। उ० हौं मचला लै छाड़िहौं जेहि लागि अर्‌यो हौं। (वि० २६७)

अरति-(सं०)-१ विराग, २ जैन शास्त्रानुसार एक प्रकार का कर्म जिसके उदय से चित्त किसी बात में नहीं लगता। उ० १ रचि प्रपंच माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाटु। (मा० २।२९५)

अरथ-(सं० अर्थ)-१ अभिप्राय, भाव, आशय, २ काम ३ हेतु, लिए, निमित्त ४ धन, संपत्ति। अर्थ धर्म काम मोक्ष, चार फलों में से एक। उ० १ अरथ अनूप सुभाव सुभासा। (मा० १।३७।३) ४ अरथ धरम कामादि सुख सेवइ समयँ नरेसु। (मा० १।१५४)

अरधंग-(सं० अर्द्धांग)-अर्द्धांग, आधा शरीर। उ० सदा संभु अरधंग निवासिनि। (मा० १।९८।२)

अरध-(सं० अर्द्ध)-आधा। उ० अरध निमेष कलपसम बीता। (मा० १।२७०।४)

अरधजल-(सं० अर्द्धजल)-श्मशान में शव को नहलाकर आधा बाहर और आधा जल में डाल देने की क्रिया। उ० सुरसरिहु को बारि, मरत न माँगेउ अरधजल। (दो० ३०५)

अरनव-(सं० अर्णव)-समुद्र, सागर।

अरनी-(सं० अरणी)-वह लकड़ी जिसे रगड़कर आग पैदा की जाती है। उ० पुनि बिबेक पावक कहँ अरनी। (मा० १।३१।२)

अरन्य-(सं० अरण्य)-वन, जंगल।

अरप-अर्पण, देना।

अरपि-(सं० अर्पण)-अर्पणकर, देकर। उ० जो संपति दस सीस अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्ही। (वि० १६२)

अरबिंद-(सं० अरविंद)-नील कमल को। उ० न यावद् उमानाथ पादारविंद। (मा० ७।१०८। श्लो० ७) अरबिंद-(सं० अरविंद)-नील कमल, कमल। उ० राम पदारबिंद रति करति सुभावहि खोइ। (मा० ७।२४)

अरबिंदु-दे० 'अरबिंद'। उ० राम पदारबिंदु अनुरागी। (मा० ७।१।२)

अरभक-(सं० अर्भक)-१ बालक, २ छोटा, ३ मूर्ख।

अरह-(?)-त्यौरी फेरना, क्रोध करना।

अराती-(सं० आराति)-शत्रु, मारनेवाला। उ० तदपि न कहेउ त्रिपुर अराती। (मा० १।५७।४)

अराधन-(सं० आराधना)-उपासना, पूजा, ध्यान।

अरि-(सं०)-१ शत्रु, बैरी, २ चक्र, ३ काम-क्रोध आदि विकार, ४ छः की संख्या। उ० १ बसन पूरि, अरि दरप दूरि करि भूरि कृपा दनुजारी। (वि० ९३) अरिन्ह-बैरियों, दुश्मनों। उ० भगतनि को हित कोटि मातु पितु, अरिन्ह को कोटि कृसानु है। (गी० ५।३५) अरिमर्दन-(सं०)-शत्रुनाशक। उ० दुर्गा कोटि अमित अरिमर्दन। (मा० ७।९१।४) अरिहि-१ शत्रु को, २ शत्रु के भी। उ० २ जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला। (मा० २।३२।१०) अरिहुक-शत्रु का भी। उ० अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा। (मा० २।१८३।३)

अरिष्ट-(सं०)-१ दुःख, पीड़ा, २ विपत्ति, ३ दुर्भाग्य, ४ अशुभ, ५ नीम, ६ लंका के पास का एक पर्वत, ७ कौवा, ८ गिद्ध, ९ एक ऋषि। उ० ३ सूचत सगुन विषादु बड़ असुभ अरिष्ट अचेत। (प्र० ३।३।४)

अरी (१)-(सं० अरि)-बैरी, शत्रु मारनेवाले। उ० बसन पूरि, अरि-दरप दूरि करि भूरि कृपा दनुजारी। (वि० ९३)

अरी (२)-स्त्रियों के लिए संबोधन।

अरुंधती-(सं०)-१ वशिष्ठ मुनि की स्त्री, २ एक दक्ष कन्या जो धर्म से ब्याही गई थी, ३ एकतारा। उ० १ अरुंधती मिलि मैनहि बात चलाइहि। (पा० ८८)

अरु(सं० अपर)-और, फिर। उ० जानि कहाउब अरु कृपनाई। (मा० २।३५।३)

अरुचि-(सं०)-१ रुचि का अभाव, अनिच्छा, २ एक रोग, ३ घृणा, नफ़रत।

अरुझाइ-(सं० अवरुंधन)-उलझ गई, उलझ जाती है। उ० छूट न अधिक अधिक अरुझाई। (मा० ७।११७।३) अरुझान्यो-उलझ गया, फँस गया। उ० जदपि बिषय सँग सहे दुसह दुःख, बिषम जाल अरुझान्यो। (वि० ८८) अरुझि-उलझ, फँस। उ० सखि! अरुझि परी बहि लेवे। (गी० २।५१) अरुझे-उलझे, फँसे, लिपटे, लिपट गए।

अरुण-(सं०)-१ लाल, रक्तवर्ण, २ सूर्य, ३ सिंदूर।

अरुन-(सं० अरुण)-१ सूर्य, २ लाल, ३ सूर्य का सारथी, ४ सिंदूर, ५ कश्यप के पुत्र। उ० १ मनहुँ उभय अंभोज अरुन सों बिधु भय बिनय करत अति आरत। (गी० १।२०) २ अरुन-नयन भ्रूभ्रमर, पान आजानु-भुजदंड-कोदंडवर-चंड-बान। (वि० ४६)

अरुनचूड़-(सं० अरुणचूड़)-मुर्गा, एक पक्षी जो प्रात बहुत सवेरे बोलता है। उ० अरुनचूड़ बर बोलन लागे। (मा० १।३५८।३)

अरुनता-(स० अरुणता)-अरुणाई, लालिमा। उ० मसी मानहुँ चरन कमलनि अरुनता तजि तरनि। (गी० १।२४)
अरुनमय-(स० अरुणमय)-लालिमामयी, लालिमापूर्ण। उ० मानहु तिमिर अरुनमय रासी। (मा० २।२३७।३)
अरुनसिखा-(स० अरुणशिखा)-मुर्गा, एक बहुत सवेरे जग जानेवाला पक्षी। उ० उठे लखनु निसि बिगत सुनि अरुनसिखा धुनि कान। (मा० १।२२६)
अरुनाई-लालिमा, रक्तता। उ० अरुन चरन, अगुली मनोहर, नख दुतिवंत कछुक अरुनाइ। (गी० १।१०६)
अरुनारी-अरुणाई, ललाई। उ० उदइ अथीर मनहुँ अरु नारी। (मा० १।१६१।३)
अरुनारे-अरुण, लाल। उ० दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। (मा० १।१६६।४)
अरुनोदयँ-(स० अरुणोदय)-अरुणोदय के समय, उषाकाल में, तड़के। उ० अरुनोदयँ सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन। (मा० १।२३८)
अरुन्हा-(स० आरूढ)-चढ़ा, आरूढ, तैयार। उ० सो कि होइ अब समरारूढ़ा। (मा० ६।२३।२)
अरूप-(स०) बिना रूप का, निराकार। उ० एक अनीह अरूप अनामा। (मा० १।१३।२)
अरूपा-(स० अरूप)-१ रूपरहित, निराकार, २ कुरूप। उ० १ अकल अनीह अनाम अरूपा। (मा० ७।१११।२)
अरोष-(स०)-क्रोधहीन, शांत। उ० अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी। (मा० ७।४६।३)
अर्क(१)-(स०)-१ आक, मदार, २ सूर्य, ३ इन्द्र, ४ ताँबा ५ विष्णु, ६ ज्येष्ठ भाई, ७ आदित्यवार, ८ बारह की संख्या। उ० १ अर्क जवास पात बिनु भयऊ। (मा० ४।१५।२) २ कोटि मदनार्क अगणित प्रकाशम्। (वि० ६०)
अर्क (२)-(अ० अर्क़)-निचोड़ा हुआ रस।
अर्घ-(स०)-१ देवता या बड़े को अर्पण करने का पदार्थ, २ जलदान, ३ हाथ धोने के लिए जल।
अर्घ्य-(स०)-१ पूजनीय, २ बहुमूल्य, ३ अर्घ देने के योग्य।
अर्चा-(स०)—१ पूजा, उपासना, २ प्रतिमा।
अर्चि (१)-पूजन करके। उ० अर्चि भवाग्नि सर्वाधिकारी। (वि० १०)
अर्चि (२)-(स०)-१ अग्नि की शिखा, २ तेज, दीप्ति, ३ किरण।
अर्जित-(स०) पूजित, सम्मानित।
अर्च्य-(स०) पूज्य, पूजनीय।
अर्जुन-(स०)-पांडु पुत्र जो प्रसिद्ध धनुर्धर थे। इनकी उत्पत्ति इन्द्र के अंश से मानी जाती है। अभिमन्यु इन्हीं के पुत्र थे। २ एक पेड़, ३ उज्ज्वल, ४ हैहयवंशी एक राजा का नाम।
अर्णव (स०)-१ समुद्र, २ सूर्य, ३ इन्द्र, ४ अंतरिक्ष। अर्णवे-समुद्र में। उ० पतंति नो भवार्णवे। (मा० ३।४।श्लो० ७)
अर्थ-(स०) १ धन, २ अभिप्राय, मतलब, ३ हेतु, ४ इंद्रियों के विषय, ५ अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चार फलों में से एक। उ० अर्थ अविद्यमान जानिय संसृति नहिं जाइ गुसाइं। (वि० १२०) २ वर्णानामर्थसंघानां रसानां छंदसामपि (मा० १।१। श्लो० १)
अर्द्ध-(स०) आधा। उ० तुलसी अजहुँ सुमिरि रघुनाथहिं तरो गयद जाके अर्द्धनायँ। (वि० ८३)
अर्द्धांग-(स०) आधा अंग। उ० भस्म सर्वांग, अर्द्धांग शैलात्मजा। (वि० १०)
अर्द्धाली-अर्धाली, २ छंदों से मिलकर एक चौपाई होती है। आधी चौपाई को अर्द्धाली कहते हैं। चौपाई-रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा। कारन कवन नाथ नहिं आयउ। जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ। (मा० ७।१।२) अर्द्धाली-रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा।
अर्ध-(स० अर्द्ध) आधी, अर्द्ध। उ० अधराति गइ कपि नहिं आयउ। (मा० ६।६१।१)
अर्नव-(स० अर्णव) समुद्र।
अर्पन-(स० अर्पण) उपहार, भेंट।
अर्पा-अर्पण कर दिया, दे दिया। उ० विश्व प्रसिद्धि बनु एहि बिधि अर्पा। (मा० ६।६७।३)
अर्पि-अर्पण कर, देकर। उ० भगति-बैराग बिज्ञान-दीपावली, अर्पि नीराजन जगनिवास। (वि० ४७)
अर्पित-(स०) दिया हुआ, अर्पण किया हुआ। उ० जासु देह अर्पित नृप ग्यानी। (मा० १।१२६।१)
अर्बुद—(स०) १ दश कोटि, दस करोड़, २ एक पर्वत, ३ बादल, ४ एक सर्प विशेष। अर्बुदै-करोड़ों, असंख्यों। दे० 'अर्बुद'। उ० सैन के कपिन को को गनै अर्बुदै, महा बलबीर हनुमान जानी। (क० ६।२०)
अर्भक-(स०)-१ छोटा शिशु, २ अल्प, छोटा। उ० गर्भन के अर्भक दलन परसु मोर अतिघोर। (मा० १।२७२)
अर्वाक्-(स०)-१ पूर्व, आदि, २ निकट, समीप, ३ पीछे। उ० १ वेदगमार्भकाद्भगुण-गर्व-अर्वागपर-गर्व निर्वाप कर्त्ता। (वि० ५४)
अल-(स०)-दे० 'अलम्'।
अलंकार-(स०) १ अर्थ या ध्वनि की वह युक्ति जिससे काव्य की शोभा हो। २ आभूषण। उ० १ निसिप्दा अलकार मईं सचेतादि सुरीति। (स० ३०२)
अलकृत-(स०)-१ विभूषित, सजाया हुआ २ काव्या लकारयुक्त। उ० २ कोस अलकृत मधि गति, मैत्री मरन बिचार। (स० ३०३)
अलंकृति-(स०)-१ अलकार, २ अलकारयुक्त। उ० १ आखर अरथ अलकृति नाना। (मा० १।९।२)
अलपट-(स०)-अव्यभिचारी, जो विषयों में लिप्त न हो। उ० विषय अलपट सील गुनाकर। (मा०,७।३८।१)
अलं-(स० अलम्) समर्थ, शक्तिसपन्न। उ० कारन अविरल अल अपितु तुलसी अविद भुलान। (स० ३२२)
अलक-(स०)-मस्तक के इधर-उधर लटकते हुए घुँघराले बाल। उ० मुकुट, कुंडल तिलक, अलक अलिब्रात इव। (वि० ६१) अलकैं-केशपाश, बालों का समूह। उ० अलकैं कुटिल, ललित लटकन भ्रू। (गी० १।२०)
अलख-(स० अलक्ष्य)-जो दिखाई न पड़े, अप्रत्यक्ष, अगो

।चर। उ० की अज अगुन अलख गति कोई। (मा० १।१०८।४)
अलखित-(स० अलक्षित)-जो देखा न गया हो, बेपता। उ० मयि ।अलखित गति वेपु विरागी। (मा० २।११०।४)
अलखु-दे० 'अलख'। उ० व्यापक ब्रह्म अलखु अविनासी। (मा० १।३४१।३)
अलग-(स० अलग्न)-भिन्न, दूर, पृथक्, न्यारा। उ० सो स्वासा तजि रामपद तुलसी अलग न खोइ। (स० ४६)
अलच्छि-(स० अ+लक्ष्मी)-दरिद्रता, गरीबी। उ० लच्छि अलच्छि रक अवनीसा। (मा० ३।६।४)
अलप-(स० अल्प)-थोड़ा, लघु। उ० अलप तड़ित जुगरेख इंदु महँ रहि तजि चचलताई। (वि० ६२)
अलभ्य-(स०)-न मिलने योग्य, अप्राप्य, दुर्लभ। उ० मुनिहुँ मनोरथ को अगम अलभ्य लाभ। (गी० २।३२)
अलम्-(स०)-यथेष्ट, पर्याप्त।
अलल-(?)-१ पक्षी विशेष, २ अनुभवहीन व्यक्ति, ३ घोड़े का जवान बच्चा।
अलसात-(स० आलस्य)-आलस्य करते हैं। उ० जानत रघुबर भजन तें तुलसी सठ अलसात। (स० १२१) अल सातो-आलस्य करते। उ० जपत जीह रघुनाथ को नाम नहिं अलसातो। (वि० १५१)
अलसी-आलसी। उ० राम सुभाव सुने तुलसी हुलसे अलसी, हमसे गलगाजे। (क० ७।१)
अलान-(स० आलान)-हाथी बाँधने का खूँटा या सिकड़, जजीर। उ० मय गयंदु रघुवीर मनु राजु अलान समान। (मा० २।५१)
अलाप-(स० आलाप)-१ आलाप, सगीत के सात स्वरों का साधन, २ बातचीत।
अलायक-(स० अ+अर० लायक)-अयोग्य, निकम्मा। उ० सुर स्वारथी अनीस अलायक, निठुर दया चित नाहीं। (वि० १४५)
अलिगिनी-भ्रमरी, भँवरी, भ्रमर की स्त्री। उ० मद-मद गुंजत हैं अलि अलिगिनी। (गी० २।४३)
अलि-(स०) १ भौंरा, भ्रमर, २ कोयल, ३ सखी, आली, ४ मदिरा, ५ श्रेणी, समूह। उ० १ गुंजत अलि लै चलि मकरदा। (मा० ७।२३।२) ३ कुँवर सो कुसल छेम अलि ! तेहि पल कुलगुरु कहँ पहुँचाई। (गी० २।८६) ५ भूत मद बेताल खग मृगालि-जालिका। (वि० १६) अलिन-भौंरों का समूह। अलिनि-(स० अलिनी)-भ्रमरी, भ्रमर की स्त्री। उ० गिरा अलिनि मुख पकज रोकी। (मा० १।२५१।१)
अली-(स० आली)-सखियाँ। उ० करहिं सुमगल गान उमँगि आनँद अलीं। (जा० १५४) अली (१)-(स० आली)-१ सखी २ श्रेणी, पंक्ति, ३ सखी उदार या दानी (फारसी में)। उ० १ एहि भाँति गौरि असीस सुनि सिय सहित हिय हरषीं अली। (मा० १।२३६। छ० १) ३ सुख-सागर नागर ललित बली अली पर धाम। (स० २५३)
अली (२)-(स० अलि)-भ्रमर, भँवरा।
अलीक-(स०)-बिना सर पैर का, मिथ्या, झूठा। उ० सुनेहि न श्रवन अलीक प्रलापी (मा० ६।२५।४)
अलीका-दे० 'अलीक'। उ० बचन तुम्हार न होइ अलीका। (मा० १।२१६।३)
अलीहा-(स० अलीक)-मिथ्या, झूठ। उ० एक कहहिं यह बात अलीहा। (मा० २।४८।४)
अलुज्झि-(स० अवरुन्धन)-उलझकर, एक में एक होकर। उ० खप्परि‍न्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहा वहीं। (मा० ६।८८ छ० १)
अलेख (स०) १ अधिक, बहुत, २ अज्ञेय, दुर्बोध। उ० १ भए अलेख सोच बस लेखा। (मा० २।२६४।४)
अलेखी-(स० अलेख)-१ अन्यायी, गड़बड़ करनेवाला, २ अज्ञेय, दुर्बोध। उ० १ बड़े अलेखी लखि परै, परिहरे न जाहीं। (वि० १४७)
अलेप-(स० अ+लेप) निर्लेप, विरक्त, ससार में जो लीन न हो। उ० अगुन अलेप अमान एक रस। (मा० २।२१६।३)
अलोने-(स० अ+लवण)-बिना नमक का, फीका, बेमज़ा, व्यर्थ। उ० तुलसी प्रभु अनुराग-रहित जस सालन साग अलोने। (वि० १७५)
अलोल-(स०)-स्थिर, अचचल। उ० एकौ पल न कबहुँ अलोल चित हित दै पद-सरोज सुमिरौं। (वि० १४१)
अलोला-दे० 'अलोल'। उ० नाथ कृपा मन भयउ अलोला। (मा० ४।७।८)
अलौकिक-(स०)-जो इस लोक में न दिखाई दे, असा धारण, अद्भुत। उ० कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी। (मा० १।३३।२)
अल्प-(स०)-१ थोड़ा, कुछ, कम, न्यून। २ थोड़ी अव स्था, कच्ची अवस्था। उ० २ अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। (मा० ७।२१।३)
अव-(स०)-एक उपसर्ग, इसके लगने से निश्चय, अनादर, न्यूनता व्याप्ति आदि अर्थों की योजना होती है।
अवक्लत-ज्ञात होता, सूझ पड़ता, विचार में आता। उ० मोहि अवक्लत उपाय न एकू। (मा० २।२५३।१)
अवकलन-(स०)-१ इकट्ठा करके मिला देना, २ ग्रहण, ३ जानना।
अवकलना-दे० 'अवकलन'।
अवकलित-१ देखा हुआ, २ ज्ञात, ३ निश्चित।
अवकास-(स० अवकाश)-१ स्थान, जगह, २ आकाश, अतरिक्ष, शून्य, ३ फुर्सत, छुट्टी। उ० १ कोउ अवकास कि नभ बिनु पावइ। (मा० ७।६०।२)
अवकासा-दे० 'अवकास'। उ० नभ सत कोटि अमित अवकासा। (मा० ७।६१।४)
अवगत-(स०) विदित, ज्ञात, मालूम।
अवगति-(स०) १ ज्ञान, २ बुरी गति, दुर्गति।
अवगाथ-(स० अव+गाथा)-अपयश, बुराई, निंदा।
अवगाहति-(स०) स्नान करते हैं। उ० श्री मद्रामचरित्र मानसमिद भक्त्यावगाहति ये। (मा० ७।१३१। श्लो० २)
अवगाहत-डूबता हुआ। उ० अवगाहत बोहित नौका चढ़ि कबहुँ पार न पावै। (वि० १२२) अवगाहहिं-स्नान

करते हैं। उ० जे सर सरित राम अवगाहहिं। (मा० २।११३।३) अवगाहि–१ स्नानकर, २ डूबकर, ३ घुसकर, ३ मथकर। अवगाही–१ स्नानकर, गोता लगाकर, २ सोचकर, मनन करके। उ० १ भइ कवि बुद्धि विमल अवगाही। (मा० १।३१।५)
अवगाह–(स० अवगाध)–१ अथाह, गंभीर, २ अनहोनी, कठिन, ३ संकट का स्थान, उ० १ प्रेम वारि अवगाह सुहावन। (मा० १।२६२।१) अवगाहैं–दे० 'अवगाह'। उ० १ सुंदर-स्याम-सरीर-सैल तें धँसि जनु जुग जमुना अवगाहैं। (गी० ७।१३)
अवगाहा–दे० 'अवगाह'। उ० १ उभय अपार उदधि अवगाहा। (मा० १।६।१)
अवगाहन–(स०)–१ पानी में हल कर स्नान करना। २ प्रवेश, पैठ, ३ मथन, ४ खोज, ५ चित्त धँसाना।
अवगाहू–दे० 'अवगाह'। उ० १ मारि चरित जलनिधि अवगाहू। (मा० २।२७।४)
अवगुन–(स० अवगुण)– १ दोष, ऐब, २ अपराध, ३ निर्गुण। उ० १ जो अपने अवगुन सब कहहूँ। (मा० १।१२।३) अवगुनन्हि–अवगुणों को, बुराइयों को। उ० गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा। (मा० ४।७।२)
अवघट–(स० अव+घट)–अटपट, दुर्घट, कठिन, अड़बड़। उ० सरिता बन गिरि अवघट घाटा। (मा० ३।७।२)
अवचट–१ अनजान में, अचानक, अचक्का। उ० अवचट चितए सकल भुआला। (मा० १।२४८।३)
अवच्छिन्न–(स०)–१ अलग किया हुआ, पृथक्, २ विशेषणयुक्त।
अवछीन–(स० अवच्छिन्न) दे० 'अवच्छिन्न'।
अवज्ञा–(स०) १ अपमान, अनादर, २ आज्ञा का उल्लंघन, ३ पराजय, हार।
अवटत–(स० आवर्त्तन)–१ मथन करते हैं, २ जलाते हैं, औटते हैं। अवटि–१ औटकर, पकाकर, २ मथकर, ३ जलकर। उ० ३ जो आचरन विचारहु मेरो कलप कोटि लगि अवटि मरौं। (वि० १४१) अवटै–आग पर रखकर गाढ़ा करे। उ० अवटै अनल अकाम बनाई। (मा० ७।११७।७
अवडेर–(स० अव+राट) १ छल, धोखा, २ भाग्यहीन, ३ झंझट, बखेड़ा।
अवडेरि–धोखा देकर, चक्कर में डालकर। उ० पुनि अवडेरि मराएन्हि ताही। (मा० १।७९।४) अवडेरिए–निकाल दीजिए। उ० पोषि तोषि थापि आपनो न अवडेरिए। (ह० ३४)
अवडेरे–चक्करदार, बेढब। उ० जननी जनक तज्यो जनमि, करम बिनु बिधिहु सृज्यो अवडेरे। (वि० २२७)
अवढर–(सं० अव+धार)–१ दया करनेवाला, उदार, २ मुँहमाँगा देनेवाला। ३ सीधा, भोला। उ० १ आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। (मा० २।४४।४)
अवतंस–(स०)–१ भूषण, शिरोभूषण, शोभायमान करने वाले, २ मुकुट, ३ माला, ४ कर्णपूर, कर्णफूल। उ० १ राम कस न तुम्ह कहहु अस हंस बंस अवतंस। (मा० २।६) अवतंसा–दे० अवतंस। उ० १ भए प्रसन्न चंद्र अवतंसा। (मा० १।८८।३)
अवतरइ–(स० अवतार) अवतार लेते हैं, जन्म लेते हैं। उ० निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लाग। (मा० ४।२६) अवतरहीं–अवतार लेते हैं, पैदा होते हैं। उ० कलप-कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। (मा० १।१४०।१) अवतरिहउँ–अवतार लूँगा, जन्म धारण करूँगा। उ० परम सक्ति समेत अवतरिहउँ। (मा० १।१८७।३) अवतरिहि–अवतार लेगी, उतरेगी, अवतीर्ण होगी। उ० सोउ अवतरिहि मोरि यह माया। (मा० १।१५२।२) अवतरी–अवतार लिया, जन्म लिया। उ० जगदंबा जहँ अवतरी। (मा० १।६४) अवतरे–अवतार लिया, अवतार लिया है। उ० जेहि मारे सोइ अवतरे, कृपा सिन्धु भगवान्। (दो० ११५) अवतरेउ–अवतार लिया है। उ० प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा। (मा० १।२०६।३) अवतरेहु–अवतार लिया है। उ० धर्म हेतु अवतरेहु गोसाई। (मा० ४।९।३)
अवतार–(स०)–१ उतरना, नीचे आना, २ जन्म, ३ सृष्टि। उ० २ एक कलप एहि हेतु प्रभु लीन्ह मनुज अवतार। (मा० १।१३९) विशेष–पुराणों के अनुसार विष्णु के २४ अवतार हैं। उनमें से दस (मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम और कृष्ण आदि) प्रधान हैं।
अवतारा–दे० 'अवतार'। उ० २ पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा। (मा० १।११०।३)
अवतारी–अवतार लेनेवाला, उतरनेवाला। उ० यद् ब्रह्म विग्रह-व्यक्त लीलावतारी। (वि० ४३)
अवदात–(स०)–१ पवित्र, २ सुंदर, ३ उज्वल। उ० २ वन्दे कन्दावदात सरसिजनयनं देवमुर्वीशरूपम्। (मा० ६।१।१)
अवद्य–(स०)–१ अधम, पापी, २ निंद्य, गर्हित।
अवध (१)–(स० अयोध्या)–१ अयोध्या, २ कोशल, एक देश जिसकी प्रधान नगरी अयोध्या थी। उ० १ बंदउँ अवध पुरी अति पावनि। (मा० १।१६।१) अवधहि–अवध को, अयोध्या को। उ० चले हृदयँ अवधहि सिरु नाई। (मा० २।८३।१)
अवध (२)–(स० अवध्य)–न मारने योग्य।
अवधनाथु–(स० अयोध्यानाथ)–१ राम २ दशरथ। उ० १ अवधनाथु गवने अवध। (प्र० ६।१।५)
अवधपति–दे० 'अवधनाथु'। उ० १ राम अनादि अवध पति साई। (मा० १।१२०।१)
अवधि–(स०)–१ सीमा, २ समय, ३ अंत समय। उ० २ बीती अवधि काज कछु नाहीं। (मा० ४।२६।१)
अवधूत–(स०)–१ सन्यासी, एक प्रकार के साधु, २ कंपित, ३ विनष्ट, नाश किया हुआ। उ० १ धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ। (क० ७।१०६)
अवधेस–(स० अवधेश)–१ दशरथ, २ राम। उ० १ अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे। (क० १।१) अवधेसहि–राजा दशरथ को। उ० जाइ कहेउ 'पगु धारिय' मुनि अवधेसहि। (जा० १४१)
अवधेसा–दे० 'अवधेस'। उ० २ भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। (मा० ७।११९।६)
अवन–(स०)–१ रक्षा, बचाव, २ प्रसन्न करना, ३ रक्षा

करनेवाले, खुश करनेवाले। उ० ३ सीय-सोच-समन, दुरित-दोष-दमन, सरन आए अवन, लखन प्रिय प्रान सो। (ह० ८)

अवनति-(स०)-१ घटती, कमी, २ विनय, ३ दुर्दशा, तनज़्ज़ुली।

अवनि-(स०)-पृथ्वी, ज़मीन। उ० सुचि अवनि सुहावनि आलवाल। (वि० २३) अवनिद्रोही-(स० अवनि+द्रोहिन्)-पृथ्वी से द्रोह करनेवाले, राक्षस। उ० धीर, सुर सुखद, मर्दन अवनिद्रोही। (गी० २।१८)

अवनिप-(स० अवनि+प)-राजा, नृप। उ० गभं स्रवहि अवनिप रवनि, सुनि कुमार गति घोर। (मा० १।२७१)

अवनिकुमारी-(स०)-पृथ्वी की पुत्री, जानकी, सीता। उ० धरि धीरजु उर अवनिकुमारी। (मा० २।६४।२)

अवनी-(स० अवनि)-पृथ्वी, धरा, ज़मीन। उ० त्रसित परेउ अवनी अकुलाई। (मा० १।१७४।४)

अवनीस-(स० अवनीश)-१ अवनीश, राजा, २ भगवान। उ० १ बिचरहि अवनि अवनीस चरन-सरोज मन मधुकर किए। (वि० १३५)

अवमान-(स०)-अपमान, अनादर। उ० गुर अवमान दोष नहिं दूषा। (मा० २।२०९।३)

अवमाना-दे० 'अवमान'। उ० सब तें कठिन जाति अव माना। (मा० १।६३।४)

अवमानी-अपमान करनेवाला। उ० सोचिय सुद्रु बिप्र अव मानी। (मा० २।१७२।३)

अवयव-(स०)-१ अंश भाग, हिस्सा, २ शरीर का एक देश, अंग, ३ वाक्य का एक अंश।

अवर (१)-(स० अपर)-अन्य, दूसरा, और।

अवर (२)-(स० अ+वर)-अधम, जो वर न हो।

अवराई-(स० अमराजि)-आमों का बगीचा। उ० गये जहा सीतल अवराई। (मा० ७।२०।३)

अवराधक-(स० आराधक)-आराधना करनेवाला, सेवक। उ० कहहिं सत तव पद अवराधक। (मा० ४।७।६)

अवराधन-(स० आराधन)-उपासना, पूजा, सेवा। उ० सगुन ब्रह्म अवराधन मोहि कहहु भगवान। (मा० ७।११० घ)

अवराधना-(स० आराधना)-सेवा, पूजा।

अवराधहिं-आराधना करें प्रसन्न करें। उ० कहिय उमहि मनु लाइ जाइ अवराधहिं। (पा० ७३) अवराधहु-उपासना करती हो। उ० केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू। (मा० १।७८।२) अवराधिए-उपासना कीजिए। उ० बीर महा अवराधिए साधे सिधि होय। (वि० १०८) अवराध-आराधना की, पूजा की। उ० इन्द्र सम काहुँ न सिव अवराधे। (मा० १।३१०।१)

अवरेखी-(स० अवलेख)-१ लिखी चित्रित की, खींचा, २ अनुमान किया, ३ अनुभव किया, माना। उ० १ रहि जनु कुअँरि चित्र अवरेखी। (मा० १।२६४।२) अवरेखु-चित्रित कर लो, लिख लो। उ० चित्त-भीति सुप्रीति-रंग सुरूपता अवरेखु। (गी० ७।६)

अवरेब-(स० अव+रेब=गति)-१ तिरछा, वक्र, २ उलझन, पेच, ३ बिगाड़, ख़राबी, ४ झगड़ा, ५ वक्रोक्ति, काकूक्ति। उ० ५ धुनि अवरेब कबित गुन जाती। (मा० १।३७।५)

अवरोध-(स०)-१ रुकावट, अड़चन, २ अनुरोध, दबाव, ३ अंतःपुर।

अवर्त-(स० आवर्त)-भँवर, पानी का चक्कर।

अवलंब-(स०) आश्रय, आधार, सहारा। उ० बूझिए बिलंब अवलंब मेरे तेरिए। (ह० ३४)

अवलंबन-(स०)-आश्रय, आधार, सहारा। उ० रामनाम अवलंबन एकू। (मा० १।२७।४)

अवलंबा-दे० 'अवलंब'। उ० फिर इत होइ प्रान अवलंबा। (मा० २।८२।३)

अवलंबु-दे० 'अवलंब'।

अवलि-(स० आवलि)- १ श्रेणी, पंक्ति, २ समूह। उ० १ कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं। (मा० १।२४३।३)

अवली-श्रेणी, समूह। उ० बचन नखत अवली न प्रकासी। (मा० १।२५५।१)

अवलोकत-देखते ही, दर्शन करते ही। उ० राम तुम्हहि अवलोकत आजू। (मा० २।१०७।३) अवलोकन-(स०) देखना, देखने की क्रिया। उ० सो धनु कहि अवलोकन भूप किसोरहि। (जा० १०५) अवलोकनि-देखना, अवलोकन करना। उ० अवलोकनि बोलनि मिलनि, प्रीति परसपर हास। (मा० १।४२) अवलोकय-देखिए, देखो। उ० मामवलोकय पंकज लोचन। (मा० ७।५१।१) अवलोकहिं-देखते हैं। उ० निसि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका। (मा० १।८५।३) अवलोकहु-देखो। उ० उयउ अरुन अवलोकहु ताता। (मा० १।२३८।४) अवलोकि-देखकर। उ० गावहिं छबि अवलोकि सहेली। (मा० १।२६४।४) अवलोकी-१ देखकर, २ देखा। उ० १ कासी मरत जंतु अवलोकी। (मा० १।११९।१) अवलोकु-दर्शन करो, देखो। उ० सब अंग सुभग बिंदु माधव छबि तजि सुभाउ अवलोकु एक पलु। (वि० ६३) अवलोके-देखा। उ० अवलोके रघुपति बहुतेरे। (मा० १।५५।२) अवलोक्य-देखकर। उ० यंन श्रीराम-नामामृत पानकृतमनिशमनवद्यम् अवलोक्य काल। (वि० ४६)

अवश-(स०)-१ जो किसी के वश में न हो, २ लाचार विवश।

अवशेष-(स०)-बाकी, शेष।

अवश्य-(स०)-निस्संदेह, ज़रूर।

अवसर-(स०)-१ समय, काल, मौका, २ अवकाश, फुरसत, ३ इत्तिफाक। उ० १ कबहुँक अंब अवसर पाइ। (वि० ४१)

अवसरु-दे० 'अवसर'। उ० १ कहेहु मोरि सिख अवसरु पाइ। (मा० २।८२।२)

अवसान-(स०)-१ विराम, ठहराव, २ समाप्ति, अंत, ३ सीमा, ४ मरण, ५ सायंकाल। उ० २ जो पहुँचाव रामपुर तनु अवसान। (ब० ६७)

अवसाना-दे० 'अवसान'। उ० २ नहिं तब आदि मध्य अवसाना। (मा० १।२३५।४)

अवधि-(स० अपरय)-ग्रस्त। उ० अवमि मृतु मैं पन्दथ माता। (मा० २।३१।४)

अवसेख-(सं० अवशेष)-बाकी, शेष ।
अवसेरी-(सं० अवसेर)-१ अटकाव, उलझन, २ देर, विलंब, ३ चिंता, व्यग्रता, ४ उत्कंठा । उ० ४ भए बहुत दिन अति अवसेरी । (मा० २।७।३)
अवसेषा-(सं० अवशेष)-शेष, बाकी । उ० उहाँ राम रजनी अवसेषा । (मा० २।२२६।२)
अवसेषित-बचा हुआ, शेष । उ० अजहुँ देत दुख रबि ससिहि, सिर अवसेषित राहु । (मा० १।१७०)
अवस्था-(सं०)-१ दशा, स्थिति, २ समय, ३ आयु, उम्र, ४ मनुष्य की अवस्थाएँ । वेदांत दर्शन के अनुसार मनुष्य की चार अवस्थाएँ होती हैं-जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय । स्मृतियों के अनुसार आठ तथा निरुक्त के अनुसार छ अवस्थाएँ होती हैं । प्रसिद्ध तीन अवस्थाएँ जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति हैं । उ० ४ तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि । (मा० ७।११७ग)
अवहेला-(सं०)-अनादर, निरादर ।
अवाँ-(सं० आपाक)-आवाँ, वह गड्ढा जिसमें कुम्हार मिट्टी का बर्तन पकाते हैं । उ० तपइ अवाँ इव उर अधिकाइ । (मा० १।५८।२)
अवाइ-(सं० आयन)-आगमन, आने की क्रिया ।
अवास-(सं० आवास)-घर, मकान । अवासहि-घर में, घर को । उ० दूलह दुलहिनि गे तब हास-अवासहि । (पा० १४८)
अवासू-दे० 'अवास' ।
अविकल-(सं०)-ज्यों का त्यों, पूर्ण, पूरा ।
अविकार-(सं०)-जिसमें विकार न हो, निर्दोष । उ० अनघ अद्वैत अनवद्य अव्यक्त अज अमित अविकार आनंद सिंधो । (वि० ५६)
अविकृत-(सं०)-जो विकृत या बिगड़ा न हो ।
अविगत-(सं०)-१ जो जाना न जाय, अज्ञात, २ जो नष्ट न हो ।
अविचल-(सं०)-अचल, स्थिर, अटल । उ० अमल अविचल अकल सकल, संतत-कलि विकलता भंजनानंदरासी । (वि० ५५)
अविचार-(सं०)-१ विचार का अभाव, अज्ञान अविवेक, २ अन्याय ।
अविच्छिन्न-(सं० अविच्छिन्न)-१ पूर्ण, अखंड, लगातार । उ० १ चंद्रसेखर सूलपानि हर, अनघ अज अमित अविच्छिन्न वृषभेसगामी । (वि० ४६)
अविद्यमान-(सं०)-अनुपस्थित, जो न हो, असत् । उ० अर्थ अविद्यमान जानिय संसृति नहिं जाइ गोसाईं । (वि० १२०)
अविद्या-(सं०)-१ अज्ञान, मिथ्या ज्ञान, २ माया, ३ माया का एक भेद, ४ प्रकृति, जड़ ।
अविनय-(सं०)-ढिठाई, गुस्ताखी ।
अविनासिनि-(सं० अविनाशिनी)-जिसका कभी नाश न हो । 'अविनासी' का स्त्रीलिंग । अविनासी-(सं० अविनाशिन्)-जिसका विनाश न हो, नित्य । उ० दनुज बन दहन, गुनगहन, गोविंद, नंदादिआनंददाताऽविनासी । (वि० ५१)
अविरल-(सं०)-मिला हुआ, जो विरल या अलग-अलग न हो, घना, अगाढ़ । उ० अचल अनिकेत अविरल अनामय, अनारंभ अंभोद नादघ्न बंधो । (वि० ५६)
अविरुद्ध-(सं०)-जिसके विरुद्ध कोई न हो ।
अविरोध-(सं०)-मेल, विरोध रहित, अनुकूलता ।
अविवेक-(सं०)-अज्ञान, मूर्खता ।
अविवेकी-(सं० अविवेकिन्)-अज्ञानी, मूर्ख ।
अविहित-(सं०)-जो विहित न हो, विरुद्ध, अनुचित ।
अव्यक्त-(सं०)-१ अस्पष्ट, जो साफ न हो, जो प्रत्यक्ष न हो, अज्ञात, २ विष्णु, ३ कामदेव, ४ ब्रह्म । उ० १ अजित निरुपाधि गोतीतमव्यक्त । (वि० ५२) अव्यक्तगुण-(सं०)-निर्गुण, गुणों (सत् रज् तम्) से परे । उ० सकल *लोकांत-कल्पांतशूलाग्रकृत दिग्गजाव्यक्तगुण नृत्यकारी ।* (वि० ११)
अव्यय-(सं०)-१ व्यय न होनेवाला, अक्षय, नित्य, २ ब्रह्म । उ० १ ब्रह्माम्भोधि समुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाव्ययं । (मा० ४।१। श्लो० २)
अव्याहत-(सं०)-१ अप्रतिरुद्ध, बेरोक, २ सत्य ।
अशक्त-(सं०)-निर्बल, शक्तिहीन ।
अशुभ-(सं०)-१ अमंगल, २ पाप, अपराध । उ० १ अशुभ इव भाति कल्याणराशी । (वि० १०)
अशेष-(सं०)-शेषहीन, सब, समूचा, समग्र । उ० वंदेऽहं तमशेष कारण पर रामाख्यमीशं हरिम् । (मा० १।१। श्लो० ६)
अश्वमेध-(सं०)-एक यज्ञ जिसमें घोड़े के मस्तक पर जय पत्र बाँधकर उसे विश्वभर में घूमने के लिए छोड़ देते थे । साथ में रक्षा के लिए सेना रहती थी । जो कोई रोकता उससे युद्ध होता था । अंत में घोड़ा जब घूमकर लौटता तो उसको मारकर उसकी चर्बी से हवन किया जाता था । प्रतापी और बड़े राजा इसे करते थे ।
अष्ट-(सं०)-आठ । उ० अष्ट सिद्धि नव निद्धि भूति सब भूपति भवन कमाहिं । (गी० १।२)
अष्टक-(सं०)-आठ वस्तुओं का संग्रह, वह काव्य या स्तोत्र जिसमें आठ श्लोक हों । उ० रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये । (मा० ७।१०८। श्लो० ९)
अष्टदश-(सं० अष्टादश)-अठारह ।
अष्टांग-(सं०)-१ योग की क्रिया के आठ भेद-यम, नियम, आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि । २ आयुर्वेद या शरीर के आठ अंग ।
अष्टादस-(सं० अष्टादश)-अठारह । उ० रोमराजि अष्टादस भारा । (मा० ६।१५।४)
अष्टोत्तरसत-(सं० अष्टोत्तरशत)-एक सौ आठ । उ० अष्टोत्तर सत कमलफल, मुष्टी तीनि प्रमान । (प्र० आरंभ का छंद)
असंक-(सं० अशंक)-निर्भय, निडर, निर्भीक । उ० अति असंक मन सदा उछाहू । (मा० १।१३७।२)
असंका-(सं० आशंका)-सन्देह । उ० अस बिचारि तुम्ह तजहु असंका । (मा० १।७२।२)
असंकू-दे० 'असंक' । उ० निपट निरंकुस अबुध असंकू । (मा० १।२७४।१)

असंग-(सं०)-१ संगरहित, अकेला, एकाकी, २ निर्लिप्त माया रहित। उ० २ भस्म अंग मर्दन अनंग, संतत असंग हर। (क० ७।१४६)
असंगत-(सं०)-अनुचित, अयुक्त, बेठीक। उ० परम दुर्घट पथ, खल असंगत साथ, नाथ नहिं हाथ बर बिरति-यष्टी। (वि० ६०)
असंत-(सं०)-असाधु, दुष्ट। उ० संत असंत मरम तुम्ह जानहु। (मा० ७।१२१।३) असंतन्ह-असंत लोगों, दुष्टों। उ० संत असंतन्ह के गुन भाषे। (मा० ७।४१।४)
असंभव-(सं०)-जो संभव न हो, नामुमकिन।
असंभावना-(सं०)-अनहोनापन, संभावना का अभाव। उ० दारुन असंभावना बीती। (मा० १।११६।४)
असंशय-(सं०)-निश्चय, निःसंदेह।
अस-(सं०एष)-१ इस प्रकार का, २ ऐसा, तुल्य, समान। उ० २ तात बचन पुनि मातु हित भाइ भरत अस राउ। (मा० २।१२४)
अशक्त-(सं० अशक्त)-निर्बल, शक्ति रहित।
असक्य-(सं० अशक्य)-असाध्य, न होने योग्य।
असगुन-(सं० अशकुन)-अपशकुन, अमंगलसूचक चिह्न। उ० असगुन भयउ भयंकर भारी। (मा० ६।१४।१)
असज्जन-(सं०)-दुष्ट, दुर्जन, कुपात्र। उ० बंदउँ संत असज्जन चरना। (मा० १।५।२)
असत-(सं०असत्)-मिथ्या, झूठ।
असत्य-(सं०)-मिथ्या, झूठ। उ० जदपि असत्य देत दुख अहई। (मा० १।११८।१)
असथिर (१)-(सं० स्थिर)-स्थिर, जड़। उ० रवि रजनीस धरा तथा, यह असथिर असथूल। (स० ४४०)
असथिर (२)-(सं० स्थिर)-जो चले, चल, स्थिर न रहनेवाला।
असथूल (१)-(सं० स्थूल)-स्थूल, जो सूक्ष्म न हो। उ० रवि रजनीस धरा तथा, यह असथिर असथूल। (स० ४४०)
असथूल (२)-(सं० अस्थूल)-जो स्थूल न हो, सूक्ष्म।
असन-(सं० अशन)-अशन, भोजन, आहार। उ० तहँ न असन नहिं बिप्र सुआरा। (मा० ।१७४।४) असनहीन-(सं० अशन हीन)-भूखा, जिसे भोजन न मिले। उ० जैसे कोउ इक दीन दुखी अति असनहीन दुख पावै। (वि०१२३)
असनि-(सं० अशनि)-वज्र बिजली। उ० लूक न असनि केतु नहिं राहू। (मा० ६।३२।५)
असबाब-(अर०)-सामान, वस्तु। उ० सब असबाब डाढो मैं न काढो तैं न काढो। (क० ५।१२)
असमंजस-(सं०)-१ दुविधा, पसोपेश, २ अड़चन, कठिनाई, ३ राजा सगर का पुत्र जो केशी से उत्पन्न था। उ० १ करौं काह असमंजस जी कें। (मा० २।२६४।३) २ बना आइ असमंजस आजू। (मा० १।१६७।३)
असम-(सं०)-१ जो सम या तुल्य न हो, विषम, ऊँचा नीचा, २ नष्ट। उ० १ जे अगम सुगम प्रभाय निमल असम सम सीतल सदा। (मा० ३।३२।४)
असमय-(सं०)-बुरा समय, विपत्ति का समय, कुअवसर, बेमौका, बेवक्त। उ० आपन अति असमय अनुमानी। (मा० १।१२८।२)
असमर्थ-(सं०)-अशक्त, सामर्थ्यहीन, अयोग्य।
असमसर-(सं० असमशर)-पंचबाण, कामदेव। उ० सकल असमसर कला प्रबीना। (मा० १।१२६।२)
असमाक-(सं० अस्माक)-हमको। उ० अनघ अविच्छिन्न सर्वज्ञ सर्वेस खलु सर्वतोभद्र दाताऽसमाक। (वि० ५१)
असम्मत-(सं०)-विरुद्ध, जो स्वीकार्य न हो, प्रतिकूल। उ० कहहिं ते बेद असम्मत बानी। (मा० १।११५।२)
असयानी-(सं० अ+सज्ञान)-जो सयानी (छलवाली या चतुर) न हो, सरल, सीधी भोली। उ० बिबुध-सनेह सानी बानी असयानी सुनी। (क० २।१०)
असरन-(सं० अशरण)-असहाय, अनाथ। उ० असरन सरन दीन जन गाहक। (मा० ७।२१।२)
असवारा-(फा० सवार)-सवार, चढ़ा हुआ। उ० बहु बीराह बसहँ असवारा। (मा० ७।६२।४)
असहाइ-(सं० असहाय)-निरवलंब, जिसका कोइ सहारा न हो। उ० निदरे रामु जान असहाई। (मा० २।२२६।२)
असहाय-(सं०)-जिसकी सहायता करनेवाला कोइ न हो, निराश्रय, निःसहाय। उ० नवर निसचर को, सखा असहाय को। (वि० ६६)
असही-(सं० असह) दूसरे की बढ़ती न सहनेवाला, ईर्ष्यालु। उ० असही दुसही, मरहु मन, बैरिन बढ़हु बिषाद। (गी०१।२)
असह्य-(सं०)- न सहा जाने योग्य, असहनीय।
असाँचा-(सं० असत्य)-झूठ, मिथ्या। उ० बिप्र श्राप किमि होइ असाँचा। (मा० १।१७२।४) असाँची-असाँचा का स्त्रीलिंग, दे० 'असाँचा'। उ० हसेउँ जानि बिधि गिरा असाँची। (मा० ६।२६१)
असा-(सं० एष)-ऐसा। उ० कलपात न नास गुमानु असा। (मा० ७।१०२।२)
असाध-(सं० असाध्य)-दुष्कर, कठिन।
असाधक-(सं०)-१ अनभ्यासी, २ साधनहीन।
असाधि-(सं० असाध्य,) कठिन, जो साधा न जा सके। उ० देखी ब्याधि असाधि नृपु परउ धरनि धुनि माथ। (मा० २।३४)
असाधी-(सं० असाध्य)-जिसके दूर होने की आशा न हो, जो साध्य न हो।
असाधु-(सं०)-दुष्ट, बुरा, खल। उ० साधु असाधु सदन सुक सारी। (मा० १।७।२)
असाधू-दे० 'असाधु'। उ० कहै सो अधम अयान असाधू। (मा०२।२०७।४)
असाध्य-(सं०)-कठिन, लाइलाज, दुष्कर।
असार-(सं०)-सारहीन, छूछा, पोला, निःसार।
असि (१)-(सं०)-१ तलवार, खड्ग, २ समान ऐसी, ३ एक नदी जो काशी के समीप गंगा से मिली है। उ० १ प्रिय चहिहहिं पतिव्रत असि धारा। (मा० १।६७।३) २ सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा। (मा० ११६४।२) असिन-तलवारें, असि का बहुवचन। असिन्ह-तलवारें।
असि (२)-(सं०)-हो। उ० विश्वमूलासि, जन-सानुकूलासि। (वि० १५)

असि (३)-(स० एव)-एसी, समान । उ० सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा । (मा० १।६४।२)

असित-(स०)-१ श्याम, काला, २ दुष्ट, बुरा, ३ शनि, ४ भरत का पुत्र, ५ एक ऋषि का नाम, ६ पिंगला नाम की नाड़ी । उ० १ सबिधि सितासित नीर नहाने । (मा०२।२०४।२)

असिद्ध-(स०)-१ जो पका न हो, २ जो सिद्ध न हो, अप्रमाणित, ३ अधूरा, ४ व्यर्थ ।

असिव-(स० अशिव)-अमंगल, अशुभ । उ० असिव वेष सिवधाम कृपाला । (मा० १।६२।२)

असीम-(स०)-जिसकी सीमा न हो, बेहद, अधिक ।

असीस-(स० आशिष)-आशीर्वाद, दुआ । उ० जननिहि बहुरि मिलि चली, उचित असीस सब काहूँ दइ । (मा० १।१०२। छं० १)

असीसत-१ आशीर्वाद देते हुए, २ आशीर्वाद देते हैं । उ० १ जोरी चारि निहारि असीसत निकसहिं । (जा० २१५) २ सकल असीसत इस निहोरी । (गी० १।१०३)

असीसा-दे० 'असीस' । उ० पुर पगु धारिअ देइ असीसा । (मा० २।३११।२)

असुझ-(?) १ अँधेरा, अंधकारमय, २ अधिक, अपार, ३ अदृश्य । उ० ३ तेरेहि सुझाए सूझे असुझ सुझाउ सो । (वि० १८२)

असुद्ध-(स० अशुद्ध)-भ्रष्ट, खराब ।

असुभ-(स० अशुभ)-अमंगल, जो शुभ न हो । उ० असुभ रूप श्रुति नासा हीनी । (मा० ३।१८।२)

असुर-(स०)-१ सुर का विरोधी, राक्षस, २ रात्रि, ३ नीच वृत्ति का पुरुष, ४ पृथ्वी, ५ सूर्य, ६ बादल, ७ राहु, ८ एक प्रकार का उन्माद । उ० १ खग मृग सुर नर असुर समेते । (मा० १।१८।२) असुरन-राक्षसों, असुर गण । उ० असुरन कहँ लखि लागत जग अँधियार । (बा० ३६)

असुरसेन-(स०)-एक राक्षस का नाम जिसके ऊपर गया नगर बसा हुआ माना जाता है । इसने तप करके यह वर प्राप्त किया था कि इसके शरीर को जो छूवे उसके पूर्वज तर जायँ ।

असुरारि-(स०)-राक्षसों के बैरी, विष्णु ।

असुरारी-दे० 'असुरारि' । उ० गो द्विज हितकारी, जय असुरारी । (मा० १।१८६। छं० १)

असुरु-दे० 'असुर' । उ० तारकु असुर समर जेहिं मारा । (मा० १।१०३।४)

असूझ-(?)-जो न सूझ अदृश्य, जो दिखाई न दे । उ० सरसप सूझत जाहि कहँ ताहि सुमेर असूझ । (स० २४१)

असृक्-(स० असृक्)-रक्त, रुधिर, लोहू ।

असेषा-(स० अशेष)-सब, पूरा । उ० अहइ मान बिनु बास असेषा । (मा० १।११८।४)

असैली-(स० अ+शैली)-शैली के विरुद्ध, रीति के प्रति कूल, अनुचित । उ० मैं सुनी बातें असैली जे कही निसिचर नीच । (गी० २।६)

असैले-शैली छोड़कर चलनेवाले, कुमार्गी । उ० अबुध असैले मन-मैले महिपाल भए । (गी० १।७१)

असोक-(स० अशोक)-१ अशोक वृक्ष, २ शोक रहित, दुःखशून्य । उ० १ तव असोक पादप तर राखिसि जतन कराइ । (मा० ३।२९ क)

असोका-दे० 'असोक' । उ० १ सुनहि बिनय मम बिटप असोका । (मा० ५।१२।५)

असोकी-शोक रहित । उ० मागि अगम बर होउँ असोकी । (मा० १।१६४।४)

असोच-(स० अ+शोच)-शोच रहित, चिन्ता रहित, निश्चिंत । उ० रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें । (मा० ४।३।२)

असौ-(स०)-यह । उ० त्वलानां पुरडकृयोऽसौ शंकर श तनोतु मे । (मा० ६।१। श्लो० ३)

असौच-(स० अशौच)-अपवित्रता । उ० भय अविवेक असौच अदाया । (मा० ६।१६।२)

अस्त-(स०)-छिपा हुआ, तिरोहित, डूबा । उ० आसन दीन्ह अस्त रवि जानी । (मा० १।१५३।१)

अस्तु-(स०)-१ अच्छा, भला, २ जो हो, चाहे जो हो, ३ इसलिए । उ० १ एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ । (मा० १।१५१।४)

अस्तुति (१) (स० स्तुति)-स्तुति, बड़ाई । उ० अस्तुति सुरन्ह कीन्हि अति हेतू । (मा० १।८३।४)

अस्तुति (२)-(स०) निंदा, अपकीर्ति ।

अस्त्र-(स०)-वह हथियार जिसे फेंककर शत्रु पर चलाया जाय । जैसे बाण, शक्ति । उ० ब्रह्म अस्त्र तेहिं साँधा, कपि मन कीन्ह बिचार । (मा० ५।१९)

अस्त्रधर-(स०)-अस्त्र धारण करनेवाला, अस्त्रधारी ।

अस्थान-(स० स्थान)-स्थान, जगह । उ० अति ऊँचे भूधरनि पर, भुजगन के अस्थान । (वै० ३६)

अस्थाना-दे० 'अस्थान' । उ० गये रामु सबके अस्थाना । (मा० ६।१२०।१)

अस्थावर-(स० स्थावर)-जो चल न, स्थिर, अचल । उ० अस्थावर गति अपर नहिं, तुलसी कहहिं प्रमान । (स० ३३८)

अस्थि-(स०)-हड्डी । उ० अस्थि सैल सरिता नस जारा । (मा० ६।१५।४)

अस्थिर (१)-(स०) चलनेवाला, चलायमान ।

अस्थिर (२)-(स० स्थिर)-स्थायी, एक स्थान पर रहनेवाला ।

अस्थूल (१)-(स०)-सूक्ष्म, जो स्थूल न हो ।

अस्थूल (२)-(स० स्थूल)-जो सूक्ष्म न हो, मोटा ।

अस्नाना-(स० स्नान)-नहाना, स्नान । उ० पूजा हेतु कीन्ह अस्नाना । (मा० १।२०१।१)

अस्मदीये-(स०)-मेरा, मेरे में, हमारे में । उ० नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये । (मा० ५।१। श्लो० २)

अस्माक-(स०)-हमारा, हमको, हमें ।

अस्व-(स० अश्व)-घोड़ा, तुरग । उ० होइअ नाथ अस्व असवारा । (मा० २।२०३।३)

अस्विनि-(स० अश्विनी)-१, २७ नक्षत्रों में प्रथम नक्षत्र, २ घोड़ी । उ० १, अस्विनि बिरचेउँ मगल, सुनि सुख छिनु छिनु । (पा० ५)

अस्विनीकुमारा-(स० अश्विनीकुमार)-अश्विनी के लड़के । त्वष्टा की पुत्री प्रभा (इसका नाम संज्ञा भी मिलता है)

एक बार अपने पति सूर्य के तेज को न सह सकने के कारण अपनी दो संतति (यम और यमुना) तथा अपनी छाया को सूर्य के पास छोड़कर चली गई और अश्विनी रूप धारण करके तप करने लगी। उसकी छाया से भी सूर्य को दो संतति शनि और ताप्ती हुई। जब छाया प्रभा के पुत्रों का अनादर करने लगी तो प्रभा के भगने की बात खुली। सूर्य अश्व का रूप धारण करके उसके पास गये और वहीं अश्विनीकुमारों की उत्पत्ति हुई। ये दोनों बहुत सुंदर और देवताओं के वैद्य हैं। माद्री पुत्र नकुल और सहदेव इन्हीं लोगों के अंश से उत्पन्न कहे जाते हैं। इन लोगों ने राजा शर्याति की कन्या सुकन्या के पातिव्रत से प्रसन्न होकर च्यवन ऋषि को दृष्टि, यौवन और सौंदर्य प्रदान किया था। दध्यंग ऋषि के सिर को फिर से जोड़ने का श्रेय भी इन्हीं को प्राप्त है। उ० जासु प्रान अस्विनी कुमारा। (मा० ६।१५।२)
अहं-(सं०)-१ मैं, २ अहंकार, गर्व। उ० १ नतोऽहं रामवल्लभाम्। (मा० १।१। श्लो ५) २ अहं अगिनि नहिं दाहै कोई। (वै० ४२)
अहंकार-(सं० अहंकार)-गर्व, घमंड। उ० अहँकार निहार उदित दिनेस। (वि० १३)
अहंकार-(सं०)-१ अभिमान, घमंड २ वेदांत के अनुसार अंतःकरण की एक वृत्ति, मैं और मेरा का भाव, ३ सांख्यानुसार महत्तत्व से उत्पन्न एक द्रव्य, ४ योग के अनुसार एक वृत्ति जिसे अस्मिता कहते हैं। उ० १ अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान। (मा० ६।१५ क)
अहँकारी-घमंडी अहंकारी, अहंभाव रखनेवाला। उ० सुना दसानन अति अहँकारी। (मा० ६।४०।१)
अहंकारी-(सं० अहंकारिन्)-अहंकार करनेवाला, घमंडी।
अहंवाद-(सं०)-अहंकार, डींग मारना। उ० अहंवाद, 'मैं' 'तैं' नहीं, दुष्ट संग नहिं कोइ। (वै० ३०)
अह-(सं० अहन्)-१ दिन, २ अहंकार, ३ खेद, ४ सूर्य, ५ विष्णु। उ० १ अह निसि बिधिहि मनावत रहहीं। (मा० ७।२५।३) २ कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु अह मम मलिन जनेषु। (मा० २।२२५)
अहइ-(सं० अस्ति) है। उ० जदपि अहइ असमंजस भारी। (मा० १।८३।२) अहई-दे० 'अहइ'। उ० जदपि असत्य देत दुख अहई। (मा० १।११८।१) अहउँ-हूँ। उ० तब लगि बैठ अहउँ बटछाहीं। (मा० १।५२।१) अहऊँ-हूँ। उ० परम चतुर मैं जानत अहऊँ। (मा० ६।१७।४) अहसि-है। उ० को तू अहसि सत्य कहु मोही। (मा० २।१६२।४) अहहिं-हैं। उ० दुराराध्य पै अहहिं महेसू। (मा०१।७०।२) अहहीं-हैं। उ० भरत आगमनु सूचक अहहीं। (मा० २।७।३) अहहू-हो। उ० तुम्ह पितु मातु बचन रत अहहू। (मा० २।४३।२) अहै-है। उ० एहि घाट तें थोरिक दूर अहै कटि लौं जल-थाह देखाइहौं जू। (क० २।६)
अहन-(सं० अहन्)-दिन, दिवस। उ० अहत गहन-गन अहन अखेट की। (क० ७।१६)
अहनाथ-(सं० अहन्+नाथ)-सूर्य, दिन के नाथ। उ० महि मयंक अहनाथ की आदि ज्ञान भव भेद। (स० ४८२)
अहमिति-(सं० अहम्मति) १ गर्व, घमंड, २ अविद्या। उ० १ रोषरासि भृगुपति धनी अहमिति ममता की। (वि० १५२)
अहर्निश-(सं० अहः+निशि)-दिन रात, आठो पहर।
अहलाद-(सं० आह्लाद)-आनंद, प्रसन्नता, हर्ष। उ० अतुल मृगराजवपु धरित, विदरित अरि, भक्त प्रहलाद अहलाद कर्ता। (वि० ५०)
अहल्या-(सं०)-१ गौतम ऋषि की पत्नी। विश्व की सारी सुंदरता लेकर ब्रह्मा ने सर्वांग सुंदरी अहल्या की रचना की और गौतम के पास धरोहर रख दी। एक वर्ष तक गौतम के मन में कोई विकार न आया इससे प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने अहल्या का विवाह गौतम से कर दिया। एक दिन चंद्रमा की सहायता से इंद्र ने गौतम को धोखा देकर आश्रम के बाहर कर दिया और अहल्या के साथ संभोग किया। गौतम ने आकर इंद्र को सहस्रभग और अहल्या को पत्थर हो जाने का शाप दिया। अहल्या के बहुत अनुनय करने पर उन्होंने अनुग्रह किया और कहा कि त्रेता में जब भगवान् राम अवतार लेंगे और अहल्या को चरणों का स्पर्श प्राप्त होगा तो वह मुक्त हो जायगी। तभी से वह पत्थर हो गई थी। रामावतार में चरणस्पर्श से मुक्त होकर अहिल्या पतिलोक में गई। स्वयंवर के पश्चात् राम को दुलहे के रूप में देखकर इंद्र के भी सहस्र भग नेत्र हो गये। २ जो धरती जोती न जा सके। उ० १ चरन कमल-रज-परस अहल्या, निज पति लोक पठाई। (गी० १।५०)
अहह-(सं०)-अत्यंत दुःखसूचक शब्द, हाय, आह। उ० अहह मंद मनु अवसर चूका। (मा० २।१४४।३)
अहार-(सं० आहार)-भोजन, खाना। उ० करहिं अहार साक फल कंदा। (मा० १।१४४।१) अहारन-बहुत भोजन, खाने का समूह। उ० चाहत अहारन पहार दारि कूरना। (क० ७।१४८)
अहारा-दे० 'अहार'। उ० आज सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। (मा० ५।२।२)
अहारी-आहार करनेवाले, खानेवाले, भक्षक। उ० धावहिं सठ खग मांस अहारी। (मा० ६।४०।५)
अहारु-आहार, भोजन। उ० करष चारिन्ह बासु बन मुनि मत बपु अहारु। (मा० २।८८)
अहारू-आहार, भोजन। उ० जौं एहिं खल नित करब अहारू। (मा० १।१७७।४)
अहिंसा-(सं०)-किसी को दुःख न देना, किसी की हिंसा न करना। जैन और बौद्ध धर्म में इसका विशेष स्थान है। उ० परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा। (मा० ७।१२१।११)
अहि-(सं०)-१ साँप, २ खल वधक, ३ राहु ४ एक नक्षत्र ५ वृत्रासुर, ६ पृथिवी। उ० १ अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी। (मा० १।११।१) अहितल्पवासी-(सं० अहि+तल्प+वासी) सर्प की सेज पर वास करनेवाला, विष्णु। उ० साय सकल्प अतिकल्प कल्पांतकृत कल्पना तीत अहि-तल्पवासी। (वि० ५५) अहिन-सर्पों, सर्प का

बहुवचन। उ० सुरसा नाम अहिन कै माता। (मा० ५।२।१) अहिनाथ-(सं०)-शेषनाग, सर्पों के राजा। उ० जनु अहिनाथ मिलन आयो मनि-सोभित सहसफनी। (गी० ७।२०) अहिनाह-(सं० अहिनाथ)-शेष नाग। अहिनाहा-दे० 'अहिनाह'। अहिनाहू-दे० 'अहिनाह'। उ० सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू। (मा० १।२११।३) अहिनी-अहि की स्त्री, सर्पिणी। उ० दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी। (मा० ३।१७।२) अहिप-(सं०)-सर्पों के राजा, शेषनाग। उ० अहिप महिप जहँ लग प्रभुताई। (मा० २।२५४।४) अहिपति (सं०)-शेष नाग। उ० सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहिं मोहई। (मा० १।२६१। छं०२) अहिभूषन-(सं० अहिभूषण)-जिसका भूषण सर्प हो, शिव, शंकर। उ० अहिभूषन, दूषन रिपु सेवक, देव देव त्रिपुरारी। (वि०६) अहिरसना-(सं० अहि+रसना) १ साँप की जीभ, २ साँप को दो जीभें होती हैं इसलिए २ की संख्या, दो। उ० २ अहिरसना थनधेनु रस गनपति द्विज गुरु बार। (स० २१) अहिराजा-(सं० अहि+राजन्)-सर्पराज, शेषनाग। उ० सो बन बरनि न सक अहिराजा। (मा० ३।१४।२) अहेः-(सं०)-अहि के, सर्प के। उ० रज्जौ यथाहेर्भ्रम। (मा० १।१। श्लो०६)

अहित-(सं०)-१ शत्रु, वैरी, विरोधी, २ हानि, बुराई। उ० १ भे अति अहित रामु तेउ तोही। (मा० २।१६२।४)

अहिवात-(सं० अभिवाद)-सौभाग्य, सोहाग। उ० चिर अहिवात असीस हमारी। (मा० १।३३४।२)

अहिवातु-दे० 'अहिवात'। उ० धन अहिवातु सूच जनु भावी। (मा० २।२५।४)

अहिबेलि-(सं० अहिवल्ली)-नाग बेल, पान की लता, पान। उ० कनक कलित अहिबेलि बनाई। (मा० १। २८८।१)

अहिरिनि-(सं० आभीर)-अहीर की स्त्री, ग्वालिन। दे० 'अहीर'। उ० अहिरिनि हाथ दहेंडि सगुन लेइ आवइ हो। (रा०५)

अहिल्या-दे० 'अहल्या'।

अहिवाता-दे० 'अहिवात'। उ० सदा अचल एहि कर अहिवाता। (मा० १।६७।२)

अहीर-(सं० आभीर)-एक जाति जिसका कार्य गाय आदि पालना और दूध, दही, घी का व्यापार करना है। गोप, ग्वाला। उ० निर्मल मन अहीर निज दासा। (मा० ७।११७।६)

अहीश-(सं० अहि+ईश)-सर्पराज, शेष।

अहीस-(सं० अहीश)-सर्पराज, शेष। उ० दानव देव अहीस महीस महा मुनि तापस सिद्ध समाजी। (क० ७।४१)

अहीसा-दे० 'अहीस'। उ० कहि न सकहिं सतकोटि अहीसा। (मा० १।१०५।२)

अहेर-(सं० आखेट)-शिकार, मृगया। उ० तहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउब। (मा० २।१३६।४) अहेरें-अहेर में, शिकार में, शिकार को, शिकार के लिए। उ० फिरत अहेरें परेउँ भुलाई। (मा० १।१५९।३) अहेरै-दे० 'अहेरें'। उ० राम अहेरै चलहिंगे। (गी० १।१३)

अहेरि-अहेरी, शिकारी। उ० चित्रकूट अचल अहेरि बैठ्यो घात मानों। (क० ७।१४२)

अहेरी-शिकारी। उ० चित्रकूट जनु अचल अहेरी। (मा० २।१३३।२)

अहो-(सं०)-एक अव्यय जिसका प्रयोग कभी (१) सबो धन की तरह और कभी (२) आश्चर्य, (३) खेद, (४) करुणा, (५) प्रशंसा, (६) हर्ष इत्यादि सूचित करने के लिए होता है। उ० ६ अहो धन्य तव जन्मु मुनीसा। (मा० १।१०४।२)

अहोरात्र-(सं०)-दिन और रात।

अह्नि-(सं० अहन्)-दिन।

# आ

आँक-दे० 'अंक'। निश्चय, पक्की बात। उ० हाँकि आँक एक ही पिनाक छीनि लई है। (गी० १।८३)

आँकरो-(सं० आकर)-१ बहुत, अधिक, २ गहरा। उ० १ बिसारि वेद लोक-लाज आँकरो अचेतु है। (क० ७।८२)

आँकु-दे० 'अंक'। उ० मेटि को सकइ सो आँकु जो बिधि लिखि राखेउ। (पा० ७१)

आँकुरे-(सं० अंकुर)-१ अंकुरित हुए, २ अँखुए, अंकुर।

आँख-(सं० अक्षि)-१ देखने की इंद्रिय, नेत्र नयन, २ अँखुआ, अंकुर।

आँखि-दे० 'आँख'। उ० बाम न आँखि तर आयत कोऊ। (मा० १।२६३।३) मु० आँखि देखाए-क्रोध दिखाया, क्रोध से आँखें लाल करके देखा। उ० बहुत भाँति तिन्ह आँखि देखाए। (मा० १।२६३।१) आँखिन-आँख, आँख का बहुवचन। आँखिन्ह-१ आँखों से, २ आँखों ने, ३ आँखों में, ४ आँखों को। उ० १ बेगि करहु किन आँखिन्ह ओटा। (मा० १।२८०।४)

आँखी-आँखें।

आँगन-(सं० अंगण)-घर के भीतर का सहन, चौक, अजिर। उ० भौन में भाँग, धतूरोई आँगन, नाँगे के आगे हैं माँगने बाढ़े। (क० ७।१५४)

आँच-(सं० अर्चि)-१ ताप, गरमी, २ आग की लपट। उ० २ कोप कृसानु गुमान-अवाँ घट ज्यों जिनके मन आँच न आँचे। (क० ७।११८)

आँचर-(सं० अंचल)-१ धोती आदि बिना सिले वस्त्रों के दोनों छोरों पर का भाग पल्ला २ साधुओं के पहनने ओढ़ने के छोटे वस्त्र। उ० १ सोभित दुलह राम सीस पर आँचर हो। (रा० ६) आँचरन्हि-आँचलों में,

छोरों में। उ० दुहुँ आँधरन्हि लगे मनि मोती। (मा० १।३२७।४)

आँचे–तपे, जले। उ० कोप कृसानु गुमान अवाँ घट ज्यों जिनके मन आँच न आँचे। (क० ७।११८)

आँजन–(स० अंजन)–सुरमा, काजल, आँखों में लगाने की एक काली वस्तु।

आँजहि–अंजन लगाती है। उ० लोचन आँजहि फगुआ मनाइ। (गी० ७।२२) आँजी–आँजने की क्रिया, अंजन लगाना। उ० लोक रीति फूटी सहै आँजी सहै न कोइ। (दो० ४२३) आँजे–अंजन लगाया। उ० सुपरि उबटि अन्हवाइकै नयन आँजे। (गी० १।१०)

आँत–(स० अंत्र)–पेट के भीतर की एक लंबी नली जो गुदा तक रहती है। अँतड़ी। उ० खैंचहिं गीध आँत तट भये। (मा० ६।८८।३) आँतनि–आँतें, आँत का बहुवचन। उ० ओझरी की झोरी काँधे, आँतनि की सेल्ही बाँधे। (क० ६।५०)

आँधर–(स० अंध)–अंधा, जिसके आँख न हो। आँधरे–अंधे, बिना आँखवाले। उ० पाँगुरे को हाथ पाँय, आँधरे को आँखि है। (वि० ६९)

आँधरो–अंधा, नेत्रहीन। उ० ते नयना जनि देहु, राम करहु बर आँधरो। (दो० ४४)

आँधी–(अंध)–वेगपूर्ण हवा जिसमें धूल भरी हो। अंधड़। उ० जनु कज्जल कै आँधी चली। (मा० ६।७८।४)

आँब–(सं० आम्र)–आम, रसाल, चूत। उ० आँब छाँह कर मानस पूजा। (मा० ७।५७।३)

आँवा–(स० आपाक)–वह गड्ढा जिसमें कुम्हार बरतन पकाते हैं।

आ–(स०)–१ आर्द्रा नक्षत्र, २ ब्रह्मा, ३ एक उपसर्ग जिसका अर्थ पूरा, चारों ओर, तक तथा अधिक होता है। उ० १ उगुन पूगुन वि अज कृ म आ भ अ मू गुनु साथ। (दो० ४५७)

आइ (१)–(स० आयु)–उम्र, जीवन। उ० अगुन असुभ न गनहिं गत, आइ काल नियरानु। (प्र० ५।६।६)

आइ (२)–१ आकर, आकर के, २ आया या आई। उ० १ कोमल बानी संत की स्रवै अमृतमय आइ। (वै० १६) आइअ–आवें। उ० जाइ जनकपुर आइअ देखी। (मा० १।२।८।१) आइन्ह–आईं। उ० लहेउ जनम फल आजु जननि जग आइन्ह। (जा० ६२) आइयहु–आयो, आइए। उ० बालमीकि मुनीस-आस्रम आइयहु पहुँचाइ। (गी० ७।२७) आइहि–आएगा। उ० तिन्हहि बिरोधि न आइहि पूरा। (मा० ३।२२।४) आइहैं–आवेंगे। उ० कै वै भाजे आइहैं, कै बाँधे परिनाम। (दो० ४२२) आइहै–आवेगा। उ० भरोसो और आइहै उर ताके। (वि० २२५) आइहौं–आऊँगा। उ० प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहौं। (मा० २।१५१। छं० १) आई–आ गई। उ० मुनि रिधि सिधि अनिमादिक आई। (मा० २।२१३।४) आइ–आ पहुँची, आ गई। उ० बरषा बिगत सरद रितु आई। (मा० ४।१६।१) आउ (१)–आओ। उ० असुभ अमगल सगुन सुनि, सरन राम कै आउ। (प्र० ७।५।५) आउब–आयेंगे, आऊँगा। उ० पुनि आउब एहि बेरिआँ काली। (मा० १।२३४।३) आए–आ गए। उ० मृग बधि बंधु सहित हरि आए। (मा० १।४६।२) आतो–(ब्र०)–आता, पहुँचता। आयउँ–आया, आया हूँ। उ० आयउँ इहाँ समाजु सकेली। (मा० २।२६८।२) आयउ–आया। उ० मुनि रघुबर आगमनु सुनि आगें आयउ लेन। (मा० २।१२४) आयऊ–आए। उ० तब जनक आयसु पाय कुलगुरु जानकिहि लै आयऊ। (जा० ६०) आयक–आने का। उ० तुलसिदास सुरकाज न साध्यौ तौ तो दोष होय मोहि महि आयक। (गी० २।४) आयहु–आय, आये हो। उ० द्विज आयहु केहि काज। (मा० ७।११० ग) आया–'आना' का भूतकालिक रूप। पहुँचा। उ० कामरूप केहि कारन आया। (मा० ४।४३।२) आये–आ गये, 'आना' के भूतकालिक रूप 'आया' का बहुवचन या आदरसूचक रूप। आयो–(ब्र०)–आया, आए। उ० मंदोदरी सुन्यौ प्रभु आयो। (मा० ६।६।१) आव–आती है, आ रही है। उ० प्रेम बिबस मुख आव न बानी। (मा० १।१०४।२) आवइ–आती है। उ० पेखत प्रगट प्रभाउ प्रतीति न आवइ। (पा० ७८) आवई–आती है। उ० अति खेद ब्याकुल अल्प बल छिन एक बोलि न आवई। (वि० १३६) आवउँ–आता हूँ, आ जाता हूँ। उ० निज आश्रम आवउँ खग भूपा। (मा० ७।११४।७) आवत–१ आते हुए, आते, २ आते हैं। उ० १ रावन आवत सुनेउ सकोहा। (मा० १।१८२।३) आवति–आती है। उ० सुमिरत सारद आवति धाई। (मा० १।११।२) आवन–आना, पहुँचना। उ० नृप जोबन छबि पुरइ चहत जनु आवन। (जा० ६६) आवनो–१ आनेवाला, आ जानेवाला, २ आना, उपस्थित होना। उ० १ जाको ऐसो दूत सो साहब अबै आवनो। (क० ५।६) २ एक बौंजि पानी पी कै कहै बनत न आवनो। (क० ५।१८) आवहिं–आते हैं। उ० फिरहिं भ्रम बस पुनि फिरि आवहिं। (मा० २।८३।२) आवहीं–आते हैं। उ० सब साजि साजि समाज राजा जनक नगरहिं आवहीं। (जा० ९) आवहुँ–आवें। उ० आवहुँ बेगि नयनफलु पावहिं। (मा० २।११।१) आवा– आया। उ० तेहि अवसर एक तापसु आवा। (मा० २। ११०।४) आवौं–१ आ सकता हूँ २ आता हूँ, ३ आऊँ। उ० १ जो करनी आपनी बिचारौं तौ कि सरन हौं आवौं। (वि० १४२) आवो–आओ, आ जाओ।

आउ (२)–(स० आयु)–उम्र जीवन। उ० लिए बेर बदलित अमोल-मनि आउ मैं। (वि० २६१)

आउज–(स० वाद्य)–ताशा एक बाजा जो कपड़े से ढँकी थाली सा होता है और बाँस की पतली सीकी से बजाया जाता है। उ० घंटा घंटि पखाउज-आउज झाँझ बेनु डफ-तार। (गी० १।२)

आउबाउ–(अ०)–व्यर्थ की बात, अट-पट। मु० आउ बाउ बक्यो–व्यर्थ की बात की। उ० जीह हू न जप्यो नाम, बक्यो आउ बाउ मैं। (वि० २६१)

आक–(स० अर्क)–मदार, अकवन एक जंगली पौदा। उ० साकै जो असमर्थ सा समर्थ एक आक का। (ह० १२) आको–आक या मंदार के पेड़ का भी। उ०

राम नाम-महिमा करै काम भूरुह आको। (वि० १५२)

आकर-(स०)-खान, घर। उ० सुखाकर सतां गतिं। (मा० ३।४।श्लो० ६) आकर-(स०)-१ खानि,उत्पत्ति स्थान, २ भंडार, खजाना, ३ भेद, जाति, किस्म, ४ श्रेष्ठ, उत्तम, ५ कुशल, दक्ष। उ० ३ आकर चारि लाख चौरासी। (मा०१।८।१)

आकरषति-(स० आकर्ष)-खींचती है। उ० अरुन अधर द्विज पाँति अनूपम ललित हँसनि जनु मन आकरषति। (गी० ७।१७) आकरषै-आकर्षित करे, खींचे। उ० आकरषै सुख सपदा सतोष विचार। (वि० १०८) आकरष्यो-आकर्षित किया, अपनी ओर खींचा। उ० आकरष्यो सिय-मन समेत हरि। (गी० १।८८)

आकरी-खान खोदने का काम। उ० चाकरी न आकरी न खेती न वनिज भीख। (क० ७।६७)

आकर्ष-(स०)-१ खिंचाव, कशिश, २ पासे का खेल, ३ इंद्रिय, ४ कसौटी, ५ धनुष चलाने का अभ्यास, ६ चुंबक।

आकषन-(स० आकर्षण)-खींचने की शक्ति।

आकसमात-(स० अकस्मात्)-अचानक, एकाएक, सहसा, तत्क्षण। उ० जो पै आकसमात तें उपजै बुद्धि बिसाल। (स० ४८०)

आकांक्षा-(स०)-१ इच्छा, अभिलाषा, चाह, २ खोज, अनुसधान।

आकार-(स०)-स्वरूप, आकृति, रूप। उ० कनक भूधराकार सरीरा। (मा० ५।१६।४)

आकाश-(स०)-आसमान, गगन, अंतरिक्ष। पचतत्त्वा में से एक जिसका गुण शब्द है। शून्य। उ० चिदाकाशमाकाशवास भजेऽहं। (मा० ७।१०८। श्लो० १)

आकास-दे० 'आकाश'।

आकासबानी-(स० आकाशवाणी)-देववाणी, वह वाणी या शब्द जो आकाश से सुनाई दे।

आकिंचन-(स०)-१ किसी वस्तु की इच्छा न रखना, २ दरिद्रता। उ० १ आकिंचन इंद्रियदमन, रमन राम इकतार। (वै० २१)

आकु-दे० 'आक'। उ० खोजत आकु फिरहिं पय लागी। (मा० ७।११५।१)

आकुल-(स०)-दे० 'आकुल'। उ० १ जरत सुर असुर नरलोक शोकाकुल। (वि० ११)आकुल-(स०)-१ व्यग्र, व्यस्त, व्याकुल, घबराया हुआ, २ विह्वल, कातर, ३ व्याप्त, भरा हुआ। उ० १ देखि परम विरहाकुल सीता। (मा० ५।१४।४)

आकुलित-(स०)-१ व्याकुल, घबराया हुआ, २ व्याप्त। उ० १ सूमलीला अनल ज्वालमालाकुलित। (वि० २५)

आकृति-(स०)-आकार, रूप, बनावट, सूरत। उ० कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। (मा० १।१३७।४)

आकृष्ट-(स०)-आकर्षित, खिंचा हुआ।

आक्रांत-(स०)-१ आवृत, घिरा हुआ, २ वशीभूत, विवश, पराजित, ३ जिस पर आक्रमण किया गया हो।

आक्षिप्त-(स०)-फेंका हुआ, निन्दित, दूषित। उ० तत्र आक्षिप्त तव विषम माया, नाथ! अघ मैं मंद व्यालाद गामी। (वि० ५६)

आक्षेप-(स०)-१ फेंकना, गिराना, २ आरोप, दोष लगाना, ३ निन्दा, ताना, कटूक्ति।

आखत-(स० अक्षत)-१ चावल, तण्डुल, २ चदन या केसर में रँगा चावल जो विवाह या पूजा के अवसर पर काम में आता है। ३ शुभ अवसर पर नेगी या पवनी को दिया जानेवाला अन्न। उ० १ आखत आहुति किए जातुधान। (गी० ५।१६)

आखर-(स० अक्षर)-वर्ण, क, ख, ग आदि अक्षर, हरफ। उ० अनमिल आखर अरथ न जापू। (मा० १।१५।३)

आखरजुग-(स० अक्षर + युग)-दो अक्षर, अर्थात् 'राम'।

आखु-(स०)-१ चूहा, मूस, २ देवताल, ३ सूअर, ४ कजूस।

आखेट-(स०)-अहेर, शिकार, मृगया।

आख्य-(स०)-नामक, नाम के। उ० यन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्। (मा० १।१। श्लो०६)

आगत-(स०)-१ आया हुआ, प्राप्त २ अतिथि, मेहमान। उ० १ सरनागत मागत पाहि प्रभो। (मा० ७।१४।१)

आगम-(स०)-१. अवाई, आगमन, २ भविष्य, ३ जन्म, ४ शब्द प्रमाण, ५ वेद, ६ तंत्रशास्त्र, ७ नीति। उ० ५ आगम निगम पुरान अनेका। (मा० ७।४६।२)

आगमन-(स०)-१ आना, अवाई, २ प्राप्ति, लाभ। उ० १ मुनि आगमन सुना जब राजा। (मा० १।२०७।१)

आगमनु-दे० 'आगमन'। उ० १ भरत आगमनु सूचक अहहीं। (मा० २।७।३)

आगमनू-दे० 'आगमन'। उ० १ सेवक सदन स्वामि आगमनू। (मा० २।६।३)

आगमी-(स० आगम =भविष्य)-ज्योतिषी, भविष्य का जाननेवाला, सामुद्रिक विचारनेवाला। उ० अवध आजु आगमी एकु आयो। (गी० १।१४)

आगर-(स० आकर)-खान, भंडार, समूह, ढेर, घर। उ० करुना सुखसागर सब गुन आगर। (मा० १।१९२।छ०१)

आगरि-दे० 'आगरी'। उ० लषन अनुज श्रुतिकीरति सब गुन आगरि। (जा० १०३)

आगरी-'आगर' का स्त्रीलिंग। उ० जेहि नामु श्रुतकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी। (मा० १।३२५।छ०२)

आगर्व-(स०)-विशेष गर्व, बहुत बड़ा घमंड। उ० उग्र भार्गवागर्व-गरिमापहर्त्ता। (वि० ५०)

आगवन-(स० आगमन)-दे० 'आगमन'।

आगवनु-दे० 'आगवन'।

आगवनू-दे० 'आगवन'। उ० १ कारन कवन भरत आगवनू। (मा० २।२२७।१)

आगार-(स०) १ घर, मंदिर, मकान, २ स्थान, जगह, ३ खजाना, कोष, ४ ढेर, भंडार। उ० ४ सुनु व्यालारि काल कलि मल अवगुन आगार। (मा० ७।१०२क)

आगि-(स० अग्नि)-आग। उ० ढौरै आगि लागी, न बुझावै सिंधु सावनो। (क० ५।१८)

आगिल-(स० अग्र) आगे का, अगला। उ० आगिल चरित सुनहु जस भयऊ। (मा० १।७१।१) आगिलि-'आगिल'

का स्त्रीलिंग, अगली। उ० आगिलि कथा सुनहु मन लाई। (मा० १।२०६।१)

आगिली–दे० 'आगिलि'।

आगिलो–दे० 'आगिल'। उ० घरनि सिधारिए सुधारिए आगिलो काज। (गी० १।८२)

आगी–दे० 'आगि'। उ० जीवन तें जागी आगी, चपरि चौगुनी लागी। (क० ५।१५)

आगू–दे० 'आगे'।

आगें–दे० 'आगे'। उ० १ सैल बिसाल देखि एक आगें। (मा० ५।३।४)

आगे–(सं० अग्र)–१ सामने, सम्मुख, २ पहिले, ३ जीते जी, ४ अनंतर, बाद, ५ अतिरिक्त, अधिक, ६ गोद में।

आग्रह–(सं०)–१ अनुरोध, हठ, ज़िद, २ तत्परता, परायणता, ३ यत्न, ज़ोर।

आघात–(सं०)–१ चोट, प्रहार, २ धक्का, ठोकर, ३ वध स्थान। उ० १ गर्जा वज्राघात समाना। (मा० ६।६४।१)

आचमन–(सं०)–१ जल पीना, २ शुद्धि के लिए मुँह में जल लेना, ३ धर्म संबंधी कर्म के लिए दाहिने हाथ में जल लेकर मंत्र पढ़कर पीना, ४ पीने या हाथ मुँह धोने के लिए दिया गया जल।

आचमनु–दे० 'आचमन'। उ० ४ आदर सहित आचमनु दीन्हा। (मा० १।३२६।४)

आचरज–(सं० आश्चर्य)–१ अचंभा, विस्मय, तअज्जुब, २ आश्चर्य भरी बात। उ० २ कहेसि अमित आचरज बखानी। (मा० १।१६३।३)

आचरजु–दे० 'आचरज'। उ० १ जनि आचरजु करहु मन माहीं। (मा० १।१६३।१)

आचरत–१ आचरण करता, २ आचरण करता है। उ० १ खोटे खोटे आचरन आचरत अपनायो अंजनीकुमार, सोध्यो रामपनि पाक हौं। (ह० ४०) आचरनि–आचरण करना। उ० १ सकल सराहैं निज निज आचरनि। (वि० १८४) आचरनी–दे० 'आचरनि'। उ० जिमि कुठार चंदन आचरनी। (मा० ७।३७।४) आचरहिं–आचरण करते हैं, व्यवहार करते है। उ० जे आचरहिं ते नर न घनेरे। (मा० ६।७८।१) आचरहीं–दे० 'आचरहिं'। आचरिये–करना, आचार करना। उ० जौं प्रपंच परिनाम प्रेम फिरि अनुचित आचरिये हो। (कृ० ३६) आचरु–आचरण करो, करो। उ० हरि-तोषन यह सुभ व्रत आचरु। (वि० २२५) आचरें–१ करने से, आचरण करने से, २ आचरण किया। उ० १ मिहाहु भज्यो भवजालु परम मंगलाचरे। (वि० ७४)

आचरन–(सं० आचरण)–१ चाल-चलन, व्यवहार, बर्ताव, २ शुद्धि, आचार संबंधी सफाई। उ० १ देखि देखि आचरन तुम्हारा। (मा० ७।४८।२)

आचरनु–दे० 'आचरन'। उ० १ सुभ आचरन कीन्ह नहिं काऊ। (मा० २।४७।४)

आचरनू–दे० 'आचरन'। उ० भायप भगति भरत आचरनू। (मा० २।२२३।१)

आचार–(सं०)–१ व्यवहार, चलन, रहन-सहन। २ चरित्र, ३ शील, ४ शुद्धि, सफाई। उ० १ जयति वर्णाश्रमाचार पर-नारिनर। (वि० ४४)

आचारहीं–करते हैं, आचार करते हैं।

आचारा–दे० 'आचार'। उ० १ सुमति सुसील, सरल आचारा। (मा० ७।६४।१)

आचारी–आचारवान, शुद्धि से रहनेवाला, चरित्रवान। उ० जो कर दंभ सो बड़ आचारी। (मा० ७।६८।३)

आचारु–दे० 'आचार'। उ० १ भूमि विप्र कुलवृद्ध गुरु वेद विदित आचारु। (मा० १।२८६)

आचारू–दे० 'आचार'। उ० १ वेद विहित अरु कुल आचारू। (मा० १।३१९।१)

आचार्य–(सं०)–१ गुरु, उपदेशक, २ पुरोहित, ३ पूज्य, ४ ब्रह्मसूत्र के चार प्रधान भाष्यकार।

आच्छन्न–(सं०)–१ ढका हुआ, आवृत, २ छिपा हुआ, तिरोहित।

आच्छादन–(सं०)–१ जो ढके या आच्छादित करे, ढकना, वस्त्र, २ छप्पर, छाजन।

आच्छादित–ढँका हुआ, छिपा, तिरोहित।

आच्छिप्त (सं० आक्षिप्त)–दे० 'आक्षिप्त'।

आछन्न–(सं० आच्छन्न) ढका तिरोहित, छिपा। उ० मायाछन्न न देखिए जैसे निर्गुण ब्रह्म। (मा० ३।३९ क)

आछी–(सं० अच्छ)–अच्छी, उत्तम, सुंदर, बढ़िया, भली। उ० मति अति नीचि ऊँचि रुचि आछी। (मा० १।८।४)

आछे–अच्छे, सुंदर। उ० आछे मुनि बेष धरे लाजत अनंग है। (क० २।१५)

आज–(सं० अद्य)–वर्तमान दिन, जो दिन बीत रहा हो। उ० आज विराजत राज है दसकंठ जहाँ को। (वि० १५२)

आजन्म–(सं०)–जीवन भर, आजीवन, जब तक जीवित रहे। उ० आजन्म ते परद्रोह रत। (मा० ६।१०४। छं०१)

आजानु–(सं०)–जाँघ तक लंबा, घुटने तक। उ० आजानु भुज सरचाप धर। (वि० ४५)

आजु–दे० 'आज'। उ० यहि मारग आज किसोर बधू। (क० २।२४)

आजू–दे–'आज'। उ० मुनिपद बंदि करिअ सोइ आजू। (मा० २।२१४।२)

आज्ञा–(सं०)–१ आदेश, हुक्म, बड़ा का छोटों को किसी काम के लिए कहना। २ स्वीकृति, अनुमति। उ० १ हौं पितु-आज्ञा प्रमान करि ऐहौं बेगि सुनहु दुति-दामिनि। (गी०२।५)

आज्ञाकारी–(सं० आज्ञाकारिन्)–आज्ञा या आदेश मानने वाला, दास, सेवक। उ० लोकपाल, जम, काल, पवन, रवि, ससि, सब आज्ञाकारी। (वि० ६८)

आज्य–(सं०)–घी, घृत।

आटोप–(सं०)–१ आच्छादन, फैलाव, २ गर्व, अहंकार। उ० १ घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी। (मा० ६।३६।५)

आठ–(सं० अष्ट)–८ की संख्या, चार का दूना। उ० वसुगुन आठ सदा उर रहहीं। (मा० ६।१६।१)

आठईं–आठवीं, अष्टमी, दोनों पक्षों की आठवीं तिथि। उ० आठईं आठ-प्रकृति-पर निर्विकार श्रीराम। (वि० २०३)

आठय–आठवाँ।

राम नाम-महिमा करै काम भूरुह आको। (वि० १५२)

आकर-(स०)-खान, घर। उ० सुखाकर सतां गति। (मा० ३।४।श्लो० ६) आकर-(स०)-१ खानि,उत्पत्ति स्थान, २ भंडार, खजाना, ३ भेद, जाति, किस्म, ४ श्रेष्ठ, उत्तम, ५ कुशल, दक्ष। उ० ३ आकर चारि लाख चौरासी। (मा०१।८।१)

आकरषति-(स० आकर्ष)-खींचती है। उ० अरुन अधर द्विज पाँति अनूपम ललित हँसनि जनु मन आकरषति। (गी० ७।१७) आकरषै-आकर्षित करे, खींचे। उ० आकरषै सुख संपदा संतोष बिचार। (वि० १०८) आकरष्यो-आकर्षित किया, अपनी ओर खींचा। उ० आकरष्यो सिय-मन समेत हरि। (गी० १।८८)

आकरी-खान खोदने का काम। उ० चाकरी न आकरी न खेती न बनिज भीख। (क० ७।६७)

आकर्ष-(स०)-१ खिंचाव, कशिश, २ पासे का खेल, ३ इंद्रिय, ४ कसौटी, ५ धनुष चलाने का अभ्यास, ६ चुंबक।

आकर्षन-(स० आकर्षण)-खींचने की शक्ति।

आकसमात-(स० अकस्मात्)-अचानक, एकाएक, सहसा, तत्क्षण। उ० जो पै आकसमात तें उपजै बुद्धि बिसाल। (स० ४८०)

आकांक्षा-(स०)-१ इच्छा, अभिलाषा, चाह, २ खोज, अनुसंधान।

आकार-(स०)-स्वरूप, आकृति, रूप। उ० कनक भूधराकार सरीरा। (मा० ५।१६।४)

आकाश-(स०)-आसमान, गगन, अंतरिक्ष। पंचतत्त्वों में से एक जिसका गुण शब्द है। शून्य। उ० चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं। (मा० ७।१०८। श्लो० १)

आकास-दे० 'आकाश'।

आकासबानी-(स० आकाशवाणी)-देववाणी, वह वाणी या शब्द जो आकाश से सुनाई दे।

आकिंचन-(स०)-१ किसी वस्तु की इच्छा न रखना, २ दरिद्रता। उ० १ आकिंचन इंद्रियदमन, रमन राम इकतार। (वै० २१)

आकु-दे० 'आक'। उ० खोजत आकु फिरहिं पय लागी। (मा० ७।११५।१)

आकुल-(स०)-दे० 'आकुल'। उ० १ जरत सुर असुर नरलोक शोकाकुलं। (वि० ११)आकुल-(स०)-१, व्यग्र, व्यस्त, व्याकुल, घबराया हुआ, २ विह्वल, कातर, ३ व्याप्त, भरा हुआ। उ० १ देखि परम बिरहाकुल सीता। (मा० ५।१४।४)

आकुलित-(स०)-१ व्याकुल, घबराया हुआ, २ व्याप्त। उ० १ धूमलीला अनल ज्वालमालाकुलित। (वि० २५)

आकृति-(स०)-आकार, रूप, बनावट, सूरत। उ० कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। (मा० १।१३७।४)

आकृष्ट-(स०)-आकर्षित, खिंचा हुआ।

आक्रांत-(स०)-१ आवृत, घिरा हुआ, २ वशीभूत, विवश पराजित, ३ जिस पर आक्रमण किया गया हो।

आक्षिप्त-(सं०)-फेंका हुआ, निक्षिप्त, दूषित। उ० तत्र आक्षिप्त तव विषम माया, नाथ! अंध मैं मंद व्यालाद गामी। (वि० ५६)

आक्षेप-(स०)-१ फेंकना, गिराना, २ आरोप, दोष लगाना, ३ निन्दा, ताना, कटूक्ति।

आखत-(स० अक्षत)-१ चावल, तंडुल, २ चंदन या केसर में रँगा चावल जो विवाह या पूजा के अवसर पर काम में आता है। ३ शुभ अवसर पर नेगी या पवनी को दिया जानेवाला अन्न। उ० १ आखत आहुति किए धातुधान। (गी० ५।१६)

आखर-(स० अक्षर)-वर्ण, क, ख, ग आदि अक्षर, हरफ। उ० अनमिल आखर अरथ न जापू। (मा० १।१५।३)

आखरजुग-(स० अक्षर+युग)-दो अक्षर, अर्थात् 'राम'।

आखु-(स०)-१ चूहा, मूस, २ देवताल, ३ सूअर, ४ कंजूस।

आखेट-(स०)-अहेर, शिकार, मृगया।

आख्य-(स०)-नामक, नाम के। उ० वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्। (मा० १।१। श्लो०६)

आगत-(स०)-१ आया हुआ, प्राप्त २ अतिथि, मेहमान। उ० १ सरनागत आगत पाहि प्रभो। (मा० ७।१४।१)

आगम-(स०)-१ अवाई, आगमन, २ भविष्य, ३ जन्म, ४ शब्द प्रमाण, ५ वेद, ६ तंत्रशास्त्र, ७ नीति। उ० ५ आगम निगम पुरान अनेका। (मा० ७।७४।२)

आगमन-(स०)-१ आना, अवाई, २ प्राप्ति, लाभ। उ० १ मुनि आगमन सुना जब राजा। (मा० १।२०७।१)

आगमनु-दे० 'आगमन'। उ० १ भरत आगमनु सूचक अहहीं। (मा० २।७।३)

आगमनू-दे० 'आगमन'। उ० १ सेवक सदन स्वामि आगमनू। (मा० २।६।३)

आगमी-(स० आगम=भविष्य)-ज्योतिषी, भविष्य का जाननेवाला, सामुद्रिक विचारनेवाला। उ० अवध आजु आगमी एकु आयो। (गी० १।१४)

आगर-(स० आकर)-खान, भंडार, समूह, ढेर, घर। उ० करुना सुखसागर सब गुन आगर। (मा० १।१९२।छं०२)

आगरि-दे० 'आगरी'। उ० लषन अनुज श्रुतिकीरति सब गुन आगरि। (जा० १७३)

आगरी-'आगर' का स्त्रीलिंग। उ० जेहि नामु श्रुतकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी। (मा० १।३२५।छं०३)

आगर्व-(स०)-विशेष गर्व, बहुत बड़ा घमंड। उ० उग्र आगर्वगर्व-गिरिमापहर्ता। (वि० २०)

आगवन-(स० आगमन)-दे० 'आगमन'।

आगवनु-दे० 'आगवन'।

आगवनू-दे० 'आगवन'। उ० १ कारन कवन भरत आगवनू। (मा० २।२२७।१)

आगार-(स०) १ घर, मंदिर, मकान, २ स्थान, जगह, ३ खज़ाना, कोष, ४ ढेर, भंडार। उ० ४ सुनु व्यालारि काल कलि मल अवगुन आगार। (मा० ७।१०२क)

आगि-(स० अग्नि)-आग। उ० और आगि लागी, न बुझावै सिंधु सावनो। (क० ५।१८)

आगिल-(स० अग्र) आगे का, अगाड़ा। उ० आगिल चरित सुनहु जस भयऊ। (मा० १।७१।१) आगिलि-'आगिल'

का स्त्रीलिंग, अगली। उ० आगिलि कथा सुनहु मन लाई। (मा० १।२०६।१)
आगिली–दे० 'आगिलि'।
आगिलो–दे० 'आगिल'। उ० घरनि मिधारिए सुधारिए आगिलो काज। (गी० १।८२)
आगी–दे० 'आगि'। उ० जीवत तें जागी आगी, चपरि चौगुनी लागी। (क० ५।१६)
आगू–दे० 'आगे'।
आगें–दे० 'आगे'। उ० १ सैल बिसाल देखि एक आगें। (मा० ५।३।४)
आगे–(सं० अग्र)–१ सामने, सम्मुख, २ पहिले, ३ जीते जी, ४ अनतर, बाद, ५ अतिरिक्त, अधिक, ६ गोद में।
आग्रह–(सं०)–१ अनुरोध, हठ, ज़िद, २ तत्परता, पराय णता, ३ बल, ज़ोर।
आघात–(सं०)–१ चोट, प्रहार, २ धक्का, ठोकर, ४ वध स्थान। उ० १ गजा वज्राघात समाना। (मा० ६।६४।१)
आचमन–(सं०)–१ जल पीना, २ शुद्धि के लिए मुँह में जल लेना ३ धर्म संबंधी कर्म के लिए दाहिने हाथ में जल लेकर मंत्र पढ़कर पीना, ४ पीने या हाथ मुँह धोने के लिए दिया गया जल।
आचमनु–दे० 'आचमन'। उ० ४ आदर सहित आचमनु दीन्हा। (मा० १।३२६।४)
आचरज–(सं० आश्चर्य)–१ अचंभा, विस्मय, तअज्जुब, २ आश्चर्य भरी बात। उ० २ कहेसि अमित आचरज बखानी। (मा० १।१६३।३)
आचरजु–दे० 'आचरज'। उ० १ जनि आचरजु करहु मन माहीं। (मा० १।१६३।१)
आचरत–१ आचरण करता, २ आचरण करता है। उ० १ खोटे खोटे आचरन आचरत अपनायो अजनीकुमार, सोध्यो रामपनि पाक हौं। (ह० ४०) आचरनि–आचरण करना। उ० १ सकल सराहैं निज निज आचरनि। (वि० १८४) आचरनी–दे० 'आचरनि'। उ० जिमि कुठार चंदन आचरनी। (मा० ७।३७।४) आचरहिं–आचरण करते हैं, व्यवहार करते हैं। उ० जे आचरहिं ते नर न घनेरे। (मा० ६।७८।१) आचरहीं–दे० 'आचरहिं'। आचरिबे–करना, आचार करना। उ० जौ प्रपंच परिनाम प्रेम फिरि अनुचित आचरिबे हो। (कृ० ३६) आचरु–आचरण करो, करो। उ० हरि तोपन यह सुभ व्रत आचरु। (वि० २२५) आचरे–१ करने से, आचरण करने से, २ आचरण किया। उ० १ विहालु भज्यो भयजालु परम मंगलाचरे। (वि० ७४)
आचरन–(सं० आचरण)–१ चाल-चलन, व्यवहार, बर्ताव, २ शुद्धि, आचार संबंधी सफाई। उ० १ देखि देखि आचरन तुम्हारा। (मा० ७।४८।२)
आचरनु–दे० 'आचरन'। उ० १ सुभ आचरन कीन्ह नहिं काऊ। (मा० २।४७।४)
आचरनू–दे० 'आचरन'। उ० भामप भगति भरत आचरनू। (मा० २।२२३।१)
आचार–(सं०)–१ व्यवहार, चलन, रहन-सहन। २ चरित्र, ३ शील, ४ शुद्धि, सफाई। उ० १ जयति धर्माधर्माचार-पर-नारिनर। (वि० ४४)
आचारहीं–करते हैं, आचार करते हैं।
आचारा–दे० 'आचार'। उ० १ सुमति सुसील, सरल आचारा। (मा० ७।३४।१)
आचारी–आचारवान, शुद्धि से रहनेवाला, चरित्रवान। उ० जो कर दंभ सो बड़ आचारी। (मा० ७।९८।३)
आचारु–दे० 'आचार'। उ० १ बूझि विप्र कुलवृद्ध गुरु वेद विदित आचारु। (मा० १।२८६)
आचारू–दे० 'आचार'। उ० १ वेद विहित अरु कुल आचारू। (मा० १।३१९।१)
आचार्य–(सं०)–१ गुरु, उपदेशक, २ पुरोहित, ३ पूज्य, ४ ब्रह्मसूत्र के चार प्रधान भाष्यकार।
आच्छन्न–(सं०)–१ ढका हुआ, आवृत, २ छिपा हुआ, तिरोहित।
आच्छादन–(सं०)–१ जो ढके या आच्छादित करे, ढकना, वस्त्र, २ छप्पर, छाजन।
आच्छादित–ढँका हुआ, छिपा, तिरोहित।
आच्छिप्त (सं० आक्षिप्त)–दे० 'आक्षिप्त'।
आछन्न–(सं० आच्छन्न) ढका तिरोहित, छिपा। उ० मायाछन्न न देखिए जैसे निर्गुण ब्रह्म। (मा० ३।३९ क)
आछी–(सं० अच्छ)–अच्छी, उत्तम, सुंदर, बढ़िया, भली। उ० मति अति नीचि ऊँचि रुचि आछी। (मा० १।८।४)
आछे–अच्छे, सुन्दर। उ० आछे मुनि वेष धरे लाजत अनंग हैं। (क० २।१५)
आज–(सं० अद्य)–वर्तमान दिन, जो दिन बीत रहा हो। उ० आज बिराजत राज है दसकंठ जहाँ को। (वि० १२२)
आजन्म–(सं०)–जीवन भर, आजीवन, जब तक जीवित रहे। उ० आजन्म ते परद्रोह रत। (मा० ६।१०४। छं० १)
आजानु–(सं०)–जाँघ तक लंबा, घुटने तक। उ० आजानु भुज सरचाप-धर। (वि० ४५)
आजु–दे० 'आज'। उ० यहि मारग आज किसोर बधू। (क० २।२४)
आजू–दे–'आज'। उ० मुनिपद बंदि करिअ सोइ आजू। (मा० २।२१४।२)
आज्ञा–(सं०)–१ आदेश, हुक्म, बड़ों का छोटों को किसी काम के लिए कहना। २ स्वीकृति, अनुमति। उ० १ हौं पितु-आज्ञा प्रमान करि ऐहौं बेगि सुनहु दुति-दामिनि। (गी० २।५)
आज्ञाकारी–(सं० आज्ञाकारिन्)–आज्ञा या आदेश मानने वाला, दास, सेवक। उ० लोकपाल, जम, काल, पवन, रवि, ससि, सब आज्ञाकारी। (वि० ९८)
आज्य–(सं०)–घी, घृत।
आटोप–(सं०)–१ आच्छादन, फैलाव, २ गर्व, अहंकार। उ० १ घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी। (मा० ६।३९।५)
आठ–(सं० अष्ट)–८ की संख्या, चार का दूना। उ० अवगुन आठ सदा उर रहहीं। (मा० ६।१६।१)
आठइँ–आठवीं, अष्टमी, दोनों पक्षों की आठवीं तिथि। उ० आठइँ आठ प्रकृति-पर निर्विकार श्रीराम। (वि० २०३)
आठव–आठवाँ।

आडंबर-(सं०)-१ ऊपरी बनावट, टीमटाम, ढोंग, २ गभीर शब्द, गर्जन, नाद ।
आड़ (सं० अल)-रोक, ओट, अड़ान, वारण ।
आड़ेहु-रोकना भी, आपना भी, वारण करना भी । उ० मागे भल आड़ेहु भलो, भलो न घाले घाउ । (दो०४२४)
आड़-(सं० अन)-आसरा, अवलंब, शरण । उ० ज्यों ज्यों जल मलीन त्यों-त्यों जमगन मुख मलीन लहैं आड़ न । (वि० २१)
आढ्य-(सं०)-सपन्न, पूर्ण, युक्त । उ० शोभाढ्य पीतवस्त्र सरसिज नयन । (मा०७।१।श्लो०१) आढ्यौ-(सं०)-आढ्य के द्विवचन का रूप, दोनों परिपूर्ण । उ० शोभाढ्यौ वर धन्विनौ । (मा०४।१।श्लो०१)
आतंक-(सं०)-१ रोब, दबदबा, प्रताप, २ डर, भय ।
आततायी-(सं० आततायिन्)-१ महापापी, अनिष्टकारी, २ आग लगानेवाला, २ वध के लिए उद्यत, ३ विष देनेवाला ।
आतनोति-(सं० आ+तनोति)-विस्तार करते हैं । उ० भाषा निबंध मति मंजुलमातनोति । (मा० १।१। श्लो० ७)
आतप-(सं०)-१ धूप, घाम, २ गर्मी, उष्णता, ३ सूर्य का प्रकाश, ४ ज्वर । उ० १ सहत दुसह बन आतप बाता । (मा० ४।१।५)
आतम-(सं० आत्म)- अपना, स्वकीय, निज का ।
आतमवादी-(सं० आत्मवादी)-आत्मा को ही संपूर्ण जगत रूप में माननेवाला, वेदांती । उ० जे मुनि नायक आतम बादी । (मा० ७।७०।३)
आतमा-(सं० आत्मा)-१ जीव, २ ब्रह्म । उ० १ ससय सिंधु नाम बोहित भजि निज आतमा न तार्यो । (वि० २०२)
आतिथ्य-(सं०)-अतिथि का सत्कार, पहुनाई, मेहमान दारी ।
आतुर-(सं०)-१ व्याकुल, व्यग्र, अधीर, २ उत्सुक, ३ दुखी, आर्त । उ० १ चला गगनपथ आतुर भयँ रथ हाँकि न जाइ । (मा० ३।२८)
आतुरता-(सं०)-घबराहट, बेचैनी, व्याकुलता । उ० तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै । (क० २।११)
आतुरताइ-उतावलापन, जल्दबाज़ी । उ० मुदित महरि लखि आतुरताइ । (कृ० १३)
आत्म-(सं०)-निज, अपना, स्वकीय ।
आत्मघात-(सं०)-आत्महनन, अपने को मारना ।
आत्मज-(सं०)-१ पुत्र, लड़का, २ कामदेव, काम, ३ रक्त । उ० २ भजहु तरनि अरि-आदि कहँ तुलसी आत्मज पत्त । (स० २२७)
आत्मजा-(सं०)-पुत्री, बेटी । उ० नग जनकात्मजा, मनुज मनुजप्य । (वि० ४०)
आत्मा-(सं०)-१ जीव, २ ब्रह्म, ३- मन । आतमाहन-(सं० आत्माहन्)-अपने को मारनेवाला, आत्म घातक । उ० सो कृतनिंदक मंदमति, आत्माहन गति जाइ । (मा० ७।४४)
आदर-(सं०)-सम्मान, सत्कार, प्रतिष्ठा । उ० तात बचन मम सुनु अति आदर । (मा० ६।१।५) आदरेण-आदर पूर्वक । उ० भरतादरेण ते पद । (मा० ३।७।१२)
आदरणीय-(सं०)-आदर के योग्य सम्मान्य ।
आदरत-आदर करते हैं । उ० इन्हहिं बहुत आदरत महा मुनि । (गी० २।४२) आदरहिं-आदर करते हैं। उ० सरल कवित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान। (मा० १।१४क) आदरहीं-आदर करते हैं । उ० जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं । (मा० १।१४।४) आदरिअ-आदर करना चाहिए । उ० सो आदरिअ करिय हित मानी। (मा० २।१७६।१) आदरिए-आदर कीजिए । उ० निज अभिमान मोह ईर्षा बस, तिनहि न आदरिए। (वि०१८१) आदरित-जिसका आदर किया गया हो, सम्मानित, आदृत। आदरियत-आदर करते हैं । उ० राखर खादरे लोक बेद हूँ आदरियत । (वि० १८३) आदरी-आदर किया । उ० जे ग्यान मान बिमत्त तव भवहरनि भक्ति न आदरी। (मा० ७।१३ छं० ३) आदरे-आदर करने से । उ० राखे आदरे लोक बेद हूँ आदरियत । (वि० १८३) आदरेहु-आदर किया । उ० नहिं आदरेहु भगति की नाईं । (मा० ७।११२।५) आदरै-आदर करते हैं । उ० जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरैं सुजान । (दो० १४२) आदरौं-आदर करो । उ० साइ आदरौं आस जाके जिय धारि बिलोचत घी की । (कृ०४३) आदर्‌यो-आदर किया । उ० तुलसी राम जो आदर्‌यो खोटो खरो खरोइ । (दो०१०९)
आदरु-दे० 'आदर' । उ० आनि प्रिया आदरु अति कीन्हा। (मा० १।१०७।२)
आदर्श-(सं०)-१ नमूना, अनुकरण करने योग्य, उच्च, २ शीशा, दर्पण ।
आदा-(सं० अद्)-खानेवाला, भक्षक । उ० दोउ हरि भगत काग उरगादा । (मा०७।२४।३)
आदान-(सं०)-ग्रहण, लेना, स्वीकार ।
आदि-(सं०)-१ प्रथम, पहला, आरंभ का, २ परमेश्वर, ३ आरंभ, शुरू, ४ इत्यादि, वगैरह, आदिक । उ० ४ ब्यास आदि कवि पुंगव नाना । (मा० १।१४।१) आदिअंभोज-(सं०)-प्रथम कमल जिससे ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई । उ० मनहुँ आदिअंभोज बिराजत । (गी० २।५०) आदिहु-आरंभ ही, शुरू ही । उ० आदिहु तें सब कथा सुनाई । (मा० ५।३३।२)
आदिक-(सं०)-आदि, इत्यादि । उ० निरस्य इंद्रियादिकं । (मा० ३।४। श्लो० ८) आदिक-(सं०)-आदि, वगैरह। उ० होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ । (मा० १।२२।२)
आदिकवि-(सं० आदि +कवि)-प्रथम कवि, १ वाल्मीकि, २ शुक्राचार्य । उ० १ जान आदिकबि नाम प्रतापू। (मा० १।१९।२)
आदित-(सं० आदित्य)-दे० 'आदित्य' । उ० १ दुइ है रहे हैं रघु आदित उवन के । (क० ६।२)
आदित्य-(सं०)-अदिति से उत्पन्न, १ सूर्य, २ देवता ।
आदिवराह-(सं० आदि +वाराह)-वाराह रूपधारी विष्णु का अवतार, वाराह भगवान, शूकर भगवान । उ० आदि वराह बिहरि बारिधि मनो उठ्यो है दसन धरि धरनी। (गी० २।५०)

आदी-(सं० आदि)-वगैरह, आदि। उ० अज महेस नारद सनकादी। (मा० ६।१०४।१)
आदेय-(सं० आदेय)-लेने के योग्य, स्वीकार्य।
आदेश-(सं०)-१ आज्ञा, हुक्म, २ उपदेश, ३ प्रणाम। उ० १ आयसु आदेश बाबा भलो भलो भाव सिद्ध। (क० ७।१४०)
आध-(सं० अर्द्ध)-आधा, किसी वस्तु के दो बराबर भागों में से एक। उ० मोसे कूर कायर कुपूत कौड़ी आध के। (वि० १७६)
आधा-दे० 'आध'। उ० आधा कटकु कपिन्ह संघारा। (मा० ६।४८।२)
आधार-(सं०)-१ आश्रय, सहारा, अवलंब, २ नाव धुनि याद, ३ आश्रय देनेवाला, पालनकर्त्ता। उ० १ लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार। (मा० १।१९७)
आधारा-दे० 'आधार'। उ० १ जय अनंत जय जग दाधारा। (मा० ६।७७।२)
आधि-(सं०)-मानसिक व्यथा, चिंता, शोच, फ़िक्र। उ० आधि-मगन मन, व्याधि विकल तन। (वि० १६४)
आधिदैविक-(सं०)-देवों द्वारा प्रेरित, देवताकृत।
आधिभौतिक-(सं०)-भूतों या शरीरधारियों द्वारा प्रेरित या किया गया। उ० आधिभौतिक बाधा भई, ते किंकर तोरे। (वि० ८)
आधीन-(सं० अधीन)-आश्रित, जो किसी के अधिकार में हो, विवश, लाचार, मातहत। उ० नाम आधीन साधन अनेक। (वि० ४६)
आधीना-दे० 'आधीन'। उ० जानि नृपहि आपन आधीना। (मा० १।१६८।१)
आधीश-(सं० अधीश)-स्वामी, मालिक, राजा।
आधु-दे० 'आध'। उ० बिगरी जनम अनेक की, सुधरत पल लगै न आधु। (वि० १६३)
आधे-दे० 'आध'। उ० उभय भाग आधे कर कीन्हा। (मा० १।१९०।१)
आधेय-(सं०)-१ आधार पर स्थित वस्तु, किसी के सहारे रहनेवाला, २ स्थापनीय, ठहराने योग्य।
आनँद-(सं० आनंद)-दे० 'आनंद'। उ० तुलसी लगन लै दीन्ह मुनिन्ह महेस आनँद-रंग-मगे। (पा० ९६) आनँदकँद-दे० 'आनदकंद'। आनँदहू-'आनँद' भी। उ० आनँदहू के आनँददाता। (मा० १।२१७।१)
आनँदु-दे० 'आनँद'। उ० आनँदु भय अनुमद तोरें। (मा० २।४३।४)
आनंद-(सं०)-हर्ष प्रसन्नता, आह्लाद, सुख। उ० मयना मद दान के दाता। (मा० २।४४।१) आनंदकंद-सुख की जड़, जिससे आनंद हो, सुखमूल। आनंदकर-आनंद देनेवाला सुखकारी। आनंदकारी-सुखकारी, सुख देनेवाला। आनंदद-आनंद देनेवाला, सुखप्रद। उ० सदा शंकर, शंप्रद सज्जनानंदद। (वि० १२) आनंदनि-आनंद करना। उ० हँसनि, खेलनि, किलकनि, आनंदनि भूपति-भवन बसाइहौं। (गी० १।१८) आनंदप्रद-आनंद प्रदान करनेवाला। उ० जय जनकनगर आनंदप्रद, सुख सागर सुखमाभवन। (क० ७।११२)



आनंदवन-(सं०) काशी, बनारस, सप्तपुरियों में से एक। उ० शेष सर्वेश आसीन आनंदवन। (वि० ११)
आनंदा-दे० 'आनंद'। उ० जय जय अविनासी सब घट बासी, व्यापक परमानंदा। (मा० १।१८६। छं० २)
आन (१)-(सं० आणि)-१ मर्यादा, सीमा, २ प्रतिज्ञा, ३ क़सम, शपथ।
आन-(२)-(फ़ा०)-१ प्रतिष्ठा, शान, २ अदा, ३ अकड़, ४ विजय घोषणा। उ० ४ बिस्वनाथ पुर फिरी आन कलिकाल की। (क० ७।१६६)
आन (३)-(अर०)-१ समय, २ पल, क्षण।
आन (४)-(सं० अन्य)-दूसरा, और। उ० तौ घर रहहु न आन उपाई। (मा० २।११६।४) आनहिं (१)-दूसरे को। उ० बूड़हिं आनहि बोरहिं जेई। (मा०६।३।४)
आनक-(सं०)-१ डंका, भेरी, दुंदुभी, नगाड़ा, २ गरजता हुआ बादल। उ० १ पनवानक निर्झर, अलि उपंग। (गी० २।४८)
आनत-१ ले आता है, २ लाते ही, ले आते ही। उ० २ उर धरत आनत कोटि कुचाली। (मा० २।२६१।२) आनति (१)-१ ले आती हैं। २ ले आने से। आनब-लाऊँगा, ले आऊँगा। उ० हरि आनब मैं करि निज माया। (मा० १।१६६।२) आनबी-ले आओ, लाओ। आनसि-लाता है, ले आता है। उ० उत्तर प्रति उत्तर बहु आनसि। (मा० ७।११२।७) आनहिं (२)-१ लावे, ले आवे। २ ले आते हैं। उ० १ आनहिं नृप दसरथहि बोलाई। (मा० १।२८७।१) आनहुँ-ले आऊँ। आनहु-ले आओ, लाओ। उ० आनहु रामहि बेगि बोलाई। (मा० २।३६।१) आना (१)-लाया, ले-आया। उ० कुल कलंकु तेहिं पावँर आना। (मा० १।२८४।२) आनि (१)-लाकर, ले आकर। उ० छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गंगाजू को। (क० २।१०) आनिअ-ले आइए। उ० बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुजबल खलदल जीति। (मा० ४।३१) आनिए-ले आइए, लाइए। उ० परिनाम मंगल आनि अपने आनिए धीरजु हिएँ। (मा० २।२०१। छं० १) आनिबी-लावेंगे, ले आवेंगे। उ० रिपुहि जीति आनिबी जानकी। (मा० ४।३२।२) आनिय-लाइए, ले आइए। उ० देवि! सोच परिहरिय, हरष हिय आनिय। (जा० मं० ८४) आनियहि-ले आओ, लाओ। उ० ब्रज आनियहि मनाइ पाँय परि कान्ह कूबरी रानी। (कृ० ४८) आनिहि-लाया, ले आया। उ० सूनें हरि आनिहि पर नारी। (मा० ६।३०।३) आनिहैं-लाएँगे, ले आएँगे। उ० कपि सेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहि आनिहैं। (मा० ४।३०। छं० १) आनिहौं-लाऊँगा, ले आऊँगा। उ० जैसी मुख कहौं तैसी जीय जब आनिहौं। (क० ७।६३) आनी-आनकर, लाकर, ले आकर। उ० अस बरु तुम्हहि मिलाउब आनी। (मा० १।८०।२) आनु-लाओ, ले आओ। उ० बेगि आनु जल पाय पखारू। (मा० २।१०१।१) आनू-ले आओ, लाओ। उ० छाड़िअन बान सरासन आनू। (मा० २।२८।१) आने-लाये, ले आए। उ० सादर अरघ दइ घर आने। (मा० २।६।२) आनेउ-लाए, ले आए। उ० आनेउ भवन समेत तुरंता। (मा० ६।५५।७)

उ० आसु श्वास सर देव को, श्रह आसम हरियाम। (स० २७८)
आस (२)-(स० आशा)-१ उम्मीद, आसरा, आशा, २ लालच, ३ लालसा, कामना। उ० १ आस पियास मनोमलहारी। (मा० ११४३।१)
आसक्त-(स०)-१ अनुरक्त, लीन, लिप्त, फँसा हुआ, २ मुग्ध, लुब्ध, मोहित। उ० १ काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुखरूप। (मा० ७।७३क)
आसन-(स०)-१ वह वस्तु जिसपर बैठा जाय, २ बैठने या रति करने की विधि। योग में पाँच प्रकार के आसन हैं और कामशास्त्र में ८४ प्रकार के। उ० १ अति पुनीत आसन बैठारे। (मा० ११४५।३) आसनन्हि-आसनों पर। उ० सुभग आसनन्हि मुनि बैठाए। (मा० ११३५१।२)
आसनु-दे० 'आसन'। उ० १ बाम भाग आसनु हर दीन्हा। (मा० ११९०७।२)
आसन्न-(स०)-निकट आया हुआ, समीपस्थ, प्राप्य।
आसय-(स० आशय)-दे० 'आशय'।
आसरा-(सं० आश्रय)-सहारा, आधार, अवलंब।
आसरो-(प्र०)-दे० 'आसरा'। उ झूठे साँचे आसरो साहिब रघुराउ मैं। (वि० २६१)
आसा-(स० आशा)-दे० 'आशा'। उ० १ नृपन्ह केरि आसा निसि नासी। (मा० ११२५५।१) २ देखु बिभीषन दच्छिन आसा। (मा० ६।१३।१)
आसिरवचन-(स०।आशीर्वचन)-आशीर्वाद, आसीस। उ० आसिरवचन लहे प्रिय जी के। (मा० २।२४६।२)
आसिरबाद-(स० आशीर्वाद)-आशीर्वाद, आसीस दुआ। उ० बड़ी बयस बिधि भयो दाहिनो सुरगुरु आसिरबाद। (गी० १।२)
आसिरबादु-दे० 'आसिरबाद'। उ० आसिरबादु बिप्रबर दीन्हा। (मा० २।१२५।१)
आसिष-(सं० आशिष)-आशीर्वाद, आसीस, दुआ। उ० तुलसी मसुदित सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई। (मा० २।७५। छं० १)
आसिषा-दे० 'आसिष'। उ० औरउ एक आसिषा मोरी। (मा० ७।१०४।८)
आसीन-(स०)-बैठा हुआ, विराजमान, स्थापित, स्थित। उ० सुख आसीन तहाँ द्वौ भाई। (मा० ४।१३।३)
आसीना-दे० 'आसीन'। उ० जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। (मा० ११५४।३)
आसु-(स० आशु)-शीघ्र, जल्दी, तुरत।
आसुतोष-(स० आशुतोष)-शीघ्र प्रसन्न होनेवाले। उ० आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। (मा० २।४४।४)
आसू-दे० 'आसु'। उ० जारइ भुवन चारिदस आसू। (मा० ६।५५।१)
आस्पद-(स०)-१ स्थान, मूल स्थान, २ कार्य, ३ पद, ४ कुल, जाति, गोत्र, वंश, ५ कुंडली में दसवाँ स्थान। उ० १ सर्व सुखधाम गुनग्राम विश्रामपद नाम सर्वास्पद मति पुनीत। (वि० ५३)
आस्रम-दे० 'आश्रम'। उ० १ आस्रम आवत चले, सगुन न भए भले। (गी० ३।६) आस्रमनि-दे० 'आश्रमनि'। उ० रामसीय आस्रमनि चलत त्यो भए न श्रमित अभागे। (वि० १७०)
आस्रमी-दे० 'आश्रमी'।
आस्वाद-(स०)-रस, ज़ायका, स्वाद।
आह-(स० अहह)-पीड़ा, खेद, दुःख, ग्लानिसूचक शब्द, कराहना, हाय। उ० आह दइअ मैं काह नसावा। (मा० २।१६३।३)
आहट-(हिं० आ (आना)+हट (प्रत्यय))-१ आने का शब्द, पाँव की चाप, २ पता, टोह।
आहन-(फ़ा०)-लोहा। उ० चुंबक आहन रीति जिमि सतन हरि सुख धाम। (स० ४२३)
आहहिं-हैं। उ० जद्यपि ब्रह्मनिरत मुनि आहहिं। (मा० ७।४२।४) आहिं-है। उ० कहहिं जोतिषी आहि बिधाता। (मा० ११३१२।४) आहि-(अव०)-१ है, २ हैं, ३ हो। उ० २ एते मान अकस कीबे को आप आहि को? (क० ७।१००) आही-था। उ० राजधनी जो जेठ सुत आही। (मा० ११५३।३)
आहार-(सं०)-खाना, भोजन। उ० रुधिर रूप आहार-बस्य उन पावक लोह न जान्यो। (वि० ६२)
आहुति-(स०)-हवन की सामग्री, हव्य, हवन, आग को बढ़ाने के लिए उसमें डाली जानेवाली सामग्री। उ० लखन उतर आहुति सरिस भृगुबर कोपु कृसानु। (मा० ११२७६)
आह्लाद-(स०)-आनन्द, खुशी।

# इ

इंगित-(स०)-अभिप्राय को व्यक्त करने की तदनुरूप चेष्टा, संकेत, इशारा।
इंदारुन-(स० इन्द्रवारुणी)-एक लता और उसका फल। फल देखने में बहुत ही सुन्दर नारंगी जैसा पर कड़वा होता है। इन्द्रायन।
इंदिरा-(स०)-१ लक्ष्मी, २ शोभा, कांति। उ० १ मती बिधात्री इंदिरा देखीं अमित अनूप। (मा० ११५४)
इंदीवर-(सं०)-१ नील कमल, २ कमल। उ० १ कुन्देन्दीवर सुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ। (मा० ४।१। श्लो० १)

आर्त-(सं० आर्त्त)-दुखी, पीड़ित, कादर।
आर्ति-(सं० आर्त्ति)-पीड़ा, दुःख। उ० चरित निरुपाधि त्रिविधार्ति-हर्त्ता। (वि० ४३)
आर्द्र-(सं०)-गीला, भीगा हुआ।
आर्य-(सं०)-श्रेष्ठ उत्तम, भला, बड़ा।
आलय-(सं०)-घर, मकान, गृह। उ० सर्व सर्वगत सर्व उरालय। (मा० ७।३४।४)
आलबाल-(सं० आलवाल)-थाला, पेड़ में पानी देने के लिए मिट्टी की बनी मेंड़, थाँवला। उ० मनिमय आल बाल कल करनी। (मा० १।३४४।४)
आलस (१)-(सं० आलस्य)-सुस्ती, काहिली, अकर्मण्यता। उ० आलस, अनख, न आचरज, प्रेमपिहानी जानु। (दो० ३२७)
आलस (२)-(सं०)-आलसी, सुस्त, काहिल। आलसवत-आलस्य से भरे हुए। उ० आलसवत सुभग लोचन सखि छिन मूँदत, छिन देत उघारी। (कृ० २२) आलसहूँ-आलस्य से भी, आलस्य में भी। उ० मायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। (मा० १।२८।१)
आलसि-आलसी, काहिल। उ० भागत अभाग, अनुरागत विराग, भाग जागत, आलसि तुलसी हू से निकास को। (क० ७।७५)
आलसी-सुस्त, काहिल, अकर्मण्य। उ० आलसी अभागे मोसे तैं कृपालु पाले पोसे। (वि० २५०) आलसिन्ह-आलसियों, आलसी का बहुवचन। उ० आलसिन्ह की देव सरि सिय सेइयहु मन मानि (गी० ७।३२)
आलसु-दे० 'आलस'। उ० सौ कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं। (मा० १।८।१२)
आलान-(सं०)-१ हाथी बाँधने का खभा या रस्सा, २ बंधन।
आलि-१ सखी, संगिनी, सहेली, २ पंक्ति, अवलि। उ० धरि धीरजु एक आलि सयानी। (मा० १।२३४।१)
आली (१)-(सं०)-दे० 'आलि'। उ० १ अस कहि मन बिहसी एक आली। (मा० १।२३४।३)
आली (२)-(सं० आर्द्र)-नम, भींगा।
आले-(सं० आर्द्र)-गीला, नम, कच्चा, जो पका न हो। उ० आले ही बाँस के माँड़व मनिगन पूरन हो। (रा० ३)
आलोक-(सं०)-प्रकाश, रोशनी, चमक। उ० चक्र आलोक त्रैलोक्य-सोकापह। (वि० ५१)
आवरण-(सं०)-ढँकना, परदा, दीवाल।
आवर्त्त-(सं०)-१ पानी का भँवर, भँवर, २ संसार। उ० १ फिरि गर्भगत आवर्त्त संसृति चक्र जेहि होइ सोइ कियो। (वि० १३६)
आवलि-(सं०)-पंक्ति, श्रेणी, कतार। उ० नयनन्हि नीर रोमावलि ठाढ़ी। (मा० १।१०४।१)
आवली-(सं०)-पंक्ति, श्रेणी। उ० रोमावली लता जनु नाना। (मा० ६।१६।३)
आवाँ-(सं० आपाक)-बर्तन पकाने का गड्ढा।
आवागमन-(आवा+सं० गमन)-१ आना जाना, २ बार-बार मरना और जन्म लेना। उ० २ साइ मत बर फल पावै आवागमन नसाइ। (वि० २०३)
आवाहन-(सं०) मंत्र द्वारा किसी देवता को बुलाना, आमंत्रित करना।
आविर्भाव-(सं०)-आना, पैदा होना, प्रकट होना, जन्म।
आवृत-(सं०)-छिपा हुआ, ढका हुआ, घिरा हुआ, आच्छादित।
आवृत्ति-(सं०)-बार-बार किसी कार्य को करना, अभ्यास।
आवेश-(सं०)-आतुरता, चित्त की प्रेरणा, वेग, जोश।
आवै-आवे, आ जावे। उ० जौं आवै मर्कट कटकाई। (मा० ५।३७।२)
आशंका-(सं०)-१ डर, भय, २ शक, संदेह।
आशय-(सं०)-१ अभिप्राय, मतलब, २ वासना, इच्छा ३ गड्ढा, ४ स्थान, जगह।
आशा-(सं०)-१ आसरा, भरोसा, उम्मीद, अप्राप्त के पाने की इच्छा और थोड़ा बहुत निश्चय, २ दिशा।
आशिष-(सं०)-आशीर्वाद, आसीस, दुआ।
आशु-(सं०)-शीघ्र, जल्दी, तुरत।
आशुतोष-(सं०)-शीघ्र संतुष्ट होनेवाला, तुरत प्रसन्न होने वाला, शिव।
आश्चर्य-(सं०)-विस्मय, अचंभा, ताअज्जुब।
आश्रम-(सं०)-१ ऋषियों का निवासस्थान, तपस्या की जगह, कुटीर, २ ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम। उ० १ पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं। (मा० १।४५।१) २ जयति वर्णाश्रमाचार-पर नारिनर, सत्य-शम-दम-दया-दान-शीला। (वि० ४१) आश्रमनि-आश्रमों में। उ० भुवन कानन आश्रमनि रहि मोद मंगल छाइ। (गी० ७।२४) आश्रमन्ह-१ बहुत से आश्रम, आश्रम का बहुवचन, २ आश्रमों को। उ० २ सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए। (मा० १।४५।२) आश्रमन्हि-आश्रमों में। उ० करहिं जोग जप जाग तप निज आश्रमन्हि सुछंद। (मा० २।१३४) आश्रमहिं-आश्रम में। उ० करि सनमानु आश्रमहिं आने। (मा० २।१२५।१)
आश्रमी-१ आश्रम में रहनेवाला, २ ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों में से किसी को धारण करनेवाला। उ० २ जिमि हरि भगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि। (मा० ४।१६)
आश्रमु-दे० 'आश्रम'। उ० १ आश्रमु देखि नयन जल छाए। (मा० १।४५।३)
आश्रय-(सं०)-आधार, सहारा, स्थान। उ० सब सब प्रेम अजाश्रय भारी। (मा० ३।४४।१)
आश्रित-(सं०)-सहारे पर टिका हुआ, भरोसे पर रहने वाला, शरणागत। उ० जदि बिधि जग हरि आश्रित रहई। (मा० १।११८।१) आश्रितः-(सं०)-संस्कृत में आश्रित का प्रथमा एकवचन का रूप, आश्रित। उ० यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते। (मा० १।१।श्लो०३)
आश्वासन-(सं०)-दिलासा, समझौता, सांत्वना।
आषै-(सं० आख्यान)-कहे। उ० सत्यसंध साँचे सदा जे आखर आषै। (गी० १।६)
आसंका-(सं० आशंका)-दे० 'आशंका'।
आस (१)-(सं० आस)-निवास, वास, रहने की जगह।

उ० जासु आस सर देय को, अह आसम हरियाम। (स० २७८)

आस (२)–(सं० आशा)–१ उम्मीद, आसरा, आशा, २ लालच, ३ लालसा, कामना। उ० १ आस पियास मनोमलहारी। (मा० १।४३।१)

आसक्त–(सं०)–१ अनुरक्त, लीन, लिप्त, फँसा हुआ, २ मुग्ध, लुब्ध, मोहित। उ० १ काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुखरूप। (मा० ७।७३क)

आसन–(सं०)–१ वह वस्तु जिसपर बैठा जाय, २ बैठने या रति करने की विधि। योग में पाँच प्रकार के आसन हैं और कामशास्त्र में ८४ प्रकार के। उ० १ अति पुनीत आसन बैठारे। (मा० १।४५।३) आसनन्हि–आसनों पर। उ० सुभग आसनन्हि मुनि बैठाए। (मा० १।३५१।२)

आसनु–दे० 'आसन'। उ० १ बाम भाग आसनु हर दीन्हा। (मा० १।१०७।२)

आसन्न–(सं०)–निकट आया हुआ, समीपस्थ, प्राप्य।

आसय–(सं० आशय)–दे० 'आशय'।

आसरा–(सं० आश्रय)–सहारा, आधार, अवलंब।

आसरो–(सं०)–दे० 'आसरा'। उ० झूठे साँचे आसरो साहिब रघुराउ मैं। (वि० २६१)

आसा–(सं० आशा)–दे० 'आशा'। उ० १ नृप हेरि आसा निसि नासी। (मा० १।२५५।१) २ देखु बिभीषन दच्छिन आसा। (मा० ६।१३।१)

आसिरबचन–(सं० आशीर्वचन)–आशीर्वाद, आसीस। उ० आसिरबचन लहे प्रिय जी के। (मा० २।२४६।२)

आसिरबाद–(सं० आशीर्वाद)–आशीर्वाद, आसीस दुआ। उ० बड़ी बयस बिधि भयो दाहिनो सुरगुरु आसिरबाद। (गी० १।२)

आसिरबादु–दे० 'आसिरबाद'। उ० आसिरबादु बिप्रबर दीन्हा। (मा० २।१२५।१)

आसिष–(सं० आशिष)–आशीर्वाद, आसीस, दुआ। उ० तुलसी मुदित सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई। (मा० २।७१। छं० १)

आसिषा–दे० 'आसिष'। उ० औरउ एक आसिषा मोरी। (मा० ७।१०४।८)

आसीन–(सं०)–बैठा हुआ, विराजमान, स्थापित, स्थित। उ० सुख आसीन तहाँ द्वौ भाई। (मा० ४।१३।२)

आसीना–दे० 'आसीन'। उ० जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। (मा० १।५४।३)

आसु–(सं० आशु)–शीघ्र, जल्दी, तुरत।

आसुतोष–(सं० आशुतोष)–शीघ्र प्रसन्न होनेवाले। उ० आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। (मा० २।४४।४)

आसू–दे० 'आसु'। उ० जारइ भुवन चारिदस आसू। (मा० ६।२४।१)

आस्पद–(सं०)–१ स्थान, मूल स्थान, २ कार्य, ३ पद, ४ कुल, जाति, गोत्र, वंश, ५ कुंडली में दसवाँ स्थान। उ० १ सर्व सुखधाम गुनग्राम विश्रामपद नाम सर्वास्पद मति पुनीत। (वि० ५३)

आस्रम–दे० 'आश्रम'। उ० १ आस्रम आवत चले, सगुन न भए भले। (गी० ३।६) आस्रमनि–दे० 'आश्रमनि'। उ० रामसीय आस्रमनि चलत त्यों भए न श्रमित अभागे। (वि० १७०)

आस्रमी–दे० 'आश्रमी'।

आस्वाद–(सं०)–रस, ज़ायका, स्वाद।

आह–(सं० अहह)–पीड़ा, खेद, दु:ख, ग्लानिसूचक शब्द, कराहना, हाय। उ० आह दइअ मैं काह नसावा। (मा० २।१६३।३)

आहट–(हिं० आ (आना)+हट (प्रत्यय))–१ आने का शब्द, पाँव की चाप, २ पता, टोह।

आहन–(फ़ा०)–लोहा। उ० चुंबक आहन रीति जिमि सतन हरि सुख धाम। (स० ४२३)

आहहिं–हैं। उ० जद्यपि ब्रह्मनिरत मुनि आहहिं। (मा० ७।४२।४) आहिं–हैं। उ० कहहिं जोतिषी आहिं बिधाता। (मा० १।३१२।४) आहि–(अव०)–१ है, २ हैं, ३ हो। उ० २ एते मान अकस कीबे को आप आहि का? (क० ७।१००) आही–था। उ० राजधनी जो जेठ सुत आही। (मा० १।१५३।३)

आहार–(सं०)–खाना, भोजन। उ० रुचिर रूप आहार-बस्य उन पावक लोह न जान्यो। (वि० ९२)

आहुति–(सं०)–हवन की सामग्री, हव्य, हवन, आग को बढ़ाने के लिए उसमें डाली जानेवाली सामग्री। उ० लखन उतर आहुति सरिस भृगुबर कोपु कृसानु। (मा० १।२७६)

आह्लाद–(सं०)–आनन्द, खुशी।

## इ

इंगित–(सं०)–अभिप्राय को व्यक्त करने की तदनुरूप चेष्टा, संकेत, इशारा।

इँदारुन–(सं० इन्द्रवारुणी)–एक लता और उसका फल। फल देखने में बहुत ही सुन्दर नारंगी जैसा पर कड़वा होता है। इन्द्रायन।

इंदिरा–(सं०)–१ लक्ष्मी, २ शोभा, कांति। उ० १ सती बिधात्री इंदिरा देखीं अमित अनूप। (मा० १।५४)

इंदीवर–(सं०)–१ नील कमल, २ कमल। उ० १ कुन्देन्दीवर सुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ। (मा० ४।१। श्लो० १)

इंदु-(सं०)-१ चन्द्रमा, २ कपूर। उ० २ कुंद इंदु सम देह उमारमन करुना अयन। (मा० १।१। सो० ४)

इंदुकर-(सं०)-चन्द्रमा की किरण, चाँदनी। उ० प्रनतजन कुमुदवन इंदुकर-जालिका। (वि० ४८)

इंद्र-(सं०)-१ एक पानी के देवता जो अन्य देवताओं के राजा हैं। मघवा। इंद्र का स्थान इंद्रलोक है। ये बहुत ही ऐश्वर्यशाली एवं कामुक हैं। विश्व-सुन्दरी अहल्या जब इनसे नहीं ब्याही गई तो ये उसके पीछे पड़े और छल में छल से रतिदान (दे० 'अहल्या') प्राप्त किया, जिसके फलस्वरूप मुनि शाप से सहस्र भगवाले हो गए। राम स्वयंवर में उनके दर्शन से इनके भग नेत्र हो गए और ये सहस्राक्ष कहलाए। एक बार गुरु बृहस्पति का सत्कार न करने के कारण देवताओं के साथ इन्हें असुरों से परास्त होना पड़ा था। फिर ब्रह्मा की शरण में जाने पर विश्वरूप ऋषि इनके गुरु बने और ये विजयी हुए। इंद्र अर्जुन के पिता माने जाते हैं और बहुत ही वीर कहे जाते हैं। मेघनाद ने भी इनको परास्त किया था। २ ऐश्वर्य ३ श्रेष्ठ, ४ स्वामी, मालिक। उ० ३ योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम्। (मा० ६।१। श्लो० १)

इंद्रजाल-(सं०)-१ मायाकर्म, जादूगरी, तिलस्म, बाजीगरी, २ माया, मोह। उ० २ सोनर इंद्रजाल नहिं भूला। (मा० ३।३९।२)

इंद्रजालि-(सं० इन्द्रजालिन्)-इंद्रजाल करनेवाला, बाजीगर, जादूगर, मायावी। उ० इंद्रजालि कहुँ कहिअ न बीरा। (मा० ६।२६।५)

इंद्रजित-(सं० इंद्रजित्)-इंद्र को जीतनेवाला, मेघनाद। उ० चला इंद्रजित अतुलित जोधा। (मा० २।१६।२)

इंद्रजीत-दे० 'इंद्रजित'। उ० इंद्रजीत आदिक बलवाना। (मा० ६।३४।६)

इँद्रजीता-दे० 'इंद्रजीत'। उ० लछिमन इहाँ, हत्यो इँद्रजीता। (मा० ६।११६।५)

इंद्रनील-(सं०)-नीलम, नील मणि। उ० इंद्रनील-मनि स्याम सुभग अंग, अंग मनोजनि बहु छबि छाई। (गी० १।१०६)

इंद्रानी-(सं० इंद्राणी)-१ इंद्र की पत्नी, शची, २ इन्द्रायन।

इंद्रिन-'इंद्रियाँ'। उ० निसि दिन भ्रमत बिसारि सहज सुख जहँ तहँ इंद्रिन-तान्यो। (वि० ८८) इंद्रिय-(सं०)-वह शक्ति या शरीरावयव जिससे बाहरी विषयों का ज्ञान प्राप्त होता है। इंद्रियों के दो विभाग किए गए हैं। ज्ञानेंद्रिय (चक्षु, श्रोत्र, नासिका, त्वचा और रसना) तथा कर्मेंद्रिय (वाणी, हाथ, पैर, गुदा और लिंग)। कुछ लोग मन को भी इंद्रिय मानते हैं। उ० बुद्धि मन इंद्रिय प्रान चित्तातमा, काल परमानु चिच्छक्ति गुर्वी। (वि० ५४)

इंद्री-(सं० इंद्रिय)-दे० 'इंद्रिय'।

इंद्रीजित-(सं० इंद्रियजित्)-जिसने इंद्रियों को जीत लिया हो, सिद्ध।

इंद्रीजीता-दे० 'इंद्रीजीत'। उ० अति अनन्य गति इंद्री जीता। (वै० १७)

इंधन-(सं०)-जलाने की लकड़ी। उ० दहन राम गुन ग्राम जिमि इंधन अनल प्रचंड। (मा० १।३२ क)

इँनारुन-दे० 'इँदारुन'। उ० बिनु हरि भजन इँनारुन के फल, तजत नहीं करुआई। (वि० १७५)

इ (१)-(सं०)-१ कामदेव, २ क्रोध।

इ (२)-(अव्य०)-१ यह, २ ही।

इक-(सं० एक)-एक। उ० मुदित माँगि इक धनुही नृप हँसि दीन। (ब० १६)

इकीस-(सं० एकविंशत्)-१ इक्कीस, बीस और एक की संख्या, २ अधिक। उ० १ तुलसी तेहि औसर लावनिता, दस, चारि, नौ, तीनि, इकीस सबै। (क० १।७)

इखु-(सं० इषु)-बाण, तीर। उ० तुलसी इखु मद राग धर तारन तरन अधार। (स० २३७)

इगारहों-(सं० एकादश)-ग्यारहवाँ। उ० तुलसी कियो इगारहो बसनबेष जदुनाथ। (दो० १६८)

इच्छत-चाहता हुआ, इच्छा करता हुआ। उ० जदपि मगन मनोरथ बिधि-बस, सुख इच्छत दुख पावै। (वि० ११६)

इच्छा-(सं०)-अभिलाषा, कामना, चाह, ख्वाहिश। उ० हरि इच्छा भावी बलवाना। (मा० १।५६।३) इच्छाचारी-(सं० इच्छा+चारिन्)-इच्छानुसार चलनेवाला, मनमानी करनेवाला। उ० चले गगन महि इच्छाचारी। (मा० ५।३२।५) इच्छामय-(सं०)-इच्छायुक्त, इच्छानुरूप। उ० इच्छामय नरबेष सँवारे। (मा० १।१५२।१)

इच्छित-(सं०)-चाहा हुआ, मनोवांछित, अभिप्रेत। उ० इच्छित फल बिनु सिव अवराधें। (मा० १।७०।४)

इच्छुक-(सं०)-अभिलाषी, चाहनेवाला।

इत-(सं० इत)-इधर, इस ओर। उ० इत बिधि उत हिमवान सरिस सब लायक। (पा० ११०) इतहि-इधर, इस ओर। उ० आयसु इतहि स्वामि-संकट उत, परत न कछु कियो है। (गी० ६।१०)

इतना (१)-इस मात्रा का, इस कदर।

इतनो-इस मात्रा का, इस कदर, इतना। उ० सबकी न कहैं, तुलसी के मते, इतनो जग जीवन को फलु है। (क० ७।३७) इतनोइ-इतना ही। उ० जीवन-जनम-लाहु लोचन फल है इतनोइ, लह्यो आजु सही री। (गी० १।१०४) इतनोई-केवल इतना, इतना ही। उ० मन इतनोई या तनु को परम फलु। (वि० ६२)

इतर-(सं०)-१ और, अन्य, दूसरा, २ नीच, पतित। उ० २ जनु देत इतर नृप कर बिभाग। (गी० २।४६)

इतराइ-(सं० इतर)-इतरा जाते हैं, ऐंठने लगते हैं, घमंडी हो जाते हैं। उ० जस थोरेहु धन खल इतराई। (मा० ४।१४।३)

इतराज-(अर० एतिराज)-विरोध, बिगाड़, नाराजी। उ० देत कहा नृप काज पर, लेत कहा इतराज। (स० २६१)

इताति-(अर० इताअत)-आज्ञापालन, ताबेदारी, इमाअत, आज्ञा। उ० निसि बासर ताप हैं भलो मानै राम इताति। (दो० १७८)

इति-(सं०)-१ समाप्तिसूचक अव्यय, समाप्ति, पूर्णता, २ अतः, अतएव, ३ सीमा, हद, ४ ऐसा, ५ इस। उ०

४ इति वदत तुलसीदास सकट-सेप-मुनि मनरजन। (वि० ४५) ५ अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत, इति वासना धूप दीजै। (वि० ४७)
इतिहास-(स०)-अतीत का काल-क्रम से वर्णन, तवारीख़। उ० कहहिं बेद इतिहास पुराना। (मा० १।६।२)
इतिहासा-दे० 'इतिहास'। उ० बरनत पथ बिबिध इतिहासा। (मा० १।५८।३)
इते-इतने। उ० इते घटे घटिहै कहा जो न घटै हरि नेह? (दो० ५६३) इतौ-(स० इयत)-इतना, इस मात्रा का। उ० छमि अपराध छमाइ पाइ परि, इतौ न अनत समाउ। (वि० १००)
इत्य-(स)-इस प्रकार से, ऐसे, यों। उ० इदमित्य कहि जाइ न सोई। (मा० १।१२१।१)
इद-(स०)-यह, यही। उ० इदमित्य कहि जाइ न सोई। (मा० १।१२१।१)
इदानीं-(स०)-इस समय, अधुना, सप्रति।
इन-'इस' का बहुवचन या आदरसूचक रूप। उ० निष छावरि प्रान करै तुलसी बलि जाउँ लला इन बोलन की। (क० १।५) इनहि-इनको।
इनारुन-(स० इद्रवारुणी)-इद्रायन, एक लता जिसका फल देखने में नारगी की भाँति सुंदर पर विपाक्त होता है।
इन्ह-इन। 'इस' का बहुवचन या आदरसूचक रूप। उ० इन्ह कै दसा न कहेउँ बखानी। (मा० १।८२।४) इन्हहि-इनको। उ० इन्हहि हरषप्रद बरषा एका। (मा० ३।४४।२)
इन्हें-इनको। उ० आँखिन में सखि! राखिबे जोग, इन्हें किमि कै बनवास दियो है? (क० २।२०)
इभ-(स०)-हाथी। उ० राम कामारिसेव्य भवभयहरण कालमत्तेभसिंह। (मा० ६।१।१)
इमि-(स० एवम्)-इस प्रकार, इस तरह। उ० होहिं प्रेम बस लोग इमि रामु जहाँ जहँ जाहिं। (मा० २।१२१)
इया-(स० इदम्)-यह। उ० तौ क्यों बदन देखावतो कहि बचन इया रे। (वि० ३३)
इयार-(फ़ा० यार)-दोस्त, मित्र, सगी।
इरषा-(स० ईर्ष्या)-डाह, जलन, हसद, दूसरी की बढ़ती देखकर जलना।
इरषाइ-ईर्ष्या, डाह। उ० ममता दादु कडु इरषाई। (मा० ७।१२१।१७)
इरिषा-दे० 'इरषा'। उ० तुम्हरें इरिषा कपट बिसेषी। (मा० १।१३६।४)
इव-(स०)-समान, सदृश, तुल्य। उ० तपइ अवाँ इव उर अधिकाई। (मा० १।५८।२)
इष्ट-(स०)-१ चाहा हुआ, वांछित, २ अभिमत, ३ पूजित। उ० ३ इष्ट देव इव सब सुखदाता। (मा० १।२४२।३)
इस-(स० एष)-'यह' शब्द में जब कोई विभक्ति लगानी होती है तो उसे 'इस' का रूप दे देते हैं।
इसान-(स० ईशान)-शिव, शकर, महादेव। उ० तुलसीस तोरिए सरासन इसान को। (गी० १।८६)
इसानु-दे० 'इसान'। उ० दोस निधानु, इसानु सत्य सपु भाषेउ। (पा० ७१)
इह-(स०)-१ यहाँ, इस स्थान में, २ इस लोक और पर लोक में। उ० १ भजतीह लोके परे वा नराणां। (मा० ७।१०८।श्लो०७)
इहइ-(?) यह ही, यही। उ० इहइ सगुन फलु दूसर नाहीं। (मा० २।७।४)
इहाँ-(स० इह)-यहाँ, इस स्थान पर। उ० इहाँ न लागिहि राउर माया। (मा० २।३३।३)
इहि-१ इस, २ इसमें, ३ इसके। उ० १ इहि आँगन बिहरत मेरे बारे! (गी० २।४) ३ कहा प्रीति इहि लेखे? (गी० २।४)
इहै-यही। उ० धरनी धन धाम सरीर भलो, सुर लोकहु चाहि इहै सुख स्वै। (क०७।४१)

# ई

ईंधन-(स० इधन-)-जलाने की लकड़ी।
ईंधनु-दे०'ईंधन'। उ० ईंधनु पात किरात मिताइ। (मा० २।२५१।१)
ई (१)-(स० हि)-१ निकट का सकेत, यह। २ ज़ोर देने का शब्द, ही। उ० १ राखरी ई गति बल बिभव बिहीन की। (क० ७।१७७)
ई (२)-(स०)-लक्ष्मी।
ईछा-(स० इच्छा)-चाह, अभिलाषा। उ० बिसरी सबहि जुद्ध के ईछा। (मा० ६।२०१४)
ईड़ा-(स० ईडा)-स्तुति, प्रशसा।
ईड्य-(स०)-पूजनीय, पूजा के योग्य। उ० मौमीड्य गिरिजापति गुणनिधि कदर्पह शकरम् (मा० ६।१।श्लो०२)
ईति-(स०)-१ खेती को हानि पहुँचानेवाले छ प्रकार के उपद्रव। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी, चूहा, पक्षी तथा अन्य राजा की चढ़ाइ। २ बाधा। उ० १ ईति भीति जनु प्रजा दुखारी। (मा० २।२३५।२)
ईदृश-(स०-)ऐसे, इस प्रकार, इस भाँति।
ईरषा-(स० ईर्ष्या)-डाह, हसद, जलन। उ० राग रोष इरषा कपट कुटिलाई भरे। (क० ७।११६)
ईषणा-(स० ईर्ष्यण)-ईर्षा हसद, डाह।
ईषा-दे० 'ईरषा'।
ईर्ष्या-(स०)-डाह, हसद, दूसरे की बढ़ती देखकर जलना।
ईश-(स०)-१ स्वामी मालिक, २ राजा, ३ परमेश्वर, ईश्वर ४ शिव महादेव।

इशान-(सं०)-१ पूरब और उत्तर के बीच की दिशा, २ शिव, ३ ग्यारह की संख्या, ४ स्वामी। उ० १ नमामीशमीशान निर्वाणरूप। (मा० ७।१०८। श्लो० १)
इश्वर-(सं०)-१ स्वामी, मालिक, २ भगवान्, ईश। उ० १ निरीहमीश्वर विभुं। (मा० ३।४। श्लो० ६)
इषण-(सं० एषण)-इच्छा, आकांक्षा, अभिलाषा।
इषणा-दे० 'इषण'।
इषत्-(सं०)-थोड़ा, कम, कुछ, अल्प।
इषना-(सं० एषण)-दे० 'ईषणा'। उ० सुत वित लोक इषना तीनी। (मा० ७।७१।३)
इस-(सं० ईश)-दे० 'ईश'। उ० २ अब ईस आधीन जगु काहु न देइअ दोषु। (मा० २।२४४) इसनि-ब्रह्मा और शिव। उ० ईसनि, दिगीसनि, जोगीसनि, मुनीसनिहूँ। (वि० २४६) ईसहि-शिव जी को। उ० इसहि चढ़ाय सीस बीसबाहु बीर तहाँ। (क० ४।३२)
इसा-(ईश)-दे० 'ईश'। उ० ४ एहि बिधि भए सोचबस ईसा। (मा० १।४३।२)
इसु-दे० 'ईस'। उ० ३ तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं। (मा० २।२४।३)
ईस्वर-(ईश्वर)-दे० 'ईश्वर'। उ० २ मृषा बचन नहि ईस्वर कहइ। (मा० ७।६२।३) इस्वरहि-ईश्वर पर, ईश्वर को। उ० कालहि कर्महि इस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ। (मा० ७।४३)
इहा-(सं०)-इच्छा, लोभ, चाह, वांछा।

# उ

उँजिआरा-(सं० उज्ज्वल)-उजाला, प्रकाश। उ० तब सोइ बुद्धि पाइ उँजिआरा। (मा० ७।११८।२)
उ (१)-(सं०)-१ ब्रह्मा, २ नर।
उ (२)-(?)-भी। उ० औरउ एक कहउँ निज चोरी। (मा० १।१६६।२)
उअहिं-(सं० उदयन)-उदय हो, उगें। उ० राकापति षोडस उअहिं तारागन समुदाई। (मा०।७।७८।ख०) उएँ-उदय हुए, उदय होने पर। उ० राम बाम रवि उएँ जानकी। (मा० २।१६।१) उए-उगे, उदित हुए। उ० मनहुँ इन्द्रधनु उए सुहाए। (मा० ६।८७।३)
उकठा-(सं० अव+काष्ठ)-सूखा, शुष्क। उकठे-सूखे, शुष्क हुए। उ० मिलनि बिलोकि स्वामि सेवक की उकठे तरु फूले-फले। (गी० २।४१) उकठेउ-उकठे हुए भी, सूखे भी। उ० उकठेउ हरित भए जल थलरुह, नित नूतम राजीव सुहाई। (गी० २।४६)
उकसहिं(-सं० उत्कर्षण)-उचकते हैं, उठते हैं। उ० पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। (मा १।१३२।१)
उकार-(सं० ओंकार)-ओंरेम्। उ० गहु उकार बिबिचार पद मा फल हानि बिमूल। (स० ७११)
उकुति-(सं० उक्ति)-कथन, वचन। उ० सुनि अति उकुति पवन सुत केरी। (मा० ६।१।२)
उक्त-(सं०)-कहा हुआ, कथित।
उक्ति-(सं०)-१ कथन, वचन, २. अनोखा वचन।
उखरैया-(सं० उत्खिदन)-उखाड़नेवाले। उ० भूमि के हरैया उखरैया भूमि धरनि के। (गी० १।८३)
उखल-(सं० उलूखल)- लकड़ी या पत्थर का एक पात्र जिसमें मूसल से अन्न आदि कूटते हैं। ओखल।
उखारे-(सं० उत्खिदन)-उखाड़ना, निकालना। उ० गाड़े भली, उखारे अनुचित, बनि आए बहिबे ही। (कृ० ४०)
उखारी-उखाड़ना, निकालना। उ० जरि तुम्हारि चह सवति उखारी। (मा० २।१७।४)
उगिलत-(सं० उद्गिलन)-उगलते हैं, मुँह में से निकालते हैं। उ० मनहुँ क्रोध बस उगिलत नाहीं। (मा० १।१२६।३) उगिल्यो-उगल दिए, बाहर निकाल दिए। उ० ब्राह्मन ज्यों उगिल्यो उरगारि हौं, त्योंही तिहारे हिये न हितहौं। (क० ७।१०२)
उगो-(सं० उद्गमन)-उदय हुआ। उ० 'मैं तैं' मेट्यो मोहतम, उगो आतम भानु। (वै० ३३)
उग्र-(सं०)-१ प्रचंड, उत्कट, तेज, २ महादेव, शिव, ३ बच्छनाग विष, ४ विष्णु, ५ सूर्य, ६ कठिन, विकट। उ० ६ परम उग्र नहिं बरनि सो जाई। (मा० १।१७७।१) उग्रकर्मा-निदय, उग्रकर्म का करनेवाला।
उग्रसेन-(सं०)-१ मथुरा का राजा, कंस का पिता, कृष्ण का नाना। उ० तुलसिदास प्रभु उग्रसेन के द्वार बेंत-कर धारी। (वि० ६८)
उघटत-(सं० उद्घाटन)-कहते हैं, प्रकट करते हैं। उ० धीर धीर सुनि समुझि परसपर, बल उपाय उघटत निज हिय के। (गी० ४।१) उघटहिं-कहते हैं, बार-बार कहते हैं। उ० उघटहिं छंद प्रबंध गीत पद राग तान बंधान। (गी० १।२)
उघरत-(सं० उद्घाटन)-प्रकट हो जाता है, स्पष्ट हो जाता है, प्रकाश में आ जाता है। उ० छीर नीर बिबरन समय बक उघरत तेहि काल। (दो० ३३३) उघरहिं-उघरने पर, प्रकट होने पर। उ० उघरहिं अंत न होइ निबाहू। (मा० १।७।३) उघर-खुल गए, अनावृत हो गए। उ० उघरे पटल पर सुधर मति के। (मा० १।८८।३)
उघार-भरो बदन, नाग, बिना वस्त्रादि के। उ० द्विज बिन अनेव उघार तपी। (मा० ७।१०१।४)
उघारा-खोला। उ० तब सिव तीसर नयन उघारा। (मा० १।८७।३) उघारि-उघारकर, खोलकर। उ० नयन उघारि सकल दिसि देखी। (मा० १।८७।२) उघारी-नग्न, अनावृत। उ० ते हठि देहिं कपाट उघारी। (मा० ७।११८।१)

उघारे-खोले। उ० धरम धुरंधर धीर धरि नयन उघारे रायँ। (मा० २।३०)
उचकि-(स० उच्च+करण)-उचक कर, ऊँचे होकर। उ० उचके उचकि चारि अंगुल अचलु गो। (क० ४।१)
उचके-ऊँचे हुए, कूदे। उ० उचके उचकि चारि अंगुल अचलुगो। (क० ४।१)
उचाट-(स० उच्चाट)-१ मन का न लगना, विरक्ति, उदासीनता, २ उच्चाटन मंत्र पढ़कर वश में करना।
उचाटि-उच्चाटन करके, दूर करके, हटा करके। उ० अघ उचाटि मन बस करै, मारै मद मार। (वि० १०८)
उचाटे-उच्चाटन कर दिया, उदासीन कर दिया। उ० लोग उचाटे अमरपति कुटिल कुअवसरु पाइ। (मा० २।३१६)
उचाटु-दे० 'उचाट'। उ० १ सो उचाटु सयक सिर मेला। (मा० २।३०२।२)
उचारहीं-(स० उच्चार)-१ बोलने लगे, उच्चारण करने लगे, २ उचारण करते हैं, बोलते हैं। उ० १ मोदहु लहेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं। (मा० १।२६१।छं०१) उचारा-उच्चारण किया, कहा। उचारी-उच्चारण किया, बोले। उ० हरषि सुधा सम गिरा उचारी। (मा० १।११२।३) उचारे-बोले, कहे। उ० मधुर मनोहर बचन उचारे। (मा० १।२४१।२)
उचित-(स०)-योग्य, ठीक, मुनासिब। उ० कह सिव जदपि उचित अस नाहीं। (मा० १।७७।१) उचिता नुचितहिं-उचित और अनुचित को। उ० उचितानुचितहिं हेरि हिय करतब करहु सँभार। (स० ६८६)
उच्च-(स०)-ऊँचा, श्रेष्ठ, उत्तम। उ० सिंहासन अति उच्च मनोहर। (मा० ६।११३।२)
उच्चरत-बोलते हैं, उच्चारण करते हैं। उ० लगूर लपेटत पटकि भट, 'जयति राम जय' उच्चरत। (क० ६।४७) उच्चरहीं-उच्चारण करते हैं, बोलते हैं। उ० बंदी बिरिदा बलि उच्चरहीं। (मा० १।२६१।२) उच्चरै-उच्चारण करता है, बोलता है। उ० यह दिन रैनि नाम उच्चरै। (वै० ४१)
उचाटन-(स०)-१ लगी वस्तु को अलग करना, विश्लेषण, २ अनमनापन, विरक्ति।
उच्छलित-(स० उच्छलन)-उछलते हुए, उचकते हुए। उ० चलित महि मेरु, उच्छलित सायर सकल। (क० ६।४४)
उछंग-(स० उत्संग)-गोद क्रोड़ अंक। उ० सखी उछंग बैठी पुनि जाई। (मा० १।६८।३)
उछंगा-दे० 'उछंग'। उ० प्रभुकृत सीस कपीस उछंगा। (मा० ६।११।३)
उछरत-उछलते हैं। उ० उछरत उतरात हहरात मरि जात (क०७।१७६) उछरि-उछलकर, कूदकर। उ० ज्यों मुदमय बसि मीन बारि तजि उछरि भभरि लेत गोतो। (वि०१६१) उछरि-उछलकर, कूदकर। उ० तुलसि उछरि सिंधु मेरु मसकतु हैं। (क० ६।१६)
उछाह-(स० उत्साह)-उत्साह, उमंग, प्रसन्नता, हर्ष। उ० साकत सराध कै बिबाह कै उछाह कछु। (क० ७।१४८)
उछाहा (१)-दे० 'उछाह'।
उछाहा (२)-(स० उत्सव)-शुभ अवसर, पर्व। उ० सग संग सब भए उछाहा। (मा० २।१०।३)
उछाहु-दे० 'उछाह'। उ० सयल सुरन्ह के हृदयँ अस संकर परम उछाहु। (मा० १।८८)
उछाहू-दे० 'उछाह'। उ० अति अलसक मन सदा उछाहू। (मा० १।१३७।२)
उजयार-(स० उज्ज्वल)-उजाला, प्रकाश, रोशनी।
उजरउ (?)-उजड़े, उजड़ जावे। उ० बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊँ। (मा० १।८०।४) उजरें-१ उजड़ने पर, उजड़ जाने पर, उजड़ने में, २ उजड़ गए। उ० १ उजरे हरष बिषाद बसेरे। (मा० १।४।१)
उजागर-(स० जागर)-१ प्रकाशित, जाज्वल्यमान, जगमगाता हुआ, २ प्रसिद्ध, नामवर। उ० २ पंडित मूढ़ मलीन उजागर। (मा० १।२८।३)
उजागरि-उजागर का स्त्रीलिंग, १ प्रकाशित, उज्ज्वल, २ प्रसिद्ध। उ० २ सिय लघु भगिनि लखन कहँ रूप उजागरि। (जा० १७३)
उजार-उजाड़ रहे हैं। उ० जाइ पुकारे ते सब बन उजार जुबराज। (मा० ५।२८) उजारा-उजाड़ दिया। उ० भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा। (मा० १।६७।१) उजारि-१ उजाड़, नष्ट भ्रष्ट, जीर्ण-शीर्ण, २ उजाड़कर, नष्ट कर। उ० १ होइहि सब उजारि संसारु। (मा० १।१७७।४) २ बन उजारि, पुर जारि। (मा० ६।२६) उजारी-१ उजाड़ दिया, नष्ट कर दिया, २ उजाड़नेवाला। उ० १ तेहिं असोक बाटिका उजारी। (मा० ५।१८।२) उजारे-उजाड़ दिया, उजाड़ा। उजारो-उजाड़ा, नष्ट किया। उ० कुल गुरु सचिव साधु सोचतु बिधि को न बसाइ उजारो। (गी० २।६६) उजार्यो-उजाड़ा, उजाड़ दिया। उ० कानन उजार्यो तो उजार्यो न बिगारेउ कछु। (क० ५।११)
उजियरिया-(स० उज्ज्वल)-उजियाली, प्रकाश पूर्ण, उजेली। उ० बहकु न है उजियरिया निसि नहिं घाम। (ब० ३७)
उजियार-(स० उज्ज्वल)-प्रकाश, उजाला। उ० तुलसी भीतर बाहिरौ जौं चाहसि उजियार। (दो० ६)
उजियारे-१ प्रकाशमान, २ प्रसिद्ध, ३ प्रकाशित करने वाले, प्रकाश फैलानेवाले। उ० ३ अँधियारे मेरी बार क्यों त्रिभुवन उजियारे! (वि० ३३)
उजेनी-(स० उज्जयिनी)-उज्जैन, मालवा की प्राचीन राजधानी। उ० गयउँ उजेनी सुनु उरगारी। (मा० ७।१०५।१)
उज्जारि-उजाड़कर। उ० गहन उज्जारि पुर जारि सुत मारि तब। (क० ६।२१)
उज्वल-(स०)-१ प्रकाशमान, २ शुभ्र, स्वच्छ, निर्मल, ३ सफेद, श्वेत।
उठई-(स० उत्थान)-उठता। उ० उठइ न कोटि भाँति बलु करहीं। (मा० १।२५०।४) उठत-उठते ही, खड़े होते ही। उ० धयसि राम के उठत सरासन टूटिहि। (जा० ६८) उठति-उठती हुई, बढ़ती हुई, यौवन को प्राप्त होती हुई। उ० उठति बयस, मसि भींजति, सलोने सुठि। (गी० २।२७) उठन-उठना, खड़ा होना। उ० चाहत उठन करत मति धीरा। (मा० १।११३।२) उठब-उठना, खड़ा होना। उ० प्रेम मगन तेहि उठब न आवा। (मा० ५।३३।१) उठहु-उठो, खड़े हो, उठिए, खड़े

होइए। उ० उठहु राम भंजहु भव चापा। (मा० १।२५४।३) उठा-खड़ा हुआ। उ० सुनत दसानन उठा रिसाइ। (मा० ५।४१।१) उठि-उठकर, खड़ा होकर। उ० गइ तुरत उठि गिरिजा पाहीं। (मा० १।७२।३) उठीं-खड़ी हुइ। उ० सादर उठीं भाग्य बड़ जानी। (मा० १।३५२।१) उठी-खड़ी हुई। उ० पुनि सँभारि उठी सो लंका। (मा० ५।४।३) उठे-खड़े हुए। उ० तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा। (मा० ५।४६।१) उठेउ-खड़े हुए, उठे। उ० उठेउ गवहिं जेहिं जान न रानी। (मा० १।१७२।२) उठेसि-खड़ा हुआ। उठैं-उठते हैं। उ० मगन मनोरथ मोद नारि नर प्रेम बिबस उठैं गाइकै। गी० १।६८) उठ्यो-उठा। उ० उठ्यो मेघनाद सबिषाद कहै रावनो। (क० ६।६) उठ्यौ-दे० 'उठ्यो'।

उठाइ-उठाकर, ऊपर कर के। उ० कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा। (मा० ५।३३।२) उठाइ-उठाकर, ऊपर कर के। उ० सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाइ। (मा० १।१६५।३) उठाएँ-उठाकर, ऊपर कर के। उ० चकित बिलोकत कान उठाएँ। (मा० १।१२६।४) उठाए-उठाया, ऊपर कर लिया। उ० तुरत उठाए करुनापुंजा। (मा० १।१४८।४) उठाव-उठाने लगा। उ० परयो बीर बिकल उठाव दस मुख अतुल बल महिमा रहीं। (मा० ६।८३। छं० १) उठावन-उठाना ऊपर करना। उ० तेहि चह उठावन मूढ़ रावन, जान नहिं त्रिभुवन धनी। (मा० ६।८३। छं० १) उठावा-उठाना, ऊपर करना। उ० बार-बार प्रभु चहइ उठावा। (मा० ५।३३।१) उठावौं-उठाऊँ, ऊपर करूँ। उ० कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं। (मा० १।२५३।२)

उड़-(सं० उडु)-नक्षत्र, तारा।

उड़इ-(सं० उड्डयन)-उड़ता है, उड़ रहा है। उ० उड़इ अबीर मनहुँ अरुनारी। (मा० १।१९४।३) उड़त-१ उड़ता है, २ उड़ते हुए। उड़न-उड़ना। उ० चहै मेर उड़न बड़ी बयारि बही है। (गी० ५।२४) उड़ि-उड़कर। उ० राघानि धनु सर निकर छाँड़ेसि उरग जिमि उड़ि लागहीं। (मा० ६।८३। छं० १)

उड़ाइ-उड़कर। उ० रुधिर गाड़ भरि भरि जम्यो ऊपर धूरि उड़ाइ। (मा० ६।५३) उड़ाई-१ उड़कर, २ उड़ गई। उ० १ अस जानहिं जियँ जाउँ उड़ाई। (मा० २।१५८।१) उड़ाउँ-उड़ता हूँ। उ० लरिकाइ जहँ जहँ फिरहिं तहँ जहँ संग उड़ाउँ। (मा० ७।७५ क) उड़ात-१ उड़ते हुए, उड़ने में, २ उड़ते हैं। उ० १ बोलत मधुर उड़ात सुहाए। (मा० ७।२८।२) उड़ानी-उड़ी है। उ० लिए अपनाइ लाइ चंदन तन, कछु कटु चाह उड़ानी। (कृ० ४७) उड़ाव उड़ाता है। उ० मरुत उड़ाव प्रथम तेहि भरई। (मा० ७।१०६।६) उड़ावहीं-उड़ा रहे हों, उड़ाते हों। उ० सप्रेम पुर बासी मनहुँ बहु भाँत गुड़ी उड़ावहीं। (मा० ३।२०। छं० २) उड़ाहिं-१ उड़ने लगे, २ उड़ते हैं। उ० १ सेतुबंध भइ भीर अति, कपि नभ पंथ उड़ाहिं। (मा० ६।४) उड़ाहीं-उड़ जाते हैं। उ० जेहिं मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। (मा० १।१२।६) उड़ावन-उड़ाना। उ० चहत उड़ावन फूँकि पहारू। (मा० १।२७३।१)

उड़ावनिहारा-उड़ा देनेवाली। उ० समय बिहग उड़ावनिहारी। (मा० १।११४।१)

उडु-(सं०)-नक्षत्र, तारा। उ० जिमि उडुगन मंडल बारिद पर नवग्रह रची अथाइ। (वि० ६२)

उडुपति-(सं०)-चन्द्रमा, राकेश। उ० प्रेमपियूषरूप उडुपति बिनु कैसे हो अलि पैयत रवि पाहीं। (कृ० ४८)

उड्डु-दे० 'उडु'।

उतंग-(सं० उत्तुंग)-ऊँचा, बुलंद। उ० अति उतंग जल निधि चहुँ पासा। (मा० ५।३।६)

उत-(?)-वहाँ उस ओर, उधर। उ० सुत सनेह इत बचनु उत संकट परेउ नरसु। (मा० २।४०)

उतकंठा-दे० 'उत्कंठा'। उ० सिय हियँ अति उतकंठा जानी। (मा० १।२२६।२)

उतकरष-दे० 'उत्कर्ष'। उ० रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ। (मा० ६।४०।२)

उतपति-(सं० उत्पत्ति)-पैदाइश, जन्म, उद्गम। उ० आदि सृष्टि उपजी जबहिं तब उतपति भै मोरि। (मा० १।१६२)

उतपात-दे० 'उत्पात'। उ० समय अमित उतपात सब भरत चरित जपजाग। (मा० १।४१)

उतपाती-(सं० उत्पातिन्)-उत्पात करनेवाला, उपद्रवी। उ० अय तुह कपि आए उतपाती। (मा० ६।४४।२)

उतपातु-दे० 'उतपात'। उ० सबु उतपातु भयउ जेहि लागी (मा० २।२०१।३)

उतर-दे० 'उत्तर'। उ० १ कपट कुसल उतर सविसेषा (मा० १।४९।१)

उतरअयन-(सं० उत्तरायण)-सूर्य की मकर रेखा से उत्तर कर्क रेखा की ओर गति। उ० दिनमनि गवन कियो उतर अयन। (गी० १।४६)

उतरइ-(सं० अवतरण)-उतरे, नीचे आवे। उतरत-उतरने में, नीचे आने में। उ० उदधि अपार उतरत नहिं लागी बार, (क० ६।२४) उतरहिं-(सं० उत्तरण)-पार जाते हैं, पार करते हैं। उ० उतरहिं नर भवसिंधु अपारा। (मा० २।१०१।२) उतरि-१ उतर, पार हो, २ उतर कर। उ० १ तुलसी उतरि जाहु भव उदधि अगाधु! (क० ६१) उतरिबो-उतरना, उतरना है। उ० सोनि कै खल कै बाँधि सेतु करि, उतरिबो उदधि न बोहित चहिबो। (गी० ५।१४) उतरिहि-उतर जायेगी, पार हो आवेगी। उ० उतरिहि कटकु न मारि बधाई। (मा० ५।५६।४) उतरी-अवतरित हुई, उतर आयी। उ० मनहुँ करुनरस कटकइ उतरी अवध बजाइ। (मा० २।४६) उतरे-उतर पड़े, नीचे आए। उ० उतरे राम देवसरि देखी। (मा० २।८७।१) उतरै-उतर, नीचे आये। उ० जेहि बिधि उतरै कपि कटकु तात सो कहहु उपाइ। (मा० ५।५६)

उतराई-नदी के पार उतारने का महसूल। उ० पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं। (मा० २।१००। छं० १)

उतरात-(सं० उत्तरण)-पानी पर तैरते हैं। उ० उपरत उतरात हहरात मरि जात। (क० ७।१७६)

उतरु-दे० 'उत्तर'। उ० आइ उतरु अब कहउँ काहा। (मा० १।२५४।१)

उताइल–(स० उत् + त्वरा)–उतावली से, जल्दी। उ० चला उताइल त्रास न थोरी। (मा० ३।२६।१२)
उताना–(स० उत्तान)–उत्तान, चित, पीठ को भूमि पर लगाए हुए। उ० जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना। (मा० ६।४०।३)
उतार–१ ढाल, नीचा, २ नीच, पापी। उ० २ अपत, उतार, अपकार को अगार जग। (क० ७।६८)
उतारहिं–(स० अवतरण)–उतारती हैं। उ० कनक थार आरती उतारहिं। (मा० ७।७।२) उतारहि–(स० उत्तरण) उतार दो, उस पार कर दो। उ० होत बिलंबु उतारहि पारू। (मा० २।१०१।१) उतारि–उतारकर, निकाल कर। उ० चूड़ामनि उतारि तब दयऊ। (मा० ५।२७।१) उतारिहौं–उतारूँगा। उ० तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पार उतारिहौं। (मा० २।१०० छं० १) उतारी–उतारा, निकाला। उ० मनिमुदरी मन मुदित उतारी। (मा० २।१०२।२)
उतारा–१ नदी आदि पार करने की क्रिया, २ पड़ाव, टिकने का कार्य, ३ प्रेत बाधा आदि की शांति।
उतारू–उद्यत, तत्पर सनद्ध।
उतायल–दे० 'उताइल'।
उतावल–दे० 'उताइल'।
उतुंग–दे० 'उत्तुंग'।
उत्कंठा–(स०)–प्रबल इच्छा, लालसा।
उत्कंठित–उत्सुक, इच्छुक।
उत्कट–(स०)–उग्र, विकट, प्रचंड, दुःसह।
उत्कर्ष–(स०)–१ श्रेष्ठता, उत्तमता, २ बड़ाई, प्रशंसा, ३ परिपूर्णता, समृद्धि।
उत्कृष्ट–(स०)–उत्तम, श्रेष्ठ।
उत्तम–(स०)–१ श्रेष्ठ, अच्छा, भला, २ छोटी रानी सुरुचि से उत्पन्न राजा उत्तानपाद का पुत्र, ध्रुव का सौतेला भाई। उ० १ उत्तम मध्यम नीच गति, पाहन सिकता पानि। (दो० ३५२)
उत्तर–(स०)–१ किसी प्रश्न का जवाब, २ दक्षिण के सामने की दिशा, ३ पिछला, बाद का। उ० २ कियो गमन जनु दिननाथ उत्तर संग मधु माधव लिए। (जा० ३६)
उत्तरायण–(स०)–सूर्य की मकर रेखा की ओर से कर्क रेखा की ओर गति।
उत्तान–(स०)–ऊपर मुख किए, चित, सीधा।
उत्तानपाद–(स०)–महात्मा ध्रुव के पिता। राजा उत्तानपाद स्वायंभुव मनु के पुत्र थे। इनके छोटे भाई का नाम प्रियव्रत था। उत्तानपाद की सुनीति और सुरुचि दो रानियाँ थीं। सुनीति से ध्रुव, कीर्तिमान् और आयुष्मान् तथा सुरुचि से उत्तम, ये चार इनके पुत्र थे। उ० नृप उत्तानपाद सुत तासू। (मा० १।१४२।२)
उत्तुंग–(स०)–ऊँचा, बहुत ऊँचा।
उत्पति–दे० 'उत्पत्ति'। उ० अनुभव सुख उत्पति करत, भवभ्रम धरै उठाइ। (वै० २०)
उत्पत्ति–(स०)–पैदाइश, जन्म, उद्भव।
उत्पन्न–(स०)–जन्मा हुआ, पैदा।
उत्पल–(स०)–१ कमल, जलज, २ नील कमल। उ० १ नीलोत्पल तन स्याम, काम कोटि सोभा अधिक। (मा० ४।३० ख)
उत्पात–(स०)–उपद्रव, आफत, अशांति, हलचल। उ० जलधि-लंघन सिंह, सिंहिका-मद-मथन, रजनिचर नगर उत्पात केतू। (वि० २५)
उत्पाती–(स०उत्पातिन्)–उत्पात करनेवाला, उपद्रवी।
उत्पादक–(स०)–उत्पन्न करनेवाला।
उत्प्रेक्षा–(स०)–उद्भावना, आरोप।
उत्फुल्ल–(स०)–विकसित, फूला हुआ, प्रफुल्लित।
उत्सर्ग–(स०)–१ त्याग, न्योछावर, बलिदान, २ समाप्ति।
उत्सव–(स०)–१ मंगल कार्य, धूम धाम, २ पर्व, त्यौहार। उ० १ पिताभवन उत्सव परम, जौं प्रभु आयसु होइ। (मा० १।६१)
उत्साह–(स०)–१ उमंग, उछाह, जोश, हौसला, २ साहस, हिम्मत।
उथपन–(स० उत्थापन)–उजड़े या उखड़े हुए, स्थानभ्रष्ट। उ० रघुकुल तिलक सदा तुम्ह उथपनथापन। (जा० ११३) उथपनहार–उखाड़नेवाले, स्थानभ्रष्ट करने वाले। उ० उथपे-थपन, थिरथपे-उथपनहार, केसरीकुमार बल आपनो सँभारिए। (ह० २२) उथपे-उखड़े, उजड़े, स्थानभ्रष्ट। उ० उथपे थपन, थिरथपे उथपनहार। (ह० २२) उथपै–उखाड़े, हटाये। उ० उथपै तेहि को जेहि राम थपै? (क० ७।४७)
उदउ–(स० उदय)–ऊपर आना, निकलना, प्रकट होना। उ० दिन दिन उदउ अनंद अब, सगुन सुमंगल देत। (प्र० ७।५।७)
उदक–(स०)–जल, पानी। उ० पद पखारि पादोदक लीन्हा। (मा० ७।४८।१)
उदघाटी–(स० उद्घाटन)–प्रकाशित किया, खोला, प्रकट किया। उ० सब सुजयल महिमा उद्घाटी। (मा १।२३६।३)
उदधि–(स०)–१ समुद्र, २ मेघ, ३ घड़ा। उ० १ बाँध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस। (मा० ६।५)
उदपान–(स०)–१ कुआँ, २ कुएँ के समीप का गड्ढा, खाता।
उदबस–(स०उद्वासन)–उजाड़, सूना। उ० उदबस अवध नरेस बिनु, देस दुखी नर नारि। (प्र० ७।६।१)
उदबेग–(स० उद्वेग)–१ चित्त की व्याकुलता, २ भय, डर।
उदबेगु–दे० 'उदबेग'। उ० मुनि उदबेग न पावै कोई। (मा० २।११६।१)
उदभव–(स० उद्भव)–उत्पत्ति, जन्म, सृष्टि। उ० उदभव पालन प्रलय कहानी। (मा० १।१६६।३)
उदभासित–(स० उद्भासित)–१ शोभित, उद्दीप्त, २ प्रकट, प्रकाशित।
उदयँ–उदय के समय। दे० 'उदय'। उ० १ अरुनोदयँ सकुचे कुमुद, उडगन जोति मलीन। (मा० १।२३८)
उदय–(स०)–१ ऊपर आना, निकलना, २ प्रातः, सूर्य

दय, २ उन्नति, बढ़ती। उ० १ रवि निज उदय ब्याज रघुराया। (मा० १।२३९।३)

उदयगिरि-(सं०)-पुराणानुसार उदयाचल नामक एक पर्वत जो पूरब दिशा में है और जिस पर सूर्य का उदय होता है। इसी प्रकार अस्ताचल पर सूर्यास्त होता है। उ० उदित उदयगिरि मंच पर रघुवर बाल पतंग। (मा० १।२५४)

उदयसैल-(सं० उदयशैल)-दे० 'उदयगिरि'। उ० उदय सैल सोहैं सुंदर कुँवर, जोहैं। (गी० १।८२)

उदर-(सं०)-१ पेट, जठर, २ भीतरी भाग, अंदर। उ० १ त्रिबली उदर गँभीर नाभि-सर, जहँ उपजे बिरंचि ज्ञानी। (वि० ६२)

उदरगत-(सं०)-पेट में, उदर में।

उदररेख-(सं० उदररेखा)-पेट पर की तीन रेखाएँ, त्रिबली। उ० तड़ित बिनिंदक पीत पट उदर रेख बर तीनि। (मा० १।१४७)

उदवेग-दे० 'उद्वेग'।

उदार-(सं०)-१ दाता, दानशील, २ श्रेष्ठ, बड़ा, ३ दयालु, कृपालु, ४ सरल, सीधा। उ० २ सो सबाद उदार जेहि बिधि भा आगे कहब। (मा० १।१२० ग) उदारहिं-१ उदार को, २ उदार, दयालु। उदारहि-१ उदार को, २ उदार, दयालु। उ० २ तुलसिदास के प्रभुहि उदारहि। (मा० ७।३०।२)

उदारा-दे० 'उदार'। उ० १ एहि महँ रघुपति नाम उदारा। (मा० १।१०।१)

उदारु-दे० 'उदार'।

उदास-(सं०)-१ जिसका चित्त किसी चीज़ से हट गया हो, विरक्त, २ झगड़े से अलग, तटस्थ, ३ दुखी, खिन्न। उ० १ एक उदास भायँ सुनि रहहीं। (मा० २।४८।३)

उदासा-दे० 'उदास'। उ० १ सुख चाहहु पति सहज उदासा। (मा० १।७९।३)

उदासी-१ विरक्त, त्यागी, संन्यासी, २ एक संप्रदाय विशेष तथा उसके माननेवाले, ३ खिन्नता, उत्साह व आनंद का अभाव। उ० १ तापस बेष बिसेषि उदासी। (मा० २।२१।२)

उदासीन-(सं०)-१ शत्रु मित्र भाव से रहित, विरक्त, निष्पक्ष, २ रूखा, उपेक्षायुक्त। उ० १ उदासीन तापस बन रहहीं। (मा० २।२१०।२)

उदित-(सं०)-१ जो उदय हुआ हो, निकला हुआ, २ प्रकट, ज़ाहिर, ३ प्रसन्न, प्रफुल्लित। उ० १ द्वार भीर सेवक सचिव कहहिं उदित रवि देखि। (मा० २।३७)

उदिताचल-(सं०)-दे० 'उदय गिरि'।

उदै (सं० उदय) दे० 'उदय'।

उदोत-(सं० उद्योत)-१ प्रकाश, रोशनी, २ प्रकाशित दीप्त, ३ शुभ, उत्तम। उ० १ हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत। (ब० १)

उदौ-(सं० उदय)-दे० 'उदय'। उ० १ सुदिन न परा देखिए, उदौ कहा भरि पारा। (दो० ३५४)

उद्गम-(सं०)-१ उत्पत्ति का स्थान निकास, २ उदय आविर्भाव।

उद्घाटन-(सं०)-उघाड़ना, खोलना, प्रकट करना।

उद्घाटी-१ खोला, प्रकट किया, २ खोलनेवाली, प्रकट करनेवाली।

उद्दंड-(सं०)-१ निडर, अक्खड़, २ उद्धत, उजड्ड।

उद्दित-(सं० उदित)-प्रकाशित, ज़ाहिर, प्रकट।

उद्देश्य-(सं०)-लक्ष्य, प्रयोजन, इष्ट।

उद्धत-(सं०)-उग्र प्रचंड, उद्दंड। उ० यातुधानोद्धत-क्रुद्ध कालाग्निहर, सिद्ध-सुर-सज्जनानंद सिंधो। (वि० २७)

उद्धरन-(सं० उद्धरण)-१ मुक्त होने की क्रिया, बुरी अवस्था से अच्छी अवस्था में आना। २ मुक्त करनेवाला, उद्धार करनेवाला। उ० २ भूमि-उद्धरन भूधरन-धारी। (वि० ५९)

उद्धरहुगे-उद्धार करोगे मुक्ति दोगे। उ० तिन्हहिं सम मानि मोहिं नाथ उद्धरहुगे। (वि० २११)

उद्धव-(सं०)-१ उत्सव, २ यज्ञ की आग, ३ कृष्ण के एक यादव मित्र। रिश्ते में ये कृष्ण के मामा लगते थे। इनका दूसरा नाम देवश्रवा था। ये बृहस्पति के शिष्य कहे जाते हैं। इनके पिता का नाम सत्यक था। इनको कृष्ण ने गोपियों को समझाने के लिए भेजा था।

उद्धार-(सं०)-छुटकारा, मुक्ति, त्राण।

उद्धारन-उद्धार करनेवाला, मुक्तिदाता। उ० जय माया मृगमथन गीध-सबरी-उद्धारन। (क० ७।११४)

उद्धृत-(सं०)-१ उगला हुआ, २ अन्य स्थान से ज्यों का त्यों लिया हुआ।

उद्धृत्य-निकालकर। उ० सार-सतसंगमुद्धृत्य इति निश्चित वदति श्रीकृष्ण वैदर्भिभर्त्ता। (वि० ५०)

उद्भट-(सं०)-प्रबल, प्रचंड, श्रेष्ठ। उ० रिच्छ मर्कट विकट सुभट उद्भट, समर सैल-संकासरिपु-त्रासकारी। (वि० ५०)

उद्भव-(सं०)-उत्पत्ति, जन्म। उ० उद्भवस्थिति संहार कारिणीं क्लेशहारिणीम्। (मा० १।१। श्लो० ५)

उद्भिज-(सं० उद्भिज्ज)-वनस्पति, वृक्ष, लता गुल्म आदि जो भूमि फाड़कर निकलते हैं।

उद्यत-(सं०)-तैयार, तत्पर, मुस्तैद।

उद्यम-१ काम, धंधा, २ प्रयास, उद्योग। उ० १ अस कुराज खल उद्यम गयऊ। (मा० ४।१५।२)

उद्यान-(सं०)-बगीचा, उपवन।

उद्योग-(सं०)-१ प्रयत्न, कोशिश, २ काम, उद्यम।

उद्योत-(सं०)-१ प्रकाश, उजाला, २ चमक, आभा, झलक। उ० १ रत्नहाटक जटित मुकुट मंडित मौलि भानुसत-सदृस उद्योतकारी। (वि० ५१)

उद्वेग-(सं०)-१ व्याकुलता, घबराहट, २ आवेश, चित्त की आकुलता।

उधरी-(सं० उद्धार)-उद्धार कर दिया। उ० अनायास उधरी तेहि काला। (मा० २।२४०।२) उधरेउ-उद्धार किया, मुक्ति दी। उधर्यो-उबारा, उद्धार किया। उ० बिनु प्रयास इकनास भूप-मर्कट पर गति उधर्यो। (वि० २३६)

उधारन-१ उद्धार करनेवाले, २ उद्धार करने के लिए। उ० १ तुलसिदास तजि आस सकल भज कोसलपति

मुनियधू-उधारन। (वि० २०६) २ ज्यो धाए गजराज उधारन सपदि सुदरसनपानि। (गी० ६।६)

उधारि–उद्धार करके, मुक्त करके। उ० ऋषिनारि उधारि, कियो सठ केवट मीत, पुनीत सुकीर्ति लही। (क० ७।१०) उधारिहैं–उद्धार करेंगे। उ० पुर पाँउ धारिहैं उधारिहैं तुलसी हूँ से जन। (गी० २।७१) उधारी–उद्धार किया, मुक्ति दी। उ० जानि प्रीति दै दरस कृपानिधि सोउ रघुनाथ उधारी। (वि० १६६) उधारे–बचाए, उद्धार किया। उ० कौने देव बराय बिरद हित हठि हठि अधम उधारे। (वि० १०१) उधार्‌यो–उबारा, बँचाया। उद्धार किया। उ० तुलसिदास एहि त्रास सरन राखिहि जेहि गीध उधार्‌यो। (वि० २०२)

उन–(१)–'उस'का बहुवचन या उसके स्थान पर प्रयुक्त होनेवाला आदरसूचक शब्द। उन्होंने। उ० रुचिर रूप आहार-बस्य उन पावक लोह न जान्यो। (वि० ६२) उनकी–अन्य पुरुष 'वह' के रूप 'उस' के बहुवचन या आदर सूचकरूप 'उन' का सबध कारक की विभक्ति 'की' के साथ का सयुक्त रूप। उ० उनकी कहनि नीकी, रहनि लपन सी की। (गी०२।३१) उनहिं–उनको।

उनए–दे० 'उनये'।

उनचास–(स० एकोनपचाशत)–चालिस और नव की सख्या। एक कम पचास। उ० हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास। (मा० ५।२५) उनचास पवन–सिद्धांत शिरोमणि में आवह, प्रवह, उद्वह आदि ८ प्रकार के पवनों का उल्लेख है। कहीं कहीं पवन रुद्र के पुत्र माने गये हैं और इनकी सख्या १८० मानी गई है। पुराणों में पवन कश्यप और दिति के पुत्र माने गये हैं। इनके वैमात्रिक भाई इंद्र ने गर्भ काटकर एक से उनचास टुकड़े कर डाले थे। ये ही उनचास पवन हुए।

उनमाय–(स० उन्मत्त)–बेसुध, मस्त। उ० अपियर लहँ पुद बास, गायत कलकठ हास, कीर्तन उन्माय काय क्रोधकदिनी। (गी० २।४३)

उनमेखु–(स० उन्मेष)–१ खुलना, आँखों का खुलना, २ खिलना, विकास, ३ थोड़ा प्रकाश। उ० भमर ई रवि किरनि ल्याए करन जनु उनमेखु। (गी० ७।६)

उनये–(स० उन्नमन)–१ झुके, लटके, २ छाए, घिरे। उ० २ गाहि मदर बदर भाशु चले सो मनो उनये घन सावन के। (क० ६।३४) उनयेउ–उमड़ा, घिरा।

उनरत–(स० उन्नरण)–उठता हुआ, चढ़ता हुआ। उ० उनरत जोबनु देखि नृपति मन भावइ हो। (रा० ५)

उनवनि–(स० उन्नमन)–झुकती हुई, आती हुई, आरभ होती हुई। उ० लाज गाज उनवनि कुचाल कलि परी बजाइ कहूँ कहूँ गाजी। (कृ० ६१)

उनहार–(स० अनुसार)–समान, सदृश।

उनींदे–नींद भर, ऊँघते हुए। उ० जागु उनींदे आए मुरारी। (कृ० २२)

उनीद–(स० उन्निद्र)–अर्द्ध निद्रा, ऊँघ। उ० सारिका भ्रमित उनीद बस सयन करावहु जाइ। (मा० १।३५५)

उनीदे–नींद भरे, निद्रायुक्त। उ० सिय रघुबर के भए उनीदे नैन। (ब० १८)

उन्नत–(स०)–१ ऊँचा, ऊपर उठा हुआ, २ बढ़ा हुआ, समृद्ध, ३ श्रेष्ठ, महत्। उ० १ अधर अरुन उन्नत नासा। (वि० ६२)

उन्नमित–(स०)– ऊपर उठा हुआ, उत्तेजित।

उन्मत्त–(स०)–१ मतवाला, मदांध, २ पागल, बावला।

उन्मना–(स० उन्मनस्)–चिंतित, व्याकुल, चचल।

उन्माद–(स०)–पागलपन, बावलापन।

उन्मेष–(स०)–१ खुलना आंख का खुलना, २ खिलना, ३ प्रकाश, थोड़ी रोशनी।

उन्ह–उन, 'वह' का विभक्ति लगाने के लिए बना हुआ अवधी रूप। उ० साचेहुँ उन्ह कें मोह न माया। (मा० १।६७।२) उन्हहिं–उन्हें, उनको। उ० तब फलु उन्हहि देउँ करि साका। (मा० २।३३।४)

उपग–(स० उपांग)–एक बाजा, नसतरग। उ० पनवानक निर्झर अलि उपग। (गी० २।४६)

उप–(स०)–एक उपसर्ग। जिन शब्दों के पूर्व लगता है, उनमें समीपता, सामर्थ्य, गौणता तथा न्यूनता आदि अर्थों की विशेषता कर देता है।

उपकार–(स०)–भलाई, नेकी, हित। उ० पर उपकार बचन मन काया। (मा० ७।१२१।७)

उपकारा–दे० 'उपकार'। उ० श्रुति कह, परम धरम उपकारा। (मा० १।८४।१)

उपकारिनी–(स० उपकारिणी)–उपकार करनेवाली, भलाई करनेवाली। उपकारी–(स० उपकारिन्)–उपकार या भलाई करनेवाला। उ० उपकारी की सपति जैसी। (मा० ४।१५।३)

उपखान–(स० उपाख्यान)–१ पुरानी कथा, पुराना वृत्तांत, २ कथा के अतर्गत कोई कथा, ३ वृत्तांत, हाल। उ० १ साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान। (दो० ५५४) उपखानो–उपखान भी, कहानी भी। उ० अति ही अयाने उपखानो नहिं बूझैं लोग। (क०७।१०७)

उपखानु–दे०'उपखानु'। उ० १ सगति न जाइ पाछिले को उपखानु है। (क० ७।६७)

उपचार–(स०)–१ व्यवहार, प्रयोग, २ दवा, इलाज, ३ सेवा, ४ धर्म के विविध अनुष्ठान, ५ पूजन के आवाहन, आचमन, स्नान आदि सोलह अग, ६ उपाय, ७ घूस, रिशवत, ८ छेड़छाड़। उ० २ कियो बैदराज उपचार। (गी० ६।६) ६ सब लग सुखु सपनेहुँ नहीं किएँ कोटि उपचार। (मा० २।१०७) ८ भरत हमहि उपचार न थोरा। (मा० २।२२६।४)

उपचारु–दे० 'उपचार'।

उपज–(स०)–१ उत्पत्ति, पैदावार, २ मन में आई हुई नई बात, ३ मनगढ़त बात, ४ उत्पन्न होता था। उ० ४ तिमि तिमि नृपहि उपज बिस्वासा। (मा० १।१६२।३) उपजइ–पैदा हो उत्पन्न हो। उपजत–उत्पन्न होते हैं, पैदा होते हैं। उ० निमिष निमिष उपजत सुख नए। (मा० ७।८।५) उपजहिं–उपजते हैं, पैदा होते हैं। उ० उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं। (मा० १।११।२) उपजा–उत्पन्न हुआ। उ० उपजा हियँ अति हरषु बिसेषा। (मा०

उप्पम-(सं० उपमा)-दे० 'उपमा'। उ० कीर के कागर ज्यौं नृपचीर विभूषन उप्पम अंगनि पाई। (क० २।१)
उफनात-(सं०)-उबलता है, उठता है, उफनता है। उ० औंटि पय उफनात सींचत सलिल ज्यों सकुचाइ। (गी० ०७)
उबटि-(सं० उद्वर्तन)-उबट कर, उबटन लगाकर। उ० भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाए। (मा० १।३३६।२)
उबटौं-उबटन]करूँ। उ० उबटौं, न्हाहु, गुहौं चोटिया। (कृ० १३)
उबर-(सं० उद्वारण)-उद्धार पा जाय, बच जाय, मुक्त हो जाय। उ० तेहि तें उबर सुभट सोइ भारी। (मा० ३।३८।६) उबरन-उबरने, उद्धार, मुक्ति। उ० इनके लिए खेलिबो छाँड्यो तऊ न उबरन पावहिं। (कृ० ४) उबरसि-बचेगा, शेष रहेगा। उ० राम विरोध न उबरसि सरन बिष्नु अज ईस। (मा० ५।५६ क) उबरा-बचा, शेष रहा। उ० उबरा सो जनवासेहिं आवा। (मा० १।३२६।४) उबरिहिं-बचेंगे। उ० ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान। (मा० ४।६) उबरी-बची, शेष। उ० उबरी जूठनि खाउँगो। (गी० ५।३०) उबरे-बचे रहे। उ० जे राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुँ। (मा० १।८५) उबर्‌यो-दे० 'उबरा'। उ० देव दनुज मुनि नाग मनुज नहिं जाँचत कोउ उबर्‌यो। (वि० ६१)
उबार-१ बचा, २ बचानेवाला, ३ बचाव। उ० १ सी कर तम-हर चरन बर तुलसी सरन उबार। (स० २४२) उबारा-बचाया, बचा लिया उद्धार किया। उ० मागेहु नहिं नाथ उबारा। (वि० १२५)
उबीठे-(सं० अव+इष्ट)-ऊबे, उकताए। उ० यह जानत हौं हृदय आपने सपने न अघाइ उबीठे। (वि० १६८)
उबेने-(सं० उ+उपानह)-नंगे पैर, बिना जूते का। उ० तब कौं उबेने पायँ फिरत पेटै खलाय। (क० ७।१२५)
उभय-(सं०)-दोनों। उ० दुखप्रद उभय बीच कछु बरना। (मा० १।५।२) उभौ-दोनों, दो। उ० कुन्देन्दीवरसुंदरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ। (मा० ४। श्लो० १)
उभै-(सं० उभय)-दोनों। उ० सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे। (क० १।१)
उमँग-दे० 'उमग'। उ० १ अधिक अधिक अनुराग उमँग उर। (वि० ६५)
उमँग-(सं० मग्)-१ जोश, मौज, आनंद, उल्लास, २ उभाड़, बाढ़, ३ पूर्णता। उ० १ जोबन उमंग अंग उदित उदार हैं। (क० २।१७)
उमग-दे० 'उमग'। उ० २ सो सुभ उमग सुखद सब काहू। (मा० १।४१।३)
उमगत-१ उमड़ पड़ता है, बढ़ जाता है, २ आनंदित या उत्साहित होता है। उ० १ उमगत पेमु मनहुँ चहुँ पासा। (मा० २।२४०।३) उमगहिं-उमड़ रहे हैं। उ० देखेउ जनमफलु भा बिबाहु उछाहु उमगहिं दस दिसा। (पा० १४७) उमगा-उमड़ पड़ा, उमड़ आया। उ० मुनि सनेहमय बचन गुर उर उमगा अनुरागु। (मा० २।२५५) उमगि-उमड़कर, उमड़-उमड़कर। उ० उमगि अवध अंबुधि कहुँ आई। (मा० २।१।२) उमगी-उमड़ी, उमड़ पड़ी। उ० उमगी अवध अनंद भरि अधिक अधिक अधिकाति। (मा० १।३५३) उमगे-उमड़ आए। उ० उमगे भरत बिलोचन बारी। (मा० २।२३८।१) उमगेउ-उमड़ा, उमड़ आया। उ० उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू। (मा० १।३३१।५)
उमरि-(अ० उम्र)-उम्र, अवस्था, वय, आयु। उ० उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए। (क० ७।७३)
उमहिं-दे० 'उमहि'। उमहि-उमा को। उ० बहुरि कृपा करि उमहिं सुनावा। (मा० १।३०।२) उमहुँ-उमा भी। उ० उमहुँ रमा तें आछे अंग अंग नीके हैं। (गी० १।३०)
उमा-(सं०)-शिव की स्त्री, पार्वती, भवानी। उ० नाम उमा अंबिका भवानी। (मा० १।६७।१)
उमाकंत-(सं०)-शिव, महादेव। उ० देखो देखो बन बन्यो आजु उमाकंत। (गी० १४)
उमाकांत-(सं०)-शिव, महादेव।
उमापति-(सं०)-महादेव, शिव।
उमारमन-(सं० उमारमण)-शिव, महादेव। उ० कुंद इंदु सम देह उमारमन करुना अयन। (मा० १।१। सो० ४)
उमारवन-(सं० उमारमण) शिव, महादेव। उ० कंदर्पदर्प दुर्गम-दवन, उमारवन गुनभवन हर। (क० ७।१५०)
उमावर-(सं०)-शिव, महादेव।
उमेस-(सं० उमेश)-शिव, महादेव। उ० सो उमेस मोहि पर अनुकूला। (मा० १।१५।४)
उयउ-(सं० उदय)-उदय हुआ है, उदय होता है। उ० सो कह पच्छिम उयउ दिनेसा। (मा० ७।७३।२) उयेउ-उगा, उदय हुआ, निकला।
उर-(सं० उरस्)-१ वक्षस्थल, छाती, २ मन, चित्त, दिल, हृदय। उ० २ देखत गरब रहत उर नाहिन। (मा० २।१७।२) उरन्हि-छातियों पर, उरों पर। उ० कुंजरमनि कंठा कलित उरन्हि तुलसिकामाल। (मा० १।२४३) उरसि-छाती पर, उर पर। उ० यज्ञोपवीत विचित्र हेममय, मुक्तामाल उरसि मोहि भाइ। (गी० १।१०६)
उरग-(सं०)-साँप, जो उर (वक्ष) से गमन करे। उ० उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा। (मा० २।१५।२) उरग आराती-(सं० उरग+आराति)-गरुड़। उ० कहत बिचार उरगआराती। (मा० ७।५८।३) उरगईस-लक्ष्मण, शेष के अवतार। उ० जनक-सुता सम प्रान सुत उरग-ईस अ-म जौर। (म० २१४) उरगरिपु-गरुड़। उरगरिपु गामी-उरग के रिपु गरुड़ पर चढ़कर चलनेवाले विष्णु। उ० तुलसिदास भव व्याल ग्रसित तव सरन उरग रिपु-गामी। (वि० ११०)
उरगा-दे० 'उरग'। उ० चले बान सपच्छ जनु उरगा। (मा० ६।१२।१)
उरगाद-(सं०)-उरग को खानेवाले, गरुड़। उ० गरल सर्प ग्रसन उरगाद। (मा० ३।११।५)
उरगादा-दे० 'उरगाद'। उ० दाउ हरि भगत काग उरगादा। (मा० ७।५५।३)
उरगाय-(सं० उरुगाय)-१ विष्णु, २ सूर्य, ३ स्तुति, ४ जिसका गान किया जाय। उ० १ दसचारि-पुर-पाल पाली उरगाय हैं। (गी० २।५८)
उरगारि-(सं०)-गरुड़ पक्षी, उरग (सर्प) के अरि।

उरगारियानम्-गरुड़ की सवारी पर चलनेवाले, विष्णु। उ० श्री राम उरगारियानम्। (वि० ६१)
उरगारी-दे० 'उरगारि'। उ० लोचन सुफल करउँ उरगारी। (मा० ७।७२।२)
उरमिला-दे० 'उर्मिला'।
उरवि-(सं० उर्वी)-पृथ्वी, ज़मीन।
उरविज-(सं० उर्वी+ज)-पृथ्वी का जन्मा हुआ। मंगल तारा। मंगल अर्थात् कल्याण। उ० जौ उरबिज चाहसि झटिति तौ करि कटित उपाय। (स० २३८)
उरबी-(सं० उर्वी)-पृथ्वी, जमीन। उ० उरबी परि कुलहीन होइ, ऊपर कला प्रधान। (दो० ४३४)
उरबि-(सं० उर्वी)-पृथ्वी, भूमि।
उरविजा-(सं० उर्वीजा)-भूमिसुता, सीता।
उरहनो-(सं० उपालंभ)-शिकायत, उलाहना। उ० भाजन फोरि बोरि कर गोरस देन उरहनो आवहिं। (कृ० ४)
उराउ-(सं० उरस्+भाव)-उत्साह, उमंग, हौसला। उ० तुलसी उराउ होत राम को सुभाव सुनि। (क० ७।१४)
उराहनो-दे० 'उरहनो'।
उरिण-दे० 'उरिन'।
उरिन-(सं० उत्+ऋण)-ऋण रहित, ऋणमुक्त। उ० गुरहि उरिन होतेउँ श्रम थोरे। (मा० १।२७४।४)
उरु (१)-(सं०)-विस्तीर्ण, लंबा चौड़ा, बड़ा।
उरु (२)-(सं० ऊरु)-जंघा, जाँघ। उ० उरु करि कर करभहि बिलखावति। (गी० ७।१७)
उरुगाय-(सं०)-१ विष्णु, २ सूर्य, ३ स्तुति।
उर्मिला-(सं० ऊर्मिला)-सीता की छोटी बहिन जिनका विवाह लक्ष्मण से हुआ था। उ० वल्लभ उर्मिला के सुलभ सनेहबस, धनी धनु तुलसी से निरधन के। (वि० ३७)
उर्मिलारमण-दे० 'उर्मिलारवन'। उ० उर्मिलारमण, कल्याण मंगल भवन। (वि० ३८)
उर्मिलारमन-दे० 'उर्मिलारवन'।
उर्मिलारवन-(सं० ऊर्मिलारमण)-लक्ष्मण, उर्मिला के पति।
उर्वि-(सं० उर्वी)-पृथ्वी, धरित्री, भूमि। उ० दिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पब्बे समुद्र सर। (क० १।११)
उर्विजा-दे० 'उरविजा'। उ० नतोऽहमुर्विजापतिं। (मा० ३।४। श्लो० ११) उर्विजापतिं-सीता पति को, राम को।
उर्विधर-(सं० उर्वीधर)-१ महीधर, शेषनाग, २ पर्वत। उ० १ निगम आगम अगम, गुर्वि तव गुणकथन उर्विधर करै सहस जीहा। (वि० १४)
उर्वी-(सं०)-पृथ्वी, भूमि। उ० यन्दे कन्दावदात सरसिज नयन देवमुर्वीशरूपम्। (मा० ६। श्लो० १)
उलटउँ-(सं० उल्लोठन)-उलट दूँगा, पलट दूँगा। उ० उलटउँ महि जहँ लहि तव राजू। (मा० १।२७०।२)
उलटा-औंधा, पलटा हुआ, फेरा हुआ, विपरीत। उ० भयउ सुद्ध करि उलटा जापू। (मा० १।१९।३) उलटी-'उलटा' का स्त्रीलिंग। उ० उलटी रीति प्रीति अपन की तजि प्रभुपद अनुरागिहै। (वि० २२४)
उलटि-१ उलटकर घूम फिरकर, २ उलटा, औंधा, नीचे का ऊपर और ऊपर का नीचे। उ० २ करइ त उलटि परइ सुरराया। (मा० २।२१८।१)
उलटे-दे० 'उलटा'। उ० विधि करतब उलटे सब अहहीं। (मा० २।११६।१)
उलटो-दे० 'उलटा'।
उलदैं-(सं० उल्लोठन)-उड़ेलते हैं। उ० बारिधारा उलदैं जलद ज्यों न सावनो। (क० ५।८)
उलीचा-(सं० उल्लुंचन)- थोड़ा थोड़ा करके जल निकाला, जल फेंका, जल फेंक डाला। उ० मीन जिअन निति बारि उलीचा। (मा० २।१६१।४)
उलूक-(सं०)-१ उल्लू नामक चिड़िया, २ इन्द्र। उ० १ राग द्वेष उलूक सुखकारी। (मा० ३।४७।२) उलूकहि-उल्लू को, उल्लू का। उ० जथा उलूकहि तम पर नेहा। (मा० ४।४४।४)
उलूखल-(सं०)-१ ओखली, २ खल, खरल।
उल्का-(सं०)-१ प्रकाश, २ लूका, तारे जो आकाश में टूटते दिखाई देते हैं।
उल्लास-(सं०)-प्रसन्नता, हर्ष, हुलास।
उवन-(सं० उद्गमन)-उगना, उदय होना। उ० रघुकुल-रवि अब चाहत उवन। (गी० ५।४८)
उवहिं-उदय हो, निकलें। उ० राकापति षोडस उवहिं। (दो० ३८६)
उषा-(सं०)-१ प्रभात, २ बाणासुर की कन्या जिसका विवाह अनिरुद्ध से हुआ था।
उष्ण-(सं०)-१ गर्म, तात, २ गर्मी की ऋतु।
उष्णकाल-(सं०)-ग्रीष्म ऋतु। उ० उष्णकाल अरु देह खिन, मगपथी तन ऊख। (दो० ३११)
उसन-(सं० उष्ण)-दे० 'उष्ण'। उ० कहु केहु कारन तें भयउ सूर उसन ससि सीत। (स० ४८४)
उसर-(सं० ऊषर)-ऊसर, ऐसी भूमि जहाँ रेह अधिक हो और कुछ न पैदा होता हो।
उसास-(सं० उत्+श्वास)-लंबी साँस, ऊपर को चढ़ती हुई साँस। उ० सिरु धुनि लीन्हि उसास असि मारसि मोहि कुठायँ। (मा० २।३०)
उसासा-दे० 'उसास'। उ० जनहिं रामु कहि लहिं उसासा। (मा० २।३२०।३)
उसासू-दे० 'उसास'। उ० उतर देइ न लेइ उसासू। (मा० २।१३।२)
उसीले-(अर० वसीला)-१ आश्रय, सहायता, २ संबंध, ३ ज़रीया, मार्ग, द्वार।
उहाँ-(सं० स ) वहाँ, उस जगह। उ० इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। (मा० १।२०१।४)
उहार-(सं० अवधार)-ओहार, परदा। शिबिका रथ या पालकी के ऊपर पड़ा परदा। उ० भारि उहार उघारि दुलहिनिन्ह देखहिं। (जा० २११)

—

## ऊ

ऊँच-(स० उच्च)-ऊँचा, ऊपर उठा हुआ, उन्नत। उ० बामदेव ऊँच घर नीचू। (मा० १।६।३) ऊँचि-ऊँची, बड़ी, ऊपर उठी। उ० मति अति नीचि ऊँचि रुचि आछी। (मा० १।८।४) ऊँची-१ उन्नत, नीची का उलटा, २ भली। उ० १ सीलसिंधु! तोसों ऊँची नीचियौ कहत सोभा। (वि० २५७) मु० ऊँची नीचियौ-भली बुरी भी, ऊँची और नीची भी। उ० दे० 'ऊँची'। ऊँचें-ऊपर, ऊर्ध्व। उ० तब केवट ऊँचें चढ़ि धाई। (मा० २।२३७।१) ऊँचे-ऊपर, ऊर्ध्व। उ० ऊँचे नीचे कहुँ मिलै हरि पद परम पियूख। (स० ४२)

ऊँट-(स० उष्ट्र)-एक रेगिस्तानी जानवर जिसकी गर्दन लंबी होती है, करहा। उ० ढेंक महोख ऊँट बिसराते। (मा० ३।३८।३)

ऊ-(?) १ भी, २ वह। उ० १ तुलसिदास ग्वालिनि अति नागरि, नट नागरमनि नंदलालऊ। (कृ० १२)

ऊक-(स० उल्का)-१ टूटता तारा, लुक, उल्का, २ जलन, ताप, तपन। उ० १ ऊकपात, दिकदाह दिन, फेकरहिं स्वान सियार। (प्र० ५।६।२)

ऊख (१)-(स० इक्षु)-ईख, गन्ना। उ० अयमय खाँड़ न ऊखमय, अजहुँ न बूझ अबूझ। (मा० १।२७५)

ऊख (२)-(स० उष्ण)-तपा हुआ, जला। उ० उष्णकाल अरु देह खिन, मगपंथी, तन ऊख। (वै० ३११)

ऊखल-(स० उलूखल)-ओखली, पत्थर या काठ का बना एक गहरा बरतन जिसमें मूसल से अन्नादि कूटते हैं।

ऊगुन-उ से आरंभ होनेवाले तीन नक्षत्र, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़, तथा उत्तरा भाद्रपद। उ० ऊगुन पूगुन वि अज कृ म, आ भ अ मू गुनु साथ। (दो० ४५७)

ऊतर-(स० उत्तर)-जवाब, उत्तर। उ० बूझिये कहा रजाइ पाइ नय धरम सहित ऊतर दए। (गी० २।२२)

ऊतरु-दे० 'ऊतर'। उ० ऊतरु देइ न लेइ उसासू। (मा० २।१३।३)

ऊतरे-(सं० अवतरण)-उतरे हुए, जो पहनकर उतार दिए जायँ। उ० तुलसी पट ऊतरे ओढ़िहौं। (गी० २।२०)

ऊधो-(स० उद्धव)- दे० 'उद्धव'। उ० ऊधो या ब्रज की दसा बिचारो। (कृ० ३६)

ऊना-(स० ऊन)-१ कम, थोड़ा, छोटा, २ तुच्छ, मार्यादा। उ० १ जनि जननी मानहु जियँ ऊना। (मा० ५।१४।५)

ऊपजै-दे० 'उपजै'। उ० दुख ते दुख नहिं ऊपजै। (वै० ३०)

ऊपर-(स० उपरि)-पर, ऊँचाई पर, ऊँचे स्थान में। उ० गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका। (मा० ४।२८।६)

ऊपरि-दे० 'ऊपर'।

ऊब-(स० उद्वेजन)-उद्वेग, घबराहट, कुछ काल तक निरंतर एक ही अवस्था में रहने से चित्त की व्याकुलता। उ० सबकी सहत उर अंतर न ऊब है। (क० ७।१०८)

ऊबरै-(स० उद्धारण)-बचे, बच सके। उ० कहु तुलसि दास सो ऊबरै जेहि राख राम राजिवनयन। (क० ७।११७)

ऊमरि-(स० उदुंबर)-गूलर, एक वृक्ष जो काफी बड़ा होता है। उ० ऊमरि तरु बिसाल तव माया। (मा० ३।१३।१)

ऊरधरेख-(स० ऊर्द्ध्वरेखा)-१ पुराणानुसार अवतारों के ४८ चरण चिह्नों में से एक। २ शुभसूचक हस्त रेखा। उ० १ सकल सुचिन्ह सुजन सुखदायक ऊरधरेख बिसेष बिराजति। (गी० ७।१७)

ऊरू-(स० उरु)-जंघा, जानु, रान। उ० चरन-सरोज, चारु जंघा जानु ऊरू कटि। (गी० १।७१)

ऊर्द्ध-(स० ऊर्द्ध्व)-१ ऊपर, ऊपर की ओर, २ ऊँचा, खड़ा। उ० १ अध ऊर्द्ध बानर, बिदिसि दिसि बानर हैं। (क० ५।१७)

ऊर्ध्वरेता-(स० ऊर्द्ध्वरेता)-जो अपने वीर्य को गिरने न दे। ब्रह्मचारी। उ० जयति बिहंगेस बल-बुद्धि-बेगाति-मद मथन, ऊर्ध्वरेता। (वि० २६)

ऊर्मि-(स०)-१ लहर, तरंग, २ दुःख, पीड़ा।

ऊषर-दे० 'ऊसर'। उ० ऊषर बरषइ तृन नहिं जामा। (मा० ४।१५।२)

ऊसर-(स० ऊषर)-वह भूमि जिसमें रेह अधिक होती है और कुछ नहीं पैदा होता। उ० राम को सो दाम है, ऊसर कैसो बरिसो। (वि० २६४) ऊसरो-ऊसर भी। उ० तेरो नाम लेत ही सुखेत होत ऊसरो। (वि० १८०)

## ऋ

ऋक्ष-(स०)-१ भालू २ तारा, नक्षत्र, ३ रैवतक पर्वत का एक भाग।

ऋक्षपति-(सं०) १ भालुओं का सरदार जांबवान।

ऋगु-(स० ऋक्)-प्रथमवेद, ऋग्वेद। उ० पठियो पढ़्यो न छठी छ मत ऋगु, जजुर अथर्वन साम को। (वि० १५५)

ऋचा-(स०)-१ वेद मंत्र या पद्य में हो, २ स्तोत्र, स्तुति। उ० १ लगे पढ़न रच्छा ऋचा ऋषिराज बिराजे। (गी० १।६)

ऋच्छ-दे० 'ऋच्छ'। उ० हरषित सकल ऋच्छ सब यमचर। (गी० ६।१६)
ऋच्छपति-दे० 'ऋक्षपति'।
ऋजु-(सं०)-सीधा, सरल।
ऋण-(सं०)-क़र्ज़, उधार।
ऋणिया-दे० 'ऋनिया'।
ऋणी-(सं० ऋणिन्)-कर्ज़दार, ऋण लेनेवाला।
ऋतु-(सं०)-१ प्राकृतिक अवस्थाओं के अनुसार वर्ष के दो दो महीनों के छ विभाग। बसंत (चैत्र, वैशाख), ग्रीष्म (जेठ, असाढ़), वर्षा (सावन, भादों), शरद (क्वार, कातिक), हेमंत (अगहन, पूस) और शिशिर (माघ, फागुन)। २ रजोदर्शन के बाद का समय जब स्त्रियाँ गर्भ धारण के योग्य रहती हैं। उ० १ मनो देखन तुमहिं आई ऋतु बसंत। (वि० १४) ऋतु ह-ऋतुएँ, ऋतु का बहुवचन। उ० सकल ऋतु ह सुखदायक तामहँ अधिक बसंत। (गी० ७।२१)
ऋतुनाथ -(सं०)-बसंत ऋतु, ऋतुराज। उ० मानहुँ रति ऋतुनाथ सहित मुनि-बेष बनाए हैं मैन। (गी० २।२४)
ऋतुपति-(सं०)-बसंत ऋतु, ऋतुराज। उ० जनु रतिपति ऋतुपति कोसलपुर बिहरत सहित समाज। (गी० १।२)
ऋतुराज-बसंत ऋतु, सर्वोत्तम ऋतु।
ऋधि-(सं० ऋद्धि)-समृद्धि, बढ़ती। उ० ऋधि, सिधि, बिधि चारि सुगति जा बिनु गति अगति। (गी० २।८२)
ऋन-दे० 'ऋण'। उ० पाही खेती, लगनवट ऋन कुब्याज, मग-खेत। (दो० ४७८)
ऋनियाँ-क़र्ज़दार, रुपया या ऋण लेनेवाला। उ० ऋनियाँ कहाये हौं बिकाने ताके हाथ जू। (क० ७।१६)
ऋषय-ऋषि समूह, मुनिगण, मुनि लोग। उ० ऋषय सिद्ध मुनि मनुज दनुज सुर अपर जीव जग माहीं। (वि० ६)
ऋषि-(सं०)-मुनि, तपस्वी, संसार से विरक्त पुरुष। उ० सुरुप ऋषि सुख सुतनि को, सिय सुखद सकल सहाइ। (गी० ७।३४) विशेष-ऋषि सात प्रकार के माने गए हैं-महर्षि, परमर्षि, देवर्षि, ब्रह्मर्षि, श्रुतर्षि, राजर्षि और कांडर्षि। व्यास, भेल, नारद, वशिष्ट, सुश्रुत, ऋतपर्ण या जनक, तथा जैमिनि क्रमश सातों के लिए उदाहरण लिए जा सकते हैं। सप्तर्षि-सात ऋषि। कुछ लोग कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, वशिष्ट, यमदग्नि को तथा कुछ लोग मरीचि, अत्रि, अंगिरस्, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ट को सप्तर्षि मानते हैं। ऋषिनारि-गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या। दे० 'अहल्या'। उ० ऋषिनारि उधारि, कियो सठ केवट मीत, पुनीत सुकीर्ति लही। (क० ७।१०) ऋषि-रवनी-(सं० ऋषि रमणी)-दे० 'ऋषिनारि'। उ० परत पद पंकज ऋषि रवनी। (गी० १।४६) ऋषिराज-१ बहुत बड़ा ऋषि, २ वशिष्ठ मुनि। उ० २ दे० 'ऋचा'।
ऋष्यमूक-(सं०)-मद्रास के अनागुंडी स्थान से आठ मील दूर तुंगभद्रा नदी के तट पर स्थित एक पर्वत।

# ए

ए-(सं० एष)-१ यह, ये, २ इस। उ० १ जौं ए मुनि पटधर जटिल सुंदर सुठि सुकुमार। (मा० २।११६) २ भूरि भाग हम धन्य, आलि ए दिन, एरमन। (गी० १।७३) एइ-ये ही। उ० बल विनय विद्या सील सोभा सिंधु इन्ह से एइ अहैं। (मा० १।३११। छ०१) एई-ये ही, यही। उ० एई बातें कहत गवन कियो घर को। (गी० १।६७) एउ-ये भी, यह भी। उ० एउ देखि हैं पिनाकु नेकु जेहि नृपति लाज ज्वर जारे। (गी० १।६६)
एकअंग-१ एकांगी, एकतरफ़ा, एक ओर का, २ अनन्य, पूर्ण योग। उ० एकअंग जो सनेहता, निसि दिन चातक नेह। (दो० ३१३)
एकं-(सं०) एक। उ० ब्रह्म व्यापकमेकमनादि सदा। (मा० ६।१११। छ०४) एक-(सं०)-१ सबसे छोटी पूर्ण संख्या, १, केवल एक, गिनती की पहली संख्या, २ अद्वितीय, बेजोड़, ३ अकेला, एकाकी, ४ कोई, अनिश्चित। उ० १ मिलत एक दुख दारुन देहीं। (मा० १।५।२) एकइ-एक ही, केवल एक। उ० एकइ धर्म एक व्रत नेमा। (मा० ३।५।५) एकउ-एक भी। उ० एकउ जुगुति न मनठहरानी। (मा० २।२५३।४) एकन-एक ने, किसी ने। एकन्ह-एक को, किसी को। एकहिं-दे० 'एकहिं'। उ० अति बल जल बरषत दोउ लोचन दिन अरु रैन रहत एकहिं तक। (गी० २।६१) एकहि-एक ही। उ० भूप सहस दस एकहि बारा। (मा० १।२५१।१) एकहुँ-एक भी। उ० प्रभु के एकहुँ काज न आयउँ। (मा० ६।६०।२) एकै-१ एक ही २ एक को, ३ एक है। उ० १ तुलसी सोहि बिसेष एकिए एक प्रतीति, प्रीति, एकै बलु। (वि० २४) एकौ-एक भी। उ० गये दुख दोष देखि पद-पंकज अब न साध एकौ रही। (गी० ५।३१)
एकंत-दे० 'एकांत'।
एकंता-(सं० एकांत)-अलग, एकांत में, एकाकी। उ० सदा रहैं एहि भाँति एकंता। (वै० ४७)
एकठाइ-(सं० एकस्थ)-एकत्रित, इकट्ठा, एक जगह।
एकतीस-(सं० एकत्रिंशति)-तीस और एक, बत्तीस में एक कम
एकरस-१ समान, न सुखी न दुखी, एक ढंग का, परिवर्तित न होनेवाला, २ ईश्वर। उ० १ सुखी मीन सब एकरस अति अगाध जल माहिं। (मा० ४।१७ख)
एकला-(सं० एकल)-अकेला, एकाकी।
एकांत-(सं०)-१ अलग, पृथक्, अकेला, २ अत्यन्त नितांत। उ० १ तब एकांत बोलाइ सब कथा सुनायी सोहि। (मा० १।१६६)
एका-(सं० एक)-दे० 'एक'। उ० १ भिरिहें सुभट एक तें एका। (मा० १।२४१।२)

एकाकार-(स०)-मिलकर एक होने की क्रिया, एकमय होना।
एकाकिन्ह-(स० एकाकिन्)-अकेले रहने वालों, एकाकियों। उ० सहज एकाकिन्ह के भवन, कबहुँ कि नारि खटाहिं। (मा० १।७६) एकाकी-(स० एकाकिन्)-अकेला, तनहा। उ० जानि राम बनवास एकाकी। (मा० २।२२८।२)
एकाम-(स०)-१ चंचलता रहित, स्थिर, चंचलता रहित।
एकादसी-(स० एकादशी)-प्रत्येक चांद्रमास के शुक्ल और कृष्ण पक्ष की ग्यारहवीं तिथि, या उस दिन रखा जाने वाला व्रत जिसमें लोग फलाहार पर रहते हैं। कभी कभी इसमें अन्न, फल, जल कुछ भी ग्रहण नहीं किया जाता, जिसे निर्जला कहते हैं। वर्ष भर में चौबीस एकादशियाँ होती हैं, जिनके उत्पन्ना, प्रबोधिनी तथा भीमसेनी आदि अलग अलग नाम हैं। उ० एकादसी एक मन बस कै सेवहु जाइ। (वि० २०३)
एकु-दे० 'एक'। उ० १ अब अभिलाषु एकु मन मोरें। (मा० २।३।४)
एकू-दे० 'एक'। उ० १ बिमल बंस यहु अनुचित एकू। (मा० २।१०।४)
एतद्-(स०)-यह।
एत-(स० आदित्य)-सूर्य, रवि। उ० एत-बस बर बरन जुग सेतु जगत सब जान। (स० २६६)
एतनहि-इतना ही।
एतना-(स० एतावत्)-इतना, इस मात्रा का। उ० एतना कहत नीति रस भूला। (मा० २।२२६।३) एतनिअ-इतनी ही, केवल इतनी। उ० जनु एतनिअ बिरचि करतूती। (मा० २।१।३) एतनेइ-इतना ही। उ० एतनेइ कहेहु भरत सन जाई। (मा० २।१४७।१) एतनेहि-इतने ही। उ० जासु प्रीति रसु एतनेहि माहीं। (मा० २।१२।४)
एतनो-(स० एतावत्)-इतना। उ० एतनो परेखो सब भाँति समरथ आजु। (ह० २१) एतनोई-इतना ही। उ० राज धरम सरबसु एतनोई। (मा० २।३१६।१)
एतादस-(स० एतादृश)-इसके समान, ऐसा। उ० समुद एतादस अवध निवासू। (मा० २।१८८।३)
एती-(स० इयत्)-इतनी, इस मात्रा की। उ० तुलसी धरि उर आनि एक अब एती गलानि न गलतो। (गी० ५।३३)
एते-१ इतने, इस परिमाण के, २ इमसे। उ० १ सहि न जात मोपै परिहास एते। (वि० २५१) एतेहु-इतने भी। उ० एतेहु पर करिहहि जे असका। (मा० १।१२।४)
एतो-इतना। उ० एतो बड़ो अपराध, भो न मन बाँवो। (वि० ७२)
एन-(स० अयन)-घर, स्थान।
एरंड-(स०)-रेंड, रेंडी, एक पेड़ जिसके बीज से तेल निकाला जाता है।
एव-(स०)-ऐसा ही, इसी प्रकार। उ० एवमस्तु कहना निधि बोले। (मा० १।१५०।१) एवमस्तु-ऐसा ही हो, यही हो। उ० दे० 'एव'। एव-(स०)-१ एक निश्चयार्थक शब्द, ही, २ भी। उ० १ गुण सार सुविचार हत स्वारथ-साधन एव। (दो० ३४६)
एह-(स० एष)-यह। उ० सुनु अजहुँ सिखावन एह। (वि० १६०) एहि-इसने। उ० पावक बैठि पेड़ एहि काटा। (मा० २।४७।३) एहि-(स० एष)-१ इसे, इसको, २ इसी, ३ इसे। उ० १ सदा रामु एहि प्रान समाना। (मा० २।४७।३) एहीं-इसी। उ० लोचन लाहु लेहु छन एहीं। (मा० २।११४।३) एही-इसी। उ० रीझि बूझी सबकी, प्रतीति प्रीति एही द्वार। (वि० २६०)
एहा-दे० 'एह'। उ० एक जनम कर कारन एहा। (मा० १।१२४।२)
एहु-यही। उ० अब अति कीन्हेहु भरत भल तुम्हहि उचित मत एहु। (मा० २।२०७)
एहूँ-इसी। उ० एहूँ मिस देखौं पद जाई। (मा० १।२०६।४) एहू-यही, यह। उ० तुम्ह तो भरत मोर मत एहू। (मा० २।२०८।४)

# ऐ

ऐ-(स०)-१ शिव, २ एक संबोधन।
ऐक-(स० ऐक्य)-१ एक का भाव, २ समता। उ० २ कीन्ह बहुत श्रम ऐक न आए। (मा० २।१२०।३)
ऐन (१)-(स० अयन)-घर, भंडार। उ० बिहँसे करुना ऐन चितइ जानकी लखन तन। (मा० २।१००)
ऐन (२)-(अर०)-१ अरबी फारसी तथा उर्दू का एक अक्षर (ع) २ ठीक-ठीक, पूरा। उ० १ दे० 'गैन'।
ऐना-दे० 'ऐन (१)'।
ऐनी-दे० 'ऐन (१)'। उ० बड़े भाग मख भूमि प्रगट भइ सीय सुमंगल ऐनी। (गी० १।७६)
ऐपन-(स० लेपन)-एक मांगलिक द्रव्य जो चावल और हल्दी को एक साथ गीला पीसने पर बनता है। पूजादि में इससे थापा लगाते हैं। उ० अपनो ऐपन निजहथा तिय पूजहिं निज भीति। (दो० ४२४)
ऐरापति-(स० ऐरावत)-इंद्र का हाथी जो पूर्व दिशा का दिग्गज है। समुद्र-मंथन करने पर यह निकला था।
ऐरावत-दे० 'ऐरापति'।
ऐश्वर्य-(स०)-१ विभूति, धन, संपत्ति, २ प्रभुत्व आधिपत्य। उ० १ ज्ञानविज्ञान-वैराग्य ऐश्वर्य निधि। (वि० ६१)
ऐसइ-दे० 'ऐसेइ'।
ऐसा-(स० ईदृश)-इस प्रकार का, इस ढंग का। उ० साधु अवग्या कर फलु ऐसा। (मा० ५।४१।३) ऐसि-इस प्रकार की, ऐसी। उ० आदि कि मोहइ ऐसि बड़ाई। (मा०

६।९६।१) ऐसिअ-इसी प्रकार का, ऐसे ही। उ० ऐसिअ प्रश्न बिहगपति कीन्हि काग सन जाइ। (मा० ७।५५) ऐसिउ-ऐसी भी, इस प्रकार की भी। उ० ऐसिउ पीर बिहसि तेहिं गोई। (मा० २।२७।३) ऐसिय-ऐसी ही। उ० ऐसिय हाल भई तोहिं धौं। (क० ६।१२) ऐसी-इस प्रकार की। उ० अघटित घटन, सुघन बिघटन, ऐसी बिरुदावलि नहिं आन की। (वि० ३०) ऐसे-इस प्रकार के। उ० ऐसे को ऐसो भयो कबहूँ न भजे बिन बानर के चरवाहे। (क० ७।५६) ऐसेइ-ऐसा ही, इसी प्रकार। उ० ऐसेइ होउ कहा सुखु मानी। (मा० १।८६।३) ऐसेउ-ऐसे भी। उ० ऐसेउ भाग भगे दसभाल तें जो प्रभुता कवि कोबिद गावैं। (क० ७।२) ऐसेऊ-ऐसे भी, इस प्रकार के भी। उ० जानकी जीवन जाने बिना जग ऐसेऊ जीव न जीव कहाए। (क० ७।४५) ऐसेहि-इसी प्रकार, ऐसा ही। उ० ऐसेहि करत धरहु मन धीरा। (मा० ५।५१।६) ऐसेहिं-दे० 'ऐसेहि'। ऐसेहु-ऐसे भी, इस प्रकार के भी। उ० जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। (मा० २।४२।१) ऐसेहूँ-ऐसे भी। उ० ऐसेहूँ बल बामता, बड़ि बाम बिधि की बानि। गी० ७।३२)

ऐसो-ऐसा, इस प्रकार का। उ० सोंउ तुलसी निवाज्यो ऐसो राजा राम रे। (वि० ७१) ऐसोइ-ऐसा ही, इस प्रकार का ही। उ० मानत नहिं परतीति अनत ऐसोइ सुभाव मन बाम को। (वि० १५५)

ऐहउँ-आऊँगा, आ जाऊँगा। उ० ऐहउँ बेगिहि होउ रजाई। (मा० २।४६।२) ऐहहिं-आवेंगे, आयेंगे। उ० ऐहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता। (मा० २।३१।४) ऐहहु-आवोगे, आयोगी। उ० जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं। (मा० १।५२।१) ऐहैं-आवेंगे। उ० काज के कुसल फिरि एहि मग एहैं ? (गी० २।३७) ऐहै-आवेगा। उ० ऐहै कहा, नाथ आयो ह्याँ, क्यों कहि जाति बनाइ है। (गी० ५।३४) ऐहौ-आओगे। उ० तुलसी बीते अवधि प्रथम दिन जो रघुबीर न ऐहौ। (गी० २।७६)

# ओ

ओंकार (सं०)-१ ओ३म्, एक पवित्र शब्द जो वेदाध्ययन के पूर्व और अंत में कहा जाता है। २ प्रणव, ब्रह्म। उ० १ निराकारमोंकारमूल तुरीय। (मा०७।१०८। श्लो० २)

ओ-(सं०)-१ ब्रह्मा, विधाता, २ संबोधनसूचक एक शब्द।

ओउ-वे भी, वह भी। ओऊ-वह भी, वे भी। उ० जद्यपि मीन पतंग हीनमति मोहिं नहिं पूजहिं ओऊ। (वि० ९२)

ओक-(सं०)-१ घर, स्थान, निवास, २ आश्रय, ठिकाना, ३ समूह, ग्रहों या नक्षत्रों का समूह। उ० १ ओर की नींव परी हरिलोक, बिलोकत गंग तरंग तिहारे। (क० ७।१४५) २ ओक दै बिसोक किए लोकपति लोकनाथ। (वि० २४८)

ओघ-(सं०)-१ समूह, ढेर, २ किसी वस्तु का घनत्व, ३ धारा, बहाव। उ० १ जो बिलोकि अघ ओघ नसाहीं। (मा० २।२४१।२)

ओज-(सं०)-१ बल, प्रताप, २ दीप्ति, तेज।

ओझ (१)-(सं० उदर)-पेट की थैली, आँत।

ओझ (२)-(सं० उपाध्याय)-ब्राह्मण, पंडित। उ० तुलसी रामहिं परिहरे निपट हानि सुनु ओझ। (दो० ९८)

ओझरी-पेट के भीतर की थैली पचौनी। उ० ओझरी की झोरी काँधे, आँतनि की सेल्ही बाँधे। (क० ६।५०)

ओट-(सं० उट=तृण)-१ आड़, २ शरण, सहारा। उ० २ नाम ओट लेत ही निखोट होत खोटे खल। (क० ७।१७) मु० ओट लेत-शरणा लेते, सहारा लेते।

ओटा-दे० 'ओट'। उ० १ लखेउ न लखन सघन बन ओटा। (मा० २।२३६।१)

ओठ-(सं० ओष्ठ)-होंठ, अधर, लब। उ० दसन ओठ काटहिं अति तर्जहिं। (मा० ६।४१।६)

ओड़न-(सं० ओधन)-रोकने में, वारण करने में। उ० एक कुसल अति ओड़न खाँड़े। (मा० २।१९१।३) ओड़िअहिं-१ रोके जाते हैं, २ रोकेंगे। उ० १ ओड़िअहिं हाथ असनिहु के घाए। (मा० २।३०६।४) ओड़िअत-ओड़ते हैं, रोकते हैं। उ० पलक पानि पर ओड़िअत समुझि कुघाइ सुघाइ। (दो० ३२५) ओड़िये-फैला हुए, पसारिए। उ० तजि रघुनाथ हाथ और काहि ओड़िये। (क० ७।२५)

ओढ़न-(सं० उपवेष्ठन)-ओढ़ने या शरीर ढकने के लिए कपड़ा। रजाई, दुपट्टा, चादर या ओढ़नी आदि। उ० लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। (मा० ७।४०।१)

ओढ़ाई-ढकी हुई, आच्छादित। उ० हेमलता जनु तरु तमाल ढिग नील निचोल ओढ़ाई। (वि० ६१)

ओढ़िहौं-ओढ़ूँगा, अपना शरीर ढकूँगा। उ० तुलसी पट उतरे ओढ़िहौं। (गी० ५।३०)

ओत (१)-१ आराम, चैन सुख, २ आलस्य, ३ ताना बाना। उ० होत न बिसोक, ओत पावै न मनाक सो। (क० ५।२५)

ओतो-(सं० तावान्)-उतना, उस मात्रा का। उ० क्यों कहि आवत ओतो। (वि० १६१)

ओदन-(सं०) पका हुआ चावल, भात। उ० भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ। (मा० १।२०३)

ओधे-(सं० आबंधन)-बँध गए, लग गए। उ० निज निज काज पाइ सिख ओधे। (मा० २।३२३।१)

ओप-(?)-१ दीप्ति, चमक, २ सुन्दरता ३ यश, ४ प्रताप। उ० ४ स्वल मर गुन मानै नहीं मेटहिं दाता ओप। (स० ६२७)

ओर-(सं० अवार)-१ तरफ, दिशा, २ अंत, छोर, ३

आरम्भ। उ० २ होउ नास यह ओर निबाहू। (मा० २।२४।३)

ओरहने-(सं० उपालम्भ)-उलाहना, शिकायत। उ० ठाढ़ी ग्वालि ओरहने के मिस आइ पेकामहि। (कृ० ६)

ओरा-दे० 'ओर'। उ० १ मुनी देखि दल जनु चहु ओरा। (मा० २।७३।३)

ओरी-दे० 'ओर'। उ० १ मल-मसान करेँ दाउ ओरी। (गी० १।१०३)

ओरे-(सं० उपल)-ओला, वर्षा में गिरे हुए मेह के जमे पत्थरवत् हिम के गोले। उ० गरहिं गात जिमि आतप ओरे। (मा० २।१४७।४)

ओल-(?)-किसी का अपने किसी प्रिय प्राणी का दूसरे के पास इसलिए रख छोड़ना कि यदि वह प्रतिज्ञा न पूरी कर तो दूसरा उस प्राणी के साथ जो चाहे करे। जमानत में किसी व्यक्ति या वस्तु को रखना। उ० बाजे बाजे राजनि के बेटा-बेटी ओल हैं। (क० ५।२१)

ओषध-दे० 'ओषधि'।

ओषधि-(सं०)-वह वनस्पति या जड़ी-बूटी जो दवा के काम आवे।

ओषधी-(सं०)-दे० 'ओषधि'।

ओषधीश-(सं०)-१ चन्द्रमा, २ कपूर।

ओस-(सं० अवश्याय)-शीत, शबनम, हवा में मिली भाप जो रात में सरदी के कारण जमकर जल बिंदु बनकर जाड़े के दिनों में बाहर की चीजों पर लग जाती है। उ० पकज कोस ओसकन जैसे। (मा० २।२०७।१)

ओसरि-ह-(सं० अवसर)-बारी बारी से। उ० कुलहि झुलावहिं ओसरि-ह गावैं सुहो गौंड मलार। (गी०७।१८)

ओहार-(सं०अवधार)-रथ या पालकी के ऊपर का कपड़ा या परदा। उ०सिबिका सुभग ओहार उघारी। (मा० १।३४८।१)

ओहि-(सं० स )-उसको, उसे।

ओही-१ उससे, २ उसको, ३ उसका। उ० २ सादर पुनि-पुनि पूँछति ओही। (मा० २।१७।१)

ओहू-उस, वह भी। उ० पिता बचन मनसेउँ नहिं ओहू। (मा० २।६१।३)

# औ

औंजि-(सं० आवेजन)-ऊबकर, घबराकर। उ० एक औंजि पानी पीकै कहै 'बनत न आवनो'। (क० ५।१८)

औ (१)-(सं०)-१ शेष, २ पृथ्वी।

औ (२)-(सं० अपर)-और। उ० तुलसी सुनि ग्रामबधू बिथकीं, पुलकीं तन औ चले लोचन च्वै। (क० २।१८)

औगुण-(सं० अवगुण)-दोष, बुराई।

औगुन-दे० 'औगुण'। उ० निपट बसेरे अघ औगुन घनेरे नर। (क० ७।१७४)

औघट-(सं० अव + घट्ट)-कुघट, अटपट, विकट।

औचक-(सं० चक)-अचानक, एकाएक, सहसा।

औचट (१)-(उच्चाटन)-अड़स, संकट, कठिनाई।

औचट (२)-(?)-१ अचानक, अकस्मात २ भूल से, अनचीते में।

औटत-(सं० आवर्तन)-१ औटने पर, उबालने पर, २ औटता है। उ० १ ईंधन अनल लगाइ कलप सत औटत नास न पावै। (वि० ११५) औटि-औटकर, उबालकर।

औढर-(सं० धार)-१ जल्द पसीजनेवाला, मनमौजी, २ बिना ध्यान दिये, जल्द। उ० २ भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत हैं। (क० ७।१५६)

औतार-दे० 'अवतार'।

औतेहु-आते, पधारते। उ० आँ दुग्द औतेहु मुनि की नाई। (मा० १।२८२।२)

औध-दे० 'अवध'। उ० औध तजी मगवास के रूख ज्यों। (क० २।१)

औनिप-(सं० अवनिप)-राजा, नृप। उ० औनिप अनेक ठाढ़े हाथ जोरि हारि कै। (क० ७।१६४) औनिपन-राजाओं ने, राजा लोगों ने। उ० माति त्रास औनिपन मानो मौनता गही। (क० १।१४)

और-(सं० अपर)-१ अन्य, भिन्न, दूसरा, २ एक संयोजक शब्द, तथा, ३ अधिक, ज्यादा। उ० १ और आस बिस्वास भरोसो हरो जीव जड़ताई। (वि० १०३) औरउ-और भी, इसके अतिरिक्त अन्य भी। उ० औरउ कथा अनेक प्रसंगा। (मा० १।३७।८) औरनि-औरों, दूसरों। उ० औरनि की कहा चली एकै बात भले भली। (वि० २५१) औरहिं-दे० 'औरहि'। औरहि-दूसरे को, किसी अन्य को। उ० जानकी जीवन को जन ह्वै जरि जाउ सो जीह जो जाँचत औरहि। (क० ७।२६) औरहु-और भी अन्य भी। उ० सीता अरु लछिमन संग लीन्हें औरहु जिते दास आप। (गी० ७।३८) औरे-और से, अन्य से। उ० बनिहै बात उपाइ न औरे। (गी० २।११) औरै-१ और ही, दूसरी ही, २ दूसरे को, किसी अन्य का। उ० १ औरै आगि लागी, न बुझावै सिंधु सावनो। (क० ५।१८) औरो-और भी, और भी कुछ। उ० अवधि आस कियौं औरो दिन है हैं। (गी० ६।१७)

औरस-(सं०)-अपनी धर्मपत्नी से उत्पन्न पुत्र स्मृत्यनुसार १२ प्रकार के पुत्रों में सर्वश्रेष्ठ।

औरबें-(सं० अव + रेव)-टेढ़ी चालें चाल की बातें। उ० हमहूँ कछुक लखी ही तब की औरबै नंदलला की। (कृ० ३३)

औषध-(सं०) दवा, रोग नाशकद्रव्य। उ० बिनु औषध बियाधि बिधि खोई। (मा० १।१०।१२)

औषधी–दे० 'औषध' । उ० कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवनसुत लेन । (मा० ६।५५)
औषधु–दे० 'औषध । उ० एहि कुरोग कर औषधु नाहीं । (मा० २।२१२।१)
औसर–(स० अवसर)–समय, मौका । उ० तुलसी तेहि औसर लावनिता दस, चारि नौ, तीनि, इकीस सबै । (क० १।७)
औसरा–दे० 'औसर' । उ० अधिकारी बस औसरा भलेउ जानिये मंद । (दो० ४५५)
औसान–(स० अवसान)–अंत, आखीर, समाप्ति ।
औसि–(सं० अवश्य)–ज़रूर, निश्चय ।
औसेर–(स० अवसेर)–१ खटका, खटकाव, २ देर, विलंब, ३ चिंता ।

# क

क–(स०)–१ पानी, जल, २ मस्तक, ३ कामना, ४ अग्नि, ५ सुख, ६ सोना । उ० १ कारन को क जीव को ख गुन कह सब कोय । (स० २७७)
कंक–(स०)–१ एक मांसाहारी पक्षी, सफ़ेद चील, २ बगुला, ३ यमराज, ४ कंस का एक भाई, ५ क्षत्रिय । उ० १ काम कंक बालक कोलाहल करत हैं । (क०६।५१)
कंकण–दे० 'कंकन ।
कंकन–(स० कंकण)–१ कलाई में पहनने का एक आभूषण, कड़ा, चूड़ा । २ विवाह के समय लोहे की अँगूठी आदि के साथ कलाई में बाँधे जानेवाला धागा । उ० १ कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि । (मा० १।२३०।१)
कँगूरन्हि–कंगूरों पर, बुर्जों पर । उ० कोट कँगूरन्हि सोहहिं कैसे । (मा० ६।४१।१) कँगूरा–(फ़ा० कुंगर )–१ शिखर, चोटी, २ कोट, किला या बड़े मकानों की दीवार में थोड़ी थोड़ी दूर पर बने कुछ ऊँचे बुर्ज । उ० २ रचे कँगूरा रंग रंग बर । (मा० ७।२७।२)
कँगाल–दे० 'कंगाल' ।
कंगाल–(स० कंकाल)–१ भुक्खड़, भगन, २ गरीब, दीन । उ० १ टूकनि को घर घर डोलत कंगाल बोलि । (ह० २६)
कंचन–(स० कांचन) सोना, सुवर्ण । उ० । किंकर कंचन कोह काम के । (मा० १।१२।२) कंचनहिं–सोने को । उ० स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहिं कसैहौं । (वि०१०५)
कंचुक–(स०)–१ जामा, अचकन, २ चोली, ३ वस्त्र, ४ केंचुल । उ० २ बहु बासना विविध कंचुक भूषन-लोभादि भर्यो । (वि० ६१)
कंचुकि–(स० कंचुकी)–अँगिया, चोली । उ० श्रीफल, कुच, कंचुकि लताजाल । (वि० १४)
कंचुकी–(स ) दे० 'कंचुकि' ।
कंज–(स०)–१ कमल, पंकज, २ ब्रह्मा, ३ अमृत, ४ सिर के बाल ५ विष्णु के चरण में मानी जानेवाली एक रेखा । उ० १ बंदउँ गुरु पद कंज कृपासिंधु नर रूप हरि । (मा० १।१। सो० ५) कंजनि–कमलों में । उ० कर-कंजनि पहुँची मंजु । (गी० १।११)
कंजनाभ–कमलनाभ विष्णु, जिसकी नाभी से कमल उत्पन्न हो । उ० परनकारन, कंजनाभ, जगदाभतनु सगुन निर्गुन, सकल-दृश्य द्रष्टा । (वि० ५३)
कंजा–दे० 'कंज' । उ० १ सिर परसे प्रभु निज कर कंजा । (मा० १।१४८।४)
कंजु–दे० 'कंज' । उ० बंदउँ मुनि पद कंजु, रामायन जेहिं निरमयउ । (मा० १।१४ घ)
कंट–(स० कंटक)–काँटा ।
कंटक–(स०)–१ काँटा, २ कष्ट देनेवाला, ३ बाधा, विघ्न । उ० १ ध्वज कुलिस अंकुस कंज युत बन फिरत कंटक किन लहे । (मा० ७।१३। छ० ४)
कंटकित–(स )–कंटेदार, कंटकयुक्त । उ० कमल कंटकित सजनी कोमल पाइ । (ब० २६)
कंठ–(स०)–१ गला, ग्रीवा, गर्दन, २ मुँह, गले के भीतर की भोजन नालिका जिससे होकर अन्न तथा जल आदि पेट में पहुँचता है । ३ स्वर, आवाज़ । उ० १ तथा ३ नीलकंठ कलकंठ सुक चातक चक्क चकोर । (मा० २।१३७) कंठ-हँसी–भीतर ही भीतर हँसना, मुस्कराना । उ० श्यामाकामी कंठहँसी मुँहा चाह होन लगी । (गी० १।८२) कंठे–(स०)–कंठ में, गले में । उ० लसद्भाल बालेन्दु कंठे भुजंगा । (मा० ७।१०८। श्लो० ३)
कंठि–कंठवाली । [जैसे कलकंठि = मधुर कंठवाली = कोयल] उ० सुनि कलरव कलकंठि लजानी । (मा० १।२४७।२)
कंठु–दे० 'कंठ' । उ० २ कंठु सूख मुख आव न बानी । (मा० २।३५।१)
कंडु–(स०)–खुजली, खाज । उ० ममता दाद कंडु इरषाई । (मा० ७।१२१।१७)
कंत–(स० कांत)–पति, स्वामी, मालिक । उ० कंतराम विरोध परिहरहू । (मा०६।१४।४) कंता–दे० 'कंत । उ० जीव अनेक एक श्रीकंता । (मा० ७।७८।४)
कंतार–(स० कांतार)–दे० 'कांतार' । उ० २ ससार कंतार अतिघोर गभीर । (वि० ५९)
कंद (१)–(स०)–१ जड़, मूल, खाने के काम आनेवाली जड़ें । २ बादल, ३ समूह । उ० १ सिय सुमंत्र भ्राता सहित कंद मूल फल खाइ । (मा० २।८३)
कंद (२ –(फ़ा०)–मिश्री, एक मिठाई ।
कंदर–(स०)–गुफा, गुहा, पर्वतों में रहने योग्य सुरक्षित स्थान । उ० कंदर खोह नदीं नद नारे । (मा० २।६२।४) कंदरन्हि–कंदराओं, गुफाओं । उ० सदमय पर्वत कंदरन्हि महुँ जाइ तेहि अवसर दुरे । (मा० १।८४। छ १)
कंदरॉं–कंदरा में । उ० गिरिकंदरॉं सुनी संपाती । (मा०

१।२७।१) कदरा-(सं०)-दे० 'कदर'। उ० गिरि कदरा खोह अनुमाना। (मा० ६।१३।३)
कंदर्प-(सं०)-१ कामदेव, मनोज। उ० कदर्पदर्प दुर्गम दवन उमारवन गुनभवन हर। (क० ७।१५०) कदर्पहं-कामदेव को भस्म करनेवाले, शंकर। उ० गौरीनाथ गिरिजापति गुणनिधि कदर्पहं शंकरम्। (मा० ६।१। श्लो०२)
कदा-दे० 'कद'। उ० १ करहिं अहार साक फल कदा। (मा० १।१४०।१)
कंदाकर-(सं०) आकाश, मेघों का घर।
कंदिग-क=सिर, दिग=दिशा=१०। अर्थात् दस सिरवाला, रावण। उ० कदिग दन नक्षत्र हनि गुनी अनुज तेहि कीन। (स० २२१)
कंदिनी-(सं० कदन)-नाश करनेवाली।
कंदु-दे० 'कदुक'।
कंदुक-(सं०) १ गेंद, २ गोल तकिया, ३ सुपारी, पुंगीफल। उ० १ कदुक इव ब्रह्मांड उठावौं। (मा०१।२५३।२)
कँदैलो-(सं० कर्दम)-कीचड़वाला, मलयुक्त, गंदा। उ० जनम कोटि को कँदैलो हृद-हृदय थिरातो। (वि० १५१)
कंध-(सं० स्कंध)-१ कधा गला और भुजमूलों के बीच का स्थान, २ डाली, मोटी डाली। उ० १ वृषभकंध केहरि ठवनि बलनिधि बाहु विसाल। (मा० १।२४३)
कंधर-(सं०)-१ गर्दन, गला, २ बादल। उ० १ केहरि कधर चारु जनेऊ। (मा० १।१४७।४)
कधरा-दे० 'कधर'।
कंधा-(सं० स्कंध)-शरीर का वह भाग जो गले और मोढे के बीच में रहता है।
कंप-(सं०)-काँपना, थरथराहट, कँपकँपी। उ० हृदय कप तन सुधि कछु नाहीं। (मा० १।२२।३)
कंपत-काँपता है। उ०कपत अकपन, सुखाय अतिकाय काय। (क० ६।४३) कपति (१)-१ काँपता है, हिलता है, २ काँप उठा, काँप गया। उ० १ मदोदरी उर कप कपति कमठ भू भूधर त्रसे। (मा० ६।११। छ० १) कंपहिं-काँपते हैं, काँप उठते हैं। उ० कपहिं भूप बिलोकत जाकें। (मा० १।२९३।२) कपेउ-काँप उठे, काँप गए। उ० भयउ कोपु कपेउ त्रैलोका। (मा० १।८७।२)
कंपति (२)-(सं०)-समुद्र, पानी का स्वामी। उ० सरित तोयनिधि कपति उदधि पयोधि नदीस। (मा० ६।५)
कपती-दे० 'कपति (१)'।
कंपन-(सं०)-काँपना, कँपकँपी।
कंपित-(सं०)-१ काँपता हुआ, २ भयभीत, डरा। उ० १ कहहिं बचन भय कपित गाता। (मा० १।१२।३)
कंपै-कँपाकर, कपित कर। उ० कँपै कलाप बर बरहि फिरावत। (गी० ३।१)
कंबल-(सं०)-१ ऊन का बुना हुआ बहुत मोटा कपड़ा जो ओढ़ने के काम आता है। २ एक बरसाती कीड़ा। ३ गाय या बैल के गले के नीचे लटकती हुई झालर। उ० ३ गनकवत कंबला बिभाति। (वि० २२)
कंबु-(सं०)-१ शख, २ घोंघा, ३ हाथी। उ० १. कंबु कठ अति चिबुक सुहाई। (मा० १।१९९।४)
कंस-(सं०)-१ मथुरा के राजा उग्रसेन का पुत्र जो कृष्ण का मामा था और जिसे कृष्ण ने मारा था। यह बहुत ही अत्याचारी था। यहाँ तक कि राज्य के लाभ से इसने पिता अपने को भी इसने बदी बना दिया था। उ० विपुल कंसादि निर्वंसकारी। (वि० ४८)
क (१)-(सं०)-१ ब्रह्मा, २ कामदेव, ३ विष्णु, ४ प्रकाश।
क (२)-(सं० कृत)-सबधकारक का चिह्न का, के।
क (३)-(?) के लिए, का। उ० जो यह साँची है सदा तौ नीको तुलसीक। (मा० १।२६ ग)
कइ (१)-(सं० क)-की। उ० सोभा दसरथ भवन कइ को कवि बरनै पार। (मा० १।२९७)
कइ (२)-(सं० कति)-कई, एक से अधिक, अनेक।
कइकइ-(सं० कैकेयी)-राजा दशरथ की रानी और भरत की माता कैकेयी।
कच-(सं०)-१ बाल, चिकुर, केश, २ बादल। उ० १ चिक्कन कच कुचित गभुआरे। (मा० १।१९९।५) कचनि-कचों ने, बालों ने। उ० कचनि अनुपम छबि पाई। (गी० १।१०६)
कचुमर-(?) कुचलकर बनाया हुआ अचार, कुचला।
कच्छ-(सं० कच्छप)-१ कछुआ, २ तुन का पेड़ जो बहुत जल्दी जलता है। उ० २ राम-प्रताप हुतासन कच्छ बिपच्छ समीर समीर दुलारो। (ह० १३)
कच्छप-(सं०)-कछुआ, कच्छ।
कच्छपु-दे० 'कच्छप'। उ० परम रूपमय कच्छपु सोई। (मा० १।२४७।४)
कछु-(सं० किंचित)-कुछ, ज़रा, थोड़ा सा, थोड़ी मात्रा या संख्या का। उ० दुखप्रद उभय बीच कछु बरना। (मा० १।२।२) कछुअ-कुछ भी, तनिक भी। उ० तब तें कछुअ न पाए। (गी० ३।११) कछुएक-थोड़ी सी, थोड़ी। उ० एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछुएक है कही। (मा० २।३। छ० ३) कछुवै-कुछ भी। उ० तिन्ह तें खर सूकर स्वान भले, जड़तावस ते न कहैं कछुवै। (क० ७।४०)
कछुक-दे० 'कछु'। उ० कछुक बनाइ भूप सन भाषे। (मा० १।१३१।२)
कछू-दे० 'कछु'। उ० नाथ न कछू मोरि प्रभुताई। (मा० १।३३।५)
कछौटी-(सं० कक्ष)-लँगोटी, कछनी, कछौटा। उ० लसनि पट कछौटि कटि छोनिय तरकसी। (गी० १।४२)
कज्जल-(सं०)-१ काजल, अजन, २ काला, श्याम ३ स्याही, रोशनाई। उ० १ सहित प्राण कज्जलगिरि जैसे। (मा० ६।११।२)
कटक-(सं०)-१ सेना, फौज, २ समूह, ३ कंकण, कड़ा, ४ चाक, पहिया, ५ चढ़ाई। उ० १ सुभट-मर्कट भालु कटक सघट सजत। (वि० ४३) ३ मया पट-लटु घट मृत्तिका, सर्प-स्रग, दारु-करि, कनक-कटकांगदादी। (वि० ५३) कटकहिं-सेना में, फौज में। उ० गर्जहिं बहुदाम करि भइ कपि कटकहिं ग्राम। (मा० ६।७२)
कटकई-सेना, फौज। उ० विजय हेतु कटकई बनाई। (मा० १।१८१।६)
कटककारी-सेना का बनाने या सजानेवाला, सेनापति।

उ० बिबिध को सौध अति रुचिर मंदिर निकट सत्रगुन प्रमुख अय-कटककारी। (वि० ४८)

कटकटहिं-(ध्व०)-कट कट शब्द करते हैं। उ० कटकटहिं कठिन कराल। (मा० ३।२०।७)

कटकटाइ-कट कट शब्द कर, दाँत बजा कर। उ० कटकटाइ गर्जा अरु धाया। (मा० ५।१६।२) कटकटाइ-कट कट शब्द किया। कटकटात-कट-कट शब्द करते हैं। उ० कटकटात भट भालु बिकट मरकट करि केहरि नाद। (गी० ५।२२) कटकटान-दाँतों से कट कट शब्द किया। उ० कटकटान कपि कुंजर भारी। (मा० ६।३२।२) कटकटाहिं-कट कट शब्द करते हैं। उ० कटकटाहिं कोटिन्ह भट गर्जहिं। (मा० ६।४१।३)

कटकाई-सेना, फौज। उ० जौं आवै मर्कट कटकाई। (मा० ५।३७।२)

कटकु-दे० 'कटक'।

कटक्कट-कट कट का शब्द। उ० जंबुक निकर कटक्कट कट्टहिं। (मा० ६।८८।४)

कटत-(सं० कर्त्तन)-१ कटता है कट जाता है, २ कटेंगे। उ० १ कटत झटिति पुनि नूतन भये। (मा० ६।६२।६) कटन-कटने, टूक टूक होने। उ० लगे कटन बिकट पिसाच। (मा० ३।२०।४) कटहिं-कट रहे हैं, कटते हैं। उ० कटहिं चरन उर सिर भुजदंडा। (मा० ६।६८।३) कटेहुँ-कटने पर भी। उ० भरत न मूढ़ कटेहुँ भुज सीसा। (मा० ६।६८।१) कटै-कट जाय, समाप्त हो जाय। उ० सुत हित होइ कटै भवबंधन। (वि० १३६)

कटाइको-काटनेवाला भी। उ० राम सो न साहिब, न कुमति कटाइको। (क० ७।२२)

कटाच्छ-(सं०)-१ तिरछी चितवन, तिरछी नज़र, २ व्यंग्य, ताना, ३ दृष्टि, नज़र।

कटाच्छु-दे० 'कटाच्छ'। उ० ३ यह सब सुखु मुनिराज तव कृपा कटाच्छ पसाउ। (मा० १।३३१)

कटाछ-दे० 'कटाच्छ'। उ० १ छियो न तरुनि-कटाच्छ सर। (दो० ४३८)

कटाह-(सं०)-१ कड़ाह, बड़ी कड़ाही, २ कछुए का खपड़ा। उ० १ अघ कटाह अमित सब कारी। (मा० ७।६४।७)

कटि (१)-(सं)-कमर, पीठ और पेट के नीचे का भाग लंक। उ० कटि भाथी सर चाप चढ़ाई। (मा० २।६०।२) कटिन्ह-कमर में, कमरों (कमर का बहुवचन) में। उ० मुनि पट कटिन्ह कसें तूनीरा। (मा० २।११५।४)

कटि (२)-(सं० कटक)-चक, कनीनी। उ० बड़े नयन कटि भृकुटी भाल बिसाल। (ब० ४)

कटिहउँ-काट डालूँगा। उ० कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना। (मा० ५।१०।१)

कटिसूत्र-(सं०)-मेखला, करधनी। उ० कटि किंकिनि कटि सूत्र मनोहर। (मा० १।३२७।२)

कटु-(सं०)-१ छः रसों में से एक, चरपरा, कड़ुआ, २ बुरा लगनेवाला, अनिष्ट, ३ कठोर, अकोमल। उ० २ जागि करहिं कटु कोटि कलपना। (मा० २।१२७।३)

कटुक-(सं०)-दे० 'कटु'।

कटुबादी-कड़ुवा बोलनेवाला, अप्रियवक्ता। उ० कटुबादी बालकु बध जोगू। (मा० १।२७५।२)

कटैया-काटनेवाला। उ० दसरत्थ को नंदन बंदि कटैया। (क० ७।४१)

कट्टहिं-कटकटाते हैं, कट-कट शब्द करते हैं। उ० दे० 'कटक्कट'।

कठमलिया-(सं० काष्ठ+माला)-काठ की माला पहनने वाले, झूठे संत। उ० करमठ कठमलिया कहैं ज्ञानी ज्ञान बिहीन। (दो० ६६)

कठवता-(सं० काष्ठ)-काठ का बना एक भारी बर्तन। उ० पानि कठवता भरि लेइ आवा। (मा० २।१०१।३) कठवति-काठ का बर्तन, कठौती। उ० मीठो अरु कठवति भरो रौताई अरु छेम। (दो० १४)

कठिन-(सं०)-१ कड़ा, कठोर, २ दुष्कर, मुश्किल, ३ क्लेश, प्रचंड, विकट। उ० ३ हरन कठिन कलि कलुष कलेसू। (मा० २।३२६।३)

कठिनई-कठिनाई, कठिनता, मुश्किलाहट। उ० जदपि मृषा छूटत कठिनई। (मा० ७।११७।२)

कठिनता-१ कठोरता, कड़ाई, २ निर्दयता। उ० २ सुनत कठिनता अति अकुलानी। (मा० २।४१।१)

कठिनाइ-१ मुश्किल, २ आपत्ति, ३ कठोरता, ४ कठोर, कड़ा। उ० ४ पाहन तें न काठ कठिनाई। (मा० २।१००।३)

कठुला-(सं० कंठ)-गले की माला जो, बच्चों को पहनाई जाती है। माला। उ० कठुला कंठ बघनहा नीके। (गी० १।२८)

कठोर-(सं०)-१ कठिन, कड़ा २ निर्दय, बेरहम, ३ दृढ़, ४ अमधुर, कटु। उ० २ कुटिल कठोर मुदित मन बरनी। (मा० २।१६०।४)

कठोरा-दे० 'कठोर'। उ० ४ काक कहहिं कलकंठ कठोरा। (मा० १।६।१)

कठोरि-'कठोर' का स्त्रीलिंग। उ० १ मति थोरि कठोरि न कोमलता। (मा० ७।१०२।१)

कठोरी-दे० 'कठोरि'। उ० १ सुनत बात मृदु अंत कठोरी। (मा० २।२२।२)

कठोरु-दे० 'कठोर'। उ० १ बिपुल बिहग बन परउ निसि, मानहुँ कुलिस कठोर। (मा० २।१५३)

कठोरू-दे० 'कठोर'। उ० १ दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू। (मा० २।२७।२)

कठोरें-दे० 'कठोर'। उ० १ न त एहि काटि कुठार कठोरें। (मा० १।२७५।३)

कठोरे-दे० 'कठोर'। कठोरतापूर्ण, कड़ाई से भरा हुआ। उ० ४ बचन परमहित सुनत कठोरे। (मा० ६।६।५)

कठौता-(सं० काष्ठ)-काठ का बर्तन। उ० छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गंगाजू को। (क० २।१०)

कड़खा-(ध्व० शब्द कड़कड़)-बीरों की प्रशंसा से भरे लड़ाई के गान जिनसे लड़ने के लिए बीरों को उत्तेजना मिलती है।

कड़खैत-भाट, कड़खा देनेवाला, चारण।

कड़हार-(सं० कर्णधार)-नाविक, मल्लाह, खेवट।

का फल जिसमें नष्ट होती है। उ० ३ तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि। (मा० ७।११७ ग)

कपासू-दे० 'कपास'। उ० १ साधुचरित सुभ सरिस कपासू। (मा० १।२।३)

कपिंदा (स० कपीन्द्र)-बन्दरों में श्रेष्ठ, बदरों के राजा, श्रेष्ठ बन्दर। उ० राम कृपा बल पाइ कपिंदा। (मा० ५।३१।२)

कपि-(स०)-१ बदर, २ सूर्य, ३ हनुमान, ४ सुग्रीव, ५ बालि। उ० १ चित्रलिखित कपि देखि डेराती। (मा० २।६०।२) ५ सठ सकल भाजन भए हठि कुजाति कपि काक। (दो० ४१५) कपिन-कपि का बहुवचन, बदरों। कपिन्द-दे० 'कपिंद'। उ० कपिन्द सहित प्रभु हर्हिं रघुबीरा। (मा० ५।१६।२) कपिहि-कपि के लिए, हनुमान के लिए। उ० सो छन कपिहि कलप सम बीता। (मा०५।१२।६)

कपिकच्छु-(स०)-केवाँच, करेंच, मर्कटी, बन्दरों का एक प्रिय फल और उसका पेड़। उ० बात तरुमूल, बाहुसूल कपिकच्छु बेलि। (ह० २४)

कपिकेलि-केवाँच। उ० कंदुक ज्यों कपिकेलि बेलि कैसो फल भो। (ह० ६)

कपिल-(स०)-१ पीला, मटमैला, २ सांख्य शास्त्र के आदि प्रवर्तक कपिल मुनि, ३ चूहा, ४ शिव, ५ सूर्य। उ० २ जठर धरेउ जेहि कपिल कृपाला। (मा० २।१४२।३)

कपिलहि-कपिला या सीधी गाय को। उ० जिमि कपिलहि घालइ हरहाई। (मा० ७।३९।१) कपिला-(स०)-१ कपिल या पीले रंग की, २ पीले रंग की सीधी और भोली गाय, ३ सफेद गाय, ४ आक, ५ चींटी। उ० २ जिमि मलेच्छ बस कपिला गाई। (मा० १।२६।४)

कपिश-(स०)-काला और पीला मिश्रित रंग का, भूरा, मटमैला, बादामी।

कपिस-दे० 'कपिश'। उ० कपिस केस, करकस लँगूर, खल दल बल-भानन। (ह० २)

कपीश-(स०)-बन्दरों का स्वामी, १ हनुमान, २ सुग्रीव, ३ बालि।

कपीश्वरौ-(स०)-कपियों के राजा हनुमान को। उ० वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ। (मा०१।१। श्लो० ४) (कवीश्वर के साथ आने से यहाँ कपीश्वर के द्विवचन का रूप है।)

कपीस-दे० 'कपीश'। उ० १ ताहि रानि कपीस पहिं आये। (मा० ३।४२।२) कपीस कि नंदन-बालि पुत्र अंगद।

कपीसा-दे० 'कपीश'। उ० २ मिलेउ सपदि अति प्रेम कपीसा। (मा० ५।२६।२)

कपूत-(स० कुपुत्र)-बुरा लड़का, नालायक लड़का, कुल के विरुद्ध चलनेवाला। उ० कूर कपूत मूढ़ मन माने। (मा० १।२६६।१)

कपूर-(सं० कर्पूर)-एक श्वेत जमा हुआ द्रव्य जो सुगंधित होता है और जलाने से जलता है। घनसार हिमाभ।

कपोत-(स०)-१ कबूतर, एक चिड़िया, २ पक्षी, चिड़िया, ३ भूरे रंग का सुरमा। उ० १ मम कपोत कबूतर बोलत चकक चकोर। (गी० २।४७)

कपोल-(स०)-गाल। उ० चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा। (मा० १।१४७।१) कपोलन-कपोल का बहुवचन, गालों। उ० चिक्कनी मुकुटी बढ़री अँखियाँ, अनमोल कपोलन की छबि है। (क० ७।१३)

कपोला-दे० 'कपोल'। उ० सुंदर श्रवन सुचारु कपोला। (मा० १।१६६।५)

कफ-(स०)-बलगम, श्लेष्मा, खाँसी आदि बीमारियों में मुँह या नाक से निकलनेवाली गाढ़ी लसीली वस्तु। उ० काम बात कफ लोभ अपारा। (मा० ७।१२१।१५)

कबंध-(स०)-१ बादल, २ पेट, ३ जल, ४ बिना सिर का धड़, रुंड, ५ एक दानव। यह दानव देवी का पुत्र था। इसके मुँह और पैर इसके पेट में थे। कहा जाता है कि एक बार देवराज इन्द्र ने इसे वज्र से मारा जिसका फल यह हुआ कि सिर और पैर पेट में घुस गए। दंडक वन में इससे रामचन्द्र से युद्ध हुआ जिसमें यह मारा गया। राम के द्वारा इसका शरीर जलाया गया और अंत में यह गंधर्व के रूप में अग्नि से बाहर निकल आया। रावण के साथ युद्ध में राम ने इससे भी राय ली थी। उ० ५ बधि बिराध खर दूषनहि लीलौं हत्यौ कबंध। (मा० ६।३६)

कब-(?)-किस समय, किस वक्त। उ० सकल कहहिं कब होइहि काली। (मा० २।११।३) कबहि-कभी,कभी भी। उ० कबहि देखाइहौ हरि चरन? (वि० २१८) कबहुँ-कभी, किसी समय, कभी भी। उ० जो ,पथ पाव कबहुँ मुनि कोई। (मा० २।१२४।१) कबहुँक-कभी, किसी समय। उ० कबहुँक ए आवहिं एहि नातें। (मा० १।२२२।४)

कबहीं-कभी, किसी वक्त, किसी समय भी। उ० गनिका कबहीं मति पेम पगाई? (क० ७।९३)

कबहूँ-दे० 'कबहुँ'।

कबार-(१)-(फा० कारबार)-काम-काज, उद्यम, व्यवसाय।

कबार-(२)-(?)-यश-वर्णन, बड़ाई। उ० मागध सूत भाँट नट जाचक जहँ-तहँ करहिं कबार। (गी० १।२)

कबारु-दे० 'कबार'। उ० दे० 'किसब'।

कबारू-दे० 'कबार' (१)। उ० नहिं जानउँ कछु अउर कबारू। (मा० २।१००।४)

कबि-(स० कवि)-कविता करनेवाला, काव्यकार। उ० कबि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू। (मा० १।९।६) कबिकोकिल-दे० 'कविकोकिल'। वाल्मीकि। उ० राम बिहाय 'मरा' जपते बिगरी सुधरी कबिकोकिल हू की। (क० ७।८९) कबिन्ह-कवियों ने। उ० कबिन्ह के कबिन्ह करउँ परनामा। (मा० १।१४।२) कबिहि-कवि के लिए। उ० कबिहि अरथ आखर बलु साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा। (मा० २।२२५)

कबिता-(स० कविता)-काव्य, कवित्त, मन पर प्रभाव डालने वाला सुन्दर पद्यमय वर्णन। उ० भनिति भूरि कविता सरित सो ज्यों सरित पावन पाथ की। (मा० १।१० छं० १)

कबित्त-(स० कवित्व)-१ कविता, काव्य, २ एक छंद जिसमें ४ चरण होते हैं और प्रत्येक चरण में ८,८,८,७ के विराम से ३१ अक्षर होते हैं। उ० १ कबित बिबेक एक नहिं मोरें। (मा० १।८।६)

कयी–दे० 'कयि'। उ० गुन गावत सिद्ध मुनींद्र कयी। (मा० ६।१११। छ० २)
कबूतर–(फ़ा०)-एक पक्षी, परेवा। उ० हस कपोत कबूतर बोलत चक्क चकोर। (गी० २।४७)
कबुल–दे० 'कबूल'।
कबूल–(अर० क़बूल)-स्वीकार, मञ्ज़ूर।
कबूलत–स्वीकार करता, कबूल करता, मानता। उ० हौं न कबूलत बाधि कै मोल करत करेरो। (वि० १४६)
कबुली—१ बलि का पशु, बलिदान के लिए प्रस्तुत पशु। जो पशु किसी पर चढ़ाने के लिए पहले से कबूल किया जाय या माना जाय। २ राजी, स्वीकारावस्था में, ३ चने की दाल की खिचड़ी। उ० १ कुअरीं करि कबुली कैकेई। (मा० २।२२।१)
कवै–कब, किस समय, उ० गगन गिरह करियो कवै तुलसी पवत कपोत। (म० १२६)
कमडल–(स० कमडलु)-साधु सन्यासियों का जलपात्र जो बहुधा पीतल, दरियाई नारियल या लौकियों का बनता है। उ० माँगा जत तेहि दीन्ह कमडल। (मा० ६।५७।४)
कमंडलु–दे० 'कमडल'।
कम–(फा०)-१ थोड़ा, न्यून, अल्प, २ बुरा।
कमठ–(स०)-१ कछुआ, कच्छप, २ एक दैत्य का नाम, ३ साधुओं की तुमड़ी। उ० १ अडहि कमठ हृदउ जेहि भाँती। (मा० २।७।४) विशेष-कछुआ की स्त्री अपने अडे को नहीं सेती। वह उसे जल से बाहर नदी या तालाब के किनारे रेत या पोली मिट्टी में दब आती है। वहाँ स्वाभाविक गर्मी से अडे अपने आप सेवित होते रहते हैं। अवधि पूरी होने पर स्वय अड फूट जाते हैं बच्चे निकलकर स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण स्वय पानी में चले जाते हैं। इस बीच में उनकी माँ उनको देखने भी कभी नहीं जाती, पर ऐसी प्रसिद्धि है कि दूर रहने पर भी उसका दिल अडों पर ही सर्वदा लगा रहता है। कच्छप की इस प्रकृति की तुलना के लिए कवियों ने उचित उपयोग किया है। उपर्युक्त चौपाई में भी तुलसी ने इधर ही सकेत किया है। कमठ अवतार–सत्ययुग या प्रथम युग में विष्णु, कच्छप, कूर्म या कमठ के रूप में प्रलय के समय खोई हुई कुछ वस्तुओं का उद्धार करने के लिए अवतरित हुए। क्षीरसागर में समुद्रमथन के समय कमठ भगवान ही आधार बने थे जिस पर मदरा चल रखा गया और वासुकि नाग के सहारे सुरों और असुरों ने मथन किये, जिसके फलस्वरूप खोई हुई १४ वस्तुएँ प्राप्त हुई। कमठी–कमठ का स्त्री लिंग, कछुई। उ० सकुचि गात गोयति कमठी ज्यों हहरी हृदय बिकल भइ भारी। (कृ० १०)
कमनीय–(स०)-१ कामना करने योग्य, चाहने योग्य, २ सुन्दर, मनोहर। उ० १ कुअँरि मनोहर बिजय बड़ि कीरति अति कमनीय। (मा० १।२५१) कमनीया–'कमनीय' का स्त्रीलिंग, सुंदरी। उ० २ जग अस जुबति कहाँ कमनीया। मा० १।२४७।२)
कमल–(स०)-१ पानी में होनेवाला एक पौधा और उसका फूल। जलज, कज, अरविंद। २ जल, पानी, ३ ताँबा, ४ मृग की एक विशेष जाति, ५ सारस, ६ एक रोग, ७ आँख। उ० १ बदउँ सबके पद कमल सदा जोरि जुग पानि। (मा० १।७ ग) विशेष-कमल के पुष्प लाल, सफ़ेद, नीले और पीले होते हैं। सुदर और सुकुमार होने के कारण कवि लोग आँख, कपोल, चरण तथा हाथ आदि की इससे उपमा देते हैं। कमल का फूल सध्या होते ही बद हो जाता है, इसी कारण इसे सूर्य या दिन का प्रेमी माना जाता है और सूर्य को कमलपति आदि कहा जाता है। कमल की गध भँवरे को बहुत पसद है। कमल के डठल म छोटे-छोटे काँटे होते हैं जिनके सहारे भी कवियों ने दूर तक उड़ने का प्रयास किया है। क्षीर सागर-शायी भगवान् विष्णु की नाभी से कमल निकला था जिससे ब्रह्मा का जन्म हुआ इसी विश्वास के आधार पर विष्णु को कमलनाभ या पद्मनाभ तथा ब्रह्मा को कमलसुत आदि कहते हैं। यह नाभी से निकलनेवाला कमल ही प्रथम कमल माना जाता है। कमलनि–१ कमलों में, २ कमलों से, कमलों के द्वारा, ३ कमलों को। उ० १ सोहहिं कर कमलनि धनुतीरा। (मा० २।११५।४) २ पथ चलत मृदु पद कमलनि दोउ सील रूप-आगार। (गी० २।२१) कमलन्ह–कमल का बहुवचन। कमलन्हि–कमल का बहुवचन, कमलों। उ० पुनि नभ सर मम कर निकर कमलन्हि पर करि बास। (मा०६।१२ख) कमलपति–सूर्य, रवि। कमलभव–(स०)-कमल से होनेवाले, ब्रह्मा, कमलयोनि। कमलफल–कमल का बीज, कमलगट्टा। उ० अष्टोत्तर सत कमल फल, मुष्टी तीनि प्रमान। (प्र०१)
कमलनाभ–(स०)-विष्णु। विष्णु का यह नाम इस कारण है कि उनकी नाभी से सृष्टि के आरभ में कमल उत्पन्न हुआ था।
कमला–(स०)-१ लक्ष्मी, रमा, २ धन, ऐश्वर्य। उ० १ मो कमला तजि चचलता करि कोटि कला रिझवै सुर-मौरहि। (क० ७।२६)
कमलापति–(स०)-विष्णु, लक्ष्मी के पति। उ० सपदि चले कमलापति पाहीं। (मा० १।१३६।१)
कमलारमन–(स० कमलारमण)-कमला के पति, विष्णु।
कमलारवन–दे० 'कमलारमन'।
कमलासन–(स०)-१ ब्रह्मा, २ योग का एक आसन, पद्मासन। उ० २ बैठे बट तर करि कमलासन। (मा० १।५८।४)
कमलिनी–(स०)-१ कमल, २ छोटा कमल।
कमातो–(स० कर्म)-१ कमाई करता, पैदा करता, सग्रह करता। २ सेवा सबधी छोटे-छोटे कार्य करता ३ काम करता। उ० १ जौं तू मन मेरे कहे राम-नाम कमातो। (वि० १५१) कमाहिं–१ पैदा करते हैं, कमाते हैं, २ काम करते हैं, ३ सेवा करते हैं। उ० ३ तिय-बरबेष अली रमा सिधि अनिमादि कमाहिं। (गी० १।५)
कमान–(फा०)-धनुष, वह हथियार जिसके सहारे बाण छोड़ा जाता है। उ० जीभ कमान बचन सर नाना। (मा० २।४१।१)
करत–करता। उ० कहत दत करत हहा है। (क० ७।१५)
कर (१)–(स० कृ)-१ करो, २ करके, ३ करता है,

का फल जिसमें रुई होती है। उ० ३ तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास सें काढ़ि। (मा० ७।११७ ग)

कपासू-दे० 'कपास'। उ० १ साधुचरित सुभ सरिस कपासू। (मा० १।२।३)

कपिंदा-(स० कपीन्द्र)-बन्दरों में श्रेष्ठ, बंदरों के राजा, श्रेष्ठ बन्दर। उ० राम कृपा बल पाइ कपिंदा। (मा० ५।३५।१)

कपि-(स०)-१ बंदर, २ सूर्य, ३ हनुमान, ४ सुग्रीव, ५ बालि। उ० १ चित्रलिखित कपि देखि डेराती। (मा० २।६०।२) ५ सठ सकट-भाजन भए हठि कुजाति कपि काक। (दो० ४१५) कपिन-कपि का बहुवचन, बंदरों। कपिन्ह-दे० 'कपिन'। उ० कपिन्ह सहित अइ हहिं रघुबीरा। (मा० ५।१६।२) कपिहि-कपि के लिए, हनुमान के लिए। उ० सो छन कपिहि कलप सम बीता। (मा०५।१२।६)

कपिकच्छु-(स०)-केवाँच, करेंच, मकटी, बन्दरों का एक प्रिय फल और उसका पेड़। उ० बात तरुमूल, बाहुसूल कपिकच्छु बेलि। (ह० ३४)

कपिखेल-केवाँच। उ० कटुक ज्यों कपिखेल बेल कैसो फल भो। (ह० ६)

कपिल-(स०)-१ पीला, मटमैला, २ सांख्य शास्त्र के आदि प्रवर्तक कपिल मुनि, ३ चूहा, ४ शिव, ५ सूर्य। उ० २ जन्म धरेउ जेहिं कपिल कृपाला। (मा० २।१४२।३)

कपिलहि-कपिला या सीधी गाय को। उ० जिमि कपिलहि घालइ हरहाई। (मा० ७।३६।१) कपिला-(स०)-१ कपिल या पीले रंग की, २ पीले रंग की सीधी और भोली गाय, ३ सफेद गाय, ४ जोंक, ५ चींटी। उ० २ जिमि मलेच्छ बस कपिला गाई। (मा० ३।२६।४)

कपिश-(स०)-काला और पीला मिश्रित रंग का, भूरा, मटमैला, बादामी।

कपिस-दे० 'कपिश'। उ० कपिस केस, करकस लँगूर, खल-दल बल भानन। (ह० २)

कपीश-(स०)-बन्दरों का स्वामी, १ हनुमान, २ सुग्रीव, ३ बालि।

कपीश्वरौ-(स०)-कपियों के राजा हनुमान को। उ० वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ। (मा०१।१। श्लो० ४) (कवीश्वर के साथ आने से यहाँ कपीश्वर के द्विवचन का रूप है।)

कपीस-दे० 'कपीश'। उ० १ ताहि राखि कपीस पहिं आये। (मा० ५।४३।२) कपीस कि ।ऽ—बालि पुत्र अंगद।

कपीसा-दे० 'कपीश'। उ० २ मिलेउ नयहिं अति प्रेम कपीसा। (मा० ५।२१।२)

कपूत-(स० कुपुत्र)-बुरा लड़का, नालायक लड़का, कुल के विरुद्ध जानेवाला। उ० कूर कपूत मूढ़ मन माखे। (मा० १।२६१।१)

कपूर-(सं० कर्पूर)-एक श्वेत जमा हुआ द्रव्य जो सुगंधित होता है और जलाने से जलता है। घनसार, सिताभ।

कपोत-(स०)-१ कबूतर, एक चिड़िया, २ पक्षी चिड़िया, ३ भूरे रंग का सुरमा। उ० १ हंस कपोत कबूतर बोलत चकई चकोर। (गी० २।४७)

कपोल-(स०)-गाल। उ० चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा। (मा० १।१४७।१) कपोलन-कपोल का बहुवचन, गालों। उ० बिकटी भृकुटी बदरी अँखियाँ, अनमोल कपोलन की छबि है। (क० २।१३)

कपोला-दे० 'कपोल'। उ० सुंदर श्रवन सुचारु कपोला। (मा० १।१९९।४)

कफ-(स०)-बलगम, श्लेष्मा, खाँसी आदि बीमारियों में मुँह या नाक से निकलनेवाली गाढ़ी लसीली वस्तु। उ० काम बात कफ लोभ अपारा। (मा० ७।१२१।१५)

कबंध-(स०)-१ बादल, २ पेट, ३ जल, ४ बिना सिर का धड़, रुंड, ५ एक दानव। यह दानव देवी का पुत्र था। इसके मुँह और पैर इसके पेट में थे। कहा जाता है कि एक बार देवराज इंद्र ने इसे वज्र से मारा जिसका फल यह हुआ कि सिर और पैर पेट में घुस गए। दंडक वन में इससे रामचंद्र से युद्ध हुआ जिसमें यह मारा गया। राम के द्वारा इसका शरीर जलाया गया और अंत में यह गंधर्व के रूप में अग्नि से बाहर निकल आया। रावण के साथ युद्ध में राम ने इससे भी राय ली थी। उ० ५ बधि बिराध खर दूषनहि लीलाँ हत्यो कबंध। (मा० ६।३६)

कब-(?)-किस समय, किस वक्त। उ० सकल कहहिं कब होइहि काली। (मा० २।११।३) कबहि-कभी, कभी भी। उ० कबहिं देखाइहौ हरि चरन? (वि० २१८) कबहूँ-कभी, किसी समय, कभी भी। उ० जो पय पाव कबहुँ मुनि कोई। (मा० २।१२४।१) कबहुँक-कभी, किसी समय। उ० कबहुँक ए आवहिं एहि नातें। (मा० १।२२२।४)

कबहीं-कभी, किसी वक्त, किसी समय भी। उ० गनिका कबहीं मति पेम पगाइ? (क० ७।१३)

कबहूँ-दे० 'कबहुँ'।

कबार-(१)-(फा० कारबार)-काम-काज, उद्यम, व्यवसाय।

कबार-(२)-(?)-यश-वर्णन, बड़ाई। उ० मागध सूत भाँट नट जाचक जहँ-तहँ करहिं कबार। (गी० १।२)

कबारु-दे० 'कबारू'। उ० दे० 'किसब'।

कबारू-दे० 'कबार' (१)। उ० नहिं जानउँ कछु अउर कबारू। (मा० २।१००।४)

कबि-(स० कवि)-कविता करनेवाला, काव्यकार। उ० कबि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू। (मा० १।९।४) कबिकोकिल-दे० 'कविकोकिल'। बाल्मीकि। उ० राम बिहाय 'मरा' जपते बिगरी सुधरी कबिकोकिल हू की। (क० ७।८८) कबिन्ह-कवियों को। उ० कलि के कबिन्ह करउँ परनामा। (मा० १।१४।२) कबिहि-कवि के लिए। उ० कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु अह मम मलिन जनेषु। (मा० २।२२५)

कबिता-(स० कविता)-काव्य, कवित्त, मन पर प्रभाव डालने वाला सुन्दर पद्यमय वर्णन। उ० मति कूर कबिता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की। (मा० १।१०। छं० १)

कबित्त-(स० कवित्व)-१ कविता, काव्य, २ एक छंद जिसमें ४ चरण होते हैं और प्रत्येक चरण में ८,८,८,७ के विराम से ३१ अक्षर होते हैं। उ० १ निज कबित्त केहि लाग न नीका। (मा० १।८।६)

कवी–दे० 'कवि'। उ० गुन गावत सिद्ध मुनींद्र कवी। (मा० ६।१११। छ० २)

कबूतर–(फ़ा०)–एक पक्षी, परेवा। उ० हंस कपोत कबूतर बोलत चक्क चकोर। (गी० २।४७)

कबुल–दे० 'कबूल'।

कबूल–(अर० क़बूल)–स्वीकार, मंजूर।

कबूलत–स्वीकार करता, कबूल करता, मानता। उ० हौं न कबूलत बाँधि कै मोल करत करेरो। (वि० १४६)

कबुली–१ बलि का पशु, बलिदान के लिए प्रस्तुत पशु। जो पशु किसी पर चढ़ाने के लिए पहले से कबूल किया जाय या माना जाय। २ राजी, स्वीकारावस्था में, ३ चने की दाल की खिचड़ी। उ० १ कुबरीं करि कबुली कैकेई। (मा० २।२२।१)

कबै–कब, किस समय, उ० गगन गिरह करियो कबै तुलसी पढ़त कपोत। (स० १२६)

कमडल–(स० कमंडलु)–साधु सन्यासियों का जलपात्र जो बहुधा पीतल, दरियाई नारियल या लौकियों का बनता है। उ० माँगा जल तेहिं दीन्ह कमंडल। (मा० ६।८७।४)

कमंडलु–दे० 'कमडल'।

कम–(फा०)–१ थोड़ा, न्यून, अल्प, २ बुरा।

कमठ–(स०)–१ कछुआ, कच्छप, २ एक दैत्य का नाम, ३ साधुओं की तुमड़ी। उ० १ अडहिं कमठ हृदउ जेहि भाँती। (मा० २।७।४) विशेष–कछुआ की स्त्री अपने अडे को नहीं सेती। वह उसे जल से बाहर नदी या तालाब के किनारे रेत या पोली मिट्टी में ढक आती है। वहाँ स्वाभाविक गर्मी से अडे अपने आप सेवित होते रहते हैं। अवधि पूरी होने पर स्वय अडे फूट जाते हैं बच्चे निकलकर स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण स्वय पानी में चले जाते हैं। इस बीच में उनकी माँ उनको देखने भी कभी नहीं जाती, पर ऐसी प्रसिद्धि है कि दूर रहने पर भी उसका दिल अडों पर ही सर्वदा लगा रहता है। कच्छप की इस प्रकृति की तुलना के लिए कवियों ने उचित उपयोग किया है। उपर्युक्त चौपाई में भी तुलसी ने इधर ही सकेत किया है। कमठ अवतार–सत्ययुग या प्रथम युग में विष्णु, कच्छप, कूर्म या कमठ के रूप में प्रलय के समय खोई हुई कुछ वस्तुओं का उद्धार करने के लिए अवतरित हुए। क्षीरसागर में समुद्रमथन के समय कमठ भगवान ही आधार बने थे जिस पर मदरा चल रखा गया और वासुकि नाग के सहारे सुर और असुरों ने मथन किये, जिसके फलस्वरूप खोई हुई १४ वस्तुएँ प्राप्त हुई। कमठी–कमठ की स्त्री, कछुई। उ० सकुचि गात गोयति कमठी ज्यों हहरी हृदय बिकल भइ भारी। (कृ० ६०)

कमनीय–(सं०)–१ कामना करने योग्य चाहने योग्य, २ सुन्दर मनोहर। उ० १ कुअँरि मनोहर बिजय बड़ि कीरति अति कमनीय। (मा० १।२२१) कमनीया–'कमनीय' का स्त्रीलिंग, सुंदरी। उ० २ जग अस जुवति कहाँ कमनीया। मा० १।२४७।२)

कमल–(स०) १ पानी में होनेवाला एक पौधा और उसका फूल। जलज, कज, अरविंद। २ जल, पानी, ३ ताँबा, ४ मृग की एक विशेष जाति, ५ सारस, ६ एक रोग, ७ आँख। उ० १ बदउँ सबके पद कमल सदा जोरि जुग पानि। (मा० १।७ ग) विशेष–कमल के पुष्प लाल, सफ़ेद नीले और पीले होते हैं। सुन्दर और सुकुमार होने के कारण कवि लोग आँख, कपोल, चरण तथा हाथ आदि की इससे उपमा देते हैं। कमल का फूल सध्या होते ही बद हो जाता है, इसी कारण इसे सूर्य या दिन का प्रेमी माना जाता है और सूर्य को कमलपति आदि कहा जाता है। कमल की गध भँवरे को बहुत पसद है। कमल के डठल में छोटे छोटे काँटे होते हैं जिनके सहारे भी कवियों ने दूर तक उड़ने का प्रयास किया है। क्षीर सागर-शायी भगवान् विष्णु की नाभी से कमल निकला था जिससे ब्रह्मा का जन्म हुआ इसी विश्वास के आधार पर विष्णु को कमलनाभ या पद्मनाभ तथा ब्रह्मा को कमलसुत आदि कहते हैं। यह नाभी से निकलनेवाला कमल ही प्रथम कमल माना जाता है। कमलनि–१ कमलों में, २ कमलों से, कमलों के द्वारा, ३ कमलों को। उ० १ सोहहिं कर कमलनि धनुतीरा। (मा० २।११२।४) २ पथ चलत मृदु पद कमलनि दोउ सील रूप-आगार। (गी० २।२१) कमलन्ह–कमल का बहुवचन। कमलन्हि–कमल का बहुवचन, कमलों। उ० पुनि नभ सर मम कर निकर कमलन्हि पर करि बास। (मा०६।१२ख) कमलपति–सूर्य, रवि। कमल भव–(स०)–कमल से होनेवाले, ब्रह्मा, कमलयोनि। कमलफल–कमल का बीज, कमलगट्टा। उ० अष्टोत्तर सत कमल फल, सुम्दी तीनि प्रमान। (प्र०१)

कमलनाभ–(स०)–विष्णु। विष्णु का यह नाम इस कारण है कि उनकी नाभी से सृष्टि के आरभ में कमल उत्पन्न हुआ था।

कमला–(स०)–१ लक्ष्मी, रमा २ धन, ऐश्वर्य। उ० १ सो कमला तजि चचलता करि कोटि कला रिझवै सुर मौरहि। (क० ७।२६)

कमलापति–(स०)–विष्णु, लक्ष्मी के पति। उ० सपदि चले कमलापति पाहीं। (मा० १।१३६।१)

कमलारमन–(स० कमलारमण)–कमला के पति, विष्णु।

कमलारवन–दे० 'कमलारमन'।

कमलासन–(स०)–१ ब्रह्मा, २ योग का एक आसन, पद्मासन। उ० २ बैठे बट तर करि कमलासन। (मा० १।५८।४)

कमलिनी–(स०)–१ कमल, २ छोटा कमल।

कमातो–(स० कम)–१ कमाई करता पैदा करता, सग्रह करता। २ सेवा सबधी छोटे-छोटे कार्य करता ३ काम करता। उ० १ जो तू मन मेरे कहे राम-नाम कमातो। (वि० १५१) कमाहिं–१ पैदा करते हैं, कमाते हैं, २ काम करते हैं, ३ सेवा करते हैं। उ० ३ तिय-परमेय चाली रमा सिधि अनिमादि कमाहिं। (गी० १।५)

कमान–(फा०)-धनुष, वह हथियार जिसके सहारे बाण छोड़ा जाता है। उ० भौंह कमान सधान सुठान जे नारि बिलोकनि बान तें बाँचे। (क० ७।१२०) <br>(मा० २।४१।१)

करंत–करता। उ० कादत दत करत हहा है। (क०७।१६)

कर (१)–(स० कृ)–१ करो, २ करके, ३ करता है,

करते हैं, ४ करेगा, ५ करनेवाला, कर्त्ता। उ० ३ कर मुनि मनुज सुरासुर सेवा। (वि० २) करइ–१ कर, २ करता है, ३ करना, करने की युक्ति, ४ कर। करई–१ करती है, २ करे, ३ करने की युक्ति। उ० १ सुंदरता कहुँ सुंदर करई। (मा० १।२३०।४) २ मन अनुमान सदा हित करई। (मा० ४।७।३) करउँ–करूँ। उ० अब जो कहहु सो करउँ विलंब न यहि घरि। (पा० ८२) करउ–करो, करिए, कीजिए। उ० करउ सो मम उर धाम सदा छीर सागर सयन। (मा० १।१। सो० ३) करऊँ–करूँ। उ० कुअँरि कुआँरि रहउ का करऊँ। (मा० १।२५२।३) करत–१ करते ही, करने पर, २ करता है, करते हैं, ३ करते हुए। उ० १ कौसल्या कल्यानमयि मूरति करत प्रनाम। (दो० २१०) करतहि–कर रहा है। उ० निज गुन सील रामबस करतहि। (मा० २।२६५।४) करति–करती है, कर रही है। उ० विविध विलाप करति बैदेही। (मा० ३।२९।२) करते–किए होते। उ० करते नहिं बिलंबु रघुराई। (मा० ५।१४।२) करतेउँ–करता। उ० मूढ़ मयउँ न त करतेउँ, कछुक सहाय तुम्हार। (मा० ४।२८) करतेहु–करते। उ० करतहु राजु त तुम्हहि न दोषू। (मा० २।२०७।४) करब–१ करूँगा, २ करोगे, ३ करना, कीजिएगा। उ० १ कहसि मोर दुखु देखि बड़ कस न करब हित लागि। (मा० २।२१) २ समुझब कहब करब तुम्ह जोई। (मा० २।३२३।४) ३ करब सदा लरिकन्ह पर छोहू। (मा० १।३६०।४) करबि–१ कीजिएगा २ करूँगा। उ० १ करबि जनक जननी की नाई। (मा० २।८।०३) करसि–१ करता है, २ करते हो, ३ करो। उ० सुनु खल बिनय करसि कर जोरें। (मा० १।२८३।१) करहिं–करते हैं, कर देते हैं। उ० करहिं अनभले को भलो आपनी भलाइ। (वि० ३५) करहिंगे–करेंगे। उ० राम कृपानिधि कछु दिन बास करहिंगे आइ। (मा० ४।१२) करहि–१ कर, २ करेगा, ३ करता है। उ० १ भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग। (मा० ३।४६ख) करहीं–करते हैं। उ० राजकुमारि बिनय हम करहीं। (मा० २।११६।३) करही–करता, करता है। उ० सत्य बचन बिस्वास न करही। (मा० ७।११२।०) करहु–करो, कीजिए, करें। उ० तात कुतरक करहु जनि जाएँ। (मा० २।२६४।१) करहुगे–करोगे, अमल में लाओगे। करहू–दे० 'करहु'। उ० चलहु सफल श्रम सब कर करहू। (मा० २।१३२।४) करि–(सं० कृ)–१ करके, २ करनी, ३ करते। उ० १ महि पत्री करि सिंधु मसि। (वै० ३५) करिअ–करें, की जाय। उ० कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा। (मा० १।१८५।१) करिअहि–१ कीजिए २ करेंगे। उ० १ नाथ रामु करिअहिं जुबराजू। (मा० २।४।१) करिए–१ कीजिए, २ करूँ, ३ करनी चाहिए ४ बना हुए, उत्पन्न कीजिए। उ० ३ कौन जतन बिनती करिए। (वि० १८६) करित–करता। उ० तो बिनु जगदंब गंग! कलिजुग का करित? (वि० १९) करिबे–करने, करना। उ० करिबे कहँ कटु कठोर, सुनत मधुर नरम। (वि० १३१) करिबो–करूँगा। उ० कियो न कछू, करिबो न कछू। (क० ७।६२) करिय–१ कीजिए, करिए, २ करना, ३ करती हैं, करता हूँ। उ० १ करिय सँभार कोसलराय। (वि० २२०) करिहउँ–करूँगा। उ० अयसि काज मैं करिहउँ तोरा। (मा० १।१६८।२) करिहहिं–करेंगे। उ० करिहहिं बिप्र होम मख सेवा। (मा० १।१६९।१) करिहहुँ–करूँगा। करिहहु–१ करोगे, २ करना। उ० १ रामकाजु सबु करिहहु, तुम्ह बल बुद्धि निधान। (मा० ५।२) करिहि–करेगा। उ० पारबतिहि निरमयउ जेहिं सोइ करिहि कल्यान। (मा० १।७१) करिहीं–करेंगी, करेंगे। करिही–करेगा, करेगा। उ० मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिही। (मा० ५।५७।३) करिहैं–करेंगे। उ० करिहैं राम भावतो मन को। (वि० २४) करिहौं–दे०–'करिहउँ'। करिहौ–१ करोगे, २ करना। उ० १ फिरि बूझति हैं "चलनो अब कितक, पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै?" (क० २।११) करी (१)–१. की, किया, २ करें। करीजे–कर दीजिए कीजिए। उ० दीन जानि तेहि अभय करीजे। (मा० ५।४।२) करु–कर, करो। उ० सोइ करु जेहिं तव नाथ न जाई। (मा० २।१०१।१) करेसि–किया। करेसु–करना। उ० कायँ बचन मन मम पद करेसु अचल अनुराग। (मा० ७।८५ ख) करेहु–१ कीजिए, २ कीजिएगा, करना, कर लेना। उ० १ सेवा करेहु सनेह सुहाएँ। (मा० २।१७५।४) करेहू–दे० 'करेहु'। उ० २ सपत भरि सकलप करहू। (मा० १।१६८।४) करैं–१ करें, २ करते हैं। उ० २ आरत दीन अनाथन को, रघुनाथ करैं निज हाथ की छाहैं। (क० ७।११) करै–१ करना, करने, २ करे, ३ करने के लिए। उ० १ मैं हरि साधन करै न जानी। (वि० १२२) करैगो–कर देंगे, करेंगे, करेगा। उ० आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैगो तोहि। (मा० ६।२०) करैहहु–कराओगे, करवाओगे। उ० हँसी करैहहु पर पुर जाई। (मा० १।९३।१) करो–'करना' का आज्ञासूचक रूप। कीजिए। उ० जेहि जो रुचै करो सो। (वि० १७३) करौं–करूँ। उ० करउँ बिचार करौं का भाई। (मा० २।६।१) करयो–किया, किया था। उ० निज दास ज्यो रघुबंस भूषन कबहुँ मम सुमिरन करयो। (मा० ७।२। छं० १) करयौ–दे० 'करयो'। किएँ–१ करने पर, करने से, २ किया, किए किया है, ३ कर सकता है, उ० १ सुनु प्रभु बहुत अवग्या किएँ। (मा० १।१।८) किए–दे० 'किएँ'। उ० २ नाम सुप्रेम पियूष ह्रद तिन्हहुँ किए मन मीन। (मा० १।२२) किएहुँ–करने पर भी। उ० किएहुँ कुबेषु साधु सनमानू। (मा० १।७।४) किय–किया था, निपटाया, कर दिया। उ० जेहिं जगु किय तिहु पगहु ते थोरा। (मा० २।१०१।२) कियहु–किया। उ० कबहुँ न कियहु सवति आरेसू। (मा० २।४६।४) किया–१ कर लिया, करना क्रिया का सामान्य भूत क्रिया है, २ किया हुआ काम। उ० १ अब जननि हमहिं मयम निज पति लागि दारुन तप किया। (मा० १।९८। छं० १) किये–१ करना क्रिया का बहुवचन या आदर सूचक सामान्य भूत, कर दिए। २ किए हुए, ३ करने पर, करने से। उ० १ जथाजोग सनमानि प्रभु बिदा किये मुनिबृंद। (मा० ७।१२४) कियेउ–१ किया, २ करके, ३ किया हुआ। उ० १ कियउ निषाद नाथु अगुआई। (मा० २।२०३।१) किया–१ किया, कर लिया, २ किया

हुआ। उ० १ सब कें उर अनद् कियो बासू। (मा० १।३२४।३) कीज-१ कीजिए, २ कीजिएगा। कीजहु-१ कीजिए, २ करते रहना। उ० २ कीजहु इहै बिचार निरतर राम समीप सुकृत नहिं थोरे। (गी०२।११) कीजिअ-(स० कृ)-१ करें, हम करें, २ कीजिए, करो। उ० १ कीजिअ काजु रजायसु पाई। (मा० २।३८।१) कीजिए-दे० 'कीजिये'। उ० गहि बाँह सुरनर नाह आपन दास अगद कीजिए। (मा० ४।१०। छ० २) कीजिय-दे० 'कीजिअ'। उ० २ तजि अभिमान अनख अपनो हित कीजिय मुनिवर बानी। (कृ० ४८) कीजिये-करिए, 'करना' क्रिया का आदरार्थ आज्ञासूचक रूप। कीजे-कीजिए। उ० गे निसि बहुत सयन अब कीजे। (मा० ११३६६।४) कीजै-१ कीजिए, क्रिया करिए, २ कर रहे हैं। उ० २ हरष समय बिसमउ कत कीजै। (मा० २।७७।२) कीनि-किया। उ० जातिहीन अघ जनम महि, मुकुत कीनि असि नारि। (मा० १।३६) कीन्ह-किया, किया है। उ० जौं तुम्हरें मन छाडि छलु कीन्ह रामपद ठाउँ। (मा० २।७४) कीन्हा-किया, किया है। उ० केवट उतरि दडवत कीन्हा। (मा० २।१०२।१) कीन्हि-किया, किया है। उ० कुसमय जानि न कीन्हि बिहारी। (मा० १।२०।१) कीन्हिउ-की, की थी, की है। उ० आजु लगें कीन्हिउँ तुअ सेवा। (मा० १।२५७।४) कीन्हिसि-की। उ० उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया। (मा० ६।११।५) कीन्हिहु-किया, किया है। उ० कीन्हिहु प्रस्न मनहुँ अति मूढ़ा। (मा० १।४७।२) कीन्ही-की। उ० पहि बिधि दाहक्रिया सब कीन्ही। (मा० २।१७०।३) कीन्हे-१ किए, २ करने पर, करने से। उ० २ जे अघ तिय बालक बध कीन्हें। (मा० २।१६७।३) कीन्हेउँ-दे० 'कीन्हिउँ'। कीन्हेउ-किया, किया था। उ० हमरे जान जनेस बहुत भल कीन्हेउ। (जा० ७५) कीन्हेसि-किया। उ० कीन्हेसि अस जस करइ न कोइ। (मा० २।२१।२) कीन्हहु किया। उ० अब अति कीन्हेहु भरत भल, तुम्हहि उचित मत एहु। (मा० २।२०७) कीन्हौं-किया। उ० कीन्हौं गरलसील जो भगा। (वै० ४७) कीबी-कीजिए, करें, कीजिएगा। उ० कीबी छमा नाथ आरति तें कहि कुजुगुति नई है। (गी० २।७८) कीबे-करना, कीजिएगा। उ० मोपर कीबे तोहि जो करि लेहि भिया रे। (वि० ३३) कीबो-किया जायगा, करेंगे, करूँगा। उ० ऊधोजू कह्यो तिहारोइ कीबो। (कृ० ३७) कीय-किया हुआ, किया, करनी। उ० परखी पराई गति, आपने हूँ कीय की। (वि० २६३) कुरु (१)-(स०) करो। उ० भक्ति प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च। (मा० ५।१।श्लो०२) कुर्वंति-(स०)-करते हैं, कर रहे हैं। उ० अरुण पदकज मकरंद-मंदाकिनी मधुप-मुनिवृंद कुर्वंति पानम। (वि०६०)

कर (२)-(स०)-१ हाथ, २ हाथी की सूड ३ किरण, ४ प्रजा से राजा द्वारा लिया जानेवाला अंश, महसूल, ५ पत्थर। उ० १ बिपुप बिप्र बुध गृह चरन बदि कहउँ कर जोरि। (मा० १।१४६) ३ महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर। (मा० १।५) ४ जनु देत इतर नृप कर बिभाग। (गी० २।४६) करकर (१)-हाथो हाथ, हर एक के पास। उ० तौ तू दाम कुदाम ज्यों कर कर न बिकातो। (वि० १५१) करगत-हाथ में, मुट्ठी में, अधिकार में। उ० करगत बेदतत्त्व सबु तोर। (मा० १।४५।४) कर-गुन-हस्त (कर) से तीन नक्षत्र, अर्थात् हस्त, चित्रा और स्वाती। उ० सुति-गुन कर-गुन,पु-जुग मृग, हय, रेवती सखाउ। (प्र०४।२६) करतल-(स०) १ हाथ का तल, हथेली, २ हाथ में, अधिकार में। उ० २ तुलसी फल चारो करतल, जस गावत गई-बहोर को। (वि० ३१) करतलगत-प्राप्त, हाथ में, हथली पर रखा हुआ। उ० करतलगत न परहिं पहिचानें। (मा० १।२१।३ करन्हि-हाथों में। उ० कनकथार भरि मगलन्हि कमल करन्हि लिएँ मात। (मा० १।३४६) करसम्पुट-१ जुड़ा हाथ, २ अजलि, अँजुरी।

कर (३)-(स० कृत)-सबध कारक का चिह्न, का। उ० जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु। (मा० १।१२१)

करक (१)-(अ०)-पीड़ा, रुक-रुककर होनेवाली पीड़ा, कसक। उ० जानै सोई जाके उर कसकै करक सी। (गी० १।४२) करकैं-'करक' का बहुवचन। दे० 'करक'। उ० बारहिं बार अमरपत करपत करकै परीं सरीर। (गी० ५।२२)

करक (२)-(स०)-१ कमडलु, २ अनार, ३ पलास, ४ करील, ५ मालसिरी, ६ ठठरी।

करकर (२)-(अ०)-किर किरा, दरदर।

करकस-(स० कर्कश)-१ कठोर, कड़ा, २ टेढ़ा, ३ मुश्किल, कठिन। उ० २ कहीं न कबहूँ करकस भौंह कमान। (ब० १२)

करके-करकने लगे, करक या पीड़ा उत्पन्न कर दी। उ० सर सम लगे मातु उर करके। (मा० २।५४।१)

करखइ-(स० कर्षण)-१ खिंच गया, २ खिंचता था। उ० १ बहुरि निरखि रघुबरहि प्रेम मन करखइ। (जा० ८८)

करखत-खींचते हैं। उ० कतहुँ बाजि सो बाजि, मर्दि गजराज करखत। (क० ६।४७)

करछुली-(तु० स० कर+ रक्षा)-लोहे या पीतल आदि का द्रव पदार्थ निकालने के लिए चम्मच की तरह का एक पात्र, कलछुल, कलछी। उ० लपटी ढोंगा करछुली सरस काज अनुहारि। (दो० ५२६)

करज-(स०)-१ नख, नाखून, २ उँगली, अगुलि, ३ करज, कजा। उ० २ अरुन पानि नख करज मनोहर। (मा० ७।७७।१)

करटा-(स० करट)-कौआ, काग। उ० कटु कुराय करटा रटहिं, चकरहिं फेर कुभाँति। (प्र० ३।१।५)

करण-(स०)-करनेवाले। उ० भुवन-भयहरण पद-शांतिकरण। (वि० ५२) करण (२)-(स०)-१ कार्य सिद्धि का उपाय, साधन, २ हथियार, ३ इंद्रिय, ४ देह, ५ स्थान, ६ हेतु, कारण, ७ पतवार, ८ कर्त्ता, करनेवाला, ९ क्रिया, कार्य। उ० ६ जयति सग्राम-सागर भयकर-तरण-रामहित-करण-बरबाहु-सेतू। (वि० २८)

करण (२) (सं० कर्ण) १ कान २ महाभारत का एक प्रसिद्ध योद्धा ।
करणीय-(सं०)-करने योग्य, कर्तव्य ।
करतब-(सं० कर्तव्य)-१ कार्य, करनी, करतूत, २ कला, हुनर, ३ करामात, जादू । उ० १ अब तौ कठिन कान्ह के करतब, तुम्ह हौ हँसति कहा कहि लायो ? (कृ० ६)
करतबु-दे० 'करतब' । उ० १ जौं भरतहुँ अस करतब रहेऊ । (मा० २।३४।२)
करतव्य-(सं० कर्तव्य)-जिसका करना आवश्यक हो, कर्तव्य । उ० सब विधि सोइ करतव्य तुम्हारें । (मा० २।६६।१)
करतव्य-दे० 'करतव्य' ।
करता-दे० 'कर्ता' । उ० २ जो करता भरता हरता सुर साहिब, साहब दीन दुनी को । (क० ७।१४६)
करतार-(सं० कर्त्तार)-१ सृष्टि करने वाला, ब्रह्मा, २ ईश्वर, भगवान् । उ० २ बिबिध भाँति भूखन बसन बादि किए करतार । (मा० २।११६)
करतारा-दे० 'करतार' । उ० १ अबधौं कहा करिहि करतारा । (मा० ६।१८।४)
करतारी-(सं० कर+ताल)-हाथ की ताली, थपड़ी । उ० रामकथा सुंदर करतारी । (मा० १।११४।१)
करताल-(सं०)-१ एक बाजा, २ हाथ की ताली, थपड़ी । उ० २ कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत । (क० १।४)
करतालिका-दे० 'करताल' । उ० २ उड़त अब विहग सुनि ताल करतालिका । (वि० ४८)
करताला-दे० 'करताल' ।
करतूत-१ कर्म, करनी, २ कारीगरी, कला, हुनर ।
करतूति-दे० 'करतूत' । उ० १ कहत पुरान रची केशव निज कर-करतूति-कला सी । (वि० २२)
करतूती-दे० 'करतूत' । उ० २ जनु एतनिअ बिरचि कर तूती । (मा० २।१।३)
करदा-(फा० गर्द)-धूल, कूड़ा । उ० रंकसिरोमनि काकिनिभाग बिलोकत लोकप को करदा है । (क० ७।१४४)
करन (१)-(सं० कर्ण)-दे० 'करण (२)'
करन (२)-(सं० कर)-१ हाथों को २ हाथों में ।
करन (३)-(सं० करण)-दे० 'करण (१)' तथा 'करण (२)' उ० २ (करण २ )-निदहि बलि हरिचंद को का कियो करन दधीच ? (दो० ३८२)
करनघट-(सं० कर्ण+घंटा)-काशी में एक पवित्र स्थान जहाँ एक प्रसिद्ध शंकर उपासक घंटाकर्ण रहता था । उ० लोल दिनेस त्रिलोचन लोचन, करनघट घंट सी । (वि० २२) विशेष-घंटाकर्ण या करनघंट शिवजी के एक उपासक का नाम था । ये उपासक विष्णु आदि किसी दूसरे का नाम सुनना पसंद न करते थे इसलिए अपने कानों में घंटा बाँधकर चला करते थे जिससे उनकी गंभीर ध्वनि के कारण अन्य ध्वनि इन्हें कर्णगोचर न हो । इसी कारण इनका नाम घंटाकर्ण था । घंटाकर्ण काशी में रहते थे । आज भी इनका स्थान इसी नाम से पुकारा जाता है और शिव-भक्तों के लिए एक पवित्र तीर्थस्थान है ।
करनधार-(सं० कर्णधार)-नाविक, मल्लाह, माँझी । उ० करनधार बिनु जिमि जलजानू । (मा० २।२७७।१)
करनबेध-(सं० कर्णबेध)-बच्चों के कान छेदन का संस्कार या रीति । उ० करनबेध उपबीत बिआहा । (मा० २।१०।३)
करनलिपि-(सं० करण+लिपि) १ लिपि कला, २ भाष्यकार, अर्थ करनेवाला । उ० १ तथा २ जयति निगमागम ब्याकरन-करनलिपि काव्य-कौतुक-कला-कोटि सिंधो । (वि० २८)
करनहार-करनेवाला, कर्ता । उ० करनहार करता माई भोगी करम निदान । (स० ३७८)
करना (१)-(सं० कर्ण)-सुदर्शन, एक फूल ।
करना (२)-(सं० करुण)-एक पहाड़ी नीबू, जो गोल न होकर लंबा होता है ।
करना (३)-सं० करण)-किया हुआ काम ।
करनि (१)-दे० 'करनी' । उ० १ सब बिपरीत भए माधव बिनु, हित जो करत अनहित की करनि (कृ० ३०)
करनि (२)-(सं० कर)-१ हाथों से, २, हाथों में । उ० १ बैठि भरि भरि श्रक सँतति पैंत जनु दुहुँ करनि । (गी० १।२४)
करनिहार-करनेवाला, कर्ता, बनानेवाला । उ० बिधि न करनिहार । (गी० २।२४)
करनी-१ कर्म, करतूत, करतब, २ मृतक संस्कार, अन्त्येष्टि कर्म । ३ स्थिति । उ० २ पितु हित भरत कीन्हि जसि करनी । (मा० २।१७१।१)
करनीय-(सं० करणीय)-करने योग्य, कर्तव्य ।
करनीया-करता है, करनेवाला है । उ० अब धौं बिधिहि काह करनीया । (मा० १।२६७।४)
करनू-करनेवाला । उ० मधुर मंजु मुद मंगल करनू । (मा० २।३२६।३)
करपल्लव-(सं०)-१ उँगली, २ हथेली ।
करपुट-(सं० कर+पुट)-दोनों हाथ की हथेलियाँ, जोड़ा या मिला हुआ हाथ । उ० १ कोहि जानि जपि जोरि कै करपुट सिर राखे । (गी० १।६)
करबर-दे० 'करबर' ।
करबाल-(सं०)-तलवार, कटारी । उ० जागिनि गहें करबाल । (मा० ६।१०१। छ० २)
करभ-(सं०)-१ हाथी का बच्चा, २ ऊँट का बच्चा, ३ हथेली के पीछे का भाग करपृष्ठ, ४ ऊँट, ५ कमर ।
करभहि-१ हाथी के बच्चे को, २ ऊँट या ऊँट के बच्चे को । उ० १ उर करि-कर करभहि बिलजावति । (गी०७।१७)
करम (१)-(सं० कर्म)-१ कर्म, काम, करनी, २ कर्म का फल, भाग्य, किस्मत, ३ कर्मकांड, पूजा आदि, ४ पुण्य । उ० ३ करम उपासना कुवासना बिनास्यो, ग्यान बचन, बिराग बेष जगत हरो गो है । (क० ७।८४) ४ धरति करम कुकरम कर मरत जीवगन घासी । (वि० २२)
करमन-'करम' का बहुवचन । उ० १ करमन कूट की, कि जंत्र मंत्र बूट की । (ह० २६) करमबिपाकु-(सं० कर्म+विपाक)-कर्म का फल । उ० कुसमय जाय उपाय सब, केवल करमबिपाकु । (प्र० ७।६।४)

करम (२)-(अ०)-दया, कृपा।
करम (३)-(स० क्रम)-एक एक, तरतीब। उ० भजन बिबेक बिराग लोग भले करम-करम करि ल्यावौं। (वि० १४५)
करमचँद-कर्म, कर्म के लिए व्यंग्योक्ति। उ० हमहिं दिहल करि कुटिल करमचँद मंद मोल बिनु डोला रे। (वि० १८७)
करमठ-(स० कर्मठ)-दे० कमठ। उ० २ करमठ कठमलिया कहैं ज्ञानी ज्ञान बिहीन। (दो० ६६)
करमनास-(स० कर्मनाशा)-एक नदी जो चौसा के पास गंगा से मिली है। उ० करमनास जलु सुरसरि परई। (मा० २।१९४।४) विशेष-लोगों का विश्वास है कि इसके जल के स्पर्श से पुण्य का नाश हो जाता है। इसके लिए कई कारण बतलाए जाते हैं। (१) यह नदी राजा त्रिशंकु के लार से उत्पन्न हुई है। (२) रावण के मूत्र से इसकी उत्पत्ति है। (३) किसी अंश तक यह मगध (मगह) की सीमा बनाती है। प्राचीन काल में ब्राह्मण आदि सनातनी इसे पार कर मगध में प्रवेश नहीं करते थे। इसी कारण यह अशुद्ध मान ली गई।
करमाली-(स०)-सूर्य, किरणों की माला धारण करने वाला।
करमी-कर्म करनेवाला। उ० करमी, धरमी, साधु, सेवक बिरत, रत। (वि० २२६)
करमु-दे० 'करम (१)'। उ० २ फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। (मा० २।२०।२)
कररत-(ध्व०)-कर्कश शब्द करता है। उ० कुहू कुहू कल कंठ रव, काका कररत काग। (दो० ४३६)
करवत-(स० करवर्त)-हाथ के बल लोटने की मुद्रा। मु० करवट लीन्ह-एक करवट बदलकर दूसरी करवट ली। उ० गई मुरुछा रामहि सुमिरि नृप फिर करवट लीन्ह। (मा० २।४३)
करवर-(?)-विपत्ति, संकट, कठिनाई। उ० आजु परी कुसल कठिन करवर तें। (कृ० १७) करवरें-विघ्नों को, बाधाओं को। उ० ईस अनेक करवरें टारीं। (मा० १।३५७।१)
करवा-(स० करक)-पानी रखने का टोंटीदार मिट्टी या धातु का बर्तन। उ० पातक पीन, कुदारिद दीन, मलीन धरे कथरी करवा है। (क० ७।२६)
करवाई-कराई करवायी। उ० महामुनिन्द सो सब कर वाई। (मा० १।१०१।१) करवाउब-कराऊँगा, करवाऊँगा, करा दूँगा, करा देंगे। उ० करवाउब बिबाहु बरिआई। (मा० १।८३।३) करवाए-करा दिए। उ० मुनिन्ह सकल सादर करवाए। (मा० १।१४३।४) करवायउ-करवाया, कराया। उ० मारि निसाचर निकर यज्ञ करवायउ। (गी० ४२) करवावहिं-१ करवाते थे, कराते थे, २ कर वाते हैं। उ० १ साधुन्ह सन करवावहिं सेवा। (मा० १।१८४।१) करवावा-कराया, करवाया। उ० बिबिध भाँति भोजन करवावा। (मा० १।२०७।२)
करवाल-(स०) तलवार।
करवालिका-(स०)-छोटी तलवार, कटार।

करष-(स० कर्ष)-१ खिंचाव, मनमोटाव, २ विरोध, झगड़ा, ३ क्रोध, ४ ताव, जोश। उ० १ कस करष हरि सन परिहरहू। (मा० ६।३६।३) २ बातहिं बात करष बढ़ि आई। (मा० ६।१८।२)
करषक-(स० कृषिक)-किसान, हलवाहा।
करषत-(स० कर्ष)-१ खींचता है, खींचते हैं, २ बढ़ता है, बढ़ता, ३ खींचते हुए, ४ खिंचता है। उ० १ बारहिं बार अमरषत करषत करकैं परीं सरीर। (गी०२।२२) करषहिं-खींचते हो, खींचते हैं। उ० मनहुँ बलाक अवलि मनु करषहिं। (मा० १।३४७।१) करषा-(१)-खींचा। करषि-खींचकर, खींच। उ० १ निज माया कै प्रबलता करषि कृपानिधि लीन्ह। (मा१।१२७) करषी-१ खींची, २ खिंच गई। उ०२ सुनि प्रवचन मोहि मति करषी। (मा० २।१०१।?) करषैं-१ खींचें, अपनी ओर खींचें, २ बटोरें, ३ निमंत्रित करें, बुलावें, ४ सुखावें। करषै-खींचे, खींचता है। उ० बिप्रचरन चित कहँ करषै। (वि० ६३)
करषहु-दे० 'करषत'।
करषा (२)-दे० 'करष'। उ० ४ एकहि एक बढ़ावइ करषा। (मा० २।१९१।१)
करषइ-(स० कर्षण)-१ खिंचता है, २ खींचता है।
करसी-(स० करीष)-१ कंडों की आग, २ उपले का चूर। उ० १ गनिका, गीध, बधिक हरिपुर गए लै करसी प्रयाग कब सीझे? (वि० २४०) विशेष-लोगों का विश्वास है कि कंडी की आग में जल मरना भारी तप है। इसके अतिरिक्त पचाग्नि भी कंडों या उपलों के पाँच ढेर के बीच में बैठ कर ली जाती है। इस प्रकार करसी से दोनों ही अर्थ लिए जा सकते हैं।
कराइ-(स० कलि)-कली, नई कोपल। उ० दुसह रब सुकृत-मनोहर बिरवनि रूप-कराइ जनु लाग। (गी० १।२६)
कराइ-कराकर, करवाकर। उ० तब असोक पादप पर राखिसि जतन कराइ। (मा० ३।२९क) कराई (१)-१ कराया, करवाया, २ करवाकर, कराकर। उ० २ नृपहि नारि पहिं सयन कराई। (मा० १।१७१।४) कराएहु-कराना, कराते रहना। उ० बार बार रघुनाथ कहि सुरति कराएहु मोरि। (मा० ७।१९क) करायहु-कराया, करवाया। उ० सुरन्ह प्रेरि बिषपान करायहु। (मा० १।१३६।४) कराव-१ करवाया, २, करवाओ। उ० १ गोद राखि कराव पयपाना। (मा० ७।८८।४) करावन-कराना। उ० चले जनकमंदिर मुदित बिदा करावन हेतु। (मा० १।३३४) करावहु-करवाओ, कराओ। उ० लरिका श्रमित उनींद बस, सयन करावहु जाइ। (मा० १।३५५) करावा-करवाया, कराया। उ० सीय बोलाइ प्रनामु करावा। (मा० १।२६६।२) करावौं-बनवाऊँ, तैयार करवाऊँ। उ० निज कर ग्वाल खैंचि या तनु तें जौं पितु पग पानही करावौं। (गी० २।७२) कराहिं-१ करते हैं, बनाते हैं २ बनवाते हैं। उ० २ अति अपार जे सरितवर जौं नृप सेतु कराहिं। (मा० १।१३) कराहीं-करते हैं। उ० जे मनि लागि सुजतन कराहीं। (मा० ७।१२०।५)

करण (२)-(सं० कर्ण) १ कान २ महाभारत का एक प्रसिद्ध योद्धा।
करणीय-(सं०)-करने योग्य, कर्तव्य।
करतब-(सं० कर्त्तव्य)-१ काय करनी, करतूत, २ कला, हुनर, ३ करामात, जादू। उ० १ अब तौ कठिन कान्ह के करतब, तुम्ह ही हँसति कहा कहि लीबो? (कृ० ६)
करतबु-दे० 'करतब'। उ० १ जौं अतहुँ अस करतब रहेऊ। (मा० २।३४।२)
करतव्य-(सं० कर्तव्य)-जिसका करना आवश्यक हो, कर्तव्य। उ० सब विधि सोइ करतव्य तुम्हारें। (मा० २।६६।१)
करतव्य-दे० 'करतव्य'।
करता-दे० 'कर्ता'। उ० २ जो करता भरता हरता सुर साहिब, साहब दीन दुनी को। (क० ७।१४६)
करतार-(सं० कर्त्तार)-१ सृष्टि करने वाला, ब्रह्मा, २ ईश्वर, भगवान्। उ० २ विविध भाँति भूषन बसन बादि किए करतार। (मा० २।११६)
करतारा-दे० 'करतार'। उ० १ अवधीं कहा करिहि कर तारा। (मा० ६।१८।४)
करतारी-(सं० कर+ताल)-हाथ की ताली, थपड़ी। उ० रामकथा सुंदर करतारी। (मा० १।११४।१)
करताल-(सं०)-१ एक बाजा, २ हाथ की ताली, थपड़ी। उ० २ कबहुँ करताल बजाइ कै नाचत। (क० १।४)
करतालिका-दे० 'करताल'। उ० २ उड़त अब विहग सुनि ताल करतालिका। (वि० ४८)
करताला-दे० 'करताल'।
करतूत-१ कर्म, करनी, २ कारीगरी, कला, हुनर।
करतूति-दे० 'करतूत'। उ० १ कहत पुरान रची। निज कर-करतूति-कला सी। (वि० २२)
करतूता-दे० 'करतूत'। उ० २ जनु पतनिश सूती। (मा० २।१।३)
करदा-(फा० गर्द)-धूल, धूआँ। उ० रौं निभाग बिलोकत लोकप को करदा
करन (१)-(सं० कर्ण)-दे० 'करण
करन (२)-(सं० कर)-१ हाथों को,
करन (३)-(सं० करण)-दे० 'करण (१)' तथा उ० २ (करण २)-निदहि बलि हरिचंद को का करन दधीच? (दो० ३८२)
करनघट-(सं० कर्ण+घंटा)-काशी में एक पवित्र स्थान जहाँ एक प्रसिद्ध शंकर उपासक घंटाकर्ण रहता था। उ० लोल दिनेस त्रिलोचन लोचन, करनघंट घंटा सी। (वि० २२) विशेष-घंटाकर्ण या करनघंट शिवजी के एक उपासक का नाम था। ये उपासक विष्णु आदि किसी दूसरे का नाम सुनना पसंद न करते थे इसीलिए अपने कानों में घंटा बाँधकर चला करते थे जिससे उसकी गंभीर ध्वनि के कारण अन्य ध्वनि इन्हें कर्णगोचर न हो। इसी कारण इनका नाम घंटाकर्ण था। घंटाकर्ण काशी में रहते थे। आज भी इनका स्थान इसी नाम से पुकारा जाता है और शिव भक्तों के लिए एक पवित्र तीर्थस्थान है।

करनधार-(सं० कर्णधार)-नाविक, मल्लाह, माँझी। उ० करनधार बिनु जिमि जलजानू। (मा० २।२७७।१)
करनबेध-(सं० कर्णवेध)-बच्चों के कान छेदने का संस्कार या रीति। उ० करनबेध उपबीत बिआहा। (मा० २।१०।३)
करनलिपि-(सं० करण+लिपि) १ लिपि कर्ता, २ भाष्यकार, अर्थ करनेवाला। उ० १ तथा २ जयति निगमागम व्याकरन-करनलिपि काव्य-कौतुक कला-कोटि सिंधो। (वि० २८)
करनहार-करनेवाला, कर्ता। उ० करनहार भरता भोगी करम निदान। (स० ३७८)
करना (१)-(सं० कर्ण)-सुदर्शन, एक फूल।
करना (२)-(सं० करुण)-एक पहाड़ी नीबू, होकर लंबा होता है।
करना (३)-सं० करण)-किया हुआ
करनि (१)-दे० 'करनी'। उ० १ बिनु, हित जो करत अनहि
करनि (२)-(सं० कर)- खेति भरि भरि
१।२४)
करनिहार-
करनि
करन

उ०
करम (१)
कर्म, भाग्य,
उ० १ करम उपा
बिराग बेष जगत हर
करति करम कुकरम कर
करमन-'करम' का बहुवचन
कि जग मग गूट की। (ह० ९
कर्म+विपाक)-कर्म का फल। उ०
सब, केवल करमविपाक। (प्र० ७।६।४)

करम (२)-(अ०)-दया, कृपा।

करम (३)-(सं० क्रम)-एक एक, तरताव। उ० भजन विवेक बिराग लोग भले करम-करम करि ल्यावौं। (वि० १४५)

करमचँद-कर्म, कर्म के लिए व्यक्ति। उ० दर्माहि दिहल करि कुलिल करमचँद गद मोल बिनु डोला रे। (वि० १८७)

करमठ-(सं० कार्मठ)-दे० कमठ। उ० २ करमठ कठम लिया कहैं ज्ञानी ज्ञान विहीन। (दो० ११)

करमनास-(सं० कर्मनाशा)-एक नदी जो चौसा के पास गंगा से मिली है। उ० करमनास जलु सुरसरि परई। (मा० २।१९४।४) विशेष-लोगों का विश्वास है कि इसके जल के स्पर्श से पुण्य का नाश हो जाता है। इसके लिए कई कारण बतलाए जाते हैं। (१) यह नदी राजा त्रिशंकु के लार से उत्पन्न हुई है। (२) रावण के मूत्र से इसकी उत्पत्ति है। (३) किसी अंश तक यह मगध (मगह) की सीमा बनाती है। प्राचीन काल में ब्राह्मण आदि सनातनी इसे पार कर मगध में प्रवेश नहीं करते थे। इसी कारण यह अशुद्ध मान ली गई।

करमाली-(सं०)-सूर्य, किरणों की माला धारण करने वाला।

करमी-कर्म करनेवाला। उ० करमी, धरमी, साधु, सेवक बिरत, रत। (वि० २५१)

करमु-दे० 'करम (१)'। उ० २ फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। (मा० २।२०।२)

कररट-(ध्व०)-कर्कश शब्द करता है। उ० कुहू कुहू कल कठ रव, काका कररत काग। (दो० ४३६)

करवट-(सं० करवर्त)-हाथ के बल लेटने की मुद्रा। मु० करवट लीन्ह-एक करवट बदलकर दूसरी करवट ली। उ० गई मुरछा रामहि सुमिरि नृप फिरि करवट लीन्ह। (मा० २।४३)

करवर-(?)-विपत्ति, संकट, कठिनाई। उ० आजु परी कुसल कठिन करवर तें। (कृ० १७) करवरे-विघ्नों को, बाधाओं को। उ० इस अनेक करवरें टारीं। (मा० १।२२७।१)

करवा-(सं० करक)-पानी रखने का टोंटीदार मिट्टी या धातु का बर्तन। उ० पातक पीन, कुदारिद दीन, मलीन धरे कथरी करवा है। (क० ७।४६)

करवाई-कराई, करवायी। उ० महामुनिन्द सो सब करवाई। (मा० १।१०१।१) करवाउब-कराऊँगा, करवाऊँगा, करा दूँगा, करा देंगे। उ० करवाउब बियाहु बरिआई। (मा० १।८२।२) करवाए-करा दिए। उ० मुनिन्ह सकल सादर करवाए। (मा० १।१४२।४) करवायउ-करवाया, कराया। उ० मारि निसाचर निकर यज्ञ करवायउ। (गी० ४२) करवावहिं-१ करवाते थे, कराते थे, २ करवाते हैं। उ० १ साधुन्ह सन करवावहिं सेवा। (मा० १।१८४।१) करवावा-कराया, करवाया। उ० बिबिध भाँति भोजन करवावा। (मा० १।२०७।२)

करवाल-(सं०) तलवार।

करवालिका-(सं०)-छोटी तलवार, कटार।

१०

करष-(सं० कर्ष)-१ खिंचाव, मनमोटाव, २ विरोध, झगड़ा, ३ क्रोध, ४ ताप, जोश। उ० १ कत करष हरि सन परिहरहू। (मा० २।३३।३) २ बातहिं बात करष बढ़ि आई। (मा० ६।१८।२)

करषक-(सं० कृषक)-किसान, हलवाहा।

करषत-(सं० कर्ष)-१ खींचता है, खींचते हैं, २ बढ़ता है, बढ़ता, ३ खींचते हुए, ४ खिंचता है। उ० १ बारहिं बार अमरपत करषत करकैं परीं सरीर। (गी० ५।२२) करषहिं-खींचते हो, खींचते हैं। उ० मनहुँ बलाक अवलि मनु करषहिं। (मा० १।३४७।१) करषा-(१)-खींचा। करषि-खींचकर, खींच। उ० १ निज माया कै प्रबलता करषि कृपानिधि लीन्ह। (मा० १।१३७) करषी-१ खींची, २ खिंच गई। उ० २ सुनि प्रबचन मोहि मति करषी। (मा० २।१०१।३) करषैं-१ खींचें, अपनी ओर खींचें, २ बटोरें, ३ निमन्त्रित करें, बुलावें, ४ सुखायें। करषै-खींचे, खींचता है। उ० विप्रचरन चित कहँ करषै। (वि० ६३)

करषतु-दे० 'करषत'।

करषा (२)-दे० 'करष'। उ० ४ एकहि एक बढ़ावइ करषा। (मा० २।१६१।१)

करषइ-(सं० कर्षण)-१ खिंचता है, २ खींचता है।

करसी-(सं० करीष)-१ कंडों की आग, २ उपले का चूर। उ० १ गनिका, गीध, बधिक हरिपुर गए लै करसी प्रयाग कब सीझे? (वि० २४०) विशेष-लोगों का विश्वास है कि कंडी की आग में जल मरना भारी तप है। इसके अतिरिक्त पंचाग्नि भी कंडों या उपलों के पाँच ढेर के बीच में बैठ कर ली जाती है। इस प्रकार करसी से दोनों ही अर्थ लिए जा सकते हैं।

करह-(सं० कलि)-कली, नई कोपल। उ० दस रथ सुकृत-मनोहर बिरवनि रूप-करह जनु लाग। (गी० १।२६)

कराइ-कराकर, करवाकर। उ० तब असोक पादप पर राखिसि जतन कराइ। (मा० ३।२६क) कराइ (२)-१ कराया, करवाया, २ करवाकर, कराकर। उ० २ नृपहि नारि पहिं सयन कराई। (मा० १।१७१।४) कराएहु-कराना, कराते रहना। उ० बार बार रघुनाथ कहि सुरति कराएहु मोरि। (मा० ७।११क) करायहु-कराया, करवाया। उ० सुरन्ह भरि बिषपान करायहु। (मा० १।१२६।४) कराव-१ करवाया, २, करवाओ। उ० १ गोद राखि कराव पयपाना। (मा० ७।८८।४) करावन-कराना। उ० चले जनकमंदिर मुदित बिदा करावन हेतु। (मा० १।३३४) करावहु-करवाओ, कराओ। उ० लरिका श्रमित उनीद बस, सयन करावहु जाइ। (मा० १।३५५) करावा-करवाया, कराया। उ० सीय बोलाइ प्रनामु करावा। (मा० १।२६६।२) करावौं-बनवाऊँ, तैयार करवाऊँ। उ० निज कर खाल खैंचि या तनु तें जौ पितु पग पानही करावौं। (गी० २।७२) कराहिं-१ करते हैं, बनाते हैं २ बनवाते हैं। उ० २ अति अपार जे सरितवर जौं नृप सेतु कराहिं। (मा० १।१३) कराहीं-करते हैं। उ० जे मनि लागि सुजतन कराहीं। (मा० ७।१२०।५)

कराई (१)-(स० किरण = कण)-सूप में अन्न रखकर फटकने पर निकल हुई सुद्दी भूसी आदि ।
कराई (२)-(स० काल)-कालापन, श्यामता ।
करामाति-(अर० करामत)-आश्चर्यजनक कार्य, चमत्कार । उ० कासी करामाति जोगी जागत मरद की । (क० ७।१६८)
करारा (१)-(स० कराल)-ऊँचा तथा दुर्गम किनारा, किनारा । उ० लखन दीख पय उतर करारा । (मा० २।१३३।१) करारे-किनारे, किनारे पर । उ० सो प्रभु स्यों सरिता तरिबे कहँ माँगत नाव करारे ह्वै ठाढे । (क० २।५)
करारा (२)-(स० करट)-कौआ । उ० रटहिं कुभाति कुखेत करारा । (मा० २।१५८।२)
करारा (३)-(स० कटक)-१ कड़ा, २ भयकर, ३ दृढचित्त ।
कराल-(स०)-१ भयानक, डरावना, भयकर, २ ऊँचा, लबा, ३ कठिन, कठोर । उ० १ लखी महीप कराल कठोरा । (मा० २।३१।२)
कराला-दे० 'कराल' । उ० १ रामकथा कालिका कराला । (मा० १।४७।३)
करालिका-भयावनी, डरावनी, विकराल रूप धारण करने वाली । उ० धरनि, दलनि दानवदल रनकालिका । (वि० १६)
कराह (१)-(स० कटाह)-बड़ी कड़ाही, कड़ाहा । उ० घृत पूरन कराह अतरगत ससि प्रतिबिंब दिखावै । (वि० ११५)
कराह (२) (?)-पीड़ा के आह, उह आदि शब्द, दु ख में निकले शब्द ।
कराहत-(करना + स० आहह)-कराहते हैं, आह करते हैं, दुःख प्रकट करते हैं । उ० भूमि परे भट घूमि कराहत । (क० ६।३२)
कराही-(स० कटाह)-छोटा कड़ाह, कड़ाही । उ० कनक-कराही लक तलफति ताय सों । (क० ५।२४)
करि (१)-(स० करिन्)-हाथी । उ० जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिबरबदन । (मा० १।१)
करि (२)-(?)-रुचि ।
करि (३)-(?)-को । उ० सत्रु न काहू करि गनै । (वै० १३)
करिआ-(स० काल)-काला श्याम । उ० करिआ मुह करि जाहि अभागे । (मा० ६।४६।१)
करिण-(स० करिणी)-हाथी । करिणी-(स०)-हथिनी, हस्तिनी ।
करिणि-दे० 'करिणी' ।
करिनि-दे० 'करिनी' । उ० फारत करिनि जिमि हतेउ समूला । (मा० २।२६।४)
करिनीं-(स० करिणी)-हथिनियाँ, हथिनियों को । उ० सग लाइ करिनीं करि लेहीं । (मा० ३।३७।४)
करिया (१)-दे० 'करिआ' ।
करिया (२)-(स० कर्ण)-१ पतवार, २ मल्लाह, पार लगाने वाला । उ० २ तुलसी करिया करम धम पूरत सरत न यार । (स० १२६)
करीं-करनेवाले को । उ० सब श्रेयस्करीं माता न तोऽहं रामवल्लभाम् । (मा० १।१।श्लो० ५) करी-(१)-करनेवाली, करनेवाले । उ० निर्वान दायक क्रोध जाकर भगति अब-सहि बसकरी । (मा० ३।२६।छं० १)
करी (२)-(स० करिन्)-हाथी, गज ।
करीर-(स०)-१ बाँस का अँखुआ, २ करील का पेड़ ।
करील-(स० करीर)-ऊसर और ककरीली भूमि में होनेवाला एक झाड़ी जिसमें पत्ती नहीं होती । ब्रज में यह झाड़ी बहुत पाई जाती है ।
करीला-दे० 'करील' । उ० सोह कि कोकिल बिपिन करीला । (मा० २।६३।४)
करीसहिं-(स० करीश)-गजराज को । दे० 'गजराज' । उ० सोक सरि बूड़त करीसहिं दई काहु न टेक । (वि० २१७)
करुआइ-(स० कटुक)-कड़ुआपन । उ० धूसउ तजइ सहज करुआई । (मा० १।१०।५)
करुइ-कड़ुई, अमधुर । उ० ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई । (मा० ३।१६।२)
करुई (१)-दे० 'करुइ' ।
करुई (२)-(स० करक)-टोटीदार बर्तन, छोटा करवा ।
करुण-(स०)-१ करुणा उत्पन्न करनेवाला, करुणायुक्त, २ काव्य के नव रसों में से एक रस, जिसका स्थायी भाव शोक है ।
करुणा-(स०)-दूसरे का दुःख देखने पर पैदा हुआ मनोविकार, दया, रहम ।
करुन-दे० 'करुण' । उ० २ मनहुँ करुनरस कटकई उतरी अवध बजाइ । (मा० २।४६)
करुना-दे० 'करुणा' ।
करेजो-(तु० स० यकृत, फा० जिगर)-कलेजा, हृदय । उ० पै करेजो कसकतु है । (क० ६।१६)
करेर-(स० कठोर)-कड़ा, कठिन, दृढ़ ।
करेरी-कड़ी, कठोर, खरी । उ० बाहि न गनत बात कहत करेरी सी । (क० ६।१०)
करेरो-कड़ा । उ० हौं न कबूलत बाधि कै मोल करत करेरो । (वि० १४६)
करैया-करनेवाला, कर्ता । उ० माया जीव काल के, करम के, सुभाव के, करैया राम, बेद कहैं, साँची मन गुनिए । (ह० ४४)
करोरि-(स० कोटि)-करोड़, सौ लाख, अगणित । उ० नाथ की सपथ किए कहत करोरि हौं । (वि० २५८)
करोरी-दे० 'करोरि' । उ० जिमहु जगतपति बरिस करोरी । (मा० २।५।३)
कर्कश-(स०)-१ तलवार, २ कड़ा, कठोर, ३ खुरखुरा, काँटेदार, ४ तेज, प्रचड, ५ अधिक ।
कर्कस-दे० 'कर्कश' । उ० ३ जयति बालार्क बर-बदन, पिंगल नयन, कपिस-कर्कस जटाजूटधारी । (वि० २८)
कर्ण-(स०)-१ कान, २ कुंती का सबसे बड़ा पुत्र । कुंती के कन्याकाल में यह सूर्य के अश से उत्पन्न हुआ था । महाभारत युद्ध में कर्ण कौरवों की ओर था ।
कर्णधार-(स०)-१ नाविक, मल्लाह, पतवार थामनेवाला, २ पतवार ।
कर्णघट-(स०)-दे० 'करनघट' ।

कर्णलिपि-(स०)-दे० 'करमलिपि'।
कर्णिका-(स०)-१ कान का एक गहना, करणफूल, २ कमल का छत्ता, ३ कलम, लेखनी, ४ हाथ की बिचली अँगुली, ५ सफेद गुलाब, ६ हाथी के सूँड की नोक।
कर्तव-(स० कर्त्तव्य)-करने योग्य, करणीय।
कर्तव्य-(स० कर्त्तव्य)-करने योग्य, करणीय।
कर्ता-(स०कर्त्ता)-१ करनेवाला, २ सृष्टि की रचना करनेवाला। उ० २ जो कर्ता पालक संहर्ता। (मा० ६।७।२)
कर्तार-(स० कर्त्तार)-१ करनेवाला, बनानेवाला, २ विधाता, ब्रह्मा, ३ ईश्वर। कर्त्तारौ-(स०)-दोनों कर्त्ताओं को। उ० मंगलानांच कर्त्तारौ वंदे वाणीविनायकौ। (मा० १।१। श्लो० १)
कर्द-(स०)-कर्दम, कीचड।
कर्दम-(स०)-१ कीचड, २ पाप, ३ मांस, ४ छाया, ५ एक प्रजापति, जो सूय और छाया के पुत्र से पैदा हुए थे। इनकी पत्नी का नाम देवहूति और पुत्र का नाम कपिल था। उ० ५ जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी। (मा० १।१४२।३)
कर्निका-(स० कर्णिका)-दे० 'कर्णिका'।
कर्पूर-(स०)-कपूर। एक सफ़ेद रंग का सुगंधित द्रव्य जो दवा तथा पूजा आदि के काम में आता है। उ० कर्पूरगौर करुना उदार। (वि० १३)
कर्म-(स०)-वह जो किया जाय, काय। दे० 'करम'। कर्मना-(स० कर्मणा)-कर्म से। उ० मनसा वाचा कर्मना, तुलसी बदत ताहि। (वै० २६) कर्महि-कर्म पर, कर्म को। कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ। (मा० ७।४३)
कर्मठ-(स०)-१ कर्मनिष्ठ, जी तोडकर काम करनेवाला २ कर्मकांड करनेवाले।
कर्मनाश-दे० 'करमनास'।
कर्मनाशा-दे० 'करमनास'।
कर्मा-१ दे० 'कर्म'। काम, काय, २ करनेवाला, कर्मी। जैसे क्रूरकर्मा। उ० १ सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा। (मा० ७।१०४।२)
कर्मी-कर्म करनेवाला, किसी फल की इच्छा से यज्ञादि कर्म करनेवाला।
कर्ष-(स०)-१ उमंग जोश, ताव, २ खिंचाव, घर्षण, ३ झगडा, तनाव, बैर।
कर्षण-१ खींचना, २ जोतना, खेती करना, ३ खींचनेवाला।
कर्षन-दे० 'कर्षण'। उ० ३ जयति मदोदरी-केसकर्षन विद्यमान-दसकंठ भट-मुकुट-मानी। (वि० २६)
कर्षा-दे० 'कर्ष'।
कलंक-(स०)-दे० 'कलंका'।
कलंका-(स० कलंक)-१ दाग, धब्बा, २ लांछन, बदनामी, दोष। उ०२ मातु व्यर्थ जनि लेहु कलंका। (मा०१।१६७।४)
कलंकू-दे० 'कलंका'।
कल (१)-(स०) १ मधुर ध्वनि, मधुर, कोमल २ सुंदर, मनहर, ३ बीज। उ० १ कलगान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं, काम कोकिल लाजहीं। (मा० १।३२२। छं० १)
कल (२)-(स० कल्य)-१ नैरोग्य, आरोग्यता, २ आराम, सुख, चैन, ३ आनेवाला दिन, ४ बीता हुआ दिन, ५ सतोष, तुष्टि।
कल (३)-(स० कला)-१ कला, २ युक्ति, ढंग।
कल (४)-(?)-यात्रा।
कलई-(अर० क़लइ)-१ राँगा, राँगे का पतला लेप जो बर्तन पर देते हैं। २ तडक भडक के लिए ऊपरी लेप, ३ बाहरी शोभा या चमक, ४ चूना। उ० ३ साँति सत्य सुभ रीति गई घटि बढ़ी कुरीति कपट कलई है। (वि० १३९)
कलकंठ-कोयल। उ० काग कहहिं कलकंठ कठोरा। (मा० १।६।१) कलकंठि-मधुर कंठवाली, कोयल। उ०दे० 'कंठि'।
कलत्र-(स०)-१ स्त्री, पत्नी, २ नितंब, चूतड, ३ दुर्ग, गढ। उ० १ देह, गेह, सुत, वित, कलत्र महँ मगन होत बिनु जतन किए जस। (वि० २०४)
कलधौत-(स०)-१ सोना, स्वर्ण, २ चाँदी, ३ सुंदर ध्वनि। उ० १ जयति कलधौत मनि मुकुट कुंडल। (वि० ४४)
कलन-(स०)-१ उत्पन्न करना बनाना, २ धारण करना, ३ आचरण, ४ लगाव, संबंध ५ गणित की क्रिया, ६ कौर, ग्रास, ७ ग्रहण, ८ बेंत, ९ गर्भ संबंधी एक क्रिया या विकार।
कलप-(स० कल्प)-दे० 'कल्प'। उ० १ जदुपति मुखछवि कलप कोटि लगि, कहि न जाइ जाके मुख चारी। (कृ० २२)
कलपत-(स० कल्पन)-१ विलाप करता, रोता, बिलखता, २ सोचता। उ०१ करम-हीन कलपत फिरत। (म०११६) कलपि-१ विचार कर, २ कल्पना कर, ३ दुखी होकर रोकर, ३ रचकर, झूठ-मूठ बनाकर। उ० १ फिरिहैं किधौं फिरन कहिहैं प्रभु कलपि कुटिलता मोरि। (गी० २।७०) ३ कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई। (मा० २।२२८।३)
कलपतरु-दे० 'कल्पतरु'। उ० कोसलपाल कृपालु कलपतरु द्रवत सकृत सिर नाए। (वि० १६३)
कलपना-(स० कल्पना)-दे० 'कल्पना'। उ० १ जागि करहिं कटु कोटि कलपना। (मा० २।१५७।३)
कलपबल्ली-दे० 'कल्पबल्ली'। उ० तेरि कुमति कायर कलप बल्ली चहति विषफल फली। (वि० १३५)
कलपबेलि-दे० 'कल्पबेलि'। उ० कलपबेलि जिमि बहुबिधि लाली। (मा० २।५१।२)
कलपलता-दे० 'कल्पलता'। उ० सींची मनहुँ सुधारस कलपलता भई। (जा० १६)
कलपित-दे० 'कल्पित'। उ० १ मिटी मलिन मन कलपित सूला। (मा० २।२६७।१)
कलबल (१)-(स० कला + बल)-दाँव पेंच, अनेक उपाय, छल। उ० कलबल छल करि जाय समीपा। (मा० ७। ११८।४)
कलबल (२)-(ध्व०)-१ शोर-गुल, २ बच्चों की अस्पष्ट बोली। उ० २ कलबल बचन तोतर बोलत। (गी० १।२८)
कलभ-(स०)-१ हाथी का बच्चा, २ हाथी, ३ ऊँट का बच्चा। उ० १ काम कलभ कर भुज बलसींवा। (मा० १।२३३।४)

कलमले-(ध्व० कलमलाना)-कलमलाए, छटपटाए, हिले डुले, छटपटा उठे। उ० चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले। (मा० १।२६१। छं० १) कलमल्यो-दे० 'कलमल्यौ'। कलमल्यौ-छटपटाए, हिले डुले। उ० कोल कमठ अहि कलमल्यौ। (क० १।११)

कलरव-(स०)-१ मधुर शब्द, २ कोयल, ३ कबूतर। उ० १ नूपुर किंकिनि कलरव विहग। (वि० १४)

कलवार-(स० कल्यपाल)-शराब बनाने और बेचनेवाली एक जाति।

कलवारा-दे० 'कलवार'। उ० स्वपच किरात कोल कलवारा। (मा० ७।१००।३)

कलश-(स०)-१ घड़ा, गागर, २ शुभ अवसरों पर पानी भर कर रखा जानेवाला घड़ा, ३ मन्दिर आदि के शिखर पर लगा हुआ पीतल आदि का कंगूरा, ४ चोटी, सिरा, प्रधान, ५ ८ सेर के बराबर की एक तौल।

कलस-दे० 'कलश'। उ० २ मगल कलस दसहुँ दिसि साजे। (मा० १।६१।४) कलसजोनि-(स० कलश+योनि)-घड़े से पैदा होनेवाले अगस्त्य ऋषि। दे० 'अगस्ति'। उ० कलसजोनि जिय जानेउ नामप्रतापु। (ब० ५५) कलसभव-कलस या घड़े से होनेवाले अगस्त्य ऋषि। दे० 'अगस्ति'। उ० सकुचि सम भयो ईस आयसु कलसभव जिय जोइ। (गी० ५।५)

कलहंस-(स०)-१ हंस, २ राजहंस, ३ श्रेष्ठ राजा, ४ परमात्मा, ब्रह्म। उ० १ सुनहु तमचुर मुखर, कीर कलहंस पिक। (गी० १।३४)

कलह-(सं०)-१ विवाद, झगड़ा, २ रास्ता, पथ, ३ तलवार की म्यान। उ० १ कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी। (मा० २।१६८।१)

कलहीन-कलारहित अकलात्मक।

कला-(स०)-१ अंश, भाग। ३ चद्रमा का १६ वाँ भाग। चद्रमा की अमृता, मानदा, पूषा आदि १६ कलाएँ मानी गई हैं। ३ सूर्य का १२ वाँ भाग, ४ किसी कार्य को करने का कौशल, हुनर। कामशास्त्र के अनुसार ६४ कलाएँ हैं। उपयोगी तथा ललित कला। ५, शोभा, ६ ऐश्वर्य ७ बहाना, ८ कपट, ९ खेल। उ० ४ सकल कला सब विद्या हीनू। (मा० १।६।४) कलातीत-कलाओं से परे, ईश्वर।

कलाधर-(स०)-१ कलाओं के धारण करनेवाले, चद्रमा, २ शिव। उ० २ ललित ललाट पर राज रजनीश कल, कलाधर, नौमि हर धनद मित्र। (वि० ११)

कलाप-(स०)-१ झुंड, २ मोर की पूँछ, ३ बाण, ४ तरकश, ५ करधनी, ६ चद्रमा, ७ व्यापार, ८ आभूषण। उ० २ कँधे कलाप पर बरहि फिरावत, गावत, कल कोकिल किसोर। (गी० ३।१)

कलापा-दे० 'कलाप'। उ० १ बरनि न जाहिं विचित्र कलापा। (मा० २।५७।१)

कलापी-(स० कलापिन्)-१ मोर, २ कोकिल, ३ बट।

कलिंद-(स०)-१ सूर्य, २ एक पर्वत जिससे यमुना निकली हैं।

कलिंदजा-(स० कलिंद+आ) पर्वत में निकलने वाली जमुना नदी। उ० जनु कलिंदजा सुनील सैल तें धसी समीप। (गी० ७।७)

कलिंदजात-दे० 'कलिंदजा'।

कलिंदनदिनि-कलिंद की पुत्री, यमुना, जमुना नदी।

कलि-(स०)-१ चार युगों में से अंतिम युग जो ४३२००० वर्षों का होता है। कलियुग। इसमें अधर्म का प्राधान्य होता है। २ युद्ध, कलह, ३ वीर, ४ पाप, ५ शिव, ६ दुःख, ७ तरकश, ८ काला, स्याम। उ० १ सकल कलुष कलि साउज नाना। (मा० २।१३३।२)

कलिकाल (स०)-कलियुग, पाप का समय या युग। उ० कठिन कलिकाल-कानन कृपानुं। (वि० १२) कलिमल-कलियुग का पाप। कलिमलसरि-कलियुग के पापों की नदी। कर्मनाशा नदी। उ० गरल अनल कलिमलसरि व्याधू। (मा० १।५।४) कलिमलो-कलियुग के पाप भी। उ० नाम प्रताप दिवाकरकर खर गरत तुहिन ज्यों कलिमलो। (गी० ५।४२) कलिहि-१ कलियुग को, २ कलिका को। उ० १ कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं। (मा० ४।१५।५)

कलिका-(स०)-१ कली, फूल की प्रथमावस्था, २ क्षण, भाग, ३ कला मुहूर्त।

कलिजुग-दे० 'कलियुग'।

कलित-(स०)-१ सुन्दर, सजाया हुआ, २ विदित ३ प्राप्त। उ० १ कुंजरमनि कंठा कलित उरन्हि तुलसिका माल। (मा० १।२४३)

कलितरु-बबूल का पेड़, बुरा पेड़, पाप का पेड़। उ० कलितरु कपि निसिचर कहत, हमहिं किए विधि बाम। (दो० २५५)

कलिन-कलियाँ, कला का बहुवचन। कलें-कली का बहुवचन, कलियाँ। उ० जनु बिगसीं रवि-उदय कनक पकज-कलीं। (जा० १४८) कली-(स०)-१ बिना खिला फूल, कलिका, २ अक्षतयोनि कन्या, ३ चिड़ियों का नया पर, ४ चीन्ह्यों का एक तिलक। उ० १ गुच्छ बीच बिच कुसुम कली के। (मा० १।२२३।१)

कलियुग-(स०)-चार युगों में से चौथा जिसकी आयु देवताओं के वर्षों में १२०० वर्ष तथा मनुष्यों के वर्षों में ४३२००० है। कलिजुग।

कलिल-(स०)-१ मिला-जुला, मिश्रित, २ गहन, दुर्गम, ३ ढेर, समूह। उ० २ मोह कलिल व्यापित मति मोरी। (मा० ७।८२।४)

कलु-(स० कल्य)-सुख, चैन।

कलुख-दे० 'कलुष'।

कलुष-(स०)-१ मलिनता, २ पाप, दोष, ३ क्रोध, ४ भैंसा, ५ मैला, ६ पापी, ७ निंदित। उ० २ बरबै रघुबर बिमल जसु सुनि कलि कलुष नसाइ। (मा० १।२१ ग)

कलुषाई-१ गदलापन, २ पाप, ३ कालिमा। उ० २ राम-दरस मिटि गइ कलुषाई। (गी० २।४६)

कलेऊ-दे० 'कलेवा'।

कलेवर-(स०) शरीर, देह। उ० मरकत मृदुल कलेवर

स्यामा। (मा० ७।७६।३) कलेवरनि-शरीरों से। उ० नीले पीले कमल से कोमल कलेवरनि। (गी० २।३०)

कलेवा-(सं० कल्यवर्त)-१ सवेरे खाया जानेवाला हलका खाना, ठढा या बासी खाना, २ खाना। उ० २ साथ सकल जनु काल कलेवा। (मा० ७।९४।४)

कलेश-(सं० क्लेश)-दु:ख, पीड़ा, कष्ट।

कलेस-दे० 'कलेश'। उ० काय न कलेस लेस, लेत मानि मन की। (वि० ७१) कलेसन-झोंपें, दुखों। उ० सकल कलेसन करत प्रहारा। (वै० ४५)

कलेसा-दे० 'कलेस'।

कलेसु-दे० 'कलेस'।

कलेसू-दे० 'कलेस'।

कलोरे-(सं० कल्या)-गाय के बच्चे। उ० मामों हरे तृन चारु चरैं बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे। (क० ७।१४४)

कलोल-(सं० कल्लोल)-आमोद प्रमोद, क्रीड़ा, केलि। उ० ज्यों सुखमा सर करत कलोल। (गी० १।११)

कल्कि-(सं०)-विष्णु का दसवाँ अवतार, जिसके संबंध में लोगों की यह धारणा है कि इसका जन्म कुमारी कन्या के गर्भ से होगा।

कल्की-दे० 'कल्कि'। उ० विष्णुयश-पुत्र कल्की दिवाकर उदित दास तुलसी हरन विपति-भार। (वि० ५२)

कल्प (१)-(सं०)-१ ब्रह्मा का एक दिन जिसमें १४ मन्वंतर या ४३२०००००० वर्ष होते हैं। २ विधि, विधान, ३ वेद का एक अंग, ४ प्रातःकाल, ५ विभाग, ६ उपाय, ७ तुल्य, समान, ८ मनोरथ। उ० १ बहु कल्प उपाय करिय अनेक। (वि० १३) कल्पहिं-१ कल्प को, २ कल्पना करते हैं, गढ़ते हैं, ३ रोते हैं। उ० २ तेहि परिहरहिं विमोह बस, कल्पहिं पंथ अनेक। (दो० ५५५)

कल्प (२)-(सं० कल्पना)-१ विचार, कल्पना, २ रचना।

कल्पत-सोचते हैं, विचार करते हैं, कल्पना करते हैं। उ० राज-समाज कुसाज कोटि कटु कल्पत कलुष कुचाल नई है। (वि० १३९) कल्पि-कल्पना कर, निराधार गढ़कर। उ० दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ। (मा० ७।९७ क)

कल्पतरु-(सं०)-कल्पना करते ही या सोचते ही सब वस्तुओं को प्रदान करनेवाला पेड़। कल्पवृक्ष, देववृक्ष। उ० कैवल्य सकल फल कल्पतरु सुभ सुभाव सब सुख बरिस। (क० ७।११५) विशेष-पुराणानुसार कल्पतरु देवलोक का एक पेड़ है जो समुद्र मथन के समय निकले १४ रत्नों में से एक है। इसे इंद्र ने लिया था। यह वृक्ष सभी कुछ का दाता समझा जाता है। कल्पद्रुम, कल्पतरु, कल्पवृक्ष, कल्पवेलि, कल्पलता, दयतरु आदि इसके पर्याय हैं। कल्पना करते ही सब कुछ देनेवाला तथा कल्प (१४ मन्वंतर) तक जीवित रहनेवाला होने के कारण यह कल्पतरु या कल्पलता आदि नामों से पुकारा गया है।

कल्पद्रमं-दे० 'कल्पद्रुम'। उ० काशीश कलिकल्मषौघशमन कल्याणकल्पद्रुम। (मा० ६।१।श्लो०२) कल्पद्रुम-(सं०)-दे० 'कल्पतरु'। उ० धर्म-कल्पद्रुमाराम, हरिधाम-पथि संबलं, मूलमिदमेव एक। (वि० ५६)

कल्पना-(सं०)-१ विचार, सोचना, २ रचना, बनावट, ३ वह शक्ति जो अनुमान के आधार पर अप्रत्यक्ष वस्तुओं के विषय में भी सोच सकती है। ४ बिना किसी आधार के बना लेना, अनुमान, ५ संकल्प, ६ आरोप, स्थापन, ७ नकल, ८ तर्क, ९ दु:ख, कष्ट। उ० ६ लोक कल्पना बेदकर, अंग अंग प्रति जासु। (मा० ६।१४)

कल्पपादप-दे० 'कल्पतरु'।

कल्पबल्ली-(सं० कल्प + वल्लरी)-दे० 'कल्पतरु'।

कल्पबेलि-(सं० कल्पबेलि)-दे० 'कल्पतरु'।

कल्पलता-दे० 'कल्पतरु'।

कल्पसाखी-(सं० कल्प + शाखा)-दे० 'कल्पतरु'। उ० राम विरहार्कसंतप्त-भरतादिनरनारि-सीतल करन कल्प साखी। (वि० २७)

कल्पसाषी-दे० 'कल्पसाखी'।

कल्पांत-कल्प का अंत, प्रलय। उ० सकल-लोकांत-कल्पांत शूलाग्रकृत दिग्गजाव्यक्त-गुण नृत्यकारी। (वि० ११) कल्पांतकृत-१ प्रलय करनेवाला, २ रुद्र, शिव। उ० १ सत्य संकल्प अतिकल्प कल्पांतकृत, कल्पनातीत अहि-तल्पवासी। (वि० ५४)

कल्पित-(सं०)-१ जिसकी कल्पना की गई हो, २ मन गढ़त, मनमाना, ३ बनावटी, नकली। उ० २ सब नर कल्पित करहिं अचारा। (मा० ७।१००।५)

कल्मष-(सं०)-१ पाप, २ मैल, ३ एक नरक का नाम, ४ मवाद, पीब। उ० १ साधुपद-सलिल निर्धूत-कल्मष सकल, स्वपच यवनादि कैवल्यभागी। (वि० ५७)

कल्याण-(सं०)-१ मंगल, शुभ, २ सोना, ३ एक राग का नाम।

कल्यान-दे० 'कल्याण'। उ० १ कर कल्यान अखिल कै हानी। (मा० २।४२।१)

कल्याना-दे० 'कल्यान'। उ० १ जो आपन चाहै कल्याना। (मा० ५।३८।३)

कल्यानि-हे कल्याणी, हे कल्याणमयी। उ० कालिंदी कल्यान कौतुक कुसल तव कल्यानि। (गी० ७।३२)

कल्यानू-दे० 'कल्यान'। उ० १ जेहि बिधि होइ राम कल्यानू। (मा० २।८।३)

कल्लोलिनी-(सं०)-कल्लोल करनेवाली नदी, नदी। उ० स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा। (मा० ७।१०८।३)

कवँल-(सं० कमल)-कमल, सरोज। उ० नवल कवँल हू ते कोमल चरन हैं। (क० २।१७)

कवच-(सं०)-१ आवरण, छिलका, २ शिरस्त्राण, लड़ाई के समय पहने जानेवाला एक लोहे की कड़ियों का बना पहनावा। उ० २ कवच अभेद विप्र गुर पूजा। (मा० ६।८०।५)

कवन-(प्रा० कवण)-किस, कौन। उ० कहहु कवन बिधि भा संवादा। (मा० ७।५५।३) कवनि-'कवन' का स्त्री लिंग। उ० होइ अचल कवनि बिधि राती। (मा० २।१३।२) कवनिउँ-दे० 'कवनिउ'। कवनिउ-१ किसी को, २ कोई। उ० १ अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। (मा० ७।२१।१) कवनिहुँ-किसी भी। उ० तुलसी काम मयूर तें लागी कवनिहुँ रूख। (स० ५१) कवनिहु-किसी भी, कोई भी। उ० चिंता कवनिहु बात कै तात करिअ

जनि गोर। (मा० २।१९) कवनी-कौन सी, किस। उ० कहहु तात कवनी विधि पाए। (मा० ६।३८।४)
कवनु-दे० 'कवन'।
कवनें-किस, कौन से। उ० कवनें अवसर का भयउ गयउँ नारि विस्वास। (मा० २।२६) कवने-दे० 'कवनें'।
कवनेहुँ-किसी भी, किसी। उ० तोर नाम नहिं कवनेहुँ काला। (मा० १।१६४।३)
कवल (१)-दे० 'कवँल'।
कवल (२)-(स०)-ग्रास, कौर, लुकमा।
कवलित-(स०)-कौर किया हुआ, ग्रसित। उ० सकुल सदल रावन सरिस, कवलित काल कराल। (प्र०६।३।६)
कवलु-दे० 'कवल (२)'। उ० कालकवलु होइहि छन माहीं। (मा० १।२७४।२)
कवि-(स०)-१ काव्य करनेवाला, शायर, २ सूर्य, ३ पंडित, ४ शुक्राचार्य, ५ उल्लू, ६ ऋषि। कविकोकिल-कवियों में कोयल के समान, वाल्मीकि।
कवित-दे० 'कवित्त'।
कविता-(स०)-रमणीय पद्यमय वर्णन, काव्य।
कवित्त-(स० कवित्व)-१ कविता, काव्य, २ दंडक के अंतर्गत ३१ अक्षरों का एक छंद।
कवी-दे० 'कवि'।
कवीश्वर-कवियों के ईश्वर, वाल्मीकि। उ० वन्दे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ। (मा० १।१। श्लो० ४)
कश्यप-(स०)-१ एक ऋषि, २ एक प्रजापति, जो सृष्टि के और साथ ही गरुड, नाग, भगवान (वामन, कृष्ण, राम) तथा ४९ वायु के पिता कहे गये हैं। ३ कछुआ, ४ सप्तर्षि मंडल का एक तारा, ५ एक मृग। विशेष-कश्यप ऋषि ब्रह्मा के पौत्र और मरीचि के पुत्र थे। इनसे वामन, राम और श्रीकृष्ण भगवान रूप में पैदा हुए थे। इनकी पत्नी अदिति थी। दे० 'अदिति'। कश्यपप्रभव-कश्यप ऋषि से उत्पन्न देव और दैत्य।
कषाय-(स०)-१ कसैला, कसाव, २ सुगंधित, ३ गैरिक, गेरू के रंग का, जोगिया, लाल, रंजित, ५ बबूल का गोंद। उ० ३ अरुन मुख, भ्रू विकट, पिंगल नयन रोष कषाय। (वि० २२०)
कष्ट-(स०)-१ दुःख, क्लेश, २ संकट, आपत्ति। उ० १ करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। (मा० ७।४५।२)
कष्टी-दुखित, कष्टरत, दुखिया। उ० दरशनारत दास, ग्रसित-माया-पास त्राहि त्राहि! दास कष्टी। (वि० ६०)
कस (१)-(स० कीदृश)-१ कैसा, कैसे, किस प्रकार २ क्यों। उ० १ सपनेहुँ धरमबुद्धि कस काऊ। (मा० २।२५१।३)
कस (२)-(स० कष)-परीक्षा, कसौटी। उ० द्वंद रहित, गत-मान, ज्ञानरत विषय विरत खटाइ नाना कस। (वि० २०४)
कस (३)-(स० कर्षण)-१ बल, जोर, २ वश, काबू, ३ रोक, अवरोध।
कस (४)-(स० कषाय)-कसैला, कसाव।
कस (५)-(स० कांस्य)-ताँबे और जस्ते के संयोग से बनी एक धातु, कसकुट, काँसा।
कसक-(स० कष्)-१ पीड़ा, टीस, मीठा-मीठा दर्द, २ पुराना वैर, ३ सहानुभूति, ४ अरमान, हौसला।
कसकतु-कसकता, दर्द करता। उ० मायो सोई काम है, करेजो कसकतु है। (क० ६।१६) कसकै-कसकता है, दर्द करता है। उ० जानै सोई जाके उर कसकै करक सी। (गी० १।४२)
कसम-(अर०, कसम)-शपथ, सौगंध। उ० भुजा उठाइ साखि संकर करि कसम खाइ तुलसी भनी। (गी० ५।३१)
कसमसत-(व्य०)-१ एक दूसरे से रगड़ खाते हैं, हिलते डोलते हैं। २ हिचकते हैं, आगा-पीछा करते हैं। ३ विचलित होते हैं। उ० १ किल किलात, कसमसत, कोलाहल होत नीरनिधितीर। (गी० ५।२२) कसमसात-१ आपस में रगड़ खाती हुई, २ हिलती हुई, ३ हिचकती हुई, ४ विचलित होती हुई। उ० कसमसात आइ अति घनी। (मा० ६।८७।१) कसमसे-आतुर हुए, घबराने लगे। उ० भए क्रुद्ध जुद्ध विरुद्ध रघुपति भीन सायक कसमसे। (मा० ६।३१। छं० १)
कसहीं-१ बाँधते हैं, २ परीक्षा करते हैं, ३ कष्ट देते हैं। उ० ३ करहिं जोग जप तप तन कसहीं। (मा० २।१३२।४)
कसाइ-(अर० कस्साब)-१ वधिक, बूचड़, गोश्त बेचने वाला, २ निर्दयी। उ० १ कासी, कामधेनु कलि कुहत कसाइ है। (क० ७।१८१)
कसि-दे० 'कस'। कसकर, जोर देकर। कसें-१ कसने से, बाँधने से, २ परीक्षा करने से, परखने से, ३ कष्ट देने से, ४ बाँधे हुए हैं, ५ बाँधे, कसे हुए। उ० २ कसें कनकु मनि पारिखि पाएँ। (मा० २।२८३।२) ४ मुनिपट कटिन्ह कसें तुनीरा। (मा० २।११५।४) कसे-१ कसने से, २ परीक्षा करने से, ३ कष्ट पहुँचाने से, ४ बाँधे हुए। उ० ४ हृदय बाहु धनुबान-पानि प्रभु लसे मुनिपट कसे माथ। (वि० ८४) कसैहौं-१ कसवाऊँगा, बँधवाऊँगा, २ परीक्षा कराऊँगा। उ० २ स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहिं कसैहौं। (वि० १०५।२)
कस्या-कस लिया। उ० कटितट परिकर कस्यो निषंगा। (मा० ६।८६।५) कस्यौ-१ कसा, बाँधा, २ परीक्षा की, जाँचा।
कसौटी-(स० कषपट्टी)-एक प्रकार का काला पत्थर जिस पर सोने चाँदी की परख की जाती है। उ० दे० 'कसैहौं'।
कस्यप-(स० कश्यप)-एक ऋषि। दे० 'कश्यप'। उ० कस्यप अदिति महातप कीन्हा। (मा० १।१८७।२)
कहँ (१)-(स० कुह)-कहाँ, किस ठौर। उ० कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई। (मा० २।१६४।२)
कहँ (२)-(स० कक्ष)-के लिए, वास्ते। अवधी में यह कर्म तथा सम्प्रदान कारकों का चिह्न है।
कहत-१ कहते हैं, २ कहता हुआ। उ० १ कृपा है, भूलो है भूलो सदा जग सत्य कहत ले बात लहा है। (क० ७।३१) कहता-१ कहता है, २ कहते हुए, कहता हुआ। उ० २ तापस तामस पदप कहता। (मा०३।३२।१)

कह (१)-(सं० कथन)-१ कहो, बोलो, २ कहकर, ३ कहता है, ४ कहा। उ० ४ यदपि सुमन कह देरसमाजू। (मा० २।१३४।२) कहइ-१ कहने लगा, कहा, २ कहने में, वर्णन में। उ० १ धरि धीरजु तब कहइ निषादू। (मा० २।१४३।१) कहइ-१ कहता, २ कहेगा। उ० १ सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई। (मा० १।६६।४) कहउँ-१ कहूँ, वर्णन करूँ, २ कहता हूँ, कह रहा हूँ। उ० २ कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी। (मा० २।२६४।१) कहउ-१ कहो, कहिए, २ कहे। उ० २ लोग कहउ गुर साहिब द्रोही। (मा० २।२०५।१) कहऊँ-कहूँ। उ० तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ। (मा० २।६५।४) कहत (१)-१ कहते हैं, कहता हूँ, २ कहते हो, ३ कहते हुए ४ कहता, कहते, ५ कह देने से। उ० १ दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू। (मा० २।२२६।२) कहति-'कहत' का स्त्रीलिंग रूप। उ० ४ कपट सयानि न कहति कछु जागति मनहुँ मसानु। (मा० २।३६) कहतु-दे० 'कहत'। उ० ४ तुलसी न तुम्ह सो राम प्रीतमु कहतु हौं सौंहें किएँ। (मा० २।२०१। छं० १) कहते-वर्णन करते, बखानते। उ० जौ जहँ-तहँ प्रन राखि भगत को भजन-प्रभाव न कहते। (वि० ९७) कहतेउ-कहता, कहते। उ० कहतेउँ तोहि समय निरबहा। (मा० ६।६३।३) कहब-१, कहेंगे, कहा जायगा, २ कहा हुआ, ३ कहना। उ० ३ कहब मोर मुनि नाथ निबाहा। (मा० २।२६०।२) कहबि-१ कहेंगी, कहा करेंगी, २ कहियेगा, ३ कहना। उ० १ हमहुँ कहबि अब ठकुरसोहाती। (मा० २।१६।२) कहसि-१ कहा, २ कहती है, कहता है, कह रहा है, ३ कहेगा। उ० २ प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती। (मा० २।३१।३) कहसी-दे० 'कहसि'। उ० २ छोटे बदन बात बदि कहसी। (मा० ६।३१।४) कहहिं-१ कहते हैं, २ कहे। उ० २ बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी। (मा० २।१२८।१) कहहि-१ कहता है, २ कहेगा। कहहीं-कहते हैं, कह रहे हैं। उ० ते प्रभु समाचार सब कहहीं। (मा० २।२२४।३) कहहुँ-दे० 'कहउँ'। कहहु-कहो, बतलाओ, बोलो, कहिए, आज्ञा दीजिए। उ० कारन तौ कहहु कहा बिस्वामा। (मा० ७।४६।२) कहहू-दे० 'कहहु'। उ० मोहि पद पदुम पखारन कहहू। (मा० २।१००।४) कहा (१)-१ बोला, सुनाया, २ कहा हुआ, कथन, ३ उपदेश, ४ आदेश। कहि-कहकर। उ० कुसलप्रस्न कहि बारहिं बारा। (मा० १।२१५।२) कहिअ-१ कहता, २ कहना चाहिए, ३ कहिए। उ० १ कहिअ न राखन जानि अकाजा। (मा० १।६४।१) कहिआया-१ कहने में आया, कहना पड़ा, २ कहता आया। कहिउँ-कहा, कहे। उ० कहिउँ तात सब प्रस्न तुम्हारी। (मा० ७।११४।८) कहिबी-कह देना, बतला देना। उ० बूझिहैं 'सो है कौन ?' कहिबी नाम दसा जनाइ। (वि० ४१) कहिबे-१ कहोगी, कहोगे, २ कहने। उ० १ कहिबे कछु, कछु कहि जैहै, रहौ, आलि अरगानी। (कृ० ४७) कहिबा-१ कहना, २ कहने के लिए, ३ कहूँगा। उ० ३ कहिबो न कछू करिबोइ रहो है। (क० ७।६१) कहिय-१ कहना चाहिए, २ कहिए, बतलाइए। कहियत-१ कहते हैं, २ कहा जाता है। उ० २ घर घाल चालक कलहप्रिय कहियत परम परमारथी। (पा० १२१) कहिसि-कहा, कह सुनाया। उ० कहिसि कथा सत सवति के जेहि बिधि बाढ़ बिरोधु। (मा० २।१८) कहिहउँ-कहूँगा। उ० कहिहउँ कवनसँदेस सुखारी। (मा० २।१४६।१) कहिहहिं-कहेंगे। कहिहि-कहेगा, कहेगी। उ० पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी। (मा० २।४५।२) कहिहु-कहा था। उ० स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं। (मा० २।२२।२) कहिहै-१ कहेगा, २ कह सकता है। कहिहौं-दे० 'कहिहउँ'। उ० और मोहि को है काहि कहिहौं ? (वि० २३१) कही-१ वर्णित, कथित, कही हुई, २ कहा, कह सुनाई। उ० २ चित्रकूट महिमा अमित कही महामुनि गाइ। (मा० २।१३२) कहीजै-कहिए, कहनी चाहिए। उ० मेरे मरिये समन चारि फल होहिं तौ क्यों न कहीजै ? (गी० ३।१५) कहु-१ कहकर, २ कहो, बोलो। उ० २ कहु केहि कहिए कृपानिधे ! भवजनित बिपति अति। (वि० ११०) कहे-१ कहने पर, २ कहा, वर्णन किया, ३ कहने। उ० ३ भरत कहे महुँ साधु सयाने। (मा० २।२२७।३) कहेउँ-मैंने कहा, वर्णन किया। उ० तब लगि जो दुख सहेउँ कहेउँ नहिं, जद्यपि अंतरजामी। (वि० ११३) कहेउ-कहा। उ० राम सचिव सन कहेउ सप्रीती। (मा० २।८५।४) कहेऊँ-१ कहा, २ कह रहा हूँ। उ० २ अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ। (मा० १।१८५।२) कहेऊ-कहा था, कहा। उ० तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेऊ। (मा० १।६३।१) कहेन्हि-१ कहे, बोले, कहने लगे, २ कहा था। उ० २ देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना। (मा० २।४०।४) कहेसि-कहा, बोला। उ० यह कुघातु करि पातकिनि कहेसि कोपगृह जाहु। (मा० २।२२) कहेसु-१ कहा, २ कह देना, ३ कहो। उ० २ कहेसु आनि जियँ सयन सुभाई। (मा० ५।१।२) कहेहु-१ कहा, कहा था, २ कहिएगा, कहना। उ० १ देन कहेहु बरदान दुइ तेउ पावत संदेहु। (मा० २।२७) कहेहू-१ कहा, २ कहना, कहिएगा। उ० २ तात प्रनाम तात सन कहेहू। (मा० २।१५१।३) कहैं-कहते हैं वर्णन करते हैं। उ० सारद, सेस, साधु महिमा कहैं। (वि० १२७) कहै-कहे, कथन करे, कहते। उ० कहै सो अधम अयान असाधू। (मा० २।२०७।४) कहैगो-कहेगा। उ० अपनो अपने को तौ कहैगो घटाइ को ? (क० ७।२२) कहौं-वर्णन करूँ कहूँ। उ० कहँ लगि कहौं दीन अगनित जिन्हकी तुम बिपति निवारी। (वि० १६६) कह्यो-१ कहना २ कहा, ३ कहा हुआ। उ० १ उधोजू कह्यो तिहारोइ कीबो। (कृ० ३५) २ ईहै कह्यो सुत बेद चहूँ। (वि० ८९) कह्यौ-१ कहा हुआ, कथन, २ कहना, ३ कहा, कहा है।

कह (२)-[गु० सं० कियति) कितना, किस मात्रा का।

कहत (२)-(अर० कहत)-अकाल, दुर्भिक्ष।

कहतब-कथन, कहना उपदेश।

कहन-१ कहना कहने, २ कहने में। उ० १ लगे कहन कछु कथा पुनीता। (मा० २।१४१।४) कहनि-१ कथन, कहना, उच्चारण करना, २ उक्ति बात, कहावत, कविता। उ० १ सीय गहनि अवरी सहनि, कहनि हाय सुगराम। (वै० १७)

कहँरत-दे० 'कहरत'। उ० १ मारे पछारे उर बिदारे बिपुल भट कहँरत परे। (मा० ३।२०। छं० २)
कहर (१)-(अर० कहर)-१ विपत्ति, आफत, २ बलपूर्वक किया गया अत्याचार।
कहर (२)-(अर० क़द्दार)-अगम, अपार।
कहरत-(दे० कराहत)-१ कराहते हैं, कराहता है, कराह रहा है, २ कराहते हुए। कहरि-कराह कर, कराहते हुए। उ० ठहर-ठहर पर कहरि कहरि उठै। (क० ६।४२)
कहरी-(अर० कहर)-कहर या ग़ज़ब ढानेवाली, क्रोधी। उ० लक से बक महागढ़ दुर्गम ढाहिबे को कहरी हैं। (क० ६।२६)
कहरु-दे० 'कहर'। उ० हरत हीं देखि कलिकाल को कहरु। (वि० प० २४०)
कहाँ-(सं० कुह)-किस जगह, कुत्र, किस स्थान पर, कहँ। उ० कहु कहँ तात कहाँ सब माता। (मा० २।१२६।४)
कहा (२)-(सं० कः)-क्या, कैसा, कैसे। उ० पावन पायँ पखारि कै नाव चढ़ाइहौं आयसु होत कहा है? (क०२।७)
कहाइ-१ कहलाए, २ कहलाकर, कहाकर। उ० २ कुकबि कहाइ अजसु को लेइ। (मा० १।२४७।२) कहाई-१ कहलाकर, २ कहलायी, कहलाए। उ० १ बिरिद बाँधि बर बीरु कहाई। (मा० २।१४४।४) कहाउब-१ कहलाऊँगा, २ कहलाना। उ० २ दानि कहाउब अरु कृपनाई। (मा० २।३२।३) कहाए-कहलाए, कहे गए, प्रसिद्ध हुए। कहाओ-कहलाओ। कहाय-कहाकर, कहलाकर। उ० जीवौं जग जानकी जीवन को कहाय जन। (ह० ४२) कहायहु-कहलाया, कहलाए, कहे गए। उ० निज मुख तापस दूत कहायहु। (मा० ६।२१।३) कहाये-दे० 'कहाए'। कहायो-कहलाया, कहाया। उ० पेट भरिबे के काज महाराज को कहायो। (क० ७।१२१) कहावउँ-कहलाऊँ, कहाऊँ। कहावत (१)-कहलाते हैं। उ० सबै कहावत राम के, सबहि राम की आस। (दो० १४१) कहावौं-कहलाता हूँ, २ प्रकट करता हूँ। कहावौं-कहलाऊँ। उ० कहीं कहावौं का अब स्वामी। (मा० २।२६७।१) कहावती-कहलाती, कहलाती हैं। उ० चाही सती कहावती, जरती नाह बियोग। (दो० २५४) कहावहिं-कहवाते हैं, कहलाते हैं, कहलवाते हैं। उ० बहुरि बहुरि करि बिनय कहावहिं। (मा० ७।२६।३) कहावा-१ कहलाया, कहला भेजा, २ कहलाता है। उ० २ सिव द्रोही मम भगत कहावा। (मा० ६।२।७) कहाहीं-१ कहाते हैं, कहलाते हैं, २ कहते हैं, वर्णन करते हैं। उ० २ श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं। (मा० ७।१२२।७) कहैहौं-कहलाऊँगा, कहाऊँगा।
कहार-(सं० क+हार)-एक जाति जो पानी भरने या बरतन धोने का काम करती है। डोली या सामान और बँहगी आदि ढोना भी इनका काम है। उ० बिषय कहार मार मदमाते, चलहिं न पाउँ बटोरा रे। (वि० १८६)
कहारा-दे० 'कहार'। उ० भरि भरि काँवरि चले कहारा। (मा० १।३०४।३)
कहानी-१ कथा, किस्सा, बात, २ झूठी बात, गढ़ी बात। उ० १ लखन राम सिय पंथ कहानी। (मा० २।२१६।१)

कहावत (२)-(सं० कथन)-१ बोलचाल में बहुत प्रयुक्त होनेवाले अनुभव वाक्य, लोकोक्ति, मसल। २ कही हुई बात, उक्ति।
कहीं-(सं० कुह)-१ किसी ठौर, किसी स्थान पर, अनिश्चित स्थान पर, २ शायद, कदाचित्, ३ अत्यंत, बहुत। उ० १ नर पीड़ित रोग न भोग कहीं। (मा० ७।१०२।२)
कहुँ (१)-१ के लिए, २ को। उ० १ राजु देन कहुँ सुभ दिन साधा। (मा० २।४४।४) उ० २ सुन्दरे उपराहित कहुँ राया। (मा० १।१६६।२)
कहुँ (२)-कहीं। कहुँ कहुँ-१ कहीं-कहीं, किसी स्थान पर, २ कभी-कभी, किसी-किसी समय।
कहूँ-१ कहीं, किसी जगह, २ किसी जगह से, कहीं से। उ० १ साहब कहूँ न राम से। (वि० ३२)
कहैया-कहनेवाला। उ० दूनो को कहैया औ सुनैया चष चारिखो। (क० १।१६)
काँकर-(सं० कर्कर)-कंकड़, रोड़ा। उ० कुस कंटक मग काँकर नाना। (मा० २।६२।३)
काँकरी-छोटा कंकड़, कंकड़ी, छोटे रोड़े। उ० कुस कंटक काँकरी कुराईं। (मा० २।३११।३)
काँकाँ-(ध्व०) कौए की बोली, काँव काँव।
काँकिनिभाग-जिसके भाग्य में कौड़ी का मिलना ही लिखा हो। अभागा।
काँकिनी-(सं० काकणी)-१ गुंजा, घुँघची, २ कौड़ी, ३ एक तौल, माशे का चौथा भाग, ४ पण का चौथा भाग। उ० १ सो पर पर काँकिनी लागि सठ बेंचि होत सठ चेरो। (वि० १४३)
काँख-(सं० कक्ष)-बगल, बाहुमूल के नीचे की ओर का गड्ढा। उ० काँख दाबि कपिराज कहुँ चला अमित बल सींव। (मा० ६।६५)
काँखासोती-दे० 'काखासाती'।
काँच (१) (सं० काँच)-१ शीशा, बालू रेह आदि से मिलकर बनी एक पारदर्शक वस्तु, २ दर्पण। उ० २ ज्यों गज काँच बिलोकि। (वि० ६०) काँचहि-काँच के, शीशे के। उ० कंचन काँचहि सम गनै। (वै० २०) काँचे-काँच को, शीशे का। उ० सम कंचन काँचे गिनत, सत्रु मित्र सम दोइ। (वै० ३१) काँचो-१ काँच भी, शीशा भी, २ कच्चा भी, दुर्बल भी। उ० १ किए बिचार सार कदली ज्यों मनि कनक संग लघु लसत बीच बिच काँचो। (वि० २०३)
काँच (२)-(?) कच्चा, जो पका न हो। अपक्व।
काँच(३)-(?)-गुदेन्द्रिय का भीतरी भाग।
काँचन-(सं०)-१ स्वर्ण, सोना, २ कचनार, ३ धन, ४ नागकेसर। उ० १ सप्तकाँचन-वस्त्र शास्त्रविद्या निपुन सिद्ध सुर-सेव्य पाथोजनाभ। (वि० ५०)
काँचा-१ काँच, कच्चा, कमज़ोर, २ शीशा, रत्न, मणि। उ० १ मगल महुँ भय मम अति काँचा। (मा० ६।३७।१) २ महि बहुरंग रचित गच काँचा। (मा० ७।२७।३) काँचे-कच्चा, अपरिपक्व। उ० काँचे घट जिमि डारौं फोरी। (मा० १।२५३।१)

काँजी-(सं० कांजिक)-एक प्रकार का खट्टा रस जो अँचार, बड़े या पाचन आदि के लिए कई प्रकार से बनाया जाता है। उ० कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीर सिंधु बिनसाइ। (मा० २।२३१)
काँट-(सं० कंट)-कंटक, काँटा। उ० काँट कुरायँ लपेटन लोटन ठाँवहिं ठाँउँ बझाऊ रे। (वि० १८९)
काँठा-(सं० कंठ)-१ गला, २ तोते आदि के गले की रंगीन रेखा, ३ किनारा, तट, ४ समीप, पास। काँठे-किनारे, तट पर। उ० भाइ बिभीषन जाइ मिल्यो प्रभु आइ परे सुनी सायर-काँठे। (क०६।२८)
काँड़िगो-(सं० कंडन)-१ रौंदा, कुचला, २ लात मारा, पीटा। उ० १ भारी भारी रावरे के चाउर से काँड़िगो। (क० ६।२४)
कांतार-(सं०)-१ भयानक स्थान, २ घना और भयानक जंगल, ३ दुर्गम पथ, ४ छेद, दरार, ५ एक प्रकार की ईख, ६ बाँस।
कांति-(सं०)-१ दीप्ति, प्रकाश, २ शोभा, सौंदर्य, ३ चंद्रमा की एक कला। उ० २ तुलसी प्रभु सुभाउ सुरतरु सो ज्यों दरपन मुख कांति। (वि० २३३)
काँदलो-दे० 'कँदैलो'।
काँदो-(सं० कर्दम)-कीच, कीचड़, पंक।
काँध-(सं० स्कंध)-कंधा, कान्ह। उ० कुँवरि लागि पितु काँध ठाढ़ि भइ सोहइ। (पा० १३) काँधे-कंधे पर। उ० सून कम कर सरु धनु काँधे। (मा० २।२३९।३)
काँधा-१ कंधे पर लो, शिरोधार्य करो, स्वीकार करो, २ स्वीकार किया। उ० १ उठि सुत पितु अनुसासन काँधी। (मा० १।१८२।२) काँधे-स्वीकार किया। काँध्यो-[काँधना-(सं० स्कंध)-१ कांध लगाना, भार उठाना, कंधे पर रखना, २ स्वीकार करना, ३ ठानना]-ठाना है। उ० आनि पर बाम बिधिबाम तेहि राम सों सकत संग्राम दसकंध काँध्यो। (क० ६।४)
काँपहिं-(सं० कंपन)-काँपते हैं, काँप रहे हैं। उ० घर घर काँपहिं पुर नर नारी। (मा० १।२७८।३) काँपी-काँपने लगी, कंपित हुई। काँपना का भूतकालिक रूप। उ० सुन पमेउ कदली जिमि काँपी। (मा० २।२०।१) काँपु-काँपा, कंपित हुआ, काँपने लगा। उ० बाली फिरि लगि सखिहि काँपु तनु थरथर। (पा० ६१)
काँवर-(सं० स्कंध>काँध)-बाँस का एक छिला हुआ फट्टा जिसमें रस्सियाँ बँधी रहती हैं और जिस पर सामान रख कर कँहार लोग कंधे पर रखकर ले जाते हैं। बहँगी। यात्री लोग इसी प्रकार की काँवर पर जल आदि ले जाते हैं।
काँवरि-दे० 'काँवर'। उ० कोटिन्ह काँवरि चले कहारा। (मा० १।३००।४)
का (१)-(सं० क)-क्या, कौन वस्तु। उ० बातुल मातुल की न सुनी सिख का तुलसी कपि लंक न जारी? (क० ६।५)
का (२)-(सं० कृत)-संबंध कारक का चिह्न। उ० बेद बिदित संमत सबही का। (मा० २।१७२।२)
काइ-(सं० काय)-शरीर, काया। उ० प्रमुदित न प्रभुता परिहरै, कबहुँ बचन मन काइ। (दो० ५१७)
काई (१)-(सं० कावार) १ जल में जमनेवाली एक महीन घास, सेवार, २ मैल, मुर्चा। उ० १ काई कुमति केकई केरी। (मा० १।४१।१)
काइ (२)-(सं० क) किसी को, कोई को।
काउ (१)-दे० 'काऊ (२)' उ० १ कहत राम बिधु-बदन रिसौहैं, सपनेहुँ लख्यो न काउ। (वि० १००)
काउ (२)-दे० 'काऊ (१)'।
काऊ(१)-(सं० कदा)-कभी, किसी समय। उ० सोउ देखा जो सुना न काऊ। (मा० १।२०२।१)
काऊ (२)-(सं० क)-१ कोई, २ किसी को, किसी पर, ३ कैसा, किस प्रकार का, ४ कुछ। उ० २ निज अपराध रिसाहिं न काऊ। (मा० २।२१८।२)
काक-(सं०)-१ कौआ, काग, २ जयंत। उ० १ काक कंक बालक कोलाहल करत हैं। (क० ६।४६) २ सुर सकट भाजन भए हठि कुजाति कपि काक। (दो० ४१५)
काकी (१) (सं०) कौए की स्त्री, मादा काक।
काकपक्ष-(सं०)-१ बालों के पट्टे जो दोनों ओर कानों के ऊपर रहते हैं। २ कौवे के पर।
काकपच्छ-दे० 'काकपक्ष'। उ० १ काकपच्छ सिर, सुभग सरोरुह लोचन। (जा० २६)
काकभुशुंडि-(सं०)-एक ब्राह्मण जो लोमश के शाप से कौआ हो गये थे और राम के बड़े भक्त थे। गरुड़ से राम की कथा इन्होंने ही कही थी।
काकसिखा-(सं० काकशिखा)-दे० 'काकपक्ष'। उ० १ काक सिखा सिर, कर केलि गुन धनु-सर। (गी० १।६४)
काकसुता-(सं०) कोकिल, कोयल। उ० काकसुता गृह ना करै यह अचरज बड़ आय। (स० १६०) विशेष-ऐसा कहा जाता है कि कोयल अपना घर नहीं बनाती और न अपने बच्चों को पालती है। वह अपना बच्चा किसी कौए के घोंसले में रख आती है और कौए की स्त्री ही उसके बच्चे को पालती है। इसी कारण कोयल को काक सुता आदि नामों से पुकारा जाता है।
काका-(अ०)-काँव-काँव, कौए की बोली। उ० कुहू कुहू कलकंठ काका रव करत काग। (दो० ४३६)
काकिणी-(सं०)-१ गुंजा, घुँघची, २ माशे का चौथाई भाग, ३ कौड़ी, ४ पण का चतुर्थ भाग।
काकिन-दे० 'काकिणी'।
काकिनिभाग-दे० 'काँकिनिभाग'। उ० काँक सिरोमनि काकिनिभाग बिलोकत लोकप को करदा है। (क० ७।१२५)
काकिनी-दे० 'काकिणी'।
काकी (२)-(सं० क + कृत)-किसकी।
काकी (३)-(?)-चाची, पिता के भाई की स्त्री।
काकु-(सं०)-छिपी हुई चुटीली बात, व्यंग्य, ताना, कठोर बचन। उ० कहियत काकु कूबरी हूँ को। (कृ० २७)
काकू-दे० 'काकु' उ० जानिउँ आयँ जननि कहि काकू। (मा० २।२६१।३)
काके-किसके, कौन के। उ० काके भए गए सँग काके। (वि० २००)

काको–१ किसका, २ किसको। उ० १ प्रतीति मानि तुलसी विचारि काको भरु है ? (क०७।११६)

काखासोती–(सं० कक्ष+श्रोत्र)-दुपट्टा डालने का एक ढंग जिसमें दुपट्टे को बाएँ कंधे और पीठ पर से ले जाकर दाहिनी बगल के नीचे से निकालते हैं फिर बाएँ कंधे पर डाल लेते हैं। जनेऊ की तरह दुपट्टा डालने का एक ढंग। उ० पिअर उपरना काखासोती। (मा० १।३२७।४)

काग–दे० 'काक'। उ० १ तुरत भयउँ मैं काग तब, पुनि मुनि पद सिरु नाइ। (मा० ७।११२ क)

कागद–(अर० काग़ज़)-कागज, लिखने के काम आनेवाला पत्र। यह कई चीज़ों को मिलाकर बनाया जाता है। उ० सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे। (मा० १।९।६)

कागर (१)–(अर० कागज़)–१ पत्र, पर, पंख, पत्ता, २ कागज़, ३ सर्प की केंचुल। उ० १ कीर के कागर ज्यों नृपचीर विभूषन, उप्पम अंगनि पाइ। (क० २।१)

कागर (२)–(सं० क+अग्र)–१ पानी के सामने की उठी भूमि, किनारा, २ मेंड़, डाँड़, ३ ओठ, अधर, ।

कागा–दे० 'काक'। उ० १ अति खल जे बिषई बग कागा। (मा० १।३८।२)

कागू–दे० 'काक'। उ० १ बैनतेय बलि जिमि चह कागू। (मा० १।२६७।१)

काचो–१ कच्चा, अपक्व, कच्चे ही, २ बुद्धिहीन, ३ शीशा भी काँच भी। उ० १ सहवासी काचो गिनहिं, पुरजन पाक प्रबीन। (दो० ४०३)

काछिअ–[काछना (सं० कक्ष)-कमर में लपेटे वस्त्र के लटकते भाग को जाँघों पर से ले जाकर कसना या खोंसना। सँवारना] सँवारे, स्वाँग भरे। उ० जस काछिअ तस चाहिअ नाचा। (मा० २।१२७।४) काछें–दे० 'काछे'। उ० १ तापस बेष बिराजत काछें। (मा० २।१२३।१)

काछे (१)–१ सँवार कर पहने हुए, बनाये हुए, २ सँवारे, बनाया। उ० १ चौतनी चोलना काछे, सखि! सोहैं आगे पाछे। (गी० १।७२)

काछे (२)–(सं० कक्ष)–समीप, पास।

काज–(सं० कार्य)–१ कार, काम, कृत्य, कार्य, २ पेशा, रोजगार, धंधा, ३ प्रयोजन, उद्देश्य, मतलब, ४ विवाह, ५ मृतक के लिए किया जानेवाला मृतकर्म। उ० ५ दसरथ ते दसगुन भगति, सहित तासु करि काज। (प्र० ३।३।६) काजहि–काम के। उ० सिरधरि मुनिबर बचन सबु निज निज काजहिं लाग। (मा० २।६)

काजा–दे० 'काज'। उ० १ करत रामहित मंगल काजा। (मा० २।७।१)

काजु दे० 'काज'। उ० १ अनमगल मल काजु बिचारा। (मा० २।५।४)

काजू–दे० 'काज'। उ० १ जौं बिधि कुसल निबाहै काजू। (मा० २।१०।२)

काटइ–(सं० कर्तन)–१ काटे, अलग करे, २ काट डालता है, काटता है। उ० २ काटइ निज कर सकल सरीरा। (मा० ६।२३।५) काटत–१ काटता है, २ काटते समय, काटने के बाद तुरत। उ० २ काटत हीं पुनि भए नवीने। (मा० ६।९२।६) काटा–'काटना' का भूत काल, काट डाला। उ० पालव बैठि पेड़ु एहिं काटा। (मा० २।४७।३) काटि–काटकर, नष्ट कर। उ० पेड़ काटि तैं पालव सींचा। (मा० २।१६१।४) काटिअ–१ काटकर, २ काटे, काटे। उ० २ काटिअ तासु जीभ जो बसाई। (मा० १।६४।२) काटियत–१ काटता, २ काटते। उ० १ रूँधिबे को सोइ सुरतरु काटियत है। (क० ७।११) काटिये–नष्ट कीजिए, कर्त्तन कीजिए, 'काटना' का आज्ञा सूचक आदरार्थ रूप। उ० थौ काटिये न, नाथ! बिषहू को रुख लाइकै। (क० ७।६१) काटु–१ काटा, २ काटना। उ० १ मारु काटु धुनि बोलहिं नाची। (मा० ६।४२।१) काटें–काटने से। उ० काटें सीस कि होइअ सूरा। (मा० ६।२१।२) काट–१ काटा, काट डाला, २ नष्ट किया ३ काटने पर, नष्ट करने पर। उ० ३ छन महुँ प्रभु के सायकन्हि काटे बिकट पिसाच। (मा० ६।६८) काटेसि–काटा, काट लिया। उ० काटेसि दसन नासिका काना। (मा० ६।६६।३) काटेहिं–१ काटने, काटने पर, २ काटें, काट डालें। उ० १ काटेहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच। (मा० ६।५८) काटैं–१ काटते हैं, २ काटने। उ० २ श्रवन नासिका काटैं लागे। (मा० २।५४।२) काटै–दे० 'काटइ'। उ० १ जौं सपनें सिर काटै कोई। (मा० १।११८।१)

काठ–(सं० काष्ठ)–१ लकड़ी, पेड़ का कोई भाग, २ बंधन, लकड़ी की बेड़ी। उ० १ पाहन ते न काठ कठिनाई। (मा० २।१००।३)

काढ़इ–(सं० कर्षण>काढ़ना–१ निकालना, २ खींचना, ३ लकड़ी, पत्थर या कपड़े पर चित्रकारी करना, ४ ऋण लेना) १ निकालता है, खींचता है, २ निकालने, निकालने के लिए। काढ़त–१ निकाल रहा है, २ निकालते हुए। उ० १ प्रति उत्तर सढ़सिन्ह मनहुँ काढ़त भट दससीस। (मा०६।२३८) मु० काढ़त दंत–दाँत निकालता है, विनय करता है, घिघियाता है। उ० साका सई सठ संकट कोटिक, काढ़त दंत, करत हहा है। (क०७।३१) काढ़न–१ काढ़ने, निकालने, लेने। उ० ज्यों ज्यों सुकृत सुभट कलि भूपहि निदरि लगे बहि काढ़न। (वि० २१) काढ़हिं–१ निकालते हैं, २ लेते हैं, ३ बनाते हैं। उ० १ मथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं। (मा० ७।१२० क) काढ़ा–१ ऋण लिया था, ऋण लिया, २ निकाला था, निकाला। उ० १ सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा। (मा० १।२७६।२) काढ़ि–१ निकालकर, २ लेकर, ३ बनाकर, चित्रकारी करके। उ० १ निजकर नयन काढ़ि चह दीखा। (मा० ७।४७।२) काढ़िय–१ निकाल डालिए, २ बनाइए, ३ लीजिए। उ० १ मिहिर राज-वाहन तुरत काढ़िय मिटइ कलेस। (दो० ११२) काढ़ीं–१ निकाली, २ लीं, ३ बनायीं। उ० ३ सुर प्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ीं। (मा० १।२८८।३) काढ़ीं–'काढ़ी' का बहुवचन। काढ़े–१ निकाले, निकालने पर, २ बनाए, चित्रित किये। उ० १ मीनु दीन जनु जल तें काढ़े। (मा० २।७०।२) काढ़ेसि–१ निकाली, २ ली, ३ बनाई। उ० १ काढ़ेसि परम कराल कृपाना। (मा० ३।२९।११) काढ़ो–१ निकाला, २ निकालो, ३ लो,

४ स्त्री, ५ बनाओ। उ० १ सब असबाब डाढ़ो, मैं न काढ़ो तैं न काढ़ो। (क० ५।१२) काढ़्यो-१ निकाला, २ लिया, ३ बनाया। उ०१ रोपि बान काढ़्यो न दलैया दस सीस को। (क० ६।२२)

कातर-(सं०)-१ डरपोक, कादर, कायर, २ आर्त, कष्ट से भरा हुआ, दुखित, ३ व्याकुल, अधीर। कातरि-'कातर' का स्त्रीलिंग। दे० 'कातर'। उ० ३ लखि सनेह कातरि महतारी। (मा० २।६६।१)

कातिबो-(सं० कर्तन)-कातना, रुई से सूत कातना। उ० तुलसी लोग रिझाइबो करषि कातिबो नान्ह। (दो० ४६२)

काते-(सं० क + तस्)-किससे, किस कारण से। उ० स्वारथहि प्रिय स्वारथ सो काते, कौन बेद बखानई। (वि० १३५)

कादर-दे० 'कातर'। उ० १ कादर मन कहुँ एक अधारा। (मा० ५।५१।२)

कान (१)-(सं० कर्ण)-श्रवणेंद्रिय, वह इंद्रिय जिससे सुना जाय। उ० कान मूँदि कर रद गहि जीहा। (मा० २।४८।४) मु० कान उठाएँ-आहट लेते, सुनने के लिए तैयार। उ० चकित बिलोकत कान उठाएँ। (मा० १।१५६।४) कान दिए-कान लगाकर, ध्यान देकर। उ० सुनु कान दिए नित। (क० ७।२६) कान नहिं करिअ-ध्यान न देना, न सुनना। उ० बालक बचनु करिअ नहिं काना। कानन (१)-'कान' का बहुवचन, कानों। कानन्हि-कानों में। उ० कानन्हि कनकफूल छबि देहीं। (मा० १।२१६।४) काने (१)-कान में। उ० काने कनक तरीवन, बेसरि सोहइ हो। (रा० ११)

कान (२)-(सं० काण)-काना, जिसकी एक ही आँख ठीक हो। काने (२)-(सं० काण)-काने लोग, एक आँख वाले। उ० काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि। (मा० २।१४)

कान (३)-(?)-१ लोकलज्जा, मर्यादा का ध्यान, २ शपथ।

कानन (२)-(सं०)-वन, जंगल। उ० कानन बिचित्र, बारी बिसाल। (वि० २३) काननचारी-वन में विचरने वाले, जंगल में घूमनेवाले। उ० धन्य बिहग मृग काननचारी। (मा० २।१३६।१) कानननहि-वन में, वन को। उ० सहित समाज काननहिं आयउ। (मा० २।३१६।१)

काना (१)-(सं० कर्ण)-कान, श्रवणेंद्रिय। उ० पर अघ सुनहि सहस दस काना। (मा० १।४।२)

काना (२)-(सं० काण)-काना, एक आँख का।

कानि (१)-(?)-१ लोक लज्जा, मर्यादा का ध्यान, २ संकोच, दबाव, लेहाज। उ० २ संपक भयकाह आनि जानकीस मानै कानि। (ह० १२)

कानि (२)-(सं० काण)-एक आँखवाली, कानी।

कानि (३)-(सं० खानि) उत्पत्ति स्थान, जहाँ ढेर हो, समूह।

कानि (४)-(?)-बहाना।

कानी-दे० कानि (१), कानि (२), कानि (३), कानि (४)।

कान्ह-(सं० कृष्ण)-कृष्ण। उ० मधुकर! कान्ह कहा ते न होहीं। (कृ० ४१)

काम (१)-(सं०)-१ इच्छा, मनोरथ, २ कामदेव, प्रेम तथा वासना आदि के देवता जिन्हें शंकर ने भस्म कर दिया था। ३ भोग विलास, वासना, ४ सुंदर, ५ वीर्य, ६ चतुर्वर्ग या चार पदार्थों में से एक। उ० १ करि कृपा हरिय भ्रमफंदकाम। (वि० १४) २ तेपि काम बस भए बियोगी। (मा० १।८५।४) विशेष-काम को शंकर ने भस्म किया था अत शंकर को कामारि, कामरिपु आदि नामों से भी पुकारा जाता है। काम-दे० 'काम'। उ० ३ तर्जन क्रोध लोभ मद काम। (मा० ३।११।७) काम अरि-काम के अरि, शिव। उ० नील तामरस स्याम काम अरि। (मा० ७।५१।१) कामप्रद-कामनाओं को प्रदान करनेवाला, इच्छा पूरी करनेवाला। उ० सकल कामप्रद तीरथराऊ। (मा० २।२०४।३) कामभूरुह-(सं० काम + भू + वृक्ष)-कामनाओं को देनेवाला वृक्ष, कल्पवृक्ष। उ० राम नाम महिमा करै काम भूरुह आको। (वि० १५२) काममदमोचन-कामदेव के मद का मोचन करनेवाले शिव, महादेव। उ० काममदमोचन, तामरस लोचन वामदेव भजे भाव गम्य। (वि० १२) कामरिपु-काम के शत्रु महादेव। उ० देहु कामरिपु रामचरन-रति तुलसीदास कहँ कृपानिधान। (वि० ३) कामरूप-(सं)-१ इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला, मायावी, २ कामदेव का स्वरूप। उ० १ कामरूप केहि कारन आया। (मा० ५।४३।३) कामसुरभि-दे० 'कामधेनु'। कामहि-कामदेव को। उ० कामहि बोलि कीन्ह सनमाना। (मा० १।१२५।३) कामारि-(सं० काम + अरि) महादेव, शिव। उ० सोइ राम कामारि प्रिय अवधपति सर्वदा दास तुलसी त्रासनिधि वहित्र। (वि० ५०) कामो-काम भी। उ० सकुचत समुझि नाम-महिमा मद लोभ मोह कोह कामो। (वि० २२८)

काम (२)-(सं० कर्म)-काम, कर्म, कार, धंधा। मु० काम आयो-१ काम में आया, २ सहारा दिया, ३ लड़ाई में मारा गया। उ० २ आयो सोई काम, पै करेजो कसकत है। (क० ६।१६) काम-काज-(सं० कर्म + कार्य)-कार-बार, काम धंधा। उ० पाल्यो नाय सब सो सो भयो काम-काज को। (क० ७।१३)

कामतरु-(सं०)-दे० 'कल्पवृक्ष'। उ० सुरसरि निकट सोहा बनी अवनि सोहै, रामरमनी को बट कलि कामतरु है। (क० ७।१३६)

कामता-(सं० कामद)-१ चित्रकूट के पास का एक गाँव, २ चित्रकूट पर्वत का एक भाग जिसे कामतानाथ पर्वत भी कहते हैं। उ० २ कामदमन कामता-कल्पतरु सो जुग-जुग जागत जगतीतलु। (वि० २४) विशेष-कामतानाथ पर्वत सभी मनोरथों का पूरा करनेवाला समझा जाता है।

कामद-(सं०)-कामनाओं को पूरा करनेवाला। मनचाही वस्तु देनेवाला। उ० कामद भे गिरि रामप्रसादा। (मा० २।२७६।१) कामदगाइ-(सं० कामद + गो)-दे० 'कामधेनु'। उ० रामकथा कलि कामदगाइ। (मा० १।३१।४) कामदगिरि-(सं०)-चित्रकूट पर्वत। इसे सभी कामनाओं

काको–१ किसका, २ किसको। उ० १ प्रतीति मानि तुलसी विचारि काको थरु है ? (क० ७।१३६)

काखासोती–(सं० कक्ष+स्रोत्र)–दुपट्टा डालने का एक ढंग जिसमें दुपट्टे को बाएँ कंधे और पीठ पर से ले जाकर दाहिनी बगल के नीचे से निकालते हैं फिर बाएँ कंधे पर डाल लेते हैं। जनेऊ की तरह दुपट्टा डालने का एक ढंग। उ० पिअर उपरना काखासोती। (मा० १।३२७।४)

काग–दे० 'काक'। उ० १ तुरत भयउँ मैं काग तब, पुनि मुनि पद सिरु नाइ। (मा० ७।११२ क)

कागद–(अर० कागज़)–कागज, लिखने के काम आनेवाला पत्र। यह कई चीज़ों को मिलाकर बनाया जाता है। उ० सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे। (मा० १।६।६)

कागर (१)–(अर० कागज़)–१ पत्र, पर, पंख, पक्ष, २ कागज, ३ सर्प की केंचुल। उ० १ कीर के कागर ज्यों नृपचीर विभूषन, उप्पम अंगनि पाई। (क० २।१)

कागर (२)–(सं० क+अग्र)–१ पानी के सामने की उठी भूमि, किनारा, २ मेंड़, डाँड़, ३ ओठ, अधर।

कागा–दे० 'काक'। उ० १ अति खल जे बिषई बग कागा। (मा० १।३८।२)

कागू–दे० 'काक'। उ० १ बैनतेय बलि जिमि चह कागू। (मा० १।२६७।१)

काचो–१ कच्चा, अपक्व, कच्चे ही, २ बुद्धिहीन, ३ शीशा भी काँच भी। उ० १ सहवासी काचो गिलहिं, पुरजन पाक प्रबीन। (दो० ४०४)

काछिअ–[काछना (सं० कक्ष)–कमर में लपेटे वस्त्र के लटकते भाग को जंघा पर से ले जाकर कसना या खोसना। सँवारना] सँवारे, स्वाँग भरे। उ० जस काछिअ तस चाहिअ नाचा। (मा० २।१२७।४) काछेँ–दे० 'काछे'। उ० १ तापस बेष बिराजत काछेँ। (मा० २।१२३।१) काछे (१)–१ सँवार कर पहने हुए, बनाये हुए, २ सँवारे, बनाया। उ० १ चौतनी चोलना काछे, सखि! सोहैं आगे पाछे। (गी० १।७२)

काछे (२)–(सं० कक्ष)–समीप, पास।

काज–(सं० कार्य)–१ कार, काम, कृत्य, कार्य, २ पेशा, रोजगार, धंधा, ३ प्रयोजन, उद्देश्य, मतलब, ४ विवाह, ५ मृतक के लिए किया जानेवाला प्रेतकर्म। उ० ५ दसरथ ते दसगुन भगति, सहित तासु करि काज। (प्र० ३।३।६) काजहि–काम के। उ० सिरधरि मुनिवर बचन सबु निज निज काजहिं लाग। (मा० २।६)

काजा–दे० 'काज'। उ० १ करत रामहित मंगल काजा। (मा० २।७।१)

काजु दे० 'काज'। उ० १ जनमंगल भल काजु बिचारा। (मा० २।२।४)

काजू–दे० 'काज'। उ० १ जौं बिधि कुसल निबाहै काजू। (मा० २।१०।२)

काटइ–(सं० कर्तन)–१ काटे, अलग करे २ काट डालता है, काटता है। उ० २ काटइ निज कर सकल सरीरा। (मा० ६।७६।२) काटत–१ काटता है, २ काटते समय, काटने के बाद तुरत। उ० २ काटत हीं पुनि भए नबीने। (मा० ६।९२।६) काटा–'काटना' का भूत काल, काट डाला। उ० पालव बैठि पेड़ु एहिं काटा। (मा० २।४७।१) काटि–काटकर, नष्ट कर। उ० पेड़ काटि तैं पालव सींचा। (मा० २।१६१।४) काटिअ–१ काटकर, २ काटे, काटे। उ० २ काटिअ तासु जीभ जो बसई। (मा० १।६४।२) काटियत–१ काटता, २ काटते। उ० १ रूँधिबे को सोइ सुरतरु काटियत है। (क० ७।११) काटिये–नष्ट कीजिए, कर्त्तन कीजिए 'काटना' का आज्ञासूचक आदरार्थ रूप। उ० औ काटिये न, नाथ! विषहू को रूख लाइकै। (क० ७।६१) काटु–१ काटा, २ काटना। उ० १ मारु काटु धुनि बोलहिं नाचीं। (मा० ६।८२।१) काटेँ–काटने से। उ० काटेँ सीस कि होइअ सूरा। (मा० ६।२६।५) काटे–१ काटा, काट डाला, २ नष्ट किया, ३ काटने पर, नष्ट करने पर। उ० १ पुनि मईं प्रभु के सायकन्हि काटे बिकट पिसाच। (मा० ६।६८) काटेसि–काटा, काट लिया। उ० काटेसि दसन नासिका काना। (मा० ६।६६।३) काटेहिं–१ काटने, काटने पर, २ काटें, काट डालें। उ० १ काटेहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच। (मा० ६।५८) काटै–१ काटते हैं, २ काटने। उ० २ श्रवन नासिका काटै लागे। (मा० ५।५४।२) काटै–दे० 'काटइ'। उ० १ जौं सपनें सिर काटै कोई। (मा० १।११८।१)

काठ–(सं० काष्ठ)–१ लकड़ी, पेड़ का कोई अंग, २ बंधन, लकड़ी की बेड़ी। उ० १ पाहन ते न काठ कठिनाई। (मा० २।१००।३)

काढ़इ–(सं० कर्षण>काढ़ना–१ निकालना, २ खींचना ३ लकड़ी, पत्थर या कपड़े पर चित्रकारी करना, ४ ऋण लेना) १ निकालता है, खींचता है, २ निकालने निकालने के लिए। काढ़त–१ निकाल रहा है, २ निकालते हुए। उ० १ प्रति उत्तर सढ़सिन्ह मनहुँ काढ़त भट दससीस। (मा० ६।२३ख) मु० काढ़त दंत–दाँत निकालता है, विनय करता है, घिघियाता है। उ० ताको सहै सठ संकट कोटिक, काढ़त दंत, करत हहा है। (क० ७।३१) काढ़न–१ काढ़ने, निकालने, खेने। उ० ज्यों ज्यों बुड़त सुमन कनि मूरहि निदरि लगे बहि काढ़न। (वि० २१) काढ़हि–१ निकालते हैं, २ खेते हैं, ३ बनाते हैं। उ० १ कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहि। (मा० ७।१२० क) काढ़ा–१ ऋण लिया था, ऋण लिया, २ निकाला था, निकाला। उ० १ सो जनु हमरहि माथे काढ़ा। (मा० १।२७६।२) काढ़ि–१ निकालकर, २ लेकर, ३ बनाकर, चित्रकारी करके। उ० १ निठुर नयन काढ़ि चह दीखा। (मा० २।४७।२) काढ़िय–१ निकाल डालिए, २ बनाइए, ३ लीजिए। उ० १ बिहँग राज-बाहन तुरत काढ़िय मिटइ कलेस। (दो० २११) काढ़ी–१ निकाली, २ ली, ३ बनायी। उ० ३ सुर प्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ीं। (मा० १।२८८।३) काढ़ी–'काढ़ीं' का एकवचन। काढ़े–१ निकाले, निकालने पर, २ बनाए, चित्रित किये। उ० १ सीतु सीत जनु अप ते काढ़े। (मा० २।००।२) काढ़ेसि–१ निकाली, २ ली, ३ बनाई। उ० १ काढ़ेसि परम कराल कृपाना। (मा० ३।२१।११) काढ़ो–१ निकाला, २ निकाला, ३ ली,

४ खी, ५ बनायो। उ० १ सब असमाय काढ़ो, मैं न काढ़ो तैं न काढ़ो। (क० ५।१२) काढ़यो-१ निकाला, २ लिया, ३ बनाया। उ०१ रोपि बान काढ़यो न दलैया दस सीस को। (क० ६।२२)

कातर-(सं०)-१ डरपोक, कादर, कायर, २ आर्त, कष्ट से भरा हुआ, दु:खित, ३ व्याकुल, अधीर। कातरि-'कातर' का स्त्रीलिंग। दे० 'कातर'। उ० ३ लखि सनेह कातरि महतारी। (मा० २।६६।१)

कातिबो-(सं० कर्तन)-कातना, रुई से सूत कातना। उ० तुलसी लोग रिझाइबो करषि कातिबो नाह। (दो० ४६२)

काते-(सं० क + तस्)-किससे, किस कारण से। उ० स्वारथहि प्रिय स्वारथ सो काते, कौन बेद बखानई। (वि० १३५)

कादर-दे० 'कातर'। उ० १ कादर मन कहुँ एक अधारा। (मा० ५।५१।२)

कान (१)-(सं० कर्ण)-श्रवणेंद्रिय, वह इंद्रिय जिससे सुना जाय। उ० कान मूदिकर रद गहि जीहा। (मा० २।४८।४) मु० कान उठाएँ-आहट लेते, सुनने के लिए तैयार। उ० चकित बिलोकत कान उठाएँ। (मा० १।१२६।४) कान दिए-कान लगाकर, ध्यान देकर। उ०सुनु कान दिए नित। (क० ७।२१) कान नहिं करिअ-ध्यान न देना, न सुनना। उ० बालक बचनु करिअ नहिं काना। कानन (१)-'कान' का बहुवचन, कानो। काननि्ह-कानों में। उ० कर्नन्हि कनकफूल छबि देहीं। (मा० १।२११६।४) काने (१)-कान में। उ० काने कनक तरीवन, बेसरि सोहइ हो। (रा० ११)

कान (२)-(सं० काण)-काना, जिसकी एक ही आँख ठीक हो। काने (२)-(सं० काण)-काने लोग, एक आँख वाले। उ० काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि। (मा० २।१४)

काम (२)-(?)-१ लोकलज्जा, मर्यादा का ध्यान २ शपथ।

कानन (२)-(सं०)-वन, जंगल। उ० कानन बिचित्र, बारी बिसाल। (वि० २३) काननचारी-वन में विचरने वाले, जंगल में घूमनेवाले। उ० धन्य बिहग मृग कानन चारी। (मा० २।१३६।१) काननहि-वन में, वन को। उ० सहित समाज काननहि आयउ। (मा० २।६११।१)

काना (१)-(सं० कर्ण)-कान, श्रवणेंद्रिय। उ० पर अघ सुनहिं सहस दस काना। (मा० १।४।२)

काना (२)-(सं० काण)-कान, एक आँख का।

कानि (१)-(?)-१ लोक लज्जा, मर्यादा का ध्यान, २ संकोच, दबाव लेहाज। उ० २ सबस सबराई मानि जानकीस मानी कानि। (ह० १२)

कानि (२)-(सं० काण)-एक आँखवाली, कानी।

कानि (३)-(सं० खानि) उत्पत्ति स्थान, जहाँ ढेर हो, समूह।

कानि (४)-(?)-बहाना।

कानी-दे० कानि (१), कानि (२), कानि (३), कानि (४)।

कान्ह-(सं० कृष्ण)-कृष्ण। उ० मधुकर! कान्ह कहा ते न होहीं। (कृ० ४१)

काम (१)-(सं०)-१ इच्छा, मनोरथ, २ कामदेव, प्रेम तथा वासना आदि के देवता जिन्हें शंकर ने भस्म कर दिया था। ३ भोग विलास, वासना, ४ सुंदर, ५ वीर्य, ६ चतुर्वर्ग या चार पदार्थों में से एक। उ० १ करि कृपा हरिय भ्रमफंदकाम। (वि० १४) २ तेपि काम बस भए बियोगी। (मा० १।८५।४) विशेष-काम को शंकर ने भस्म किया था अतः शंकर को कामारि, काम रिपु आदि नामों से भी पुकारा जाता है। काम -दे० 'काम'। उ० ३ तर्जन क्रोध लोभ मद काम'। (मा० ३।११।७) काम अरि-काम के अरि, शिव। उ० नील तामरस स्याम काम अरि। (मा० ७।५१।१) कामप्रद-कामनाओं को प्रदान करनेवाला, इच्छा पूरी करनेवाला। उ० सकल कामप्रद तीरथराऊ। (मा० २।२०४।३) कामभूरुह-(सं० काम + भू + वृक्ष)-कामनाओं को देनेवाला वृक्ष, कल्पवृक्ष। उ० राम नाम-महिमा करै काम भूरुह आको। (वि० १५२) काममदमोचन-कामदेव के मद का मोचन करनेवाले शिव, महादेव। उ० काममदमोचन, तामरस लोचन बामदेव भजे भाव गम्य। (वि० १२) कामरिपु-काम के शत्रु महादेव। उ० देहु कामरिपु रामचरन-रति तुलसीदास कहँ कृपानिधान। (वि० ३) कामरूप-(सं)-१ इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला, मायावी, २ कामदेव का स्वरूप। उ० १ कामरूप केहि कारन आया। (मा० ४।४३।३) कामसुरभि-दे० 'कामधेनु'। कामहि-कामदेव को। उ० कामहि बोलि कीन्ह सनमाना। (मा० १।१२५।३) कामारि-(सं० काम + अरि) महादेव, शिव। उ० मोह राम कामारि प्रिय अवधपति सर्वदा दास तुलसी त्रासनिधि वहित्र। (वि० ५०) कामो-काम भी। उ० सकुचत समुझि नाम-महिमा मद लोभ मोह कोह कामो। (वि० २२८)

काम (२)-(सं० कर्म)-कार्य, कर्म, कार, धंधा। मु० काम आयो-१ काम में आया, २ सहारा दिया, ३ लड़ाई में मारा गया। उ० २ आयो सोई काम, पै करैगो बसफल है। (क०६।१६) काम-काज-(सं० कर्म + कार्य)-कार-बार, काम धंधा। उ० पाल्यो नाथ सब मो सो भयो काम-काज को। (क० ७।१३)

कामतरु-(सं०)-दे० 'कल्पवृक्ष'। उ० सुरसरि निकट सोहा बनी अवनि सोहै, रामरवनी को बट कलि कामतरु है। (क० ७।१३६)

कामता-(सं० कामद)-१ चित्रकूट के पास का एक गाँव, २ चित्रकूट पर्वत का एक भाग जिसे कामतानाथ पर्वत भी कहते हैं। उ० २ कामदमन कामता-कलपतरु सो जुग-जुग जागत जगतीतलु। (वि० २४) विशेष-कामतानाथ पर्वत सभी मनोरथों को पूरा करनेवाला समझा जाता है।

कामद-(सं०)-कामनाओं को पूरा करनेवाला। मनचाही वस्तु देनेवाला। उ० कामद भे गिरि रामप्रसादा। (मा० २।२७१।१) कामदगाइ-(सं० कामद + गो)-दे० 'कामधेनु'। उ० रामकथा कलि कामदगाई। (मा० १।३१।७) कामदगिरि-(सं०)-चित्रकूट पर्वत। इसे सभी कामनाओं

को पूरा करनेवाला समझा जाता है। कामदमणि–(स०)–१ चिंतामणि, इच्छानुकूल फल देनेवाला रत्न। २ मनानुसार फल देनेवालों के मणि या शिरोभूषण, वांछित फल देनेवाला में श्रेष्ठ। कामदमन–दे० 'कामदमणि'। उ० दे० 'कामता'। कामदमनि–दे० 'कामदमणि'।

कामदव–कामाग्नि, काम की उष्णता।

कामदुहा–(सं० काम+दोहन)–दे० 'कामधेनु'। उ० धेनु अलंकृत कामदुहा सी। (मा० १।३२६।२) कामदुहागो–दे० 'कामधेनु'।

कामदेव–१ अनग, मदन। स्त्री पुरुष सयोग की प्रेरणा करनेवाला एक पौराणिक देवता। २ वीर्य, ३ सभोग या स्त्री-प्रसग की इच्छा। विशेष–कामदेव एक पौराणिक देवता हैं जिनकी स्त्री रति, साथी वसत, वाहन कोकिल, अस्त्र फूलों का धनुष-बाण तथा ध्वजा मछली से अलंकृत है। सती के परलोकवास के बाद शिव ने विवाह न करने की सोच समाधि लगाई और उधर तारकासुर को वर मिला कि शिव के पुत्र से ही केवल उसकी मृत्यु होगी। अत में देवताओं ने कामदेव से शिव की समाधि भंग करने के लिए प्रार्थना की। कामदेव ने प्रयास किया और अत में शिव के तीसरे नेत्र के खुलने से वह भस्म हो गया। इस पर उनकी स्त्री रति रोने लगीं, जिसे देख शिव ने द्रवित होकर कहा कि कामदेव बिना शरीर के भी जीवित रहेंगे (इसी कारण उनका अनग आदि नाम है) और द्वापर में कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के घर उनका जन्म होगा। इसी कारण प्रद्युम्न पुत्र अनिरुद्ध कामदेव के अवतार कहे जाते है।

कामधुक–(सं० काम+दोहन+क)–इच्छानुसार फल देनेवाला। कामधुक-गो–इच्छानुसार कभी भी दूही जानेवाली गाय, कामधेनु। कामधुरधेनु–दे० 'कामधेनु'। उ० भक्ति प्रिय भक्तजन-कामधुकधेनु हरि हरन विकट विपति भारी। (वि० ४६)

कामधेनु–(सं०) १ एक गाय जो पुराणानुसार समुद्र-मथन के फलस्वरूप निकले १४ रत्न में से एक है। इसकी कई विशेषताएँ कही जाती हैं जैसे यह अत्यंत सुंदरी है, इसे जब इच्छा हो दूहा जा सकता है तथा यह जो कुछ भी माँगा जाय देती है। २ वशिष्ठ की एक गाय, जिसके कारण उनसे विश्वामित्र से युद्ध हुआ था। ३ दानार्थ सोने की बनी हुई छोटी सी गाय। उ० १ कल्यान अखिलप्रद कामधेनु। (वि० १२)

कामना–(सं०)–इच्छा, मनोरथ। उ० को करि कोटिक कामना पूजै बहु देव ? (वि० १०७)

कामरि–(सं० कम्बल)–कमरी, एक ऊनी मोटा वस्त्र जो ओढ़ने के काम आता है। उ० तुलसी त्यों त्यों होइगी गरुई ज्यों ज्यों कामरि भीजै। (कृ० ४६)

कामरी–दे० 'कामरि'। उ० काम तु आयै कामरी, का लै करै कुमाच। (दो० २७२)

कामा–दे० 'काम'। उ० ३ जिमि हरिजन हियँ उपज न कामा। (मा० ४।१२।२)

कामारी–दे० 'कामारि'।

कामिनि–दे० 'कामिनी'।

कामिनी–(सं०)–१ काम की इच्छा रखनेवाली स्त्री, २ स्त्री, सुंदरी। उ० २ यक्ष गधर्व मुनि किन्नरोरग दनुज मनुज मज्जहिं सुकृतपुंज युत कामिनी। (वि० १८)

कामिन्ह–कामियों, कामी का बहुवचन। उ० कामिन्ह कै दीनता देखाई। (मा० ३।३६।१) कामिहि–१ कामी को, २ कामी से। उ० २ क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा। (मा० ५।५८।२) कामी–(सं० कामिन्)–१ कामना रखनेवाला, इच्छुक, २ विषयी, कामुक, ३ चकवा, ४ कबूतर ५ सारस, ६ चद्रमा, ७ विष्णु। उ० २ जे कामी लोलुप जग माहीं। (मा० १।१२५।४)

कामु–दे० काम (१), काम (२)। उ० काम (१) १ अब भा झूठ तुम्हार पन जारेउ कामु महेस। (मा० १।८६)

कामुक–(सं०)–कामी, विषयी।

काय–(सं०)–१ शरीर, देह, २ मूर्ति, ३ समुदाय, सघ ४ स्वभाव, लक्षण, ५ मूलधन, असल, ६ लक्ष्य उ० १ सठ सहि साँसति पति लहै, सुजन कलेस काय। (दो० ३१२)

कायर–(सं० कातर)–डरपोक, कादर, भीरु, असाहसी। उ० ते कायर कलिकाल विगोए। (मा० १।४३।४)

काया–दे० 'काय'। उ० जौं मोरें मन बच अरु काया। (मा० ६।५६।३)

कायिक–शरीर सबधी, शरीर से किया हुआ, शरीर का।

कारक–(सं०)–१ कर्ता, करनेवाला, २ व्याकरण के कर्ता कर्म तथा करण आदि कारक। उ० १ नृप हितकारक सचिव सयाना। (मा० १।१५४।१)

कारखी–(सं० कलुष)–१ कालिमा, स्याही २ कलक धब्बा। मु० मुँह कारखी लागै–बदनाम हो, कलक लगे उ० जानि जिय जोयो जो न लागै मुँह कारखी। (क० १।१५)

कारज–(सं० कार्य)–१ कार्य, काम, जो कारण से उत्पन्न हो, २ फल, परिणाम, ३ पच भूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, तथा आकाश)। उ० १ गृहकारज नाना जंजाला। (मा० १।३८।४)

कारजु–दे० 'कारज'। उ० १ कारन तें कारजु कठिन, होइ दोसु नहिं मोर। (मा० २।१७६)

कारण–(सं०)–१, जिसके बिना कार्य की सिद्धि न हो, हेतु, सबब वजह। २ हेतु, अर्थ, लिए, वास्ते, ३ आदि, मूल, बीज, ४ साधन, उपाय, ५ शिव, ६ विष्णु। कारणपर–कारणों से परे या कारणों के भी कारण। जिनके लिए स्वय किसी कारण की अपेक्षा न हो। उ० वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्। (मा० १।१। श्लोक० ६)

कारन–(सं० कारण)–दे० 'कारण'। उ० १ दे० 'कारजु'। २ निज गिरा पावनि करन कारन रामजसु तुलसी कह्यो। (मा० १।३६१। छं० १)

कारनी–१ प्रेरक, करानेवाला, २ भेदक, भेद करानेवाला।

कारनु–दे० 'कारन'। उ० १ कहु कारनु निज हरष कर पूछहिं सब मृदु बैन। (मा० १।२४८)

कारमन–दे० 'कार्मण'।

कारमनि-दे० 'कार्मण'। उ० जयति पर-जंत्रमंत्राभिचार ग्रसन, कारमनि-कूट-कृत्यादि-हंता। (वि० २६)
कारमुक-(सं० कार्मुक)-१ धनुष, चाप २ इंद्रधनुष, ३ योग का एक आसन। उ० १ तब प्रभु कोपि कारमुक लीन्हा। (मा० ६।१३।३)
कारा-(सं०)-१ बंधन, कैद, २ पीड़ा क्लेश।
कारागृह-(सं०)-क़ैदखाना, जेल, बंदीगृह। उ० नि काज राज बिहाय नृपइव स्वप्न-कारागृह परयो। (वि० १३६)
कारिख-(सं० कलुष)-काजली, कालिख, कालिमा, दोष, कलंक। उ० कहँगो मुख की समरसरि कालि कारिख धोइ। (गी० ५।५)
कारिणि-(सं० कारिणी)-करनेवाली। कारिणीं-करनेवाली को। उ० उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्। (मा० १।१।श्लो०५)
कारिनि-दे० 'कारिणि'। उ० भव भव विभव पराभव कारिनि। (मा० १।२३५।४)
कारी (१)-(सं० कारिन्)-करनेवाला। उ० मधुर मनोहर मंगलकारी। (मा० १।२६।२)
कारी (२)-(सं० काल)-काली, श्याम, काले रंगवाली।
कारी (३)-(फा०)-१ गहरा, २ घातक, मर्मभेदी।
कारुणिक-(सं०)-करुणा करनेवाले, कृपालु, दयालु।
कारुणीक-दे० 'कारुणिक'।
कारुनिक-दे० 'कारुणिक'।
कारुनीक-दे० 'कारुणिक'। उ० कारुनीक दिनकर कुल केतू। (मा० ६।३७।१)
कारुण्य-(सं०)-करुणा का भाव, दया।
कारुन्य-दे० 'कारुण्य'। उ० नीलकंठ कारुन्य सिंधु हर दीन बंधु दिनदानि हैं। (गी० १।७८)
कारे-(सं० काल)-काले, काले रंग वाले। उ० महाबीर निसिचर सब कारे। (मा० ६।४६।४)
कार्तिकेय-(सं०)-महादेव के ज्येष्ठ पुत्र। चंद्रमा की स्त्री कृत्तिका के दूध से पाले जाने के कारण ये कार्तिकेय कह लाए। इन्होंने तारकासुर को मारा था। स्कंद, षडानन, महासेन, कुमार, गुह, गंगा-पुत्र आदि इनके बहुत से नाम हैं।
कार्मण-(सं०)-जंत्र मंत्र द्वारा मार डालना, मंत्र-तंत्र आदि के प्रयोग। मूल कर्म जिनमें मंत्र और औषधि आदि से मारण, मोहन, उच्चाटन आदि किया जाता है।
कार्मन-दे० 'कार्मण'।
कार्मुक-(सं०)-१ धनुष, २ इंद्रधनुष, ३ बाँस, वेणु, ४ काम में दक्ष।
कार्य-(सं०)-१ काम, काज, २ प्रयोजन, हेतु, ३ आरो ग्यता, ४ परिणाम, फल।
काल-दे० 'काल'। उ० २, कराल महाकाल काल कृपाल। (मा० ७।१०८।श्लो०२) काल (१)-(सं०)-१ वक्त, समय, अवसर, २ अंतिम काल, मृत्यु ३ यमराज, ४ काले रंग का, काला, ५ अकाल, दुर्भिक्ष, ६ शिव का एक नाम। उ० १ काल सुभाउ करम बरिआई। (मा० १।७।१) १ तथा २ काल न देखत कालबस, बीस बिलोचन अंधु। (प्र० ५।३।६) कालउ-१ काल भी, मृत्यु या यमराज भी, २ काल को भी। उ० १ कालउ तुम्ह पद नाइहि सीसा। (मा० ६।६६।१) कालऊ-दे० 'कालउ'। उ० २ कालऊ करालता बड़ाई जीतो बावनो। (क० ५।६) कालकलि-कलिकाल, कलियुग। उ० काल कलि-पाप-संताप-संकुल-सदा प्रनत तुलसीदास-तात-माता। (वि० २८) काल-जोग (सं० काल+योग)-संयोग से, समय के फेर से। उ० सु हित सुखद गुन-जुत सदा काल-जोग दुख-होय। (स० ७०७) कालहि-१ समय को, २ काल को, मृत्यु को, यमराज को। मु० कालहि पाई-कुछ समय बीतने पर, कुछ दिन बाद। उ० १ भए निसाचर कालहि पाइ। (मा० १।१२३।४) कालहुँ-दे० 'कालहु'। कालहु-१ काल भी (क समय भी ख मृत्यु भी), २ 'काल' का भी (क समय का भी, ख मृत्यु का भी)। उ० २ ख भुवनेस्वर कालहु कर काला। (मा० ५।३६।१) कालहू-दे० 'कालहु'। उ० २ ख कबहूँ कह्यो न 'कालहू को काल कालिह है।' (क० ७।१२०) कालौ-१ काल भी, समय भी, २ मृत्यु भी।
काल (२)-(सं० कल्य)-आनेवाला या बीता हुआ दिन, कल।
कालकार्मुक-(सं०)-खर-दूषण का एक सेनापति जिसे राम ने मारा था।
कालकूट-(सं०)-एक प्रकार का अत्यंत भयंकर विष। यह एक पर्वतीय पौदे का गोंद होता है। हलाहल। उ० कालकूट मुख पयमुख नाहीं। (मा० १।२७७।१)
कालकेतु-(सं०)-एक राक्षस का नाम। उ० कालकेतु निसिचर तहँ आवा। (मा० १।१७०।२)
कालक्षेप-(सं० कालक्षेप)-समय बिताना, दिन काटना। उ० कालक्षेप केहि मिलि करहिं, तुलसी खग मृग मीन। (दो० ४०४)
कालनाथ-(सं०)-१ महादेव, शिव, २ काल भैरव, काशी में स्थित भैरव विशेष। उ० २ कालनाथ कोतवाल, दंड कारि दंडपानि, सभासद गनप से अमित अनूप हैं। (क० ७।१७१)
कालनिसा-(सं० कालनिशा)-१, दीवाली की रात, २ भयावनी रात, काल रात्रि। उ० २ कालनिसा सम निसि ससि भानू। (मा० ५।१५।१)
कालनेमि-(सं०)-१ एक राक्षस जो रावण का मामा था। यह पूर्व जन्म का इंद्र सभा में गानेवाला एक गंधर्व था। एक बार गाते समय दुर्वासा ऋषि की वाह-वाही न पाने पर इसने दुर्वासा को मूर्ख समझकर हँस दिया। इस पर क्रोधित होकर दुर्वासा ने इसे राक्षस होने का शाप दे दिया। गंधर्व बहुत दुखी होकर प्रार्थना करने लगा जिससे प्रभावित होकर दुर्वासा ने अंत में हनुमान द्वारा मारे जाने पर मुक्त होने का उसे वर दिया। लक्ष्मण की शक्ति लगने के बाद जब हनुमान संजीवनी लेने जा रहे थे तो इसने कपट वेष में उन्हें छलना चाहा था, पर हनुमान इस छल को जान गये और इसे मारकर अपना रास्ता लिया। २ एक दानव जिसने देवों को पराजित करके स्वर्ग पर अधिकार कर लिया था और अपने शरीर को चार

भागों में बाँटकर सब काम करता था। अंत में यह विष्णु के हाथ से मारा गया और दूसरे जन्म में कंस हुआ। उ० १ कालनेमि जिमि रावन राहू। (मा० १।७।३)

कालराति-(सं० कालरात्रि)-दे० 'कालनिसा'।

काला-दे० 'काल'।

कालाग्नि-(सं०)-प्रलय की आग, प्रलयकाल की आग। उ० यातुधानोद्धत क्रुद्ध-कालाग्निहर। (वि० २७)

कालि-(सं० कल्य)-१ बीता हुआ दिन, कल, २ आने वाला दिन, कल, ३ शीघ्र ही। उ० १ सबको भावतो ह्वै है मैं जो कह्यो कालि री। (क० १।१२) ३ खरदूषन मारीच ज्यों, नीच जाहिंगे कालि। (दो० १४५) कालिहि-१ कल ही, कल के दिन ही, २ जल्दी ही। कालिहु-कल भी। उ० ज्यों आजु कालिहु परहुँ जागन होहिंगे नेवते दिये। (गी० ५)

कालिका-(सं०)-चंडी, काली, एक देवी विशेष। उ० राम कथा कालिका कराला। (मा० १।४७।३) विशेष-शुंभ और निशुंभ के अत्याचारों से पीड़ित इंद्रादिक देवों की प्रार्थना पर एक मातंगी प्रकट हुई जिसके शरीर से काली का आविर्भाव हुआ। पहले इनका वर्ण काला था अत काली या कालिका कही गई तथा उग्र भयों से रक्षा करने के कारण उग्रतारा। सिर पर एक जटा होने के कारण एकजटा भी इनका नाम है। काली के साथ महाकाली, रुद्राणी, उग्रा आदि आठ योगिनियाँ भी हैं।

कालिमा-(सं० कालिमन्)-१ कालापन, २ कालिख, ३ अँधेरा, ४ कलंक, दोष, लांछन। उ० ४ तुलसी मैं सब भाँति आपने कुलहि कालिमा लाइ। (गी० ६।६)

काली (१)-(सं० कल्य)-दे० 'कालि'। उ० १ पुनि आउब एहि बेरिआँ काली। (मा० १।२३४।३)

काली (२)-(सं०)-१ दे० 'कालिका', २ पार्वती, ३ दस महाविद्याओं में से प्रथम, ४ अग्नि की सात जिह्वाओं में प्रथम।

काली (३)-(सं०काल)-१ काले रंगवाली, २ मेघों की घटा।

कालीन (१)-(अर० क़ालीन)-ऊन या सूत के मोटे तागों का बुना हुआ मोटा और भारी बिछावन। गलीचा।

कालीन (२)-(सं)-१ काल संबंधी, समय का, दिन का। २ पुराना, अधिक दिन का, दिनी।

कालीना-दे० २ 'कालीन'। उ० १ देखत बालक बहु कालीना। (मा० ७।३२।२)

कालीय-(सं० कालिय)-एक सर्प, जिसे कृष्ण ने वश में किया था। कालिया नाग। उ० कृष्ण करुनाभवन, दवन कालीय-खल। (वि० ५४)

कालु-दे० 'काल'।

कालू-दे० 'काल'।

काल्हि-(सं० कल्य)-दे० 'कालि'। उ० २ कबहूँ कह्यो न काल्हि को काल काल्हि है। (क० ७।१२०)

काव्य-१ वह रचना जिसे सुन या पढ़कर चित्त किसी रस या मनोवेग से पूर्ण हो। कविता। २ कविता की कोई पुस्तक, ३ दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य। उ० १: जयति निगमागम-व्याकरन करनलिपि काव्य-कौतुक कला-कोटि सिंधो। (वि० २८)

काशी-(सं०)-वरुणा और असी के बीच गंगा पर बसी हुई एक नगरी। वाराणसी, बनारस। इसे शिव का प्रधान स्थान तथा उनके त्रिशूल पर स्थित माना जाता है और ऐसा कहा जाता है कि काशी में मरनेवाले की अनायास मुक्ति हो जाती है। उ० काशीश कलिकल्मषपौघशमन। (मा० ६।१। श्लो० २) काशीपति-काशी के नाथ, शंकर, शिव। काशीश-काशी के ईश अर्थात् शंकर को, महादेव को। उ० दे० 'काशी'। काशीश-(सं०)-शिव, महादेव, काशी के ईश।

काष्ठ-(सं०)-काठ, लकड़ी। उ० कामिनि काष्ठ सिला पहचानत। (वै० २८)

कास-(सं० काश)-एक लंबी घास जो वर्षा ऋतु के अंत में फूलती है। इसके फूल सफेद होते हैं। उ० फूले कास सकल महि छाई। (मा० ४।१६।१) कासन-कास का, कासों का। उ० धा कासन आसन किए, सास न छाड़े उपास। (स० २३१)

कासी-दे० 'काशी'। उ० जाचिए गिरिजापति कासी। (वि० ६)

कासीस-दे० 'काशीश'। उ० गिरिजा मन मानस मराल, कासीस, मसान निवासी। (वि० ६)

कासु-(सं० कस्य)-किसको, किसका। उ० तुलसी अपनो आचरन भलो न लागत कासु। (दो० ३५५)

कासों-(सं क' + सह)-किससे, कौन से। उ० जाऊँ कहाँ, और कासों कहौं? (वि० २२७)

कासो-दे० कासों'।

काह-(सं० का)-१ क्या, २ किसको। उ० १ आगतहित धरि देह काह न कियो कोसलनाथ। (वि० २१७) २ बूझत कहहु काह हनुमाना। (मा० ७।२६।२)

काहली-(अर० काहिल)-सुस्त, आलसी। उ० लोभ मोह कुबेर कुपूत कूर काहली। (क० ७।२३)

काहा-(सं० क )-क्या, काह। उ० जाइ उतरु अब देहउँ काहा। (मा० १।५४।१)

काहि-(सं० क')-१ किसको, किसे, २ किस, ३ किससे, ४ किसी से, ५ कौन। उ० २ अपराध काहि पर कीजिअ रोसू। (मा० २।१७२।१)

काहीं (१)-(सं० कक्ष)-को, के लिए। उ० सो माया न दुखद मोहि काहीं। (मा० ७।७८।१)

काहीं (२)-(सं० कुह )-कहाँ।

काहीं (३)-दे० 'काहि'। उ० २ राज सभा सो भूपन काहीं। (मा० १।११०।३)

काही-दे० 'काहि'। उ० १ अस प्रभु छाड़ि भजिअ कहु काही। (मा० १।२००।३)

काहुँ-(सं० क )-कोई भी, किसी से भी। उ० सो बालि लखि काहुँ न पावा। (मा० १।१५३।४)

काहु-१ काई, कोई भी, किसी, किसी भी, २ किसी का ३ किसी से। उ० १ हरिपद विमुख लह्यो न काहु सुख सठ यह समुझि सबेरा। (वि० ८०) काहुक-किसी का। उ० अपने चलत न आजु लगि अनभल काहुक कीन्ह। (मा० २।२०) काहुहि-किसी को, किसी को भी। काहुहि-किसी का। उ० काहुहि बादि न देइअ दोसू। (मा० २।६३।१)

काहुँ–दे० 'काहु'। काहु–दे० 'काहु'। उ० १ लोकहुँ बेद बिदित सब काहू। (मा० १।७।४)
काहे–(स० कथं)–क्यों, किस लिए। उ० कृपासिंधु! जन दीन दुवारे दादिन पावत काहे? (वि० १४५)
किं–(स० किम्)–१ क्या, २ कौन सा।
किंकर–(स०) १ दास, सेवक, २ राक्षसों की एक जाति जिसे हनुमान ने प्रमदा वन को उजाड़ते समय मारा था। उ० १ जानि कृपाकर किंकर मोहू। (मा० १।८।२) किंकरि–दे० किंकरी। उ० अब मोहि आपनि किंकरि जानी। (मा० १।१२०।२) किंकरी–(स०)–दासी। उ० नाथ उमा मम प्रान सम गृह किंकरी करेहु। (मा० १।१०१)
किंकिणी–(स०)–१ छोटी घंटी, २ घुँघुरूदार करधनी, करधनी, कमरबंद।
किंकिन–दे० 'किंकिणी'।
किंकिनि–दे० 'किंकिणी'। उ० कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। (मा० १।२३०।१)
किंकिना–दे० 'किंकिणी'। उ० सुभग श्रीवत्स केयूर कंकन हार किंकिनी-रटनि कटितट रसाल। (वि० ५१)
किंचित–(स० किंचित्)–थोड़ा, कुछ, अल्प।
किंजल्क–(स०)–१ कमल की रज, पद्मकेशर, कमल के फूल का पराग, २ कमल के केसर की भाँति पीत वर्ण का, पीला। उ० २ किंजल्क बसन, किसोर मूरति, भूरि गुन करुनाकर। (कृ० २२)
किंनर–दे० 'किन्नर'। उ० अमर नाग किंनर दिसिपाला। (म० २।१३४।१)
किंवा–(स० किंवा)–या, वा, अथवा, या तो। उ० नृप अभिमान मोह बस किंवा। (मा० ६।२०।३)
किंशुक–(स०)–पलास, ढाक, टेसू। इसके पेड़ बड़े होते हैं और इसमें फाल्गुन में लाल फूल लगते हैं।
किंसुक–दे० 'किंशुक'। उ० कुसुमित किंसुक के तरु जैसे। (मा० ६।५४।१)
कि (१)–(स० किम्)–१ किस प्रकार, कैसे, २ क्या। उ० जगदया जहँ अवतरी सो पुरु बरनि कि जाय। (मा० १।१४) २ भरत की मातु को कि ऐसो चहियतु है? (क० २।४)
कि (२)–(स० किंवा) अथवा, या। उ० कहमाध्य पुनि होहिं कि नाहीं। (मा० १।१६७।१)
कि (३)–(फा०)–एक संयोजक जो कहना, देखना, सुनना, वर्णन करना आदि बहुत क्रियाओं के बाद उनके विषय वर्णन के पहिले आता है।
किआरीं–(स० केदार)–क्यारियाँ, खेत आदि में पानी देने के लिए पतली मेड़ों द्वारा बनाये गए छोटे-छोटे हिस्से। उ० महावृष्टि चलि फूटि किआरीं। (मा० ४।१५।४)
किछु–(किंचित्)–१ कुछ, थोड़ा, जरा २ कुछ और, दूसरा, अन्य, कोई दूसरा। उ० १ जो किछु कहब थोर सखि सोई। (मा० २।२२३।१) २ लागु कि किछु हरिभगति समाना।
कित–(सं० कुत्र)–१ कहाँ, २ किधर, किस ओर। उ० १ कुलिस कठोर कहाँ संकर धनु मृदु मूरति कित ए, री। (गी० १।७६) कितहूँ–किधर भी, किसी ओर भी। उ० हौं बलि जाउँ जाहु कितहूँ जनि मातु सिखावति स्यामहिं। (कृ० २)
कितक–(स० कियत)– कितना, किस कदर, किस परिमाण या मात्रा का।
कितना–(स० कियत्)–१ किस परिमाण, मात्रा या संख्या का, २ अधिक, बहुत ज्यादा।
कितिक–दे० 'कितक'। उ० कोटि-कला-कुसल कृपालु नत पाल, बलि, बातहू कितिक तिन तुलसी तनक की। (क० ७।२०)
कितो–(स० कियत्) कितना। उ० राजकुँवर-मूरति रचिबे को रुचि सुबिरचि स्रम कियो है कितो, री। (गी० १।७५)
किधौं–(?)–अथवा, या, या तो, न जाने। उ० जम कर धार किधौं बरिआता। (मा० १।९५।४)
किन (१)–(स० कस्य) किस का बहुवचन। कौन लोग। किसने। उ० सीस उघारन किन कहेउ, बरजि रहे प्रिय लोग। (दो० २५४)
किन (२)–(स० किण)–किसी वस्तु के चुभने या लगने का चिह्न। उ० ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे। (मा० ७।१३। छं० ४)
किन (३)–(स० किम्+न)–क्यों न, क्या नहीं। उ० कहहु करहु किन कोटि उपाया। (मा० २।३३।३)
किन्नर (१)–(स०)–एक प्रकार के देवता जिनका मुँह घोड़े की तरह माना गया है और जो संगीत शास्त्र में अत्यंत कुशल कहे गए हैं। इनके पूर्वज पुलस्त्य ऋषि थे। उ० यक्ष गंधर्व मुनि किन्नरोरग मनुज दनुज मज्जहिं सुकृत पुंज जुतकामिनी। (वि० १८)
किन्नर (२)–(?)–विवाद, दलील, तकरार।
किन्नरी–(स०)–१ किन्नर जाति की स्त्री, २ किंगरी, सारंगी, वीणा। उ० २ नाउ किन्नरी, तीर, असि लोह बिलोकहु सोइ। (दो० ३४८)
किमपि–(स० किम्+अपि)–कुछ भी, ज़रा भी। उ० हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं। (मा० १।११६२।१)
किमि–(स० किम्)–१ कैसे, किस प्रकार, २ क्यों। उ० १ बाजि बिरह गति कहि किमि जाती। (मा० २।१४३।४)
किम्–(स०)–१ क्या, २ कौन सा, ३ कुछ।
कियत–(स० कियत्)–कितना। उ० जेहि सुख सुख मानि लेत सुख सो समुझ कियत। (वि० १३२)
कियारी–दे० किआरीं'।
किरण–(स०)–किरन, सूर्य या चन्द्रमा आदि से आता हुआ प्रकाश, रश्मि, मरीचि। किरणैं–(स०)–किरणों से। उ० ते संसारपतंगघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवा। (मा० ७।१३१। श्लो० २)
किरणमाली–(स०)–सूर्य, रवि। उ० जनय अमोधि-कुमज, निशाचर निकर तिमिर घनघोर-खर किरणमाली। (वि० ४४)
किरन–दे० 'किरण'। उ० रामकथा ससि किरन समाना। (मा० १।४७।४) किरनकेतु–(स० किरण+केतु)–सूर्य, रवि। उ० जयति जय सत्रु-करि-केसरी सत्रुहन सत्रु-तम तुहिनहर-किरनकेतु। (वि० ४०) किरनमालिका–१ सूर्य, रवि, किरणों की माला धारण करनेवाला, २ किरणों का समूह। उ० १ ताप तिमिर-तरुनतरनि किरन मालिका। (वि० ११) किरनमाली–दे० 'किरणमाली'।

किरात-(सं०)-एक प्राचीन जंगली जाति, भील, निषाद तथा कोल आदि से मिलती-जुलती एक जाति। उ० कोल किरात कुरंग बिहंगा। (मा० २।१८८।४) किरातन्ह-१ किरातों ने, २ किरातों को। उ० १ यह सुधि कोल किरातन्ह पाई। (मा० २।१३५।१) किरातहि-किरात को। उ० लाम मोह मृगजूथ किरातहि। (७।३०।३) किरातिनि-किरातिनी किरात की स्त्री। उ० भूपा सजति बिलोकि मृगु मनहुँ किरातिनि फंद। (मा०२।२६) किराती-किरात की स्त्री, भीलनी। उ० देखि लागि मधु कुटिल किराती। (मा० १३।२) किरातो-१ किरात भी, २ किरात को भी। उ० २ महिमा उलट नाम की मुनि कियो किरातो। (वि० १५१)

किरिच-(सं० कृति)-१ टुकड़ा, कड़ी वस्तु का छोटा टुकड़ा, २ एक अस्त्र। उ० कोप किरिच बद्दले ते लेहीं। (मा० ७।१२१।६)

किरीट-(सं०)-एक प्रकार का प्राचीन मुकुट जो बाँधा जाता था। मुकुट। उ० नृप किरीट तरुनी तनु पाई। (मा० १।११।१)

किल-(सं०)-निश्चय, अवश्य। उ० कहत काल किल सकल बुध ताकर यह व्यवहार। (स० ४७२)

किलकत-(सं० किलकिला)-१ किल किल शब्द कर आनंद प्रकट करते हैं। २ किलकते हुए, आनंद के साथ शब्द करते हुए। उ० २ किलकत मोहि धरन जब धावहिं। (मा० ७।७७।४) किलकनि-किलकना, किलकारी मारना, प्रसन्नता से किलकिल शब्द करना। उ० किलकनि चित वनि भावति मोही। (मा० ७।७७।४) किलकानियाँ-दे० 'किलकनि'। उ० मनमोहनी तोतरी बोलनि, मुनिमन हरनि हँसनि किलकनियाँ। (गी० १।३१) किलकहिं-किलकारी मारते हैं, प्रसन्नतासूचक शब्द करते हैं। उ० देखि खेलौना किलकहीं। (गी० १।११) किलाकि-किलक कर, सानंद शब्द कर। उ० कूदि कूदि किलकि किलकि उठे-उठे रात। (कृ० २)

किलकिला-(सं०)-दे० 'किलकिला'।

किलकारी-१ प्रसन्नतासूचक शब्द, २ बंदर की आवाज़। उ० २ गगन निहारि, किलकारी भारी सुनि, हनुमान पहिचानि भये सानंद सचेत हैं। (क० ५।२६)

किलकिलाइ-किलकिलाकर, आनंद या क्रोधसूचक ध्वनि कर। उ० किलकिलाइ धाए बलवाना। (मा० ६।६५।२) किलकिलात-प्रसन्नता या क्रोधसूचक ध्वनि करते हैं, गरजते हैं। उ० किलकिलात, कसमसत, कोलाहल होत नीरनिधि तीर। (गी० ५।२२)

किलविषी-(सं० किल्विष)-१ पापी, २ रोगी, ३ अव गुणी। उ० १ मन मलीन, कलि किलविषी होत सुनत जासु कृत काज। (वि० १९१)

किलिकिला-१ हर्षध्वनि, २ बंदरों की आनंद या क्रोध सूचक ध्वनि। उ० २ सबद किलिकिला कपिन्ह सुनावा। (मा० ५।२८।१)

किल्विष-(सं०)-१ पाप, दोष, २ रोग।

किसलय-(सं०)-नया निकला पत्ता, कोमल नया पत्ता, अंकुर, कल्ला।

किशोर-(सं०)-१ लड़का, ११ से १५ वर्ष की अवस्था का लड़का, २ पुत्र, बेटा, लड़का, ३ नवयुवक। किशोरी-१ बालिका, किशोर का स्त्रीलिंग, २ कुमारी, अविवाहिता। दे० 'किशोर'।

किस-(सं० कस्य)-'कौन' का एक रूप जो उस विभक्ति लगाने के पूर्व प्राप्त होता है। जैसे किसने, किसका आदि। कौन।

किसब-(अर० कस्ब)-कारीगरी, परिश्रम से कुछ करना। उ० जानत न कूर कछु किसब कबार है। (क० ७।१७)

किसबी-कारीगर, परिश्रमी, मज़दूर। उ० किसबी, किसान कुल, बनिक, भिखारी, भाँट, चाकर, चपल, नट चोर चार चेटकी। (क० ७।९६)

किसलय-दे० 'किशलय'। उ० नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। (मा० ५।१५।१)

किसाना-(सं० कृषाण)-किसान, कृषक। उ० कृषी निरावहिं चतुर किसाना। (मा० ४।१५।४)

किसु-(सं० कस्य)-१ किसका, कौन व्यक्ति का, २ किसको, ३ किसी। उ० १ नारद कर उपदेसु सुनि कहहु बसेउ किसु गेह। (मा० १।७८)

किसू-दे० 'किसु'।

किसोर-दे० 'किशोर'। उ० १ स्यामल गौर किसोर बर सुंदर सुषमा ऐन। (मा० २।११६) किसोरहि-किशोर को, बच्चे को। उ० मनहुँ मत्त गजगन निरखि सिंघ किसोरहि चोप। (मा० १।२६७) किसोरी-दे० 'किशोरी'। उ० जय-जय गिरिराज किसोरी। (मा० १।२३५।२)

किसोरकु-(सं० किशोरक)-बच्चा, छोटा बालक, शिशु। उ० ससिहि चकोर किसोरकु जैसें। (मा० १।२६३।४)

किसोरा-दे० 'किशोर'। उ० १ कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा। (मा० १।२५८।२)

किहनी-(सं० कथन>प्रा० कहन)-किस्सा, कहानी, बात। उ० साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान। (दो० ५५४)

की (१)-(सं० कृत)-१ सम्बन्ध कारक का चिह्न, 'का' का स्त्रीलिंग रूप, २ से। उ० १. कासी की कदर्थना कराल कलिकाल की। (क० ७।१८२) २ दे० 'को'।

की (२)-(सं० किम्)-क्या।

की (३)-(सं० किंवा)-अथवा, या।

की (४)-(फ़ा० कि)-दे० 'कि (२)'।

कीच-(सं० कच्छ)-कीचड़, पंक, कर्दम। उ० बीच-बीच बिच मगन अस मीनहि सलिल सकोच। (मा० २।१५१) कीचहि-१ कीच से, कीच में, २ कीच का। उ० १ कीचहि मिलइ नीच जल संगा। (मा० १।७।५)

कीचा-दे० 'कीच'। उ० मृगमद चंदन कुंकुम कीचा। (मा० १।९४।४)

कीट (१)-(सं०)-१ कीड़ा-मकोड़ा, कृमि, बहुत छोटे-छोटे जीव, २ तुच्छ। उ० १ काह कीट बपुरे नर नारी। (मा० २।२६।२)

कीट (२)-(सं० किट्ट)-मैल, मल।

कीती-(सं० कीर्ति)-यश, ख्याति, नेकनामी। उ० जासु सकल मंगलमय कीती। (मा० २।१२।३)

कीदहुँ-(?)-किधौं, या, या तो। उ० कीदहुँ रानि कौसिलहि परिगा भोर हो। (रा० १२)

कीधौं-(?)-या तो, या। उ० काल की करालता, करम कठिनाई कीधौं, पाप के प्रभाव, की सुभाय बाय बावरे। (ह० ३७)

कीर-(स०)-शुक, तोता। उ० कीर के कागर ज्यों नृप चीर विभूषन, उप्पम अंगनि पाई। (क० २।१) कीरै-तोते को, तोते के लिए। उ० मोहि कहा बूझत पुनि पुनि जैसे पाठ अरथ चरचा कीरै। (गी० ६।१५)

कीरत-दे० 'कीरति'।

कीरति-(स० कीर्त्ति)-१ कीर्त्ति, यश, बड़ाई, ख्याति, २ पुण्य, ३ राधिका की माता का नाम। उ० १ करहिं राम कल कीरति गाना। (मा० १।३४।३)

कीरा-(स० कीट)-कीड़ा, सड़ी चीजों में पैदा हो जानेवाले सूत की तरह पतले और छोटे छोटे कीड़े। उ० गरि न जीह मुहँ परेउ न कीरा। (मा० २।१६२।१)

कीर्तन-(स० कीर्त्तन)-१ गुणकथन, यशवर्णन, २ हरि कीर्तन, भजन आदि।

कीर्त्ति-(स०)-१ यश, ख्याति, नामवरी, २ पुण्य, ३ विस्तार, फैलाव। उ० १ कीर्त्ति बड़ी, करतूति बड़ी जन, बात बड़ी, सों बड़ोई बजारी। (क० ६।५)

कील (१)-(स०)-१ लोहे या काठ की खूँटी, काँटा, २ चाक के बीच की लकड़ी, जिस पर वह घूमता है, ३ तृण, तिनका।

कील (२)-(स० कीलक)-१ किसी मंत्र का मध्य भाग, २ वह मंत्र जिससे किसी अन्य मंत्र का प्रभाव नष्ट किया जाय। ३ ज्योतिष में प्रभव आदि ६० वर्षों में से ४२ वाँ जिसमें मंगल और सुख का प्राधान्य होता है।

कीले-(स० कीलन>कीलना-१ कील लगाना, जड़ना, २ मंत्र आदि के प्रभाव को नष्ट करना, ३ साँप को ऐसा मोहित करना कि किसी को काट न सके, ४ अधीन करना वश में करना, ५ बंद करना, रुकावट डालना, बाँध देना) बाँध दिया है, रोक दिया है। उ० जानत हौं कलि तेरेऊ मनु गुनगन कीले। (वि० ३२)

कीश-(स०)-बंदर, लंगूर।

कीस-(स० कीश)-१ बानर, २ हनुमान, ३ सुग्रीव। उ० १ कीस कुल अकुर बनहिं उपजत करत निदान। (स० १६६) कीसन्ह-१ बन्दरों ने, २ बन्दरों को। उ० १ बिपनाइ दल बलवत कीसन्ह घेरि पुनि रावनु लिया। (मा० ६।१००। छं १)

कीसनाथ-१ बानरराज, हनुमान, २ सुग्रीव। उ० १ तुलसी के माथे पर हाथ फेरौ कीसनाथ। (ह० ३३)

कीसपति-दे० 'कीसनाथ'।

कीसा-दे० 'कीस'। उ० १ जहँ-तहँ भजे भालु अरु कीसा। (मा० ६।३६।२)

कुँअर-(स० कुमार)-लड़का, पुत्र, राजकुमार।

कुंकुम-(स०)-१ केसर, ज़ाफ़रान, २ रोरी, रोली लाल रंग की अबीर जिसे घोलकर होली में एक दूसरे पर डालते हैं या योंही मुँह पर मलते हैं। ३ कुमकुमा, मिट्टी या लाख का बना हुआ पोला गोला जिसके भीतर रंग या गुलाल भरकर होली के दिनों में मारते हैं। उ० १ कुंकुम रंग सुअंग जितो, मुख चंद सो चंद सों होड़ परी है। (क० ७।१८०)

कुकुमा-दे० 'कुंकुम'।

कुंचित-(स०)-घूमा हुआ, घुँघराला, वक्र। उ० कुंचित कच मेचक छबि छाए। (मा० ७।७७।३)

कुंज-(स०)-१ लताओं का मंडप, पेड़ तथा लता आदि से घिरा स्थान, २ हाथी का दाँत। उ० १ मंजु कुंज, सिलातल, दल फूल फूर हैं। (गी० २।४५)

कुंजर-(स०)-१ हाथी, गज, २ श्रेष्ठ, उत्तम, ३ बाल, केश। उ० १ मत्त मंजु बर कुंजर गामी। (मा० १।२४५।३) उ० २ सुनत कोपि कपि कुंजर धाए। (मा० ६।४७।१) कुंजरहि-१ कुंजर को, २ श्रेष्ठ को। उ० २ कपि कुंजरहि बोलि लै आए। (मा० ६।१६।२) कुंजरहु-० हाथियो। उ० दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला। (मा० १।२६०।१) कुंजरारि-(स०)-हाथी का शत्रु, सिंह। उ० महाबल पुंज कुंजरारि ज्यों गरजि भट जहाँ-तहाँ पटके लंगूर फेरि फेरि कै। (क० ६।४२) कुंजरारी-दे० 'कुंजरारि'। उ० बिकट भ्रूकुटि, बज्र दसन नख, बैरि मदमत्त-कुंजर पुंज कुंजरारी। (वि० २८) कुंजरोनरो-दुविधा, संदेह। उ० स्वारथ औ परमारथ हू को नहिं कुंजरोनरो। (वि० २२६) विशेष-महाभारत में जब द्रोणाचार्य कौरवों के पक्ष से पांडवों का संहार करने लगे तो कृष्ण ने अर्जुन से आचार्य के बध के लिए कहा। अर्जुन को इसमें हिचक मालूम हुई। द्रोणाचार्य को वरदान था कि पुत्र-शोक में ही उनका प्राण निकलेगा। कृष्ण ने यह सलाह दी कि सत्यवादी युधिष्ठिर यदि आचार्य से कह दें कि उनका पुत्र मर गया तो उनकी मृत्यु हो जाय, पर इस पर युधिष्ठिर भी तैयार न हुए। तब अश्वत्थामा नाम के हाथी को भीम ने मार डाला और युधिष्ठिर ने द्रोण के समीप 'अश्वत्थामा हतो नरो वा कुंजरो वा' कहा। बीच में कृष्ण के शंखध्वनि के कारण द्रोण को केवल 'अश्वत्थामा हतो' सुनाई पड़ा। उनके पुत्र का नाम अश्वत्थामा था अतः वे मूर्छित होकर गिर पड़े और धृष्टद्युम्न ने उनका सर काट लिया। 'नरो वा कुंजरो वा' इसी आधार पर दुविधा के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

कुंजरमनि-(स० कुंजरमणि)-गजमुक्ता, हाथी के सर में पाया जानेवाला एक बहुमूल्य रत्न। उ० कुंजरमनि कंठा कलित उरन्हि तुलसिका माल। (मा० १।२४३)

कुंठ-(स०)-१ जो चोखा न हो, भोथर, २ मूर्ख।

कुंठित-(स०)-१ जिसकी धार तेज़ न हो, कुंद, २ मंद, सुस्त ४ लज्जित, ५ नाराज़। उ० १ भा कुठारु कुंठित नृपघाती। (मा० १।२८०।१)

कुंड-(स०)-१ चौड़े मुँह के गहरे और बड़े बर्तन, २ हौज़, ३ हवन आदि के लिए बना गड्ढा। उ० १, रावन आगे परहिं ते जनु फूटहिं दधिकुंड। (मा० ६।४४)

कुंडल-दे० 'कुंडल'। उ० १ चलत्कुंडलाभ्रू सुनेत्रं विशालं। (मा० ७।१०८।श्लो० ४) कुंडल-(स०)-१ सोने चाँदी आदि का बना एक मंडलाकार कानों का आभूषण, मुरकी, बाली, २ योगियों द्वारा कान में धारण किया

तिहि'। उ० १ यत समुझि मन तजहु कुमतिही। (मा० १।३६।१) कुमया-(स० कु+माया)-अकृपा, क्रोध, अप्रसन्नता। उ० कुमया कछु हानि न औरन की जोवै जानकी नाथ मया करिहै। (क० ७।४७) कुमातीं-दे० 'कुमाता'। उ० माइँ दोह मोहि कीन्ह कुमातीं। (मा० २।२०१।३) कुमाता-(स०)-खोटी माता, अधम जननी। कुमातु-दे० 'कुमाता'। उ० ता कुमातु को मन जोगवत ज्यों निज तनु मरम कुघाउ। (वि० १००) कुमारग-दे० 'कुमार्ग'। उ० मारग मारि, महीसुर मारि, कुमारग कोटिक कै धन लीयो। (क० ७।१७६) कुमार्ग-(स० कु+मार्ग)-बुरा रास्ता, अनुचित मार्ग, निषिद्ध पथ। कुमित्र-(स० कु+मित्र)-बुरा दोस्त, खोटा साथी। उ० अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई। (मा० ४।७।४) कुमुख (१)-(स० कु+मुख)-बुरा मुख, अशुभ मुँह। उ० लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे। (मा० २।४३।४) कुयाचक-(स० कु+याचक)-नीच मँगन, अपात्र भिक्षुक। कुयोग-(स० कु+योग)-१ दुष्ट योग, बुरा अवसर, दुखदायक ग्रह, २ बुरी सगत। कुयोगिनां-कुयोगियों के लिए। दे० 'कुयोगी'। उ० कुयोगिनां सुदुर्लभं। (मा० ३।४। श्लो० १०) कुयोगी-(स० कु+योगी)-जो योगी या सयमी न हो, भोगी, नियमित व्यवहार न रखनेवाला। कुराई-दे० 'कुराह'। उ० कुस कटक काँकरी कुराई। (मा० २।२११।२) कुराज-(स० कु+राज्य)-बुरा राज्य, जिस राज्य में व्यवस्था न हो। उ० करम, धरम, सुख सपदा त्यों जानिये कुराज। (दो० ५१३) कुरायँ-दे० 'कुराह'। उ० काँट कुरायँ लपेटन लोटन ठाँवहिं ठाउँ बझाऊ रे। (वि० १८९) कुराह-(स० कु+फा० राह)-१ बुरा रास्ता, तग रास्ता, २ खराब स्थान, ऊँचा नीचा स्थान। कुरीति-(स० कु+रीति)-कुप्रथा, अनीति, कुचाल। उ० साँति सत्य सुभ रीति गई घटि, बढ़ी कुरीति कपट-कलई है। (वि० १३९) कुरुचि-(स० कु+रुचि)-बुरी प्रवृत्ति, नीच अभिलाषा, बुरी इच्छा। उ० जौं पै कुरुचि रही अति खोटी। (मा० २।१६१।४) कुरोग-(स० कु+रोग)-बुरा रोग, बुरी बीमारी। उ० राम बियोग कुरोग बिगोए। (मा० २।१२८।४) कुरोगाँ-दे० कुरोगा में, कुरोग से। उ० दुखहिं भरत सब लोग कुरोगाँ। (मा० २।२१७।१) कुलच्छन-(स०)-१ बुरा लक्षण, बुरा चिह्न, २ कुचाल, बद चलनी। कुलच्छन-दे० 'कुलच्छन'। कुलखन-दे० 'कुल च्छन'। उ० १ मिटे कलुष कलेस कुलखन कपट कुपथ कुचाल। (गी० ७।१) कुलिपि-१ बुरी लिपि, अस्पष्ट लिपि, २ अशुभ लिपि, खोटी लिपि। उ० २ लोकपति बिलोकत कुलिपि भोंड़ भाल की। (क० ७।१८२) कुलोग-(स० कु+लोक)-दुष्ट लोग, बुरे लोग। उ० रोगनिकर तनु, जरठपनु, तुलसी सग कुलोग। (दो० १०८) कुलोगनि-बुरे लोगों ने, बुरे लोग। उ० घरि लियो रोगनि कुलोगनि कुजोगनि ज्यों। (ह० ३५) कुवरन-(स० कु+वर्ण)-बुरा, नीच जाति का। कुवामा-(स० कु+वामा) खोटी स्त्री। कुवेष-(स० कु+वेष)-बुरा वेष, रद्दी पोशाक। कुवेषता-वेष का बुरा होना, वेष के बुरेपन का भाव। कुसंकट-(स० कु+सकट)-बुरे-बुरे सकट, महान दुःख। उ० मिटहिं कुसकट होहिं सुखारी। (मा० १।२२।१) कुसंघट-(स० कु+सघट)-बुरा योग, अशुभ सयोग, अनुचित मेल। कुसमय-(स० कु+समय)-बुरे दिन, आपत्ति काल, बुरा समय। उ० कुसमय दसरथ के दानि, तैं गरीब निवाजे। (वि० ८०) कुसर-(स० कु+सर)-बुरा तालाब। कुसाज-(स० कु+फा० साज)-१ बुरा सामान, बुरी सजावट, २ बुरी तैयारी, ३ बुरी बात, बुरा काम, ४ बुरी हालत, बुरा रूप, ५ बुराई। उ० ३ राज करत बिनु काजही, करैं कुचालि कुसाज। (दो० ४१६) कुसाजु-दे० 'कुसाज'। उ० ५ आइ बीच खलु बसमनि नरपति निपट कुसाजु। (मा० २।३६) कुसाहब-(स० कु+अर० साहब)-बुरे स्वामी, अयोग्य मालिक। उ० ब्योम रसातल भूमि भरे नृप क्रूर कुसाहिब सेंति खारे। (क० ७।१२) कुसूत-(स० कु+सूत्र)-कुप्रबध, कुव्यवस्था, असुविधा, उलझन। उ० रोग भयो भूत सो कुसूत भयो तुलसी को। (क० ७।१६७)

कुअँर-(स० कुमार)-१ लड़का, पुत्र, बालक २ राज कुमार, राजपुत्र। उ० २ आयउँ कुसल कुअँर पहुँचाई। (मा० २।१४६।४) कुअँरि-कुँअर का स्त्रीलिंग, पुत्री, राज कुमारी। उ० सादर सकल कुअँरि समुझाई। (मा० १।३३४।४) कुअँरोटा-(स० कुमार)-बेटा, लड़का, राज पुत्र। उ० कोसलराय के कुअँरोटा। (गी० १।६०)

कुआँरी-दे० 'कुआरि'।

कुआरि-(स० कुमारी)-अविवाहिता, जिसका विवाह न हुआ हो। उ० कुअरि कुआरि रहउ का करऊँ। (मा० १।२५२।३)

कुआरी-(स० कुमारी)-कुमारी, पुत्री, राजपुत्री। उ० बरउँ सभु न त रहउँ कुआरी। (मा० १।८१।३)

कुकरम-(स० कु+कर्म)-बुरा काम।

कुकरमू-दे० 'कुकरम'। उ० भारत काह न करइ कुकरमू। (मा० २।२०४।४)

कुक्कुट-(स०)-मुर्गा, एक चिड़िया। उ० बोलत जल कुक्कुट कल हसा। (मा० ३।४०।१)

कुघाइ-दे० 'कुघाय'। उ० पलक पानि पर ओढ़िअत समुझि कुघाइ सुघाइ। (दो० ३२५)

कुघाउ-दे० 'कुघाय'। उ० ता कुमातु को मन जोगवत ज्यों निज तनु मरम कुघाउ। (वि० १००)

कुघात-(स० कु+घात)-१ बुरा दाँव, बुरी चाल छल कपट, २ बेमौका, कुअवसर, ३ बुरी चोट।

कुघातु-दे० 'कुघात'। उ० मन कुघातु करि बातहि बहोसि कोप गृह जाहु। (मा० २।२७)

कुघाय-दे० 'कुघाव'।

कुघाव-(स० कु+घाव)-बुरा घाव, मर्म जगह का घाव, भयानक घाव, गहरा जख्म, गहरी चोट।

कुच-(स०)-स्तन, छाती। उ० श्रीफल कुच, कचुकि लतापात। (वि० १४)

कुचाल-(स० कु+चलन) बुरा आचरण, दुष्टता, पाजी पन। उ० कलि सकोच लोभी सुचाल, मिल कलि० कुचाल चलाई। (वि० १३५)

कुचालि-दे० 'कुचाली'। कुचालिहि-१ कुचाली को, दुष्ट

को, २ कुचाली ने । उ० दीन्हि कुचालिहि कोटिक गारीं। (मा० २।५१।२) कुचाली-१ उपद्रवी, कुकर्मी, २ उपद्रव, कुकर्म। उ० २ फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। (मा० २।२०।२)
कुजा-(सं० कु+जा)-पृथ्वी से उत्पन्न सीता, अयनिजा।
कुटिल-(सं०)-१ वक्र, टेढ़ा, लच्छेदार, २ कपटी, छली, खल। उ० २ हँसिहहिं कूर कुटिल कुविचारी। (मा० १।८।५)
कुटिलइ-दे० 'कुटिलाई'।
कुटिलपन-दे० 'कुटिलाई'।
कुटिलपनु-दे० 'कुटिलपन'। उ० कैकयनंदिनि मंदमति कठिन कुटिलपनु कीन्ह। (मा० २।६१)
कुटिलाई-कुटिलता, वक्रता, कपट, छल। उ० हरउ भगत मन कै कुटिलाई। (मा० २।१०।४)
कुटी-(सं०)-घास आदि का बना हुआ छोटा घर, कुटिया।
कुटीर-(सं०)-छोटी कुटी, कुटिया। उ० सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर। (मा० २।३२१)
कुटीरा-दे० 'कुटीर'। उ० नविगत करि परन कुटीरा। (मा० २।३२४।१)
कुटुंब-(सं० कुटुम्ब)-परिवार, कुल, खानदान। उ० घर तुरत सत सहस वर विप्र कुटुंब समेत। (मा० १।१७२)
कुटुंबी-(सं० कुटुम्बिन्)-१ परिवारवाला, कुटुंबवाला, २ सम्बन्धी, रिश्तेदार। उ० १ अबुध कुटुंबी जिमि धन हीना। (मा० ४।१६।४)
कुटुम-दे० 'कुटुंब'।
कुटेव-(सं०कु+?)-बुरी आदत, खराब बान। उ० हौं जग नायक लायक आजु पै मेरियौ टेव कुटेव महा है। (क० ७।१०१)
कुठार-(सं०)-१ कुल्हाड़ी, २ परशु, फरसा, ३ नाशक, समाप्त करनेवाला। कुठारी-कुठार का स्त्रीलिंग। दे० 'कुठार'। उ० १ जनि दिनकरकुल होसि कुठारी। (मा० २।३५।२)
कुठारधर-कुठार या परशु को धारण करनेवाले परशुराम। उ० जय कुठारधर दर्पदलन, दिनकर कुल-मडन। (क० ७।११२)
कुठारपानि-(सं० कुठार+पाणि)-परशुराम, हाथ में कुठार लेनेवाले। उ० बीर करि केसरी कुठारपानि मानो हारि। (क० ६।११)
कुठारा-दे० 'कुठार'। उ० २ व्यर्थ धरहु धनुबान कुठारा। (मा० १।२७३।४)
कुठारु-दे० 'कुठार'। उ० २ धनु सर कर कुठारु कल काँधे। (मा० १।२६८।४)
कुठारू-दे० 'कुठार'। उ०२ पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू। (मा० १।२७३।१)
कुठाहर-(सं० कु+स्थल)-१ कुठौर, बुरा स्थान, २ मर्मस्थल, नाजुक जगह, ३ बमौका, बुरा अवसर। उ० ३ भयउ कुठाहर जेहिं विधि बामू। (मा० २।३६।१)
कुड्मल-(सं० कुड्मल) १ कली, अधखिला फूल, मुकुल, २ इक्कीस नरकों में से एक। उ० १ कुलिस कुंदकुड्मल दामिनि-दुति दसननि देखि लजाइ। (गी० ६२)
कुणप (१)-(सं०) १ शव, मृतक, २ भाला, बरछा।
कुणप (२)-(सं० कौणप)-राक्षस, निशाचर।
कुतरक-(सं० कु+तर्क)-बेढंगा तर्क, बकवाद, व्यर्थ की दलील। उ० कुपथ कुतरक कुचालि कलि, कपट दंभ पाषंड। मा० १।३२ क)
कुतरकी-कुतर्क करनेवाला, वक्रवादी, वितंडावादी। उ० हरिहर पदरति मति न कुतरकी। (मा० १।६।३)
कुतर्क-(सं०)-बुरा तर्क, वितंडा, बकवाद। उ० नहीं कुतर्क भयंकर नाना। (मा० १।३८।५)
कुतस-(सं० कुत)-कहाँ से।
कुतसित-दे० 'कुत्सित'। उ० उदित सदा अथवत न सो कुतसित तमकर हान। (स० १२)
कुत्र-(सं०)-कहाँ, कहीं। उ० यत्रकुत्रापि मम जन्म निज कर्मबश भ्रमत जगयोनि संकट अनेकम्। (वि० ५७)
कुत्सित-(सं०)-नीच, गर्हित, खराब।
कुथि-(सं० कथ)-कहता हुआ, कहकर। उ० कुथि रटि अटत बिमूढ़ लट घट उद्घटत न ग्यान। (स० ३७२)
कुदान (१)-(सं० स्कुदन)-१ कूदने की क्रिया, कूदने का भाव, २ कूदने का स्थान।
कुदाना-बुरे दान। उ० मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना। (मा० ७।९९।१)
कुदारी-(सं०कुद्दाल)-कुदाली, मिट्टी खोदने का एक औजार। उ० मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। (मा० ७।१२०।७)
कुधर-(सं० कुध्र) पर्वत, पहाड़। उ० पूरहिं न त भरि कुधर बिसाला। (मा० ५।५५।३) कुधर-कुमारिका-पर्वत की कुमारी, हिमालय की पुत्री, पार्वती, उमा। उ० चाहति काहि कुधर-कुमारिका। (पा० ७५) कुधरधारी-पर्वत को धारण करनेवाले, १ हनुमान, २ कृष्ण।
कुनप (१)-(सं० कुणप)-१ मृतशरीर, शव, २ शरीर, देह, ३ भाला। उ० १ कुनप-अभिमान-सागर भयंकर घोर विपुल अवगाह दुस्तर अपारम। (वि० ५८)
कुनप (२)-(सं० कौणप)-राक्षस।
कुनय-(सं० कु+नय)-बुरी नीति, अनीति। उ० मरहिं कुनृप करि करि कुनय सो कुचालि भव भूरि। (दो०५१४)
कुपित-(सं०)-क्रुद्ध, क्रोधित, अप्रसन्न, रुष्ट।
कुबरिहि-१ कुबरी को, २ कुबरी ने, कुबरी से। दे० 'कुबरी'। उ० १ कुबरिहि रानि प्रानप्रिय जानी। (मा० २।२३।१) कुबरीं-कुबरी ने, मंथरा ने। उ० कुबरीं करि कबुली कैकेई। (मा० २।२२।१) कुबरी-(सं० कुब्ज)-१ कंस की एक कुब्जा नामकी नाई जाति की दासी जिसकी पीठ टेढ़ी थी। २ मंथरा, कैकेयी की दासी। उ० १ पद्म सुत, गोपिका, बिदुर, कुबरी सबरि सोध किए सुद्धता लेस कैसो। (वि० १०६)
कुबलय-(सं० कुवलय)-१ नील कमल, २ एक प्रकार के असुर। उ० १ कुबलय बिपिन कुंतबन सरिसा। (मा० ५।१५।२)
कुबेर-(सं०)-एक देवता जो इंद्र की नौ निधियों के भंडार तथा शंकर के मित्र माने जाते हैं। इनके पिता विश्रवस् ऋषि तथा माता इलविला थीं। ये रावण के सौतेले भाई थे। कुबेर संसार के समस्त धन के स्वामी समझे

जाते हैं। उ० एक बार कुबेर पर धारा। (मा० १।१७३।४) कुबेरै-१ कुबेर से, २ कुबेर का। उ० १ कृपानिधि को मिलौं पै मिलि कै कुबेरै। (गी० २।२७)

कुमाच-(अर० कुमाश)-एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। उ० काम सु आवै कामरी, का लै करै कुमाच। (दो० ४७२)

कुमार-(सं०)-१ पाँच वर्ष की आयु का बालक, २ छोटा या अविवाहित लड़का, ३ पुत्र, बेटा, लड़का, ४ राजकुमार, युवराज, ५ सनक, सनन्दन, सनत् और सुजात आदि कई ऋषि जो सदा बालक ही रहते हैं। उ० १ भए कुमार जबहिं सब भ्राता। (मा० १।२०४।१) कुमारिका-(सं०)-कुमारी, लड़की, कन्या। कुमारी-(सं०) १ बारह वर्ष की अवस्था तक की कन्या, लड़की, २ पुत्री, बेटी, ३ घीकुआँर, ४ नवमल्लिका, ५ बड़ी इलायची, ६ सीता, ७ पार्वती, ८ भारत के दक्षिण में एक प्रसिद्ध अंतरीप, ९ चमेली, १० बिना ब्याही लड़की। उ० १ सब लच्छन सपन्न कुमारी। (मा० १।६७।२)

कुमारा-दे० 'कुमार'। उ० ४ एक राम अवधेस कुमारा। (मा० १।४६।४)

कुमारि-दे० 'कुमारी'। उ० सैलकुमारि निहारि मनोहर मूरति। (पा० ७६)

कुमुख (२)-(सं०)-रावण का एक योद्धा, जिसका नाम दुमुख भी था। उ० कुमुख अकंपन कुलिसरद धूमकेतु अतिकाय। (मा० १।१८०)

कुमुद-(सं०)-१ कुमुदनी, कोइं, नलिनी। एक फूल जो कमल के उलटे रात में खिलनेवाला माना गया है। इसे चन्द्रमा का स्नेही माना जाता है। २ एक बंदर का नाम जो राम-रावण युद्ध में लड़ा था। ३ दक्षिण पश्चिम कोण में रहनेवाला दिग्गज, ४ कृपण, कंजूस, ५ लोभी, लालची। उ० १ रघुबर किंकर कुमुद चकोरा। (मा० ७।२०४।१) कुमुदबंधु-(सं०)-चंद्रमा। उ० कुमुदबंधु कर निंदक हाँसा। (मा० १।२४३।३) कुमुदिनीं-कुमुदिनी ने। उ० जनु कुमुदिनीं कौमुदीं पोषीं। (मा० २।११८।२) कुमुदिनी-(सं०)-कुमुद, कुई, कमलिनी, नलिनी। उ० भारि कुमुदिनी अवध सर, रघुपति बिरह दिनेस। (मा० ७।६ क)

कुमुदिनि-दे० 'कुमुदिनी'। उ० बिलखित कुमुदिनि चकोर चकवाक हरष मोर। (गी० १।३७)

कुमुलानी-दे० 'कुम्हिलानी'। उ० कुम्य कमल मुखदुति कुमुलानी। (मा० १।२०८।१)

कुम्हड़ा-(सं० कूष्माण्ड) कुम्हड़ा सीताफल, काशीफल, एक बेल और उसमें लगनेवाला भारी गोल फल। कुम्हड़बतिआ-(सं० कूष्माण्ड+वर्तक)-कुम्हड़े के फल का शिशु रूप। कुम्हड़े का नया फल जो बहुत सुकुमार माना जाता है और लोगों का विश्वास है कि अँगुली दिखाने से भी सूख जाता है। इसी आधार पर निर्बल या कायर आदमी के लिए भी इसका प्रयोग होता है। उ० इहाँ कुम्हड़बतिआ कोउ नाहीं। (मा० १।२७३।२) कुम्हड़े-दे० 'कुम्हड़'। उ० मरम बचन सीता जब बोली, कुम्हिलैहै कुम्हड़े की नई है। (वि० १२६)

कुम्हार-(सं० कुंभकार)-मिट्टी का बरतन बनानेवाली एक जाति, कुम्हार। उ० जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। (मा० ७।१००।३)

कुम्हिलानी-(सं० कु+ग्लान)-ग्लान हो गई, कुम्हला गई, सूख गई। कुम्हिलाहीं-कुम्हलाती हैं, सूखती हैं, सूख रही हैं। उ० बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। (मा० २।८३।४) कुम्हिलैहै-मुरझा जायगा, सूख जायगा। उ० दे० 'कुम्हड़े'।

कुरंग-(सं०)-हिरण, मृग। उ०कोल किरात कुरंग बिहंगा। (मा० २।१८८।४) कुरंगिनि-हरिणी, मृग की स्त्री। उ० चितवत चकित कुरंग कुरंगिनि सब भए मगन मदन के भोरे। (गी० ३।२)

कुरंगा-दे० 'कुरंग'। उ० १ करि केहरि कपि कोल कुरंगा। (मा० २।११३८।१)

कुररी-(सं०)-१ एक जलपक्षी, टिटिहरी, २ क्रौंच पक्षी, कराँकुल। उ० १ बिलपति अति कुररी की नाई। (मा० ३।३१।२)

कुरब-(सं० कुरबक)-कटसरैया नामक पेड़, जिसके फूल सुन्दर होते हैं। उ० कुसुमित तरु निकर कुरब तमाल। (गी० २।४८)

कुरी-(सं० कुल)-वर्ग, वंश, घराना, खानदान। उ० हरषित रहहिं लोग सब कुरी। (मा० ७।१५।४)

कुरु (१)-(सं०)-१ कौरवों के वंश का नाम, या उस वंश में उत्पन्न पुरुष। २ कर्त्ता, करनेवाला, ३ पका चावल, भात।

कुरुखेत-(सं० कुरुक्षेत्र)-सरस्वती नदी के बाएँ किनारे पर अंबाला और दिल्ली के बीच में स्थित एक प्राचीन तीर्थ। अब भी ग्रहण आदि के अवसर पर यहाँ बड़े बड़े मेले लगते हैं। उ० धनही के हेतु दान देत कुरुखेत रे। (क० ७।१६२)

कुरुपति-कौरवों का स्वामी, दुर्योधन। उ० बायों दियो बिभव कुरुपति को, भोजन जाइ बिदुर घर कीन्हों। (वि० २४०)

कुरुराज-दुर्योधन, कुरुपति। उ० भारत में पारथ के रथ केतु कपिराज, गाज्यो सुनि कुरुराज दल हलबल भो। (ह० ४) कुरुराजबंधु-दुर्योधन का भाई, दुःशासन। उ० लोभ मोह दनुजेह क्रोध, कुरुराज बंधु खल मार। (वि० ६३)

कुरूप-(सं० कु+रूप)-भद्दा रूप, असुन्दर, बदसूरत। उ० दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना। (मा० १।१३३।४)

कुरूपता-(सं०)-कुरूप का भाव, बदसूरती। उ० तनु-सकाम पतझारि सूपन लाग्यो परी कुरूपता बाई। (कृ० २३)

कुरूपा-'कुरूप' का स्त्रीलिंग, भद्दी। उ० सूपनखा जिमि कीन्हि कुरूपा। (मा० ७।६६।२)

कुल (१)-(सं०)-१ वंश, खानदान, २ समूह, ढेर, ३ जाति, ४ मकान, घर। उ० २ मोह बहुल कुल पुन साहा। (मा० १।३७।२) कुलघाती-कुल का हनन या नाश करनेवाला। कुलपालक-दे० 'कुलपाली'। उ० हम कुलघालक सत्य तुम्ह कुलपालक दससीस। (मा० ७।२१) कुलपालक-कुल या कुटुंब का पालन या रक्षा करनेवाला। उ० दे० 'कुलघालक'। कुलरीति-(सं० कुल+रीति)-

वंश परंपरा, कुल में बहुत दिनों से होते आए आचार-विचार, कुल के व्यवहार, कुलधर्म। उ० बेदबिहित कुलरीति, कीन्हि दुहूँ कुलगुर। (जा० १४२) कुलहि-१ कुल को, खांदान को, २ खान्दान के लिए, ३ कुल की। उ० १ देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी। (मा० २। २२।४) ३ कहउँ सुभाउ न कुलहि प्रससी। (मा० १।२८४। २) कुलहीन-१ अकुलीन, नीच कुल का, नीच, २ जिसके कुल में कोइ न हो, बिना जाति तथा खान्दान का। उ० १ क्रूर कुटिल कुलहीन दीन अति मलिन जवन। (वि० २१२)

कुल (२)-(अर०)-समस्त, तमाम, पूरा।

कुलटा-(स)-बहुत पुरुषों से प्रेम रखनेवाली स्त्री।

कुलपति-(स०) १ घर का मालिक, खांदान का मुखिया, सरदार, २ वह ऋषि जो दस हजार मुनियों तथा ब्रह्मचारियों का भरण पोषण करे और शिक्षा दे। ३ महत।

कुलवत-(स०)-कुलीन, श्रेष्ठ, अच्छे कुल का, अच्छे आचार विचार का।

कुलवति-'कुलवत' का स्त्रीलिंग। दे० 'कुलवत'। उ० कुलवति निकारहिं नारि सती। (मा० ७।१०१।२)

कुलह-(फा० कुलाह)-टोपी, आँखों पर की टोपी। उ० कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली। (मा० २।२८।४)

कुलही-(फा० कुलाह)-बच्चों की टोपी। उ० कुलही चित्र बिचित्र कँगूलीं। (गी० १.२८)

कुलाल-(स०)-मिट्टी का बरतन बनानेवाला, कुम्हार। उ० मृन-मय घट जानत जगत बिन कुलाल नहिं होइ। (स० २०४)

कुलाहल-दे० 'कोलाहल'।

कुलि-(अर० कुल)-समस्त, सब, पूरा। उ० हरि बिरंचि हरपुर सोभा कुलि कोसलपुरी लोभामी। (गी० १।४)

कुलिश-(स०)-१ हीरा, हीरा की भाँति कठोर, २ वज्र, बिजली, ३ इंद्र का एक हथियार।

कुलिस-दे० 'कुलिश'। उ० १ ताकी पैज पूजि आई यह रेखा कुलिस पषान की। (वि० ३०) कुलिसहु-वज्र से भी। उ० कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि। (मा० ७।१९ ग)

कुलीन-(स०)-१ उत्तम कुल में उत्पन्न, खानदानी, २ पवित्र, शुद्ध। उ० १ जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। (मा० २।१४२।१)

कुलीना-दे० 'कुलीन'। उ० १ कहहु कवन मैं परम कुलीना। (मा० २।७।४)

कुलु-(सं० कुल)-कुल, खानदान। उ० जौं घर बरु कुलु होइ अनूपा। (मा० १।७१।२)

कुवलय-(स०)-१ नील कमल, कमल, २ कुमुद, कोइ।

कुवेर-(स०)-दे० 'कुबेर'।

कुश-(स०)-१ कास की तरह की एक घास जो यज्ञादि के समय काम में आती थी। कुश बहुत पवित्र घास मानी जाती है और कर्मकांड की लगभग सभी क्रियाओं में इसकी आवश्यकता पड़ती है। कुशा। २ जल, पानी ३ तीक्ष्ण, तेज, ४ रामचन्द्र का एक पुत्र।

कुशकेतु-(स०)-कुशध्वज, राजा जनक के छोटे भाइ, जिनकी कन्याएँ मांडवी और श्रुतिकीर्ति भरत और शत्रुघ्न को ब्याही गइ थीं।

कुशल-(स०)-१ भलाइ, कल्याण, मंगल, २ चतुर, दक्ष, ३ श्रेष्ट, भला अच्छा, ४ शिव का एक नाम।

कुशा-(स०)-१ कुश, २ रस्सी।

कुष्ठी-(स० कुष्ठिन्)-कोढ़ी, कुष्ट रोग से पीड़ित। उ० जैसे कुष्टी की दसा गलित रहत दोउ देह। (स० १७५)

कुसंग-(स० कु + सग)-बुरा साथ, निंदित सग, बुरों का साथ। उ० कठिन कुसंग कुपथ कराला। (मा० १।३८।४)

कुसगति-दे० 'कुसग'। उ० यह बिचारि तजि कुपथ कुसगति। (वि० ८४)

कुस-दे० 'कुश'। उ० १ कुस किसलय साथरी सुहाई। (मा० २।६६।१)

कुसकेतु-दे० 'कुशकेतु'। उ० कुसकेतु कन्या प्रथम जो गुन सील सुख सोभामइ। (मा० १।३२५। छ० २)

कुसलं-दे० 'कुशल'। उ० ? खल वृंद निकंद महा कुसलं। (मा० ६।११३। छ० ५)

कुसल-दे० 'कुशल'। उ० २ करिहहिं चाह कुसल कबि मोरी। (मा० २।१२।४)

कुसलाई-कुशल-मंगल, शुभ समाचार। उ० करि प्रनाम पूँछी कुसलाई। (मा० २।६।२)

कुसलात-कुशल, शुभ-समाचार। उ० गइ समीप महेस तब हँसि पूछी कुसलात। (मा० १।५५)

कुसलाता-दे० 'कुसलात'। उ० दच्छ न कछु पूछी कुसलाता। (मा० १।६३।२)

कुसली-(स० कुशल)-सुखी, सानंद। उ० तुलसी करेहु सोइ जतनु जेहिं कुसली रहहिं कोसलधनी। (मा० २।१२१। छ० १)

कुसुंभि-(स० कुसुंभ)-बर्रे के फूल या केसर के रंग का, लाल और पीला मिला हुआ रंग जर्द। उ० कुसुंभि चीर तनु सोहहिं भूषन बिबिध सँवारि। (गी० ७।१६)

कुसुम-(स०)-१ फूल, पुष्प, २ एक प्रकार का ज़र्द रंग का पुष्प विशेष जिससे रंग बनाया जाता है। कुसुंभ। उ० १ बार-बार कुसुमांजलि छूटीं। (मा० १।२६४।२) कुसुमहु-फूल से भी। उ० कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि। (मा० ७।१९ ग)

कुसुमित-(स०)-खिला हुआ, फूला हुआ। उ० कुसुमित नव तरराज बिराजा। (मा० १।८६।३)

कुहक-दे० 'कुहुक'।

कुहत-(स० कु + हनन। कुहना = मारना)-मारता, पीटता। उ० कासी कामधेनु कलि कुहत कसाई है। (क० ७।१८१)

कुहर-(स०)-छेद, बिल, गड्ढा, गुहा, गुफा। कुहरनि-कुहर में छेद में। उ० रहे कुहरनि, सलिल नभ उपमा अपर दुरि डरनि। (गी० १।२४)

कुहबर-दे० 'कोहबर'।

कुहु-(स०)-दे० 'कुहू'।

कुहू-(स०)-१ अमावस्या की रात, जिसमें चन्द्रमा बिल्कुल न दिखाइ दे। २ मोर या कोयल की कूक। उ० १

मोहमय कुहू निसा बिसाल काल बिपुल सोयो। (वि० ७७)

कुद्दो–१ मारो, मार डालो, २ मार, मार डाले। उ० २ आपु ब्याध को रूप धरि, कुद्दो कुरंगहि राग। (दो० ३१४)

कूँच–(तुर० कूच)-प्रस्थान, रवानगी, सफर।

कूँड़ि–(सं० कुंड)-सिर पर रखने का एक टोपी की भाँति का लोहा, टोप। उ० श्रृंगरीं पहिरि कूँड़ि सिर धरहीं। (मा० २।१९१।३)

कूक–(सं० कू)-ध्वनि, दुःखपूर्ण ध्वनि, मोर या कोयल की ध्वनि।

कूकर–(सं० कुक्कुर)-कुत्ता, श्वान। उ० जनि डोलहि लोलुप कूकर ज्यों, तुलसी भजु कोसल राजहि रे। (क० ७।३०)

कूकुर–दे० 'कूकर'। उ० ताको कहाय, कहै तुलसी, तू लजाहि न माँगत कूकुर कौरहि। (क० ७।२६)

कूच–(तुर०)-प्रस्थान, यात्रा, चला जाना, पयान करना। उ० तुलसी जग जानियत नाम ते सोच न कूच मुकाम को। (वि० १२६)

कूजत–(सं० कूजन)-१ कोमल और मधुर शब्द करते हैं, २ कूजते हुए, कोमल और मधुर शब्द करते हुए। उ० १ कूजत कल बहुबरन बिहंगा। (मा० १।२१२।४) विशेष–भ्रमर कोकिल तथा कुछ अन्य पक्षियों की मधुर और कोमल ध्वनि को कूजना कहते हैं। कूजहिं–कूजते हैं, बोलते हैं। उ० कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा। (मा० १।१२६।१)

कूट (१)–(सं०)-१ पहाड़ की चोटी, २ ढेर, समूह, राशि, ३ हलकी लकड़ी, जिसमें फल लगता है, ४ लोह का हथौड़ा, ५ हिरन आदि फँसाने का एक जाल, ६ लकड़ी के म्यान में छिपा हथियार, ७ छल, धोखा, ८ मिथ्या, असत्य, ९ अगस्त्य मुनि का एक नाम, १० घड़ा, ११ गुप्त बैर, १२ रहस्य, गुप्त भेद, गूढ़, १३ वह हास या व्यंग्य जिसका अर्थ आसानी से समझ में न आय। १४ निहाई, १५ भँड़ती, १६ नकली, कृत्रिम, १७ निश्चल, १८ विष, १९ धर्मभ्रष्ट, २० गुप्त मारण प्रयोग आदि। २१ श्रेष्ठ, २२ कूट नाम की ओषधि। उ० १ कमठ पीठि पवि कूट कठोरा। (मा० १।२२७।२) २० जपति पर-जंत्रमंत्राभिचार-ग्रसन, कारमनि-कूट-कृत्यादि हंता। (वि० २६)

कूट (२)–(सं० कुट्टन)-कूटकर, टुकड़े टुकड़े करके, मारकर।

कूटस्थ–(सं०)-१ सर्वोपरि स्थित, सबसे ऊँचा, २ अचल, अटल, ३ अविनाशी, ४ अत व्यास, छिपा हुआ। उ० १ सपरपक सर्वमयकाव्यय कूटस्थ गूढार्चि मच्चानुपूर्ण। (वि० ५३)

कूटि (१)–दे० 'कूट (१)'। उ० १३ करहिं कूटि नारदहि सुनाई। (मा० १।१३४।२)

कूटि (२)–(सं० कुट्टन)-कूटकर, पीटकर।

कूटी (१)–(सं० कूट)-व्यंग्य वचन।

कूटी (२)–(सं० कुट्टन)-कूटी हुई, कुचली या पीसी हुई।

कूटी (३)–(सं० कुटी)-कुटिया, झोंपड़ी।

कूट्यो–नष्ट किया, मारा, संहार किया, कूटा। उ० हाँकि हनुमान कुलि कटक कूट्यो। (क० ६।४६)

कूदि–(सं० स्कुंदन)-कूदकर, उछलकर, उछलकर, लाँघकर। उ० कौतुक कूदि चढ़उ ता ऊपर। (मा० २।१।१) कूदिए–उछलिए, छलाँग मारिए। उ० कूदिए कृपाल तुलसी सुप्रेम पब्बए तें। (ह० २३) कूदे–कूद पड़े, उछले, प्रवेश किया। उ० कूद सुगन बिगत श्रम आए जहँ भगवान। (मा० ६।४५)

कूप–(सं०)-१ कुआँ, इनारा, २ छिद्र, छेद, सुराख, ३ कुंड, गहरा गड्ढा। उ० १ परउँ कूप तुअ बचन पर सकउँ पूत पति त्यागि। (मा० २।२१) कूपहि–कूप या कूएँ के, कुएँ को। उ० सिंधु कहिय केहि भाँति सरिस सर कूपहि। (पा० १४०)

कूपक–(सं०)-छोटा कुआँ, कूप। कूपकहिं–छोटे कूप में, कुएँ में। उ० नरक अधिकार मम घोर संसार-तम-कूपकहिं। (वि० २०६)

कूबर–(सं०)-१ पीठ का टेढ़ापन, २ किसी चीज़ का टेढ़ापन, वक्रता। उ० १ कूबर टूटेउ फूट कपारू। (मा० २।१६३।३) कूबर की लात–कुछ ऐसा जिसमें बिगड़ा काम भी बन जाय। उ० भइ कूबर की लात, बिधाता राखी बात बनाइके। (गी० २।२८) कूबरे–जिसकी पीठ टेढ़ी हो, वक्र। उ० काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि। (मा० २।१४)

कूबरी–दे० 'कूबरी'। उ० १ धरी कूबरीं सान बनाई। (मा० २।३१।१) कूबरी–दे० 'कुबरी'। १ कैकेयी की दासी मंथरा, २ कंस की दासी कुब्जा। कूबरीरवन–कुबरी के साथ रमण करनेवाले, कृष्ण। उ० कूबरीरवन कान्ह कहीं जो मधुप सा। (कृ० ३७)

कूबहा–(सं० कुब्ज)-टेढ़ा।

कूर (१)–(सं० क्रूर)-१ निर्दय भयंकर, २ मूर्ख, अकर्मण्य, निकम्मा, ३ नीच, दुष्ट, बुरा, ४ टेढ़ा, वक्र। उ० ४ भनिति कूर कबिता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की। (मा० १।१०। छं० १)

कूर (२) (सं० कूट)-ढेर, कतवार, मल, गंदगी।

कूरम–दे० 'कूर्म'।

कूरो–दे० 'कूर(२)'।

कूर्म–(सं०)-कच्छप, कछुआ। उ० कुलिस कठोर कूर्म पीठ तें कठिन अति। (क० १।१०)

कूल–(सं०)-१ किनारा, तीर, २ समीप, नज़दीक, ३ नहर, नाला, ४ तालाब। उ० १ दोउ बर कूल कठिन हठ धारा। (मा० २।३४।२)

कूला–दे० 'कूल'। उ० १, सोक बद मत महुन गुपा। (मा० १।३४।६)

कूवरी–दे० 'कुबरी'।

कृ–कृत्तिका नक्षत्र। उ० अगुन पुगुन वि मत ह म का भ भ गू गुनु साथ। (दो० ४५७)

कृकलास–(सं०)-गिरगिट, गिरगिटान। उ० बिनु अपराध कृकलास कूप-मज्जित कर गहि उधारयो। (वि० २१४)

कृकाटिका–(सं०)-कंध और गले का जोड़। उ० सुभग सुभ उन्नत कृकाटिका कंबु कंठ सोभा मन मानति। (गी० ७।१७)

कृज्जातना-(सं० कृत+यातना)-दुर्दशा किया हुआ, दु समस्त।

कृत-(सं०)-किए हुए, कर लिए। उ० तेन तस हुत दत्त मेवाखिलं, तेन सर्वं कृत कर्मजाल। (वि० ४६) कृत-(सं०)-१ किया हुआ, रचित, संपादित, २ तत्संबंधी, संबंध रखनेवाला, ३ चार युगों में से प्रथम युग, सत युग, ४ एक प्रकार का दास, ५ चार की संख्या, ६ कर्ता, करनेवाला, ७ उपकार, एहसान, ८ किया। उ० ८ जनु बरषा कृत प्रगट बुढ़ाइ। (मा० ४।१६।१)

कृतकाज-(सं० कृतकार्य)-जिसका मनोरथ सिद्ध हो चुका हो, कामयाब। उ० मन मलीन, कलि किलविषी होत सुनत जासु कृतकाज। (वि० १९१)

कृतकृत्य-(सं०)-सफलमनोरथ, निहाल, धन्य। उ० मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाइ। (मा० १।२८६।३)

कृतग्य-दे० 'कृतज्ञ'। उ० तग्य कृतग्य अग्यता भंजन। (मा० ७।३४।३)

कृतघ्न-(सं०)-किए उपकार का न माननेवाला, अकृतज्ञ, नमकहराम।

कृतजुग-(सं० कृतयुग)-सतयुग, प्रथम युग। उ० कृत युग सब जोगी विज्ञानी। (मा० ७।१०२।१)

कृतज्ञ-(सं०)-एहसान माननेवाला, उपकार को स्वीकार करनेवाला, कृतविज्ञ।

कृतयुग-(सं०)-सत्ययुग, पहला युग। इसकी आयु सत्रह लाख अट्ठाइस हजार वर्ष है।

कृतांत-(सं०)-१ अंतकर्ता, समाप्त करनेवाला, २ यम, धर्मराज, ३ पूर्व जन्म के शुभाशुभ कर्मों का फल, ४ सिद्धान्त, ५ मृत्यु ६ पाप, ७ देवता ८ दो की संख्या। उ० २ आयत देखि कृतांत समाना। (मा० ३।२६।६)

कृतारथ-दे० 'कृतार्थ'। उ० १ भए कृतारथ जनम जानि सुख पावहिं। (पा० १७१)

कृतार्थ-(सं०)-१ कृतकृत्य, सफल, संतुष्ट, २ कुशल, निपुण ३ मुक्त मोक्ष प्राप्त।

कृति-(सं०)-१ करतूत, करनी, काम, २ आघात, क्षति, ३ जादू, इंद्रजाल, ४ कटारी, ५ चुड़ैल, डाकिनी, ६ विष्णु।

कृतिन्-(सं०)-पुण्यवान, योग्य, पंडित। उ० धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम्। (मा० ४।१। श्लो० २)

क्रतु-दे० 'क्रतु'। कृत, बनाया हुआ। दे० 'कृत'।

कृत्य-(सं०)-१ कर्म वेदविहित कर्म २ भूत, प्रेत जिनका पूजन अभिचार के लिए होता है। ३ बौद्धों के मतानुसार प्रतिसंधि, भवांग आदि १४ प्रकार के कृत्य होते हैं।

कृत्या-(सं०)-१ तंत्रानुसार एक राक्षसी जिसे तांत्रिक लोग अपने अनुष्ठान से उत्पन्न करके किसी शत्रु का विनाश करने के लिए भेजते हैं। यह बहुत भयंकर मानी जाती है। इसका वर्णन वेदों तक में आया है। कहीं-कहीं इसकी उत्पत्ति याल से होने का भी वर्णन मिलता है। २ अभिचार, ३ दुष्टा तथा कर्कशा स्त्री। उ० १ जयति पर जंत्रमंत्राभिचार ग्रसन, कारमनि-कूट कृत्यादि हंता। (वि० २९)

कृत्रिम-(सं०)-१ जो असली न हो, नकली, बनावटी, २ रसौत, रसांजन, ३ कचियानमक, एक प्रकार का नमक।

कृपण-(सं०)-१ कंजूस, सूम, २ नीच, क्षुद्र।

कृपन-दे० 'कृपण'। उ० १ तै उदार, मैं कृपन, पतित मैं, तैं पुनीत स्रुति गावै। (वि० ११३)

कृपनाई-'कृपनाइ' का बहुवचन। उ० अगम लाग मोहि निज कृपनाईं। (मा० १।१४३।२) कृपनाई-कृपणता, कंजूसी। उ० दानि कहाउब अरु कृपनाई। (मा० २।३५।३)

कृपनु-दे० 'कृपण'। उ० कृपनु देइ, पाइय परो, बिन साधन सिधि होइ। (प्र० ७।४।३)

कृपा-(सं०)-१ अनुग्रह, दया मेहरबानी, २ क्षमा, माफी। उ० १ तुलसी पर तेरी कृपा निरुपाधि निरारी। (वि०३४) कृपानिधे-हे कृपा के घर, हे कृपा निधान। उ० कहु केहि कहिए कृपानिधे भवजनित बिपति अति। (वि० ११०) कृपापात्र-(सं०)-जिस पर कृपा की जाय, कृपा का अधिकारी। उ० जेहि निसि सकल जीव सूतहिं तव कृपापात्र जन जागै। (वि० ११६) कृपाभाजन-दे० 'कृपापात्र'। उ० राम कृपाभाजन सुम्ह ताता। (मा० ७।७४।२) कृपायतन-(सं० कृपा + आयतन)-कृपा के घर, अत्यन्त कृपावाले, कृपा के धाम। उ० सो मैं जाउँ कृपा यतन, सादर देखन सोइ। (मा० १।६१) कृपाहिं-१ कृपा से ही, २ कृपा के लिए ही। उ० १ रामसीय-रहस्य तुलसी कहत राम कृपाहिं। (गी० ७।२६) कृपाही-दे० 'कृपाहिं'। उ० १ तात बात फुरि राम कृपाहीं। (मा० २।२२६।१)

कृपाण-(सं०) तलवार, कटार, छुरा, एक शस्त्र विशेष।

कृपान-दे० 'कृपाण'। उ० सूल कृपान परिघ गिरि खंडा। (मा० ६।४०।४)

कृपाना-दे० 'कृपाण'। उ० कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना। (मा० ५।१०।१)

कृपानि-दे० 'कृपाण'।

कृपाल-दे० 'कृपालु'। उ०तिनकी गति कासी पति कृपाल। (वि० १३)

कृपाला-दे० 'कृपालु'। उ० ईस अस भव परम कृपाला। (मा० १।२८।४)

कृपालु-(सं०)-कृपा करनेवाला, दयालु। उ० सठ सेवक की प्रीति रुचि, रखिहहिं राम कृपालु। (मा० १।२८ क) कृपालुहि-कृपा करनेवाले को। उ० दे० केवट पालहिं'।

कृपालू-दे० 'कृपालु'। उ० बहु सुमग कहँ राम कृपालू। (गी० २।१५५।१)

कृपिण-दे० 'कृपण'।

कृपिन-दे० 'कृपण'। उ० प्रेमहू के प्रम, रक कृपिन के धन हैं। (गी० २।२६) कृपिनतर-अधिक कृपिण, अ'एकृत ज्यादा कंजूस। उ०हमरि घेर कस भयो कृपिनतर। (वि०७)

कृमि-(सं०)-छोटा कीड़ा, कीड़ा। उ० तुम्ह सों कपट करि कलप कलप कृमि ह्वैहौं नरक घोर को हौं। (वि० २२१)

कृश-(सं०) १ दुबला-पतला, क्षीण, २ स्वल्प, छोटा।

कृशानु-(स०)-आग, पावक, अग्नि। कृशानु -दे० 'कृशानु'। उ० मोहविपिन घन दहन कृशानु । (मा० ३।११।२)

कृषक-(स०)-१ किसान, खेतिहर, २ हल का फाल।

कृषानु-दे० 'कृशानु'।

कृषि-(स०)-खेती, कारत, किसानी।

कृषी-दे० 'कृषि'। उ० कृषी सफल मन सगुन सुभ, समउ सहय कमनीय। (प्र० ७।६।७)

कृष्ण-(स०)-१ श्याम काला, २ नीला, ३ वसुदेव के पुत्र, कन्हैया, विष्णु का पूर्णावतार, ४ हर महीने का पहिला पक्ष, कृष्ण पक्ष, ५ वेदव्यास, ६ अर्जुन, ७ कोयल, ८ कौवा, ९ सुरमा, १० लोहा, ११ एक राक्षस का नाम, १२ कलियुग, १३ चन्द्रमा का धब्बा, १४ सबको आकर्षित करनेवाला। उ० ३ तुलसी को न होइ सुनि कीरति कृष्ण कृपालु भगतिपथ राजी। (कृ० ६१) विशेष-यदुवंशी वसुदेव के पुत्र के रूप में कृष्ण नाम से विष्णु का पूर्ण अवतार हुआ था। इनकी माँ का नाम देवकी था जो भोजवंशी कन्या थीं। कृष्ण के मामा कंस ने वसुदेव और देवकी को मृत्यु भय से बंदी बना रखा था। वहीं कारागार में कृष्ण का जन्म हुआ। गोकुल में नंद के घर इनका पालन-पोषण हुआ। बाद में कंस ने कृष्ण को मरवा डालने के बहुत से उपाय किए पर अंत में स्वयं वही मारा गया। रुक्मिणी से कृष्ण का विवाह हुआ। महाभारत के युद्ध में कृष्ण पांडवों के पक्ष में थे। एक बहेलिए के तीर लगने से इनकी मृत्यु हुई। ये विष्णु के दस अवतारों में से आठवें माने जाते हैं। इनके पुत्र का नाम प्रद्युम्न था जो कामदेव का अवतार था। इनका युग द्वापर है। कृष्णतनय-कृष्ण का पुत्र प्रद्युम्न जो कामदेव का अवतार था।

कृष्णा-(स०)-१ काले रंग की स्त्री २ द्रौपदी जो जन्म के समय काली थी अतः इस नाम से पुकारी गई।

कृस्न-दे० 'कृष्ण'। उ० ३ जब जदुबंस कृस्न अवतारा। (मा० १।८८।१) कृस्नतनय-दे० 'कृष्णतनय'। उ० कृस्नतनय होइहि पति तोरा। (मा० १।८८।१)

कृस-दे० 'कृश'। उ० १ कृस तनु सीस जटा एक बेनी। (मा० ४।८।४)

कृसानु-दे० 'कृशानु'। उ० हेतु कृसानु भानु हिमकर को। (मा० १।१९।१) कृसानुहि-अग्नि को, पावक को। उ० दनुज गहन घन दहन कृसानुहि। (मा० ७।३०।४)

कृसानू-दे० 'कृशानु'। उ० का दिनकर कुल भयउ कृसानू। (मा० २।४८।४)

केंचुरि-(स० कंचुक) सर्प आदि के शरीर पर की खोल जो प्रति वर्ष आप से आप अलग हो जाती है। उ० तुलसी केंचुरि परिहर होत साँपहू दीनि। (दो० ८२)

केंचुरी-दे०'केंचुरि'। उ० तजै केंचुरी उरग कहँ होत अधिक अति दीठि। (स० ११०)

के (१)-(सं० कृतः) संबंध कारक का चिह्न, का।

के (२) (स० कः)-१ कौन, किसने, २ क्या। उ० १ कहहु कहिहि के कीन्ह भलाई। (मा० २।१८१।३)

केइँ-(स० क) किसने, कौन। उ० मनहित तोर प्रिया केइँ कीन्हा। (मा० २।२६।१)

केइ-दे० 'केइँ'।

केउ-कोइ, कोई भी। उ० मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा। (मा० २।६८।२)

केकइ-दे० 'कैकेयी'।

केकई-दे० 'कैकेयी'। उ० काई कुमति केकई केरी। (मा० १।४१।४)

केकय-(सं०)-काश्मीर या उसके आस पास के देश का प्राचीन जनपद। कैकयी इसी देश के राजा की राजकुमारी थी।

केकि-(स० केकिन्)-मोर, मयूर। उ० केकिकंठ दुति स्यामल अंगा। (मा० १।३१६।१) केकिहि-मोर का। उ० सुंदर केकिहि पेखु, बचन सुधासम असन अहि। (मा० १।१६१ ए) केकी-दे० 'केकि'। उ० तुलसी कामी कुमति खलि, केकी काक अनत। (वै० ३२)

केत-(स०)-१ घर भवन, २ केतु, ध्वजा, ३ बुद्धि।

केतकि-दे० 'केतकी'। उ० सीय बरन सम केतकि अति हिय हारि। (ब० ३२)

केतकी-(सं०)-एक प्रकार का छोटा सा पौधा जिसकी पत्तियाँ लंबी नुकीली और कंटिदार होती हैं। बरसात में इसमें फूल लगते हैं जो लंबे सफेद रंग के बहुत सुगंधित होते हैं। प्रसिद्धि के अनुसार इस पर भौंरा नहीं बैठता। इसका पुष्प शिवजी को नहीं चढ़ाया जाता।

केतन-(स०)-१ निमंत्रण, आह्वान, २ ध्वजा, झंडा, ३ चिह्न, ४ घर, ५ भीत, ६ काम।

केता-(स० कियत्)-कितना, किस मात्रा का। उ० श्यामहि भगतिहि अंतर केता। (मा० ७।११५।३) केते-(स कियत्)-कितने, किस संख्या में, बहुत। उ० इन जिहते हम केते। (मा० ३।११३।२)

केतिक-(स० कति+एक)-कितना, कितने, किस कदर उ० कालि लगन भलि केतिक बारा। (मा० २।११।२)

केतु-(स०)-१ ज्ञान, २ दीप्ति प्रकाश, ३ ध्वजा, पताका विष्णु के पैर का पताका, ४ निशान, चिह्न, ५ पुराणानुसार एक राक्षस कबंध। यह राक्षस समुद्र मंथन समय देवताओं के साथ बैठकर अमृतपान कर गया था इसलिए विष्णु ने इसका सर काट डाला। अमृत पान के कारण राक्षस अमर हो गया था अतः सिर और कबंध दोनों जीवित रहे। सिर का नाम राहु हुआ और कबंध केतु। पान करते समय सूर्य और चंद्रमा ने पहचान लिया था अत भय तक य उनके ग्रहण का कारण बनता है ६ एक पुच्छल तारा, जिसका उदय अशुभ माना जाता है। ७ नवग्रहों में एक ग्रह, ८ श्रेष्ठ, शिरोमणि। उ० ३ कुलिस-केतु जव जलज रेख बर। (वि० ६३) ६ उदय केतु सम हित सबही के। (मा० १।४।३)

केतुमती-(स०)-रावण की नानी अर्थात् सुमाली राक्षस की पत्नी का नाम।

केतुजा-(स० सुकेतु + जा)-सुकेतु यक्ष की पुत्री ताड़का राक्षसी। उ० पातुक-सुबाहु मारीच, मीयर-भरित मिति, मुँदपीर केतुजा, कुरोग जातुधान हैं। (ह० ३६)

केतू-दे० 'केतु'। उ० ६ लाग भय मम जहँ तहँ केतू। (मा० ६।१०२।४) ८ कहि अस ब्रह्म उठा रघुकुल केतू। (मा० १।२८२।४)

केतो-कितना। उ० काहू कान कियो न मैं कह्यो केतो कालि है। (क० ४।१०)
केदली-(सं० कदली)-केले का पेड़।
केदार-(सं०)-१ खेत के छोटे छोटे भाग, कियारी, २ आलवाल, थाला, थाँवला, ३ हिमालय का एक शिखर जहाँ केदारनाथ नाम का शिवलिंग है। उ० २ कनक कुधर-केदार, बीज सुंदर सुरमनि-बर। (क० ७।११५)
केन-(सं०)-१ किससे, किसी से, २ एक प्रसिद्ध उपनिषद्। उ० १ जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान। (मा०७।१०३ ख)
केयूर-(सं०)-बाँह में पहनने का एक आभूषण, बिजायट, अंगद। उ० सुभग श्रीवत्स केयूर कंकन हार किंकिनी रटनि कटितट रसाल। (वि० ५१)
केर-(सं० कृत, प्रा० केरो)-संबंध कारक का चिह्न, का, की, के। विशेष-केर केरे, या केरो आदि संबंध सूचक चिह्न केवल अवधी में प्रयुक्त होते हैं। उ० निमि सुंदरी केर सिंगारा। (मा० ६।१२।२)
केरा (१)-दे० 'केर'। उ० परम मित्र तापस नृप केरा। (मा०१।१७०।२) केरी-दे० 'केर', की। उ० सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी। (मा० २।७।२) केरे-दे० 'केर', के। उ० समय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। (मा० ४।२६।१)
केरा (२)-(सं० कदल)-केला। उ० सफल रसाल पूगफल केरा। (मा० २।६।३)
केरि-दे० 'केर'। उ० नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि। (मा० २।१२)
केरो-दे० 'केर'। उ० ठौर ठौर साहिबी होति है ख्याल कालकलि केरो। (वि० १४६)
केलि-(सं०)-१ खेल, क्रीड़ा, २ रति मैथुन, स्त्री प्रसंग, ३ हँसी, मजाक, ४ पृथ्वी, धरित्री। उ० १ भोजन सयन केलि लरिकाई। (मा० २।१०।३)
केलिगृह-(सं०)-१ नाट्य का घर, रंगशाला, २ कोहबर ३ स्त्री प्रसंग करने का सुसज्जित भवन। उ० २ सोभा सील सनेह सोहावनो, समउ केलिगृह गौने। (गी० १।१०५)
केवट-(सं०कैवर्त्त)-१ क्षत्रिय पिता और वैश्य माता से उत्पन्न जाति विशेष, मल्लाह निषाद। २ राम का भक्त गुहराज या निषाद, जिसने अपनी नाव पर उन्हें गंगा पार किया था। उ० २ सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे। (मा०२।१००) केवटपालहि-केवट के पालनेवाले राम को, भगवान को। उ० सोकि कृपालुहि देइगो केवटपालहि पीठि ? (दो० ४४) केवटाई-केवट का, मल्लाह का। उ० सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। (मा० २।१०१।२)
केवटु-दे० 'केवट'। उ० मागी नाव न केवटु आना। (मा० २।१००।२)
केवलं-दे० 'केवल'। उ० १ तुरीयमेव केवलं। (मा० ३।४। छं० ६) केवल-(सं०)-१ एकमात्र, अकेला, सिर्फ, २ शुद्ध, पवित्र, ३ असहाय, ४ एक प्रकार का ज्ञान, ५ निश्चित। उ० १ जो जप जाग जोग-व्रत-वर्जित केवल प्रेम न चहते। (वि० ९७)
केश (१)-(सं०)-१ रश्मि, किरण, २ बाल, कच, ३ ब्रह्म की एक शक्ति, ४ वरुण, ५ विश्व, संसार, ६ विष्णु, ७ सूर्य, ८ संपूर्ण।
केश (२)-(सं० क + ईश)-१ ब्रह्म और महादेव। क= ब्रह्मा, ईश=महादेव। २ पृथ्वी के ईश, भगवान। उ० १ केशव क्लेशहं केश वंदित पदद्वंद्व मंदाकिनी मूलभूत। (वि० ५६)
केशरिणि-सिंह की स्त्री, शेरनी। उ० शुंभ नि शुंभ कुंभीश रणकेशरिणि, क्रोध वारिधि वैरिवृंद बोरे। (वि० १५)
केशरी-दे० 'केसरी'।
केशरीकुमार-दे० 'केसरीकुमार'।
केशव-दे० 'केशव'। उ० १ दे० 'केश (२)'। केशव (सं०)-१ विष्णु का एक नाम, कृष्ण, २ सुंदर बाल वाला।
केस (१)-दे० 'केश'। उ० १ जयति मंदोदरी केस कर्षन विद्यमान दसकंठ-भट-मुकुट-मानी। (वि० २६)
केस (२)-दे० 'केश (२)'।
केसरि-दे० 'केसरी'। केसरिहि-केसरी को, सिंह को। उ० हरष विषाद न केसरिहि, कुंजर-गन निहार। (दो० ३८१)
केसरिकिसोर-दे० 'केसरीकिसोर'। उ० नाम कलिकामतरु केसरिकिसोर को। (ह० ६)
केसरी-(सं० केसरिन्)-१ सिंह, शेर, २ घोड़ा, ३ हनुमान के पिता का नाम। उ० १ दे० 'केसरीसुवन'।
केसरीकिसोर-(सं० केसरीकिशोर)-हनुमान।
केसरीकुमार-(सं०)-हनुमान। उ० सकै ना बिलोकि बेष केसरीकुमार को। (क० ५।१२)
केसरीसुवन-(सं०-(केसरी+सुत)-केसरी के पुत्र हनुमान। उ० जयति निर्भरानंद-संदोह, कपिकेसरी केसरी सुवन भुवनैकभर्त्ता। (वि० २६)
केसव-दे० 'केशव'। उ० १ केसव कहि न जाय का कहिए ! (वि० १११)
केसा-दे० 'केश'। उ० २ श्रवन समीप भए सित केसा। (मा० २.२।४)
केहरि-(सं० केसरी)-१ सिंह, शेर, २ घोड़ा, हनुमान के पिता केसरी। उ० १ मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू। (मा० २।२५।२)
केहरी-दे० 'केहरि'। उ० १ आयउ कपि केहरी असंका। (मा० ६।३६।२)
केहिं-दे० 'केहि'। उ० ३ असि मति सठ केहिं सोहि सिखाई। (मा० ६।१०।१)
केहि(१)-(सं० क )-१ किस, कौन, २ किसे, कौन को, ३ किसी ने, किसने, ४ कोई भी। उ० १ जिमि सर्वे सबइ छोर्ड केहि भाँती। (मा० २।१३।२)
केहि (२)-(सं० कस्य )-'के' का कर्म, संप्रदान तथा अधिकरण कारक में अवधी रूप।
केहीं-दे० 'केहि'। उ० १ सो मैं बरनि कहौं बिधि केहीं। (मा० २।१३१।४)
केही-दे० 'केहि'। उ० २ उतरु देउँ केहि बिधि केहि केही। (मा० २।१८।२)
केहूँ-(सं० कथम्) १ किसी प्रकार, २ कहीं भी।

केहू–१ किसी को, २ कोई, ३ किसी भी, किसी। उ० १ काहुहि लात चपेटन्हि केहू। (मा० ६।४४।४)

कैं–दे० 'कै (१)'। उ० १ नर नाग सुरासुर जाचक जो तुम सों मन भावत पायो न कैं। (क० ७।३८)

कै (१)–(सं० क)–१ कौन, किसने, २ किसके। उ० कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा। (मा० १।२७०।२) २ तुलसी प्रभु तरु तर बिलँब किए प्रेम कनौड़े कै न। (गी० २।२४)

कै (२)–(सं० कति<प्रा० कइ)–कितना, कितनी संख्या में।

कै (३)–(सं० कि)–या, अथवा, या तो। उ० बल कैधौं बीररस, धीरज कै, साहस, कै तुलसी सरीर धरे सबनि को सार सो। (ह० ४)

कै (४)–(सं० कृत:)–का, की, के, संबंध कारक का चिह्न। उ० धोबी कै सो कूकर न घर का न घाट को। (क० ७।६६) रामकथा कै मिति जग नाहीं। (मा० १।३३।३)

कै (५)–(फा० कि)–कि। उ० तुलसी सरल भाय रघुराय माय मानी, काय मन बानी हूँ न जानी कै मतेई है। (क० २।३)

कै (६)–(सं० कृते)–के लिए, को।

कै (७)–(सं० कृ)–करके, काम करके, काम कर। उ० गौतम सिधारे गृह गौनो सो लिवाइ कै। (क० २।१)

कैकइ–दे० 'कैकेई'। उ० भूप प्रीति कैकइ कठिनाई। (मा० २।३७।२) कैकइहि–कैकेई को, रानी कैकयी को। उ० जहँ तहँ देहिं कैकइहि गारी। (मा० २।४७।१)

कैकई–दे० 'कैकेई'। उ० साँझ समय सानंद नृपु गयउ कैकई गेहँ। (मा० २।२४)

कैकय (१)–(सं० कैकय)–आज के कश्मीर के पास का प्राचीन देश या जनपद। कैकयी यहीं की राजकुमारी थीं। उ० विस्वविदित एक कैकय देसू। (मा० १।१५३।१)

कैकय (२)–(सं० कैकेय)–कैकय देश का राजा। कैकेयी के पिता। कैकयनंदिनि–कैकय की पुत्री, कैकेयी। उ० सावत सुत सुनि कैकयनंदिनि। (मा० २।१५४।१) कैकयसुता–कैकेयी। उ० कैकयसुता सुमित्रा दोऊ। (मा० १।१९०।१)

कैकेइ–दे० 'कैकेई'।

कैकेई–(सं०कैकेयी)–राजा दशरथ की सबसे छोटी रानी और भरत की माता जिसने अपनी दासी मंथरा के बहकाने से रामचंद्र को वनवास दिलवाया था। यह केकयराज की पुत्री और अनिन्द्य सुन्दरी थी। उ० गए जेहिं भवन भूप कैकेई। (मा० २।३८।२)

कैकेय–(सं०) कैकय गोत्र उत्पन्न पुरुष, कैकय देश का राजा।

कैकेयी–(सं०)–दे० 'कैकेई'।

कैटभ–(सं०)–मधु नामक दैत्य का छोटा भाई जिसे विष्णु ने मारा था। उ० अति बल मधु कैटभ जेहिं मारे। (मा० ६।३।४) कैटभारि–(सं० कैटभ+अरि)–कैटभ को मारने वाले भगवान्, हे भगवान! उ० कहत 'जय जय जय जगपति कैटभारे।' (गी० १।२६)

कैतव–(सं०)–१ धोखा, छल, २ जुआ, द्यूत, क्रीड़ा, ३ एक मणि, ४ धतूरा।

कैधौं–(सं० कि+ि)–अथवा, या, वा, किधौं। उ० सुखमा को ढेर कैधौं, सुकृत सुमेर कैधौं। (क० ७।१२६)

कैर–(?)–कोई।

कैरव (१)–(सं०)–१ कुमुदिनी, कमलिनी, कोईं, २ सफेद कमल, ३ शत्रु, ४ जुआरी, ५ धूर्त। उ० १ सर्व मनहुँ बिधु उदय मुदित कैरव-कुल्मी। (जा० १९४)

कैरव (२)–(सं० कैरवी)–चाँदनी रात।

कैलास–(सं०)–१ हिमालय की एक चोटी का नाम। पुराणों के अनुसार यह शिवजी का स्थान है। शिव लोक। एक पर्वत जिस पर शिवजी निवास करते हैं। २ कुबेर का निवास। उ० १ कौतुकहीं कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ। (मा० १।१७९) कैलासहि–कैलास पर, कैलास पर्वत के ऊपर। उ० जबहिं संभु कैलासहिं आए। (मा० १।१०३।२)

कैलासा–दे० 'कैलास'। उ० १ गनन्ह समेत बसहिं कैलासा। (मा० १।१०३।३)

कैलासू–दे० 'कैलास'। उ० १ परम रम्य गिरिबर कैलासू। (मा० १।१०५।४)

कैवल्य–(सं०)–१ शुद्धता, निर्लिप्तता, २ मोक्ष, निर्वाण मुक्ति, अपवर्ग। उ० २ सो कैवल्य परमपद लहई। (मा० ७।११९।१) कैवल्यपति–मोक्ष के स्वामी, भगवान्। उ० कैवल्यपति, जगपति, रमापति, प्रानपति गति पावन। (वि० १३६) कैवल्यम्–दे० 'कैवल्य'। उ० २ यो ददाति सतां शंभु: कैवल्यमपि दुर्लभम्। (मा० ६।१। श्लो० ३)

कैसउ–कैसा भी, किसी प्रकार का भी। कैसउ–दे० 'कैसउ'। कैसा–(सं० कीदृश)–१ किस प्रकार का, किस ढंग का। २ की भाँति। उ० १ तुम्हहि रघुपतिहि अंतर कैसा। (मा० ६।६।३) कैसी–'कैसा' का स्त्रीलिंग। दे० 'कैसा'। किस प्रकार की। उ० भरतदसा तेहि अवसर कैसी। (मा० २।२१४।४) कैसें–दे० 'कैसे'। उ० १ उभय बीच सिय सोहति कैसें। (मा० २।१२३।१) कैसे–१ किस प्रकार, किस प्रकार से, २. क्या, किस लिए। उ० १ कैसे कहै तुलसी वृषासुर के बरदानि! (क० ७।१५०) कैसेउ–कैसे भी, किसी प्रकार भी। उ० कैसेउ पाँवर पातकी जेहि लई नाम की ओट। (वि० १६१) कैसेहुँ–१ किसी भी प्रकार से, कैसे भी। २ कैसा भी, किसी भी प्रकार का। उ० १ कैसेहुँ नाम लेहि कोउ पामर मुनि सादर आगे ह्वै लेते। (वि० ९४१) कैसेहु–दे० 'कैसेहुँ'। उ० २ ज्ञान परसु दै मधुप पठायो बिरह बेलि कैसहु कटिनाई। (कृ० ४६)

कैसो–१ का सा, की भाँति, की तरह, के समान, २ कैसा, किस प्रकार का, किस प्रकार से। उ० १ भाव गिराधर बैरी का बंधु बिभीषन कीन्ह पुरंदर कैसो। (क० ७।४)

कैहुँ (१)–(सं० कुह)–किसी जगह, किसी स्थान पर।

कैहूँ (२)–(?)–१ किसी तरह, किसी प्रकार, २ किसी भी। उ० १ पर्यो है पुकार दर्पाये भाग्य कैहू कहूँ। (क० ७।१३२)

कोंछें–दे० 'कोछ'। गोद में। उ० गयउ तुम्हारेहि कोंछें घाली। (मा० ७।१८।१)

को (१)–(सं० क)–१ कौन, किसने २ क्या, ३ किसने ४ किस। उ० १ उपमा का को है? (गी० १।८०)

को (२)-(सं० कर्म)-के लिए, को, कर्म तथा सम्प्रदान कारक का चिन्ह। उ० उपमा को को है ? (गी० ११८०)
को (३)-(सं० कृत )-का के, सबंध कारक का चिह्न। उ० मनहुँ को मन मोहै। (गी० ११८०)
कोइ-दे० 'कोई'। उ० १ गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सबु कोइ। (मा० १।४८ क) कोइ कोई-विरले, कम लोग, शायद ही कोई। उ० कहै कौन रसन मौन जाने कोइ कोई। (कृ० १) कोई-(सं० कोपि)-१ ऐसा एक जो अज्ञात हो, न जाने कौन एक, २ बहुत में से चाहे जो एक, ऐसा एक जो अनिर्दिष्ट हो। ३ एक भी, एक भी आदमी, ४ विरले ही, बहुत कम, ५ लोग। उ० ३ यह कुचालि कछु जान न कोई। (मा० २।२३।४)
कोउ-दे० 'कोई'। उ० ५ सबु कोउ कहइ रामु सुठि साधू। (मा० २।३२।३) कोउ कोऊ-दे० 'कोइ कोई'। उ० यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ। (मा० ७।४।२) कोऊ-दे० 'कोई'। उ० ६ मिलत धरें तन कह सबु कोऊ। (मा० २।१११।१)
कोए-(सं० कोण)-आँख के ढेले, आँख के कोने। उ० रुचिर पलक लोचन जुगतारक स्याम, अरुन सित कोए। (गी० ७।१२)
कोक-(सं०)-१ चकवा पक्षी, चक्रवाक, सुरखाब, २ विष्णु, ३ भेड़िया, ४ रतिशास्त्र के एक प्रसिद्ध आचार्य, ५ मेढक। उ० १ मनहुँ कोक कोकी कमल दीन विहीन तमारि। (मा० २।८६) कोकी-कोक या चकवा की स्त्री। उ० दे० 'कोक'।
कोकनद-(सं०)-१ लाल कमल कमल, २ लाल कुमुद। उ० १ लोक-लोकप-कोक कोकनद सोकहर हंस हनुमान कल्यानकर्ता। (वि० २६)
कोका-१ चकवा-चकई, २ दे० 'कोक'। उ० १ निसि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका। (मा० १।८४।३)
कोकिल-(सं०) कोयल पक्षी, कोकिला। इसकी वाणी बड़ी मधुर होती है। उ० गावहिं मंगल कोकिल बयनीं। (मा० २।८।४) कोकिलन-कोकिल का बहुवचन, कोयलें। उ० तुलसी पावस के समय धरी कोकिलन मौन। (दो० २६७)
कोकिला-(सं०) कोयल पिक। उ० मधुप निकर कोकिला प्रबीना। (मा० ३।३०।५)
कोकू-दे० 'कोक'। उ० सकि सर छुअत बिकल जिमि कोकू। (मा० २।२६।२)
कोखि-(सं० कुक्षि)-१ उदर, पेट, जठर २ गर्भ, गर्भाशय। उ० २ कौसिला की कोखि पर तोषि तन वारिये री। (क० १।१२) मु० कोखि जुड़ानी-पुत्रवती हुई। उ० आनँद अवनि, राजरानी सब माँगहु कोखि जुड़ानी। (गी० १।४)
कोछ-(सं० कक्ष)-१ गोद, २ स्त्रियों के अंचल का एक कोना।
कोट (१)-(सं०)-१ दुर्ग, गढ़, किला, २ शहर-पनाह प्राचीर, परकोटा, ३ राजमहल। उ० २ कनक कोट कर परम प्रकासा। (मा० २।३। छं० १)
कोट (२)-(सं० कोटि)-समूह, झुंड।
कोटर-(सं०) पेड़ का खोखला भाग, खोखली जगह, पेड़ का तने आदि का वह खोखला भाग जिसमें पक्षी रहते हैं। उ० महा बिटप कोटर महुँ जाई। (मा० ७।१०७।४)
कोटि-(सं०)-१ सौ लाख की संख्या, करोड़, २ अमित, झुंड, बहुत अधिक, ३ धनुष का अगला भाग, ४ त्रिभुज की एक भुजा, ५ किसी अस्त्र की नोक या धार, ६ उत्तमता, उत्कृष्टता, ७ किसी वादविवाद का पूर्वपक्ष, ८ वर्ग, श्रेणी, दर्जा। उ० २ कहइ करहु किन कोटि उपाया। (मा० २।३३।२) कोटिक-(सं० कोटि)-करोड़ों, अमित, बहुत। उ० गिरिसम होहिं कि कोटिक गुंजा। (मा० २।२८।३) कोटिन-करोड़ों, अनेक। कोटिन्ह-करोड़ों, कोटि का बहुवचन। उ० हय गय कोटिन्ह केलि मृग पुर पसु चातक मोर। (मा० २।८३) कोटिहुँ-करोड़ों भी, असंख्य भी। उ० जाइ न कोटिहुँ बदन बखानी। (मा० १।१००।४) कोटिहु-करोड़ों भी। उ० मोहजनित मल लाग बिबिध बिधि, कोटिहु जतन न जाई। (वि० ८२) कोटिहूँ-करोड़ भी, अनेक भी। उ० जेहँत जो बरबा अनहु सो सुख कोटिहूँ न परै कह्यो। (मा० १।६१। छं०१)
कोटिहू-दे० 'कोटिहु'।
कोटी-दे० 'कोटि'।
कोटरी-(सं० कोष्ठक)-छोटा कमरा, छोटा घर। उ० अघ अवगुनन्हि की कोठरी करि कृपा मुदमंगल भरी। (गी० ३।१७)
कोठि-(सं० कोष्ठ)-१ अनाज रखने का कोठिला, बखार, गंज, २ ढेर, समूह। उ० २ सोक कलंक कोठि जनि होहू। (मा० २।५०।१)
कोठिला-(सं० कोष्ठ) अनाज भरने का बड़ा सा कच्ची मट्टी का बना बरतन। कच्ची बखार। उ० सुपकि न रहत, कह्यो कछु चाहत, हँहै कीच कोठिला धोए। (कृ० ११)
कोढ़-(सं० कुष्ठ)-एक प्रकार का रक्त और त्वचा संबंधी रोग जो प्रायः संक्रामक और पुश्तानुक्रमिक होता है। वैद्यक शास्त्रानुसार यह १८ प्रकार का होता है। गलित कोढ़ में अंग सड़-गलकर गिरने लगता है। कुष्ट रोग। कोढ़ की खाजु-[कोढ़ तो स्वयं अत्यंत दुखदायी रोग है, उसमें भी खुजली हो जाय तो परिस्थिति और भी दुख दायी हो जाती है] दुःख पर दुःख, विपत्ति पर विपत्ति। उ० एक तो कराल कलिकाल सूल-मूल तामें, कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की। (क० ७।१७७)
कोतल-(फा०)-१ सजा-सजाया घोड़ा, जिस पर कोई सवार न हो, जलूसी घोड़ा, २ राजा की सवारी का घोड़ा। उ० २ कोतल संग जाहिं डोरिआए। (मा० २।२०३।२)
कोतवाल-(फा० कुतवाल, तु० सं० कोटपाल) नगर में पुलिस का एक बड़ा अफसर। उ० कालनाथ कोतवाल, दंडकारि दंडपानि, सभासद गनप से अमित अनूप हैं। (क० ७।१७१)
कोदंड-(सं०)-धनुष, कमान। उ० कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं। (मा० १।२६१। छं० १)
कोदंडा-दे० 'कोदंड'। उ० करि बिनय कर सर कोदंडा। (मा० १।१४०।४)
कोदव-(सं० कोद्रव)-कोदो, एक प्रकार का धान जिसका

केहू–१ किसी को, २ काहू, ३ किसी भी, किसी। उ० १ काहुहि लात चपेटन्हि केहू। (मा० ६।४४।४)
कै–दे० 'कै (१)'। उ० १ नर नाग सुरासुर जाचक जो तुम सों मन भावत पायो न कै। (क० ७।२८)
कै (१)–(सं० क)–१ कौन, कितने, २ किसके। उ० कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा। (मा० १।२७०।२) २ तुलसी प्रभु तरु तर बिलँब किए प्रेम कनौड़े कै न। (गी० २।२४)
कै (२)–(सं० कति<प्रा० कइ)–कितना, कितनी संख्या में।
कै (३)–(सं० किं)–या, अथवा, या तो। उ० यह कैधौं बीररस, धीरज कै, साहस, कै तुलसी सरीर धरे सबनि को सार सो। (ह० ४)
कै (४)–(सं० कृत:)–का, की, के, संबंध कारक का चिह्न। उ० धोबी कैसो कूकर न घर को न घाट को। (क० ७।६६) रामकथा कै मिति जग नाहीं। (मा० १।३३।३)
कै (५)–(फा० कि)–कि। उ० तुलसी सरल भाय रघुराय माय मानी, काय मन बानी हूँ न जानी कै मतेई है। (क० २।३)
कै (६)–(सं० कृते)–के लिए, को।
कै (७)–(सं० कृ)–करके, काम करके, काम कर। उ० गौतम सिधारे गृह गौनो सो लिवाइ कै। (क० २।८)
कैकइ–दे० 'कैकेई'। उ० भूप प्रीति कैकइ कठिनाई। (मा० २।३७।२) कैकइहि–कैकेई को, रानी केकयी को। उ० जहँ तहँ देहिं कैकइहि गारी। (मा० २।४७।१)
कैकई–दे० 'कैकेई'। उ० साँझ समय सानंद नृपु गयउ कैकई गेहँ। (मा० २।२४)
कैकय (१)–(सं० केकय)–आज के काश्मीर के पास का प्राचीन देश या जनपद। कैकेयी यहीं की राजकुमारी थीं। उ० बिस्वबिदित एक कैकय देसू। (मा० १।१५३।१)
कैकय (२)–(सं० कैकेय)–केकय देश का राजा। कैकेयी के पिता। कैकयनंदिनि–कैकय की पुत्री, कैकयी। उ० आवत सुत सुनि कैकयनंदिनि। (मा० २।१५९।१) कैकयसुता–कैकेयी। उ० कैकयसुता सुमित्रा दोऊ। (मा० १।१५९।१)
कैकेइ–दे० 'कैकेई'।
कैकेई–(सं०कैकेयी)–राजा दशरथ की सबसे छोटी रानी और भरत की माता जिसने अपनी दासी मंथरा के बहकाने से रामचंद्र को वनवास दिलवाया था। यह केकयराज की पुत्री और अनिन्द्य सुन्दरी थी। उ० गए जेहिं भवन भूप कैकेई। (मा० २।२८।२)
कैकेय–(सं०) कैकय गोत्र उत्पन्न पुरुष, केकय देश का राजा।
कैकेयी–(सं०)–दे० 'कैकेई'।
कैटभ–(सं०)–मधु नामक दैत्य का छोटा भाई जिसे विष्णु ने मारा था। उ० चरित बल मधु कैटभ जेहिं मारे। (मा० ६।१।४) कैटभारि–(सं० कैटभ+अरि)–कैटभ को मारने वाले भगवान् के भगवान। उ० बदत 'जय जय जय जयति कैटभार'। (गी० १।२६)
कैतव–(सं०)–१ धोखा, छल, २ जुआ, द्यूत, क्रीड़ा, ३ एक मणि, ४ धतूरा।
कैधौं–(सं० किं+हि)–अथवा, या, वा, किधौं। उ० सुषमा को बेद कैधौं, मुकुत सुमेरु कैधौं। (क० ७।१४६)
कैर–(?)–कोढ़।
कैरव (१)–(सं०)–१ कुमुदिनी, कमलिनी, कोंई, २ सफेद कमल, ३ शत्रु, ४ जुआरी, ५ धूर्त। उ० १ सोहै मनहुँ बिधु उदय मुदित कैरव-कली। (जा० १२४)
कैरव (२)–(सं० कैरवी)–चाँदनी रात।
कैलास–(सं०)–१ हिमालय की एक चोटी का नाम। पुराणों के अनुसार यह शिवजी का स्थान है। शिवलोक। एक पर्वत जिस पर शिवजी निवास करते हैं। २ कुबेर का निवास। उ० १ कौतुकहीं कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ। (मा० १।१७६) कैलासहिं–कैलास पर, कैलास पर्वत के ऊपर। उ० जबहिं संभु कैलासहिं आए। (मा० १।१०३।२)
कैलासा–दे० 'कैलास'। उ० १ गन्ह समेत बसहिं कैलासा। (मा० १।१०३।३)
कैलासु–दे० 'कैलास'। उ० १ परम रम्य गिरिबरु कैलासू। (मा० १।१०५।४)
कैवल्य–(सं०)–१ शुद्धता, निर्लिप्तता, २ मोक्ष, निर्वाण, मुक्ति, अपवर्ग। उ० २ सो कैवल्य परमपद लहई। (मा० ७।११९।१) कैवल्यपति–मोक्ष के स्वामी, भगवान्। उ० कैवल्यपति, जगपति, रमापति, प्रानपति गति कारन। (वि० १३६) कैवल्यम्–दे० 'कैवल्य'। उ० २ यो ददाति सतां शंभु कैवल्यमपि दुर्लभम्। (मा० ६।१। श्लो० ३)
कैसउ–कैसा भी, किसी प्रकार का भी। दसहु दे० 'कैसउ'। कैसा–(सं० कीदृश)–१ किस प्रकार का, किस ढंग का। २ की भाँति। उ० १ तुम्हहि रघुपतिहि अंतर कैसा। (मा० ६।६।२) कैसी–'कैसा' का स्त्रीलिंग। दे० 'कैसा'। किस प्रकार की। उ० भरतदसा तेहि अवसर कैसी। (मा० २।२३३।४) कैसें–दे० 'कैसे'। उ० १ उभय बीच सिय सोहति कैसें। (मा० २।१२३।१) कैसे–१ किस प्रकार, किस प्रकार से, २ क्यों, किस लिए। उ० १ कैसे कहै तुलसी वृषासुर के बरदानि! (क० ७।१००) कैसेउ–कैसे भी, किसी प्रकार भी। उ० कैसेउ पाँवर पातकी जेहि लई नाम की ओट। (वि० १९१) कैसेहुँ–१ किसी भी प्रकार से, कैसे भी। २ कैसा भी, किसी भी प्रकार का। उ० १ कैसेहुँ नाम लेहि कोउ पामर सुनि सादर आगे ह्वै लेत। (वि० २४१) कैसेहु–दे० 'कैसेहुँ'। उ० २ नाम परसु दै मधुप पठायो बिरह बेलि कैसेहु कठिनाइ। (कृ० ४६)
कैसो–१ का सा, की भाँति, की तरह, के समान, २ कैसा, किस प्रकार का, किस प्रकार से। उ० १ भाव भिगावर बैरी को प्रभु पिसीयन कौन पुरंदर कैसो। (क० ७।७)
कैहूँ (१)–(सं० कुह)–किसी जगह, किसी स्थान पर।
कैहूँ (२) (?)–१ किसी तरह, किसी प्रकार, २ किसी भी। उ० १ पर्यो है दुरत दुर्गोध मान्द कैहू कहूँ। (क० ७।१६२)
कोंई–दे० 'कोंइ'। गोद में। उ० गावत सुन्दरीहि कोंई बाली। (मा० ७।७८।१)
को (१)–(सं० कः)–१ कौन, किसने २ क्या, ३ किससे ४ किसे। उ० १ उपमायों को है। (गी० १।८०)

को (२)-(सं० कक्ष)-के लिए, को, कर्म तथा सम्प्रदान कारक का चिन्ह। उ० उपमा को को है ? (गी० १।८०)

को (३)-(स० कृतः)-का के, सबंध कारक का चिह्न। उ० मनहुँ को मन मोहै। (गी० १।८०)

कोइ-दे० 'कोई'। उ० ५ गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सबु कोइ। (मा० १।४८ क) कोइ कोई-विरले, कम लोग, शायद ही कोई। उ० कहै कौन रसन मौन जाने कोइ कोई। (कृ० १) कोई-(स० कोपि)-१ ऐसा एक जो अज्ञात हो, न जाने कौन एक, २ बहुत में से चाहे जो एक, ऐसा एक जो अनिर्दिष्ट हो। ३ एक भी, एक भी आदमी, ४ विरले ही, बहुत कम, ५ लोग। उ० ३ यह कुचालि कछु जान न कोई। (मा० २।२३।४)

कोउ-दे० 'कोइ'। उ० ५ सबु कोउ कहइ रामु सुठि साधू। (मा० २।३२।३) कोउ कोऊ-दे० 'कोइ कोई'। उ० यह प्रसग जानइ कोउ कोऊ। (मा० ७।४।२) कोऊ-दे० 'कोई'। उ० ६ सिव्रत धरें तन कह सबु कोऊ। (मा० २।१११।१)

कोए-(स० कोण)-आँख के ढेले, आँख के कोने। उ० रुचिर पलक लोचन जुगतारक स्याम, अरुन सित कोए। (गी० ७।१२)

कोक-(स०)-१ चकवा पक्षी, चक्रवाक, सुरख़ाब, २ विष्णु, ३ भेड़िया, ४ रतिशास्त्र के एक प्रसिद्ध आचार्य, ५ मेढक। उ० १ मनहुँ कोक कोकी कमल दीन विहीन तमारि। (मा० २।८६) कोकी-कोक या चकवा की स्त्री। उ० दे० 'कोक'।

कोकनद-(स०)-१ लाल कमल कमल, २ लाल कुमुद। उ० १ लोक-लोकप-कोक कोकनद सोकहर-हस हनुमान कल्यानकर्ता। (वि० २६)

कोका-१ चकवा चकई, २ दे० 'कोक'। उ० १ निसि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका। (मा० १।८५।३)

कोकिल-(स०)-कोयल पक्षी, कोकिला। इसकी वाणी बड़ी मधुर होती है। उ० गावहिं मगल कोकिल बयनीं। (मा० २।८।४) कोकिलन-कोकिल का बहुवचन, कोयलें। उ० तुलसी पावस के समय धरी कोकिलन मौन। (दो० ५६४)

कोकिला-(स०) कोयल, पिक। उ० मधुप निकर कोकिला प्रबीना। (मा० ३।३०।५)

कोकू-दे० 'कोक'। उ० ससि कर छुअत बिकल जिमि कोकू। (मा० २।२१।२)

कोखि-(स० कुक्षि)-१ उदर, पेट, जठर २ गर्भ, गर्भाशय। उ० २ कौसिला की कोखि पर तोषि तन वारिये री। (क० १।१२) मु० कोखि जुड़ानी-पुत्रवती हुई। उ० आनँद अवनि, राजरानीं सब माँगहु कोखि जुड़ानी। (गी० १।४)

कोछ-(स० कक्ष)-१ गोद, २ स्त्रियों के अचल का एक कोना।

कोट (१)-(स०)-१ दुर्ग, गढ़, किला, २ शहर पनाह, प्राचीर, परकोटा, ३ राजमहल। उ० २ कनक कोट कर परम प्रकासा। (मा० ५।३। छ० १)

कोट (२)-(स० कोटि)-समूह, झुंड।

कोटर-(स०) पेड़ का खोखला भाग, खोखली जगह, पेड़ का तने आदि का वह खोखला भाग जिसमें पक्षी रहते हैं। उ० महा बिटप कोटर महुँ जाई। (मा० ७।१०७।४)

कोटि-(स०)-१ सौ लाख की सख्या, करोड़, २ अमित, झुंड, बहुत अधिक, ३ धनुष का अगला भाग, ४ त्रिभुज की एक भुजा, ५ किसी अस्त्र की नोक या धार, ६ उत्तमता, उत्कृष्टता, ७ किसी वादविवाद का पूर्वपक्ष, ८ वर्ग, श्रेणी, दर्जा। उ० २ कहहु करहु किन कोटि उपाया। (मा० २।३३।३) कोटिक-(स० कोटि)-करोड़ों, अमित, बहुत। उ० गिरिसम होहिं कि कोटिक गुजा। (मा० २।२८।३) कोटिन-करोड़ों, अनेक। कोटिन्ह-करोड़ों, कोटि का बहुवचन। उ० हय गय कोटिन्ह केलि मृग पुर पसु चातक मोर। (मा० २।८३) कोटिहुँ-करोड़ों भी, असख्य भी। उ० जाइ न कोटिहुँ बदन बखानी। (मा० १।१००।४) कोटिहु-करोड़ों भी। उ० मोहजनित मल लाग बिबिध बिधि कोटिहु जतन न जाई। (वि० ८२) कोटिहूँ-करोड़ों भी, अनेक भी। उ० जेवँत जो बढ्यो अनंदु सो मुख कोटिहूँ न परै कह्यो। (मा० १।१६१। छं० १)

कोटिहू-दे० 'कोटिहु'।

कोटी-दे० 'कोटि'।

कोठरी-(स० कोष्ठक)-छोटा कमरा, छोटा घर। उ० अघ अवगुनन्हि की कोठरी करि कृपा मुदमगल भरी। (गी० ३।१७)

कोठि-(स० कोष्ठ)-१ अनाज रखने का कोठिला, बखार, गज, २ ढेर, समूह। उ० २ सोक कलक कोठि जनि होहू। (मा० २।५०।१)

कोठिला-(स० कोष्ठ) अनाज भरने का बड़ा सा कच्ची मट्टी का बना बरतन। कच्ची बखार। उ० चुपकि न रहत, कह्यो कछु चाहत, ह्वैहै कीच कोठिला धोए। (कृ० ११)

कोढ़-(स० कुष्ठ)-एक प्रकार का रक्त और त्वचा सबधी रोग जो प्राय सक्रामक और पुरुषानुक्रमिक होता है। वैद्यक शास्त्रानुसार यह १८ प्रकार का होता है। गलित कोढ़ में अग सड़ गलकर गिरने लगता है। कुष्ट रोग। कोढ़ की खाजु-[कोढ़ तो स्वय अत्यत दुखदायी रोग है, उसमें भी खुजली हो जाय तो परिस्थिति और भी दुख दायी हो जाती है ] दु ख पर दु ख, विपत्ति पर विपत्ति। उ० एक तो कराल कलिकाल सूल-मूल तामें, कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की। (क० ७।१७७)

कोतल-(फा०)-१ सजा-सजाया घोड़ा, जिस पर कोई सवार न हो, जलूसी घोड़ा, २ राजा की सवारी का घोड़ा। उ० २ कोतल सग जाहिं डोरिआए। (मा० २।२०३।२)

कोतवाल-(फा० कुतवाल, तु० स० कोट्टपाल) नगर में पुलिस का एक बड़ा अफ़सर। उ० कासीनाथ कोतवाल, दुखकारि दडपानि, सभासद गनप से अमित अनूप हैं। (क० ७।१७१)

कोदंड-(स०)-धनुष, कमान। उ० कोदड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं। (मा० १।२६१। छ० १)

कोदंडा-दे० 'कोदड'। उ० कटि निषग कर सर कोदडा। (मा० १।१४७।४)

कोदव-(स० कोद्रव)-कोदो, एक प्रकार का धान।

खाना बुरा समझा जाता है। वैद्यक के अनुसार भी इसका खाना वर्जित है। उ० परइ कि कोदव बालि सुसाली। (मा० २।२६१।२)

कोदौ–दे० 'कोदव'। उ० हुतो ललाव कृसगात खात खरि मोद पाइ कोदो-कनै। (गी० ५।४०)

कोन (१)-(सं० कोण)-कोना।

कोन (२)-(प्रा० कवण)-कौन।

कोना–किनारा, छोर, गोशा, कोण। उ० लोचन जलु रह लोचन कोना। (मा० १।२४१।१)

कोने (१) कोना, किनारा, एक छोर। उ० हँसिये ललित उरमिला, परसपर लखत सुलोचन-कोन। (गी० १।१०४)

कोन (२)-(प्रा० कयण)-किसको, किसे।

कोप–(सं०)–क्रोध, गुस्सा। उ० जब तेहिं जानेउ मरम तब श्राप कोप करि दीन्ह। (मा० १।१२३)

कोपर (१)-(सं० कपाल)-किसी धातु का बड़ा थाल, जिसमें एक ओर उसे सरलता से उठाने के लिए कुंडा लगा रहता है। उ० कनक कलस भरि कोपर थारा। (मा० १।३०४।१)

कोपर ( )-१ कोंपल, अंकुर, पल्लव।

कोपहिं–क्रोध करें, क्रोध करते हैं। उ० औ हरि हर कोपहिं मनमाहीं। (मा० १।१६६।२) कोपि (१)-क्रोधित होकर। उ० सुनत कोपि कपि कुंजर धाए। (मा० ६।४७।१) कोपिहिं–१ क्रोधित होंगे, २ क्रोधित हुए। उ० १ जबहिं समर कोपिहिं रघुनायक। (मा० ६।२७।३) कोपे–१ क्रोधित हुए, २ कुपित, क्रोधित। उ० १ रिपु परम कोपे जानि। (मा० ३।२०। छं० ४) कोपेउ–क्रुद्ध हुए, कुपित हुए। उ० कोपेउ समर श्रीराम। (मा० ३।२०। छं० १)

कोपा–दे० 'कोप'। उ० सुनहु बचन बिप परिहरि कोपा। (मा० ७।६।२)

कोपि (२)-१ कोइ, कोई भी, २ कौन। उ० १ गुन दूषक ब्रात न कोपि गुनी। (मा० ७।१०१।४)

कोपी–(सं० कोपिन्)-कोप करनेवाला, क्रोधी। उ० रन दुर्मद रावन अति कोपी। (मा० ६।८२।२)

कोपु–दे० 'कोप'। उ० बीरभद्र करि कोपु पठाए। (मा० १।६४।१)

कोबिद–(सं० कोविद) पंडित, विद्वान्। उ० सत्यसार कवि कोबिद जोगी। (मा० २।४४।४)

कोमल–दे० 'कोमल'। उ० १ कृपालु दीन कोमल। (मा० ३।४। छं० १) कोमल–(सं०)–१ नरम, मुलायम, नाज़ुक, २ अपरिपक्व, कच्चा, ३ सुंदर, ४ स्वर का एक भेद, ५ मधुर। उ० १ सुनि उमा बचन विनीत कोमल सकल अबला सोचहीं। (मा० १।९७। छं० १) कोमली–दोनों कोमल। उ० कामलेन्द्र पदकंजमंजुलौ कोमलावज महेश वन्दितौ। (मा० ७।१। श्लो० २)

कोमलता–(सं०)–१ मृदुलता, नरमी, २ मधुरता, नम्रता। उ० १ मनि धीरि कचोरि न कोमलता। (मा० ७।१०२।१)

कोमलताई–दे० 'कोमलता'। उ० १ भरत भाग्य प्रभु कोमलताई। (मा० ७।११।३)

कोय–(सं० कोपि) १ कोई, २ कोई भी, शायद ही कोई। उ० १ सकल काम पूरन करै जानै सब कोय। (वि० १०८) २ तुलसी कहत सुनत सब समुझत कोय। (ब० ६३)

कोये–(सं० कोण)-आँख का कोना। उ० तुलसी मेवभुजहिं करति मातु अति प्रेम-मगन मन, सजल सुलोचन कोये। (गी० १।१२)

कोर (१)-(सं० कोण)-१ किनारा, छोर, २ कोना, अंत राल, ३ वैर, द्वेष, ४ दोष, ऐब, ५ पंक्ति, कतार। उ० २ लोकपाल अनुकूल बिलोकिबो चहत बिलोचन-कोर को। (वि० ३१)

कोर (२)-(सं० कवल)-कलेवा, छाक, मजदूरों या कुलियों को दिए जानेवाला जलपान।

कोरि (१)-(सं० कोण)-किनारा।

कोरि (२)-(सं० कुंद>कोरना=खोदना, कुरेदना) कुरेदकर खोदकर, खुरचकर, छीलकर। उ० चीरि कोरि पचि रचे सरोजा। (मा० १।२८८।२)

कोरी (१)-(सं० कोटि)-करोड़, अनेक। उ० रघुपति बिमुल जतन कर कोरी। (मा० १।२००।२)

कोरी (२)-(सं० कोटी)-बीस।

कोरी (३)-(?) हिन्दू जुलाहा, कपड़े बुननेवाली एक जाति।

कोरी (४)-(?)-जो काम में न लाई गई हो। अछूती।

कोरे–(?)–कोरा, सादा, जिस पर कुछ न किया गया हो, अछूता। उ० सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे। (मा० १।९।६)

कोरैं–दे० 'कोरे'।

कोल–(सं०)–१ एक जंगली जाति, भील, २ सूअर, शूकर, ३ गोद उत्संग, ४ शनैश्चर ग्रह, ५ बेर। उ० १ उलटा जपत कोल तें भए ऋषिराज। (ब० ६१) २ कोल कराल दसन छबि गाई। (मा० १।१२१।४) कोलनी–भीलनी, शबरी। उ० आगे पर पाहन कृपा, किरात, कोलनी, कपीस निसिचर अपनाए नाए माथ। (क० ७।१३) कोलन्हि कोलों ने, भीलों ने। उ० सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे। (मा० २।२२१। छं० १) कोलिनि–कोल जाति की स्त्री। उ० कोलिनि कोल किरात जहाँ तहाँ बिलखात। (गी० ३।२)

कोला दे० 'कोल'। उ० २ दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला। (मा० १।२६०।१)

कोलाहल–(सं) बहुत से लोगों का अस्पष्ट चिल्लाहट, शोर, हल्ला। उ० काक कंक बालक कोलाहल करत हैं। (क० ६।४६)

कोलाहलु दे० 'कोलाहल'। उ० राउर नगर कोलाहलु होई। (मा० २।२३।४)

कोल्हू–दे० 'कोल्हू'।

कोल्हुन–कोल्हू का बहुवचन। उ० भूल्यो सूल कर्म-कोल्हुन तिल ज्यों बहु बारनि पेरो। (वि०१४३) कोल्हू–(?) तेल या ऊख पेरने का यंत्र जो कमर के आकार का, पत्थर या काठ का होता है। इसमें बैल के द्वारा कोल्हू में पेलना या पेरना आदि का प्रयोग होता है। उ० पेरत कोल्हू मेलि तिल तिली सनेही जानि। (दो० ४०३)

कोविद-(सं०)-१ पंडित, विद्वान्, २ काव्यकार। उ० १ सिद्ध कवि कोविदानंददायक पदद्वंद, मंदातममनुजैर्दुराप। (वि० ५५)
कोश-(सं०)-१ भंडार, खज़ाना, समूह, २ फूलों की बँधी कली, ३ तलवार या कटार आदि का म्यान, ४ अभिधान, वह ग्रंथ जिसमें अर्थ तथा पर्याय आदि दिए गये हों। ५ अंडकोश, ६ रेशम का कोया, रेशम, ७ खोल, थैली।
कोशल-(सं०)-१ सरयू के दोनों किनारों पर बसा एक प्राचीन जनपद, जिसकी राजधानी अयोध्या थी। २ अयोध्या नगर, ३ कोशल देश में बसनेवाली क्षत्रिय जाति। उ० १ रघुनंद आनँदकंद कोशल चंद दशरथ नंदन। (वि० ४५)
कोशलपुर-अयोध्या।
कोशलसुता-कौशल्या, राम की माता। उ० जयति कोशलाधीश-कल्याण, कोशलसुता-कुशल, कैवल्य-फल चारु चारी। (वि० ४३)
कोशला-(सं०)-कोशल की राजधानी, अयोध्या।
कोशलाधीश-१ दशरथ, २ राम।
कोष-दे० 'कोश'।
कोषला-दे० 'कोशला'।
कोस (१)-दे० 'कोश'। उ० ६ हठि सठ परबस परत जिमि कीर, कोस-कृमि, कीस। (दो० २४३)
कोस (२)-(सं० क्रोश)-दूरी की एक नाप जो लगभग २ मील के बराबर होती है।
कोसल-दे० 'कोशल'।
कोसलधनी-कोशल के राजा, दशरथ। उ० १ तुलसी करहु सोइ जतनु जेहिं कुसली रहहिं कोसलधनी। (मा० २।१२१। छं० १)
कोसलपुर-दे० 'कोशलपुर'। उ० प्रभु भयउ कोसलपुर भूपा। (मा० १।१४१।१)
कोसलसुता-दे० 'कोशलसुता'।
कोसला-दे० 'कोशला'। उ० प्राननाथ देवर सहित कुसल कोसला आइ। (मा० २।१०३)
कोसा-(सं० कोश-खज़ाना)-दे० 'कोश'। उ० १ मागहु भूमि धेनु धन कोसा। (मा० १।२०८।२)
कोसिला-दे० 'कौशल्या'।
कोसु-(सं० कोश)- खज़ाना। दे० 'कोश'। उ० १ देसु कोसु परिजन परिवारू। (मा० २।३१२।४)
कोह-(सं० क्रोध)-गुस्सा, क्रोध। उ० किंकर कथा कोह काम के। (मा० १।१२।२)
कोहबर-(सं० कोष्ठवर)-ब्याह का घर जहाँ कुल देवता स्थापित किए रहते हैं। उ० वर दुलहिनिहि लेवाइ सखी कोहबर गईं। (जा० १६४) कोहबरहि-कोहबर में। उ० कोहबरहि आने कुँअर कुँअरि सुआसिनिन्ह सुख पाइ कै। (मा० १।३२७।छं० २)
कोहा-दे० 'कोह'। उ० ता कहुँ उमा कि सपनेहुँ कोहा। (मा० ५।१८।३)
कोहातो-कोप करते, क्रोधित होता। उ० बारन बरम कुल कारनी कोऊ न कोहातो। (वि० १२१) कोहानी-क्रोधित हो गई। क्रुद्ध हो गई। उ० कीरति, कुसल, भूति, जय ऋधि सिधि तिन्ह पर सबै कोहानी। (गी० १।४) कोहाब-(सं क्रोध)-कोहाना, मान करना, रूठना, क्रोधित होना। उ० तुम्हहि कोहाब परम प्रिय अहई (मा० २।२८।१)
कोही-क्रोधी, क्रोध करनेवाला। उ० सुर कुठार मैं अकरुन कोही। (मा० १।२७५।३)
कौं-(सं० कक्ष)-को। कर्म तथा संप्रदान का चिह्न। उ० धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कौं इन्ह कहँ अति कल्यान। (मा० १।२०७)
कौ-(दे० 'कव')-कव। उ० क्या कहि जात महा सुखमा, उपमा तकि ताकत है कवि कौ की। (क० ७।१४३)
कौडिहु-कौड़ी भी। उ० लहै न फूटी कौडिहू, को चाहै, केहि काज? (दो० १०८) कौड़ी-(सं० कपर्दिका)-१ समुद्र का एक कीड़ा जो घोंघे की तरह एक अस्थिकोश के अंदर रहता है। वराटिका। २ धन, द्रव्य, ३ तुच्छ, व्यर्थ, ४ कम मूल्य, थोड़ा लाभ। उ० ४ कौड़ी लागि लोभ बस करहिं विप्र गुर घात। (मा० ७।९९क) मु० दू कौड़ी को-तुच्छ, निरर्थक। उ० कूर कौड़ी दू को हौं आपनी ओर हेरिए। (ह० ३४)
कौतुक-(सं०)-१ कुतूहल, २ अचंभा, आश्चर्य, ३ विनोद, दिल्लगी, ४ आनंद, खुशी, ५ तमाशा, खेल, दृश्य, बिना परिश्रम किया गया काम। उ० २ कहहु मोहि अति कौतुक भारी। (मा० ७।५५।१) ५ कौतुक सागर सेतु करि आये कृपानिधानु। (प्र० ४।३।५) कौतुकहिं-दे० 'कौतुकहि'। कौतुकाइ-खेल ही में, हँसी में ही। उ० गहि करतल, मुनि पुलक सहित, कौतुकहि उठाइ लियो। (गी० १।८८) कौतुकहीं-खेल ही में, आसानी से। उ० कौतुकहीं प्रभु काटि निवारे। (मा० ६।९१।३) कौतुकहीं-दे० 'कौतुकहीं'।
कौतुकिअन्ह-खिलवाड़ करनेवालों को, कौतुकियों को। उ० तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं। (मा० १।८१।२) कौतुकिअन्हि-दे० 'कौतुकिअन्ह'।
कौतुकी-(सं०)-कौतुक प्रिय, खिलवाड़ी, विनोदप्रिय। उ० मुनि कौतुकी नगर तेहिं गयऊ। (मा० १।१३०।४)
कौतुकु-दे० 'कौतुक'। उ० सती दीख कौतुक मग जाता। (मा० १।५४।२)
कौतूहल-१ तमाशा, लीला, खेलवाड़, २ आश्चर्य, ३ उत्सुकता। उ० १ यह कौतूहल जानइ सोई। (मा० ६।५५।२)
कौन-(सं० क पुन, प्रा० कवण)-एकप्रश्न वाचक सर्वनाम जो अभिप्रेत व्यक्ति या वस्तु की जिज्ञासा करता है। उस मनुष्य या वस्तु को सूचित करने का शब्द जिसको पूछना होता है। उ० तहँ तुलसी के कौन को काको तकिया रे? (वि० ३३)
कौनप-(सं० कौणप)-१ राक्षस, निशाचर, २ पापी। उ० १ केवट कुटिल भालु कपि कौनप किया सकल सँग भाइ। (वि० १६५)
कौनि-'कौन' का स्त्रीलिंग। उ० सुमतिदाम मोको बड़ो सोच है तू जनम कौनि विधि भरिहै। (गी० २।६०)
कौनें-किसने, कौन ने। दे० 'कौने'। उ० रघुबीर चरित

अपार बारिधि पार कवि कौनें लह्यो। (मा० १।१६१। छं० १) कौनें–१ किसने, २ कौन, किस, ३ किसमें। उ० १ कामों कहीं, कोने गति पाइनहिं दद्द है? (वि० १८१) कौनेउ–किसी भी। कौनो–१ कौन, २ कोई भी, किसी भी। उ० १ कौन जानै कौना तप, कोने जोग जाग जप, कान्ह सो भुवन तो को महादेव दियो है। (कृ० १६)

कौमार–(सं०) कुमार अवस्था, जन्म से पाँच वर्ष तक की अवस्था। उ० कौमार, सैसव अरु किसोर अपार अघ को कहि सकै। (वि० १३६)

कौमुदी–दे० 'कौमुदी'। उ० १ जनु कुमुदिनी कौमुदी पोषी। (मा० २।११८।२) कौमुदी–(सं०)–१ चाँदनी, चन्द्रप्रभा, २ कार्तिकी पूर्णिमा, ३ कुमुद, कुमुदिनी।

कौमोदकी–(सं०)–विष्णु की गदा। उ० बसन किंजल्क-धर चक्र सारंग-दर कंज कौमोदकी अति बिसाला। (वि० ५१)

कौर–(सं० कवल)–ग्रास, निवाला उतना, भोजन जितना एक बार मुँह में डाला जाय। उ० तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर रे। (वि० ६७)

कौरव–(सं०)–कुरु राजा की संतान, कुरु वंशज, दुर्योधन आदि।

कौल–(सं०)–१ वाममार्गी, शराबी, २ अच्छे कुल में उत्पन्न, कुलीन। उ० १ कौल कामबस कृपिन बिमूढ़ा। (मा० ६।३१।१)

कौशल–(सं०)–१ कुशलता, चतुराई निपुणता, २ मंगल, ३ अयोध्या का निवासी।

कौशलेय–(सं०)–अयोध्या के राजा। १ राम, २ दशरथ।

कौशल्या–(सं०)–कोशल के राजा दशरथ की प्रधान स्त्री और रामचंद्र की माता।

कौशिक–(सं०)–१ विश्वामित्र (कुशिक राजा के वंशज), २ कुशिक राजा के पुत्र गाधि, जो इन्द्र के अंश से उत्पन्न हुए थे। ३ इंद्र, ४ उल्लू पक्षी, ५ गुग्गुल, ६ मदारी, साँप पकड़नेवाला।

कौशेय–(सं०)–रेशमी वस्त्र। उ० नीलनव-वारिधर सुभग सुभ कांतिकर पीत कौशेय बर बसन धारी। (वि० ५१)

कौसल–दे० 'कौशल'।

कौसलेस–दे० 'कौशलेश'। उ० १ को है रन रारि को जौं कौसलेस कोपिहैं? (क० ६।१)

कौसल्यहि–१ कौशल्या को, २ कौशल्या ने। उ० १ कौसल्यहि सब कथा सुनाई। (मा० २।१२२।२) कौसल्याँ–कौशल्या ने। उ० कौसल्याँ सब काढ़ बिचारा। (मा० २।४६।४) कौसल्या–दे० 'कौशल्या'।

कौसिक–दे० 'कौशिक'। उ० १ कौसिक, मुनि तीय, जनक सोच भवन जरत। (वि० १३४) कौसिकहि–कौशिक को, विश्वामित्र को। उ० जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा। (मा० १।२८६।३)

कौशिकी (सं० कौशिकी)–१ चंडिका, २ राजा कुशिक की पोती और ऋचीक मुनि की स्त्री, जो अपने पति के साथ सदेह स्वर्ग गई थी। ३ काव्य में चार प्रकार की वृत्तियों में से पहली वृत्ति। इसमें करुण, हास्य या शृंगार रस का वर्णन रहता है। वर्णों में केवल कोमल वर्णों का प्रयोग होता है।

कौसिलाँ–कौशल्या ने। उ० जस कौसिलाँ मोर भल ताका। (मा० २।२२।४) कौसिला–दे० 'कौशल्या'। कौसिलाहु–कौशल्या भी। उ० कौसिलाहु ललकि राम लाल लए हैं। (गी० १।११)

कौसेय–दे० 'कौशेय'।

कौस्तुभ–(सं०)–पुराणानुसार एक रत्न जो समुद्र मथन में निकला था। इसे विष्णु अपने वक्षस्थल पर पहने रहते हैं।

क्या–(?)–एक प्रश्न वाचक शब्द जो उपस्थित या अभिप्रेत वस्तु की जिज्ञासा करता है।

क्यों–(सं०किम्>अप०कँव)–किस कारण, किस वास्ते, किस लिए। उ० तो क्यों बदन देखावतो कहि बचन इयारे। (वि० ३३) क्योंकर–१ किसलिए, २ कैसे, किस तरह। क्योंकरि–दे० 'क्योंकर'। उ० २ सकुचत हौं अति, राम कृपानिधि! क्योंकरि बिनय सुनावौं? (वि० १४२) क्यौंहूँ–कैसे भी, किसी प्रकार भी। उ० रीझि रीझि बिहँसि अनख क्यौंहूँ एक बार, 'तुलसी तू मेरो' बलि, कहियत किन? (वि० २६२)

क्यौं–दे० 'क्यों'।

क्रतु–(सं०)–१ यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ, २ निश्चय, ३ इच्छा, ४ विवेक ५ इंद्रिय, ६ विष्णु, ७ जीव, आत्मा, ८ कृष्ण के एक पुत्र का नाम, ९ ब्रह्मा के एक मानस पुत्र का नाम जो सप्तर्षियों में से एक हैं। उ० १ सुमिरि छाँड़ि छल भलो क्रतु है। (वि० २५४)

क्रम (१)–(सं०)–१ पैर रखने की क्रिया, २. तरतीब, सिलसिला शैली, ३ वामन अवतार का एक नाम। क्रमक्रम–शनै शनै, धीरे धीरे, एक एक करके।

क्रम (२)–(सं० कर्म)–कर्म, काम। उ० मन क्रम बचन मरम प्रभु पहू। (मा० १।२६।४)

क्रमनासा–दे० 'करमनासा'। उ० कासी मग सुरसरि क्रमनासा। (मा० १।६।४)

क्रय–(सं०)–मोल लेने की क्रिया, खरीदने का काम।

क्रव्याद–(सं०)–१ मांसभक्षी राक्षस, सिंह, गिद्ध २ चिता की आग।

क्रांति–१ एक दशा से दूसरी दशा में परिवर्तन, उलट फेर। २ एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन।

क्रियन–'क्रिया' का बहुवचन। क्रियन्ह–दे० 'क्रियन'। क्रिया–(सं०)–१ किसी प्रकार का व्यापार, किसी काम का होना या किया जाना, कर्म, २ प्रयत्न ३ अनुष्ठान, आरम्भ, ४ व्याकरण का एक अंग, जिसमें किसी व्यापार का होना या करना पाया जाय, जैसे जाना, खाना आदि। ५ शौच, स्नान आदि नित्य के कर्म ६ श्राद्ध आदि प्रेतकर्म ७ प्रायश्चित्त आदि कर्म ८ उपचार, उपाय, ९ मुकदमे की कारवाई। उ० ५ नित्य क्रिया करि गुरु पहिं आए। (मा० १।२२६।४)

क्रीड़त–१ खेलते हैं खेल रहे हैं, २ खेलते हुए, खेल में। उ० १ प्रभु क्रीड़त सुर सिद्ध मुनि व्याकुल देखि कलेस। (मा० ६।१०१ क) क्रीड़हिं–खेलते हैं क्रीड़ा करते हैं। उ० बहुबिधि क्रीड़हिं पानि पतंगा। (मा० १।१२६।३)

क्रीड़ा–(सं०)–१ कल्लोल, तमाशा, खेल-कूद, २ हँसी, ३ ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक, ४ केलि, संभोग। उ० १ मोहि सन करहिं बिबिध बिधि क्रीड़ा। (मा० ७।७७।५)

क्रुद्ध–(सं०)–कोपयुक्त, क्रोध में भरा हुआ। उ० भए क्रुद्ध जौमिउ भाइ। (मा० ३।२०। छ० २)

क्रुद्धा–दे० 'क्रुद्ध'। उ० सन्मुख चला काल जनु क्रुद्धा। (मा० ६।६७।१)

क्रुद्धे–क्रोधित हुए। उ० क्रुद्धे कृतांत समान कपि, तन स्रवत सोनित राजहीं। (मा० ६।८१। छ० १)

क्रूर–(सं०)–१ निष्ठुर, निर्दय, कठोर, पर पीड़क, तीखा, तेज़, २ भात, पका चावल, ३ बाज़ पक्षी। उ० १ क्षेप मत्सर राग प्रबल प्रत्यूह प्रति, भूरि निर्दय, क्रूर कर्म-कर्ता। (वि० ६०)

क्रोड़–(सं०)–१ आलिंगन में दोनों बाहों के बीच का भाग, अंक, गोद, २ वक्षस्थल, ३ शूकर, सूअर। उ० ३ सकल यज्ञांसमय उग्र विग्रह क्रोड़, मर्दि दनुजेस उद्धरन उर्वी। (वि० ५२)

क्रोध–(सं०)–१ कोप, रोष, गुस्सा, २ साठ संवत्सरों में से ५६ वाँ संवत्सर। इस संवत्सर में आकुलता और क्रोध की वृद्धि होती है। उ० १ शुंभ निशुंभ कुंभीश रण केशरिणि क्रोध वारिधि बैरिवृंद बोरे। (वि० १५)

क्रोधवंत–(सं० क्रोध + मत्)–क्रोधवाला, क्रोधी, क्रोधपूर्ण। उ० क्रोधवंत अति भयउ कपिंदा। (मा० ६।३२।१)

क्रोधा–दे० 'क्रोध'। उ० सुनत बचन उपजा अति क्रोधा। (मा० १।१३६।३)

क्रोधिहिं–क्रोधी के लिए क्रोधी को, क्रोधी से। क्रोधिहि–क्रोधी के लिए, क्रोधी से। उ० क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा। (मा० ५।५८।२) क्रोधी–(सं०)–गुस्सावर, क्रोध करनेवाला। उ० कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी। (मा० २।१६८।१)

क्रोधु–दे० क्रोध'।

क्लेश–(सं०)–१ दुःख कष्ट, व्यथा, २ झगड़ा, लड़ाई, टंटा। क्लेशहं–क्लेश हरनेवाले, दुखों को दूर करनेवाले। उ० केशव क्लेशहं केश वंदित पदद्वंद मंदाकिनी मूलभूत। (वि० ४६)

क्लेशित–व्यथित दुखित, जिसे कष्ट हो, पीड़ित।

क्लेस–दे० क्लेश'। उ० १ तब फिरि जीव बिबिध बिधि पावइ संसृति क्लेस। (मा० ७।११८ क)

क्वचित्–कुछ, बहुत कम, कोई। उ० नाना पुराण निगमा गम सम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि। (मा० १।१। श्लो० ७)

क्वारा–(सं० कुमार)–बिना ब्याहा, कुँआरा, जिसकी शादी न हुई हो।

क्वै (१)–(सं० कोपि)–कोई। उ० धन धाम निकर, करनि हू न पूजै क्वै। (क० ७।१६६)

क्वै (२)–(सं० क)–कौन, क्या, कहाँ।

क्वौ–(सं० कः) कोऊ, कोई। उ० नहिं मानत क्वौ अनुजा तनुजा। (मा० ७।१०२।३)

खई–(सं० क्षय)–राजयक्ष्मा, तपेदिक।



क्षण–(सं०)–काल का एक छोटा भाग, पल थोड़ी देर।

क्षणिक–(सं०)–क्षणभंगुर, अनित्य, अस्थायी।

क्षत–(सं०)–घाव ज़ख्म, आघात, चोट।

क्षति–(सं०)–हानि, नुक्सान, क्षय।

क्षत्र–(सं०)–१ बल, ज़ोर, २ राष्ट्र, ३ धन, ४ शरीर, ५ पानी।

क्षत्रिय–(सं०)–हिंदुओं के चार वर्णों में से दूसरा वर्ण। इन लोगों का काम देश का शासन तथा रक्षा करना है।

क्षम–(सं०)–१ समर्थ, योग्य, उपयुक्त, २ पराक्रम, शक्ति।

क्षमता–(सं०)–योग्यता, सामर्थ्य।

क्षमा–(सं०)–१ चित्त की एक वृत्ति जिससे मनुष्य दूसरे द्वारा पहुँचाए गए कष्ट को चुपचाप सह लेता है, और बदला या दंड की भावना नहीं होती। २ सहनशीलता, ३ पृथिवी, ४ दक्ष की एक कन्या का नाम, ५ दुर्गा।

क्षय–(सं०)–१ नाश, ह्रास, २ प्रलय, कल्पांत, ३ राज यक्ष्मा, तपेदिक, ४ अन्त, ५ मकान।

क्षरण–(सं०)–१ धीरे धीरे चूना, स्राव होना, २ छलना, धोखा देना, ३ नाश होना।

क्षाम–(सं०)–१ क्षीण, कृश, पतला, २ कमज़ोर, निर्बल, ३ थोड़ा।

क्षार–(सं०)–१ क्षार, खार, नमक, २ भस्म, राख, ३ सज्जी।

क्षालित–(सं०)–धुला हुआ साफ किया हुआ, शुद्ध।

क्षिति–(सं०)–१ पृथिवी, २ नाश, ३ रहने की जगह।

क्षितिपति–राजा, भूपाल।

क्षितिपाल–दे० 'क्षितिपति'।

क्षीण–(सं०)–१ दुर्बल, पतला घटा हुआ, २ सूक्ष्म।

क्षीणता–(सं०)–१ दुर्बलता, कमज़ोरी, २ सूक्ष्मता।

क्षीर–(सं०)–१ दूध, दुग्ध, २ पानी, जल, ३ वृक्ष का दूध, ४ दूध में पका चावल।

क्षीरसागर–(सं०)–दे० 'क्षीरसिंधु'। उ० उरग नायक सयन, तरुन पंकज-नयन, छीर सागर अयन, सर्ववासी। (वि० ५५)

क्षीरसिंधु–(सं०) पुराणों के अनुसार सात समुद्रों में से एक जो दूध से भरा माना जाता है। विष्णु इसी समुद्र में शेष शय्या पर सोते हैं।

क्षीराब्धि–(सं०)–दे० 'क्षीरसिंधु'। क्षीराब्धिवासी–क्षीर के समुद्र में वास करनेवाले, विष्णु। उ० यत्र तिष्ठंति तत्रैव अज शर्व हरि सहित गच्छंति क्षीराब्धिवासी। (वि० ५७)

क्षुण्ण–(सं० क्षुण्ण) पिसा हुआ चूर-चूर, टूटा।

क्षुद्र–(सं०)–१ छोटा, २ नीच, ३ कृपण, ४ निर्दय, क्रूर, ५ दरिद्र, कंगाल।

क्षुधा–(सं०)–भूख भोजन करने की इच्छा।

क्षुधित–भूखा, जिसे भूख लगी हो।

क्षुर–(सं०)–१ छुरा, उस्तरा, चाकू, २ तेज दांत, ३, गोखुरू। उ० १ विकटतर वक्र क्षुरधार प्रमदा, तीव्र दर्प कंदर्प खर खड्गधारा। (वि० ६०) क्षुरधार–तेज छुरे की तरह धारवाला। उ० दे० 'क्षुर'।

क्षेत्र–(सं०)–१ खेत, अन्न बोने की जगह, २ स्थान, प्रदेश, ३ तीर्थ, ४ शरीर, ५ पत्नी।

गरुड़ । उ० पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ । (मा० ७।१२१।१)

खगराज-गरुड़ । उ० सुनि मम बचन बिनीत मृदु, मुनि कृपालु खगराज । (मा० ७।११० ग)

खगराया-दे० 'खगराऊ' । उ० नट कृत बिकट कपट खगराया । (मा० ७।१०४।४)

खगसाईं-(सं० खग + स्वामी)-गरुड़ । उ० तुम्ह निज मोह कही खगसाईं । (मा० ७।७०।३)

खगहा-(सं० खग)-सींगवाला, गैंडा । उ० खगहा करि हरि बाघ बराहा । (मा० २।२३६।२)

खगे-(सं० खग)-धँसे, धँसने से, घुसने से । उ० तुलसी करि केहरि नाद भिरे, भट खग्ग खगे खपुआ खरके । (क० ६।३५)

खगेश-(सं० खग + ईश)-गरुड़ ।

खगेस-दे० 'खगेश' । उ० सुनु खगेस नहिं कछु रिषि दूषन । (मा० ७।११३।१)

खगेसा-दे० 'खगेश' । उ० चतुरानन पहिं जाहु खगेसा । (मा० ७।६२।४)

खग्ग (१)-(सं० खड्ग, प्रा० खग्ग)-तलवार, कटार । उ० दे० 'खगे' ।

खग्ग (२)-(सं० खग)-पक्षी, चिड़िया । उ० खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भूतन्ह न्हावहीं । (मा० ६।८८।छं० १)

खचा-(सं० खच्)-१ खचित, जड़ित, २ खींचा हुआ ।

खचाइ-जड़वाई, सुन्दर रूप से बनवाई, खिंचवाई ।

खचित-जड़ा हुआ, खींचा हुआ । उ० कनककोट मनि खचित दृढ़ बरनि न जाइ बनाव । (मा० १।१७८ क)

खचीं-जड़ी, मढ़ी, लगी, खिंचीं । उ० मनिखंभ भीति बिरंचि बिरचीं कनक मनि मरकत खचीं (मा० ७।२७।छं० १)

खचे-जड़े, मढ़े, लगाए, खींचे हुए । उ० मनि द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे । (मा० ७।२७।छं० १)

खच्चर-(?)-गदहे और घोड़े के संयोग से उत्पन्न एक पशु जो घोड़े से मिलता जुलता होता है । उ० गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै । (मा० ५।३।छं० १)

खटाइ-(सं० कटु)-परीक्षा में पूरा उतरे, ठीक उतरे, स्थिर रहे, टिक रहे, निभा लिया । उ० द्वंद्व-रहित, गत मान, ज्ञानरत, विषय बिरत खटाइ नाना कस । (वि० २०४) खटाहिं-टिक सकती है, परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकती है, टिक सकती है, स्थिर रह सकती हैं, स्थिर रहते हैं । उ० सहज एकाकिन्ह के भवन कबहुँ कि नारि खटाहिं । (मा० १।७९)

खटाई-(सं० कटु)-वह वस्तु जिसका स्वाद खट्टा हो, जैसे दही, नींबू तथा इमली आदि । उ० बिलग होइ रसु जाइ, कपट खटाई परत पुनि । (मा० १।५७ ख)

खटोला-(सं० खट्वा)-छोटी चारपाई, छोटा खाट । उ० बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे । (वि० १८९)

खता-(अर० खता)-१ धोखा, २ अपराध । उ० १ राम राम रटिबो भलो, तुलसी खता न खाय । (स० ११६)

खद्योत-(सं०)-१ जुगनू, रात को चमकनेवाला एक कीड़ा, २ सूर्य । उ० १ सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा । (मा० ५।६।४)

खनत-(सं० खनन)-१ खनते हैं, २ खोदते हैं, ३ खोदते समय, खोदते ही । उ० १ कूप खनत मंदिर जरत आए धारि बबूर । (दो० ४८७) खनतहिं-खोदते ही, खोदते समय, खोदने में ही । उ० तुलसिदास कब तृषा जाइ सर खनतहिं जनम सिरान्यो । (वि० ८८) खनि (१)-खोदकर, खन कर । उ० जयति पाकारिसुत काक-करतूति फलदानि, खनि गर्त गोपित बिराधा । (वि० ४३) खने-खोदे, गर्त बनाये । उ० जासु प्रसाद जनमि जग पुरपनि सागर सृजे, खने अरु सोखे । (गी० ५।१२) खनै-खोद डाले, समूल नष्ट कर दे । उ० मंगल मूल प्रनाम जासु जग मूल अमंगल के खनै । (गी० ५।४०) खनैगो-खनेगा, खोदेगा । उ० जो-जो कूप खनैगो पर कहँ सो सठ फिरि तेहि कूप परै । (वि० १३७) खन्यो-खोदा । उ० यह जलनिधि खन्यो, मथ्यो, लँघ्यो, बाँध्यो, अँचयो है । (गी० ५।११)

खनावत-खुदवाते, खनवाते । उ० नतरु सुधासागर परिहरि कत कूप खनावत खारे । (गी० १।६६) खनावौं-खुदवाता हूँ, खनवाता हूँ, खुदवाऊँ । उ० हाटक घट भरि धरयौ सुधा गृह तजि नभ कूप खनावौं । (वि० १४२)

खनि (२)-(सं०)-खान, रत्नादि निकलने का स्थान, कान ।

खप-(सं० क्षेपण>खपना=व्यय होना)-खपकर, लगकर, पचकर । उ० जापकी न, तप खप कियो न तमाइ जोग, जाग न, बिराग त्याग तीरथ न तन को । (क० ७।७७)

खपत-खप जाता है, समा जाता है, समाप्त हो जाता है । उ० कलिजुग बर बनिज बिपुल नाम नगर खपत । (वि० १३०)

खपर-दे० 'खप्पर' । उ० २ कमठ खपर मढ़ि खाल निसान बजावहिं । (पा० १११)

खपुआ-दे० 'खपुवा' ।

खपुवा-(सं० क्षेपण)- भगनेवाला, कायर, डरपोक । उ० दे० 'खगे' ।

खप्पर-(सं० खर्पर)-१ तसले के आकार का मिट्टी का पात्र, भिक्षापात्र २ खोपड़ी । उ० २ जोगिनि भरि भरि खप्पर सचहिं । (मा० ६।८८।४) खप्परिन्ह-खोपड़ियों में, खप्परों में । उ० दे० 'खग्ग (२)' ।

खबर-(अर० ख़बर)-समाचार, हाल, वृत्तांत ।

खबरि-दे० 'खबर' । उ० भूपद्वार तिन्ह खबरि जनाई । (मा० १।२९०।१)

खभार-दे० 'खँभार' । उ० २ देखि निबिड़ तम दसहुँ दिसि कपिदल भयउ खभार । (मा० ६।४६)

खभारू-दे० 'खँभार' । उ० १ मिटहु त सब कर मिटै खभारू । (मा० २।६७।२)

खयकारी-(सं० क्षयकारिन्)- नाश करनेवाला, क्षय करने वाला । उ० दुसह-रोष-मूरति भृगुपति अति नृपति-निकर खयकारी । (गी० १।१०७)

खये-(सं० स्कंध)-बाहुमूल, भुजा । मु० खये ठोंकि-ताल ठोककर । उ० पदुक-दलनि-जुगल दप धरि धरि, गन बसि बसि, ठोंकि-ठोंकि खये । (गी० १।४२)

खर (१)-(सं०)-एक राक्षस । यह सुमाली मुनि की कन्या

गरुड़ । उ० पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ । (मा० ७।१२।१)

खगराज-गरुड़ । उ० सुनि मम बचन बिनीत मृदु, मुनि कृपालु खगराज । (मा० ७।११० ग)

खगराया-दे० 'खगराउ' । उ० नट कृत बिकट कपट खगराया । (मा० ७।१०४।४)

खगसाईं-(सं० खग + स्वामी)-गरुड़ । उ० तुम्ह निज मोह कही खगसाईं । (मा० ७।७०।३)

खगहा-(सं० खग)-खाँगवाला, गैंडा । उ० खगहा करि हरि बाघ बराहा । (मा० २।२३६।२)

खगे-(सं० खग)-धँसे, धँसने से, घुसने से । उ० तुलसी करि केहरि नाद भिरे, भट खग्ग खगे खपुआ खरके । (क० ६।३५)

खगेश-(सं० खग + ईश)-गरुड़ ।

खगेस-दे० 'खगेश' । उ० सुनु खगेस नहिं कछु रिषि दूषन । (मा० ७।११३।१)

खगेसा-दे० 'खगेश' । उ० चतुरानन पहिं जाहु खगेसा । (मा० ७।५९।४)

खग्ग (१)-(सं० खड्ग, प्रा० खग्ग)-तलवार, कटार । उ० दे० 'खगे' ।

खग्ग (२)-(सं० खग)-पक्षी, चिड़िया । उ० खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं । (मा० ६।८८।छं० १)

खचा-(सं० खच)-१ खचित, जड़ित, २ खींचा हुआ ।

खचाई-जड़वाइ, सुंदर रूप से बनवाइ, खिंचवाई ।

खचित-जड़ा हुआ, खींचा हुआ । उ० कनककोट मनि खचित दृढ़ बरनि न जाइ बनाव । (मा० १।१७८ क)

खची-जड़ी, मढ़ी, लगी खिंची । उ० मनिखंभ भीति बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खची (मा० ७।२७।छं० १)

खचे-जड़े, मढ़े, लगाए, खींचे हुए । उ० प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे । (मा० ७।२७।छं० १)

खच्चर-(?)-गदहे और घोड़े के संयोग से उत्पन्न एक पशु जो घोड़े से मिलता जुलता होता है । उ० गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै । (मा० ५।३।छं० १)

खटाइ-(सं० कटु)-परीक्षा में पूरा उतरे, ठीक उतरे, स्थिर रहे, टिके रहे, निभा लिया । उ० द्वंद-रहित, गत-मान, ज्ञानरत, बिषय बिरत खटाइ नाना कस । (वि० २०४) खटाहिं-टिक सकती है, परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकती हैं, रह सकती हैं, स्थिर रह सकती हैं, स्थिर रहते हैं । उ० सहज एकाकिन्ह के भवन कबहुँ कि नारि खटाहिं । (मा० १।७९)

खटाई-(सं० कटु)-वह वस्तु जिसका स्वाद खट्टा हो, जैसे दही, नींबू तथा इमली आदि । उ० बिलग होइ रसु जाइ, कपट खटाई परत पुनि । (मा० १।५७ ख)

खटोला-(सं० खट्वा)-छोटी चारपाई, छोटा खाट । उ० बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे । (वि० १८९)

खता-(अर० खता)-१ धोखा, २ अपराध । उ० १ राम राम रटिबो भलो, तुलसी खता न खाय । (स० ११६)

खद्योत-(सं०)-१ जुगनू, रात को चमकनेवाला एक कीड़ा, २ सूर्य । उ० १ सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा । (मा० ५।६।४)

खनत-(सं० खनन)-१ खनते है, २ खोदते हैं, ३ खोदते समय, खोदते ही । उ० १ कूप खनत मंदिर जरत आए धारि बबूर । (दो० ४८७) खनतहिं-खोदते ही, खोदते समय, खोदने में ही । उ० तुलसिदास कत तृषा जाइ सर खनतहिं जनम सिरान्यो । (वि० ८८) खनि (१)-खोदकर, खन कर । उ० जयति पाकारिसुत काक-करतूति फलदानि, खनि गर्त्त गोपित बिराधा । (वि० ४३) खने-खोदे, गर्त्त बनाये । उ० जासु प्रसाद जनमि जग पुरपति सागर सृजे, खने अरु सोखे । (गी० ५।१२) खनै-खोद डाले, समूल नष्ट कर दे । उ० मंगल मूल प्रनाम जासु जग मूल अमंगल के खनै । (गी० ५।४०) खनैगो-खनेगा, खोदेगा । उ० जो जो कूप खनैगो पर कहँ सो सठ फिरि तेहि कूप परै । (वि० १३७) खन्यो-खोदा । उ० यह जलनिधि खन्यो, मथ्यो, लँघ्यो, बाँध्यो, अँचयो है । (गी० ६।११)

खनावत-खुदवाते, खनवाते । उ० नतरु सुधासागर परिहरि कत कूप खनावत खारे । (गी० १।६६) खनावौं-खुदवाता हूँ, खनवाता हूँ, खुदवाऊँ । उ० हाटक घट भरि धर्यो सुधा गृह तजि नभ कूप खनावौं । (वि० १४२)

खनि (२)-(सं०)-खान, रत्नादि निकलने का स्थान, कान ।

खप-(सं० क्षेपण>खपना = व्यय होना)-खपकर, लगकर, पचकर । उ० आपकी न, तप खप कियो न तमाइ जोग, जाग न, बिराग त्याग तीरथ न तन को । (क० ७।७७) खपत-खप जाता है, समा जाता है, समाप्त हो जाता है । उ० कलिजुग घर बनिज बिपुल नाम नगर खपत । (वि० १३०)

खपर-दे० 'खप्पर' । उ० २ कमठ खपर मढ़ि खाल निसान बजावहिं । (पा० १११)

खपुआ-दे० 'खपुवा' ।

खपुवा-(सं० क्षेपण)- भगनेवाला, कायर, डरपोक । उ० दे० 'खगे' ।

खप्पर-(सं० खर्पर)-१ तसले के आकार का मिट्टी का पात्र, भिक्षापात्र, २ खोपड़ी । उ० २ जोगिनि भरि भरि खप्पर संचहिं । (मा० ६।८८।४) खप्परिन्ह-खोपड़ियों में, खप्परों में । उ० दे० 'खग्ग (२)' ।

खबर-(अर० खबर)-समाचार, हाल, वृत्तांत ।

खबरि-दे० 'खबर' । उ० भूपद्वार तिन्ह खबरि जनाई । (मा० १।२१०।१)

खभार-दे० 'खँभार' । उ० २ दरिं निबिड़ तम दसहुँ दिसि कपिदल भयउ खभार । (मा० ६।४६)

खभारू-दे० 'खँभार' । उ० १ फिरहु त सब कर मिटै खभारू । (मा० २।६७।२)

खयकारी-(सं० क्षयकारिन्)- नाश करनेवाला, क्षय करने वाला । उ० दुसह-रोष-मूरति भृगुपति अति नृपति निकर खयकारी । (गी० १।१०७)

खये-(सं० स्कंध)-बाहुमूल, भुजा । मु० खये ठोंकि-ताल ठोंककर । उ० कटुक-केलि-कुसल हय चढ़ि चढ़ि, मन कसि कसि, ठोंकि ठोंकि खये । (गी० १।४३)

खर (१)-(सं०)-एक राक्षस । यह सुमाली मुनि की कन्या

२ खलाकर, गड्ढा बनाकर, पचका कर। खलाय-खला कर, धँसाकर, गहराकर। उ० तब लौं उदैने पायँ फिरत पेटै खलाय। (क० ७।१२५) खलाये-१ पचकाए, नीचे की ओर धँसाए, २ पचकाकर, नीचे की ओर धँसा कर। खलायो-गहरा किया, नीचे की ओर धँसाया, पच काया। मु० पेट खलायो-अपने को भूखा प्रकट किया। उ० महिमा मान प्रिय प्रान ते तजि खोलि खलनि आगे खिनु खिनु पेट खलायो। (वि० २७६)

खलु-(सं०)-१ एक निश्चयसूचक अव्यय, निश्चय, २ प्रार्थना, ३ नियम, ४ प्रश्न, ५ निषेध। उ० १ आजु करउँ खलु काल हवाले। (मा० ६।४०।४)

खलेल-(सं० खलि + तैल)-तेल की मैल, खली आदि का तेल में मिला भाग। उ० सुख सनेह सब दियो दसरथहि खरि खलेल थिरथानी। (गी० १।४)

खवास-(अर० खवास)-नौकर, राजाओं आदि के यहाँ कपड़ा पहनाने, पान आदि लगाने के लिए रक्खे हुए नौकर। उ० पर्यो है छपद छबीले कान्ह कैहू कहूँ खोजि कै खवास खासो कूबरी सी बाल को। (क० ७।१३५)

खस (१)-(सं०)-गढ़वाल के आस पास प्राचीन काल में रहनेवाली व्रात्य क्षत्रिया से उत्पन्न एक जाति। उ० कोल, खस, भिल्ल जमनादि खल राम कहि नीच ह्वै ऊँच पद को न पायो। (वि० १०६)

खस (२)-(फा० खस)-एक घास जिसकी जड़ सुगंधित होती है।

खस (३)-(प्रा० खस)-गिर पड़ा, सरक पड़ा। खसत-खसकता है, गिर पड़ता है सरक जाता है। उ० पट उड़त भूषन खसत हँसि हँसि अपर सखी झुलावहीं। (गी० ७।१९) खसि-खसक, सरक, गिर। उ० मोर कठोर सुभाय, हृदय खसि आयउ। (पा० ४६) खसी (१)-सरकी खसकी, नीचे आई। उ० खसी माल मूरति मुसुकानी। (मा० १।२३६।२) खसे गिर पड़े, गिरे। उ० डोलत धरनि सभासद खसे। (मा० ६।३२।२) खसेउ-दे० 'खसेऊ'। खसेऊ-खसका, गिर पड़ा। उ० जय ते अवनपुर महि खसेऊ। (मा० ६।१४।३) खसै-गिर, खसके। उ० हात खसै जनि मार, गहरु जनि लावहु। (जा०३२) मु० बाल खसै-थोड़ी हानि हो। उ० दे० 'खसै'।

खसम-(अर० खस्म)-१ स्वामी, मालिक, २ आकाश, सूक्ष्म। उ० खसम के खसम तुही पै दसरथ के। (क० ७।२४)

खसाई-(प्रा० खस)-फेंकना, नष्ट करना, बर्बाद करना। उ० मीचु अस नीच सोऊ चाहत खसाई है। (क० ७।१८१) खसैहौं-फेंकूँगा, गिरने दूँगा जाने दूँगा। उ० पायो नाम चारु चिंतामनि, उर-कर तें न खसैहौं। (वि० १०५)

खासी (२)-(अर० खासा)-अच्छी सुंदर, बढ़िया।

खाँगि कमी, घाटा। खाँगे-कमी के लिए न्यूनता के लिए। उ० राखौं देह नाथ केहि खाँगे। (मा० ३।३१।४)

खाँगिहै-(सं० खञ्ज)-कम होगा, घटेगा। उ० तुलसिदास स्वारथ परमारथ न खाँगिहै। (वि० ७०) खाँगो-कमी हो गई है, कमी है। उ० माँगो कि' कहै माँगतो देखि "न खाँगो कछु जनि माँगिए थोरो"। (क० ७।१२३)

खाँचि-(सं० कृष्)-खींचकर। खाँची-१ खींचा, बनाया, २ खींचकर। उ० २ पूँछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। (मा० २।२१।४) खाँचो-खींचो। उ० स्वामि सहित सबसा कहौं सुनि गुनि बिसेषि कोउ रेख दूसरी खाँचो। (वि० २७७)

खाँड़ (१)-(सं० खंड)-कच्ची चीनी, शक्कर। उ० भयमय खाँड़ न ऊखमय अजहुँ न बूझ अबूझ। (मा० १।२७५)

खाँड़ (२)-(सं० खड्ग)-एक प्रकार की तलवार। उ० दे० 'खाँड़ (१)'। खाँड़े-तलवार के। उ० एक कुसल अति ओड़न खाँड़े। (मा० २।१९१।३)

खाइ-(सं० खादन)-१ खाकर, भोजन करके, २ भोजन किया, ३ खा जायगा। उ० ३ धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। (मा० २।३८।२) खाई (१)-१ खाई हुई, २ खाया, भोजन किया, ३ खाकर। उ० २ तहँ बसि कंद मूलफल खाई। (मा० २।१२४।२) खाउँ-१ खाता हूँ, २ खाऊँ। उ० १ जूठनि परइ अजिर महँ, सो उठाइ करि खाउँ। (मा० ७।७५ क) खाउ-१ खाये, खा जाय, २ खाओ, भक्षण करो। उ० मोद न मन, तन पुलक, नयन जल सो नर खेहर खाउ। (वि० १००) खाएसि-खाया, भोजन किया। उ० फल खाएसि तरु तोरैं लागा। (मा० ५।१८।१) खात (१)-१ खाता है, भोजन करता है, २ खाते हुए। उ० २ चलत पयादें खात फल पिता दीन्ह तजि राजु। (मा० २।९२२) खाती-खा जाती, भक्षण करती, खाती है। उ० खाती दीप मालिका ठठाइ-यत सूप हैं। (क० ७।१७१) खातेउँ-खाता, खा डालता। उ० पिनहि खाइ खातेउँ पुनि तोही। (मा० ६।२४।५) खातो-१ खाता २ खाना पड़ता। उ० २ बाजी गर के सूमज्यों, खल खेह न खातो। (वि० १५१) खाब-खा लेंगे, खायेंगे। उ० सो भनु मनुज खाब हम भाई। (मा० ६।६।३) खायउँ-खाया, खाये। उ० खायउँ फल प्रभु लागी भूखा। (मा० ५।२२।२) खायगो-खा जायगा भक्षण करेगा। उ० हूहै विष भोजन जो सुधा मानि खायगो। (वि० ६८) खाया-भक्षण किया, खा लिया। उ० चिंता साँपिनि को नहिं खाया। (मा०७।७१।२) खाये-खाया, भोजन किया। खायो-खाया, खा लिया। उ० खायो हुतो तुलसी कुरोग राढ़ राकसनि। (ह० ३५) खायौ-दे० 'खायो'। खाया-खाना, भोजन करना भक्षण करना। उ० पुरोडास चह रासभ खाया। (मा० १।२६।३) खाहिं-खाते हैं, खा लेते हैं। उ० थम सुख सोवत सोचु नहि भीख माँगि भव खाहिं। (मा० १।७६) खाहिगो-खायगा, भोजन करेगा। उ० थाप नाथ ! भाये तें खिरिरि खेह खाहिगो। (क० ६।२३) खाहीं खाते हैं, भोजन करते हैं। उ० जो ए कंद मूल फल खाहीं। (मा०२।१२०।१) खाहु-खाओ, भोजन करो। उ० रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु। (मा० ५।१७) खाहू-दे० 'खाहु'। उ० जो मन भाव मधुर कछु खाहू। (मा० २।५३।१)

खाई-खाइयाँ। उ० खाई सिंधु गभीर अति चारिहुँ दिसि फिरि आव। (मा० १।१७८ क) खाई (२)-(सं०

खानि)-नगर या किले के चारों ओर रक्षा के लिए खोदी गई नहर।

खाको-(फा० खाक)-खाक भी, धूल भी, राख भी। उ० वाजिस वामी अवध का बूझिए न खाको। (वि० १५२)

खाज-(स० खर्जु)-खुजली, एक रोग जिसमें शरीर खुज लाती है। उ० नीच जन, मन ऊँच, जैसी कोढ़ में की खाज। (वि० २१८) मु० कोढ़ की खाज-दु ख में दु ख बढ़ानेवाली वस्तु।

खाजी-(स० खाद्य)-भोजन, खाद्य पदार्थ। मु० खाजी खाइ-मुँहकी खाकर। उ० मातुल सगन ससचिव सुजोधन भए मुख मलिन खाइ खल खाजी। (कृ० ६१)

खाटी-(स० कटु) खट्टा, अम्ल के स्वाद का। खाटी मीठी-खट्टा मीठा, भला बुरा। उ० रहि गए कहत न खाटी मीठी। (मा० १।२६०।३)

खात (१)-(स०)-१ खोदना, खोदाई, २ तालाब, ३ कुँआ, ४ गर्त्त, गड्ढा।

खान (१) (स० खद्)-१ खाना, भोजन करना, खाने की क्रिया, २ खाने की सामग्री। उ० १ मुखिया मुख सो चाहिए खान पान कहुँ एक। (मा० २।३१५)

खान (२)-(स० खानि)-वह स्थान जहाँ से धातु, पत्थर आदि खोदकर निकाले जायँ। खदान।

खान (३)-(म० काए)-सरदार, उमराव।

खानि-(स०)-१ उत्पत्ति स्थान, खान, २ खजाना, भंडार, ३ ओर, तरफ, ४ प्रकार, ढंग। उ० १ तुलसी कवि की कृपा बिलोकनि खानि सकल कल्यान की। (वि० ३०)

खानिक-खानि का, खदान का, खानि। उ०गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक। (मा० १।१।४) खानि चारि-चार प्रकार के जीव। स्वेदज, अण्डज, पिंडज तथा उद्भिज। उ० खानि चारि सतत अवगाही। (वि० १३६)

खानी-१ खान, खदान, २ भंडार, घर। उ० २ रुचिर हरिसंकरी-नाम मंत्रावली द्वंद्वदुख हरनि आनंद खानी। (वि० ४६)

खारा-(स० क्षार) १ क्षार या नमक के स्वाद का, २ कड़ुआ, कटु, अरुचिकर, बुरा। उ० १ सुल कलपतरु सागर खारा। (मा० २।११६।२) खारे-दे० 'खारा'। उ० २ व्योम रसातल भूमि भरे भूप कूर कुसाहिब सें तिहुँ खारे। (क० ७।१२)

खारो-दे० 'खारा'। उ० १ हारयो हिय, खारो भयो भूसुर बरनि। (वि० २४७)

खाल-(स० क्षाल) मानव शरीर या वृक्ष आदि का ऊपरी आवरण, चमड़ा, छाल। उ० खाल कढ़ाइ ... महि मरई। (मा० ७।१२१।६)

खालें-(फा० खाली) गड्ढे में, नीचे गहरे ... कुमग पग परहिं न खालें। (मा० २।२३...)

खास-(अर० खास)-१ विशेष, मुख्य, २ ... प्रिय, ३ स्वयं, खुद। उ० १ खास खास तेरो खासु उर। (क० ...

खासो-(अर० खास ... ), उमदा। ... खास खासो पूर्ण ... (क० ... -(स० खिन्न ... खिझाकर,

परेशान कर। उ० यह तो मोहिं खिझाइ कोटि बिधि उलटि बिवादन आइ अगाऊ। (कृ० १२) खिझावतो-चिढ़ाता, खिझाता, अप्रसन्न करता। उ० तो हौं बार बार प्रभुहिं पुकारि कै खिझावतो न। (वि० २४०) खिझावें-चिढ़ावें, अप्रसन्न करें। उ० जरै घरै घर खीझि खिझावें। (वै० ४७)

खिझे-१ क्रोधित हुए, २ क्रोध करने, खीझने। उ० १ किए सिहारो हँसत, खिझे तें डाटत नयन तरेरे। (कृ०३)

खिन (१)-(स० क्षीण)-दुर्बल, पतला, बलहीन, क्षीण। उ० उरगकाल अरु देह खिन, मगपथी, तन ऊख। (दो० ३११)

खिन (२)-(स० क्षण)-समय का एक छोटा भाग, क्षण, लमहा।

खिनु-दे०'खिन(२)'। मु०खिनु खिनु-प्रत्येक क्षण, दमदम, सचदा। उ० महिमा मान प्रियप्रान ते तजि खोलि खलनि आगे खिनु खिनु पेट खलायो। (वि० २७६)

खिन्न-(स०)-१ उदास, चिंतित, २ थकित, ३ दीन, असहाय। उ० ३ यहउँ सीताराम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न। (मा० १।१८)

खिरिरि-(घ्य०) अरोचक, खुरखुर, खोखर। उ० दे० 'खाहिगो'।

खिलवार-(स० केलि)-क्रीड़ा, खेल, तमाशा, दिल्लगी। उ० नृपति चकई, भरत चक, मुनि आयसु खिलवार। (दो० २०६)

खिलाये (१)-(स० केलि) खेलाया, खेलमें नियोजित किया। उ० जियत खिलाये राम, रामबिरह तनु परिहरेउ। (दो० २२१)

खिलाये (२) भोजन कराए, खाना खिलाए।

खिलोना-दे० 'खेलोना'।

खिसिआइ-(स० क्लिष्ट)-रुष्ट होकर, क्रुद्ध होकर। उ० जगदाधार सेष किमि उठै चले खिसिआइ। (मा० ६।५४) खिसिआई-दे० 'खिसिआइ'। उ० छाविमि तीस सक्ति खिसिआई। (मा० ६।११।२) खिसिआन-खिसियाया हुआ, गुस्से में। उ० परुष बचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसिआन। (मा० ४।६) खिसिआना-खिसियाया हुआ रुष्ट होकर। उ० तुरत धाए रथ चढ़ि खिसिआना। (मा० ६।६७।२) खिसिआनि-नाराज, खिसियायी हुई। उ० तब खिसियानि राम पहिं गई। (मा० ३।१७।१०)

खिसिआना-दे० 'खिसिआना'।

... 'खीझन'।

... रुष्ट होना। उ० ... खीझहू में रीझबे की ... ।२६)

... होता, क्रोधित होता है, खीझता, २ ... । उ० १ हारो बिगारो मैं ... हौं तो तिहारो। (क० ... है। उ० खीझति ... ६।११) खीझन- ... सन खीझन लागा। ... रुष्ट होना, रोष, ... मुनि पर, खीझि

बिचार बिहीन। (दो० ४८४) खीझिबे-खीझने, अप्रसन्न होने। उ० खीझिबे लायक करतब कोटि कोटि कटु। (वि० २५२) खीझिय-खीझिये, अप्रसन्न होइए। उ० काहे को खीझिय रीझिय पै, तुलसीहु सोहै बलि सोइ सगाइ। (क० ७।१६१) खीझे-१ चिढ़े, रुष्ट हुए, २ नाराज़ होने पर। उ० २ रीझे बस होत, खीझे देत निज धाम रे! (वि० ७१)

खीन-(सं० क्षीण)-पतला, दुर्बल, क्षीण, कमज़ोर, असहाय। उ० निज निज अवसर सुधि किए बलि जाउँ, दास आस पूजि है खासखीन की। (वि० २७८)

खीर-(सं० क्षीर)-१ दूध, २ दूध में पकाया हुआ चावल। उ० १ खीर नीर बिबरन गति हंसी। (मा० २।२३१।४) खीरै-खीर का, दूध को। उ० उपमा राम लषन की प्रीति की क्यों दीजै खीरै-नीरै। (गी० ६।१५)

खीरु-दे० 'खीर'। उ० १ सगुनु खीर अवगुन जलु ताता। (मा० २।२३२।३)

खीस (१)-(सं० क्लिष्ट) नष्ट, बरबाद। उ० बलसीस ईस जू की खीस होत देखियत। (क० ६।१०)

खीस (२)-(सं० कीश)-ओठ से बाहर के दाँत।

खीस (३)-(फ़ा० खिसारा)-घाटा, हानि, कमी, न्यूनता।

खीस (४)-(फ़ा० कीसा)-थैला, थैली, जेब।

खीसा-दे० 'खीस'।

खुआर-(फ़ा० ख़्वार)-बर्बाद, दुर्दशा ग्रस्त, खराब, बुरा। उ० बचन बिकार, करतबउ खुआर, मन, बिगत बिचार कलि मल को निधानु है। (क० ७।६४)

खुआरी-(फ़ा० ख़्वारी)-१ बरबादी, खराबी, नाश, २ अनादर, अप्रतिष्ठा।

खुआरू-दे० 'खुआर'। उ० हमहि सहित सबु होत खुआरू। (मा० २।२०५।३)

खुगनी-(सं० क्षुद्र)-समाप्त हो गई, खतम हो गई। उ० सो जानइ जनु आइ खुगनी। (मा० १।२६६।२)

खुन -(सं० खिन्नमनस्)-क्रोध, गुस्सा, रिस।

खुनसात-क्रोधित होते हैं, गुस्सा करते हैं। उ० खात खुनसात सोधे दूध की मलाई है। (क० ७।७४)

खुनिस-दे० 'खुनस'। उ० खेलत खुनिस न कबहूँ देखी। (मा० २।२६०।३)

खुनुस-दे० 'खुनस'।

खुर-(सं०)-१ चौपायों के पैर का कड़ा नाखून, सुम, २ खुर का भूमि पर चलने से बना हुआ चिह्न। खुरनि-१ खुरों में, २ खुर के बने निशाना में। उ० २ कुंभज के किंकर बिकल बूड़े गोखुरनि। (ह० ३८)

खुलहिं-(सं० खुल्)-१ खुल जाते हैं। २ निकल आते हैं। स्पष्ट हो जाते हैं। ३ खुल जायगा। उ० ३ जो कछु करिय सो होइ सुभ, खुलहिं सुमंगल खानि। (प्र० १।१।५) खुलहि-१ खुलती है, २ खुल जायेगी, खुले, ३ सुन्दर लगती है, सुन्दर लगे। उ० २ महरि महर जीवहिं सुख जीवन खुलहि मोद मनि खानी। (कृ० ४८) खुलि-खुलकर, स्वतंत्रता के साथ बिना डर भय के। उ० जो दससीस महीधर ईस को, बीस भुजा खुलि खेलन हारो। (क० ६।२८) खुली-१ खुल गई, उन्मुक्त हुई, २ सुशोभित हुई, फबी। उ० २ पियरी झीनी झँगुली साँवरे सरीर खुली। (गी० १।३०) खुलेउ-१ खुले, खुल गए, २ सुन्दर लगे, फबे। उ० १ भरत प्रभु देखत खुलेउ मग लोग ह कर भागु। (मा० २।२२३) खुलेगो-खुलेगा, उन्मुक्त होगा। उ० तुलसी को खुलेगो खजानो खोटे दाम को। (क० ७।७०)

खुलावौं-खुलवाऊँ। उ० बाल बिनोद-मोद मंजुलमनि किलकनि खानि खुलावौं। (गी० १।१५)

खुवार-दे० 'खुआर'।

खूट (१)-(सं० खंड)-छोर, कोना, खंड, टुकड़ा।

खूँट (२)-(सं० क्षोड)-१ लकड़ी का छोटा टुकड़ा जो कपड़ा टाँगने या पशु बाँधने के लिए गाड़ा जाता है। २ फसल काट लेने के बाद खेत में लगा हुआ डंठल का निम्न भाग, खूँटी। उ० २ देखि अति लागत अनंद खेत खूँट सो। (क० ७।१४१)

खूँद-(?)-घोड़े की उछल-कूद की चाल, थोड़ी जगह में इधर-उधर घोड़े का चलते रहना। उ० तुलसी जौ मन खूँद सम कानन बसहु कि गेह। (दो० ६२)

खूब-(फ़ा० खूब)-अच्छा, भला, उमदा, पूर्ण। उ० कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है। (क० ७।१०८)

खूसर-(सं० कौशिक)-उल्लू, घुग्घू। उ० राजमराल के बालक पेलि कै, पालत लालत खूसर को। (क० ७।१०३) खूसरो-खूसर भी, उल्लू भी। उ० सुमिरे कृपालु के मराल होत खूसरो। (क० ७।१६)

खे-(सं० ख)-१ आकाश में, २ आकाश के। उ० १ अपगत खे सोई अवनि सो पुनि प्रगट पताल। (स० १६०) २ गोखग, खेखग, बारिखग तीना माहिं बिबेक। (दो० ५३८)

खेखग-आकाश के पक्षी। उ० दे० 'खे'।

खेचर-दे० 'खेचर'। उ० १ डाकिनी-शाकिनी खेचर भूचर यंत्रमंत्र-भंजन, प्रबल कल्मषारी। (वि० ११) २ बाजर-बाज बड़े खगखेचर, लीजत क्यों न लपेटि लवा से। (ह० १८) खेचर-(सं०)-१ वह जो आसमान में चले, २ पक्षी, ३ राक्षस, ४ बिमान, ५ पवन, ६ देवता, ७ तारा, ८ शिव, ९ पारा।

खेत-(सं० क्षेत्र)-१ रणक्षेत्र, लड़ाई का मैदान, २ पुण्य भूमि, ३ खेती करने की भूमि, ४ योनि, ५ चौरस, बराबर, समतल। उ० १ हर्ता न खेत खेलाइ खेलाई। (मा० ६।३२।६) मु० खेत के धोखे-फसल को हानि पहुँचानेवाले जानवरों को डराने के लिए आदमी के स्वरूप के बने पुतले जो खेतों में खड़े किए रहते हैं। इनका प्रयोग ऐसे लोगों के लिए किया जाता है जो देखने भर के लिए हों और कुछ कर न सकें। उ० परसुराम से सूर सिरोमनि पल में भए खेत के धोखे। (गी० ५।१२)

खेता-दे० 'खेत'। उ० १ सानुज निदरि निपातउँ खेता। (मा० २।२३०।४)

खेद-(सं०)-१ अप्रसन्नता, दुःख, रंज, कष्ट, २ थकावट। उ० १ भव खेद छेदन दच्छ हम कहुँ रच्छ राम नमामहे। (मा० ७।१३। छं० २) २ जिन्हहि न सपनेहुँ खेद बरनत रघुबर बिसद जसु। (मा० १।१४ घ)

खेदा-दे० 'खेद'। उ० १ मम प्रसाद नहिं साधन खेदा। (मा० ७।८२।४)

खेम-(सं० क्षेम)-कुसल, क्षेम, रक्षा। उ० खेम कुसल जय जानकी, जय जय जय रघुराय। (प्र० ४।४।३)

खेरे-(सं० खेट)-छोटा गाँव, दो चार गाँवों का पुरा। उ० बैरप माँह बसाइए पै, तुलसी घर ब्याध अजामिल खेरे। (क० ७।१२)

खेरो-दे० 'खेरे'। उ० आप आप को नगर बसावत, सहि न सकत पर खेरो। (वि० १४३)

खेल-(सं० केलि)-१ कौतुक, तमाशा, २ अत्यंत तुच्छ, हलका या बिना श्रम का काम, ३ काम-क्रीड़ा, ४ कोई अद्भुत कार्य, ५ लड़कों का खेल, तमाशा, ६ शिकार। उ० ५ हारेहुँ खेल जितावहिं मोही। (मा० २।२६०।४) खेलही-खेल ही में, बिना श्रम के। उ० उपजी, सकेलि, कपि, खेलही उखारिए। (ह० २४)

खेलउँ-१ खेलूँ, २ खेलता, खेलता था। उ० २ खेलउँ तहूँ बालकन्ह मीला। (मा० ७।११०।२) खेलत-१ खेलते हैं, २ खेलता हुआ, ३ खेल में, खेलने में। उ० ३ खेलत सुनिस न कबहूँ देखी। (मा० २।२६०।३) खेलनि-१ खेलना, खेलने का भाव २ खेल में। उ० १ परसपर खेलनि अजिर, उठि चलनि, गिरि गिरि परनि। (गी० १।२५) खेलहिं-१ खेल में, खेल ही में, बिना श्रम के, २ खेलते हैं। उ० २ खेलहिं खेल सकल नृप लीला। (मा० १।२०४।३) मु० खेलहिं खेल-खेल ही खेल में, बिना परिश्रम के, हँसी-हँसी में। खेलहीं-१ खेलते हों क्रीड़ा करते हो, २ खेल में ही, बिना परिश्रम के ही। उ० १ प्रह्लाद पति जनु बिबिध तनु धरि समर अंगन खेलहीं। (मा० ६।८१। छं० २) खेलि-१ खेल करके, २ खेल, तमाशा। उ० १. खेलि बसन किये प्रभु मज्जन सरजू नीर। (गी० ७।२१) खेलिबे-खेलने, विनोद करने। उ० खेलिबे को खग मृग तरु किंकर ह्वै रावरो राम हौं रहिहौं। (वि० २३१) खेलिहहिं-खेलेंगे। उ० खेलिहहिं भालु कीस चौगाना। (मा० ६।२७।३) खेलिहौ-खेलोगे। उ० छगन मगन अँगना खेलिहौ मिलि ठुमुक ठुमुक कब धैहौ। (गी० १।८) खेलु-१ खेल, तमाशा, २ खेलो, खेल करो। उ० २ तुलसी गुरु मह एक ही खेल, छाँड़ि छल, खेलु। (दो० ७६)

खेलक-खेल करनेवाले, खिलाड़ी। उ० ब्योम बिमाननि बिबुध बिलोकत खेलक पेखक छाँह छये। (गी० १।४२)

खेलन-१ खेलने के लिए, शिकार करने के लिए, २ खेल की वस्तु। उ० १ पुरुष सिय बन खेलन आए। (मा० ३।२२।२)

खेलवार-१ खेल करनेवाला, खिलाड़ी, २ शिकारी, ३ खेल तमाशा, मन-बहलाव, ४ शिकार। उ० २ नृपति कहहु भरतु बक मुनि आयसु खेलवार। (मा० २।२१५)

खेला-दे० 'खेल'। उ० ५ जिमि कोउ करै गरुड़ सैं खेला। (मा० ६।२१।४)

खेलाइ-दे० 'खेलाइ'। खेलाइ खेलाइ-खेला खेलाकर, तमाशा कर करके। उ० हसौं न मोह खेलाइ खेलाई। (मा० ६।३५।६) खेलाइ-१ खेलाकर, खेल करवाकर, २ खेल करवाते। खेलाउब-१ खेलाना, खेल कराना, २ खेलाऊँगा। उ० २ तहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउब। (मा० २।१३६।४) खेलावत-१ खेलाते समय, खेलाने में, २ खेलाते हैं। उ० १ सुभग खेलावत कौतुक कीन्ह सदा निरह। (जा० १६८) खेलावहु-खेलाइए, खेल करवाइए। उ० भय जनि राम खेलावहु एही। (मा० ६।८६।१) खेलावा-खेल खेलाया। उ० एहि पापिहि मैं बहुत खेलावा। (मा० ६।७६।७)

खेलारू-खेलाड़ी, खेलनेवाला। उ० बड़ी बग मनु लव खेलारू। (मा० २।२४०।३)

खेलौना-दे० 'खलौना'।

खेलौना-(सं० केलि)-लड़का को खेलने के लिए मिट्टी आदि की बनी छोटी-छोटी सुन्दर चीजें। खिलवाड़। खेलने के लिए बनी मूर्ति। उ० देखि खेलौना किलकहीं। (गी० १।१६)

खेवाँ-खेवे में, बार में (२)'। उ० २ प्रान पार भए एकहि (मा० २।२२१।२)

खेवा (१)-(सं० क्षेपण, प्रा० खेवण, हिन्दी खेना)-१ नाव का किराया, उतराई।

खेवा (२)-(सं० क्षेप)-१ एक बार में जितना, माल ले जाया जा सके, २ दफा, बार समय।

खेवैया-नाव खेनेवाला, मल्लाह। उ० जहँ धार अपार न पार, न बोहित नाव न नीक खेवैया। (क० ७।५२)

खेसभव-आकाश से उत्पन्न।

खेस-(?)-पुरानी रुई का बना खुरदुरा कपड़ा, मोटा कपड़ा। उ० साथरी को साइयो, ओढ़िबो झूने खेस को। (क० ७।१२५)

खेह-(?)-धूल, मिट्टी राख। उ० दे० 'खाहिगो'। मु० खेह खाहिगा-दुर्दशा ग्रस्त होंगे, बुरी दशा में होंगे। उ० दे० 'खाहिगो'।

खेहर-(?)-राख धूल, भस्म। उ० मादे न मन, तन पुलक, नयन जल सो नर खेहर खाउ। (वि० १००)

खैंचत-१ खींचते हैं, २ खींचते हुए। उ० २ सत धरा मत खैंचत गाइ। (मा० १।२६१।४) खैंचहिं-खींचते हैं, खींच रहे हैं। उ० खैंचहिं गीध आँत तट भए। (मा० ६।८८।३) खैंचहु-खींचो, खींचिए। उ० खैंचहु मिटै मोर संदेहू। (मा० १।२८४।४) खैंचि-खींचकर। उ० खैंचि धनुष सर सत संधाने। (मा० ६।७०।४)

खैबो-१ खा लेना २ खाओगे। उ० १ माँगि कै खैबो मसीत को सोइबो, लैबे को एक न दैबे को दोऊ। (क० ७।१०६) खैहौं-खाऊँगा। उ० सिगरियै हौं ही खैहौं, बल दाऊ को न देहौं। (कृ० २)

खोंच-(सं० कर्ष)-किसी नुकीली चीज से छिलने का आघात, काँटे आदि से लगकर वस्त्र का निकोना फट जाना। उ० तुलसी बालक प्रमपर भरतहु लगी न खोंच। (दो० ३०२)

खोंची-(?)-वह थोड़ा अन्न धन आदि जो भिखमंगों को देते हैं। उ० आयो खोंची माँगि मैं तेरो नाम लिया रे। (वि० ३३)

खोइ-(सं० क्षेपण)-खोकर, गँवाकर, दूरकर, नष्ट कर, फेंककर। उ० पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि। (मा० ५।२६) खोई-१ खोकर, गँवाकर, २ खोया, गँवाया। उ० २ रथ सारथी तुरग सब खोई। (मा० ६।५१।२) खोए-खोने, त्यागने, गँवाने। उ० खोए राखे आपु भल, तुलसी चारु विचार। (दो० २५२)

खोज-(प्रा०खोज्ज=पदचिह्न)-१ तलाश, खोजने की क्रिया, अनुसंधान, २ पता, निशान, चिह्न, गाड़ी या पैर आदि का चिह्न। उ० २ सचिव चलायउ तुरत रथ इत उत खोज दुराइ। (मा०२।८५) मु०खोज मारि-चिह्न मिटा कर। उ० खोज मारि रथु हाँकहु ताता। (मा० २।८५।४)

खोजइ-१ खोजते हैं, ढूढ़ते हैं, २ खोजेंगे, तलाश करेंगे। उ० १ खोजइ सो कि अग्य इव नारी। (मा० १।५१।१) खोजत-१ खोजते हैं, ढूढ़ रहे हैं, २ खोजते-खोजते, खोजते हुए, ३ खोज करने पर। उ० २ खोजत व्याकुल सरित सर जल बिनु भयउ अचेत। (मा० ३।१२७) खोजन-१ खोजना, २ खोजने, तलाश करने। उ० २ सुग्रीवहि तब खोजन लागा। (मा० ६।६६।२) खोजहु-खोजो, तलाश करो। उ० जनकसुता कहुँ खोजहु जाई। (मा० ४।२२।४) खोजि-खोजकर। उ० ता जमभट साँसति हर हम से बृषभ खोजि-खोजि नहत। (वि० ९७) खोजौं-खोजूँ, ढूँढूँ। उ० आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। (मा० १।१५०।१)

खोट-(सं०)-१ दुर्गुण, दोष, बुराई, २ बुरा, कपटी, दोषयुक्त खोटा। उ० २ छोट कुमार खोट अति भारी। (मा० १।२७८।३)

खोटा-दुर्गुणी, बुरा, दुराचारी। खोटी-दुष्टा, बुरी, ऐबी। उ० मुनि रिपु हन लरि नग्र मिस खोटी। (मा० २।१६३।४) खोटे-बुरे, खरे के उलटे, दुष्ट, कलुषित। उ० तुलसी स खोटे खरे होत ओट नाम ही की। (क० ७।१६) खोटेउ-खोटे भी, खराब भी दुष्ट भी। उ० नाम प्रताप महा महिमा, अंकर किय खोटेउ, छोटेउ बाढ़े। (क० ७।१२७)

खोटाइ-नीचता, दुष्टता, बुराई, बुरा। उ० कहइ यचु ते कीन्हि खोटाई। (मा० ६।३६।२)

खोटो-बुरा, दुष्ट। उ० राम सा खरो है कौन ? मो सों कौन खोटो ? (वि० ७२) खोटोखरो-भला बुरा, जैसा कुछ भी। उ० तुम से मुसाहिब की ओट जन खोटो खरो, काल की करम की कुमीमति सहत। (वि० २५६)

खोड़स-(सं० षोडश)-सोलह, १६।

खोय (१)-(सं० क्षेपण)-१ खोकर, गँवाकर, २ खोया, गँवाया, खो दिया। खोयो-खो दिया, गँवा दिया। उ० खोयो सो अनूप रूप स्वप्नहू पर। (वि० ७४) खोवत-खोता है, गँवाता है। उ० भयो सुग्राम ता का अमर अगम तनु समुझि धौं कत खोवत अकाथ। (वि० ८४) खोवै-१ खो दे, गँवा दे, २ खोना, गँवाना। उ० २ सो खोवै चह कृपानिधाना। (मा० ७।६२।४) खोवैंहौं-खोऊँगा, गँवाऊँगा। उ० कहाँ न पठायनी के ह्वैहौ न हँसाइ कै ? (क० २।१)

खोय (२)-(फा० खू)-आदत, बान।

खोरि (१)-(सं० क्षालन)-नहाकर, स्नान करके। उ० तीर तीर बैठीं सो समर सरि खोरि कै। (क० ६।५०)

खोरि (२)-(सं० खोर)-१ ऐब, दोष, कुत्स, बुराइ, २ कोर कसर, कमी, न्यूनता। उ० १ कहउँ पुकारि खोरि मोहि नाहीं। (मा० १।२७४।२)

खोरि (३)-(?)-गली, पतली सड़क रास्ता। उ० खेलत अवध खोरि, गोली भौंरा चक डोरि। (गी० १।४१)

खोरि (४)-(सं० क्षौर)-मस्तक पर लगा चन्दन का त्रिपुंड, टीका।

खोरि (५)- सं० क्षुड)-खोलकर। खोरौं-१ खोलूँ, २ स्नान करूँ नहाऊँ, ३ तोड़ूँ, खंडित करूँ। उ० २ आयसु भग तें जौं न खरौं सब भाँजि सभासद सोनित खोरौं। (क० ६।१४)

खोरी-दे० 'खोरि (४)'। उ० तन अनुहरत सुचन्दन खोरी। (मा० १।२१६।२)

खोरे-१ कुगुणी, दोषी, ऐबी, २ लँगड़े, ३ नहाए, स्नान किए। दे० 'खोरि'। उ० ३ स्यामल तनु सम-कन राजत ज्यों नव घन सुधा सरोवर खोरे। (गी० ३।२)

खोलि-(सं० क्षुड्)-खोलकर, आवरण हटाकर, मुक्तकर। उ० कालि की बात बालि की सुधि करि समुझिहि ता हित खोलि करोपे। (गी० ५।१२) खोलिए-उन्मुक्त कीजिए, स्वतंत्र कीजिए। मु० रसना खोलिए-बुरा भला कहिए, क्रोध में गाली दीजिए। उ०रोष न रसना खोलिए, बरु खोलिय तरवारि। (दो० ४३५) खोलिय-खोलिए, अनावरण कीजिए। खोली-१ उन्मुक्त की, खोल दी, २ खोलकर। उ० १.कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली। (मा० २।२८।४) खोलैं-खोलते हैं, निकाते हैं। उ० योलैं खोलैं सल असि चमकत चोखे हैं। (गी० १।६३)

खोह-(सं० गुहा)-गुफा, कंदरा। उ० सौ राखसि गिरि खोह महुँ मार्यो करि मति मोरि। (मा० १।१७१)

खोहा-दे० 'खोह'। उ० देव दनुज मरगिरि खोहा। (मा० १।१८२।३)

खोही-(सं० खोलक)-पत्तो का बना हुआ छाता। उ० सैमिये लसति नव पल्लव खोही। (गी० २।२०)

खौंदि-(सं० क्षुद्)-खोदकर, नष्ट भ्रष्ट कर, उथल पुथल कर। उ० भारी भीर ठेलि पेलि रौंदि खौंदि डारहीं। (क० ५।१५)

खौरि-(सं० क्षौर)-मस्तक पर लगा चन्दन का टीका, त्रिपुंड। उ० करित कंठ मनि-माल, कलेवर चंदन खौरि सुहाई। (गी० १।५०।३)

खौरी-दे० 'खौरि'।

ख्यात-(सं०)-प्रसिद्ध, विदित, मशहूर। उ० ख्यात सुभन तिहुँ लोक महँ महा प्रबल अति सोइ। (स० २५४)

ख्याल (१)-(अर० ख़याल)-१ ध्यान, २ अनुमान, अटकल, ३ विचार, भाव, सम्मति, ४ लिहाज आदर, ५ एक किस्म प्रकार का गाना जिसमें अनेक राग और रागिनियाँ होती हैं। उ० ३ जौ जमराज काज सब परिहरि यही ख्याल उर अनिहै। (वि० ९५)

ख्याल (२)-(सं० खेलि)-खेल, क्रीड़ा, हँसी, दिल्लगी।

उ० करत बीस गोचन विलोकिए कुमत-फल, ख्याल लका लाइ कपि राँड़ की सी झोपरी। (क० ६।२७)

ख्याली-विलासी, कौतुकी, तमाशा करनेवाला। उ० ख्याली कपाली है ख्याली, चहूँ दिसि भाँग की टाटिन को परदा है। (क० ७।१४५)

# ग

गग-दे० 'गंगा'। उ० ता बिनु आगदय गग ! कलिजुग का करित ? (वि० १६) गगजनक-विष्णु, विष्णु के राम, कृष्ण आदि अवतार। उ० गगजनक, अनग अरि प्रिय, कपट बटु बलि छरन। (वि० २१८) विशेष-गंगा विष्णु के चरणों से उत्पन्न मानी जाती हैं।

गंगा-(स०)-गगा नदी जो हिमालय से निकलकर १५६० मील बहकर हिमालय की खाड़ी म गिरती है। हिन्दू इसे अत्यन्त पवित्र मानते हैं, और इसमें स्नान का फल मुक्ति मानते हैं। उ० ससि ललाट सुंदर सिर गंगा। (मा० १। १२।२) विशेष-पुराणों के अनुसार गंगा हिमालय और मनोरमा की पुत्री हैं। ये पहले स्वर्ग में थीं। सगर के साठ सहस्र पुत्रों को कपिल मुनि ने भस्म कर डाला तो उन्हें मुक्ति प्रदान करने के लिए दिलीप पुत्र भगीरथ तप करने लगे। तप के फलस्वरूप गंगा स्वर्ग से चलीं। बीच में शिव ने उन्हें अपनी जटा में धारण कर लिया। गंगा वहाँ से फिर गिरीं तो जह्नु ऋषि ने पी लिया और भगीरथ की प्रार्थना से प्रभावित हो ऋषि ने उन्हें अपने जानु से निकाला। भगीरथ इन्हें ले जाकर सगर-पुत्रों को मुक्ति दिलाने में सफल हुए। गंगा स्वर्ग से नीचे आते समय विष्णु के चरण से निकली थीं अतः विष्णु इनके जनक माने जाते हैं। इन्हीं सब आधारों पर विष्णुपदी, विष्णुपुत्री, भागीरथी, जह्नुसुता तथा जाह्नवी आदि इनके नाम हैं। पुराणों के अनुसार गंगा की तीन धाराएँ आकाश, पृथ्वी और पाताल में हैं। इसी कारण इन्हें त्रिपथगा भी कहते हैं। भीष्म की माता और शान्तनु की बड़ी रानी का नाम भी गंगा था। इनसे उत्पन्न होने के कारण ही भीष्म गंगासुत तथा गांगेय आदि कहे जाते हैं।

गंगाधर-(स०)-गंगा को धारण करनेवाले, शिव, महादेव। उ० गौरि करुणाकर, गरल गंगाधर, निमल, निगुण निर्विकार। (वि० १२)

गगेउ-(?) गंगाजल, गंगोदक।

गगोक-(स० गंगोदक)-गंगाजल, गंगा का पानी। उ० सुरसरिगत सोइ सलिल, सुरा सरिस गंगोक। (दो० ६८)

गंगोद-(स० गंगोदक)-गंगाजल, गंगा का पानी। उ० जिमि सुरसरि गत सलिल वर सुरा सरिस गंगोद। (स० ६१)

गंज (१)-(फ़ा०)-१ खजाना, कोष, २ ढेर, समूह, झुंड।

गंज (२)-(स० गजन)-नाश करनेवाला।

गजन-दे० 'गंजन'। उ० १ नित नौमि राम अकाम प्रिय कामादि खल दल गजन। (मा० ३।३२।छ० २) गंजन-(स०)-१ नाश करनेवाला, विजयी, २ अवज्ञा, तिरस्कार, अनादर, ३ नाश करना, चूर-चूर करना। उ० १ भो भव भय भंजन, मुनिमन रंजन, गंजन बिपति बरूथा। (मा० १।१८६।छ० ३)

गंजना-पीड़ा, यातना, कष्ट।

गजय-गजन कीजिए, नष्ट कीजिए, नाश करो। उ० हरि बनि राम काम मद गजय। (मा० ७।३४।४) गंजा-नाश, नाश किया, चूर-चूर किया। उ० तेहि समेत नृपदलमद गंजा। (मा०५।२१।४) गंजेउ-१ मारा, तोड़ा, नष्ट किया, २ मारा हो, नष्ट किया हो। उ० २ जनु मृग-राज किसोर महा गज गंजेउ। (जा०११६)

गंजनिहार-मारनेवाला, नष्ट करनेवाला। उ० हरष विषाद न केसरिहि कुंजर-गंजनिहार। (दो० ३८१)

गजु-दे० 'गंज (१)'। उ० २ हिय हरिनख अद्भुत बन्यो मानो मनसिज मनि-गन-गंजु। (गी० १।११)

गंड-(स०)-१ कपोल, गाल, २ कनपटी, ३ गले में पहनने का गंडा, ४ फोड़ा, ५ चिह्न, निशान लकीर, ६ गाँठ। उ० १ श्रवन कुंडल, बिमल गंड मंडित चपल। (गी० ७।५) गंडमंडल-(स०)-कनपटी, कान, गाल और आँख के बीच का भाग। उ० ललित गंड मंडल, सुविसाल भाल तिलक झलक। (गी० ७।४)

गंडकि-(स० गंडकी)-एक नदी जो नेपाल में है। इसी नदी में पाए जानेवाले काले पत्थर विष्णु के प्रतीक मान कर शालग्राम नाम से पूजे जाते हैं। उ० गंडि गुंडि पाहन पूजिए, गंडकि-सिला सुभाय। (दो० ३६२)

गंता-(स० गंतृ)-जानेवाला गमन करनेवाला। उ० घटना-सुघट बिघटन बिकट भूमि-पाताल जल गगन-गंता। (वि० २५)

गंध-(स०)-१ महक, बास, २ सुगंध, खुशबू, ३ दुर्गंध, बदबू, ४ लेश, अणुमात्र, ५ संस्कार, ६ संबंध। उ० १ बिनु महि गंध कि पावइ कोई। (मा० ७।९०।२) विशेष-न्याय शास्त्र में गंध को पृथ्वी का गुण कहा गया है।

गंधन-(स० कंचन)-सोना, स्वर्ण। उ० गंधन मूल उपाधि बहु भूषन सन गन जात। (स० ४१०)

गँधरब-दे० 'गंधर्व'।

गंधर्ब-दे० 'गंधर्व'। उ० १ देव दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गंधर्ब। (मा० १।७ घ)

गंधर्बा-दे० 'गंधर्व'। उ० १ किंनर नाग सिद्ध गंधर्बा। (मा० १।६१।१)

गंधर्व-(सं०)-१ देवताओं का एक भेद। पुराणों के अनुसार ये लोग स्वर्ग में रहते हैं और वहाँ गाने का काम करते हैं। एक बार गंधर्वों ने भरत के ननिहाल केकय देश पर आक्रमण किया। भरत अपने ननिहाल वालों की सहायता के लिए गए और उन्होंने गंधर्वों को मार भगाया। इसी कारण उन्हें गंधर्वों को जीतनेवाला कहा जाता है। २ मृग, ३ घोड़ा, ४ प्रेत, ६ एक जाति जिसकी कन्याएँ गाती और वेश्यावृत्ति करती हैं। ७ विधवा स्त्री का दूसरा पति।

गँभीर-दे० 'गभीर'।

गभीर-(सं०)-१ जिसकी थाह जल्दी न मिले, गहरा, अथाह, बहुत, अर्थवाला, २ भारी, घोर, ३ शांत सौम्य, अचंचल, ४ गहन, घना, अगम्य, ५ शिव, महादेव, ६ एक राग। उ० १ गभीर गर्वघ्न गूढार्थवित गुप्त गोतीत गुरु ज्ञान ज्ञाता। (वि० ५४)

गँभीरा-दे० 'गभीर'। उ० ब्रह्मगिरा भै गगन गँभीरा। (मा० १।७४।४)

गँवाइ-(सं० गमन)-गँवाकर, खोकर। उ० गए गँवाइ गरूर पति, धनु मिस हये मदेस। (प्र० १।७।५) गँवाई-१ गँवाया, २ गँवाकर खोकर। उ० १ मध्य वयस धनहेतु गँवाइ कृषी बनिज नाना उपाय। (वि० ८३) गँवायो-गँवाया, बिताया। उ० जनम गँवायो तेरहि द्वार, मैं किंकर तेरो। (वि० १४१) गँवावै-खोवे, व्यतीत करे। उ० राग द्वेष महँ जनम गँवावै। (वै० ४७) गँवावौं-१ खोऊँ, व्यर्थ जाने दूँ, गँवाऊँ २ गँवाता हूँ। उ० १ जो तनु धरु धरि हरिपद साधहिं जन सो बिनु काज गँवावौं। (वि० १४२)

गँवार-(सं० ग्राम)- गाँव का रहनेवाला, असंस्कृत, मूर्ख बेसमझ। उ० गाँव गँवार नृपाल महि, यमन महा महिपाल। (दो० ५५१)

गँवारि-गँवार का स्त्रीलिंग। दे० 'गँवार'। गाँव की रहने वाली, बे समझ। उ० जुगुति भूमयधारिये की समुझिहै न गँवारि। (कृ० ४३)

गँवारी-दे० 'गँवारि'।

गँस-(सं० ग्रंथि)-१ गाँठ, २ द्वेष, बैर, गाँस, ३ लगने वाली बात, ताना। उ० २ मानी राम अधिक जननी तें जननिहु गँस न गही। (गी० ७।३७)

ग-(सं०)-१ स्वर्ग, २ सुमेरु, ३ गणेश, ४ गंधर्व, ५ गीत, ७ गवैया, ८ नभ, आकाश ९ गमन करनेवाला, १० गुरुमात्रा।

गइँ-(सं० गत)-१ गई, जाना क्रिया का सामान्य भूत में अन्य पुरुष का आदरसूचक रूप। २ नष्ट हो गईं। उ० १ कपट नारि-बर-बेष बिरंचि मंडप गईं। (जा० १०७) गई-१ गई। जाना क्रिया का सामान्य भूत अन्य पुरुष एक बचन का रूप, २ नष्ट हो गई। उ० १ भए सब साधु किरात किरातिनि, राम दरस मिटि गइ कलुषाइ। (गी० २।४६) गइउँ-१ गई २ नष्ट हुई। उ० १ गइउँ न संग न प्रान पठाए। (मा०२।१६६।२) गए-गई का बहुवचन। उ० सखीं लवाइ गईं जहँ रानी। (मा० १।२६७।३) गई-(सं० गत)-१ गुजरी, हाथ से निकली, दे० 'गइ'। २ नष्ट हो गई। उ० १ गईं बहोर गरीब नेवाजू। (मा० १।१३।४) गएँ-१ जाने पर, बीतने पर, २ गए, समाप्त हो गए। उ० १ कछु दिन गएँ भरत जुबराजू। (मा० २।३२।२) गए-१ चले गए, समाप्त हो गए। २ जाने पर, समाप्त हो जाने पर। उ० २ निज प्रभु दरसन पायउँ गए सकल सन्देह। (मा० ७।११४ क) गएहु-गया हुआ भी, नष्ट हुआ भी समाप्त हुआ भी। उ० देहि लेहि धन धरनि घर, गएहु न जाइहि काउ। (दो० ४४६)

गगन-(सं०)-आकाश, शून्य स्थान। उ०जनु भय मगन गगन भइ बानी। मा० २।२३१।१) गगनगिरा-आकाशवाणी, देववाणी, वह शब्द जो आकाश से देवता लोग बोले। उ० गगनगिरा गभीर भइ हरनि सोक संदेह। (मा० १।१८६)

गच-(फा०)-१ चूने सुरखी आदि के मेल से बना मसाला जिससे जमीन पक्की की जाती है। २ पक्का फर्श, सुरखी आदि देकर पिटी हुई चिकनी जमीन। पक्की छत। उ० १ नाना रंग रुचिर गच ढारीं। (मा० ७।२७।२)

गच्छति-(सं०)- जाते हैं, चलते हैं। उ० यत्र तिष्ठति तत्रैव अज शर्व हरि सहित गच्छति क्षीराब्धिवासी। (वि० ५७)

गज-(१)-(सं०)-१ हाथी करी, २ एक बंदर का नाम जो राम की सेना में था। ३ एक राक्षस का नाम जो महिषासुर का पुत्र था। ४ आठ की संख्या, ५ वह हाथी जिसको भगवान ने ग्राह से छुड़ाया था। उ० १ गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै। (मा० ५।३। छं० १) ५ सूत्र बलि बाण प्रह्लाद मय व्याध गज गृद्ध द्विज बंधु निजधर्म त्यागी। (वि० ५७) कथा-राजा इन्द्रद्युम्न किसी अपराध के कारण ऋषि शापवश गज हो गए थे। एक दिन वे त्रिकूट पर्वत के सरोवर में हथिनियों के के साथ विहार कर रहे थे। उसी सरोवर में ऋषियों के शापवश हूहू नामक गंधर्व ग्राह होकर रहता था उसने गज (इन्द्रद्युम्न) को पकड़ लिया। युद्ध के बाद थकित गज ने एक कमल तोड़कर आर्तस्वर से भगवान् की प्रार्थना की और विष्णु गरुड़ को छोड़ स्वयं दौड़ आए और दोनों का उद्धार किया। गंधर्व (ग्राह) अपने लोक में गया और गज भगवान् का पार्षद हो गया। गजगवनि-(सं० गजगामिनी)-हाथियों की भाँति मस्त होकर धीरे धीरे चलनेवाली (गमन करनेवाली) स्त्री या स्त्रियों का समूह। सुंदरी। उ० मदनमत्त गजगवनि चलीं वर परिधन। (पा० १०७) गजगामिनि-दे० 'गजगवनि'। उ० चलीं मुदित परिछनि करन गजगामिनि बर नारि। (मा० १।३१७) गजगाह-हाथी की झूल, पाखर। उ० सानि कै सनाह गजगाह सउछाह दल, महाबली धाये बीर जातुधान धीर के। (क० ६।३१) गजदसन-(सं० गज + दशन)-हाथी का दाँत, १ खाने के दाँत और होते हैं और दिखाने के और। अत 'गजदसन' का अर्थ दोहरी नीतिवाला या बाहर भीतर, भीतर में और किया जाता है। २ हाथी के बाहर निकले दाँत फिर भीतर नहीं जा सकते अत गजदसन का अर्थ दृढ़ दृढ़तर किया जाता

है। उ० १ जिमि गज दसन तथा मम करनी सब प्रकार तुम जानहु। (वि ११८) २ बज्ररंग गजदमन अनक-पत घेद विदित, जग जान। (गी० १।८७)

गज-(२)-(फा गज)-लम्बाइ नापने की एक नाप जो सोलह गिरह या तीन फुट की होती है।

गजबदन-दे० 'गजवदन'। उ० जय गजबदन षडानन माता। (मा० १। २३५।३)

गजमणि-(स०)-दे० 'गजमुक्ता'।

गजमनि-दे० 'गजमणि'। उ० गजमनि माल बीच भ्राजत कहि जाति न पदिक-निकाई। (वि० ६२) गजमनियाँ-गज मणियों का समूह। दे० 'गजमणि'। उ० पहुँची करनि, पदिक हरिनख उर, कठुला कठ, मञ्जु गजमनियाँ। (गी० १।३१)

गजमनी-दे० 'गजमणि'। उ० मान सुविमाल चहुँ पास बनी गजमनी। (गी० ७।१८)

गजमुकुता-दे० 'गजमुक्ता'। उ० गजमुकुता हीरामनि चौक पुराइय हो। (रा० ४)

गजमुक्ता-(स०)-एक प्रकार की मोती या मणि जिसका हाथी के मस्तक से निकलना प्रसिद्ध है।

गजमोति-(स० गजमौक्तिक)-दे० 'गजमुक्ता'। उ० अरुन कंज महँ जुग-जुग पाँति रुचिर गजमोति। (गी० ७।२१)

गजराज-(स०)-१ बड़ा हाथी, २ हाथियों का मालिक, ऐरावत, ३ वह हाथी जिसे ग्राह ने पकड़ लिया था। दे० 'गज'। उ० ३ कौन धौं सोम जागी अजामिल अधम? कौन गजराज धौं बाजपेइ? (वि० १०६)

गजबदन-(स०)-हाथी की भाँति मुँहवाले। दे० 'गणेश'।

गजानन-(स०)-हाथी के से मुँहवाले। दे० 'गणेश'।

गजाननु-दे० 'गजानन'। उ० सुमिरि गजाननु कीन्ह पयाना। (मा० १।३३६।४)

गजारि-(स०)-सिंह, हाथी का बैरी। उ० नहिं गजारि जसु बधे सृगाला। (मा० ६।३०।५)

गजारी-(स० गज+अरि)-सिंह। उ० अजहूँ तौ भलो रघुनाथ मिले, फिरि बूझिहै को गज कौन गजारी। (क० ६।५)

गजेन्द्र-(स०)-१ बड़ा हाथी, गजराज, २ इन्द्र का हाथी। ऐरावत, ३ वह हाथी जिसे विष्णु ने तारा था।

गज्जत-(स० गर्जन)-गरजते हैं गर्जन करते हैं। उ० विकट कटक विहरत वीर बारिद जिमि गज्जत। (क० ६।४७)

गठिबँध-दे० 'गठिबंध'। उ० गठिबँध तें परतीति बड़ि, जेहि सबको सब काज। (दो० ४२१)

गठिबंध-(स० ग्रंथिबंधन)-गठजोड़ा। ब्याह के समय वर के दुपट्टे और वधू के बसन में गाँठ दी जाती है। उ० यदि प्रतीति गठिबंध तें बड़ो जोग तें छेम। (दो० ४७२)

गड़त-(स० गर्त) धँस जाते हैं, गड़ जाते हैं, भीतर चला जाता है। उ० गड़त गोड़ मानो सकुच पंक महँ कढ़त प्रेम-बल धीर। (गी० २।६१) गड़ी-धँसी, घुसी। उ० कुंडल तिलक छबि गड़ी कबि जियरे। (गी० १।४१) गड़े-धँस, लज्जित हो। उ० तापर तिनकी सेवा सुमिरि जिय जात जनु सकुचनि गड़े। (वि० १३५)

गढ़-(स० गड)-१ खाँई, २ जिसके पास या चारो ओर खाँई हो, किला, कोट, दुर्ग। उ० २ सेन साजि गढ़ घेरेसि जाइ। (मा० १।१७९।२)

गढ़ाइहौं-गढ़वाऊँगा, बनवाऊँगा। उ० सब परिवार मेरो याही लागि, राजाजू! हौं दीन बित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं? (क० २।८) गढ़ायो-१ गढ़ाया, बनवाया, २ गढ़ाया हुआ, बनाया हुआ। उ० २ बापु हौं बाबुका नीके के जानत, राबरो राम! भरायो गढ़ायो। (क० ७।६०) गढ़ि-गढ़कर, काट छाँटकर। उ० सुर प्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ीं। (मा० १।२८८।३) मु० गढ़ि गुढ़ि-काट छाँटकर, भली भाँति बनाकर। उ० गढ़ि गुढ़ि पाहन पूजिए, गंडकि सिला सुभाय। (दो०३६२) मु०गढ़ि छोलि-सँवारकर, अच्छी तरह बनाकर। उ० हृदय कपट, बर बेष धरि, बचन कहैं गढ़ि छोलि। (दो० ३३२) गढ़ीबे-गढ़ने में, बनाने में। उ० हौं भलो नग फँग परे गढ़ीबे, कब ए गढ़त महरि-सुख जोए। (कृ० ११) गढ़े-(स० घटन, हिन्दी गढ़ना=१ किसी वस्तु को काट-छाँट या ठोंक पीटकर ठीक करना, रचना, २ छीलना, काटना, ३ बातें बनाना, कपोल कल्पना करना)-१ गढ़कर, २ गढ़ा, बनाया, ३ गढ़ेंगे, काट-छाँट करेंगे। उ० ३ चतुरंग चमू पल में दलि कै रन रावन राढ़ के हाड़ गढ़े। (क० ६।५)

गढ़ु-दे० 'गढ़'। उ० २ सेतु बाँधि कपि सेन जिमि उतरी सागर पार। गयउ बसीठी बीरबर जेहि बिधि बालिकुमार॥ ... गढ़ु गाढ़ सुहावा। (मा० २।१०२।१)

गढ़ैया-गढ़नेवाला, बनानेवाला। उ० ज्ञान को गढ़ैया, बिनु गिरा को पढ़ैया, बार, ख्याल को बढ़ैया सो बढ़ैया उरसाल को। (क० ७।१३५)

गण-(स०)-१ समूह, झुंड, २ श्रेणी जाति, ३ किसी भी प्रकार की समानता रखनेवाले मनुष्यों का समुदाय ४ सेना का वह भाग जिसमें तीन गुल्म हों, ५ छंदशास्त्र के ८ गण, ६ शिव के पारिषद, ७ दूत, सेवक, सेवकों का दल। उ० १ यस्यगुणगण गनति विमलमति शारदा निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी। (वि० ११)

गणक-(स०)-गणना करनेवाला, ज्योतिषी।

गणति-दे० 'गनति'।

गणनायक-(स०)-दे० 'गणेश'।

गणपति (स०)-दे० 'गणेश'।

गणराऊ-(स० गण+राजा)-दे० 'गणेश'।

गणराज-(स० गण+राजन्)-दे० 'गणेश'।

गणिका-(स०)-१ वेश्या, रंडी, २ जीवंती नाम की वेश्या जो राम नाम के कारण ही मोक्ष गामिनी हुई। कथा-प्राचीनकाल में एक जीवंती नाम की वेश्या हो गई है। उसने एक तोता पाल रक्खा था। वह उसे बहुत प्यार करती थी। एक दिन एक महात्मा उधर से भिक्षा और वेश्या के घर भिक्षा माँगने गए। महात्मा के कहने से उसी दिन से वह गणिका पुरगत के समय तोते को राम नाम पढ़ाने लगी। उसे राम नाम का प्रभाव ज्ञात नहीं था पर अनजान में ही सही, नाम तो लेती थी। इसका फल यह हुआ कि मरते समय भी उसके मुँह

से राम नाम निकलता रहा और वह भवसागर पार हो गई।

गणेश–(सं०)-एक देवता जिनका सारा शरीर तो मनुष्य का है पर सिर हाथी का है। इनके चार हाथ और एक दाँत है। ये महादेव के पुत्र कहे जाते हैं। इनकी सवारी चूहा है। पुराणों के अनुसार पहले इनका सिर मनुष्य का था पर शनैश्चर की दृष्टि से वह कट गया और विष्णु ने एक हाथी का सिर काटकर उसके स्थान पर जोड़ दिया। कुछ पुराणों के अनुसार परशुराम, कुछ के अनुसार रावण तथा कुछ के अनुसार कार्त्तिकेय ने इनका एक दाँत तोड़ दिया था इसीलिए ये एकरदन भी कहे जाते हैं। ये महादेव के गणों के अधिपति होने के कारण गणेश नाम से प्रसिद्ध हैं। सभी मंगल कामों में सबसे पहले इनकी पूजा की जाती है। हिन्दुओं के पाँच प्रधान देवों में इनकी गणना होती है। गणेश लेखक भी बड़े भारी हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि व्यास के महाभारत को पहले पहल इन्हाने ही लिखा था।

गत–गए हुए को, चलते हुए को। उ० सीता लक्ष्मण संयुत पथिगत रामाभिरामं भजे। (मा० ३।१। श्लो० २) गत (१)-(सं०)-१ समाप्त, नष्ट, बीता हुआ, २ में, गया हुआ, पड़ा हुआ, ३ रहित, हीन, खाली, बिना, ४ क्षीण, दुर्बल, गया-गुजरा। उ० ३ शक्र प्रेरित घोर मारमद भंगकृत, क्रोधगत, बोधरत, ब्रह्मचारी। (वि० ६०) गता–गई, प्राप्त हुई। उ० प्रसन्नतां या न गताभिषेकत स्तथा न मम्ले वनवास दु खत। (मा० २। श्लो०२) गतौ–गए हुए, जाते हुए। विचरते हुए। यह द्विवचन का रूप है। उ० सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि न। (मा० ४।१। श्लो०१)

गत (२)-(सं० गति)-१ अवस्था, दशा, २ रूप, रंग, वेष, ३ सुगति, उपयोग ४ दुर्गति, दुर्दशा, नाश, ५ अप्रिय, बुरा। उ० २ सूपनखा मम भाँति गत, असुभ अमंगल-मूल। (प्र० ३।२।५)

गति–दे० 'गति'। उ० ४ प्रयाति से गतिं स्वक। (मा० ३।४। श्लो० ८) गति-(सं०)-१ चाल, गमन २ हिलने-डोलने की क्रिया, हरकत, ३ अवस्था दशा हालत, ४ रूप, रंग, वेष, ५ पहुँच, प्रवेश, दखल, ६ प्रयत्न की सीमा, अंतिम उपाय, ७ सहारा, अवलंब, ८ चाल, करनी, चेष्टा, ९ लीला, विधान, माया १० वह रीति, ११ जीव का एक शरीर से दूसरे शरीर में गमन, १२ मृत्यु के उपरांत जीवात्मा की दशा, १३ मोक्ष, मुक्ति १४ ताल और स्वरानुसार नृत्य आदि में अंग-चालन। उ० १ सूपनि कटि केहरि, गति मराल। (वि० १४) १२ जेहि उपाय सपनेहुँ दुर्लभ गति सोइ निसि बासर कीजै। (वि० ११७)

गती–दे० गति'। उ० १० गृह आनहि चेरि निबेरि गती। (मा० ७।१०१।२)

गथ–(सं० ग्रन्थ)-१ गाँठ में बँधा दाम, रुपया पैसा २ माल, ३ झुंड समूह, गरोह। उ० १ बाजार रुचिर न बनइ बरनत वस्तु बिनु गथ पाइए। (मा० ७।२८। छं०१)

गद–(सं०)-१ रोग, २ राम की सेना में एक बंदर जो सेनापति था। ३ एक राक्षस का नाम। उ० २ सगनील नल कुमुद गद, आमयतु शुभराज। (प्र० ३।७।२)

गदगद–(सं० गद्गद)-१ एक अवस्था जिसमें मनुष्य अधिक हर्ष, प्रेम, श्रद्धा आदि के आवेग से इतना पूर्ण हो कि शब्दोच्चारण न कर सके। २ पुलकित, प्रसन्न, ३ प्रेमपूर्ण। उ० १ गदगद कंठ नयन जल, उर धरि धीरहि। (जा० १६६) ३ गदगद बचन कहति महतारी। (मा० २।५७।३)

गदा–(सं०)-एक प्राचीन अस्त्र जिसमें एक डंडा और उसके सर पर बड़ा सा लट्टू रहता है। हनुमान का प्रधान अस्त्र यही था। उ० गदा-कंज-दर-चारु-चक्रधर, नाग सुंड समभुज चारी। (वि० ६२)

गन–दे० 'गण'। उ० १ मनिगन पुर नर नारि सुजाती। (मा० २।१।२) गनइ–गणों, 'गन' का बहुवचन। उ० गनन्ह समेत बसहिं कैलासा। (मा० १।१०२।२)

गनइ–(सं० गणन)गिनता है। उ० सो कि दोष गुन गनइ जो जेहि अनुरागइ। (पा० ६७) गनई–गिनता, गिनता है। गिनती करता है। गनत–१ गिनते ही, २ गिनते हैं ३ गिनते हुए। उ० २ ज्ञान-वैराग्य विज्ञान भाजन विभो! विमल गुन गनत सुक नारदादी। (वि० २६) गनति–१ गिनती, शुमार, हिसाब, २ गिनती है, वर्णन करती है, बखानती है। उ० २ यस्यगुणगण गनति विमलमति शारदा निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी। (वि० ११) गनहिं–गिनते हैं, गणना करते हैं। उ० घोर निसाचर विकट भट समर गनहिं नहिं काहु। (मा०१।३२६) गनहि–(सं० गण)-समूह को, झुंड को। उ० दे० 'गन नाथहि'। गनहीं–गिनते हैं। उ० तृन समान त्रैलोकहि गनहीं। (मा० ५।२२।१) गनि–गिनकर, गणना कर। उ० कहे नाम गनि मङ्गल नाना। (मा०२।६।१) गनिअ–गिनना चाहिए। उ० रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिअ न ताहु। (मा०१।१७०) गनिगनि–गिन गिनकर। उ० नेम तें सिसुपाल दिन प्रति देत गनिगनि गारि। (वि० २१४) गनिबो–गिनेंगे, गणना करेंगे। उ० न्यारो कै गनिबो जहाँ गने गरीब गुलाम। (वि० ७७) गनिय–१ गिनिए, २ गिनना चाहिए। गनियत–१ गिनता है, २ गिना जाता है। उ० २ सूर सुजान सपूत सुलच्छन गनियत गुन गरु आई। (वि० १७५) गनिहैं (१) गिनते हैं, गणना करते हैं। गनिहैं–१ गिनेंगे, २ गिन सकेंगे। उ० २ तऊ न मेरे अघ अवगुन गनिहैं। (वि० ९५) गनी (१)-(सं० गणन)-गिना हिसाब लगाया, जोड़ा। उ० गनी जनक के गनकन्ह जोई। (मा० १।३१२।४) गने–१ गिने, गिने हुए, २ गिने हैं गिन गए हैं ३ गिने चुने, थोड़े कम संख्या में ४ गिना, गणना की। उ० ३ महिसुर मंत्री मातुगुरु गने लोग लिए साथ। (मा० २।२४५) गनै–गिनता है, २ गिने, गणना करे। उ० गनै को पार निसाचर जाती। (मा० १।१८१।२) गनो–गिनो गणना करो। उ० तदपि मानिन्ल जनि गनो, पायस्सेज प्रमान। (वै० २६)

गनक–दे० 'गणक'। उ० सुनि सिख पाइ असीस बड़ि गनक बोलि दिनु साधि। (मा०२।३२३) गनकन्ह–गणक लोग,

हैं। उ० १ जिमि गज दमन तथा मम करनी सब प्रकार तुम जानहु। (वि ११८) २ यद्यपि गजदमन जनक-पन बेद बिदित, जग जान। (गी० १।८७)
गज-(२)-(फा गज़)-लम्बाई नापने की एक माप जो सोलह गिरह या तीन फुट की होती है।
गजबदन-दे० 'गजवदन'। उ० जय गजबदन षडानन माता। (मा० १। २३५।३)
गजमणि-(स०)-दे० 'गजमुक्ता'।
गजमनि-दे० 'गजमणि'। उ० गजमनि माल बीच भ्राजत कहि जाति न पदिक-निकाई। (वि० ६२) गजमनियाँ-गज मणियों का समूह। दे० 'गजमणि'। उ० पहुँची करनि, पदिक हरिनख उर, कठुला कंठ, मंजु गजमनियाँ। (गी० १।३१)
गजमनी-दे० 'गजमणि'। उ० माल सुबिसाल चहूँ पास बनी गजमनी। (गी० ७।५)
गजमुकुता-दे० 'गजमुक्ता'। उ० गजमुकुता हीरामनि चौक पुराइय हो। (रा० ४)
गजमुक्ता-(स०)-एक प्रकार की मोती या मणि जिसका हाथी के मस्तक से निकलना प्रसिद्ध है।
गजमोति-(स० गजमौक्तिक)-दे० 'गजमुक्ता'। उ० अरुन कंज महँ जुग-जुग पाँति रुचिर गजमोति। (गी० ७।२१)
गजराज-(स०)-१ बड़ा हाथी, २ हाथियों का मालिक, ऐरावत, ३ वह हाथी जिसे ग्राह ने पकड़ लिया था। दे० 'गज'। उ० ३ कौन धौं सोम जागी अजामिल अधम? कौन गजराज धौं बाजपेई? (वि० १०६)
गजवदन-(स०)-हाथी की भाँति मुँहवाले। दे० 'गणेश'।
गजानन-(स०)-हाथी के से मुँहवाले। दे० 'गणेश'।
गजाननु-दे० 'गजानन'। उ० सुमिरि गजाननु कीन्ह पयाना। (मा० १।३३१।४)
गजारि-(स०)-सिंह, हाथी का बैरी। उ० नहिं गजारि जसु बधे सृगाला। (मा० ६।३०।२)
गजारी-(स० गज+अरि)-सिंह। उ० अजहूँ तौ भला रघुनाथ मिलै, फिरि बूझिहै को गज कौन गजारी। (क० ६।५)
गजेन्द्र-(स०)-१ बड़ा हाथी, गजराज, २ इन्द्र का हाथी। ऐरावत, ३ वह हाथी जिसे विष्णु ने तारा था।
गज्जत-(स० गर्जन)-गरजते हैं, गर्जन करते हैं। उ० चिक्कट चक्क चिक्करत बीर बारिद जिमि गज्जत। (क० ६।४७)
गठिबँध-दे० 'गठियध'। उ० गठिबँध तें परतीति बढ़ि, जेहि सबको सब काज। (दो० ४२३)
गठिबंध-(स० ग्रंथिबंधन)-गठजोड़ा। ब्याह के समय वर के दुपट्टे और वधू के अंचल में गाँठ भी जाती है। उ० बढ़ि प्रतीति गठिबंध तें बड़ो जोग तें छेम। (दो० ४७३)
गड़त-(स० गर्त)-धँस जाते हैं, गड़ जाते हैं, भीतर चला जाता है। उ० गड़त गाड़ माना मधुप पंक मंदे मकरंद प्रेम-जल धीर। (गी० २।६३) गड़ि-धँसी हुई। उ० कुंकुम तिलक भाल श्रुति कुंडल... (गी० १।२१) गड़े-धँस, लज्जित हो। उ० तापर तिनकी सेवा सुमिरि जिय जात जनु सकुचनि गड़े। (वि० १३५)
गढ़-(स० गढ़)-१ खाँई २ जिसके पास या चारों ओर खाँई हो, किला, कोट दुर्ग। उ० २ सेन साजि गढ़ घेरि जाई। (मा० १।१७१।२)
गढ़ाइहौं-गढ़वाऊँगा, बनवाऊँगा। उ० सब परिवार मेरो याही लागि, राजाजू! हौं दीन बित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं? (क० २।८) गढ़ायो-१ गढ़ाया, बनवाया, २ गढ़ाया हुआ, बनाया हुआ। उ० २ आपु हौं आपुको नीके कै जानत, रावरो राम! भरायो गढ़ायो। (क० ७।६०) गढ़ि-गढ़कर, काट छाँटकर। उ० सुर प्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ीं। (मा० १।२८८।३) मु० गढ़ि गुढ़ि-काट-छाँटकर, भली भाँति बनाकर। उ० गढ़ि गुढ़ि पाहन पूजिए, गंडकि सिला सुभाय। (दो० ३५२) मु० गढ़ि छोलि-सँवारकर, अच्छी तरह बनाकर। उ० हृदय कपट, बर बेष धरि, बचन कहँ गढ़ि छोलि। (दो० ३३२) गढ़ीवे गढ़ने में, बनाने में। उ० हौ भले नग फँग परे गढ़ीवे, अब ए गढ़त महरि-मुख जोए। (कृ० ११) गढ़े-(सं० घटन, हिन्दी गढ़ना=१ किसी वस्तु को काट-छाँट या ठोक पीटकर ठीक करना, रचना, २ छीलना, काटना, ३ बातें बनाना, कपोल कल्पना करना)-१ गढ़कर, २ गढ़ा, बनाया, ३ गढ़ेंगे, काट-छाँट करेंगे। उ० ३ चतुरंग चमू पल में दलि कै रन रावन राढ़ के हाड़ गढ़े। (क० ६।६)
गढ़ु-दे० 'गढ़'। उ० २ बेनु अगम गढ़ु गाढ़ सुहावा। (मा० २।१०२।३)
गढ़ैया-गढ़नेवाला, बनानेवाला। उ० ज्ञान को गढ़ैया, बिनु गिरा को पढ़ैया, बार, खाल को कढ़ैया सो बढ़ैया उरसाल को। (क० ७।१३५)
गण-(सं०)-१ समूह, झुंड २ श्रेणी जाति, ३ किसी भी प्रकार की समानता रखनेवाले मनुष्यों का समुदाय, ४ सेना का वह भाग जिसमें तीन गुल्म हों, ५ छंदःशास्त्र के ८ गण, ६ शिव के पारिषद, ७ दूत, मदद, सेवकों का दल। उ० १ अन्यगुणगण गनति बिमलमति शारदा निगम नारद प्रमुख महाचारी। (वि० ११)
गणक-(स०)-गणना करनेवाला, ज्योतिषी।
गणति-दे० 'गनति'।
गणनायक-(स०)-दे० 'गणेश'।
गणपति (स०)-दे० 'गणेश'।
गणराऊ-(स० गण+राजा) दे० 'गणेश'।
गणराज-(स० गण+राजन्)-दे० 'गणेश'।
गणिका-(स०)-१ वेश्या, रंडी, २ जीवंती नाम की वेश्या जो राम नाम के कारण ही मोक्ष गामिनी हुई। कथा-प्राचीनकाल में एक जीवंती नाम की वेश्या हो गई है। उसने एक तोता पाल रक्खा था। वह उसे बहुत प्यार करती थी। एक दिन एक महात्मा उधर से निकले और वेश्या के घर भिक्षा माँगने गए। महात्मा के कहने से उसी दिन से वह गणिका फुरसत के समय तोते को राम नाम पढ़ाने लगी। उसे राम नाम का प्रभाव ज्ञात नहीं था पर अनजान में ही सही, नाम तो लेती थी। इसका फल यह हुआ कि मरते समय भी उसके मुँह

मे राम नाम निकलता रहा और वह भवसागर पार हो गई।

गणेश-(सं०)-एक देवता जिनका सारा शरीर तो मनुष्य का है पर सिर हाथी का है। इनके चार हाथ और एक दाँत है। ये महादेव के पुत्र कहे जाते हैं। इनकी सवारी चूहा है। पुराणों के अनुसार पहले इनका सिर मनुष्य का था पर शनैश्चर की दृष्टि से वह कट गया और विष्णु ने एक हाथी का सिर काटकर उसके स्थान पर जोड़ दिया। कुछ पुराणों के अनुसार परशुराम, कुछ के अनुसार रावण, तथा कुछ के अनुसार कार्तिकेय ने इनका एक दाँत तोड़ लिया था इसीलिए ये एकरदन भी कहे जाते हैं। ये महादेव के गणों के अधिपति होने के कारण गणेश नाम से प्रसिद्ध हैं। सभी मंगल कामों में सबसे पहले इनकी पूजा की जाती है। हिन्दुओं के पाँच प्रधान देवों में इनकी गणना होती है। गणेश लेखक भी बड़े भारी हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि व्यास के महाभारत को पहले पहल इन्होंने ही लिखा था।

गत-गए हुए को, चलते हुए को। उ० सीता लक्ष्मण संयुत पथिगत रामाभिराम भजे। (मा० ३।१। श्लो० ४)

गत (१)-(सं०)-१ समाप्त, नष्ट, बीता हुआ, २ म, गया हुआ, पड़ा हुआ, ३ रहित, हीन खाली, बिना, ४ क्षीण, दुर्बल, गया-गुजरा। उ० ३ काम प्रेरित घोर मारमद भंगकृत, क्रोधगत, बोधरत, ब्रह्मचारी। (वि० ६०) गता-गई, प्राप्त हुई। उ० प्रसन्नतां या न गताभिषेकत स्तथा न मम्ले वनवास दु:खत। (मा० २। श्लो०२) गतौ-गए हुए, जाते हुए। विचरते हुए। यह द्विवचन का रूप है। उ० सीता वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः। (मा० ४।१। श्लो०१)

गत (२)-(सं० गति)-१ अवस्था, दशा, २ रूप, रंग, वेष, ३ सुगति, उपयोग, ४ दुर्गति, दुर्दशा, नाश, ५ अप्रिय, बुरा। उ० ५ सूपनखा सब भाँति गत, असुभ अमंगल-मूल। (प्र० ३।२।५)

गति-दे० 'गति'। उ० ४ ययाति से गति स्वर्ग। (मा० ३।४। श्लो० ८) गति-(सं०)-१ चाल, गमन २ हिलने-डोलने की क्रिया, हरकत ३ अवस्था दशा, हालत, ४ रूप, रंग, वेष, ५ पहुँच, प्रवेश, दखल, ६ प्रयत्न की सीमा, अंतिम उपाय, ७ सहारा, अवलंब, ८ चाल, करनी, चेष्टा, ९ लीला, विधान, माया, १० ढंग रीति, ११ जीव का एक शरीर से दूसरे शरीर में गमन, १२ मृत्यु के उपरांत जीवात्मा की दशा, १३ मोक्ष मुक्ति १४ ताल और स्वरानुसार नृत्य आदि में अंग-चालन। उ० १ सुमति कटि केहरि गति मराल। (वि० १४) १३ जेहि उपाय सपनेहुँ दुर्लभ गति सोइ निसि बासर कीजे। (वि० ११७)

गती-दे० गति। उ० १० गृह कारजहिं फेरि निबेरि गती। (मा० ७।१०१।२)

गथ-(सं० ग्रन्थ)-१ गाँठ में बँधा दाम रुपया पैसा २ माल, ३ झुंड समूह, गरोह। उ० १ बाजार रुचिर न बनइ बरनत वस्तु बिनु गथ पाइए। (मा० ७।२८। छं०१)

गद-(सं०)-१ रोग, २ राम की सेना में एक बंदर जो सेनापति था। ३ एक राक्षस का नाम। उ० २ सगनील नल कुमुद गद, जामवंत जुबराज। (प्र० ३।७।२)

गदगद-(सं० गद्गद)-१ एक अवस्था जिसमें मनुष्य अधिक हर्ष, प्रेम, श्रद्धा आदि के आवेग से इतना पूर्ण हो कि शब्दोच्चारण न कर सके। २ पुलकित, प्रसन्न, ३ प्रेमपूर्ण। उ० १ गद्गद कंठ नयन जल, उर धरि धीरहिं। (जा० ११६) ३ गदगद बचन कहति महतारी। (मा० २।५४।३)

गदा-(सं०)-एक प्राचीन अस्त्र जिसमें एक डंडा और उसके सर पर बड़ा सा लट्टू रहता है। हनुमान का प्रधान अस्त्र यही था। उ० गदा-कंज-दर-चारु चक्रधर, नाग सुंड सम भुज चारी। (वि० ६३)

गन-दे० 'गण'। उ० १ मनिगन पुर नर नारि सुजाती। (मा० २।१।२) गनन्ह-गणों, 'गन' का बहुवचन। उ० गनन्ह समेत बसहिं कैलासा। (मा० १।१०३।३)

गनइ-(सं० गणन)गिनता है। उ० सो कि दोष गुन गनइ जो जेहि अनुरागइ। (पा० ६७) गनई-गिनता, गिनता है। गिनती करता है। गनत-१ गिनते ही, २ गिनते हैं, ३ गिनते हुए। उ० २ ज्ञान-वैराग्य विज्ञान भाजन विभो! विमल गुन गनत सुक नारदादी। (वि० २६) गनति-१ गिनती, शुमार, हिसाब, २ गिनती है, वर्णन करती है, बखानती है। उ० २ यस्यगुणगण गनति विमलमति शारदा निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी। (वि० ११) गनहि-गिनते हैं, गणना करते हैं। उ० घोर निसाचर बिकट भट समर¹।गनहिं नहिं काहु। (मा०१।३५६) गनहि-(सं० गण)-समूह को, झुंड को। उ० दे० 'गन नाथहि'। गनहीं-गिनते हैं। उ० तृन समान त्रैलोकहि गनहीं। (मा० ५।५५।१) गनि-गिनकर, गणना कर। उ० कहे नाम गनि मंगल नाना। (मा०२।६।१) गनिअ-गिनना चाहिए। उ० रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिअ न ताहु। (मा०१।१७०) गनिगनि-गिन गिनकर। उ० नेम तें सिसुपाल दिन प्रति देत गनिगनि गारि। (वि० २१४) गनिहो-गिनेंगे, गणना करेंगे। उ० न्यारो कै गनिबो जहाँ गने गरीब गुलाम। (वि० ७७) गनिय-१ गिनिए, २ गिनना चाहिए। गनियत-१ गिनता है, २ गिना जाता है। उ० २ सूर सुजान सपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई। (वि० १०५) गनिहिं (?) गिनते हैं, गणना करते हैं। गनिहैं-१ गिनेंगे, २ गिन सकेंगे। उ० २ तउ न मेरे अघ अवगुन गनिहैं। (वि० ९५) गनी (१)-(सं० गणन)-गिना हिसाब लगाया, जोड़ा। उ० गनी गनक गें गनकन्ह जोई। (मा० १।३१२।४) गने-१ गिने गिने हुए, २ गिने हैं गिन गए हैं, ३ गिने-चुने, थोड़े, कम संख्या में ४ गिना, गणना की। उ० ३ महिसुर मंत्री मातु गुर गने लोग लिए साथ। (मा० २।२४५) गनै-गिनता है, २ गिने गणना करे। उ० गनै को पार निसाचर जाती। (मा० १।१८१।२) गनौ-गिनो, गणना करो। उ० तदपि साँति सम जनि गनौ, पावकसेज प्रमान। (वै० ५६)

गनक-दे० 'गणक'। उ० सुनि सिस पाइ असीस बदि गनक बोलि दिनु साधि। (मा०२।३२३) गनकन्ह-गणक लोग,

ज्योतिषियों । उ० गनी जनक के गनपन्ह जोई । (मा० १।३१२।४)

गनती-गणना, गिनती, शुमार । उ० साधु गनती में पहि लेहिं गनायों । (वि० २०८)

गनन-(स० गणन)-गिनना, गिनती ।

गननाथ-(स० गणनाथ)-गणेश । गननाथहि-गणेश को । उ० विनइ गुरुहि, गुनिगनहि, गिरिहि गननाथहि । (पा० १)

गननायक-दे० 'गणनायक' । उ० जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिवर बदन । (मा० १।१। सो० १)

गनप-(स० गणप)-गणेश । उ० समासद गनप से अमित अनूप हैं । (क० ७।१०१)

गनपु-दे० 'गनप' ।

गनपति-दे० 'गणपति' । उ० गाइए गनपति जगबंदन । (वि० १) गनपति द्विज-गणेश जी का दाँत अर्थात् एक । एक की संख्या । उ० अहिरसना थनधेनु रस गनपति द्विज गुरु वार । (स० २१) गनपतिहि-गणेश को । उ० मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि । (मा० १।१००)

गनराउ-दे० 'गनराऊ' । उ० रामनाम को प्रभाउ पूजियत गनराउ । (वि० २४७)

गनराऊ-दे० 'गणराऊ' । उ०महिमा जासु जान गनराऊ । (मा० १।१९।२)

गनराज-दे० 'गणराज' । गनराजहि-गणराज अर्थात् गणेश को । उ० चलेउ बरात बनाइ पूजि गनराजहि । (जा०१३३)

गनराजा-दे० 'गनराज' । उ० सुमिरि संभु गिरिजा गनराजा । (मा० १।३४७।८)

गना-दे० 'गना' । उ० १ सुखमान सम्य समन स्वर विषाद रघुपति गुन गना । (मा० ५।६०।छं० १)

गनाए-१ गिनवाया, गणना कराया । उ० अति अनीस नहिं जाए गनाए । (वि० १३६) गनायों-गिनवाऊँ, गिन जाता हूँ । उ० ताहू पर निज मति विलास सब संतन माँझ गनायों । (वि० १४२)

गनिका-दे० 'गणिका' । उ० १ गनिका अजामिल व्याध गीध गजादि खल तारे घना । (मा० ७।१३०। छं० १) गनिकाउ-गणिका भी । दे० 'गणिका'। उ० अपनु अजा मिलु गजु गनिकाऊ । (मा० १।२६।४)

गनिहि (२)-(अर० गनी)-धनी को, धनवान् को । उ० गनिहि गुनिहि साहिब लहै सेवा समीचीन को । (वि० २७४) गनी (१)-धनिक, धनवान। उ० गनी गरीब ग्राम नर नागर । (मा० १।२८।३)

गनेस-दे० 'गणेश' । उ० सेस गनेस गिरा गमु नाहीं । (मा० २।३२२।४)

गनेसु-दे० 'गणेश' । गणेश शुभ के भर्तार हैं अतः इनका अर्थ शुभ भी लिया जाता है । उ० राम कहानि रम सिद्धि हित या यह समय गनेसु । (मा० २।२०८)

गनेसू-दे० 'गणेश' । उ० बंद विरंचि महेस गनेसू । (मा० १।३२२।३)

गपकना-(फ़ा० गप+हिन्दी करना)-भट से खा लेना, निगल जाना ।

गपत-(स० कल्प)-१ गप मारते हुए, झूठी बात कहते हुए, २ गप मारता है, अनाप-शनाप बकता है । उ० १ हारहि जनि जनम जाय गालगूल गपत । (वि० १३०)

गभीर-(स० गभीर) शांत, सौम्य । दे० 'गंभीर' । उ० तुपाराद्रि सकाश गौर गभीर । (मा ७।१०८। छं० ३)

गभुआरी-(स० गर्भ)- गर्भ की, पेट की, जन्म से न कटाई गई घुँघराली, घुंचित । उ० गभुआरी अलकावली लसै । (गी० १।११) गभुआरे-गर्भ के, जन्म के समय के रखे, घुँघराले । उ० चिक्कन कच कुंचित गभुआरे । (मा० १।१९९।२)

गम (१)-(स०)-१ रास्ता, पथ, २ मैथुन, सहवास, ३ गमन, जाना, प्रस्थान । उ० १ सिय उदास तजि धाम अनत गम की हेत । (पा० ३१)

गम (२)-(स० गम्य)-किसी वस्तु या विषय में प्रवेश, पहुँच, पैठ, गुज़र ।

गम (३)-(अर० ग़म)-दुःख, शोक, रंज ।

गमन-(स०)-१ जाना, चलना, यात्रा करना, प्रस्थान, २ पथ, रास्ता, ३ संभोग, मैथुन । उ० १ किया गमन जनु दिननाथ उत्तर मग मधु माधव जिए । (जा० ३६)

गमु-दे० 'गम' । उ० (गम (२) सेस गनेस गिरा गमु नाहीं । (मा० २।३२२।४) (गम (१) ३ जिमि जलहीन मीन गमु धरनी । (मा० २।२८६।१)

गमिहै-(अर० गम)-ग़म न करेंगे, परवा न करेंगे, ध्यान देंगे । उ० खल अनखैहैं, तुम्हें सज्जन न गमिहैं । (क० ७।७१)

गम्य-दे० 'गम्य' । उ० २ योगीन्द्र ज्ञान गम्य गुणनिधि मजित निर्गुण निर्विकारम् । (मा० ६।१ श्लो० १) गम्य-(स०)-१ जाने योग्य, २ पाने योग्य, ३ जानने योग्य समझने योग्य, ४ संभोग करने योग्य ५ साध्य, सहल । उ० ३ अति निर्मल वानी अस्तुति ठानी ग्यानगम्य जय रघुराई । (मा० १।२११। छं० २)

गयंद-(स०गजेन्द्र)-१ बड़ा हाथी, गजेन्द्र, २ वह हाथी जिसे भगवान ने ग्राह से छुड़ाया था । उ० २ तुलसी क्यों न सुमिरि रघुनाथहि तरो गयंद जाके एक नायँ । (वि० ८६)

गयंदु-दे० 'गयंद' । उ० १ नव गयंदु रघुबीर मनु राजु अलान समान । (मा० २।५१)

गय (१)-(स० गज)-हाथी । उ० अगनित हय गय रथ समाजा । (मा० १।१६०।१)

गय (२) (स० गम) गये, गया, नष्ट हो गया । गयउँ-१ गया, २ मैं गया, ३ मैं नष्ट हो गया । उ० १ कवन अवसर का भयउ गयउँ नारिबिस्वास । (मा० २।२६) गयउ-१ गया, २ नष्ट हो गया । उ० २, नाथ हर्ष अब गयउ विषादा । (मा० १।१२०।२) गयऊ-१ गए, २ नष्ट हो गए । उ० १ एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ । (मा० १।१०६।२) गयऊँ-१ गया, मैं गया २ मैं नष्ट हो गया । उ० १ काहू के गृह ग्राम न गयऊँ । (मा० १।१६७।२) गयहु-१ गया, २ नष्ट हो गया, समाप्त हो गया । उ० २ गर्भ न गयहु व्यर्थ तुम्ह जायहु । (मा० ६।२१।३) गया (१)-(स० गम)-१ चला गया, २ बीता ३ नष्ट, समाप्त । गये-१ जाना क्रिया का भूतकालिक रूप, प्रस्थान किया, २ नष्ट हो गए, ३ बीतने पर,

चले जाने पर, नष्ट हो जाने पर, ४ नष्ट, गया-बीता।
गयो-दे० 'गय'। उ० १ तुलसी इहाँ जो आलसी गयो आजु की कालि। (दो० १२)
गया (२)-(सं०)-बिहार का एक तीर्थस्थान जहाँ श्राद्ध तथा पिंडदान आदि के लिए हिंदू जाते हैं। लोगों का विश्वास है कि बिना वहाँ जाकर पिंडदान आदि किए पितरों को मोक्ष नहीं होता। उ० मगहँ गयादिक तीरथ जैसे। (मा० २।४३।४)
गर (१)-(सं० गल)-गला, गर्दन। उ० मर गर काटि निलज कुलघाती। (मा० १।३३।२)
गर (२)-(सं०)-१ ज़हर, विष, २ रोग, बीमारी।
गर (३)-(फ़ा०)-किसी काम को बनाने या करनेवाला। जैसे बाज़ीगर, सौदागर आदि।
गरई-(सं० गरण)-१ गल जाता है, २ लज्जित होता है, ३ नष्ट होता है, ४ नम्र हो जाता है।
गरज (१)-(अर० ग़रज़)-१ आशय, प्रयोजन, मतलब, २ स्वार्थ साधने की चिंता। उ० २ गरज आपनी सबन को। (दो० ३००)
गरज (२)-(सं० गर्जन)-१ भयानक शब्द, घोरनाद, २ गर्जन कर, गरजकर, ३ गर्जन करो। गरजइ-गरजता है, गर्जन कर रहा है। उ० मधुर मधुर गरजइ घन घोरा। (मा० ६।१३।१) गरजत-गरजता है, गर्जन करता है। उ० उपल बरषि गरजित तरजि, डारत कुलिस कठोर। (दो० २८३) गरजनि-बादल या सिंह आदि का शब्द, गड़गड़ाना, गर्जन। उ० मानत मनहुँ सतड़ित ललित घन, धनु सुरधनु, गरजनि टकोर। (गी० ३।१) गरजहिं-दे० गर्जहिं'। गरजि-गर्जन कर गरज कर। उ० गरजि अकास चलेउ तेहिं जाना। (मा० ६।६६।२) गरजि तरजि-(सं० गर्जन, सं० तर्जन)-डाँट डपट कर, घुड़की आदि देकर। उ० गरजि तरजि पाषान बरषि पवि प्रीति परखि जिय जानै। (वि० ६५)
गरजी (१)-(अर० ग़रज़ी)-१ चाहनेवाला, इच्छा करनेवाला, २ मतलबी। उ० १ मजराज कुमार बिना सुनु भृंग! अभाग भयो जिय को गरजी। (क० ७।१३३)
गरजी (२)-(सं० गर्जन)-गरजनेवाला, केवल बकने या कहनेवाला, कुछ काम न करनेवाला।
गरत-(सं०गरण)-१ गलता है, पिघलता है २ पिघते हुए, ३ क्षीण होता है, गल जाता है, दुबला होता है ४ क्षीण होते हुए, ५ बहुत सर्दी आदि से ठिठुरता है, ठिठुरते हुए। उ०३ पबुबैर कपि बिभीषन गुरु गलानि गरत। (वि०१३४) गरहिं-गलते हैं, गले जा रहे हैं। उ० गरहिं गात जिमि आतप ओरे। (मा० २।१४७।४) गरहीं-गलते हैं, गल रहे हैं, नष्ट हो रहे हैं, नाश होते हैं, समाप्त हो जाते हैं। उ० जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं। (मा० १।४।४) गरि-१ द्रवीभूत होकर, गल गलकर पिघलकर, दुर्बल होकर, नष्ट होकर, २ गली, गल गई। उ० २ गरि न जीह मुहँ परेउ न कीरा। (मा० २।१६२।१) गरे (१)-गले, पिघले, पिघल गए, नष्ट हुए। उ० अगस्तीय की नाएँ सुरति करि अजहुँ महामुनि ग्लानि गरे। (वि० १२०) गरैगी-गल जायगी, नष्ट हो जायगी। उ० गरैगी जीह जो कहौं और को हौं। (वि० २२१) गरो-१ गल जाय, गले, २ गल गई। उ० १ सकर साखि जो राखि कहौं कछु तौ जरि जीह गरो। (वि० २२६) गर्यो-गला, गल गया, पिघल गया। उ० तुम अपनायो तब जानिहौं जब मन फिरि परिहै। ... बनिहैं दिए बलि, बिलम न कीजिए जात गलानि गर्यो हौं। (वि० २६७)
गरद (१)-(फ़ा० गर्द)-धूलि, गर्द, रज। उ० खायो काल कूट भयो अजर अमर तनु, भवन मसान, गथ गाँठरी गरद की। (क० ७।१२८)
गरद (२)-(सं०)-विष देनेवाला।
गरदन-(फ़ा०)-गला, ग्रीवा, धड़ और सिर को जोड़नेवाला अंग। गरदनि-दे० 'गरदन'। उ० सो जानइ जनु गरदन मारी। (मा० २।१८२।३)
गरन-१ गलनेवाला, पिघलनेवाला, २ गलना, पानी पानी होना। उ० २ तुलसी पै चाहत गलानि ही गरन। (वि० २४८)
गरब-दे० 'गर्व'। उ० देखत गरब रहत उर नाहिन। (मा० २।१४।२)
गरबित-दे० 'गर्वित'। उ० गरबित भरत मातु बल पी कें। (मा० २।१८।२)
गरबु-दे० 'गरब'।
गरभ-दे० 'गर्भ'। उ० बाँधो हो करम जड़ गरभ गूढ़ निगड़। (वि० ७६)
गरम-(फ़ा० गर्म) १ उष्ण, तप्त, जलता हुआ, २ प्रचंड, तेज़, ३ उग्र, ४ आवेशपूर्ण, ५ क्रोधित। उ० १ जूड़े होत थोरे ही थोरे ही गरम। (वि० २५६)
गरल-(सं०)-ज़हर, विष, माहुर। उ० गरल अनल कलि मल सरि ब्याधू। (मा० १।५।४) विशेष-गरल या विष समुद्र-मथन में निकला था। इसे शंकर ने पान किया अतः गरकंठ आदि कितने ही शंकर के नाम गरल पर आधारित हैं।
गरलकंठ-जिसके कंठ में विष हो। शंकर। विशेष-शिव के चित्रों में विष के कारण ही उनका गला गरल का रंग श्याम होने के कारण कुछ श्यामता लिए दिखाया जाता है।
गरलसील-ज़हर का सहनेवाला, ज़हरमोहरा। उ० मीठो गरलसील जो अगा। (वै० ४७)
गरह (१)-(सं० ग्रह)-१ ग्रह, २ अरिष्ट बाधा।
गरह (२)-(सं० गल)-गले का रोग, कंठमाला। उ० हरष विषाद गरह बहुताई। (मा० ७।१२१।१७) विशेष-इस में प्रयुक्त 'गरह' के अर्थ के विषय में लोगों के कई मत हैं। हिंदी शब्द सागर इसका अर्थ बाधा या अरिष्ट मानता है। डा० श्यामसुंदर दास ने इसका अर्थ घेघा आदि गले का रोग माना है। डॉ० सूर्यकांत इसका अर्थ वायुविकार या गठिया मानते हैं। 'तुलसी शब्द सागर' के समहकर्ता श्री हरगोविन्द तिवारी ने भी इसका अर्थ गठिया माना है पर गले के रोगवाला अर्थ अधिक ठीक जान पड़ता है अतः यहाँ वही दिया जा रहा है।
गरिमा-(सं० गरिमन्)-१ गुरुत्व, भारीपन, बोझ, २ गौरव, महत्व, महिमा, ३ गर्व, अहंकार, ४ शेखी, अपनी डींग

हाँकना, २ आठ सिद्धियों में से एक जिससे साधक अपना बोझ चाहे जितना भारी कर सकता है। उ० २ जनकसुत सदसि सिवचाप भंजन, उग्र भार्गवागव-गरिमा पहर्त्ता। (वि० ४०)

गरीब-(अर० ग़रीब)-१ नम्र, दीन, हीन, २ दरिद्र, निर्धन, कंगाल। उ० १ गई बहोर गरीब नेवाजू। (मा० १।१३।४) गरीब निवाज-(अर० ग़रीब+फा० नवाज़)-दीनों पर कृपा करनेवाला दीनदयाल। उ० सो तुलसी महँगो किया राम गरीब निवाज। (दो० १०८) गरीब नेवाज-दे० 'गरीब निवाज'। उ० कायर कूर कपूतन की हद तेउ गरीब नेवाज नेवाजे। (क० ७।१)

गरीबी-१ दीनता, अधीनता, २ नम्रता, ३ दरिद्रता कंगाली। उ० १ लाभ जोगछेम को गरीबी मिसकीनता। (वि० २६२)

गरीसा-(सं० गरीयस्)-१ भारी, गुरु, २ महान, महत्व। उ० १ पर निंदा सम अघ न गरीसा। (मा०७।१२१।११)

गरु-(सं० गुरु)-भारी, वजनी। उ० न टरै पग मेरुहु तें गरु भो, सो मनो महि संग बिरंचि रच्यो। (क० ६।१४)

गरुअ-(सं० गुरु)-१ भारी, वजनी, बोझवाला, २ श्रेष्ठ, उत्तम, भला, ३ गंभीर, शांत, सहनशील। उ० १ गरुअ कठोर बिदित सब काहू। (मा० १।२५०।१)

गरुआइ-भारी होता जाता है, वजनी होता है, भारी हो जाए। उ० मनहुँ पाइ भट बाहु बलु अधिकु अधिकु गरुआइ। (मा० १।२५०)

गरुआई-भार, बोझ, भारीपन, गुरुता। उ० भृगुपति केरि गरब गरुआई। (मा० १।२६०।३)

गरुइ-(सं०गुरु) भारी, गंभीर, महत्वपूर्ण। उ० आनि गरुइ गुनिगिरा बहोरी। (मा० २।२१३।१)

गरुई-दे० 'गरुइ'।

गरुड़-(सं० गरुड़)-एक पक्षी। विष्णु के वाहन जो पक्षियों के राजा माने जाते हैं। गरुड़ विनता के गर्भ से उत्पन्न कश्यप के पुत्र हैं। एक बार कश्यप ने पुत्रप्राप्ति की इच्छा से यज्ञ किया। इंद्र, बालखिल्य तथा अन्य देवता सामग्री इकट्ठा करने लगे। इंद्र ने शीघ्र ही लकड़ियों की ढेर लगा दी और बालखिल्यों को चिढ़ाने लगे। इस पर बालखिल्य क्रोधित हुए और कश्यप के पुत्र रूप में दूसरा इंद्र उत्पन्न करने के प्रयत्न में लगे। अंत में कश्यप ने उन्हें शांत किया और कहा कि तुम लोग जिस इंद्र को उत्पन्न करना चाहते हो वह पक्षियों का इंद्र होगा। तदनुसार विनता के गर्भ से कश्यप ने अग्नि और सूर्य के समान गरुड़ और अरुण दो पुत्र उत्पन्न किए। गरुड़ विष्णु के वाहन हुए और अरुण सूर्य के सारथी। गरुड़ सर्पों के शत्रु हैं, इसीलिए उन्हें पन्नगारि आदि नाम दिए गए हैं। उ० महा मुसुंडि बखानि सुना बिहगनायक गरुड़। (मा० ७।१२०ख) गरुड़गामी-गरुड़ पर गमन करनेवाले, विष्णु। गरुड़हि-गरुड़ को। उ० प्रभु प्रताप तें गरुड़हि खाइ परम लघु ब्याल। (मा० ४।१९)

गरुता-१ भारीपन, बोझ, २ गौरव, बड़ाई, ३ गांभीर्य।

गरू-भारी, गंभीर, उत्तम। उ० जाग जागहु में गरू गति पत है। (वि० १८१)

गरूर-(अर० ग़रूर)- गर्व, घमंड, अभिमान। उ० गारु गरूर गुमान भरो कहौ कौसिक छोटो सो ढोटो है काको। (क० १।२०)

गरे (१)-(सं० गल)-१ गले में, गरदन में, २ गले। उ० १ साँपनि सों खेलैं, मेलैं गरे छुराधार सों। (क० ५।११)

गरे (२)-(सं० गरण)-गले, पिघले, द्रवित हुए। उ० ज्वाल जरे जात, उहाँ ग्लानि गरे गात। (क० ५।२०)

गरै-(२) (सं० गल)-गले में।

गर्जहिं-गरजते हैं, गरज रहे हैं। उ० गर्जहिं मर्कट भट समुदाई। (मा० ६।४।१) गर्जा-गरजा, गर्जन किया, जोर से शब्द किया। उ० मुठिका मारि महाधुनि गर्जा। (मा० ४।८।१) गर्जि-गर्जकर, गंभीर शब्द करके। गर्जहीं-गरज रहे हैं गरजते हैं। उ० कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं। (मा० ५।३।छं० १) गर्जेउ-गर्जना की, गर्जे। उ० तिनहि हति गर्जेउ हनुमाना (मा० ५।१८।३) गर्जेसि-गर्जन किया, गर्जे। उ० घन महाधुनि गर्जेसि भारी। (मा० ५।२८।१)

गर्त-(सं०)-१ गड्ढा, २ दरार ३ घर, ४ रथ, ५ जलाशय, ६ एक नरक। उ० १ भवनि गर्त गारि बिराधा। (वि० ४३)

गर्द-(फा० गर्द)-धूल, गर्दा, रज। उ० मर्दि गर्द मिलवौं दस सीसा। (मा० ५।२२।४)

गर्दा-दे० 'गर्द'। उ० कोटिन्ह मीजि मिलव मर्दि गर्दा (मा० ६।६७।२)

गर्ब-दे० 'गर्व'। उ० तासु गर्ब जेहि श्रवन भागा। (मा० ६।२६।२)

गर्बित-दे० 'गर्वित'।

गर्भ-(सं०)-१ पेट, हमल की दशा, पेट में बच्चे का होना, २ पेट के भीतर का वह स्थान जहाँ गर्भ रहता है, ३ गर्भ का बच्चा, ४ भाग, ५ कटहल। उ० २ गर्भ अंजनी गर्भ अंबाधि-संभूत बिधु बिबुध कुल-कैरवानंदकारी। (वि० २५) गर्भन्ह-गर्भ का बहुवचन, गर्भों। उ० गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर। (मा० १।२७२) गर्भहिं-१ गर्भ में, २ गर्भ को। उ० १ जा दिन तें हरि गर्भहिं आए। (मा० १।१९०।३)

गर्व-(सं०)-घमंड, अहंकार, अपने को बड़ा और दूसरों को छोटा समझने का भाव। गर्वघ्न-गर्व का नाश करनेवाला। उ० गंभीर गर्वघ्न गूढार्थवित गुप्त गोतीत गुरु ग्यान ग्याता। (वि० ५४)

गर्वित-गर्वयुक्त, घमंड से भरा हुआ।

गल-(सं०) गला, कंठ, गरदन। उ० रामपदपद्म मक[रंद] ... बिभाति, तनु सूम समति सरिता सी। (वि० २१)

गले-(सं० गल)-गले में, कंठ में। उ० भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्। (मा० २।श्लो० १)

गलकंबल-(सं०)-झालर, गाय के गले के नीचे लटकनेवाला भाग। उ० दे० 'गल'।

गलगाजे-(सं० गल, गद्द + गर्जन)-१ प्रसन्न हो, प्रसन्न हुए, २ डींग मारें, डींग मारने लगे, ३ डींग मारनेवाले,

यकयादी। उ० ३ राम सुभाव सुने तुलसी हुलसे अलसी, हमसे गलगाजे। (क० ७।१)

गलतो-गलता, पिघलता, पानी पानी होता। उ० तुलसी अरि उर आनि एक अब एती गलानि न गलतो। (गी० २।१३)

गलबल-(अ०)-कोलाहल, खलबली, हो हल्ला, शोरगुल। उ० निपट निसक परपुर गलबल भो। (ह० ६)

गलानि-दे० 'ग्लानि'। उ० २ धुयँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। (मा० १।२६।३)

गलानी-दे० 'ग्लानि'। उ० २ हरत सकल कलि कलुष गलानी। (मा० १।४३।२)

गलित-(स०)-१ गला हुआ, बिगड़ा हुआ, २ नष्ट, समाप्त, जीर्ण शीर्ण, खंडित, रहित, शून्य, ३ परिपक्व, परिपुष्ट। उ० २ तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना। (मा० १।१६१।१)

गलिन्ह-१ गली का बहुवचन, गलियों, २ गलियों में। उ० २ राम-कृपा तें सोइ सुख अवध गलिन्ह रह्यो पूरि। (गी० ७।२१) गलीं-गलियाँ। दे० 'गली'। उ० चौहट सुंदर गलीं सुहाई। (मा० १।२१३।२) गली-(स० गल)-घरों की पंक्तियों के बीच से होकर जानेवाला पतला रास्ता, खोरी, कूँचा। उ० सींचि सुगध रचैं चौके गृह आँगन गली बजार। (गी० १।१)

गवँ-(स० गम्य)-१ घात, दाँव, मौका, अवसर, २ मतलब, प्रयोजन, ३ ढब, चाल, ४ धीरे, चुपके। उ० १ जिमि गवँ तकइ लेउँ केहि भाँती। (मा० २।१३।२) मु० गवँ तकइ-घात खोजते रहता। उ० दे० 'गवँ'। गवँहि (१)-(स० गम्य)-१ धीरे से, चुपके से, २ मौका देखकर, गौं देखकर। उ० १ देखि सरासनु गवँहि सिधारे। (मा० १।२५०।१)

गवहिं (२)-(स० गम्)-जाते हैं।

गवन-(स० गमन)-जाना, कूच करना, प्रस्थान। उ० राम लखन मुनि साथ गवन तब कीन्हेउ। (जा० ३४)

गवनत-१ जाते हैं, २ जाते समय, जाते वक्त। उ० २ परवस गवनत रावनहिं, असगुन भए अपार। (प्र० ३।२।५) गवनब-१ जाइए, २ जाइएगा। उ० २ कहहिं गवाँइअ छिनकु श्रमु गवनब अबहिं कि प्रात। (मा० २।११४) गवनहिं-जाते हैं। उ० मकर मज्जि गवनहिं मुनि वृंदा। (मा० १।४५।१) गवनहु-गमन करो, जाओ। उ० सुन्द कानन गवनहु दोउ भाई। (मा० २।२२६।२) गवनि-१ चलनेवाली, २ चली गई, ३ चली, ४ चल कर। उ० ४ गृह तें गवनि परसिपद पावन घोर साप तें तारी। (वि० १६६) गवने-गए, चले गए। उ० हरषि सप्तरिषि गवने गेहा। (मा० १।८२।२) गवनेउ-चला गया, गया। उ० निज भवन गवनेउ सिंधु श्री रघुपतिहि यह मत भायऊ। (मा० ५।६० छं० १) गवनिहि-चला जायगा। उ० गवनिहि राज समाज नाक अस कूटिहि। (जा० ६८) गवनी-दे० 'गवनि'।

गवनु-(सं० गमन)-जाना, प्रस्थान, गमन। उ० सत्य अनुज सिय सहित बन गवनु कीन्ह रघुनाथ। (मा० २।१०४)

गवनू-दे० 'गवन'।

गवाँइअ-गँवा लीजिए, मिटा लीजिए। उ० कहहिं गवाँइअ छिनकु श्रमु गवनब अबहिं कि प्रात। (मा० २।११४) गवाँई-१ गँवाया, २ गँवाकर। उ० २ जसु प्रतापु बलु तेजु गवाँई। (मा० १।२४५।२) गवाँए-खोए, खो दिए, बिताये, हाथ से निकल जाने दिए। उ० सागु खाइ सत बरष गवाँए। (मा० १।७४।२) गवाँयउँ-गँवाया, बिताया। उ० तहँ पुनि रहि कछु काल गवाँयउँ। (मा० ७।८२।१) गवाँवा-खोया, बिताया, खतम किया। उ० बैठि बिटप तर दिवसु गवाँवा। (मा० २।१४७।२)

गवारी-दे० 'गँवारि'। उ० बिलगु न मानब जानि गवाँरी। (मा० २।११६।४)

गवाँरु-(स० ग्राम) गाँव का रहनेवाला, मूर्ख, गँवार। उ० बरनै तुलसीदासु किमि अति मतिमंद गवाँरु। (मा० १।१०३)

गवासा-(स० गवाशन)-गाय खानेवाला, कसाई। उ० भए मारव महिदेव गवासा। (मा० १।६।४)

गव्य-(स०)-गो से उत्पन्न, दूध, दही, घी, गोबर, गोमूत्र आदि। उ० पचाच्छरी प्रान, मुद माधव, गव्य सुपचनदासी। (वि० २२)

गह-(स० ग्रहण)-१ गहने, पकड़ने, २ पकड़कर। उ० १ गह सिसुवच्छ अनल अहि धाइ। (मा० ३।४३।३) गहइ-१ पकड़ लेती थी, स्वीकार कर लेती थी, २ पकड़ता है, ग्रहण करता है, धारण करता है। ३ पकड़कर, ४ पकड़ने के लिए। उ० १ गहइ छाहँ सक सो न उड़ाई। (मा० ४।३।२) गहई-दे० 'गहइ'। उ० २ भगत हेतु लीलातनु गहई। (मा० १।१४४।४) गहत-(स० ग्रहण)-पकड़ता है, ग्रहण करता है, अपनाता है। उ० सुनि मन गुनि समुझि क्यों न सुगम सुमग गहत। (वि० १३३) गहति-पकड़ती है। 'गहत' का स्त्रीलिंग। उ० छोड़ति छोड़ाये तें, गहाए तें गहति। (वि० २४६) गहते-पकड़ते, अपनाते, ग्रहण करते। उ० जो पै हरि जन के अवगुन गहते। (वि० ९७) गहनि (१)-(स० ग्रहण)-१ पकड़ने या ग्रहण करने का भाव, अपनाना, २ हठ, टेक, ज़िद। उ० १ सील गहनि सबकी सहनि, कहनि हीय मुख राम। (वै० १७) गहब-पकड़ूँगा, ग्रहण करूँगा, अपनाऊँगा। उ० त्यागब गहब उपेच्छनीय अहि हाटक तृन की नाईं। (वि० १२४) गहसि-१ पकड़ता, २ पकड़ ली, पकड़ी। उ० १ गहसि न राम चरन सठ जाइ। (मा० ६।३५।२) गहहिं-ग्रहण करते हैं, पकड़ते हैं। उ० गहहिं न पाप पुनु गुन दोषू। (मा० २।२१६।२) गहहीं-ग्रहण करते हैं, अपनाते हैं, पकड़ते हैं। उ० अवगुन तजि सबके गुन गहहीं। (मा० २।१३१।१) गहहु-ग्रहण करो, पकड़ो। उ० दसन गहहु तृन कंठ कुठारी। (मा० ६।२०।४) गहहू-दे० 'गहहु'। उ० सुनि मम बचन हृदयँ दृढ़ गहहू। (मा० ७।४५।१) गहा-१ पकड़ा, ग्रहण किया, २ जकड़ा हुआ, ग्रस्त, पकड़ में आया हुआ। उ० १ रागमाय जथा करि कोप गहा। (मा० ६।१११।२) गहि-पकड़कर, थाम कर, प्रसकर। उ० गहि पद भरत मातु सब राखीं। (मा० २।१७०।१) गहिये-१ पकड़ना होगा, धारण करना

होगा, २ पकड़ने, ग्रहण करने। उ० १ ज्ञान गिरा छवरीरमन की सुनि विचारि गहिये ही। (कृ० ४०) गहिया-१ पकड़ना, पकड़ लेना, २ पकड़ोगे। उ० १ प्रबल दनुज दल दलि पल आध में, जीवत दुरित दसानन गहियो। (गी० ५।१४) गहियतु-पकड़ता, पकड़ लेता। उ० ताहु पर बाहु बिनु राहु गहियतु है। (क० २।४) गहिसि-१ पकड़ ली, पकड़ी, २ पकड़ता। उ० १ गहिसि पूँछ कपि सहित उड़ाना। (मा० ६।६६।३) गहिहौं-पकड़ूँगा। उ० इतनी जिय लालसा दास के कहत पानही गहिहौं। (वि० २३१) गही-ग्रहण की, पकड़ी। उ० गये बिसारि रीति गोकुल की, अब निगुन गति गही है। (कृ० ४२) गहु-पकड़, पकड़ो, ग्रहण करो। उ० सखीं कहहिं प्रभुपद गहु सीता। (मा० १।२६४।४) गहे-१ पकड़े हुए, २ पकड़े, ग्रहण किए। उ० २ पुनि गहे पद पाथोज मयनाँ प्रेम परिपूरन हियो। (मा० १।१०१। छं० १) गहेउ-पकड़ा। गहेसि-पकड़ लिए, ग्रहण कर लिए। उ० आतुर समय गहेसि पद जाइ। (मा० ३।२।६) गहेहु-पकड़ना, पकड़िएगा। उ० बार बार पद पकज गहेहु। (मा० २।१४१।३) गहौंगो-ग्रहण करूँगा, पकडूँगा। उ० श्री रघुनाथ-कृपाल-कृपा तें संत सुभाव गहौंगो। (वि० १७२) गह्यौ-ग्रहण किया, पकड़ा। उ० तुलसिदास त्रैलोक्य मान्य भयो कारन इहै गह्यौ गिरिजा पर। (कृ० ३१)

गहगह-(स० गद्गद)-प्रसन्नतापूर्वक, आनद से भरा, धमाधम। उ० गहगह गगन दुदुभी बाजी। (कृ० ६१)

गहगहि-दे० 'गहगह'। उ० गहगहि गगन दुदुभी बाजी। (मा० १।१६१।४)

गहगही-दे० 'गहगह'। उ० सुर सुमन बरषहिं हरष सकुल बाज दुदुभि गहगही। (मा० ६।१०३। छं० २)

गहगहे-दे० 'गहगह'। उ० अति गहगहे बाजने बाजे। (मा० १।२८६।१)

गहडोरिहौं-(?)-मथकर गदला कर दूँगा। उ० सुधा सो सलिल सूकरी ज्यों गहडोरिहौं। (वि० २५८)

गहन (१)-(स० ग्रहण)-१ ग्रहण, पकड़ना, २ सूर्य तथा चन्द्र आदि का ग्रहण, ३ कलक, ४ दु:ख, कष्ट, ५ बधक, रेहन।

गहन (२)-(स०)-१ गम्भीर, गहरा, २ दुर्गम, घना, ३ कठिन, भयकर, दुस्सह, ४ कुंज, निकुंज, ५ जल। उ० ३ सकल सघट पोच, सोचबस सर्वदा दास तुलसी विषय-गहन ग्रस्तम्। (वि० ५१)

गहनि (२) (स० गहन)-घोर, विकराल, भयकर। उ० आइ अति गहनि गरीबी गाढ़े गह्यो हौं। (वि० २६०)

गहनु (१)-(स० ग्रहण)-ग्रहण, पकड़ना। दे० 'गहन(१)'। उ० समउ राहु रबि-गहनु मत, राजहिं पुजहिं बखेम। (प्र० ७।२।४)

गहनु (२)-(स० गहन)-गम्भीर, कठिन। दे० 'गहन (२)'।

गहबर-(स० गह्वर)-१ दुगम, विषम २ व्याकुल, उद्विग्न, दुखी, ३ बेसुध, ४ किसी ध्यान में मग्न, ५ गुफा, ६ कुंज, वृक्षों से ढका स्थान। उ० १ नगर सफल बनु गहबर भारी। (मा० २।८४।१)

गहबरि-दुःख से भरकर, व्याकुल होकर। उ० गहबरि हियँ कह कौसिला मोहि भरत कर सोचु। (मा० २।२८३) मु० गहबरि आयो-जी भर आया, करुणा से पूर्ण हो गए। उ० कपि के चलत सिय को मनु गहबरि आयो। (गी० ५।१६)

गहर-(?)-देर, विलब।

गहरु-दे० 'गहर'। उ० बूझिए विलब कहा कहूँ न गहरु। (वि० २५०)

गहाए-पकड़ाए, धराए। उ० छोटहि छोटाए तें, गहाए तें गहति। (वि० २४६)

गहागह-(स० गद्गद)-बड़ी धूमधाम से। उ० बाज गहागह अवध बधावा। (मा० २।७।२)

गहागहे-धूमधाम से बजने लगे, धूमधाम होने लगी। उ० नभ पुर मगल गान निसान गहागहे। (जा० ११८)

गहिराए (स० गंभीर) गहरे हो गए। अथाह हो गए। उ० गए सोक-सर सूखि, मोद-सरिता-समुद्र गहिराए। (गी० ६।२२)

गहीले-(स० ग्रहण)-१ गहनेवाले, पकड़नेवाले, अपनाने वाले, २ ज़िद्दी, ३ घमडी। उ० २ सो बल गया, किधौं भए अब गर्व-गहीले। (वि० ३२)

गह्वर-(स०)-१ अधकारमय या गूढ़ स्थान, गुप्त स्थान, २ बिल, माँद, ३ गुफा, कदरा, ४ लतागृह, कुंज, ५ झाड़ी, ६ जगल, ७ पाखड, ८ जल, ९ कठिन, दुर्गम, १० गुप्त, छिपा।

गाँठ-(स० ग्रंथि)-१ रस्सी डोरी या तागे आदि में पड़ी उलझन जो खिंचने पर कड़ी और दृढ़ हो जाती है, गिरह, २ कपड़े आदि में दी गई गाँठ जिसमें पैसा या कोई अन्य चीज़ बँधी हो। ३ मनमोटाव, वैर-भाव, ४ अग का जोड़, ५ गठरी, गट्ठर।

गाँठरी-(स० ग्रंथि)-गठरी, गट्ठर। उ० भवन मसान, गथ गाँठरी गरद की। (क० ७।१५८)

गाँठि-दे० 'गाँठ'। उ० १ गाँठि बिनु गुन की कठिन जड़ चेतन की। (गी० १।८६)

गाँठी-दे० 'गाँठ'। उ० २ मनि गिरि गइ छूटि जनु गाँठी। (मा० १।१३२।३)

गाँडर-(स० गंडाली)-मूँज की तरह की एक घास जिसकी पत्ती पतली और लम्बी होती है। इसी की जड़ को खस कहते हैं। उ० बाग सुराग कि गाँडर ताँती। (मा० २।२४१।३)

गाँथ-(स० ग्रथन)-गूथे, गूँथे।

गाँव-(स० ग्राम)-देहात में वह स्थान जहाँ बहुत से किसानों मजदूरों आदि का घर हो, छोटी बस्ती। उ० गाँव बसत, बामदेव, मैं कबहूँ न निहोरे। (वि० ८)

गाँसी-(स० ग्रथन)-हथियारों के आगे का तेज भाग, धार, नोक।

गाँहक-दे० 'गाहक'। उ० १ गाँहक गरीब का दयालु दानि दीन को। (वि० ६६)

गा-(स० गम्)-१ गया, जाना क्रिया का भूतकालिक रूप, २ जाना, ३ गामिनी जानेवाली। उ० १. काम सेत कलिकाल हूँ हरि पुरहिं न गा को? (वि० १५२)

२ जो प्रभु पार अवसि गा चहहू। (मा० २।१००।४) ३ त्रिपथगासि, पुन्यरासि, पापछालिका। (वि० १७)

गाइ (१)-(सं० गान)-गाकर, गुणगान कर, प्रशंसा कर। उ० तरै तुलसीदास भव तव नाथ-गुन गन गाइ। (वि० ४१) गाइए-दे० 'गाइय'। उ० १ जहँ भूप रमानिवास तहँ की संपदा किमि गाइए। (मा० ७।२८। छ० १) गाइबी-गाऊँगा, यश का वर्णन करूँगा। उ० तुलसी सो तिहुँ भुवन गाइबी नंद सुवन सनमानी। (कृ० ४८) गाइय-१ गाइए, बखानिए, वर्णन कीजिए, २ गाता हूँ, वर्णन करता हूँ। गाइयत-गाता है, गाते हैं। उ० बाँकी बिरुदावलि बिदित बेद गाइयत। (ह० ३१) गाइये-दे० 'गाइए'। गाइहैं-गान करेंगे, वर्णन करेंगे। उ० भूरि भाग तुलसी तेउ जे सुनिहैं, गाइहैं, बखानिहैं। (गी० १।७८) गाइहौं-गाऊँगा। उ० चारु चरित रघुबंस तिलक के तहँ तुलसी मिलि गाइहौं। (गी० १।१८)

गाई (१)-(सं० गान)-१ गीत गाया, वर्णन किया, २ गाई हुई, बखानी हुई, ३ गा करके, बखान कर। उ० १ मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। (मा० १।१३।५) गाउ-गाओ, वर्णन करो। उ० परम पावन प्रेम परमिति समुझि तुलसी गाउ। (गी० ७।२५) गाउब-गावेंगे, गाऊँगा। उ० ब्याह उछाह सुमंगल त्रिभुवन गाउब। (जा० ७६) गाऊँ (१)-गान करूँ। गाए-१ गाया, गाया है, २ गाने से। उ० १ भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए। (मा० १।३३।४) गायति-गाते हैं, गान करते हैं। उ० गायति तव चरित सुपवित्र श्रुति सेस सुक संभु सनकादि मुनि मननसीला। (वि० ५२) गायऊ-गाया है, गाते हैं। उ० यह चरित कलिमलहर जथा मति दास तुलसी गायऊ। (मा० २।६०। छ० १) गाया-गान किया, गान किया है। उ० सिव बिश्राम बिटप श्रुति गाया। (मा० १।१०६।२) गाये-१ गान किया, बखाना, २ गाने से, वर्णन करने से। गायो-गान किया, बखाना, प्रशंसा की। उ० बाजिमेध कब कियो अजामिल, गज गायो कब साम को? (वि० ६६) गाव-(सं० गान)-गाते हैं, कहते हैं, प्रशंसा करते हैं। उ० संत कहहिं असि नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव। (मा० १।४५) गावई-गाता है, बखानता है, कहता है। उ० रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई। (मा० ४।३०। छ० १) गावउँ-१ गाता हूँ, बतलाता हूँ, २ गाऊँ, बतलाऊँ। उ० १ परम रहस्य मनोहर गावउँ। (मा० ७।७४।२) गावत-१ गाता है, बखानता है, २ गाते हुए, वर्णन करते हुए, ३ गाने पर। उ० १ अलिगन गावत नाचत मोरा। (मा० २।२२६।४) गावति-१ गाती है, २ गाते हुए, बखानते हुए, ३ गाने पर, वर्णन करने पर। गावती-१ गाती हैं, २ गाती हुई। उ० २ आरती सँवारि बर नारि चलीं गावतीं। (क० १।१३) गावहिं-गाते हैं, वर्णन करते हैं। उ० रामकथा गावहिं श्रुति सूरी। (मा० ७।१२६।१) गावहि-१ गाता है, २ गा। उ० २ तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठ मना। (मा० २।६०। छ० १) गावहीं-गाते हैं, वर्णन करते हैं। उ० उपबीत ब्याह उछाह जे सिय राम मंगल गावहीं। (जा० २१६) गावा-गाते हैं, गान किया है, कहा है। उ० संत पुरान उपनिषद गावा। (मा० १।४६।१) गावै-१ गाता है, २ गाये। गावौं-१ गान करता हूँ, बखान करता हूँ, २ गाऊँ, बखानूँ। उ० २ तौन सिराहिं कलप सत लगि, प्रभु, कहा एक मुख गावौं? (वि० १४२)

गाइ (२)-(सं० गो)-गाय, धेनु। गाइगोठ-दे० 'गाय गोठ'। उ० गाइगोठ महिसुर पुर जारें। (मा० २।१६७।३) गाइन्ह-गाय का बहुवचन, गायों। उ० अचर अमर हरषत बरषत फूल, सनेह सिथिल गोप गाइन्ह के ठट हैं। (कृ० २०)

गाई (२)-(सं० गो)-गाय, धेनु। उ० राम कथा कलि कामद गाई। (मा० १।३१।४)

गाउँ-(सं० ग्राम)-गाँव, छोटी बस्ती। उ० नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं। (मा० १।१८३।३)

गाऊँ (२)-गाँव छोटी बस्ती। उ० करि अनाथ जन परिजन गाऊँ। (मा० २।५७।२)

गाज (१)-(?)-पानी आदि का फेन, झाग।

गाज (२)-(सं० गज)-१ गर्जन, शोर, २ बिजली। उ० २ गाज्यो कपि गाज ज्यों। (क० ५।८)

गाजत-(सं० गर्ज)-१ गरजते हैं, प्रसन्न होते हैं, २ गर्जन करते हुए, हुंकारते हुए, खुश होते हुए। उ० २ तुलसी ते गाजत फिरहिं राम छत्र की छाँह। (स० ७२) गाजहिं-प्रसन्न होते हैं, गरजते हैं। उ० हय गय गाजहिं हने निसाना। (मा० १।३०४।२) गाजी-गरजी, तड़तड़ा कर गिरी, प्रसन्न हुई। उ० लाज गाज उनयनि कुचाल कलि परी बजाइ कहूँ कहुँ गाजी। (कृ० ६१) गाजे-१ गर्जे, २ प्रसन्न हुए, ३ गर्जने पर, प्रसन्न होने पर। गाज्यो-गर्जना की, हुंकारा, प्रसन्न हुए। उ० गाज्यो कपिराज रघुराज की सपथ करि। (क० ६।६) गाज्यौ-१ गर्जन किया, प्रसन्न हुआ, २ गरजता हुआ, प्रसन्न होता हुआ। उ० २ गाज्यौ मृगराज गजराज ज्यों गहतु हौं। (क० १।१८)

गाजन-(सं० गर्जन)-१ प्रसन्न होना, गर्जना, २ गर्जने वाला, ३ नाश करनेवाला।

गाडर (१)-(सं० गड्डरी)-भेंड़। उ० गाडर लाए ऊन कों लाग्यो चरन कपास। (स० ५३) मु० गाडर के ढरन-भेंड़ियाधसान। बिना सोचे समझे किसी एक को एक ओर जाते देख सभी का उधर ही चल देना। उ० तुलसी गाडर के ढरन आगे जगत बिचार। (स० ३५८)

गाडर (२)-(सं० गड्डाली)-मूँज की तरह की एक घास।

गाड़-(सं० गर्त)-गड्ढा, खत्ता। उ० रुधिर गाड भरि-भरि जम्यो ऊपर धूरि उड़ाइ। (मा० ६।५३)

गाड़हि-(सं० गर्त)-गाड़ देते हैं, गाड़ते हैं। उ० निसिचर भट महि गाड़हि भालू। (मा० ६।८१।४) गाड़ि-१ गाड़ कर, २ गाड़ दिया। उ० २ गाड़ि अवधि पदि कठिन कुमंत्र। (मा० २।२१२।२) गाड़े-१ गाड़ दिया, ढक दिया, १ गाड़ना, ढकना, तोपना। उ० २ गाड़े भली, उखारे अनुचित, बनि आए बदिबे ही। (कृ० ४०)

गाड़ी-(सं० गन्त्री)-पहियों के ऊपर ठहरा हुआ ढाँचा जिसे

होगा, २ पकड़ने, ग्रहण करने। उ० १ ज्ञान गिरा गुनतीरवन की सुनि विचारि गहिये ही। (कृ० ४०) गहिबो–१ पकड़ना, पकड़ लेना, २ पकड़ोगे। उ० १ प्रबल दनुज दल दलि पल आध में, जीवत दुरित दसानन गहिबो। (गी० ५।१४) गहियतु–पकड़ता, पकड़ लेता। उ० ताहु पर बाहु बिनु राहु गहियतु है। (क० २।७) गहिसि–१ पकड़ ली, पकड़ी, २ पकड़ता। उ० १ गहिसि पूँछ कपि सहित उड़ाना। (मा० ६।५५।३) गहिहौं–पकड़ूँगा। उ० इतनी जिय लालसा दास के कहत पानही गहिहौं। (वि० २३१) गही–ग्रहण की, पकड़ी। उ० गये बिसारि रीति गोकुल की, अब निगुन गति गही है। (कृ० ४२) गहु–पकड़, पकड़ो, ग्रहण करो। उ० सखीं कहहिं प्रभुपद गहु सीता। (मा० १।२६५।४) गहे–१ पकड़े हुए, २ पकड़े, ग्रहण किए। उ० २ पुनि गहे पद पाथोज मयनाँ प्रेम परिपूरन हियो। (मा० १।१०१। छं० १) गहेउ–पकड़ा। गहेसि–पकड़ लिए, ग्रहण कर लिए। उ० असुर समय गहेसि पद जाइ। (मा० ३।२।६) गहेहू–पकड़ना, पकड़िएगा। उ० बार बार पद पकज गहेहू। (मा० २।१५१।२) गहौंगो–ग्रहण करूँगा, पकड़ूँगा। उ० श्री रघुनाथ-कृपाल-कृपा तें संत सुभाव गहौंगो। (वि० १७२) गह्यौ–ग्रहण किया, पकड़ा। उ० तुलसिदास त्रैलोक्य मान्य भयो कारन इहै गह्यौ गिरिजा वर। (कृ० ३१)

गहगह–(सं० गद्गद)–प्रसन्नतापूर्वक, आनंद से भरा, घमाघम। उ० गहगह गगन दुंदुभी बाजी। (कृ० ६१)

गहगहि–दे० 'गहगह'। उ० गहगहि गगन दुंदुभी बाजी। (मा० १।१६१।४)

गहगही–दे० 'गहगह'। उ० सुर सुमन बरषहिं हरष संकुल बाज दुंदुभि गहगही। (मा० ६।१०३। छं० २)

गहगहे–दे० 'गहगह'। उ० अति गहगहे बाजने बाजे। (मा० १।२८६।१)

गहडोरिहौं–(?)–भयंकर गड्ढा कर दूँगा। उ० सुधा सो सलिल सूकरी ज्यों गहडोरिहौं। (वि० २५८)

गहन (१)–(सं० ग्रहण)–१ ग्रहण, पकड़ना, २ सूर्य तथा चंद्र आदि का ग्रहण, ३ कलंक, ४ दुःख, कष्ट, ५ बंधक, रेहन।

गहन (२)–(सं०)–१ गम्भीर, गहरा, २ दुर्गम, घना, ३ कठिन, भयंकर, दुरूह, ४ कुंज, निकुंज, ५ जल। उ० ३ सकल सबद पोच, सोचबस सर्वदा दास तुलसी विषय-गहन-ग्रस्तम्। (वि० ५१)

गहनि (२)–(सं० गहन)–घोर, विशाल, भयंकर। उ० ग्राह अति गहनि गरीबी गाढ़े गह्यो हौं। (वि० २६०)

गहनु (१)–(सं० ग्रहण)–ग्रहण, पकड़ना। दे० 'गहन(१)'। उ० ममउ राहु रबि-गहनु मत, राजहि पुजहि कलेस। (प्र० ७।२।४)

गहनु (२)–(सं० गहन)–गंभीर, कठिन। दे० 'गहन(२)'।

गहबर–(सं० गह्वर)–१ दुर्गम, विषम, २ व्याकुल, उद्विग्न, दुःखी, ३ बेसुध, ४ किसी स्थान में मग्न, ५ गुफा, ६ कुंज, वृक्षों से घना स्थान। उ० १ नगर सकल बनु गहबर भारी। (मा० २।८४।१)

गहबरि–दुःख से भरकर, व्याकुल होकर। उ० गहबरि हियँ कह कौसिला मोहि भरत कर सोचु। (मा० २।२८३) मु० गहबरि आया–गला भर आया, करुणा से पूर्ण हो गए। उ० कपि के चलत सिय को मनु गहबरि आयो। (गी० ५।१५)

गहर–(?)–देर, विलंब।

गहरु–दे० 'गहर'। उ० चूकिए बिलंब कहा कहूँ न गहरु। (वि० २५०)

गहाए–पकड़ाए, धराए। उ० छावति छोड़ाए तें, गहाए तें गहति। (वि० २४६)

गहागह–(सं० गद्गद)–बड़ी धूमधाम से। उ० बाजे गहागह अवध बधावा। (मा० २।७।२)

गहागहे–धूमधाम से बजने लगे, धूमधाम होने लगी। उ० मम पुर मंगल गान निसान गहागहे। (जा० ११८)

गहिराए (सं० गंभीर)–गहरे हो गए। अथाह हो गए। उ० गए सोच-सर सूखि, मोद-सरिता-समुद्र गहिराए। (गी० ६।२२)

गहीले–(सं० ग्रहण)–१ ग्रहणवाले, पकड़नेवाले, अपनानेवाले, २ ज़िद्दी, ३ घमंडी। उ० २ सो बल गया, किधौं भए अब गर्व-गहीले। (वि० ३२)

गह्वर–(सं०)–१ अंधकारमय या गूढ़ स्थान, गुप्त स्थान, २ बिल, माँद, ३ गुफा, कंदरा, ४ लतागृह, कुंज, ५ झाड़ी, ६ जंगल, ७ पाखंड, ८ जल, ९ कठिन, दुर्गम, १० गुप्त, छिपा।

गाँठ–(सं० ग्रंथि)–१ रस्सी डोरी या तागे आदि में पड़ी उलझन जो खिंचने पर कड़ी और दृढ़ हो जाती है, गिरह, २ कपड़े आदि में दी गई गाँठ जिसमें पैसा या कोई अन्य चीज़ बँधी हो। ३ मनमोटाव, बैर भाव, ४ अंग का जोड़, ५ गठरी, गट्ठर।

गाँठरी–(सं० ग्रंथि)–गठरी गट्ठर। उ० भवन मसान, गथ गाँठरी गरदु की। (क० ७।१२८)

गाँठि–दे० 'गाँठ'। उ० १ गाँठि बिनु गुन की कठिन जड़ चेतन की। (गी० १।८१)

गाँठी–दे० 'गाँठ'। उ० २ मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी। (मा० १।१३५।३)

गाँडर–(सं० गंडाली)–मूँज की तरह की एक घास जिसकी पत्ती पतली और लम्बी होती है। इसी की जड़ को खस कहते हैं। उ० बाज सुराग कि गाँडर ताँती। (मा० २।२४१।३)

गाँथे–(सं० ग्रथन)–गूथे, गूँथे।

गाँव–(सं० ग्राम)–देहात में वह स्थान जहाँ बहुत से किसानों-मज़दूरों आदि का घर हो, छोटी बस्ती। उ० गाँव बसत, बामदेव, मैं कबहूँ न निहोरे। (वि० ८)

गाँसी–(सं० ग्रथन)–हथियारों के आगे का तेज़ भाग, धार, नोक।

गाँहक–दे० 'गाहक'। उ० १ गाँहक गरीब को दयालु दानि दीन को। (वि० ६६)

गा–(सं० गम्)–१ गया, जाना क्रिया का भूतकालिक रूप, २ जाना, ३ गामिनी, जानेवाली। उ० १ नाम लेत कलिकाल हूँ हरि पुरहिं न गा को? (वि० १५१)

२ जो प्रभु पार अवसि गा चहहू। (मा० २।१००।४) ३ त्रिपथगासि, पुन्यरासि, पापछालिका। (वि० १७)

गाइ (१)-(सं० गान)-गाकर, गुणगान कर, प्रशंसा कर। उ० सब तुलसीदास भव तन नाथ-गुन गन गाइ। (वि० ४१) गाइए-दे० 'गाइय'। उ० १ जहँ भूप रमानिवास तहँ की संपदा किमि गाइए। (मा० ७।२८। छं० १) गाइबी-गाऊँगा, यश का वर्णन करूँगा। उ० तुलसी सो तिहुँ भुवन गाइबी नंद सुवन सनमानी। (कृ० ४८) गाइय-१ गाइए, बखानिए, वर्णन कीजिए, २ गाता हूँ, वर्णन करता हूँ। गाइयत-गाता है, गाते हैं। उ० बाँकी बिरुदावलि विदित वेद गाइयत। (ह० ३१) गाइये-दे० 'गाइए'। गाइहैं-गान करेंगे, वर्णन करेंगे। उ० भूरि भाग तुलसी तेउ जे सुनिहैं, गाइहैं, बखानिहैं। (गी० १।७८) गाइहौं-गाऊँगा। उ० चारु चरित रघुबंस तिलक के तहँ तुलसी मिलि गाइहौं। (गी० १।११८)

गाई (१)-(सं० गान)-१ गीत गाया, वर्णन किया, २ गाई हुई, बखानी हुई, ३ गा करके, बखान कर। उ० १ मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। (मा० १।१३।५) गाउ-गाओ, वर्णन करो। उ० परम पावन प्रेम-परमिति समुझि तुलसी गाउ। (गी० ७।२५) गाउब-गायेंगे, गाऊँगा। उ० ब्याह उछाह सुमंगल त्रिभुवन गाउब। (जा० ७१) गाऊँ (१)-गान करूँ। गाए-१ गाया, गाया है, २ गाने से। उ० १ भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए। (मा० १।३३।४) गायति-गाते हैं, गान करते हैं। उ० गायति सत चरित सुपवित्र श्रुति सेस सुक संभु सनकादि मुनि मननसीला। (वि० ५२) गायऊ-गाया है, गाते हैं। उ० यह चरित कलिमलहर जथा मति दास तुलसी गायऊ। (मा० ३।६। छं०१) गाया-गान किया, गान किया है। उ० सिव विश्राम विटप श्रुति गाया। (मा०१।१०६।२) गाये-१ गान किया, बखाना, २ गाने से, वर्णन करने से। गायो-गान किया, बखाना, प्रशंसा की। उ० बाजिमेध कब कियो अजामिल, गज गायो कब साम को? (वि० ९९) गाव-(सं० गान)-गाते हैं, कहते हैं, प्रशंसा करते हैं। उ० संत कहहिं असि नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव। (मा० १।४५) गावई-गाता है, बखानता है, कहता है। उ० रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई। (मा० ७।३०। छं० १) गावउँ-१ गाता हूँ बतलाता हूँ, २ गाऊँ, बतलाऊँ। उ० १ परम रहस्य मनोहर गावउँ। (मा०७।७४।२) गावत-१ गाता है, बखानता है, २ गाते हुए, वर्णन करते हुए, ३ गाने पर। उ० १ अलिगन गावत नाचत मोरा। (मा० २।२३६।४) गावति-१ गाती है, २ गाते हुए, बखानते हुए, ३ गाने पर, वर्णन करने पर। गावतीं-१ गाती हैं, २ गाती हुई। उ० २ आरती सँवारि बर नारि चलीं गावतीं। (क० १।१३) गावहिं-गाते हैं, वर्णन करते हैं। उ० रामकथा गावहिं श्रुति सूरी। (मा० ७।१२४।१) गावहि-१ गाता है, २ गा। उ० २ तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठ मना। (मा० ५।६०। छं० १) गावहीं-गाते हैं, वर्णन करते हैं। उ० उपबीत ब्याह उछाह जे सिय राम मंगल गावहीं। (जा० २१६) गावा-गाते हैं, गान किया है, कहा है। उ० संत पुरान उपनिषद गावा। (मा० १।४६।१) गावै-१ गाता है, २ गाये। गावौं-१ गान करता हूँ, वर्णन करता हूँ, २ गाऊँ, बखानूँ। उ० २ तीन सिराहिं कलप सत लगि, प्रभु, कहा एक मुख गावौं? (वि० १४२)

गाइ (२)-(सं० गो)-गाय, धेनु। गाइगोठ-दे० 'गाय गोठ'। उ० गाइगोठ महिसुर पुर जारें। (मा० २।११७।३) गाइन्ह-गाय का बहुवचन, गायें। उ० बयर अमर हरपत बरषत फूल, सनेह सिथिल गोप गाइन्ह के ठट हैं। (कृ० २०)

गाइ (२,-(सं० गो)-गाय, धेनु। उ० राम कथा कलि कामद गाई। (मा० १।३१।४)

गाउँ-(सं० ग्राम)-गाँव, छोटी बस्ती। उ० नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं। (मा० १।१८३।३)

गाऊँ (२)-गाँव, छोटी बस्ती। उ० करि अनाथ जन परि जन गाऊँ। (मा० २।२७।२)

गाज (१)-(?)-पानी आदि का फेन, झाग।

गाज (२)-(सं० गर्ज)-१ गर्जन, शोर, २ बिजली। उ० २ गाज्यो कपि गाज ज्यों। (क० ५।८)

गाजत-(सं० गर्ज)-१ गरजते हैं, प्रसन्न होते हैं, २ गर्जन करते हुए, हुंकारते हुए, खुश होते हुए। उ० २ तुलसी से गाजत फिरहिं राम छत्र की छाँह। (स० ७२) गाजहिं-प्रसन्न होते हैं, गरजते हैं। उ० हय गय गाजहिं हने निसाना। (मा० १।३०४।२) गाजी-गरजी, तड़तड़ा कर गिरी, प्रसन्न हुई। उ० लाज गाज उनवनि कुचाल कलि परी बजाइ कहूँ कहूँ गाजी। (कृ० ६१) गाजे-१ गर्जे २ प्रसन्न हुए, ३ गर्जने पर, प्रसन्न होने पर। गाज्यो-गर्जना की, हुंकारा, प्रसन्न हुए। उ० गाज्यो कपिराज रघुराज की सपथ करि। (क० ६।६) गाज्यौ-१ गर्जन किया, प्रसन्न हुआ, २ गरजता हुआ, प्रसन्न होता हुआ। उ० २ गाज्यौ मृगराज गजराज ज्यों गहत हौं। (क० १।१८)

गाजन-(सं० गर्जन)-१ प्रसन्न होना, गर्जना, २ गर्जने वाला, ३ नाश करनेवाला।

गाडर (१)-(सं० गड्डरी)-भेंड़। उ० गाडर लाए उन कों लाग्यो चरन कपास। (स० ५३) मु० गाडर के दरन-भेंड़ियाधसान। बिना सोचे समझे किसी एक को एक ओर जाते देख सभी का उधर ही चल देना। उ० तुलसी गाडर के दरन आनो जगत विचार। (स० ३५८)

गाडर (२)-(सं० गडाली)-मूँज की तरह की एक घास।

गाड़-(सं० गर्त)-गड्ढा, खत्ता। उ० रुधिर गाड़ भरि भरि जम्यो ऊपर धूरि उड़ाइ। (मा० ६।५३)

गाड़हिं-(सं० गर्त)-गाड़ देते हैं, गाड़ते हैं। उ० निसिचर भट महि गाड़हिं भालू। (मा० ६।८१।४) गाड़ि-१ गाड़ कर, २ गाड़ दिया। उ० २ गाड़ि अवधि पढ़ि कठिन कुमंत्रू। (मा० २।२१२।२) गाड़े-१ गाड़ दिया ढक दिया, १ गाड़ना, ढकना, तोपना। उ० २ गाड़े भली, उखारे अनुचित, बनि आए बदिबे ही। (कृ० ५०)

गाड़ी-(सं० शकट)-पहिया के ऊपर ठहरा हुआ ढाँचा जिसे

आदमी, बैल, घोड़े, या मशीन आदि से खींचा जाता है। यान शकट। उ० गाड़ी के स्वान की नाइँ माया मोह की, बड़ाई छिनहिं तजत, छिन भजत बहोरिहौं। (वि० २४८)

गाईं-गाड़े। उ० कमठ की पीठि जाके गोड़नि की गाईं मानो। (ह० ७)

गाढ़-(सं०)-१ अतिशय, बहुत, २ दृढ़, मजबूत, ३ घना गाढ़ा, ४ गहरा, अथाह, ५ कठिन, विकट, ६ आपत्ति, संकट, ७ जुलाहों का करघा। गाढ़ी (१)-'गाढ़' का स्त्रीलिंग। उ० २ देखी माया सब विधि गाढ़ी। (मा० १।२०२।२)

गाढ़ा-दे० 'गाढ़'। उ० २ कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा। (मा० ३।२८।७)

गाढ़ी (२)-(सं० घटन)-गढ़ी हुई।

गाढ़े-दे० 'गाढ़'। ज़ोर से, दृढ़ता से। उ० खेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। (मा० १।२६१।४)

गात-(सं० गात्र)-शरीर, अंग। उ० गरहिं गात जिमि आतप घोरे। (मा० २।१४७।४) गातहि-शरीर को। उ० जलज विलोचन स्यामल गातहि। (मा० ७।३०।२)

गाता (१)-(सं० गान)-गवैया, गानेवाला। उ० जयति रावनअजित-गंधर्वगनगर्वहर फेरि किये राम-गुन गाथ-गाता। (वि० ३६)

गाता (२)-दे० 'गात'। उ० सतिहि विलोकि जरे सब गाता। (मा० १।६३।२)

गातु-दे० 'गात'। उ० नाइ चरन सिर मुनि चले पुनि पुनि हरषत गातु। (मा० १।८१)

गात्र-(सं०)-शरीर, गात।

गाथ-(सं०)-१ गान, गीत २ स्तोत्र, प्रशंसा, स्तुति, ३ गाथा कथा। उ० ३ वेदहि असीस जो हारि सब गावहिं,गुन गन गाथ। (मा० १।३२१)

गाथा-(सं०)-१ स्तुति, प्रशंसात्मक गीत, स्तोत्र, २ गीत, गाना, ३ कथा, ४ कथनी, वार्ता। उ० ३ बरनउँ बिसद तासु गुन गाथा। (मा० १।१०५।४)

गाथें-(सं० ग्रथन) १ गुँथे हुए, लगाए हुए, २ गूँथे। उ० १ मरकतमय मुकुता मनि गाथें। (मा०१।३२०।५)

गाथे-दे० 'गाथें'। उ० १ गाथे महामनि मौरमंजुल अंग सब चित चोरहीं। (मा० १।३२०। छं० १)

गादुर-(?)-चमगादड़। उ० ते नर गादुर जानि जिय करिय न हरष बिषाद। (दो० ३८७)

गाधि-(सं०)-विश्वामित्र के पिता का नाम। ये कुशिक राजा के पुत्र थे। उ० जात सराहत मनहिं मन मुदित गाधिकुल चंदु। (मा० १।३६०)

गाधी-दे० 'गाधि'।

गाधेय-(सं०)-विश्वामित्र, गाधि-पुत्र। उ० जयति गाधेय गौतम जनक सुखजनक विश्वकण्टक-कुटिल-कोटिहंता। (वि० ३८)

गान-(सं०)-१ गाने की क्रिया, गाना, २ गाने की चीज़, गीत। उ० १ प्रगत आमोद मन मत्त मधुकर-निकर मधुरतर मुखर कुर्वति गान। (वि० २१) गानहि-१ गान को, २ गान। उ० २ पुनि पुनि तात करहु गुन गानहिं। (मा० ७।४२।३)

गाना-(सं० गान)-१ ताल-स्वर के नियम के साथ शब्दोच्चारण करना, २ मधुर ध्वनि करना, ३ वर्णन करना ४, प्रशंसा करना, ५ गीत, ६ गाने की क्रिया। उ० ३ कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। (मा० १।११।४)

गापत-(सं० कल्प)-१ गप मारता है, बकता है, २ गप मारते हुए।

गामिनि-दे० 'गामिनी'। उ० १ चलीं मुदित परिछनि करन गजगामिनि बर नारि। (मा० १।३१७)

गामिनी-(सं०)-१ चलनेवाली, चालवाली, २ जाने वाली। उ० २ अमित महिमा अमितरूप भूपावली मुकुटमनि-वंदिते लोकत्रयगामिनी। (वि० १८)

गामी-(सं० गामिन्)-१ चलनेवाले, चालवाला, २ गमन करनेवाला, संभोग करनेवाला। उ० २ सुभ गति पाव कि परत्रिय गामी। (मा० ७।११२।२)

गाय-(सं० गो)-एक मादा चौपाया जिसके नर को साँड़ या बैल कहते हैं। उ० रोगसिंधु क्यों न डारियत गाय खुर कै। (ह० ४३)

गायक-(सं०)-गवैया, गानेवाला। उ० पढ़हिं भाट गुन गावहिं गायक। (मा० २।३७।३)

गायगोठ-(गो + गोष्ठी)-गोशाला, गायों के रहने की जगह।

गारा-(सं० गालन)-१ मिट्टी या चूने आदि को पानी में सानकर बनाई गई गीली चीज़ जिससे ईंट की जुड़ाई होती है। २ निचोड़ा, ३ गलाया।

गारि (१)-(सं० गालन)-१ गारकर, निचोड़कर, २ गलाकर, घोलकर। उ० १ अमिय गारि गारेउ गरल, गारि कीन्ह करतार। (दो० ३२८)

गारि (२)-(सं० गालि)-गाली। निंदा या व्यंग्य भरे शब्द। उ० दे० 'गारि (१)'।

गारी-दे० 'गारि (२)'। उ० दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी। (मा० २।१३०।२)

गारुड़-(सं० गारुड़)-वह मंत्र जिसका देवता गरुड़ हो। साँप का विष उतारनेवाला मंत्र।

गारुड़ि-(सं० गारुडिन्)-सर्प का विष उतारनेवाला, साँप झाड़नेवाला। उ० तपस्वरूप गारुड़ि रघुनायक। (मा० ७।१२१।४)

गारुड़ी-दे० 'गारुड़ि'।

गारो (१)-(सं० गर्व)-१ घमंड, अहंकार, २ मान, गौरव, ३ गुरु, बड़ा। उ० १ सो हरि रोम भरोस छोड़ तुलसी तेहि भजत तजि गारो। (वि० १४)

गारो (२)-(सं० गालन)-१ गलाया, २ गार दिया, निचोड़ा।

गारो (३)-(सं० गालि) निन्दा, बुराई, गाली देना। उ० गए ते प्रभुहि पहुँचाइ फिर पुनि करत करम गुन गारो। (गी० २।६६)

गारो (४)-(फ़ा० ग़ार) गड्ढा, कन्दरा गुफा।

गाल-(सं० गल्ल) १ कपोल, चेहरे के दोनों ओर का कोमल भाग, २ बढ़बढ़ाने का स्वभाव, बकवाद करने की आदत

३ मध्य, बीच, ४ मुँह, ५ ग्रास, कौर, वह अन्न जो एक बार मुँह में डाला जा सके। मु० गाल करब-मुँहजोरी करूँगा, बढ़ बढ़ कर बातें करूँगा। उ० गालु करब केहि कर बलु पाई। (मा० २।१४।१) मु० गाल फुलाउब-१ अभिमान प्रकट करूँगा, २ माराज़ हूँगा। उ० २ हँसब ठठाइ फुलाउब गाला। (मा० २।३५।३) गाल बजाई-डींग मार कर, बढ़ बढ़ कर बातें कर। उ० व्यर्थ मरहु जनि गाल बजाई। (मा० १।२७६।१) गाल बड़-बढ़ बढ़ कर बात करनेवाला। उ० हँसि बह रानि गाल बड़ तोरें। (मा० २।११।४) गाल मारै-डींग मारे, सीटे, बढ़ बढ़कर बातें करे। उ० क्यों न मारै गाल बैठो काल डाढ़नि बीच। (गी० ५।६)

गालगूल-(स० गल्प)-व्यर्थ की बात, गपशप, अनाप शनाप। उ० हारहि जनि जनम जाय गाल गूल गपत। (वि० १३०)

गालव-(स०)-पुराणों में गालव नाम के कई व्यक्तियों का उल्लेख है। जो गालव अधिक प्रसिद्ध हैं, विश्वामित्र के अतेवासी थे। विद्या समाप्त करने पर इन्होंने अपने गुरु विश्वामित्र से दक्षिणा माँगने का आग्रह किया। इनके हठ से चिढ़ कर विश्वामित्र ने ८०० श्यामकर्ण घोड़े माँगे। गालव ने अपने मित्र गरुड़ के साथ जाकर राजा ययाति से इसके लिए प्रार्थना की। ययाति ने अपनी पुत्री माधवी को उन्हें सौंप दिया। गालव ने क्रमशः हर्यश्व, दिवोदास और उशीनर को माधवी को देकर उनसे दो दो सौ घोड़े लिए। इस प्रकार ६०० घोड़े तो इकट्ठे हो गए पर २०० का प्रबंध वे न कर सके। अंत में ६०० घोड़े और माधवी उन्होंने गुरु विश्वामित्र को दिए। इस प्रकार वे गुरुदक्षिणा से मुक्त हुए। अपने इस हठ के कारण उन्हें इतना परेशानी उठानी पड़ी अतः उनका यह हठ प्रसिद्ध है। उ० हठ बस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस। (मा० २।६१)

गाला-दे० 'गाल'। उ० दे० 'गाल फुलाउब'।

गालु-दे० 'गाल'।

गालू-दे० 'गाल'।

गावन- गान करना, गाना, बखानना। उ० हरषित लगीं सुआसिनि मंगल गावन। (पा० १६) गावनि-गान करना, गाना। उ० सो निसि सोहावनि, मधुर गावनि, बाजने, बाजहिं भले। (जा० १८०)

गाह (१)-(स० ग्रहण)-१ पकड़, २ घात, ३ ग्राहक, चाहनेवाला।

गाह (२)-(स० ग्राह)-मगर, पानी का एक जानवर।

गाहक-(सं० ग्राहक)-१ खरीदार, मोल लेनेवाला, अभिलाषी, प्रेमी, २ अवगाहन करनेवाला। उ० १ जन गुन गाहक राम दोष दलन करनायतन। (मा०१।३३६)

गाहकताई-ग्राहकता, कदरदानी। उ० कह कपि तव गुन गाहकताई। (मा० ६।२४।३)

गाहा (१)-(स० गाथा)-कथा, वचन, वृत्तांत। उ० करन चहउँ रघुपति गुन गाहा। (मा० १।८।३)

गाहा (२)-(सं० ग्रहण)-खरीददार, ग्रहण करनेवाला। उ० सत्र अघ अगुन साधु गुन गाहा (मा० १।६।१)

गिद्ध-(स० गृध)-१ एक प्रकार का बड़ा पक्षी जो मांसाहारी होता है। २ जटायु। रामायण का प्रसिद्ध गिद्ध। दे० 'जटायु'। उ० २ सदगति सबरी गिद्ध की सादर करता को?

गिनत-(स० गणन)-१ गिनता है, २ समझता है, ३ प्रतिष्ठा करता है, ४ गिनते हुए, ५ समझते हुए, ६ प्रतिष्ठा करते हुए। उ० २ सम कंचन काँचै गिनत, सत्रु मित्र सम दोइ। (वै० ३१) गिन्यौ-१ गणना की, गिना, २ प्रतिष्ठा की।

गिनती-गणना, शुमार, संख्या, तादाद। उ० केहि गिनती महँ गिनती जस बनघास। (ब० ५१)

गिर (१)-(स० गिरि)-१ पहाड़, पर्वत, २ एक प्रकार के गोसाईं।

गिर (२)-(स० गिरा)-वाणी, जबान। गिरहु (१)-(स० गिरा)-वाणी में, जबान में, भाषा में। उ० हरि हर-जस सुर-नर गिरहु, बरनहिं सुकवि-समाज। (दो० १३७)

गिरजा-दे० 'गिरिजा'।

गिरन-गिरने, नीचे आने। उ० रघुबीर तीर प्रचंड लागहिं भूमि गिरन न पावहीं। (मा० ६।१२) गिरहिं-१ गिरते हैं, २ गिर पड़तीं। उ० २ गिरहिं न तव रसना अभिमानी। (मा० ६।३३।४) गिरहु (२)-(स० गलन)-गिरो। गिरि (१)-१ गिरकर, नीचे आकर, २ अवनति कर। उ० १ गिरि घुटुरुवनि टेकि उठि अनुजनि, तोतरि बोलत पूप देखाए। (गी० १।२६) गिरिगो-गिर गया। उ० गिरिगो गिरिराज ज्यो गाज को मारो। (क० ६।३८) गिरि परनि-गिर पड़ना, लुढ़क जाना। उ० परसपर खेलनि अजिर, उठि चलनि, गिरि गिरि परनि। (गी० १।२५) गिरिहहिं-गिरेंगी, गिरेंगे। उ० गिरिहहिं रसना ससय नाहीं। (मा० ६।३३।५) गिरी (१)-(स० गलन)-१ गिर पड़ी, २ गिरी हुई। गिरे-१ गिरने में, गिरने से, २ गिरे हुए, ३ गिर पड़े, असफल हुए। उ० १ सिरउ गिरे संतत सुभ जाही। (मा० ६।१४।२) गिरौं-(स० गलन)-गिरूँ, गिर पड़ूँ, गिर पड़ूँगी। उ० दे० 'गिरि'।

गिरबान-(स० गीर्वाण)-देवता, देव, सुर।

गिरह-(फा०)-१ गाँठ, ग्रन्थि, २ कलैया, उलटी। उ० २ गगन गिरह करियो कयै तुलसी पढ़त कपोत। (स० १२६)

गिरा-(स०)-१ बोलने की शक्ति, २ जीभ, ज़बान, ३ वाणी, भाषा, बोली, बोल, वचन, ५ सरस्वती देवी। उ० ४ गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न। (मा० १।१८) ५ सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू। (मा० १।३६१।३) गिरापति-(स०)-सरस्वती के पति, ब्रह्मा, विधाता। उ० गुर गनपति गिरिजापति गौरि गिरापति। (जा० १)

गिरिंद-(स० गिरि+इन्द्र)-१ बड़ा पहाड़, २ सुमेर पर्वत, ३ हिमालय।

गिरिंदा-दे० 'गिरिंद'। उ० २ मए पच्छजुत मनहुँ गिरिंदा। (मा० २।३५।२)

गिरि (१)-(स०)-१ पर्वत, पहाड़, २ एक प्रकार के सन्यासियों का सम्प्रदाय, ३ पार्वती के पिता, ४ हिमाचल,

४ चित्रकूट पर्वत। उ० १ सुग्ह सहित गिरि तें गिरीं पावक नहीं जानिपि मई पर्ा। (मा० १।६६। छ० १) २ कौतुकहीं गिरि गेह सिधाए। (मा० १।६६।३) गिरिन–१ गिरि का बहुवचन, २ पहाड़ों से। उ० २ मानहुँ गिरिन गेरु-झरना झरत हैं। (क० ६।४१) गिरिनाथा–(स० गिरिनाथ)-१ शिव, महादेव, २ हिमाचल पर्वत। उ० १ कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा। (मा० १।४८।२) गिरिनारि–(स०)-हिमाचल की स्त्री तथा पार्वती की माता। मैना। उ० मह बिकल भयसा सकल दुखित देखि गिरिनारि। (मा० १।६६) गिरिनारिहि–मैना (पार्वती की माता) को। उ० जुआ खेला यत नारि देहि गिरिनारिहि। (पा० १२०) गिरिन्द–पर्वता, गिरि का बहुवचन। उ० मानहुँ अपर गिरिन्द्र कर राजा। (मा० ४।३०।४) गिरिपतिहि–गिरिपति को, हिमाचल को। उ० सबु प्रसंगु गिरिपतिहि सुनावा। (मा० १।६१।१) गिरिभव–पर्वत से उत्पन्न। उ० सत्य कहहु गिरिभव तनु एहा। (मा० १।८०।३) गिरिसुता–पार्वती। उ० विज्ञान भवन, गिरिसुता-रमन। (वि० १३) गिरिहिं–दे० 'गिरिहि'। गिरिहि–गिरि को, हिमाचल को। उ० सपन सुनायउ गिरिहि हँकारी। (मा० १।७२।३)

गिरिजहि–गिरिजा को, पार्वती का। उ० अस कहि नारद सुमिरि हरि गिरिजहि दीन्हि असीस। (मा० १।७०)

गिरिजा–(स०)-१ हिमालय की कन्या, पार्वती गौरी, २ गंगा। उ० १ गिरिजा-मन-मानस-मराल, कासीस, मसान निवासी। (वि० ३)

गिरिजापति–(स०) पार्वती के पति, शंकर, शिव। उ० गिरिजा-पति पल आदि इक मकूलव हरि सुख जान। (स० २४८)

गिरिजारमन–(सं० गिरिजारमण)-महादेव। उ० चरित सिंधु गिरिजारमन बदन पावहिं पार। (मा० १।१०३)

गिरिजावर–पार्वती के वर या पति, महादेव। उ० तुलसि दास त्रैलोक्य मान्य भयो कारन इहै गयौ गिरिजावर। (कृ० ३१)

गिरिधारी–(स० गिरिधारिन्)-पहाड़ को धारण करनेवाले, श्री कृष्ण। विशेष-ब्रज पर जब इन्द्र रुष्ट हो गए, और मुसलाधार वर्षा करने लगे तो कृष्ण ने अपनी उँगली पर पर्वत उठाकर ब्रजबाला की रक्षा की थी। तभी से इनका नाम गिरिधर तथा गिरिधारी आदि पड़ा।

गिरिवर–(स० गिरिवर)-१ हिमालय, हिमाचल, २ चित्रकूट, ३ सुमेरु, ४ कैलाश, ५ गोवर्धन पर्वत, ६ कामद नाथ पर्वत, ७ कोई बड़ा पहाड़। उ० १ चले मुदित मुनिराज गए गिरिवर पहँ। (पा० ६१) २ रामदेवु गौरव गिरिवरहू। (मा० २।१३२।४) गिरिवरहू–गिरिवर का भी। उ० दे० 'गिरिवर'।

गिरिवरु–दे० 'गिरिवर'। उ० ६ गिरिवरु दीन्ह जनक पति जबहीं। (मा० २।२०२।१)

गिरिराज–(स०)-१ बड़ा पर्वत, २ हिमालय, पार्वती के पिता, ३ सुमेरु, ४ गोवर्धन। गिरिराजकुमारि–दे० 'गिरिराजकुमारी'। उ० सुनु गिरिराजकुमारि भ्रम तम रवि कर बचन मम। (मा० १।११५) गिरिराजकुमारी–हिमाचल की बेटी, पार्वती। उ० धन्य धन्य गिरिराजकुमारी। (मा० १।११२।३)

गिरी (२)–(स० गिरि)-१ पहाड़, पर्वत, २ एक प्रकार के सन्यासी। उ० १ जो काढ़ गिरी तें गरु तृन तें तन्न को। (क० ७।७३)

गिरीश–दे० 'गिरीश'। उ० ५ गिरा ग्राम गोतीतमीशं गिरीशं। (मा० ७।१०८। श्लो० २) गिरीश–(स०)-१ बड़ा पर्वत, २ सुमेरु, ३ हिमालय, हिमाचल, ४ कैलाश ५ शिव, महादेव।

गिरीस–दे० 'गिरीश'। उ० ३ होइहि यह कल्यान अब संसय तजहु गिरीस। (मा० १।७०)

गिरीसा–दे० 'गिरीश'। उ० ५ चलीं तहाँ जहँ रहे गिरीसा। (मा० १।५२।४)

गिलई–(स० गिरण)-किसी चीज़ को बिना दाँतों से तोड़ निगल जाय, लील जाय भीतर कर ले, छिपा ले। उ० तिमिर तरुन तरनिहि मकु गिलई। (मा० २।२३१।१) गिलहि–निगल जाय, निगल जाते हैं। उ० सदयाधी काचो गिलहिं, पुरजन पाक-प्रवीन। (दो० ४०४) गिल्यो–निगल लिया, खा लिया। उ० नाम सों प्रीति प्रतीति विहीन गिल्यो कलिकाल कराल न चूको। (क० ७।६०)

गीत–(स०)-१ गाने की चीज़, गाना, २ यश, कीर्ति, बड़ाई, ३ जिसका यश गाया जाय। उ० १ गावहिं गावहिं गीत परम तरंगी भूत सब। (मा० १।६३)

गीता–दे० 'गीत'। उ० १ गावहिं सुंदरि मंगल गीता। (मा० १।२६०।४)

गीध–(स० गृध्र)-१ पक्षी विशेष, गिद्ध, २ जटायु। उ० २ कौल, केवट, उपल, भालु, निसिचर, सबरि, गीधसम दम-दया-दान हीने। (वि० १०६) गीधपति–गिद्धों के राजा जटायु। उ० तुलसी पाइ गीधपति मुकुति मनावत मीच। (दो० २२२) गीधराज–दे० 'गीधपति'। उ० गीधराज सुनि आरत बानी। (मा० ३।२९।२) गीधहि–गिद्ध को, गीध पक्षी को। उ० मैं देखउँ तुम्ह नाहीं गीधहि दृष्टि अपार। (मा० ४।२८)

गीरवान–दे० 'गीर्वाण'। उ० तेरे गुनगान सुनि गीरवान पुलकित। (ह० ११)

गीर्वाण–(स०)-देवता, सुर।

गीवाँ–ग्रीवा पर, ग्रीवा या गर्दन में। उ० रेखें रुचिर कंबु कल गीवाँ। (मा० १।२४३।४) गीवा–दे० 'ग्रीवा'। गर्दन। उ० उर मनिमाल कंबुकल गीवा। (मा० १।२३३।४)

गुंज (१)–(सं०)-१ भौंरों के भनभनाने का शब्द, गुंजार, आनंद, ध्वनि, ३ गुंजार करते हैं। उ० ३ गुंजत मंजुल मधुकर श्रेनी। (मा० २।१३७।४)

गुंज (२)–(स० गुंजा)-घुँघची। गुंजनि–गुंजा का बहुवचन, घुँघचियों का समूह। उ० उलटे पलट नाम-महातम गुंजनि जितो ललामो। (वि० २२८)

गुंजत–गुंजार करते हैं गूँजते हैं, हर्षध्वनि करते हैं। उ० विकसे सरसिज बहु रंग गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा। (मा० १।८६। छ० १) गुंजहिं–गुंजार करते हैं। उ० कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा। (मा० १।१२६।१)

गुंजन–(सं०)-भौंरों के गुंजन की क्रिया, भनभनाहट।

गुंजा-(स०)-घुँघुची, एक लता जो झाड़ियों पर चढ़ती है। इसके फल का कुछ भाग लाल और कुछ काला होता है। उ० गुंजा ग्रहइ परम मनि खोई। (मा० ७।४४।२)
गुंजारहीं-गुंजार करते हैं, गुंजन कर रहे हैं। उ० बहुरंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुंजारहीं। (मा० ७।२६। छं० १) गुंजारे-गुंजार किए, गुंजन किए। उ० मधुतर मधुर मधुकर गुंजारे। (गी०१।२४)
गुंड-(?)-मलार राग का एक भेद। उ० राम-सुजस सब गावहीं सुसुर सुसारँग गुंड। (गी० ७।१६)
गुइयाँ-दे० 'गोइयाँ'।
गुच्छ-(स०)-एक में लगे या बँधे कई फूलों, फलों या पत्तों का समूह, गुच्छा। उ० गुच्छ बीच बिच कुसुमकली के। (मा० १।२३३।१)
गुड्डी-(?)-गुड्डी, पतंग, चंग, कागज़ की बनी एक चौकोर चीज़ जिसे लोग सूत में बाँधकर उड़ाते हैं। उ० सगाम पुर बासी मनहुँ बहु बाल गुडी उड़ावहीं। (मा० ३।२०। छं० २)
गुड्डा-दे० 'गुडी'।
गुढ़ि-(स० घटन)-गढ़कर, काट छाँटकर। उ० गढ़ि गुढ़ि पाहन पूजिए, गंडकि सिला सुभाय। (दो० ४४२)
गुण-(स०) १ किसी चीज में पाई जानेवाली वह बात जिसके द्वारा वह चीज दूसरी चीज़ से पहिचानी जाय। धर्म, स्वभाव, सिफ़त, २ निपुणता, ३ कला, हुनर, ४ तासीर, प्रभाव, फल, ५ अच्छा स्वभाव, शील, सद्वृत्ति, ६ रस्सी, सूत, डोरा, ७ प्रकृति के तीन गुण, सत्व, रज और तम, ८ वह रस्सी जिससे मल्लाह नाव खींचते हैं। ९ कविता के गुण (ओज, प्रसाद, माधुर्य) विशेष, १० वासना, ११ धनुष की रस्सी, १२ तीन की संख्या, १३ गुना (जैसे दुगुना)। उ० ५ बरस गुण गण गनति विमल मति शारदा निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी। (वि० ११)
गुणज्ञ-(स०)-गुणों को जाननेवाला, गुणों को पहचानने वाला, गुणों का आदर करनेवाला।
गुणद-(स०)-गुण देनेवाला, गुणकारी, लाभकर।
गुणातीत-(सं०) सत्व, रज और तम गुणों से परे, निर्गुण। यह शब्द भगवान के लिए प्रयुक्त होता है।
गुथय-(स० गुत्सन)-पिरोये, गुँथे हुए। उ० महत सश्लोक विनोकि बधु मुख मधुप प्रीति गुथये हैं। (गी० ६।१२)
गुदरत-(फा० गुज़र)-१ अलग करना, छोड़ना, अलग करता है, २ निवेदन करना, हाल कहना, निवेदन करता है। उ० १ मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई। (मा० २।२४०।३) गुदारे-१ निवेदन कर, कहकर, २ अलग कर, टालकर। उ० १ चीन्हों चोर जिय मारिहै तुलसी सो कथा सुनि, प्रभु सों गुदरि निबर्यो हौं। (वि०२६६)
गुदारा-(फा० गुज़ारा)-नाव पर नदी पार करने की क्रिया, उतारा। उ० २ भा मिनुसार गुदारा लागा। (मा० २।२०२।४)
गुन-दे० 'गुण'। उ० ६ पुनि नवरेब कवित गुन जाती। (मा०१।३७।४) १२ देत एक गुन लेत कोटिगुन भरिसो। (वि० २६४) गुनउ (१)-गुण भी। उ० गुनउ बहुत कलि जुग कर बिनु प्रयास निस्तार। (मा०७।१०२ ख) गुनद-दे० 'गुणद'। उ० स्याम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहिं सब पान। (मा० १।१० ख०) गुनान-गुन का बहुवचन, गुणों। उ० भवपथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुननि भरे। (मा० ७।१३। छं०२) गुन वर्जित-निर्गुण, गुणरहित। उ० कुजन पाल गुन-वर्जित, अकुल, अनाथ। (ब० ३५) गुनहिं (१)-१ गुण को, २ गुण में। उ० २ तब तजि दोष गुनहिं मनु राता। (मा० १।७।१) गुनानी-(स० गुण+अणी)-गुणों के समूह। उ० राम अनंत अनंत गुनानी। (मा० ७।५२।२)
गुनइ-(स० गुणन) विचार करता है, सोच रहा है। उ० अस मन गुनइ राउ नहिं बोला। (मा०२।४५।२) गुनउँ-विचारता विचारता हूँ। सोचता था। उ० समझउँ सुनउँ गुनउँ नहिं भावा। (मा० ७।११०।३) गुनऊँ-विचारता, सोचता था। उ० एहि विधि अमिति जुगुति मन गुनऊँ। (मा०७।११२।६) गुनत-१ सोचते हुए, सोचते, २ विचार करता है। उ० १ असमन गुनत चले मग जाता। (मा० २।२३४।२) गुनहिं (२)-सोचते हैं। गुनहु (१)-(स० गुण) विचारो, समझो, समझ लेना, सोच लेना। गुनहू (२)-दे० 'गुनहु (१)'। उ० ध्यान भाँति जियँ जनि कछु गुनहू। (मा० २।६१।१) गुनि-विचार कर, समझकर, सोचकर। उ० धरिअ नाम जो मुनि गुनि राखा। (मा० १।१६७।२) गुनिअ-१ गुनो, विचारो, २ विचारने में। उ० १ देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। (मा०२।६२।४) गुनिए-सोचिए, विचारिए। उ० मेरे जान और कछु न मन गुनिए। (कृ० ३७) गुनिय-१ विचारिए, २ विचारना चाहिए, ३ विचारता हूँ, विचारा। उ० ३ सुनिय, गुनिय, समुझिय, समुझाइय दसा हृदय नहिं आवै। (वि० ११६) गुनु-समझ लो, विचार लो। उ० उगुन पूगुन वि अज कृ म, आ म स भू गुनु साथ। (दो० ४४७)
गुनग्य-दे० 'गुणज्ञ'। उ० सोइ गुनग्य सोई बड़ भागी। (मा० ४।२३।४)
गुननिधि-(स० गुणनिधि)-१ गुणों का घर, २ एक ब्राह्मण का नाम, जिसने शिवरात्रि के दिन दर्शन के बहाने शिव मंदिर में जाकर शृंगार के आभूषण चुराए और भाग निकला। पुजारियों ने उसका पीछा किया और पकड़कर इतना मारा कि वह मर गया। शंकर ने दया करके यह समझकर कि उसने अपने प्राण मुझको अर्पित कर दिए, उसे यम-यातना से मुक्त करके कैलाश पर स्थान दिया। उ० २ कवनि भगति कीन्हीं गुननिधि द्विज। (वि० ७)
गुनवंत-गुणवाला, गुणी। उ० कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना। (मा० ७।६८।३)
गुनवंता-दे० 'गुनवंत'। उ० धरमसील ग्यानी गुनवंता। (मा० १।२१२।३)
गुनह-(फा० गुनाह)-अपराध, पाप, कुसूर, दोष। उ० गुनह लखन कर हम पर रोषू। (मा० १।२८१।३) गुनहु (२)-गुनाह भी, दोष भी। गुनहू (२)-दे० 'गुनहु' (२)'।

गुनातीत–दे० 'गुणातीत' । उ० गुनातीत सचराचर स्वामी। (मा० ३।३६।१)

गुनानि–दे० 'गुनानी' ।

गुनित–गुना, गुणित । उ० गृह तें कोटि-गुनित सुख मारग चलत, साथ सचु पायोंगी । (गी० २।६)

गुनिन्ह–गुणियों से । उ० पूँछेहु गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची । (मा० २।२१।४) गुनिहि–गुणी को, गुणवान को । उ० गनिहि गुनिहि साहिब लहै सेवा समीचीन को । (वि० २७४) गुनी–गुणी, गुणवाला, कारीगर । उ० पठए बोलि गुनी तिन्ह नाना । (मा० १।२८७।४)

गुपुत–दे० 'गुप्त' । उ० १ तातें गुपुत रहउँ जग माहीं । (मा० १।१६२।१)

गुप्त–(सं०)–१ छिपा हुआ, पोशीदा, २ रक्षित, ३ गूढ़ । उ० १ गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सबु कोइ । (मा० १।४८ क)

गुमान–(फा०)–१ अनुमान, अंदाज़, कयास, विचार, २ गर्व, घमंड, अहंकार, ३ संदेह । उ० २ तादि मोह माया नर पावँर करहि गुमान । (मा० ७।६२ क)

गुमानी–(फा० गुमान)–घमंडी, गर्व करनेवाला । उ० सुंदर मान प्रिय ग्यान गुमानी । (मा० २।१७२।३)

गुमानु–दे० 'गुमान' । उ० २ कलपांत न नास गुमानु असा । (मा० ७।१०२।३)

गुर–(सं० गुरु)–१ गुरु, आचार्य, २ मूल मंत्र, वह साधन जिससे कार्य शीघ्र सिद्ध हो जाय । उ० १ धाइ धरे गुर चरन सरोरुह । (मा० ७।५।२) गुरहि–गुरु को । उ० तुम्ह तें अधिक गुरहि जियँ जानी । (मा० २।१२६।४)

गुरु–(सं०)–गुरु को । उ० वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रूपिणम् । (मा० १।१। श्लो० ३) गुरु–(सं०)–१ गुरु, आचार्य, विद्या सिखानेवाला, उस्ताद, २ देवताओं के गुरु बृहस्पति, ३ अपने से बड़े, पिता आदि, ४ बड़ा भारी, वजनी, ५ गरिष्ठ, जो खाने पर शीघ्र न पचे, ६ ब्रह्मा, ७ विष्णु, ८ महेश । उ० १ बंदउँ गुरु पद कंज कृपासिंधु नररूप हरि । (मा० १।१। सो० ५) ३ हरगिरि तें गुरु सेवक धरमू । (मा० २।२५३।२) गुरुहिं–गुरु को । गुरुहि–गुरु को । गुरुआ–(सं० गुरु) गुरु का हीनता द्योतक रूप, बुरे गुरु, अयोग्य और लोभी आचार्य । उ० ते तुलसी गुरुआ बनहिं कहि इतिहास पुरान । (स० ३६४)

गुरुता–१ भारीपन, गुरुत्व, २ बड़प्पन । उ० १ कहहु चाप गुरुता अति थोरी । (मा० १।२५७।४)

गुरुमुख–दीक्षित, जिसने गुरु से मंत्र लिया हो ।

गुरुविनी–(सं० गुर्विणी)–गर्भवती, सगर्भा । उ० गुरुविनी सुकुमारि सिय तियमनि समुझि सकुचाहि । (गी० ७।२६)

गुरू–दे० 'गुरु' । उ० १ कोटि कुलिस सम गुरू पढ़ाई । (मा० २।२०।३)

गुर्वि–(सं० गुर्वी)–१ गर्भवती, २ बड़ी, महान, भारी, उत्तम, ३ श्रेष्ठ स्त्री । उ० ३ निगम आगम अगम, गुर्वि तव गुन कथन उर्विधर करत सहस जीहा । (वि० १५)

गुर्विणी–(सं०)–गर्भवती, सगर्भा ।

गुर्वी–दे० 'गुर्वि' । उ० २ पारिधर-वपुषधर भक्त-निस्तार पर, धरनि कृत नाव महिमाति गुर्वी । (वि० ५२)

गुल (१)–(फा०)–१ गुलाब का फूल, २ फूल, पुष्प ।

गुल (२)–(फा० गुल)–शोर, हल्ला ।

गुलाम–(अर०)–मोल लिया हुआ दास, नौकर, दास, सेवक । उ० सुभाय समुझत मन मुदित गुलाम का । (क० ७।१४) गुलामनि–गुलाम का बहुवचन, गुलामों, सेवकों । उ० कामरिपु राम के गुलामनि को कामतरु । (क० ७।१६७)

गुलुफ–(सं० गुल्फ)–एड़ी के ऊपर की गाँठ । उ० चारु पीठ उन्नत नत-पालक, गूढ़ गुलुफ, जंघा कदली जति । (गी० ७।१७)

गुल्म–(सं०)–१ ऐसा पौधा जो जड़ से कई होकर निकले, २ सेना का एक समुदाय जिसमें ९ हाथी, ९ रथ, २७ घोड़े और ४५ पैदल होते हैं । ३. पेट का एक रोग ।

गुसाँई–(सं० गोस्वामी)–१ जितेन्द्रिय, सन्यासी, बहुत बड़ा साधु, २ स्वामी, मालिक, ३ प्रभु, ईश्वर, ४ श्रेष्ठ, बड़ा, ५ गौओं का स्वामी ।

गुहँ–गुह ने, निषाद ने । उ० यह सुधि गुहँ निषाद जब पाई । (मा० २।८८।१) गुह–(सं०)–१ कार्तिकेय, २ घोड़ा, ३ निषाद जाति का एक नायक जो शृंगवेरपुर में रहता था और राम का भक्त था । ४ भील, ५ मल्लाह, माँझी । गुहहि–गुह को, निषाद को । उ० भरत चापु नहिं उचित सुनि गुहहि भयउ दुखु भारु । (मा० २।८८)

गुहा (१)–(सं०)–गुफा, कंदरा । उ० हिम गिरि गुहा एक अति पावनि । (मा० १।१२५।१)

गुहा (२)–(सं० गुह)–निषाद, मल्लाह, केवट । उ० सुनत गुहा धायउ प्रेमाकुल । (मा० ६।१२१।५)

गुहारी–दे० 'गोहारी' ।

गुहिबे–(सं० गुफन)–गूथने, एक में पिरोने । उ० तेहि अनुराग ताग गुहिबे कहँ मति मृगनयनि बुलावौं । (गी० १।१५) गुहौं–गूथूँ, बनाऊँ, पिरोऊँ । उ० उबटौं न्हाहु गुहौं चोटिया, बलि, देखि भलो बर करिहि बड़ाई । (कृ० १६)

गूँगेहि–(फा० गुग)–गूँगे पर, न बोलनेवाले पर । उ० भा जनु गूँगेहि गिरा प्रसादू । (मा० २।१०७।२)

गूँजहिं–(सं० गुंजन)–गुंजार करते हैं, मधुर ध्वनि करते हैं ।

गूढ़–(सं० गूढ़)–गुप्त, छिपा हुआ, रहस्ययुक्त, जटिल, अबोधगम्य । उ० गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि तीय अधर बुधि रानि । (मा० २।१६) गूढ़उ–गूढ़ भी, रहस्यमय भी । उ० गूढ़उ तत्त्व न साधु दुरावहिं । (मा० १।११०।१)

गूढ़ा–दे० 'गूढ़' । उ० कहहु पुनीत राम गुन गूढ़ा । (मा० १।१०७।२)

गूदा–(सं० गुप्त)–१ किसी चीज का सार भाग जो छिलके या ऊपरी आवरण के भीतर रहता है । २ भेजा, मग्ज, खोपड़ी का सार भाग । उ० २ सोनित सों सानि सानि गूदा खात सतुआ से । (क० ६।५०)

गून–(सं० गुण)–१ गुण, हुनर, २ गुना, गुणा, जैसे दुगुना, चौगुना आदि । उ० २ अंक रहित कछु हाथ नहिं, एक सहित दस गून । (स० १३४)

गूलर–(उदुम्बर)–वट-पीपल वर्ग का एक पेड़ जिसमें गोल गोल फल लगते हैं । पकने पर फल लाल और सुंदर होते

हैं, पर भीतर फोड़ने पर बहुत से कीड़े निकलते हैं। इन कीड़ों का संसार यह गूलर का फल ही होता है। इसी लिए बाहरी बातों को न जाननेवाले को 'गूलर का कीट' कहा जाता है।

गूलरि-दे० 'गूलर'। उ० गूलरि फल समान तव लंका। (मा० ६।३४।२)

गृध्र-(सं०)-१ गिद्ध, गीध, चील से बड़ा एक पक्षी, २ जटायु। उ० २ गृध्र-शबरी-भक्ति-विवश करुणासिंधु। (वि० ४३) गृध्रराज-गिद्धों में श्रेष्ठ अर्थात् जटायु।

गृह-(सं०)-१ घर, मंदिर, मकान, २ वंश, कुटुंब। उ० १ गौतम सिधारे गृह गौनो सो लिवाइ कै। (क० २।६)

गृहप-(सं०)-१ घर का मालिक, २ चौकीदार, घर का रक्षक। गृहपशु-दे० 'गृहपसु'। गृहपसु-(सं० गृहपशु)-घर का जानवर, कुत्ता। उ० लोलुप भ्रम गृहपसु ज्यों जहँ तहँ सिर पदत्रान बजै। (वि० ८६)

गृहपाल-(सं०)-१ घर का रक्षक, चौकीदार, २ कुत्ता। उ० १ या २ गृहपाल हु तें अति निरादर, खान पान न पावई। (वि० १२६)

गृहस्थ-(सं०)-१ ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त कर, विवाह करके घर में रहनेवाला व्यक्ति घरवाला, बाल बच्चावाला आदमी, २ वह जिसके यहाँ खेती आदि होती हो।

गृहस्वामिनि-(सं० गृहस्वामिनी)-घर की मालकिन, स्त्री, घरनी। उ० सादर सासु चरन सेवहु नित जो तुम्हरे अति हित गृहस्वामिनि। (गी० २।५)

गृही-(सं० गृहिन्)-गृहस्थ, गृहस्वामी, घरवाला, बाल बच्चों वाला। उ० गृही विरति रत हरष जस विष्नु भगत कहुँ देखि। (मा० ४।१३)

गेंडुआ-(सं० गंडुक)-तकिया, सिरहाना। उ० करत गगन को गडुआ सो सठ तुलसीदास। (दो० ४६१)

गे-(सं० गम्)-१ गए, गमन किए, २ नष्ट हुए। उ० १ सुर मुनि गंधर्वा मिलि करि सर्वा गे बिरंचि के लोका। (मा० १।१८४।छं० १) गेते-गए थे, गए रहे। उ० तिन्ह के काज साधु-समाज तजि कृपासिंधु तब तब उठि गेते। (वि० २४२) गै-गई, जाती रही, नष्ट हो गई। उ० गै श्रम सकल सुखी नृप भयऊ। (मा० १।१५६।१) गो (१)-(सं० गम्)-१ गया, चला गया २ नष्ट हो गया। उ० १ उचकि उचकि चारि अगुल अचलु गो। (क० ४।१)

गेरु-(सं० गवेरुक)-एक प्रकार की लाल मिट्टी। उ० मानहुँ गिरिन गेरु झरना झरत हैं। (क० ६।४६)

गेरू-दे० 'गेरु'।

गेहँ-गेह को, गेह में। दे० 'गेह'। उ० साँझ समय सानंद नृपु गयउ कैकई गेहँ। (मा० २।२४) गेह-(सं० गृह)-घर, मकान धाम, महल। उ० देह गेह सब सन तृनु तोरें। (मा० २।७०।३)

गेहनी-दे० 'गेहिनी'।

गेहा-दे० 'गेह'। उ० जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा। (मा० १।६२।१)

गेहिनी-गृहिणी, पत्नी, स्त्री। उ० ज्ञान अवधेय, गृह-गेहिनी भक्ति सुभ, तत्र अवतार भूभार हर्ता। (वि० ५८)

गेहु-दे० 'गेह'। उ० बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु। (मा० २।१३१)

गेहू-दे० 'गेह'। उ० भयउ पुनीत आजु यहु गेहू। (मा० २।६।४)

गैन-(अर० ग़ैन)-अरबी, फारसी तथा उर्दू का एक अक्षर (غ)। उ० बिन्दु गए जिमि गैन तें रहत ऐन को ऐन। (स० ३१२)

गैहहिं-(सं० गान)-गावेंगे। उ० तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं। (मा० २।१६।३) गैहैं-गावेंगे। उ० प्रेम पुलकि आनंद मुदित मन तुलसिदास कल कीरति गैहैं। (गी० २।२१) गैहै-गावेगा। उ० तुलसिदास पावन जस गैहै। (गी० २।२०) गैहौं-गाऊँगा, बखान करूँगा। उ० स्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गैहौं। (वि० १०४)

गोंड़-(सं० गोण्ड)-१ एक जंगली जाति, २ एक राग। उ० १ गोंड़ गँवार नृपाल महि, यमन महा-महिपाल। (दो० ५५६)

गो (२)-(सं०)-१ गाय, २ किरण, ३ वृषराशि, ४ इंद्रिय, ५ बोलने की शक्ति, वाणी, ६ सरस्वती, ७ आँख, दृष्टि, ८ बिजली, ९ पृथ्वी, १० दिशा, ११ माता, जननी, १२ दूध देनेवाले पशु। बकरी, भैंस आदि, १३ जीभ, १४ बैल, १५ घोड़ा, १६ सूर्य, १७ चंद्रमा, १८ बाण, १९ गवैया, २० प्रशंसक, २१ आकाश, २२ स्वर्ग, २३ जल, २४ वज्र, २५ शब्द, २६ नौ का अंक, २७ शरीर के रोम। उ० १ सँग गोतनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका। (मा० १।१८४। छं० १) ६ गोखग खेचर बारिखग तीनों माहिं बिसेक। (दो० ५३८)

गो (३)-(फा०)-१ यद्यपि, २ कहनेवाला।

गोइ-(सं० गोपन)-१ छिपाकर, २ छिपा हुआ, गुप्त, ३ छिपा छिपा, छिपाया। उ० २ नाथ जथामति भाषेउँ राखेउँ नहिं कछु गोइ। (मा० ७।१२३ ख) गोइहहिं-छिपावेंगे। उ० निरखि नगर नर नारि बिहँसि मुख गोइहहिं। (पा० ६७) गोई-दे० 'गोइ'। उ० ३ पुंछि पीर बिहसि तेहि गोई। (मा० २।२७।३) गोऊ-छिपायो, छिपाइए। उ० छपन ज्यों सनेह सो हिए-सुगेह गोऊ। (गी० २।१६) गोए-१ छिपाए, छिपाए हुए, २ छिपे रहते हैं, ३ छिपाने से। उ० २ जे हर हृदय कमल महुँ गोए। (मा० १।३२८। ३) गोवति-(सं० गोपन)-छिपाती है। उ० सकुचि गात गोवति कमठी ज्यों हहरी हृदय, बिकल बड़ भारी। (कृ० ६०) गोये-(सं० गोपन) छिपाए। गोयो-छिपाया, दुराया। उ० तुलसिदास प्रभु कृपा करहु अब मैं निज दोष कछु नहिं गोयो। (वि० २४५)

गोइयाँ-(सं० गोपन)-साथ गाय चरानेवाले, साथ खेलने वाले, साथी, सहचर। उ० नरझौरी सम सुखद भूमि थल, गनि गनि गोइयाँ बाँटि लये। (गी० १।४५)

गोकुल-(सं०)-१ गौओं का झुंड, २ गोशाला, गौओं के रहने की जगह, ३ मथुरा के पूर्व दक्षिण एक प्राचीन गाँव

०जहाँ कृष्ण ने अपनी बाल्यावस्था बिताई थी। उ० २ गोकुल प्रीति नित नइ जानि। (कृ० ४२)

गोखुर-(स०)-१ गाय के पैर का नाखून, २ गाय के खुर का ज़मीन पर बना हुआ निशान। गोखुरनि-गायों के खुर के चिह्नों में, खुर के बने चिह्न में भरे हुए जल में। उ० कुंभज के किंकर बिकल बूड़े गोखुरनि। (क० ३८)

गोघात-गोहत्या, गाय मारना। उ० होइ पाप गोघात समाना। (मा० ६।३२।१)

गोचर-(स०)-१ गौओं के चरने का स्थान, चरागाह, २ वह विषय जिसका ज्ञान इंद्रियों द्वारा हो सके, इंद्रियों का विषय। उ० २ गो गोचर जहँ लगि मन जाई। (मा० ३।१५।२)

गोठ-(स० गोष्ठ)-गायों के रहने का स्थान, गोशाला। उ० गाइ गोठ महिसुर पुर जारे। (मा० २।१६७।३)

गोड़-(स० गम्)-पैर, पाँव, टाँग। उ० माँगि मधुकरी खात ते, सोवत गोड़ पसारि। (दो० ४६४) गोड़नि-पैरों। चरणों। उ० कमठ की पीठि जाके गोड़नि की गाड़ै मानो। (क० ७) मु० गोड़ पसारि-निश्चिंत होकर। उ० दे० 'गोड़'। गोड़ की किए-दूध दूहते समय गाय के पैर बाँधने से। उ० हाथ कछू नहिं लागिहै किए गोड़ की गाइ। (दो० २१२)

गोड़ियाँ-गोड़ का छोटा रूप, छोटे पैर, छोटी टाँगे। उ० छोटी-छोटी गोड़ियाँ अँगुरियाँ छबीली छोटी। (गी० १।३०)

गोड़िये-कोड़िए, मिट्टी को उकटिए, पेड़ की सेवा कीजिए। उ० तुलसी बिहाइ कै बबूर रेंड गोड़िये। (क० ७।२४)

गोत-दे० 'गोत्र'। उ० साह ही को गोत गोत होत है गुलाम को। (क० ७।१०७)

गोतीत-दे० 'गोतीत'। उ० अबिगत गोतीत चरित पुनीत माया रहित मुकुंदा। (मा० १।१८६।छं० ३) गोतीत-(स०)-इंद्रियों से परे, अगोचर, जो इंद्रियों से न जाना जा सके। उ० सुख संदोह मोह पर ग्यान गिरा गोतीत। (मा० १।१९९)

गोता-(अर० गोत)-पानी में डूबने की क्रिया, डुबकी। उ० ज्यों मुदमय बसि मीन बारि तजि उछरि भभरि लेत गोतो। (वि० १६१)

गोत्र-(स०)-कुल, वंश, खानदान, एक प्रकार का जाति विभाग।

गोद-(स० क्रोड)-वह स्थान जो वक्षस्थल के पास एक या दोनों हाथों का घेरा बनाने से बनता है। उत्संग, कोरा, कोली। उ० गोद राखि पुनि हृदयँ लगाए। (मा० २।२२।२)

गोदहिं-गोदावरी नदी को। उ० पंचवटी गोदहिं प्रनाम करि कुटी दाहिनी लाई। (गी० ३।११)

गोदावरि-दे० 'गोदावरी'। उ० मकल सुभग गोदावरि धन्या। (मा० २।१३८।२)

गोदावरी-(स०)-दक्षिण भारत की एक नदी विशेष। यह पवित्र मानी जाती है।

गोप-(सं०)-गायों की रक्षा करनेवाला, ग्वाला, अहीर, ब्रज के अहीर। उ० तौ पन मुर मुनिवर बिहाय ब्रज गोप गेह बसि रहते। (वि० ९७) गोपहिं (१)-गाय को, ग्वाले को।

गोपद-(स० गोष्पद) १ गौओं के रहने का स्थान, २ पृथ्वी पर बना गाय के खुर का चिह्न जिसमें पानी भर जाता है। उ० २ भवबारिधि गोपद इव तरहीं। (मा० १।११६।२)

गोपनीय-(स०)-छिपाने योग्य, गोप्य।

गोपर-इंद्रियों से परे। उ० गोबिंद गोपर द्वंद्वहर बिग्यानघन धरनीधर। (मा० ३।३२।छं० १)

गोपहिं (२)-(स० गोपन)-छिपाते हैं, छिपाते थे। उ० प्रेम प्रमोद परसपर प्रगटत गोपहिं। (जा० ६१) गोपि (१)-छिपाकर, दुरा कर, ओट करके।

गोपार-इंद्रियों से परे, गोपर। उ० ज्ञान-गिरा-गोतीत, अज, माया-गुन-गोपार। (दो० ११४)

गोपाल-(स०)-१ गो का पालन करनेवाला, अहीर, २ कृष्ण, ३ इंद्रियों का पालनेवाला, मन।

गोपि (२)-(स० गोपी)-ग्वालिन, ब्रज के अहीरों की स्त्रियाँ गोपिका।

गोपिका-(स०)-गोप की स्त्री, गोपी। उ० पद्मसुत गोपिका, बिदुर, कुबरी सबहिं सोच किए सुद्धता केसी? (वि० १०६)

गोपित-(स०)-छिपा हुआ, गुप्त। उ० जयति पाकारि सुत काक-करतूति-फलदानि, खनि गर्त्त गोपित बिराध। (वि० ४३)

गोपी-(स०)-गोप की स्त्री, गोपिका, अहिरिन, ग्वालिन। उ० सीत-समीत पुकारत आरत गो गोसुत गोपी ग्वाल। (कृ० १८)

गोप्य-(स०)-छिपाने योग्य, गोपनीय, रक्षणीय। गोप्यम्-दे० 'गोप्य'। उ० पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास। (मा० ७।६९ क)

गोबिंद-(स० गोपेन्द्र)-१ कृष्ण, २ परमब्रह्म, परमेश्वर, ३ वेदान्तवेत्ता, ४ इंद्रियों का नियमन करनेवाला, इंद्रियों का ज्ञाता, ५ वेदों द्वारा जानने योग्य। उ० ४ गोबिंद गोपर द्वंद्वहर बिग्यानघन धरनीधरं। (मा० ३।३२। छं० १)

गोमती-गोमती नदी में। उ० गईं उतरि गोमतीं नहाए। (मा० २।३२२।३) गोमती-(स०)-एक नदी, जो पीलीभीत के निकट एक पहाड़ी झील से निकलकर गाज़ीपुर ज़िले में गंगा में मिलती है।

गोमर-गाय को मारनेवाला, कसाई। उ० गोमर-कर सुरधेनु, नाथ! ज्यौं-त्यौं पर-हाथ परी हौं। (गी० ३।७)

गोमाय-दे० 'गोमायु'। उ० गोमाय गीध कराल खर रव स्वान बोलहिं अति घने। (मा० ३।२०।छं० १)

गोमायु-(स०)-गीदड़, सियार, शृगाल।

गोमुख-(स०)-१ गाय का मुख, २ सीधा, दीन मुख वाला। गोमुख नाहर-व्याघ-रूप से गाय की तरह सीधा, पर वास्तव में व्याघ्र की तरह क्रूर। उ० देखिये हनुमान गोमुख-नाहरनि के न्याय। (वि० २२०)

गोर-(स० गौर)-गोरा, उज्ज्वल वर्ण का, सफ़ेद। उ० काहे रामजिउ साँवर, लछिमन गोर हो। (रा० १२)

गोरख-(सं० गोरक्ष)-गोरखनाथ, एक प्रसिद्ध सिद्ध जो १२ वीं शताब्दी में हुए थे। इनका चलाया गोरख

अब तक जारी है। उ० गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग। (क० ७८४)
गोरस-((स०)-१ दूध, २ इन्द्रियों का रस या सुख। उ० १ गोरस-हानि सहौं न कहौं कछु यहि मजबास बसेरे। (कृ० ३)
गोरी-(स० गौरी)-गोरे वर्ण की सुन्दर स्त्री, सुन्दरी। उ० साँवरो किसोर, गोरी सोभा पर तृण तोरि। (क० १।१४)
गोरे-दे० 'गोर'। उ० सहज सुभाय सुभग तन गोरे। (मा० २।११७।३)
गोरो-दे० 'गोर'। उ० गोरो गरुर गुमान भरो कहौ कौसिक छोटो सो ढोटो है काको। (क० १।२०)
गोरोचन-(स०)-पीले रङ्ग का एक प्रकार का सुगंधित द्रव्य जो गौ के हृदय के पास उसके पित्त से निकलता है। यह बहुत पवित्र माना जाता है, और इसका तिलक आदि दिया जाता है। उ० आजत भाल तिलक गोरोचन। (मा० ७।७७।३)
गोलक-(स०)-आँख का ढेला, पलक से ढकनेवाले आँख के सफेद और काले भाग। उ० पलक बिलोचन गोलक जैसें। (मा० २।१४२।२)
गोला-(स० गोल)-१ जिसका घेरा या परिधि वृत्ताकार हो, २ तोप आदि में भरा जानेवाला गोला जिससे शत्रुओं को मारते हैं। उ० २ डाहे महीधर सिखर कोटिन्ह बिबिध बिधि गोला चले। (मा० ६।४१। छं० १)
गोली-१ किसी चीज़ का छोटा गोलाकार पिंड, २ दवा की बटी, ३ मिट्टी, काँच आदि के छोटे गोले जिसे लड़के खेलते हैं, ४ सीसे आदि का गोल या लंबा पिंड जो बंदूक में भरकर मारा जाता है। उ० ३ खेलत अवध खोरि, गोली भौंरा चक डोरि। (गी० १।४१)
गोठ-(स०)-गोशाला, गाय का बाड़ा।
गोसाँइहि-गोस्वामी के, प्रभु के। उ० स्वामि गोसाँइहि सरिस गोसाँई। (मा० २।२९८।२) गोसाँई-दे० 'गुसाँई'। उ० २ बिहसि कहा रघुनाथ गोसाँई। (मा० ६।१०८।६)
गोस्वामी-(स०)-१ इन्द्रियों को वश में करनेवाला, जितेन्द्रिय, २ वैष्णव सम्प्रदाय में आचार्यों के वंशधर या उनकी गद्दी के अधिकारी, ३ गुरु, ४ ईश्वर, ५ राजा।
गोहार-(स० गो+हरण)-१ पुकार, दुहाई, २ हल्ला गुल्ला, शोर, ३ वह भीड़ जो रक्षा के लिए पुकार सुनकर इकट्ठी हुई हो।
गोहारी-१ सहायक, रक्षक, २ पुकार, ३ पुकारा, ४ शोर। उ० १ बिबुध धारि भए गुनद गोहारी। (मा० २।३१७।२)
गौं-दे० 'गवँ'। उ० ३ कहा कुंदन, चौतनी चारु अति, चलत मत्त-गज-गौं हैं। (गी० १।६१) ४ स्याम सो गाहक पाइ सयानी खोलि देखाई है गौं हीं। (कृ० ४१)
गौंड-दे० 'गाड़'। उ० २ मृन्हि कुजातहि बोसरि-इ गायँ सुदो गौंड-मजार। (गी० ७।१८)
गौ-(स० गो)-गऊ, गाय।
गौतम-(स०)-एक ऋषि जिन्होंने अपनी स्त्री अहल्या को इन्द्र के साथ अनुचित संबंध करने के कारण शाप देकर पत्थर बना दिया था। दे० 'अहल्या'। गौतमतिय-गौतम की स्त्री अहल्या। उ० गौतमतिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि। (मा० १।२६५) गौतमनारि-गौतम की स्त्री अहल्या। उ० गौतमनारि श्राप बस उपलदेह धरि धीर। (मा० १।२१०) गौतमनारी-दे० 'गौतम नारि'।
गौन (१)-(स० गौण)-१ अप्रधान, जो प्रमुख न हो, २ अधीन, ३ कम, घटी हुई। उ० ३ तुलसिदास प्रभु ! दसा सीय की मुख करि कहत होति अति गौन। (गी० ५।२०)
गौन (२)-(स० गमन)-१ गमन करना, जाना, २ गौना, पत्नी का विवाह के बाद प्रथम बार पति के घर जाना, ३ गति।
गौनु-दे० 'गौन (२)'। उ० १ भरतहि बिसरेउ पितुमरन सुनत राम बन गौनु। (मा० २।१६०)
गौने-(स० गमन)-१ गए, चले, चले गए, २ गौना, ब्याह के बाद स्त्री का पति के घर जाना। उ० १ गौने मौन ही बारहि बार परि-परि पाय। (गी० ७।३१)
गौर-गोरा, गौर वर्ण। उ० तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं। (मा० ७।१०८। छं० ३) गौर (१)-(स०)-१ गोरा, साफ चमड़े का, २ श्वेत, उज्ज्वल, ३ लाल रङ्ग, ४ पीला, ५ चद्रमा, ६ कैलास के उत्तर में स्थित एक पर्वत। उ० १ कर्पूर गौरं, करुना उदारं। (वि० १२)
गौर (२)-(अर० गौर)-सोच विचार, चिंतन, ख्याल।
गौरव-(स०)-१ बड़प्पन, महत्व, २ गुरुता, भारीपन, ३ सम्मान, आदर, ४ उन्नति, बढ़ती, उ० १ राम देहु गौरव गिरिवरहू। (मा० २।१३२।४)
गौरा-(स० गौर)-१ पार्वती, गौरी, २ गोरे रङ्ग की स्त्री।
गौरानाथ-पार्वती के पति, शंकर।
गौरि-(स० गौरी)-पार्वती, शंकर की स्त्री। उ० सपनेहुँ साचेहुँ मोहि पर जौं हर गौरि पसाउ। (मा० १।१५)
गौरी-(स०)-१ पार्वती, २ गोरे रङ्ग की स्त्री। उ० १ सेये न दिगीस, न दिनेस, न गनेस गौरी। (वि० २५०)
गौरीनाथ-शिव, शंकर।
गौरीश-(स०)-पार्वती के पति, महादेव, शंकर।
गौरीस-दे० 'गौरीश'। उ० सिंधुसुत-गर्व गिरि-बज्र, गौरीस, भव, दच्छमख-अखिल विध्वंसकर्ता। (वि० ४९)
गौरीसा-दे० 'गौरीश'। उ० गुरुहि प्रान सम प्रिय गौरीसा। (मा० १।१०४।२)
गौरोचन-दे० 'गोरोचन'।
ग्याता-(स० ज्ञातृ)-जाननेवाला, ज्ञानी। उ० सुरह पवित परमारथ ग्याता। (मा० २।१४३।१)
ग्याति-(स० ज्ञाति)-भाइ-बंधु। सगोत्रीय, जाति या कुटुंब के लोग। उ० अस बिचारि गुहँ ग्याति सन कहेउ सजग सब होहु। (मा० १।१८९)
ग्यान-(सं० ज्ञान)-१ बोध, जानकारी, प्रतीति, २ आत्मज्ञान, तत्वज्ञान, ३ पहिचान। उ० २ प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन। (मा० १।१७) ग्यानहि-ज्ञान में, तत्वज्ञान में। उ० ग्यानहि भगतिहि अंतर कता। (मा० ७।११५।६)
ग्यानवंत-ज्ञानवान, ज्ञानवाला। उ० ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ बिषान। (मा० ७।७८ क)

ग्याना-दे० 'ग्यान'। उ० १ सबोध जन्म सिरिहि नहिं ग्याना। (मा० ७।१०३।४)
ग्यानातीत-(सं० ज्ञानातीत)-ज्ञान से परे, जो ज्ञान द्वारा न जाना जा सके। उ० माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता। (मा० १।१९२। छं० २)
ग्यानिन्ह-ज्ञानियों, ज्ञानी का बहुवचन। उ० जो ग्यानिन्ह कर चित अपहरई। (मा० ७।२४।३) ग्यानिहु-ग्यानी भी। उ० ग्यानिहु ते अति प्रिय बिग्यानी। (मा० ७।८६।३)
ग्यानी-(सं० ज्ञानी)-ज्ञानवाले, बुद्धिमान। उ० कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी। (मा० १।३३।२)
ग्यानु-दे० 'ग्यान'। उ० अचला बिबस ग्यानु गुन गा जनु। (मा० २।४८।२)
ग्रंथ-(सं०)-पुस्तक, किताब। उ० सदग्रंथ पर्वत कंदरन्हि महुँ जाइ तेहिं अवसर दुरे। (मा० १।८४। छं० १)
ग्रंथन्हि-ग्रंथ का बहुवचन, ग्रंथों, पुस्तकों। उ० सृष्टि हेतु सब ग्रंथन्हि गाए। (मा० २।२४।२)
ग्रंथि-(सं०)-१ गाँठ, दो रस्सी या किसी चीज का आपस में उलझ जाना। २ बंधन, माया, जाल, ३ विवाह की एक रीति, गठबंधन, जिसमें पति का दुपट्टा और पत्नी का अंचल बाँध दिया जाता है। उ० १ जब चेतनहि ग्रंथि परि गई। (मा० ७।११७।२) ३ बंधन, यदि ग्रंथिबिधि करि धुव देखेउ। (पा० १४६)
ग्रंथित-(सं० ग्रथन)-१ गूँथा हुआ, पिरोया हुआ, २ गाँठ दिया हुआ, जिसमें गाँठ लगी हो।
ग्रथित-दे० 'ग्रंथित'। उ० २ मगलमय दोउ, अंग मनोहर ग्रथित चूनरी पीत पिछोरी। (गी० १।१०३)
ग्रसइ-(सं० ग्रसन)-१ ग्रसता है, पकड़ता है, २ पकड़े, ग्रसे। उ० १ वक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू। (मा० १। २८१।३) ग्रसत-पकड़ता है, ग्रसता है, निगलता है। उ० जब लगि ग्रसत न तब लगि जतनु करहु तजि टेक। (मा० २।२६) ग्रससि-१ पकड़े, पकड़ ले, २ खाले। उ० २ ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना। (मा० ५।२।६) ग्रसि-१ पकड़कर, २ खाकर, भक्षणकर। उ० १ जनु घन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू। (मा० १।१२६।२) ग्रसे-१ पकड़े, पकड़ लिए, दबा लिए, २ पकड़े हुए, पकड़े हुए। उ० १ कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच। (मा० १।११४) ग्रसेउ-ग्रस लिया, ग्रास कर लिया, जकड़ लिया था। उ० सत्य सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। (मा० ७।९३।२) ग्रसै-पकड़े, जकड़े, पकड़ लेता है। उ० चदनहीन सो ग्रसै चराचर पान करत जे जाहीं। (वि० १११) ग्रसो-पकड़ लिया। ग्रस्यो-पकड़ लिया, पकड़ा। उ० पसु पाँवर अभिमान-सिंधु गज ग्रस्यो आइ जब ग्राह। (वि० १४४)
ग्रस्त-(सं०)-१ ग्रहण पकड़, २ भक्षण, निगलना, ३ दुःखी देवता से पकड़ना की एठ न सके। ४ एक असुर का नाम। उ० १ ग्रस्त सर्प ग्रसन उरगाद। (मा० ३।११।५)
ग्रसित-पकड़ा हुआ ग्रस्त, फँसा हुआ। उ० तिमि ग्रसुर्मा में जीव सब बसि भव ग्रसित बिमूढ़। (मा० १।३० क)
ग्रस्त-(सं०) १ पकड़ा हुआ, २ पीड़ित, ३ खाया हुआ।
ग्रस्तम्-दे० 'ग्रस्त'। उ० १ सकल सर्प रोष, मोह मद सर्वदा दास तुलसी बिषय गहन-ग्रस्तम्। (वि० ११)
ग्रह-(सं०)-१ सूर्यादि नवग्रह। ये कभी कभी विशेष स्थान पर आकर प्राणियों को कष्ट देते हैं, २. नक्षत्र, तारे, ३ बुरी तरह सतानेवाला, ४ ग्रहण, पकड़, घर, ५ बालकों के एक प्रकार के रोग, ६ ९ की संख्या। उ० १ पूतना पिसाच प्रेत डाकिनि साकिनि समेत, भूत ग्रह बेताल खग मृगालि-जालिका। (वि० १६) विशेष सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु, ये नवग्रह हैं।
ग्रहइ-पकड़ता है, ग्रहण करता है। उ० गुंजा ग्रहइ परम मनि खोई। (मा० ७।४४।२) ग्रहत-पकड़ता है, ग्रहण करता है, खाता है। ग्रहे-१ पकड़े, स्वीकार करे, ले, २ पकड़े हुए लिए हुए, ३. पकड़ता है, ग्रहण करता है।
ग्रहण-(सं०)-दे० 'ग्रहन'।
ग्रहदसा-(सं०ग्रह + दशा)-१ नवग्रहों की स्थिति के अनुसार किसी मनुष्य की भली या बुरी अवस्था, २ अभाग्य, ३ ग्रहों का बुरा होना। उ० ३ जनु ग्रह दसा दुसह दुख दाइ। (मा० २।१२।४)
ग्रहन-(सं० ग्रहण)-१ सूर्य तथा चंद्र का ग्रहण, उनका या उनके किसी भाग का छाया पड़ने से दृष्टि से आच्छन्न होना। २ पकड़ना, पकड़ने की क्रिया, ३ स्वीकार, मंजूर। उ० २ पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा। (मा० १।१०१।२)
ग्रहीत-(सं० गृहीत)-ग्रस्त, पकड़ा हुआ, ग्रहण किया हुआ। उ० ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार। (मा० २।१८०)
ग्राम-(सं०)-१ छोटी बस्ती, गाँव, २ समूह, झुंड। उ० १ गनी गरीब ग्राम नर नागर। (मा० १।२८।२) ग्रामहिं-१ ग्रामों को, २ समूहों को। ग्रामहि-१ ग्राम को, गाँव को, २ समूह को। उ० १ प्रेम समेत गाए गुन ग्रामहि। (मा० ७।१०३।२) ग्रामी-१ गाँव को, २. समूह को। उ० २ जाको जस सुनत, गावत गुन ग्रामी। (गी० ५।२५)
ग्रामा-दे० 'ग्राम'। उ० २ सुनेउँ पुनीत राम गुन ग्रामा। (मा० ७।११२।४)
ग्रामु-दे० 'ग्राम'।
ग्राम्य-(सं०)-१ ग्रामीण, ग्राम का, २ गँवार, मूर्ख, ३ असली, छल कपटरहित, ४ एक काव्य दोष ५ अश्लील शब्द या शब्द, ६ मैथुन। उ० १ गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहिं सुनहिं सुजान। (मा० १।१० क)
ग्रास-(सं०)-१ उतना भोजन जो एक बार मुँह में डाला जा सके, कौर, २ पकड़, गिरफ्त करने की क्रिया, ३. सूर्य या चंद्रमा का ग्रहण लगना। उ० २ लसति जब बाल पवि-केलि-कौतुक-उदित चलत मंडल-ग्रासकर्ता। (वि० २५)
ग्रासन-१ ग्रसनेवाले, २ ग्रासने के लिए। उ० १, २ कामनाग-शोक ग्रासन विधुंतुद, गर्व-काम-करि-मत्त-मृगराज भारी। (वि० २८)
ग्राह-(सं०) १ नक्र, घड़ियाल, २ ग्रहण करना, पर

हमा, ३ वह ग्राह जिसने गज को पकड़ा था और जिसे विष्णु ने मारकर गज को मुक्त किया था। दे० 'गज'। उ० १ लोभ ग्राह दनुजेस क्रोध, कुरराज-बंधु खल मार। (वि० ६३)
ग्राहक-(सं०)-ग्रहण करनेवाला, खरीददार।
ग्राही-(सं०)-१ वह जो ग्रहण करे, संग्रही, २ प्रशंसा करनेवाला, पहचाननेवाला, चाहनेवाला, ३. कब्ज करनेवाली चीज़, ४ कपित्थ, कैंत।
ग्रीव-दे० 'ग्रीवा'। उ० सोभा सीवँ ग्रीव चिबुकाधर वदन अमित छवि छाई। (वि० ६२)
ग्रीवाँ-दे० 'ग्रीवा'। ग्रीवा-(सं०)-सिर और धड़ को जोड़नेवाला अंग, गर्दन, गला। उ० चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा। (मा० १।१४७।१)
ग्रीषम-दे० 'ग्रीष्म'। उ० ग्रीषम दुसह राम बन गवनू। (मा० १।४२।२)
ग्रीष्म-(सं०)-१ गर्मी की ऋतु, गर्मी। यह ऋतु कुछ लोगों के अनुसार वैसाख और जेठ तथा कुछ लोगों के अनुसार जेठ और असाढ़ में मानी गयी है। २ उष्ण, गरम।
ग्लानि-(सं०)-१ शारीरिक या मानसिक शिथिलता अनुत्साह, २ खेद, दुःख, ३ मन की एक वृत्ति जिसमें अपने किसी कार्य की बुराई या दोष आदि को देखकर अनुत्साह, अरुचि और खिन्नता उत्पन्न होती है। अरुचि, अनास्था। ४ लज्जा। उ० २ ग्यरीष को साप सुरति करि अजहुँ महामुनि ग्लानि गरै। (वि० १३७)
ग्लानी-दे० 'ग्लानि'। उ० ३ अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। (मा० १।१८४।२)
ग्वाल-(सं० गोपाल)-अहीर, गोप, ब्रज के अहीर। उ० करतल ताल बजाइ ग्वाल जुवतिन तेहि नाच नचायो। (वि० ६८) ग्वालिनि-ग्वाल की स्त्री, अहिरिन, गोपिका। उ० बिनु आपर को गीत गाइ गाइ चाहत ग्वालिनि ग्वाल रिझाए। (कृ० २०) ग्वालिनी-दे० 'ग्वालिनि'। उ० जोग-जोग ग्वालिनी बियोगिनि जान सिरोमनि जानी। (कृ० ४०)
ग्वालि-ग्वालिनी, गोपी। उ० ग्वालि बचन सुनि कहति जसोमति भलो न भूमि पर बादर छीयो। (कृ० ६)

# घ

घंट-(सं० घट)-१ घड़ा, मिट्टी या लोहे का बड़ा बर्तन, गगरा, २ मृतक क्रिया में प्रयुक्त होनेवाला वह जल-पात्र जो पीपल के पेड़ में टाँगा जाता है। ३ धातु का बना औंधे बर्तन के आकार का घंट या घंटी जिसमें एक लंगरी लटकती रहती है और जो हिलने से घंट की दीवाल से टकराकर आवाज उत्पन्न करती है। ऐसे घंट शिवमंदिरों में टँगे रहते हैं तथा हाथियों पर लटकाए जाते हैं। घंटि या घंटी गाय-बैल आदि जानवरों के गले में बाँधी जाती है। घंट से टन्-टन् और घंटी से टुन-टुन की आवाज निकलती है। ४ समय की सूचना या पूजा आदि के लिए बजाया जानेवाला चपटा एवं वृत्ताकार धातुखंड, घड़ियाल। यह मुँगरी या लकड़ी से बजाया जाता है। उ० ३ चले मत्त गज घंट बिराजी। (मा० १।३००।१)
घटा-दे० 'घंट'। उ० ३ लोल दिनेस त्रिलोचन लोचन, करनघंट घंटा सी। (वि० २२)
घंटि-दे० 'घंट'।
घ-१ घटा, २ घुँघुर, ३ नीर, ४ बादल।
घइ (१)-(गंभीर)-१ गंभीर भँवर, पानी का चक्कर, २ जिसकी थाह न लग सके, अत्यंत गहरा, अथाह। उ० २ प्रीति प्रतीति-रीति-सोभासरि थाहत जहँ जहँ तहँ घइ। (गी० २।३८)
घई (२)-(?)-थूनी, टेक।
घट (१)-(सं०)-१ कुंभ, कलश, घड़ा, २ शरीर, पिंड, ३ उर, हृदय, मन, ४ कुंभ राशि। उ० १ यथा पट-तंतु, घट-मृत्तिका, सर्प-स्रग, दारु-करि, कनक-कटकांगदादी। (वि०५४)
घट (२)-(सं० कर्त्तन)-घटा हुआ, कम, थोड़ा, छोटा। उ० घट घट छट नट नादि जहँ तुलसी रहित न जान। (स० ५०६)
घट (३)-(सं० घट्ट)-नदी का घाट, नदी का किनारा। उ० तो घर घट बन बाट महँ कतहुँ रहै किन देह। (स० ११२)
घट (४)-(सं० घटन)-सटीक, सुन्दर, शोभायमान।
घटइ (१)-(सं० कर्त्तन)-१ कम होता है, घटता है, २ कम होगा, ३ कम हो जाय। उ० १ घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई। (मा० १।२३८।१) घटत (१)-(सं० कर्त्तन)-कम होता है। उ० साँवरे बिलोके गव घटत घटनि के। (क० २।१६) घटति (१)-(सं० कर्त्तन)-घटती है, कम होती है। उ० राम दूरि माया बढ़ति, घटति जानि मन माँह। (दो० ६१) घटा-(सं० कर्त्तन)-कम हो, घट जाय। उ० सपन घटहु, पुनि दग घटहु, घटहु सकल बल देह। (दो० २६३) घटा (१)-कम हुआ, क्षीण हुआ। घटि-१ घटकर, कम होकर, कम, २ नीच, क्षुद्र, ३ हानि, नुकसान। उ० १ पातकु रटनि घटै घटि जाई। (मा० २।२०१।२) २ तौ महि निपट निरादर निसि दिन रटि छट ऐसो घटि को तो। (वि० १६१) घटिहै-घटेगा, कम होगा। उ० दे० 'घट'। घटे-घटने से, घटने पर। उ० दे० 'घटि। घटे (१)-१ घटने से, कम होने से, क्षीण होने पर, २ घट गए, कम हो गए। उ०

१ इते घटे घटिहैं कहा जो न घटै हरि नेह ? (दो० ५११) घटै-(१)-घटे, कम हो। उ० दे० 'घटे'। घटो (१)-कम हुआ, क्षीण हुआ, घट गया। घट्यो (१)-घटा, कम हुआ।

घटइ (२)-(सं० घटन)-१ उपस्थित होता है, लगता है, २ आ जायगा, लगेगा, ३ लग, हो जाय। उ० २ वारन दोष घटइ अति मोहा। (मा० १।१६२।२) घटत (२)-१ काम आता है, २ होता है, घटित होता है। उ० १ काय, वचन, मन सपनेहु कबहुँक घटत न काज पराए। (वि० २०१) घटति (२)-होती है, घटित होती है। घटब-लगूँगा, उपस्थित हूँगा। उ० सब विधि घटब काज मैं तोरें। (मा० ४।७।५) घटा (२)-१ उपस्थित हुआ, हुआ, २ सटीक बैठा, मेल मिल गया। घटिहि-लग जायगा, फबेगा। उ० मो सब भाँति घटिहि सेवकाई। (मा० २।२५८।३) घटे (२)-घटित हुए, हुए। घटै (२)-घटित हो, हो। उ० सपने नृप कहँ घटै विप्रबध, विकल फिरै अघ लागे। (वि० १२२) घटो (२)-हुआ, घटित हुआ, घटा। घट्यो (२)-१ लगा, उपस्थित हुआ, २ हुआ। उ० २ समौ पाइ कहाइ सेवक घट्यो तौ न सहाय। (गी० ६।१४)

घटकरन-(सं० घटकर्ण)-कुंभकर्ण। रावण का भाई। उ० जयति दसकंठ घटकरन-वारिदनाद-कदन कारन, कालनेमि हंता। (वि० २५)

घटज-(सं०)-घट से उत्पन्न होनेवाले अगस्त्य मुनि। दे० 'अगस्त्य'। उ० उदित अगस्ति पंथ जल सोखा। जिमि लोभहि सोषइ संतोषा। दे० उदित बिधि जिमि घटज निवारा। (मा० २।२१७।१)

घटजोनी-(सं० घट+योनि)-घड़े से पैदा होनेवाले अगस्त्य ऋषि। दे० 'अगस्ति'। उ० बालमीक नारद घटजोनी। (मा० १।३।२)

घटन (१)-(सं०)-१ होना, उपस्थित होना, २ उपस्थित करनेवाला, ३ गढ़ा जाना ४ गढ़नेवाला। उ० २ अघटित घटन, सुघट बिघटन ऐसी बिरुदावलि नहिं आन की। (वि० ३०)

घटन (२)-(सं० कर्त्तन)-घटना, कम होना।

घटना (१)-(सं०)-कोई बात जो हो जाय, वाकया, वारदात। उ० अघट घटना-सुघट, सुघट विघटन विकट। (वि० ५५)

घटनि-(सं० घटा)-घटाओं। उ० दे० 'घन (२)'। घटा (२)-(सं०)-१ बादल, मेघमाला, २ समूह, झुंड, ३ अँधेरा। उ० २ रजनीचर मत्तगयंद घटा बिघटै मृगराज के साज लरै। (क० ६।३६)

घटयोनि-दे० 'घटजोनी'।

घटसंभव-(सं०)-दे० 'घटसम्भव'। उ० तत्त्वमसागपायोधि घटसंभव, सर्वग, सर्वसौभाग्य-मूल। (वि० १२) घटसंभव-(सं०)-अगस्त्य ऋषि। उ० जहँ घटसंभव मुनिवर ग्यानी। (मा० ७।१३।४)

घटाइ-घटा करके कम करके। उ० अपना अपने को भी करैगो घटाइ को ? (क० ७।२१)

घटाटोप-(सं०)-१ बादलों की घटा जो चारों ओर से घेरे हो, २ गाड़ी या पालकी आदि ढकने के लिए एक प्रकार का कपड़ा, ओहार, ३ बादलों की भाँति चारों ओर से घेर लेनेवाला दल या समूह। उ० ३ घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी। (मा० ६।३४।५)

घटित-(सं०)-रचित, निर्मित, बना हुआ। उ० हाटक-घटित जटित मनि कटितट रट मंजीर। (गी० ७।२१)

घट्टा-(सं० घटा)-१ बादलों का समूह, २ समूह, झुंड। उ० २ प्रलयकाल के जनु घन घट्टा। (मा० ६।८३।१)

घठा-(सं० घट्ट)-शरीर पर वह उभरा हुआ चिह्न, जो किसी वस्तु की रगड़ लगते-लगते पड़ जाता है। उ० कमठ कठिन पीठि, घठा परो मंदर को। (क० ६।११)

घन-(सं०)-१ मेघ, बादल, २ लोहा, ३ बड़ा भारी हथौड़ा, ४ मुस्त, ५ समूह, ६ कपूर, ७ घंटा, घड़ियाल, ८ लंबाई, चौड़ाई और ऊँचाई, तीनों का विस्तार, ९ घना, गहन, १० ठोस, ११ दृढ़, १२ निरंतर, १३ पिंड, शरीर, १४ अधिक, १५ बड़ा हथौड़ा, १६ गहरा। उ० १ बेद पुरान उदधि घन साधू। (मा० १।३६।२) ५ नित्य निमम, नित्य मुक्त निर्मान हरि ज्ञान घन सच्चिदानंद मूल। (वि० ५३) घनहि-१ घन से हथौड़े से, २ घन को। उ० १ कनक दाहि पीटत घनहि परसु बदन यह दंड। (मा० ७।३७) घनै-घन को, बादल को। उ० सो तुलसी चातक भयो जाँचत राम स्याम सुंदर घनै। (गी० ५।४०)

घनघोर-(सं० घन+घोर)-१ भीषण ध्वनि, २ विकट, विकराल, भयावना, ३ बादल की गरज, ४ अत्यंत घना। उ० २ पाप संताप घनघोर संसृति दीन भ्रमत जगयोनि नहिं कोपि त्राता। (वि० ११)

घननाद-(सं०)-१ बादलों की गरज, २ रावण का पुत्र मेघनाद। उ० २ कुंभकरन घननाद कर बल पौरुष संघार। (मा० ६।६७ ख) घननादहि-१ मेघनाद को, १ मेघ की गर्जना को। उ० १ कुंभकरन घननादहि मारेउ। (मा० ६।१०।३)

घननादा-दे० 'घननाद'। उ० २ रघुपति निकट गयउ घननादा। (मा० ६।५१।१)

घनपदवी-(सं० घन+पदवी)-आकाश, अंतरिक्ष, नभ।

घनस्याम-(सं०)-दे० 'घनश्याम'। उ० ४ राम घनस्याम तुलसी पपीहा। (वि० १५)

घनस्याम-(सं० घनश्याम)-१ बादल की तरह काला, २ कृष्ण, ३ राम, ४ काला बादल। उ० १ लोचन अभिराम घनस्याम रामरूप सिसु। (क० १।११) घनस्यामहि-१ बादल की तरह काले का, २ कृष्ण का, ३ राम का, ४ काले बादल का, ५ बादल की तरह काले को, ६ कृष्ण को, ७ राम को, ८ काले बादल को। उ० १ सीता लखन सहित घनस्यामहि। (मा० ६।११३।३)

घना-(सं० घन)-१ सघन, गझिन, २ घनिष्ठ, नजदीकी रिश्ते का, ३ अधिक, ज्यादा, बहुत। उ० ३ गरजत घनाभिन्न श्याप गीध गनारि धाय तारे घना। (मा० ७।१३०।छं० १)

घनी-(सं० घन)-१ सघन, अविरल, २ ज्यादा, ३ बहुत,

घोर। उ० २ अति हरषु राजसमाज दुहुँ दिस दुदुभी बाजहिं घनी। (मा० १।३१७। छं० १)
घनु (१)-(सं० घन)-१ बादल, २ घना, अधिक।
घनु (२)-(सं० शत्रुघ्न) लक्ष्मण के छोटे भाई। उ० रघुनंदन बिनु बंधु कुअवसर जद्यपि धनु दुसरे हैं। (गी० ६।१३)
घने-(सं० घन)-१ बहुत, अधिक, २ सघन, अविरल, ३ अनेक, अगणित। उ० ३ कह दास तुलसी कहि न सक छवि सेष जेहि आनन घने। (मा० ६।७१। छं० १)
घनेरा-(सं० घन)-बहुत, अधिक, अत्यन्त, अगणित (संख्या में)। उ० जानइ सो अति कपट घनेरा। (मा०१।१७०।२)
घनेरी-घनेरा का स्त्रीलिंग, बहुत, अधिक। उ० सुनु मुनि बरनी कबिन्ह घनेरी। (मा० १।१२४।२) घनेरे-दे० 'घनेरा'। उ० सुंदर सुखद बिचित्र घनेरे। (मा०१।१४०।१)
घनेरो-दे० 'घनेरा'। उ० जद्यपि अति पुनीत सुरसरिता तिहुँपुर सुजस घनेरो। (वि० ८७)
घघरि-दे० 'घघरि'।
घमंड-(?)-१ अभिमान, गर्व, २ उमड़कर, घुमड़-घुमड़ कर, उमग से भरकर। उ० २ घन घमंड नभ गरजत घोरा। (मा० ४।१४।१)
घमंडु-दे० 'घमंड'। उ० २ सावनघन घमंडु जनु ठयऊ। (मा० १।३४७।१)
घमोइ-(?)-१ एक कटिदार जंगली पौधा, भड़भाँड़, सत्यानाशी। यह पौधा खंडहरों में उगता है। २ बाँस का एक रोग, ३ घमोइ रोग से पीड़ित बाँस। उ० १ फहत मन तुलसीस लंका करहु सघन घमोइ। (गी०५।१५)
घमोई-दे० 'घमोइ'। उ० ३ बेनुमूल सुत भयहु घमोई। (मा० ६।१०।२)
घर-(सं० गृह)-१ दीवाल आदि से घेरकर बनाया हुआ रहने का स्थान, मकान, आवास, २ निवासस्थान, जहाँ घर के लोग रहते हों, ३ स्वदेश, जन्मस्थान, ४ घरा, कुल, खानदान, ५ कार्यालय, दफ्तर, ६ कोष, खजाना, भंडार, ७ गृहस्थी, घरबार, ८ उत्पत्ति स्थान, मूल कारण, जड़। उ० २ हठ परिहरि घर जाएहु तबहीं। (मा०१।७२।२) मु०घर को न घाट को-कहीं को भी नहीं, जिसके लिए कहीं जगह न हो। उ० धोबी कैसो कूकर न घर का न घाट को। (क०७।६६) घरतर-श्रेष्ठ घर, अच्छा घर। उ० ते तुलसी तजि जात किमि निज घरतर पर-देस। (स० ७) घरनि (१)-१ घरों में, २ घरों को। उ० १ जग जगदीस घर घरनि घनेरे हैं। (वि० १७१) २ घरनि सिधारिए सुधारिए आगिलो काज। (गी० १।८२) घर बन बीच-गृहस्थाश्रम और वानप्रस्थ के बीच। तपस्वीवत् गृहस्थाश्रम का पालन करते हुए। उ० तुलसी घर बन बीच ही राम प्रेमपुर छाइ। (दो० २२१) घर बसी-(सं० गृह+वास)-१ घर बसानेवाली, २ व्यंग्य अर्थ में घर उजाड़नेवाली। उ० २ हारि दै घर बसी लकुटी बेगि कर लें। (कृ० १७) घरबात-घर की सामग्री, घर की सम्पत्ति। उ० घरबात घरनि समेत कन्या आनि सब आगे धरी। (पा० १२) घरबात-घर का सामान, घर की संपत्ति। उ०कृमगात ललात जो रोटिन को, घरबात धरे खुरपा खरिया। (क० ७।४६) घरहि-घर ही। उ० द्विजदेवता घरहि के बाढ़े। (मा० १।२७६।४) घरे-१ घर में, २ घर को। उ० १ ,दे० 'घरबात'। घरे-दे० 'घरे'। घरो (१)-(सं० गृह)-१ घर, २ घर भी।
घरणी-दे० 'घरनि'।
घरनि (२)-(सं० गृहिणी)-घरनी, स्त्री, गृहस्थिनी। उ० मैना तासु घरनि घर त्रिभुवन तियमनि। (पा० ६) घरनिहिं-स्त्री को। उ० प्रभु रुख पाइ कै बोलाइ बाल घरनिहिं। (क० २।१०) घरनी-दे० 'घरनि'। उ० स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी। (मा० ५।३६।४) घरन्यौ-घरनी भी, स्त्री भी। उ० सीस बसै बरदा, बरदानि, चढ़यो बरदा, घरन्यौ बरदा है। (क० ७।१५५)
घरफोरी-(सं० गृह+स्फोटन) घर में फूट डालनेवाली, घर में झगड़ा डालनेवाली। उ० पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। (मा०२।१७।४)
घरा-(सं० घट)-घड़ा, कलश।
घरि-दे० 'घरी (१)'।
घरिक-दे० 'घरीक'। उ० घरिक बिलंबु कीन्ह बटछाहीं। (मा० २।११५।२)
घरी (१)-(सं० घटी)-१ समय का एक मान, २ अवसर, समय, ३ अच्छा अवसर, ठीक समय। उ० २ सुभ दिन, सुभ घरी, नीको नखत, लगत सुहाइ। (गी० ७।३४) ३ घरी कुघरी समुझि जियँ देखू। (मा० २।२६।४) घरी कुघरी-मौका बे मौका, समय कुसमय। उ० दे० 'घरी (१)'।
घरी (२)-(?)-तह, परत, लपेट। उ० है निगुनसारी बारिक, बलि, घरी करौ, हम जोही। (कृ० ४१)
घरीक-(सं० घटी+एक)-एक घड़ी, थोड़ी देर। उ० जल को गए लक्खन हैं लरिका परिखौ, पिय! छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े। (क० २। १२)
घरु-दे० 'घर'। उ० २ घरु न सुगमु बनु बिषमु न लागा। (मा० २।७८।३)
घरो (२)-दे० 'घरा'। उ० बिगरत मन सन्यास लेत जल नावत आम घरो सो। (वि० १७३)
घरौंधा-(सं० गृह)-१ छोटा घर, साधारण घर, २ कागज, मिट्टी, धूल या ऐसी ही चीज़ों का घर जिसे लड़के बनाकर खेलते हैं। उ० २ बापुरो बिभीषन घरौंधा हुतो बालु को। (क० ७।१७)
घर्मांसु-(सं०घर्मांशु) सूर्य, रवि। उ० जयति घर्मांसु-सद्रूप सपाति नवपच्छ लोचन दिव्य-देह दाता। (वि० २८)
घर्म-(सं०)-घाम, धूप।
घलतो-(?)-बरबाद करता, मटियामेट करता। उ० करि पुटपाक नाक नायक हित घने घने घर घलतो। (गी० ५।१३)
घवरि-(?)-१ फलों का गुच्छा, २ पत्तियों का गुच्छा। उ० १ हेम बौर मरकत घवरि, लसत पाटमय डोरि। (मा० १।२८८)
घसीटन-(सं० घृष्ट) घसीटने, बुरी तरह खींचने। उ० लगे घसीटन धरि धरि झोंटी। (मा० २।१६३।४)
घहरात-(अनु०)-१ चिग्घाड़ते हैं, गरजते हैं, शब्द करते हैं।

२ गरजते हुए, भयकर शब्द करते हुए, ३ गरजते ही, चिग्घाड़ते ही। उ० १ घहरात जिमि पविपात गर्जत जनु प्रलय के बादले। (मा० ६।७४।छं०१)

घाउ–दे० 'घाव'। उ० हतहिं कोपि तेहि घाउ न बाचा। (मा० ६।७६।४)

घाऊ–दे० 'घाव'। उ० यह सुनि परा निसानहिं घाऊ। (मा० १।३१३)

घाए–दे० 'घाव'। उ० थोरिहिं हाय घसनिहु के घाए। (मा० २।२०६।४)

घाट (१)–(सं० घट्ट)–१ नदी, तालाब या पोखरे आदि के किनारे जहाँ लोग स्नान आदि करते हैं, या धोबी कपड़े धोते हैं। कहीं कहीं घाट पक्के होते हैं, और सीढ़ियाँ बनी होती हैं। २ नदी का वह किनारे का स्थान जहाँ लोग पार करते हैं या नाव पर चढ़ते, उतरते हैं। ३ ओर, दिशा, तरफ, ४ रंग-ढंग, तौर-तरीका, ५ भेद, मर्म, ६ तलवार की धार, ७ तंग पहाड़ी रास्ता, उ० १ तेहि पहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि। (मा० १।३६) घाटारोह–नदी आदि के घाट को रोक देना, घाट बंद कर देना। घाटारोहु–दे० 'घाटारोह'। उ० हथवाँसहु बोरहु तरनि, कीजिअ घाटा-रोहु। (मा० २।१८६)

घाट (२)–(सं० घात)–१ धोखा, छल, कपट, २ बुरा काम, कुकर्म, नीचता।

घाट (३)–(सं० कत्तन)–१ कम, थोड़ा, २ न्यूनता, कमी।

घाटा–दे० 'घाट (१), घाट (२), घाट (३)'। उ० १ का० धावहिं गर्नहिं न अवघट घाटा। (मा० ६।४१।३)

घाटि (१)–दे० 'घाट (३)'। उ० १ स्वारथ को परमारथ को, परिपूरन भो फिरि घाटि न हो सो। (क० ७।१२७)

घात–(सं०)–१ प्रहार, चोट, मार, २ वध, हत्या, ३ अहित, बुराई, ४ अभिप्राय सिद्ध करने का उपयुक्त स्थान और अवसर या, ताक, ५ दाँव पेंच, चाल, छल, धोखा। उ० २ कौनी लागि तें मोहवस करहिं विप्र गुर घात। (दो० ५५२) ४ चित्रकूट अचल अहेरि बैठ्यो घात मानों। (क० ७।१४२)

घातक–(सं०)–१ मार डालनेवाला, हत्यारा, हिंसक, वधिक। २ शत्रु, वैरी।

घाता–दे० 'घात'। उ० २ देखि भाखुपति निज दल घाता। (मा० ६।४८।८)

घातिनी–(सं०)–मारनेवाली, वध करनेवाली। उ० बीर घातिनी छाँड़िसि साँगी। (मा० ६।५४।४)

घाती–मारनेवाला, वधिक। उ० हम जड़ जीव जीवगन घाती। (मा० २।२५१।२)

घान–(सं० घन)–१ उतनी वस्तु जितनी कोल्हू में एक बार डालकर पेरी जाय या चक्की में पीसी जाय, २ उतनी वस्तु जितनी एक बार में भूनी या पकाई जाय।

घानी–दे० 'घान'। उ० १ मारि दरपर कियो जम की घानी। (क० ६।२०)

घाम–(सं० घर्म)–१ धूप, सूर्यातप २ गर्मी, उष्णता, ३ कष्ट, दुःख। उ० १ सुमिरे त्रिबिध घाम हरत, पूरत कामे। (वि० २५५) घामो–घाम भी। उ० १ राम नाम जप निरत सुजन पर करत छाँह घोर घामो। (वि० २२८)

घामा–दे० 'घाम'। उ० मध्य दिवस अति सीत न घामा। (मा० १।१९१।१)

घाय–दे० 'घाव'। उ० नाम सें राम दिखावत बंधु कहुँ घूमत घायल घाय घने हैं। (क० ६।३३)

घायल–जिसको घाव लगा हो, आहत, जख्मी। उ० दे० 'घाय'।

घाल (१)–(?)–घलुआ, सौदे की उतनी वस्तु जो ग्राहक को तौल, नाप या गिनती के ऊपर दी जाय। मु० घाल न गिन्यो–कुछ न समझा।

घाल (२)–(सं० घत्न)–१ नष्ट करके, घात कर, २ बुराई, बिगाड़, अपकार। उ० २. परघाल घालक कलह प्रिय कहियत परम परमारथी। (पा० १२१)

घालइ–(सं० घत्न)–१ नष्ट करता, नष्ट करता था, २ बिगाड़ता है, विध्वंस करता है। उ० १ आपुन अँ धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा। (मा० १।१८३। छं० १) घालत–१ बिगाड़ता है, नष्ट करता है २ नष्ट करते हुए, ३ कर डालता है। उ० ३ काप का कलिकाल कायर मुएहि घालत घाय। (वि० २१०)

घालति–१ नष्ट करती, २ रखती, ३. फेंकती, डालती। उ० १ तुलसी यही कुभाँति घने घर घालि आई, घने घर घालति है घने घर घालिहै। (क० ७।१२०) घालसि–१ नष्ट-भ्रष्ट कर, २, नष्ट करता है। उ० १ घातक मनहि रिसाइ सठ जनि घालसि कुल खीस। (मा० ३।२१।क) घालहिं–१ नष्ट करते हैं, २ करते हैं, ३, डालते हैं, रखते हैं। उ० १ आपु गए अरु घालहिं आनहिं। (मा० ७।४०।३) घाला–१ नष्ट किया, २ रखा। उ० १ बिधि केतु कर घर उन घाला। (मा० १।७३।१) घालि (२)–१, नष्ट कर, २ डालकर, धरकर, रखकर। उ० १ दे० 'घालति'। २ कबहुँ घालने घालि झुलावै। (मा० १।२००।४) घालिहै–१ नष्ट करेगी, २ धरेगी, रखेगी। उ० १ दे० 'घालति'। घाली–१ डाली, फेंकी, २ उजाड़ा, नष्ट किया, ३ की कर ली। उ० ३ राम सन निज पाछे घाली। (मा० ६।७०।३) घाले–१ नष्ट किए, नष्ट करने से, २ रखे, धरे। उ० १ तेरे माख जातुधान भए घर घर के। (ह० ३३) घालेसि–१ नष्ट भ्रष्ट किया, उजाड़ा, २ रखा, डाला, ३, किया, कर दिया। उ० ३ घालेसि सब जनु मारग बाटा। (मा० २।२१२।३) घाली–दे० 'घाले'।

घालक–नष्ट करनेवाला, नाशकर्ता, बिगाड़नेवाला। उ० परघर घालक लाज न भीरा। (मा० ३।६७।२)

घालि (२)–(?)–दे० 'घाल (१)'। मु० घालि नहिं गनै–कुछ न समझे। उ० रघुबीर बल दर्पित बिभीषनु घालि नहिं ताकहुँ गनै। (मा० ६।९३। छं० १)

घाव–(सं० घात)–चोट, घाव, जख्म।

घास–(सं० घास)–घास, साग, तृण। उ० घासिनु घासि करम कुकरम कर मरत जीवगन घासी। (वि० २२)

घाई–(सं० घर्षणि)–उँगलियों के बीच की संधि, गदुआ, गाया, घाई। उ० घाईं मास, कुच पनु, भूषन आभषा, अँचर तुम्हा सब घाई। (गी० ७।१३)

घिन-(सं० घृणा)-नफरत, घृणा । उ० काल चाल हेरि होति हिये घनी घिन । (वि० २५३)
घिनात-घृणा करते हैं, नफरत करते हैं । उ० आप स कहुँ सौंपिए मोहि जी पै अतिहि घिनात । (वि० २१७)
घिय-दे० 'घी' । उ० स्यामिदसा लखि लषन सखा कपि, पिघले हैं आँच माठ मानो घिय के । (गी० ४।१)
घी-(सं० घृत)-घृत, दूध का सार जो मक्खन या नवनीत से तपाकर पानी का अंश निकालकर बनाया जाता है । सरपि । उ० जानि अध अजन कहै बन-बाघिनि घी को । (वि० २६५)
घीय-दे० 'घी' । उ० १ ह्वैहौं माखी घीय की । (वि० २६३)
मु० घीय की माखी-१ शीघ्र नष्ट हो जानेवाली चीज़ । घी में मक्खी गिरकर तुरत मर जाती है । २ व्यर्थ या फेंक देने लायक वस्तु । उ० १ दे० 'घीय' ।
घुँघुरारि-दे० 'घुँघुरारी' ।
घुँघुरारी-(?)-घुँघराले, कुंचित, घूमे हुए । उ० घुँघुरारी लटैं लटकैं मुख ऊपर, कुंडल लोल कपोलन की । (क० १।५)
घुटुरुवनि-(सं० घुट)-घुटना के बल, घुटनों से । उ० गिरि घुटुरुवनि टेकि उठि अनुजनि तोतरि बोलत पूप देखाए । (गी० १।२६)
घुणाक्षर न्याय-(सं०)-ऐसी कृति या रचना जो अनजान में उसी प्रकार हो जाय जैसे घुनों के खाते-खाते लकड़ी में अक्षर की तरह कुछ लकीरें पड़ जाती हैं । अकस्मात सिद्ध कार्य । बिना परिश्रम के प्राप्त कोई वस्तु ।
घुन-(सं० घुण)-एक प्रकार का लाल-लाल छोटा कीड़ा जो अनाज, पौधे और लकड़ी आदि में लगता है और उसे अंदर ही अंदर खोखला कर देता है । भीतर ही भीतर खोखला करके नाश कर देनेवाला । उ० जेहि न लाग घुन को अस धीरा । (मा० ७।७१।३) घुनाक्षर न्याय-दे० 'घुणाक्षर न्याय' । उ० होइ घुनाक्षर न्याय जौं, पुनि प्रत्यूह अनेक । (दो० २७३)
घुनिए-भीतर ही भीतर खोखला होते रहिए, नष्ट होते रहिए । उ० सुमिरि-सुमिरि यामर निसि घुनिए । (कृ० ३७)
घुम्मरहिं-(?)घोर आवाज़ कर रहे हैं, गरज रहे हैं ।
घुर-(सं० कूर)-१ कूड़ा कर्कट, रद्दी चीजें, २ वह जगह जहाँ कूड़ा फेंका जाय । उ० २ तुलसी मन परिहरत नहिं घुर बिनिआ की बानि । (दो० १३) घुरबिनिआ-कूड़ेखाने या घूरे पर से दाना चुनना, गंदी जगह से अन्नादि बिनना या लेना । उ० दे० 'घुर' ।
घुरघुरात-(अनु०)-१ घुर घुर का शब्द करता हुआ, २ घुरघुराता है । उ० १ घुरघुरात हय धारी पाएँ । (मा० १।१२६।४)
घुर्मि-(सं० घूर्णन)- घूमकर, चक्कर खाकर । उ० घुर्मि-घुर्मि घायल महि परहीं । (मा० ६।६८।२)
घुर्मित-चक्कर आया हुआ, घूमा हुआ । उ० परा भूमि घुर्मित सुरद्रोही । (मा० ६।७४।४)
घुम्मरहिं-घोर शब्द कर रहे हैं, गरज रहे हैं । उ० निदरि घनहि घुर्म्मरहिं निसाना । (मा० १।३०१।१)



घूँघट-(सं० गुंठ)-स्त्रियों की साड़ी या चादर के किनारे का वह भाग जिसे वे लज्जावश सिर से आगे मुँह ढकने के लिए खींच लेती हैं । उ० का घूँघट मुख मूँदहु नवला नारि ? (ब० १६)
घूँट-(अनु०) पानी या किसी अन्य द्रव का उतना अंश जितना एक बार में गले से नीचे उतारा जा सके ।
घूँटक-एक घूँट । दे० 'घूँट' । उ० देत जो भूभाजन भरत, लेत जो घूँटक पानि । (दो० २८७)
घूघरवारे-घुँघराले, कुंचित । उ० बिकट भृकुटि कच घूघर वारे । (मा० १।२३३।२)
घूटी-(दे० घूँट)-बालकों की एक ओषधि जो उनके स्वास्थ्य को ठीक रखती है । उ० लोचन सिसु द देहु अमिय घूटी । (गी० २।२१)
घूमत-(सं० घूर्णन)-१ घूमता है, चक्कर लगाता है, २ लौटता है, वापस आता है, ३ सैर करता है, टहलता है । उ० १ नाम लै राम दिखावत बंधु को, घूमत घायल घाय घने हैं । (क० ६।३६) घूमि-१ घूमकर, चक्कर लगाकर २ लौटकर, ३ टहलकर । उ० १ भूमि परे भट घूमि कराहत । (क० ६।३२)
घूर्मि-(सं० घूर्णन)-घूमकर, चक्कर लगाकर ।
घूर्मित-दे० 'घुर्मित' ।
घृत-(सं०)-घी, दे० 'घी' । उ० घृतपूरन कराह अंतरगत ससि प्रतिबिंब दिखावै । (वि० ११५)
घृतु-दे० 'घृत' । उ० सतकोटि चरित अपार दधिनिधि मथि लियो काढ़ि बामदेव नाम घृतु है । (वि० २५४)
घेरइ-घेरता है, रोकता है, छेंकता है । उ० सावन सरित सिंधुरुख सूप सों घेरइ । (पा० ६६) घेरत-(?)-घेरते हैं, रोकते हैं, चारो ओर से छेंकते हैं । घेरहिं-घेर लेते हैं, चारो ओर से छेंक लेते हैं । उ० कोउ मुनि मिलइ ताहि सब घेरहिं । (मा० ४।२४।१) घेरा-१ घिरा हुआ, वश में, २ घेर लिया, चारो ओर से छेंक लिया, ३ चारो ओर की सीमा, परिधि, वह वस्तु जो किसी के चारो ओर हो । उ० १ काल कर्म सुभाव गुन घेरा । (मा० ७।४४।३) घेरि-घेरकर, चारो ओर से छेंककर । उ० घेरि सकल बहु नाच नचावहिं । (मा० ६।५।७) घेरी-घेर लिया, घेरा, छेंक लिया । उ० घनघटोप करि चहुँ दिसि घेरी । (मा० ६।३३।५) घेरे-१ घेर लिए, २ घेरे हुए, चारो ओर से रोके हुए । घेरेन्हि-घेर लिया, छेंक लिया । उ० घेरेन्हि नगर निसान बजाई । (मा० १।१७२।३) घेरेसि-घेरा, चारो ओर से घेर लिया । उ० सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई । (मा० १।१७६।२) घेरो-१ घेरा, छेंका, वश में कर लिया, चारो ओर से रोक लिया, २ घिराव, वह वस्तु जो किसी के चारो ओर हो, परिधि । उ० १ भगति हीन, बेद बाहिरो लखि कलिमल घेरो । (वि० २७२)
घेरोइ-घिरा हुआ ही । उ० घेरोइ पै देखियो लंक गढ़ बिकल जातुधानी पछितैहैं । (गी० ५।२१)
घैया (१)-(?) कोख, पेट उदर । उ० मथि मथि पियो बारि चारिक में भूख न जाति अघाति न घैया । (कृ० १५)
घैया (२)-(?)-थन से निकली हुई दूध की धार । उ०

तुलसी दुहि पीवत सुख जीवत पय सप्रेम घनी घैया। (गी० १।१७)
घैया (२)-(?)-ओर, तरफ, दिशा।
घैरु-(?)-१ निन्दामय चर्चा, बदनामी, २ चुगुली, गुप्त शिकायत, ३ कहर, हाहाकार। उ० ३ समुझि सुख मीस पपिकर्मे घर घर घैरु। (क० ६।४)
घोर (१)-(सं०)-१ भयकर, डरावना, २ सघन, दुर्गम, ३ कठिन, कड़ा, ४ गहरा, गाढ़ा, ५ बुरा, ६ अधिक, ज्यादा। उ० १ पाप सताप घनघोर ससृति दीन भ्रमत जगयोनि नहिं कोपि त्राता। (वि० ११) घोरतर-अधिक घोर। दे० 'घोर (१)'।
घोर (२)-(सं० घुर)-गर्जन, ध्वनि, शब्द।
घोर (३)-(सं० घोटक)-घोड़ा, अश्व।
घोरत (१)-(सं० घोर)-१ गरजते हैं, शब्द करते हैं, २ शब्द करते हुए। उ० २ सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रँगमगे सृ गनि। (गी० २।२०) घोरि (१)-(सं० घोर)-१ गरज, भीषण शब्द करना, २ ध्वनि करना। उ०१ बरषि मुसलाधार बार बार घोरि कै। (क० ५।१६) घोरि घोरी (१)-(सं० घोर)-१ गरज गरजकर, घोर शब्द करके, २ ध्वनि करके। उ० १ कद वृ द बरषत छुवि मधुर घोरि घोरी। (गी० ७।७)
घोरत (२)-(सं० घूर्णन)-१ घोलते हैं, मिलाते हैं, २ घोलते हुए। घोरि (२)-(सं० घूर्णन)-घोलकर, किसी द्रव पदार्थ में मिलाकर। उ०देउ आपने हाथ जल मीनहिं माहुर घोरि। (दो० ३१७) घोरि घोरी (२)-(सं० घूर्णन)-घोल घोल कर, द्रव में मिला मिला कर। घोरी (२)-(सं० घूर्णन)-१ घोला, किसी द्रव में मिलाया, २ घोलकर, मिलाकर। उ० २ देति मनहुँ मधु माहुर घोरी। (मा० २।२२।२) घोरे (२)-(सं० घूर्णन)-घोला, मिलाया।

घोरमारी-महामारी, ताऊन, हैजा आदि रोग। उ० इति अति भीति-ग्रह प्रेत चौरानल-व्याधि बाधा समन घोर मारी। (वि० २८)
घोरसारहीं-(सं० घोटक+शाला)-घोड़सार में ही, घोड़ा बाँधने के स्थान में ही। उ० हाथी हथिसार जरे, घोरे घोरसारहीं। (क० ५।२३)
घोरा (१)-(सं० घोर)-दे० 'घोर (१)' तथा, 'घोर (२)'।
घोरा (२)-(सं० घोटक)-घोड़ा। उ० हाथी छोरो, घोरा छोरो, महिष वृषभ छोरो। (क० ५।६) घोरी (१)-घोड़ी, घोड़ा की स्त्री। घोरे (१)-घोड़े, अश्व। उ० चार राहि मग चलहि न घोरे। (मा० २।१४३।३)
घोरी (३)-(सं० घोर)-१ भयकर, २ घना, सघन, ३ कठिन, कड़ा, ४ गहरा, ५ बुरा।
घोष-(सं०)-१ ग्वाला, गोप, अहीर, २ अहीरों की बस्ती, ३ गोशाला, गौओं के रहने का स्थान, ४ तट, किनारा, ५ शब्द, आवाज़, ६ उच्च स्वर से किसी बात की घोषणा, ज़ोर ज़ोर से कहना।
घोषु-दे० 'घोष'।
घोषू-दे० 'घोष'।
घोसु-दे० 'घोष'। उ० ६ सठु सिसवन रसन हूँ नित राम नामहिं घोसु। (वि० १५९)
घौरि-(?)-फूल या फलों का गुच्छा। उ० तोरन वितान पताक चामर धुज सुमन फल घौरि। (गी० ७।१८)
घ्न-(सं०)-मारनेवाला, हत्या करनेवाला, नाशक। जैसे शत्रुघ्न, कृतघ्न।
घ्राण-(सं०)-१ नाक, नासिका, २ सूँघने की शक्ति, ३ गंध, सुगंध, ४ सूँघना।
घ्रान-दे० 'घ्राण'। उ० १ ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा। (मा० १।११८।४)

## च

चंग (१)-(फा०)-१ डफ के आकार का एक छोटा सा बाजा, मुरचंग, २ सितार का चढ़ा हुआ सुर, ३ जिद, हठ।
चंग (२)-(?)-पतंग, गुड्डी, कागज और बाँस की पतली तीलियों से बनी एक चीज़ जिसे डोरे में बाँधकर उड़ाते हैं। उ० चढ़ा चंग जनु खैंच खेलारू। (मा० २।२७०।३)
चंगु-(सं० चतुर+अंगुल)-१ चार अँगुलियों, पंजा, पंजा, २ पकड़, वश, अधिकार। उ० १ परम चंगुगत चातकहि नेम प्रेम की पीर। (दो० ३०१)
चंगुल-(सं० चतुर+अंगुल)-१ चार अँगुलियों, पंजा, २ अधिकार, पकड़, वश। उ० १ ज्यों चंगुल चातक चतुर डार्यो बाहिर मारि। (दो० ३०२)
चंचरीक-दे० 'चंचरीक'। उ० कामादि मधु-नीड के भाव तनु मदमरिपु-कजाहद-चंचरीकं। (वि० ५६) चंचरीक-(सं०)-भ्रमर, भौंरा। उ० चंचरीक जिमि चंपक बागा। (मा० २।१३२।४)
चंचल-(सं०)-१ चलायमान, हिलता-डोलता, अस्थिर, २ अधीर जो एकाग्र न हो, ३ घबराया, उद्विग्न, ४ उत्सुक, उतावला, ५ वायु हवा, ६ पारा ७ लोभी, ८ सोच। उ० १ कपि चंचल सबहीं बिधि हीना। (मा० ५।७।४) ६ चंचल चित मत्त भ्रमत हरि जो आइमि पायानि। (स० १८०) ८ रहि चंचल डर मत्त भ्रम दीप गु-नाम बिचारि। (स० २१४)
चंचला-(सं०)-१ लक्ष्मी, २ बिजली, ३ स्त्री बाला। उ० १ चपल चंचला कमला नग ऐसो जाव। (स० २१४)

चचु-(स०)-१ चोंच, चिड़िया का मुँह, ठोर, २ मृग, हिरन, ३ रेंड का पेड। उ० १ चरग चचु-गत जातकहिं नेम प्रेम की पीर। (स० १०३)

चंड-(स०)-१ तेज, प्रखर, घोर, २ बलवान, शक्तिशाली, ३ कठोर, कठिन, विकट, ४ क्रोधी, उद्धत, ५ गर्मी, ६ एक दैत्य जिसे दुर्गा ने मारा था। उ० १ चड वेग-सायक नौमि राम भूप। (वि० ५२) ६ चड भुजदड-खडनि बिहडनि, महिषमद-भग करि अग तोरे। (वि० १५)

चडकर-(स०)-तीक्ष्ण किरणवाला, सूर्य। उ० चदिनि कर कि चडकर चोरी। (मा० २।२६५।३)

चंडाल-(स०)-१ चांडाल, श्वपच, डोम। मनु के अनुसार शूद्र पिता और ब्राह्मणी माता से उत्पन्न हुई सतान जो अत्यन्त नीच मानी जाती है। २ कुकर्मी, पतित, दुरात्मा।

चंडाला-दे० 'चडाल'। उ० सपदि होहि पच्छी चडाला। (मा० ७।११२।८)

चडिका-(स०)-१ दुर्गा, काली, देवी, २ लडाकी या क्रोध करनेवाली स्त्री, कर्कशा।

चडी-(स०)-दे० 'चडिका'।

चंडीपति-महादेव, शिव।

चडीश-(स०)-शिव, महादेव।

चडीस-दे० 'चडीश'। उ० चड बाहुदड बल चडीस कोदड खड्यौ। (क० १।२१)

चडोल-(?)-एक प्रकार की पालकी जो हाथी के हौदे की तरह खुली और डडे के ऊपर छाई रहती है। चौपहला।

चंद (१)-(स०)-चद्रमा, चाँद, शशि। उ० आननु सरद चद छबि हारी। (मा० १।१०६।४) चदनिशि-(स० चद+निशि)-चाँदनी रात। उ० चकइहि सरद चदनिसि जैसें। (मा० २।६४।१) चदबदन-चद्रमा के समान सुन्दर मुख। चदबदनि-चद्रमा की तरह सुन्दर मुखवाली स्त्री, चद्रमुखी। उ० चदबदनि दुखु कानन भारी। (मा० २।६३।४) चदबदनियाँ-चन्द्रमा की तरह सुन्दर मुखवाली स्त्रियाँ। उ० सुनि कुलबधू झरोखनि झाँकति रामचद्र-छबि चदबदनियाँ। (गी० १।३१)

चद (२)-(फ़ा०)-थोडे से, कुछ।

चदन-(स०)-एक पेड़ जिसके हीर की लकड़ी बड़ी सुगधित होती है। इस पेड की लकड़ी या उसके हीर या पानी मिलाकर घिसे लेप को भी चदन कहते हैं। पूजा आदि में उसका उपयोग होता है। लोग इसके लेप का शीश, बाहु, कठ तथा उर आदि में तिलक भी लगाते हैं। उ० मृगमद चदन कुकुम कीचा। (मा० १।१९४।४)

चदिनि-दे० 'चदिनी'। उ० जय जय भगीरथ नदिनि, मुनिचय चकोर चदिनि। (वि० १७)

चदिनी-चाँदनी रात, उजेली रात। उ० अमय अकलक सरद-चद-चदिनी। (गी० २।४३)

चदु-दे० 'चद (१)'। उ० रामचद मुख चदु निहारी। (मा० २।१।३)

चदू-दे० 'चद(१)'। उ० देखि भानुकुल कैरव चदू। (मा० २।१२२।१)

चँदोवा-(स० चद्रा) एक प्रकार का छोटा मडप जो राजाओ या घर के आसन के ऊपर तना रहता है। चँदवा, वितान। उ० रतनदीप सुठि चार चँदोवा। (मा० १।३२५।२

चद्र-(स०)-१ चद्रमा, शशि, २ सोना, स्वर्ण, ३ मोर की पूँछ की चद्रिका, ४ कपूर, ५ सुंदर, ६ एक द्वीप, उ० १ रामचद्र चद्र तू! चकोर मोहिं कीजे। (वि०८०)

चद्रअवतस-चद्रमा जिसके भूषण हों, महादेव, शिव।

चद्रअवतसा-दे० 'चद्रअवतंस'। उ० भए प्रसन्न चद्र अवतसा। (मा० १।८८।३)

चद्रभूषण-(स०)-महादेव, शिव।

चद्रभूषन-दे० 'चद्रभूषण'। उ० सित पाख बाढ़ति चद्रिका जनु चद्रभूषण भालहीं। (पा० ६)

चंद्रमहि-चद्रमा को, चाँद को। उ० बक्र चद्रमहि ग्रसइ न राहू। (मा० १।२८१।३) चंद्रमा-(स० चद्रमस्)-१ चद्र, शशि, २ एक मुनि। उ० २ मुनि एक नाम चद्रमा ओही। (मा० ४।२८।३) कथा-पुराणानुसार चद्रमा समुद्र मंथन के समय निकले चौदह रत्नों में से एक हैं। मथन के बाद एक असुर देवों की पक्ति में बैठकर अमृत पी रहा था। चद्रमा और सूर्य ने इसका पता विष्णु को दिया तो विष्णु ने उसके दो खड कर दिए पर वह अमृत पी चुका था अत दोनो खड जीवित रहे और राहु-केतु कहलाए। उसी पुराने बैर से राहु चद्रमा को ग्रसता है जिसे ग्रहण कहा जाता है। चद्रमा के बीच के धब्बे के सबध में कई तरह की बातें प्रचलित हैं। १ चद्रमा ने अपनी गुरुपत्नी के साथ भोग किया था, अत शापवश काला दाग पड़ गया। २ अहल्या का सतीत्व भग करने में चद्रमा ने मुर्गा बनकर इद्र की सहायता की थी, अत गगा से लौटने पर क्रोधित होकर गौतम ने त्रिशूल या कमडल और मृगचर्म से उन्हें मारा और दाग पड़ गया। कवि लोग कुमुदिनी को चद्रमा की प्रेमिका मानते हैं। इसी प्रकार चकोर का भी चद्रमा से प्रेम प्रसिद्ध है।

चद्रमललाम-शिव, महादेव। उ० चपरि चढ़ायो चाप चद्रमाललाम को। (क० १।९)

चद्रमौलि-शिव, महादेव, मस्तक पर चद्रमा को धारण करनेवाला। उ० उरधरि चद्रमौलि वृषकेतू। (मा० १।६४।४)

चंद्रहास-(सं०)-१ तलवार, खग, २ रावण की तलवार का नाम, ३ चमेली, ४ कुमुदिनी। उ० २ चद्रहास हर मम परिताप। (मा० ५।१०।३)

चंद्रिका-(स०)-चाँदनी, चद्रमा का प्रकाश, ज्योत्स्ना। उ० कहँ चद्रिका चदु तजि जाइ। (मा० २।९७।३)

चपक-(स०)-मझोले कद का एक पेड़ या उसका फूल। फूल हलके पीले रग के होते हैं, जिनमें बड़ी तेज गध होती है। ऐसा प्रसिद्ध है कि चपक के पुष्प पर भ्रमर नहीं बैठते। उ० जनु तनु द्युति चपक कुसुममाल। (वि० १४)

चँवर-दे० 'चवँर'।

च-(स०)-१ कच्छप, कछुआ, २ चद्रमा, ३ चोर, ४ दुर्जन ५ और, तथा। उ० ५ मगलानां च कर्त्तारौ वदे वाणी विनायकौ। (मा० १।१। श्लो० १)

चउदह-(स० चतुर+दश)-चौदहा, चौदह। उ० चउदह

तुलसी तुहि पीनत सुख जीवत पय सप्रेम घनी घैया। (गी० १।१७)
घैया (२)–(?)–ओर, तरफ़, दिशा।
घैरु–(?)–१ निन्दामय चर्चा, बदनामी, २ चुगुली, गुप्त शिकायत, ३ कहर, हाहाकार। उ० ३ समुझि तुलसीस कपिकर्म घर घर घैरु। (क० ६।१४)
घोर (१)–(सं०)–१ भयंकर, डरावना, २ सघन, दुर्गम, ३ कठिन, कड़ा, ४ गहरा, गाढ़ा, ५ बुरा, ६ अधिक, ज्यादा। उ० १ पाप संताप घनघोर संसृति दीन भ्रमत जगयोनि नहिं कोपि त्राता। (वि० ११) घोरतर–अधिक घोर। दे० 'घोर (१)'।
घोर (२)–(सं० घुर)–गर्जन, ध्वनि, शब्द।
घोर (३)–(सं० घोटक)–घोड़ा, अश्व।
घोरत (१)–(सं० घोर)–१ गरजते हैं, शब्द करते हैं, २ शब्द करते हुए। उ० २ सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रँगमगे सृंगनि। (गी० २।५०) घोरि (१)–(सं० घोर)–१ गरज, भीषण शब्द करना, २ ध्वनि करना। उ०१ बरषैं मुसलाधार बार बार घोरि कै। (क० ५।१५) घोरि घोरी (१)–(सं० घोर)–१ गरज गरजकर, घोर शब्द करके, २ ध्वनि करके। उ० १ कद बृंद बरषत छबि मधुर घोरि घोरी। (गी० ७।७)
घोरत (२)–(सं० घूर्णन)–१ घोलते हैं, मिलाते हैं, २ घोलते हुए। घोरि (२)–(सं० घूर्णन)–घोलकर, किसी द्रव पदार्थ में मिलाकर। उ०देउ आपने हाथ जल मीनहिं माहुर घोरि। (दो० ३१७) घोरि घोरी (२)–(सं० घूर्णन)–घोल घोल कर, द्रव में मिला मिला कर। घोरी (२)–(सं० घूर्णन)–१ घोला, किसी द्रव में मिलाया, २ घोलकर, मिलाकर। उ० २ देति मनहुँ मधु माहुर घोरी। (मा० २।२२।२) घोरे (२)–(सं० घूर्णन)–घोला, मिलाया।

घोरमारी–महामारी; ताऊन, हैजा आदि रोग। उ० ईति अति भीति-ग्रह प्रेत चौरानल-व्याधि बाधा समन घोरमारी। (वि० २८)
घोरसारही–(सं० घोटक+शाला)–घोड़सार में ही, घोड़ा बाँधने के स्थान में ही। उ० हाथी हथिसार जरे, घोरे घोरसारहीं। (क० ५।२३)
घोरा (१)–(सं० घोर)–दे० 'घोर (१)' तथा 'घोर (२)'।
घोरा (२)–(सं० घोटक)–घोड़ा। उ० हाथी छोरो, घोरा छोरो, महिष वृषभ छोरो। (क० ५।१६) घोरी (१)–घोड़ी, घोड़ा की स्त्री। घोरे (१)–घोड़े, अश्व। उ० चारु राहिं मग चलहिं न घोरे। (मा० २।१४३।३)
घोरी (३)–(सं० घोर)–१ भयकर, २ घना, सघन, ३ कठिन, कड़ा, ४ गहरा, ५ बुरा।
घोष–(सं०)–१ ग्वाला, गोप, अहीर, २ अहीरों की बस्ती, ३ गोशाला, गौओं के रहने का स्थान, ४ तट, किनारा, ५ शब्द, आवाज़, ६ उच्च स्वर से किसी बात की घोषणा, ज़ोर-ज़ोर से कहना।
घोषु–दे० 'घोष'।
घोस–दे० 'घोष'।
घोसु–दे० 'घोष'। उ० ६ प्रभु-सिरुपन रमत हुँ नित राम नामहिं घोसु। (वि० १५१)
घौरि–(?)–फूल या फलों का गुच्छा। उ० तोरन बितान पताक चामर धुज सुमन फल घौरि। (गी० ७।१८)
घ्न–(सं०)–मारनेवाला, हरण करनेवाला, मारक। जैसे शत्रुघ्न, कृतघ्न।
घ्राण–(सं०)–१ नाक, नासिका, २ सूँघने की शक्ति, ३ गंध, सुगंध, ४ सूँघना।
घ्रान–दे० 'घ्राण'। उ० १ ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा। (मा० १।११८।४)

# च

चंग (१)–(फ़ा०)–१ डफ के आकार का एक छोटा सा बाजा, मुरचंग, २ सितार का चढ़ा हुआ सुर, ३ जिद, हठ।
चंग (२)–(?)–पतंग, गुड्डी, कागज़ और बाँस की पतली सीकियों से बनी एक चीज़ जिसे डोरे में बाँधकर उड़ाते हैं। उ० चढ़ी चंग जनु खैंच खेलार। (मा० २।२४०।३)
चंगु–(सं० चतुर्+अंगुल)–१ चार अंगुलियाँ, चंगुल, पंजा, २ पकड़, वश, अधिकार। उ० १ चरग चंगुगत चातकहि नेम प्रेम की पीर। (दो० ३०१)
चंगुल–(सं० चतुर्+अंगुल)–१ चार अंगुलियाँ, पंजा, २ अधिकार, पकड़, वश। उ० १ गहि चंगुल चातक चतुर डार्यो बाहिर बारि। (दो० ३०३)
चंचरीक–दे० 'चचरीक'। उ० कोशलेंद्र नव-नील कंजाभ तनु मदनरिपु-कंजहृद्-चंचरीकं। (वि० ४६) चंचरीक–(सं०)–भ्रमर, भौंरा। उ० चंचरीक जिमि चंपक बागा। (मा० २।१२४।४)
चंचल–(सं०)–१ चलायमान, हिलता-डोलता, अस्थिर, २ अधीर जो एकाग्र न हो, ३ घबराया, उद्विग्न, ४ नटखट, चुलबुला, ५ वायु, हवा, ६ पारा, ७ बेनाई, ८ लोल। उ० १ कपि चंचल सबहीं विधि हीना। (मा० ५।७।४) ६ चंचल तिय भ्रमु भ्रमन हरि नो चाहहिं परधाम। (स० २८०) ८ रवि चंचल अरु महा द्रव बाँध सु-नाम विचारि। (स० २६४)
चंचला–(सं०)–१ लक्ष्मी, २ बिजली, ३ स्त्री, बामा। उ० ३ चंचल महितउर चंचला अत बब गुन जाय। (स० २५५)

चंचु-(सं०)-१ चोंच, चिड़ियों का मुँह, ठोर, २ मृग, हिरन, ३ रेंड का पेड़। उ० १ चरग चंचु गत जातकहिं नेम प्रेम की पीर। (स० १०३)
चंड-(सं०)-१ तेज, प्रखर, घोर, २ बलवान, शक्तिशाली, ३ कठोर, कठिन, विकट, ४ क्रोधी, उद्दत, ५ गर्मी, ६ एक दैत्य जिसे दुर्गा ने मारा था। उ० १ चंड वेग-सायक नौमि राम भूप। (वि० ५२) ६ चंड भुजदंड-खंडनि विहंडनि, महिषमद-भंग करि अंग तोरे। (वि० १५)
चंडकर-(सं०)-तीक्ष्ण किरणवाला, सूर्य। उ० चंदिनि कर कि चंडकर चोरी। (मा० २।२६५।३)
चंडाल-(सं०)-१ चांडाल, श्वपच, डोम। मनु के अनुसार शूद्र पिता और ब्राह्मणी माता से उत्पन्न हुई संतान जो अत्यन्त नीच मानी जाती है। २ कुकर्मी, पतित, दुरात्मा।
चंडाला-दे० 'चंडाल'। उ० सपदि होहि पच्छी चंडाला। (मा० ७।११२।८)
चंडिका-(सं०)-१ दुर्गा, काली, देवी, २ लड़ाकी या क्रोध करनेवाली स्त्री, कर्कशा।
चंडी-(सं०)-दे० 'चंडिका'।
चंडीपति-महादेव, शिव।
चंडीश-(सं०)-शिव, महादेव।
चंडीस-दे० 'चंडीश'। उ० चंड बाहुदंड बल चंडीस कोदंड खंड्यौ। (क० १।२१)
चंडोल-(?)-एक प्रकार की पालकी जो हाथी के हौदे की तरह खुली और बड़े के ऊपर छाई रहती है। चौपहला।
चंद (१)-(सं०)-चंद्रमा, चाँद, शशि। उ० आननु सरद चंद छबि हारी। (मा० १।१०६।४) चंदनिशि-(सं० चन्द्र+निशि)-चाँदनी रात। उ० चक्कइहि सरद चंदनिसि जैसें। (मा० २।६४।१) चंदवदन-चंद्रमा के समान सुन्दर मुख। चंदवदनि-चंद्रमा की तरह सुन्दर मुखवाली स्त्री, चंद्रमुखी। उ० चंदवदनि दुखु कानन भारी। (मा० २।६३।४) चंदवदनियाँ-चन्द्रमा की तरह सुन्दर मुखवाली स्त्रियाँ। उ० सुनि कुलवधू झरोखनि झाँकति रामचंद्र-छबि चंदवदनियाँ। (गी० १।३१)
चंद (२)-(फ़ा०)-थोड़े से, कुछ।
चंदन-(सं०)-एक पेड़ जिसके हीर की लकड़ी बड़ी सुगंधित होती है। इस पेड़ की लकड़ी या उसके हीर या पानी मिलाकर घिसे लेप को भी चंदन कहते हैं। पूजा आदि में उसका उपयोग होता है। लोग इसके लेप का शीश, बाहु, कंठ तथा उर आदि में तिलक भी लगाते हैं। उ० मृगमद चंदन कुंकुम कीचा। (मा० १।१९४।४)
चंदिनि-दे० 'चंदिनी'। उ० जय जय भगीरथ नंदिनि, मुनिचय चकोर चंदिनि। (वि० १७)
चंदिनी-चाँदनी रात, उजेली रात। उ० चारु अकलंक सरद-चंद चंदिनी। (गी० २।४३)
चंदु-दे० 'चंद (१)'। उ० रामचंद्र मुख चंदु निहारी। (मा० २।१।३)
चंदू-दे० 'चंद(१)'। उ० दलि भानुकुल कैरव चंदू। (मा० २।१२२।१)
चँदोवा-(सं० चंद्रा)-एक प्रकार का छोटा मंडप जो राजाओं या वर के आसन के ऊपर तना रहता है। चँदवा, वितान। उ० रतनदीप सुठि चारु चँदोवा। (मा० १।२८६।२)
चंद्र-(सं०)-१ चंद्रमा, शशि, २ सोना, स्वर्ण, ३ मोर की पूँछ की चंद्रिका, ४ कपूर, ५ सुंदर, ६ एक द्वीप, उ० १ रामचंद्र चंद्र तू! चकोर मोहिं कीजै। (वि० ८०)
चंद्रअवतंस-चन्द्रमा जिसके भूषण हों, महादेव, शिव।
चंद्रअवतंसा-दे० 'चंद्रअवतंस'। उ० भए प्रसन्न चंद्र अवतंसा। (मा० १।८८।३)
चंद्रभूषण-(सं०)-महादेव, शिव।
चंद्रभूषन-दे० 'चंद्रभूषण'। उ० सित पाख बाढ़ति चंद्रिका जनु चंद्रभूषण भालहीं। (पा० ६)
चंद्रमहि-चंद्रमा को, चाँद को। उ० बक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू। (मा० १।२८१।३) चंद्रमा-(सं० चंद्रमस्)-१ चाँद, शशि, २ एक मुनि। उ० २ मुनि एक नाम चंद्रमा ओही। (मा० ४।२८।३) कथा-पुराणानुसार चंद्रमा समुद्र मंथन के समय निकले चौदह रत्नों में से एक हैं। मंथन के बाद एक असुर देवों की पंक्ति में बैठकर अमृत पी रहा था। चंद्रमा और सूर्य ने इसका पता विष्णु को दिया तो विष्णु ने उसके दो खंड कर दिए, पर वह अमृत पी चुका था अतः दोनों खंड जीवित रहे और राहु-केतु कहलाए। उसी पुराने बैर से राहु चंद्रमा को ग्रसता है जिसे ग्रहण कहा जाता है। चंद्रमा के बीच के धब्बे के संबंध में कई तरह की बातें प्रचलित हैं। १ चंद्रमा ने अपनी गुरुपत्नी के साथ भोग किया था, अतः शापवश काला दाग पड़ गया। २ अहल्या का सतीत्व भंग करने में चंद्रमा ने मुर्गा बनकर इंद्र की सहायता की थी, अतः गंगा से लौटने पर क्रोधित होकर गौतम ने त्रिशूल या कमंडल और मृगचर्म से उन्हें मारा और दाग पड़ गया। कवि लोग कुमुदिनी को चंद्रमा की प्रेमिका मानते हैं। इसी प्रकार चकोर का भी चंद्रमा से प्रेम प्रसिद्ध है।
चंद्रमललाम-शिव, महादेव। उ० चपरि चढ़ायो चाप चंद्रमाललाम को। (क० १।६)
चंद्रमौलि-शिव, महादेव, मस्तक पर चंद्रमा को धारण करनेवाला। उ० उरधरि चंद्रमौलि वृषकेतू। (मा० १।६४।४)
चंद्रहास-(सं०)-१ तलवार, खड्ग, २ रावण की तलवार का नाम, ३ चमेली, ४ कुमुदिनी। उ० २ चंद्रहास हर मम परिताप। (मा० ५।१०।३)
चंद्रिका-(सं०)-चाँदनी, चंद्रमा का प्रकाश, ज्योत्स्ना। उ० कहँ चंद्रिका चंदु तजि जाई। (मा० २।६७।२)
चंपक-(सं०)-मझोले कद का एक पेड़ या उसका फूल। फूल हलके पीले रंग के होते हैं, जिनमें बड़ी तेज गंध होती है। ऐसा प्रसिद्ध है कि चंपक के पुष्प पर भ्रमर नहीं बैठते। उ० जनु लसत दुति चंपक कुसुममाल। (वि० १४)
चँवर-दे० 'चमर'।
च-(सं०)-१ कच्छप, कछुआ, २ चंद्रमा, ३ चोर, ४ दुर्जन ५ और, तथा। उ० ५ मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ। (मा० १।१। श्लो० १)
चउहट्ट-(सं० चतुर+हट्ट)-चौराहा, चौहट। उ० चउहट्ट

हृष्ट सुभट वीथीं चारु पुर बहुविधि बना। (मा० ४।३। छ० १)
चए-(सं० चयन)-समूह, राशि, ढेर। उ० नाचहिं नभ अपसरा मुदित मन पुनि पुनि बरषहिं सुमन चए। (गी० १।३)
चक (१)-(सं० चक्र)-१ चकई नाम का खिलौना, २ चक्रवाक पक्षी, चकवा, ३ चक्र नाम का अस्त्र, चक्का, पहिया, ४ भूमि का एक भाग, ६ छोटा गाँव, ७ अधिकार, दखल, ८ भरपूर, अधिक, ज्यादा। उ० १ खेलत अवध खोरि, गोली भौंरा चकडोरि। (गी० १।४१) २ सपति चकई भरतु चक, मुनि आयस खेलवार। (मा० २।२१५)
चक (२)-(सं०)-चकपकाया हुआ, भौचक्का, भ्रांत।
चकइहि-चक्ई को। उ० चकइहि सरद चंद निसि जैसें। (मा० २।६४।१) चकई (१)-(दे० 'चकवा') चकवा की स्त्री। उ० सरद चंद चंदिनि लगत जनु चकई अकुलानि। (मा० २।७८)
चकई (२)-(सं० चक्र)-घिरनी या गड़ारी के आकार का एक खिलौना जिसके घेरे में डोरी लपेटकर लड़के नचाते हैं।
चकचौंधी-(सं० चक् (=चमकना)+चक्षु, प्रा० चउ+अंध)-चकाचौंध, अधिक चमक के कारण पूरी आँख से न देख सकना, प्रकाशाधिक्य के कारण नजर का न ठहरना। उ० चाहे चकचौंधी लागै, कह्यौ का तोही? (गी० २।२०)
चकडोरि-(सं० चक्र+डोर)-चकई नामक खिलौने में लपेटा हुआ सूत। चकई और उसे नचाने का सूत या डोरा। उ० खेलत अवध खोरि, गोली भौंरा चकडोरि। (गी० १।४१)
चकवा-(सं० चक्रवाक) नदियों या जलाशयों के किनारे रहने वाले एक प्रकार के पक्षी। इस पक्षी के जोड़ों में बड़ा प्रेम रहता है, पर ऐसा प्रसिद्ध है कि रात्रि के समय ये अलग अलग हो जाते हैं। इसी कारण चाँदनी रात इन्हें बहुत सताती है। चकवा चकई को लेकर कवियों ने बहुत कुछ कहा है।
चकार-(सं०)-किया, बनाया। उ० भाषा बद्धमिदं चकार तुलसी दासस्तथा मानसम्। (मा० ७।१३१। श्लो० १)
चकि-चकित होकर, विस्मित होकर। उ० तुलसी प्रभुसुख निरखि रही चकि, रह्यो न सयानप तन मन ती के। (कृ० १०)
चकित-(सं०)-१ चकपकाया हुआ, विस्मित, भौचक्का, हैरान, घबराया हुआ, २ चौकन्ना, सावधान, सशंकित, ३ डरपोक, कायर, ४ आशंका, व्यर्थ भय, ५ कायरता। उ० १ चकित विप्र सब सुनि नभबानी। (मा० १।१७४।३)
चकैं-१ चकित होते हैं, २ चकित होकर। उ० १ अब लोकि अलौकिक रूप मृगी मृग चौंकि चकैं चितवैं चित दै। (क० ७।२७)
चकोट-(?)-चुटकी काटना, चिकोटी काटना, चिउँटी काटना। उ० चपल चपेट चोट चरन चकोट चाहैं। (क० ६।४०)
चकोर-(सं०)-एक प्रकार का बड़ा पहाड़ी तीतर। इसके ऊपर का रंग कुछ कालिमा लिए होता है, जिन पर सफेद चित्तियाँ होती हैं। भारत में यह प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। इसे चन्द्रमा का प्रेमी कहा जाता है। रात को यह चन्द्रमा की ओर उड़ता है। इसका चन्द्रमा के प्रति प्रेम इतना विचित्र है कि लोक-प्रसिद्धि के अनुसार यह आग की चिनगारी को चन्द्रमा की किरण समझकर खा जाता है। यह चन्द्रमा के प्रति अपने प्रेम के लिए प्रसिद्ध है। उ० पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर। (मा० २।८३) चकोरी-चकोर की स्त्री। दे० 'चकोर'। उ० चंदकिरन रस रसिक चकोरी। (मा० २।२६।४)
चकोरक-दे० 'चकोर'। उ० केसरी चारु लोचन चकोरक सुखद, लोकगन-सोक सतापहारी। (वि० २५)
चकोरा-दे० 'चकोर'। उ० रामचंद्र मुख चंद चकोरा। (मा० २।११५।३)
चकोरू-दे० 'चकोर'। उ० भनु तव आनन चंद चकोरू। (मा० २।२६।२)
चक्क (१)-(सं० चक्र)-१ चक्र, पहिया, २ चाक का वर्तन बनाने के लिए कुम्हारों का चपटा गोला पत्थर का टुकड़ा, ३ चक्कर, ४ सुदर्शन चक्र, विष्णु का एक हथियार।
चक्क (२)-(सं० चक्रवाक)-चकवा पक्षी। उ० चाक चक्कि जिमि पुर नर नारी। (मा० २।१८६।१)
चक्कवइ-दे० 'चक्कवै'। उ० ससुर चक्कवइ कोसल राऊ। (मा० २।६८।२)
चक्कवनि-चकवों को, चक्रवाक पक्षियों को। उ० ज्यों चकोर चय चक्कवनि तुलसी चाँदनि राति। (दो० ११४)
चक्कवै-(चक्रवर्तिन्)-चक्रवर्ती राजा, आसमुद्रांत पृथ्वी का राजा। उ० चक्कवै-लोचन राम रूप-सुराज-सुख भागी भए। (जा० १५३)
चक्कि-चक्ई, चकवा की स्त्री। उ० दे० 'चक्क'।
चक्र-(सं०)-१ सुदर्शन चक्र, विष्णु का अस्त्र विशेष, २ पहिए के आकार का एक लौह अस्त्र, ३ पहिया, चक्का, ४ कुम्हार का चाक, ५ चकवा पक्षी, ६ सेना, दल, झुंड, ७ एक समुद्र से दूसरे समुद्र तक फैला हुआ प्रदेश, ८ धोखा, भुलावा, ९ आवर्त, घुमाव, १० गाँवों का समूह, ११ वृत्त, घेरा १२ दिशा, प्रांत, १३ पहुआ, १४ मोड़, १५ राजचक्र, राजपुरुषों के साथ राजा। उ० १ कालदंड, हरिचक्र कराला। (मा० ७। १०१।७) १५ कलि-कुचालि सुभ मति हरनि, सरलै दंडै चक्र। (दो० ५१७)
चक्रधर-(सं०)-१ जो चक्र धारण करे, २ विष्णु, ३ राजा, ४ सर्प, साँप, ५ कृष्ण, ६ बाज़ीगर इन्द्रजाल करनेवाला। उ० २ देहि अवलंब न विलंब अंभोज-कर चक्रधर तेज-बलधाम-रासी। (वि० ६०)
चक्रपाणि-(सं०)-जिसके हाथ में चक्र हो। विष्णु।
चक्रपानि-दे० 'चक्रपाणि'। उ० बारी बरानसी बिनु कहे चक्र चक्रपानि। (क० ७।१७२)
चक्रपानी-दे० 'चक्रपाणि'। उ० दुष्ट, समरण स्वपक्ष बिगत श्रुति-स्वपरमति सब बिगति चक्रपानी। (वि० ५७)

चक्रवर्ति-दे० 'चक्रवर्त्ती'। उ० चक्रवर्ति के लच्छन तोरें। (मा० १।१५१।२)

चक्रवाक-दे० 'चक्रवाक'। उ० चक्रवाक बक खग समुदाई। (मा० ३।४०।२)

चक्रवर्ति-दे० 'चक्रवर्त्ती'।

चक्रवर्त्ती-(सं० चक्रवर्त्तिन्)-बहुत बड़ा राजा, आसमुद्रांत पृथ्वी पर राज्य करनेवाला। उ० जयति रुद्राग्रणी, विश्व विद्याग्रणी, विश्वविख्यात भट चक्रवर्त्ती। (वि० २७)

चक्रवाक-(सं०)-चकवा पक्षी। उ० देखिअत चक्रवाक खग नाहीं। (मा० ४।१५।५)

चक्राकुल-(सं०)-१ भँवर से भरा हुआ, २ जहाँ बहुत कछुये हों। चक्राकुला-(सं०)-१ भँवरवाली, २ कछुओं से भरी हुई। उ० १ मकर षड्वर्ग, गो नक्र चक्राकुला, कूल शुभ अशुभ दुखतीव्र धारा। (वि० ५६)

चकित-चकित, अचंभित।

चक्षु-(सं०)-आँख, नेत्र।

चख-(सं० चक्षु)-आँख, नेत्र। उ० लेहि दससीस अब बीस चख चाहि रे। (क० ६।१६) चखकोर-कटाक्ष कृपादृष्टि। उ० कीजै राम बार यहि मेरी ओर चखकोर। (क० ७।१२३) चख चारिको-दे० 'चख चारिखो'। चख चारिखो-दो भीतर और दो बाहर चार आँखवाला। बुद्धिमान्। चखपूतरि-दे० 'चषपूतरि'।

चट (१)-(सं० चटुल)-तुरत, जल्दी से, झट, शीघ्र।

चट (२)-(सं० चित्र)-१ दाग, धब्बा, २ ऐब, दोष।

चटक-(सं०)-गौरैया, गौरा पक्षी। उ० ते नृप अजिर जानुकर धावत धरन चटक चल काग। (गी० १।२६)

चटकन-(अ०)१ तमाचा, थप्पड़, २ चट-चट की ध्वनि, चटकना। उ० १ बिकट चटकन चपट, चरन गहि पटक महि। (क० ६।४६)

चटाक-(अ०)-तोड़ने का शब्द, लकड़ी आदि टूटने का शब्द। चटाक दै-चट से, तोड़ने का शब्द करके। उ० महाभुज दंड द्वै अंड कटाह चपेट की चोट चटाक दै फोरौं। (क० ६।१४)

चढ़-१ चढ़कर, ऊपर जाकर, उन्नति कर, २ असर कर, ३ देवता की भेंट चढ़कर, ४ आक्रमण कर। उ० १ मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई। (मा० ४।२६।१) चढ़इ-(सं० उच्चलन)-१ चढ़ता है, ऊपर आता है, बढ़ता है, उन्नति करता है, २ असर करता है, ३ देवता आदि की भेंट चढ़ता है ४ आक्रमण करता है। उ० १ कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें। (मा० २।२०५।२) चढ़त-१ चढ़ता है उन्नति करता है, ऊपर आता है, २ असर करता है, प्रभावित करता है, ३ देवता की भेंट चढ़ता है, ४ आक्रमण करता है। उ० २ चढ़त न चातक-चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोस। (दो० २८१) चढ़ा-१ चढ़ गया, ऊपर चला गया, २ उन्नति की। दे० 'चढ़त'। उ० १ मुष्टिका मारि चढ़ा तरु जाई। (मा० ४।१६।४) चढ़ि-१ चढ़कर, २ चढ़ गए। उ० १ चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई। (मा० २।८३।१) चढ़िहहिं-चढ़ेंगे चढ़ेंगी। उ० प्रिय चढ़िहहिं पतिव्रत असिधारा। (मा० १।६७।२) चढ़ी-१ चढ़ गई, २ चढ़ी हुई। उ० १ बहुतक चढ़ीं अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान। (मा ७।३ ख) चढ़ी-१ चढ़ गई, २ चढ़कर, चढ़ी हुई। उ० २ चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नगर नारि नर बृंद। (मा० ७।८ ख) चढ़ु-चढ़ो, चढ़ जाओ। उ० चढ़ु मम सायक सैल समेता। (मा० ६।६०।३) चढ़े-ऊपर गए, बढ़े। उ० चढ़े दुर्ग पुनि जहँ-तहँ बानर। (मा० ६।४२।१) मु० चढ़े न हाथ-हाथ नहीं आता, हाथ नहीं लगता। उ० हरो चरो गाढ़ो दियो धन फिर चढ़ै न हाथ। (दो० ४५७) चढ़ेउ-चढ़े, चढ़ गए। उ० रन बाँकुरा बालिसुत तरकि चढ़ेउ कपि खेल। (मा० ६।४३) चढ़यो-१ चढ़ा, २ चढ़ा हुआ। उ० २ सीस बसै बरदा, बरदानि, चढ़यो बरदा, धरन्यौ बरदा है। (क० ७।१५५)

चढ़ाइ-१ चढ़ाकर, २ उन्नति कराकर। दे० 'चढ़त'। उ० १ रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु गएँ दिन चारि। (मा० २।८१) चढ़ाइन्हि-चढ़ायी। उ० भाथा बाँधि चढ़ाइन्हि धनहीं। (मा० २।१९१।२) चढ़ाइहि-१ चढ़ाया २ चढ़ावेगा। उ० २ जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि। (मा० ६।३।१) चढ़ाइहौं-चढ़ाऊँगा। उ० बर मारिए मोहि, बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू। (क० २।६) चढ़ाई-चढ़ाया। उ० कुअँरि चढ़ाई पालकिन्ह सुमिरे सिद्धि गनेस। (मा० १।३३८) चढ़ाई-१ चढ़ने की क्रिया या भाव, २ ऊँचाई की ओर ले जानेवाली धरती, ३ आक्रमण, धावा, ४ किसी देवता को अर्पण की हुई वस्तु, ५ चढ़ाकर, ६ चढ़ाया। उ० ५ कटि भाथी सर चाप चढ़ाई। (मा० २।६०।२) चढ़ाउब-१ चढ़ाऊँगा, २ चढ़ाना। उ० २ रहउ चढ़ाउब तोरब भाई। (मा० १।२५२।१) चढ़ाए-चढ़ाया। उ० करि बिनती रथ रामु चढ़ाए। (मा० २।८३।१) चढ़ावत-चढ़ाते, चढ़ाते हुए। उ० लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। (मा० १।२६१।४) चढ़ावा-चढ़ाया। उ० काहुँ न संकर चाप चढ़ावा। (मा० १।२५२।१) चढ़ावौं-चढ़ाऊँ। उ० कमल-नाल जिमि चाप चढ़ावौं। (मा० १।२५३।४)

चतुरंग-(सं०)-१ घोड़, हाथी, रथ और पैदल चार वर्गों में बटी हुई सेना। चतुरंगिनी, २ सेना के घोड़ा, हाथी, रथ और पैदल चार अंग। उ० २ सेन संग चतुरंग न थोरी। (मा० २।२२७।१)

चतुरंगिणी-(सं०)-हाथी घोड़े, रथ और पैदल चार अंगों वाली सेना।

चतुरंगिनि-दे० 'चतुरंगिणी'।

चतुरंगिनी-दे० 'चतुरंगिणी'। उ० चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हें। (मा० ३।३८।५)

चतुर-(सं०)१ टेढ़ी चाल चलनेवाला, २ फुरतीला, तेज़, ३ प्रवीण, होशियार, निपुण, ४ धूर्त, चालाक। उ० ३ चतुर गँभीर राम महतारी। (मा० २।१८।१)

चतुरता-चतुराई चतुर होने का भाव, होशियारी। उ० मोहि तोहि पर अति प्रीति सोइ चतुरता बिचारि तव। (मा० ३।१६२)

चतुराई-चतुरता, होशियारी, चतुर होने का भाव। उ० करहिं न भूप कपट चतुराई। (मा० २।२७।२)

चतुरानन-(सं०)-चार मुखवाला ब्रह्मा । उ० अगनित रबि ससि सिव चतुरानन । (मा० १।२०२।१)
चतुर्दश-(सं०)-चौदह ।
चतुर्दस-दे० 'चतुर्दश' । उ० सुभट चतुर्दस सहस-दलन त्रिसिरा खर दूषन । (क० ७।१३३)
चतुर्भुज-(सं०)-चार भुजावाला, विष्णु ।
चनक-(सं० चणक)-चना, रहिला, एक अन्न । उ० जानत हो चारि फल चारि ही चनक को । (क० ७।७३)
चना-(सं० चणक)-एक अन्न, रहिला, भूट । चना चबाय हाथ चाटियत-अत्यधिक कंजूसी करते । उ० गारी देत नीच हरिचंद हू दधीचि हू को, आपने चना चबाइ हाथ चाटियत है । (क० ७।६६)
चनार-(सं० कांचनार)-एक पेड़, कचनार । उ० बर बिहार चरन चारु पाँडर चंपक चनार करनहार बार पार पुर पुरगिनी । (गी० २।४३)
चप-अष्टाध्यायी का चप प्रत्याहार जिसमें क्रमशः च, ट, त, क अक्षरें आती हैं । उ० तुलसी चरन विकल्प तें और चप-भृतिय समेत । (स० २७१)
चपट-(सं०)-१ चपत, थप्पड़, २ धक्का धक्का । उ० २ चिक्करं चट्टक्न चपट, चरन गहि पटक महि । (क० ६।४६)
चपत (१)-(सं० चपट)-१ थप्पड़, तमाचा, २ धक्का, ३ हानि, नुकसान ।
चपत (२)-(सं० चपन)-१ दबता है, दबता हुआ, २ झेंपता है, शरमाता है, शरमाता हुआ । उ० २ निज करना करतूति भगत पर चपत चलत चरचाउ । (वि०१००)
चपरि-(सं० चपल)-१ शीघ्र तुरत, तेज़ी से, सहसा, २ साहस के साथ । उ० १ चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप हाँकि न होइ निबाहु । (मा० १।१५६)
चपल-(सं०)-१ चंचल, अस्थिर, बहुत हिलने डोलने वाला, २ क्षणिक, बहुत काल तक न रहनेवाला, ३ उतावला, जल्दबाज, ४ धृष्ट, चालाक, ५ पारा ६ पपीहा । उ० १ जद्यपि परम चपल श्री संतत, थिर न रहति कतहूँ । (वि० ८६)
चपलता-(सं०)-१ चंचलता, उतावली,२ धृष्टता, ढिठाई । उ० २ छमिहहु चूक चपलता मेरियै, तू बड़ो बड़ाई । (वि० ३५)
चपला-(सं०)-१ लक्ष्मी, २ बिजली । उ० २ चपला चमकै घन बीच जगै छबि मोतिन माल अमोलन की । (क० १।५)
चपेट-(सं० चपन)-१ चपत, तमाचा, थप्पड़ २ झोंका, रगड़ा, धक्का, आघात, धिस्सा, ३ दबाव, संकट, ४ डाँट, फटकार । उ० १ महाभुज-दंड द्वै अंडकटाह चपेट की चोट चटाक दै फोरौं । (क० ६।१७) चपेटन्हि-चपत, धक्के । उ० बानर भालु चपेटन्हि लागे । (मा० ६।३३।४)
चपेटे-चपेट का बहुवचन । दे० 'चपेट' । उ० १ चपरि चपेटे देत नित केस गहे कर मीचु । (दो० २४८)
चपेटा-दे० 'चपेट । उ० १ ग्राम सेहिं एक एक चपेटा । (मा० ४।२७।१)
चबेना-(सं० चर्वण)-चबाकर खाने के लिए सूखा या भुना हुआ अन्न । भूँजा, दाना । उ०जानेहु छेहहि मागि चबेना । (मा० २।३०।२)
चमंकहिं-(अनु० चमचम, चमकन)-चमकती हैं, चमक रही हैं । उ० बहु कृपान तरवार चमंकहिं । (मा० ६।८७।२)
चमकहिं-चमकते हैं ।
चमगादर-दे० 'चमगादुर' ।
चमगादुर-(सं० चर्मचटका)-एक उड़नेवाला जन्तु, चमगादड़ । उ० ते चमगादुर होइ अवतरहीं । (मा० ७।१२१।१७)
चमगीदड़-दे० 'चमगादुर' ।
चमर-दे० 'चँवर' । उ० १ ध्वज पताक पट चमर सुहाए । (मा० १।२८६।१)
चमुत-दे० 'मुचत' । उ० अति चमुत समकन मुखनि बिथुरे चिकुर बिलुलित हार । (गी० ७।१८)
चमुरु-(सं० चमूरु)-एक प्रकार का मृग ।
चमू-(सं०)-१ सेना, फौज, २ नियत संख्या की फौज जिसमें ७२९ हाथी, ७२९ रथ, २१८७ सवार, तथा ३६४५ पैदल होते हैं । उ० १ भीषम द्रोन-करनादि पालित, कालदृक, सुयोधन चमू निधन हेतू । (वि० २८)
चय-(सं०)-१ समूह, ढेर, राशि, २ टीला, दूह, ३. गढ़, किला, ४ चहार-दीवारी, कोट, ५ चबूतरा, ६ यज्ञ के लिए अग्नि आदि का एक विशेष संस्कार । उ० १ जय जय भगीरथ नंदिनि, मुनि चय चकोरचंदिनि । (वि०१७)
चयन (१)-(सं०)-१ इकट्ठा करने का कार्य, संग्रह २ चुनने का कार्य, चुनाई, ३ यज्ञ के लिए अग्नि का संस्कार ।
चयन (२) (सं० शयन (?))-१ चैन, सुख, आराम, २ आनंद के लिए, आनंद मनाने के लिए । उ० २ मानहुँ चयन मयन पुर आयउ प्रिय मधुराज । (गी० २।४०)
चये-दे० 'चय' ।
चर-(सं०)-१ राजा की ओर से नियुक्त आदमी जो गुप्त रूप से बातों का पता लगावे, २ दूत, किसी विशेष कार्य के लिए भेजा गया आदमी, ३. यह जो चले, चलनेवाला, जंगम, ४ कौड़ी, ५ खानेवाला, आहार करनेवाला । उ० ३ राम चराचर नायक अहहीं । (मा० २।७७।३)
चरनि (१)-(सं० चर)-चरों, दूतों । उ० चरचा चरनि सों चरची जानमनि रघुराइ । (गी० ७।२७)
चरइ-(सं० चर, फा० चरीदन)-चरता है, चर रहा है । उ० चरइ हरित तृन बलि पसु जैसें । (मा० २।२२।१)
चरत-(सं० चर,)-चरता है, खाता है । उ० बसत बिनहि पास सेमर-सुमन-आस, करत चरत तेइ फल बिनु हीर । (वि० १६७) चरति-चरती है खाती है । उ० चारिहि चरति करम कुकरम कर मरत जीवगन घासी । (वि०२४)
चरहिं-१ चरते हैं, खाते हैं, २ चलते हैं, विचरते हैं ३ खायँ, चरें, ४ विचरें, घूमें । उ० २ जेहि यस जन अनु चित करहि चरहिं बिस्व प्रतिकूल । (मा० १।२००)
चरग-(फा०)-एक प्रकार का बाज़ पक्षी । उ० चरग चंगु गत चातकहि नेम प्रेम की पीर । (दो० ३०१)
चरचा-दे० 'चर्चा' । उ० २ दे० 'चरनि' । चरचाउ-चर्चा भी । उ० निज करना करतूति भगत पर चपत चलत चरचाउ । (वि० १००) चरचौ-चरचा भी, जिक्र भी । उ० मिलि मुनिवृंद फिरत दंडकबन, सो चरचौ न चलाई । (वि० १६५)

चरची–१ बातें की, चर्चा की, २ पोता, लगाया, ३ भाँपा, अनुमान किया। उ० दे० 'चरनि'।
चरण–(सं०)–१ पग, पैर, पाँव, २ बड़ों की समीपता, ३ किसी छंद का एक पद, ४ मूल, जड़, ५ किसी चीज का चौथाई भाग, ६ गोत्र, ७ क्रम, ८ आचार, ९ घूमने की जगह, १० किरण, ११ गमन, जाना, १२ भक्षण, चरने का काम। उ० १ सिद्ध-सनकादि-योगींद्र वृंदारका विष्णु विधि वद्य चरणारविंद। (वि० १२)। ६ मरजादा चहुँ ओर चरन बर सेवत सुरपुर बासी। (वि०२२)
चरणपीठ–(सं०)–१ चरणपादुका, खड़ाऊँ, २ पैर का ऊपरी भाग।
चरणोदक–(सं०)–चरणामृत, पैर धोया पानी।
चरन–दे० 'चरण'। उ० १ तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह। (मा० ३।४५) चरनन्हि–चरणों, चरणों पर। उ० बार बार सिसुचरनन्हि परहीं। (मा० १।१६४।३)
चरनपीठ दे० 'चरणपीठ'। उ० १ चरनपीठ करुना निधान के। (मा० २।३१६।३)
चरना–दे० 'चरण'। उ० १ बदउँ संत असज्जन चरना। (मा० १।५।२)
चरनि (२)–(सं० चल)–चलना, चलने का भाव। उ० लसत कर प्रतिबिंब मनि आँगन घुटुरुवनि चरनि। (गी० १।२४)
चरनोदक–दे० 'चरणोदक'।
चरफराहिं–(?)–तड़फड़ाते हैं। उ० चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। (मा० २।१४३।३)
चरम (१)–(सं०) १ अंतिम, आखिरी, चोटी का, २ अंत, ३ पश्चिम। उ० १ चरम देह द्विज कै मैं पाई। (मा० ७।११०।२)
चरम (२)–(सं० चर्म)–१ चाम, त्वचा, खाल, २ ढाल, तलवार के घाव से बचने की वस्तु विशेष, ३ मृगचर्म, मृगछाला। उ० ३ चामर चरम बसन बहुभाँती। (मा० २।६।२)
चरवाहे–चरवाहे को। उ० ऐसे को ऐसो भयो कबहूँ न भजे बिन बानर के चरवाहे। (क० ७।१६)
चरवाहा–(सं० चर, फा० चरीदन)–चरवाहा, चरानेवाला। उ० कहूँ कोऊ भो न चरवाहो कपि भालु को। (क० ७।१७)
चरहि–१ भ्रमण करे, विचरे, घूमे, २ खाय, भोजन करे। उ० १ दुष्ट द्वैत-मति छाँड़ि चरहि महि-मंडल धीर। (वि० २०३) चरहीं–१ विचरते हैं, घूमते हैं, २ चरते हैं, खाते हैं। उ० १ बिरहित बैर मुदित मन चरहीं। (मा० २।१२४।४)
चरि–१ चलकर, भ्रमण कर, २ खाकर, चरकर। उ० २ धानि धेनु चरि धरम तिनु प्रज्ञा-सुत्वास पिन्हाइ। (स० ६६२) चरिए–१ चरने की क्रिया कीजिए, २ चलिए, भ्रमण कीजिए, ३ विचरता हूँ, भ्रमण करता हूँ। उ० ३ दुख सो सुख मानि सुखी चरिए। (मा०६।११११।१०)
चरै–१ भ्रमण करें, विचरण करें, २ खाय, भक्षण करे।
चराचर–(सं०)–१ चर और अचर, जड़ और चेतन, स्थावर और जंगम, २ जगत, संसार। उ० १ जीव चराचर जाचत तेही। (मा० ७।१२१।२) चराचरराया–चर और अचर का स्वामी, ईश्वर, भगवान्। उ० बोले बिहसि चराचरराया। (मा० १।१२८।३)
चरित–(सं०)–१ रहन-सहन, आचरण, २ काम, करनी, कृत्य, ३ किसी के जीवन की विशेष घटनाओं या कार्यों आदि का वर्णन, जीवनी, जीवन चरित, ४ कथा, वृत्तांत। उ० ४ चरित-सुर सरित कवि मुख्य गिरि नि सरित पियत मज्जत मुदित संत समाजा। (वि० ४४)
चरिता–दे० 'चरित'। उ० ४ जुगल पुनीत मनोहर चरिता। (मा० १।१५।१)
चरित्र–(सं०)–१ स्वभाव, व्यवहार, २ वह जो किया जाय, कार्य, ३ करनी, करतूत, ४ कथा, वृत्तांत, ५ भेद। उ० ५ सो चरित्र लखि काहुँ न पावा। (मा० १।१३३।४)
चरु (१)–(सं०)–१ यज्ञ या हवनादि के लिए पकाया अन्न, हविष्यान्न, २ वह पात्र जिसमें उक्त अन्न पकाया जाता है, ३ पशुओं के चरने की ज़मीन, ४ यज्ञ, ५ यज्ञ का भाग।
चरु (२)–दे० 'चर'।
चरुआ–दे० 'चरु (१)'।
चरू–दे० 'चरु (१)। उ० १ प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें। (मा० १।१८९।३)
चरेरीऐ–(अनु० चरचर)–१ कड़ा ही, कठोर ही, २ कटु ही, कर्कश ही। उ० २ यह मतकही चपल चेरी की निपट चरेरीऐ रही है। (कृ० ४२)
चर्चा–(सं०)–१ जिक्र, वर्णन, बयान, २ बात, वार्तालाप, ३ अफवाह, शोर, ४ लेपना, पोतना।
चर्चित–(सं०)–१ पोता हुआ, लगाया हुआ, लेपित, २ जिसकी चर्चा की गई हो। उ० १ स्याम सरीर सुचंदन चर्चित, पीत दुकूल अधिक छबि छाजति। (गी० ७।१७)
चर्म–(सं०)–१ चमड़ा, चाम, खाल, २ ढाल। उ० २ चर्म असिशूलधर, डमरु शर चाप कर, यान वृषभेश, करुणा निधान। (वि० ११)
चल (१)–(सं०)–१ चपल, अस्थिर, २ कंपन, कँपकपी, ३ कपट, छल, ४ दोष, बुराई, ५ विष्णु, ६ शिव, ७ पारा।
चल (२)–(सं० चलन)–१ चलने का भाव, चलना, चल सकना, २ चलो। उ० १ चल न ब्रह्मकुल सन बरि आई। (मा० १।१६५।३)
चलइ–(सं० चल)–चलता है, जाता है। उ० चलइ जोंक जल बक्रगति जद्यपि सलिलु समान। (मा० २।४२) चलई–चलता है, जाता है। चलउँ–१ चलूँ, २ चलता, जाता। उ० २ चलउँ भागि तब पूप देखावहि। (मा० ७।७७।५)
चलत–१ चलते हुए, जाते हुए, डोलते हुए, २ वश भर, ३ चलता है, जाता है, ४ मरते हुए, महाप्रयाण करते हुए, ५ मरता है। उ० ४ चलत न देखन पायउँ तोही। (मा० २।१६०।३) चलति–चलती है, चल रही है। उ० चलति चरन मग चमति सभीता। (मा० २।१२३।१)

चलतो–चलता, चला होता। उ० जो हौं प्रभु आयसु लै चलतो। (गी० ५।१३) चलत्–हिलते हुए, डोलते हुए, चलते हुए। उ० चलत्कुंडल भ्रू सुनेत्र विशाल। (मा० ७।१०८।४) चलब–१ चलूँगा, चलेंगे, २ चलना होगा। उ० १ जौं न चलब हम कहें तुम्हारें। (मा० १।१६६।४) चलहिं–१ चलते हैं, जाते हैं, २ चलें। उ० २ हम सँग चलहिं जो आयसु होई। (मा० २।११२।४) चलहीं–१ चलें, २ चलते हैं, जाते हैं। उ० २ तजि श्रुति पथु वाम पथ चलहीं। (मा० १।१६८।४) चलहु–चलो, चलिए। उ० चलहु सफल श्रम सब कर करहू। (मा० २।१३२।४) चला–चल पड़ा, निकला, आगे बढ़ा। उ० चला बिलोचन बारि बहाई। (मा० २।४४।२) चलि (१)–(सं० चल्)–१ चलकर, गमनकर, २ चलो, चलिए। उ० १ चरन राम तीरथ चलि जाहीं। (मा० २।१२६।३) चलिअ–चलिए। उ० बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति। (मा० ६।३१) चलिय–चलिए, गमन कीजिए। उ० प्रीति राम सों नीति पथ चलिय राग रिस जीति। (दो० ८६) चलिहउँ–चलूँगा। उ० चलिहउँ बनहि बहुरि पग लागी। (मा० २।५६।२) चलिहहिं–चलेंगे। उ० किमि चलिहहिं मारग अगम सुठि सुकुमार सरीर। (मा० २।१२०) चलिहि–चलेगी, जायगी। उ० पुरबासी सुनि चलिहि बराता। (मा० १।३३३।१) चलिहैं–चलेंगे। उ० जबै जमराज रजायसु तें मोहि लै चलिहैं भट बाँधि नटैया। (क० ७।५१) चलिहै–चलेगा। उ० जातें सब हित होइ कुसल कुल अचल राज चलिहै न चलायो। (गी० ६।२) चलिहौ–चलोगे। उ० पगनि कब चलिहौ चारौ भैया? (गी० १।६) चलीं–'चली' का बहुवचन। चलु–चलो। उ० अब चित चेति चित्रकूटहि चलु। (वि० २४) चले–चल पड़े, निकले, छूटे, प्रचलित हुए। उ० राम सरासन तें चले तीर, रहे न सरीर, हडावरि फूटी। (क० ६।३१) चलेउँ–चला, मैं चला। उ० सुमिरि राम रघुबंस मनि हरषित चलेउँ उड़ाइ। (मा० ७।११२ क) चलेउ–चला, चला गया, चल पड़ा। उ० चलेउ हरषि मम पद सिर नाई। (मा० ७।८२।३) चलेऊ–चले। उ० कपिन्ह सहित रघुपति पहिं चलेऊ। (मा० ५।२३।३) चलेसि–१ चल रहा है, चला जा रहा है, २ चला। उ० १ सो कह चलेसि मोहि निंदरी। (मा० ५।७।१) चलेहुँ–चलने से भी, चलने पर भी। उ० चलेहुँ कुमग पग परहिं न खालें। (मा० २।३१५।३) चलैं–चलते हैं। चलै–चलता है। उ० तेरी महिमा तें चलै चिंचिनी चियाँ रे। (वि० ३६) चलौ–१ चलने लगी, चले, २ चलो, चलिए। उ० १ चरन चोंच लोचन रँगौ, चलौ मराली चाल। (दो० ३३३) २ दे० 'चलिहौ'।

चलदल–(सं०)–पीपल का वृक्ष। उ० चलदल को सो पात करै चित चार को। (गी० १।६७)

चलन–१ चलने का भाव, गति, चलना, जाना, २ रिवाज, रस्म, व्यवहार, ३ प्रचार। उ० १ सकल चलन के साज जनक साजत भए। (जा० १८७)

चलनि–दे० 'चलन'। उ० १ परसपर खेलनि अजिर, उठि चलनि, गिरि गिरि परनि। (गी० १।२४)

चलनी–चलना, चलने की रीति। उ० राम बिलोकनि बोलनि चलनी। (मा० ७।२१।२)

चलाइ–१ चलाकर, बढ़ाकर, प्रचलित कर, २ चला, बढ़ा। उ० २ आगें किए निषादगन दीन्हेउ कटकु चलाइ। (मा० २।२०२) चलाइहि–१ चलावेगी, आरंभ करेगी, बढ़ावेगी, २ चलाया। उ० १ अरुंधती मिलि मैनहि बात चलाइहि। (पा० ८८)

चलाई–१ चलाया, चला दिया, बढ़ाया, शुरू किया, २ चलने का भाव, चलना। उ० १ केवट पारहि नाव चलाई। (मा० २।१५३।१) चलाए–१ चलाया, बढ़ाया, प्रचलित किया, २ चलाने से, हिलाने से, बढ़ाने से। उ० १ परम धीर नहिं चलहिं चलाए। (मा० १।१५४।२) चलायहु–१ चलाना, आरंभ करना, २ चलाया। उ० २ हिमाचल-गेह प्रसंग चलायहु। (पा० ८७) चलाये–दे० 'चलाए'। चलायो–१ चलाया, २ चलाने से। उ० २ दे० 'चलिहै'। चलावहिं–चलाते हैं, चला रहे हैं, फेंक रहे हैं, प्रचलित कर रहे हैं। उ० लंका सन्मुख सिखर चलावहिं। (मा० ६।४।३) चलावा–चलाया, फेंका, बढ़ाया, प्रचलित किया। उ० तकि तकि तीर महीस चलावा। (मा० १।१५७।२)

चलाकी–(फा० चालाकी)–होशियारी, चतुराई, चालाकी। उ० जोग कथा पठई ब्रज को, सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी। (क० ७।१३४)

चलि (२)–(सं०)–१ चादर, ओढ़नी, २ ढका हुआ, छुपा हुआ।

चलित–(सं०)–अस्थिर, चलायमान, चलता हुआ। उ० चलित महि मेरु उच्छलित सायर सकल, बिकल बिधि बधिर दिसि बिदिसि झाँकी। (क० ६।४४)

चवँर–(सं० चामर)–१ सुरा गाय की पूँछ के बालों का या अन्य बालों का डंडे में लगा हुआ गुच्छा जिसे पीछे या बगल से राजाओं या मूर्तियों के सिर पर डुलाया जाता है। २ घोड़ों और हाथियों के सिर पर लगाने की कलगी। उ० १ चवँर जमुन अरु गंग तरंगा। (मा० २।१०५।४)

चवइ–दे० 'चवै'। चवहीं–चुआ देते हैं, नीचे गिरा देते हैं, टपका देते हैं। उ० लता बिटप मागें मधु चवहीं। (मा० ७।२३।३) चवै–(सं० च्यवन)–१ चुवे, बरसे, गिरे, चूता है, गिरता है, २ बरसावे, गिरावे, चुवावे। उ० १ चंदु चवै बरु अनल कन सुधा होइ बिषतूल। (मा० २।४८)

चष–(सं० चक्षु)–आँख, नेत्र, नयन। चषचारिखो–दे० 'चख चारिखो'। उ० कूजा को कहैया और सुनैया चषचारिखो। (क० ७।१६) चषपूतरि–(सं० चक्षु+पुत्तली)–आँखों की पुतली, बहुत प्यारा।

चसु–दे० 'चष'।

चहँ–दे० 'चहुँ'।

चह–(सं० इच्छा का विपर्यय)–चाहता है, चाहे। उ० ना चहपार असतु दिवँ देस। (मा० २।७५।२) चहइ–चाहे, चाहता है। चहई–चाहे, चाहता है। उ० लोभि लालुप कल कीरति चहई। (मा० १।२६७।२) चहउँ–चाहता,

चाहता हूँ। उ० अनसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा। (मा० २।२६४।४) चहत-१ चाहता, चाहता है, चाहते हैं, २ जिसे चाहा जाय, जिसके साथ प्रेम किया जाय, ३ चाहिए। उ० १ मघवा महा मलीन, मुए मारि मंगल चहत। (मा० २।३०१) चहति-१ चाहती है, चाहती, २ देखती है। उ० १ यनी बात बेगरन चहति करिअ जतनु छलु सोधि। (मा० २।२१७) चहते-चाहते। उ० जौं जप-जाग-जोग ब्रत बरजित केवल प्रेम न चहते। (वि० ९७) चहनि-चाहना, प्रेम करने का भाव। उ० तुलसी तजि उभय लोक राम-चरन चहनि। (गी० २।८१) चहसि-चाहता है, चाहती है। उ० महा मंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि? (दो० १५६) चहसी-चाहता है, चाहती है। उ० छोटे बदन बात बड़ि चहसी। (मा० ६।३१।४) चहहिं-चाहते हैं। उ० रासु चहहिं संकरधनु तोरा। (मा० १।२४८।१) चहहीं-चाहते हैं। उ० नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं। (मा० १।२१८।२) चहहुँ-चाहता हूँ। चहहु-चाहो, चाहते हो। उ० पठवहु जौं चहहु भलाई। (मा० ५।३६।४) चहहू-चाहते हो, चाहती हो। उ० जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। (मा० २।१००।४) चहिबा-१ चाहना, २ चाहता है, ३ चाहना है, ४ चाहिए, चाहना होगा। उ० ४ सोखि कै खेत कै, बाँधि सेतु करि, उतरिबो उदधि न बोहित चहिबो। (गी० ५।१४) चहिय-चाहिए, आवश्यकता है। उ० तुलसी जो राम पद चहिय प्रेम। (वि० २३) चहिहौं-चाहूँगा। उ० मोको अगम, सुगम तुम्ह को प्रभु! तउ फल चारि न चहिहौं। (वि० २३१) चहैं-चाहैं चाहते हैं। चहै-चाहे चाहते हैं। उ० उपजा जब ग्याना, प्रभु मुसकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै। (मा० १।१९२।छं० ३) चहैगो-चाहेगा। उ० तोहि बिनु मोहि कबहूँ न कोउ चहैगो। (वि० २५१) चहौं-चाहूँ, चाहता हूँ। चहौंगो-चाहूँगा। चहौं-चाहूँ, चाहता हूँ। उ० जूठनि को लालची चहौं न दूध नहो हौं। (वि० २६०) चहौंगो-चाहूँगा, इच्छा करूँगा। उ० यथालाभ संतोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो। (वि० १७२) चह्यो-१ चाहना, २ प्रेमी, ३ जिसको चाहा जाय या चाहा गया हो, ४ चाहता हूँ। उ० १ अनत चह्यो न भलो, सुपथ सुचाल चल्यो। (वि० २६०)

चहुँ-(सं० चतुर)-चार, चारों। उ० मरजादा चहुँ ओर चरन बर सेवत सुरपुर बासी। (वि० २२)

चहूँ-दे० 'चहुँ'। उ० चितवति चकित चहूँ दिसि सीता। (मा० १।२३२।१)

चाँउर-(सं० तंडुल)-चावल। छिलका उतारा हुआ धान।

चाँकी-[चाँकना-(सं० चतुर + अंक)-खलिहान में अनाज की राशि पर मिट्टी, राख या ठप्पे से निशान लगाना जिससे यदि कोई निकाले तो ज्ञात हो जाय। सीमा बाँधने के लिए किसी वस्तु को रखा या चिह्न खींचकर चारों ओर से घेरना, हद बाँधना] हद बना दी गई है, सीमा बाँध दी गई है। उ० तिलक रेख सोभा जनु चाँकी। (मा० १।२१९।४)

चाँचर-दे० 'चाँचरि'। चाँचरि-(सं० चर्चरी) बसंत ऋतु में गाया जानेवाला एक राग। होली, फाग आदि इसी के अंतर्गत हैं। उ० चाचरि झूमक कहँ सरस राग। (गी० ७।२२)

चाँड़-दे० 'चाड़'। उ० १ हित पुनीत सब स्वारथहि, अरि असुद्ध बिनु चाँड़। (दो० ३३०)

चाँद-(सं० चंद्र)-चंद्रमा, शशि। उ० चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि। (ब० १६)

चाँदिनि-१ चाँदनी, २ चंद्रमायुक्त।

चाँपत-(सं० चपन)-दबाते हैं, चाँपते हैं। चाँपन-चाँपना, दबाना। चाँपि-१ चाँपकर, दबाकर, २ दबा, कमकर। उ० २ सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू। (मा० १।१२६।४) चाँपी-१ दबाया, २ दबाकर। उ० १ कुबरी दसन जीभ तब चाँपी। (मा० २।२०।१) चाँपे-१ दबाए २. दबाने से। उ० २ चारिहू चरन के चपेट चाँपे चिपिटि गो। (क० ४।१)

चाउ-दे० 'चाऊ'। उ० ३ रोप्यो पाउँ चपरि चमू को चाउ चाहिगो। (क० ६।२३)

चाउर-दे० 'चाँउर'। उ० भारी भारी रावरे के चाउर से काँड़िगो। (क० ६।२४)

चाऊ-(सं० इच्छा>चाह>चाव)-१ प्रबल इच्छा, अभिलाषा, अरमान, २ प्रेम अनुराग, चाह, ३ उमंग, उत्साह, ४ आनंद। उ० ३ राम चरन आश्रित चित चाऊ। (मा० २।२३२।४)

चाकरी-(फा०)-१ नौकरी, पैसे के लिए कहीं काम करना, २ सेवा, खिदमत। उ० १ चाकरी न आकरी न खेती न बनिज भीख। (क० ७।६७)

चाका-(सं० चक्र)-१ पहिया, २ चाक। उ० १ सौरज धीरज तेहि रथ चाका। (मा० ६।८०।३)

चाकि-(सं० चतुर + अंक = चाँक)-घेरकर, अपने लिए सुरक्षित कर। उ० सकेलि चाकि राखी रासी, जाँगर जहान भयो। (क० ५।२२)

चाकी-दे० 'चाँकी'।

चाख (१)-(सं० चष्)-चख, चखकर, स्वाद लेकर। चाखा (१)-(सं० चष्)-१ चखता है, २ चखा, भोगा। उ० १ जो जस करइ सो तस फलु चाखा। (मा० २।२१९।२)

चाख (२)-(सं० चाष)-नीलकंठ पक्षी।

चाखा (२)-(सं० चाष)-नीलकंठ पक्षी।

चाटत-(अनु० चटचट = जीभ चलाने का शब्द)-चाटता, चाटता है। उ० चाटत रह्यो स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो। (वि० २२६)

चाड़-(सं० चंड)-१ प्रबल इच्छा गहरी चाह, २ उग्र, उद्धत, ३ बढ़ा-चढ़ा, श्रेष्ठ, ४ तुष्ट, संतुष्ट, ५ स्वार्थ। उ० १ तोरेँ धनुषु चाड़ नहिं सरई। (मा० १।२६६।२)

चातक-(सं०)-पपीहा, वर्षाकाल का एक प्रसिद्ध पक्षी, इसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह केवल स्वाती का बरसता जल पीता है। चाहे मर जाय पर और कोई पानी नहीं पी सकता। उ० धूम समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की। (वि० ९०) चातकही-चातक को। उ० हँसहि बक दादुर चातकही। (मा० १।९।१) चातकी-

चातक की स्त्री। उ० जनु चातकी पाइ जलु स्वाती। (मा० १।२६३।३)
चातकि–चातक की स्त्री। उ० जिमि चातक चातकि तृषित वृष्टि सरद रितु स्वाति। (मा० २।५२)
चातकु–दे० 'चातक'। उ० दे० 'घटि'।
चातुरी–(सं०)–१ चतुरता, चतुराई, २ छल, ३ चालाकी, धूर्तता, ४ शठता। उ० ३ सुनहु राम स्वामी सन, चल न चातुरी मोरि। (मा० ४।६)
चाप (१)–(सं०)–१ धनुष, कमान, २ दबाव, ३ आहट, पैर की आहट, ४ संकोच। उ० १ चम-असिशूलधर, डमरु शर चाप कर। (वि० ११)
चाप (२)–(?)–अनुमान अन्दाज़।
चापत–(सं० चपन)–१ चाँपते हैं, मीड़ते हैं, दबाते हैं, २ दबाते ही। उ० १ चापत चरन लखनु उर लाएँ। (मा० १।२२६।४) चापन–(सं० चपन)–१ दबाना, मीड़ना, पैर दबाना, २ कम करना। उ० १ लगे चरन चापन दोउ भाई। (मा० १।२२६।२) चापि(१)–(सं० चपन)–१ दबाकर, मीड़कर, २ दबा, छू। उ० १ पुलकि गात बोले वचन चरन चापि गह्यो। (मा० १।२५६) २ तिनकी न काम सकै चापि छाँह। (वि० ४६) चापी–दाबी, दबायी। चापौंगी–चाँपूँगी, दबाऊँगी। उ० याके चरन कमल चापौंगी, स्रम भए बाउ डोलाय्योंगी। (गी० २।६)
चापधर–धनुधारी, धनुष धारण करनेवाला।
चापमख–धनुषयज्ञ। उ० आए देखन चापमख सुनि हरषीं सब नारि। (मा० १।२२१)
चापलता–चंचलता, ढिठाई। उ० लघुमति चापलता कवि छमहूँ। (मा० ७।२०४।१)
चापा–दे० 'चाप (१)'। उ० १. राम धरी सिय भजेउ चापा। (मा० १।२६५।२)
चापि (२)–(सं० च + अपि)–और भी, फिर भी। उ० असुर सुर नाग नर यक्ष गंधर्व खग, रजनिचर सिद्ध ये चापि अन्ये। (वि० ५७)
चापू–चाप, धनुष। उ० भजेउ राम आपु भव चापू। (मा० १।२४।३)
चाम–(सं० चर्म)–खाल, चमड़ा। उ० ताके पग की पगतरी, मेरे तनु को चाम। (वै० ६७)
चामर (१)–(सं०)–दे० 'चँवर'। उ० चामर चरम बसन बहु भाँती। (मा० २।६।३)
चामर (२)–(सं० चामरी)–सुरा गाय, वह पहाड़ी गाय जिसकी पूँछ का चँवर बनता है।
चामर (३)–(सं० तन्दुल ?)–चावल।
चामीकर–(सं०)–१ सोना, स्वर्ण, २ धतूरा। उ० १ मनि चामीकर चारु थार सजि आरति। (पा० १२१)
चामुंडा–(सं०)–एक देवी का नाम जिन्होंने शुंभ और निशुंभ नामक दो दैत्यों का वध किया था। उ० चामुंडा नाना विधि गावहिं। (मा० ६।८८।४)
चाय (१)–(सं० चय)–संचय, समूह।
चाय (२)–(सं० इच्छा>चाह)–१ उत्साह, उमंग, आनंद, प्रेम, २ उत्कंठा, इच्छा, ३ शौक रुचि। उ० १ हनुमान सामानि कै अघाये चित चाय सों। (क० ५।२४)
चाय (३)–(सं० चतुर)–१ चार, २ चार अंगुल।
चार (१)–(सं० चतुर)–चार की संख्या, तीन और एक।
चार (२)–(सं०)–१ गति, चाल, २ बंधन, कारागार, ३ गुप्त दूत, चर, जासूस, ४ दूत, हलकारा, ५ सेवक, दास, ६ आचार, रीति, ७ प्यार। उ० ६ चले चित्रकूटहि भरतु चार चले तेरहूति। (मा० २।२७१) ४ लोभी लंपट चार गुमानी। (मा० ३।१७।८)
चार (३)–(?)–चुगुली खानेवाला, चुगला। उ० जे अपकारी चार, तिनकर गौरव, मान्य तेइ। (दो० ५५१)
चारण–(सं०)–भाट, बंदीजन, वंश की कीर्ति गानेवाली राजपूताने की एक जाति।
चारन–दे० 'चारण'।
चारा (१)–(सं० चर)–पक्षियों और पशुओं का खाना, घास आदि। उ० चारा चारु बाम दिसि लेई। (मा० १।३०३।१)
चारा (२)–(फा०)–१ उपाय, इलाज, २ वश।
चारा (३)–(?)–चालाक।
चारि–(सं० चतुर)–१ चार, दो और दो, २ अर्थ धर्म काम तथा मोक्ष आदि चार फल, ३ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीयावस्था, ४ अंडज, पिंडज, स्वेदज तथा उद्भिज आदि चार प्रकार के जीव, ५ दो भीतर तथा दो बाहर के चार नेत्र। उ० १ जग पतिव्रता चारि बिधि अहहीं। (मा० ३।५।६) चारिउ–चारों। उ० करत फिरत चारिउ सुकुमारा। (मा० १।२०३।२) चारिहुँ–चारों। उ० लागे मारु कपि चारिहुँ द्वारा। (मा० ६।७८।२) चारिहु–चारों। उ० चारिहु को छहु को नव को दस आठ को पाठ कुकाठ ज्यों फारै। (क० ७।१०४) चारिहूँ–चारों। उ० चारिहूँ बिलोचन बिलोकु तू तिलोक महँ। (वि० २५४) चारो–चारों। चारो (१)–सब के सब चार। उ० पतित पुनीत दीनहित असरन-सरन कहत श्रुति चारो। (वि० ६४) चारयो–चारो ही। उ० राम लखन भावते भरत रिपुदमन चारु चारयो भैया। (गी० १।८) चारयौ–चारों ही। उ० गयो छाँड़ि छल सरन राम की जो फल चारि चारयौ जनी। (गी० ५।४०) चारयौ–चारो ही।
चारिक–कोई चार, थोड़े से।
चारित–(सं०)–१ जो चलाया गया हो, २ स्वभाव, व्यवहार, ३ कुलाचार ४ भभके द्वारा उतारा हुआ अर्क।
चारिनु–चारा, घास आदि। उ० चालि धेनु चारिनु चरत, प्रजा सुबच्छ पेन्हाइ। (दो० ५१२)
चारिदस–चार और दस, चौदह। उ० बरष चारिदस बिपिन बसि करि पितु बचन प्रमान। (मा० २।५२)
चारिपद–चार पदवाला, चौपाया।
चारी (१)–(सं० चारिन्)–१ चलनेवाला, २ आचरण करनेवाला, ३ पैदल सिपाही।
चारी (२)–(सं० चारु)–सुन्दर, चारु।
चारी (३)–(सं० चतुर)–चार, चारो। उ० त्रिभुवन तिहुँ काल बिदित, बदत बेद चारी। (वि० ७८)
चारु (१)–(सं० चतुर)–चार दो और दो।
चारु (२)–(सं०)–सुन्दर, मनोहर। उ० चौकें चारु सुमित्राँ पूरी। (मा० १।८८।२) चारुतर–अधिक सुन्दर। उ० मनि

मडल मडन चारुतर। (मा० ७।१४।२) चारुतर–अधिक अच्छा, अधिक सुन्दर। उ० हास चारुतर, कपोल नासिका सुहाई। (गी० ७।३)

चारु (३)-(स० चरु)-बर्तन, हाँडी, चेरुआ।

चारू–दे० 'चार (२)', 'चारु (३)'। उ० [चारु (२)] होहिं कवित मुकुतामनि चारू। (मा० १।११।५)

चारो (२)–दे० 'चारा (२)'। उ० २ तौ सुनियो बहुत अब, कहा करम सों चारो! (कृ० ३४)

चाल–(स० चार)–१ गति, गमन, चलने की क्रिया, २ चलने का ढङ्ग, ३ आचरण, चलन, बर्त्ताव, व्यवहार, ४ चलन, रीति, रवाज, ५ आकृति, बनावट, ६ धूर्तता, चालाकी ७ प्रकार, विधि, तरह, ढङ्ग, ८ आन्दोलन, धूम, ९ आहट, खटका। उ० ६ जोगकथा पठई ब्रज को, सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी। (क० ७।१३४) चाल चलाकी–चालाकी की चाल। उ० जोगकथा पठई ब्रज को, सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी। (क० ७।१३४) चालि–१ चाल, रीति, नियम, २ चालाकी, धूर्ततापूर्ण चाल या षड्यन्त्र, ३ चलन। उ० १ प्रीति की प्रतीति प्रीति पाल चालि प्रभु मान। (क० ७।१२२)

चालक–(स०)–१ चलानेवाला, संचालक, २ नटखट हाथी, ३ चालाक धूर्त ४ डिगानेवाला, खींचनेवाला, चलानेवाला। उ० ३ घरघाल चालक कलहप्रिय कहियत परम परमारथी। (पा० १२१)

चालत–(स० चालन)–१ चलाते हैं, चलाता है, आगे बढ़ाता है, २ प्रचलित, व्यवहार में आनेवाला। उ० १ चालत सब राज-काज, आयसु अनुसरत। (गी० २।८०) चालति–चलाती है, हिलाती डुलाती है। उ० चालति न भुजबल्ली बिलोकनि बिरह भय बस जानकी। (मा० १।२३७। छं० ३) चालहीं–चलाते हैं। उ० निज लोक बिसरे लोकपति, घर की न चरचा चालहीं। (गी० १।५) चालही–१ चलाते हैं, २ चलाओ, ३ चला, चली। उ० २ हठि फेरु रामहि जात बन जनि बात दूसरि चालही। (मा० २।५०।छं० २)

चाली–१ गति, चाल, २ चालाकी, धूर्तता, ३ धूर्त, चालबाज़। उ० सीलु सनेहु सरिस सम चाली। (मा० २।२२२।१)

चालु–१ चालू, चलता आदमी, २ चाल गति, ३ चालाकी, ४ चलाओ, चलाये, गमन कराये, ५ व्यवहार करे। उ० ५ जपहि नाम रघुनाथ को चरचा दूसरी न चालु। (वि० १९३)

चाव–(स० इच्छा, हि—ी चाह)–१ प्रबल इच्छा, अभिलाषा, २ प्रेम, अनुराग ३ शौक, चाव, ४ प्रेम, दुलार, ५ उमग उत्साह आनंद।

चावल–(स० तण्डुल)–धान के भीतर का दाना जिसका भात बनता है। अक्षत।

चाष (१)-(स०)-नीलकंठ पक्षी।

चाष (२)-(?)–उत्साह।

चाषु–दे० '(चाष (१)'। उ० चारा चाषु बाम दिसि लेई। (मा० १।३०३।१)

चाह (१)-(स० इच्छा)–१ इच्छा, २ प्रीति, ३ आदर, ४ चाहो, देखो, इच्छा करो।

चाह (२)-(स० चार)-खबर। उ० पुर घर घर आनंद महासुदिन चाह सुहाई। (गी० १।१०।५)

चाहइ–१ चाहे, २ चाहता है। चाहउँ–चाहता हूँ। उ० चाहउँ तुम्हहि समानसुत प्रभुसन कवन दुराउ। (मा० १।१४९) चाहत–१ चाहता है, प्यार करता है, २ चाह से देखता है। उ० २ मिले भरत जननी गुरु परिजन, चाहत परम अनद भरे। (गी० ७।३८) चाहति–चाहती है। उ० चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर। (मा० १।२१०) चाहन–१ चाहना, प्यार करना, चाहने, २ देखना, देखने। चाहनि–१ चाहना, प्यार करना, २ देखना ३ चाह से, प्रेम से, ४ चाह का बहुवचन, चाहें, इच्छाएँ। उ० ४ जहँ जहँ लोभ लोल लालच बस, निज-हित चित चाहनि चै हौं। (वि० २२२) चाहसि–चाहता है, इच्छा करता है। उ० तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर। (मा० १।२१) चाहहिं–१ चाहते हैं, प्रेम करते हैं, २ देखते हैं, ३ चाहना, प्रेम करना। उ० १ मधुर मनोहर मूरति सादर चाहहिं। (जा० २२) चाहहु–१ चाहो, २ चाहते हो। उ० २ चाहहु सुनै रामगुन गूढ़ा। (मा० १।४७।२) चाहा–१ इच्छा किया, प्रेम किया, २ देखा, ३ चाहे। उ० ३ हरिपद बिमुख परमगति चाहा। (मा० १।२६७।२) चाहि–१ चाहकर, प्रेम कर, २ चाहो, ३ देखकर, देख के, ४ अपेक्षाकृत अधिक उससे बढ़कर, ५ चाह, इच्छा, ६ दृष्टि। उ० ४ कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। (मा० १।२५८।२) चाहिअ–चाहिए, उचित है। उ० चाहिअ कीन्हि भरत पहुनाई। (मा० २।२१३।२) चाहिए–उचित है, उपयुक्त है। उ० मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान कहुँ एक। (मा० २।३१५) चाहिगो–१ देख गया, २ चाह गया, प्रेम कर गया। उ० १ रोप्यो पाँउ, चपरि चमू को चाउ चाहिगो। (क० ६।२३) चाहिय–चाहिए, उचित है। चाही–१ देखी, २ देखने की इच्छा थी, ३ चाहा, इच्छा की, ४ देखकर ५ चाहिए, ६ चाही हुई, जिसकी इच्छा की जाय ७ चाह, ८ देखना, निरीक्षण करना, ९ अपेक्षाकृत अधिक। उ० ४ सखीं सीयमुख पुनि पुनि चाही। (मा० १।३४९।३) ९ मरनु नीक तेहि जीवन चाही। (मा० २।२१।१) चाहु–१ चाह, इच्छा, २. चाहो, ३ देख, देखो। उ० ३ चारि परिहरे चारिको दानि चारि चख चाहु। (दो० १५१) चाहे–१ देखे, २ इच्छा करे, चाहा, इच्छा की, ३ होनहार, होनेवाला, ४ देखते ही, देखने पर। उ० २ दिए उचित जिन्ह जिन्ह तेइ चाहे। (मा० ७।५०।२) चाहै– चाहे, इच्छा करे २ चाहता है। उ० १ जो आपन चाहै कल्याना। (मा० २।३८।३)

चिंचिनी–(स० तिंतिडी)–१ इमली का पेड़ २ इमली का फल। उ० २ तेरी महिमा तें चलैं चिंचिनी चिर्री रे। (वि० ३३)

चिंत-(स० चिन्ता)–चिंता, चिंतना, ध्यान। उ० सो करउ अधारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा। (मा० १। १८६। छं० ३)

चिंतक-१ चिंतन करनेवाला, २ ध्यान रखनेवाला । उ० २ जे रघुबीर चरन चिंतक तिन्हकी गति प्रगट दिखाई। (गी० ३।१)

चिंतत-चिंता करते हैं, विचारते हैं, चिंतन करते हैं । उ० सारद सेस संभु निसि बासर, चिंतत रूप न हृदय समाई। (गी० १।१०६) चिंतहिं-चिंतन करते हैं, ध्यान करते हैं। उ० जेहि चिंतहिं परमारथबादी । (मा० १।१४४।२)

चिंतन-(सं०)-१ बार बार स्मरण ध्यान, २ गौर, विचार विवेचना । उ० १ श्री रघुबीर चरन चिंतन तजि नाहिन ठौर कहूँ । (वि० ८६)

चिंता-(सं०)-१ ध्यान, भावना, २ सोच, फिक्र, खटका ।

चिंतापहारी-(सं० चिंता+अपहारिन्)-चिंता का नाश करनेवाला, निश्चिंत बना देनेवाला ।

चिंतामणि-(सं०)-१ एक कल्पित मणि जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि उससे जो अभिलाषा की जाय वह पूर्ण कर देती है । २ सरस्वती का एक मंत्र जिसे विद्या आने के लिए लोग बालक की जीभ पर लिखते हैं ।

चिंतामनि-दे० 'चिंतामणि' । उ० १ रामचरित चिंतामनि चारू। (मा० १।३२।१)

चिंतित-(सं०)-चिंतायुक्त, जिसे चिंता हो ।

चिउरा-(सं० चिपिट)-चिउड़ा, चूरा। धान से बनाया हुआ एक प्रकार का चबेना । उ० दधि चिउरा उपहार अपारा । (मा० १।३०५।३)

चिकना-१ खुशामदी, चिकनी बातें बनानेवाला । २ दे० 'चिकनी' । चिक्नी का पुलिंग । चिक्नी-(सं० चिक्कण)-१ साफ और बराबर, जो खुरदरा न हो, स्निग्ध, सँवारा हुआ, रुखाई रहित, २ घी या तेल लगी, चिक्नाई युक्त। उ० २ छोटी मोटी मीसी रोटी चिकनी चुपरि कै तू दे री मैया ।(कृ० १) चिकने-दे० 'चिकनी' । उ० १ जे जन रूखे विषय रस, चिकने राम सनेह । (दो० ६१)

चिक्नाई-१ चिकना होने का भाव, चिक्नाहट, चिक्ना पन, २ स्निग्धता, सरसता ३, घी, तेल, चर्बी आदि चिकने पदार्थ । उ० १ जिमि खगपति जल कै चिक्नाइ । (मा० ७।८६।४)

चिकार-(सं० चीत्कार)-चिल्लाहट, चिंघाड़। उ० गज रथ तुरग चिकार कठोरा । (मा० ६।८७।२)

चिकारा-दे० 'चिकार' । उ० तब धावा करि घोर चिकारा । (मा० ६।७६।५)

चिकुर-(सं०)-सिर के बाल, बाल । उ० सघन चिक्कन कुटिल चिकुर बिलुलित मृदुल । (गी० ७।५)

चिक्कण-(सं०)-दे० 'चिक्कन' ।

चिक्कन-(सं० चिक्कण)-१ चिकना, मुलायम, २ सुपारी, ३ हड़ । उ० १ दे० 'चिकुर' ।

चिक्करत-(सं० चीत्कार)-चिंघाड़ते हैं, चीखते हैं । उ० चिक्करत लागत बान । (मा० ३।२०।५) चिक्करहिं-दे० 'चिक्करत' । उ० चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले । (मा० १।२६१। छं० १) चिक्करहीं-चिल्ला रहे हैं, गरज रहे हैं, चीख रहे हैं । उ० डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं । (मा० २।२३।२)

चित (१)-(सं० चित्त)-१ चित्त, मन, अन्तःकरण, २ भीतर । उ० १ अब चित चेति चित्रकूटहि चलु । (वि० २४)

चित (२)-(सं० चित=ढेर किया हुआ)-पीठ के बल लेटा हुआ ।

चित (३)-(सं० चित्)-ध्यान, चैतन्यता । मु० चित करना-ध्यान देना । उ० गुनगन सीतानाथ के चित करत न हौं हौं। (वि० १४८) चितहि-चित्त को, मन को । उ० चित्र बत चितहि चोरि जनु लेहीं । (मा० १।२१६।४)

चितइ-(सं० चेतन)-१ देखकर, २ देखा, ध्यान दिया। उ० १ चहुँ दिसि चितइ पूँछि मालीगन। (मा० १।२२८।१) चितइये-देखिए, अवलोकिए । उ० जौं चितवनि सौंधे लगै चितइए सबेरे । (वि० २७३) चितइहौ-देखोगे । उ० तुम अति हित चितइहौ नाथ-तनु, बार बार प्रभु तुमहिं चितैहैं । (गी० २।५१) चितई-देखा अवलोका, ध्यान से देखा । उ० साधना अनेक चितइ न चितचाहई है । (क० ७।७४) चितए-१ देखा, २ देखने पर । उ० २ तुलसिदास पुनि भरेइ देखियत, रामकृपा चितवनि चितए। (गी० १।६) चितयउँ-देखा, अवलोका । उ० मकलोक लगि गयउँ मैं चितयउँ पाछ उड़ात । (मा० ७।७९ क) चितयउ-देखा । उ० प्रियाबचन मृदु सुनत नृप चितयउ आँखि उघारि । (मा० २।३५४) चितये-१ देखा, २ देखने पर । चितय-देखे, देखता हो, देख रहा हो । उ० सरद ससिहि जनु चितव चकोरी । (मा० १।२३२।३) चितयत-१ देखता है, २ देखते ही । उ० २ चितवत कामु भयउ जरि छारा । (मा० १।८७।३) चितवति-१ देखते, देखते ही, २ देखती है । उ० २ चितवति चकित चहूँ दिसि सीता । (मा० १।२३२।१) चितवहिं-देख रहे हैं, देखते हैं । उ० चितवहिं सादर रूप अनूपा । (मा० १।१४८।३) चितवहि-देखता है, देख रहा है । चितवा-देखा । उ० फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा । (मा० १।२५४।२) चितै-१ देखकर, २ देख। उ० १ सकर निजपुर राखिए चितै सुलोचन कोर । (दो० २३६) चितैहैं-१ देखेंगे, २ ध्यान रखेंगे । उ० १ तुम अति हित चितइहौ नाथ तनु, बार बार प्रभु तुमहिं चितैहैं । (गी २।५१) चितैहौं-१ देखूँगा, २ ध्यान रखूँगा । उ० १ मोको न लेना न देनो कछू, कलि ! भूलि न रावरी ओर चितैहौं । (क० ७।१०२) चितैहौ-देखोगे । उ० भलो बुरो जन आपनो जिय जानि दयानिधि ! अवगुन अमित चितैहौ । (वि० २००) चितौ-देखो, चितवो । उ० नेकु ! सुमुखि, चित लाइ चितौ री । (गी० १।७२)

चितचढ़ी-चित्त द्वारा चाही हुई, मनोनुकूल । उ० होइगी पै साईं जो विधाता चितचढ़ी है । (गी० २।४१)

चितचाय-१ मन को अच्छा लगनेवाला, २ प्रसन्न मन। उ० २ मम्मी भूखे प्यासे पै चलत चितचाय हैं । (गी० २।१८)

चितचेता-१ चित्त या मन का जो अच्छा लगे, २ मार धान। उ० २ बैठहिं रामु लाइ चितचेता । (मा० २। ११।३)

चितचोर-चित्त को चुरानेवाला, प्यारा । उ० गौरि भाँति बोलहिं विहग श्रवन सुखद चितचोर । (मा० २।११७)

चितभंग (१)-(सं० चित्त+भग)-चित्त का न लगना। उ० दे० चितभग (२)।
चितभंग (२)-(?)-बद्रिकाश्रम का एक पर्वत। उ० मान मनभग, चितभंग मद, क्रोध लोभादि पर्वत दुर्ग भुवन भर्त्ता। (वि० ६०)
चितवन-ताकने का भाव, देखने का ढग, नज़र, दृष्टि। चितवनि-दे० 'चितवन'। 'चितवन' का स्त्रीलिंग। उ० चितवनि ललित भावँती जी की। (मा० १।१४७।२) चितवनियाँ-दे० 'चितवन'। उ० बाल सुभाय बिलोल बिलोचन, चोरति चितहि चारु चितवनियाँ। (गी०१।३१)
चिता-(सं०)-चुनकर रखी लकड़िया का ढेर जिस पर शव जलाया जाता है। उ० सरजु तीर रचि चिता बनाई। (मा० २।१७०।२)
चितु-दे० 'चित'। उ० १ रघुपति पद सरोज चितु राचा। (मा० १।२४६।२)
चितेरा-(सं० चित्रकार)-चित्र बनानेवाला, चित्रकार। चितेरी-'चितेरा' का स्त्रीलिंग। चितेरे-चितेरा ने, चितेरे ने। उ० सून्य भीति पर चित्र, रग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे। (वि० १११)
चितेरो-दे० चितेरा'। उ० पिय चरित सिय चित चितेरो लिखत नित हित भीति। (गी० ७।३५)
चित्-(सं०)-चैतन्य ज्ञानयुक्त। उ० बुद्धि मन इद्रिय प्रान चित्तातमा काल परमानु चिच्छक्ति गुर्वी। (वि० ५४)
चित्त-(सं०)-१ अतःकरण का एक भेद अत:करण की एक वृत्ति, २ वह मानसिक शक्ति जिससे धारणा, भावना आदि करते हैं। अंत करण, जी मन, दिल। उ० २ चारु चित्त भीति लिखि लीन्ही। (मा० १।२३५।२) चित्तनि-१ मनों, चित्त का बहुवचन, २ मनों में, चित्तों में। उ० २ लोचननि चकाचौंधी चित्तनि खँभार सो। (ह० ४)
चित्तवृत्ति-(सं०)-चित्त या मन की गति, मन की अवस्था। योग शास्त्र में प्रमाण विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति ये पाँच प्रकार की चित्तवृत्तियाँ मानी गई हैं। उ० दीप निज बोध, गत क्रोध मदमोह तम, प्रौढ अभिमान चित्त वृत्ति छीजै। (वि० ४७)
चित्र-(सं०)-१ चदन आदि से माथे पर बनाया चिह्न, तिलक, २ रगों आदि से बनाए आकृति, तस्वीर, ३ अद्भुत, विचित्र, आश्चर्यजनक, ४ रङ्ग बिरगा, ५ छवि, सौंदर्य। उ० २ राम बिलोके लोग सब चित्र लिखे से देखि। (मा० १।०९०)
चित्रकार-(सं०)-चित्र बनानेवाला, चितेरा। उ० चित्रकार करहीन जथा स्वारथ बिनु चित्र बनावै। (वि० ११६)
चित्रकूट-(सं०)-एक प्रसिद्ध पर्वत जहाँ वन के समय राम, लक्ष्मण और सीता ने बहुत दिनों तक निवास किया था। यह स्थान बाँदा ज़िले में प्रयाग से ८४ मील दूर है। इस पहाड़ के नीचे पयास्वी और मदाकिनी नदियाँ बहती हैं। इसी स्थान पर जयत ने कौवे के वेश में सीता के पैर पर प्रहार किया था। उ० चित्रकूट पर बसर मनीना। (मा० २।३२१।३) चित्रकूटहि-चित्रकूट को, चित्रकूट में। उ० चले चित्रकूटहि चितु दीन्हें। (मा० २।२१६।२)
चित्रकेतु-(सं०) १ भागवतानुसार शूरसेन देश का एक राजा जिसे नारद ने उपदेश दिया था। २ लक्ष्मण के एक पुत्र का नाम। १ चित्रकेतु कर घर उन घाला। (मा० १।७६।१)
चित्रसार-(सं० चित्रशाला)-सजाया हुआ कमरा, विलास भवन, रङ्ग-महल। उ० सो समाज चित चित्रसार लागी लेखा। (गी० १।७३)
चित्रित-(सं०)-१ खिंचा हुआ, बना हुआ, चित्र द्वारा दिखलाया हुआ, २ जिस पर चित्र बने हों। उ० १ चित्रित जनु रतिनाथ चितेरें। (मा० १।२१३।३)
चिद-(सं० चित्)-चेतना, ज्ञान। चिद विलास-दे० 'चिद्विलास'। उ० १ तुलसिदास यह चिद विलास जग बूझत बूझत बूझै। (वि० १२४)
चिदाकाश-(सं०)-आकाश के समान निर्लिप्त और सब का आधारभूत ब्रह्म। परब्रह्म। उ० चिदाकाशमाकाश वास भजेऽहं। (मा० ७।१०८। श्लो० १)
चिदानद-(सं०-चित्+आनद) १ चैतन्य और आनदस्वरूप ईश्वर, २ ज्ञान और आनद से भरा, ३ ज्ञान और आनद। उ० २ चिदानद सुखधाम सिव, बिगत मोह मद काम। (मा० १।७५)
चिदाभास-(सं०)-१ चैतन्यस्वरूप परमब्रह्म का आभास या प्रतिबिंब जो महतत्व या अत करण पर पड़ता है। २ जीवात्मा, ३ ज्ञान का प्रकाश।
चिद्विलास-(सं० चित्+विलास)-१ चैतन्यस्वरूप ईश्वर की माया, २ मन का खेल, चित्त का खिलवाड़, ३ मन की प्रसन्नता।
चिनमय-दे० चिन्मय'। उ०१ राम ब्रह्म चिन्मय अबिनासी। (मा० १।१२०।३)
चिन्मय-(सं०)-१ ज्ञानमय, २ परमेश्वर, ३ भगवान् रामचद्र।
चिन्ह-(सं० चिह्न)-१ वह लक्षण जिससे किसी चीज की पहिचान हो, निशान, २ पताका, झडी, ३ किसी प्रकार का दाग या धब्बा। उ० १ द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी। (मा० ७।१०१। छ० १)
चिन्हारी-(सं० चिह्न)-जान पहिचान, परिचय। उ० कुसमय जानि न कीन्हि चिन्हारी। (मा० १।२०।१)
चिपिटि-(सं० चिपिट)-चिपटा, चिपटा होने की अवस्था। उ० चारिहू चरन के चपेट चाँपे चिपिटि गो। (क० ५।१)
चिबुक-(सं०)-ठुड्डी, ठोढ़ी। उ० कठ दर, चिबुक वर, वचन गभीरतर, सत्य सकल्प सुर त्रासनास। (वि० ५१)
चियाँ-(सं० चिंचा)-इमली का बीज, चियाँ। उ० तेरी महिमा तें चलें चिंचिनी चियाँ रे। (वि० ६३)
चिरजीवि-(सं चिरजीवि)-१ दीर्घायु हो। इस शब्द से दीर्घायु होने का आशीर्वाद दिया जाता है। २ बहुत दिन तक जीनेवाला। अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान, विभीषण, कृपाचार्य, और परशुराम ये सात चिरजीवि कहे जाते हैं। कुछ मतो से मार्कंडेय भी चिरजीवि हैं।
चिर-(सं०)-१ बहुत दिनों का दीर्घकालवर्ती, २ बहुत दिन, अधिक काल, ३ विलब, देर। उ० २ सकल तनय चिर जीवहुँ तुलसिदास के ईस। (मा० १।१।६६)

चिरजीव-दीर्घायु हों, बहुत दिन तक जीवित रहें।

चिरजीवी-सर्वदा जीनेवाला। चिरजीवी मुनि-मारकण्डेय मुनि। दे० 'चिरजीवि'। उ० चिरजीवी मुनि ग्यान बिकल जनु। (मा० २।२८६।४)

चिराना-(स० चिर)-पुराना, प्राचीन, बहुत दिनों का। उ० सुखद सीत रुचि चारु चिराना। (मा० १।२६।५)

चिराव-(स० चीर्ण)-चिरा डालती है। फड़वा डालती है। उ० मातु चिराव कठिन की नाइ। (मा० ७।७४।४)

चिलात-(स० चिल्कार) चिल्लाते हैं। उ० नाम लै चिलात, बिललात अकुलात अति। (क० ५।१५)

चिवरा-(स० चिपिट)-चिउड़ा, धान का भून कर बनाया जानेवाला एक खाद्य पदार्थ।

चीखा-(स० चषण) १ स्वाद लिया, चखा, २ चखना, स्वाद लेना। उ० २ डारि सुधा बिषु चाहत चीखा। (मा० २।४७।२)

चीठी-(स० चीर्ण)-पत्री, पत्र, चिट्ठी। उ० रामु लखनु उर कर बर चीठी। (मा० १।२६०।३)

चीठे-(सं० चीर्ण)-१ चिट्ठा, लेखा, खाता की किताब, २ आज्ञापत्र, परवानगी, इजाजत ३ सूची, फिहरिस्त, ४ विवरण, ब्यौरा, तफसील, ५ चिट्ठी पत्री। उ० २ नाम की लाज राम करुनाकर केहि न दिए करि चीठे। (वि० १६३)

चीता (१)-(स० चित्रक)-बिल्ली की जाति का एक प्रकार का बहुत बड़ा हिंसक पशु।

चीता (२)-(स० चेतन)-१ होश, मंशा, २ सोचा हुआ, विचारा हुआ, ३ चित, हृदय, दिल। उ० ३ जाको हरि बिनु कतहुँ न चीता। (वै० १४)

चीन्ह-(स० चिह्न)-१ लक्षण, चिह्न, २ परिचय, पहिचान।

चीन्हा-१ चिह्न, निशानी, २ पहचाना, जाना। उ० २ राम भगत अधिकारी चीन्हा। (मा० १।२०।२) चीन्हि-परिचित होकर, पहचान कर। चीन्ही-१ पहिचानी, जानी हुई, २ जाना, पहिचाना, ३ चीन्हते हुए जानते हुए। उ० २ तब रिपि निज नाथहि जियँ चीन्ही। (मा० १।२०४।४) चीन्हे-१ पहचाने, जाने परिचित हुए २ पहचाने हुए, जाने हुए। उ० १ तिन्ह कहँ करिअ नाथ किमि चीन्हे। (मा० १।२१७।२) चीन्हो-पहचाना हुआ, जो जाना गया हो। उ० चीन्हो चोर जिय मारिहै तुलसी सो कथा। (वि० २६६) चीन्ह्यो-पहिचाना, जाना। उ० सहस दस चारि खल सहित-खरदूषनहिं, पठै जमधाम, तैं तउ न चीन्ह्यो। (वि० १८)

चीर (१)-(स०)-१ वस्त्र, कपड़ा, २ वृक्ष की छाल ३ कपड़े का फटा पुराना टुकड़ा, ४ गौ का थन, ५ मुनियों द्वारा पहने जाने वाला एक वस्त्र। उ० १ बिसमउ हरषु न हृदयँ कछु पहिरे बलकल चीर। (मा० २।१६५)

चीर (२)-(सं० चीर्ण)-चीरकर, फाड़ कर।

चीरा (१)-दे० 'चीर (१)'। उ० १ पहिरें बरन-बरन बर चीरा। (मा० १।२१८।१)

चीरा (२)-फाड़ा, दो टुकड़े किया। चीरि-चीरकर, फाड़ कर। उ० चीरि कोरि पचि रचे सरोजा। (मा० १।२८८।२)

चीरी (१)-(स० चीरिका)-१. झींगुर, झिल्ली, २ चींटी, चिउंटी।

चीरी (२) -(स० चटक)-चिड़िया, पक्षी। उ० चीरी को मरन खेल बालकनि को सो है। (ह० २१)

चुंबत-(स० चुंबन)-१ चूम रहे हैं, चूमते हैं, २ चूमते हुए। उ० १ धवल धाम ऊपर नभ चुंबत। (मा० ७।२७।४) चुंबति-चूमती है, चूम रही है। उ० बार बार मुख चुंबति माता। (मा० २।५२।२)

चुकइ-(स० च्युत+कृ)-१ चूकते हैं, चूक जाते हैं, चूक जाता है। २ चूक जाता, चूकता। उ० १ भजेउ प्रकृति बस चुकइ भलाइँ। (मा० १।७।१) चुके-चूक जाने पर, बीत जाने पर। उ० चुके अवसर मनहुँ सुजनहिं सुजन सनमुख होइ। (गी० २।५) चुकै-१ चूक जाय, २ चूक, गलती करे, ३ बेबाक हो जाय, रुपया दे दिया जाय। उ० १ अवसर कौड़ी जो चुकै बहुरि दिए का लाख। (दो० ३११)

चुकाहीं-चूकेंगे, हाथ से जाने देंगे। उ० तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं। (मा० ।४।२)

चुचाते-(स० च्यवन)-१ चूते, टपकते, पसीजते, २ रसाते हुए टपकाते हुए, चुवाते हुए। उ० २ झूमत द्वार अनेक मतंग जँजीर जरे मदअंबु चुचाते। (क० ७।४४)

चुचुकारि-(अनु०)-चुचकार कर, प्यार दिखलाकर, दुलार कर, पुचकार कर। उ० जीति हारि चुचुकारि दुलारत, देत दिवावत दाउ। (वि० १००)

चुनइ-चुनती है, चुगती है। उ० मुकताहल गुनगन चुनइ राम बसहु हियँ तासु। (मा० २।१२८) चुनि-(स० चयन)-चुनकर, छाँटकर, चुन चुनकर, एकत्र कर। उ० पंच धार चुनि कुसुम सुहाए। (मा० ३।१।२)

चुनिन-(स० चूर्ण)-छोटे-छोटे टुकड़े। उ० कनक-चुनिन सों लसित नहरनी लिए कर हो। (रा० १०)

चुनौति-दे० 'चुनौती'।

चुनौती (१)-ललकार, उत्तेजना देनेवाली बात, युद्ध के लिए आह्वान। उ० ताके पर रावन कहँ मनो चुनौती दीन्हि। (मा० ३।१७)

चुनी-(स० चूर्ण)-१ मानिक, याकूत या किसी अन्य रत्न का छोटा टुकड़ा, २ किसी चीज (अन्न, लकड़ी आदि) का छोटा टुकड़ा, ३ सितारा।

चुप-(सं० चुप)-मौन, खामोश, खामोश। उ० का चुप साधि रहेहु बलवाना। (मा० ४।३०।२)

चुपकि-१ चुपकी, मौन, खामोशी, २ चुप, मौन खामोश, चुप होकर। उ० २ चुपकि न रहत, कह्यो कछु चाहत, ह्वैहै कीच कठिना थोए। (कृ० ११)

चुपचाप-दे० 'चुप'। उ० सब चुपचाप चले मग जाहीं। (मा० २।३२२।१)

चुवन-(स० च्यवन)-चूने, टपकने, गिरने। उ० बिन चरिहो बियोग दसानन कहिबे जोग, चुवत पात, मानो लोचन चुवन। (गी० २।४८)

चुवा (१) (?)-हड्डी के अंदर की वस्तु, मज्जा।

चुवा (२)-(स-च्यवन)-टपका, गिरा, रसा। चुवे-चूता है,

टपकता है। उ० योलत योल समृद्धि चुवै, अवलोकत सोच विषाद हरी है। (क० ७।१८०)
चुवा (२)-(स० चतुष्पद)-चौपाया, मृग आदि। उ० चारु चुवा चहुँ ओर चलें, लपटें झपटें सो तमीचर तौंकी। (क० ७।१४३)
चुवाइ-१ टपकाकर, २ निथार कर, ३ मीठा और मधुर करके। उ० ३ मेघ सुयनाइ सुचि बचन कहै चुवाइ। (क० ७।११६)
चुहल-(?)-हँसी, विनोद, ठठोली।
चूक-(स० च्युत कृ)-भूल, गलती, अपराध। उ० रहति न प्रभु चित चूक किए की। (मा० १।२६।३)
चूका (१)-१ चूक गया, भूला, गिरा, खोया, २ लक्ष्यभ्रष्ट, गिरा हुआ, ३ गलती। उ० १ अहह मद मनु अवसर चूका। (मा० २।१४४।३) चूकी-१ चूक गई, भूल गई, २ चूक, भूल, अपराध। उ० २ नामहि तें गज की, गनिका की, अजामिल की चलिगै चल-चूकी। (क० ७।८३)
चूका (२)-(स० चुक्र)-एक प्रकार का खट्टा शाक।
चूड़-(स चूड)-चोटी, कलगी। उ० अरुन चूड़ बर बोलन लागे। (मा० १।३५८।३)
चूड़ा-(स०)-१ चोटी शिखा, २ कड़ा, कंकण, ३ मस्तक, माथा, ४ मोर की चोटी, ५ प्रधान नायक, सरदार।
चूड़ाकरन-(स० चूड़ाकरण)-हिन्दुओं के १६ संस्कारों में से एक। मुंडन संस्कार। किसी बच्चे का पहले-पहल सिर मुड़वाकर चोटी रखवाना। उ० चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई। (मा० १।२०३।२)
चूड़ामणि-(स०)-१ सिर पर पहनने का शीशफूल नामक एक गहना, २ मुकुटमणि, चोटी की मणि, ३ सरदार मुखिया, शिरोमणि, प्रधान। चूड़ामणिम्-चूड़ामणि को। उ० ३ वन्देऽहं करुणाकरं रघुवर भूपाल चूड़ामणिम्। (मा० ५।श्लो० १)
चूड़ामनि-दे० 'चूड़ामणि' उ० १ चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही। (मा० ५।२७।१)
चूनरी-(स० चयन)-कई रंगों की या लाल रंग की एक प्रकार की विशेष साड़ी। रँगने के पहले चुनकर बाँधने के कारण इसका यह नाम है। उ० मंगलमय दोउ, अंग मनोहर ग्रथित चूनरी पीत पिछौरी। (गी० १।१०३)
चूमत-(स० चुंबन)-चूमता है, चूमते हैं। उ० खेत पग भूरि पग चूमत लँगूल हैं। (क० ५।२०)
चूर-(स० चूर्ण)-१ किसी चीज़ की बुकनी, २ पाचक, ३ औषधि।
चूरण-दे० 'चूरन'।
चूरन-(स० चूर्ण)-१ चूर्ण, बुकनी, २ पाचक, ३ चूर्णरूप में कोई औषधि। उ० २ अमिअ मूरिमय चूरन चारू। (मा० १।१।१)
चूर्ण-(स०)-दे० 'चूरन'।
चेटक-(स०)-१ दास, नौकर, २ दूत, ३ चटक-मटक, टीम-टाम, ४ जादू, इन्द्रजाल, ५ फुर्ती, जल्दी, ६ मद्य, टोटका, ७ तमाशा, खेल। उ० ७ नट ज्यों जनि पेट कुपेटक कोटिक चेटक कौतुक ठाट ठटो। (क० ७।८६)
चेटकी-१ नौकरानी, दासी, २ तमाशा दिखानेवाला, जादूगर, बाज़ीगर, इंद्रजाली। उ० २ किसबी, किसान कुल, बनिक, भिखारी, भाँट, चाकर, चपल, नट चोर चार चेटकी। (क० ७।९६)
चेटुवा-(स० चटक)-चिड़िये के का बच्चा। उ० अंड फोरि कियो चेटुवा, तुष पर्यो नीर निहारि। (दो० ३०३)
चेत-(स०चेतस्)१ चित्त की वृत्ति, चेतना, संज्ञा, २ ज्ञान, बोध, ३ सुध, स्मरण, ४ चेतो, चेत करो, समझो। उ० २ मूरुख हृदयँ न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम। (मा० ६।१६ ख)
चेतन-(स०)-१ आत्मा, जीव, २ मनुष्य, आदमी, ३ प्राणी जीवधारी, ४ परमेश्वर। उ० ३ जे जड़ चेतन जीव जहाना। (मा० १।३।२) चेतनहि-चेतन में। उ० जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। (मा० ७।११७।२)
चेतना-(स०)-१ बुद्धि, २ मनोवृत्ति, ३ ज्ञानात्मक मनोवृत्ति, ४ स्मृति, सुधि, ५ चेतनता, संज्ञा, होश।
चेता-१ चित्त, २ चैतन्य हुआ, ३ उपदेशक ४ होश, याद, ५ चेता हुआ, सोचा हुआ, चाहा हुआ। उ० ५ बैठहिं रामु होइ चित चेता। (मा० २।११।३) चेतु-चेतो, सावधान हो, चेत करो। उ० चित्रकूट को चरित्र चेतु चित करिसो। (वि० २६४) चेते-१ चैतन्य हुए, २ ख्याल आया, ३ सावधान होकर। उ०२ सेवहि तजे अपनपौ, चेते। (वि० १२६)
चेतू-चेत, ज्ञान, होश। उ० रहत न आरत कें चित चेतू। (मा० २।२६६।२)
चेरा-(स० चेटक)-१ नौकर, सेवक, दास, २ चेला, शिष्य। उ० १ करम बचन मन राउर चेरा। (मा० २।१३१।४) चेरि-दासी, नौकरानी। उ० राम राज बाधक भई मूढ़ मथरा चेरि। (दो० ३११) चेरिहि-चेरी को, दासी को। उ० बहुबिधि चेरिहि आदरु देई। (मा० २।२३।२) चेरी-दासी, सेविका। उ० नामु मथरा मद मति चेरी कैकइ केरि। (मा० २।१२) चेरे-दे० 'चेरा'। दास। उ० जे बिनु काम राम के चेरे। (मा० १।१८।२)
चेराई-गुलामी चाकरी, सेवा। उ० जो पै चेराइ राम की करतो न लजातो। (वि० १५१)
चेरो-दे० 'चेरा'। उ० १ महा तू हौं जीव, तुही ठाकुर, हौं चेरो। (वि० ७६)
चैतन्य-(स०)-१ चित्स्वरूप आत्मा, चेतन आत्मा, २ ज्ञानवान, चेतन, ३ परमेश्वर, परमब्रह्म, ४ प्रकृति, ५ होशियार, सावधान। उ० २ जो चेतन कहँ जड़ करइ, जड़हि करइ चैतन्य। (मा० ७।११९ख)
चैन-[स० शयन (?)]-आराम, सुख, आनन्द, चन। उ० कादर देखि डरहिं तहँ सुभटन्ह के मन चैन। (मा० ६। ८७)
चैल-(स०)-१ कपड़ा, वस्त्र, २ सिला कपड़ा, पोशाक। उ० २ चैल चारु भूषन पहिराई। (मा० १।३२३।२)
चोंच-(स० चञ्चु)-१ पक्षियों के मुख का अगला भाग जो कठोर होता है। ठोर, २ मुहँ। उ० १ सीता चरन चोंच हति भागा। (मा० ३।१।७)

चोथे-(?)-फाड़े, खींचे, खसोटे, नोचे। उ० मायो मग्न सुखद पदपंकज चोंथे रानन याज के। (गीं० ५।२१)

चोत्रा-(?)-एक प्रकार का सुगंधित द्रव्य, जो कई सुगंधित पदार्थों के मिश्रण से बनाया जाता है।

चोखा-(सं० चोक्ष)-१ जिसमें किसी प्रकार की गन्दगी या मैल न हो, खरा, उत्तम, अच्छा, २ सच्चा, ईमानदार, ३ तेज, धारदार, ४ जल्दी। उ० १ सहित समाज सोह नित चोखा। (मा० २।३२२।३) चोखी-'चोखा' का स्त्रीलिंग। उ० १ य थय लही चतुर चेरी पै चोखी चालि चलाकी। (कृ० ४१) चोखे-अच्छे। दे० 'चोखा' उ० खेसे जोरे चोखे चित तुलसी स्वारथ हित। (क० ७।२४)

चोट (सं० चुट)-१ आघात, प्रहार, आक्रमण, २ घाव, जख्म, ३ वार, दफा, मरतबा। उ० १ जाकी चिबुक चोट चूरन किय रद-मद कुलिस कठोर को। (वि० ३१)

चोटिया-[सं० चूडा (?)]-१ चोटी, शिखा, सिर के मध्य के थोड़े से बाल। २ लड़कों के गूंथे बाल की गुथी हुई लड़ी, चोटी। उ० २ उबटीं न्हाहु गुहौं चोटिया, बलि, देखि भलो बर करिहि बड़ाई। (कृ० १३)

चोटी-(सं० चूडा)-१ शिखा, चोटिया, २ शिखर, पहाड़ का ऊचा भाग, ३ औरतों के सिर का जूरा। उ० १ हाथ कपिनाथ ही के चोटी चोर साहु की। (ह० २८)

चोप-(?)-१ चाह, इच्छा, रुचि, २ चाव, शौक, ३ उमंग, जोश। उ० ३ मनहुँ मत्त गजगन निरखि सिंघ किसोरहि चोप। (मा० १।२६७)

चोर-(सं०)-जो छिपकर पराई वस्तु का अपहरण करे, तस्कर। उ० चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई। (मा० २।२७।३) चोरऊ-चोर भी। उ० नाथ ही के हाथ सब चोरऊ पहरु। (वि० २५०) चोरहि-चोर को। उ० चोरहि चंदिनि राति न भावा। (मा० २।११।४)

चोरत-चुराते हैं, चुरा लेते हैं। उ० फेरत पानि-सरोजनि सायक, चोरत चितहि सहज मुसुकात। (गीं० २।२५)

चोरि-चुराकर, छिपाकर। उ० किए सहित सनेह जे अघ हृदय राखे चोरि। (वि० १५८) चोरे-१ चुराए, २ चुराकर। उ० १ प्रेम सों पीछे तिरीछे प्रियाहि चितै चितु दै, चले लै चित चोरे। (क० २।२६) चोर्‌यो-चुराया, चुरा लिया। उ० मुख सनेह तेहि समय को तुलसी जानै जाको चोरयो है चित चहुँ भाई। (गीं० १।१२)

चोरा-चोर, चुराने वाला। उ० लोचन सुखद विस्व चितचोरा। (मा० १।२१२।३)

चोरी-१ अपहरण, चुराना, २ छिपाव की बात। उ० २ औरउ एक कहउँ निज चोरी। (मा० १।१६९।७)

चोलना-(सं० चोल)-चोला, एक प्रकार का लंबा कुर्ता जिसे साधु लोग पहिनते हैं। उ० चौतनी चोलना काछे, सखि! सोहैं आगे पाछे। (गीं० १।७२)

चोराइ-१ चुराकर, २ चोरावे। चोराई-१ चुरा चोरी कर, २ चुराया। उ० १ हेरनि हँसनि हिय लिये हैं चोराई। (गीं० २।४०)

चौंक-(सं० चमत्कृत)-चौंक पड़े, चौंककर। उ० कौन की हाँक पर चौंक चण्डीस निधि। (क० ६।४५) चौंकि-चौंककर। उ० अवलोकि अलौकिक रूप मृगी मृग चौंकि चकै चितवैं चित दै। (क० २।२७) चौंकि-चकित हु आश्चर्यचकित हुए। उ० चौंके बिरंचि संकर सहित कोल, कमठ अहि कलमल्यौ। (क० १।११)

चौंतिस-(सं० चतुस्त्रिंशत्)-१ तीस और चार, ३४ क से ष तक ३४ अक्षर। उ० २ चौंतिस क प्रस्तार अरथ भेद परमान। (स० ३१०)

चौंध-(सं० चक्‌+अंध)-चमक के कारण आँख का ठहर सकना, चकाचौंध। चौंधी-'चौंध' का स्त्रीलिंग दे० 'चौंध'। उ० चितवत मोहिं लगी चौंधी सी जानौं कौन कहाँ तें धौं आए। (गीं० २।३५)

चौक-(चतुष्क)-१ बाजार का मध्य, चौराहा, २ आँगन, सहन, ३ चौकोर भूमि, ४ मंगल के अवसर पर भूमि पर आटे आदि के द्वारा की गई रचना, जिस पर देव पूजन आदि होता है। उ० ४ गजमनि रचि बहु चौक पुराईं। (मा० ७।९।२) चौकैं-चौक का बहुवचन। दे० 'चौक'। उ० ४ रचहु मंजु मनि चौकें चारु। (मा० २।६।४) चौके-दे० 'चौकें'। चौकें-चौक का बहुवचन। दे० 'चौक'। उ० ४ चौकें पूरैं चारु कलस ध्वज साजीं। (जा० २०२)

चौकी-(सं० चतुष्की) १ चार पैरोंवाला चारपाई की शकल का तख्त, २ स्त्रियों के हार आदि में बीच में लगा चौकोर टुकड़ा जो छाती पर लटकता रहता है। समय पर कोई चीज आम के समने आदि की तरह पहले जीतनेवाले को दी जाती थी। उ० २ मानों लसी तुलसी हनुमान हिए जगजीति जराय की चौकी। (क० ७।१४३)

चौगान-(फा०)-१ एक खेल जिसमें लकड़ी के बदले में घोड़े पर चढ़कर खेलते हैं। २ चौगान खेलने का डंडा, ३ नगाड़ा बजाने का डंडा, ४ उद्यान, बाग, मैदान, ५ निर्जन स्थान। चौगानै-चौगान, चौगान को, दे० 'चौगान'। उ० १ कर-कमलनि बिचित्र चौगानैं, खेलन लगे खेल रिझये। (गीं० १।४३)

चौगाना-दे० 'चौगान'। उ० १ खेलिहहिं भालु कीस चौगाना। (मा० ६।२७।३)

चौगुन-(सं० चतुर्गुण)-चौगुना, चारगुना। उ० सुर प्रसन्न चित चौगुन चाऊ। (मा० २।२१।७) चौगुनी-चारगुनी, चतुर्गुणी। उ० लरिकाईं बीती अचत चित, चपलता चौगुनी चाय। (वि० ८३)

चौगुनो-चारगुना चौगुना। उ० तिलक को बोलयो, दियो बन, चौगुनो चित चाव। (गीं० २।४७)

चौतनियाँ-दे० 'चौतनीं'। उ० भाल तिलक मसिबिंदु बिराजत, सोहति सीस लाल चौतनियाँ। (गीं० १।३१)

चौतनी-(सं० चतुर+तनिका)-बच्चों की टोपियाँ या कुलहियाँ जिनमें चार बंद लगे रहते हैं। चौकोर टोपियाँ। उ० पीत चौतनीं सिरन्हि सुहाईं। (मा० १।२४३।४)

चौथ-(सं० चतुर्थी) १ पखवारे की चौथी तिथि, २ चौथा भाग। उ० १ चौथ चाद उनमास पुर, पर घर सप्त चार। (म० ४।७।०)

चौथपन-(सं० चतुर्थ+पन)-चौथापन वृद्धावस्था।

चौथपनु-दे० 'चौथपन'। उ० होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथपनु। (मा० १।१४२)

चौथि-दे० 'चौथ'। उ० १ चौथि चारि परिहरहु बुद्धिमन, चित अहँकार। (वि० २०३)
चौथें-चौथे। उ० चौथें दिवस अवधपुर आए। (मा० २।३२२।३)
चौथेंपन-दे० 'चौथेपन'। उ० चौथेंपन जाइहि नृप कानन। (मा० ६।७।२)
चौथे-(सं० चतुर्थ)-चौथा, तीन के बाद का।
चौथेपन-दे० 'चौथपन'।
चौदसि-(सं० चतुर्दशी)-पक्ष के १४वें दिन पड़नेवाली तिथि। चौदस। उ० चौदसि चौदह भुवन अचर चर रूप गोपाल। (वि० २०३)
चौदह-(सं० चतुर्दश)-दस और चार, १४। उ० दे० 'चौदसि'।
चौपट-(सं० चतुर्+पट-) बरबाद, नष्ट, जिसके चारो पट बराबर हो, अर्थात् जो अरक्षित या छिन्न भिन्न हो। उ० बिस्व बेगि सब चौपट होई। (मा० ११८०।३)
चौपाई-चौपाइयाँ। उ० १ सत पच चौपाइ मनोहर, जानि जो नर उर धरै। (मा० ७।१३०। छं०२) चौपाई-(सं० चतुष्पदी)-१ एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं। चौपाई के कई भेद होते हैं। तुलसी ने मानस में दोहे और चौपाइयों का प्रयोग किया है। २ चारपाई। उ० १ पुरइनि सघन चार चौपाइ। (मा० १।३७।२)
चौबारा-(सं० चतुर्+द्वार)-कोठे के ऊपर का ऐसा कमरा जिसमें चार दरवाज़े हों, हवादार घर, बँगला। चौबारे-'चौबारा' का बहुवचन। दे० 'चौबारा'। उ० मनिमय रचित चारु चौबारे। (मा० २।६०।४)
चौरानल-चारो ओर अग्नि। उ० ईति अति भीति-ग्रह प्रेत चौरानल व्याधिबाधा समन घोर मारी। (वि० २८)
चौरासी-(सं० चतुरशीति)-अस्सी से चार अधिक, ८४। उ० आकर चारि लाख चौरासी। (मा० १।८।१)
चौहट-(सं० चतुर्+हट्ट)-जिसमें चारो ओर दूकानें हों, सदर बाज़ार, चौक, चौराहा। उ० चौहट सुंदर गलीं सुहाई। (मा० १।२१३।४)
चौहट्ट-दे० 'चौहट'।
चौहट्टा-दे० 'चौहट'।
च्युत-(सं०)-१ गिरा हुआ, पतित, भ्रष्ट, २ पराङ्मुख, विमुख।
च्वै-(सं० च्यु)-१ गिरना, चूना, २ गर्भ गिरना। उ० १ तुलसी सुनि ग्राम वधू बिथकीं, पुलकीं तन औ चले लोचन च्वै। (क० २।१८) २ जननी कत भार मुइ दस मास, भइ किन बाँझ, गई किन च्वै। (क० ७।४०)

# छ

छँगन-(?)-प्रिय बालक, छोटा और प्यारा बच्चा। उ० छँगन-मँगन अँगना खेलत चारु चार्‌यो भाइ। (गी०१।२७)
छँटि-(?)-छाँटकर, चुनकर। उ०तीखे तुरग कुरंग सुरंगनि साजि चढ़े छँटि छैल छबीले। (क० ६।३२)
छंड-(सं० छोरण)-छोड़े, त्यागे। उ० जाय सो जती कहाय विषय-बासना न छंडे। (क० ७।११६)
छंद-(सं० छंदस्)-१ वेदों के वाक्यों का वह भेद जो अक्षरों की गणना के अनुसार किया गया है, २ वेद, ३ वह वाक्य या पंक्ति जिसमें वर्ण या मात्रा की गणना के अनुसार विराम आदि का नियम हो। पद्य के लिए प्रयुक्त छंद। इसके मात्रिक और वर्णिक दो भेद होते हैं, फिर दोनों के दोहा चौपाई आदि कितने ही भेद विभेद होते हैं। ४ इच्छा, ५ बंधन गाँठ, ६ कपट, छल, ७ समूह, जाल, ८ स्वच्छंद स्वतंत्र, उन्मुक्त। उ० ३ छंद सोरठा सुन्दर दोहा। (मा० १।३७।३) ८ अविरल तहँ छंद बास, गावतक लकण्ठहास। (गी० २।४३) छंदसाम्-(सं०)-छंदों का। उ० वर्णानामर्थसंघानां रसानां छंदसामपि। (मा० १।१। श्लो० १)
छ (१)-(सं० षट्)-गिनती में पाँच से एक अधिक, ६। उ० छ रस चारि बिधि जमि श्रुति गाई। (मा० १। ७३।१)
छ (२)-(सं०)-१ निर्मल, साफ, २ तरल, चंचल, ३ खंड, टुकड़ा, ४ ढाँकना, ५ ढँकना, ६ घर।
छई (१)-(सं० क्षय)-१ एक रोग का नाम, राजयक्ष्मा, क्षयी, २ नष्ट हुई, समाप्त हुई। उ० १ पर सुख देखि जरनि सोइ छई। (मा० ७।१२१।१७)
छई (२) (सं० छादन)-छाई, छा गई, ढक लिया।
छगन-(?)-१ छोटा बालक, प्यारा और भोला-भाला शिशु, २ बच्चों को बुलाने के लिए एक प्यार का शब्द। उ० २ कहति मल्हाइ लाइ उर छिन छिन छगन छबीले छोटे छैया। (गी० १।१७)
छछूँदरि-दे० 'छछूँदर'।
छछूँदर-(सं० छुछुन्दरी या छुछुन्दर)-चूहे की जाति का एक जंतु। कहा जाता है कि साँप यदि छछूँदर को पकड़ लेता है तो दोनों प्रकार से उसकी हानि होती है। यदि वह छोड़ दे तो अंधा हो जाता है और यदि खाले तो मर जाता है।
छटनि-छटा का बहुवचन। सौन्दर्यों। उ० बिधि बिरचे बरूथ बिद्युत छटनि के। (क० २।१६)
छटा-(सं०)-१ दीप्ति प्रकाश, २ शोभा, सौंदर्य, छवि, ३ बिजली। उ० २ सिरसि संकुलित कलजूट पिंगल जटापटल शतकोटि विद्युच्छटाभं। (वि० ११)

छठ-(सं० षष्ठी)-१ पखवारे का छठा दिन, प्रति पक्ष की छठी तिथि, २ छठवाँ, पाँचवें के बादवाला। उ० २ छठ दम सील बिरति बहु करमा। (मा० ३।३६।१)

छठि-दे० 'छठ'। उ० १ छठि षट्वर्ग करिय जय जनक सुता पति लागि। (वि० २०५)

छठी-(सं० षष्ठी)-१ छठ, पखवारे का छठाँ दिन, २ छट्ठी, बालक के जन्म से छठाँ दिन या उस दिन किया जाने वाला संस्कार, ३ भाग्य, तकदीर। उ० ३ पढ़ियो पर्यो न छठी छमत, ऋगु, जजुर, अथर्वन, साम को। (वि० १५५)

छठें-छठवें, छठवाँ। उ० छठें अवन यह परत कहानी। (मा० १।१६६।१)

छठे-दे० 'छठें'।

छड़ाइ-(सं० छोरण)-छुड़ा, छीन। उ० लेहु छड़ाइ सीय कह कोऊ। (मा० १।२६६।२) छड़ाइसि-छुड़ाया, अलग कर दिया। उ० सठ रन भूमि छड़ाइसि मोही। (मा० ६।१००।४) छड़ावा-छुड़ा दिया। उ० देह जनित अभिमान छड़ावा। (मा० ४।२८।३)

छड़ीला-(?)-अकेला।

छत (१)-(सं० क्षत)-घाव, जख्म। उ० पाकें छत जनु लाग अँगारू। (मा० २।१६१।२)

छत (२)-(सं० छत्र)-दीवालों पर कड़ी आदि रखकर बनाया गया, फर्श, कोठा, पाटन।

छत (३)-(सं० सत्)-होते हुए, रहते हुए, आछत।

छतज-१ क्षत या घाव से निकला हुआ खून, २ लाख, अरुण। उ० २ छतज नयन उर बाहु बिसाला। (मा० ६।५३।१)

छति-(सं० क्षति)-हानि, घाटा, टोटा। उ० नारि हानि बिसेष छति नाहीं। (मा० ६।६१।६)

छत्तीस-(सं० षट्त्रिंशति)-१ तीस और छ, ३६, २ ३६ में ३ और ६ एक दूसरे से विमुख हैं अतः ३६ का अर्थ विमुख या पराङ्मुख भी लिया जाता है। उ० २ आगें रहु छत्तीस है राम चरन छ तीन। (स० २२०)

छत्र (१)-(सं०)-१ छाता, छतरी, धूप या पानी से बचने का एक साधन, २ राजाओं का छाता जो राजचिह्नों में से है। ३ देश, राष्ट्र, ४ शरीर, ५ धन, दौलत, ६ पानी, जल, ७ मुकुट। उ० २ छत्र मुकुट ताटंक तब हते एकहीं बान। (मा० ६।१३ क) छत्रछाया-छत्र का आश्रय, छत्र के नीचे। उ० छोनी में के छोनीपति छाजै जिन्हें छत्र छाया, छोनी-छोनी छाए छिति आए निमिराज के। (क० १।८)

छत्र (२)-(सं० क्षत्रिय)-वर्ण विशेष क्षत्रिय, राजपुत्र।

छत्रक-(सं०)-भूफोड़, खुमी, कुकुरमुत्ता। उ० सारीं छत्रक पट जिमि तव प्रताप बलनाग। (मा० १।२५३)

छत्रबंधु-(सं०)-१ नीच कुल का क्षत्रिय, क्षत्रियाधम, २ क्षत्रिय के समान, ३ क्षत्रिय का भाई या सहायक। उ० १ छत्रबंधु तें बिप्र बोलाई। (मा० १।१७४।१)

छत्रि-दे० 'छत्रिय'। उ० १ छत्रि जाति रघुकुल जनमु राम अनुग जगु जान। (स० ७।२२६)

छत्रिय-(सं० क्षत्रिय)-१ चार वर्णों में से दूसरा वर्ण, क्षत्रिय। प्राचीन काल में देश का शासन तथा रक्षा आदि इन लोगों का प्रधान कार्य समझा जाता था। २ राजा। उ० १ बिस्वबिदित छत्रिय कुलद्रोही। (मा० १। २७२।३)

छत्री-दे० 'छत्रिय'। उ० १ बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। (मा० १।१६०।३)

छत्रु-दे० 'छत्र (१)'। उ० २ छत्रु अखयबटु मुनि मनु मोहा। (मा० २।१०५।४)

छद-(सं०)-१ ढकनेवाली वस्तु, आवरण, ढक्कन, २ पंख, पत्ता, चिड़ियों का पर, ३ तमाल वृक्ष, ४ तेजपात।

छन-(सं० क्षण)-१ काल या समय का एक बहुत छोटा भाग, थोड़ी देर, २ काल, समय, ३ अवसर, मौका, ४ उत्सव। उ० २ लोचन लाहु लेहु छन एहीं। (मा० २।११४।२) छनहिं छन-प्रतिक्षण क्षण क्षण पर। उ० बरषहिं सुमन छनहिं छन देवा। (मा० १।३४६।३)

छनछन-१ थोड़ी-थोड़ी देर, २ घड़ी घड़ी, जल्दी-जल्दी।

छनभंग-(सं० क्षणभंगुर)-एक क्षण या थोड़ी देर में ही नाश होनेवाला, अनित्य, नाशवान।

छनभंगु-दे० 'छनभंग'।

छनभंगू-दे० 'छनभंग'। उ० राम बिरहँ तजि तनु छनभंगू। (मा० २।२११।४)

छनिक-(सं०-क्षणिक)-क्षणभंगुर, एक क्षण रहनेवाला, अनित्य, जिसका जीवन बहुत थोड़ा हो।

छन्न-(सं०)-१ ढका हुआ, आच्छादित, २ लुप्त, गायब, ३ नष्ट, ४ निर्जन स्थान, एकांत।

छपत-(सं० क्षिप)-छिपता है, गुप्त होता है। उ० मगल मुद उदित होत, कलिमल छल छपत। (वि० १३०)

छपद-(सं० षट्पद)-भ्रमर, भौंरा। उ० पठयो है छपद छबीले कान्ह कैहू कहूँ। (क० ७।१३५)

छपा-(सं० क्षपण)-विनाश, नाश, संहार। उ० छोनी में न छाँड्यो छप्यो छोनिप को छौना छोटो, छोनिप-छपन बाँको बिरुद बहुत हौं। (क० १।१८) छपनहार-विनाशक, नाश करनेवाला। उ० कीन्हीं छोनी छत्री बिनु छोनिप छपनहार। (क० ६।२६)

छपा-(सं० क्षपा)-१ रात्रि, रात, २ हल्दी। उ० १ नखत सुमन, नभ बिटप बौंड़ि मानो छपा छिटकि छबि छाई। (गी० १।१६)

छपाइ-छिप, छिपने का भाव। उ० उठी रेनु रबि गयउ छपाई। (मा० ६।७६।४)

छपाकर-(सं० क्षपाकर)-१ चंद्रमा, चाँद, २ कपूर। उ० १ निकट भए बिलसत सरूज एक छपाकर पाइ। (स० ६२५)

छपाय-१ छिपाकर, गुप्त कर, २ छिपाए, छिपा दिये, छिपा लिया। उ० २ नील जलद पर उडुगन निरखत तजि सुभाव मनो तड़ित छपाए। (गी० १।२३)

छप्यो-(सं० क्षिप)-छिपे हुए, छिपे थे। उ० छोनी में न छाँड्यो छप्यो छोनिप को छौना छोटो। (क० १।१८)

छबि-दे० 'छवि'। उ० १ निज छबि रति मनोज मदु हरहीं। (मा० २।३११।१) छबिमय-शोभायुक्त सुन्दर। उ० अपि तिय गुरत त्यागि पाहन-तनु छबिमय देह धरी।

(गी० १।२१) छविहि-छवि को, शोभा को। उ० प्रभु प्रताप रवि छविहि न हरिही। (मा० २।२०१।२)

छवी-दे० 'छवि'। उ० १ तन काम अनेक अनूप छवी। (मा० ६।१११। छं० २)

छवीला-[सं० छवि+ईला (प्रत्यय)]-शोभा युक्त बाँका, सुहावना सुंदर। छवीलीं-छवीली का बहुवचन। दे० 'छवीली'। उ० छोटी छोटी गोड़ियाँ अँगुरियाँ छवीलीं छोटी। (गी० १।३०) छवीली-सुन्दरी, छवीला का स्त्री लिंग रूप। दे० 'छवीला'। छवीले-दे० 'छवीला'। उ० पठ्यो है छपद छवीले कान्ह कैहू कहूँ। (क० ७।१३५)

छम-(सं० क्षम)-१ शक्त, समर्थ, उपयुक्त, २ शक्ति, बल। उ० १ ब्रह्म विसिख ब्रह्मांड दहन छम गर्भ न नृपति जरयो। (वि० २३९)

छमत (१)-(सं० क्षमा)-क्षमा करता है।

छ-मत (२)-(सं० षट् + मत)-छः दर्शनों के मत। कणाद के परमाणु प्रधान वैशेषिक, गौतम के द्रव्य प्रधान न्याय, कपिल के पुरुष प्रकृति प्रधान सांख्य, पतंजलि के ईश्वर प्रधान योग, जैमिनि के कर्म प्रधान पूर्वमीमांसा, तथा व्यास के ब्रह्म प्रधान उत्तर मीमांसा-इन छः दर्शनों या शास्त्रों के मत। उ० छ-मत बिमत, न पुरातन मत, एक मत नेति नेति नेति नित निगम करत। (वि० २५१)

छमता-(सं० क्षमता)-सामर्थ्य, योग्यता, शक्ति।

छमब-क्षमा कीजिएगा। उ० छमब आजु अति अनुचित मोरा। (मा० २।२६७।३) छमबि-क्षमा करना, क्षमा कीजिएगा। उ० छमबि देवि बड़ि अविनय मोरी। (मा० २।६४।३) छमहु-क्षमा करो, क्षमा कीजिए। उ० छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता। (मा० १।२८५।३) छमहूँ-क्षमा करें, क्षमा कीजिए। उ० लघु मति चापलता कवि छमहूँ। (मा० २।३०४।१)

छमा (१)-(सं० क्षमा)-चित्त की एक प्रकार की वृत्ति जिससे मनुष्य दूसरे के द्वारा पहुँचाए हुए कष्ट या दूसरे द्वारा किये गये अपराध को चुपचाप सह लेता है और उसके हृदय में प्रतिकार की भावना भी नहीं उठती। शांति, सहन करने की वृत्ति, सहन शक्ति। उ० छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता। (मा० १।२८५।३)

छमा (२)-(सं० क्ष्मा)-पृथ्वी, धरती। उ० बिस्व भार भर अचल छमा सी। (मा० १।३१।५)

छमाइ-क्षमा मँगवाकर, माफी मँगवाकर। उ० छमि अप राध, छमाइ पाँइ परि, इतौ न अनत समाउ। (वि० १००) छमाय-दे० छमाइ। छमि-क्षमा कर, सहकर। उ० छमि अपराध, छमाइ पाँइ परि, इतौ न अनत समाउ। (वि० १००) छमिअ-क्षमा कीजिए, माफी दीजिए। उ० कौसिक कहा छमिअ अपराधू। (मा० १।२७५।३) छमिए-क्षमा कीजिए। उ० चित्रकूट चलिए सब मिलि, बलि छमिए मोहि हठ है। (गी० २।५४) छमिहहिं-क्षमा करेंगे। उ० छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। (मा० १।८।४) छमिहि-क्षमा करेंगे। उ० छमिहि देउ अति आरति जानी। (मा० २।३००।४) छमिहैं-क्षमा करेंगे, माफी देंगे। उ० सोचै सब याके अघ कैसे प्रभु छमिहैं। (क० ७।७१)

छमेहु-क्षमा कीजिएगा। उ० छमेहु सकल अपराध अब होइ प्रसन्न बरु देहु। (मा० १।१०१)

छमासील-(क्षमाशील)-क्षमा करनेवाला, सहनशील, शांत। उ० छमासील जे पर उपकारी। (मा० ७।१०१।३)

छमुख-(सं० षट् + मुख)-षडानन, कार्तिकेय। उ० छमुख गनेस तें महेस के पियारे लोग। (क० ७।१६६)

छमैया-क्षमा करनेवाला, क्षमाशील। उ० काय गिरा मन के जन के अपराध सबै छल छाड़ि छमैया। (क० ७।५३)

छय-(सं० क्षय)-१ नाश, हानि, २ क्षय रोग, ३ प्रलय कल्पांत। उ० १ जेहिं रिपुछय सोइ रचेन्हि उपाऊ। (मा० १।१७०।४)

छयल-[सं० छवि + इल्ल (प्रा० प्रत्यय)]-सुंदर और बना ठना आदमी। सुंदर वेश विन्यास युक्त पुरुष। उ० छरे, छवीले छयल सब सूर सुजान नवीन। (मा० १।२९८)

छर (१)-(सं० छल)-कपट, फरेब। छरनि-छलों से, छलों द्वारा। उ० बीच पाइ नीच बीच ही छरनि छरयो हौं। (वि० २६६)

छर (२)-(सं० क्षर)-१ नाशवान, नाश होनेवाला, २ जल।

छरन(१)-(सं० क्षरण)-१ चूना, बहना, २ नाश होना, क्षय होना।

छरन (२)-(सं० छल)-छलनेवाला, छलिया। उ० गंग जनक, अनंग अरि प्रिय, कपट बटु बलि-छरन। (वि० २१८)

छरभार-(सं० सार + भार)-पूरा भार, उत्तरदायित्व, जिम्मेवारी। उ० यह छरभार ताहि तुलसी जग जाको दास कहैहौं। (वि० १०४)

छरिगे-छले गए। उ० तहँ तहँ नर नारि बिनु छर छरिगे। (गी० २।३२)

छरी (१)-(सं० शर)-छड़ी, सीधी, पतली और छोटी लाठी। उ० लिए छरी बेंत सोधें बिभाग। (गी० ७।२२)

छरी (२)-(सं० छल)-छली, छलनेवाला।

छरीला-(?) एकाकी, अकेला।

छरुभार-दे० 'छरभार'।

छरुभारु-दे० 'छरभार'। उ० लखि अपनें सिर सबु छरुभारु। (मा० २।२६०।१)

छरे-(सं०छटा)-अच्छे, सुन्दर, अद्वितीय। उ० छरे छवीले छयल सब सूर सुजान नवीन। (मा० १।२९८)

छरै-छले, धोखा दे। छरैगी-छलेगी, धोखा देगी। उ० बाहुबल बालक छबीले छोटे छरैगी। (ह० २५) छरो-छला, धोखा दिया। उ० गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग, निगम नियोग ते सो कलि ही छरो सो है। (क० ७।८४) छरयो-छला, छल किया, धोखा दिया। उ० बीच पाइ नीच बीच ही छरनि छरयो हौं। (वि० २६६)

छल-(सं०)-१ कपट, वंचना, धूर्तता, धोखा, २ बहाना, ब्याज, मिस। उ० १ सब मिलि करहु छाँड़ि छल छोहू। (मा० १।८।२) छलछाहँ-१ टोना टोटका आदि, २ धोखेबाजी। उ० १ बेदन बिषम पाप ताप छलछाहँ की। (ह० २६) छल-छाउ-दे० 'छलछाहँ'। उ० अब

नाए सुग्रीव विभीषन, तिन न तज्यो छल-छाउ। (वि० १००) छलछाय-छल की छाया, धोखेबाजी। छलछिद्र-(स०)-कपट व्यवहार, धूर्तता। उ० मोहि कपट छलछिद्र न भाया। (मा० ५।४४।३) छलबल-१ माया, २ छल और बल, ३ धोखा, धूर्तता। उ० १ निसिचर छल बल करइ अनीता। (मा० ६।२४।२)

छलक-(प्र०)-हिलोर, छलकने का भाव। उ० बृद्धि गयो जाके बल वारिधि छलक में। (क० ६।२५)

छलकारी-छल करने वाली, धोखेबाज उ० होहु कपटमृग तुम्ह छलकारी। (मा० ३।२४।१)

छलकिहैं-छलकेगी, हिलोर लेगी, बह चलेगी। उ० मनि खभनि प्रतिबिंब झलक, छबि छलकिहैं भरि अँगनैया। (गी० १।६) छलकैं-छलकते हैं, छलकती हैं। उ० मनहु उमँगि अँग अँग छबि छलकैं। (गी० १।२८)

छलन-१ छल कार्य, धूर्तता का काम, २ छलने के लिए, ३ छलनेवाले। उ० ३ छलन बलि कपट बटु रूप बामन ब्रह्म, भुवन-पर्यंत पद-तीनि करण। (वि० ५२)

छलहीं-छलते हैं, ठगते हैं। उ० बचक बिरचि बेष जगु छलहीं। (मा० २।१६८।४) छलि-छलकर, धोखा देकर।

छलाई-छल में, धोखे में, छल करने में। उ० पांडु के पूत सपूत, कुपूत सुजोधन भो कलि छोटो छलाइ। (क० ७।१२१)

छलिन-छली का बहुवचन, छलिया। उ० छलिन की छोंड़ी सो निगोड़ी छोटी जाति पाँति। (क० ७।१८) छली-छलनेवाला, कपटी, धोखेबाज़। उ० छली मलीन हीन सबही अँग, तुलसी सो छीन छाम को ? (वि० ६६)

छलु-दे० 'छल'। उ० १ जहँ जनमें जग जनक जगतपति बिधि हरिहर परिहरि प्रपंच छलु। (वि० २४)

छव-(स० षट्)-छ, पाँच और एक, ६। उ० जग तें रहु छत्तीस ह्वै राम चरन छव तीन। (स० २२०) छवतीन-६ और ३। छ तीन दोनों आसपास रखने पर सम्मुख रहते हैं अत इसका अर्थ सम्मुखता, समीपता आदि लिया जाता है। दे० 'छव'। छहु-(स० षट्)-१ सभी छ, २ सभी छः शास्त्र। उ० २ चारिहु को छहु को नव को दस आठ को पाठ कुकाठ, ज्यों फारैं। (क० ७।१०४) छहूँ-छओ, छहा। उ० कीरति सरित छहूँ रितु रूरी। (मा० १। ४२।१)

छवनी (१)-(स० शावक, या स० सुत, प्रा० सुअ, हिं० सुअन, सुवन)-पुत्री, बच्ची, छोटी लड़की। उ० भई है प्रगट अति दिव्य देहधरि मानो त्रिभुवन-छवि-छवनी। (गी० १।२६)

छवनी (२) (स० छादन)-छानेवाली, ढकनेवाली।

छवा-(स० शावक या वत्स, हिन्दी बछवा)-१ किसी पशु का बच्चा २ गाय का बच्चा, बछड़ा। उ० १ हैं हम के हरि केहरि के बिचले अरि-कुजर छैल छवा से। (क० १८)

छवि-(स०)-१ शोभा, सौन्दर्य, २ कांति, प्रभा, चमक।

छाँड़त-(स० छर्दन)-छोड़ता है। उ० भूमि न छाँड़त कपि चरन देखत रिपु मद भाग। (मा० ६।३४ ग) छाँड़हि-छोड़ते हैं, त्यागते हैं। उ० छाँड़हि मचाइ हाहा कराइ। (गी० ७।२२) छाँड़ा-१ छोड़ दिया, त्यागा, २ छोड़ा हुआ, राख। छाँड़ि-छोड़कर, त्यागकर। उ० रामनाम छाँड़ि जो भरोसो करै और रे। (वि० ६६) छाँड़िए-त्यागिए, छोड़िए। उ० तहँ तहँ चिनि छिन छोह छाँड़िए कमठ अड की नाई। (वि० १०३) छाँड़िगो-छोड़ गए, छोड़ गया। उ० कोपि पाँव रोपि, बस कै छोहाइ छाँड़िगो। (क० ६।२४) छाँड़िहौं-छोड़ूँगा। उ० हौं मचला लै छाँड़िहौं जेहि लागि अरयो हौं। (वि० २६७) छाँड़ी-छोड़ा। उ० सेवक-छोहतें छाँड़ी छमा, तुलसी लख्यो राम सुभाव तिहारो। (क० ७।३) छाँड़ु-छोड़ो, त्यागो। उ० कह तुलसिदास तेहि छाँड़ु मैन। (गी० २।४८) छाँड़े-१ छोड़ा, २ छोड़कर, त्यागकर, ३ छोड़ने से। उ० १ चलत कुपथ बेदमग छाँड़े। (म० १।१२।१) छाँड़ेउँ-छोड़ दिया, छोड़ दिया था। उ० मूढ़ आनि सठ छाँड़ेउँ तोही। (मा० ६।७४।३) छाँड़्यो-(स० छर्दन) छोड़ा, त्यागा। उ० छोनी में न छाँड़्यो छप्यो छोनिप को छोना छोटो। (क० १।१८)

छाँह-(स० छाया)-परछाहीं, छाया, माया। उ० पल को गए लवगन हैं खरिका, परिखौ, पिय छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े। (क० २।१२)

छाँहा-दे० 'छाँह'।

छाइ-(स० छादन)-१ छाकर, ढकर, २ छाओ, बनाओ, ३ फैला, ४ शोभित। उ० २ तुलसी घर बन बीच ही राम प्रेम पुर छाइ। (दो० २५६) ३ सीतलता ससि की रहि सब जग छाइ। (म० ३३) छाई (१)-(स० छादन)-१ आच्छादित, छाई हुई, २ ढँकी हुई, ३ फैली। उ० ३ सोभा सींव सीव चिबुकाधर बदन अमित छबि छाई। (वि० ६२) छाउ (१)-(स० छादन)-छाओ, ढको। छाए-फैले, फैल गए, बिछ गए। उ० सकल लोक सुख संपति छाए। (मा० १।१६०।३) छाऊँ-१ छाता हूँ, ढकता हूँ, सोपता हूँ, छाऊँ, ढकूँ।

छाई (२)-(स० छाया)-दे० 'छाँह'।

छाई (३)-(सं० क्षार)-राख, धूल, भस्म।

छाउ (२)-(सं० छाया)-प्रतिबिंब, छाँह, परछाहीं। उ० बपनाए सुग्रीव बिभीषन, तिन न तज्यो छल-छाउ। (वि० १००)

छाक (१)-(?)-कलेवा, जलपान। उ० बलदाऊ देखियत दूरि तें आवति छाक पठाई मेरी मैया। (कृ० १६)

छाक (२)-(स० चक्र)-मतवाला उन्मत्त।

छाके-(सं० चक्र)-मतवाले, उन्मत्त, छिप हुए, अघाए हुए। उ० के बनिकाल कराल न सूझत मोह मार-मद छाके। (वि० २२४)

छाग-(स०)-बकरा, अज।

छाछा-(स० छच्छिका)-मट्ठा, मठ्ठा, वह पानी मिला दही या दूध जिसका घी या मक्खन निकाल लिया गया हो। उ० छाछी को ललात जे ते राम-नाम के प्रसाद। (क० ७। ७५)

छाजति-(स० छादन)-शोभा देती है फबती है। उ० स्याम सरीर सुचदन-चर्चित, पीत दुकूल चापिट छबि छाजति। (गी० ७।१७) छाजा (१)-(स० छादन)-१ शोभा देता है, फबता है, २ शोभित हुआ, सुन्दर लगा। उ० १ आ कनु

करहिं उनहिं सब छाजा। (मा० ३।१७।७) छाजै-शोभा देती है, फबती है। उ० छोनी में के छोनीपति छाजै जिन्हैं छत्रछाया। (क० १।८)

छाजा (२)-(सं० छाद)-छज्जा, छप्पर।

छाजा (३)-(?)-१ डगर, रास्ता, २ सूप।

छाड़-छोड़, छोड़ो, छोड़ दो। उ० नाहिं त छाड़ कहाउब रामा। (मा० १।२८१।१) छाड़इ-(सं० छर्दन)-छोड़ता है, छोड़ रहा है। उ० छोड़इ स्वास कारि जनु साँपिनि। (मा० २।१३।४) छाड़न-छोड़ना, त्यागना। उ० सिंहिनि जिमि छाड़न चहति बचनु भयंकरु बाजु। (मा० २।२८) छाड़ब-छोड़ना, छोड़ियेगा। उ० देबि न हम पर छाड़ब छोहू। (मा० २।११८।१) छाड़हु-छोड़ो, छोड़ दो, छोड़ दीजिए। उ० छाड़हु बचनु कि धीरजु धरहू। (मा० २।३५।४) छाड़ा-छोड़ा, छोड़ता था, फेंकता था। उ० बर पइ कबहुँ उपल बहु छाड़ा। (मा० ६।५२।२) छाड़ि-छोड़कर। उ० रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू। (मा० २।१४।१) छाड़िअ-छोड़िए, त्यागिए। उ० छाड़िअ सोच सकल हितकारी। (मा० २।१५०।४) छाड़िसि-छोड़ा, चलाया। उ० बीरघातिनी छाड़िसि साँगी। (मा० ६।५४।४) छाड़िहउँ-छोड़ूँगा, छोड़ दूँगा। उ० तब मारिहउँ कि छाड़िहउँ भलीभाँति अपनाइ। (मा० १।१८१) छाड़िहिं-छोड़ेंगे, त्यागेंगे। उ० सील सनेह न छाड़िहि बीरा। (मा० २।७३।२) छाड़े-१ छोड़े, २ छोड़ने से। उ० १ छाड़े बिषम बिसिख उर लागे। (मा० १।८७।२) छाड़ेउ-छोड़ दिया, छोड़ा। उ० प्रभु छाड़ेउ करि छोह को कृपाल रघुबीर सम। (मा० ३।२)

छाता-(सं० छत्र)-पानी तथा धूप से बचाने के लिए व्यवहृत एक प्रसिद्ध वस्तु, छतरी। उ० कटि कै छिन बरिनिआँ छाता पानिहि हो। (रा० ८)

छाती-(सं० छादिन्)-१ सीना, वक्षस्थल, कुच, २ हृदय, उर, कलेजा, ३ दृढ़ता, हिम्मत। उ० २ कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती। (मा० १।११३।४)

छानि-(सं० चालन)-छानकर। उ० तुलसी भरोसो न भवेस भोलानाथ को तौ कोटिक कलेस करौ मरौ छार छानि सो। (क० ७।१६१)

छाम-(सं० क्षाम)-१ क्षीण, पतला, कृश, २ थोड़ा, अल्प, ३ क्षरा, नाश, क्षय। उ० १ राम छाम, लरिका लषन, बालि-बालकहि बाल को गात रीछ जल ज्यों न घन मैं। (गी० ५।२३)

छाय (१)-(सं० छाया)-छाँह, छाया, परछाहीं।

छाय-(२)-(सं० छादन)-आच्छादित करो, छाओ। छायउ-छा गया, फैल गया। उ० एहि बिधि ब्याहि सकल सुत जग जस छायउ। (जा० २०२) छाये-१ छाए, फैले, २ शरण ली, ठहरे। उ० २ छोनी-छोनी छाये छिति आए निमिराज के। (क० १।८) छायो-छाया, छाया हुआ है। उ० काके भए गए सँग काके, सब सनेह छल छायो। (वि० २००)

छाया-(सं०)-१ छाँह, परछाहीं, माया, २ प्रतिकृति, अक्स, परछाहीं, ३ शरण, रक्षा पनाह, ४ अनुकरण, नकल, ५ छाया हुआ, ढँका, ६ सूर्य की एक पत्नी का नाम। उ० १ त्रिबिध समीर सुसीतल छाया। (मा० १।१०६।२)

छार-(सं० क्षार)-१ राख, खाक, भस्म, २ धूल, ३ नमक, एक खारा पदार्थ। उ० १ तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा। (मा० १।६५) २ दे० 'छारैं'। छारैं-छार को, धूल को। उ० पब्बइ तें छार, छारै पब्बइ पलक हीं। (क० ७।६८)

छारा-दे० 'छार'। उ० २ चितवत कामु भयउ जरि छारा। (मा० १।८७।३)

छाल (१)-(सं० छल्ल)-१ वल्कल, वृक्ष का छिलका, २ चर्म, चमड़ा।

छाल (२)-(सं० क्षालन)-नहाना, धोना, सफाई करना।

छाला-दे० 'छाल (१)'। उ० २ तन बिभूति पट केहरि छाला। (मा० १।६२।१)

छालिका-धोनेवाली, स्वच्छ करनेवाली। उ० त्रिपथगासि, पुन्यरासि, पापछालिका। (वि० १७)

छालित-साफ किया हुआ, नहलाया हुआ। उ० रघुपति भगति-बारि छालित चित बिनु प्रयास ही सूझै। (वि० १२४)

छावत-छाये हो, फैले हो, फैलता है। उ० जनु सुनरेस देस पुर प्रमुदित प्रजा सकल सुख छावत। (गी० २।५०।२) छावन-छाने के लिए। उ० गुनि गन बोलि कहेउ नृप माँडव छावन। (जा० १२७) छावा (१)-(सं० छादन)-१ छाया, छाया गया, ढँका गया, २ छा गया, फैल गया। उ० २ सुजसु पुनीत लोक तिहुँ छावा। (मा० १।३६१।२)

छावा (२)-(सं० शावक)-बच्चा, पुत्र, बेटा।

छाहीं-१ दे० 'छाँह', २ छाया में, छाँह में। उ० २ ते मिलये धरि धूरि सुजोधन जे चलते बहु छत्र की छाहीं। (क० ७।१३२)

छाहूँ-छाया भी, परछाहीं भी। उ० काहे को रोस-दोस काहि धौं मेरे ही अभाग मोसों सकुचत छुइ सब छाहूँ। (वि० २७५) छाहैं-१ छाँह का बहुवचन, २ छाँह में। उ० २ बारत दीन अनाथन को रघुनाथ करैं निज हाथ की छाहैं। (क० ७।११)

छिति (१)-(सं० क्षिति)-पृथ्वी, धरती, जमीन। उ० छूटहिं गगन मनहुँ छिति छाँड़ि। (मा० २।१६१।३)

छिति (२)-(सं० क्षय)-क्षय, नाश, विनाश।

छितिज-(सं० क्षितिज)-१ मंगल ग्रह, २ नरकासुर, ३ केंचुआ, ४ पेड़, ५ वह स्थान जहाँ दृष्टि पहुँचकर रुक जाती है और जमीन तथा आसमान मिले ज्ञात होते हैं।

छितिपाल-(सं० क्षितिपाल)-राजा, भूपाल। उ० छाड़ि छितिपाल जो परीछित भए कृपालु। (क० ७।१८१)

छिद्र-(सं०)-१ छेद सूराख, २ दोष, ३ कमजोरी। उ० २ जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा। (मा० ११२।३)

छिन-(सं० क्षण)-क्षण, थोड़ा समय, पल। उ० मान कृपान समान लगत उर, बिहरत छिन छिन होत निनारे। (कृ० ५६)

छिनि-(सं० छिन्न)-छीन, छीन कर। उ० दुरि अधिक-बस

राजमरालिनि लषन लाउ छिनि लीनै। (गी० ३।७)

छिनु-दे० 'छिन'। उ० छिनु छिनु लखि सिय राम पद जानि धापु पर नेहु। (मा० २।१२१)

छिनुकु-क्षणभर, एक क्षण, थोड़ी देर। उ० कहहि गयउँ छिनुकु श्रमु गवनय अबहि कि प्रात। (मा० २।११४)

छिप्र-(सं० क्षिप्र)-शीघ्र, जल्दी।

छिया-(सं० छिप)-१ घिनौनी वस्तु, गन्दी चीज, २ पाखाना, विष्टा। उ० २ हौं समुझत साँई द्रोहि की गति छार छिया रे। (वि० ३३)

छिरकैं-(सं० क्षिप)-छिड़कते हैं। उ० छिरकैं सुगध-भरे मलय-रेनु। (गी० ७।२२)

छींटि-(सं० क्षिप)-छींटें। उ० सोनित छींटि छटानि-जटे तुलसी प्रभु सोहैं, महाछवि छूटी। (क० ६।२१)

छींक-(सं० शिक्य)-१ सीका, सिकहर, डोरी से जाल की भाँति बनी चीज जो छत से लटकती रहती है और जिसमें दूध दही आदि चीजें कुत्ते बिल्ली से बँचने के लिए रखते हैं, २ छींके पर, सिकहर पर। उ० २ अब कहि देउँ कहति किन यों कहि माँगत दहिउ धरयो जो है छींके। (कृ० १०)

छीजहिं-(सं० क्षयण)-क्षीण होते हैं, घटते हैं। उ० जाने ते छीजहिं कछु पापी। (मा० ७।१२२।२) छीजहीं-नष्ट होते हैं, घटते हैं, क्षीण होते हैं। उ० चिक्करहिं मर्कट भालु छल-बल करहिं जेहिं खल छीजहीं। (मा० ६।८१। छं० १) छीजै-हानि उठावे, क्षीण हो। उ० सहि देख्यो, तुम्हसा कह्यो, अब नाकहि आइ, कौन दिनहु दिन छीजै? (कृ० ७)

छीण-(सं० क्षीण)-१ दुर्बल, कमजोर, पतला, २ शिथिल, मंद।

छीन-दे० 'छीण'। उ० १ छुधा छीन बलहीन सुर सहजेहिं मिलिहहिं आइ। (मा० १।१८१)

छीनता-(क्षीणता)-१ क्षय, नाश, क्षत, २ निर्बलता, कमजोरी, ३ कृशता, दुबलापन, ४ सूक्ष्मता। उ० १ सुमिरत होत कलिमल-छल छीनता। (वि० २६०)

छीना (१)-(सं० क्षीण)-क्षीण, हीन, रहित। दे० 'छीण'। उ० उदासीन सब संसय छीना। (मा० १।६०।४)

छीना (२)-(सं० छिन्न)-छीन लिया, ले लिया। छीनि-छीन, ले, हड़प। उ० छीनि लेइ जनि जान जड़ तिमि सुरपतिहि न लाज। (मा० १।१२५) छीने (१)-(सं० छिन्न)-१ छीन लिया, ले लिया, २ छीनने पर ले लेने पर, ३ छीने हुए। उ० २ बिबुध मगहुँ माखी मधु छीने। (मा० २।७६।२)

छीने (२)-(सं० क्षीण)-१ क्षीण, कमजोर, दुर्बल, २ कमजोर होने पर।

छीयो-(सं० छुप)-छूना, स्पर्श करना। उ० ग्वालि बचन सुनि कहति जसोमति, भलो न भूमि पर बादर छीयो। (कृ० ६)

छीर-(सं० क्षीर)-१ दूध २ पानी, ३ खीर दूध में पके चावल आदि ४ पौधों से निकलने वाला लसदार द्रव्य जो सूखने पर गोंद कहलाता है। उ० १ मिलै न मथत बारि घृत बिनु छीर। (वि० १६६) छीरै-दूध को।

छीरनिधि-(सं० क्षीरनिधि)-क्षीर सागर। पुराणों के अनुसार सात समुद्रों में से एक जो दूध से भरा माना जाता है। विष्णु इसी में शयन करते हैं। उ० सगुन छीरनिधि तीर बसत ब्रज तिहुँ पुर बिदित बड़ाई। (कृ० ४१)

छीरसिंधु-(सं० क्षीरसिंधु)-दे० 'छीर सागर'। उ० छीरसिंधु गवने मुनिनाथा। (मा० १।१२८।२)

छुँरु-दे० 'छीर'। उ० १ हात प्रात बट छीरु मगावा। (मा० २।९४।१)

छुअत-(सं० छुप)-१ छूने, स्पर्श से, २ छूता है। उ० १ ससि कर छुअत बिकल जिमि कोकू। (मा० २।२६।२) छुआ-छूआ, स्पर्श किया। उ० रावन यान छुआ नहि पावा। (मा० १।२२६।२) छुइ-१ छूकर, छूने से, २ छू जाता। उ० १ जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा। (मा० २।१६४।२) छुए-छुआ, स्पर्श किया। उ० दई सुगति सो न हेरि हरष हिय, चरन छुए पछितात। (वि० १००) छुयो-१ छुआ, स्पर्श किया, २ स्पर्श कीजिए। छुवै-छूकर, स्पर्श कर। उ० सुर तीरथ, तासु मनावत आवत, पावन होत हैं ता तन छुवै। (क० ७।३४)

छुछुँदरि-दे० 'छछूँदर'। उ० भइ गति साँप छुछुँदरि केरी। (मा० २।५५।२)

छुटकाए-(सं० छुट)-छोड़ने पर, छूटने पर। उ० किलकि-किलकि नाचत चुटकी सुनि डरपति जननि पानि छुटकाए। (गी० १।२६)

छुटि-छूटकर, अलग होकर, छूट। उ० काटत सिर होइहि बिकल छुटि जाइहि तव ध्यान। (मा० ६।६६) छुटिहहिं-छूटेंगे, अलग होंगे। उ० छुटिहहिं अति कराल बहु सायक। (मा० ६।२७।३) छुटिहि-छूटती है, छूटेगा। उ० तुलसिदास प्रभु मोह शृंखला छुटिहि तुम्हारे छोरे। (वि० ११४) छुटै-१ छूटता, २ छूटने पर। उ० १ छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति श्रुति संदेह निबेरो। (वि० ८७)

छुड़ाइ-(सं० छोरण)-१ छुड़ाकर, २ छुड़ा। उ० १ दीन्हों ना छुड़ाइ कहि कुल के कुठार सों। (क० ६।११)

छुड़ाई-१ छुड़ाने की क्रिया, छुड़ा, २ छुड़ाया, ३ छीनने की क्रिया, छीन। उ० ३ जासु देस नृप लीन्ह छुड़ाई। (मा० १।१२८।१) छुड़ाये-छुड़वाया, मुक्त किया।

छुधित-(सं० क्षुधित)-भूखा। उ० सादरिहु छुधित हरित राजा बाजि समेत। (मा० १।१५७)

छुद्र-(सं० क्षुद्र)-१ छोटा, अल्प हलका, तुच्छ, २ दरिद्र, कंगाल, ३ नीच, ४ क्रूर, निर्दय, दुष्ट। उ० १ जिमि हरिबधुहि छुद्र सस चाहा। (मा० ३।२८।८)

छुधा-(सं० क्षुधा)-भूख, खाने की इच्छा। उ० छुधाछीन बलहीन सुर सहजहिं मिलिहहिं आइ। (मा० १।१८१)

छुधार्त-भूखा, क्षुधित। उ० छुधारत सब निसिचर मरें। (मा० ६।४०।१)

छुधित-(सं० क्षुधित)-भूखा, क्षुधावान। उ० सुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू। (मा० २।११२।१)

छुभित-(सं० क्षुभित)१ विचलित, व्याकुल, २ घबराया हुआ। उ० १ छुभित पयोधि कुधर डगमगे। (मा० ६।७०।३)

छुर-(सं० क्षुर) छुरा, उस्तुरा, छूरी ।
छुरा-दे० 'छुर' । उ० सांपनि सों खेलैं, मेलैं गरे छुराधार सों । (क० ५।११)
छुरी-छोटा छुरा । उ० कपट छुरी उर पाहन टेई । (मा० २।२२।१)
छुहे-(?)-रँगे हुए, नाना रंगों से चित्रित किए हुए । उ० छुहे पुरट घट सहज सुहाए । (मा० १।३४४।३)
छूँछा-(सं० तुच्छ)-खाली, रिक्त, जिसमें कुछ न हो । उ० प्रेम भरा मन निज गति छूँछा । (मा० २।२४२।४)
छूँछी-छूँछा का स्त्रीलिंग ।
छूछी-दे० 'छूँछी' । उ० बोली असुभ भरी सुभ छूछी । (मा० २।३८।४) छूछे-दे० 'छूँछा' । उ० तेहि तें परेउ मनोरथु छूछें । (मा० २।३२।१)
छूट-(सं० छुट)-१ छूटा, मुक्त, २ छूटेगा । उ० १ छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान । (मा० २।५१) २ हठ न छूट छूटै बरु देहा । (मा० १।८०।३)
छूटउ-छूटे, छूट जाय । उ० छूटउ बेगि देह यह मोरी । (मा० १।१६१।४) छूटत-१ छूटता है, मुक्त होता है, २ छूटने में । उ० २ जदपि मृषा छूटत कठिनई । (मा० ७।११७।२) छूटहिं-छूटते हैं, छूट जाते हैं । उ० सुनत श्रवन छूटहिं मुनि ध्याना । (मा० १।६१।२) छूटि-छूटकर, अलग होकर । उ० मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी । (मा० १।१३२।३) छूटिबे-छूटने, मुक्त होने । उ० छूटिबे की जतन बिसेष बाँध्यो जायगो । (वि० ६८) छूटी-१ छूट गई, मुक्त हुई, २ फैली, फैलती है, ३ बच गई । उ० २ सोनित छीटि-छटानि जटे तुलसी प्रभु सोहैं, महा छबि छूटी । (क० ६।५१) छूटे-छूट जाती है, जाती रहती है । उ० जैसे दिवस दीप छबि छूटे । (मा० १।२६१।३) छूटै-१ छूटता, २ छूटने पर, ३ छूटे, छूट जाय । उ० १ बाहिर कोटि उपाय करिय अभ्यंतर ग्रंथि न छूटै । (वि० ११५) २ हठ न छूट छूटै बरु देहा । (मा० १।८०।३)
छूति-(सं० छुप्)-छुतका, छूत, स्पर्श । उ० बचन बिचार अचार तन, मन, करतब छल छूति । (दो० ४११)
छेंका-(?)-घेरा, रोका । उ० मेघनाद सुनि श्रवन अस गढ़ु पुनि छेंका आइ । (मा० ६।४६) छेंकी-१ छेंका, रोका, २ छेंकी हुई, अलग की हुई । उ० २ तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी । (मा० २।६७।३)
छेत्र-(सं० क्षेत्र)-१ जहाँ कुछ बोया जाता है, खेत, २ २ योनि, उत्पत्ति स्थान, ३ पुण्यस्थान, प्रयाग, तीर्थ स्थान, ४ पत्नी, भार्या, ५ स्थान ।
छेत्रु-दे० 'छेत्र' । उ० ३ छेत्रु अगम गढ़ु गाढ़ सुहावा । (मा० २।१०५।३)
छेदन-(सं०)-१ छेदना, काटना, २ काटने में, नष्ट करने में । उ० २ भव खेद छेदन दच्छ हम कहुँ रच्छ राम नमामहे । (मा० ७।१३। छं० १) छेदनि-छेदने या नष्ट करने की क्रिया । उ० सहस बाहु भुज छेदनिहारा । (मा० १।२७२।४) छेदे-१ छेदा २ छेदे हुए, छिदे हुए । उ० २ एक एकन्ह सिर निकर छेदे नभ उड़त इमि सोहहीं । (मा० ६।६२। छं० १)

छेम-(सं० क्षेम)-१ कल्याण, कुशल, मंगल, २ प्राप्त वस्तु की रक्षा, ३ सुख, आनंद । उ० १ जाय जोग जग छेम बिनु, तुलसी के हित राखि । (दो० ४७२)
छेमकरी-(सं०)-१ एक प्रकार की चील जिसका गला सफ़ेद होता है । यह शुभ मानी जाती है । २ मंगल करनेवाली । उ० १ नकुल सुदरसन दरसनी, छेमकरी चक चाष । (दो० ४६०)
छेमा-दे० 'छेम' । उ० १ तेहि बिनु कोउ न पावइ छेमा । (मा० ७।११।३)
छेरी-(सं० छेलिका)-बकरी, अजा । उ० छेरी छोरो, सोवै सो जगावो जागि जागि रे । (क० ५।६)
छैया-(सं० शावक)-बच्चे के लिए प्यार का शब्द, शिशु । उ० कहति मल्हाइ लाइ उर छिन छिन छगन छबीले छोटे छैया । (गी० १।१७)
छैल-(सं० छवि + इल्ल (प्रत्यय), प्रा० छइल्ल)-१ छवियुक्त, सुन्दर, रँगीला, बाँका, शौकीन, २ गुंडा, ३ सजा हुआ युवक । उ० १ तैं रनकेहरि केहरि के बिदले अरि-कुंजर छैल छवा से । (ह० १८)
छैहैं-छा जायेंगे । उ० दिव्य दुंदुभी, प्रसंसिहैं मुनिगन, नभतल बिमल बिमाननि छैहैं । (गी० २।५०)
छोंड़ी-(सं० शावक)-लड़की, बालिका । उ० छलिन की छोंड़ी सो निगोड़ी छोटी जाति-पाँति । (क० ७।१८)
छोट-(सं० क्षुद्र)-१ क्षुद्र, नीच, खोटा, २ लघु, छोटा, ३ सामान्य, साधारण, ४ ओछा, महत्वहीन । उ० १ भाग छोट अभिलाषु बड़ करउँ एक बिस्वास । (मा० १।८)
छोटाई-१ क्षुद्रता, नीचता, २ लघुता, छोटापन । उ० २ बड़े की बड़ाई, छोटे की छोटाई दूरि करै । (वि० १८३)
छोटि-दे० 'छोटी' ।
छोटिऐ-छोटी ही, छोटी सी ही । उ० छोटिऐ कछौटी कटि, छोटिऐ तरकसी । (गी० १।४२) छोटी-लघु, जो बड़ी न हो । उ० प्रभु की बड़ाई बड़ी, आपनी छोटाई छोटी । (वि० २६२) छोटे-दे० 'छोट' । उ० २ छोटे-छोटे छोहरा अभागे भोरे भागि रे । (क० ५।४) छोटेउ-छोटे भी । उ० नाम प्रताप महामहिमा, अकरे किए खोटेउ, छोटेउ बाढ़े । (क० ७।७७)
छोड़उँ-छोड़ूँ, छोड़ता हूँ, छोड़ रहा हूँ । उ० उतर देस छोड़उँ बिनु मारें । (मा० १।२७२।४) छोड़ति-छोड़ देती, छोड़ देती है । उ० छोड़ति छोड़ाये तें, गहाए तें गहति । (वि० २४६)
छोड़ाए-(सं० छोरण) छुड़ाए, छुड़ा दिये । उ० दया लागि हँसि तुरत छोड़ाए । (मा० ५।५२।४) छोड़ावा-छुड़ाया, मुक्त करवाया । उ० सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा । (मा० ६।२४।८)
छोना-(सं० शावक)-बच्चा, लड़का । उ० छोनी मैं न छाँड्यो छप्यो छोनिप को छोना छोटो । (क० १।१८)
छोनिप-(सं० क्षोणिप)-१ भूप, राजा, २ क्षत्रिय, राजपुत्र । उ० १ छोनी मैं न छाँड्यो छप्यो छोनिप को छोना छोटो । (क० १।१८)
छोनी-(सं० क्षोणी)-पृथ्वी, धरती, भूमि । उ० मदन छमा बरु पाई छोनी । (मा० २।२३३।१)

छोनीपति-(सं० क्षोणीपति)-राजा, भूप, नृप। उ० छोनी में के छोनीपति छाजै जिन्हें छत्रछाया। (क० १।८)
छोभ-(सं० क्षोभ)-चित्त का विचलित होना। करुणा, दुःख, शंका, मोह, लोभ आदि के कारण चित्त का चंचल होना, घबराहट, खलबली। उ० लोभ न छोभ न राग न द्रोहा। (मा० ७।११०।१)
छोभा-दे० 'छोभ'। १ क्षोभ, २ क्षुब्ध हुआ। उ० २ पितु पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा। (मा० १।२४८।१)
छोभित-(सं० क्षोभित)-चंचल, भयभीत, विचलित, घबराया हुआ।
छोभु-दे० 'छोभ'। उ० सकर-उर अति छोभु सती न जानहिं मरमु सोइ। (मा० १।४८ ख)
छोर-(सं० छोरण)-१ मुक्त करनेवाला, छोड़ने या छुड़ाने वाला, २ किनारा, अंत, सीमा, ३ नोक अनी। उ० १ बंदि-छोर तेरो नाम है, बिरुदैत बड़ेरो। (वि० १४६)
छोरइ-१ छोड़े, खोले, २ खोलता है, छुड़ा देता है। उ० २ देखी भगति जो छोरइ ताही। (मा० १।२०२।२) छोरत-१ छोड़ता है, मुक्त करता है, २ छीनता है, अपहरण करता है, ३ खोलते हुए। उ० ३, छोरत ग्रंथि जानि खगराया। (मा० ७।११८।३) छोरन-छोड़ने, खोलने। उ० छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई। (मा० ७।११८।३) छोरी (१)-(सं० छोरण)-१ छोड़ा, खोला, २ छीना, लिया, ३ छोड़, खोल, मुक्तकर। उ० ३ सोइ अविछिन्न ब्रह्म जसुमति बाँध्यो हठि सकत न छोरी। (वि० ९८) छोरे-१ छोड़े, खोले, २ छीने। उ० २ अन लोकत मुख देत परम सुख लेत सरद-ससि की छबि छोरे। (गी० ३।२) छोरो-छोड़ो, खोलो। उ० हाथी छोरो, घोरा छोरो, महिष बृषभ छोरो। (क० ५।६)
छोरी (२)-(सं० शावक)-लड़की।
छोलत-(सं० छल्ल)-१ छीलते हुए, २ छीलते हैं, ३ छीलने में। उ० ३ रच्यो रची बिधि जो छोलत छबि-छूटी। (गी० २।२१) छोलिछालि-छील छालकर, साफ कर, ठीक कर, काटपीट कर। उ० गढ़ि-गुढ़ि छोलि छालि कुंद की सी भाइ बातें। (क० ७।९९) छोला-१ छीला, २ छीलकर, काट कर। उ० २ सजि प्रतीति बहुबिधि गढ़ि छोली। (मा० २।१७।२)
छोह-(सं० क्षोभ)-१ ममता, प्रेम, स्नेह, २ दया, अनुग्रह, ३ दुःख। उ० १ भाई को न मोह, छोह सीय को न, तुलसीस। (क० ६।२२)
छोहरा-(सं० शावक)-छोकड़ा, बालकों के लिए अनादर या प्यार का शब्द। उ० छोटे-छोटे छोहरा अभागे भोरे मागि रे। (क० ५।६)
छोहा-दे० 'छोह'। उ० २ नाथ कीन्हि मोपर अति छोहा। (मा० ७।१२३।२)
छोहाइ-कृपाकर, स्नेह कर। उ० कोपि पाँव रोपि, बल कै छोहाइ छाँड़िगो। (क० ६।२४)
छोहु-दे० 'छोह'। उ० २ करहिं छोहु सब रौरिहि नाइ। (मा० २।३।२)
छोहू-दे० 'छोह'। उ० १ आरति मोर नाथ कर छोहू। (मा० २।३१४।३)
छौंड़ी (१)-(सं० शावक)-छोरी, लड़की।
छौंड़ी (२)-(सं० 'कुंडा)-अनाज आदि रखने के लिए मिट्टी का एक बहुत बड़ा बर्तन।
छौंड़ी (३)-(?)-दही मथने की मथानी।
छौना-(दे० छवनो)-बच्चा, छोटा लड़का, बालक। उ० मनहुँ बिनोद लरत छबि छौना। (गी० १।२१)

## ज

जंगम-(सं०)-१ चलने फिरनेवाला, चर चलता फिरता, २ एक विशिष्ट प्रकार के साधु। उ० १ जो जग जंगम तीरथराजू। (मा० १।२।४)
जंघा-दे० 'जंघा'।
जंघ-दे० 'जंघा'। उ० कल कदलि जंघ, पद कमल लाल। (वि० १४)
जंघा-(सं०)-घुटने से ऊपर का भाग, रान, उरु। उ० जंघा जानु भानु केदलि उर कटि किंकिनि, पटपीत सुहावन। (गी० ७।१६)
जंजाल-(सं० जग+जाल)-१ प्रपंच, झंझट, बखेड़ा, २ बंधन, फँसाव, ३ बड़ा जाल जिसमें जीव जंतु फँसाए जाते हैं। उ० २ मुनिसिदास सठ तेहि मग धाहि कपट जंजाल। (मा० १।२११)
जंजाला-दे० 'जंजाल'। उ० १ सपा २ गृह कारज नाना जंजाला। (मा० १।३८।४)
जंता (१)-(सं० यंत्र)-यंत्रणा देनेवाला, शासन करनेवाला। उ० साकिनी डाकिनी पूतना प्रेत-बैताल भूत प्रमथ जूथ जंता। (वि० २५)
जंता (२)-(सं० यंत्र) १ यंत्र, मशीन, २ कला, हुनर।
जंता (३)-(?)-सारथी, सूत।
जंतु-(सं०)-जीव, प्राणी, जानवर, जन्म लेनेवाला, देहधारी, कीट-पतंग, क्षुद्र जीव। उ० कासीं मरत जंतु अवलोकी। (मा० १।११९।१)
जंत्र-(सं० यंत्र)-१. कल, औज़ार, २ तांत्रिक यंत्र, ३ ताला, ४ बाजा। उ० १ सुहृद-सुमन तिल-मोद बासि बिधि जतन-जंत्र भरि घानी। (गी० १।४) २ बगधि पर जंत्र-मंत्राभिचार प्रसन, कारमनि कूट कृत्यादि-हंता। (वि० २९)
जंत्रित-(सं० यंत्रित)-१ बंद, ताला दिया हुआ, २ बँधा

हुआ, वशीभूत, ३ पीड़ित। उ० १ लोचन निज पद जन्त्रित जाहिं प्रान केहि बाट। (मा० ५।३०)
जन्त्री-(सं० यन्त्रिन्)-१ वश में किया हुआ, २ कील किया हुआ, ताला दिया हुआ, ३ ताला, शिकंजा, ४ तार खींचने का यन्त्र। उ० २ भरत भगति सब कै मति जन्त्री। (मा० २।३०२।१)
जम्बु-(सं०)-जामुन का पेड़ या जामुन का फल। उ० पाकरि जंबु रसाल तमाला। (मा० २।२३७।१)
जम्बुक-(सं०)-गीदड़, शृगाल, सियार। उ० फटकरहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खर्पर सचहीं। (मा० ३।२०। छं० १) जंबुकनि-जंबुक का बहुवचन, बहुत से गीदड़। उ० हाट सी उठति जंबुकनि लूट्यो। (क० ६।४६)
जँभात-(सं० जम्भन)-१ जँभाई लेते हैं, उनींदे होते हैं, २ जँभाते हुए। उ० २ हौं जँभात अलसात, तात ! तेरी बानि जानि मैं पाई। (गी० १।१६)
ज-१ उत्पन्न, जात, पैदा, २ वेग, गति, ३ विष, ज़हर, ४ जन्म, उत्पत्ति, ५ पिता, ६ जीतनेवाला, ७ प्रेत, पिशाच, ८ तेज, प्रकाश, ९ वेगवान, १० विष्णु, ११ जगण। इसके आदि और अंत में लघु और मध्य में गुरु वर्ण होता है। जा ='ज' का स्त्रीलिंग। जैसे 'गिरिजा' = गिरि से उत्पन्न बालिका अर्थात् पार्वती। दे० 'गिरिजा'।
जइहैं-१ जायँगे, २ नष्ट हो जायँगे। उ० २ तुलसी ते दसकंध ज्यों जइहैं सहित समाज। (दो० ४१६)
जई (१)-(सं० यव)-१ अंकुर, अँखुआ, २ उन फलों की बतिया जिनमें बतिया के साथ फूल भी लगा रहता है। जैसे खीरे या कुम्हड़े आदि की जई। ३ जौ का छोटा अंकुर, ४ एक प्रकार का अन्न जो जौ से पतला होता है। उ० २ सरुष बरजि तरजिए तरजनी, कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जई है। (वि० १३९)
जई (२)-(सं० जयिन्)-विजयी, जीतनेवाला। उ० तुलसी मुदित जाको राजा राम जई है। (गी० १।८४)
जउ (१)-(सं० यः)-जो, यदि, अगर।
जउ (२)-(सं० यव)-जौ, एक प्रसिद्ध अन्न।
जए-(सं० जय)-१ जीत लिए, २ विजय की कामना का शब्द, जय। उ० १ महि सनु सम्हारहिं, छबि निहारहिं निमिष रिपु जनु रन जए। (जा० १२३) २ उतपात अमित बिलोकि नभ सुर बिकल बोलहिं जय जए। (मा० ६। १०२। छं० १)
जक्षपति-(सं० यक्षपति)-कुबेर, यक्षों के पति।
जग (१)-(सं० जगत्)-१ संसार, दुनिया, २ जंगम, ३ वायु, ४ संसार के लोग। उ० १ तब प्रभाउ जग बिदित न केही। (मा० २।१०३।३) जगजोनी-(सं० जगत् + योनि)-१ ब्रह्मा, विधाता, २ शिव, ३ विष्णु, ४ पृथ्वी, ५ संसार की ८४ लाख योनियाँ। उ० २ हरी बिमल गुनगन जगजोनी। (मा० २।२१७।२) जग योनि-(सं०)-१ ब्रह्मा, २ संसार की ८४ लाख योनियाँ। उ० २ पाप संताप घनघोर संसृति दीन भ्रमत जगयोनि नहिं कोपि त्राता। (वि० ११) जगयोनी-दे० 'जगयोनि'। जगहि-जग को संसार का। उ० जो माया सब जगहि नचावा। (मा० ७।७२।१)

जग (२)-(जगमग)-जगमगाना।
जगत (१)-(सं० जगत्)-१ विश्व, संसार, दुनिया, २ पृथ्वी, ३ वायु, ४ महादेव, ५ जंगम। उ० १ सकल जगतबंध जगदीसा। (मा० १।२०।३) जगतमातु-(सं० जगत + मातृ)-१ संसार की माता, २ पार्वती, ३ सीता।
जगत (२)-(सं० जगति)-कुएँ के ऊपर का चबूतरा।
जगती-(सं०)-१ संसार, भुवन, २ पृथ्वी, ३ लोग। उ० २ धन्य जनमु जगतीतल तासू। (मा० २।४६।१)
जगतु-दे० 'जगत (१)'। उ० १ जननी कुमति जगतु सबु साखी। (मा० २।२६२।१)
जगत्-दे० 'जगत'।
जगत्र-(सं० जगत्)-संसार, विश्व। उ० करता सकल जगत्र को भरता सब मन-काम। (स० १२०)
जगदंत-(सं० जगत् + अंत)-संसार का अंत करनेवाला, शिव।
जगदंब-दे० 'जगदंबा'।
जगदंबा-(सं० जगत् + अंबा)-१ जगत की माता, २ दुर्गा, भवानी, ३ पार्वती, ४ आदि शक्ति। उ० ३ मैं पाँ परउँ कहइ जगदंबा। (मा० १।८९।४)
जगदंबिका-(सं० जगत् + अंबिका)-दे० 'जगदंबा'। उ० १ जगदंबिका जानि भवभामा। (मा० १।१००।४) जगदंबिके-हे जगदंबिका। दे० 'जगदंबिका'। उ० ३ दुमुख हेरंब अंबासि जगदंबिके! (वि० १५)
जगदाधार-(सं० जगत् + आधार)-१ जगत के आधार, २ शेष, ३ वायु, ४ धर्म, ५ ईश्वर। उ० १ जगदाधार सेष किमि उठै चले खिसिआइ। (मा० ६।५४)
जगदीश-(सं०)-ईश्वर, भगवान।
जगदीस-(सं० जगत् + ईश)-१ जगत के ईश, भगवान्, २ राजा, पृथ्वीनाथ। उ० १ कोसलाधीस जगदीस जगदेकहित अमित गुन, विपुल विस्तार लीला। (वि० ५२)
जगनिवास-दे० 'जगन्निवास'। उ० जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक बिश्राम। (मा० १।१९१)
जगन्निवास-(सं०)-१ जिसमें सब संसार बसता है, संसार के निवास, २ भगवान, ईश्वर। उ० १ भइ त्रास सिथिल जगन्निवास-दीन की। (क० ६।५२)
जगमगत-(अनु०)-जगमगाता है, चमकता है, प्रकाशित होता है। उ० जगमगत जीनु जराव जोति सुमोति मनि मानिक लगे। (मा० १।३१६। छं० १)
जगमगात-जगमगा रहा है, चमक रहा है। उ० जगमगात मनिखंभन माहीं। (मा० १।३२५।२)
जगाई-(सं० जागरण)-१ जगाया, उठाया, २ सजग कर, चैतन्य कर। उ० १ सोहि समाज रघुराज के मृगराज जगाई। (गी० १।१०१) जगाएहि-जगाया, उठाया। उ० भय मोहि आइ जगाएहि काहा। (मा० ६।६३।१) जगाएहु-जगाया, उठाया। उ० आइ सुमंत्र जगायहु आई। (मा० २।३८।१) जगावती-जगाती है, सचेत करती है। उ० जानकीश की कृपा जगावती, सुजान जीव! (वि० ७४) जगावा-जगाया, उठाया। उ० जागत नहिं बहुभाँति जगावा। (मा० ६।५९।२)

छोनीपति-(सं० क्षोणीपति)-राजा, भूप, नृप। उ० छोनी में के छोनीपति छाजै जिन्हें छत्रछाया। (क० १।८)
छोभ-(सं० क्षोभ)-चित्त का विचलित होना। करुणा, दुःख, शंका, मोह, लोभ आदि के कारण चित्त का चंचल होना, घबराहट, खलबली। उ० लोभ न छोभ न राग न द्रोहा। (मा० २।१३०।१)
छोभा-दे० 'छोभ'। १ क्षोभ, २ क्षुब्ध हुआ। उ० २ पितु पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा। (मा० १।२५८।१)
छोभित-(सं० क्षोभित)-चंचल, भयभीत, विचलित, घबराया हुआ।
छोभु-दे० 'छोभ'। उ० संकर उर अति छोभु सती न जानहिं मरमु सोइ। (मा० १।४८ ख)
छोर-(सं० छोरण)-१ मुक्त करनेवाला, छोड़ने या छुड़ानेवाला, २ किनारा, अंत, सीमा, ३ नोक अनी। उ० १ बंदि-छोर तेरो नाम है, बिरुदैत बड़ेरो। (वि० १४६)
छोरइ-१ छोड़े, खोले, २ खोलता है, छुड़ा देता है। उ० २ देखी भगति जो छोरइ ताही। (मा० १।२०७।२)
छोरत-१ छोड़ता है, मुक्त करता है, २ छीनता है, अपहरण करता है, ३ खोलते हुए। उ० ३ छोरत ग्रंथि जानि खगराया। (मा० ७।११८।३) छोरन-छोड़ने, खोलने। उ० छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई। (मा० ७।११८।२) छोरी (१)-(सं० छोरण)-१ छोड़ा, खोला, २ छीना, लिया, ३ छोड़ खोल, मुक्तकर। उ० २ सोइ अयिद्रिम ब्रह्म जसुमति बाँध्यो हठि सकत न छोरी। (वि० ९८) छोरे-१ छोड़े, खोले, २ छीन। उ० २ अव लोकत मुख देत परम सुख लेत सरद-ससि की छबि छोरे। (गी० ३।२) छोरो-छोड़ो, खोलो। उ० हाथी छोरो, घोरा छोरो, महिष वृषभ छोरो। (क० ५।६)
छोरी (२)-(सं० शावक)-लड़की।
छोलत-(सं० छल्ल)-१ छीलते हुए, २ छीलते हैं, ३ छीलने में। उ० ३ रच्यो रची बिधि जो छोलत छबि-छूटी। (गी० २।२१) छोलिछालि-छील छालकर, साफ कर, ठीक कर, काटपीट कर। उ० गढ़ि-गुढ़ि छोलि छालि कुंद की सी भाई बातें। (क० ७।६३) छोला-१ छीला, २ छीलकर, काट कर। उ० २ सजि प्रतीति बहुबिधि गढ़ि छोली। (मा० २।१७।२)
छोह-(सं० क्षोभ)-१ ममता, प्रेम, स्नेह, २ दया, अनुग्रह, ३ दुःख। उ० १ भाई को न मोह, छोह सीय को न, तुलसीस। (क० ६।४२)
छोहरा-(सं० शावक)-छोकड़ा, बालकों के लिए अनादर या प्यार का शब्द। उ० छोटे-छोटे छोहरा अभागे भोरे भागि रे। (क० ५।६)
छोहा-दे० 'छोह'। उ० २ नाथ कीन्हि मोपर अति छोहा। (मा० ७।१२३।२)
छोहाइ-कृपाकर, स्नेह कर। उ० कोपि पाँव रोपि, बस कै छोहाइ छाँडिगो। (क० ६।२४)
छोहु-दे० 'छोह'। उ० २ करहिं छोहु सब रौरिहि नाईं। (मा० २।३।२)
छोहू-दे० 'छोह'। उ० १ आरति मोर नाथ कर छोहू। (मा० २।२१५।३)
छौंड़ी (१)-(सं० शावक)-छोरी, लड़की।
छौंड़ी (२)-(सं० कुंडा)-अनाज आदि रखने के लिए मिट्टी का एक बहुत बड़ा बर्तन।
छौंड़ी (३)-(?)-दही मथने की मथानी।
छौना-(दे० छवनी)-बच्चा, छोटा लड़का, बालक। उ० मनहुँ बिनोद ररत छबि छौना। (गी० १।२१)

# ज

जंगम-(सं०)-१ चलने फिरनेवाला, चर, चलता फिरता, २ एक विशिष्ट प्रकार के साधु। उ० १ जो जग जंगम सीयराम। (मा० १।२।७)
जंघा-दे० 'जघा'।
जंघ-दे० 'जघा'। उ० कंच कदलि जंघ, पद कमल लाल। (वि० १४)
जंघा-(सं०)-घुटने से ऊपर का भाग, रान, उर। उ० जंघा जानु भानु केदलि उर कटि किंकिनि, पटपीत सुहावन। (गी० ७।१६)
जंजाल-(सं० जग+जाल)-१ प्रपंच, झंझट, बखेड़ा, २ बंधन, फँसाव, ३ बड़ा जाल जिसमें जीव-जंतु फँसाए जाते हैं। उ० २ तुलसिदास सठ तेहि भजु छाँड़ि कपट जंजाल। (मा० १।२११)
जंजाला-दे० 'जंजाल'। उ० १ तथा २ गृह कारज नाना जंजाला। (मा० १।२८।४)
जंता (१)-(सं० यंत्र)-यंत्रणा देनेवाला, शासन करनेवाला। उ० साकिनी-डाकिनी पूतना प्रेत-बैताल भूत प्रमथ-जूथ जंता। (वि० २६)
जंता (२)-(सं० यंत्र) १ यंत्र, मशीन, २ कला, हुनर।
जंता (३)-(?)-सारथी, सूत।
जंतु-(सं०)-जीव, प्राणी, जानवर, जन्म लेनेवाला, देहधारी, कीट-पतंग, क्षुद्र जीव। उ० कासीं मरत जंतु अवलोकी। (मा० १।११९।१)
जंत्र-(सं० यंत्र)-१ कल, औज़ार, २ तांत्रिक यंत्र, ३ ताला, ४, बाजा। उ० १ मुकुत-सुमन लिए-मोद बारि बिधि जतन जंत्र भरि धामी। (गी० ११४) २ अवधि का यंत्र-मयामिधान प्रसन, कारमनि कूट-कृत्यादि-हंता। (वि० २६)
जंत्रित-(सं० यंत्रित)-१ बंद, ताला दिया हुआ, २ बँधा

हुआ, वशीभूत, ३ पीड़ित। उ० १ लोचन निज पद जन्त्रित जाहिं प्रान केहिं बाट। (मा० ५।३०)

जन्त्री-(सं० यन्त्रिन्)-१ वश में किया हुआ, २ कील किया हुआ, ताला दिया हुआ, ३ ताला, शिकंजा, ४ तार खींचने का यंत्र। उ० २ भरत भगति सब कै मति जन्त्री। (मा० २।३०३।१)

जंबु-(सं०)-जामुन का पेड़ या जामुन का फल। उ० पाकरि जंबु रसाल तमाला। (मा० २।२३७।१)

जंबुक-(सं०)-गीदड़, श्रृगाल, सियार। उ० कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खर्पर संचहीं। (मा० ३।२०। छं० १) जंबुकनि-जंबुक का बहुवचन, बहुत से गीदड़। उ० हाट सी उठति जंबुकनि लूट्यो। (क० ६।४६)

जँभात-(सं० जंभन)-१ जँभाई लेते हैं, उनींदे होते हैं, २ जँभाते हुए। उ० २ हौ जँभात अलसात, तात! तेरी बानि जानि मैं पाइ। (गी० १।१६)

ज-१ उत्पन्न, जात, पैदा, २ वेग, गति, ३ विष, ज़हर, ४ जन्म, उत्पत्ति, ५ पिता, ६ जीतनेवाला, ७ प्रेत, पिशाच, ८ तेज, प्रकाश, ९ वेगवान, १० विष्णु, ११ जगण। इसके आदि और अंत में लघु और मध्य में गुरु वर्ण होता है। जा='ज' का स्त्रीलिंग। जैसे 'गिरिजा'= गिरि से उत्पन्न बालिका अर्थात् पार्वती। दे० 'गिरिजा'।

जइहैं-१ जायँगे, २ नष्ट हो जायँगे। उ० २ तुलसी ते दसकंध ज्यों जइहैं सहित समाज। (दो० ४१६)

जई (१)-(सं० यव)-१ अंकुर, अँखुआ, २ उन फलों की बतिया जिनमें बतिया के साथ फूल भी लगा रहता है। जैसे खीरे या कुम्हड़े आदि की जई। ३ जौ का छोटा अंकुर, ४ एक प्रकार का अन्न जो जौ से पतला होता है। उ० २ सरुष बरजि तरजिए तरजनी, कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जइ है। (वि० १३९)

जई (२)-(सं० जयिन्)-विजयी, जीतनेवाला। उ० तुलसी मुदित जाको राजा राम जई है। (गी० १।८४)

जउ (१)-(सं० य)-जो, यदि, अगर।

जउ (२)-(सं० यव)-जौ, एक प्रसिद्ध अन्न।

जए-(सं० जय)-१ जीत लिए, २ विजय की कामना का शब्द, जय। उ० १ नहिं तनु सम्हारहिं, छबि निहारहिं निमिष रिपु जनु रन जए। (जा० १२३) २ उतपात अमित बिलोकि नभ सुर बिकल बोलहिं जय जए। (मा० ६। १०२। छं० १)

जक्षपति-(सं० यक्षपति)-कुबेर, यक्षों के पति।

जग (१)-(सं० जगत्)-१ संसार, दुनिया, २ जंगम, ३ वायु, ४ संसार के लोग। उ० १ तव प्रभाउ जग बिदित न केही। (मा० २।१०३।३) जगजोनी-(सं० जगत्+योनि)-१ ब्रह्मा, विधाता, २ शिव, ३ विष्णु, ४ पृथ्वी, ५ संसार की ८४ लाख योनियाँ। उ० ५ हरी बिमल गुनगन जगजोनी। (मा० २।२१७।२) जगयोनि-(सं०)-१ ब्रह्मा, २ संसार की ८४ लाख योनियाँ। उ० २ पाप संताप घनघोर संसृति दीन भ्रमत जगयोनि नहिं कोपि त्राता। (वि० ११) जगयोनी-दे० 'जगयोनि'। जगहि-जग को, संसार को। उ० जो माया सब जगहि नचावा। (मा० ७।७२।१)



जग (२)-(जगमग)-जगमगाना।

जगत (१)-(सं० जगत्)-१ विश्व, संसार, दुनिया, २ पृथ्वी, ३ वायु, ४ महादेव, ५ जंगम। उ० १ सकल जगतबंध जगदीसा। (मा० १।५०।३) जगतमातु-(सं० जगत+मातृ)-१ संसार की माता, २ पार्वती, ३ सीता।

जगत (२)-(सं० जगति)-कूएँ के ऊपर का चबूतरा।

जगती-(सं०)-१ संसार, भुवन, २ पृथ्वी, ३ लोग। उ० २ धन्य जनमु जगतीतल तासू। (मा० २।४६।१)

जगतु-दे० 'जगत (१)'। उ० १ जननी कुमति जगतु सबु साखी। (मा० २।२६२।१)

जगत्-दे० 'जगत'।

जगत्र-(सं० जगत्)-संसार, विश्व। उ० करता सकल जगत्र को भरता सब मन-काम। (स० १२०)

जगदंत-(सं० जगत्+अंत)-संसार का अंत करनेवाला, शिव।

जगदंब-दे० 'जगदंबा'।

जगदंबा-(सं० जगत्+अंबा)-१ जगत की माता, २ दुर्गा, भवानी, ३ पार्वती, ४ आदि शक्ति। उ० ३ मैं पाँ परउँ कहइ जगदंबा। (मा० १।८१।४)

जगदंबिका-(सं० जगत्+अंबिका)-दे० 'जगदंबा'। उ० १ जगदंबिका जानि भवभामा। (मा० १।१००।४) जगदंबिके-हे जगदंबिका। दे० 'जगदंबिका'। उ० ३ दुसह दैरय अयासि जगदंबिके। (वि० १५)

जगदाधार-(सं० जगत्+आधार)-१ जगत के आधार, २ शेष, ३ वायु, ४ धर्म, ५ ईश्वर। उ० १ जगदाधार सेष किमि उठै चले खिसिआइ। (मा० ६।५४)

जगदीश-(सं०)-ईश्वर, भगवान।

जगदीस-(सं० जगत्+ईश)-१ जगत के ईश, भगवान्, २ राजा, पृथ्वीनाथ। उ० १ कोसलाधीस जगदीस जगदेकहित अमित गुन, बिपुल बिस्तार लीला। (वि० ५२)

जगनिवास-दे० 'जगन्निवास'। उ० जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक बिश्राम। (मा० १।१९१)

जगन्निवास-(सं०)-१ जिसमें सब संसार बसता है संसार के निवास, २ भगवान, ईश्वर। उ० १ भइ आस सिथिल जगन्निवास-दील की। (क० ६।५२)

जगमगत-(अनु०)-जगमगाता है, चमकता है, प्रकाशित होता है। उ० जगमगत जीनु जराव जोति सुमोति मनि मानिक लगे। (मा० १।३१६। छं० १)

जगमगात-जगमगा रहा है, चमक रहा है। उ० जगमगात मनिखंभन माहीं। (मा० १।३२५।२)

जगाइ-(सं० जागरण)-१ जगाया, उठाया, २ जगाकर, चैतन्य कर। उ० १ तेहि समाज रघुराज के मृगराज जगाई। (गी० १।१०१) जगाएहि-जगाया, उठाया। उ० भय मोहि बाइ जगाएहि काहा। (मा० ६।६२।१) जगाएहु-जगाओ, उठाओ। उ० चाहु सुमंत्र जगाएहु नाहीं। (मा० २।३८।१) जगावती-जगाती हैं, अर्चन करती हैं। उ० जानकीस की कृपा जगावती, सुजान जीव! (वि० ७४) जगावा-जगाया, उठाया। उ० जागन नहिं बहुभाँति जगावा। (मा० ६।२१।२)

जगु–जग, ससार, विश्व। उ० जगु पेखन तुम्ह देखनि हारे। (मा० २।१२७।१)

जगी–१ जगती है, २ चमकती है, ३ प्रकट होती है। उ० २ तथा ३ चपला चमके घन बीच जगै छवि मोतिन माल अमोलन की। (क० १।६)

जग्य–(स० यज्ञ)–दे० 'यज्ञ'। उ० पिता जग्य सुनि कछु हरषानी। (मा० १।६१।३)

जग्यउपनीत–(स० यज्ञोपवीत)–जनेऊ। उ० पीत जग्य उपवीत सुहाए। (मा० १।२४४।१)

जच्छ–दे० 'यक्ष'। उ० जच्छ जीव लै गए पराई। (मा० १।१७६।२)

जच्छपति–दे० 'यक्षपति'। कुबेर। उ० रच्छक कोटि जच्छ पति केरे। (मा० १।१७९।१)

जच्छेस–(स० यक्षेश)–कुबेर, धन के देवता। उ० सीरथ पति अकुर-सरूप, यच्छेस रच्छ तेहि। (क० ७।११५)

जजाति–दे० 'ययाति'। जजातिहि–राजा ययाति को। दे० 'ययाति'। उ० तनय जजातिहि जौबनु दयऊ। (मा० २।१७४।४)

जजाती–दे० 'जजाति'। उ० सुरपुर तें जनु खँसेउ जजाती। (मा० २।१४८।३)

जजुर–दे० 'यजुर्वेद'। उ० पढ़िबो परयो न छठी छमत, ऋगु जजुर, अथर्वन, साम को। (वि० १५५)

जज्ञ–दे० यज्ञ'। उ० जज्ञ, बिबाह-उछाह, मत सुभ तुलसी सब साज। (प्र० ७।१।७)

जज्ञेस–(स० यज्ञेश)–यज्ञों के स्वामी, १ विष्णु, २ महादेव।

जट–(स० जटन)–आसक्त होना, लगना।

जटजूट–दे० 'जटाजूट'। उ० १ कोदव सन्नि पहाड़ सिर जटजूट बाँधत सोह क्यो। (मा० ३।११८। छ० १)

जटनि–(स० जटा)–जटा का बहुवचन, जटाएँ, बालों का समूह। उ० मंजुल प्रसून माथे मुकुट जटनि के। (क० २।१६) जटा–(स०)–१ एक में उलझे हुए सिर के बड़े-बड़े बाल। ऐसे बाल प्राय साधू लोग रखते हैं। २ जड़ के पतले-पतले सूत, ३ नारियल बरगद आदि की जटाएँ ४ शाखा, ५ जटामांसी, ६ पाटजूट, ७ केवाँच, ८ रुद्र की जटा, ९ वेदपाठ का एक भेद। उ० १ मनुज सहित सिर जटा बनाए। (मा० २।९४।२) जटाजूट–(स०)–१ जटा का समूह, बड़े-बड़े बाल, २ शिव की जटा। उ० १ जटाजूट दृढ़ बाँधे माथे। (मा० ३।८६।४)

जटाय–दे० 'जटायु'। उ० मायो राजु समाज जेहि लगि गीध जमी जटाय। (गी० ७।३१)

जटायु–(स०)–रामायण का एक प्रसिद्ध गिद्ध। यह सूर्य के सारथी अरुण का पुत्र था और उसकी श्येनी नाम की स्त्री से उत्पन्न था। यह रामभक्त था। सीता को जब रावण हरकर ले जा रहा था तो जटायु उससे लड़ा था और बुरी तरह घायल हुआ था। राम के आने पर इसने सीताहरण का समाचार उनसे सुनाया और मर गया। राम ने अपने हाथ से इसकी अन्त्येष्टि क्रिया की। सपाती जटायु का भाई था।

जटायू–दे० 'जटायु'। उ० आना जरठ जटायू एहा। (मा० ३।२९।७)

जटित–(स०)–जड़ा हुआ, युक्त। उ० रत्नहाटक-जटित मुकुट मडित मौलि भानुसुत-सदृश उद्योतकारी। (वि०५१)

जटिल–(स०)–१ जटावाला, जटाधारी, २ कठिन दुरूह, दुर्बोध, ३ क्रूर, दुष्ट, हिंसक, ४ सिंह, ५ ब्रह्मचारी ६ बरगद का पेड़। उ० १ जोगी जटिल अकाम मन, नगन अमगल बेष। (मा० १।६७)

जटे–जड़े हुए, युक्त। उ० सोनित छीटि-छटानि-जटे तुलसी प्रभु सोहैं, महा छवि छूटी। (क० ६।५१) जटो–जड़ा हुआ, जटित, युक्त। उ० कलि में न बिराग न ज्ञान कहूँ, सब लागत फोकट झूँठ-जटो। (क० ७।८९)

जठर–(स०)–१ पेट, कुक्षि, २ कठिन, कड़ा, मजबूत, ३ शरीर, देह, ४ वृद्ध, बूढ़ा। उ० १ कैकइ जठर जनमि जग माहीं। (मा० २।१८०।४)

जठरागी–(स० जठराग्नि)–पेट की वह अग्नि या गर्मी जिससे अन्न पचता है। पित्त की कमी बेशी से यह चार प्रकार की मानी गई है। उ० जिमि सो असन पचवै जठरागी। (मा० ७।११४।५)

जठेरिन्ह–बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ। उ० जरठ जठेरिन्ह आसिरबाद दए हैं। (गी० १।११) जठेरी–(स० ज्येष्ठ)–बड़ी, बूढ़ी। उ० बिप्रबधू कुलमान्य जठेरी। (मा० २।४४।२)

जड़–(स० जड़)–१ जिसमें चेतनता न हो, अचेतन, २ चेष्टाहीन, स्तब्ध, ३ मंदबुद्धि, मूर्ख, ४ शीतल, ठंढा, ५ गूँगा, ६ बहरा, ७ अनजान, अनभिज्ञ, ८ जिसके मन में मोह हो, ९ जो वेद पढ़ने में असमर्थ हो, १० जल, पानी, ११ सीसा नाम की धातु, १२ नींव, बुनियाद, १३ कारण, हेतु, १४ आधार, सहारा, १५ वृक्षों या पौधों का वह भाग जो जमीन में रहता है, मूल, १६ अहिल्या, १७ नीच, बुरा, १८ पाँच जड़ पदार्थ (पृथ्वी, जल, पावक, गगन, समीर) जिनसे शरीर की रचना मानी जाती है। उ० ३ ज्यों गज-काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की। (वि० ९०) १७ पैरि पार चाहहिं जड़ करनी। (मा० ७।११५।२) १८ जड़ पंच मिलै जेहि देह करी। (क० ७।२७) जड़न्ह–अपों, वृक्ष नदी आदि बेजान की। (क० ७।२७) जड़न्ह–जड़ों, वृक्ष नदी आदि बेजान चीजों। उ० जहँ बसि दसा जड़न्ह के बरनी। (मा० १।८२।२) जड़हि–जड़ को, मूर्ख को। उ० जड़हि बिबेक, सुसील खलहि अपराधिहि आदर दीन्हों। (वि० १७१)

जड़ता–१ अचेतनता, २ मूर्खता, ३ नीचता, ४, मोह। उ० २ जड़ता जाड़ बिषम उर लागा। (मा० १।३६।१)

जड़ताई–१ जड़ता, मूर्खता, २ मोह। उ० १ हँसिबहु सुनि हमारि जड़ताई। (मा० १।७८।२)

जड़ाव–(स० जटन)–जड़ने का काम, पच्चीकारी।

जत (१)–(स० यत)–जितना, जिस मात्रा का जितने। उ० जड़ चेतन जग जीव जत, सकल राममय जानि। (मा० १।७ ग)

जत (२)–(स० यत्न)–प्रयत्न, जतन।

जत (३)–(स० यति)–ताल विशेष, ढोलो का ठेका या ताल।

तन-(स० यत्न)-१ प्रयत्न, उपाय, २ श्रम, उद्योग, ३ रक्षा। उ० १ जय जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई। (गा०१।३।३)
तनु-दे० 'जतन'। उ० १ करि सय जतनु राखि रखवारे। (मा० २।१८६।४)
ति (१)-(स० जिति)-जीतनेवाला। उ० चरन पीठ उन्नत नत-प लक, गूढ़ गुल्फ, जघा कदली जति। (गी० ७।१७)
ति (२)-(स० यति)-जिसने इंद्रियों पर विजय प्राप्त कर ली हो, विरक्त, योगी, सन्यासी। उ० स्वान खग जति न्याउ देख्यो आपु बैठि प्रबीन। (गी० ७।२४) जतिहि-जती को, योगी को, सन्यासी को। उ० जोग सिद्धि फल समय जिमि जतिहि अविद्या नास। (मा० २।२६)
जती-(स० यति)-सन्यासी, योगी। उ० जागें जोगी जगम जती जमाती ध्यान धरैं। (क० ७।१०६)
जत्र-(स० यत्र)-जहाँ।
जत्रु-(स०)-गले से पास की हड्डी, हँसली। उ० यज्ञोपवीत पुनीत बिराजत गूढ़ जत्रु बनि पीन असतति। (गी० ७।१७)
जथा (१)-(स० यथा)-१ जिस प्रकार, जैसे, ज्यों, २ सदृश, अनुकूल, ३ जिस। उ० १ जथा अमल पावन पवन पाइ कुसग सुसग। (दो० ४०४) ३ लागि बंध माया सबहि जथा जोगु अनु पाइ। (मा० २।३०२) जथाथित-(स० यथा+स्थित)-जैसा का तैसा, ज्यों का त्यों, पूर्ववत। उ० भयउ जथाथिति सबु ससारू। (मा० १।८६।१) जथाबिधि-(स० यथाविधि)-विधिवत, विधि के अनुसार। उ० मिले जथाबिधि सबहि प्रभु परम कृपाल बिनीत। (मा० १।३०८) जथारुचि-(स० यथारुचि)-इच्छानुसार, मनमानी। उ० बहु करि कोटि कुतर्क जथारुचि बोलइ। (पा० ६५) जथालाभ-(स० यथालाभ)-जो कुछ मिले, जो भी थोड़ा बहुत लाभ हो। उ० धाएँ जथालाभ सतोषा। (मा० ३।३६।२) जथोचित-(स० यथोचित)-जैसा चाहिए, मुनासिब, ठीक। उ० सबहि जथोचित आसन दीन्हे। (मा० १।१००।१)
जथा (२)-(स० यूथ)-गिरोह, झुंड, समूह।
जथा (३)-(स० गाथ)-पूँजी, धन, सपत्ति।
जथारथ-(स० यथार्थ)-ठीक, वाजिब, यथार्थ, तत्त्व। उ० बोध जथारथ बेद पुराना। (मा० ३।४६।३)
जथारथु-दे० 'जथारथ'। उ० कोउ न राम सम जान जथारथु। (मा० २।२५४।३)
जद-(स० यदा) जब, जब कभी।
जदपि-(स० यद्यपि)-अगरचे, यद्यपि। उ० जदपि कवित रस एकउ नाहीं। (मा० १।१०।४)
जदुनाथ-(स० यदुनाथ)-श्रीकृष्ण। उ० मथुरा बड़ो नगर नागर जन जिन्ह जातहि जदुनाथ पठाए। (कृ० २०)
जदुपति-(स० यदुपति)-१ श्रीकृष्ण, यदुनाथ, २ ययाति। उ० १ जदुपति मुख छबि कलप कोटि लगि, कहि न जाइ जाके मुख चारी। (कृ० २२)
जदुराई-(स० यदुराज)-श्रीकृष्ण। उ० पूछत तोतरात बात मातहि जदुराई। (कृ० १)
जद्यपि-(स० यद्यपि)-जदपि, यद्यपि, अगरचे। उ० जद्यपि ताको सोइ मारग प्रिय जाहि जहाँ बनि आइ। (कृ० ४१)

जन (१)-(स०)-१ आदमी, लोग, मनुष्य, २ गँवार, देहाती, ३ प्रजा, रिआया, ४ अनुयायी, ५ सेवक, दास, ६ घर, मकान, ७ सात लोकों में से पाँचवाँ लोक, जिसमें ब्रह्मा के मानस पुत्र और बड़े-बड़े योगीन्द्र रहते हैं। उ० १ प्रचुर भव भजन, प्रणत-जन रजन, दास तुलसी शरण सानुकूल। (वि० १२) जनहि-जन को, दास को, सेवक को। उ० जनहि मोर बल निज बल ताही। (मा० ३।४३।५) जनही-जन का, दास का। उ० राम सुस्वामि दोसु सब जनही। (मा० २।२३४।१) जनेषु-आदमियों में, मनुष्यों में। उ० कथिहि अगम जिमि ब्रह्म सुखु अह मम मलिन जनेषु। (मा० २।२२५)
जन (२)-(स० जन्य)-जनित, उत्पन्न। उ० दुरित अविद्या जन दुरित वर तुल सम करि लेत। (स० ३१४)
जनक-(स०)-१ पिता बाप, २ सीता के पिता, मिथिलेश, ये ससार में रहते हुए भी ससार से विरक्त और बहुत बड़े ज्ञानी थे। ३ उत्पादक, जन्मदाता, ४ मिथिला के एक राजवश की उपाधि। उ० १ पाहि भैरवरूप राम रूपी रुद्र, बधु गुरु जनक जननी विधाता। (वि० ११) जनक अनुज-राजा जनक के भाई कुशध्वज। इनकी दो पुत्रियाँ माण्डवी और श्रुतकीर्ति थीं, जिनका विवाह भरत और शत्रुघ्न से हुआ था। उ० जनक-अनुज-तन या दुइ परम मनोरम। (जा० १७२) जनकजा-(स०)-१ सीता, जानकी, २ उर्मिला। उ० १ बाम दिसि जनकजासीन, सिंहासन कनक-मृदु पल्लवित तरु तमाल। (वि० ५१) जनकनगर-दे० 'जनकपुर'। उ० जनकनगर सर कुमुदगन, तुलसी प्रमुदित लोग। (प्र० १।४।७) जनकहि-पिता को, पिता से। उ० मम जनकहि तोहि रही मिताई। (मा० ६।२०।१) जनकौ-पिता भी। उ० बल अपनो न हितू जननी न जनकौ। (क० ७।७७) जनकौर-जनक का स्थान, जनकनगर। उ० सिय नैहर जनकौर नगर नियराइन्हि। (जा० १३४) जनकौरा-जनकपुर, जनकपुर के लोग। उ० कोसलपति गति सुनि जनकौरा। (मा० २।२७१।१)
जनकपुर-(स०)-मिथिला की प्राचीन राजधानी। राजा जनक की नगरी। उ० जनकनदिनी जनकपुर, जब तें प्रगटीं आइ। (प्र० ४।५।१)
जनकु-दे० 'जनक'। उ० २ जनकु रहे पुर बासर चारी। (मा० २।३२२।३)
जनतेउँ-(स० ज्ञान)-जानता, मैं जानता। उ० जौं जनतेउँ बन बधु बिछोहू। (मा० ६।६१।३) जनिअहि-जान ही पड़ेंगे, जान पड़ेंगे। उ० फल सम होहिं न जनिअहिं जाता। (मा० २।२८०।४) जनिबे-जानने, जानना। उ० कहिबे को सारद सरस, जनिबे को रघुराउ। (दो० २०२) जनियत-१ जान पड़ता है, जाना जाता है, २ जानता हूँ। उ० १ तुलसि राम जनमहि तें जनियत सकल सुकृत को साज। (गी० १।४७) जनिहैं (१)-(स० ज्ञान)-जानेंगे, समझेंगे। उ० बखिहैं छूटि पुंज पापिन के असमजस जिय जनिहैं। (वि० ६५)
जनत्राता-भक्तों की रक्षा करनेवाला, भगवान। उ० मैं बन गयउँ भजन जनत्राता। (मा० ७।११०।५)

जननि-दे० 'जननी'। उ० १ प्रेम बैर की जननि जुग, जानहिं बुध, न गँवार। (दो० ३२८)
जननिउ-जननी भी, माता भी। उ० जो सुत तात-बचन पालन रत जननिउ तात ! मानिबे लायक। (गी० २।२)
जननिन्ह-माताएँ, माताओं ने। उ० जननिन्ह सादर बदन निहारे। (मा० १।३४८।४) जननिहि-माता को। उ० चले जनक जननिहि सिर नाइ। (मा० २।७१।४)
जननी-(स०)-१ उत्पन्न करनेवाली, २ माता, मा, ३ कुटकी, ४ मालती, मदायर, ५ दया, कृपा। उ० २ पाहि भैरव रूप रामरूपी रुद्र, बंधु गुरु जनक जननी विधाता। (वि० ११)
जनपद-(स०)-देश। आजकल के प्रांतों की भाँति पहले देश कई जनपदों में विभक्त होता था। कभी-कभी अलग अलग जनपदों के अलग अलग राजा भी होते थे। उ० ज्यों हुलास रनिवास नरेसहि त्यों जनपद रजधानी। (गी० १।४)
जनम-दे० 'जन्म'। उ० १ जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं। (मा० १।३४।३) जनम-जनम-अनेक जन्म, कई जन्म। उ० जनम-जनम अभ्यास निरत चित अधिक अधिक लपटाई। (वि० ८२)
जनमइ-जन्मता है, जन्म लेता है। उ० जग जनमइ बायस सरीर धरि। (मा० ७।१२१।१२) जनमत-१ पैदा होते ही, जन्मते ही, २ पैदा होता, उत्पन्न होता, जन्मता, ३ जन्म लेते हैं, ४ जन्म लेता हूँ। उ० २ सुंदर सुत जनमत भइँ ओऊ। (मा० १।१९५।१) जनमा-जन्म लिया, पैदा हुआ। उ० नहिं कोउ अस जनमा जगमाहीं। (मा० १।६०।४) जनमि-जन्म लेकर, पैदा होकर। उ० अब जनमि तुम्हरे भवन निज पति लागि दारुन तपु किया। (मा० १।९८। छं० १) जनमीं-पैदा हुई, उत्पन्न हुई। उ० जनमीं जाइ हिमाचल गेहा। (मा० १।८२।१) जनमे-जनमे, पैदा हुए। उ० जनमे एक संग सब भाई। (मा० २।१०।३) जनमेउ-जन्म लिया, पैदा हुए। उ० सब जन मेउ पद पदम कुमारा। (मा० १।१०२।४) जनम्यो-पैदा हुआ, जन्म लिया। उ० मेरे जान जब तें हौं जीव ह्वै जनम्यो जग। (क० ७।७०)
जनमु-दे० 'जन्म'। उ० १ जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू। (मा० २।२२।४)
जनयत्री-(स० जनयित्री)-जन्म देनेवाली, माता। उ० द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री। (मा० ७।३८।३)
जनवास-(स० जन+वास)-१ बरात के ठहरने का स्थान, २ नगर, ग्राम। उ० १ दिए सबहि जनवास सुहाए। (मा० १।३३।१) जनवासे-जनवास की ओर, बारात के ठहरने के स्थान की ओर। उ० चले जहाँ दस रथु जनवासे। (मा० १।३००।४)
जनवासा-दे० 'जनवास'। उ० १ अति सुंदर दीन्हेउ जनवासा। (मा० १।३०८।३)
जनाइ-(स० ज्ञान)-१ सूचना, जनाव, सूचना, २ जना कर, प्रकट कर। उ० २ मुनिहि 'सो है कौन' है बाल्मीकि नाम दूना जनाइ। (वि० ४१) जनाइ-१ जनाया, सूचित किया २ जनाकर, बताया कर, ३ मालूम पड़ना, मालूम होना। उ० १ असुर तापसहि खबरि जनाई। (मा० १।१७२।२) जनाउ-१ सूचना, खबर, २ जनाओ, बतलाओ। उ० १ अवधनाथु चाहत चलन भीतर करहु जनाउ। (मा० १।३३२) जनाए-जनाए, बतलाए। उ० प्रभु जानत सब बिनहिं जनाएँ। (मा० १।१६२।१) जनाए-बतलाया, प्रकट किया। उ० राम सीय तन सगुन जनाए। (मा० २।७।२) जनायउ-जनाया, प्रकट किया। उ० दुरी दुरा करि नेगु सुनात जनायउ। (पा० १६६) जनायऊ-जनाया, बतलाया। उ० कहि गाधि सुत तप तेज प्रभु रघुपति प्रभाउ जनायऊ। (जा० २०) जनायो-जनाया, जताया, सूचित किया। उ० आस बिवस खास दास ह्वै नीच प्रभुनि जनायो। (वि० २०१) जनाव-जनाया, बतलाया, प्रकट किया। उ० मन अति हरष जनाव न तेही। (मा० ३।२६।४) जनावउँ-जनाता हूँ, प्रकट करता हूँ। उ० अब लगि मोहि न मिलेउ काउ मैं न जनावउँ काहु। (मा० १।१६१ क) जनावत-१ ज्ञात होता है, जान पड़ता है, २ जनाते हैं, बतलाते हैं। उ० १ हरि निमल, मल-ग्रसित हृदय, असमंजस मोहि जना वत। (वि० १८५) जनावहिं-जनाते हैं, प्रकट करते हैं। उ० बरिसहिं सुमन जनावहिं सेवा। (मा० १।२२२।२) जनावहु-जना दो, जनाओ। उ० जौं करि प्रगट जनावहु सोइ। (मा० २।५०।३) जनावा-जताया, सूचित किया, प्रकट किया। उ० काहूँ न मोहि कहि प्रथम जनावा। (मा० २।४५।४) जनावैं-जतावें, सूचित कर। उ० तुलसी राम सुजान को, राम जनावैं सोइ। (स० १८१) जनावौं-जनाऊँ, बतलाऊँ। उ० पर प्रेरित इरषा-बस कबहुँक, कियो कछु सुभ, सो जनायों। (वि० १४२)
जनार्दन-(स०)-भगवान्, विष्णु।
जनि (१)-(स०)-१ उत्पत्ति, जन्म २ जिसमें कोई उत्पन्न हो, नारी, स्त्री। ३ माता, जननी, ४ पत्नी, भार्या ५ पुत्रवधू, पतोहू, ६ जन्मभूमि, पैदा होने की जगह।
जनि (२) (?)-मत, नहीं, न। उ० जनि कहहि लागि बिदू पहि कही। (वि० १२६)
जनित-(स०)-१ उत्पन्न, जन्मा हुआ, जन्य, २ बाधा, ३ जो पैदा हुए हैं, संसार के प्राणी। उ० १ बहु बदि बदिय उपाधिये ! भवजनित बिपति करि। (वि० ११०) ३ सुभग सुपथ धी रहे जनित रस-प्रमाण अनुसार। (स० १६१)
जनिहैं (२)-(स० ज्ञान)-उत्पन्न करेंगी, पैदा करेंगी।
जनी (१)-(स० जनन)-१ पैदा की उत्पन्न किया, २ माता, पैदा करनेवाली। उ० १ मानि विराग कुंअर ममता सुखमा जनी। (गी० ७।५) जने-(सं० जनन)-उत्पन्न किए, जन्माए। जनी उत्पन्न कर, जन्माके, पैदा कर। उ० मयो लौकि सुमन मयन राम की जो फल चारि चारयों जनी। (गी० २।४०) जनिहैं-उत्पन्न करेंगी, पैदा करेंगी। उ० प्रभु की विलय यह दाप हुए, प्रसिहैं। (वि० १०१)
जनी (२) (स० जन)-१ दासी परिचारिका, २ स्त्री।
जनु (१) (स० ज्ञान) जानो, मानो। उ० देखत जनु हर प्रभाव निज मीत बियोग कोराई। (वि० ६९)

जनु (२)-(स०)-उत्पत्ति, जन्म।
जनु (३)-(स० जन)-१ जन, आदमी, २ भक्त, ३ सेवक, दास। उ० ३ भाग तुलसी के, भले साहेब को जनु भो। (गी० १।६४)
जनेत-(स० जन)-१ बरात, २ बराती, ३ जनता। उ० १ अवध समीप पुनीत दिन पहुँची आइ जनेत। (मा० १।३४३) २ पछिताय भूत पिसाच प्रेत जनेत ऐहैं साजि कै। (पा० ६३)
जनेउ-दे० 'जनेऊ'। उ० चारु जनेउ माल मृगछाला। (मा० २।२६८।४)
जनेऊ-(स० यज्ञ)-यज्ञोपवीत, ब्रह्मसूत्र। उ० केहरि कंधर चारु जनेऊ। (मा० १।१४७।४)
जनेषु-(स०)-आदमियों में, मनुष्यों में। उ० कमिहि अगम जिमि ब्रह्म सुखु अह मम मलिन जनेषु। (मा० २।२२५)
जनेस-(स० जनेश)-१ राजा, नरेश, भूपति, २ मुखिया, ३ मन। उ० १ लोचन अतिथि भए जनक जनेस के। (क० १।२१)
जनेसु-दे० 'जनेस'। उ० १ जेहि जनेसु देइ जुवराजू। (मा० २।१२।१)
जन्म (स०)-१ उत्पत्ति, पैदाइश, २ जीवन, ज़िंदगी। उ० १ मुक्ति जन्ममहि जानि ज्ञान खानि अघ हानिकर। (मा० ४।१।सो० १)
जन्मभूमि-(स०)-जन्म स्थान, जिस स्थान पर जन्म हुआ हो। उ० जन्म भूमि मम पुरी सुहावनि। (मा० ७।४।३)
जन्मांतर-(स०)-दूसरा जन्म।
जन्मु-दे० 'जन्म'। उ० १ जनु जाल पन्मुख जन्मु कर्मु प्रतापु पुरुषारथु महा। (मा० १।१०३।छं० १)
जन्मौं-जन्म धारण करूँ, जन्म लूँ। उ० जेहि जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ। (मा० ४।१०।छं० २)
जन्य-(स०)-१ साधारण मनुष्य, जनसाधारण, २ अफ़वाह, किंवदंती, ३ किसी एक देश का वासी, ४ लड़ाई, ५ पुत्र, ६ पिता, ७ जन्म, ८ जन संबंधी, ९ राष्ट्रीय, जातीय, १० जो उत्पन्न हुआ हो, उद्भूत।
जपत-जपते हैं, स्मरण करते हैं। उ० जे राम मंत्र जपत संत अनंत जन मन रंजन। (मा० ३।३२।छं० २) जपउँ-१ जपूँ, भजूँ, २ जपता, स्मरण करता। उ० २ जपउँ मंत्र सिवमंदिर जाई। (मा० ७।१०५।४) जपत-१ जापी, जप करनेवाला, २ जपने से, ३ जपते हैं, भजते हैं। उ० २ राम, राम, राम राम, राम, राम, जपत। (वि० १३०) ३ बीज-मंत्र जपिए सोई जो जपत महेस। (वि० १०८) जपति-जपती है। उ० जपति सारद संभु सहित घरनि। (वि० २४७) जपते-१ जप करते हुए, २ जप करने से। उ० राम विहाय 'मरा' जपते, बिगरी सुधरी कवि-कोकिल हू की। (क० ७।८९) जपन-जपने, भजने। उ० अस कहि लगे जपन हरिनामा। (मा० १।५२।४) जपने-जपना है, जप करना है। उ० सुरेस सुर गौरि गिरा पति नहिं जपने। (क० ७।७७) जपहि-१ जपो, जपाकर, २ जपकर। उ० १ जपहि नाम रघुनाथ को चरचा दूसरी न चालु। (वि० १९३) जपहु-जपो, जप करो, भजो। उ० सादर जपहु अनग आराती। (मा० १।१०८।४) जपामि-मैं जपता हूँ, मैं भजता हूँ। उ० तव नाम जपामि नमामि हरी। (मा० ७।१४।६) जपि-१ जप करो, जपो, २ जप कर, भजकर। उ० २ जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो सम राम हे। (मा० ७।१३।छं० ३) जपिए-जप कीजिए, भजिए, जप करना चाहिए। उ० बीज मंत्र जपिए सोई जो जपत महेस। (वि० १०८) जपिहै-जपेगा, जप करेगा। उ० राम राम राम जीव जौ लौ तू न जपिहै। (वि० ६८) जपु-जाप करो, जपो। उ० तुलसी बसि हर-पुरी रामजपु जो भयो चहै सुपासी। (वि० २२) जपे-१ जपा, जप किया, २ जपने से, ऋजने से। उ० २ राम नाम के जपे जाइ जिय की जरनि। (वि० १८४) जपेउ-जपा, जप किया। उ० भुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। (मा० १।२६१।२) जपैं-१ जपें, २ जपते हैं। उ० २ राम नाम को प्रताप हर कहैं जपैं आपु। (वि० १८४) जप्यो-जपा, जप किया। उ० जीहहू न जप्यो नाम, बक्यो आउ बाउ मैं। (वि० २६१)
जप (स०)-किसी मंत्रादि या नाम का बार-बार पाठ। पूजा या संध्या आदि में मंत्र का माले के आधार पर गिनकर पाठ करना भी जप कहलाता है। पुराणानुसार तीन प्रकार के जप हैं-मानस, उपांशु और वाचिक। कुछ लोग मानस और उपांशु के बीच में जिह्वा नामक एक और जप मानते हैं। मानस जप में जप मन में करते हैं। जिह्वा में पाठ के समय केवल जिह्वा हिलती है। उपांशु में जिह्वा और अधर हिलते हैं पर शब्द नहीं होता, और स्पष्ट उच्चारण के साथ किया जानेवाला जप वाचिक कहलाता है। उ० करहिं जोग जप तप तन कसहीं। (मा० २।१३२।४) जप जाग-दे० 'जप याग'। जपयाग-(स० जप यज्ञ) जप का यज्ञ। जप भी एक प्रकार का यज्ञ माना गया है। इसके तीन या चार भेद होते हैं। दे० 'जप'।
जब-(स० य + वेला)-जिस समय, जिस वक्त। उ० तुलसिदास भवत्रास मिटै तब जब मति यहि सरूप अटकै। (वि० ६३) जबकब-(कब<स० क + वेला)-जब कभी, जिस समय भी। उ० जब कब रामकृपा दुख जाई। (वि० १२७) जबहिं-१ जब, २ जब ही, जभी। उ० १ जबहिं जाम जुग जामिनि बीती। (मा० २।८४।४) जबहूँ-जब भी। उ० सुरुचि कह्यो सोइ सत्य, तात! अति परुष बचन जब हूँ। (वि० ८६) जबै-जभी, जिस समय ही। उ० जबै जमराज रजायसु तें मोहिं लै चलिहैं भट बाँधि नटैया। (क० ७।५१)
जम-(स० यम)-१ यमराज, मृत्यु तथा नरक के देवता। इनका निवास नरक माना जाता है। २ योग का एक अंग। मन तथा इंद्रिय आदि को वश में कर रखना। उ० २ जप तप ब्रत जम नियम अपारा। (मा० ७।११७।५) जमहि-यम से, यमराज से। उ० जननि जमहि जायसि कैकइ। (मा० २।२५२।३)
जमत-(स० जन्म)-उपज आते हैं, उत्पन्न होते हैं। जमिहहिं-उगेंगे, उगेंगे, निकलेंगे। उ० जमिहहिं पंख करसि जनि चिंता। (मा० ४।२८।५)
जमदूत-(स० यमदूत)-यमराज के दूत, मृत्यु के दूत।

जमदूता-दे० 'जमदूत' । उ० सुत हित मीत मानहुँ जमदूता। (मा० २।८३।४)

जमधाम-(सं० यमधाम)-यमराज का लोक, मृत्यु लोक, नरक । उ० परै जमधाम, हैं तउ न चाँपो । (क० ६।१८)

जमधार-(सं० यमधार)-१ यम की सेना, २ यमलोक में ले जानेवाली विपदा की धारा ।

जमधारि-दे०'जमधार' । उ०२ करि विचार भव तरिय, परिय न कबहुँ जमधारि । (वि० २०३)

जमन-(सं० यवन)-म्लेच्छ, मुसलमान । यथार्थतः यवन (जवन) मुसलमानों को न कहा जाकर यूनानियों के लिए प्रयुक्त होता था, पर सामान्यतः लोग इसका प्रयोग मुसलमानों के लिए ही करते हैं । उ० स्वपच सबर खस जमन जड़ पावँर कोल किरात । (मा० २।१६४)

जमनगर-(सं० यमनगर) नरक । उ० अगम अपवर्ग, अरु स्वर्ग सुकृतैक फल, नाम-बल क्यों बसौं जमनगर नेरे ? (वि० २१०)

जमनिका-(सं० यवनिका)-१ कनात, पर्दा, २ माया, ३ काई । उ० ३ हृदय जमनिका बहुबिधि लागी । (मा० ७।७३।४)

जमपुर-(सं० यमपुर)-नरक, यमराज का नगर । उ० को जानै को जैहै जमपुर को सुरपुर परधाम को । (वि० १५५)

जमराज-(सं० यमराज)-धर्मराज, जो मरने के बाद प्राणी के कर्मों का विचार कर उसे दंड या उत्तम फल देते हैं । उ० सकुल सदल जमराजपुर, चलत चहत दसकंधु । (प्र० ४।३।६) जमराजपुर-नरक । दे० 'जमराज' ।

जमात-(अर० जमाअत)-आदमियों का जत्था, समूह, गरोह । उ० बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै । (मा० १।९३। छं० १)

जमाति-दे० 'जमात' । उ० जोगिनी जमाति कालिका कलाप तोषिहैं । (क० ६।११)

जमाती-जमात में रहनेवाले, साधु लोग, सन्यासी । उ० जागैं जोगी जंगम, जती जमाती ध्यान धरैं । (क० ७। १०३)

जमानो-(फा० जमाना)-समय, काल । उ० जाहिर जहान में जमानो एक भाँति भयो । (क० ७।७६)

जमी (१) (सं० यम)-१ संयमी, संयम करनेवाला, २ यम की पत्नी । उ० १ देखि लोग सकुचात जमी से । (मा० २।२१२।३)

जमी (२)-(फा० ज़मीन)-पृथ्वी, भूमि ।

जमुन-(सं० यमुना)-यमुना नदी । उ० चारि मदाग जमुना जल जो मरी मम स्याम । (मा० ७।१०६)

जमुहात-(सं०जृम्भण) जमुहाई लेते समय, जँभाते समय । उ० सुनत सिद्धि सब माइन्ह राग करत जमुहाता । (मा० २।३११) जमुहान-जँभाना, जँभाई ली । उ० उठि बिगात बिकरात मुख, कुम्भकरनु जमुहान । (प्र० ३।०।२)

जमोग-(फा० जमा + सं० योग) मानने का निश्चय, ठीक ।

जमोगद-तसदीक कराना, समर्पण कराना ।

जयंत-(सं०)-देवराज इन्द्र के शची से उत्पन्न तीन पुत्रों में से एक का नाम । मेघनाद से जयंत का एक बार बड़ा भयंकर युद्ध हुआ था । जयंत के मामा पुलोमा उस युद्ध से भयभीत होकर भग गए थे । जयंत की स्त्री का नाम कीर्ति था । एक बार भगवान राम की परीक्षा करने के लिए इन्होंने कौवे का वेश धारण कर जानकी पर चोंच-प्रहार किया था । राम ने पहले तो इनको समाप्त कर देने के लिए धनुष उठाया पर बाद में दया कर केवल एक आँख फोड़कर छोड़ दिया । उ० जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत । (मा० २।१४१)

जयंता-दे० 'जयंत' । उ० मारत दसा बिकल जयंता । (मा० ३।२।५)

जय(सं०)-१ विजय, जीत, २ अतिशय या अर्थी का पुत्र, ३ विष्णु का एक पार्षद या द्वारपाल । जय और विजय दो भाई थे । एक बार सनकादि भगवान के दरबार में जा रहे थे, तो इन दोनों ने उनको रोका । सनकादि इस पर बहुत रुष्ट हुए और उन्होंने दोनों को शाप दिया । शाप के ही कारण संसार में इनको तीन बार जन्म लेना पड़ा । जय अपने तीनों जन्मों में क्रम से हिरण्याक्ष, रावण और शिशुपाल था तथा विजय हिरण्यकशिपु, कुम्भकर्ण और कंस । हर बार भगवान ने स्वयं अवतार लेकर इनका उद्धार किया । ४ एक भवत । दे० 'जय सब्द' । उ० ३ जय अरु बिजय जान सब कोऊ । (मा० १।१२२।१) जयजय-विजय की कामना करनेवाला शब्द । उ० प्रभु जामानि ज्य-जय भवानी । (वि० १५)

जयउ-दे० 'जयऊ' । जयऊ-जीत लिया है, विजय कर लिया है । उ० भरत धन्य तुम्ह जसु जगु जयऊ । (मा० २।२१०।३) जये (१)-(सं० जयन)-जीत गए, जीत लिया । उ० एक कहत भइया भरत जये । (गी० १।४३)

जयेउ-दे० 'जये (१)' । जयो (१)-१ जीत लिया, विजयी हुआ, २ जीत भी, जय भी । उ० १ तीर ते उतरि जस कह्यो चहै, गुनगननि जयो है । (गी० ६।११)

जयौ-दे० 'जयो (१)' ।

जयकर-जय करनेवाले, जीतनेवाले । उ० जय जयत-जयकर अनंत, सज्जना जन रंजन । (वि० ७।११३)

जयति-जय हो की पुकार । उ० निसि बासर ध्यावहिं, गुन गन गावहिं जयति सच्चिदानंदा । (मा० १।१८६। छं० १)

जयमाल-(सं० जयमाला)-१ वह माला जो विजयी को पहिनाई जाती है, २ स्वयंवर में वर के गले में कन्या द्वारा पहिनाई जानेवाली माला । उ० १ जो बिलोकि रीझे कुअँरि तब मेलै जयमाल । (मा० १।१३१)

जयमाला-दे० 'जयमाल' । उ० २ कुअँरि हरषि मेलेउ जयमाला । (मा० १।१३२।१)

जयसंवत-एक संवत् का नाम । पंडित सुधाकर द्विवेदी की गणनानुसार यह संवत् सं० १६४२ विक्रमीय में पड़ा था । उ० जय संवत फागुन सुदि पाँचै, गुरु दिनु । (पा० २)

जयसील-(सं० जयशील)-जीतनेवाला, जयशाली । उ० करि उपमीत मारि पुनि हरहिं । (मा० ६।२३।३)

जये (२)-(सं० जाया, जनन)-उत्पन्न करते थे । उ० मनु साथ सुपरिजन, स्याद मानहिं मारा मनु जये । (गी०

२।१७) जयो (२)-उत्पन्न हुआ, पैदा हुआ।
जयो (३)-(स० यजन)-यजन क्रिया, यज्ञ किया। उ० चहत महामुनि जाग जयो। (गी० १।४५)
जर (१)-(स० ज्वर)-ज्वर, ताप, बुखार। उ० जरहिं विषम जर लेहिं उसासा। (मा० २।५१।३)
जर (२)-(स० जरा)-बुढ़ापा, वृद्धावस्था।
जर (३)-(स० जटा)-जड़, मूल।
जर (४)-(स०)-नाश या जीर्ण होने की क्रिया।
जरइ-(स० ज्वलन)-जलता है। उ० रिस तन जरइ होइ बल हानी। (मा० १।२७८।३) जरई-जलता है, जल रहा है। उ० सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई। (मा० २। ३३।२) जरउ-जले, जल जाय। उ० हिय फाटहु, फूटहु नयन जरउ सो तन केहि काम। (दो० ४१) जरत-१ जलता है, जल रहा है, २ जलते हुए। उ० १ अजहूँ हृदय जरत तेहि आँचा। (मा० २।३२।३) जरति जलती हुई। जरती-जलती, भस्म होती। उ० घरही सती कहा- वती, जरती नाह वियोग। (दो० २५४) जरहिं-जलते- हैं, भस्म होते हैं, जल रहे हैं। उ० दे० 'जर (१)'। जरा (१)-(स० ज्वलन)-१ जला, जल गया, जल उठा, २ जलाकर, ३ जलाया। उ० १ सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी। (मा० ३।२६।१) जरि (२)-(स० ज्वलन)- जलकर, भस्म होकर। उ० तुलसी का हविरह नित नव जर जरि जीवन भरिबे हो। (कृ० ३१) जरिए-जलिए, जला कीजिए। उ० सो बिपरीत देखि पर सुख बिनु कारन ही जरिए। (वि० १८६) जरिहि- जलेगी, जलती रहेगी। उ० नाहि त जरिहि जनम भरि छाती। (मा० २।३४।२) जरी (१)-(स० ज्वलन)-१ जली, जली-भुनी, २ एक गाली। जरे (१)-(स० ज्व लन)-१ जले, भस्म हुए, २ जले हुए। उ० २ मानहुँ लोन जरे पर देइ। (मा० २।२०।४) जरौं-जलूँ, जल मरूँ। उ० सुग्ह सहित गिरि तें गिरौं, पावक जरौं, जल निधि महुँ परौं। (मा० १।६६। छं० १)
जरकसी-(फ़ा० जरकश)-जिस पर सोने या चाँदी के तार आदि लगे हों। उ० सुन्दर बदन, सिर पगिया जरकसी। (गी० १।७२)
जरजर-(स० जर्जर)-१ जीर्ण, पुराना हो जाने के कारण जो बेकाम हो, २ टूटा-फूटा, खंडित, ३ वृद्ध। उ० १ जरजर सकल सरीर पीर मई है। (ह० ३८)
जरठ-(स०)-१ कर्कश, कठिन, २ वृद्ध, बुड्ढा, ३ जीर्ण, पुराना। उ० २ मिलहिं जोगी जरठ तिन्हहिं दिखाउ निरगुन-खानि। (कृ० ४२)
जरठपनु-बुढ़ापा, वृद्धावस्था। उ० मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा। (मा० २।२।४)
जरठाई-वृद्धावस्था, बुढ़ापा। उ० जरठाइ दिसा, रविकाल उग्यो, अजहुँ जड़ जीवन जागहि रे। (क० ७।३१)
जरनि-जलन, दाह, ताप, जलना। उ० राम नाम के जपे जाइ जिय की जरनि। (वि० १८४)
जरनी-दे० 'जरनि'। उ० जननी जनकादि हितू भये भूरि, बहोरि भई उर की जरनी। (क० ७।१२)
जरा (२)-(स०)-१ बुढ़ापा, वृद्धावस्था, २ एक राक्षस का नाम जिसने जरासंध की संधि को जोड़ा था। जरा संध अपनी मा के पेट से दो फाँक पैदा हुआ था। उ० १ जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ। (मा० १।१६४) २ अवधि-जरा जोरति हठि पुनि पुनि, याते तनु रहत सहत दुख भारे। (कृ० ५६)
जरा (३)-(अर० ज़र्रा)-थोड़ा, कम, तनिक।
जराए (१)-(स० जटन)-जड़े हुए, लगाए हुए। उ० पहुँची करनि, कंठ कठुला बन्यो केहरि नख मनि-जरित जराए। (गी० १।२१)
जराए (२)-(स० ज्वलन)-जलाया, जला दिया। जराय (१)-(स० ज्वलन)- जला कर, भस्म कर।
जराय (२)-(स० जटन)-१ जड़ाव, रत्न आदि जड़ने की क्रिया, २ जड़ाकर, जड़वाकर। उ० १ अंग अंग भूषन जराय के जगमगत, हरत जन के जी को तिमिर जालु। (गी० १।४०)
जरायुज-(स०)-वे प्राणी जो आँवल या खेड़ी आदि में लिपटे मा के गर्भ से उत्पन्न होते हैं।
जरि (१) -(स० जड़)-१ जड़, मूल, २ जड़ी,जड़ी-बूटी, औषधि। उ० १ जरि तुम्हारि चह सवति उखारी। (मा० २।१७।४)
जरित-(स० जटित)- जड़ित, जड़ा हुआ, अलंकृत। उ० जरित कनकमनि पलँग डसाए। (मा० १।३५६।१)
जरी (२)-दे० 'जरि (१)'। उ० २ देखी दिव्य ओषधी जहँ तहँ जरी न परि पहिचानि। (गी० ६।८)
जरी (३)-(अर० ज़रा)-थोड़ी, अत्यल्प कम।
जरी (४)-(स० जटन)-जटित, जड़ी हुई। उ० महाव्याल बिकल बिलोकि जनु जरी है। (गी० १।८०)
जरे (२)-(स० जटन)-१ बँधे हुए, जकड़े हुए, २ जटित, जड़े, अलंकृत। उ० २ झूमत द्वार अनेक मतंग, जँजीर जरे मद अंबु चुचाते। (क० ७।४४)
जर्जर-दे० 'जज्जर'। उ० १ सरन्हि मारि कीन्हेसि जर्जर तन। (मा० ७।७३।५)
जज्जर-(स०)-१ जीर्ण शीर्ण, टूटा फूटा, खंडित, २ वृद्ध। उ० १ सो प्रगट तनु जज्जर जरा बस व्याधि सूल सतावई। (वि० १३६)
जलंधर-(स०)-१ एक राक्षस, जो शिव की कोपाग्नि से समुद्र में उत्पन्न हुआ था। पैदा होते ही यह इतने जोर से रोने लगा कि देवता लोग बहुत घबराए। ब्रह्मा ने इसे अपनी गोद में बिठलाया तो जलंधर ने उनकी दाढ़ी इतनी जोर से खींची कि उन्हें आँसू निकल पड़े। इसी कारण ब्रह्मा ने इसका नाम जलंधर रक्खा। बड़े होने पर इसने इंद्रपुरी पर अधिकार कर लिया। शिव इंद्र की ओर से इससे लड़ने लगे पर इधर इसकी स्त्री वृन्दा ब्रह्मा की पूजा करने लगी। इस प्रकार इसका मरना असंभव हो गया। अंत में विष्णु ने इसकी स्त्री के साथ छल किया और यह मारा गया। वृन्दा इसके साथ सती हो गई। २ पेट का एक रोग। उ० १ समर जलंधर सन सब हारे। (मा० १।१२३।३)
जल-(स०)-१ पानी, नीर, २ खस, उशीर, ३ सुगंध बाला, नेत्रबाला। उ० १ भरी कोप जल जाइ न जाइ।

(मा० २।३२।१) जलप्रलि-(सं०)-१ पानी का भँवर, २ पानी का भौंरा, भौंतुआ। यह जलप्रवाह के विरुद्ध भी तेज़ी से तैर सकता है। उ० २ जल प्रवाहँ जलअलि गति जैसी। (मा० २।२३४।४) जलो (१)-(सं० जल)-जल भी, पानी भी। उ० पशु अघ निरगुनी निसमल जो न लहँ आँधे-जलो। (गी० २।४२)

जलकुक्कुट-(सं०)-मुर्गाबी, पानी के मुर्गे। उ० बोलत जल कुक्कुट कलहंसा। (मा० ३।४०।१)

जलचर-(सं०)-पानी में रहनेवाले जंतु। मछली, कछुआ, मगर आदि। उ० जलचर थलचर नभचर नाना। (मा० १।३।२) जलचरन्हि-जलचरों, जलचरों पर। उ० अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहिं। (मा० ६।४)

जलचरकेतु-(सं० जलचर+केतु)-जिनकी ध्वजा में मछली का चिह्न हो। कामदेव। उ० चलेउ हरषि हियँ जलचरकेतू। (मा० १।१२४।३)

जलज-(सं०)-१ कमल, पंकज २ जल से उत्पन्न सभी चीज़ें। उ० १ जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं। (मा० १।५।३)

जलजाए-(सं० जल+जनन)-कमल। उ० भ्रू सुंदर करुना रस-पूरन, लोचन मनहुँ जुगल जलजाए। (गी० १।२३)

जलजात-(सं०)-जो जल में पैदा हो, कमल।

जलजाता-दे० 'जलजात'। उ० पूजहिं माधव पद जलजाता। (मा० १।४४।३)

जलजान-(सं० जलयान)-नाव, जहाज़। उ० सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान। (मा० २।१०)

जलजाना-दे० 'जलजान'। उ० भयहु तात मा कहँ जलजाना। (मा० २।१४।१)

जलद-(सं०)-१ जल देनेवाला, बादल, २ कपूर, ३ माया। उ० १ किएँ जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बर बात। (मा० २।२१६)

जलदनाद-मेघनाद, रावण का पुत्र इंद्रजीत। उ० बिपुल बलमूल, शार्दूल विक्रम, जलदनादमर्दन, महावीर भारी। (वि० ३८)

जलदाता-तर्पण आदि किया तथा पिंडदान का करनेवाला। उ० जलदाता न रहिहि कुल कोऊ। (मा० १।१७४।२)

जलदातार-जल देनेवाला, मेघ, बादल। उ० जग-सरवर सर भरन-पर जानहु जलदातार। (स० १२१)

जलदानि-१ मेघ, बादल, २ जल देनेवाला।

जलदु-दे० 'जलद'। उ० १ जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ। (मा० २।२०४।२)

जलधर-(सं०)-बादल, मेघ। उ० सेवक सालि पाल जलधर से। (मा० १।२२।२) जलधरानि-बादलों का। उ० चरित निरमल बिपुल सुनमी ओट दै जलधरानि। (गी० १।१४)

जलधि-(सं०)-समुद्र, सिन्धु सागर। उ० जलधि अगाध मौलि बह फेनू। (मा० १।१६७।४) जलधेः-(सं०)-समुद्र के। उ० मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं। (मा० ३।१। श्लो० १)

जलनिधि-(सं०)-दे० 'जलधि'। उ० गुरइ मंदिर गिरि ते गिरी पावक नहीं जलनिधि महुँ परी। (मा० १।६१। छं० १)

जलपति-(सं० जल्प)-इधर-उधर की बातें करती हुई, बकती हुई। उ० उर लाइ उमहि अनेक बिधि, जलपति जननि दुख मानई। (पा० १२१)

जलपान-(सं० जलपान)-वह थोड़ा और हलका भोजन जो प्रातःकाल या सायं किया जाता है। नाश्ता, कलेवा। उ० करि तड़ाग मज्जन जलपाना। (मा० ७।६३।२)

जलमल-जल का मैल, फेन इत्यादि। उ० कलि अघ मल अवगुन कथन ते जलमल बग काग। (मा० १।२१)

जलयान-(सं०)-जल में काम आनेवाली सवारी। नाव, जहाज़ आदि।

जलरथ-(सं०)-नाव, जहाज़। उ० भवसिंधु सुन्दर जलरथ, भजु चक्रधर सुरनायक। (वि० १३६)

जलरुह-(सं०)-कमल, जलज। उ० हरषि रबिकुल जलरुह चंदिनि (मा० २।१२४।१)

जलाशय-(सं०)-दे० 'जलासय'।

जलाश्रय-(सं०)-दे० 'जलासय'।

जलासय-(सं० जलाशय) तालाब, सर, झील आदि। उ० बिमल जलासय बिबिध बिधाना। (मा० २।२१४।२)

जलु-जल, पानी। उ० सुंदर गिरि काननु जलु पावन। (मा० २।१२४।३)

जलो (२)-(सं० ज्वलन)-जल गया।

जल्प-(सं०)-१ कथन, वचन, कहना, २ प्रलाप, व्यर्थ की बात, बकवाद।

जल्पक-(सं०)-बकवादी, वाचाल बातूनी। उ० समुझै तोहि तोहि ग्रास बहुजल्पक निसिचर अधम। (मा० ६। २३ ख)

जल्पत-(सं० जल्प)-१ डींग मारते हुए, बकवाद करते हुए, प्रलाप करते हुए २ बकवाद करता है। उ० १ जदि बिधि जल्पत अधम बिहाना। (मा० ६।१०२।२) जल्प उ-१ बकवाद करो, प्रलाप करो, २ तू बकवाद करता है। उ० १ जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई। (मा० ६।६।२) जल्पहि-बकते हैं, बका करते हैं। उ० जल्पहि कल्पित बचन अनेका। (मा० १।११२।३)

जल्पना-१ बकवाद, प्रलाप, गपशप, २ अपनी बड़ाई करना। उ० १ पाँवहु नाथ मृषा जल्पना। (मा० ६। २६।२)

जव-(सं० यव)-जौ, एक अन्न। उ० होइहि जव कर कीर अभागी। (मा० २।२३।२)

जवन (१)-(सं० यवन) म्लेच्छ, मुसलमान। दे० 'जमन'। उ० मर कुटिल कुत्रदीन दीन अति मलिन जवन। (वि० २१२)

जवन (२)-(सं० यः)-जौन, जो, जौन सा। जो जो, जौन सा। 'जवन' का भी किया रूप। उ० हरि-सुगन पत पायो है छाम बिमल, जौन भगति सुनि पावन जवनि। (गी० २।१)

जवनिका-दे० 'जमनिका'।

जवार (१)-(अ० जवार)-१ आसपास की जगह, २ अड़ोस, पड़ोस। उ० २ स्वारथ जवार, परमारथ की

कहा चली, पेट की कठिन, जग जीव को जवार है। (क० ७।६७)
जवार (२)-(?)-ज्वार, समुद्र का उफान।
जवास-(सं० यवासक)-एक प्रकार का छोटा पौदा जो नदियों के किनारे होता है। यह ग्रीष्म ऋतु में हरा भरा रहता है और बरसात में पानी पड़ते ही सूख जाता है। उ० जिमि जवास परे पावस पाना। (मा० २।५४।१)
जवासा-दे० 'जवास'।
जस (१)-(सं० यश)-यश, तारीफ, नाम। उ० प्रभु प्रसाद जस जाति सकल सुख पावउँ। (जा० १६४)
जस (२)-(सं० यथा)-१ जैसा, जिस प्रकार का, २ जिस प्रकार से। उ० १ जस आमय भेषज न कीन्ह तस। (वि० १२२) जसि-(सं० यथा)-जैसी, जिस प्रकार की, 'जस' का स्त्रीलिंग। उ० राम विरोध कुसल जसि होई। (मा० ६।२१।५)
जसी-(सं० यश)-यशवाला, यशस्वी, कीर्तिवान। उ० राख्यो तनु संग्राम जेहि लगि गीध जसी जगाय। (गी० ७।३१)
जसु (१)-दे० 'जस (१)'। उ० निज गिरा पावनि करन कारन रामजसु तुलसी कह्यो। (मा० १।३६१। छं० १)
जसु (२)-दे० 'जस (२)'।
जसुमति-दे० 'जसोमति'। उ० सुनि सुत की अति चातुरी जसुमति मुसुकाई। (कृ० ८)
जसोमति-(सं० यशोमति)-यशोदा, नन्द की स्त्री जिन्होंने कृष्ण को पाला था। उ० तुलसिदास प्रभु सा कहै उर लाइ जसोमति ऐसी बलि कबहूँ नहिं कीजै। (कृ० ७)
जहँ-(सं० यत्र)-जहाँ, जिस जगह। उ० त्रिबली उदर गंभीर नाभि सर जहँ उपजे बिरंचि ज्ञानी। (वि० ६३)
जहर-(फा० ज़हर)-१ विष, माहुर, प्राणघातक पदार्थ, २. अप्रिय बात या काम, ३ घातक मार डालनेवाला, ४ बहुत अधिक हानि पहुँचानेवाला। उ० १ सुधा सो भरोसो एहु, दूसरो जहर। (वि० २५०)
जहवाँ-(सं० यत्र) जहाँ जहाँ पर। उ० बन असोक सीता रह जहवाँ। (मा० ५।८।३)
जहाँ (१)-(सं० यत्र)-जिस स्थान पर, जिस जगह। उ० लै दियो तहँ जनवास सकल सुपास नित नूतन जहाँ। (जा० १२५)
जहाँ (२)-(फा०)-जहान, संसार।
जहाज-(अर० जहाज)-बहुत बड़ी नाव, एक प्रकार की बड़ी नाव जो लोहे की होती है और मशीन से चलती है। उ० सहित समाज महाराज सो जहाजराज। (क०६।२५)
जहाजू-दे० 'जहाज'। उ० मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू। (मा० २।८६।२)
जहान-(फा० जहाँ)-संसार, विश्व। उ० साहब कहाँ जहान जानकीस सो सुजान। (क०७।१६) जहानहि-संसार को, विश्व को। उ० जेहि जाँचत जाचकता जरि जाइ जो जारति जोर जहानहि रे। (क० ७।२८)
जहाना-दे० 'जहान'। उ० जड़ चेतन जीव जहाना। (मा० १।३।२)
जहि (१)-(सं० जहन)-१ त्यागो, छोड़ो, २ त्यागकर, छोड़कर, ३ नाश करनेवाले। उ० २ नमत राम अकाम ममता जहि। (मा० ७।३०।३)
जहि (२)-(सं० यस्)-जेहि, जिसे, जिसको।
जहिआ-(सं०यद्)-जिस समय, जब। उ० सुजसु विस्व जितव तुम जहिआ। (मा० १।१३६।३)
जह्नु-(सं०)-१ विष्णु, २ एक राजर्षि। जब भगीरथ गंगा को लेकर आ रहे थे तो रास्ते में जह्नु यज्ञ कर रहे थे। गंगा को इन्होंने पी लिया। भगीरथ के बहुत प्रार्थना करने पर पुन इन्होंने कान के रास्ते गंगा को निकाला। तब से गंगा का नाम जाह्नवी पड़ा। इस शब्द के साथ कन्या, सुता, तनया आदि पुत्री वाचक शब्द लगा देने से गंगा के पर्याय बन जाते हैं। उ० २ नर नाग विबुध बंदिनि, जय जह्नु बालिका। (वि०१७) जन्हु-कन्या-गंगा नदी। दे० 'जह्नु'। उ० जह्नु-कन्या धन्य, पुन्यकृत सगर सुत, भूधर द्रोनि-विहरनि बहुनामिनी। (वि० १८)
जाँगर (१)-(सं० जांगल)-उजाड़, सूना, समृद्धिहीन। उ० सकेलि चाकि राखी रासि, जाँगर जहान भो। (क० ५।२३)
जाँगर (२)-(?)-शरीर, हाथ पैर देह।
जाँघ-(सं० जंघ)-घुटना और कमर के बीच का भाग, ऊरु। उ० महाराज लाज आपुही निज जाँघ उघारे। (वि० १४७)
जाँचत-(सं० याचन)-१ माँगते हुए, जाँचते हुए, २ जाँचते हैं, माँगते हैं। उ० १ देव दनुज मुनि नाग मनुज नहि जाचत कोउ उबर्यो। (वि० ६१) २ हरि दरसन फल पायो है ज्ञान बिमल, जाँचत भगति मुनि चाहत जवनि। (गी० ३।५) जाँचति-याचना करती है, माँगती है। उ० अवनि जमहि जाँचति कैकेई। (मा० २।२५२।३)
जाँचहीं-माँगती हैं, याचना करती हैं, प्रार्थना करती हैं। उ० जोरी जियौ जुग जुग, सखी जन जाँचहीं। (क०१।१७)
जाँचा-माँगा, माँगा था, याचना की थी। उ० रावन मरन मनुज कर जाँचा। (मा० १।४६।१) जाँचिए-माँगिए, प्रार्थना कीजिए। उ० को जाचिए संभु तजि आन? (वि० ३) जाँचिये-माँगिए याचना कीजिए। उ० जग जाँचिये कोऊ न, जाँचिये जौ जिय जाँचिये जानकी-जानहि रे। (क० ७।२८) जाँचे-जाँचता है, माँगता है। उ० जाँचे बारह मास, पियै पपीहा स्वातिजल। (दो० ३०७) जाँचौं-माँगता हूँ, माँगूँ। उ० जाँचौ जल जाहि कहै अमिय पिआउ सो। (वि० १८२)
जा (१)-(सं०)-१ माता, माँ, २ देवरानी, देवर की स्त्री, ३ उत्पन्न, संभूत। जैसे गिरिजा, जनकजा, अवनिजा आदि। उ० ३ विष्णु पद सरोज जासि, ईस-सीस पर बिभासि। (वि० १७)
जा (२)-(सं० य)-१ जो, २ जिस। उ० २ जा करि तैं दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाइ। (मा० १। १८५। छं० १) २ राउर जापर अस अनुरागू। (मा० २। २५६।३)
जा (३)-(फा०)-१ मुनासिब, वाजिब, २ जगह, स्थान।
जा (४)-(सं० यान)-१ चला जा, जाओ, २ जाइ, गमन (जैसे जाकर=गमनकर या गमन करके)। जाइ (१)-(सं० यान)-१ चलकर, गमन कर, जाकर, २ समाप्त

होना, दूर होता, ३ दूर होते हैं, ४ जाती है, ५ व्यर्थ, वृथा। उ० १ मन मा जाइ नहिं आ जस मे मगर समर हर सँचइ हलाहलु। (त्रि० २९) २ सो श्रम जाइ न कोटि उपाएँ। (मा० १।११।३) ३ राम नाम के जपे जाइ जिय की जरनि। (त्रि० १८४) जाइअ-जाना चाहिए, जाया जाय। उ० जाइअ बिनु बोलेहुँ न सँदेहा। (मा० १।६२।३) जाइय-जाना चाहिए, जाय। उ० परम जो घर मिलै तौ मेर कि जाइय? (पा० २१) जाइहि-जायगा, जायगा। उ० सुपनेहुँ न मिलिहि न जाइहि पाऊ। (मा० २।३६।३) जाईं (१)-(सं० यान)-१ जाइ, जाकर, २ जाता, जाना है, ३ जाइयेगा, ४ जायँ। उ० १ निज मुख मुकुर बिलोकहु जाईं। (मा० १।१३५।३) २ मोह जनित मल लाग बिबिध बिधि, कोटिहु जतन न जाई। (वि० ८२) जाउँ-जाता हूँ, जाऊँ। उ० जौ नहिं जाउँ रहइ पछितावा (मा० १।४५।१) जाउ-१ जाओ, २ जाय, उजड़ जाय, ३ जाय, जावे। उ० २ घर जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिबाहु न हौं करी। (मा० १।६६। छं० १) जाऊँ-दे० 'जाऊ'। उ० तं सुख कहहु मातु मन जाऊँ। (मा० २।५६।४) जाऊ-जाऊँ, चला जाऊँ। उ० नरक परौं बरु सुरपुर जाऊ। (मा० २।४२।१) जाएँ-१ व्यर्थ, बेमतलब, २ जायँ। उ० १ मरतहिं देसु देइ को जाएँ। (मा २।२२८।४) जाए (१)-(सं० यान)-दे० 'जाएँ'। जाएहु-जाना चले जाना। उ० समटु जाहु पास जानि सुख जाएहु होत बिहान। (मा० १।१२१ क) जात-(१)-(सं० यान)-१ जाता है, २ जाते हुए। उ० १ सो क्यों मद्द तेरो कहा कहि इत उत जात। (कृ० २) २ घोर जमालय जात निवारयो सुत-हित सुमिरत नाम। (वि० १५५) जातहि-जाते ही पहुँचते ही। उ० मथुरा बसो नगर नागर जन जिन्ह जातहि जदुनाथ पढ़ाए। (कृ० ४०) जाता-(१)-(सं० यान)-१ यात्रा, जाना, २ जाते हुए, ३ गया होता। उ० १ जेहि सुद मंगल कानन जाता। (मा० २।२३।४) २ पथिक अनेक मिलहिं मग जाता। (मा० २।११२।२) जाति (१)-(सं० यान)-१ जाती है, गमन करती है २ जाते हुए, ३ जाती, जा सकती। उ० ३ हाइ धौं कहि काल दीनदयालु जानि न जाति। (वि० २२१) जाती (१)-दे० 'जाति (१)'। उ० २ मनुजदसा कैसें कहि जाती। (मा० १।३२८।२) जाब-१, जाना, २ जाऊँगा, ३ जाओगे, जाओगे। उ० १ मोर जाब तब नगर न होई। (मा० १।१६७।२) ३ जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाए। (मा० २।११२।४) जावेउँ-जाता। उ० मैं जावेउँ सीतहि बरजोरा। (मा० ६।२०।३) जावै-जाता, जाता है। उ० नगर सोहावन लागत बरनि न जावै हो। (रा० २) जाय (१)-(सं० यान)-१ चला जाय, २ जा, जाओ, ३ व्यर्थ, वृथा। उ० ३ कबहुँ न जाइ गयो जनम जाय। (वि० ८३) जायगो-जायगा, हटेगा, दूर होगा। जाहिं (१)-(सं० यान)-१ जाते हैं, जाती हैं, २ दूर होते हैं। उ० १ एहि बिधि जग परम लघु बिनु श्रम पारहि जाहिं। (मा० १।१३) जाहिगो-नष्ट हो जायेगी। उ० भए भूपन भारीष गयो, बीच जाहिंगा जानि। (दो० १४२) जाहि (१)-(सं० यान)-१ जाओ, २ जाकर। उ० १ राम की सरन जाहि सुदिनु न हेरै। (गी० ५।२०) जाहिगो-जायगा, नष्ट हो जायगा। उ० यदि सीय नतो, पिय! पाइमाल जाहिगो। (क० ६।२३) जाहीं-१ जायँ, जायँ, २ जाते हैं, ३ बीत जाय, व्यतीत हो जायँ। उ० २ पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं। (मा० १।४२।१) जाही (१)-(सं० यान)-१ जाकर, २ जा। उ० २ अब जनि नाथ कहहु गृह जाही। (मा० ७।१८।४) जाहु-जाओ, जाइए। उ० अनुराग न परहिं जाहु लगेगा। (मा० ७।२४।४) जाहू-दे० 'जाहु'। उ० बैनतेय संकर पहिं जाहू। (मा० ७।६०।४) जैबे-(सं० यान)-१ जाने, २ नष्ट होने। उ० २ जैबे का घनव टक, एक टेक हैव की जा। (क० ७।८७) जैहउँ-जाऊँगा, जा पाऊँगा। उ० कवन जैहउँ दुस्तर सागर पारा। (मा० १।२६।१) जैहसि-जायगा, नष्ट होगा। उ० जैहसि तैं समेत परिवारा। (मा० १।१०४।१) जैहहिं-१ जायँगे, २ गमन करेंगे। उ० १ गत मारे जैहहिं सब राजा। (मा० १।२०१।२) जैहैं-दे० 'जैहहिं'। उ० २ गिरि कानन जैहैं साखामृग हौं पुनि अनुज सँघाती। (गी० ६।७) जैहै-१ जायगा, २ दूर होगा, नष्ट होगा। उ० १ हम सों कहत बिरह-श्रम जैहै गगन कूप खनि खोरे। (कृ० ४४) जैहौं-जाऊँगा। उ० राम-लषन सिय परम पियाकन काढ़िहि कामहिं जैहौं। (गी० २।६२) जैहौ-जाओगे, गमन करोगे।

जाइ (२)-(सं० जनन)-उत्पन्न कर, पैदाकर।

जाई (२)-(सं० जा)-१ पैदा हुई उत्पन्न हुई, २ कन्या, बेटी।

जाई (२)-(सं० जाती)-चमेली।

जाए (२)-(सं० जा)-पैदा की, जन्म दिया हो। उ० जानी बचन प्रेम प्रभु जाए। (मा० १।१६७।२)

जाकर-(सं० यत्+कृत)-जिसका। उ० जाकर चित अहिगति सम भाई। (मा० १।७।४)

जाका-(सं० य+कृतः)-जिसका, जिस व्यक्ति का। जाकी-१ जिस किसी की, २ जिसकी। उ० २ जाकी कहि रहति घनमिन, घलि, सुनत समुझि न थोरे। (कृ० ११) जाकें-जिसके, जिसके पास। उ० सहि कि हरिहि परस मनि जाकें। (मा० ७।११२।१) जाके-१ जिसके, २ जिस किसी के। उ० १ दुखमा जाके पित गई, राग द्वेष की हानि। (वै० २१)

जाको-१ जिसको, २ जिसका। उ० २ जाको बाब बिनोद मनुसि जिय बरत दिवाकर मोर सो। (वि० ७१)

जाग (१)-(सं० यज्ञ)-यज्ञ, मख। उ० समन अमित उतपात सब भरत चरित जप जाग। (मा० १।४१)

जाग (२)-(सं० जागरण)-१ जागरण, जागने की क्रिया, २ जागो उठो, निद्रा त्यागो। जागत-(सं० जागरण)-१ जागता है, २ जागते हुए, ३ प्रकट होना है, प्रकाशित होता है, ४ पैदा हुआ है, सिद्ध है, प्रसिद्ध है। उ० १ जागत सापन भाग तुम्हारी। (मा० २।१३०।२) ४ बीर बड़ो बिरुदैत बली, अजहूँ जग जागत जासु पँवारो। (क० ६।२८) जागति (१)-(सं० जागरण)-१ जागती है, २ जगाती है, जगाती हो, ३

जगमगाती है, प्रकट होती है, ४ प्रफुल्लित करता है। उ० २ कपट सयानि न कहति कछु जागति मनहु मसान। (मा० २।३६) ४ केस सुदेस गँभीर बचन बर, स्नुति कुंडल-डोलनि जिय जागति। (गी० ७।१७) जागन–जागना, जागरण, रात भर जागना। उ० ज्यों आजु कालिहु परहुँ जागन होहिंगे नेवते दिये। (गी० १।५) जागहिं–१ जागते हैं, २ जग जाते हैं। उ० १ नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। (मा० १।२२।१) जागा (१)–१ निद्रा त्यागा, उठा, जग उठा, २ ज़ाहिर हुए, प्रसिद्ध हुए। उ० १ देखि सुपहुँ मन मनसिज जागा। (मा० १।८६।४) जागि–१ जगकर, उठकर, २ प्रसिद्ध होकर, ३ जग जा। उ० १ जागि करहिं कटु कोटि कलपना। (मा० २।१४७।३) ३ जागि त्यागु मूढ़तानुरागु श्री हरे। (वि० ७४) जागिए–जगिए, उठिए, निद्रा त्यागिए। उ० जागिए न सोइए बिगोइए जनम जाय। (क० ७।८३) जागिबो–जागना, उठना, भ्रम से बाहर निकलना। उ० जागिबो जो जीह जपै नीके राम नाम को। (क० ७।८३) जागिहै–जगेगा, जग उठेगा। उ० राग रोम नाम सों, बिराग जोग जगिहै। (वि० ७०) जागी (१)–१ उठी, जगी, २ जगकर, उठकर, ३ प्रकट हुई, प्रसिद्ध हुई, ४ चमक उठी। उ० ३ धर्मसीलता तव जग जागी। (मा० ६।२२।४) जागु (१)–(स० जागरण)–जाग, जग जा। उ० अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जी तें। (वि० १६८) जागू–जाग, जग उठ। उ० महा मोह निसि सूतत जागू। (मा० ६।५६।४) जागे–१ जाग उठे, २ खड़े हो गए। उ० १ जानेउ सतीं जगतपति जागे। (मा० १।६०।२) २ रोम रोम जागे। (गी० १।१२) जागेउ–जगा, उठा। उ० जागेउ नृप अनभएँ बिहाना। (मा० १।१७२।१) जागैं–१ जागते हैं, जागते रहते हैं, २ चिंतित रहते हैं, ३ जागें, ४ जगाते हैं, मंत्र से जगाते हैं, जगावे। उ० ४ काहे को अनेक देव सेवत जागैं मसान। (क० ७।१६२) जागै–१ जागे, २ जागता है, ३ जगमगाता है, ४ बढ़ता है, ५ फैलेगा, बढ़ेगा, ६ चमकेगा। उ० ५ बिधि गति जानि न जाइ, अजसु जग जागै। (जा० ७८)

जाग (२)–(फा० जायगाह)–जगह, स्थान।

जागति (२)–(स० जागर्ति)–जागी, चैतन्य लोग। उ० मंजुल मुक्तावलि जुत जागति जिय जोहैं। (गी० ७।७)

जागबलिक–दे० 'याज्ञवल्क्य'। उ० जागबलिक मुनि परम बिबेकी। (मा० १।४५।२)

जागरन–(स० जागरण)–जागना, निद्रा का अभाव। उ० घर-घर करहिं जागरन नारीं। (मा० १।३४८।१)

जागरूक–(स०)–चैतन्य, सचेत।

जागा (२)–(स० यज्ञ)–यज्ञ, मख। उ० सतीं जाइ देखेउ तब जागा। (मा० १।६३।२)

जागी (२)–(स० यज्ञ)–यज्ञ करनेवाला। उ० कौन धौं सोम जागी अजामिल अधम? कौन गजराज धौं बाजपेई? (वि० १०६)

जागु (२)–(स० यज्ञ) यज्ञ, मख।

जाचक–(स० याचक)–माँगनेवाला, भिक्षुक, मँगता। उ० जाचक सकल सतोषि सकर उमा सहित भवन चले। (मा० १।१०२। छं० १) जाचकनि–याचकों को, मँगतों को। उ० देत संपदा समेत श्री निकेत जाचकनि। (क० ७।१६०)

जाचकता–(स० याचकत्व)–माँगने का भाव, भिखमंगी, मँगतापन। उ० जेहि जाँचत जाचकता जरि जाइ। (क० ७।२८)

जाचत–१ माँगता है, २ माँगते हैं, ३ माँगने पर। उ० १ नहिं जाचत, नहिं संग्रहीं, सीस नाइ नहिं लेइ। (दो० २६०) २ जाचत सुर निमेष, सुरनायक नयन भार अकुलान। (गी० ५।२२) जाचन–१ माँगना, याचना, २ माँगने के लिए। उ० २ इस उदार उमापति परिहरि अनत जे जाँचन जाहीं। (वि० ४) जाचहिं–माँगते हैं, याचना करते हैं। उ० जाचहिं भगति सकल सुख खानी। (मा० ७।११६।४) जाचा–१ माँगा, याचना की, २ जाँचना, माँगना, ३ चाहा हुआ, प्रार्थित। जाचिए–माँगिए, माँगना चाहिए, याचना करनी चाहिए। उ० जाचिए गिरिजापति कासी। (वि० ६)

जाजरो–(स० जर्जर)–जीर्ण शीर्ण, दुर्बल। उ० आँधरो, अधम, जड़ जाजरो जरा जवन। (क० ७।७६)

जाड़–(स० जाड्य)–जाड़ा, ठंढक। उ० जड़ता जाड़ बिषम उर लागा। (मा० १।३६।१)

जात (१)–(स०)–१ जन्म, उत्पत्ति, २ पुत्र, बेटा, ३ उत्पन्न, जन्मा हुआ, ४ प्राणी, जीव।

जात (२)–(स० जाति)–जाति, वर्ण। हिन्दुओं में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, लोहार, सोनार आदि जातियाँ।

जातक–(स०)–बच्चा, बालक शिशु। उ० तुलसी मन-रंजन रंजित अंजन नयन सुखंजन जातक से। (क० १।१)

जातकरम–दे० 'जातकर्म'। उ० नंदीमुख सराध करि जात करम सब कीन्ह। (मा० १।१९३)

जातकर्म–(स०)–हिन्दुओं के दस संस्कारों में से चौथा संस्कार जो बालक के जन्म के समय होता है। इसमें बालक के जन्म के बाद कुछ विशेष पूजन, वृद्ध श्राद्ध आदि कर बालक के सीस पर चावल व जव का चूर्ण और घी आदि मला जाता है। उ० जातकर्म करि, पूजि पितर सुर दिए महिदेवन दान। (गी० १।२)

जातना–(स० यातना)–१ पीड़ा, कष्ट, व्यथा, तीव्र वेदना, २ दंड की वह पीड़ा जो यमलोक में भोगनी पड़ती है। ३ नरक। उ० ३ उदर उदधि अधगो जातना। (मा० ६।१५।४)

जातरूप–(स०)–१ सोना, सुवर्ण, २ चाँदी। उ० १ जातरूप मनि रचित अटारीं। (मा० ७।२७।२)

जातरूपाचल–(स०)–सुमेरु पर्वत, सोने का पहाड़। उ० जातरूपाचलाकार बिग्रह लसत रोम बिद्युल्लता-ज्वाल माला। (वि० २८)

जाता (२)–(स० जा)–उत्पन्न हुआ, जन्मा। उ० जेहि कहुँ नहिं प्रतिभट जग जाता। (मा० १।१८०।२)

जाति ( )–(स०)–१ हिन्दुओं में समाज का वह विभाग जो पहले कर्म पर आधारित था पर बाद में जन्मानुसार हो गया। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, सोनार, अहीर आदि।

२ गोत्र, ३ कुल, वंश, ४ धर्मज्ञी, ५ जातिवी, ६ जायफल, ७ एक प्रकार का काव्य जिसमें अर्थ स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। कैशिकी, भारती, आरभटी तथा सात्वती, जाति के ये चार भेद कहे गए हैं। ८ वह पद्य जिसके चरणों में मात्राओं का नियम हो। मात्रिक छंद। ९ मग, राह। उ० १ मेरे ब्याह न बरेखी जाति-पाँति न चहत हौं। (वि० ७६) जाति पाँति-(स० जाति + पंक्ति)-जाति वर्ण आदि, बिरादरी। उ० रटत रटत मग्यो, जाति-पाँति भाँति घट्यो। (वि० २६०)

जाती (२)-दे० 'जाति (२)'। उ० ७ धुनि अवरेब कबित गुन जाती। (मा० १।३७।४) ६ बिष्नु बिरंचि देव सब जाती। (मा० १।६६।३)

जातुधान-(स०)-१ राक्षस, असुर, २ विभीषण। उ० १ जीते जातुधान जे जितैया बिबुधेस के। (गी० ३।४३) २ जातुधान भालु कपि केवट बिहग जो जो। (क० ७।१३) जातुधानपति-(स०)-रावण राक्षसों का राजा। उ० हरिप्रेरित जेहि कलप जोइ जातुधानपति होइ। (मा० १।१३८ ख) जातुधानी-राक्षसी, मंदोदरी आदि। उ० सुनत जातुधानी सब लागीं करै बिषाद। (मा० ६।१०८) जातुधानेस-(स० जातुधानेश)-रावण। उ० जातुधानेस भ्राता बिभीषन नाम। (गी० ५।४३)

जाते-(स० य + त)-१ जिससे, २ जिस कारण से। उ० १ जाते छूटै सब भेद ज्ञान। (वि० ६४)

जादवराइ-(स० यादव + राजा)-कृष्ण, यादवों का राजा। उ० मातु की गति दई गहि कृपालु जादव राइ। (वि० २१४)

जादौ-(स० यादव)-यदुवंशी। कहा जाता है कि वे आपस में लड़कर मर गए। उ० सकुल गए, तनु बिनु भए, साखी जादौ काम। (दो० ४२५)

जान (१)-(स० ज्ञान)-१ अवगत होना, जानना, २ जाना, ३ जानते हैं, ४ जानो, ५ जानेगा, ६ ज्ञान, जानकारी, ७ समझ, अनुमान, ८ ज्ञानवान, बुद्धिमान। उ० १ गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सबु कोइ। (मा० १।४८ क) ६ व ८ जानकी जीवन जान न जान्यो तौ जान कहावत जान्यो कहा है। (क० ७।३६) जानई-जानता है, जानते हैं। उ० हिमगिरि कहउ 'हनुमान महिमा अगम, निगम न जानइ'। (पा० १२१) जानउँ-१ जानूँ, २ जानता हूँ। उ० १ कह तापस नृप जानउँ तोही। (मा० १।१६३।४) जानत-१ जानता, जानता है, जानता है, २ जानते हुए, ३ जानते हो। उ० १ जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि यहु जातना सरीर। (मा० २।१२६) ३ जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई। (मा० २।१२७।२) जानतहूँ-१ जानते हुए भी २ जानता हूँ। उ० १ जानतहूँ अस स्वामि बिसारी। (मा० २।८।१) जानति-जानती, जानती है, जानती थी। उ० जानति हहु सब साहु हमारे। (मा० २।१७।३) जानद-१ जानना, समझना, जानो, जानिएगा, २ जानेगा। उ० १ को जानद सत सग प्रभाऊ। (मा० १।३।३) जानबि-जानिएगा। उ० गौरि-गरि मृति सोरि जिय जानबि। (पा० १२०) जानसि-जानती है, जानती थी। उ० जानसि मोर सुभाउ

बरोरू। (मा० २।२६।२) जानहिं-जानते हैं, जान लेते हैं। उ० राम जोहिं अपि जानहिं तेऊ। (मा० १।२२।२) जानहि-जानता है। उ० केवल मुनि जड़ जानहि नाहीं। (मा० १।२०२।३) जानहीं-जानते हैं। उ० महिपाल मुनि को मिलन सुख महिपाल मुनि मन जानहीं। (जा० १८) जानहु-१ जानो, २ जानते हो, जानते ही हो। उ० २ सो तुम्ह जानहु अंतरजामी। (मा० १।१४६।४) जाना (१)-(स० ज्ञान)-१ जानना, मालूम करना, २ जान लिया, मालूम किया। उ० १ जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। (मा० १।२२।२) २ जाना राम सती दुखु पावा। (मा० १।५४।२) जानामि-मैं जानता हूँ। उ० न जानामि योग जप नैव पूजां। (मा० ७।१०८। श्लो० ८) जानि-१ जानकर, समझकर, २ समझो, जान लो, ३ जानी, ४ जाना, मालूम हुआ। उ० १ जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि। (मा० १।७ ग) ४ नहिं जानि जाइ, न कहति, चाहति काहि कुधर-कुमारिका। (पा० ४५) जानिअ-१ जाना चाहिए २ जानी जाती है। उ० १ जानिअ तबहिं जीव जग जागा। (मा० २। ९३।२) २ गुरप्रसाद सब जानिअ राजा। (मा० १। १६४।१) जानिबी-जानिए जानिएगा। उ० परिवार पुर जन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानिबी। (मा० १। ३३६। छं० १) जानिये-१ समझनी चाहिए २ मालूम होना, जान पड़ना, ३ जानिएगा, जान पड़ेंगे। उ० १ करम, धरम सुख संपदा त्यों जानिये कुराज। (दो० ५११) ३ तात! जान जानिबे मए दिन। (गी० ११७४) जानियो-१ जाना चाहिए २ जानना। उ० १ मर जान जानियो सोइ नर नर है। (वि० २५१) जानिए-१ जान लेने पर, २ जान लीजिए, ३ जानना चाहिए, ४ जानता हूँ। उ० १ अर्थ अविद्यमान जानिय संसृति नहि जाइ गोसाईं। (वि० १२०) जानियत-१ जानता है, जान जाता है, २ जान पड़ता है, माना जाता है ३ जानते हैं समझते हैं, ४ ज्ञान, समझ। उ० १ तुलसी जाकी ओर जानियत प्रभुहि कमाँहे भरिहैं। (वि० १०१) २ सीय राम-संजोग जानियत रच्यो बिरंचि बनाइ कै। (गी० १।६८)

जानी (१)-(स० ज्ञान)१ जानी हुई प्रसिद्ध २ जान ली मालूम कर लिया, ३ जान लीजिए, जाना, ४ जान कर, ५ ज्ञानी, विद्वान्। उ० २ जानी राम, न कहि सके, भरत लखन सिय प्रीति। (दो० २०३) ३ महाबल बीर हनुमान जानी। (क० ६।२०) ४ राम भगति भूषित जियँ जानी। (मा० १।१।४) जानु (१)-(स० ज्ञान) १ जानो, समझो, विचारो। उ० १ राम नाम छुइ कागर हिय हिगु जानु। (ब० ४६) जानू-जानो, समझो, जानो। उ० चाप सु(?) पा सर आहुति जानू। (मा० १।२८१।३) जाने-१ पहिचाने, परिचित, २ जाना पहिचाना, जान लिया, ३ जानते हुए, ४ जानकर। उ० १ जा पै जिय जानकीनाथ न जाने। (वि० २३६) ४ जमुना नव जल परिगम छोगु न दोऊ। (कृ० ४६) जानेउँ-जाना, समझा, समझा है। उ० जानेउँ मरमु राउ हँसि कहई। (मा० २।२८।१) जाने-जाना जाता है। उ० नाथ जानेउ मरम प्रताप। (मा० १।१६।४)

जानेसु-जानना, जान लेना। उ० नहिं आयौं तव जानेसु मारा। (मा० ३।२।३) जानेहि-जाना, जान सका। उ० जानेहि नहीं मरमु मठ मोरा। (मा० ३।३।२) जानेहु-जाना, समझा था। उ० जानेहु लेइहि मागि चबेना। (मा० २।३०।३) जानै-१ जाने, २ जान लेता है, जानता है। उ० २ गरजि तरजि पाषान बरषि पवि प्रीति, परखि जिय जानै। (वि० ६५) जानो-समझो, जान लो। उ० स्याम वियोगी ब्रज के लोगनि जोग जोग जो जानो। (कृ० ३४) जानौं-१ जानूँ, २. जानता। उ० २ जानौं न मरम पद दाहिनो न बाम को। (क० ७।१७८) जान्यो-जाना, पहिचाना, समझ में आया। उ० जान्यो तुलसीदास, जोगवत नेही मेह-मन। (दो० ३०७)

जान (२)-(सं० यान)-१ गाड़ी, रथ, वाहन, २ जाना है, ३ जाने के लिए। उ० १ कहेउ बनावन पालकीं सजन सुखासन जान। (मा० २।१८६) ३ कहेउ जान बन केहिं अपराधा। (मा० २।४४।४)

जान (३)-(फ़ा०)-१ प्राण, जीव, दम, २ शक्ति, सामर्थ्य, ३ तत्त्व, सार।

जानकि-दे० 'जानकी'। उ० बिस्व बिजय जसु जानकि पाई। (मा० १।२४७।२) जानकिरमन-जानकीरमण, राम। उ० दससीस बिभीषन अभयप्रद जय जय जय जानकिरमन। (क०७।११४) जानकिरवन-जानकीरमण, जानकी के पति, राम। उ० कह तुलसिदास सुर-मुकुटमनि जय जय जय जानकिरवन। (क० ७।११२)

जानकिहि-जानकी को। उ० राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई। (मा० २।२६।१) जानकिहि-जानकी को। उ० देखि जानकिहि भए दुखारी। (मा० १।२५२।४) जानकी-(सं०)-जनक की पुत्री और राम की धर्मपत्नी, सीता, जानकी में कंत, शरण, रमण, रमन, रवन ईश, ईस नाथ, नाह आदि शब्द जोड़कर राम का अर्थ लिया जाता है। जैसे, जानकीरमण, जानकीकंत आदि। उ०जनकसुता जगजननि जानकी। (मा० १।१८।४) जानकीजीवन-जानकी के जीवन, राम। उ० जानकीजीवन जन है जरि जाउ सो जीह जो जाँचत औरहि। (क० ७।२६)

जाननिहार-जाननेवाला, ज्ञाता, जानकार। उ० माया मायानाथ की जो जग जाननहार। (दो० २४५)

जाननिहारा-दे० 'जाननिहार'। उ० मोरे तुम्हहि की जान निहारा। (मा० २।१२७।१)

जानपनी-बुद्धिमानी, जानकारी चतुराई। उ० दम दान दया नहिं जानपनी। (मा० ७।१०२।५)

जाना (२)-(सं० यान)-गाड़ी, रथ। उ० चलत बिमान मनि भरि भरि जाना। (मा० १।३३३।४)

जानी (२)-(फ़ा० जान)-प्राणप्यारी, स्त्री।

जानु (२)-(सं०)-जाँघ और पिंडली के मध्य का भाग, घुटना। उ० काम-सुम-तल सरिस जानु जुग, उरु करि कर करभहि बिलखावति। (गी० ७।१७)

जाप-(सं०)-किसी मंत्र आदि की आवृत्ति। दे० 'जप'। उ० जाप जग्य पावरि सर करई। (मा० ७।२७।३)

जापक-(सं०) जपकर्त्ता, जप करनेवाला। उ० जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल। (मा० १।२७) जापकहि-जप करनेवाले को। उ० राम नाम-जप जाप कहि, तुलसी अभिमत देत। (प्र० २।४।७)

जापकी-दे० 'जापक'। उ० जापकी न, तप खप कियो न तमाइ जोग। (क० ७।७७)

जापू-दे० 'जाप'। उ० अनमिल आखर अरथ न जापू। (मा० १।१५।३)

जाप्य (१)-(सं० जाप)-जाप करने योग्य, इष्टदेव। उ० सिद्धिसाधक साध्य, वाच्य वाचक रूप, मंत्र-जापक जाप्य, सृष्टि स्रष्टा। (वि० ५३)

जाप्य (२)-(सं० याप्य)-अधम, निकृष्ट, निन्दनीय।

जाबालि-(सं०)-कश्यपवंशीय एक ऋषि जो राजा दशरथ के गुरु और मंत्रियों में से थे। ये भी रामचंद्र को लौटाने के लिए चित्रकूट गए थे, और राम को बहुत समझाया था। उ० बामदेउ अरु देवरिषि बालमीकि जाबालि। (मा० १।३३०)

जाबाली-दे० 'जाबालि'। उ० कौसिक बामदेव जाबाली। (मा० २।३१४।३)

जाम (१)-(सं० याम)-प्रहर, याम, ७½ घड़ी या तीन घंटे का समय। उ० गएँ जाम जुग भूपति आवा। (मा० १।१७२।३)

जाम (२)-(फ़ा०)-प्याला, प्याले के आकार का कटोरा।

जामति-जमती है, उपजती है। उ० कामधेनु धरनी कलि गोमर बिबस बिकल, जामति न बई है। (वि० १३६) जामहिं-१ जमता है, उगता है, २ उगता। उ० २ देव न बरषहिं धरनी बए न जामहिं धान। (मा० ७।१०१ ख) जामा (१)-(सं० जन्म)-जमा, अंकुरित हुआ, पैदा हुआ। उ० पाइ कपट जलु अंकुर जामा। (मा० २।२३।३) जामी (१)-(सं० जन्म)-१ पनपी, अंकुरित हुई, जन्मी, उत्पन्न हुई, २ उपजा है, ३ जड़ पकड़ी। उ० १ राम भगति एहिं तनउर जामी। (मा० ७।११६।२) जामो-१ जमा है, उपजा है, २ जन्मा, उत्पन्न हुआ। उ० १ नाम प्रसाउ सही जो कही, कोउ सिला सरोरुह जामो। (वि० २२८) जामौ-जमे, उत्पन्न हो, उगे, अंकुरित हो।

जामन-(सं० यमन) थोड़ा सा दही या कोई और खट्टी चीज़ जिसे दूध में डालकर दही जमाते हैं। जावन।

जामनु-दे० 'जामन'।

जामवंत-(सं० जांबवत)-सुग्रीव के मंत्री का नाम जो ब्रह्मा का पुत्र माना जाता है। प्रसिद्ध है कि जामवंत रीछ था। त्रेता युग में रावण के विरुद्ध राम की सहायता करनेवालों तथा लड़ने वालों में यह प्रमुख था। भागवत के अनुसार द्वापर में इसी की कन्या जांबवती से कृष्ण ने विवाह किया था। सतयुग में जामवंत ने वामन भगवान् की परिक्रमा की थी। इस प्रकार यह तीनों युगों में जीवित था। जांबवान। उ० जिमि जग जामवंत हनुमानू। (मा० १।७।४)

जामा (२)-(फ़ा०) पहनावा, वस्त्र।

जामाता-(सं० जामातृ)-बेटी का पति, दामाद। उ० सादर पुनि भेंटे जामाता। (मा० १।३४१।१)

जिए–१ जीती रहे, जीवे, २ जीवित हो गए, ३ जीवित रहने से, ४ जीने पर। उ० ४ जाके जिए मुए सोच करिहैं न लरिको। (ह० ४२) जिऐ–दे० 'जिए'। उ० १ जिऐ मीन बरु बारि विहीना। (मा० २।३३।१) जिऔं–जीता रहूँ, जीऊँ। उ० जब लगि जिऔं कहउँ कर जोरी। (मा० २।२६।४) जियत–१ जीता, जीवित, २ जीता हूँ, ३ जीते जी, ४ जीता है। उ० ३. जियत खिलाये राम। (दो० २२१) ४ राम से प्रीतम की प्रीति रहित जीव जाय जियत। (वि० १३२) जियबे–जीने, जीवित रहने। उ० बहुरि मोहँ जियबे मरिबे की चित चिंता कछु नाहीं। (गी०२।१) जिया–१ जीवित हो गया, २ जीवित। उ० १ बालकु जिया विलोकि सब, कहत उठा जनु सोइ। (प्र० ६।५।५) जिये–१ जीने से, २ जीवित रहें। उ० १ नर ते खर सूकर स्वान समान, कहौ जग में फल कौन जिये। (क० ११६) जियें–१ जीवित रहें, जीएँ, २ जीने से। उ०१ जेहि देह सनेह न रावरे सों, असि देह धराइ कै जाय जियें। (क० ७।३८) जियै–१ जीता है, २ जीवित रहे। उ० १ मनि बिना फनि जियै व्याकुल बिहाल रे। (वि० ६७) जियो–१ जीवित हो उठा, सचेत हो उठा, २ बढ़ा, अधिक जीवित हुआ। उ० २ इन्हहीं के आए ते बधाए ब्रज नित नए, नादत बादत सब सब सुख जियो है। (कृ० १६) जीजै–१ जीना, जीवित होना, जीवित होइए, २ जीवित रहे, ३ जीवित हैं, जिन्दा हैं, ४ जीवित रहें तो। उ० १ मारे मरिअ जिआएँ जीजै। (मा० ३।२५।२) जावो–जीना, जिन्दा रहना। उ० लीजै गाउँ, नाउँ लै रावरो है जग ठाउँ यहूँ हूँ जीयो। (कृ० ३) जीयत–जीते जी, जब तक जीवित हैं। उ० जीयत राम, मुये पुनि राम, सदा रघुनाथहि की गति जेही। (क०७।३६) जीवत–१ जीता है, जीवित है, २ जीते जी, ३ जीवित जिन्दा। उ० १ घरु जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिबाहु न हौं करौं। (मा० १।६६। छं० १) जीवहिं–जीवें, जीवित रहें। उ० सकल तनय चिर जीवहुँ तुलसिदास के ईस। (मा० १।१९६)

जिअनमूरि–(स० जीवन + मूल)–१ जीवन प्रदान करने वाली जड़ी, सजीवनी बूटी २ अत्यन्त प्रिय वस्तु। उ० १ जिअनमूरि जिमि जुगवत रहऊँ। (मा० २।५६।३)

जिआइ–जिलाकर, जीवित कर। उ० कोसलपाल कृपालु चित, बालक दीन्ह जिआइ। (प्र० ६।२।४) जिआइहौं–जिलाऊँगा। उ० तुलसी अवलंब न और कछू, लरिका कहि भाँति जिआइहौं जू! (क० २।६) जिआउ–जिलाओ, जीवित करो। उ० सुनि सुमत! कि आनि सुंदर सुवन सहित जिआउ। (गी० २।८७) जिआए–१ जिलाए, जीवित किया, २ पाला है। उ० १ सुधा सींचि कपि, कृपा नगर-नर नारि निहारि जिआए। (गी० ६।२२) उ० २ नाना खग बालक जिआए। (मा० ७।२८।२) जिआयउ–जिलाया, जिला लिया। उ० मोहि जिआयउ जन सुखदायक। (मा० ७।३३।४) जिआयो–१ जिलाया, २ जिला रक्खा है, जीवित कर रक्खा है। उ० २ सींचेहुँ सुख बियोग सुनिये कहँ धिग बिधि मोहि जिआयो। गी० २।५६) जिआव–जिलाता है, जिला रहा है। उ० सोइ बिधि ताहि जिआव न आना। (मा० ६।६३।५) जिआवत–जिला रहा है। उ० मोर अभाग्य जिआवत ओही। (मा० ६।६६।३) जिआवनि–जिलानेवाली। उ० मृतक जिआवनि गिरा सुहाई। (मा० १।१४५।४) जिआवसि–जिलाते हो, जिला रहे हो। उ० सकर बिमुख जिआवसि मोही। (मा०१।२०।२) जिआवा–१ जिलाया, २ जिलाया हुआ। उ० २ जिअसि सदा सठ मोर जिआवा। (मा० ५।४१।२)

जिउ–(स० जीव)–प्राण, दम, जान। उ० जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी। (मा० २।१४२।२)

जित (१)–(स० यत्र)–जिधर, जिस ओर, जहाँ। उ० कै ए नयन जाहु जित ए री। (गी० १।७६)

जित (२)–(स०)–१ जीता हुआ, पराजित, २ जीत, विजय, ३ जीतनेवाला, जेता। उ० ३ आजानु भुज सरचाप धर सग्राम जित खर दूषण। (वि० ४५)

जित (३)–(स० जिति)–जीत लिया। जितई (१)–(स० जिति)–१ जिताया, जिता दिया, २ जीता। उ० १ समरथ बड़ो सुजान सुसाहिब सुकृत-सेन हारत जितई है। (वि० १३६) जितन–जीतने के लिए। उ० बलिहि जितन एक गयउ पताला। (मा० ६।२४।७) जितब–जीतेंगे, जीत पायेंगे। उ० पिय तुम्ह ताहि जितब सग्रामा। (मा० ६।३६।२) जितहिं–जीते, जीत सके। उ० तेहिं बल ताहि न जितहिं पुरारी। (मा० १।१२३।४) जिता–१ जेता, जीतनेवाला, २ जीत लिया। उ० १ धरम धुरंधर धीरधुर गुन-सील जिता को ? (वि०१५२) २ जिता काम अहमिति मन माहीं। (मा० १।१२७।३) जिति–जीतकर, विजय कर। उ० रिपु जिति सब नृप नगर बसाई। (मा० १।१७०।४) जितिहहिं–जीतेंगे। उ० जितिहहिं राम न ससय यामहिं। (मा० ६।४७।३) जिते (१)–१ जीत लिया, जीता है, २ जीतने पर। उ० १ देखे जिते हते हम केते। (मा० ३।१६।२) जितेउँ–जीत लिया। उ० भुजबल जितेउँ सकल दिगपाला। (मा० ६।८।२) जितेहु–जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि। (मा० ५।२१) जितै (१)–(स० जिति)–जीते, जीत सके। उ० जद्य मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ। (मा० १।१६४) जितो (१)–(स० जिति)–विजय किया, जीत लिया है। उ० कुकुम रग सुअंग जितो, मुखचद सो चद सों होड़ परी है। (क० ७।१८०) जितौ (१)–दे० 'जितो (१)'। जित्यो–जीता, जीत लिया, जीतता चला आया। उ० जनम जनम हौं मन जित्यो, अब मोहि जितैहो। (वि० २७०)

जितई (२)–(स० यत्र)–जिधर ही।

जिताए–जिताया, जिता दिया। उ० तरे बन बानर जिताए रन रावन से। (ह० ३३) जितावहिं–जिताते हैं, जिता देते हैं। उ० हारेहुँ खेल जितावहिं मोहीं! (मा० २।२६०।४) जितैहो–जिताओगे, जीत कराओगे। उ० जनम जनम हौं मन जित्यो, अब मोहि जितैहो। (वि० २७०)

जितेंद्रिय–(स०)–१ जिसने अपनी इन्द्रियों को जीत लिया हो, इन्द्रियों को वश में करनेवाला। २ सम वृत्ति वाला, शान्त।

जामिक-(सं० यामिक)-पहरेदार, रक्षक । उ० जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के । (मा० २।३१६।३)
जामिन-दे० 'जामिनी' ।
जामिनि-दे० 'जामिनी' । उ० भूख न बासर नींद न जामिनि । (मा० ७।२१।३)
जामिनी-(सं० यामिनी)-रात, निशा । उ० जिमि भानु बिनु दिनु प्रान बिनु तनु चंद बिनु जिमि जामिनी । (मा० २।९०।छं०१)
जामी (२)-(सं० यामी)-जानेवाला ।
जामु-याम । दे० 'जाम' (१) । उ० बैठे प्रभु भ्राता सहित दिवसु रहा भरि जामु । (मा० १।२१७)
जाय-(सं० जा)-१ पैदा कर, जन्म देकर, २ जन्मा है, ३ पैदा किया जन्म दिया । उ० १ मातु पिता जग जाय तज्यो, बिधिहू न लिखी कछु भाल भलाई । (क० ७।५७) जाया (१)-(सं० जा)-१ उत्पन्न, २ उत्पन्न किया, ३ उत्पन्न हुआ, ४ पुत्र, बेटा । उ० ३ जेहि न मोह अस को जग जाया । (मा० १।१२८।४) जाये (१)-(सं० जा)-पैदा हुआ, पुनर्जन्म पाया हुआ । उ० श्रातु आये जान सब अवमाल नेत हैं । (क० ५।२६) जायो-१ पैदा किया, जन्माया, २ उत्पन्न हुआ, ३ पैदा होवा । उ० १ मोसे दोस-कोस पोसे, तासे माय जायो को । (वि० १७६) जायौ-पैदा किया, उत्पन्न किया ।
जाया (२)-(सं०)-१ पत्नी, स्त्री । उ० उदासीन धन धामु न जाया । (मा० १।६७।२)
जायें (२)-(सं० यान)-वृथा, गया बीता ।
जार-(सं०)-किसी स्त्री का अवैधानिक पति, उपपति, यार ।
जरित-१ जलाता है, भस्म करता है, २ जलाते समय । उ० ७ जारत नगर कस न धरि खाहू । (मा० ६।६।२) जारा (१)-(सं० ज्वलन)-जलाया, भस्मीभूत किया, जला डाला । उ० अस कहि जोग अगिनि तनु जारा । (मा० १।६४।४) जारि-जलाकर । उ० बिनु जल जारि करइ सोइ छारा । (मा० २।१७।४) जारिहँ-जलाया । उ० जारिहँ नायँ जननि कहि काहू । (मा० २।२६१।३) जारए-१ जलाइए २ जनते हैं । उ० २ बरषत बारि पीर जारिए जवासे जस । (ह० ३५) जारी- १ जलाकर, २ जलाया, जला दिया । उ० २ सपनें बानर लंका जारी । (मा० ५।११।२) जारें-जलाने पर, जलाने से । उ० गाइ-गोठ महिसुर पुर जारें । (मा० २।१६७।३) जारै-१ जलाय, २ जलाने ही फूँकने ही । उ० २ जारै जोगु सुभाउ हमारा । (मा० २।१६१।७) जारो-भस्म किया जलाया । उ० यह घटि घास दास तुलसी प्रभु नामहूँ पाप न जारो । (वि० ९४)
जारनिहार-जलानेवाला, भस्म करनेवाले । उ० पावक बिरह समीर-स्वास तनु-तूल मिले तुम्ह जारनिहारे । (कृ० ४६)
जारा (२)-(सं० जार)-दे० 'जार' ।
जारा (३)-(सं० जाल)-झुंड समूह । उ० चारिय सैल सरिता मग जारा । (मा० ६।१२।४)
जाल-(सं०)-१ तार या सूत आदि का बुना पट जिसमें छोटे-छोटे या कुछ बड़े-बड़े छेद होते हैं । मछली या चिड़ियों आदि को पकड़ने के लिए इसको काम में लाया जाता है । पाश, २ समूह, ३ वह युक्ति जो दूसरे के फँसाने के लिए काम में लाई जाय । धोखा, ४ इन्द्र जाल, ५ खिड़की, झरोखा, ६ गर्व, घमंड, ७ जंजाल । उ० १ जलचर-बृंद जाल-अंतरगत होत सिमिटि इक पासा । (वि० ९२) २ श्रीफल कुच कंचुकि लताजाल । (वि० १४)
जाला-(सं० जाल)-१ मकड़ी का जाला । इसमें मक्खियों या कीड़ों को फँसाकर मकड़ियाँ खाती हैं । इसे मकड़ियाँ अपने मुँह के लार से बनाती हैं और फिर इसे खा जाती हैं । २ आँख का एक रोग ३ भूसा आदि बाँधने का जाल, ४ पानी रखने का एक प्रकार का बरतन । ५ जाल, पाश, बंधन, ६ समूह, ७ जंजाल । उ० ७ सुमिरत समन सकल जगजाला । (मा० १। २७।३)
जालिका-(सं०)-१ पाश, फंदा, २ जल्दी, ३ समूह, झुंड, ४ माला । उ० ४ प्रनतजन-कुमुदबन-इंदुकर जालिका । (वि० ४८)
जालु-१ जाल, फंदा, २ समूह । उ० २ अप्रिय बचन सुनाइ सेंगहि बिरह-ज्वाला-जालु । (गी० ५।१)
जालू-१, जाल, पाश, २ जंजाल । उ० २ जनमु मरनु जहँ लगि जगजालू । (मा० २।९२।३)
जावनु-दे० 'जामन' । उ० घृत सम जावनु देइ जमाई । (मा० ७।११७।७)
जासु-(सं० यस्य)-जिसका, जिसकी । उ० गावहिं बद जासु जस लीला । (मा० १।८०।१)
जासू-दे० 'जासु' । उ० ब्रह्मादिक गावहिं जसु जासू । (मा० १।६६।२)
जासों-१ जिससे, २ जिस प्रकार से । उ० १ जासों होय सनेह रामपद, एतो मतो हमारो । (वि० १७७)
जाहि (२)-(सं० य )-जिसमें । उ० कथा सुधा मथि काढ़हिं, भगति मधुरता जाहिं । (मा० ७।१२०क)
जाहि (२)-(सं० यः)-१ जिस, जिसको, २ जिससे ३ जिसमें, ४ जिस, जो । उ० १ जाहि दीन पर नेह करउ कृपा मदन मथन । (मा० १।१। सो० ४)
जाही (२)-(सं० य )-१ जिसको, जिसे, २ जिससे । उ० १ भयउ सीलनिधि कन्या जाही । (मा० १।१३१।२)
जिअउँ-(सं० जीवन)-१ जीऊँ, जीवन बिताऊँ, २ जीवित हूँ, जीता हूँ । उ० १ प्रनतपाल प्रभुतार, मोर प्रन जिअउँ कमलपद देखे । (वि० ११५) जिअत-१ जीते जी, २ जीते हैं, जीता है । उ० १ सबहि जिअत जेहि भेंटहु आइ । (मा० ७।५७।२) जिअन-जीने, जीवित रहने । उ० जिअन मरन फलु दसरथ पाया । (मा० २।१५६।१) जिअब-जीना, जीवित रहना । उ० भूपति जिअन मरन उर आनी । (मा० ७।२८२।४) जिअसि-जीता है, जीवित रहता है । उ० जिअसि सदा सठ मोर जिआवा । (मा० ५।२१।२) जिअहुँ-दे० 'जिअउँ' । जिअहहिं-जीएँगे, जीते रहेंगे । उ० प्रजा मातु पितु जिअहहिं कैसें । (मा० २।१००।१) जिअहिं-जीवे रहेंगे, जीवित रहेंगे । उ० राउ कि औंजव भरतपुर नृप कि जिअहिं बिनु राम । (मा० २।४९)

जिए–१ जीती रहे, जीवे, २ जीवित हो गए, ३ जीवित रहने से, ४ जीने पर। उ० ४ जाके जिए मुए सोच करिहैं न लरिको। (ह० ४२) जिऐ–दे० 'जिए'। उ० १ जिऐ मीन बरु बारि विहीना। (मा० २।३३।१) जिऔं–जीता रहूँ, जीऊँ। उ० जब लगि जिऔं कहउँ कर जोरी। (मा० २।२६।४) जियत–१ जीता, जीवित, २ जीता हूँ, ३ जीते जी, ४ जीता है। उ० ३। जियत खिलाये राम। (दो० २२१) ४ राम से प्रीतम की प्रीति रहित जीव जाय जियत। (वि० १३२) जियबे–जीने, जीवित रहने। उ० बहुरि मोहँ जियबे मरिबे की चित चिंता कछु नाहीं। (गी०२।१) जिया–१ जीवित हो गया, २ जीवित। उ० १ बालकु जिया बिलोकि सब, कहत उठा जनु सोइ। (प्र० ६।२।२) जिये–१ जीने से, २ जीवित रहें। उ० १ नर ते खर सूकर स्वान समान, कहौ जग में फल कौन जिये। (क० १।६) जियैं–१ जीवित रहें, जीएँ, २ जीने से। उ० १ जेहि देह सनेह न रावरे सा, असि देह धराइ कै जाय जियैं। (क० ७।३८) जियैं–१ जीता है, २ जीवित रहे। उ० १ मनि बिना फनि जियैं व्याकुल बिहाल रे! (वि० ६७) जियो–१ जीवित हो उठा, सचेत हो उठा, २ बढ़ा, अधिक जीवित हुआ। उ० २ इन्हहीं के आए ते बधाए ब्रज नित नए, नादत बादत सब सब सुख जियो है। (कृ० १६) जीजै–१ जीना, जीवित होना, जीवित होइए, २ जीवित रहे, ३ जीवित हैं, जिन्दा हैं, ४ जीवित रहें तो। उ० १ मारें मरिअ जिआएँ जीजै। (मा० २।२२।२) जीबो–जीना, जिन्दा रहना। उ० खीजै गाउँ, नाउँ लै रावरो है जग ठाउ कहूँ ह्वै जीबो। (कृ० ३) जीअत–जीते जी, जब तक जीवित हैं। उ० जीअत राम, मुये पुनि राम, सदा रघुनाथहि की गति जेही। (क०७।३९) जीवत–१ जीता हैं, जीवित है, २ जीते जी, ३ जीवित जिन्दा। उ० १ घरु जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिबाहु न हौं करौं। (मा० १।६६। छं० १) जीअहुँ–जीवें, जीवित रहें। उ० सकल तनय चिर जीअहुँ तुलसिदास के ईस। (मा० १।१९६)

जिअनमूरि–(सं० जीवन + मूल)–१ जीवन प्रदान करने वाली जड़ी, सजीवनी बूटी, २ अत्यन्त प्रिय वस्तु। उ० १ जिअनमूरि जिमि जुगवत रहऊँ। (मा० २।५९।३)

जिआइ–जिलाकर, जीवित कर। उ० कोसलपाल कृपालु चित, बालक दीन्ह जिआइ। (प्र० ६।२।४) जिआइहौं–जिलाऊँगा। उ० तुलसी अवलंब न और कछू, लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू? (क० २।६) जिआउ–जिलाओ, जीवित करो। उ० सुनि सुमंत्र! कि आनि सुंदर सुवन सहित जिआउ। (गी० २।५७) जिआए–१ जिलाए, जीवित किया, २ पाला है। उ० १ सुधा सींचि कपि, कृपा नगर नर नारि निहारि जिआए। (गी० ६।२२) उ० २ नाना रंग बाल कन्हि जिआए। (मा० ७।७८।२) जिआयउ–जिलाया, जिला लिया। उ० मोहि जिआयउ जन सुखदायक। (मा० ७।६३।४) जिआयो–१ जिलाया, २ जिला रक्खा है, जीवित कर रक्खा है। उ० २ सांचेहुँ सुत बियोग सुनिबे कहँ धिग बिधि मोहि जिआयो। (गी० २।५६) जिआव–जिलाता है, जिला रहा है। उ० सोइ बिधि ताहि जिआव न आना। (मा० ६।६६।५) जिआवत–जिला रहा है। उ० मोर अभाग्य जिआवत ओही। (मा० ६।६६।३) जिआवनि–जिलानेवाली। उ० मृतक जिआवनि गिरा सुहाई। (मा० १।१४५।४) जिआवसि–जिलाते हो, जिला रहे हो। उ० सत्र बिमुख जिआवसि मोही। (मा०३।५०।२) जिआवा–१ जिलाया, २ जिलाया हुआ। उ० २ जिअसि सदा सठ मोर जिआवा। (मा० ५।४१।२)

जिउ–(सं० जीव)–प्राण, दम, जान। उ० जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी। (मा० २।१४५।२)

जित (१)–(सं० यत्र)–जिधर, जिस ओर, जहाँ। उ० कै ए नयन जाहु जित ए री। (गी० १।७६)

जित (२)–(सं०)–१ जीता हुआ, पराजित, २ जीत, विजय, ३ जीतनेवाला, जेता। उ० ३ आजानु भुज सरचाप धर संग्राम जित खर दूषण। (वि० ४५)

जित (३)–(सं० जिति)–जीत लिया। जितई (१)–(सं० जिति)–१ जिताया, जिता दिया, २ जीता। उ० १ समरथ बड़ो सुजान सुसाहिब सुकृत-सेन हारत जितई है। (वि० १३९) जितन–जीतने के लिए। उ० चलिहि जितन एक गयउ पताला। (मा० ६।२४।७) जितब–जीतेंगे, जीत पायेंगे। उ० पिय तुम्ह ताहि जितब संग्रामा। (मा० ६।३६।२) जितहिं–जीते, जीत सके। उ० तेहिं बल ताहि न जितहिं पुरारी। (मा० १।१२३।४) जिता–१ जेता, जीतनेवाला, २ जीत लिया। उ० १ धरम धुरंधर धीरधुर गुन-सील जिता को? (वि०१५२) २ जिता काम अहमिति मन माहीं। (मा० १।१२७।३) जिति–जीतकर, विजय कर। उ० रिपु जिति सब नृप नगर बसाई। (मा० १।१७५।४) जितिहहिं–जीतेंगे। उ० जितिहहिं राम न संसय यामहिं। (मा० ६।५७।३) जिते (१)–१ जीत लिया, जीता है, २ जीतने पर। उ० १ देखे जिते हते हम केते। (मा० ३।१९।२) जितेउँ–जीत लिया। उ० भुजबल जितेउँ सकल दिगपाला। (मा० ६।८।२) जितेहु–जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि। (मा० ५।२१) जितैं (१)–(सं० जिति)–जीतें, जीत सके। उ० जरा मरन दुख रहित तनु समर जितैं जनि कोउ। (मा० १।१६४) जितो (१)–(सं० जिति)–विजय किया, जीत लिया है। उ० कुकुम रंग सुअंग जितो, मुखचंद सों चंद सों होड़ परी है। (क० ७।१८०) जितौ (१)–दे० 'जितो (१)'। जित्यो–जीता, जीत लिया, जीतता चला आया। उ० जनम जनम हौं मन जित्यो, अब माहिं जितैहो। (वि० २७०)

जितइ (२)–(सं० यत्र)–जिधर ही।

जिताए–जिताया, जिता दिया। उ० तेरे बल बानर जिताए रन रावन से। (ह० ३३) जितावहिं–जिताते हैं, जिता देते हैं। उ० हारेहुँ खेल जितावहिं मोहीं। (मा० २।२६०।४) जितैहो–जिताओगे, जीत कराओगे। उ० जनम जनम हौं मन जित्यो, अब मोहि जितैहो। (वि० २७०)

जितेंद्रिय–(सं०)–१ जिसने अपनी इन्द्रियों को जीत लिया हो, इन्द्रियों को वश में करनेवाला। २ सम वृत्ति वाला, शान्त।

जिते (२)-(स० य )-जितने, जितने भी। उ० कबहुँ न करयो निगम मग तें पग नृग जग जान जिते दुख पाए। (वि० २४०)
जिते (२)-(स० यत्र)-जिधर, जिस ओर।
जितैया-जीतनेवाला, विजय करनेवाला, विजयी। उ० रूप के निधान, धनुष बान पानि, तून कटि, महावीर विदित, जितैया बड़े रन के। (वि० ३७)
जितो (२)-(स० य )-जितना, जिसमात्रा का, जितना ही। उ० जितो दुराउ दास तुलसी उर क्यो कहि आवत ओतो। (वि० १६१)
जितौ (२)-जितना, जितना अधिक। उ० नख सिख सुंदरता अवलोकत कह्यो न परत सुख होत जितौ री। (गी० १।७२)
जितौहैं-जीत की ओर झुका हुआ, जीत चाहने वाला। उ० इदके जितौहैं मन, सोध, अधिकानी तन। (गी० १।८४)
जिन (१)-(स० क्ष यानां। तु० म० यानि, येषां)-'जिस' का बहुवचन, जिन्ह, जो लोग, जिन्होंने। उ० जिन जानि कै गरीबी गाढ़ी गही है। (गी० २।४१) जिनके-जिन लोगों के। उ० जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी। (वि० ५) जिनहिं-जिनको, जिन लोगों को। उ० कौन सुभग सुसील बानर जिनहिं सुमिरत हानि। (वि० २१२)
जिन (२)-(अर०)-भूत प्रेत, मुसलमानी भूत।
जिनस-दे०-'जिनिस'। उ० १ बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै। (मा० १।६३।छ०१)
जिनिस-(फा० जिंस)-१ जाति, प्रकार, तरह, २ वस्तु, चीज़, सामान।
जिन्ह-(स० क्ष्यानां)-जिन, जो लोग। उ० परहित हानि लाभ जिन्ह करें। (मा० १।४।१) जिन्हहिं-जिनको, जिन लोगों को। उ० तिन्ह कहुँ मानस अगम अति जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ। (मा० १।३८) जिन्हही-जिनको, जिन लोगों को। उ० रामचरन पकज प्रिय जिन्हही। (मा० २।८३।४)
जिमि-(स० य:+एवम्)-जिस प्रकार, जैसे, ज्यों। उ० अजलिगत सुभ सुमन जिमि सम सुगध कर दोइ। (मा० १।३क)
जियँ-जी में, मन में। उ० देखि मोहि जियँ भेद बढ़ावा। (मा० ४।६।४) जिय-(स० जीव)-१ मन, चित्त, जी, २ प्राण, जीव, ३ प्राणी, शरीरधारी, ४ सार, ५ आत्मा। उ० १ राम नाम के जपे जाइ जिय की जरनि। (वि० १८४)
जियरे-जी में, चित्त में। उ० कुडल तिलक छबि गड़ी कवि जियरे। (गी० १।४१)
जियाये-१ जीवित कर दिए, २ पालन-पोषण किया, ३ रक्षा की।
जिव-(स० जीव)-१ जीव, जीवात्मा, २ प्राण, दम। उ० १ तबहीं ते न भयो हरि! थिर जबते जिव नाम धरयो। (वि० ९१)
जिवन-दे० 'जीवन'। उ० गिरिजहि लागि हमार जिवन सुख सपति। (पा० २०)
जिवनमूरि-दे० 'जिअनमूरि'।
जिवनु-दे० 'जीवन'। उ० जिवनु जासु रघुनाथ अधीना। (मा० २।१४६।३)
जिष्णु-(स०)-जीतनेवाला, विजयी। जिष्णो-हे जयशील, हे विजयी। उ० भुवन भवदस कामारि वदित पदद्वद मदाकिनी-जनक जिष्णो। (वि० ५४)
जिसु-(स० यस्य)-जिसका। उ० सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू। (मा० १।११२।२)
जिह्वा-(स०)-जीभ, रसना।
जी (१)-(स० जीव)-१ मन, दिल, चित्त, २ हिम्मत, साहस, ३ सकल्प, विचार, ४ जीवन। उ० १ रीझत राम जानि जन जी की। (मा० १।२८।२) ४ अवधि आस सम जीवनि जी की। (मा० २।३१७।१)
जी (२)-(स० श्रीयुत, प्रा० जुक, हि० जू)-१ नाम के पीछे लगाया जानेवाला आदरसूचक शब्द, २ किसी बड़े के कथन, प्रश्न या सबोधन के उत्तर रूप में प्रतिसबोधन, हाँ।
जीजी-[स० देवी (?)]-बड़ी बहन। उ० "कीजे कहा, जीजी जू!" सुमित्रा परि पायँ कहै। (क० २।४)
जीत-(स० जिति)-१ विजय, फतह, सफलता, २ लाभ, फायदा, ३ जीतना, जीत सकना, ४ जीतेगा। उ० ४ समरभूमि तेहि जीत न काइ। (मा० १।१३१।२)
जीतन-जीतना, जीतने। उ० जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें। (मा० ६।८०।६) जीतहु-जीतो, जीत लो। उ० जीतहु समर सहित दोउ भाई। (मा० १।२६६।३) जीति-१ जीतकर, २ जीत, विजय, ३ जीता। उ० १ पुष्पक आन जीति लै आया। (मा० १।१०८।४) ३ अजर अमर सो जीति न जाई। (मा० १।८२।४) जीतिअ-जीता जा सकता है। उ० सपनेहुँ समर कि जीतिअ सोइ। (मा० ६।२६।४) जीतिहहिं-जीतेंगे। उ० जदपि उमा जीतिहहिं आगे। (मा०६।४३।१) जीती-विजय कर, जीत। उ० एकहि एक सकइ नहिं जीती। (मा० ६।४४।२) जीते-जीत लिए, जीता। उ० तेहिं सब लोक लोकपति जीते। (मा० १।८२।३) जीतेहु-१ जीता है, २ जीतने पर भी। उ० १ जीतेहु जे भट सजुग माहीं। (मा० ६।६०।२) जीतेहू-दे० 'जीतेहु'। उ० २ तुलसी तहाँ न जीतिये जहँ जीतेहू हारि। (दो० ४३०) जीतै-१ जीते, २ जीतेगा। उ० २ सभु सुक सभू सुत एहि जीतै रन सोइ। (मा० १।८२)
जीत्यो-दे० 'जीत्यो'। उ० १ जीत्यो अजय निसाचर राऊ। (मा० ६।११२।२) जीत्यो-१ जीत लिया, जीत लिया है, २ जीता, ३ जीतना। उ० १ मानु समर जीत्यो दससीसा। (मा० ६।१००।७) ३ मोरे बीर सों चहत जीत्यो रारि रन में। (गी० २।२३)
जीन (१)-(स० जीर्ण)-१ जर्जर, टूट-फूटा, २ पुराना, वृद्ध।
जीन (२)-(फा० ज़ीन)-घोड़े की पीठ पर रखने की गद्दी, काठी, चारजामा। उ० रचि रचि जीन तुरग तिन्ह साजे। (मा० १।२९८।२)
जीभ-(स० जिह्वा)-१ रसना, ज़बान, २ वाणी गिरा। उ० १ काढ़िअ तासु जीभ जो बसाई। (मा० १।६४।१)

जीय-(स० जीव)-१ प्राण, जीव, २ मन, चित्त, दिल। उ० २ नाथ नीके कै जानिबी ठीक जन-जीय की। (वि० २६३)
जीर्ण-(स०)-१ पुराना, वृद्ध, जर्जर, २ टूटा-फूटा, जीर्ण शीर्ण, ३ परिपक्व, जठराग्नि में जिसका परिपाक हुआ हो।
जीव (१)-(स०)-१ आत्मा, जीवात्मा, २ प्राण, जान ३ जीवधारी, प्राणी, ४ जीवन, ५ विष्णु, ६ बृहस्पति। उ० १ ब्रह्म जीव बिच माया जैसें। (मा० २।१२३।१) ३ जीव भवदम्नि-सेवक विभीषन बसत मध्य दुष्टाटवी ग्रसित चिंता। (वि० ५८) जीवन्ह-१ जीवों ने, सारे जीवों ने, २ जीवों को, ३ जीव का बहुवचन। उ० १ सहज बयरु सब जीवन्ह त्यागा। (मा० १।६६।१) २ फलु जग जीवन अभिमत दीन्हे। (मा० ७।२५६।४) जीवहि-१ जीव से, जीव पर, २ जीव में। उ० १ जनु जीवहि माया लप टानी। (मा० ४।१४।३) २ इस्वर जीवहि भेद कहहु कस। (मा० ७।७८।३)
जीव (२)-(स० जिति)-जीओ, जीते रहो।
जीवन-(स०)-१ जीवित रहने की अवस्था, ज़िन्दगी, २ प्राणाधार, परम प्रिय, ३ पानी, जल, वर्षा, ४ हवा, वायु, ५ जीविका, रोज़ी, ६ 'जीवक' नाम की औषधि। उ० १ तुलसिदास अपनाइए, कीजै न ढील अब जीवन अवधि अति नेरे। (वि० २७२) ३ जीवन को दानी घन कहा ताहि चाहिए। (वि० १७८)
जीवनमुक्त-(स० जीवन्मुक्त)-जो जीवित दशा में ही आत्म ज्ञान द्वारा सांसारिक माया बंधन से छूट गया हो। उ० जीवनमुक्त ब्रह्म पर चरित सुनहिं तजि ध्यान। (मा० ७।४२)
जीवनि-(स०)-सजीवनी बूटी। उ० अवधि आस सम जीवनि जी की। (मा० २।३१७।१)
जीवनु-दे० 'जीवन'। उ० १ सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा। (मा० २।३१।२)
जीवा दे० 'जीव'। उ० ३ प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा। (मा० २।२२८।३)
जीविका-(स०)-वह व्यापार जिससे जीवन का निर्वाह हो। भरण पोषण का साधन। वृत्ति। उ० जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोच बस। (क० ७।६७)
जीहँ-जीह से, जीभ से। उ० नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। (मा० १।२२।१) जीह-(स० जिह्वा)-जीभ, ज़बान। उ० जीह जसोमति हरि हलधर से। (मा० १।२०।४)
जीहा-(१)-१ दे० 'जीह', २ हे जीभ। उ० १ कान मूदिकर रद गहि जीहा। (मा० २।४८।४) २ राम राम रसु, राम राम रटु, राम-राम जपु जीहा। (वि० ६५)
जु-दे० 'जुग'। उ० २ रावरऊ जानि जिय कीजिये जु अपने। (क० ७।७८)
जुआ (१)-(स० द्यूत)-एक खेल जिसमें जीतनेवाले को हारनेवाले से कुछ धन मिलता है। यह बड़ी बुरी खेल मानी जाती है और कहा जाता है कि इस खेल का प्रेमी इसके पीछे अपना सब कुछ खो बैठता है। उ० जुआ खेलावत कौतुक कीन्ह सयानिन्ह। (जा० १६८)
जुआ (२)-(स० युत)-गाड़ी या हल में वह भाग जो बैल के कंधे पर होता है।
जुआ (३)-(स० यूका)-एक छोटा स्वेदज कीड़ा जो दूसरे जीवों के शरीर पर खून पीकर जीता है। जूँ।
जुआरा-जुआरी, जुआ खेलनेवाला। उ० बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। (मा० १।१८४।१)
जुआरिहि-जुआरी को जुआ खेलनेवाले को। उ० सूझ जुआरिहि आपन दाऊ। (मा० २।२५८।१)
जुग-(स० युग)-१ युग, एक सख्या बद्ध समय, सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलयुग, ये चार युग माने गए हैं। २ युग्म, जोड़ा, दोनों, ३ जत्था, समूह, ४ पीढ़ी, पुश्त, ५ युग चार हैं अत 'जुग' शब्द का प्रयोग ४ के लिए भी होता है। उ० १ चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका। (मा० १।२७।१) २ बदउँ सबके पदकमल सदा जोरि जुग पानि। (मा० १।७ ग) जुगजुग-चिरकाल, बहुत दिन, अनेक युग। उ० काम दमन कामता कल्पतरु सो जुगजुग जागत जगतीतलु। (वि० २४) जुग-षट-छ का दूना, बारह। उ० जुग-षट भानु देखे, प्रलय-कृसानु देखे। (क० ५।२०)
जुगति-दे० 'जुगुति'।
जुगम-(स० युग्म)-दो, दोनों। उ० समुझि तजहि भ्रम भजहि पद जुगम, सेवत सुगम गुन गहन गँभीर। (वि० १६६)
जुगल-(स० युगल)-दो, दोना, जोड़ा। उ० कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै। (वि० १११)
जुगवत-(स० योग)-१ एकत्र करता है, सचित करता है, २ सुरक्षित करता है, हिफ़ाज़त करता है।
जुगुति-(स० युक्ति)-१ उपाय, युक्ति, तदबीर, ढग, २ चतुराई, व्यवहार-कुशलता, ३ तर्क वितर्क। उ० १ जात रूप मति जुगुति रुचिर मनि रचि-रचि हार बनावहि। (वि० २३७)
जुझहिं-(स० युद्ध)-जूझते हैं, लड़ते हैं। उ० खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं। (मा० ६।८८। छ० १)
जुझाऊ-जुझानेवाला, लड़ाई के लिए उत्तेजित करनेवाला, लड़ाई का। उ० कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू। (मा० २।१६३।२)
जुझार-जूझनेवाला, शूर, बहादुर।
जुझारा-दे० 'जुझार'। उ० अमित सुभट सब समर जुझारा। (मा० १।१५४।२)
जुटत-(स० युक्त)-१ जुटते हैं, भिड़ते हैं, २ जुटते हुए, भिड़ते हुए। उ० १ मर्कट विकट भट जुटत कटत न लटत तन जर्जर भए। (मा० ६।४१। छ० १)
जुगारी-(स० जुष्ट)-जुगारा, जुगार रक्खा, बचाकर या प्रयोग कर छोड़ रक्खा। उ० सब उपमा कबि रहे जुठारी। (मा० १।२३०।४)
जुड़ाई (१)-(स० युक्त)-१ वस्तुओं के जोड़ने की क्रिया। २ जोड़ने की मज़दूरी।
जुड़ाई (२)-(स० जाड्य)-जूड़ी, एक प्रकार का ज्वर जो

आज्ञा देकर जाता है। उ० जातहिं नीद जुड़ाइ होइ। (मा० १।२६।१)

जुड़ाऊ-(स० जाड्य)-शान्त करो, ठंढक पहुँचाओ। उ० नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ। (मा० २।१६८।३)

जुड़ान-शीतल हुए, ठंढे हुए, शांत हुए। जुड़ाना-दे० 'जुड़ान'। उ० तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना। (मा० १।१८७।४) जुड़ानी-शांत हुई, ठंढी हुई, तृप्त हो गई। उ० देखि रामु सब सभा जुड़ानी। (मा० १।३२९।१)

जुड़ाने-दे० 'जुड़ान'। उ० रामबचन सुनि कछुक जुड़ाने। (मा० १।२७७।३) जुड़ाये-१ शीतल हुए, ठंढे हुए, २ शांत किए ठंढा किए। जुड़ायो-शीतल किया, तृप्त किया, सतुष्ट किया। उ० जरत फिरत त्रयताप पाप बस काहु न हरि! करि कृपा जुड़ायो। (वि० २४३) जुड़ावइ-ठंढा करे, शांत करे, तृप्त करे। जुड़ावई-दे० 'जुड़ावइ'। जुड़ावउँ-जुड़ाऊँ, जुड़ाऊँगा, ठंढी करूँगा। उ० आजु निपाति जुड़ावउँ छाती। (मा० ६।८३।१) जुड़ावहिं-जुड़ाती है, शीतल करती हैं। उ० हृदयँ लगाइ जुड़ावहिं छाती। (मा०१।२६५।३) जुड़ावहु-शांत करो, ठंढा करो, तृप्त करो। उ० मागहु आजु जुड़ावहु छाती। (मा० २।२२।३) जुड़ावा-शीतल किया, ठंढा किया। उ० निज शीतल जल सींचि जुड़ावा। (मा० ४।३।२) जुड़ावै-दे० 'जुड़ावइ'। उ० तोप मरुत तब छमाँ जुड़ावै। (मा० ७।११७।७)

जुत-(स० युक्त)-सहित, समेत, युक्त, पूर्वक। उ० सुख जुत कछुक काल चलि गयऊ। (मा० १।१६०।४)

जुत्य-(स० यूथ)-समूह, गोल, मंडली। उ० जुवति जुत्य महँ सीय सुभाइ बिराजइ। (जा० १२८)

जुद्ध-(स० युद्ध)-लड़ाई, संग्राम। उ० जुद्ध बिरुद्ध क्रुद्ध द्वौ बंदर। (मा० ६।४४।१)

जुन्हैया-(स० ज्योत्स्ना, प्रा० जोन्हा)-चादनी, कौमुदी।

जुपै-(स० यः+पर) यदि जो, परतु जो। उ० तुलसी जुपै गुमान को होतो कछू उपाउ। (दो० ४१३)

जुबति-दे० 'जुवति'। उ० जग असि जुबति कहाँ कमनीया। (मा० १।२४७।२)

जुबतिन्ह-'जुवतिन्ह'। उ० जहँ तहँ जुबतिन्ह मगल गाए। (मा० १।२६३।१) जुबतीं-युवतियाँ, स्त्रियाँ। उ० जुबतीं भवन झरोखन्हि लागीं। (मा० १।२२०।२) जुबती-दे० 'जुवती'। उ० पुत्रवती जुबती जग सोई। (मा०२।७५।१)

जुबराज-दे० 'जुवराज'। उ० १ आप अछत जुबराज पद रामहि देउ नरेसु। (मा० २।१)

जुबराजा-दे० 'जुवराज'। उ० २ पुनि सकोप बोलेउ जुब राजा। (मा० ६।३३।२)

जुबराजु-दे० 'जुवराज'। उ० १ नृप जुबराजु राम कहुँ देहू। (मा० २।२।४)

जुबराजू-दे० 'जुवराज'। उ० १ नाथ रामु करिअहिं जुबराजू। (मा० २।४।१)

जुबा-दे० 'जुवा'। उ० नारि पुरुष सिसु जुबा सयाने। (मा० १।३६।१)

जुबान-दे० 'जुवान'। उ० १ बाल जुबान जरठ नर-नारी। (मा० १।२४०।३)

जुबानू-दे० 'जुवान'। उ० १ सरिस स्वान मघवान जुबानू। (मा० २।३०२।४)

जुर-(स० ज्वर)-ज्वर, बुखार, ताप। उ० जोबन जरत जुर परै न कल कहीं। (क० ७।१८)

जुरइ-(स० युक्त, हि० जुरना)-जुड़ती, मिलती, प्राप्त होती। उ० चहिअ अमिअ जग जुरइ न छाछी। (मा० १।८।४)

जुरन-(स० युक्त)-जुटने, इकट्ठा होने। उ० चढ़ि चढ़ि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात। (मा० १।२९९) जुरि-एकत्र होकर, इकट्ठा होकर। उ० गावति गीत सबै मिलि सुंदरि, बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं। (क० १।१७) जुरिहि-१ जुड़ जायगा, एक होगा २ प्राप्त होगा, मिल जायगा। उ० १ टूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने। मा० १।२७७) २ गिरिजा-जोग जुरिहि बर अनुदिन लोचहिं। (पा० १०) जुरी-१ जुड़ी, जुटी, सबद्ध हुई, २ मिली, प्राप्त हुई। उ० १ तासों क्योंहू जुरी, सो अभागो बैठो तोरि हीं। (वि० २४८) जुरे इकट्ठे हुए, एकत्र हुए हैं। उ० परब जोग जनु जुरे समाजा। (मा० १।४१।४)

जुराना-दे० 'जुड़ान'।

जुवति-(स० युवति) जवान स्त्री, नवयुवती। उ० जोबन जुर जुबती-कुपथ्य करि भयो त्रिदोष भरि मदन-बाय। (वि० ८३)

जुवतिन्ह-युवतियाँ, जवान स्त्रियाँ। उ० जुवति द मगल गाइ राम अन्हवाइय हो। (रा० ६) जुवती-(स० युवती) युवती, स्त्री। उ० उर धरहु जुवती जन बिलोकि तिलोक-सोभा सार सो। (पा० १६४)

जुवराज-(स० युवराज)-१ राजकुमार, राजा का वह लड़का जो राज्य का अधिकारी होता है। गद्दी का अधिकारी, २ अगद, ३ युवराज पद।

जुवा (१)-(स० युवा)-जवान, नवयुवक। उ० गावति गीत सबै मिलि सुंदरि, बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं। (क० १।१७)

जुवा (२)-(स० द्यूत)-दे० 'जुआ (२)'।

जुवान-(स० युवन्)-१ जवान और कामी युवक, २ सिपाही।

जुवारि-(स० यवाकार)-ज्वार, एक अन्न। उ० बगरे नगर निछावरि मनिगन जनु जुवारि जव धान। (गी० १।२)

जुवारी (१)-(स० द्यूत, हि० जुआ)-जुआ खेलनेवाला।

जुवारी (२)-(हि० ज्वार)-चढ़ना, समुद्र या नदी की बाढ़ या साँस।

जुहार-(स० अवहार)-वंदगत सलाम, वदगी।

जुहारत-जुहार करते हैं, अभिवादन करते हैं। उ० भाँति भाँति उपहार लेइ, मिलत जुहारत भूप। (प्र० ६।२।७)

जुहारी-(स० व्यवहार)-सहायता, मदद। उ० ज्यों हरि रूप सुताहि तें कीन जुहारी आनि। (दो० ५३६)

जू-[हि० जी (२)]-१ जी, एक आदर सूचक शब्द जो नाम के पीछे लगाया जाता है, २ आदरसूचक सबोधन का शब्द। कभी कभी कविता में पादपूर्ति के लिए भी इसका प्रयोग होता है। उ० २ नदि पार तें मोहिं दूर धरे करि हौं जल-थाह दखाइहौं जू। (क० २।६)

जूआ (१)-(स० द्यूत)-दे० 'जुआ (१)'।

जूश्रा (२)-(स० युत)-दे० 'जुश्रा (२)'।
जूम-(स० युद्ध)-लड़ाई, युद्ध। उ० परपुर याद विवाद जय, जूझ जुश्राजय जानि। (प्र० २।४।२)
जूझा-१ युद्ध, लड़ाई, २ लड़ गया, ३ मारा गया। उ० १ करय कवन विधि रिपु सें जूझा। (मा०६।८।४) जूझिवे-युद्ध करने, लड़ने, लड़ाई करने। उ० आपनि सूझि कहौं, पिया बूझिए, जूझिवे जोग न ठाहर नाठे। (क० ६।२८) जूझियो-जूझना, युद्ध करना। उ० कै जूझियो कै बूझियो, दान कि काय-कलेस। (दो० ४४१) जूझे-१ जूझ मरे, लड़ मरे, २ लड़ने, लड़ाई करने। उ० २ जूझे सकल सुभट करि करनी। (मा० १।१७४।३) २ जूझे ते भल बूझियो, भली जीति तें हारि। (दो० ४३१) जूझै-१ जूझने, लड़ने, २ युद्ध करे, लड़े, ३ लड मरे। उ० १ पुनि रघुपति सैं जूझै लागा। (मा० ६।७३।५) जूझ्यो-युद्ध किया। उ० इन्हमें न एकौ भयो, बूझि न जूझ्यो न जयो। (वि० २६२)
जूट-(स०)-१ लट, जटा, २ जटा की गाँठ, ३ समूह, ४ पटसन, ५ पटसन का कपड़ा। उ० ३ शिरसि सकुलित कल जूट पिंगल जटा-पटल शत कोटि विद्युच्छटाभ। (वि० ११) जूटेन-समूह से। उ० राजीवायत लोचन धृत जटाजूटेन सशोभित। (मा० ३।१। श्लो० २)
जूठनि-(स० जुष्ठ)-जूठा, भोजनादि करने के बाद बचा भाग, गुरु तथा पिता आदि मान्यों का जूठा। उ० तुलसी पट ऊतरे ओढ़िहौं, उबरी जूठनि खाउँगो। (गी० ५।३०)
जूठा-जूठ, उच्छिष्ट। दे० 'जूठनि'।
जूड़ी-(स० जाड्य)-एक प्रकार ज्वर जिसमें पहले रोगी को जाड़ा लगता है, और वह काँपने लगता है। उ० स्वास खेंहि जनु जूड़ी आई। (मा० ७।४०।१)
जूड़े-१ शीतल, ठंढा, २ प्रसन्न। उ० २ जूड़े होत थोरे हीं थोरे गरम। (वि० २४६)
जूथ-(स० यूथ) १ दल, समूह, झुंड, २ सेना। उ० २ लोभ मोह मृगजूथ किरातहि। (मा० ७।३०।३)
जूथप-(स० यूथप)-सेनापति, समूह के स्वामी। उ० कपि पति वेगि बोलाए आए जूथप जूथ। (मा० ५।३४)
जूथा-दे० 'जूथ'। उ० १ राम वचन सुनि बानरजूथा। (मा० ५।४६।१)
जून (१)-(स० द्युवन्=सूर्य)-समय, काल।
जून (२)-(स० जूर्ण)-तृण, तिनका। उ० का छति लाभु जून धनु तोरें। (मा० १।२७२।१)
जून (३)-(स० जीर्ण)-पुराना।
जूरा-दे० 'जूरी (१)'।
जूरी (१)-(स० युक)-१ इकट्ठा कर, जोड़कर, २ समूह, ३ गुच्छा, मुट्ठा। उ० १ कंद मूल फल अंकुर जूरी। (मा० २।२५०।१)
जूरी (२)-दे० 'जूड़ी'।
जूह-(स० यूथ)-समूह, झुंड। उ० एकहि वार तासु पर छाड़ेन्हि गिरि तरु जूह। (मा० ६।६६)
जूहा-दे० 'जूह'। उ० पन्यहु जहँ तहँ बानर जूहा। (मा० ४।१।१२)
जेंइय-(स० जेमन)-भोजन कीजिए।
जेंवरी-(स० जीवा)-रस्सी, डोरी। उ० बूझो मृगवारि, खायो जेंवरी को साँप रे! (वि० ७३)
जेंवाइ-भोजन कराकर, खिलाकर। उ० विप्र जेंवाइ देहिं बहु दाना। (मा० २।१२३।४) जेंवाइय-भोजन कराइए, जिमाइए। उ० पेट भरि तुलसिहि जेंवाइय भगति-सुधा सुनाज। (वि० २१६)
जे-(स० ये)-'जो' का बहुवचन, जो लोग, जिन्होंने। उ० जे कछु समाचार सुनि पावहिं। (मा० २।१२२।१)
जेइँ-(स० जेमन)-भोजन कर, खाकर। उ० जेइँ चले हरि दुहिन सहित सुर भाइह। (पा० १५४) जेई (१)-(स० जेमन)-खाया, भोजन किया। जेवँइ-जीमेगा, भोजन करेगा, भोजन करे। उ० पुनि तिन्ह के गृह जेवँइ जोऊ। (मा० १।१६८।४) जेवँत-जीमते, भोजन करते। उ० नारि बृंद सुर जेवँत जानी। (मा० १।६६।४)
जेइ-जिसने भी, जिस किसी ने भी।
जेई (२)-(स० ये)-जो, जो ही। उ० बूढ़हिं आनहिं बोरहिं जेइ। (मा० ६।३।४)
जेउ-दे० 'जेऊ'। उ० जेउ कहावत हितू हमारे। (मा० १।२४६।१)
जेऊ-(स० ये) जो भी, जो। उ० जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। (मा० १।२२।२)
जेठ-(स० ज्येष्ठ)-बड़ा, जेठा। उ० राजधनी जो जेठ सुत आही। (मा० १।१५३।३) जेठि-अवस्था में बड़ी स्त्रियाँ, वृद्धाएँ। उ० कौसल्या की जेठि दीन्ह अनुसासन हो। (रा० ६) जेठे-१ बड़े, उम्र में बड़े, २ अग्रज, ३ सबसे अच्छा। उ० १ जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा। (मा० १। १५३।४)
जेतनेहि-(स० य)-१ जितने भी, २ जितना ही। उ० १ विधु महि पूर मयूखन्हि रवि तप जेतनेहि काज। (मा० ७।२३)
जेता (१)-(स० जेतृ)-जीतनेवाला, विजयी। उ० महा नाटक निपुन, कोटि-कविकुल तिलक, गान गुन-गर्व-गंधर्व-जेता। (वि० २६)
जेता (२)-(स० य)-जितना। उ० कहि न जाइ उर आनँदु जेता। (मा० १।३२३।२) जेते-(स० य)-जितने जो जो। उ० रघुपति चरन उपासक जेते। (मा० १।१८।२)
जेन-(स० येन)-जिससे। उ० जेन केन विधि दीन्हें, दान करइ कल्यान। (मा० ७।१०३)
जेर-(फा० ज़ेर)-१ परास्त, पराजित, २ जो बहुत परेशान किया गया हो।
जेरो-(फा० ज़ेर)-ज़ेर किया है, वशीभूत किया है, जीत लिया है। उ० राम ओट भय लगि मन्यो मनगुन जग जेरो। (वि० १४६)
जेवनार-(स० जेमन)-१ भोज, बहुत से आदमी का साथ खाना, दावत, २ भोजन, रसोई। उ० २ मैं तुम्हरे सदलप लगि दिनहि करवि जेवनार। (मा० १।१६८)
जेवनारा-दे० 'जेवनार'। उ० २ भाँति अनेक भई जेवनारा। (मा० १।६६।२)
जेवाँए-खिलाया, भोजन कराया। उ० पूनि भली विधि भूप जेवाँए। (मा० १।३२२।२)

जेहिं–(सं० यस्)–१ जिनको, २ जिन्होंने, ३ जिनके, ४ जिनसे, ५ जिनके कारण, ६ जिनमें, ७ जिन, ८ जिन्हें। उ० २ पारयविहि निरमयउ जेहिं सोइ करिहि कल्यान। (मा० १।७१) जेहि–(सं० यस्)–१ जिसको, २ जिसने, ३ जिसके, ४ जिससे, ५ जिसके कारण, ६ जिसमें, ७ जिस, ८ जिसे। उ० १ लहत परमपद पय पावन जेहि, चहत प्रपच उदासी। (वि० २२) जेहि तेहि–१ जिसको तिसको, २ जिस किसी, जिस किसी भी। उ० २ राखु राम कहुँ जेहि तेहि भाँती। (मा० २। ३४४)

जेहीं–दे० 'जेहि'। उ० २ विरचत हस काग किय जेहीं। (मा० १।१७२।१)

जेही–दे० 'जेहि'। उ० ८ राम सुरूपों बिलोकहिं जेही। (मा० १।२३१।३)

जै (१)–(सं० जय)–१ जीत, विजय, २ किसी की जय जताने या जय की शुभ कामना करने का शब्द। जय-जय। ३ देवताओं या बड़ों के लिए स्तुतिसूचक शब्द। उ० २ बारहिं बार सुमन बरषत, हिय हरषत कहि जै जै जई। (गी० २।३७)

जै (२)–(सं० य )–जितने, जिस सख्या में।

जैति–(सं० जयति)–१ विजय, जीत, २ विजयी, जय प्राप्त।

जैसा–(सं० यादृश, प्रा० जारिस, पैशाची प्रा० जइस्सो)–जिस प्रकार का, जिस तरह का, जैसे। उ निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा। (मा० ४।१२।१) जैसी–जिस प्रकार की। 'जैसा' का स्त्रीलिंग। उ० मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। (मा० १।११।१) जैसें–दे० 'जैस'। उ० साक बनिक मनि गुन गन जैसें। (मा० १।३।६) जैसे–जिस प्रकार से, जिस ढग से। उ० जैसे हो तैसे सुखदायक भजनायक बलिहारी। (कृ० ६) मु० जैसे तैसे–किसी भी तरह, जिस किसी प्रकार। जैसेउ–जिस प्रकार से भी। जैसेहिं–जैसे भी। उ० जे जैसहिं तैसेहिं उठि धावहिं। (मा० ७।३।४) जैसेहु–दे० 'जैसेउ'। उ० तुलसी जो रामहिं भनै, जैसेहु कैसेहु होइ। (वै० ३६) मु० जैसेहु कैसेहु–जिस किसी भी तरह से। जैसे भी। उ० दे० 'जैसेहु'।

जैसो–जैसा, जिस तरह का। उ० प्रेम लगि कृष्ण किए आपने तिनहुँ को, सुजस ससार हरि हर को जैसो। (वि० १०६) मु० जैसो-तैसो–भला बुरा, जैसे भी या जैसा भी। उ० स्वामी समरथ ऐसो हौं तिहारो जैसो तैसो। (वि० २५३)

जों (१)–(सं० यदि, हि० ज्यों)–१ जैसे, जिस प्रकार, २ यदि जो, ३ जिससे कि।

जों (२) (सं० यः)–१ जिस, २ जिसको, ३ जिसमें।

जोंक–(सं० जलौका)–पानी में रहनेवाला एक प्रसिद्ध कीड़ा जो चिपककर खून चूसता है। इसमें हड्डी नहीं होती। जलूका। उ० चलइ जोंक जल बक्रगति जद्यपि सलिलु समान। (मा० २।४२)

जो (१)-(सं० यदि)–अगर, यदि। उ० जो तोसो होतो फिरो मेरो हेतु हिया रे। (वि० ३३)

जो (२)–(सं० य')–१ जो कुछ, जौन, २ जो व्यक्ति, ३ जिस, ४ जिसमे। उ० १ मोपर कीबे तोहि जो करि लेहि भिया रे। (वि० ३३)

जोइ (१)–(सं० जाया)–जोरू, स्त्री, पत्नी।

जोइ (२)–(सं० द्युपश, हि० जोवना)–१ देखकर, ताक कर, २ देख, देखो। उ० २ आगे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपञ्च जिय जोइ। (दो० २४७) जोइये–(सं० द्युपश)–देखिए, भली भाँति समझिए। उ० आने ब्राह्मन जोइये, बिनु जाने को जान? (दो० ६८) जोइहि–१ देखेगी, २ प्रतीक्षा करेगी। उ० १ जननी जिअत बदन बिधु जोइहि। (मा० २।६८।४) जोई (१)–१ देखा, निहारा, २ खोजा, ढूँढ़ा। उ० १ भरी मोध-जल जाइ न जोई। (मा० २।३४।१) जोऊ (१)–१ देखो, २ खोजो, ३ देखनेवाले। जोए–१ देखे, २ देखने पर, देखकर। उ० १ खग मृग हय गय जाहिं न जोए। (मा० २।१४८।४)

जोइ (३) (सं० यदि)–ज्या, जैसे।

जोइ (४)–(सं० य )–१ जो भी, जो कुछ भी, २ जिसन, जो, जिस। उ० २ तुलसिदास यहि जीव मोह-रजु जोइ बाँध्यो सोइ छोरै। (वि० १०२)

जोई (२)–(सं० यः)–१ जो, जो भी, २ वही।

जोउ (१)–दे० 'जोऊ (२)'। उ० १ एकु छत्रु एकु मुकुट मनि सब बरननि पर जोउ। (मा० १।२०)

जोउ (२)–दे० 'जोऊ (१)'।

जोऊ (२)–(सं० य')–जो, जो भी। उ० भनिति विचित्र सुकविकृत जोऊ। (मा० १।१०।२)

जोख–(सं० जुप)–तौल, जोखने या तौलने का भाव। उ० तुलसी प्रेमपयोधि की ताते नाप न जोख। (दो० २८१)

जोखे–जोखा, तौला, जाचा। उ० बल इनको पिनाक नीके नापे जोखे हैं। (गी० १।८३)

जोग (१)–(सं० योग)–१ योग, सयोग, अवसर, २ चित्तकी वृत्तियों को चचल होने से रोकना और उसे एक ही वस्तु (ईश्वर) पर स्थिर करना। पतजलि के अनुसार योग के ८ अग हैं। दे० 'योग'। ३ मिलन, सयोग, ४ तप, तपस्या, ५ धन कमाना, ६ उपाय, युक्ति, ७ प्राप्त धन, शक्ति या अधिकार। ८ फलित ज्योतिष में कुछ विशिष्ट काल या अवसर। उ० २ सदगुर ग्यान बिराग जोग के। (मा० १।३२।२) ७ जोग भोग महँ राखेउ गोई। (मा० १।१७।१) ७ जाम जोग जगछेम बिनु तुलसी के हित राखि। (दो० ४०२) ८ मास पाख तिथि जोग सुभ, नखत लगन ग्रह बार। (प्र० ७। १।६) जोगछेम–(सं० योगक्षेम)–१ जो वस्तु अपने पास न हो उसे प्राप्त करना और जो हो उसकी रक्षा करना। २ कुशल-मगल, खैरियत। उ० १ मिथ्र निज भेद की सप्रेम जोग छेम-मई, मुदित असीस विप्र बिदुषनि दई है। (गी० १।८४) जोगपति–(सं० योगपति) योग के स्वामी। शिव। उ० सर्प-बग भगना, भाम जोगीस, जोग पति। (क० ७।१२१) जोगविद–(सं० योगविद्) योग के ज्ञाता, योग को जाननेवाला। उ० ज सुर, सिद्ध, मुनीस, जोगविद' बदपुरान बखाने। (वि० २३६)

जोग (२)-(स० योग्य)-लायक, योग्य, उचित। उ० जथा जोग जेहि भाग बनाई। (मा० १।१८१।४)
जोगवइ-(स० योग)-देख-भाल करते हैं, रखवाली करते हैं। उ० जीवनतरु जिमि जोगवइ राऊ। (मा० २।२०।१) जोगवत-१ रखवाली करता, रखवाली करते हुए, २ रखवाली करता है, ३ संचित करता है ४ आदर करता है, ५ जाने देता है, दर गुज़र करता है, ६ पूरा करता है, ७ देखता रहता है। उ० १ जिमि मूरि जिमि जोगवत रहउँ। (मा० २।२६।३) ७ मन जोगवत रह नृपु रनिवासू। (मा० १।३२२।४) जोगवति-आज्ञा की प्रतीक्षा किया करती, रुख देखती। उ० सिद्ध सची सारद पूजहिं, मन जोगवति रहति रमा सी। (वि० २२) जोगवहिं-सार-सँभार करत हैं, देख-रेख करते हैं। उ० जोगवहिं जिन्हहि प्रान की नाईं। (मा० २।६१।३) जोगवै-रक्षा करते हैं। उ० नयन निमेषनि ज्यों जोगवैं नित रिपु परि जन सहतारी। (गी० १।१७)
जोगि-दे० 'जोगिनि'। उ० ३ बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै। (मा० १।६३।छं० १)
जोगिनि-(स० योगिनी)-१ जोगी की स्त्री, २ विरक्त स्त्री, साधुनी ३ पिशाचिनी शिव के गणों की स्त्रियाँ, ४ एक प्रकार की रण देवी। उ० ३ सँग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि बिकट मुख रजनीचरा। (मा० १।६५।छं०१)
जोगी (१)-(स० योगी)-१ जो यौगिक क्रियाएँ करता हो, योगी, २ एक प्रकार के भिक्षुक जो सारंगी लेकर गाते-बजाते और भीख माँगते हैं। इनके कपड़े गेरुए रंग के होते हैं। ३ शिव, महादेव। उ० २ नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। (मा० १।२२।१)
जोगी (२)-(स० योग्य)-कुशल, योग्य, लायक। उ० बिनु बानी बकता बड़ जोगी। (मा० १।११८।३)
जोगीस-(स० योगीश)-१ योगीश्वर, शिव, महादेव, २ महान योगी। उ० १ अर्ध अंग अंगना, नाम जोगीस जोग पति। (क० ७।१२१) जोगीसनि-योगीश्वरों को, महान योगियों को। उ०ईसनि, दिगीसनि, जोगीसनि, मुनीसनि हूँ। (वि० २४६)
जोगु (१)-दे० 'जोग (१)'।
जोगु (२)-दे० 'जोग (२)'। उ० जोगु जानकिहि यह बर अहई। (मा० १।२२२।१)
जोगू (१)-दे० 'जोग (१)'।
जोगू (२)-दे० 'जोग (२)'। उ०जौं न मिलिहि बरु गिरि जहि जोगू। (मा० १।७१।३)
जोजन-(स० योजन)-दूरी की एक नाप जो कुछ लोगों के मत से दो कोस, कुछ के मत से चार कोस और कुछ लोगा के मत से आठ कोस की होती है। उ० ब्यापिहि तहँ न अबिद्या जोजन एक प्रजंत। (मा० ७।११३ ख)
जोट-दे० 'जोटा'।
जोटा-(स०योटक)-१ जोड़ा, युग, २ बराबरी के, बराबर। उ० १ धाम मरालन्हि के बहु जोटा। (मा० १।२२१।८)
जोडा-(स० योटक)-दे० 'जोटा'।
जोत-दे० 'जाति'।
जाति-(स० ज्योति)-१ प्रकाश, ज्योति, किरण, २ दीपक की लौ, ३ सूर्य। उ० १ अरुनोदयँ सकुचे कुमुद उड़गन जोति मलीन। (मा० १।२३८)
जोतिलिंग-(ज्योतिर्लिंग)-महादेव, शिव। शिव पुराण में लिखा है कि जब विष्णु की नाभि से ब्रह्मा उत्पन्न हुए तब वे घबराकर कमलनाभ पर इधर उधर घूमने लगे। विष्णु ने उन्हें बतलाया कि तुम सृष्टि बनाने के लिए उत्पन्न किए गए हो। इसे पर ब्रह्मा बिगड़े और दोनों में युद्ध हुआ। झगड़ा निपटाने के लिए शिव का ज्योति लिंग रूप उत्पन्न हुआ। ब्रह्मा और विष्णु उसके चारो ओर घूमते रहे पर उसके अंत का पता न चला।
जोतिलिंग--दे० 'जोतिर्लिंग'। उ० जोतिलिंग कथा सुनि जाको अंत पाए बिनु। (गी० १।८४)
जोतिष-दे० 'ज्योतिष'।
जोती (१)-दे० 'जोति'। उ० १ श्रीगुर पद नख मनि गन जोती। (मा० १।१।३)
जोती (२)-(?)-जोती हुई ज़मीन।
जोती (३)-(?)-घोड़े की रास, लगाम।
जोते-भूमि पर हलच लाए, खोदकर बोने के लिए भूमि तैयार किए। उ० जोते बिनु, बए बिनु, निफन निराए बिनु। (गी० २।३२) जोतो-१ जोता हुआ, २ जोते, हल चलाए। उ० २ तेरे राज राय दसरथ के लयो बयो बिनु जोतो। (वि० १६१)
जोधा-(स० योद्धृ)-वह जो युद्ध करता हो, लड़ाका, वीर। उ० कहु जग मोहि समान को जोधा। (३।२६।१)
जोनि-(स० योनि)-१ आकर, खानि, उत्पत्तिस्थान, २ स्त्रियों की जननेंद्रिय, भग, ३ प्राणियों के विभाग या जातियाँ जो पुराणों के अनुसार कुल ८४ लाख हैं। इनमें ४ लाख मनुष्य, ३० लाख पशु, १० लाख पक्षी, ११ लाख कृमि, २० लाख स्थावर और ९ लाख जलजंतु हैं। ४ कारण, ५ उत्पन्न। उ० ३ जहँ जेहि जोनि करम बस भ्रमहीं। (मा० २।२४।३)
जोनी-दे० 'जोनि'। उ० ५ गोपद जल बूड़हिं घटजोनी। (मा० २।२३२।१)
जोपै-दे० 'जौपै'।
जौपै-(स० य + परम्)-यदि, अगर, यदि जो। उ० जौपै अलि अंत इहै करिबे हो। (कृ० ३६)
जोबन-(स० यौवन)-जवानी, युवावस्था, यौवन। उ० जोबन ज्वर केहि नहिं बलकावा। (मा० ७।७१।१)
जोबनु-दे० 'जोबन'। उ० १ उनरत जोबनु देखि नृपति मन भावइ हो। (रा० ५)
जोय-(स० जाया)-स्त्री, जोरू, पत्नी। उ० तुलसी बिना उपासना बिनु दुलहे की जोय। (स० ३६)
जोर (१)-(फा० ज़ोर)-१ बल, शक्ति २ प्रबलता, तेज़ी, ३ बश, अधिकार, ४ आवेश, बेग, झोंक ५ भरोसा, आसरा, सहारा, ६ परिश्रम, मेहनत, ७ कसरत, व्यायाम, ८ तेज़, ऊँचा, ९ ज़ुल्म, ज़बरदस्ती, १० ज़ोरों से। उ० ८ कुलिस कठोर तनु जोर परै रोर रन। (क० १०)
जोर (२)-(स० योटक) जोड़, बराबरी, समानता। उ० तीनि लोक तिहुँ काल न देखत सुहद रावरे जोर को हौं। (वि० २२६)

जेहिं-(स० यस्)-१ जिनको, २ जिन्होंने, ३ जिनके, ४ जिनसे, ५ जिनके कारण, ६ जिनमें, ७ जिन, ८ जिन्हें। उ० २ पारथतिहि निरमयउ जेहिं सोइ करिहि कल्यान। (मा० १।७१) जेहि-(स० यस्)-१ जिसको, २ जिसने, ३ जिसके, ४ जिससे, ५ जिसके कारण, ६ जिसमें, ७ जिस, ८ जिसे। उ० १ लहत परमपद पय पावन जेहि, चहत प्रपंच उदासी। (वि० २२) जेहि तेहि-१ जिसको तिसको, २ जिस किसी, जिस किसी भी। उ० २ राखु राम कहुँ जेहि तेहि भाँती। (मा० २।३७।४)

जेहीं-दे० 'जेहिं'। उ० २ बिरचत हंस काग किय जेहीं। (मा० १।१७।२।१)

जेही-दे० 'जेहि'। उ० ८ राम सुकृपाँ बिलोकहिं जेही। (मा० १।२१।३)

जै (१)-(स० जय)-१ जीत, विजय, २ किसी की जय जताने या जय की शुभ कामना करने का शब्द। जय-जय। ३ देवताओं या बड़ों के लिए स्तुतिसूचक शब्द। उ० २ बारहिं बार सुमन बरषत, हिय हरषत कहि जै जै जई। (गी० ५।३७)

जै (२)-(स० य)-जितने, जिस संख्या में।

जैति-(स० जयति)-१ विजय, जीत, २ विजयी, जय प्राप्त।

जैसा-(स० यादृश, प्रा० जारिस, पैशाची प्रा० जइस्सो)-जिस प्रकार का, जिस तरह का जैसे। उ निगुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा। (मा० ४।१२।१) जैसी-जिस प्रकार की। 'जैसा' का स्त्रीलिंग। उ० मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। (मा० १।११।१) जैसें-दे० 'जैसे'। उ० साधु बनिक मनि गुन गन जैसें। (मा० १।३।६) जैसे-जिस प्रकार से, जिस ढंग से। उ० जैसे हो तैसे सुखदायक भजनायक बलिहारी। (कृ० ६) मु० जैसे तैसे-किसी भी तरह, जिस किसी प्रकार। जैसेउ-जिस प्रकार से भी। जैसेहिं-जैसे भी। उ० जे जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं। (मा० ७।३।४) जैसेहु-दे० 'जैसेउ'। उ० तुलसी जो रामहिं भजै, जैसेहु कैसेहु होइ। (वै० ३६) मु० जैसेहु कैसेहु-जिस किसी भी तरह से। जैसे भी। उ० दे० 'जैसहु'।

जैसो-जैसा, जिस तरह का। उ० प्रेम लखि कृष्ण किए आपने तिनहूँ को, सुजस ससार हरि हर को जैसो। (वि० १०६) मु० जैसो-तैसो-भला बुरा, जैसे भी या जैसा भी। उ० स्वामी समरथ ऐसो हौं तिहारो जैसो तैसो। (वि० २५३)

जों (१)-(स० यदि, हि० ज्यों)-१ जैसे, जिस प्रकार, २ यदि जो, ३ जिससे कि।

जों (२) (स० य)-१ जिस, २ जिसको, ३ जिसमें।

जोंक-(स० जलौका)-पानी में रहनेवाला एक प्रसिद्ध कीड़ा जो चिपककर खून चूसता है। इसमें हड्डी नहीं होती। जलूका। उ० चलइ जोंक जल बक्रगति जद्यपि सलिलु समान। (मा० २।४२)

जो (१)-(स० यदि)-अगर, यदि। उ० जो तोसों होतो फिरौं मेरो हतु हिया रे। (वि० ३३)

जो (२)-(स० य)-१ जो कुछ, जौन, २ जो व्यक्ति, ३ जिस, ४ जिससे। उ० १ मोपर कीबे तोहि जो करि लेहि भिया रे। (वि० ३३)

जोइ (१)-(स० जाया)-जोरू, स्त्री, पत्नी।

जोइ (२)-(स० जुषण, हि० जोपना)-१ देखकर, ताक कर, २ देख, देखो। उ० २ आगे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपञ्च जिय जोइ। (दो० २४७) जोइये-(स० जुषण)-देखिए, भली भाँति समझिए। उ० जाने जानन जोइये, बिनु जाने को जान? (दो० ४८) जोइहिं-१ देखेगी, २ प्रतीक्षा करेगी। उ० १ जननी जिअत बदन बिधु जोइहि। (मा० २।९८।४) जोइ (१)-१ देखा, निहारा, २ खोजा, ढूँढ़ा। उ० १ भरी क्रोध जल जाइ न जोई। (मा० २।३४।१) जोऊ (१)-१ देखो, २ खोजो, ३ देखनेवाले। जोए-१ देखे, २ देखने पर, देखकर। उ० १ खग मृग हय गय जाहिं न जोए। (मा० २।१४८।४)

जोइ (३) (स० यदि)-ज्या, जैसे।

जोइ (४)-(स० य)-१ जो भी, जो कुछ भी, २ जिसने, जो, जिस। उ० २ तुलसिदास यहि जीव मोह-रजु जोइ बाँध्यो सोइ छोरै। (वि० १०२)

जोइ (२)-(स० यः)-१ जो, जो भी, २ वही।

जोउ (१)-दे० 'जोऊ (२)'। उ० १ एकु छत्रु एकु मुकुट मनि सब बरननि पर जोउ। (मा० १।२०)

जोउ (२)-दे० 'जोऊ (१)'।

जोऊ (२)-(स० य)-जो, जो भी। उ० भनिति बिचित्र सुकबिकृत जोऊ। (मा० १।१०।२)

जोख-(स० जुष)-तौल, जोखने या तौलने का भाव। उ० तुलसी प्रेमपयोधि की ताते माप न जोख। (दो० २८१)

जोखे-जोखा, तौला, जाँचा। उ० यह इनको पिनाक नीके नापे जोखे हैं। (गी० १।६३)

जोग (१)-(स० योग)-१ योग, संयोग, अवसर, २ चित्तकी वृत्तियों को चंचल होने से रोकना और उसे एक ही वस्तु (ईश्वर) पर स्थिर करना। पतञ्जलि के अनुसार योग के ८ अंग हैं। दे० 'योग'। ३ मिलन, संयोग, ४ तप, तपस्या, ५ धन कमाना, ६ उपाय, युक्ति, ७ प्राप्त धन, शक्ति या अधिकार। ८ फलित ज्योतिष में कुछ विशिष्ट काल या अवसर। उ० २ सदगुर ग्यान बिराग जोग के। (मा० १।३२।२) ४ आग भोग महँ राखेउ गोई। (मा० १।१०।१) ७ जाय जोग जगछेम बिनु तुलसी के हित राखि। (दो० ४७२) ८ मास पाख तिथि जोग सुभ, नखत लगन ग्रह बार। (प्र० ४। १।६) जोगछेम-(सं० योगक्षेम)-१ जो वस्तु अपने पास न हो उसे प्राप्त करना और जो हो उसकी रक्षा करना। २ कुशल-मंगल, खैरियत। उ० २ निज निज मद की सप्रेम जोग छेम मइ, मुदित असीस बिप्र बिदुषनि दइ है। (गी० १।६४) जोगपति-(स० योगपति) योग के स्वामी। शिव। उ० अध-अंग अगजा, नाम जोगीस, जोग पति। (क० ७।१५१) जोगबिद-(स० योगविद्) योग के ज्ञाता, योग का जाननेवाला। उ० जे सुर, सिद्ध, मुनीस, जोगबिद बदपुरान बखाने। (वि० २३६)

जोग (२)-(सं० योग्य)-लायक, योग्य, उचित। उ० जथा जोग जेहि भाग बनाई। (मा० १।१८६।४)

जोगवइ-(सं० योग)-देख-भाल करते हैं, रखवाली करते हैं। उ० जीवनतरु जिमि जोगवइ राऊ। (मा० २।२०१।१) जोगवत-१ रखवाली करता, रखवाली करते हुए, २ रखवाली करता है, ३ सचित करता है ४ आदर करता है, ५ जाने देता है, दर गुज़र करता है, ६ पूरा करता है, ७ देखता रहता है। उ० १ जिवनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ। (मा० २।५६।३) ७ मन जोगवत रह नृपु रनियासू। (मा० १।३५२।४) जोगवति-आज्ञा की प्रतीक्षा किया करती, रुख देखती। उ० सिद्ध सची सारद पूजहिं, मन जोगवति रहति रमा सी। (वि० २२) जोगवहिं-सार-सँभार करते हैं, देख-रेख करते हैं। उ० जोगवहिं जिन्हहि प्रान की नाईं। (मा० २।६१।३) जोगवै-रक्षा करते हैं। उ० नयन निमेषनि ज्यों जोगवैं नित रिपु परि जन महतारी। (गी० १।६७)

जोगि-दे० 'जोगिनि'। उ० ३ बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै। (मा० १।६३।छं० १)

जोगिनि-(सं० योगिनी)-१ जोगी की स्त्री, २ विरक्त स्त्री, साधुनी, ३ पिशाचिनी, शिव के गणों की स्त्रियाँ, ४ एक प्रकार की रण देवी। उ० ३ सँग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि बिकट मुख रजनीचरा। (मा० १।६५।छं०१)

जोगी (१)-(सं० योगी)-१ जो यौगिक क्रियाएँ करता हो, योगी, २ एक प्रकार के भिक्षुक जो सारंगी लेकर गाते-बजाते और भीख माँगते हैं। इनके कपड़े गेरुए रंग के होते हैं। ३ शिव, महादेव। उ० २ नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। (मा० १।२२।१)

जोगी (२)-(सं० योग्य)-कुशल, योग्य लायक। उ० बिनु बानी बकता बड़ जोगी। (मा० १।११८।३)

जोगीस-(सं० योगीश)-१ योगीश्वर, शिव, महादेव, २ महान योगी। उ० १ अर्ध अंग अंगना, नाम जोगीस जोग पति। (क० ७।१५१) जोगीसनि-योगीश्वरों को, महान योगियों को। उ० ईसनि, दिगीसनि, जोगीसनि, मुनीसनि हूँ। (वि० २४६)

जोगु (१)-दे० 'जोग (१)'।

जोगु (२)-दे० 'जोग (२)'। उ० जोगु जानकिहि यह बरु अहई। (मा० १।२२२।१)

जोगू (१)-दे० 'जोग (१)'।

जोगू (२)-दे० 'जोग (२)'। उ० जौं न मिलिहि बरु गिरि जहि जोगू। (मा० १।७१।२)

जोजन-(सं० योजन)-दूरी की एक नाप जो कुछ लोगों के मत से दो कोस, कुछ के मत से चार कोस और कुछ लोगों के मत से आठ कोस की होती है। उ० ब्यापिहि तहँ न अबिद्या जोजन एक प्रजंत। (मा० ७।११३ ख)

जोट-दे० 'जोटा'।

जोटा-(सं० योटक)-१ जोड़ा, युग, २ बराबरी के, बराबर। उ० १ बाल मरालन्हि के कल जोटा। (मा० १।२२१।२)

जोटा-(सं० योटक)-दे० 'जोटा'।

जोत-दे० 'जोति'।

जोति-(सं० ज्योति)-१ प्रकाश, ख्याति, किरण, २ दीपक की लौ, ३ सूर्य। उ० १ अरुनोदयँ सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन। (मा० १।२३८)

जोतिर्लिंग-(योतिर्लिंग)-महादेव, शिव। शिव पुराण में लिखा है कि जब विष्णु की नाभि से ब्रह्मा उत्पन्न हुए, तब वे घबराकर कमलनाभ पर इधर उधर घूमने लगे। विष्णु ने उन्हें बतलाया कि तुम सृष्टि बनाने के लिए उत्पन्न किए गए हो। इसे पर ब्रह्मा बिगड़े और दोनों में युद्ध हुआ। झगड़ा निपटाने के लिए शिव का ज्योति लिंग रूप उत्पन्न हुआ। ब्रह्मा और विष्णु उसके चारो ओर घूमते रहे पर उसके अंत का पता न चला।

जोतिलिंग--दे० 'जोतिर्लिंग'। उ० जोतिलिंग कथा सुनि जाको अंत पाए बिनु। (गी० १।८४)

जोतिष-दे० 'ज्योतिष'।

जोती (१)-दे० 'जोति'। उ० १ श्रीगुर पद नख मनि गन जोती। (मा० १।१।३)

जोती (२)-(?)-जोती हुई ज़मीन।

जोती (३)-(?)-घोड़े की रास, लगाम।

जोते-भूमि पर हलच लाए, खोदकर बोने के लिए भूमि तैयार किए। उ० जोते बिनु, बए बिनु, निफन निराए बिनु। (गी० २।३२) जोतो-१ जोता हुआ, २ जोते, हल चलाए। उ० २ तेरे राज राय दसरथ के लयो बयो बिनु जोतो। (वि० १६१)

जोधा-(सं० योद्धृ)-वह जो युद्ध करता हो, लड़ाका, वीर। उ० कहु जग मोहि समान को जोधा। (३।२६।१)

जोनि-(सं० योनि)-१ आकर, खानि, उत्पत्तिस्थान, २ स्त्रियों की जननेंद्रिय, भग, ३ प्राणियों के विभाग या जातियाँ जो पुराणों के अनुसार कुल ८४ लाख हैं। इनमें ४ लाख मनुष्य, ३० लाख पशु, १० लाख पक्षी, ११ लाख कृमि, २० लाख स्थावर और ६ लाख जलजतु हैं। ४ कारण, ५ उत्पत्ति। उ० ३ जेहिं जेहिं जोनि करम बस भ्रमहीं। (मा० २।२४।३)

जोनी-दे० 'जोनि'। उ० ५ गोपद जल बूड़हिं घटजोनी। (मा० २।२३२।१)

जोपि-दे० 'जोपै'।

जोपै-(सं० य + परम्)-यदि, अगर, यदि जो। उ० जोपै अलि अंत इहै करिबे हो। (कृ० ३६)

जोबन-(सं० यौवन)-जवानी, युवावस्था, यौवन। उ० जोबन ज्वर केहि नहिं बलकावा। (मा० ७।७१।१)

जोबनु-दे० 'जोबन'। उ० १ उनरत जोबनु देखि नृपति मन भावइ हो। (रा० ५)

जोय-(सं० जाया)-स्त्री, जोरू, पत्नी। उ० तुलसी बिना उपासना बिनु दुलहे की जोय। (म० ३६)

जोर (१)-(फा० ज़ोर)-१ बल, शक्ति २ प्रबलता, तेज़ी, ३ वश, अधिकार, ४ आवेश, वेग, झोंक, ५ भरोसा, आसरा, सहारा, ६ परिश्रम, मेहनत, ७ कसरत, व्यायाम, ८ तेज़, ऊँचा, ९ ज़ुल्म, ज़बरदस्ती, १० ज़ोरों से। उ० ८ कुलिस कठोर तनु, जोर परै रोर रन। (ह० १०)

जोर (२)-(सं० योटक) जोड़, बराबरी, समानता। उ० तीनि लोक तिहूँ काल न देखत सुहृद रावरे जोर को हौं। (वि० २२१)

गर्वघ्न गूढ़ार्थवित गुप्त गोतीत गुरु ज्ञान ज्ञाता। (वि० ५४)

ज्ञाति–(सं०)–१ एक ही गोत्र या वंश के मनुष्य, बिरादरी, भाई-बंधु, २ वर्ण, कौम।

ज्ञान–(सं०)–१ ज्ञात होने का भाव, बोध, जानकारी, प्रतीति, २ आत्मज्ञान, तत्त्वज्ञान, विवेक चैतन्यता, ३ पहचान। उ० २ लियो रूप दै ज्ञान गाठरी भलो ठग्यो ठगु थोही। (कृ० ४१) ३ ज्ञान अनभले को सबहि, भले भले हू काउ। (दो० ३४५) ज्ञानदा–(सं०)–ज्ञान देनेवाली, सरस्वती। ज्ञानप्रद–(सं०)–ज्ञानदाता। ज्ञानप्रदे–हे ज्ञान देनेवाली। उ० स्वर्ग सोपान, विज्ञान ज्ञानप्रदे! (वि० १८) ज्ञानव्रत–ज्ञान ही जिसका व्रत हो, ज्ञान की खोज में व्यस्त। उ० जयति काल-गुन-कर्म-माया मथन निश्चल ज्ञानव्रत, सत्यरत धर्मचारी। (वि० २६) ज्ञानहूँ–ज्ञान भी, तत्त्व ज्ञान भी। उ० ज्ञानहूँ गिरा के स्वामी बाहर भीतर-जामी। (वि० २६३) ज्ञानातीत–(सं०)–ज्ञान से परे, जहाँ तक ज्ञान न पहुँच सके। ब्रह्म।

ज्ञानरत–ज्ञानी, ज्ञानवान। उ० ज्ञानरत अपि सोइ नर पसु बिनु पूँछ बिखान। (दो० १३८)

ज्ञानवान–(सं०)–ज्ञानी, जिसे ज्ञान प्राप्त हो।

ज्ञानवाला–ज्ञानी, ज्ञानवाला।

ज्ञानी–(सं० ज्ञानिन्)–ज्ञानवान, जिसे ज्ञान हो। उ० त्रिवली उदर गँभीर नाभि सर जहँ उपजे बिरंचि ज्ञानी। (वि० ६३)

ज्ञापक–(सं०)–जनानेवाला, ज्ञान करानेवाला, सूचक।

ज्ञेय–(सं०)–१ जानने योग्य, २ जिसका जानना संभव हो। उ० १ ज्ञेय ज्ञानप्रिय प्रचुर गरिमागार घोर-संसार परपार-दाता। (वि० ५४)

ज्याइए–जीवित रखिए। उ० ज्याइए तौ जानकी-रमन जन जानि जिय। (क० ७।१६७) ज्याए–दे० 'ज्याये'। उ० १ सुक सारिका जानकी ज्याए। (मा० १।३३८।१) ज्यायवे–जिलाने, जीवित करने। उ० मीच मारिबे को, ज्यायबे को सुधापान भो। (ह० ११) ज्याये–जिलाए थे, पाल रक्खे थे, २ जिलाने से, पालने से, ३ पाल पोसकर बड़ा किया। ज्यायो–जिलाया, रक्षा की। उ० को को न ज्यायो जगत में जीवन दायक दानि। (दो० २६१)

ज्यों–(सं० य + इव)–१ जिस प्रकार, जिस तरह, २ जैसे, तरह, ३ जिससे। उ० १ रहे नर नारि ज्यों चितेरे चित्र सार हैं। (क० २।१४) ज्यों त्यों–जैसे तैसे, जिस किसी भी प्रकार से। उ० ज्यों त्यों मन-मंदिर बसहिं राम धरे धनु बान। (दो० ६०) ज्योंहीं–१ जैसे ही, २ जैसे भी। उ० १ पूछ्यो ज्योंहीं, कह्यो मैं हूँ चेरो ह्वै हौं रावरो जू। (वि० ७६)

ज्योति–(सं० ज्योतिस्)–१ प्रकाश, उजाला, २ आग की लपट, लौ, ३ सूर्य, ४ नक्षत्र, ५ आँख का मध्यबिंदु, ६ दृष्टि, ७ ज्ञान, ८ विष्णु, ९ परमात्मा। उ १ सुभग अँगुष्ठ अंगुली अविरल, कछुक अरुन नख-ज्योति जगमगति। (गी० ७।१७)

ज्योतिष–(सं०)–वह शास्त्र या विद्या जिससे आकाश में स्थित ग्रहों तथा नक्षत्रों आदि की दूरी गति तथा परिमाण आदि का निश्चय किया जाता है। ज्योतिष के गणित और फलित दो भेद होते हैं।

ज्योतिषु–दे० 'ज्योतिष'। उ० ज्योतिषु झूठ हमारें भाएँ। (मा० २।११२।३)

ज्वर–(सं०)–१ बुखार, जर, एक रोग जिसमें शरीर गर्म रहता है। २ गर्मी, उष्णता, जलन। उ० २ जोबन ज्वर केहि नहिं बलकावा। (मा० ७।७१।१)

ज्वाल–(सं०)–लपट, अग्निशिखा, आँच। उ० बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल मानौं। (क० ५।५)

ज्वाला–(सं०)–१ लपट, लौ, ज्वाल, अग्नि, २ गर्मी, जलन, ३ तक्षक की पुत्री ज्वाला जिससे ऋक्ष ने विवाह किया था। उ० १ रवि-रुख लखि दरपन फटिक उगिलत ज्वाला जाल। (दो० ३७५)

ज्वै–(सं० य')–१ जो कुछ, २ जिसे। उ० २ विनय विवेक विद्या सुभग सरीर ज्वै। (क० ७।१६३)

# झ

झँद–दे० 'झईं'।

झँगा–(?) छोटे बच्चों को पहिनने का ढीला कुरता। उ० नवनील कलेवर पीत झँगा झलकै, पुलकैं नृप गोद लिये। (क० १।२)

झँगुलिया–दे० 'झँगा'। उ० पीत पुनीत बिचित्र झँगुलिया सोहति स्याम सरीर सोहाए। (गी० १।२६)

झँगुली–झँगाओं का समूह, झँगुलियाँ। दे० 'झँगा'। उ० कुलही चित्र विचित्र झँगूली। (गी० १।२८)

झँगुली–दे० 'झँगा'। उ० उठि कह्यो भोर भयो झँगुली दै। (कृ० १२)

झंझट–(?) व्यर्थ का झगड़ा, बखेड़ा, प्रपंच।

झँडूला–(सं० जट)–गर्भ का घना बाल जो अभी काटा न गया हो, मुंडन संस्कार के पहले का। झँडूले–दे० 'झँडूला'। उ० उर बघनहा कंठ कठुला, झँडूले केस। (गी० १।३०)

झँपेउ–(?) छिप गया, ढँक गया।

झँहि–दे० 'झईं'।

झईं–(सं० क्षर, प्रा० मा० झर = गिरना) चक्कर, आँख के

घोरे अँधेरा। उ० सुरछित अवनि परी झहँ आई। (मा० २।१६८।१)
झकझोरा-(अनु०) १ झटका, धक्का, २ झकझोर दिया, धक्का दिया। उ० १ मद विलद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे। (वि० १८६)
झकोर-(अनु०) १ आँधी, अंधड़, तेज हवा, २ झटका, झोंका। उ० १ पवि, पाहन, दामिनि, गरज, झरि, झकोर खरि खीझि। (दो० २८४)
झख-दे० 'झष'। उ० सज्जन-चख झख निकेत, भूषन मनि गन समेत। (गी० ७।७)
झखकेतू-(स० झषकेतन) कामदेव। उ० प्रगटेउ विषम बान झषकेतू। (मा० १।८३।४)
झखराज-दे० 'झषराज'। उ० झखराज ग्रस्यो गजराज, कृपा ततकाल, बिलंब कियो न तहाँ। (क० ७।८)
झगर-(अनु० झकझक)-विवाद, लड़ाई, टंटा, बखेड़ा, कलह। उ० नीक सगुन, बिबरिहि झगर, होइहि धरम निआउ। (प्र० ६।६।२)
झगरत-१ झगड़ा करता है, २ झगड़ा करते हुए। उ० २ बग उलूक झगरत गये, अवध जहाँ रघुराउ। (प्र०६।६।२)
झगरो-दे० 'झगर'। उ० बहुमत सुनि बहुपथ पुराननि जहाँ-तहाँ झगरो सो। (वि० १७३)
झगराऊ-झगड़ालू, बात बात पर झगड़ा करनेवाला। उ० याहि कहा मैया मुँह लावति, गनति कि लँगरि झगराऊ। (कृ० १२)
झगुलिआ-दे० 'झँगा'। उ० पीत झगुलिआ तनु पहिराई। (मा० १।१९९।६)
झगुली-दे० 'झँगा'। उ० पीत झीनि झगुली तन सोही। (मा० ७।७७।४)
झट-(स० झटिति) शीघ्र, तुरत, उसी समय।
झटित-दे० 'झटिति'।
झटिति-(स०)-दे० 'झट'। उ० कटत झटिति पुनि नूतन भए। (मा० ६।९२।६)
झनकार (स० झंकार)-झन झन का शब्द, झंकार। उ० नूपुर धुनि, मजीर मनोहर, कर कंगन झनकार। (गी० १।२)
झपट-(स० झप) झपटने की क्रिया, खींचाखाँची, लूट खसोट। उ० झपट लपट भरे भवन भँडारही। (क० ५।२३)
झपटहिं-झपटते हैं, लपकते हैं, टूट पड़ते हैं। उ० झपटहिं करि बल बिपुल उपाई। (मा० ६।३४।६) झपटि-झपटकर, जल्दी से आगे बढ़कर। उ० इत उत झपटि दपटि कपि जोधा। (मा० ६।८२।३) झपटेउ-झपटा, झपटा हो टूट पड़ा हो। उ० जनु सचान बन झपटेउ लावा। (मा० २।२९।२)
झपेँ-दे० 'झहँ'।
झपेटे-झपटने पर, धावा करने पर, चपेटने पर। उ० लवा ज्यों लुकात तुलसी झपेटे बाज के। (क० ६।६)
झय-दे० 'झहँ'।
झर (१)-(स०)-१ झड़ी, २ आँच, ताप, लूका, ३ झरना।
झर (२)-(स० क्षरण) १ झरते हैं, बहते हैं, २ झड़कर, टूटकर। उ० १ मधुकर पिक बरहि मुखर, सुंदर गिरि निर्झर झर। (गी० २।४४) २ नख दतन सों भुजदंड विहंडत, मुंड सो मुंड परे झर के। (क० ६।३९)
झरकत-(स० झल्लिका)-झलकते हैं, चमकते हैं। उ० चारु पाटि पटी पुरटकी झरकत मरकत भौंर। (गी० ७।१९)
झरत-झड़ रहा है, गिर रहा है। उ० बोलत बचन झरत जनु फूला। (मा० १।२८०।२) झरहिं-झर रहे हैं, बह रहे हैं। उ० झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं। (मा० २।२३६।३) झरि-१ झर झर कर, झड़कर, गिरकर, २ पानी की झड़ी लगाकर, खूब पानी बरसकर। उ० २ पवि, पाहन, दामिनि, गरज, झरि झकोर खरि खीझि। (दो० २८४) झरैं-१ झरते हैं गिरते हैं, २ गिराते हैं, चूते हैं। उ० २ हेरैं न हुँकरि, भरैं फल न रसाल। (गी० ३।६)
झरना-(स० क्षरण)-सोता, चश्मा, पहाड़ में बहनेवाली पानी की पतली धारें। उ० झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं। (मा० २।२३६।४)
झरावति-(स० क्षरण)-झरवाती है, मंत्रोपचार करवाती है। उ० ताहि झरावति गौसिला, यह रीति प्रीति की हिय हुलसति तुलसी के। (गी० १।१२)
झरोखन्ह-[अनु० झरझर (=वायु बहने का शब्द)+ गौखा (स० गवाक्ष)] खिड़कियों से, झरोखों से। उ० लागि झरोखन्ह झाँकहिं भूपति भामिनि। (जा० ८०) झरोखन्हि-झरोखों से। दे० 'झरोखन्ह'। उ० जुवतीं भवन झरोखन्हि लागीं। (मा० १।२२०।२) झरोखा-खिड़की, गवाक्ष, वातायन। उ० हरी द्वार झरोखा नाना। (मा० ७।११८।६)
झरोखे-१ खिड़की, २ हृदय का झरोखा दिल की आँख। उ० २ काल्हि की बात बालि की सुधि करि समुझिहि ता हित खोलि झरोखे। (गी० ५।१२)
झलक-(स० झल्लिका)-१ चमक, प्रकाश, आभा, २ चमकती है। उ० १ मुकुता झालरि झलक जनु राम सुजस-सिसु हाथ। (दो० ११०)
झलकत-चमकता है, झलकता है। उ० झलका झलकत पायन्ह कैसें। (मा० २।२०४।१) झलकनि-झलकना, चमकना। उ० मदन, मोर के चंद की झलकनि निदरति तनु-जोति। (गी०१।१६) झलकि-झलककर, चमककर। उ० बाल केलि बात बस झलकि झलमलत। (गी० १।१०) झलकैं-१ चमकते हैं, झलकते हैं, २ फबते हैं, सुंदर लगते हैं। उ० १ तनदुति मोरचंद जिमि झलकैं। (गी० १।२८) २ नयनीत कलेवर पीत झँगा झलकैं, पुलकैं नृप गोद लिये। (क० १।२)
झलका-(स० ज्वल) छाला, फफोला। उ० झलका झलकत पायन्ह कैसें। (मा० २।२०४।१)
झलकाहीं-झलक रहे हैं, चमक रहे हैं। उ० भाल बिसाल तिलक झलकाहीं। (मा० १।२४३।३)
झलमलत-(अनु० झलमल)-झिलमिला रहे हैं, हिलते

हुए क्षीण प्रकाश कर रहे हैं। उ० बालकेलि बातबस झलकि झलमलत। (गी० १।१०)

झष-(सं०)-मछली, मत्स्य, मीन। उ० मकर नक्र नाना झष ब्याला। (मा० ६।४।३)

झषकेतु-(सं०झषकेतन) कामदेव। जिसके झंडे पर मछली हो।

झषकेतू-दे० 'झषकेतु'। उ० प्रगटेउ बिषम बान झषकेतू। (मा० १।८३।४)

झषनिकेत-(सं०)-१ जल, २ झील, ३ समुद्र।

झषराज-(सं०)-मगर, ग्राह, घड़ियाल।

झहराने-(अनु० झहराना) शिथिल होकर या लड़खड़ा कर गिरे। झहरावैं-हिलावें, हिलाते हैं, झकझोरते हैं। उ० बालधी फिरावै बार बार झहरावै, झरैं बुँदिया सी, लंक पघिलाइ पाग पागिहै। (क० ५।१४)

झाईं-(सं० छाया)-१ परछाईं, प्रतिबिंब, २ झलक, छाया, ३ अंधकार, ४ धोखा, छल, ५ प्रतिशब्द, प्रतिध्वनि, ६. रक्तविकार के कारण मुँह पर पड़े धब्बे। उ० १ ससि महुँ प्रगट भूमि कै झाँई। (मा० ६।१२।३)

झाँकनि-झाँकना, ओट में छिपकर या ऊपर से देखना। उ० झुकनि झाँकनि, छाह सों किलकनि नटनि, हठि लरनि। (गी० १।२५) झाँकहिं-(?)-नीचे देखती हैं, ओट में होकर देखती हैं। उ० लागि झरोखन्ह झाँकहिं भूपति भामिनि। (जा० ८०) झाँकी-झाँका, देखा, निहारा। उ० बिकल बिधि बधिर दिसि बिदिसि झाँकी। (क० ६।४४)

झाँखा-(सं० खिद्यते, प्रा० खिज्जइ, हि० खीजना का विपर्यय)-खीझे, क्रुद्ध और दुखी हुए। उ० एहि बिधि राउ मनहिं मन झाँखा। (मा० २।३०।१)

झाँझ-(सं० झल्लक) १ एक बाजा, मजीरा, झाल, २ क्रोध, चिड़चिड़ाहट। उ० १ घटा घटि पखाउज आउज झाँझ बेनु डफ तार। (गी० १।२)

झाँझि-दे० 'झाँझ'। उ० १ झाँझि मृदंग संख सहनाई। (मा० १।२६३।१)

झाँपेउ-(सं० उत्थापन, हि० ढाँपना)-ढँक लिया, छिपा लिया। उ० झाँपेउ भानु कहहिं कुबिचारी। (मा० १। ११७।१)

झार(१)-(सं० सर्व, प्रा० सारो, हि० सारा)-१ सब, कुल, बिल्कुल, २ समूह, झुंड।

झार (२)-(सं०ज्वाला)-१ आग की लौ, लपट, आँच, २ जलन, दाह, ३ चरपरापन, ४ तेज़ी।

झारहीं-(सं० ज्वाला)-झार में, ताप में, ज्वाला में। उ० तात तात! हौंसियत, झौंसियत झारहीं। (क० ५।१५)

झारि (१)-(सं० सर्व)-१ सब, २ समूह।

झारि (२)-(सं० क्षरण)-१ झाड़कर, २ बहता हुआ। उ० २ झरना झरत झारि सीतल पुनीत बारि। (क० ७।१४१) झारौं-झाड़ूँ, झाड़ूँ, साफ करूँ। उ० करौं बयारि बिलंबिय बिटपतर, झारौं हौं चरन-सरोरुह धूरि। (गी० २।१३)

झारी (१)-(सं० सर्व)-समूह, सब। उ० गए तहाँ जहँ सुर मुनि झारी। (मा० १।१८४।४)

झारी (२)-(सं० झाट)झाड़ी, छोटे-छोटे पेड़ों का समूह।

झारी (३)-(सं० क्षरण)-१ टोंटीदार लोटा, गडुआ, २ कमंडल, ३ सुराही।

झालरि-(सं० झल्लरी)-झालर, किसी चीज़ के किनारे शोभा के लिए टाँका हुआ, या बनाया गया हाशिया। उ० मुकुता झालरि झलक जनु राम सुजस सिसु हाथ। (दो० १९०)

झिंग-(अनु०)-नदियों के प्रवाह का शब्द। उ० बर बिधान करत गान, बारत धन मान प्रान, झरना झर झिंग झिंग झिंग जल तरंगिनी। (गी० २।४३)

झिल्लि (१)-दे० 'झिल्ली (१)'। उ० झिल्लि, झाँझ, झरना डफ, नव मृदंग निसान। (गी०२।४७)

झिल्लि (२)-दे० 'झिल्ली (२)'।

झिल्ली (१)-(सं०) झींगुर, एक छोटा कीड़ा।

झिल्ली (२)-(सं० चैल)-किसी चीज़ की बहुत पतली तह, चमड़े आदि की झिल्ली।

झीँगुलि-दे० 'झँगुली'।

झीनि-दे० 'झीनी'। उ० पीत झीनि झगुली तन सोही। (मा० ७।७७।४)

झीनी-(सं० क्षीण)-बारीक, पतली, महीन। उ० लसत झँगुली झीनी, दामिनि की छबि छीनी। (गी० १।४२)

झुँकरे-दे० 'झुकरे'।

झुँझुन-(ध्व०)-पैंजनी या घुँघरू का शब्द, झुनझुना। उ० झुँझुन झुँझुन पाँय पैंजनी मृदु मुखर। (गी० १।३०)

झुंडनि-(सं० यूथ)-झुंडों में। उ० गुन-रूप-जोबन सींव सुंदरि चलीं झुंडनि झारि। (गी० ७।१८)

झुकत-(सं० युज्, युक्, प्रा० जुक)-झुक जाते हैं। उ० दास तुलसी परत धरनि, धरकत झुकत, हाट सी उठति जंबुकनि लूट्यो। (क० ६।४६) झुकनि-झुकना, नीचे आना। उ० झुकनि झाँकनि, छाँह सों किलकनि, नटनि, हठि लरनि। (गी० १।२५) झुकि-झुककर, नीचे मुँहकर। उ० किलकत झुकि झाँकत प्रतिबिंबनि। (गी०।२८)

झुकी-(सं० युज्, युक्)-१ झुक गई, २ झुककर, ३ नाराज़ होकर, रुष्ट होकर, ४ नाराज़ हुई। उ० १ नाहिं आन्यो बियोग सो रोग है आगे झुकी तब हौं, तेहिं सों तरजी। (क० ७।१३३) झुके-१ काम की ओर झुक गए, प्रवृत्त हुए २ क्रुद्ध हुए। उ० १ तुलसी उत झुंड प्रचंड झुके, झपटैं भट जे सुरदावन के। (क० ६।३४)

झुकरे-(?)-झुँझलाए, खीझे। उ० रहा के झुंड झूमि झूमि झुकरे से नाचैं। (क० ६।३१)

झुट्टंग-(सं० जूट)-बड़े बालोंवाला, जटाधारी। उ० जोगिनी झुट्टंग झुंड झुंड बनी तापसी सी। (क० ६।५०)

झुठाई-(सं० अयुक्त, प्रा० अजुत्त, हि० झूठ)-असत्यता, झूठ। उ० आधि मगन मन, ब्याधि बिकल तन, बचन मलीन झुठाई। (वि० १६६)

झुलावहीं-झुलाता है, झूले पर झुलाती हैं। उ० पट उड़त भूषन खसत हँसि हँसि अपर सखी झुलावहीं। (गी० ७।१८) झुलावै-(सं० दोलन)-झुलाती हैं। उ० कबहुँ पालने घालि झुलावै। (मा० १।२००।४)

आगे अँधेरा। उ० मुरुछित अवनि परी झाईं आइ। (मा० २।१६४।१)
झकझोरा-(अनु०) १ झटका, धक्का, २ झकझोर दिया, धक्का दिया। उ० १ मद बिलद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे। (वि० १८६)
झकोर-(अनु०) १ आँधी, अधड़, तेज़ हवा, २ झटका, झोंका। उ० १ पवि, पाहन, दामिनि, गरज, झरि, झकोर खरि खीझि। (दो० २८४)
झख-दे० 'झष'। उ० सज्जन-चख झख निकेत, भूपन मनि गन समेत। (गी० ७।४)
झखकेतु-(सं० झषकेतन) कामदेव। उ० प्रगटेउ विषम बान झषकेतू। (मा० १।८३।४)
झखराज-दे० 'झषराज'। उ० मखराज ग्रस्यो गजराज, कृपा ततकाल, बिलय कियो न तहाँ। (क० ७।८)
झगर-(अनु० झकझक)-विवाद, लड़ाई, टंटा, बखेड़ा, कलह। उ० नीक सगुन, बिररिहि झगर, होइहि धरम निआउ। (प्र० ६।६।२)
झगरत-१ झगड़ा करता है, २ झगड़ा करते हुए। उ० २ बग उलूक झगरत गये, अवध जहाँ रघुराउ। (प्र०६।६।२)
झगरा-दे० 'झगर'। उ० बहुमत सुनि बहुपथ पुराननि जहाँ-तहाँ झगरो सो। (वि० १७३)
झगराऊ-झगड़ालू, बात बात पर झगड़ा करनेवाला। उ० याहि कहा मैया मुँह लावति, गनति कि लँगरि झगराऊ। (कृ० १२)
झगुलिआ-दे० 'झँगा'। उ० पीत झगुलिआ तनु पहिराइ। (मा० १।१९९।१)
झगुली-दे० 'झँगा'। उ० पीत झीनि झगुली तन सोही। (मा० ७।७७।४)
झट-(सं० झटिति) शीघ्र, तुरत, उसी समय।
झटित-दे० 'झटिति'।
झटिति-(सं०)-दे० 'झट'। उ० कटत झटिति पुनि नूतन भए। (मा० ६।९२।६)
झनकार (सं० झंकार)-झन झन का शब्द, झंकार। उ० नूपुर धुनि, मजीर मनोहर, कर कंगन-झनकार। (गी० १।२)
झपट-(सं० झप) झपटने की क्रिया, खींचाखाँची, लूट खसोट। उ० झपट लपट भरे भवन भँडारही। (क० ५।२३)
झपटहिं-झपटते हैं, लपकते हैं, टूट पड़ते हैं। उ० झपटहिं करि बल विपुल उपाई। (मा० ६।३४।६) झपटि-झपटकर जल्दी से आगे बढ़कर। उ० इत उत झपटि दपटि कपि जोधा। (मा० ६।८८।३) झपटेउ-झपटा, झपटा हो टूट पड़ा हो। उ० जनु सचान बन झपटेउ लावा। (मा० २।२६।३)
झयें-दे० 'झाईं'।
झपेटे-झपटने पर, धावा करने पर, चपेटने पर। उ० लवा ज्यों लुकात तुलसी झपेटे बाज के। (क० ६।१२)
झम-दे० 'झाईं'।
झर (१)-(सं०)-१ झड़ी, २ आँच, ताप, लपट, ३ झरना।
झर (२)-(सं० क्षरण) १ झरते हैं, बहते हैं, २ झड़कर, टूटकर। उ० १ मधुकर पिक बरहि मुखर, सुंदर गिरि निर्झर झर। (गी० २।४४) २ मत्त दसन सों मुअदड बिहदत, मुंड सो मुंड परे झर के। (क० ६।३२)
झरकत-(सं० झल्लिका)-झलकते हैं, चमकते हैं। उ० चारु पाटि पटी पुरटकी झरकत मरकत भौंर। (गी० ७।१९)
झरत-झड़ रहा है, गिर रहा है। उ० बोलत बचन झरत जनु फूला। (मा० १।२८०।२) झरहिं-झर रहे हैं, बह रहे हैं। उ० झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं। (मा० २।२३६।२) झरि-१ झर झर कर, झड़कर, गिरकर, २ पानी की झड़ी लगाकर, खूब पानी बरसकर। उ० २ पवि, पाहन, दामिनि, गरज, झरि झकोर खरि खीझि। (दो० २८४) झरें-१ झरते हैं, गिरते हैं, २. गिराते हैं, चूते हैं। उ० २ हेरें न हुँकरि, झरें फल न रसाल। (गी० ३।६)
झरना-(सं० क्षरण)-सोता, चश्मा, पहाड़ में बहनेवाली पानी की पतली धारें। उ० झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं। (मा० २।२३६।४)
झरावति-(सं० क्षरण)-झरवाती है, मंत्रोपचार करवाती है। उ० ताहि झरावति कौसिला, यह रीति प्रीति की हिय हुलसति तुलसी के। (गी० १।१२)
झरोखन्ह-[अनु० झरझर (=वायु बहने का शब्द)+ गौखा (सं० गवाक्ष)] खिड़कियों से, झरोखों से। उ० लागि झरोखन्ह झाँकहिं भूपति भामिनि। (जा० ८०) झरोखन्हि-झरोखों से। दे० 'झरोखन्ह'। उ० जुवतीं भवन झरोखन्हि लागीं। (मा० १।२२०।२) झरोखा-खिड़की, गवाक्ष, वातायन। उ० इहीं द्वार झरोखा नाना। (मा० ७।११८।६)
झरोखे-१ खिड़की, २ हृदय का झरोखा, दिल की ओर। उ० २ कालि की बात बालि की सुधि करि समुझिहि ता हित खोलि झरोखे। (गी० ५।१२)
झलक-(सं० झल्लिका)-१ चमक, प्रकाश, आभा, २ चमकती है। उ० १ मुकुता भालरि झलक जनु राम सुजस सिसु हाथ। (दो० १६०)
झलकत-चमकता है, झलकता है। उ० झलका झलकत पायन्ह कैसें। (मा० २।२०४।१) झलकनि-झलकना, चमकना। उ० मदन, मोर के चंद की झलकनि निदरति तनुजोति। (गी०१।११) झलकि-झलककर, चमककर। उ० बाल केलि बात बस झलकि झलमलत। (गी० १।१०) झलकें-१ चमकते हैं, झलकते हैं, २ फबते हैं, सुंदर लगते हैं। उ० १ तनदुति मोरचंद जिमि झलकें। (गी० १।०८) २ नवनील कलेवर पीत झँगा झलकें, पुलकें नृप गोद लिये। (क० १।२)
झलका-(सं० ज्वल) छाला, फफोला। उ० झलका झलकत पायन्ह कैसें। (मा० २।२०४।१)
झलकाहीं-झलक रहे हैं, चमक रहे हैं। उ० भाल बिसाल तिलक झलकाहीं। (मा० १।२४३।२)
झलमलत-(अनु० झलमल)-झिलमिला रहे हैं, दिखते

हुए पीएा प्रकाश कर रहे हैं। उ० बालकेलि वातवस झलकि झलमलत। (गी० १।१०)

झप-(सं०)-मछली, मत्स्य, मीन। उ० मकर नक्र नाना झप ब्याला। (मा० ६।४।३)

झषकेतु-(सं०झषकेतन) कामदेव। जिसके झंडे पर मछली हो।

झषकेतू-दे० 'झषकेतु'। उ० प्रगटेउ विषम बान झषकेतू। (मा० १।८३।४)

झषनिकेत-(सं०)-१ जल, २ झील, ३ समुद्र।

झषराज-(सं०)-मगर, ग्राह, घड़ियाल।

झहराने-(अनु० झहराना) शिथिल होकर या खड़खड़ा कर गिरे। झहरावैं-हिलावें, हिलाते हैं, झकझोरते हैं। उ० बालधी फिरावै बार बार झहरावै, झरैं बूँदिया सी, लंक पघिलाइ पाग पागिहै। (क० ५।१४)

झाँई-(सं० छाया)-१ परछाईं, प्रतिबिंब, २ झलक, छाया, ३ अंधकार, ४ धोखा, छल, ५ प्रतिशब्द, प्रतिध्वनि, ६. रक्तविकार के कारण मुँह पर पड़े धब्बे। उ० १ ससि महुँ प्रगट भूमि कै झाँई। (मा० ६।१२।३)

झाँकनि-झाँकना, ओट में छिपकर या ऊपर से देखना। उ० झुकनि झाँकनि, छाँह सों किलकनि नटनि, हठि लरनि। (गी० १।२५) झाँकहिं-(ीं)-नीचे देखती हैं, ओट में होकर देखती हैं। उ० लागि झरोखन्ह झाँकहिं भूपनि भामिनि। (जा० ८०) झाँकी-झाँका, देखा, निहारा। उ० विकल विधि बधिर दिसि विदिसि झाँकी। (क० ६।४४)

झाँखा-(सं० खिद्यते, प्रा० खिज्झइ, हि० खीजना का विपर्यय)-खीझे, क्रुद्ध और दुखी हुए। उ० एहि बिधि राउ मनहिं मन झाँखा। (मा० २।३०।१)

झाँझ-(सं० झल्लक) १ एक बाजा, मजीरा, झाल, २ क्रोध, चिड़चिड़ाहट। उ० १ घटा घटि पखाउज आउज झाँझ बेनु डफ तार। (गी० १।२)

झाँझि-दे० 'झाँझ'। उ० १ झाझि मृदंग संख सहनाई। (मा० १।२६३।१)

झाँपेउ-(सं० उत्थापन, हि० ढाँपना)-ढँक लिया, छिपा लिया। उ० झाँपिउ भानु कहहिं कुबिचारी। (मा० १। ११७।१)

झार(१)-(सं० सर्व, प्रा० सारो, हिं० सारा)-१ सब, कुल, बिल्कुल, २ समूह, झुंड।

झार (२)-(सं०ज्वाला)-१ आग की लौ, लपट, आँच, २ जलन, दाह, ३ चरपरापन ४ तेज़ी।

झारहीं-(सं० ज्वाला)-झार में, ताप में, ज्वाला में। उ० तात तात! तौंसियत, झौंसियत झारहीं। (क० ५।१५)

झारि (१)-(सं० सर्व)-१ सब, २ समूह।

झारि (२)-(सं० क्षरण)-१ झाड़कर, २ बहता हुआ। उ० २ झरना झरत झारि सीतल पुनीत बारि। (क० ७।१४१) झारौं-झाड़, झाड़ूँ, साफ करूँ। उ० झारौं बयारि बिलबिय बिटपतर, झारौं हौं चरन-सरोरुह धूरि। (गी० २।१३)

झारी (१)-(सं० सर्व)-समूह, सब। उ० गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी। (मा० १।१८५।४)



झारी (२)-(सं० झाट)झाड़ी, छोटे-छोटे पेड़ों का समूह।

झारी (३)-(सं० क्षरण)-१ टोंटीदार लोटा, गडुआ, २ कमंडल, ३ सुराही।

झालरि-(सं० झल्लरी)-झालर, किसी चीज़ के किनारे शोभा के लिए टाँका हुआ, या बनाया गया हाशिया। उ० मुकुता झालरि झलक जनु राम सुजस सिसु हाथ। (दो० ११०)

झिंग-(अनु०)-नदियों के प्रवाह का शब्द। उ० बर निधान करत गान, धारत घन मान प्रान, झरना झर झिंग झिंग झिंग जल तरंगिनी। (गी० २।४३)

झिल्लि (१)-दे० 'झिल्ली (१)'। उ० झिल्लि, झाँझ, झरना डफ, नय मृदंग निसान। (गी०२।४७)

झिल्लि (२)-दे० 'झिल्ली (२)'।

झिल्ली (१)-(सं०) झींगुर, एक छोटा कीड़ा।

झिल्ली (२)-(सं० चैल)-किसी चीज़ का बहुत पतली तह, चमड़े आदि की झिल्ली।

झींगुल-दे० 'झँगुली'।

झीनि-दे० 'झीनी'। उ० पीत झीनि झगुली तन सोही। (मा० ७।७७।४)

झीनी-(सं० क्षीण)-बारीक, पतली, महीन। उ० लसत झँगुली झीनी, दामिनि की छबि छीनी। (गी० १।४२)

झुँकरे-दे० 'झुकरे'।

झुँझुन-(ध्व०)-पैंजनी या घुँघरू का शब्द, झुनझुना। उ० झुँझुन झुँझुन पाँय पैंजनी मृदु मुखर। (गी० १।३०)

झुंडनि-(सं० यूथ)-झुंडों में। उ० गुन रूप-जोबन सींव सुंदरि चलीं झुंडनि झारि। (गी० ७।१८)

झुकत-(सं० युज, युक्, प्रा० जुक्)-झुक जाते हैं। उ० दास तुलसी परत धरनि, धरकत झुकत, हाट सी उठति जम्बुकनि लूट्यो। (क० ६।४६) झुकनि-झुकना, नीचे आना। उ० झुकनि झाँकनि, छाँह सों किलकनि, नटनि, हठि लरनि। (गी० १।२५) झुकि-झुककर, नीचे मुँहकर। उ० किलकत झुकि झाकत प्रतिबिंबनि। (गी०।२८)

झुकी-(सं० युज्, युक्)-१ झुक गई, २ झुककर, ३ नाराज़ होकर, रुष्ट होकर, ४ नाराज़ हुई। उ० १ नहिं जान्यों बियोग सो रोग है आग झुकी तब हौं, तेहिं सों तरजी। (क० ७।१३३) झुके-१ काम की ओर झुक गए, प्रवृत्त हुए, २ क्रुद्ध हुए। उ० १ तुलसी उत झुंड प्रचंड झुके, झपटैं भट जे सुरदावन के। (क० ६।३४)

झुकरे-(ीं)-झुँझलाए, खीझे। उ० रदन के झुंड झूमि-झूमि झुकरे से नाचैं। (क० ६।३१)

झुटुंग-(सं० जूट)-खड़े बालावाला, जटाधारी। उ० जोगिनी झुटुंग झुंड झुंड बनी तापसी सी। (क० ६।५०)

झुठाई-(सं० अयुक्त, प्रा० अजुत्त, हि० झूठ)-असत्यता, झूठ। उ० आधि-मगन मन, ब्याधि बिकल तन, बचन मलीन झुठाई। (वि० १६५)

झुलावहीं-झुलाती हैं, झूले पर झुलाती हैं। उ० पट उढ़त भूषन लसत हँसि हँसि अपर सखी झुलावहीं। (गी० ७।१३) झुलावै-(सं० दोलन)-झुलाती हैं। उ० कबहुँ पालने घालि झुलावै। (मा० १।२००।४)

झूँठ-दे० 'झूठ'। उ० ३ स्वारथ परमारथ चहत, सकल मनोरथ झूँठ। (दो० ७६)
झूठ-(सं० अयुक्त)-१ असत्य, मिथ्या, २ व्यर्थ, ३ असफल। उ० १ यह विचारि नहिं करउँ हठ झूठ सनेहु बढ़ाइ। (मा० २।२६) झूठइ-झूठ ही, असत्य ही। उ० झूठइ भोजन झूठ चबेना। (मा० ७।३९।४) झूठेउ-झूठ भी, असत्य भी। उ० झूठेउ सत्य जाहि बिनु जानें। (मा० १।११२।१) झूठेहुँ-झूठे ही, मूठ-मुठ। उ० झूठेहुँ हमहिं दोषु जनि देहू। (मा० २।२८।२)
झूठा-झूठ, बनावटी, असत्य। उ० जहिं छल कपट कनक मृग झूठा। (मा० ६।६६।४) झूठी-बनावटी, झुठी। उ० नायहू न अपनायो, लोक झूठी ह्वै परी, पै प्रभुहू तें प्रबल प्रताप प्रभु नाम को। (क० ७।७०)
झूठि-झूठी, असत्य। उ० झूठि न होइ देव रिषि बानी। (मा० १।६८।४)
झूमक-(सं० झंप)-एक गीत जिसे होली के दिनों में देहात की स्त्रियाँ झूम-झूमकर नाचती हुई गाती हैं। उ० चाँचरि झूमक कहँ सरस राग। (गी० ७।२२)
झूने-(सं० क्षीण)-झीने, झाँझरे, खाँखर। उ० साथरी को सोइयो, ओढ़िबो झूने खेस को। (क० ७।१२५)
झूमत-(सं० झंप) झूमते हैं, इधर-उधर लहराते हैं। उ० झूमत द्वार अनेक मतंग जँजीर जरे मदअंबु चुचाते। (क० ७।४४) झूमि-झूमकर, झूमते हुए, लहराते हुए। उ० रुंडन के झुंड झूमि झूमि झुकरे से नाचैं। (क० ६।३१)
झूर (१)-(सं० धूलि)- सूखा, शुष्क, शुश्क।
झूर (२)-(सं० अयुक्त, हिं० झूठ)-१ खाली, रिक्त, २ व्यर्थ, झूठे।
झूर(३)-(१)-१ जलन, दाह, २ दुःख, परिताप।
झूरो (१)-दे० 'झूर (१)'।
झूरो (२)-दे० 'झूर (२)'। उ० १ बिपुल जल-भरित जग जलधि झूरो। (ह० ३)
झूरो (३)-दे० 'झूर (३)'।
झूलत-(सं० दोलन)-१ झूलते हैं, झूल रहे हैं, २ झूलते हुए। उ० २ झूलत राम पालने सोहैं। (गी० १।२१) झूलन-झूलने के लिए, लटकने के लिए। उ० मोतिन्ह झालरि लागि चहूँ दिसि झूलन हो। (रा० ३)
झोंटा-(सं० जूट)-चोटी, बड़े बड़े बाला का समूह।
झोटिंग-(सं० जूट, हिं० झोंटा)-झोंटेवाला, अस्त व्यस्त और बड़े बालोंवाला। उ० प्रमथ महा झोटिंग कराला। (मा० ४।८८।१)
झोंटी-चोटी, लट, झोंटा, बाल। उ० लगे घसीटन धरि धरि झोंटी। (मा० २।१६३।४)
झोपरी-(सं० क्षेप) घास फूस या मिट्टी की बनी कुटिया, छोटा झोंपड़ा, पर्णशाला। उ० कत बीस लोचन बिलोकिए कुमत फल, ख्याल लंका लाई कपि राँड़ की सी झोपरी। (क० ६।२७)
झोरी-(सं० चोल)-झोली, छोटा झोला, थैली। उ० झोकरी की झोरी काँधे, आँतनि की सेल्ही बाँधे। (क० ६।५०)
झालिन्ह-झालियों में। उ० झालिन्ह अबीर, पिचकारी हाथ। (गी० ७।२२)
झौंसियत-(सं० ज्वल+अश)-झुलसे जाते हैं, जले जाते हैं। उ० तात तात! तौंसियत, झौंसियत झारहीं। (क० ५।१५)

# ट

टंकिका-(सं०)-पत्थर काटने का औज़ार, छेनी, टाँकी। उ० सुजन, सुतरु, बन, ऊख सम खल, टंकिका, रुखान। (दो० ३४२)
टँकोरा-दे० 'टकोर'। उ० २ प्रथम कीन्हि प्रभु धनुष टँकोरा। (मा० ६।६८।१)
टंकोर-(सं० टंकार)-१ टन-टन का शब्द जो किसी कसे हुए तार आदि पर उँगली मारने से होता है, २ धनुष की कसी डोरी पर बाण रखकर खींचने से होनेवाला शब्द, ३ धातु खंड पर प्रहार करने से होनेवाला शब्द झनकार। उ० २ मानत मनहुँ सतदित ललित घन, धनु सुरधनु, गरजनि टंकोर। (गी० ३।१)
टइ-(सं० पात, हिं० टही)-मतलब निकालने का घात, ताक, युक्ति। उ० बलि करमी मरनिए बड़ी सों करत फिरत बिनु टहल टई हैं। (वि० १२६)
टक-(सं० त्राटक)-ऐसा ताकना जिसमें देर तक पलक न गिरे, स्थिर दृष्टि। उ० एक टक रहे नयन पट रोकी। (मा० १।१४८।३)
टकटोरि-(सं० त्वक्+तोलन=अंदाज़ लगाना) हाथ के स्पर्श द्वारा पता लगाकर, टटोलकर, अंदाज़ लगाकर। उ० टकटोरि कपि ज्यों नारियर सिर नाइ सब बैठत भए। (जा० ६६)
टकोर-दे० 'टंकोर'। उ० २ प्रभु कीन्हि धनुष टकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा। (मा० ३।१९। छं० १)
टरइ-१ टलता, टलता है, सरकता है, हटता है, २ घटित होता है, ३ अस्त-व्यस्त होता है। उ० १ पद न टरइ बैठहिं सिर नाइ। (मा० ६।३४।६) टरई-१ टलता है, टल सकता है, टिलता है, २ भगा जाता है, नष्ट हो जाता है, ३ लौट-पौट हो जाता है। उ० १ साधु तृन पन कहु किमि टरई। (मा० ६।३५।४) २ संत परस जिमि पातक टरई। (मा० १।७।३) टरत-टलता है, दूर होता

है, हटता है।' उ० साहिब-सेवक रीति प्रीति-परमिति नीति, नेम को निबाह एक टेक न टरत। (वि० २५१) टरति-टलती है, हटती है। उ० लागियै रहति, नयननि आगे तें न टरति मोहन मूरति। (कृ० २८) टरहिं-टलते हैं, हटते हैं। उ० प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे। (मा० ६।५।४) टरिहै-टालेगा, हटावेगा, उखाड़ेगा। उ० थपै तेहि को जेहि राम थपै ? थपिहै तेहि को हरि जौ टरिहै ? (क० ७।४७) टरे-टले, टल गए, हट गए। उ० मन हरष सम गंधर्ब सुर मुनि नाग किंनर दुख टरे। (मा० १।३२१। छं० १) टरयो-टला, टल गया, हटा। उ० सुरयो न मनु तनु टरयो न टारयो। (मा० ६।६५।३)

टसक्तु-(सं० तस+करण)-टसकता, हटता, खसकता। उ० रोप्यो पाँव पैज कै बिचारि रघुबीर बल, लागे भट सिमिटि न नेकु टसकतु है। (क० ६।१६)

टहल-(सं० तत्+चलन)-१ सेवा, खिदमत, २ काम। उ० १ नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ। (मा० ७।१८। ४) २ कलि करनी बरनिए कहाँ लौं करत फिरत बिनु टहल टई है। (वि० १३९)

टही-दे० 'टई'

टाँकी-(सं० टक)-पत्थर तोड़ने का औज़ार, छेनी। उ० जो पषानु फोर पवि टाँकी। (मा० २।२८३।४)

टाँच (१)-(सं० टक्न, हिं० टाँकना)-१ टाँका, सिलाई, २ टँकी हुई चकती, थिगली, पैबंद। टाँचन-टाँचों से, टाकों से। उ० देह-जीव-जोग के सखा मृषा टाँचन टाँचो। (वि० २७७)

टाँच (२)-(सं० टक)-दूसरे का काम बिगाड़नेवाली बात।

टाँचो-टँके हुए, सिले हुए, सिले हुए हैं। उ० देह-जीव जोग के सखा मृषा टाँचन टाँचो। (वि० २७७)

टाँठा-(सं० स्थाणु)-१ कड़ा, कठोर, २ दृढ़, पुष्ट। टाँठे-कठोरता से, कड़ेपन से। उ० राम सों साम किये नित है हित, कोमल काज न कीजिए टाँठे। (क० ६।२८)

टाट-(सं० तन्तु)-सन का बना मोटा कपड़ा, बोरा। उ० सिमनि सुहावनि टाट पटोरे। (मा० १।१०।६)

टाटिका-(सं० स्थात्री या तटी)- टट्टर, टट्टी। उ० बिरचि हरि भगति को बेष बर टाटिका। (वि० २०८)

टाटिन-(सं० स्थात्री या तटी)-टाटिया, कई टट्टर। उ० ब्याली कपाली है ख्याली, चहूँ दिसि भाँग की टाटिन को परदा है। (क० ७।१५५) टाटी-टट्टी, छोटा टट्टर।

टाप-(सं० स्थापन, हिं० थापन, थाप)-१ घोड़े के पैर का निचला भाग, सुम। २ घोड़े के पैरों का शब्द, ३ साँप, उल्लघन, ४ मुरगी बंद करने का झाबा, ५ मछली पकड़ने का झाबा। उ० १ टाप न बूड़ बेग अधिकाई। (मा० १।२९३।४)

टारति-टालती हैं, बिताती है, व्यतीत करती हैं। उ० राम बियोग असोक-बिटप तर सीय निमेष कलप सम टारति। (गी० ५।१३।१) टारन-१ हटानेवाले, २ हटाने को, ३ टालना। उ० २ दीप बाति नहिं टारन कहउँ। (मा० २।२३१।३) टारि-१ टाल, हटा १ टालकर, हटाकर। उ० १ जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि। (मा० १।११७) टारा-टाला, हटाया। उ० सकु सरासनु काहुँ न टारा। (मा० १।२५२।३) टारि-१ टालकर, २ टाल, हटा। उ० २ जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि। (मा० १।११७) टारीं-टाल दिया, टाला। उ० ईस अनेक करवरें टारीं। (मा० १।३५७।१) टारी-१ टाल, हटा, खसका, २ हटाया, दूर किया, ३ निवारण किया, ४ बिताया, ५ बचाया। उ० १ जौं मम चरन सकसि सठ टारी। (मा० ६।३४।५) टारे-१ टाला, हटाया, २ टालने से, हटाने से। उ० २ प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे। (मा० ६।५।४) टारो-१ टाला, हटाया, २ हटाओ, टालो। उ० १ अब केहि लाज कृपा-निधान परसत पनवारो टारो। (वि० ९४) टारयो-टाले, टालने से, हटाने से। उ० सुरयो न मनु तनु टरयो न टारयो। (मा० ६।६५।३)

टाहली-सेवक, टहलुवा। उ० सबनि सोहात कै सेवा सुजानि टाहली। (क० ७।२३)

टिट्टिभ-(सं०)-टिटिहरी, कुररी। कहा जाता है कि टिटिहरी पैर ऊपर करके सोती है ताकि आकाश गिरे तो रोक ले। उ० जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना। (मा० ६।४०।३)

टिपारे-(सं० त्रि+फा० पार =टुकड़ा)-एक टोपी जिसमें कलगी की तरह तीन शाखाएँ निकली होती हैं। उ० सीसनि टिपारे, उपबीत, पीत पट कटि। (गी० १।६६)

टिपारो-दे० 'टिपारे'। उ० सिरसि टिपारो लाल, नीरज नयन बिसाल। (गी० १।४१)

टीका (१)-(सं० तिलक)-१ ललाट पर मिट्टी, राख, चंदन या रोरी आदि विभिन्न चीज़ों का लगाया जानेवाला तिलक, २ एक सर का गहना, ३ शिरोमणि, श्रेष्ठ, ४ राजतिलक। उ० ३ गयउ जहाँ दिनकर कुल टीका। (मा० २।३६।३) ४ करहु हरषि हियँ रामहि टीका। (मा० २।५।२)

टीका (२)-(सं०)-व्याख्या, अर्थ, विवरण।

टीड़ी-(सं० टिट्टिभ)-एक प्रकार के कीड़े जो झुंड के झुंड उड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हैं और खेती को हानि पहुँचाते हैं। टिड्डी। उ० जनु टाड़ी गिरि गुहाँ समाइ। (मा० ६।६७।१)

टुक-(सं० स्तोक)-१ थोड़ा, ज़रा, किंचित, २ टुकड़ा। मु० टुक-टूक-टुकड़े टुकड़े। उ० बरषि परुष पाहन पयद पख करौ टुक-टूक। (दो० २८२)

टूक-(सं० स्तोक)-टुकड़ा, खंड। उ० घर घर माँग टूक, पुनि भूपनि पूजे पाय। (दो० १०६) मु० टूक टाक-टुकड़े इत्यादि। उ० बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो, राम नाम लेत, माँगि खात टूक टाक हौं। (ह० ४०) टूकनि-टुकड़ों, भीख। उ० टूकनि को घर घर डोलत कंगाल बोलि, बाल ज्यों कृपाल नतपाल पालि पोसो है। (ह० ३६)

टूट-(सं० त्रुट)-१ टूटा हुआ, २ टूटेगा, ३ टूटता था। उ० ३ टूट न द्वार परम कठिनाई। (मा० ६।४३।२) टूटत-१ टूटता है, २ टूटने पर ३ टूटते ही, टूटते। उ० ३ जनक मुदित मन टूटत पिनाक के। (गी० १।९२) टूटतहीं-टूटते ही। उ० टूटतहीं धनु भयउ बिबाहू। (मा० १।२८६।४) टूटियो-टूटी हुई भी। उ० टूटियो बाँह गरे

परे, फूटेहुँ बिलोचन पीर होति हित करिए। (वि० २७१) टूटिहि–टूटेगा, टूट जायगा। उ० अवसि राम के उठत सरासन टूटिहि। (जा० ६८) टूटें–टूटने पर। उ० होइहहिं टूटें धनुष सुखारे। (मा० १।२३६।२) टूटे–१ टूट गए, खंडित हुए, २ टूटने पर। उ० २ श्रीहत भए भूप धनु टूटे। (मा० १।२६३।३) टूटेउ–टूटा, टूट गया। उ० फूयर टूटेउ फूट कपारू। (मा० २।१६३।३) टूटयो–टूट पड़ा, एक साथ कूद पड़ा। उ० निरखि मृगराज जनु गिरि तें टूटयो। (क० ६।४६)

टूठनि–(सं० तुष्ट)–मान जाना, संतुष्ट हो जाना। उ० भजनि मिलनि रूठनि टूठनि किलकनि, अवलोकनि बोलनि बरनि न जाई। (गी० १।२७)

टेई–(?)–तेज़ की, रगड़कर पैना किया। उ० कपट छुरी उर पाहन टेई। (मा० २।२२।१)

टेक–(सं० स्थित+कृ, हि० टिकना)–१ हठ, ज़िद, प्रण, संकल्प, २ सहारा, आश्रय, आधार, ३ थूनी, स्तंभ, ४ आदत, ५ गीत की वह पंक्ति जो बार बार गाई जाती है। उ० १ सपइ को टारि टेक जो टेकी। (मा० २।२५५।४)

टेका–दे० 'टेक'। उ० २ साधन कठिन न मन कहुँ टेका। (मा० ७।४५।२)

टेकि–टेककर। उ० जातु टेकि कपि भूमि न गिरा। (मा० ६।८४।१) टेकी–प्रतिज्ञा की, टेक की, निश्चय कर लिया। उ० सकइ को टारि टेक जो टेकी। (मा० २।२५५।४)

टेढ़–(सं० तिरस्)–१ टेढ़ा, वक्र, २ उजड्ड, शरारती, बदमाश। उ० १ टेढ़ जानि सब बंदइ काहू। (मा० १। २८१।३) २ सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही। (मा० १। २७७।४)

टेपारो–दे० 'टिपारे'। उ० तनियाँ ललित कटि, विचित्र टेपारो सीस। (कृ० २)

टेर (१)–(सं० तार=संगीत में ऊँचा स्वर)–१. ज़ोर से बुलाना, पुकार, हाँक, २ स्वर, तान।

टेर (२)–(सं० तार=तै करना)–निर्वाह, गुज़र।

टेरि–१ पुकार कर, २ पुकारते हैं। उ० १ बरषें सुमन जय जय कहें टेरि टेरि। (क० २।१०) टेरी–पुकारा, बुलाया। उ० पल्लव-सालन हेरी प्रान बल्लभा न टेरी। (गी० ३।१०) टेरें–दे० 'टेरे'। उ० २ सेहि तें कहहिं संत श्रुति टेरें। (मा० १।१६१।२) टेरे–१ पुकारे, बुलाए, २ पुकार कर, ३ पुकारने पर। उ० १ भृ गिहि प्रेरि सकल गन टेरे। (मा० १।८३।२)

टेव–(सं० स्थित+वृ, हि० टिकना)–अभ्यास, आदत, स्वभाव, बान। उ० सहज टेव बिसारि तुहीं धौं देखु बिचारि। (वि० १६६)

टेवैया–तेज़ करनेवाला, पैना करनेवाला। उ० जहाँ जम जातना, घोर नदी, भट कोटि जलच्चर दंत टेवैया। (क० ७।५२)

टोटक–दे० 'टोटका'। उ० स्वारथ के साथिन तज्यो तिजरा कोसो टोटक, औचट उलटि न हेरों। (वि० २७२)

टोटका–(सं० त्रोटक)–कोई बाधा या बीमारी दूर करने के लिए या मनोरथ सिद्ध करने के लिए तांत्रिक प्रयोग, यंत्र मंत्र, टोना। उ० औषध अनेक जंत्र-मंत्र टोटकादि किए। (ह० ३०)

टोटुक–दे० 'टोटका'।

टोना–(सं० तंत्र)–दे० 'टोटका'। टोने–टोटका, जादू। उ० तुलसी प्रभु किधौं प्रभु को प्रेम पढ़े प्रगट कपट बिनु टोने। (गी० २।२३)

टोल–(सं० तोलिका)–झुंड, दल, समूह, जत्था।

टोलू–दे० 'टोल'। उ० दीख निषादनाथ भल टोलू। (मा० २।१९२।२)

टोह–(?)–पता, तलाश, खोज।

## ठ

ठइ–(सं० अनुष्ठान, हि० ठान) १ निश्चित की, रक्खा, इरादा किया, २ निश्चित किया है, ठाना है, ३ लगाई, लगाइ है, ४ ठीक रहा, स्थिर या निश्चित रहा। उ० ४ तुलसिदास मौन श्वास मिलन की, कहि गए सो तौ कछु एकौ न चित ठइ। (कृ० ३६) ठए–(सं० अनुष्ठान) रचे, बनाए, ठाने। उ० सजि सजि जान अमर किन्नर मुनि जानि समय सम गान ठए। (गी० १।३)

ठकुर–(सं० ठक्कुर)–१ देवता, २ भगवान विष्णु, विष्णु की मूर्ति, ३ मालिक, स्वामी।

ठकुरसुहाती–दे० 'ठकुरसोहाती'।

ठकुरसोहाती–(सं० ठक्कुर) खुशामद, मुँहदेखी। उ० कहहिं सचिव सठ ठकुरसोहाती। (मा० ६।६।१)

ठकुराइन स्वामिनी, मालकिन।

ठकुराइनि–दे० 'ठकुराइन'। उ० ठाकुर महेस ठकुराइनि उमा सी जहाँ। (क० ७।१७०)

ठकुराई–१ प्रभुत्व, आधिपत्य, सरदारी, २ ठाकुर का अधिकार, स्वामी होने के अधिकार का उपयोग, महिमा, ३ उच्चता, बड़प्पन। उ० २ अब तुलसी गिरिधर बिनु गोकुल कौन करिहि ठकुराई? (कृ० ३२)

ठग–(सं० स्थग)–धोखा देकर धन आदि हरण करनेवाला, धूर्त, धोखेबाज़। उ० भव भुजंग ठग के बौराए। (मा० १।७३।४) ठगिनि–ठगनेवाली ठगिनी। उ० तुलसी सेहि सनमुख बिनु बिषय-ठगिनि ठगति। (गी० २।८२)

ठगति–ठगती है, धोखा देती है। उ० तुलसी सेहि सनमुख बिनु बिषय-ठगिनि ठगति। (गी० २।८२) ठगि–१ ठगे से, स्तब्ध, मोहित से, २ ठगकर। उ० १ मेड़ मह बरिए

देखि ठगि रहहीं। (मा० ७।६।५) ठगी-१ ठगा, ठग लिया, २ ठग गई, मोहित हो गई। उ० २. तुलसिदास ग्वालिनी ठगी, आयो न उतर कछु, कान्ह ठगौरी लाई। (कृ० ८) ठगे-१ ठगे, ठगे से, स्तब्ध, मोहे से, २ छले गए, ठगे गए। उ० १ अवलोकिहीं सोच विमोचन को ठगि सी।रही, जे न ठगे धिक से। (क०१।१) २ किंकिनि ललाम।लगाम ललित बिलोकि सुरनर मुनि ठगे। (मा० १।३१६। छं० १) ठग्यो-१, ठगा, ठग लिया, २ मोहित कर लिया। उ० १. लियो रूप दै ज्ञान-गाँठरी भलो ठग्यो ठगु ओही। (कृ० ४१)

ठगहारी-ठगपना, ठगी, बटमारी।

ठगु-दे० 'ठग'। उ० लियो रूप दै ज्ञान-गाँठरी भलो ठग्यो ठगु ओही। (कृ० ४१)

ठगौती-दे० 'ठगौरी'।

ठगौरी-(स० स्थग) १. ठगों की विद्या, २ मोह लेने की विद्या, मोहिनी, टोना, जादू। उ० २ तुलसिदास ग्वालिनी ठगी, आयो न उतर कछु, कान्ह ठगौरी लाई। (कृ० ८)

ठट-दे० 'ठट्ट'। उ० अवर धमर हरपत बरपत फूल, सनेह सिथिल गोप गाइन्ह के ठट हैं। (कृ० २०)

ठटु-(स०स्थातृ) ठाट, बनाव, सजावट। उ० परखत प्रीति प्रतीति पयज पनु रहे काज ठटु ठानिहैं। (गी० १।७८)

ठटुकि-(स० स्थाता)-ठिठककर, रुककर, स्तब्ध होकर। आश्चर्य में पड़कर। उ० रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी। (मा० २।४४।२)

ठटो-(स० स्थाता) रचो, सजो, बनाओ, तैयार करो। उ० नट ज्यों जनि पेट-कुपेटक कोटिक चेटक कौतुक ठाट ठटो। (क० ७।८६)

ठट्ट-(स० स्थाता)-समूह, जमाव, झुंड।

ठट्टा-दे० 'ठट्ट'। उ० मर्देहु मालु कपिन्ह के ठट्टा। (मा० ६।७३।६)

ठठ-दे० 'ठट्ट'।

ठठई-(स० अट्टहास)-ठट्ठा, दिल्लगी, हँसी। उ० हुतो न साँचो सनेह, मिटयो मन को सदेह, हरि परे उघरि, सदे सहु ठठई। (कृ० ३६)

ठठकि-(स० स्थेष्ट+करण, हि० ठिठकना)-ठिठककर, रुककर।

ठठाइ-(स० अट्टहास)-खिलखिलाकर, कहकहा लगाकर। उ० हँसय ठठाइ फुलाउब गाला। (मा० २।३४।३) ठठाइयत-(अनु० ठक ठक)-बजाए जाते हैं, ठोंके जाते हैं। उ० फर्लै फूलैं फैलैं खल, सीदैं साधु पल पल, खाती दीपमालिका ठठाइयत सूप हैं। (क० ७।१७१) ठठाई-दे० 'ठठाइ'।

ठनि-(स० अनुष्ठान, हि० ठानना, ठनना)-ठनकर, तत्पर रता से। ठनियत-ठनते ठाने, ठाने हुए, उद्यत, खड़ा। उ० तुलसी पराये बस भये रस अनरस दीनबधु-द्वारे हठ ठनियत है। (वि० १८३) ठनी-ठना ठन गया, ठानक बन गया, हो गया। उ० बिय ही और की हौं बिधि, राम कृपा और ठनी। (गी० ५।३६)

ठमक-(स० स्तभ) रुककर, ठहरकर।

ठयऊ-(स० अनुष्ठान)-१ छाए, छाए हों २ निश्चय कर लिया है, विचार किया है। उ० १ सावन घन घमड जनु ठयऊ। (मा० १।३४७।१) २ मदोदरि मन महुँ अस ठयऊ। (मा० ६।१६।४) ठयेऊ-दे० 'ठयऊ'। ठयो-बनाया, रचा। उ० राम लखन रनजीति अवध आए, कैधौं काहू कपट ठयो है। (गी० ६।११)

ठवनि-(स० स्थापन)-१ स्थिति, हाल, २ बैठने, चलने या खड़े होने का ढग, मुद्रा, अदाज़, चाल। उ० २ ठवनि जुवा मृगराजु लजाएँ। (मा० १।२४४।७)

ठहर (१)-(स० स्थल)-स्थान, जगह। उ० ठाकुर महेस, ठकुराइनि उमा सी जहाँ, लोक बेद हू बिदित महिमा ठहर की। (क० ७।१७०) मु० ठहर ठहर-स्थान स्थान पर। उ० ठहर ठहर परे कहरि कहरि उठैं। (क० ६।४२)

ठहर (२)-(स० स्थैर्य)-रुककर, ठहरकर। ठहरानी-(स० स्थैर्य)-ठहरी, टिकी, जमी। उ० एकउ जुगुति न मन ठहरानी। (मा० २।२२३।४)

ठहरु-दे० 'ठहर (१)'।

ठही-(स० स्थैर्य)-१ ठहरकर, जमकर, अच्छी तरह, २ ठहर गई, छा गई। उ० १ लागि दवारि पहार ठही लहकी कपि लक जथा खर-खौकी। (क० ७।१४३)

ठाँउ-दे० 'ठाउँ'।

ठाँवहिं-(स्थान)-जगह ही, जगह पर ही। उ० काँट कुराय लपेटन लोटन ठाँवहिं ठाँउँ बझाऊ रे। (वि०१८९)

ठाई-(स० स्थान)-१ ठौर, जगह, स्थान, २ पास, समीप, ३ तईं, प्रति। उ० से सब तुलसिदास प्रभु ही सा होहु सिमिटि एक ठाइ। (वि० १०३)

ठाउँ-(स० स्थान, प्रा० ठान)-ठौर, स्थान। उ० निलज, नीच, निरधन निरगुन कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाउँ। (वि० १४३)

ठाऊँ-दे० 'ठाउँ'। उ० पायउ अचल अनूपम ठाऊँ। (मा० १।२६।२)

ठाकुर-(स०ठक्कुर)-१ स्वामी, मालिक, २ आराध्य देव, पूज्य देवता, इष्ट देव, ३ नायक, सरदार, ४ ज़मींदार, ५ क्षत्रियों की उपाधि, ६ नाइयों की उपाधि। उ० १ राम गरीबनिवाज निवाजिहैं, जानिहैं, ठाकुर ठाउँगो। (गी० ५।३०)

ठाट-(स० स्थातृ)-१ तैयारी, साज, रचना, तड़क भड़क, २ भीड़ भाड़, धूम धाम, ३ दृश्य, ४ रूप, ५ व्यवस्था, प्रबंध। उ० १ मेरे जान इन्हें बोलिबे कारन चतुर जनक ठयो ठाट इती, री। (गी० १।७५)

ठाटा-१ रचा, ठाट किया, रचना की, २ दे० 'ठाट'। उ० १ मोहि लगि यहु कुठाटु तेहिं ठाटा। (मा० २। २१२।३) ठाटियो-रचना, बनाना। उ० काया नहिं छाड़ि देत ठाटियो कुठाट को। (क० ७।६६)

ठाटु-दे० 'ठाट'। उ० ४ सुप महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा। (मा० २।४७।३)

ठाट्ट-दे० 'ठाट'। उ० २ करहु धतहुँ अप ठाढ़र ठाट्ट। (मा० २।११३।१)

ठाढ़-(स० स्थातृ=जो खड़ा हो)-खड़ा। उ० ठाढ़ भए उठि सहस सुभाएँ। (मा० १।२२४।४)

ठाढ़ा-खड़ा, दण्डायमान। उ० अहमिति मनहुँ जीति जगु ठाढ़ा। (मा० १।२८३।३) ठाढ़ि-खड़ी, खड़ी-खड़ी। उ० सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछिताती। (मा० २।१२।१) ठाढ़ी-खड़ी, खड़ी हो गई। उ० नयनन्हि नीरु रोमावलि ठाढ़ी। (मा० १।१०४।१) ठाढ़े-खड़े, खड़े-खड़े। उ० ठाढ़े रहे एक पद दोऊ। (मा० १।१४२।१) ठाढ़ो-खड़ा, खड़ा। उ० ठाढ़ो द्वार न दै सकैं तुलसी जे नर नीच। (दो० ३८२)

ठान-(सं० अनुष्ठान)-१ अनुष्ठान, किसी काम को ठानना या शुरू करना २ शुरू किया गया कार्य, ३ दृढ़ निश्चय, संकल्प, ४ शरीर की मुद्रा, अदाज़। ठाना-१ निश्चय किया, दृढ़ विचार किया, २ ठान लिया, शुरू किया। उ० २ सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा। (मा० १।१९२।छं०१) ठानि-ठान कर निश्चय कर के। उ० भरतु ठानि मन रचेसि उपाई। (मा० १।८६।२) ठानी-१ निश्चित की, २ रक्खी, ३ स्थान वाले। उ० ३ मास पाख तिथि बार नखत ग्रह जोग लगन सुभ ठानी। (गी० १।४)

ठायँ-(सं० स्थान)-स्थान, ठौर, जगह। उ० जिन्ह लगि निज परलोक बिगारयो ते लजात होत ठाढ़ ठायँ। (वि० ८३)

ठाली-(?)-निठल्ला, बेकाम। उ० ठाली ग्वालि जानि पठए, अलि, कह्यो है पछोरन छूछो। (कृ० ४३)

ठावँ-(सं० स्थान)-जगह, स्थान। उ० ठावँ ठाव राखे अति प्रीती। (मा० २।१०।२)

ठाव-दे० 'ठाँवँ'। उ० दे० 'ठावँ'।

ठाहर-(सं० स्थल)-१ ठहर, स्थान, जगह, स्थल, २ ठहरने का। उ० २ काहु कतहुँ अब ठाहर ठाट। (मा० २।१३३।१)

ठाहरु-दे० 'ठाहर'। उ० १ दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई। (मा० २।२५।छं०१)

ठिकाना-(सं० स्थित+क०, हिं० टिकना)-१ ठहरने का स्थान, निवास, २ जगह, स्थान, ३ जीविका का सहारा, आश्रय, ४ स्थिरता, ठहराव, ५ प्रबंध, आयोजन, ६ पारावार, अंत।

ठीक-(?)-१ उचित, यथार्थ, सच, शुद्ध, २ अच्छा, ३ निश्चित, पक्का, ४ ठीक ठीक, जो है, ज्यों का त्यों। उ० ४ नाथ नीके कै जानिबी ठीक-जन-जीय की। (वि० २६३)

ठीका-१ निश्चित, ठीक, दृढ़, २ उचित, वाजिब। उ० १ करि बिचारु मन दीन्ही ठीका। (मा० २।२६६।४)

ठुमुकु-(अनु०) ठुमक कर, जल्दी-जल्दी थोड़ी थोड़ी दूर पर पैर पटक कर। उ० ठुमुकु-ठुमुकु प्रभु चलहिं पराई। (मा० १।२०३।४)

ठेकाने-ठिकाना, आश्रय। उ० तुलसिदास सीतल नित यहि बल बड़े ठेकाने ठौर को हीं। (वि० २२१)

ठेलि-(?)-ठेलकर, धक्का देकर, ढकेलकर। उ० दबकि दबेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि। (क० ५।८)

ठोंकि-(अनु० ठक ठक)-ठोंककर, थपथपाकर, पीटकर, परीक्षा करके। उ० ठोंकि बजाय लखे गजराज, कहाँ लौं कहौं केहि सों रद काढ़े। (क० ७।४४) ठोंकि बजाय-ठोंक बजाकर, अच्छी तरह परीक्षा कर। उ० दे० 'ठोंकि'।

ठोरी-(सं० स्थान, प्रा० ठान, हिं ठाँव+र)-ठौर, स्थान, जगह। उ० छबि सिंगार मनहुँ एक ठोरी। (मा० १।२६२।४)

ठोसु-(सं० स्थास्नु)-ठोस, जो भीतर से पोला या खाली न हो। उ० राम प्रीति प्रतीति पोली, कपट करतब ठोसु। (वि० १५९)

ठौर-(सं० स्थान, प्रा०ठान, हिं० ठाँव) जगह, स्थान। उ० तुलसिदास सीतल नित यहि बल बड़े ठेकाने ठौर को हीं। (वि० २२१) मु० ठौर ठौर-जगह जगह, स्थान स्थान पर। उ० नखसिख अगनि ठगौरी ठौर ठौर हैं। (गी० १।७१)

# ड

डँटैया-दे० 'डटैया'।

डंबर-(सं०)-१ आडंबर, ठाटबाट, धूमधाम, २ विस्तार, फैलाव, ३ एक प्रकार का चँदवा। उ० २ छत्र मेघडंबर सिर धारी। (मा० ६।१३।३)

डग-(सं० तक = चलना)-१ फाल, क़दम २ पद, चरण। उ० १ पुर तें निकसी रघुबीर बधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै। (क० २।११) मु० डग दये-चले।

डगइ-डिगता है, हटता है। उ० डगइ न संभु सरासनु कैसें। (मा० १।२५१।१) डगति-डगती है, हटती है, चलायमान होती है। उ० राम प्रेम-पथ तें कबहुँ डगति नहिं डगति। (गी० २।८२) डगदीं-१ डिगते हैं, २ विचलित हो गए, डिग गए। उ० १ चलत कटक दिगसिंधुर डगहीं। (मा० ६।७८।३) डगि-१ डगमगा कर, हिलकर, २ डग, पैर। उ० १ सिथिल अंग, पग मग डगि डोलहिं। (मा० २।२२४।२) डगे-डग गए, विचलित हुए। उ० डगे दिग कुंजर, कमठ कोल कलमले। (क० ६।७) डगैं-१ डिगें, कंपित हों, २ हिलते हैं, काँपते हैं। उ० २ न डगैं, न भगैं जिय जानि सिलीमुख पंच धरे रतिनायक है। (क० २।२७) डगौं-डगो, डिगो, कंपे। डग्यो-डिगा, हटा, विचलित हुआ, हिला। उ० कबहुँ न डग्यो निगम मग तें, पग नृग जग जानि जिते दुख पाए। (वि० २४०)

डगमग-(सं० तक + मग)-अस्थिर, डगमगाता हुआ।
डगमगत-हिलते हैं, काँपते हैं। उ० छुभित सिंधु डगमगत महीधर सजि सारँग कर लीन्हों। (गी० ५।२२) डगमगहीं-१ डगमगाते हैं, २ डगमगाने लगे। उ० २ छुभित पयोधि कुधर डगमगहीं। (मा० ६।७६।३) डगमगानि-डगमगा उठी, हिल उठी। उ० डगमगानि महि दिग्गज डोले। (मा० १।२५४।१) डगमगाहिं-१ डगमगाते हैं, विचलित होते हैं। २ कंपित होकर। उ० २ डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं। (मा० ५।३५।५) डगमगे-डगमगा उठे, हिलने लगे। उ० ब्रह्मांड दिग्गज कमठ अहि महि सिंधु भूधर डगमगे। (मा० ६।८६। छं० १)
डगर-(सं० तक, हिं० डग)-रास्ता, मार्ग, पथ। डगरि-डगर में, रास्ते में। उ० हरष न रघत, विषाद न विगरत, डगरि चले हँसि खेलि। (कृ० २६)
डगरा-दे० 'डगर'। –
डगरो-दे० 'डगर'। उ० गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहिं लगत राज-डगरो सो। (वि० १७३)
डटैया-(सं० दौति=पथ, वश में करना)-डाँटनेवाले, थम कानेवाले। उ० साँसति घोर, पुकारत आरत, कौन सुनै चहुँ ओर डटैया। (क० ७।२१)
डफ-(अर० दफ)-चमड़ा मढ़ा एक बाजा, डफला। उ० बाजहिं मृदग डफ ताल बेनु। (गी० ७।२२)
डफोरि-(अनु०)-चिल्लाकर, हाँक देकर। उ० तुलसी त्रिकूट चढ़ि कहत डफोरि कै। (क० ५।२७)
डमरु-(सं०)-एक बाजा जो बीच में पतला होता है और हाथ से हिलाकर बजाया जाता है। यह शिव का प्रिय बाजा है। उ० कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा। (मा० १।६२।३)
डमरुआ-(सं० डमर)-जोड़ों में दर्द तथा सूजन होने का एक रोग, गठिया। उ० अहंकार अति दुखद डमरुआ। (मा० ७।१२१।१८)
डमरू-दे० 'डमरु'। उ० डमरू कपाल कर, भूषन कराल ब्याल। (क० ७।१२८)
डर-(सं० दर)-भय, त्रास, खौफ। उ० एकन्ह कें डर तेपि डेराहीं। (मा० ६।७।२)
डरऊँ-डरता हूँ, डरता। उ० बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊँ। (मा० १।८०।४) डरत-१ डरता है, डरता, २ डरते हुए। उ० १ जाको बाल बिनोद समुझि जिय डरत दिवाकर भोर को। (वि० ३१) डरहिं-डरते हैं। उ० कादर देखि डरहिं तहँ सुभटन्ह के मन चैन। (मा० ६।८७) डरहीं डरती हैं, भयभीत होती हैं। उ० तिय सुभायँ कछु पूँछत डरहीं। (मा० २।११६।२) डरही-डरता है। उ० बायस इव सबही ते डरही। (मा० ७।११२।७) डरहु-१ डरो, २ डरते हो, डर रहे हो। उ० २ डरहु दरिद्रहि पारसु पाएँ। (मा० २।२१०।१) डरात-१ डरता है, २ डरते हुए। उ० १ सैमो कपि कौतुकी डरात ढीलो गात कै कै। (क० ५।३) डराती-डरती है। डरिए-डरा कीजिए, डरना चाहिए, डरते रहो। उ० निज आचरन बिचारि हारि हिय मानि जानि डरिए। (वि० १८६) डरिहै-डरेगा, भयभीत होगा। उ० तुलसी यह जानि हिये अपने सपने नहिं कालहु तें डरिहै। (क० ७।४७) डरीं-भयभीत हुईं, डर गईं। उ० तासु बचन सुनि ते सब डरीं। (मा० २।११।४) डरु-१ डरो, २ डर, भय। उ० २ नाहिन डर बिगरिहि परलोकू। (मा० २।२११।३) डरे-भयभीत हुए, डर गए। उ० डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। (मा० १।२४१।३) डरेउँ-मैं डरा, मैं डर गया था। उ० अपडर डरेउँ न सोच समूलें। (मा० २।२६७।३) डरेउ-डरा, डर गया। उ० निज भयँ डरेउ मनोभव पापी। (मा० १।१२६।४) डरौं-१ डरूँ, २ डरता हूँ। उ० २ तेहि ते बूझत काजु डरौं मुनि नायक। (जा० २४) डरयो-१ डर गया, २ डरा हुआ, भयभीत। उ० २ अब रघुनाथ सरन आयो जन, भवभय बिकल डरयो। (वि० ६१)
डरपत-डरता है, डर रहा है। उ० एकहिं डर डरपत मन मोरा। (मा० १।१६६।४) डरपति-डरती है। उ० तातें तेहि डरपति अति माया। (मा० ७।११६।३) डरपसि-डरिए, भयभीत होइए। उ० जनि सनेह बस डरपसि भोरें। (मा० २।५३।४) डरपहिं-डरते हैं, डर रहे हैं। उ० डरपहिं एकहि एक निहारी। (मा० २।८३।३) डरपहु-डरो, भयभीत हो। उ० भगत सिरोमनि भरत तें जनि डरपहु सुरपाल। (मा० २।२१६) डरपे-डरे, भयभीत हुए। उ० देखि अजय रिपु डरपे कीसा। (मा० ६।७६।७)
डरपावै-डरावे, भय दिखलावे। उ० डरपावै गहि स्वल्प सपेला। (मा० ६।५।४)
डवँरुआ-दे० 'डमरुआ'।
डसत-(सं० दंशन)-१ डसते ही, काटते ही, डंक मारते ही, २ डसते हुए, काटते हुए। उ० १ भव भुयग तुलसी नकुल, डसत ग्यान हरि लेत। (दो० १८०) डसि-डसकर, काटकर।
डसाई-(सं० दर्भ + आसन, हिं० डासन)-१ बिछाया, बिछा दिया, २ बिछाकर। उ० १ गुहँ सँवारि साँथरी डसाई। (मा० २।८६।४) डसाए-बिछाए, बिछवाए। उ० जरित कनकमनि पलँग डसाए। (मा० १।२५६।१) डसैहौं-बिछाऊँगा, बिछौना बिछाऊँगा। उ० रामकृपा भवनिसा सिरानी जागे फिर न डसैहौं। (वि० १०५)
डहँकत-दे० 'डहकत (१)'। उ० २ भक्ति, बिराग, ग्यान साधन कहि बहु बिधि डहँकत लोग फिरौं। (वि० १४१)
डहकायो-छला, धोखा दिया ठगा। उ० अनहुँ बिषय कहँ जतन करत जद्यपि बहुबिधि डहँकायो। (वि० ११६)
डहक-(?)-गुफा, कदरा, खोह, छिपने की जगह।
डहकत (१)-१ ठगाता है, धोखा देता है, बहकाता है, २ धोखा देते हुए, ठगते हुए। डहकि-(सं० तक=चलना, हिं० डाँकना, डाँका=लूट, ठगी)-ठगकर। मु० डहकि-डहकि-ठग ठगकर। उ० डहकि डहकि परिचेहु सब काहू। (मा० १।१३७।२) डहकु-(सं० तक) बहक भुलावा में आ ठगा, भ्रम में पड़। उ० डहकु न है उजियरिया निसि नहिं घाम। (ब० ३७) डहके-१ ठगे गए, धोखा खाए,

२ ठगाना, धोखा देना। उ० १ तुलसी खोटे चतुरपन कलि डहके कहु को न? (दो० ४९६) २ डहके ते डहकाइबो भलो, जो करिय बिचारि। (दो० ४२१)

डहकत (२)-(अनु० डहाड़)-रोता है, बिलखता है।

डहकत (३)-(?)-छितराता है, फैलाता है, फेंकता है। उ० खेलत खात परसपर डहकत, छीनत कहत करत रोग दैया। (कृ० १६)

डहकाइबो-ठगाना, ठगा जाना, धोखा खाना। उ० डहके ते डहकाइबो भलो, जो करिय बिचारि। (दो० ४२१)

डहरूआ-दे० 'डमरुआ'।

डहार-(सं० दहन)-१ जलनेवाले, ईर्ष्या करनेवाले, २ तंग करनेवाले, दाहनेवाले। उ० २ कायर क्रूर कुपूत कलि घर घर सहस डहार। (दो० ४६०)

डाँग-(सं० टंक=पहाड़ का किनारा)-१ घना जंगल, गहन वन, २ पहाड़ की चोटी। उ० १ चित्र विचित्र बिबिध मृग डोलत डोंगर डाँग। (गी० ७।४७)

डाँट-(सं० दांति=दमन, वश)-घुड़की, फटकार, झिड़की, धमकी।

डाँड़िगो-(सं० दंड)-दंडित कर गया, जुरमाना लगा गया। उ० केसरीकुमार सो अदंड कैसो डाँड़िगो। (क० ६।२४) डाँड़ियत-दंड दिया जाता है, जुरमाना दिया जाता है। उ० डाँड़ियत सिद्ध साधक प्रचारि। (गी० २।४६)

डाँड़ो-(सं० दंड)-१ डाँड़ी, रेखा, २ डंडा, दंड, पतली लकड़ी, ३ खंभ, ४ नाव खेने का डाँड़, ५ सीमा, ६ दंड दिया। उ० २ डाँड़ों कनक कुंकुम तिलक रेखें भी मनसिज भाल। (गी० ७।१८)

डाँवरे-(सं० डिंभ)-लड़के, बच्चे, पुत्र।

डाँवाडोल-(सं० दोल)-कंपित, चंचल, अस्थिर। उ० पावक, पवन, पानी, भानु, हिमवान, जम, काल, लोकपाल मेरे डर डाँवाडोल हैं। (क० ५।२१)

डाकिन-दे० 'डाकिनी'।

डाकिनि-दे० 'डाकिनी'। उ० २ जो सब पातक पीतक डाकिनी। (मा० २।१६२।३)

डाकिनी-(सं०)-१ एक पिशाची या देवी जो काली के गणों में समझी जाती है। २ चुड़ैल, डाइन। उ० २ डाकिनी शाकिनी-खेचर भूचर यंत्रमंत्र भंजन, प्रबल कल्मष पारी। (वि० ११)

डाटत-१ डाँटते हैं, घुड़कते हैं, २ डाँटने पर। उ० १ किए निहारो हँसत, खिझे तें डाटत नयन तरेरे। (कृ० ३) डाटन-डाँटने, फटकारने। उ० ३ कपि कुटिल ढीठ पशु पाँवर, मोहिं दास ज्यों डाटन आयो। (गी० ६।३) डाटहि-डाँटे, फटकारें, डाँटते हैं धमकाते हैं। उ० डाटहि भाँति देखाइ कोप दारुन किए। (जा० १११) डाटि-डाँटकर, फटकार कर। उ० मारहि चपेटन्हि डाटि दाँतन्ह काटि लातन्ह मीजहीं। (मा० ६।८१।छं०१) डाटियत-डाँटा, धमकाता, घुड़कता। उ० भानु है अभागी भूरिभागी डाटियत है। (क० ७।६६) डाटे-१ डाँटने पर, घुड़कने पर, २ डाँटा। उ० १ बिनय न मानहिं जीव जड़, डाटे नवहिं अचेत। (प्र० २।३।६) डाटेहिं-१ डाँटने पर, फटकारने से, २ डाँटते हैं। उ० १ बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहि पइ नव नीच। (मा० ५।५८)

डाढ़त-(सं० दग्ध)-१ जलती हुई, जलती, २ जलाते हुए। उ० १ रानी अकुलानी सब डाढ़त परानी जाहिं। (क० ५।१२) डाढ़न-१ जलाने, दग्ध करने, २ डाढ़ा का बहुवचन, आग, ३ दावानल, ४ दाह, ताप, जलन। उ० १ तुलसिदास जग दध जवास ज्यों अनघ मेघ लागे डाढ़न। (वि० २१) डाढ़ा-१ आग, ज्वाला, २ जलन, ३ जलाया, ४ मुँह काला किया। उ० १ जिमि तृन पाइ लाग अति डाढ़ा। (मा० ६।७२।१) डाढ़े-१ जलाए, भस्म किए, २ जले, जले हुए, ३ लपकें, शोले। उ० २ पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पायँ पखारिहौं भूभुरि डाढ़े। (क० २।१२) डाढ़ै-जलावे, जला देती है। उ० प्रबल पावक बाढ़ै, जहाँ काढ़ै तहाँ डाढ़ै। (क० ५।२३) डाढ़ो-जला, जल गया। उ० सब असबाब डाढ़ो, मैं न काढ़ो तैं न काढ़ो। (क० ५।१२)

डाबर-(सं० दभ्र=समुद्र या झील) १ बहुत छोटा तालाब, डबरा, गड़ही, छोटा गड्ढा, २ गँदला, मैला। उ० १ डाबर कमठ कि मंदर लेहीं। (मा० २।१२६।४) २ भूमि परत भा डाबर पानी। (मा० ४।१४।२)

डार-(सं० दारु=लकड़ी)-शाखा, टहनी, डाल। उ० प्रभु तरु पर कपि डार पर ते किए आपु समान। (मा० १।२९क) डारन-डालों पर, डालियों पर। उ० अवनि कुरंग, बिहँग द्रुम-डारन रूप निहारत पलक न प्रेरत। (गी० १।१४)

डारइ-गिरावे, फेंके गिराता हो। उ० नील-कमल-सर श्रेनि मयन जनु डारइ। (जा० ५२) डारई-१ डालता है, २ पटकता है, पटकने लगा। उ० २ तब उठेउ क्रुद्ध कृतांत सम गहि चरन बानर डारई। (मा० ६।८२।छं०१) डारउ-डाले, गिरावे। उ० आवत जनु पबि पाहन डारउ। (मा० ६।२०५।२) डारहिं-डालते हैं, डाल देते हैं, गिराते हैं। उ० गहि पद डारहि सागर माहीं। (मा० ६।४०।४) डारहीं-डालते हैं, गिराते हैं। उ० धरि कुधर खंड प्रचंड मर्कट भालु गढ़ पर डारहीं। (मा० ६।४१।छं०१) डारा-१ डाला, डाल दिया, २ गिराया। उ० १ अति रिस मेघनाद पर डारा। (मा० ६।५१।१) डारि-१ फेंक, लगाकर, डाल, २ डालकर, छोड़कर, बहाकर। उ० १ भनि मुख मेलि डारि कपि दहीं। (मा० ६।११०।४) डारिबो-डालना, डालियेगा। उ० कमल लाल कृपाल! निपटहिं डारिबी न बिसारि। (गी० ७।२६) डारियत-डालते हो। उ० रोगसिंधु क्यों न डारियत गायखुर कै! (ह० ४३) डारिहउँ-डालूँगा, फेंकूँगा। उ० बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी। (मा० १।१२६।३) डारिहौं-डालूँगा, फेंकूँगा। उ० तुलसी बसि मूरति आनि हिये, जब डारिहौं प्रान निछावरि कै। (क० २।१६) डारी-१ डाला, डाल दिया, गिरा दिया, फेंक दिया, २ फेंक कर, ३ फेंकी हुई। उ० १ हमहिं दृगनि दीन्हेउ पट डारी। (मा० ३।२।१) डारु-डाल दे, डालो। उ० निपटहिं डाँटति निठुर ज्यों, लकुट कर तें डारु। (कृ० १७) डारे-१ डाला, २ गिराया। उ० १ सरन्हि काटि रज सम करि डारे। (मा० ३।११।२) डारेसि-डाला, डाल दिया। उ० जहँ तहँ

पटकि पटकि भट डारेसि। (मा० ६।६५।५) डारन्हि–डाले, गिराये। उ० डारेन्हि तापर एकहि बारा। (मा० ६।८२।१) डारौं–१ डालूँ, २ गिराऊँ। उ० १ काँचे घट जिमि डारौं फोरी। (मा० १।२५३) डार्‌यो–डाला, डाल दिया। उ० गहि चगुल चातक चतुर डार्‌यो बाहिर बारि। (दो० ३०३)

डावरे–दे० 'डाँवरे'। उ० सोई बाँह गही जो गही समीर डावरे। (ह० ३७)

डासत–(स० दर्भ+आसन) १ बिछाता है, फैलाता है, २ बिछाते हुए, डसाते हुए, बिस्तर लगाते हुए। उ०२ डासत ही गई बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ! नींद भरि सोयो। (वि० २४५) डासि–१ बिछाकर, डालकर, फैलाकर, २ डाली, फेंकी, बिछायी। उ० १ अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात। (मा० २।२११) डासी–दे० 'डासि'। उ० १ सम महि तृन तरु पल्लव डासी। (मा० २।६७।३)

डासन–१ बिछौना, २ आसन। उ० १ लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। (मा० ७।४०।१)

डिंडिम–(स०) १ डमरू, २ डफली, ३ मुनादी, घोषणा, ४ करौंदा, एक पेड़ का नाम, ५ डमरू का शब्द।

डिंडिमी–१ डमरू, २ डफली, डुगडुगी, ३ करौंदा। उ० २ काम्हि बिरव डिंडिमी सुहाई। (मा० १।३४४।१)

डिंभ (१)–(स०) १ बच्चा, छोटा बालक, २ मूर्ख, ३ पशुओं के शिशु, बछड़ा आदि। उ० आपने तौ एक अब लब अब डिंभ ज्यों। (क० ७।८१)

डिंभ (२)–(स० दम्भ)–१ आडंबर, पाखंड, २ गर्व, अभिमान, ३ अज्ञान।

डिगति–१ हिलती है, काँपती है, २ काँपने लगी। उ० १ डिगति उर्वि अति गुर्वि, बिकल दिगपाल चराचर। (क० १।११)

डिठि–(सं० दृष्टि प्रा० दिट्ठि, डिट्ठि) १ दृष्टि, नजर, निगाह २ नजर, टोना। उ० २ रोवनि, धोवनि, अनखानि अनरसनि, डिठि-मुठि निठुर नसाइहौं। (गी० १।१८)

डिठियारा–दृष्टिवाला, आँखवाला आदमी। उ० अब कहे दुख पाइहै, डिठियारो केहि डीठि? (दो० ४८१)

डिमडिम–डमरू की डिमडिम आवाज। उ० तांडवित नृत्य पर, डमरू डिमडिम प्रवर। (वि०१०)

डिमडिमी–१ डुग्गी, डफली, २ मुनादी, ढिंढोरा।

डीठ–(स० दृष्टि प्रा० दिट्ठि, डिट्ठि)–नजर, दृष्टि। उ० दइ पीठि बिनु डीठ मैं तुम बिस्व बिलोचन। (वि० १५१)

डीठा–१ देखा, दीखा, २ दृष्टि। उ० १ पितु वैभव बिलास मैं डीठा। (मा०२।९८।१) डीठे–देखे, अवलोकन किया। उ० बचक बिषय बिबिध तनु धरि अनुभवे सुने अरु डीठे। (वि० १६६)

डीठि–दृष्टि नजर आँख। उ० अब कहे दुख पाइहै, डिठियारो केहि डीठि। (दो० ४८१)

डीठी–दृष्टि नजर, आँख। उ० नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी। (मा० १।२३१।४)

डुलावौं–(स० दोल) १ डुलाऊँ, हिलाऊँ, २ डुलाता हूँ, हिलाता हूँ।

डेरा–[स० स्थैर्य+ना (प्रत्य०)–हि० ठहरना, ठैरना] १ थोड़े समय का निवास, पड़ाव, २ निवास, स्थान, घर आश्रम, ३ तंबू, खेमा, ४ नाचने गानेवालों का दल। उ० २ राम करहु तेहि कें उर डेरा। (मा० २।१३१।४)

डेराइ–(स० दर)–१ डरकर, डर से, २ डरे, ३ डरा। उ० २ जय सिय कानन देखि डेराई। (मा०२।८२।२) डेराऊँ–डरूँ, डरता हूँ। उ० तुम्ह पूँछहु मैं कहत डेराऊँ। (मा० २।१७।२) डेराती–डरती, डरती है, डर जाती है। उ० चित्रलिखित कपि देखि डेराती। (मा०२।६०।२) डेराना–डरा, डर गया। उ० मुनिगति देखि सुरेस डेराना। (मा० १।१२५।३) डेराने–डरे, डर गए। उ० सकल लोग सब भूप डेराने। (मा० १।२२४।१) डेरावहिं–डराते हैं, भय भीत करते हैं। उ० कपिलीला करि तिन्हहि डेरावहिं। (मा० ६।४४।३) डेराहीं–१ डरते हैं, डर रहे हैं, २ डर रहे थे। उ० १ एकन्ह कें डर तेपि डेराहीं। (मा०६।४।३) डेराहु–डरो, भयभीत हो। उ० कह प्रभु हँसि जनि हृदयँ डेराहु। (मा० ६।३२।५)

डेरे–दे० 'डेरा'। उ० २ दीन बित्तहीन हौं बिकल बिनु डेरे। (वि० २१०)

डेरो–दे० 'डेरा'। उ० २ तुलसिदास यह त्रास मिटै जब हृदय करहु तुम डेरो। (वि० १४३)

डेल–(स० दल, हि० डला)–ढेला, पत्थर ईंट या मिट्टी आदि का टुकड़ा। उ० नाहिन रास रसिक रस चाख्यो, तातें डेल सो डारो। (कृ० ३४)

डेवढ़–(स० द्व्यर्द्ध, प्रा० दिअड्ढ)–ड्योढ़ा, आधा अधिक, डेढ़गुना।

डोंगर–(स० तुंग=पहाड़ी) टीला, ऊँची जमीन, छोटी पहाड़ी। उ० चित्र बिचित्र बिबिध मृग डोलत डोंगर डाँग। (गी० २।४७)

डोरि–(स० डोर)–डोरी, रस्सी, तागा। उ० तैं निज कर्म डोरि दृढ़ कीन्ही। (वि० १३६)

डोरिआए–डोर या रस्सी से बँधे हुए। उ० कोतल संग जाहिं डोरिआए। (मा० २।२०३।२)

डोरी–दे० 'डोरि'। उ० जिन बाँधे सुर असुर नाग नर प्रबल करम की डोरी। (वि० ९८)

डोल–(स० दोल)–१ लोहे का एक गोल बर्तन जिससे कूएँ से पानी खींचते हैं, २ हिंडोला, झूला, ३ पालकी, डोली, ४ काँपा, डोला, ५ काँपना, हिलना। उ० २ खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल। (मा० १।२२८)

डोलइ–(स० दोल) डोल सकता है, हिल सकता है। उ० अचल-सुता-मन अचल बयारि कि डोलइ? (पा० ६५) डोलत–डोलती है, डोलने लगी। डोलत धरनि सभासद खसे। (मा० ६।३२।२) डोलति–१ डोलती है, हिलती है, हटती है, २ डोलती हुई। उ० १ आगु चलत डोलति इमि धरनी। (मा० ६।२५।४) डोलनि–डोलना, हिलना। उ० कस सुदेस गँभीर बचन बर, स्तुति कुंडल डोलनि जिय जागति।

(गी० ७।१७) डोलहिं-डोलते हैं, डगमग करते हैं, चलायमान होते हैं। उ० सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं। (मा० २।२२२।२) डोला-(सं० दोल)-१ डोली, शिविका, पालकी, २ हिला, चला, कंपित हुआ। उ० २ हरि प्रेरित लछिमन मन डोला। (मा० ३।२८।३) डोली-१ हिली, कंपित हुई, २ बदली परिवर्तित हुई। उ० २ माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा। (मा० १।१९२। छं० ४) डोले-हिले, डगे, कंपित हुए। उ० डोले धराधर धारि, धराधर धरपा। (क० ६।७) डोलै-डोलता है, भटकता है। उ० डोलै लोल बूझत सबद ढोल तुरना। (क० ७।१४८) डोल्यो-डिगा, विचलित हुआ। उ० बहुबिधि राम कह्यो तनु राखन परम धीर नहिं डोल्यो। (गी० ३।१३)

डोलावा-डुलाया, हिलाया, कंपित किया। उ० काहि न सोक समीर डोलावा। (मा० ७।७१।२) डोलावौं-१ डुलाऊँ, हिलाऊँ, २ चलाता हूँ, फिराता हूँ, घुमाता हूँ। उ० २ प्रभु अकृपालु कृपालु अलायक जहँ जहँ चितहिं डोलावौं। (वि० २३२) डोलावौंगी-डुलाऊँगी, चलाऊँगी। उ० याके चरन कमल चापौंगी, स्रम भए बाउ डोलावौंगी। (गी० २।६)

डोल्लहिं-डोलते हैं, घूमते हैं। उ० कोटिन्ह रुंड मुंड बिनु डोल्लहिं। (मा० ६।८८। छं० १)

डोआ-(?)-काठ का चमचा या करछुल। उ० लकड़ी डोआ करछुली सरस काज अनुहारि। (दो० ५२९)

# ढ

ढंग-(सं० तग = जाना, चाल)-१ शैली, पद्धति, तरीका, २ प्रकार, भाँति, ३ रचना, बनावट, गढ़न, ४ युक्ति, उपाय, ५ आचरण, व्यवहार, चाल-ढाल, ६ लक्षण, आभास, ७ बहाना, हीला, पाखंड, ८ अवस्था, दशा।

ढँढोरीं-(सं० ढुंढन)-खोजीं, ढूँढ़ीं, तलाश कीं। उ० सारद उपमा सकल ढँढोरीं। (मा० १।२४१।४)

ढकनि-(अनु० ढका, धक्का)-धक्कों से। उ० ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि। (क० ५।८) ढका-१ धक्का, २ धक्के से। उ० २ सूकर के सावक ढका ढकेल्यो मग में। (क० ७।७६)

ढकेलि-(अनु० धक्का, ढका)-ढकेल कर, धक्का देकर। उ० ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि। (क० ५।८) ढकेल्यो-ढकेला, गिराया, धक्का दिया। उ० सूकर के सावक ढका ढकेल्यो मग में। (क० ७।७६)

ढनमनी-(अनु० ढनमनाना)-लुढ़क पड़ी, ढुलक पड़ी। उ० रुधिर वमत धरनीं ढनमनी। (मा० ५।४।२)

ढरकें-गिरे, झुके। उ० गए जाम जुग दिनकर ढरकें। (मा० २।२२६।१) ढरकें-(सं० धार)-१ गिरकर बहे, ढले, ढुलके, २ अस्ताचल की ओर चले, ३ डूबने तक, अस्त होने तक। ढरत-(सं० धार, हिं० ढाल)-१ ढरता है, द्रवित होता है, बहता है, २ प्रसन्न होता है, रीझता है, अनुकूल होता है। उ० २ ताको लिए नाम राम सबको सुढर ढरत। (वि० १३४) ढरनि-१ कृपालुता, दया, २ चित्त की प्रवृत्ति, झुकाव, ३ गति, हरकत, हिलना, ४ पतन, गिरना। उ० १ कृपासिंधु कोसलधनी सरनागत-पालक, ढरनि आपनी ढरिए। (वि० २१७) ढरहीं-(सं० धार)-ढल रहे हैं, हिल रहे हैं। उ० ब्यजन चारु चामर सिर ढरहीं। (मा० १।३२०।२) ढरिए-पसीजिए, दया कीजिए, प्रसन्न हूजिए। उ० कृपासिंधु कोसलधनी सरनागत पालक, ढरनि आपनी ढरिए। (वि० २०१) ढरियै-दे० 'ढरिए'। ढरिहै-ढरेगा, बहने लगेगा। उ० प्रभु-गुन सुनि मन हरषिहै, नीर नयननि ढरिहै। (वि० २६८) ढरी-१ ढली, बही, २ द्रवित हुई, पिघली। ढरैंगे-कृपा करेंगे, नम्र होंगे। उ० तुलसी ढरैंगे राम आपनी ढरनि। (वि० १८४)

ढहा-(सं० ध्वसन, हिं० ढहना)-गिरा, ध्वस्त हुआ, नष्ट हुआ। उ० धन्य मातु, हौं धन्य लागि जेहि राज-समाज ढहा है। (गी० २।६४) ढहे-ढह गए, गिरे, नष्ट हुए। उ० ढहे समूल बिसाल तरु, जाल नदी के तीर। (प्र० ६।३।५)

ढहाए-गिरवाए, नष्ट-भ्रष्ट कराए। उ० बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए। (मा० ४।७।६) ढहावहिं-ढहाते हैं, गिराते हैं, फेंकते हैं। उ० निसिचर सिखर समूह ढहावहिं। (मा० ६।४१।४) ढहावहीं-गिरा रहे हैं, पछाड़ रहे हैं। उ० खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं। (मा० ६।८८। छं० १) ढहाया-ढहा दिया, गिराया। उ० कलस सहित गहि भवनु ढहाया। (मा० ६।४४।२)

ढाँकी-(सं० ढक = छिपाना)-ढककर, छिपाकर। उ० बहुरि बदनु बिधु अचल ढाँकी। (मा० २।११७।३)

ढाबर-(सं० दभ्र = झील)-१ गँदला, मटमैला, २ गहरा, ३ छोटा गड्ढा, डबरा, ४ जलमय। उ० १ भूमि परत भा ढाबर पानी। (मा० ४।१४।३)

ढारइ-(सं० धार)-ढरकाती है, गिराती है। उ० नारि चरित करि ढारइ आँसू। (मा० २।१३।३) ढारत-ढरकाता, गिराता। उ० दूध दुहाइ माखन ढारत हैं दुबो पासात दान दिन दीबो। (कृ० ३) ढारति-ढारती हैं, ढालती हैं। उ० बार-बार बर बारिज लोचन भरि-भरि बरत बारि उर ढारति। (गी० २।१३) ढारि-गिरा दे, डाल दे, उँडेल दे। उ० जोगिजन मुनि मंडली मों जाइ रीती ढारि। (कृ० ५३) ढारी-१ ढाला हुआ, २ गिराया, ढरका दिया, ३ ढालू। उ० १ अति बिस्तार चारु गच ढारी। (मा० १।३२४।१) ढारो-गिराया, ढारा, ढरकाया। उ०

ढारो बिगारो मैं काको यह केहि कारन खीझत हौं तो बिहारो। (कृ० १६) ढार्यो–१ गिराया, उँड़ेला, २ व्यय किया। उ० १ खायो, कै खवायो, कै बिगार्यो, ढार्यो लरिका री। (कृ० १६)

ढास–(सं० दस्यु)-ठग, लुटेरा, डाकू। ढासनि–ठगों, चोरों, लुटेरों। उ० बासर ढासनि के ढका, रजनी चहुँ दिसि चोर। (दो० २३१)

ढाहत–(सं० ध्वसन)-१ गिराता है, २ गिराते हुए, ढाहते हुए। उ० २ ढाहत भूप रूप तरु मूला। (मा० २। ३४।२) ढाहति–१ गिराती है, नष्ट करती है, २ ढाहती हुई गिराती हुई। ढाहिगो–गिरा गया, नष्ट कर गया। उ० चक गढ़ लक सो ढका ढकेलि ढाहिगो। (क० ६।७३) ढाहिबे–गिराने, नष्ट करने। उ० लक से बक महागढ दुर्गम ढाहिबे दाहिबे को कहरी है। (क० ६।२१) ढाहे–गिराए, बहाए। उ० ढाहे महीधर सिखर कोटिन्ह बिबिध बिधि गोला चले। (मा० ६।४१। छ० १) ढहैं–ढाहेंगे, गिराएँगे। उ० दे० 'ढेरी'।

ढिंग–(सं० दिक्=ओर)-१ पास, समीप, निकट, २ तट किनारा, तीर, ३ दिशा।

ढिग–दे० 'ढिंग'। उ० १ अनुज सहित मिरि ढिग बैगारी। (मा० ४।७६।२)

ढिठाइ–(सं० धृष्ट)-१ धृष्टता, गुस्ताखी, चपलता, २ निर्लज्जता। उ० १ जदपि नाथ उचित न होत अस प्रभु सों करौं ढिठाइ। (वि० ११२)

ढिमढिमी–(सं० डिंडिम)-१ डमरू, २ ढँजड़ी।

ढीट्यो–ढिठाई, धृष्टता। उ० अपराधु छमियो बोलि पठए बहुत हौं ढीट्यो कई। (मा० १।३२६। छ० ३)

ढीठ–(सं० धृष्ट)-१ बड़ों का ख्याल न करनेवाला, बे अदब, शोख, २ साहसी, हिम्मतवाला। ढीठे–धृष्टता पूर्ण, ढिठाई से भरे हुए। उ० तुलसिदास प्रभु सों एकहि बल बचन कहत अति ढीठे। (वि० १६१)

ढींठी–धृष्टता, ढिठाइ।

ढीठु–दे० 'ढीठ'। उ० १ दुहुँ मिलि कीन्ह ढीठु हठि मोहू। (मा० २।३१४।२)

ढीठो–ढिठाई धृष्टता, गुस्ताखी। उ० प्रभु सों मैं ढीठो बहुत दई है। (गी० २।७८)

ढील–(सं० शिथिल, प्रा० सिढिल)-१ मंद, शिथिल, सुस्त, २ ढिलाई, सुस्ती ३ देर, ४ बालों का कीड़ा जूँ, ५ छोड़ना, क्षमा करना। उ० २ ढील तेरी, बीर, मोहि पीर तें पिराति है। (ह० ३०) ५ ज्यों ज्यों नीच चढ़त सिर ऊपर ज्यों-ज्यों सील बस ढील दई है। (वि० १३९)

ढीला–१ जो कसा न हो, २ सुस्त, धीमा, मद, ३ गीला, ४ जो दृढ़ न रहे, ५ खुला हुआ। ढीले–ढील, शिथिल, सुस्त। उ० भारी गुमान जिन्हैं मन में, कबहूँ न भये रन में तनु ढीले। (क० ६।३२)

ढीलो–शिथिल, ढीला। उ० तैसो कपि कौतुकी डरात ढीलो गात कै कै। (क० ५।३)

ढेंक–(सं०)-एक चिड़िया जिसकी चोंच और गर्दन लबी होती है। उ० ढेक महोख ऊँट बिसरावे। (मा० ३। ३८।३)

ढेरी–(सं० धरण)-राशि, समूह, ढेर। उ० नेकु धका दैहैं ढैहैं ढेलन की ढेरी सी। (क० ६।१०)

ढेरु–ढेर, राशि। दे० 'ढेरी'। उ० सुखमा को ढेरु कैधौं सुकृत सुमेरु कैधौं। (क० ७।१३१)

ढेरै–ढेर को, समूह को। उ० रक लूटिये को माना मनि गन-ढेरै। (गी० ५।२७)

ढेलन–(सं० दल, हि० डला)-मटी या ईंट के टुकड़े। ढेला का बहुवचन। उ० दे० 'ढेरी'। ढेला–(सं० दल)-ईंट, मिट्टी या पत्थर का टुकड़ा।

ढोट–दे० 'ढोटा'।

ढोटनिहूँ–बालका का भी, लड़कों का भी। उ० जस रावरो, लाभ ढोटनिहूँ, मुनि सनाथ सब कीजै। गी० १।४८)

ढोटा–(सं० दुहितृ, हि० ढोटी)-लड़का, बालक, बेटा। उ० रामु लखनु दसरथ के ढोटा। (मा० १।२६१।४) ढोटे–लड़के, बच्चे। उ० ढोटे छोटे छोहरा अभाग भोरे भागि रे। (क० ५।६)

ढोटो–छोटा लड़का। उ० गोरो गरूर गुमान भरो कहौ कौसिक छोटो सो ढोटो है काको ? (क० १।२०)

ढोर (१)-(सं० धार, हि० ढार, ढुरना=इधर-उधर जाना)-१ गाय-बैल आदि चौपाए, पशु, मवेशी, २ सिलसिला।

ढोर (२)-(सं० ढोल)-१ एक बाजा, ढोल, २ ध्वनि।

ढोल–(सं०)-एक बाजा, जिसके दोनों ओर चमड़ा मढ़ा होता है। बड़ी ढोलकी। उ० भेरि ढोल दुदुभी सुहाए। (मा० १।२६३।१)

ढोलू–दे० 'ढोल'। उ० १ कहेउ बजाउ जुझाउ ढोलू। (मा० २।१९२।२)

ढोव–(सं० वोढ=वहन करना)-भेंट की वस्तु जो मगल के अवसर पर भार आदि में भरकर भेजते हैं। उ० लै लै ढोव प्रजा प्रमुदित चले भाँति भाँति भरि भार। (गी० १।२)

# त

तडुल–(सं०)-चावल, अक्षत, चाउर।

तंतु–(सं०)-१ सूत, डोरा, तागा २ ताँत, चमड़े, या नसा की बनी डोरी, ३ मगर, ग्राह, ४ विस्तार, फैलाव, ५ सतान, बच्चे, ६ वंश की परंपरा, ७ धर्म की परंपरा।

तंत्र–(सं०)-१ अधिकार हक, २ उपाय, तदबीर, ३

अधीनता, ४ काम, ५ पक्ष मत, सिद्धांत, ६ सूत, डोरा, ७ तांत, तन्तु, ८ कपड़ा, ९ प्रमाण, सबूत, १० औषधि, दवा, ११ मारण, १२ राज्य, शासन काज, १३ राज कर्मचारी, राजा के नौकर, १४ राज्य प्रबंध, १५ पद, ओहदा, १६ श्रेणी, वर्ग, १७ समूह, झुंड, १८ शपथ, कसम, १९ घर, मकान, २० दल, फौज २१ आनंद, प्रसन्नता, २२ कुल, खानदान, २३ लक्ष्य, २४ झाड़ने फूँकने का मंत्र, २५ हिंदुओं का उपासना-संबंधी एक शास्त्र जो शिव का बनाया कहा जाता है। २६ माया। उ० २६ अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघु कुल मनी। (मा० १।५१।छं०१) तंत्रशास्त्र-शिव प्रणीत एक शास्त्र जो आगम, यामल तथा मुख्यतंत्र इन तीन भागों में विभक्त है। इस शास्त्र के सिद्धांत गुप्त रक्खे जाते हैं, और इनकी शिक्षा लेने के लिए मनुष्य को पहले दीक्षित होना पड़ता है। तंत्र शास्त्र अब केवल मारण, उच्चाटन, वशीकरण आदि मंत्रों के लिए प्रसिद्ध है। यह शास्त्र प्रधानतः शाक्तों का है। इसके मंत्र प्रायः अर्थहीन तथा एक या देढ़ अक्षरों के होते हैं। तंत्रशास्त्र के पाँच मकार (मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा, मैथुन) प्रसिद्ध हैं। तांत्रिकों की उपासना भी भिन्न तरह की होती है। ये अपनी 'चक्रपूजा' में मद्य और मांस का प्रयोग करते हैं तथा नीच जाति की स्त्रियों को नंगी करके उनका पूजन आदि करते हैं। बाद में हिंदुओं की देखादेखी बौद्धों में भी तंत्र का प्रचार हुआ और अनेक ग्रंथ लिखे गए।

तंत्री-(सं०)-१ सितार, बीन आदि बाजे या उनमें लगे तार, २ गुरुच, ३ देह की नसें, ४ निद्रा, नींद, ५ संपादक, ६ रस्सी।

तँबोलिन-(सं० तांबूल)-पान बेचनेवाली स्त्री, पनेरिन, बरइन। उ० रूप सलोनि तँबोलिनि बीरा हाथहि हो। (रा० ६)

त-(सं० तनु)-तो। उ० नाहिं त मौन रहब दिनु राती। (मा० २।१६।२)

तइ-(सं० तापन, हि० तावना—गर्म करना)-तपाकर, आँच देकर, जलाकर, पिघलाकर। तइ-१ जल रही है, तप रही है, २ जली हुई, तप्त, जली, ३ एक प्रकार की कड़ाही। उ० २ दीनदयालु दुरित दुख दुनी दुसह तिहुँ ताप तई है। (वि० १३९) तये-तपाया, गर्म किया, जलाया, कष्ट दिया। उ० पाप-खानि जिय जानि अजा मिल जमगन तमकि तये ताको भेते। (वि० २४१) तयो-जला, जलता रहा। उ० राम बिमुख सुख लह्यो न सपनेहुँ, निसि बासर तयो तिहुँ ताप। (वि० ८३)

तउ-(सं० ततः)-१ तो भी, तिस पर भी २ त्यों, वैस। उ० १ तउ न तजा तनु जीव अभागें। (मा० २।१६६।२)

तउ-दे० 'तउ'। उ० १ है अभिमान तऊ मन में, जन भाषिहै दूसरे दीनन पाहीं। (क०७।१४)

तक-(सं० अत + क)-पर्यंत, तलक, लौं।

तकइ-(सं० तर्क, प्रा० तक्क हि० ताकना) ताकता है, देखता है। उ० जिमि गर्इँ तकइ लेउँ केहि भाँती। (मा० २।१३।२) तकत-ताकते हैं, देखते हैं, प्रतीक्षा करते हैं। उ० जटा मुकुट सिर सारस नयननि गौंहैं तकत सुभौंह सकोरे। (गी० ३।२) तकहीं-ताकते हैं, देखते हैं। उ० भूप बचन सुनि इत उत तकहीं। (मा० १।२६७।४) तकि-१ ताककर, देखकर, २ लक्ष्य कर, ३ निशाना साधकर। उ० ३ हुमगि लात तकि कूबर मारा। (मा० २।१६३।२) मु० तकि तकि-देख देखकर, लक्ष्य कर, निशान साध कर। उ० दोउ तन तकि तकि मयन सुधारत सायक। (जा० १४) तकु-१ देख, निहार, ताक, २ आश्रय ग्र, पनाह ले। उ० २ तुलसी तकु तासु सरन जाते सब लहत। (वि० १३३) तके-१ देखे, खोजे, २ शरण ली। उ० २ देखत तके मेरुगिरि खोहा। (मा० १।१८२।३) तकेउ-१ लक्ष्य किए, २ लक्ष्य करके चल, देखकर उधर ही चले, ३ ताका, देखा। उ० २ मनहुँ सरोवर तकेउ पियासे। (मा० १।२०७।४) तर्कै-देखते हैं, देखा करते हैं। उ० ताहि तकैं सब ज्यों नदी बारिधि बुलाइ। (वि० ३५) तक्यो-देखा, देख लिया। उ० चले जनु तक्यो तडाग तृषित गज घोर घाम के लागे। (गी० २। ६८)

तकिया-(फ़ा०)-१ आश्रय, सहारा, शरण, २ कपड़े का एक थैला जिसमें रुइ आदि भरी रहती है और जिसे सोते समय सर के नीचे या हाथ या पीठ के सहारा के लिए बिस्तर पर रखते हैं। उ० १ सहँ तुलसी के कौन को काको तकिया रे। (वि० ३३)

तगण-(सं०)-छंद शास्त्र में तीन वर्णों का वह समूह जिसमें पहले दो गुरु और फिर एक लघु वर्ण होता है। इसका चिह्न ऽऽ। है। मतोप में भी गुरु, गुर तथा लघु है इसी आधार पर तगण का संतोष की जगह तुलसी ने प्रयोग किया है। उ० तुलसी तगन बिहान भर सदा मगन के बीच। (स० ३८६)

तग्य-दे० 'तज्ञ'। उ० तग्य कृतग्य अग्यता भंजन। (मा० ७।३४।३)

तज (१)-(सं० त्यजन, हि० तजना)-१ त्यागो, छोड़ दो, २ छोड़कर, ३ त्याग। तजइ-छोड़ता, छोड़ता है, त्याग देता है। उ० लुबुध मधुप इव तजइ न पासू। (मा० १। १०।२) तजई-छोड़ता है, छोड़ता, त्यागता। उ० सलि परतु पतु राउ न तजई। (मा० १।२२२।२) तजउँ-१ छोड़ता, २ छोड़ूँ। उ० १ तजउँ न तन निज इच्छा मरना। (मा० ७।१६।३) तजत-१ छोड़ता, छोड़ता है, २ छोड़ते हुए। उ० १ बिनु हरिभजन इँनारुन के फल, तजत नहीं करुआई। (वि० १०४) तजन-तजना, छोड़ना। उ० तजन चहत सुचि स्वामि सनेही। (मा० २। ४७।२) तजहिं-छोड़ देते हैं, त्याग देते हैं। उ० सुमिरत रामहि तजहिं जन तृन सम बिषय बिलासु। (मा० २। १४०) तजहि-छोड़ो, छोड़ दो। उ० अब मोहि दिपु एहि बिधि सुनहि सुंदरि तजहि मगन मदा। (मा० ६।११ छं०१) तजहीं-छोड़ते, छोड़ते हैं। उ० चण्डु त्याग भागहि नहिं तजहीं। (मा० ३।७३।१) तजहु छोड़ो, त्यागो त्यागना। उ० जौ तुम तजहु भजौं न आन प्रभु यह प्रमान पन मोरे। (वि० ११२) तजा-छोड़ी, छोड़ दा। तजा छोड़ा, त्यागा। उ० तउ न तजा तनु जीव

अभागें। (मा० २।१६६।३) तजि–छोड़कर, त्यागकर। उ० तौ तजि विषय विकार सार भजु, अजहूँ जो मैं कहौं सोइ करु। (वि० २०५) मु० तजि तजि–छोड़ छोड़कर। उ० जेहि वाटिका बसति तहँ खग मृग तजि तजि भजे पुरातन भौन। (गी० ५।२०) तजिअ–छोड़ना, छोड़ देना। उ० नीति न तजिअ राजपदु पाएँ। (मा० २।१५२ २) तजिय–छोड़ो, छोड़ दो, छोड़ देना। उ० तात तजिय जनि छोह मया राखवि मन। (जा० १८८) तजिहउँ–त्याग दूँगा, छोड़ूँगा। उ० तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। (मा० १।६४।४) तजी–त्यागा, छोड़ा। उ० बिनु अघ तजी सती असि नारी। (मा० १।१०४।४) तजु–छोड़, छोड़ दे, त्याग। उ० करु विचार, तजु विकार, भजु उदार रामचंद्र। (वि० ७४) तजे–छोड़ा, छोड़ दिया, छोड़ दिया है। उ० तजे राम हम जानि कलेसू। (मा० २।८६।२) तजेउँ–त्याग दिया, छोड़ दिया। उ० पुनि प्रयास बिनु सो तनु तजेउँ गएँ कछु काल। (मा० ७।१०६ख) तजेउ–१ त्यागा, त्याग दिया, २ त्यागकर। उ०२ तनु धनु तजेउ वचन पन राखा। (मा० २।३०।४) तजेहि–त्यागने में ही। उ० हरि वियोग तनु तजेहि परम सुख ए राखहि सोइ है वरियाई। (कृ० ५६) तजेहु–तजा, छोड़ा, छोड़ दिया। उ० मम हित लागि तजेहु पितु माता। (मा० ६। ६१।२) तजौं–तजूँ, त्यागूँ, छोड़ूँ। उ० भागौं तुरत तजौं यह सैला। (मा० ४।१।३) तज्यो–छोड़ा, त्याग दिया। उ० ताहू तें परम कठिन जान्यो ससि तज्यो पिता तब भयो ब्योमचर। (कृ० ३१)

तज (२)–(सं० त्वच्)–तमाल का वृक्ष।

तज्ञ–(सं०)–तत्वज्ञानी, पंडित ज्ञानी। उ० तज्ञ, सर्वज्ञ, यज्ञेश अच्युत विभो। (वि० १०)

तट–(सं०)–१ किनारा, कूल २ नजदीक, समीप, ३ खेत, क्षेत्र, ४ प्रदेश। उ० १ घस मारीच सिंधुतट जहवाँ। (मा० ३।२३।४) तटहि–किनारों पर। उ० डारहि रव तटन्हि नर लहहीं। (मा० ७।२३।२)

तटिनि–दे० 'तटिनी'। उ० मदाकिनि तटिनि तीर, मजुल मृग विहग भीर। (गी० २।४४)

तटिनी–(सं०)–नदी, सरिता। उ० चलि री आली देखन लोयन-लाहु पेखन ठाढ़े सुरतरु-तर-तटिनी के तट हैं। (कृ० २०)

तटी–(सं०)–१ तीर, किनारा, २ नदी, सरिता, ३ घाटी, तराई।

तड़ाग–(सं० तडाग)–तालाब, सरोवर, पोखरा। उ० बन बाग कूप तड़ाग सरिता सुभग सब सक को कही। (मा० १।१४१।छं०१)

तड़ागा–दे० 'तड़ाग'। उ० ते सब जलचर बारि तड़ागा। (मा० १।२७।५)

तड़ागु–दे० 'तड़ाग'। उ० बागु तड़ागु बिलोकि प्रभु हरषे बंधु समेत। (मा० १।२२७)

तड़ित–(सं० तडित्) बिजली, विद्युत। उ० तड़ित विनि दक पीत पट उदर रेख वर तीनि। (मा० १।१४७)

तत (१)–(सं० तत्)–१ उसने २ उस, वह। उ० १ जत समान तत नाम संभु अपर वेद गुर मान। (स० २५)

तत (२)–(सं०)–१ वायु, २ विस्तार, ३ पिता, ४ पुत्र, ५ सारंगी, सितार आदि तारवाले बाजे।

ततकाल–दे० 'तत्काल'। उ० ततकाल तुलसिदास जीवन जनम को फल पाइहै। (वि० १३५)

ततकाला–दे० 'ततकाल'। उ० मज्जनफल पेखिअ ततकाला। (मा० १।३।१)

तति–(सं०)–१ श्रेणी, पंक्ति, २ समूह, झुंड, ३ विस्तार, ४ विस्तीर्ण, चौड़ा। उ० ४ यज्ञोपवीत पुनीत विराजत गूढ़ जत्रु बनि पीन अंस तति। (गी० ७।१७)

तत्–(सं०)–१ उस, २ ब्रह्म का एक नाम, ३ हवा, वायु। उ० १ मत्वा तद्रघुनाथ नाम निरत स्वान्तस्तम शान्तये। (मा० ७।१३०।श्लो० १)

तत्काल–(सं०)–तुरत, उसी समय।

तत्त्व–(सं०)–१ वास्तविक स्थिति, यथार्थता, असलियत, २ जगत का मूल कारण, ३ पंचभूत, ४ ब्रह्म, परमात्मा, ५ सार, सार वस्तु ६ सारांश, ७ उद्देश्य। उ० ३ ब्रह्म निरूपन धरम विधि बरनहिं तत्त्व विभाग। (मा० १।४४)

तत्पर–(सं०)–१ सन्नद्ध, मुस्तैद, उद्यत, तैयार, २ निपुण, चतुर, होशियार, ३ लीन, निरत। तत्परौ–दोनों तत्पर, दोनों लीन। उ० सीतान्वेषण तत्परौ पथिगतौ भक्ति प्रदौ तौहिनः। (मा० ४।श्लो० १)

तत्र–(सं०)–वहाँ, उस जगह, उस स्थान पर। उ० तत्र स्वदकि सज्जन समागम सदा भवतु मे राम विश्राम मेकम्। (वि० ५७) तत्रैव–वहीं पर, उसी जगह। उ० यत्र तिष्ठति तत्रैव अज शर्व हरि सहित गच्छति क्षीराब्धि-वासी। (वि० ५७)

तत्व–दे० 'तत्त्व'।

तत्वज्ञ–(सं० तत्त्वज्ञ)–दे० 'तत्वदर्शी'।

तत्वदरसी–दे० 'तत्वदर्शी'। उ० एहि आरती निरत सम कादि श्रुति सेष सिव देव ऋषि अखिलमुनि तत्त्वदरसी। (वि० ४७)

तत्वदर्शी–(सं० तत्त्वदर्शिन्)–तत्वज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी जो ब्रह्म, सृष्टि तथा आत्मा आदि के संबंध में यथार्थ ज्ञान रखता हो।

तथा–(सं०)–१ और, व, २ इसी तरह, ऐसे ही, इस प्रकार, ३ सत्य, ४ सीमा, हद, ५ निश्चय, ६ समानता। उ० १ जिमि गज-दसन तथा मम करनी सब प्रकार तुम जानहु। (वि० ११८)

तथापि–(सं०)–तो भी, तिस पर भी तब भी। उ० प्रभुहि तथापि प्रसन्न विलोकी। (मा० १।१६४।४)

तथास्तु–१ एवमस्तु, ऐसाही हो, इसी प्रकार हो, २ वैसा ही, उसी प्रकार।

तथ्य–(सं०)–सत्यता, सच्चाई, यथार्थता।

तदनंतर–(सं०)–उसके पीछे, उसके बाद, उसके उपरांत।

तदपि–(सं०)–तो भी, तिस पर भी, तथापि। उ० जानत निज महिमा, मेरे अघ, तदपि न नाथ सँभारो। (वि० ६४)

तदा–(सं०)–उस समय, तब, उस काल।

तदि–तो, तब।

तद्–(सं०)–१ वह, २ उसका, ३ तब, उस समय। उ०

२ मोह दसमौलि तद्भ्रात अहंकार, पाक पारिजित् काम विश्रामहारी। (वि० ५८)

तन-(प्रा०, तु० स० तनु)-१ शरीर, देह, जिस्म, २ तरफ़, ओर। उ० १ तुलसी सांमति कीजै आगे देया तन की। (वि० ७४) २ हेँम राधा जानकी लपन तन हेरि-हेरि। (क० २।१ ) तनहि-तनको, शरीर को। उ० अब नहि लाज-गरन सुनि मधुवन तनहि तजत नहिं बार लगाइ। (कृ० २५)

तनक-(स० तनु, हि० तनिक)-थोड़ा, छोटा, तुच्छ। उ० तो कत गिरी तेँ गर तृन तेँ तनक भो। (क० ७।७३) तनकाऊ-थोड़ा भी, ज़रा भी, कुछ भी। तनको तनिक भी। उ० तप तीरथ साधन जोग विराग सोँ होइ नहीं दृढ़ता तनकौ। (क० ७।८७)

तनत्रान-(स० तनत्राण)-कवच, ज़िरहबख्तर।

तनय-(स०)-पुत्र, बेटा, लड़का। उ० पवन तनय सतन हितकारी। (वि०३६) तनया-(स०)-लड़की, पुत्री। उ० तात जनक तनया यह सोइ। (मा० १।२३१।१)

तनरुह-(स० तनूरुह)-बाल, रोम, रोआँ। उ० हरषवत धर अधर भूमि सुर तनरुह पुलक जनाई। (गी० १।१)

तनाए-(स० तान = विस्तार)-तनवाए। उ० कलस चँवर तोरन धुजा सुवितान तनाए। (गी० १।६)

तनिक-(स० तनु = अल्प)-थोड़ा, अल्प कम।

तनियाँ-(स० तनिका)-१ लँगोट, कौपीन, २ कछनी, जाँघिया। उ० २ तनियाँ ललित कटि, विचित्र टेपारो सीस। (कृ० २)

तनी (१)-(स० तान, हि० तानना)-तानी फैलाई। उ० कलित कला कांति अति भाँति प्रभु तिन्ह तनी। (गी० १।५)

तनी (२)-(स० तनिका)-अँगरखा आदि बाँधने की डोरी, बंद।

तनु-शरीर को। उ० शक्ने द्वाभमतीव सुंदर तनुं शार्दूल चर्माम्बर। (मा० ६।१।श्लो०२) तनु-(स०)-१ शरीर, देह, २ दुबला, कृश, ३ चमड़ा, खाल, ४ केंचुली, ५ कोमल, ६ सुंदर, ७ थोड़ा, अल्प, ८ विस्तार, ९ दिशा, ओर, १० सूक्ष्म, ११ स्त्री, १२ ज्योतिष में लग्न स्थान। उ० १ अवध तजें तनु नहिं संसारा। (मा० १। ३१।०) ६ धोए मिटै न, मरै भीति-दुख, पाइय यहि तनु हेरे। (वि० १११)

तनुजा-(स०)-कन्या, बेटी। उ० मोहि मानत को अनुजा तनुजा। (मा० ७।१०२।३)

तनुरुह-(स० तनूरुह)-बाल, रोम, रोआँ।

तनू (१)-(स०)-शरीर, देह।

तनू (२)-(स० तनु)-थोड़ा, कम।

तनूजो-(स० तनूज)-बेटा, लड़का। उ० भीत पुनीत कियो कपि भालु को, पाल्यो ज्यों काहु न बाल तनूजो। (क० ७।५)

तनै-(स० तनय) पुत्र, बेटा। उ० कोउ उपजे कोउ मूआ जाति भए रामहन भायत-तनै। (६।५०)

तनोति-विस्तृत करता है, विस्तार करता है। उ० स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ, गाथाभाषानिबन्धमति मंजुल मा तनोति। (मा० १।१।श्लो०७) तनोतु-विस्तार करें, फैलावे। उ० सतत शतनोतु मम राम। (मा० ३।११।८)

तनोरुह-(स० तनूरुह)-बाल, केश, रोम, रोआँ। उ० अनुज सहित अति पुलक तनोरुह। (मा० ७।२।२)

तन्मय-(स०)-लीन, मग्न, निरत, लगा हुआ।

तप (१)-(स० तपस्)-१ शरीर को कष्ट देनेवाले वे व्रत-नियम आदि जो चित्त की शुद्धि तत्त्वज्ञान तथा ब्रह्म की प्राप्ति आदि के लिए किए जाते हैं। तपस्या। २ शरीर या इंद्रिय को वश में रखने का धर्म, ३ नियम, ४ अग्नि, ५ एक लोक का नाम, ६ एक कल्प का नाम। उ० १ कलि न विराग जोग जाग तप त्याग, रे! (वि० ६७) तपहिं-तप में, तपस्या में। उ० बिसरी देह तपहिं मनु लागा। (मा० १।७४।२)

तप (२)-(सं०)-१ ताप, गरमी, २ ग्रीष्म ऋतु, ३ बुखार, ज्वर।

तपइ-(स० तप)-तपता है, जलता है, जलने लगा। उ० तपइ अवाँ इव उर अधिकाइ। (मा० १।५८।२) तपत-१ तपता है, जलता है, २ कष्ट सहता है, मुसीबत झेलता है, ३ प्रभुत्व दिखलाता है, आतंक फैलाता है, ४, गर्म, तपा हुआ। उ० १ तुलसी तपत तिहुँ ताप जग, जनु प्रभु छठी छाया लही। (गी० १।५) तपैहे-तपेगा, जलेगा। उ० तौ लौं तू कहूँ जाय तिहूँ ताप तपिहै। (वि० ६८)

तपन-(स०)-१ ताप, दाह, जलन, आँच, २ क्लेश, ३ सूर्य, ४ गरमी, ग्रीष्म, ५ घाम धूप, ६ सूर्यकांत मणि, सूरजमुखी, ७ एक नरक का नाम, ८. मदार, आक। उ० २ तपन तीछन तरन, तीव्रतापघ्न तपरूप तनुभूप तमपर तपस्वी। (वि० ५५) तपनि-दाह, गर्मी, जलन। उ० तुलसी कोटि तपनि हरै, जो कोउ धारै कान। (वै० २१)

तपशालि-(स० तप शालिन्)-तपशाली, तपस्वी। उ० आए मुनिबर निकर तब कौसिकादि तपसालि। (मा० १। ३१०)

तपसिन्ह-तपस्वियों, मुनियों। उ० मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती। (मा० २।४१।३) तपसी-(स० तपस्वी)-तप करनेवाला, तपस्वी। उ० तपसी धनवंत दरिद्र गृही। (मा० ७।१०१।१)

तपस्या-(स०) तप, व्रतचर्या, तपश्चर्या। उ० मूरतिमंत तपस्या जैसी। (मा० १।७८।१)

तपस्वी-(स० तपस्विन्)-जो तप करता हो, तपस्या करनेवाला। उ० तपन तीछन तरन, तीव्र तापघ्न तपरूप तनु भूप तमपर तपस्वी। (वि० ५५)

तपित-१ गर्म, तप्त, जला हुआ, २ भाग।

तपी-तप करनेवाला, तपस्वी, योगी। उ० द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी। (मा० ७।१०१।७)

तपु-तप, तपस्या। उ० मातु सुकृत प्रभु तीरथ त्यागू। (मा० २।१०७।३)

तपोधन-जिनका धन तप है, तपस्वी, तपी। उ० सिद्ध तपोधन जोगिजन सुर किंनर मुनि बृंद। (मा० १।१०५)

तर्यो-१ तपाया, जलाया, २ तपस्या में तपाया। उ० २

तेन तप्त हुतं दत्तमेवाखिलं, तेन सर्वं कृत कर्मजाल। (वि० ४६) तप्त-(स०)-१ तपाया या तपा हुआ, जलता हुआ, गर्म, २ दुखी, पीड़ित। उ० १ तप्त कांचन-वस्त्र शस्त्रविद्या निपुन सिद्ध सुर-सेव्य पाथोज नाभ। (वि० ५०)

तब-(?) १ उस समय, उस वक्त, २ इस कारण, इस वजह से। उ० १ तुलसिदास भव त्रास मिटै तब जब मति यहि सरूप अटकै। (वि० ६३) तबहिं-उसी समय, तब ही। उ० तबहिं सप्तरिषि सिव पहिं आए। (मा० १। ७७।४) तबहीं-तभी, उसी समय। उ० हठ परि हरि घर जाएहु तबहीं। (मा० १।७२।२) तबहुँ-तब भी, उस समय भी। उ० तबहु न बोल चेरि बड़ि पापिनि। (मा० २। १३।४) तबहूँ-तब भी, तभी, उसी समय। उ० चलेहुँ प्रसग दुराएहु तबहूँ। (मा० १।१२७।७) तबैहीं-तभी, तब ही। उ० तुम अपनायो हौं तबैहीं परि जानिहौं। (क० ७।६३)

तम -अधकार। उ० मत्वा तद्रघुनाथ नाम निरत स्वान्त स्तम शांतये। (मा० ७।१३१। श्लो० १) तम (१)-(स० तमस्)-१ अधकार, अँधेरा, २ अज्ञान, अविवेक, ३ क्रोध, गुस्सा, ४ राहु, ५ पाप, ६ सुअर, वाराह, ७, कालिमा, श्यामता, ८ नरक, ९ तमाल वृक्ष, १० तीनों गुणों में से एक, तमोगुण, ११ शोक, शोच, १२ अशांति। उ० १ कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग। (मा० ४।१५ ख) २ नखद्युति भगत हृदय तम हरना। (मा० १।१०६।४)

तम (२)-(स०)-एक प्रत्यय जो 'अत्यत' अर्थ में विशेषण शब्दों के अत में लगता है। जैसे सुन्दरतम=अत्यत सुन्दर, सबसे सुन्दर।

तम (३)-(स०)-उसको। उ० तमेकमद्भुत प्रभुं। (मा० ३। ४। छ० ६)

तमकि-(अनु० तमकना)-क्रोध या आवेश दिखलाकर, त्योरियाँ चढ़ाकर, तमककर, तमतमाकर। उ० सो सुनि तमकि उठी कैकई। (मा० २।७६।१) तमके-१ गर्म हुए २ गर्जे, ३ वेग से झपटे। उ० १ तमके घननाद से बीर पचारि कै, हारि निसाचर सैन पचा। (क ६।१२) तमक्यो-क्रोधित हुआ। उ० या मन गुनति दुसासन दुर जन तमक्यो तकि गहि दुहुँ कर सारी। (कृ० ६०)

तमकूप-बिना पानी का कूआँ, अधा कूआँ। उ० जानत अर्थ अनर्थ रूप, तमकूप परब यहि लागे। (वि० ११७)

तमचुर-(स० ताम्रचूड़)-मुरगा, कुक्कुट। उ० तमचुर मुखर, सुनहु मेरे प्यारे! (गी० १।३३)

तमसा-(स०)-टौंस नाम की नदी विशेष। उ० तमसा तीर तुरत रघु आया। (मा० २।१४७।१)

तमा (१)-(स० तमस्)-१ राहु, २ लोभ, लालच। तमाइ (१)-लोभ, लालच। उ० आपकी न, तप स्प कियो न तमाइ जोग। (क० ७।७७) तमाहि-तम ही, लालच ही। उ० तुलसी तमाहि ताहि राहु बीर आन की। (ह० १३)

तमा (२)-(स०)-रात, रजनी।

तमाइ (२)-(?)-तैयार होकर, मुस्तैद होकर।

तमारि-(स०)-सूर्य, अँधेरे का शत्रु।

तमारी-दे० 'तमारि'। उ० गनप गौरि तिपुरारि तमारी। (मा० २।२७३।२)

तमाल-(स०)-१ एक वृक्ष विशेष, जो आबनूस की तरह काला होता है। २ एक प्रकार की तलवार, ३ काले कत्थे का पेड़, ४ मोरपखी, ५ वरुण वृक्ष, ६ चदन का टीका। उ० १ तरुन तमाल बरन तनु सोहा। (मा० २।११५।३)

तमाला-दे० 'तमाल'। उ० १ पाकरि जबु रसाल तमाला। (मा० २।२३७।१)

तमि-(स० तमी)-रात, निशा, यामिनी। उ० भानु गोत्र तमि ताडु पति कारन अति हित जाहि। (स० २४६)

तमी-(स०)-अँधेरी रात, रात। उ० तहँ न मोह भय तम तमी, कलि कज्जली बिलास। (दो० ४७१)

तमीचर-(स०)-रात में घूमनेवाले, राक्षस, निशाचर। उ० मिटे घने तमीचर तिमिर भुवन के। (क० ६।३)

तमोगुण-१ ३ गुणों में से एक, सांख्य शास्त्रानुसार प्रकृति का तीसरा गुण जो भारी और रोकनेवाला माना गया है। जिस व्यक्ति या जीव में इस गुण की अधिकता होगी वह बुराइयों की ओर झुकेगा। २ अँधेरा, अज्ञान, तमस्।

तरंग-(स०)-१ लहर, हिलोर, मौज, २ चित्त की मौज, आनद, मस्ती, ३ उत्साह, ४ सगीत के स्वरों का उतार-चढ़ाव, ५ वस्त्र, कपड़ा। उ० १ पावन गग तरग माल से। (मा० १।३२।७) २ नाचहिं नाना रग, तरग बढ़ावहिं। (पा० १०४)

तरंगा-दे० 'तरग'। उ० १ रामु बिलोकहिं गग तरगा। (मा० २।८७।३)

तरगिणि-दे० 'तरगिनि'।

तरगिनि-(स० तरगिणी)-तरगवाली, नदी, सरिता। उ० सोइ बसुधातल सुधा तरगिनि। (मा० १।३१।४)

तरगी-मौजी, मनमौजी जो जी में आवे, वही करनेवाला, मस्त। उ० नाचहिं गावहिं गीत परम तरगी भूत सब। (मा० १।६३)

तरति-(स०)-तर जाते हैं, पार कर जाते हैं। उ० १ हरिं राभजति येऽतिदुस्तर तरति ते। (मा० ७।१२२ ग) तर (१)-(स०)-१ (क) तरना, पार करना, पार करने की क्रिया, (ख) पारकर, तरकर, (ग) तरता है, २ अग्नि, ३ वृक्ष, ४ रास्ता, मार्ग ५ गति, ६ पीछे, ७ कठिन, ८ महान्। उ० १ (ग) गाइ राम गुन-गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास। (दो० ५६२) तरत-१ तर जाता है, पार होता है, मुक्त हो जाता है २ तर रहे हैं, ३ तर गए, ४ तरते हुए, ५ तरने में, पार करने में। उ० ५ यह लघु जलधि तरत कति बारा। (मा० ६।१।१) तरन-१ तरनेवाला, मुक्त होनेवाला, पार करनेवाला, २ पार करना, तरना, ३ उद्धार, निस्तार, ४ बेड़ा, पानी का बेड़ा, ५ स्वर्ग, ६ तारनेवाला। उ० १ होत तरन तारन नर तेऊ। (मा० २।२१७।२) तरहिं-तरते हैं, तर जायँगे। उ० मादर सुनहिं ते तरहिं भव सिधु बिना जल जान। (मा० ५।६०) तरहि-तर जायगा,

मुक्त हो जायगा। उ० तुलसिदास भव तरहि, तिहूँ पुर तू पुनीत अस पायहि। (वि०२३७) तरहीं-तर जाते हैं। उ०सोइ जल गाइ भगत भव तरहीं। (मा०१।१२२।१) तरिए-तर जाऊ, तरूँगा। उ० जानत हूँ मन बचन कर्म पर हित कीन्हें तरिए। (वि० १८६) तरिगे-तर गए, मुक्त हो गए। उ० अनायास भवनिधि नीच नीके तरिगे। (गी० २।३२) तरित-तरता, पार जाता। उ० घोर भव अपार सिंधु तुलसी कैसे तरित? (वि० १६) तरिबे-तरना, पार उतरना। उ० हमहुँ निठुर निरुपाधि-नेह निधि निज भुज बल तरिबे हो। (कृ० ३६) तरिय १ तरिए, पार उतरिए, २ पार होता हूँ, उतरता हूँ, ३ तरेगा, पार होगा। उ० ३ करि उपाय पचि मरिय, तरिय नहिं जब लगि करहु न दाया। (वि० ११६) तरिहउँ-तर जाऊँगा। उ० पद पकज विलोकि भव तरिहउँ। (मा० ७।१८।४) तरिहहिं-तरेंगे, तर जायँगे। उ० गाइ-गाइ भवनिधि नर तरिहहिं। (मा० ६।६६।२) तरिही-तर जायगा। उ० सो बिनु श्रम भवसागर तरिही। (मा० ६।३।२) तरी (१)-तर गई, मुक्त हो गई। उ० जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनि पतिनी तरी। (मा० ७।१३। छ० ४) तरे (१)-पार उतरे, पार हुए, तैरे। उ० श्री रघुबीर प्रताप तें सिंधु तरे पाषान। (दो० १२६) तरै-तरे, पार करे, तर जाय। उ० जो न तरै भव सागर। (मा० ७।४४) तरो-तर जाय, पार हो जाय। उ० राम नाम या हित भवसागर, चाहै तरन तरो सो। (वि० १७३) तरौं-तर जाऊँ, पार हो जाऊँ। उ० तुलसिदास प्रभु-कृपा विलोकनि गोपद ज्यों भवसिंधु तरौं। (वि० १४१) तरयो-तर गया, तर गया था।

तर (२)-(फा०)-१ भींगा, गीला, २ शीतल, ठंढा, ३ हरा।

तर (३)-(सं० तल)-तले नीचे। उ० एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ। (मा० १।१०६।२)

तर (४)-(सं०) एक प्रत्यय जो विशेषणों में दूसरे की अपेक्षा आधिक्य सूचित करने के लिए लगाया जाता है, जैसे श्रेष्ठतर। उ० भ्रमत आमोद बस मत्त मधुकर निकर मधुरतर मुखर कुर्वन्ति-गान। (वि०२१)

तरक-दे० 'तर्क'। उ० ३ तासु तरक तिनगन मन मानी। (मा० २।२२२।१)

तरकस-(फा० तरकश)-तीर रखने का चोंगा, तूणीर। उ० तन तरकस से जात हैं, स्वास सरीखे तीर। (स० १२०)

तरकसी-छोटा तरकश। उ० धरे धनु सर कर, कसे कटि तरकसी पीरे पट ओढ़े चले चारु चालु। (गी० १।४०)

तरका-तर्क करके, हुज्जत करके। उ० परहिं जे दूषहिं स्रुति करि तरका। (मा० ७।१००।२) तरकि (१)-(सं०तर्क)-१ तर्क कर, हुज्जत कर। उ० १ तरकि न सकहिं सकल अनुमानी। (मा० १।३४१।४) तरकी-तर्क की, विचार की। उ० मीति प्रतीति आइ नहि तरकी। (मा० २। २८३।२)

तरकि (२)-(अनु० तरकना)-उछलकर, कूदकर। उ० सुमिरि राम, तकि तरकि तोयनिधि लंक लूक सो आयो। (गी० ५।११) तरकेउ (१)-(अनु० तरकना)-कूदा, उछला। उ० तरकेउ पवन तनय बल भारी (मा० ५। १।३)

तरकि (३)-(अर० तर्क=छोड़ना, त्याग)-छोड़कर त्याग कर। उ० मोह बस पैठो तोरि तरकि तराक हौं। (क० ४०)

तरकेउ (२)-(अनु० तड़कना)-तड़का टूटा, चटक गया।

तरज-(सं० तर्जन)-१ तड़प, डाँट, डपट, २ डाँटकर, डपट कर।

तरजत-१ तड़पता है, गरजता है, २ तरजना, तड़पना। तरजति-डाँटती है, धमकाती है। उ० गरजति कहा तरजनिन्ह तरजति बरजति सैन नयन के कोए। (कृ० ११) तरजि-तरजकर, तड़पकर, डराकर। उ० उपल बरषि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर। (दो० २८१) तरजि-डाँट दीजिए, डाँटिए। उ० सरुष बरजि तरजिए तरजनी, कुम्हिलैहैं कुम्हड़े की जई है। (वि० १३३) तरजी-१ डाँटा, तर्जन किया, निरादर किया, २ तड़प कर उत्तर दिया, ३ मना किया। उ० २ नहिं जान्यों वियोग सो रोग है आगे झुकी तब हौं, तेहि सों तरजी। (क० ७।१३३)

तरजन-तर्जन, डाँट, झिड़की।

तरजनी-(सं० तर्जनी)-अँगूठे के पास की उँगली। उ० सरुष बरजि तरजिए तरजनी, कुम्हिलैहैं कुम्हड़े की जई है। (वि० १३३)

तरजनिन्ह-तर्जनियों से, अँगूठे के पास की उँगली से। उ० गरजति कहा तरजनिन्ह तरजति बरजति सैन नयन के कोए। (कृ० ११)

तरण-(सं०)-१ नदी के पार जाना, पार होना, २ उद्धार, निस्तार, ३ पानी पर तैरनेवाला तख्ता, बेड़ा, ४ स्वर्ग, ५ मुक्ति पानेवाला, मुक्त, तैर जानेवाला पार करनेवाला। उ० ५ जयति समाम-सागर भयंकर-तरण रामहित-करण बरबाहु-सेतू। (वि० ३८)

तरणि-(सं०) १ सूर्य, भानु, २ नाव, नौका, तारनेवाली, पार करनेवाली, ३ उद्धार, ४ तरना, पार करना।

तरणी-दे० 'तरणि'।

तरनि दे० 'तरणि'। उ० १ प्रभु तरनि-अरि-आदि कई तुलसी आरभट भव। (स० २२०) २ सरल-सुभ करनि भवसरिता तरनि, गावत तुलसिदास कीरति पवनि। (गी० ३।२) तरनिउ-नाव भी, नौका भी। उ० तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई। (मा० २।१००।३) तरनिहिं-सूर्य को, तरणि को। उ० तिमिर तरुन तरनिहि मकु गिलई। (मा० २।२३१।१)

तरनिसुता-(सं० तरणिसुता)-यमुना, रविनंदिनी। उ० विधि उलटी गति राम की तरनिसुता अनुमान। (स० ४०२)

तरनी-(सं० तरणि)-१ नौका, २ सूर्य, ३ तरने की वस्तु। उ० १ चढ़त मनाग भ्रमि लघु तरनी। (मा० ६।२४।४) २ भे दुर्गत पातक तम तरनी। (मा० २।२४८।१)

तरपन-दे० 'तर्पण'। उ० तरपन होम करहिं बिधि नाना। (मा० ३।१२६।४)

तरपहिं–तड़पते हैं, गर्जते हैं।
तरल–(सं०)–१ हिलता-डोलता, चंचल, २ क्षणभंगुर, अस्थिर, ३ द्रव, पानी की तरह पतला, ४ चमकीला, ५ पोला, खोखला, ६ हार के बीच की मणि, ७ हार, ८ हीरा, ९ लोहा, १० घोड़ा, ११ तल, पेंदा। उ० १ तरल-तृष्ण तमी-तरणि धरनीधरन सरन भय हरन करुनानिधान। (वि०४४)
तरवारि–(सं०) तलवार, खग। उ० मनहुँ रोष तरवारि उघारी। (मा० २।३१।१)
तरसखा अत्यंत मित्र, अच्छा मित्र, सच्चा मित्र। उ० सो स्वामी सो तरसखा सो वर-सुखदातार। (स०६०१)
तरसत–तरस रहे हैं, ललच रहे हैं। उ० हम पँख पाइ पींजरनि तरसत, अधिक अभाग हमारो। (गी० २।६६) तरस्यो–तरसा, ललचा। उ० ज्यों रघुपति-पद पदुम परम को तनु पातकी न तरस्यो। (वि० १७०)
तराक–(प्रा० तड़ाक)–चट से, तड़ाक से। उ० मोह बस बैठो तोरि तरकि तराक हौं। (ह० ४०)
तरि–(सं० तरी) नाव, नौका। उ० बहुत पतित भवनिधि तरे बिनु तरि बिनु बेरे। (वि० २७३)
तरी (२)–(सं०) नौका, नाव।
तरीवन–(सं० ताड़, हिं० ताड़, तरिवन)–कान का एक गहना, कर्णफूल। उ० काने कनक तरीवन, बेसरि सोहइ हो। (रा० ११)
तरु–(सं०)–१ पेड़, वृक्ष, २ यमलार्जुन का पेड़, ३ कल्प वृक्ष। उ० १ हेमलता जनु तरु तमाल ढिग नील निचोल ओढ़ाइ। (गी० ६२) ३ महि पत्री करि सिंधु मसि, तरु लेखनी बनाइ। (वै० ३५) तरुजीवी–वृक्ष से जीविका प्राप्त करनेवाले। तरुहिं–पेड़ में, वृक्ष में। उ० जो फलु चहिअ सुरतरुहिं सो बरबस बबूरहिं लागइ। (मा० १।१६। छ०१) तरुहि–पेड़ से, वृक्ष से। उ० कनक तरुहि जनु भेंट तमाला। (मा० ३।१०।१२) तरो–वृक्ष का, पेड़ का। उ० मूलं धर्मतरोर्विवेक जलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं। (मा० ३।१। श्लो० १)
तरुण–(सं०)–१ जवान, युवा, २ नवीन, नूतन, ३ प्रफुल्लित, ४ बड़ा जीरा, ५ रेंड़, ६ मोतिया। उ० २ तरुण रमणीय राजीव लोचन वदन राकेश, करनिकर हासम्। (वि० ६०)
तरुणी–(सं०) युवती, जवान स्त्री।
तरुन–दे० 'तरुण'। उ० ३ उरग-नायक-सयन तरुन पंकज नयन, छीर सागर अयन सर्ववासी। (वि० ५५) तरुनतमी–पूर्ण अँधेरी रात। उ० ममता तरुनतमी अँधिआरी। (मा०२।४७।२) तरुनतर–अधिक तरुण, बिल्कुल ताज़ा। उ० सरदभव सुंदर तरुनतर अरुन वारिज-बरन। (वि० २१८)
तरुनता–तरुणाई, तरनाई, जवानी, यौवन। उ० तौ तोहि जनमि जाय जननी जड़ तनु-तरुनता गँवाइ। (वि० १६४)
तरुनाई–जवानी, यौवन, तरुणाई। उ० बिधवा होइ पाइ तरुनाई। (मा० ३।५।१०)

तरुनी–दे० 'तरुणी'। उ० नृप किरीट तरुनी तनु पाइ। (मा० १।११।१)
तरे (२)–(सं० तल) नीचे, तले।
तरेरी–तरेर कर, आँखें दिखाकर। उ० कहत दसानन नयन तरेरी। (मा०६।२२।२) तरेरे–(सं० तर्ज=डाटा+हिं० हेरना=देखना) त्यौरी चढ़ाकर देखे, घूरे, आँख दिखाए, कुपित दृष्टि से देखा। उ० सुनि लछिमन बिहसे बहुरि नयन तरेरे राम। (मा० १।२७८)
तर्क–(सं०)–१ विचार, २ वादविवाद, दलील, ३ युक्ति, ४ चमत्कारपूर्ण उक्ति, चतुराई भरी बात, सुंदर उक्ति, ५ व्यंग्य, ताना। उ० २ रामहि भजहिं तर्क सब त्यागी। (मा० ६।७४।१)
तर्कि–तर्ककर, विचार कर। उ० तर्कि न जाहिं बुद्धि बल बानी। (मा० ६।७४।१)
तर्क्य–जिस पर कुछ सोच विचार किया जा सके, विचार्य।
तर्जत–(सं० तर्जन) ललकारता हुआ, तर्जन करता हुआ। उ० गजत तजत सन्मुख धावा। (मा० ६।६०।१) तर्जहिं–ललकारते हैं। उ० गर्जहि तर्जहिं गगन उड़ाहीं। (मा० ३।१८।४) तर्जहीं–ललकारते हैं। उ० नाना अस्त्रारेन्ह भिरहिं बहुबिधि एक एकन्ह तर्जहीं। (मा० ५।३। छ०२) तर्जा–गरजा, गर्जन किया, धमकाया, ललकारा। उ० भिरे उभौ बाली अति तर्जा। (मा० ४।८।१)
तर्जन–(सं०)–१ धमकाने का कार्य, भय-दर्शन, २ क्रोध, गुस्सा, ३ तिरस्कार, फटकार, डाँट-डपट। उ० ३ तर्जन क्रोध लोभ मद काम। (मा० ३।११।८)
तर्जनी–(सं०)–अँगूठे के पास की अँगुली।
तर्पण–(सं०)–कर्मकांड की एक क्रिया जिसमें देव, ऋषि, और पितरों को संतुष्ट करने के लिए हाथ या अरघे से पानी देते हैं।
तर्पन–दे० 'तर्पण'। उ० तात न तर्पन कीजिए बिना बारि घर-धार। (दो० ३०४)
तर्ष–(सं०)१ असंतोष, तृष्णा, २ अभिलाषा, ३ बेड़ा, ४ समुद्र, ५ सूर्य। उ० १ सोक संदेह भय हर्षतम तर्ष गण साधु-सद्युक्ति विच्छेदकारी। (वि० ५७)
तर्षण–(सं०)–१ प्यास, पिपासा, २ इच्छा, अभिलाषा।
तल–(सं०)–१ पेंदा, तला, नीचे का भाग, २ गड्ढा, ३ पृष्ठदेश, सतह, ४ आधार, सहारा, ५ सात पातालों में से पहला, ६ स्वभाव, ७ स्वरूप, ८ हथेली, करतल, ९ पैर का तलुआ। उ० ३ परेउ दंड जिमि धरनितल दसा न जाइ बखानि। (मा० २।११०)
तलफत–१ कष्ट में तड़पती हुई, २ तड़पती है। उ० १ तलफत मीन मलीन जनु सींचत सीतल बारि। (मा० २।१५४) तलफति–(अर० तलफ) कष्ट देता है, पीड़ित करता है, नष्ट करता है, बर्बाद करता है। उ० कनक-कराही लंक तलफति ताय सों। (क० ५।२४) तलफि–तड़पकर, कष्ट पाकर। उ० मीन जल बिनु तलफि तनु तजै, सलिल सहज न प्रसंग। (कृ० ५४)
तलाई–(सं० तल्ल, हिं० ताल)–छोटे तालाब, बावलियाँ। उ० सगम करहिं तलाव तलाई। (मा० १।८५।१)

तलाव–(सं० तल्ल)–तालाब, बड़े ताल। उ० सगम करहिं तलाव तलाई। (मा० १।८३।१)
तलावा–दे० 'तलाव'। उ० सुठि राम अति रुचिर तलावा। (मा० ३।४१।१)
तलु–दे० 'तल'। उ० ३ काम दमन कामना-कल्पतरु सो जुगजुग जागत जगतीतलु। (वि० २४)
तल्प–(सं०)–१ शय्या, पलंग, सेज, २ अट्टालिका, अटारी। उ० १ सत्य संकल्प अतिकल्प कल्पांत कृत कल्पनातीत अहि तल्पवासी। (वि० ५४)
तव–(सं०)–तुम्हारा, आपका। उ० तरै तुलसीदास भव तव नाथ गुनगन गाइ। (वि० ५१)
तवा–(सं० ताप, हिं० तवना) लोहे का गोल छिछला बर्तन जिस पर रोटी सेंकते हैं। उ० तुलसी यह तनु तवा है, तपत सदा त्रय ताप। (वै० ६)
तस–(सं० तादृश)–तैसा, वैसा। उ० तस फलु उन्हहि देउँ करि साका। (मा० २।३३।४) तसि–तैसी, वैसी। उ० तसि मति फिरी अहइ जस भावी। (मा० २।१७।१)
तसकर–(सं० तस्कर) चोर, डाकू।
तस्कर–(सं०)–चोर, चुरानेवाला। उ० लूटहिं तस्कर तव धामा। (वि० १२५)
तहँ–दे० 'तहाँ'। उ० तहँ तहँ तू बिषय-सुखहिं चहत, लहत नियत। (वि० १३२) तहँइँ–वहीं, उसी जगह। उ० तहँइ मिले महेस, दियो हित उपदेस। (गी० ५।२७) तहँउँ–वहाँ भी। उ० तहँउँ तुम्हार अलप अपराधू। (मा० २।२०७।४) तहँहुँ–वहाँ भी, उस जगह भी। उ० तहँहु सती संकरहि बियाहीं। (मा० १।६८।३)
तहँवाँ–वहाँ, उस स्थान पर। उ० करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। (मा० ४।८।३)
तहस-नहस–(?) बर्बाद, नाश, चौपट। उ० तहस-नहस किया साहसी समीर को। (क० ५।२)
तहाँ–(सं० तस्स्थाने)–वहाँ, उस स्थान पर। उ० यह सामर्थ्य अछत मोहिं त्यागहु, नाथ तहाँ कछु चारो। (वि० ९४) तहाँऊ–वहाँ भी, उस जगह भी। उ० तहाँऊ कृपासिंधु कलिकाल की कुरीति कैसी। (क० ७।१७१)
तहीं (२)–(सं० तस्स्थाने)–वहीं, उसी जगह। उ० दुख सुख जो लिखा लिलार हमरें जाव जहँ पाउब तहीं। (मा० १।९७। छं०१) तहूँ (२)–वहाँ भी, उस जगह भी। उ० तहूँ गए मद मोह लोभ अति सरगहुँ मिटति न सावत। (वि० १८५)
तहिआ–उस दिन, तब। उ० धरिहहिं बिष्नु मनुज तनु तहिआ। (मा० १।१३९।२)
तहीं (१)–(सं० तव + हिं० ही)–तुम्हीं, तुम्हीं। उ० अगद तहीं बालि कर बालक। (मा०६।२१।३) तहूँ (१)–तू भी, तुम भी। उ० बोले भृगुपति सरुष हँसि तहूँ बंधु सम बाम। (मा० १।२८२)
तांडव–(सं०)–शिव का नृत्य, पुरुष लास्य के विरुद्ध पुरुषों का मुख्य माना जाता है। तांडव में उद्धत-नृत्य अधिक रहती है।
तांडवित–तांडव करते हुए, तांडव नृत्य में मग्न। उ० तांडवित-नृत्य पर डमरु-डिमडिमि प्रवर। (वि० १०)
ताँति–(सं० तंतु)–१. पशुओं की अँतड़ी आदि को बटकर बनाया गया सूत, ताँत, २ धनुष की प्रत्यंचा, कमान की डोरी।
ताँती–दे० 'ताँति'। उ० १ याज्ञ सुराग कि गाँडर ताँती। (मा० २।२४१।३)
ताँबा–(सं० ताम्र) एक लाल रंग की धातु। ताँबे-ताँबा धातु। उ० ताँबे सोँ पीठि मनहुँ तनु पायो। (वि०२००)
ताबूल–(सं०)–१ पान, पान का बीड़ा, २ सुपारी। उ० १ प्रेम ताबूल, गतसूल संसय सकल, विपुल भव बासना बीज हारी। (वि० ४७)
ता (१)–(सं० तद्)–वह, उस, तिस। उ० प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें। (मा० २।१६।१) तापर–१ तिस पर, उस पर, २ उस पर भी। उ० १ तापर सानुकूल गिरिजा, हर, लषन, राम अरु जानकी। (वि० ३०) २ तापर मोकों प्रभु करि चाहत, सब बिनु दहन दहा है। (गी० २।६४)
ता (२)–(फा०)–पर्यंत, तक।
ता (३)–(सं०)–एक भाववाचक प्रत्यय जो संज्ञा तथा विशेषण शब्दों के अंत में लगाया जाता है। जैसे प्रभुता, उत्तमता।
ताइ (१)–(सं० ताप) तपाकर, गर्म करके। उ० धार भूर परखि सुधारि सौंलि ताइ लेत। (क० ७।२४) ताए (१)–(सं० ताप)–१ तपाया, गर्म किया, २ दुःख दिया, सताया। उ० १ मातु बियोग ताप तन ताए। (मा० २।२२६।२) २ प्रभु, प्रताप रवि उदित अमगल अघ उलूक-तम ताए। (गी० १।७२) ताप (१)–(सं० ताप)–१ जलाकर, गर्मकर, २ ताप, गर्मी, घाम, धूप, ३ क्रोध, ४ गर्व घमंड, ५ कष्ट, ६ दैहिक, दैविक तथा भौतिक तीन दुःख। उ० ६ राम विमुख सुख लह्यो न सपनेहुँ, निसि बासर तयो तिहुँ ताप। (वि० ८३) ६ तुलसी आगे तें जाइ ताप तिहुँ ताप रे। (वि० ७३) तायो (१)–(सं० ताप)–१ आँचा, २ तपाया, ताप दिया, ३ तपाए हुए। उ० १ वचन नयन मन मग लगे सब थलपति तायो। (वि० २७१)
ताइ (२)–(?)–तोपकर, छिपाकर। ताए (१) तोपी हुई, ढकी हुई। ताए (२)–छिप गए, आँखों से ओझल हो गए। उ० प्रभु प्रताप-रवि उदित-अमंगल अघ-उलूक तम ताए। (गी० १।१२) ताओं–तापता है, ढकता है, छिपाता है। ताव (२)–१ तोपने या छिपाने की क्रिया, २ ढककर। तायो (२)–छिपाया।
ताप (२)–(सं० ताप)–१ हलका बुखार, मद ज्वर, २ तपाया, गरमाया।
ताउ–(सं० ताप)–१ आँच, गर्मी, २ घमंड लिए हुए गुस्से की आँच, ताव। मु० ताउ गए ताव-अधिक हो गए। उ० मखनु भलि निदरि नृपति भृगुनाथ ताइ गए ताउ। (वि० १००)
ताकत (१)–(अ० ताकत)–बल, जोर, शक्ति।
ताकत (२)–(सं० तर्कण)–देखता है, देखता फिरता है। उ० ताकत सराप कैँ बिवाह कैँ उछाह कछू। (क० ७।

१४८) ताकहिं-१ देखते हैं, २ ताक में रहते हैं। उ० २ जे ताकहिं पर धनु पर दारा। (मा० २।१६८।२) ताका-१ देखा, अवलोकन किया, २ विचारा, सोचा, ३ चाहा, इच्छा की। उ० ३ जेहिं राउर अति अनभल ताका। (मा० २।२१।३) ताकि-१ देखकर, निहारकर, २ निशाना लगाकर। उ० १ तुलसी तमकि ताकि भिरे भारी जुद्ध क्रुद्ध।। (क० ६।३१) ताकिसि-देखा, सोचा। उ० तब ताकिसि रघुनायक सरना। (मा० ३।२६।३) ताकिहैं-ताकेगा, देखेगा, देख सकेगा। उ० ताकिहैं तमकि ताकी ओर को। (वि० ३१) ताकी (१)-(सं० तकण)-१ देखी, निहारी, २ देखकर, विचारकर। उ० २ कुटिल कुबंधु कुअवसरु ताकी। (मा० २।२२८।२) ताकें-१ ताकने से, २ चाहने से, ३ देखते। उ० २ कबहुँ कि दुख सब कर हित ताकें। (मा० ७।११२।१) ३ नरपति सकल रहहिं रुख ताकें। (मा० २।२५।१) ताके (१)-(सं० तर्कण)-देखे, विचारे। उ० जो सुनि सरन राम ताके मैं निज बामता बिहाइ कै। (गी० ५।२८) ताकेउ-देखा, देखा है, ताका है। उ० लखन लखेउ रघुबंसमनि ताकेउ हर को दंडु। (मा० १।२५६) ताकें ( )-(सं० तकण)-१ देखने से, २ देखे, देखते हैं। ताको (१)-१ देखो, विचारो, २ विचारा है। उ० १ साखी बेद पुरान है तुलसी तन ताको। (वि० १५२)

ताकी (२)-उसकी। उ० ताकी पैज पूजि आई यह रेखा कुलिस पषान की। (वि० ३०) ताके (२)-उसके, उस व्यक्ति के। ताकें (२)-उसके यहाँ, उसके पास। ताको (२)-१ उसको, २ उसका। उ० २ ताको कहाय, कहै तुलसी, तू लाजहि न माँगत कूकुर कौरहि। (क० ७।२६)

ताग-(सं० तार्कव, प्रा० तग्गो, हि० तागा)-डोरा, सूत, तार। उ० जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं रामचरित बर ताग। (मा० १।११)

ताज-(अर०)-१ बादशाह की टोपी, राजमुकुट, २ कलगी, तुर्रा।

ताजी-(फा० ताज़ी)-१ नवीन, जो कुम्हलाया या पुराना न हो २ अरब में पाये जानेवाले घोड़ों की एक नस्ल, एक प्रकार के घोड़े। उ० २ पारावत मराल सब ताजी। (मा० ३।३८।३)

ताटंक-(सं०)-कान में पहनने का एक गहना, कर्णफूल। उ० छत्र मुकुट ताटंक तब हते एकहीं बान। (मा० ६। १३ क)

ताटका-दे० 'ताटक'। उ० मंदोदरी श्रवन ताटका। (मा० ६।१३।३)

ताड़का-(सं० ताडका)-एक राक्षसी। यह सुकेतु नामक एक वीर यक्ष की कन्या थी। सुकेतु ने तप द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्नकर यह बलवती कन्या प्राप्त की, जिसे हजार हाथियों का बल था। इसका विवाह सुंद से हुआ था। अगस्त्य ने एक बार क्रुद्ध होकर सुंद को मार डाला तो ताड़का अपने पुत्र मारीच के साथ उन्हें खाने दौड़ी। अगस्त्य ने उसे राक्षसी होने का शाप दे दिया। तब से यह ताड़का वन में रहने लगी और मुनियों को तंग करने लगी। अंत में विश्वामित्र ने राम को लाकर इसका वध करवाया। उ० मुनि ताड़का क्रोध करि धाई। (मा० १।२०९।३)

ताड़त-(सं० ताडन)-१ मारता है, डाँटता है, २ मारते हुए, ताड़ना करते हुए। उ० २ सापत ताड़त परुष कहंता। (मा० ३।३४।१)

ताड़न-(सं० ताडन)-१ मार, प्रहार, आघात, २ घुड़की, धमकी।

ताड़ना-(सं० ताडन)-मार, दंड, घुड़की। उ० सकल ताड़ना के अधिकारी। (मा० ५।५९।३)

ताड़िका-दे० 'ताड़का'।

ताड़ुका-दे० 'ताड़का'। उ० ब्याल दली ताड़ुका, देखि ऋषि देत असीस अघाई। (गी० १।५३)

तात (१)-(सं०)-१ पिता, बाप, २ पूज्य व्यक्ति, ३ प्यार का एक संबोधन, ४ मित्र। उ० १ काल कलि पाप-संताप संकुल-सदा प्रनत-तुलसीदास तात-माता। (वि० २८)

तात (२)-(सं० तप्त)-गर्म, तपा हुआ। उ० लागिहि तात बयारि न मोही। (मा० २।६७।३) ताती-तात का स्त्रीलिंग। ताते (१)-गरम, संतप्त। उ० पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते। (मा० २।६५।२)

तातप्यमान-जलता हुआ, क्लेशित। उ० जरा जन्म दुःख शोक तातप्यमानं। (मा० ७।१०८।श्लो० ८)

ताता (१)-दे० 'तात (१)'। उ० ३ मागहु बर प्रसन्न मैं ताता। (मा० १।१७७।१)

ताता (२)-दे० 'तात (२)'।

ताति (१)-(सं०)-पुत्र, लड़का।

ताति (२)-(सं० तप्त)-तप्त, तात, गरम। उ० अति अनीति कुरीति भइ भुइँ तरनि हूँ तें ताति। (वि० २२१)

तातें (१)-उससे, इसलिए, इसी कारण से। उ० तातें कछुक बात अनुसारी। (मा० २।१६।४) ताते (२)-उस कारण से, उसी से, इसीलिए। उ० नाहिं पर्यो आचरन भजन को बिनय करत हौं ताते। (वि० १६८)

तातें (२)-'त' अक्षर से। उ० बरनतें गुन कहि जानिए तातें द्विग द्विग तीन। (स० ३१२)

तातो-तप्त, जलता हुआ। उ० तुलसी रामप्रसाद सो तिहुँ ताप न तातो। (वि० १५१)

तान-(सं०)-१ तानने का भाव या क्रिया, खिंचाव, फैलाव, विस्तार, २ संगीत का एक अंग, लय का विस्तार, आलाप। उ० २ करहिं गान बहु तान तरंगा। (मा० १।१२६।३)

तानत-(सं०)-१ तानते हुए, खींचते हुए, २ तानता है। उ० १ लख्यो न चढ़ावत, न तानत, न तोरत हू। (गी० १।६०) तानि-तानकर, खींचकर। उ० तानि सरासन श्रवन लगि पुनि छाँड़े निज तीर। (मा० ३।११ ख) तानिहैं-तानेंगे, तानेनेवाले हैं, तानने में समर्थ हैं। उ० बय किसोर बरजोर बाहुबल मेरु मेलि गुन तानिहैं। (गी० १।७८) तानी-१ ताना, फैलाया, २ तानकर, ३ तानेगा। उ० ३ कोपि रघुनाथ ज्यों बान तानी। (क० ६।२०) ताने-खींचे, फैलाए, विस्तृत किए। उ० तानि रिस लागि श्रवन लगि ताने। (मा० १।८७।१) तानेउ-१ ताना,

खींचा, २ तानकर, खींचकर। उ० २ तानेउ चाप श्रवन लगि छाँड़े बिसिख कराल। (मा० ६।९१) तान्यो-विस्तृत किया, फैलाया। उ० निसि दिन भ्रमत बिसारि सहज सुख जहँ तहँ इंद्रिन-तान्यो। (वि० ८८)

ताना-(सं० तान=विस्तार)-१ कपड़े की बुनाई में वे सूत जो लंबाई में होते हैं। २ दरी आदि बुनने का करघा।

ताप-(सं०)-१ आँच, दाह, गरमी, तेज, २ ज्वर, बुखार, ३ कष्ट, पीड़ा, ४ प्राकृतिक गर्मी, ५ दैहिक, दैविक और भौतिक नामक तीन प्रकार के दुःख। उ० ३ जयति वैराग्य विज्ञान-वारांनिधे नमत नर्मद पाप-ताप-हर्ता। (वि० ४४) ५ तौलौं तू कहूँ जाय तिहूँ ताप तपिहै। (वि० ६८) तापघ्न-कष्टनाशक, दुःख का नाश करने वाला। उ० तपन तीछन तरुन, तीव्रतापघ्न तपरूप तनु भूप तम पर तपस्वी। (वि० ५५) तापहम्-तापों को हरनेवाले को। उ० वैराग्यांबुज भास्कर ह्यघ घन ध्वान्ता पह तापहम्। (मा० ३।१। श्लो० १) तापहर-दुःख या जलन आदि को दूर करनेवाला। उ० त्रिविध तापहर त्रिविध बयारी। (मा० ७।२४६।३) तापही-ताप को हरने वाला। उ० बदन सुषमा सदन, हास त्रय-तापही। (गी० ७।६)

तापस-(सं०)-तप करनेवाला, तपस्वी, मुनि। उ० तापस बेषै बनाइ, पथिक पथे सुहाइ। (क० २।१७) तापस श्रवण-श्रवणकुमार के पिता। कथा के लिए दे० 'श्रवणकुमार'। उ० तापस अंध साप सुधि आई। (मा० २।१५५।२) तापसहि-तपस्वी को, ऋषि को। उ० असुर तापसहि खबरि जनाई। (मा० १।१७५।२) तापसी-(सं०)-तपस्या करनेवाली स्त्री, तपस्विनी। उ० जोगिनी झुटुंग झुंड झुंड बनी तापसी सी। (क० ६।५०)

तापसु-दे० 'तापस'। उ० तेहि अवसर एक तापसु आवा। (मा० २।११०।४)

तापा-दे० 'ताप'। उ० ५ दैहिक दैविक भौतिक तापा। (मा० ७।२१।१)

तापे-१ तपे, जले, २ आग के सामने बैठकर गर्मी ली।

ताम-(सं० ताम्र)-ताँबा धातु।

तामरस-(सं०) १ कमल, २ ताँबा, ३ सोना, स्वर्ण, ४ धतूरा, ५ सारस पक्षी। उ० १ चारु चाप तुनीर तामरस करनि सुधारत बान हैं। (गी० ५।२५)

तामरसु-दे० 'तामरस'। उ० १ बरसत तुहिन तामरसु जैसें। (मा० २।७१।४)

तामस-(सं०)-१ जिसमें तमोगुण अधिक हो, असा त्विक, २ क्रोध, गुस्सा, ३ अज्ञान, मोह, ४ अंधकार, ५ दुष्ट, ६ सर्प, ७ उल्लू, ८ अहंकार। उ० १ तामस असुर देह तिन्ह पाई। (मा० १।१२२।३) तामसी तमोगुणी भी, तमोगुणयुक्त भी। उ० जाके भजे तिलोक तिलक भए त्रिजग-जोनि तनु तामसो। (वि० १५०)

तामसी-(सं०)-१ तमोगुणवाली, अभागी, दुष्ट, २ महा काली, कालिका, ३ अँधेरी रात, ४ जटामासी।

ताय (१)-तादि, उसे उसको।

तार-(सं० तार)-१ धातु सरीर, सूत, २ करताल, खटतार। उ० २ कर घटि परवाउज आउज झाँझ बेनु डफ तार। (गी० १।२)

तारक-(सं०)-१ नक्षत्र, तारा, २ मल्लाह, कर्णधार, ३ एक असुर का नाम, ४ राम का षडाक्षर मंत्र (ॐ रामाय नमः) जो तारनेवाला कहा जाता है। ५ तारनेवाला, पार उतारनेवाला, मुक्ति देनेवाला, ६ आँख, नेत्र, ७ आँखों की पुतली। उ० १ स्रम-सीकर साँवरि देह लसै मनो रासि महातम तारक मैं। (क० २।१३) ७ रुचिर पलक-लोचन जुग तारक स्याम, अरुन सित कोए। (गी० ७।१२) कथा-तारकासुर वज्रांग दैत्य का पुत्र था। यह तपस्या के कारण इसे ब्रह्मा ने वर दिया था कि सात दिन से अधिक आयुवाला इसका वध नहीं कर सकेगा। वर पाकर तारकासुर बहुत अत्याचार करने लगा। सभी देवता इसके कारण बहुत आशंकित रहने लगे। अंत में शिव के पुत्र कार्तिकेय ने इसका वध किया। वध करने के समय कार्तिकेय की अवस्था ७ दिन की थी। तारकासुर के सेनापतियों में शुंभ, कुंजर, जंभ, कालनेमि, कुंभज आदि अधिक प्रसिद्ध हैं।

तारकु-दे० 'तारक'। उ० ३ तारकु असुर समर जेहिं मारा। (मा० १।१०३।४)

तारण-(सं०)-१ तारना, दूसरों को पार उतारने का काम, २ उद्धार, निस्तार, ३ उद्धार करनेवाला, पार उतारनेवाला, मुक्तिदाता, ४ नाव, ५ विष्णु। उ० ३ मोहमूषक-मार्जार, संसार भय हरण, तारण तरण, अभय कर्ता। (वि० ११)

तारति-१ तरेरा या पानी की धारा देती है, २ पार लगाती है। उ० १ मनहुँ बिरह के सद्य घाय हिये लखि तकि तकि धरि धीरज तारति। (गी० २।१६) तारय-पार कीजिए, तारिए। उ० तारय तारय संसृति दुस्तर। (मा० ६।११५।३) तारि-तार कर, मुक्त कर उद्धार कर। तारिबो-तारना, मुक्त करना। उ० तुलसी को तारिबो बिसारियो न अंत, मोहिं। (क० ७। १८) तारिहौ-तारोगे, पार न करोगे, मोहिं। उ० तौ तुलसिहिं तारिहौ बिप्र ज्यों दसन तोरि जम गन के। (वि० ९६) तारी (१)-(सं० तारण)-१ उतार दिया, पार कर दिया, २ मुक्त कर दिया, मुक्ति दे दी। उ० २ राम एक तापस तिय तारी। (मा० १।२४।२) तारे (१) तारा है, उद्धार किया है।

तारन-दे० 'तारण'। उ० ३ होत तरन तारन नर तेऊ। (मा० २।२१७।२)

तारा-(सं०)-१ नक्षत्र, सितारा, २ आँख की पुतली, ३ बालि की स्त्री का नाम, ४ एक राक्षस का नाम ५ ताली बजाने का शब्द, ६ ताला, ७ मजीरा। उ० १ मंदिर मनि समूह जनु तारा। (मा० १।१९५।३) ३ तारा बिकल देखि रघुराया। (मा० ४।११।१) ५ तारा दिए कहँ खंड्गिन आदि बठाउ। (प० ३१) ३ नाना बिधि बिलाप कर तारा। (मा० ४।११।१) कथा-तारा बालि की स्त्री तथा सुषेन की कन्या थी। इसके पुत्र का नाम अंगद था। तारा ने अपने पति बालि के वध के बाद रामचंद्र की आज्ञा से सुग्रीव से विवाह कर लिया। यह पंच कन्याओं में गिनी जाती है और प्रातःकाल इसका नाम लेना शुभ माना गया है। इसे

(२)-आँख की पुतलियाँ। उ० एकटक लोचन चलत न तारे। (मा०१।२४४।२)
तारी (२)-(?)-समाधि, ध्यान।
तारु-(स० तुला)-तौल, तौलो। उ० पन औ कुँवर दोउ प्रेम की तुला धौं तारु। (गी० १।८०)
तारुण्य-(स०)-तरुणाई, जवानी। उ० जानकीनाथ रघुनाथ रागादितम-तरणि, तारुण्यतनु तेज धाम। (वि०२१)
ताल (१)-(स०)-१ ताली या थपड़ी बजाने का शब्द, २ ताड़ का पेड़ या उसका फल, ३ करताल, ४ हरताल, ५ जाँघ या बाँह पर मारने या ठोंकने का शब्द, ६ झाँझ, मँजीरा, ७ नाचने गाने में उसके मध्यवर्ती काल और क्रिया का परिमाण, ८ चरमे के पत्थर या काँच का एक पल्ला, ९ ताला, १० तलवार की मूँठ। उ० १ उड़त अब विहग सुनि ताल करतालिका। (वि०१२) ३ करतल ताल बजाइ ग्वाल-जुवतिन तेहि नाच नचायो। (वि०६८)
तालऊ-ताड़ के पेड़ भी। उ० तालऊ बिसाल बेधे कौतुक है कालि को। (क० ६।११)
ताल (२)-(स० तल्ल)-तालाब, जलाशय, पोखरा।
ताला (१)-(स० तल्ल) तालाब। उ० बरसहिं निरंतर जे तेहिं ताला। (मा० ७।१०७।१)
ताला (२)-(स० तलक)-लोहे पीतल आदि की बनी वह कल जिसे दरवाजा, संदूक आदि में लगाते हैं। कुलफ।
तालु (१)-(स०)-तालू, मुँह के भीतर की ऊपरी छत।
तालु (२)-(स० ताल)-१ ताड़ का पेड़, २ ताली बजाना।
तालु (३)-(स० तल्ला)-तालाब।
तालुक (१)-दे० 'तालु (१)'।
तालुक (२)- दे० 'तालु (२)'।
तालुक (३)-दे 'तालु (३)'।
तालू (१) दे० 'तालु (१)'। उ० निज तालूगत रुधिर पान करि मन संतोष धरयो। (वि० ९२)
तालू (२)-दे० 'तालु (२)'। उ० १ दामिनी हनेउ मनहुँ तरु तालू। (मा० २।२९।३)
तालू (३)-दे० 'तालु (३)'।
ताप-(स० ताप) १ ताप, जलन, ज्वर, २ दैविक, दैहिक और भौतिक तीन प्रकार के दुःख। उ० सींचिए मलीन भो, तयो है तिहूँ तावरे। (ह० ३७)
तावत-(स० ताप) तपाता है, जलाता है, कष्ट देता है।
तावौं (१)-(स०ताप)-१ ताव देता हूँ, २ मूछों पर ताव देता हूँ, ३ गर्म कर दूँ, पिघला दूँ ४ उकसा दूँ, ५ उत्तेजित कर दूँ, ६ परखता हूँ, जाँचता हूँ।
तावत्-(स०)-उतने काल तक, तब तक। उ० न तावत्सुख शांति सन्तापनाश। (मा० ७।१०८।७)
तावौं (२)-(?)-१ मिट्टी लगाकर मूँदूँ, बन्द करूँ, २ छिपाता हूँ, बंद करके मन से रखता हूँ। उ० १ भेदि भुवन करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं। (गी० ६।८) तावौं-दे० 'तावौं (२)'। उ० २ तिन्ह।रयनन पर दोष निरंतर सुनि सुनि भरि भरि तावौं। (वि० १४२)
तास-(?)-सोने या जरी का काम किया हुआ वस्त्र।
तासु-[स० तद्, हि० ता + सु (प्रत्यय) ] उसका, उसकी, उसे। उ० करहु तासु अब अंगीकारा। (मा० १।८४।२)
तासू-दे० 'तासु'। उ० नित नूतन मंगल गृह तासू। (मा० १।६६।२)
तासों-उससे। उ० तासों क्यों कुहरी, सो अभागो बैठो तोरिहौं। (वि० २९८)
ताहि-१ उसको, उसे, २ उसकी। उ० १ सर निंदा करि ताहि बुझावा। (मा० १।२६।२)
ताही-दे० 'ताहि'। उ० १ पुनि अवडेरि मराएन्हि ताही। (मा० १।७६।४)
ताहु-१ वह, उस, २ उसको भी, ३ उसका, उसका भी, ४ उसने। उ० १ ताहु पर याहु बिनु राहु गहियतु है। (क० २।४)
ताहू-दे० 'ताहु'। उ० १ तजे चरन अजहूँ न मिटत नित बहियो ताहू केरो। (वि० ८७)
तितिड़ी-(स० तितिडी)-इमली।
तिकाल-(स० त्रिकाल)-भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों काल। उ० भयो न तिकाल तिहूँ लोक तुलसी सो मंद। (क० ७।१२१)
तिकोन-दे० 'त्रिकोण'। उ० १ बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे। (वि० १८९)
तिक्खन-(स० तीक्ष्ण)-तेज, तीक्ष्ण, प्रचंड, उग्र। उ० लक्ख में पक्खर तिक्खन तेज जे सूर समाज में गाज गने हैं। (क० ६।३९)
तिक्त-(स०)-१ तीत, तीता, कडुआ, २ छ रसों में से एक, ३ पित्तपापड़ा, ४ वरुण वृक्ष। विशेष तिक्त रस अरुचिकर और कटुरस रुचिकर होता है। दोनों में केवल इतना अंतर है।
तिच्छन-(स० तीक्ष्ण)-तेज, प्रखर, प्रचंड, तीक्ष्ण।
तिजरा-(स०त्रि+ज्वर)-तीन दिन पर आनेवाला एक विशेष ज्वर। उ० स्वारथ के साथिन तज्यौ, तिजरा कौसो टोटकु औचट उलटि न हेरो। (वि०) विशेष-लोगों के आस पास पँसली चलने के रोग को तिजरा कहते हैं। इस रोग में आटे का एक पुतला चौराहे पर रखकर चले जाते हैं, फिर घूमकर उसे नहीं देखते। ऐसा विश्वास है कि इससे रोग ठीक हो जाता है।
तित-(स० तत्र)-वहाँ, उधर, उस ओर।
तितीर्षावतां-(स०)-तरने के इच्छुकों के लिए, मुक्त होने की इच्छा रखनेवालों के लिए। उ० यत्पाद प्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां। (मा० १।१। श्लो० ६)
तित्तिर-(स०)-तीतर पक्षी।
तिथि-(स०)-१ चांद्र मास के अलग अलग दिन जिनके नाम सख्यानुसार होते हैं। प्रत्येक पक्ष में प्रायः १५ तिथियाँ होती हैं। २ पंद्रह की संख्या। उ० १ तिथि सब-काज-नसावनी। (दो०४५८)
तिन (१)-(स० तेन)- 'तिस' शब्द का बहुवचन, जैसे तिनने, तिनको आदि। १ उन, २ उन्होंने। उ० १ कहा भयभीर परी तेहि धौं, बिचरै धरनी तिनसों तिन तोरे। (क० ७।४९) २ तिन कही जग में जगमगति जोरी एक। (क०१।१६) तिनहिं-१ उनको, उन्हीं को, २ उनमें। उ० १ परम पुनीत

देखि सुहाया। (मा० २।१०६।१) तीरथपतिहिं-तीर्थराज प्रयाग को, प्रयाग में। उ० तीरथपतिहिं आव सब काहे। (मा० १।४४।२)

तीरथराऊ-दे० 'तीरथराजू'। उ० अकथ अलौकिक तीरथ राऊ। (मा० १।२।७)

तीरथराज-दे० 'तीर्थराज'। उ० तीरथराज समाज सुकरमा। (मा० १।२।६)

तीरथराजा-दे० 'तीरथराजू'। उ० कीन्ह निमज्जनु तीरथ राजा। (मा० २।२१६।१)

तीरथराजू-(सं०तीर्थराज)-तीर्थों का राजा प्रयाग, इलाहाबाद। उ० जो जग जंगम तीरथराजू। (मा० १।२।४)

तीरा (१)-दे० 'तीर (१)'। उ० १ मुनि प्रभु गए सरोवर तीरा। (मा० ३।३६।३)

तीरा (२)-दे० 'तीर (२)'। उ० सोहहिं कर कमलनि धनु तीरा। (मा० २।११५।४)

तीर्थ-(सं०)-१ वह पवित्र स्थान जहाँ धर्मभाव से लोग यात्रा, पूजा, स्नान आदि के लिए आते हैं। हिन्दुओं के काशी, प्रयाग, गया आदि तीर्थ हैं। शास्त्रों में तीर्थ ३ प्रकार के माने गए हैं। क जंगम-ब्राह्मण, साधु आदि। ख स्थावर-काशी प्रयागादि। ग मानस-सत्य, क्षमा, दया दान आदि। २ शास्त्र, आगम, ३ यज्ञ, ४ ईश्वर, ५ माता पिता, ६ अतिथि, ७ गुरु, आचार्य, ८ ब्राह्मण, ९ आग, १० एक उपाधि, ११ पवित्र। ब्राह्मण का दायाँ हाथ भी तीर्थ कहा गया है। अँगूठे का ऊपरी भाग ब्रह्मतीर्थ, अँगूठे और तर्जनी का मध्य भाग पितृतीर्थ, तथा कनिष्ठ का निचला भाग प्रजापत्यतीर्थ एवं उँगलियों का अग्रभाग देवतीर्थ कहलाता है। तीर्थनि-तीर्थों में। उ० ते रम-तीर्थनि लक्खन लाखन-दानि ज्यों दारिद दाबि दले हैं। (क० ६।२३)

तीर्थपति-(सं०)-प्रयाग।

तीर्थराज-(सं०)-प्रयाग।

तीर्थाटन-(सं०)-तीर्थयात्रा। उ० तीर्थाटन साधन समुदाई। (मा० ७।१२६।२)

तीव्र-(सं०)-१ अतिशय, अत्यंत, २ तीक्ष्ण, तेज, नोकीला, ३ बहुत गरम, ४ बेहद, ५ कटु, कड़ुआ, ६ न सहने योग्य, ७ प्रचंड, प्रखर, डरावना, ८ तीता, ९ वेगयुक्त, १० लोहा, ११ शिव।

तीस-(सं० त्रिंशति)-जो गिनती में २६ के बाद और ३१ के पहले हो। ३०। उ० तीस तीर रघुबीर पबारे। (मा० ६।९३।५)

तीसर-[सं० त्रीणि+सरा (प्रत्यय)]-तीसरा, तृतीय। उ० सब मिथ तीसर नयन उघारा। (मा० १।८७।३) तीसरि-तीसरी। उ० गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान। (मा० ३।३५) तीसर-दूसर के बादवाला, तीसरा। उ० तीसरे उपास बनबास सिंधु पास सो। (क० ६।२२)

तुं-दे० 'तू'।

तुंग-(सं०)-१ उन्नत, ऊँचा, २ उग्र, प्रचंड, ३ प्रधान, मुख्य, ४ पुन्नाग वृक्ष, ५ कमल का केसर, ६ शिव, महादेव। उ० १ बिपुल बिकराल भट भालु कपि मनहु गिरि तुंग गिरि सृंग लीन्हें। (क० ६।१६)

तुंड-(सं०)-१ मुख, बदन, २ चोंच, ३ तोंद, ४ रावण, ५ शिव, ६ निकला हुआ मुँह, थूथुन, ७ तलवार का अगला हिस्सा। उ० १ पिक बयनी मृगलोचनी सारद ससि सम तुंड। (गी० ७।१६) २ चारु चिबुक, सुक तुंड बिनिंदक सुभग सुउन्नत नासा। (गी० ७।१२)

तुंबरि-दे० 'तुंबरी'। उ० ते सिर कटु तुंबरि समतूला। (मा० १।११३।२)

तुंबरी-(सं० तुंबी)-छोटा कड़ुआ कद्दू, तितलौकी।

तु-दे० 'तू'।

तुअ-(सं० तव)-तुम्हारा। उ० सो तुअ यस बिधि बिष्नु महेसा। (मा० १।१६२।२)

तुच्छ-(सं०)-१ क्षुद्र, हीन, नाचीज, २ थोड़ा, कम, ३ ओछा, खोटा, ४ खोखला, भीतर से खाली, ५ सारहीन, छिलका।

तुपक-(तु० तोप)-१ छोटी तोप, २ बंदूक। उ० १ काल तोपची, तुपक महि, दारू अनय कराल। (दो० ५१५)

तुभ्य-(सं०)-तुझे, तेरे लिए। उ० नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं। (मा० ७।१०८)

तुम-(सं० त्वम्)-तू शब्द का बहुवचन पर आप 'तू' के स्थान पर ही प्रयुक्त। वह सर्वनाम जिसका व्यवहार उस पुरुष के लिए होता है जिससे कुछ कहा जाता है। 'आप' के स्थान पर भी तुम का प्रयोग होता है। उ० तुम अपनायो तब जानिहौं जब मन फिरि परिहै। (वि० २६८) तुमहिं-तुमको। उ० देखो देखो बन बन्यो आजु उमाकंत। मनो देखन तुमहिं आई ऋतु बसंत। (वि० १४) तुमहिं-तुम्हीं, आप ही। उ० तुमसिखाय यह बिपति-बाँसुरी तुम्हहि मों बनै लियेर। (वि० १८७) तुमहीं-तुमहीं, आप ही। उ० तुमसी तिहारो, तुमहीं तें तुलसी हित। (वि० २६१) तुम्ह-तुम, आप। दे० 'तुम'। उ० तुम्ह बिनु अस ब्रतु को निरबाहा। (मा० १।७६।२) तुम्हइ-तुम्हीं, आपही। उ० जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई। (मा० २।१२७।२) तुम्हउ तुमको भी, तुम्हें भी। उ० हमरें बयरु तुम्हउ बिसराई। (मा० ११ ६२।१) तुम्हहि-तुम्हें, तुम्हें ही, आपको ही। उ० सुनि रिहि मुरत तुम्हहि जन तेह मुझ्नी पर। (पा० ८२) तुम्हहि-तुम्हें, तुमको, आपको। उ० अब जौं तुम्हहि सुता पर नेहू। (मा० १।०२।१) तुम्हही-तुम्हीं, आपही। उ० तुम्हहीं सुत सब कहँ अवलंबा। (मा० २।१७६।२) तुम्हहू-तुम भी आप भी। उ० तुम्हहू तात कहत अब जाना। (मा० २।२०७।४)

तुम्हरिहिं तुम्हारी ही, आपकी ही। उ० तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। (मा० २।१२७।२) तुम्हरी-तुम्हारी आपकी। उ० नाजादा मुनि, तुम्हरी कीन्ही। (मा० २। २६।१) तुम्हरे (प्रा० तुम्हकरको)-तुम्हारे, आपके। उ० तुम्हरे आश्रम अबहिं ईस तप साधहिं। (पा० ९१) तुम्हरेहि-तुम्हारे ही, आपके ही। उ० आगत हैं अनुराग जहाँ अति सो हरि तुम्हरेहि मेरे। (वि० १८७)

तुम्हरो-तुम्हारा। उ० तुम्हरा सब भाँति तुम्हारिय सौं, तुम्हही, बलि, हौं मोको ठाहर है। (क० ७।६१)

तुम्हार-(प्रा० तुम्हकरको)-तुम्हारा, आपका। उ० नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट। (मा० ५।३०) तुम्हारा-आपका, तेरा। उ० देखि तात बिधुबदन तुम्हारा। (मा० १।३५७।४) तुम्हारि-तुम्हारी, आपकी। उ० त्रिकालग्य सर्बग्य तुम्ह गति सबत्र तुम्हारि। (मा० १। ६६) तुम्हारिय-तुम्हारी ही, आपकी ही। उ० तुम्हरो सब भाँति, तुम्हारिय सो, तुम्हही, बलि, हौं मोकों ठाहरु हेरे। (क० ७।१२) तुम्हारिहि-तुम्हारी ही, आपकी ही। उ० कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं। (मा० १।१६१।१) तुम्हारिही-तुम्हारी ही, आपकी ही। उ० केवल कृपा तुम्हारिही कृपानंद संदोह। (मा० ७।३६) तुम्हारी-तेरी, आपकी। उ० कहिउँ तात सब प्रस्न तुम्हारी। (मा० १। ११४।८) तुम्हारें-तुम्हारे, आपके, तेरे। उ० किए सुखी कहि बानी सुधासम बल तुम्हारें रिपु हयो। (मा० ६।१०६। छं० १) तुम्हारे-दे० 'तुम्हार'। उ० नाथ देखि पद कमल तुम्हारे। (मा० १।१४६।१) तुम्हारेहि-तुम्हारे ही, आप की ही। उ० गयउ तुम्हारेहि कोंछे घाली। (मा० ७। १८।१)

तुम्हारो-तुम्हारा, आपका। उ० पायो बिभीषन राज तिहुँ पुर जसु तुम्हारो नित नयो। (मा० ६।१०६। छं० १)

तुम्है-तुमही। उ० जानिकै जोर करौ परिनाम, तुम्है पछितैहौ पै मैं न हितैहौं। (क० ७।१०२)

तुरंग-(सं०)-१ जल्दी चलनेवाला, २ घोड़ा, अश्व। उ० २ तीखे तुरग मनोगति चंचल, पौन के गौनहुँ तें बढ़ि जाते। (क० ७।४४)

तुरंगा-दे० 'तुरंग'। उ० २ जात नचावत चपल तुरंगा। (मा० १।३१६।३)

तुरत-(सं० तुर)-शीघ्र, फौरन, तत्क्षण। उ० बचन सुनत सब बानर जहँ तहँ चले तुरत। (मा० ४।२२)

तुरता-दे० 'तुरत'। उ० चलेउ सो गा पाताल तुरता। (मा० ५।११४)

तुरग-दे० 'तुरंग'। उ० २ बाधि तुरग तरु बैठ महीसा। (मा० १।१६०।१)

तुरगा-दे० 'तुरग'। उ० २ प्रथमहिं हतेउ सारथी तुरगा। (मा० ६।१२।१)

तुरत-दे० 'तुरंत'। उ० भए तुरत सब जीव सुखारे। (मा० १।८६।२) तुरतहिं-तुरत ही, शीघ्र ही। उ० तुरतहिं रुचिर रूप तेहिं पावा। (मा० ३।७।४)

तुरा-(सं० त्वरा)-जल्दी, शीघ्रता, उतावली। उ० तीखी तुरा तुलसी कहतो, पै हिये उपमा को समाउ न आयो। (क० ६।४४)

तुराइ (१)-दे० 'तुराइ (१)'।

तुराइ (२)-दे० 'तुराइ (२)'।

तुराइ (१)-(सं० तूलिका=गद्दा)-१ मोटा और गुदगुदा गद्दा, तोशक, २ तकिया। उ० १ नींद बहुत प्रिय सेज तुराई। (मा० २।१४।२)

तुराई (२)-(सं० त्वरा)-१ जल्द, २ वेग।

तुरावति-(सं० त्वरा)-वेगवती, शीघ्रगामिनी।

तुरित-तुरत, शीघ्र। उ० गंगाजल कर कलस तौ तुरित मँगाइय हो। (रा० ३)

तुरीयं-दे० 'तुरीय (१)'। उ० २ निराकारमोंकार मूल तुरीय। (मा० ७।१०८। श्लो० २) ४ प्राकृत प्रकट पर मात्मापरमहित प्रेरकानंत बंदे तुरीय। (वि०५३) तुरीय (१)-(सं०)-१ चौथा, चतुर्थ, २ निर्गुण ब्रह्म, ३ वेदांतियों ने प्राणियों की चार अवस्थाएँ मानी हैं-जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। तुरीयावस्था मोक्षावस्था है जिसमें समस्त भेद ज्ञान का नाश हो जाता है और आत्मा अनुपहित चैतन्य या ब्रह्मचैतन्य हो जाती है। ४ त्रिगुणात्मक विषयों से परे, ५ मोक्षरूप। उ० ३ मूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि। (मा० ७।११७ग)

तुरीय (२)-(सं० त्वरा)-शीघ्र ही।

तुल-(सं० तुल्य)-१ सदृश, बराबर, २ समदर्शी, ३ शुद्ध। उ० २ तुलसी पति-पहिचान बिनु कोउ तुल कबहुँ न होय। (स० २८८)

तुलना-(सं०)-मिलान, बराबरी, समता।

तुलसि-दे० 'तुलसी'। उ० १ मञ्जुल मंजरि तुलसि बिराजा। (मा० १।३४६।३) २ तुलसि अभिमान-महिषेस बहुकालिका। (वि० ४८)

तुलसिका-१ तुलसी का वृक्ष, २ जालंधर की पतिव्रता पत्नी वृंदा, ३ जिसके समान सृष्टि में कोई न हो। उ० १ सुमन-सुचित्रि नवतुलसिका-दलयुत मृदुल बनमाल उर भ्राजमान। (वि० ५१) २ अस गावत स्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय। (दो० ५४२)

तुलसिदास-दे० 'तुलसीदास'। उ० तुलसिदास इन्ह पर जो द्रवहि, हरि तौ पुनि मिलौं बैरु बिसराई। (कृ० ४६)

तुलसी-१ तुलसी वृक्ष २ तुलसीदास। दे० 'तुलसीदास', ३ जालंधर की पतिव्रता स्त्री वृंदा, ४ जिसके समान कोई न हो। उ० १ जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु। (मा० १।२६) २ तुलसी चातक प्रेमपट मरतहु लगी न खोंच। (दो० ३०२) वृक्ष-एक छोटा सा पौधा जिसे वैष्णव बहुत पवित्र मानते हैं, और जिसकी पूजा करते हैं। तुलसी की पत्तियाँ भगवान् को भोग लगाने के भोजन तथा पानी में डाली जाती हैं। पुराणों के अनुसार तुलसी नामक एक गोपिका गोलोक में राधा की सखी थी। एक दिन राधा ने उसे कृष्ण के साथ बिहार करते देख लिया और मनुष्य योनि में जाने का शाप दिया। तुलसी राजा धर्मध्वज की कन्या हुई और रूप में अतुलनीय होने के कारण इसका नाम तुलसी पड़ा। शंखचूड़ राक्षस से इसकी शादी हुई। शंखचूड़ को वर था कि बिना उसकी स्त्री के सतीत्व के नष्ट हुए उसकी मृत्यु नहीं हो सकती। उसके अत्याचारों से तंग आकर देवताओं के कहने से विष्णु ने शंखचूड़ का रूप धारणकर तुलसी का सतीत्व नष्ट किया। इस पर तुलसी ने विष्णु को पत्थर हो जाने का शाप दिया। बाद में तुलसी विष्णु के पैर पर गिरकर रोने लगी तो विष्णु ने कहा कि तुम यह शरीर छोड़कर लक्ष्मी के समान मेरी प्रिया होगी। तुम्हारे शरीर से गंडकी नदी और केश से तुलसी वृक्ष होगा। तभी से शालग्राम की पूजा होने लगी और तुलसी की पत्ती उन पर चढ़ाई जाने लगी तथा तुलसी अत्यंत पवित्र मानी जाने लगी। ५ गोस्वामी-तुलसीदास को भी।

तुम्हार-(प्र० तुम्हकरको)-तुम्हारा, आपका। उ० नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट। (मा० ५।३०) तुम्हारा-आपका, तेरा। उ० देखि तात विधुबदन तुम्हारा। (मा० १।३५७।४) तुम्हारि-तुम्हारी, आपकी। उ० त्रिकालग्य सर्बग्य तुम्ह गति सर्बत्र तुम्हारि। (मा० १। ६६) तुम्हारिय-तुम्हारी ही, आपकी ही। उ० तुम्हरो सब भाँति, तुम्हारिय सौं, तुम्हही, बलि, हौ मोकों ठाहरु हेरे। (क० ७।६२) तुम्हारिहि-तुम्हारी ही, आपकी ही। उ० कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं। (मा० १।२६१।१) तुम्हारिहीं-तुम्हारी ही, आपकी ही। उ० केवल कृपा तुम्हारिहीं कृपानंद संदोह। (मा० ७।३६) तुम्हारी-तेरी, आपकी। उ० कहिहउँ तात सब प्रस्न तुम्हारी। (मा० १। ११४।८) तुम्हारें-तुम्हारे, आपके, तेरे। उ० किए सुखी कहि बानी सुधासम बल तुम्हारें रिपु हयो। (मा० ६।१०६। छं० १) तुम्हार-दे० 'तुम्हारें'। उ० नाथ देखि पद कमल तुम्हारे। (मा० १।१४६।१) तुम्हारेहि-तुम्हारी ही, आप की ही। उ० गयउ तुम्हारेहि कोंछें घाली। (मा० ७। १८।१)

तुम्हारो-तुम्हारा, आपका। उ० पायो बिभीषन राज तिहुँ पुर जसु तुम्हारो नित नयो। (मा० ६।१०६। छं० १)

तुम्हें-तुमही। उ० जानिकै जोर करौ परिनाम, तुम्हैं पछितैहौ पै मैं न हितैहौं। (क० ७।१०२)

तुरंग-(स०)-१ जल्दी चलनेवाला, २ घोड़ा, अश्व। उ० २ तीखे तुरंग मनोगति चंचल, पौन के गौनहुँ तें बढ़ि जाते। (क० ७।४४)

तुरंगा-दे० 'तुरंग'। उ० २ जात नचावत चपल तुरंगा। (मा० १।३१६।३)

तुरत-(स० तुर)-शीघ्र, फौरन, तत्क्षण। उ० बचन सुनत सब बानर जहँ तहँ चले तुरत। (मा० ४।२२)

तुरता-दे० 'तुरत'। उ० चलेउ सो गा पाताल तुरता। (मा० २।११४)

तुरग-दे० 'तुरंग'। उ० २ बाँधि तुरग तरु बैठ महीसा। (मा० १।१६०।१)

तुरगा-दे० 'तुरग'। उ० २ प्रथमहिं हतेउ सारथी तुरगा। (मा० ६।८२।१)

तुरत-दे० 'तुरंत'। उ० भए तुरत सब जीव सुखारे। (मा० १।८६।२) तुरतहिं-तुरत ही, शीघ्र ही। उ० तुरतहिं रुचिर रूप तेहिं पावा। (मा० ३।७।४)

तुरा-(स० त्वरा)-जल्दी, शीघ्रता, उतावली। उ० तीखी तुरा तुलसी कहतो, पै हिये उपमा को समाउ न आयो। (क० ६।५४)

तुराइ (१)-दे० 'तुराई (१)'।

तुराइ (२)-दे० 'तुराई (२)'।

तुराई (१)-(स० तूलिका=गद्दा)-१ मोटा और गुदगुदा गद्दा, तोशक, २ तकिया। उ० १ नींद बहुत प्रिय सेज तुराई। (मा० २।१४।३)

तुराई (२)-(स० त्वरा)-१ जल्द, २ वेग।

तुरयति-(सं० त्वरा)-वेगवती, शीघ्रगामिनी।

तुरित-तुरत, शीघ्र। उ० गंगाजल कर कलस तौ तुरित मँगाइय हो। (रा० ३)

तुरीय-दे० 'तुरीय (१)'। उ० २ निराकारमोंकार मूल तुरीय। (मा० ७।१०८। श्लो० २) ५ प्राकृत प्रकट पर मात्मापरमहित प्रेरकानत बंदे तुरीय। (वि०५३) तुरीय (१)-(स०)-१ चौथा, चतुर्थ, २ निर्गुण ब्रह्म, ३ वेदांतियों ने प्राणियों की चार अवस्थाएँ मानी हैं-जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। तुरीयावस्था मोक्षावस्था है जिसमें समस्त भेद ज्ञान का नाश हो जाता है और आत्मा अनुपहित चैतन्य या ब्रह्मचैतन्य हो जाती है। ४ त्रिगुणात्मक विषयों से परे, ५ मोक्षरूप। उ० ३ मूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि। (मा० ७।११७ग)

तुरीय (२)-(स० त्वरा)-शीघ्र ही।

तुल-(स० तुल्य)-१ सदृश, बराबर, २ समदर्शी, ३ शुद्ध। उ० २ तुलसी पति पहिचान बिनु कोउ तुल कबहुँ न होय। (स० २८८)

तुलना-(स०)-मिलान, बराबरी, समता।

तुलसि-दे० 'तुलसी'। उ० १ मञ्जुल मंजरि तुलसि बिराजा। (मा० १।२४६।३) २ तुलसि अभिमान-महि पेस बहुकालिका। (वि० ४८)

तुलसिका-१ तुलसी का वृक्ष, २ जालंधर की पतिव्रता पत्नी वृंदा, ३ जिसके समान सृष्टि में कोई न हो। उ० १ सुमन-सुविचित्र-नवतुलसिका दलजुत मृदुल बनमाल उर भ्राजमान। (वि० ५१) २ जस गावत स्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय। (दो० ५४२)

तुलसिदास-दे० 'तुलसीदास'। उ० तुलसिदास इहै पर जो द्रवहिं, हरि तौं पुनि मिलौं बैरु बिसराई। (कृ० ४६)

तुलसी-१ तुलसी वृक्ष २ तुलसीदास। दे० 'तुलसीदास', ३ जालंधर की पतिव्रता स्त्री वृंदा, ४ जिसके समान कोई न हो। उ० १ जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु। (मा० १।२६) २ तुलसी चातक प्रेमपट मरतहु लगी न खोंच। (दो० ३०२) वृक्ष-एक छोटा सा पौधा जिसे वैष्णव बहुत पवित्र मानते हैं, और जिसकी पूजा करते हैं। तुलसी की पत्तियाँ भगवान् को भोग लगाने के भोजन तथा पानी में डाली जाती हैं। पुराणों के अनुसार तुलसी नामक एक गोपिका गोलोक में राधा की सखी थी। एक दिन राधा ने उसे कृष्ण के साथ विहार करते देख लिया और मनुष्य योनि में जाने का शाप दिया। तुलसी राजा धर्मध्वज की कन्या हुई और रूप में अतुलनीय होने के कारण इसका नाम तुलसी पड़ा। शंखचूड़ राक्षस से इसकी शादी हुई। शंखचूड़ को वर था कि बिना उसकी स्त्री के सतीत्व के नष्ट हुए उसकी मृत्यु नहीं हो सकती। उसके अत्याचारों से तंग आकर देवताओं के कहने से विष्णु ने शंखचूड़ का रूप धारणकर तुलसी का सतीत्व नष्ट किया। इस पर तुलसी ने विष्णु को पत्थर हो जाने का शाप दिया। बाद में तुलसी विष्णु के पैर पर गिरकर रोने लगी तो विष्णु ने कहा कि तुम यह शरीर छोड़कर लक्ष्मी के समान मेरी प्रिया होगी। तुम्हारे शरीर से गण्डकी नदी और केश से तुलसी वृक्ष होगा। तभी से शालग्राम की पूजा होने लगी और तुलसी की पत्ती उन पर चढ़ाई जाने लगी तथा तुलसी अत्यंत पवित्र मानी जाने लगी। तुलसीकृ-तुलसीदास को भी।

उ० जो यह साँची है सदा तौ नीको तुलसीक। (दो० १०२) तुलसाहु-तुलसी से भी। उ० काहे को खीझिय रीझिय पै, तुलसीहु सों है बलि सोइ सगाई। (क० ७। ६३)

तुलसीदास-हिंदी के सर्व प्रधान भक्त कवि। इनका जन्म संवत् १६२१ में तथा इनकी मृत्यु सनत् १६८० में हुई थी। इनके जीवन के विषय में बहुत सी किंवदंतियाँ हैं। तुलसी दास के प्रामाणिक ग्रन्थ हैं-रामलला नहछू, वैराग्य संदीपनी, बरवै रामायण, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, रामाज्ञा प्रश्न, दोहावली, कवितावली, हनुमान बाहुक, गीतावली, कृष्ण गीतावली, विनय पत्रिका, तुलसी सत सई तथा रामचरितमानस। तुलसीदास ने अपनी कविताओं में, तुलसि, तुलसी, तुलसिदास, तुलसीदास तुलसी दासु आदि नामों को अपने लिए प्रयुक्त किया है। उ० साहिब सीतानाथ सो सेवक तुलसीदास। (मा० १। २८ ख)

तुलसीदासु-दे० 'तुलसीदास'। उ० जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु। (मा० १।२६)

तुला-(सं०)-१ तराजू, काँटा, २ मान, तौल, ३ सादृश्य, तुलना, मिलान, ४ ज्योतिष की ७वीं राशि, ५ प्राचीन काल की एक तौल। उ० १ तुला पिनाक, साहु नृप, त्रिभुवन भट बटोरि सबके बल जोये। (गी० ५।१२)

तुल्य-(सं०)-समान, बराबर, सदृश।

तुव-(सं० तव)-तुम्हारा, आपका। उ० जो कलिकाल प्रबल अति होतो तुव निदेस तें न्यारो। (वि० १४)

तुष-(सं०)-१ छिलका, भूसी, चोकर, २ अंडे के ऊपर का छिलका। उ० २ अंड फोरि कियो चेटुवा, तुष पर्‌यो नीर निहारि। (दो० ३०३)

तुषार-(सं०)-१ ओस, कुहरा, २ पाला, शीत, ३ बरफ, हिम। उ० ३ तुषाराद्रि संकाश गौर गभीर। (मा० ७।१०८। छं० ३)

तुषारु-दे० 'तुषार'। उ० १ मनहुँ मरकत मृदु सिखर पर लसत बिसद तुषारु। (कृ० १४)

तुसार-दे० 'तुषार'। उ० २ कनक कलप बरबेलि बन मानहुँ हनी तुसार। (मा० २।१६३)

तुसारू-दे० 'तुषार'। उ० २ मार्हुं कमल बन परेउ तुसारू। (मा० २।२६३।१)

तुहिन-(सं०)-१ पाला, २ हिम, बरफ, ३ कुहरा, ओस, ४ चाँदनी। उ० २ गए सकल तुहिनाचल गेहा। (मा० १।६४।२) ३ जयति जय सत्रु-करि-केसरी सत्रुहन सत्रु तम तुहिनहर किरनकेतू। (वि० ४०)

तुहीं-तुम्हीं, तुमहीं, आपहीं। उ० रामहु की बिगरी तुहीं सुधारि लइ है। (क० ७।१७६) तुही-तुम्ही, आप ही। उ० माँगति तुलसीदास कर जुनि सुजस तुही ले। (वि० ३२) तुहूँ-तू भी, तुम भी। उ० तुहूँ सराहसि करसि सनेहू। (मा० २।३२।४)

तूँ-दे० 'तू'। उ० जननी तूँ जननी भई बिधि सन कछु न बसाइ। (मा० २।१६१)

तूँबरी-(सं० तुम्बक)-१ तुम्बी, कडुई लौकी को खोखली की गई रहती है और जिसे साधु लोग अपना कमंडलु बनाकर रखते हैं। २ साँपवालों का तुंबी का बना बाजा। ३ लौकी।

तू-(सं० त्वम्)-तुम, आप। उ० सेवक को परदा फटे, तू समरथ सीले। (वि० ३२)

तूठहिं-(सं० तुष्ट)-तुष्ट होते हैं, प्रसन्न होते हैं। उ० तूठहिं निज रुचि काज करि, रूठहिं काज बिगारि। (दो० ४७१)

तूण-(सं०)-तरकश, तीर रखने का चोंगा।

तूणीर-दे० 'तूण'। उ० पाणि चाप सर कटि तूणीर। (मा० ३।११।२) तूणिर-(सं०)-दे० 'तूणीर'।

तून-दे० 'तूण'। उ० प्रबल भुजदंड परचंड कोदंड धर, तूनवर बिसिष, बलमप्रमेय। (वि० ५०)

तूनीर-दे० 'तूण'। उ० कटि तूनीर पीतपट बाँधे। (मा० १।२४४।१) तूनीरहि-तूणीर को, तरकश को। उ० धृत सर रुचिर चाप तूनीरहि। (मा० ७।३०।२)

तूनीरा-दे० 'तूण'। उ० मुनिपट कटिन्ह कसें तूनीरा। (मा० २।११२।४)

तूमरि-(सं० तुम्बक)-एक तरकारी, लौकी।

तूर-(सं० तूर्य)-१ तुरही, सिंघा, २ नगाड़ा। उ० १ पाछे लागे बाजत निसान ढोल तूर हैं। (क० ५।३)

तूरना-दे० 'तूर'। उ० ढोलै लोल बूझत सबद ढोल तूरना। (क० ७।१४८)

तूरि (१)-दे० 'तूरी (१)'।

तूरि (२)-दे० 'तूरी (२)'।

तूरि (३)-दे० 'तूरी (३)'।

तूरि (४)-दे० 'तूरी (४)'।

तूरी (१)-(सं० तूर्य)-तुरही बाजा।

तूरी (२)-(सं० त्वरा)-जल्दी, तुरत।

तूरी (३)-(सं० तुल्य)-समान। उ० मन तन बचन तजे तिन तूरी। (मा० २।३२४।३)

तूरी (४)-(सं० त्रुट)-१ तोड़ा, खंड-खंड किया, २ तोड़ कर।

तूर्ण-(सं०)-शीघ्र, जल्दी।

तूल (१)-(सं०)-१ आकाश, २ रुई, ३ तूत का पेड़, उ० २ तूल अघ नाम पावक-समान। (वि० ४६)

तूल (२)-(सं० तुल्य)-समान, बराबर। उ० बढ़ु बबै फल अनल फन सुधा होइ बिषतूल। (मा० २।४८)

तूल (३)-(सं० तूलक)-एक चटकीला लाल रंग का कपड़ा विशेष।

तूल (४)-(फ़ा०)-विस्तार, लंबाई।

तूला-दे० 'तूल (२)'। उ० जासु नाम पावक अघ तूला। (मा० २।२४८।१)

तृतीय-(सं०)-तीसरा, दूसरे के बाद का।

तृजग-(सं० तिर्यक)-पशु पक्षी आदि।

तृण-(सं०)-तिनका, घास।

तृन-दे० 'तृण'। उ० जो करत गिरीतें गरु तृन तें तनक को। (क० ७।७३) मु० तृन तोरी-तिनका तोड़ती हैं। दे० 'तृन तोरे'। उ० निरखहिं छबि जननीं तृन तोरी। (मा० १।१६८।३) मु० तृन तोर-अनिष्ट हटाने के लिए तृण तोड़ा। [टोना-टोटका, या अनिष्ट आदि से बचाने के लिए तिनका तोड़ने की कहीं कहीं प्रथा है।] उ० लोचन

लोल चलै भ्रुकुटी, कल काम-कमानहु सो तृन तोरे। (क० २।२६)

तृनु-दे० 'तृण'। उ० देह गेह सब सन तृनु तोरें। (मा० २।७०।३) मु० तृनु तोरें-नाता तोड़े हुए। उ०देह गेह सब सन तृनु तोरें। (मा० २।७०।३)

तृपत-(सं० तृप्ति)-संतोष, तृप्ति।

तृपित-तृप्त, भरा, संतुष्ट। उ० दरसन तृपित न आजु लगि, प्रेम पिआसे नैन। (मा० २।२६०)

तृप्त-(सं०)-१ अघाया हुआ, तुष्ट, २ प्रसन्न, खुश।

तृप्ति (सं०)-१ संतोष, अघाना, २ खुशी, प्रसन्नता। उ० १ तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा। (मा० १।१४८।३)

तृमुहानी-दे० 'त्रिमुहानी'।

तृषा-(सं०)-१ प्यास, २ इच्छा, अभिलाषा, ३ लोभ, लालच। उ० १ तुलसिदास कब तृषा जाइ सर खनतहिं जनम सिरान्यो। (वि० ८८)

तृषावंत-प्यासा। उ० तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ फिरि फिरि बिकल अकास निचोयो। (वि० २४५)

तृषित-१ प्यासा, २ इच्छुक, ३ लालची। उ० १ धूम समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की। (वि० ९०)

तृष्णा-(सं०)-१ इच्छा, लोभ, लालच २ प्यास। उ० १ तरल तृष्णा-तमी तरणि धरनी धरन सरन भय हरन करुनानिधान। (वि० ५४)

तृष्ना-दे० 'तृष्णा'। उ० १ जाके मन ते उठ गइ, तिल तिल तृष्ना चाहि। (वै० २६)

तृस्ना-दे० 'तृष्णा'। उ० १ तृस्ना केहि न कीन्ह बौराहा। (मा० ७।७०।४)

तें (१)-[सं० तस् (प्रत्यय)]-से, द्वारा। उ० नीलकंज बारिद तमाल मनु इन तनु तें दुति पाई। (वि० ६२) ते (१)-दे० 'तें (१)'। तेइ (१)-दे० 'तें (१)'।

तें (२)-(सं० ते)-१ वे सब, वे ही, वे भी, २ उनका, उसका, ३ वह, सो। ते (२)-दे० 'तें (२)'। उ० १ जिन्ह लगि निज परलोक बिगारयो ते लजात होत ठाढ़ ठायँ। (वि० ८३) तेइ (२)-दे० 'तें (२)'। उ० १ ह्वै गए, हैं, जे होहिंगे आगे तेइ गनियत बड़भागी। (वि० ९५) तेई-१ वे ही, २ उन्हीं को। उ० १ तेइ पायँ पाइकै चढ़ाइ नाव धोए बिनु। (क० २।६) तेउ-१ वे भी, २ उसका। उ० १ सुक सनकादि मुक्त बिचरत तेउ भजन करत अजहूँ। (वि० ८६) तेऊ-वे भी, वह भी। उ० नाम जीहँ जपि जागहिं तेऊ। (मा० १।२२।२) तेपि-(ते+अपि)-वे भी। उ० तेपि कामबस भए बियोगी। (मा० १।८५।४) तेहिं-दे० 'तहि'। तेहि-(सं० ते,-१ उसे, उसको, २ वह, उस, ३ उसी में, ४ इसी, यही, उसी। उ० १ तेहि बिनु तजे, भजे बिनु रघुपति। (वि० १२०) २ गाधि सुवन तेहि अवसर अवध सिधायउ। (जा० ११) ४ तेहि तें कहहिं संत स्रुति टेरें। (मा० १।११६।२) तेही-१ उसको उसी को, ३ वह, उस, तेहू-उस उसी। उ० तेहू तुलसी को लोग भलो भलो कहैं ताको। (क० ७।१४)

तें (३)-(सं० त्वम्)-१ तुमको, २ तुम्हारा, तेरा, आपका, ३ तेरे लिए। ते (३)-दे० 'तें (३)'। उ० २ भजामि ते पदांबुज। (मा० ३।४। छं० १) तेइ (३)-दे० 'तें (३)'।

तें (४)-(?)-थे। उ० बीबे को बिसोक लोक लोकपाल हुते सब। (क० ७।१०) ते (४)-दे० 'तें (४)'। उ० मागि मधुकरी खात ते, सोवत गोड़ पसारि। (दो० ४६४)

तेज (१)-(सं० तेजस्)-१ कांति, चमक, आभा प्रकाश, २ पराक्रम, बल, ३ ताप, उष्णता, ४ तत्व, हीर, ५ वीर्य, ६ प्रताप, दबदबा, ७ उग्रता, तेज़ी, ८ मक्खन, ९ सोना, स्वर्ण, १० सत्वगुण से उत्पन्न लिंग शरीर, ११ मेद, चर्बी, १२ पंच महाभूतों में से तीसरा भूत जिसमें ताप और प्रकाश होता है। अग्नि। उ०१ बिमल बिज्ञानमय, तेज बिस्तारिनी। (वि० ४८) तेजपुंज-(सं०)-१ तेजयुक्त बड़ा प्रतापी, २ सूर्य, भानु। उ० १ दूसर तेजपुंज अति भ्राजा। (मा० १।३०।४) तेजराशि-(सं०)-दे० 'तेजपुंज'। तेजरासि-दे० 'तेजराशि'। उ० २ कीस-कौतुक-केलि-लुम लंका-दहन दलन-कानन तरुन तेजरासी। (वि० २६) तेजवंत-तेजस्वी, तेजवाला, प्रतापी। उ० तेजवंत लघु गनिअ न रानी। (मा० १ २५६।३) तेजहत-तेजहीन, बिना कांति या प्रताप का। उ० भयउ तेजहत श्री सब गई। (मा० ६।३५।२)

तेज (२)-(फा० तेज़)-१ तीक्ष्ण, जिसकी धार तेज़ हो, २ शीघ्रगामी, ३ फुरतीला, ४ अधिक, ज्यादा, ५ चंचल, चपल, ६ महँगा, गिराँ।

तेजु (१)-दे० 'तेज (१)'। उ० ११ घटइ तेजु बलु मुख छबि सोई। (मा० २।३२५।१)

तेजु (२)-दे०'तेज (२)'।

तेजसी-(सं० तेजस्विन्)-तेजवाला, तेजस्वी, प्रतापी। उ० रिपु तेजसी अकेल अपि, लघु करि गनिअ न ताहु। (मा० १।१७०)

तेजी-(फा० तेज़)- महँगी, गिरानी। उ० तेजी माटी मगहू की मृगमद साथ जू। (क० ७।१६)

तेते-(सं० तावत्)-उतने, उस कदर, तितने। उ० सचिन्ह सहित सकल सुर तेते। (मा० १।५४)

तेन-(सं०)-१ उसके द्वारा, उससे, २ वे, वे सब, उन सब मे। उ० २ तेन सप्त हुत दत्तमेधाग्नित्न, तेन सर्व कृत कर्मजाल। (वि० ४६)

तेरसि-(सं० त्रयोदशी)-किसी पक्ष की तेरहवीं तिथि। उ० तेरसि तीन अवस्था तजहूँ भजहु भगवंत। (वि० २०३)

तेरहुति-दे० 'तिरहुति'। उ० जेहिं तेरहुति तेहि समय निहारी। (मा० १।२८६।४)

तेरहुति-दे० 'तिरहुति'। उ० चले चित्रकूटहि भरत चार चले तेरहुति। (मा० २।२७१)

तेरि-दे० 'तेरी'। उ० नीको तुलसीदास को तेरि ही निकाइ। (वि० ३५)

तेरिए-तेरा ही, तेरा ही है। उ० भूमिए बिनय अनय मेरे तेरिए। (८० ३४) तेरी-(प्रा० तुम्हारका, त्रि० तेरा)-तुम्हारी, आपकी। उ० तुलसी पर तेरी कृपा निरुपाधि निरारी। (वि० ३४) तेरे-तुम्हारे आपके। उ० तेरे बसत सिंह को सिसु-मेष लाखे। (वि० ३२) तेरेऊ-

उ० जो यह साँची है सदा तौ नीको तुलसीक। (दो० १०५) तुलसीहु-तुलसी से भी। उ० काहे को खीझिय रीझिय पै, तुलसीहु सों है बलि सोइ सगाइ। (क० ७। ६३)

तुलसीदास-हिंदी के सर्वं प्रधान भक्त कवि। इनका जन्म संवत् १६३१ में तथा इनकी मृत्यु संवत् १६८० में हुई थी। इनके जीवन के विषय में बहुत सी किंवदंतियाँ हैं। तुलसी दास के प्रामाणिक ग्रन्थ हैं-रामलला नहछू, वैराग्य संदीपनी, बरवै रामायण, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, रामाज्ञा प्रश्न, दोहावली, कवितावली, हनुमान बाहुक, गीतावली, कृष्ण गीतावली, विनय पत्रिका, तुलसी सत सई तथा रामचरितमानस। तुलसीदास ने अपनी कवि ताओं में, तुलसि, तुलसी, तुलसिदास, तुलसीदास तुलसी दासु आदि नामों को अपने लिए प्रयुक्त किया है। उ० साहिब सीतानाथ सो सेवक तुलसीदास। (मा० १। २८ ख)

तुलसीदासु-दे० 'तुलसीदास'। उ० जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु। (मा० १।२६)

तुला-(सं०)-१ तराजू, काँटा, २ मान, तौल, ३ सादृश्य, तुलना, मिलान, ४ ज्योतिष की ७वीं राशि, ५ प्राचीन काल की एक तौल। उ० १ तुला पिनाक, साहु नृप, त्रिभुवन भट बटोरि सबके बल जोपे। (गी० २।१२)

तुल्य-(सं०)-समान, बराबर, सदृश।

तुव-(सं० तव)-तुम्हारा, आपका। उ० जो कलिकाल प्रबल अति होतो तुव निदेस तें न्यारो। (वि० ९४)

तुष-(सं०)-१ छिलका, भूसी, चोकर, २ अंडे के ऊपर का छिलका। उ० २ अंड फोरि कियो चेटुवा, तुष पर्यो नीर निहारि। (दो० ३०२)

तुषार-(सं०)-१ ओस, कुहरा, २ पाला, शीत, ३ बरफ, हिम। उ० ३ तुषारादि सकाश गौर गभीर। (मा० ७।१०८। छं० ३)

तुषारु-दे० 'तुषार'। उ० १ मनहुँ मरकत मृदु सिखर पर लसत बिसद तुषारु। (कृ० १४)

तुसार-दे० 'तुषार'। उ० २ कनक कलप बरबेलि बन मानहुँ हनी तुसार। (मा० २।१६३)

तुसारू-दे० 'तुषार'। उ० २ मनहुँ कमल बन परेउ तुसारू। (मा० २।२६३।१)

तुहिन-(सं०)-१ पाला, २ हिम, बरफ, ३ कुहरा, ओस, ४ चाँदनी। उ० २ गए सकल तुहिनाचल गेहा। (मा० १।९४।३) ३ जयति जय सत्रु-करि-केसरी सत्रुहन सत्रु तम तुहिनहर किरनकेतू। (वि० ४०)

तुहीं-तुम्हीं, तुमहीं, आपहीं। उ० रामहु की बिगरी तुहीं सुधारि लई है। (क० ७।१७६) तुही-तुम्ही, आप ही। उ० सासति तुलसीदास की सुनि सुजस तुही लै। (वि० ३२) तुहूँ-तू भी, तुम भी। उ० तुहूँ सराहसि करसि सनेहू। (मा० २।२६२।४)

तूँ-दे० 'तू'। उ० जानी तूँ जननी भइ बिधि सन कछु न बसाइ। (मा० २।१६१)

तूँबरी-(सं० तुम्बक)-१ तूम्बी, कद्दूई लौकी जो खोखली की गई रहती है और जिसे साधु लोग अपना कमंडलु बनाकर रखते हैं। २ साँपवाला का तुंबी का बना बाजा। ३ लौकी।

तू-(सं० त्वम्)-तुम, आप। उ० सेवक को परदा फटे, तू समरथ सीलो। (वि० ३२)

तूठहिं-(सं० तुष्ट)-तुष्ट होते हैं, प्रसन्न होते हैं। उ० तूठहिं निज रुचि काज करि, रूठहिं काज बिगारि। (दो० ४७१)

तूण-(सं०)-तरकश, तीर रखने का चोंगा।

तूणीर-दे० 'तूण'। उ० पाणि चाप शर कटि तूणीर। (मा० ३।११।२) तूणीर-(सं०)-दे० 'तुणीर'।

तून-दे० 'तूण'। उ० प्रबल भुजदंड-परचंड कोदंड धर, तूनवर बिसिष, बलमप्रमेय। (वि० ५०)

तूनीर-दे० 'तूण'। उ० कटि तूनीर पीतपट बाँधे। (मा० १।२४४।१) तूनीरहि-तूणीर को, तरकश को। उ० धृत सर रुचिर चाप तूनीरहि। (मा० ७।३०।२)

तूनीरा-दे० 'तूण'। उ० मुनिपट कटिन्ह कसें तूनीरा। (मा० २।११२।४)

तूमरि-(सं० तुम्बक)-एक तरकारी, लौकी।

तूर-(सं० तूर्य)-१ तुरही, सिंघा, २ नगाड़ा। उ० १ पाछे लागे बाजत निसान ढोल तूर हैं। (क० ३।६)

तूरना-दे० 'तूर'। उ० बाजे लोल घूमत सबद ढोल तूरना। (क० ७।१४८)

तूरि (१)-दे० 'तूरी (१)'।
तूरि (२)-दे० 'तूरी (२)'।
तूरि (३)-दे० 'तूरी (३)'।
तूरि (४)-दे० 'तूरी (४)'।

तूरी (१)-(सं० तूर्य)-तुरही बाजा।

तूरी (२)-(सं० त्वरा)-जल्दी, तुरत।

तूरी (३)-(सं० तुल्य)-समान। उ० मन तन बचन तजे तिन तूरी। (मा० २।३२४।२)

तूरी (४)-(सं० त्रुट)-१ तोड़ा, खंड-खंड किया, २ तोड़ कर।

तूर्ण-(सं०)-शीघ्र, जल्दी।

तूल (१)-(सं०)-१ आकाश, २ रुई, ३ तूत का पेड़, उ० २ तूल अघ नाम पावक-समान। (वि० ५५)

तूल (२)-(सं० तुल्य)-समान, बराबर। उ० पावु पवै बर अनल कन सुधा होइ बिषतूल। (मा० २।४८)

तूल (३)-(सं० तूलक)-एक चटकीला लाल रंग का कपड़ा विशेष।

तूल (४)-(अ०)-विस्तार, लंबाई।

तूला-दे० 'तूल (२)'। उ० जासु नाम पावक अघ तूला। (मा० २।२४८।१)

तृतीय-(सं०)-तीसरा, दूसरे के बाद का।

तृजग-(सं० तिर्यक)-पशु पक्षी आदि।

तृण-(सं०)-तिनका, घास।

तृन-दे० 'तृण'। उ० जो करत गिरीतें गरु तृन तें तनक को। (क० ७।७२) मु० तृन तोरी=तिनका तोड़ती हैं। दे० 'तृन तोरें'। उ० निरखहिं छबि जननीं तृन तोरी। (मा० १।१९८।२) मु० तृन तोरें-अनिष्ट हटाने के लिए तृण तोड़ा। [टोना-टोटका, या अनिष्ट आदि से बचाने के लिए तिनका तोड़ने की कहीं-कहीं प्रथा है।] उ० लोचन

खोल धलैं भ्रुकुटी, कल थाम कमानहु सो तृन तोरे। (क० २।२६)

तृनु–दे० 'तृण'। उ० देह गेह सब सन तृनु तोरें। (मा० २।७०।३) मु० तृनु तोरें–नाता तोड़े हुए। उ०देह गेह सब सन तृनु तोरें। (मा० २।७०।३)

तृपत–(सं० तृप्ति)–संतोष, तृप्ति।

तृपित–तृप्त, भरा, संतुष्ट। उ० दरसन तृपित न आजु लगि, प्रेम पियासे नैन। (मा० २।२६०)

तृप्त–(सं०)–१ अघाया हुआ, तुष्ट, २ प्रसन्न, खुश।

तृप्ति (सं०)–१ संतोष, अघाना, २ खुशी, प्रसन्नता। उ० १ तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा। (मा० १।१४८।३)

तृमुहानी–दे० 'त्रिमुहानी'।

तृषा–(सं०)–१ प्यास, २ इच्छा, अभिलाषा, ३ लोभ, लालच। उ० १ तुलसिदास कब तृषा जाइ सर खनतहिं जनम सिरान्यो। (वि० ८८)

तृषावंत–प्यासा। उ० तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ फिरि फिरि बिकल अकास निचोयो। (वि० २४५)

तृषित–१ प्यासा, २ इच्छुक, ३ लालची। उ० १ धूम समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की। (वि० ९०)

तृष्णा–(सं०)–१ इच्छा, लोभ, लालच, २ प्यास। उ० १ सरल तृष्णा-तमी तरणि धरनी धरन सरन भय-हरन करुनानिधान। (वि० ५४)

तृष्ना–दे० 'तृष्णा'। उ० १ जाके मन ते उठ गई, तिल तिल तृष्ना चाहि। (वै० २६)

तृस्ना–दे० 'तृष्णा'। उ० १ तृस्ना केहि न कीन्ह बौराहा। (मा० ७।७०।४)

तें (१)–[सं० तस् (प्रत्यय)]–से, द्वारा। उ० नीलकंज बारिद तमाल मनि इन तनु तें दुति पाई। (वि० ६२) ते (१)–दे० 'तें (१)'। तेइ (१)–दे० 'तें (१)'।

तें (२)–(सं० ते)–१ वे सब वे ही, वे भी, २ उनका, उसका, ३ वह, सो। ते (२)–दे० 'तें (२)'। उ० १ जिन्ह लगि निज परलोक बिगारयो ते लजात होत ठाढ़े ठायँ। (वि० ८३) तेइ (२)–दे० 'तें (२)'। उ० १ ह्वै गए, हैं, जे होहिंगे आगे तेइ गनियत बड़भागी। (वि० ९२) तेई–१ वे ही, २ उन्हीं को। उ० १ तेइ पायँ पाइकै चढ़ाइ नाव धोए बिनु। (क० २।९) तेउ–१ वे भी, २ उसका। उ० १ सुक सनकादि मुक्त बिचरत तेउ भजन करत अजहूँ। (वि० ८६) तेऊ–वे भी, वह भी। उ० नाम जीहँ जपि जागहिं तेऊ। (मा० १।२२।२) तेपि–(ते+अपि)–वे भी। उ० तेपि कामबस भए बियोगी। (मा० १।८५।४) तेहिं–दे० 'तेहि'। तेहि–(सं० ते)–१ उसे, उसको, २ वह, उस, ३ उसी में, ४ इसी, यही, उसी। उ० १ तेहि बिनु तजे, भजे बिनु रघुपति। (वि० १२०) २ गाधि सुवन तेहि अवसर अवध सिधायउ। (जा० १९) ४ तेहि तें कहहिं संत श्रुति टेरें। (मा० १।१६१।२) तेही–१ उसको, उसी को, २ वह, उस, तेहू–उस उसी। उ० तेहू तुलसी को लोग भलो भलो कहै ताको। (क० ७।६४)

तैं (१)–(सं० त्वम्)–१ तुमको, २ तुम्हारा, तेरा, आपका, ३ तेरे लिए। ते (३)–दे० 'तैं (३)'। उ० २ भजामि ते पदांबुज। (मा० ३।४। छं० १) तेइ (३)–दे० 'तैं (३)'।

तैं (४)–(?)–थे। उ० कीबे को बिसोक लोक लोकपाल हुते सब। (क० ७।१०) ते (४)–दे० 'तैं (४)'। उ० माँगि मधुकरी खात ते, सोवत गोड़ पसारि। (दो० ४६४)

तेज (१)–(सं० तेजस्)–१ कांति, चमक, आभा प्रकाश, २ पराक्रम, बल, ३ ताप, उष्णता, ४ तत्व, हीर, ५ वीर्य, ६ प्रताप, दबदबा, ७ उग्रता, तेज़ी, ८ मक्खन, ९ सोना, स्वर्ण, १० सत्वगुण से उत्पन्न लिंग शरीर, ११ मेद, चर्बी, १२ पंच महाभूतों में से तीसरा भूत जिसमें ताप और प्रकाश होता है। अग्नि। उ० १ विमल विज्ञानमय, तेन विस्तारिनी। (वि० ४८) तेजपुंज–(सं०)–१ तेजयुक्त, बड़ा प्रतापी, २ सूर्य, भानु। उ० १ दूसर तेजपुंज अति भ्राजा। (मा० १।३०।४) तेजराशि–(सं०)–दे० 'तेजपुंज'। तेजरासि–दे० 'तेजराशि'। उ० २ कीस-कौतुक-केलि-लूम लंका-दहन दलन-कानन तरुन तेजरासी। (वि० २६) तेजवंत–तेजस्वी, तेजवाला, प्रतापी। उ० तेजवंत लघु गनिअ न रानी। (मा० १।२५६।३) तेजहत–तेजहीन, बिना कांति या प्रताप का। उ० भयउ तेजहत श्री सब गई। (मा० ६।३५।२)

तेज (२)–(फा० तेज़)–१ तीक्ष्ण, जिसकी धार तेज़ हो, २ शीघ्रगामी, ३ फुरतीला, ४ अधिक, ज्यादा, ५ चंचल, चपल, ६ महँगा, गिराँ।

तेजु (१)–दे० 'तेज (१)'। उ० ११ घटइ तेजु बलु मुख छबि सोई। (मा० २।३२५।१)

तेजु (२)–दे० 'तेज (२)'।

तेजसी–(सं० तेजस्विन्)–तेजवाला, तेजस्वी, प्रतापी। उ० रिपु तेजसी अकेल अपि, लघु करि गनिअ न ताहु। (मा० १।१७०)

तेजी–(फा० तेज़)– महँगी, गिरानी। उ० तेजी माटी मगहू की मृगमद साथ जू। (क० ७।११)

तेते–(सं० तावत्)–उतने, उस कदर, तितने। उ० सचिन्द सहित सकल सुर तेते। (मा० १।५४)

तेन–(सं०)–१ उसके द्वारा, उससे, २ वे, ये सब, उन सब ने। उ० २ तेन तप्त हुत दत्तमेवाखिल, तेन सर्वं कृतं कर्मजालं। (वि० ४६)

तेरसि–(सं० त्रयोदशी)–किसी पक्ष की तेरहवीं तिथि। उ० तेरसि तीन अवस्था तजहुँ भजहु भगवंत। (वि० २०३)

तेरहुति–दे० 'तिरहुति'। उ० जेहिं तेरहुति तेहि समय निहारी। (मा० १।२८९।४)

तेरहूति–दे० 'तिरहुति'। उ० चले चित्रकूटहि भरत चार चले तेरहूति। (मा० २।२७१)

तेरि–दे० 'तेरी'। उ० नीको तुलसीदास को तेरि ही निकाई। (वि० ३५)

तेरिए–तेरा ही, तेरा ही है। उ० बूझिए बिनय अवलंब मेरे तेरिए। (ह० ३४) तेरी–(प्रा० तुम्हकेरको, हि० तेरा)–तुम्हारी, आपकी। उ० तुलसी पर तेरी कृपा निरुपाधि निरारी। (वि० ३४) तेरे–तुम्हारे, आपके। उ० तेरे देखत सिंह को सिसु-मेंढक लीलै। (वि० ३२) तेरउ–

तेरे ही, आपके ही। उ० जानत हौं कलि तेरेऊ मनु गुन गन कीले। (वि० ३२)

तेरो-तुम्हारा, तेरा, आपका। उ० सायो खोंची माँगि मैं तेरो नाम लिया रे। (वि० ३३)

तेल-(स० तैल)-१ तैल, रोगन, २ स्नेह, ३ चिकनाई। उ० १ तेल नाव भरि नृप तनु राखा। (मा० २।१५७।१) मु० तेल चढ़ावहिं-विवाह के नियमानुसार हल्दी मिला तेल अंग पर मलते हैं। उ० करि कुल रीति, कलस थपि तेलु चढ़ावहिं। (जा० १२६)

तेला-तेल, रोगन। उ० रहा न नगर बसन घृत तेला। (मा० ५।२५।३)

तेलि-(स० तैल)-तेली, तेल पेरकर बेंचनेवाली एक जाति। उ० ते बरनाधम तेलि कुम्हारा। (मा० ७।१००।३)

तेषां-(स०)-उनपर, उनसे। उ० ये पठंति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति। (मा० ७।१०८। श्लो० ९)

तैं (१)-(स० त्व)-१ तू, तुम, २ आप, ३ तैंने, तूने। उ० १ अहवाद 'मैं तैं' नहीं दुष्ट संग नहिं, कोइ। (वै० ३०)

तैं (२)-(स० तस)-से।

तैलकयंत्र-(स०)-कोल्हू। उ० समर-तैलिकयंत्र तिल-तमी चर निकर पेरि डारे सुभट घालि घानी। (वि० २५)

तैसइ-(स० तादृश, प्रा० ताइस, हि० तैसा)-वैसे ही, उसी प्रकार। उ० तैसइ सील रूप सुबिनीता। (मा० ३।२४।२) तैसिये-वैसी ही, उसी तरह, उसी तरह है। उ० तैसिये लसति नव पल्लव खोंटी। (गी० २।२०) तैसी-वैसी, वैसी ही। उ० तैसी बरेखी कीन्हि पुनि मुनि सात स्वारथ सारथी। (पा० २२१) तैसें-दे० 'तैसे'। उ० हंस बनीसहि अतर तैसें। (मा० १।७०।१) तैसे-वैसे, उसी प्रकार से। उ० तैसे ही गुन-दोख गत प्रगटत समय सुभाय। (स० १६४) तैसेहिं-वैसे ही, उसी प्रकार। उ० तैसेहि भरतहि सेन समेता। (मा० २।२३०।४)

तैसो-वैसा ही, वैसा, उसी प्रकार का। उ० स्वामी सीय सखिन्ह लखन तुलसी को तैसो। (गी० १।६६)

तैहै-(स० ताप)-संतप्त करेगी, जलायेगी।

तो (१)-(स० तव)-तेरा, तुम्हारा। उ० तो बिनु जगदंब गंग! कलिजुग का करित? (वि० १६) तोकहँ-तुम्हे, तुमको। तोको-तुमको, तुम्हें। उ० भयो सुगम तोको अमर अगम तनु समुझि धौं कत खोवत अकाय। (वि० ८४) तोहि-१ तुम्हें, २ तुममें, तुमसे। उ० २ तोहि मोहि नाते अनेक मानिये जो भावै। (वि० ७६) तोहि-तुमको, तुम्हे तुमको। उ० मोपर कीबे तोहि जो करि लेहि भिया रे। (वि० ३३) तोहीं-१ तुमको, आपको, २ आपसे। तोहि-१ तुमसे, आपसे, २ तुमको, आपको। उ० १ रामु कपन प्रभु पूछउँ तोही (मा० १।४६।३) तोहूँ-तुम्हें भी, आपको भी। उ० ताते हौं देत न दूषन तोहूँ। (गी० २।६१) तोहू-तुमको भी, तुम्हें भी। उ० तोहू है बिदित बल महाबली बालि को। (क० ६।११)

तो (२)-(स० तद्)-तब, उस दशा में, तब फिर।

तो (३)-(हि० हतो)-था, रहा। उ० मेरी मैं दसकंठ-सभा सब, मोते को उन मथक तो। (गी० ५।१३)

तोखपोख-(स० तोष+पोषण)-भरण-पोषण। उ० रसना मंत्री दसन जन तोखपोख सब काज। (स० ७००)

तोतर-(अनु० तुतलाना)-तुतला या अस्पष्ट बोलनेवाला। तोतरी-तुतली, तोतली, तुतलाती हुई। उ० तोतरी बोलनि, बिलोकनि मोहनी मन हरनि। (गी० १।२५) तोतरे-तुतले, तोतले। उ० अति प्रिय मधुर तोतरे बोला। (मा० १।१६६।५)

तोतरात-तुतलाते हुए। उ० पूछत तोतरात बात मातहि जदुराइ। (कृ० १)

तोतरि-तोतली, अस्पष्ट। उ० जौं बालक कहँ तोतरि बाता। (मा० १।८।५)

तोपची-[तु० तोप+ची (प्रत्यय)]-तोप चलानेवाला, गोलंदाज। उ० काल तोपची तुपक महि, दारू-अनय कराल। (दो० ५१५)

तोपिहैं-(स० छोपन)-तोपेंगे, ढक लेंगे, पाट देंगे। उ० तुलसी बड़े पहार लै पयोधि तोपिहैं। (क० ६।१) तोपैं-तोपते हैं, पाट रहे हैं, ढक रहे हैं। उ० तोपैं तोय निधि, सुर को समाज हरषा। (क० ६।७) तोप्यो-तोपा ढक दिया, घेर लिया। उ० तदपि बान रघुपति रथ तोप्यो। (मा० ६।९३।२)

तोम-(स० स्तोम)-समूह, ढेर। उ० तीतर-तोम तमीचर सेन समीर को सूनु बड़ो बहरी है। (क० ६।२६) तोमनि-समूहों, तोम का बहुवचन। उ० महामीन बास तिमि तोमनि को थल भो। (ह० ७)

तोमर-(स०)-१ भाले की तरह का एक पुराना हथियार २ एक छंद, ३ बरछा, साँग। उ० १ सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसु धरा। (मा० ३।११। छं० १)

तोय-(स०)-पानी, जल।

तोयनिधि-(स०)-समुद्र। उ० सप्त तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस। (मा० ६।५)

तोर-(प्रा० तुम्हकरको)-तुम्हारा, आपका। उ० प्रनतपाल प्रन तोर मोर प्रन जियउँ कमलपद देखे। (वि० ११३)

तोरइ-(स० त्रुट्)-तोड़ता है, दो खंड करता है। तोरन (१)-तोड़ने के लिए २ तोड़नेवाला, ३ तोड़ना। तोरब-१ तोड़ेंगे, २ तोड़ूँगा ३ तोड़ना। उ० १ राम चाप तोरब सक नाहीं। (मा० १।२४५।१) ३ रहउ चढ़ाउब तोरब भाई। (मा० १।२५२।१) तोरहुँ-तोड़ें, तोड़ डालें। उ० तोरहुँ राम गनेस गुसाईं। (मा० १।२५२।४) तोरा (१)-तोड़ा, टूक टूक किया, भंग किया। तोरि (१)-तोड़कर। उ० तोरि जमकातरि मँदोदरी कढ़ोरि आनी रावन की रानी मेघनाद महतारी है। (ह० २७) तोरिबे-तोड़ने, खंड-खंड करने। उ० मैं तव दसन तोरिबे लायक। (मा० ६।३४।१) तोरी (१) १ तोड़कर, २ तोड़ दी। तोरें (१)-तोड़े, खंडन किए। उ० बिनु तोरें को कुअँरि बिआहा। (मा० १।२४५।३) तोरे (१)-१ तोड़, तोड़ा, २ तोड़ने पर, ३ तोड़ने से। तोरेउँ-तोड़, तोड़ डाले। उ० कपि सुभाय ते तोरेउँ रूखा। (मा० ५।२२।२) तोरेहु-तोड़ने पर। उ० तोरेहुँ धनुषु ब्याहु अवगाहा। (मा० १।२४५।३) तोरैं-तोड़ने, टूक टूक करने। उ० फल खाएसि तरु तोरैं लागा। (मा० ५।१८।१) तोरौं-तोड़, तोड़ डालूँ। उ०

असि रिस होति दसउ मुख तोरों। (मा० ६।३७।१)
तोरयो-तोड़ा, तोड़ डाला। उ० राज सभा रघुवर मृनाल ज्यों संभु-सरासन तोरयो। (गी० १।१००)
तोरण-(सं०)-१ एक काठ का टुकड़ा जो विवाहादि के अवसर पर द्वार पर बाँधते हैं, २ फूल माला या पत्ती आदि से युक्त रस्सी जो शुभ अवसरों पर दरवाज़े पर बाँधते हैं, वदनवार, ३ बाहरी फाटक।
तोरन (२)-दे०'तोरण'। उ०२ तोरन वितान पताक चामर धुज सुमन फल चौरि। (गी० ७।१८)
तोरा (२)-(प्रा० तुम्हकरको)-तुम्हारा, आपका। उ० कृष्न तनय होइहि पति तोरा। (मा० १।८८।१) तोरी (२) तेरी, तुम्हारी, आपकी। उ० तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी। (मा० २।१४।४) तोरे (२)-तुम्हारी, आपकी। उ० देवि मातु भए जो रुचि तोरें। (मा० १।१५०।२) तोरे (२)-तेरे, तुम्हारे। उ० मम समान पुन्य पुंज बालक नहिं तोरे। (कृ० १)
तोरा (३)-(सं० त्वरा) शीघ्रता, वेग, जल्दी।
तोराई-१ तोड़ा कर, तोड़कर, तुड़ाती हुई, २ तोड़ाया। उ० १ छुद्र नदीं भरि चलीं तोराई। (मा० ४।१४।३) तोरावति-(सं० त्रुट)-१ तोड़ती है, २ तोड़ करनेवाली, ज़ोरदार। उ० २ विषम विषाद तोरावति धारा। (मा० २।२७६।२)
तोरि (२)-(प्रा० तुम्हकरको) तुम्हारी, आपकी, तेरी। उ० काम-लोलुप भ्रमत मन हरि भगति परिहरि तोरि। (वि० १५८)
तोष-(सं०)-१ अघाने या भरने का भाव, तुष्टि, संतोष, २ आनंद, खुशी ३ अल्प थोड़ा, ४ श्रीकृष्ण के एक सखा का नाम। उ० १ धीर धर विराग तोष सकल सत आदरे। (वि० ७४) तोष-पोष-भरण पोषण। उ० रसना मंत्री, दसनजन, तोष-पोष निज काज। (दो० ५२५)
तोषक-(सं०)-प्रसन्न या संतुष्ट करनेवाला, तृप्त करनेवाला। उ० भव श्रम सोषक तोषक तोषा। (मा० १।४३।२)
तोषन-१ तोषना, तुष्ट करना, संतुष्ट करना, २ प्रसन्न करनेवाला, संतुष्ट करनेवाला, ३ तृप्ति, संतोष। उ० २ हरि तोषन व्रत द्विज सेवकाई। (मा० ७।१०६।६)
तोषनिहारा-संतुष्ट करनेवाला, प्रसन्न करनेवाला। उ० तनय मातु पितु तोषनिहारा। (मा० २।४१।४)
तोषये-(सं०)-तुष्टि के लिए, प्रसन्नता के लिए। उ० रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये। (मा० ७।१०८। श्लो०९) तोषा-क दे० 'तोष', ख तुष्ट किया, प्रसन्न किया। उ० क १ भव श्रम सोषक तोषक तोषा। (मा०१।४३।२) तोषि-संतुष्ट कर, प्रसन्न होकर। उ०मोंग कोपि तोषि पोषि फैलि फूलि फरिकै। (गी० १।७०) तोषिए-१ संतुष्ट कीजिए, २ प्रसन्नता के लिए, ३ जिसके द्वारा संतुष्ट हुएँ। उ० १ तुलसिदास हरि तोषिए सो साधन नाहीं। (वि० १०६) तोषि पोषि-प्रसन्न होकर। उ० दे० 'तोषि'। तोषिहैं-संतुष्ट करेंगे। उ० जोगिनी जमाति कालिका कलाप तोषिहैं। (क०६।२) तोषे-१ तृप्त हुए, प्रसन्न हुए, २ संतुष्ट किया, ३ तुष्ट करने से। उ० २ साथ पाले पोषे तोषे आलसी अभागी अघी। (वि० २५६) तोषेउ-प्रसन्न हुए। उ० प्रभु तोषेउ सुनि संकर बचना। (मा० १।७७।१)
तोहारा-तुम्हारा, आपका। उ० परसु सहित बड़ नाम तोहारा। (मा० १।२८२।१)
तौंकी-(सं० ताप) तौंक कर, गर्म होकर। उ० घार धुआ चहुँ ओर चलैं, लपटैं झपटैं सो तमीचर तौंकी। (क० ७।१४३)
तौंसियत-(?)-तपे जाते हैं, जले जाते हैं। उ० तात तात, तौंसियत, झौंसियत झारहीं। (क० ५।१५)
तौ (१)-तो, तो फिर। उ०तौ प्रसन्न होइ यह बर देहू। (मा० १।१४६।२)
तौ (४)-(सं०) वे दोनों। उ० सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि न। (मा० ४। श्लो० १)
तौ (३)-तब। तौलगि-(सं० तद्+लग्ने) तौलों, तब तक, उस समय तक।
तौलि-(सं० तौल) तौलकर, जोखकर। उ० मैं मति तुला तौलि देखी भइ, मेरिहि दिसि गरुआई। (वि० १७१) तौलिए-१ तौला करती हैं, २ तोलिए, वजन कीजिए। उ० १ देव, पितर, ग्रह पूजिये तुला तौलिए घी के। (गी० १।१२)
त्यक्त-(सं०)-त्यागा हुआ। उ० गुरु गिरा-गौरवामर सुदु स्त्यज-राज त्यक्त श्री सहित, सौमित्रि भ्राता। (वि० ५०)
त्याग-(सं०)-१ छोड़ना, तजना, उत्सर्ग, २ दान, ३ विरक्ति, वैराग्य। उ० १ समह त्याग न बिनु पहिचाने। (मा० १।६।१)
त्यागइ-त्याग देता है, छोड़ता है। उ० मनि बिनु फनि, जलहीन मीन तनु त्यागइ। (पा०६७) त्यागत-त्यागते हैं, छोड़ देते हैं। उ० मुनि त्यागत जोग भरोस सदा। (मा० ७।१४।७) त्यागब-१ त्यागना, छोड़ना, २ त्यागूँगा, ३ त्यागना चाहिए। उ० ३ त्यागब गहब उपेच्छनीय अहि हाटक तृन की नाईं। (वि० १२४) त्यागहिं-त्यागते, त्यागते हैं। उ० सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। (मा० ३।४६।१) त्यागहु-१ त्यागो, छोड़ो, छोड़ दो, २ छोड़ रहे हो। उ० १ सखा सोच त्यागहु बल मोरें। (मा० ४।७।५) त्यागहू-त्यागो, छोड़ दो। उ० नर विविध कर्म अधम बहुमत सोकप्रद सब त्यागहू। (मा० ३।३६।छं०१) त्यागा-छोड़ा, छोड़ दिया। उ० जबतें सतीं जाइ तनु त्यागा। (मा० १।७५।४) त्यागि-१ त्यागकर, छोड़कर, २ छोड़, छोड़ो। १ त्यागि सब आस संत्रास भव पास-असि निसित हरिनाम जपु दास तुलसी। (वि० ४६) त्यागिहै-त्यागेगा, छोड़ेगा। उ० कुपथ कुचाल कुमति, कुमनोरथ, कुटिल कपट कब त्यागिहैं। (वि०२२४) त्यागी-१ छोड़कर, त्यागकर, २ त्यागनेवाला, ३ साधु विरक्त, सन्यासी। उ० १ नृप बलि व्याध प्रहलाद मय व्याध गज गृद्ध द्विज बंधु निज धर्म त्यागी। (वि०५०) त्यागू-१ त्याग, उत्सर्ग, छोड़ना, २ त्यागो। उ० १ आजु सुफल जगु जानिय त्यागू। (मा० २।१०७।२) त्यागे-१ छोड़े, छोड़ दिए, २ छोड़ दिया है, ३ छोड़ने पर। उ० १ तिन्ह भव भोग रोग सम त्यागे। (वि० १२८) त्यागेउ-छोड़ा, छोड़ दिया। उ० बरष सहस दस त्यागेउ सोऊ। (मा०

१।१४२।१) त्यागी–छोड़े, छोड़ता। उ० देखत सुनत विचारत यह मन निज सुभाव नहिं त्यागै। (वि० ११६) त्यागा–त्यागूँगा, छोड़ूँगा। उ० जौ तुम त्यागो राम हौं तो नहिं त्यागा। (वि० १७७) त्यागो–छोड़ो, छोड़ोगे, छोड़ भी दोगे। उ० दे० 'त्यागा'।

त्यों–(सं० तत् + प्रवम्)–१ उस प्रकार, उसी तरह, २ उसी समय, तत्काल। उ० १ सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं। (क० २।२१) मु० त्यों-त्यों–वैसे ही वैसे, उसी प्रकार। उ० त्यों-त्यों सुकृत सुभट कलि भूपहिं निदरि लगे बहि काढ़न। (वि० २१)

त्रपा–(सं०)–लज्जा, शर्म। उ० भव धनु दलि जानकी बियाही भए बिहाल नृपाल त्रपा हैं। (गी० ७।१३)

त्रय–तीन। उ० त्रय शूल निर्मूलनं शूलपाणिम्। (मा० ७।३। श्लो० ४) त्रय–(सं०)–तीन। उ० त्रयनयन मयन मर्दन महेस। (वि० १३) त्रयकाल–भूत, भविष्यत और वर्तमान काल। उ० तहँ मगन मज्जसि पान करि त्रयकाल जल नाहीं जहाँ। (वि० १३६) त्रयताप–दैहिक, दैविक, भौतिक नामक तीन दुःख या ताप। उ० विमल विपुल बहसि बारि, सीतल त्रयताप हारि। (वि० १७) त्रयनयन–(सं०)–तीन आँखवाले। शिव। उ० त्रयनयन मयन-मर्दन महेस। (वि० १३) त्रयरेखा–पेट पर पड़ जानेवाली तीन रेखाएँ, त्रिवली। उ० कटि किंकिनी उदर त्रयरेखा। (मा० १।१९९।२) त्रयलोक–दे० 'त्रैलोक'। त्रयवर्ग–१ अर्थ धर्म और काम २ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, ३ वृद्धि स्थिति और नाश, ४ त्रिफला, ५ त्रिकुटा। उ० १ सत संसर्ग त्रयवर्ग पर परमपद प्राप, निःप्राप्य गति त्वयि प्रसन्ने। (वि० ५७) त्रयव्याधि–आधिदैहिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक नाम की तीन व्याधियाँ या रोग।

त्रयी–(सं०)–तीन का समूह। उ० अद्भुत त्रयी किधौं पठई है विधि मग लोगन्हि सुख दैन। (गी० २।२४)

त्रसित–(सं० त्रस्त)–१ डरा हुआ, भयभीत, २ दुखित, ३ सताया हुआ। उ० १ त्रसित परेउ अवनी अकुलाई। (मा० १।१७४।४)

त्रसे–डरे, डर गए। उ० मंदोदरी उर कंप कंपति कमठ भू भूधर त्रसे। (मा०६।१०१। छं०१) त्रस्यो–१ त्रस्त, भयभीत, डरा हुआ, २ डरा। उ०१ करम-कपीस बालि बली त्रास त्रस्यो हौं। (वि० १८१)

त्रस्त–दे० 'त्रसित'। उ० १ त्राहि रघुबंस भूषन कृपाकर कठिन काल बिकराल-कलि-त्रास त्रस्त। (वि० ५१) त्रस्त–(सं०)–दे० 'त्रसित'।

त्राण–(सं०)–१ रक्षा, बचाव, २ कवच, ३ रक्षित।

त्रात–दे० 'त्राता'।

त्रातहि–रक्षा करनेवाले को। उ० पलक नयन इव सेवक त्रातहि। (मा० ७।३०।२) त्राता–(सं० त्रातृ)–रक्षक रक्षा करनेवाला। उ० पाप सताप घनघोर संसृति, दीन भ्रमत जगयोनि नहिं कोपि त्राता। (वि० ११)

त्रातु–रक्षा करे, बचावे। उ० त्रातु सदा नोमय सब याजः। (मा० ३।११।२)

त्रान–दे० 'त्राण'। उ० १ भर्दि पदत्रान सीस नहिं छाया। (मा० ३।२१६।३)

त्राना–दे० 'त्राण'। उ० १ नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना। (मा० ६।८०।२)

त्रास–(सं०)–१ भय, डर, २ कष्ट, तकलीफ। उ० १ त्राहि रघुबंस भूषन कृपाकर कठिन काल बिकराल-कलि त्रास त्रस्तम्। (वि० ५१)

त्रासइ–डराता, त्रास देता। उ० तहि बहु बिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना। (मा० १।१८३। छं०१) त्रासहु–डराओ, भय दिखलाओ। उ० सीतहि बहुबिधि त्रासहु जाई। (मा० ५।१०।४)

त्रासक–डरानेवाला भयंकर, डराकर भगानेवाला। उ० त्रिविध ताप त्रासक तिमुहानी। (मा० १।४०।२)

त्रासकारी–दे० 'त्रासक'। उ० रिच्छ मर्कट विकट सुभट उद्भट, समर सैल संकास रिपु त्रासकारी। (वि० ५०)

त्रासन–१ भयभीत, २ त्रास का बहुवचन, ३ त्रास देने वाला, डरानेवाला। उ० १ को न लाभ दंद फंद बाँधि त्रासन करि दीन्हीं। (क० ७।११७)

त्रासा–त्रास, डर, भय। उ० भागि भवन पैठीं अति त्रासा। (मा० १।९६।३)

त्रासित–भयभीत, डरा हुआ। उ० एक एक रिपु ते त्रासित जन तुम राखे रघुबीर। (वि० ९३)

त्राहि–रक्षा करो, बचाओ। उ० त्राहि रघुबंस भूषन कृपाकर कठिन काल विकराल-कलि त्रास त्रस्तम्। (वि० ५१)

त्रि–(सं०)–तीन।

त्रिकाल–(सं०)–१ तीनों काल, भूत, वर्तमान और भविष्य, २ प्रातः मध्याह्न और सायं। त्रिकालज्ञ–(सं० त्रिकालज्ञ)–भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों को जानने वाला। उ० त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ तुम्ह गति सर्वत्र तुम्हारि। (मा० १।६६) त्रिकालदरसी–(सं० त्रिकालदर्शिन्)–दे० 'त्रिकालज्ञ'। उ० सुन्दु त्रिकालदरसी मुनिनाथा। (मा० २।१२५।४)

त्रिकूट–(सं०)–१ तीन चोटियोंवाला पर्वत, २ वह पर्वत जिस पर लंका बसी हुई मानी जाती है। ३ एक कल्पित पर्वत जो सुमेरु पर्वत का पुत्र माना जाता है। ४ योग शास्त्रानुसार शरीर के छः चक्रों में से प्रथम। उ० २ कोसलराज के काज हौं आज त्रिकूट उपारि लै बारिधि बोरौं। (क० ६।१४)

त्रिकोण–(सं०)–१ जिसमें तीन कोण हों, २ योनि, भग।

त्रिगुण–(सं०)–१ सत्व, रज और तम इन तीन गुणों का समूह, २ तीन गुना।

त्रिगुणा–(सं०)–१ दुर्गा, भगवती, २ तन्त्र में एक प्रसिद्ध बीज।

त्रिगुन–दे० 'त्रिगुण'। उ० १ तीन त्रिगुन-पर परम पुरुष श्रीरमन मुकुंद। (वि० २०३)

त्रिजग (१)–(सं० त्रिजगत्)–आकाश, पाताल और पृथ्वी नामक तीनों लोक।

त्रिजग (२)–(सं० तिर्यक्)–टेढ़ा चलनेवाला जीव, पशु तथा कीड़े मकोड़े। उ० त्रिजग देव नर असुर समेते। (मा० ७।८७।३)

त्रिजटा–(सं०)–सीता की अशोकवाटिका में सेवा करने वाली एक राक्षसी। उ० त्रिजटा नाम राक्षसी एका। (मा० ५।११।१) कथा–त्रिजटा विभीषण की बहन थी। यह बड़े अच्छे स्वभाव की थी। सीता जब अशोकवाटिका में थीं तो यह उनकी सेवा किया करती थी तथा उनसे तरह तरह की बातें कर उनका दुःख दूर किया करती थी। ऐसा भी प्रसिद्ध है कि यह प्रायः एक बार में तीन बातें कहा करती थी।
त्रिताप–दैहिक, दैविक और भौतिक तीन ताप या दुःख। उ० नाम के प्रताप न त्रिताप तन दाहिए। (क० ७।७६)
त्रिदश–(सं०)–देवता सुर।
त्रिदस–दे० 'त्रिदश'। उ० तुलसीस त्रिलोचन, त्रिगुन-पर, त्रिपुर मथन जय त्रिदस पर। (क० ७।१५०)
त्रिदोष–(सं०)–१ वात, पित्त और कफ ये तीन दोष, २ वात, पित्त और कफ जनित रोग, सन्निपात। इसमें रोगी बकबक करता है। उ० २ भाख की, कि पाल की, कि रोष की, त्रिदोष की है। (ह० २६) त्रिदोषे–त्रिदोषयुक्त, सन्नि पात से पीड़ित। उ० कैधौं क्रूर काल वस तमकि त्रिदोषे है। (गी० १।६३)
त्रिधा–(सं०)–तीन तरह से, तीन प्रकार से। उ० त्रिधा देहगति एक विधि कहूँ ना गति थान। (स० १७६)
त्रिपथ–(सं०)–१ तीन पथ, आकाश, पाताल, पृथ्वी, २ कर्म, ज्ञान और उपासना इन तीनों मार्गों का समूह। उ० १ ईस सीस बससि, त्रिपथ लससि नभ-पाताल धरनि। (वि० २०) २ तुलसी त्रिपथ विहाय गो राम दुआरे दीन। (दो० ९९)
त्रिपथगा–(सं०)–स्वर्ग, मर्त्य और पाताल इन तीनों लोकों से बहनेवाली, गंगा। उ० त्रिपथगासि, पुन्यरासि, पाप छालिका। (वि० १७)
त्रिपथगामिनि–दे० 'त्रिपथगा'। उ० त्रिपथगामिनि-जसु बेद कहँ गाइ कै। (क० २।६)
त्रिपथगामिनी–(सं०)–दे० 'त्रिपथगा'।
त्रिपुंड–(सं० त्रिपुंड्र)–तीन आड़ी रेखाओं का तिलक जो शैव या शाक्त लोग ललाट पर लगाते हैं। उ० भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा। (मा० १।२६८।२
त्रिपुर–महाभारत के अनुसार वे तीनों नगर जो तारकासुर के तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली नामक तीनों पुत्रों ने मय दानव से अपने लिए बनवाये थे। इनमें एक नगर सोने का और स्वर्ग में था। दूसरा चाँदी का और अंत रिक्ष में था और तीसरा लोहे का मर्त्यलोक में था। जब इन तीनों राक्षसों का अत्याचार बहुत बढ़ गया तो शिव ने एक ही बाण से तीनों लोकों को नष्ट कर डाला और फिर उन राक्षसों को मार डाला। इसीलिए शिव का नाम त्रिपुरारि है। उ० दारुन दनुज जगत-दुखदायक मारयो त्रिपुर एक ही बान। (वि० ३) त्रिपुरआराती–शिव, महादेव। उ० तदपि न कहेउ त्रिपुरआराती। (मा० १। ५७।४)
त्रिपुरमथन–शिव, महादेव। उ० तुलसीस त्रिलोचन, त्रिगुन पर त्रिपुरमथन जय त्रिदसपर। (क० ७।१५०)
त्रिपुरारि–(सं०)–महादेव। दे० 'त्रिपुर'।
त्रिपुरारी–दे० 'त्रिपुरारि'।
त्रिबली–(सं०)–पेट पर पड़नेवाली तीन रेखाएँ। ये रेखाएँ सुन्दर मानी गई हैं। उ० त्रिबली उदर गँभीर नाभि-सर जहँ उपजे बिरंचि ज्ञानी। (वि० ६३)
त्रिबिक्रम–(सं० त्रिविक्रम)–वामन भगवान, विष्णु के एक अवतार। उ० जबहिं त्रिबिक्रम भए खरारी। (मा० ४। २९।४)
त्रिबिध–(सं० त्रिविध)–दे० 'त्रिविध'। उ० १ सुनहु नाथ! मन जरत त्रिबिध ज्वर करत फिरत बौराई। (वि०८१) ४ चली सुहावनि त्रिबिध बयारी। (मा० १।१२६।२)
त्रिबिधि–तीन गुना, तिगुना। उ० त्रिबिधि एक बिधि प्रभु अगुन प्रजहि सवाँरहि राउ। (स० ६८६)
त्रिबेनिहि–(सं० त्रिवेणी)–त्रिवेणी पर, गंगा, जमुना और सरस्वती के संगम पर। उ० कीन्ह प्रनामु त्रिबेनिहि आए। (मा० २।२०४।२) त्रिबेनीं–त्रिवेणी में। दे० 'त्रिवेणी'। उ० २ सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनीं। (मा० १।४४।२)
त्रिबेनी–दे० 'त्रिवेणी'। उ० २ भरत बचन सुनि माझ त्रिबेनी। (मा० २।२०४।३)
त्रिभंग–(सं०)–१ तीन जगह से टेढ़ी, २ खड़े होने की एक मुद्रा जिसमें पेट, कमर और गरदन में कुछ टेढ़ापन रहता है। उ० २ मुरली तान तरंग मोहे कुरंग बिहंग, जोहैं मूरत त्रिभंग निपट निकट हैं। (कृ० २०)
त्रिभुवन–(सं०)–तीनों लोक अर्थात् स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल। उ० अँधियारे मेरी बार क्यों त्रिभुवन उजि यारे! (वि० ३३)
त्रिभुवनपति–(सं०)–विष्णु, त्रिलोकीनाथ, तीनों लोकों के स्वामी। उ० बिस्वंभर, श्रीपति, त्रिभुवनपति बेद बिदित यह लीख। (वि० ९८)
त्रिमुहानी–(सं० त्रि + फ़ा० मुहाना)–१ वह स्थान जहाँ तीन ओर से नदियाँ आकर मिलें। तिमुहानी। २ वह स्थान जहाँ तीन रास्ते मिलें।
त्रिय–(सं० स्त्री)–स्त्री औरत। उ० रे त्रिय चोर कुमारग गामी। (मा० ६।३३।३)
त्रिया–(सं० स्त्री)–स्त्री, औरत, वामा।
त्रिरेख–(सं०)–उदर पर पड़नेवाली तीन रेखाएँ, त्रिबली। उ० उदर त्रिरेख मनोहर सुंदर नाभि गँभीर। (गी० ७।२१)
त्रिलोक–(सं०)–स्वर्ग, मर्त्य और पाताल ये तीन लोक, त्रिभुवन। उ० एतनो परेखो सब भाँति समरथ आजु, कपिनाथ साँची कहौं को त्रिलोक तोसो है? (ह० २१)
त्रिलोकपति–(सं०)–विष्णु, तीनो लोकों के स्वामी। उ० तुलसी तिलोक हूँ त्रिलोकपति-लोक गयो। (क० ७।७६)
त्रिलोचन–(सं०)–१ शिव, महादेव, २ काशी में एक तीर्थस्थान। उ० १ तुलसीस त्रिलोचन, त्रिगुन-पर, त्रिपुर मथन जय त्रिदसपर। (क० ७।१५०)
त्रिवलि–दे० 'त्रिबली'।
त्रिवली–दे० 'त्रिबली'।
त्रिविध–(सं०)–१ तीन प्रकार की, तीन तरह की, २ सात्विक, राजसिक और तामसिक, ३ मन कर्म और वचन, ४ शीतल, मंद और सुगंध, ५ दैहिक, दैविक, और

मौतिक, ६ तन, जन और धन, ७ जन्म, जरा, और मरण, ८ व्यापक, धन्यात्मक, और पर्यायात्मक।
त्रिवेणी-(सं०)-१ तीन नदियों का संगम, २ गंगा, जमुना और सरस्वती का संगम जो प्रयाग में है। ३ हठयोग में इड़ा, सुषुम्ना और पिंगला, इन तीन नाड़ियों का संगम।
त्रिशिर-(सं०)-१ त्रिशिरा। तीन मस्तकवाला एक राक्षस जो रावण का भाई था। खर दूषण के साथ दंडकवन में राम के हाथ से यह मारा गया। २ ज्वर पुरुष जिसे बाणासुर की सहायता के लिए शिव ने उत्पन्न किया था और जिसके तीन सिर, तीन पैर, छ हाथ और नौ आँखें थीं। उ० १ जयतिखर-त्रिशिर दूषण चतुर्दश सहस सुभट मारीच-संहारकर्त्ता। (वि० ४३)
त्रिशिरा-दे० 'त्रिशिर'। उ० १ खर दूषन त्रिसिरा अरु माखी। (मा० २।२१।४)
त्रिशंकु-(सं०)-एक राजा। राजमद से इनकी सदेह स्वर्ग जाने की इच्छा हुई। इन्होंने वशिष्ठ से यह कहा, पर उन्होंने इसे असंभव बतलाया। फिर इन्होंने वशिष्ठ के पुत्र से कहा पर उन्होंने भी इसे अशक्य कहा। वशिष्ठ के पुत्र ने इन्हें चांडाल होने का श्राप भी दिया क्योंकि ये पिता पुत्र में विरोध पैदा करना चाहते थे। त्रिशंकु चांडाल होकर विश्वामित्र के यहाँ पहुँचे। विश्वामित्र ने इनका कहना मान लिया और इसके लिए सभी ऋषियों को बुलाकर यज्ञ आरंभ करवाया। यज्ञ भाग लेने देवता लोग न आए, इस पर रुष्ट हो विश्वामित्र अपने तप के बल से उन्हें सदेह स्वर्ग भेजने लगे। पर उधर से इन्द्र ने त्रिशंकु को नीचे ढकेला। पर विश्वामित्र की शक्ति के कारण ये नीचे पृथ्वी पर न आ सके और तभी से उसी प्रकार बीच में लटके हैं। इनका मुख नीचे तथा पैर ऊपर है। ये प्रसिद्ध सूर्यवंशी हरिश्चंद्र के पिता थे।
त्रिशूल-(सं०)-१ शिव का अस्त्र जिसके सिरे पर तीन फल होते हैं। २ दैहिक, दैविक और भौतिक दुःख।
त्रिसंकु-दे० 'त्रिशंकु'। उ० सहस बाहु सुरनाथु त्रिसंकू। (मा० २।२२९।१)
त्रिसिरारि-(सं० त्रिशिरारि)-राम। उ० तिन्ह कर सफल मनोरथ, सिद्ध करहिं त्रिसिरारि। (मा० ४।३०क)
त्रिसूल-दे० 'त्रिशूल'। उ० कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा। (मा० १।९२।३) त्रिसूलन्हि-त्रिशूलों से। उ० ब्याकुल किए भालु कपि परिघ त्रिसूलन्हि मारि। (मा० ६।७२)
त्रुटि-(सं०)-१ कमी, न्यूनता, २ गलती, अशुद्धि, ३ शंका, संशय, ४ छोटी इलायची।
त्रेता-(सं०)-चार युगों में से दूसरा युग जो १२९६००० वर्षों का होता है। इस युग में पुराणानुसार आदमियों की उम्र १०,००० वर्ष तथा मनु के अनुसार ३०० वर्ष की होती थी। उ० एक बार त्रेता जुग माहीं। (मा० १।४८।१)
त्रै-(सं० त्रय)-तीन।
त्रैलोक-(सं० त्रैलोक्य)-तीन लोक, आकाश, पाताल और मर्त्यलोक। उ० तासु सुजसु त्रैलोक उजागर। (मा० २।२०१।२)
त्रैलोका-दे० 'त्रैलोक'। उ० भयउ कोपु कंपेउ त्रैलोका। (मा० १।८७।३)
त्रैलोक्य-१ तीनों लोक की, २ तीनों लोक में। उ० १ सग जनकात्मजा, मनुज मनु सत्य, अज, दुष्ट वधनिरत, त्रैलोक्य-माता। (वि० ५०)
त्रोण-(सं०)-तरकश, तुणीर।
त्रोन-दे० 'त्रोण'। उ० काल त्रोन सजीव जनु आवा। (मा० ६।७१।२)
त्र्यंबक-(सं०)-तीन आँखवाला, शिव।
त्वं-तू। उ० आदिमध्यांत भगवंत त्वं सर्वगतमीस पश्यंति ये ब्रह्मवादी। (वि० ५४)
त्व (१)-तुम, तू, आप।
त्व (२)-(?)-१ काल, समय, २ अन्य, भिन्न।
त्वक्-(सं०)-चमड़ा, खाल।
त्वच-(सं० त्वचा)-चमड़ा, छाल, खाल। उ० अव्यक्त मूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने। (मा० ७।१३।छं०४)
त्वत्-(सं०)-तुम्हारा, आपका। उ० त्वदंघ्रि मूल ये नराः। (मा० ३।४।छं०७)
त्वदीय-(सं०)-तुम्हारा, आपका। उ० त्वदीय भक्ति संयुताः। (मा० ३।४।छं०१२)
त्वम्-(सं०)-तुम, आप।
त्वयि-१ तुम्हारी, आपकी, २ तुम्हारे, आपके। ३ तुममें। उ० २ संत संसर्ग त्रयवर्ग पर परमपद प्राप, नि प्राप्य गति त्वयि प्रसन्ने। (वि० ५७)
त्वरा-(सं०)-शीघ्रता, जल्दी।
त्वरित-(सं०)-शीघ्र, तुरत।

# थ

थ-(सं०)-१ रक्षण, २ मंगल, ३ भय, ४ भक्षण, ५ एक रोग।
थकान-(सं० स्था+कृ०, मा० थक्कन)-थकावट, शिथिलता।
थकि-थककर हार कर, लाचार होकर निरुपाय होकर। उ० जहँ-तहँ रहे पथिक थकि नाना। (मा० ४।१५।६)
थकित-१ थका हुआ, श्रांत, २ मुग्ध, मोहित, ३ आश्चर्य-चकित, अचंभित, ४ थके हुए हैं। उ० २ थकित होत जिमि चंद्र-चकोरा। (मा० १।२१६।३) ३ थकित होहिं सब लोग लुगाई। (मा० १।२०४।४)
थके-१ थक गए, २ थके हुए, ३ मोहित हुए, लुभा गए,

४ टिक गए, ठहर गए। उ० १ थके नयन पद पानि सुमति यल, सग सकल बिछुरयो। (वि० १००)

थन-(स० स्तन)-गाय, भैंस, बकरी आदि चौपायों का स्तन। उ० अंतर अयन अयन भल, थन फल बच्छ बेद बिस्वासी। (वि० २२),थन धेनु-४ की सख्या। उ० अहि रसना।थन धेनु रस गनपति द्विज गुरु वार।(स०२१)

थपत-(स० स्थापन)-स्थापित हो जाता है, ठहर जाता है, शांत हो जाता है। उ० नाम सो प्रतीति प्रीति हृदय सुथिर थपत। (वि० १३०) थपि-स्थापना करके, स्थापित करके। उ० करि कुल रीति, कलस थपि तेलु चढ़ावहिं। (जा० १२१) थपिहै-स्थापित करेगा। उ० उथपै तेहि को जेहि राम थपै ? थपिहै तेहि को हरि जौ टरिहै ? (क० ७।४७) थपे-१ स्थापित, जमे हुए, स्थापित किए हुए, २ स्थापित किए। उ० १ उथपे-थपन थपे-उथपन पन बिबुध बृ द-बंदिछोर को। (वि० ३१) थपै-स्थापित करे, थापे, जमावे। उ० उथपै तेहि को जेहि राम थपै ? थपिहै तेहि को हरि जौ टरिहै ? (क०७।४७) थप्यो-दे० 'थप्यौ'। उ० २ बालि से बीर बिदारि सुकंठ थप्यो, हरषे सुर बाजने बाजे। (क० ७।१) थप्यौ-१ स्थापित किया, जमा दिया, २ राज्य दिया, गद्दी पर बिठलाया।

थपति-१ थवई, मकान बनानेवाला, २ स्थापित करने वाला। उ० १ चले सहित सुर थपति प्रधाना। (मा० २।१३३।३)

थपन-१ स्थापन, ठहराने या जमाने का काम, २ बैठाना, ठहराना, ३ स्थापन करनेवाला। उ० ३ उथपे थपन, थपे उथपन पन बिबुध बृ द बंदि छोर को।(वि० ३१)

थर-थर-(अनु०)-डर से कॉपने की मुद्रा। उ० बोली फिरि लखि सखिहि कॉपु तनु थर-थर। (पा० ६६)

थरु-दे० 'थल'। उ० प्रतीति मानि तुलसी बिचारि काको थरु है। (क० ७।१२६)

थल-(स० स्थल)-१ स्थान, जगह, स्थल, २ पृथ्वी। उ० १ आपनी भलाई थल कहाँ कौन लहैगो ? (वि० २६१) थलहि-स्थल ही, भूमि ही। उ० जे जल चलहिं थलहि की नाईं। (मा० १।२६६।४) थलो-स्थल भी, भूमि भी, स्थान भी। उ० तुलसी सुमिरत नाम सबनि को मगल मय नभ जल थलो। (गी० ५।४२)

थलचर-(स० स्थल+चर)-स्थलचारी, मनुष्य आदि भूमि पर रहनेवाले जीव।

थलपति-(स० स्थलपति)-राजा। उ० सुजन नयन मन मग लगे सब थलपति तायो। (वि० २१६)

थलरुह-(स० स्थलरुह)-पृथ्वी पर उगनेवाले वृक्ष आदि। उ० उकठेउ हरित भए जल थलरुह, नित नूतन राजीव सुहाई। (गी० २।४६)

थलु-दे० 'थल'। उ० १ थलु बिलोकि रघुबर सुखु पावा। (मा० २।१३३।३)

थवई-(स० स्थपति, प्रा० थवइ)-मकान बनानेवाला, कारीगर, मेमार।

थहाइबी-(स० स्था, हि० थाह)-थहाना, गहराई का पता लगाना। उ० थाह न जाइ थहाइबी सर सरिता अवगाह। (दो० ४४१) थहाओं-दे० 'थहावों'। थहावों-थाह लगाऊँ, थाहूँ, गहराई का अंदाज़ा लूँ। उ० गोपद बूड़िबे जोग करम करौं बातनि जलधि थहावों। (वि० २३२)

थाका-(स० स्थ+कृ, प्रा० थक्कन)-थक गया, थका, ढीला पड़ गया। उ० गजा अति अतर बल थाका। (मा० ६।६२।१) थाकी-१ थकी, थक गई, २ ठहर गई, टिक गई। थाके-१ थक गए, थके, २ थक जाने पर, ३ ठहर गए। उ० २ थाके चरन कमल चापौंगी, स्रम भए बाउ डोलावौंगी। (गी० २।६) थाकेउ-१ थक गए, थके, २ ठहर गए, रुक गए। उ० २ रथ समेत रबि थाकेउ निसा कवन बिधि होइ। (मा० १।१९५) थाको (१)-(स० स्था+कृ, प्रा० थक्कन)-थका, थक गया, थक गया है, शिथिल पड़ गया। उ० सो पाँवर पहुँचो तहा जहँ मुनि मन थाको। (वि० १५२) थाक्यो-थका, थक गया, थक गया है। उ० भय थाक्यो जलहीन नाव ज्यों देखत बिपति जाल जग छायो। (वि० २४३)

थाकु-(स० स्था, हि० थाक)-सीमा, हद। उ० मेरे कहाँ थाकु गोरस, को नवनिधि मदिर यामहिं। (कृ० ५)

थाको (२)-(?)-तुम्हारा। उ० खर्व कियो सर्व को गर्व थाको। (क० ६।२१)

थाति-दे० 'थाती'। उ० २ भजे बिकल बिलोकि कलि अघ अवगुननि की थाति। (वि० २२१)

थाती-(स० स्थातृ)-१ धरोहर, अमानत, २ पूँजी, ३ स्थिरता, ठहराव। उ० १ थाती राखि न मागिहु काऊ। (मा० २।२८।१)

थान-(स० स्थान)-जगह, स्थान।

थाना-(स० स्थान)-१ स्थान, जगह, २ बैठक, अड्डा, जमाव। उ० २ तहँ-तहँ सुर बैठे करि थाना। (मा० ७।११८।६)

थापन-(स० स्थापन)-स्थापित करनेवाला, जमानेवाला, बसानेवाला। उ० रघु-कुल तिलक सदा तुम्ह उथपन थापन। (जा० १६३)

थापना-(स० स्थापना)-१ किसी मूर्ति की स्थापना या प्रतिष्ठा, कहीं कोई नई मूर्ति स्थापित करना, २ रखना, बैठाना। उ० १ करिहउँ इहाँ सभु थापना। (मा० ६।२।२)

थापनो-स्थापित करनेवाला, जमाने या बसानेवाला। उ० राय दसरथ के तू उथपन-थापनो। (वि० १०१)

थापहिं-बसाते हैं, स्थापित करते हैं। उ० असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहिं निज श्रुति सेतु। (मा० १।१२१) थापि-स्थापित कर, जमाकर। उ० थापि अनल हर बरहि बसन पहिरायउ। (पा० १३७) थापिए-स्थापना कीजिए बैठाइए, बसाइए। उ० बाँह बोल दै थापिए जो निज बरि आई। (वि० ३२) थापिय-प्रतिष्ठा बढ़ाइए, बढ़ाइ दीजिए। उ० थापिय जनु सबु लोगु सिहाऊ। (मा० २।२८८।४) थापे-स्थापित किए, निश्चित किए, टिकाए, ठहराए। उ० थापे मुनि सुर साधु आस्रम बरन। (वि० २४८) थापेउँ-स्थापना की, स्थापित किया। उ० इहाँ सेतु बाँध्यों अरु थापेउँ सिव सुखधाम। (मा० ६।११९क) थाप्यो-दे० 'थाप्यौ'। उ० २ निज लोक दियो सबरी खग

को कपि थाप्यो सो मालुम है सबही। (क० ७।१०) थाप्यो-१ स्थापन किया २ प्रतिष्ठा दी।
थार-(सं० स्थाली, हिं० थाली)-बड़ी थाली, थाल। उ० कचन थार सोह बर पानी। (मा० १।६६।२)
थारा-दे० 'थार'। उ० कनक कलस भरि कोपर थारा। (मा० १।३०५।१)
थाला-(सं० स्थल)-पेड़ आदि के चारों ओर पानी देने के लिए बनाया गया गड्ढा, थावँला, थालवाल।
थालिका-छोटा थाला। दे० 'थाला'। उ० पुरजन-पूजो पहार सोभित ससि धवल धार, भजनि-भवभार भक्तिकल्प थालिका। (वि० १७)
थाह-(सं० स्था)-१ नदी, ताल आदि के नीचे की ज़मीन, पानी के नीचे की धरती, तला, पेंदा, गहराई का अंत, २ आधार, ३ आहट, ४ खबर। उ० १ विषम विषाद वारि निधि बूड़त थाह कपीस कथा लही। (गी० ५।२१)
थाहत-थाह लेते हुए। थाहैं-१ थाह पाकर, ऐसे स्थान पर जहाँ थाह है, २ थाह लगाते हैं। उ १ होत सुगम भव उदधि अगम अति, कोउ लाँघत, कोउ उतरत थाहैं। (गी० ७।१३)
थाहा-दे० 'थाह'। उ० १ गावत नर पावहिं भव थाहा। (मा० ७।१०३।२)
थिति-(सं० स्थिति)-१ स्थान, जगह, २ ठिकाना, ठहराव, रहना, टिकाव, ३ रोक, ४ रक्षा, ५ अवस्था, दशा, स्थिति, ६ बने रहने का भाव। उ० १ प्रभु चित हित थिति पावत नाहीं। (मा० २।२२७।२) २ तुलसी किये कुसग थिति होहिं दाहिने बाम। (दो० ३६१)
थिर-(सं० स्थिर)-१ ठहरा हुआ, अचचल, स्थिर, २ शांत, धीर, ३ एक अवस्था में सदा या अधिक दिन तक रहनेवाला, टिकाऊ, अचल, ४ निश्चित। उ० १ लपन कह्यो थिर होहु धरनि धरु। (गी० १।८८।४) २ तबही ते न भयो हरि! थिर जब जिय नाम धरयो। (वि० ९१)
थिरताइ-स्थिरता को प्राप्त हो, स्थिर हो। उ० सेइ साधु गुरु, समुझि, सिखि, राम भगति थिरताइ। (दो० १४०)
थिरातो-स्थिर हो जाता, नीचे बैठ जाता। उ० जनम कोटि को कँदलो हृद-हृदय थिरातो। (वि०१५१) थिराना-थिरा गया, स्थिर हो गया। उ० भरेउ सुमानस सुथल थिराना। (मा०१।३६।५) थिराने-१ स्थिर हुए, २ निर्मल हुए, साफ हुए। उ० २ सदा मलीन पथ के जल ज्यों कबहुँ न हृदय थिराने। (वि० २३५)
थीर-दे० 'थिर'।
थीरा-दे०' थिर'। उ० २ निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा। (मा० ७।६०।४)
थूनि-(सं० स्थूण)-छप्पर आदि में लगाने की लकड़ी, थूमी, साधारण खभा, टेक्नी। उ० जनु हिरदय गुनग्राम थूनि थिर रोपहिं। (जा० ६५)
थैली-(सं० स्थल=कपड़े का घर, खेमा, रावटी) छोटा थैला, कपड़े या टाट आदि का बना बटुआ। उ० हु... देउँ मैं थैली खोली। (मा० १।२७६।२)
थोर (१)-(सं० स्तोक, प्रा० थोष)-थोड़ा, न्यून, अल्प। उ० मातु मते महुँ मानि मोहि, जो कछु करहिं सो थोर। (मा० २।२३३) मु० थोर थोर-थोड़ा थोड़ा, धीरे धीरे। उ० बोल घनघोर से बोलत थोर थोर हैं। (गी०१।७...)
थोरि-१ लघुता, छोटाई, २ थोड़ी, तनिक। उ०२ बहु प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि। (वि० १५८)
थोरिउ-तनिक भी, ज़रा भी। उ० मातु तोहि नहिं थोरि खोरी। (मा०२।१२।१) थोरिक-थोड़ी ही, थोड़ी भी। उ० एहि घाट तें थोरिक दूर अहै कटि लौं जल-थाह देखाइहौं जू। (क०२।६) थोरिकै-थोड़ी ही, थोड़ी सी ही। उ० दिवस छ सात जात जानिबे न,मातु धरु धीर,अरि अंत की अवधि रही थोरिकै। (क० ५।२७) थोरिहिं-थोड़ी सी ही, तनिक सी ही। उ० थोरिहिं बात पितहि दुख भारी। (मा० २।४२।३)
थोरे-थोड़े, अल्प, न्यून, ज़रा सा। उ० थार महुँ जानिहहिं सयाने। (मा० १।१२।३) थोरेहि-थोड़ा सा ही, ज़रा सा ही। उ० थोरेहि कोप कृपा पुनि थोरेहि, बैठि कै जोरत तोरत ठाढ़े। (क० ७।२४) थोरेहीं-थोड़ा ही, ज़रा सा ही। उ० साप अनुग्रह होइ जेहिं नाथ थोरेहीं काल। (मा० ७।१०८ घ)थोरेहुँ-थाड़ ही, ज़रा। उ० जस थोरेहुँ धन खल इतराई। (मा० ४।१४।३)
थोर (२)-(?)-१ केले के बीच का गाभा, २ थूहर का पेड़।
थोरा-दे० 'थोर (१)। उ०सेतु हेतु श्रमु कीन्ह न थोरा। (मा० १।२२।२)

# द

द-(सं०)-दाता, देनेवाला। उ० मूल धर्म तरोर्विवेक जलधे पूर्णेन्दु मानदं। (मा० ३।१। श्लो० १)
दंड-(सं०)-१ डंडा, सोटा, लाठी, २ किसी अपराध के प्रतिशोध रूप में अपराधी को पहुँचाई गई पीड़ा, सज़ा, ३ शासन, शमन, दमन, ४ ध्वजा का बाँस, ५ यमराज, ६ घड़ी, साठ पल का समय, आधे घंटे से कुछ कम का समय, ७ विष्णु, ८ कृष्ण, ९ शिव, १० कुबेर का एक पुत्र, ११ इक्ष्वाकु के १०० पुत्रों में से एक जिसके कारण दडक वन या दडकारण्य नाम पड़ा था, १२ दडवत करना, १३ सेना, फौज, १४ धारा, १५ अर्थदंड, जुरमाना। उ० १ दडपानि भैरव विषान, मलरुचि खलगन भय दा माँ। (वि०२२) ६ दुइ दड भरि ब्रह्मांड भीतर काम

कृत कौतुक थय। (मा० १।८२। छ० १) १२ दंड प्रनाम सबहि नृप कीन्हे। (मा० १।३३१।१) १५ लै लै दंड छाड़ि नृप दीन्हें। (मा० १।२५४।४)

दंडक-१ रामायण काल का एक प्रसिद्ध जगल। यहाँ पहले इक्ष्वाकु के पुत्र दंडक राज्य करते थे। इन्होंने अपने गुरु शुक्राचार्य की कन्या से व्यभिचार किया जिससे रुष्ट हो शुक्राचार्य ने इनको राज्य के साथ जला डाला। तभी से पूरा राज्य जगल हो गया और दंडकारण्य कहलाने लगा। इसके पेड़ पहले सूखे थे पर रामावतार में राम के दर्शन से वे हरे-भरे हो गए। सूर्पणखा की नाक यहीं कटी थी तथा मारीच-वध और सीता हरण भी यहीं हुआ था। २ इक्ष्वाकु के एक पुत्र का नाम, ३ शासक, दंड देनेवाला, ४ एक छंद। उ० १ दंडक बनु प्रभु कीन्ह सुहावन। (मा० १।२४।४)

दंडकारण्य-(सं०)-दंडक नामक वन। दे० 'दंडक'।

दंडकारन्य-दे० 'दंडकारण्य'। उ०दंडकारन्य-कृत पुन्य पावन चरन, हरन मारीच-माया कुरंग। (वि० ५०)

दंडकारि-दंड देनेवाले, न्याय करनेवाले। उ० कालनाथ कोतवाल, दंडकारि दंडपानि। (क० ७।१७१)

दंडपानि-(सं० दंडपाणि)-१ यमराज, २ काशी में शिव के गण भैरव की एक मूर्ति। यह एक हरीकेश नामक यक्ष की मूर्ति है जो शिव की तपस्या कर वरदान पाकर काशी का दंडधर हुआ था। उ० २ कालनाथ कोतवाल दंड कारि दंडपानि। (क० ७।१७१)

दंड प्रनाम-(सं० दंड+प्रणाम)-पृथ्वी पर डंडे के समान पड़कर प्रणाम करने की मुद्रा, दंडवत्। उ० दंड प्रनाम सबहि नृप कीन्हे। (मा० १।३३१।१)

दंडवत्-(सं० दंडवत्)-साष्टांग प्रणाम, दंड-प्रणाम। उ० बोले मनु करि दंडवत् प्रेम न हृदयँ समात। (मा० १। १४५)

दंडा-दे० 'दंड'। उ० १ करि कर सरिस सुभग भुजदंडा। (मा० १।१४७।४)

दंडै-दंड देता है, सजा देता है। उ० कलि-कुचालि सुभ मति-हरनि, सरलै दंडै चक्र। (दो० ५३७)

दंत-(सं०)-१ दाँत, दशन, २ ३२ की संख्या। उ० १ बर दंत की पंगति कुंदकली, अधराधर-पल्लव खोलन की। (क० १।५) दंतटेवैया-खाने के लिए दाँत तेज़ करने वाला, फाड़ खाने को उद्यत।

दंतकथा-(सं०)-ऐसी बात जिसे बहुत दिनों से लोग एक दूसरे से सुनते चले आ रहे हों पर जिसका कोई पुष्ट प्रमाण न हो। जनश्रुति। उ० इति बेद बदंति न दंतकथा। (मा० ६।१११। छं० ८)

दंति-(सं० दंत) हाथी, जिसके दाँत हों। उ० कमठ कोल दिग-दंति सकल अँग, सजग करहु प्रभु काज। (गी० १। ८८)

दँतियाँ-(सं० दंत) छोटे छोटे दाँत, दँतुली। उ० दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों। (क० १।३)

दँतुरियाँ-(सं० दंत)-छोटे-छोटे हास के निकले हुए दाँत। उ० दमकति द्वै द्वै दँतुरियाँ रूरीं। (गी० १।२८)

दंपति-(सं०)-स्त्री पुरुष का जोड़ा, पति पत्नी। उ० सुनि सहमे परि पाइँ, कहत भए दंपति। (पा० २०) दंपतिहि-स्त्री पुरुष को, पति पत्नी को। उ० दुख दंपतिहि उमा हरषानी। (मा० १।६८।१)

दंभ-(सं०)-१ पाखंड, ऊपरी दिखावट, २ अभिमान, घमंड, ३ जवान बैल। उ० २ महिष मत्सर क्रूर, लोभ सूकर रूप, फेरु छल, दंभ मार्जार धर्म्मा। (वि० ५१)

दंभा-दे० 'दंभ'। उ० २ सुनत न्साहिं काम मद दंभा। (मा० १।३२।३) दंभापहन-दंभ को दूर करनेवाले। उ० दनुज सूदन दयासिंधु दंभापहन दहन-दुर्दोष दु पाप हर्ता। (वि० ५६)

दंभिन्ह-दंभियों, घमंडियों। उ० जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा। (मा० ४।१५।३) दंभिहि दंभी को, घमंडी को। उ० मोहि उपजइ अति क्रोध दंभिहि नीति कि भावइ। (मा० ७।१०५) दंभी-१ पाखंडी, छली, २ घमंडी।

दंश-(सं०)-१ दाँत से काटने का घाव, २ व्यंग्य, कटूक्ति, ३ द्वेष, शत्रुता, ४ विषैले जंतुओं का डंक मारने या काटने का घाव, ५ दाँत, ६ डँस, बगदर, वर्मि, ७ दाँत से काटने की क्रिया।

दंष्ट्र-(सं०)-दाँत, दंत।

दंष्ट्रा-(सं०)-१ बड़े दाँत, दाढ़, २ बड़े दाँतवाला।

दंस-दे० 'दंश'। उ० ६ विषय-सुख-लालसा दंस मसकादि खल झिल्लि, रूपादि सब सर्प स्वामी। (वि० ५६)

द-(सं०)-१ दाँत, २ पर्वत, ३ स्त्री, ४ रक्षा, पनाह, ५ खंडन, निराकरण, ६ दाता, देनेवाला। उ० ६ रंक धनद पदवी जनु पाई। (मा० २।५२।३)

दइ (१)-(सं० दैव)-१ ब्रह्मा, विधाता, २ ईश्वर, परमेश्वर।

दइ (२)-(सं० दान)-दिया, प्रदान किया। उ० दइ जनक तीनिहु कुँवरि कुँवर बियाहि सुनि आनँद भरी। (जा० १७१) दई (१)-(सं० दान)-१ दिया, दी, २ दी हुई, प्रदत्त। उ० १ दई सुगति सोन हेरि हरष हिय, चरम हुए पछिताउ। (वि० १००) २ जहाँ सांति सत गुरु की दई। (वै० ५१) दए-दिए, दिया। उ० सब जनक सहित समाज राजहि उचित रुचिरासन दए। (जा० १२३)

दइअ-दैव, विधाता, भगवान। उ० थाह दइअ मैं काह नसाया। (मा० २।१६३।३)

दइउ-दैव भी, ईश्वर या विधाता भी। उ० बर किसोर धनु घोर दइउ नहिं दाहिन। (जा० ११४)

दई (२) (सं० दैव)-१ देव, विधाता, २ भगवान, ३ दयालु। उ० २ पतित-पावन, हित आरत अनाथनि को, निराधार को अधार दीनबंधु दई। (वि० २५२)

दक्ष-(सं०)-१ निपुण, कुशल, चतुर, होशियार, २ बायों का उलटा, दाहिना, ३ समर्थ, योग्य, ४ अनुकूल, मुवाफ़िक, ५ एक प्रजापति दक्ष प्रजापति जो सती या पार्वती के पिता थे। ६ दक्षिण। उ० ६ सकल-सौभाग्य संयुक्त त्रैलोक्य श्री, दक्ष दिसि रुचिर वारीश कन्या। (वि० ६१)

दक्षसुत-(सं०)-दक्ष प्रजापति के पुत्र, प्रचेता।

दक्षसुता-१ दक्ष प्रजापति की श्रद्धा, मैत्री, दया, शांति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, धृति, तितिक्षा,

ही, स्वाहा, स्वधा और सती नामक १६ कन्याएँ, २ सती, पार्वती।

दक्षिण-(स०)-१ दक्षिण दिशा, उत्तर के विपरीत की दिशा, २ दाहिना, बायाँ का उलटा, ३ निपुण, चतुर, ४ अनुकूल, ५ उदार, सरल, ६ विष्णु। उ० २ आजानु भुजदंड, कोदंड, मंडित वाम बाहु, दक्षिण पानि बानमेक। (वि० ५१)

दक्षिणा-(स०)-१ दक्षिण दिशा, २ धर्म-कर्म का पारितोषिक, दान, ३ नायिका विशेष, ४ भेंट, पूजा।

दक्षिणायन-(स०)-सूर्य का दक्षिण की ओर जाने का समय जो श्रावण से पौष मास अथवा कर्क की संक्रांति से धन की संक्रांति तक रहता है।

दखिन-(स० दक्षिण)-दे० 'दक्षिण'। उ० १ देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं। (मा० २।१४२।४)

दगा-(अर० दग़ा)-छल, कपट, धोखा। उ० तुलसिदास सब थपहुँ से भए जद, जय पलकनि हठ दगा दई। (कृ० २४) दगाई-दगा ही, धोखा ही। उ० करनाकर की करुना करना हित नाम-सुहेत जो देत दगाई। (क० ७।६३)

दगाबाज-(फ़ा० दग़ाबाज़)-छली, कपटी, धोखा देनेवाला, धूर्त, ठग। उ० नाम तुलसी पै भाडे भाग, सौं कहायो दास, किए अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज को। (क० ७।१३)

दगाबाजि-(फ़ा० दग़ाबाज़ी)-छल, कपट, धोखा। उ० सुहृद-समाज दगाबाजि ही को सौदा सूत। (वि० २६४)

दगो-दे० 'दगौ'। उ० लोक वेद हूँ लौं दगो नाम भले को पोच। (दो० ३७३) दगौ-[स० दग्ध+ना (प्रत्यय) हि० दगना-तोप या बंदूक छूटना]-प्रसिद्ध है। उ०लोक वेदहूँ लौं दगौ नाम भले को पोच। (स० ७१३)

दच्छ-दे० 'दक्ष'। उ० १ तापसस-मुनि मधु-मुख छत्र, विग्रहित-यज्ञरच्छन दच्छ पच्छकर्ता। (वि० ५०) ५ जनमीं प्रथम दच्छ गृह जाइ। (मा० १।६८।३) दच्छहि-दक्ष प्रजापति को। उ० दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक। (मा० १।६०।३)

दच्छकुमारि-दे० 'दक्षसुता'। उ० २ कहि देखा हर जतन बहु रहइ न दच्छकुमारि। (मा० १।६२)

दच्छकुमारी-दे० 'दक्षसुता'। उ० २ कछु न दीन्ह तहँ दच्छकुमारी। (मा० १।५५।४)

दच्छसुत-दे० 'दक्षसुत'।

दच्छसुतन्ह-दक्ष के पुत्रों को। उ० दच्छसुतन्ह उपदेसेन्हि जाई। (मा० १।७६।१)

दच्छसुता-दे० 'दक्षसुता'। उ० २ दच्छसुता कहुँ नहिं कल्याना। (मा० १।५२।३)

दच्छिन-दे० 'दक्षिण'। उ० १ सकल सुमन मिलि दच्छिन जाहू। (मा० १।२२३।१)

दच्छिना-दे० 'दक्षिणा'। उ० २ विप्रन्ह पुनि दच्छिना बहु पाइ। (मा० १।२०३।२)

दई-दिया, दे दिया, दान कर दिया। उ०हैन तस पुन दत्त मेपाष्मिन सेन सर्व छन कर्म जाल। (वि० ५१) दत्त-(स०)- दिया हुआ, दिया गया, समर्पित।

ददाति-दे डालते हैं। उ० यो ददाति सतां शम्भु कैवल्यमपि दुर्लभम्। (मा० ३।१। श्लो० ३)

दद्रु-(स०)-दाद का रोग।

दधि (१)-(स०)-१ दही, जमाया हुआ दूध, २ वस्त्र, कपड़ा। उ० १ मंगल विटप मंजुल विपुल दधि दूब अच्छत रोचना। (जा० २०७)

दधि (२)-(स० उदधि)-समुद्र, सागर।

दधिकाँदो-(स० दधि+कदम)-एक पर्व जो जन्माष्टमी के बाद पड़ता है। उस दिन लोग हलदी मिला दही एक दूसरे पर डालते हैं।

दधिनिधि-१ सागर, समुद्र, २ दही का समुद्र, दधिसागर, ३ क्षीर सागर। उ० १ तुलसी सिय लगि मनु दधिनिधि मनु फिरि हरि चहत मह्यो है। (गी० ५।२)

दधिबल-सुग्रीव के पुत्र का नाम।

दधि-सुत-(स० उदधि+सुत)-चंद्रमा। दधि-सुत सुत-समुद्र के पुत्र चंद्रमा का पुत्र बुध। बुद्धि। उ० जिनके हैं वाहन नहीं दधि-सुत-सुत जेहि नाहिं। (स० २६३)

दधीच-दे० 'दधीचि'। उ० सिबि दधीच हरिचंद नरेसा (मा० २।६५।२)

दधीचि-(स०)-एक ऋषि। एक बार इंद्र को गर्व हो गया कि मैं त्रिलोकी का स्वामी हूँ। गर्व से उनकी बुद्धि मारी गई और उन्होंने कुलगुरु बृहस्पति का अपमान कर दिया। रूठकर बृहस्पति चले गए। इसका पता पाकर असुरों ने देवों पर चढ़ाई कर दी। ब्रह्मा की सलाह से त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप पुरोहित बनाए गए और उनके कारण नारायण कवच से देवताओं की किसी प्रकार विजय हुई। विजय के उपलक्ष्य में एक यज्ञ हुआ। यज्ञ में विश्वरूप चोरी से दैत्यों को भी आहुति दे दिया करते थे। इंद्र को इसका पता लगा तो वे बड़े बिगड़े और उन्होंने विश्वरूप का सिर काट डाला। उन्हें ब्रह्महत्या लगी, पर किसी प्रकार वे इससे मुक्त हुए। उधर त्वष्टा बहुत बिगड़े और उन्होंने यज्ञ कर वृत्रासुर को पैदा किया। वृत्रासुर ने इंद्र को ललकारा। इंद्र भागते भागते फिर ब्रह्मा के यहाँ पहुँचे। इस बार ब्रह्मा ने बतलाया कि दधीचि की हड्डी से बने वज्र से इसकी मृत्यु संभव है। इस पर इंद्र दधीचि के पास गए। दधीचि ने सहर्ष अपनी हड्डी दे दी और उससे विश्वकर्मा ने वज्र बनाया जिससे वृत्रासुर मारा गया। दधीचि के पिता के विषय में विभिन्न मत हैं। वेदों में उनका नाम दध्यच मिलता है। उ० सिबि दधीचि बलि जो कछु भाषा। (मा० २।३०।४)

दनुज-(स०)-१ दनु से उत्पन्न, राक्षस, असुर, २ दक्ष प्रजापति की कन्या दनु और कश्यप मुनि से उत्पन्न पुत्र जो संख्या में ४० थे। असुरों के पूर्व पुरुष ये ही थे। ३ हिरण्यकशिपु। उ०१ दनुज-बन धूमध्वज, पीन आजानु भुजदंड कोदंडवर-चंड बान। (वि० ४५) ३ अतुलितबल मृगराज-मनुज तनु दनुज हयो श्रुतिसानी। (वि० ११)

दनुजसूदन-दानवों के संहारक, १ रामचंद्र, २ विष्णु। उ० २ दनुजसूदन दयासिंधु दंभापहन दहन-दुर्दोष दुःपापहर्ता। (वि० ५५)

दनुजारि-(स०)-दानवों के शत्रु १ रामचंद्र २ विष्णु।

दनुजारी–दे० 'दनुजारि'। उ० २ ग्रसनपूरि, अरि-दरप दूरि करि भूरि कृपा दनुजारी। (वि० ४३)
दनुजेस–(स० दनुजेश)–१ रावण, २ हिरण्यकशिपु, ३ हिरण्याक्ष। उ० १ दुष्ट दनुजेस निर्बंस कृत दास हित विश्व दुख-हरन बोधैकरासी। (वि० ५८) २ सकल यज्ञांसमय उग्रविग्रह क्रोड, मर्दि दनुजेस उद्धरन उर्वी। (वि० ५२)
दपटि–(?)–डपटकर, डाँटकर। उ० इत उत झपटि दपटि कपि जोधा। (मा० ६।८२।३)
दपट्टहिं–डपटते हैं, घुड़कते हैं, डाँटते हैं। उ० रारहिं हुआहिं अघाहिं दपट्टहिं। (मा० ६।८८।५)
दबकि–(स० दमन, हि० दबाना)–१ दाबकर, २ डाँटकर। उ० २ दबकि दबोरे एक, बारिधि में बोरे एक। (क० ६।४१)
दबत–१ दबने से २ दबती हैं, ३ दबते हुए। उ० १ महाबली बालि को दबत दलकतु भूमि। (क० ६।१६)
दबि–१ दबकर, दाब में आकर, बोझ के नीचे पड़कर, २ दबा, दबोच, ३ दबाया, ४ पिछड़ाया, ५ झँपाया। उ० १ मैं तो दियो छाती पबि, लयो कालि काल दबि। (वि० २५१)
दबा–(?)–दाब, पेंच, घात।
दबाइ–दबाया, दबा लिया। उ० दारिद दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु। (क० ७।९७)
दबोरे–(स० दमन)–दबोचा, दबाया। उ० दबकि दबोरे एक, बारिधि में बोरे एक। (क० ६।४१)
दमकहिं–१ चमक रही हों। उ० जनु दहुँ दिसि दामिनी दमकहिं। (म० ६।८७।२) दमका–१ दमक, चमक, २ चमके, दमके, ३ चमक रही हो। उ० सोइ प्रभु जनु दामनी दमका। (मा० ६।१३।३)
दम (१)–(स०)–१ इंद्रियों का दमन, इंद्रियों को वश में रखना तथा बुरे मार्ग पर न जाने देना, २ दंड, सज़ा, ३ विष्णु। उ० १ दम अधार रजु सत्य सुबानी। (मा० ७।११७।८)
दम (२)–(फ़ा)–१ साँस, २ प्राण, जी, ३ लहमा, पल, ४ बोलना, कहना, ५ जीवनी शक्ति, ६ धोखा, छल, फ़रेब।
दमक–(?)–आभा, चमक, द्युति। उ० कहत बचन रद लसहिं दमक जनु दामिनि। (जा० ८०)
दमकति–चमकती हैं, चमक रही हैं। उ० दमकति द्वै द्वै दँतुरियाँ रूरीं। (गी० १।२८) दमकहिं–चमक रही हैं। उ० चारु चपल जनु दमकहिं दामिनि। (मा० १।३४७।२) दमकेउ–चमका। उ० दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। (मा० १।२६१।३) दमकैं–दमकते हैं, चमकते हैं। उ० दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों। (क० १।३)
दमन–(स०)–१ दबाने की क्रिया, रोकने या वश में रखने की क्रिया, २ दम, इंद्रियों को वश में रखना, ३ महादेव, ४ विष्णु, ५ एक ऋषि जिनके यहाँ दमयंती पैदा हुई थी। ६ एक राक्षस का नाम, ७ दौना, ८ युद्ध वुप, ९ दबाने या नाश करनेवाला, १० नाश करना। उ० ९ देहि अवलंब कर कमल कमलारमन दमन दुख समन संताप भारी। (वि० ४८)
दमनीय–(स०)–१ दबाने, रोकने या नष्ट करने के योग्य, २ तोड़नेवाला, नष्ट करनेवाला, नष्ट करने की शक्ति रखनेवाला। उ० २ पावनिहार बिरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय। (मा० १।२४१)
दमनु–दमन करनेवाला, दबाने या नष्ट करनेवाला। लखनु भरतु रिपुदमनु सुनि भा कुबरी उर सालु। (मा० २।१३)
दमनू–दे० 'दमनु'।
दमशील–(स०)–जितेंद्रिय, इंद्रियों के दमन करनेवाले।
दमसीला–दे० 'दमशील'। उ० कहहिं महा मुनिबर दम सीला। (मा० ७।२२।३)
दमानक–(?)–तोपों की बाढ़। उ० मोहिं पर दवरि दमानक सी दई है। (ह० ३८)
दमामा–(फा०)–नगारा, धौंसा, बड़ा ढोल।
दमैया–(स० दम, दमन)–दमन करनेवाला, नाशकर्त्ता। उ० तुलसी तेहि काल कृपालु बिना दूजो कौन है दारुन दु ख दमैया। (क० ७।५३)
दया–(स०)–कृपा, रहम। उ० तजि आस भो दास रघुप्पति को, दसरत्थ को दानि दया-दरिया। (क० ७।४६)
दयाकर–दया करनेवाले, दयालु। उ० दीन दयाकर आरत बधो। (मा० ७।१८।१)
दयाधाम–अत्यंत दयालु, दया के घर।
दयानिकेत–दे० 'दयाधाम'। उ० देव तो दया निकेत, देत दादि दीनन की। (क० ७।१८)
दयानिधान–(स०)–दया का खज़ाना, बहुत दयालु। उ० तुलसी न दूसरो दयानिधान दुनी में। (क० ७।२१)
दयानिधि–दे० 'दयानिधान'। उ० निज दिसि देखि दया-निधि पोसो। (मा० १।२८।२)
दयाल–दयालु, दया करनेवाले। उ० प्रसन्नानन नीलकंठ दयाल। (मा० ७।१०८। छं० ४) दयाल–दे० 'दयालु'। उ० दीनदयाल अनुग्रह तोरें। (मा० २।१०२।४)
दयाला–दे० 'दयाल'। उ० सत्यधाम प्रभु दीनदयाला। (मा० १।२७।४)
दयालु–(स०)–दयावान्, दयावाला। उ० गाँहक गरीब को दयालु दानि दीन को। (वि० ६१)
दयावन–जिनको देखकर दया उत्पन्न हो, दया के पात्र। उ० दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरिहि तें सिर नावैं। (क० ७।२)
दयावनो–दया उपजानेवाला। उ० तब लौं दयावनो दुसह दुख दारिद को। (क० ७।१२५)
दयासिंधु–दया के समुद्र, अत्यंत दयालु। उ० दनुज सूदन दयासिंधु दंभापहन दहन-दुर्दोष दुःपापहर्त्ता। (वि० ५६)
दय दियें। उ० पुरतें निकसी रघुबीर-बधू, धरि धीर दये मन में डग द्वै। (क० २।११)
दर (१)–(स०)–१ शंख, २ छेद, ३ गुफा, कंदरा, ४ डर, भय, ५ प्रतिज्ञा, ६ फाड़ने की क्रिया, ७ दलनेवाला, हरनेवाला, नाश करनेवाला। उ० १ कटि मरतम, बर हार, ग्रीवदर रुचिर बाँह भूषन पहिराए। (गी० १।२३) ४ दारुन दुसह दर-दुरित हरन। (वि० २४८)

ही, स्वाहा, स्वधा और सती नामक १६ कन्याएँ, २ सती, पार्वती।

दक्षिण-(सं०)-१ दक्षिण दिशा, उत्तर के विपरीत की दिशा, २ दाहिना, बायाँ का उलटा ३ निपुण, चतुर, ४ अनुकूल, ५ उदार, सरल, ६ विष्णु। उ० २ आजानु भुजदंड, कोदंड, मंडित बाम बाहु, दक्षिण पानि बानमेक। (वि० ५१)

दक्षिणा-(सं०)-१ दक्षिण दिशा, २ धर्म-कर्म का पारितोषिक, दान, ३ नायिका विशेष, ४ भेंट, पूजा।

दक्षिणायन-(सं०)-सूर्य का दक्षिण की ओर जाने का समय जो श्रावण से पौष मास अथवा कर्क की संक्रांति से धन की संक्रांति तक रहता है।

दखिन-(सं० दक्षिण)-दे० 'दक्षिण'। उ० १ देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं। (मा० २।१४२।४)

दगा-(अर० दग़ा)-छल, कपट, धोखा। उ० तुलसिदास तब अबहुँ से भए जड़, जब पलकनि हठ दगा दई। (कृ० २४) दगाई-दग़ा ही, धोखा ही। उ० करुनाकर की करुना करना हित नाम-सुहेत जो देत दगाई। (क० ७। ८३)

दगाबाज-(फ़ा० दग़ाबाज़)-छली, कपटी, धोखा देनेवाला, धूर्त, ठग। उ० नाम तुलसी पै भोंड़े भाग, सो कहायो दास, किए अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज को। (क० ७।१३)

दगाबाजि-(फ़ा० दग़ाबाज़ी)-छल, कपट, धोखा। उ० सुहृद-समाज दगाबाजि ही को सौदा सूत। (वि० २६४)

दगो-दे० 'दगौ'। उ० लोक बेद हूँ लौं दगो नाम भले को पोच। (दो० ३७३) दगौ-[सं० दग्ध+ना (प्रत्यय) हि० दगना-तोप या बंदूक छूटना]-प्रसिद्ध है। उ०लोक बेदहूँ लौं दगौ नाम भले को पोच। (स० ७१३)

दच्छ-दे० 'दक्ष'। उ० १ तापयस-मुनि बधू-मुक्त कृत, विप्रहित-यज्ञरक्षन दच्छ पच्छकर्ता। (वि० ५०) ५ जनमीं प्रथम दच्छ गृह जाई। (मा० १।६८।३) दच्छहि-दक्ष प्रजापति को। उ० दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक। (मा० १।६०।३)

दच्छकुमारि-दे० 'दक्षसुता'। उ० २ कहि देखा हर जतन बहु रहइ न दच्छकुमारि। (मा० १।६२)

दच्छकुमारी-दे० 'दक्षसुता'। उ० २ कछु न दीख तहँ दच्छकुमारी। (मा० १।५५।४)

दच्छसुत-दे० 'दक्षसुत'।

दच्छसुतन्ह-दक्ष के पुत्रों को। उ० दच्छसुतन्ह उपदेसेन्हि जाई। (मा० १।७६।१)

दच्छसुता-दे० 'दक्षसुता'। उ० २ दच्छसुता कहुँ नहिं कल्याना। (मा० १।२२।३)

दच्छिन-दे० दच्छिन'। उ० १ सकल सुमन मिलि दच्छिन नाहू। (मा० १।२३।१)

दच्छिना-दे० 'दक्षिणा'। उ० २ विप्रन्ह पुनि दच्छिना बहु पाई। (मा० १।२०३।२)

दई-दिया, द दिया, दान कर दिया। उ०सो सत हुत दत्त-मेधातिथि संत भव धृत कर्म जाग। (वि० ४६) दत्त-(सं०)- दिया हुआ, दिया गया, समर्पित।

ददाति-दे डालते हैं। उ० यो ददाति सतां शम्भुः कैवल्यमपि दुर्लभम्। (मा० ६।१। श्लो० ३)

दद्रु-(सं०)-दाद का रोग।

दधि (१)-(सं०)-१ दही, जमाया हुआ दूध, २ वस्त्र, कपड़ा। उ० १ मंगल विटप मंजुल विपुल दधि दूब अच्छत रोचना। (जा० २०७)

दधि (२)-(सं० उदधि)-समुद्र, सागर।

दधिकाँदो-(सं० दधि + कर्दम)-एक पर्व जो जन्माष्टमी के बाद पड़ता है। उस दिन लोग हलदी मिला दही एक दूसरे पर डालते हैं।

दधिनिधि-१ सागर, समुद्र, २ दही का समुद्र, दधि सागर, ३ क्षीर सागर। उ० १ तुलसी सिय लगि मन दधिनिधि मनु फिरि हरि चहत मह्यो है। (गी० ७।२)

दधिबल-सुग्रीव के पुत्र का नाम।

दधि-सुत-(सं० उदधि + सुत)-चंद्रमा। दधि सुत सुत-समुद्र के पुत्र चंद्रमा का पुत्र बुध। बुद्धि। उ० जिनके हरि वाहन नहीं दधि-सुत सुत जहि नाहिं। (स० २६३)

दधीच-दे० 'दधीचि'। उ० सिबि दधीच हरिचंद नरेसा। (मा० २।६५।२)

दधीचि-(सं०)-एक ऋषि। एक बार इंद्र को गर्व हो गया कि मैं त्रिलोकी का स्वामी हूँ। गर्व से उनकी बुद्धि मारी गई और उन्होंने कुलगुरु बृहस्पति का अपमान कर दिया। रूठकर बृहस्पति चले गए। इसका पता पाकर असुरों ने देवों पर चढ़ाई कर दी। ब्रह्मा की सलाह से त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप पुरोहित बनाए गए और उनके कारण नारायण कवच से देवताओं की किसी प्रकार विजय हुई। विजय के उपलक्ष्य में एक यज्ञ हुआ। यज्ञ में विश्वरूप धीरे से दैत्यों को भी आहुति दे दिया करते थे। इंद्र को इसका पता लगा तो वे बड़े बिगड़े और उन्होंने विश्वरूप का सिर काट डाला। उन्हें ब्रह्महत्या लगी, पर किसी प्रकार वे इससे मुक्त हुए। उधर त्वष्टा बहुत बिगड़े और उन्होंने यज्ञ कर वृत्रासुर को पैदा किया। वृत्रासुर ने इंद्र को ललकारा। इंद्र भागते-भागते फिर ब्रह्मा के यहाँ पहुँचे। इस बार ब्रह्मा ने बतलाया कि दधीचि की हड्डी से बने वज्र से इसकी मृत्यु संभव है। इस पर इंद्र दधीचि के पास गए। दधीचि ने सहर्ष अपनी हड्डी दे दी और उससे विश्वकर्मा ने वज्र बनाया जिससे वृत्रासुर मारा गया। दधीचि के पिता के विषय में विभिन्न मत हैं। वेदों में उनका नाम दध्यच मिलता है। उ० सिबि दधीचि बलि जो कछु भाषा। (मा० २।३०।४)

दनुज-(सं०)-१ दनु से उत्पन्न, राक्षस, असुर, २ दक्ष प्रजापति की कन्या दनु और कश्यप मुनि से उत्पन्न पुत्र जो संख्या में ४० थे। असुरों के पूर्व पुरुष ये ही थे। ३ हिरण्यकशिपु। उ०१ दनुज-बन धूमध्वज, पीन आजानु भुजदंड कोदंडवर चंड-बान। (वि० ४६) ३ बढ़ुजिउदम मृगराज-मनुज तनु दनुज दर्पा श्रुतिसारी। (वि० ११)

दनुजसूदन-राक्षसों के संहारक, १ देवता, २ विष्णु। उ० २ दनुजसूदन दयासिंधु दंभापहन दहन-दुर्दोष दुःपापहर्ता। (वि० ५१)

दनुजारि-(सं०) दानवों के शत्रु १ देवता २ विष्णु।

दनुजारी-दे० 'दनुजारि'। उ० २ घसनपूरि, अरि-दरप दूरि करि भूरि कृपा दनुजारी। (वि० ६३)
दनुजेस-(स० दनुजेश)-१ रावण, २ हिरण्यकशिपु, ३ हिरण्याक्ष। उ० १ दुष्ट दनुजेस निर्बंस कृत दास हित विश्व दुख-हरन बोधैकरासी। (वि० ५८) २ सकल यज्ञांसमय उग्रविग्रह क्रोड, मर्दि दनुजेस उद्धरन उर्वी। (वि० ५२)
दपटि-(?)-डपटकर, डाँटकर। उ० इत उत झपटि दपटि कपि जोधा। (मा० ६।८२।३)
दपट्टहिं-डपटते हैं, घुड़कते हैं, डाँटते हैं। उ० खाहिं हुमाहिं अघाहिं दपट्टहिं। (मा० ६।८८।५)
दबकि-(स० दमन, हिं० दबाना)-१ दाबकर, २ डाँटकर। उ० २ दबकि दबोरे एक, बारिधि में बोरे एक। (क० ६।४१)
दबत-१ दबने से, २ दबती हैं, ३ दबते हुए। उ० १ महाबली बालि को दबत दलक्त भूमि। (क० ६।१६)
दबि-१ दबकर, दाब में आकर, बोझ के नीचे पड़कर, २ दबा, दबोच, ३ दबाया, ४ पिछड़ाया, ५ कँपाया। उ० १ मैं तो दियो छाती पवि, लयो कालि काल दबि। (वि० २५१)
दबा-(?)-दाब, पेंच, घात।
दबाइ-दबाया, दबा लिया। उ० दारिद-दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु। (क० ७।६७)
दबोरे-(स० दमन)-दबोचा, दबाया। उ० दबकि दबोरे एक, बारिधि में बोरे एक। (क० ६।४१)
दमंकहिं-१ चमक रही हो। उ० जनु दहुँ दिसि दामिनी दमंकहिं। (मा० ६।८७।२) दमका-१ दमक, चमक, २ चमके, दमके, ३ चमक रही हो। उ० सोइ प्रभु जनु दामनी दमका। (मा० ६।१३।३)
दम (१)-(स०)-१ इंद्रियों का दमन, इंद्रियों को वश में रखना तथा बुरे मार्ग पर न जाने देना, २ दंड, सजा, ३ विष्णु। उ० १ दम अधार रजु सत्य सुबानी। (मा० ७।११७।८)
दम (२)-(फ़ा)-१ साँस, २ प्राण, जी, ३ लहमा, पल, ४ बोलना, कहना, ५ जीवनी शक्ति, ६ धोखा, छल, फ़रेब।
दमक-(?)-आभा, चमक, द्युति। उ० कहत बचन रद लसहिं दमक जनु दामिनि। (जा० ८०)
दमकति-चमकती हैं, चमक रही हैं। उ० दमकति द्वै द्वै दँतुरियाँ रूरीं। (गी० १।२८) दमकहिं-चमक रही हैं। उ० घोर घपन जनु दमकहिं दामिनि। (मा० १।३४७।२) दमकेउ-चमका। उ० दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। (मा० १।२६१।३) दमकैं-दमकते हैं, चमकते हैं। उ० दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों। (क० १।३)
दमा-(स०)-१ दबाने की क्रिया, रोकने या वश में रखने की क्रिया, २ दम, इंद्रियों को वश में रखना, ३ महादेव, ४ विष्णु, ५ एक ऋषि जिनके यहाँ दमयंती पैदा हुई थी। ६ एक राक्षस का नाम, ७ दौना, ८ कुंद पुष्प, ९ दबाने या नाश करनेवाला, १० नाश करना। उ० ९ देहि अवलंब कर कमल कमलारमन दमन दुख समन संताप-भारी। (वि० ५८)
दमनीय-(स०)-१ दबाने, रोकने या नष्ट करने के योग्य, २ तोड़नेवाला, नष्ट करनेवाला, नष्ट करने की शक्ति रखनेवाला। उ० २ पावनिहार बिरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय। (मा० १।२२१)
दमनु-दमन करनेवाला, दबाने या नष्ट करनेवाला। लखनु भरतु रिपुदमनु सुनि भा कुबरी उर सालु। (मा० २।१३)
दमनू-दे० 'दमनु'।
दमशील-(स०)-जितेन्द्रिय, इंद्रियों के दमन करनेवाले।
दमसीला-दे० 'दमशील'। उ० करहिं महा मुनिवर दम सीला। (मा० ७।२२।३)
दमानक-(?)-तोपों की बाढ़। उ० मोहिं पर दवरि दमानक सी दई है। (ह० ३८)
दमामा-(फ़ा०)-नगारा, धौंसा, बड़ा ढोल।
दमैया-(स० दम, दमन)-दमन करनेवाला, नाशकर्ता। उ० तुलसी तेहि काल कृपालु बिना दूजो कौन है दारुन दुःख दमैया। (क० ७।५३)
दया-(स०)-कृपा, रहम। उ० तजि आस भो दास रघुप्पति को, दसरत्थ को दानि दया दरिया। (क० ७।४६)
दयाकर-दया करनेवाले, दयालु। उ० दीन दयाकर आरत बंधो। (मा० ७।१८।१)
दयाधाम-अत्यंत दयालु, दया के घर।
दयानिकेत-दे० 'दयाधाम'। उ० देव तो दया निकेत, देत दादि दीनन की। (क० ७।१८)
दयानिधान-(स०)-दया का ख़ज़ाना, बहुत दयालु। उ० तुलसी न दूसरो दयानिधान दुनी में। (क० ७।२१)
दयानिधि-दे० 'दयानिधान'। उ० निज दिसि देखि दया-निधि पोसो। (मा० १।२८।२)
दयाल-दयालु, दया करनेवाले। उ० प्रसन्नानन नीलकंठ दयालं। (मा० ७।१०८। छं० ४) दयाल-दे० 'दयालु'। उ० दीनदयाल अनुग्रह तोरे। (मा० २।१०२।४)
दयाला-दे० 'दयाल'। उ० सत्यधाम प्रभु दीनदयाला। (मा० १।५७।४)
दयालु-(स०)-दयावान्, दयावाला। उ० गौहक गरीब को दयालु दानि दीन को। (वि० ६६)
दयावने-जिनको देखकर दया उत्पन्न हो, दया के पात्र। उ० दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरिहि तें सिर नावैं। (क० ७।२)
दयावनो-दया उपजानेवाला। उ० तव लौं दयावनो दुसह दुख दारिद को। (क० ७।१२५)
दयासिंधु-दया के समुद्र, अत्यंत दयालु। उ० दनुज सूदन दयासिंधु दंभापहन दहन-दुर्दोष दु पापहर्ता। (वि० ५६)
दये दिये। उ० पुरतें निकसी रघुबीर-बधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै। (क० २।११)
दर (१)-(स०)-१ शंख, २ छेद, ३ गुफा, कंदरा, ४ डर, भय ५ प्रतिमा, ६ फाड़ने की क्रिया, ७ दलनेवाला, हरनेवाला, नाश करनेवाला। उ० १ कटि मेखल, पर हार, ग्रीवदर, रुचिर बाँह भूषन पहिराए। (गी० १।२२) ४ दारुन दुसह दर-दुरित हरन। (वि० २४८)

दर (२)-(सं० दल)-१ समूह, २ सेना।
दर (३)-(फा०)-१ द्वार, दरवाजा, २ खिड़की।
दरकि-(सं०दर)-१ फट, फटकर, २ फटना। उ०१ दरकि दरार न जाइ। (गी० ६।६)
दरद-(फा० दर्द)-पीड़ा, व्यथा। उ० लोक दुरत हर दरद दर उर पर विमल विनीत। (स० ३०८)
दरन (सं० दलन)-१ दलना, पीसकर टुकड़े टुकड़े करना, २ दलनेवाला, नाशक। उ० २ तिलक दियो दीन-दुख दोष-दारिद दरन। (गी०१।४३) दरनि-दलनेवाली, नाश करनेवाली। उ० देखत दुख-दोष दुरित दाह-दारिद-दरनि। (वि० २०)
दरप-(सं० दर्प)-गर्व, अहंकार। उ० बसन पूरि, अरि-दरप दूरि करि भूरि कृपा दनुजारी। (वि० ६३)
दरपन-(सं०दर्पण)-आरसी, शीशा, आइना। उ० रवि-रस लखि दरपन फटिक उगिलत ज्वालाजाल। (दो०३७४)
दरबार-(फा०)-१ वह स्थान या कमरा जहाँ, राजा अपने दरबारियों के साथ बैठते हैं, राजसभा, २ दरवाजा, फाटक, द्वार। उ० १ प्रीति-पहिचानि यह रीति दरबार की। (वि० ७१)
दरबारा-दे० 'दरबार'। उ० २ भइ बड़ि भीर भूप दरबारा। (मा० २।७६।३)
दरश-(सं० दर्श)-१ दर्शन, अवलोकन, देखा-देखी, देखना २ रूप, छवि, सुंदरता।
दरशन-दे० 'दरसन'। उ० दरशनारत दास, त्रसित-माया पास, त्राहि त्राहि दास कष्टी। (वि० ६०)
दरस-दे० 'दरश'। उ० १ दरस परस मज्जन अरु पाना। (मा० १।३५।१)
दरसन-(सं० दर्शन)-देखना, अवलोकन, दर्शन। उ० तुलसी दरसन लोभु मन डरु लोचन लालची। (मा० १।४८ ख)
दरसनी-(सं० दर्शन)-दर्पण, शीशा। उ० मकुल सुदरसन दरसनी, क्षेमकरी चक चाय। (दो० ४६०)
दरसनु-दे० 'दरसन'। उ० पावा दरसनु राम प्रसादा। (मा० २।२५०।३)
दरसाइ-(सं० दर्शन)-दिखाई पड़ता है। उ० निसि मलीन, यह प्रफुलित नित दरसाइ। (ब० २६)
दरसी-१ देखनेवाला २ दिखाई पड़ी, सूझी। उ० १ सर्वदरसी जानहिं हरिलीला। (मा० १।३०।३)
दरसु-दे० 'दरस'। उ० १ दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा। (मा० २।११२।२)
दराज-(फा० दराज़)-१ बड़ा, भारी, लंबा, दीर्घ, २ बहुत अधिक। उ० १ उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए। (क० ७।७४)
दरार-(सं० दर)-किर्री, चीज़ के फटने पर बीच में हो जानेवाली खाली जगह, शिगाफ़। उ० दरकि दरार न जाइ। (गी० ६।६)
दरारा-दे० 'दरार'। उ० सुनि कादर उर जाहिं दरारा। (मा० ६।४३।२)
दरिद्र (१)-(सं०) निर्धन, कंगाल, रंक, दीन। उ० जथा दरिद्र बिबुधतरु पाइ। (मा० १।१४६।२)
दरिद्र (२)-(सं० दारिद्र्य)-दरिद्रता, निर्धनता। उ० अभिमत दातार कौन दुख दरिद्र दारै? (वि० ८०) दरिद्रहि-दरिद्रता स, निर्धनता से। उ० डरहु दरिद्रहि पारसु पाएँ। (मा० २।२१०।१)
दरिबे-(सं० दरण)-दलने, कुचलने। उ० दसमुख दुसह दरिद्र दरिबे को भयो। (ह० ८)
दरिया-(फा०)-१ नदी, सरिता, २ समुद्र, सागर। उ० २ तजि धाम भो दास रघुपति को, दशरथ को दानि दया-दरिया। (क० ७।४६)
दरेरा-(सं० दरण)-१ रगड़ा, धक्का, २ तेज़ वर्षा, ३ बहाव का ज़ोर, तोड़।
दरेरो-दे० 'दरेरा'। उ० १ तापर सहि न जात करुना निधि, मन को दुसह दरेरो। (वि० १४३)
दर्प-(सं०)-१ घमंड, गर्व, अहंकार, २ आतंक, दबाव, रोब, ३ उद्दंडता, अक्खड़पन, ४ मान, अहंकार के लिए किसी पर कोप। उ० १ जयति गतराज दातार, हरतार-संसार-संकट, दनुज दर्पहारी। (वि० २८)
दर्पण-(सं०)-१ आइना, आरसी, शीशा, २ उत्तेजना, उभारने का कार्य।
दर्पन-दे० 'दर्पण'।
दर्पा-दर्प से भर गया, गर्वित हुआ। उ० १ रन मदमत्त निसाचर दर्पा। (मा० ६।६७।३)
दर्पित-घमंड से भरे, गर्वित। उ० यामर निसाचर निकर मर्दहिं राम बल दर्पित भए। (मा० ६।८८ छं० १)
दर्पी-(सं० दर्पिन्)-घमंडी, अहंकारी।
दर्भ-(सं०)-कुश, एक प्रकार की घास। उ० बैठे कपि सब दर्भ डसाई। (मा० ४।२६।५)
दर्श-(सं०)-१ दर्शन, २ अमावस्या तिथि।
दर्शन-(सं०)-१ चाक्षुष ज्ञान, अवलोकन, २ एक विद्या या शास्त्र जिसमें तत्वज्ञान हो। इसमें ब्रह्म जीव प्रकृति तथा जीवन के अंतिम लक्ष्य आदि का विवेचन रहता है। ३ आँख, नेत्र, ४ स्वप्न, ५ दर्पण, आइना, ६ बुद्धि, मनीषा, ७ धर्म। दर्शनादु-दर्शन से। उ० यद सम्भूत अति पूत जल सुरसरी दर्शनादेव अपहरति पापं। (वि० ५५)
दर्शनीय-(सं०)-मनोहर, सुंदर, देखने योग्य।
दर्शी-(सं० दर्शिन्)-देखनेवाला, दरसी।
दल (१)-(सं०)-१ पत्ता, पत्र, २ सेना, ३ झुंड, समूह, ढेर, समाज, ४ खंड, भाग, ५ मोटाई। उ० १ सुमन सुविचित्र-नव तुलसिका दल युत मृदुल वनमाल उर भ्राजमान। (वि० ५१) २ घालि, दलनि दामव दल, रन करालिका। (वि० १६) ३ कामादि खलदल गंजन। (वि० ४५) दलन (१)-(सं० दल) अनेक दल, बहुत से समूह। दलनि (१)-(सं० दल)-१ दल का बहुवचन, बहुत से समूह, २ पत्तों, पखुड़ियों, ३ पत्तों पर। उ० २ नभ-जाति मोती मानो कमल-दलनि पर। (गी० ११ १०) दलन्हि-दलों पर। उ० कमल दलन्हि बैठे जनु मोती। (मा० ११११६।१) दलहि-दल का, समूह का। उ० मैं देखउँ खल बल दलहि बोले राजिव नैन। (मा० ६।६७)

दल (२)-(सं० दलाढ्य)-कीचड़, पंक।

दल (३)-(सं० दलन)-दलनेवाला, नाशकर, चूर्ण करने-वाला नष्ट-भ्रष्ट करनेवाला।

दलइ-(सं० दलन)-नाश करता है। उ० दलइ नामु जिमि रबिनिसि नासा। (मा० १।२४।३)

दलकत-(सं० दोल)-दलकती है, थरथराती है। उ० महाबली बालि को दबत दलकत भूमि। (क० ६।१६) दलकि-१ दलककर, थराकर, दहलकर, काँपकर, २ फट, थर्रा, काँप। उ० २ दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू। (मा० २।२७।२)

दलकन-१ धमक थरथराहट, कंपन, डोलना, २ फटना, चिरना, दरार होना, ३ उद्वेग, चौंकानेवाली क्रिया, ४ भय, डर, भीति। उ० १ मद बिलंद अमेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे। (वि० १८९)

दलत-(सं० दलन)-१ नाश करता है, २ मारने या नाश करने में, ३ मारते या नाश करते समय। उ० ३ सुभुज मारीच खर त्रिसिर दूषन बालि दलत जेहि दूसरो सर न साँध्यो। (क० ६।४) दलि-(सं० दलन)-चूर चूरकर, दलकर, उजाड़कर, नष्टकर। उ० कानन दलि होरी रचि बनाइ। (गी० २।१६) दलिहौं-दलूँगा, दलन करूँगा, नष्ट-भ्रष्ट करूँगा। उ० सोइ हौं बूझत राजसभा 'धनु को दल्यौ' हौं दलिहौं बल ताको। (क० १।२०) दली-१ दलित, २ दली गई, दो टूक की गई, खंडित हुई, ३ नष्ट-भ्रष्ट हो गई, टुकड़े टुकड़े हो गई, समाप्त हो गई। उ० ३ तुलसी कुलिसहु की कठोरता तेहि दिन दलकि दली। (गी० २।१०) दले-दलन किया, नष्ट कर दिये। उ० मय सोचत मनि बिनु भुजग ज्यों बिकल अंग दले जरा धाय। (वि० ८३) दलौं-दलन करूँ कुचल डालूँ। उ० कै पाताल दलौं ब्यालावलि अमृत-कुंड महि लावौं। (गी० ६।८) दल्यो-तोड़ा, नष्ट किया, मार डाला। उ० ब्रह्मांड खंड कियो चंड धुनि जबहिं राम सिवधनु दल्यो। (क० १।११) दल्यौ-तोड़ा, खंडित किया, नष्ट किया। उ० सोइ हौं बूझत राजसभा 'धनु को दल्यौ' हौं दलिहौं बल ताको। (क० १।२०)

दलदल-(सं० दलाढ्य)-पंक, कीचड़, चहला। वह जमीन जो बहुत नीचे तक गीली हो और जिसमें पैर आसानी से धँसता हो।

दलन (२)-(सं० दलन)-१ चूर-चूर करनेवाला, मर्दन करनेवाला, संहारकर्ता, २ नाश, चूर-चूर करना। उ० १ कीस-कौतुक-केलि-लूम-लंका-दहन दलन-कानन-तरुन तेजरासी। (वि० २६) २ हे दयालु दुनि दस दिसा दुख-दोष-दलन छम। (वि० २७४) दलनि (२)-दलने वाली, पीसकर टुकड़े टुकड़े करनेवाली, नष्ट करनेवाली, संहार करनेवाली। उ० चर्म चर्मकर कृपान सूलसेल धनुष-बान धरनि दलनि दानवदल, रनकरालिका। (वि० १६)

दलनिहार-नाश करनेवाला, संहारक। उ० दलनिहार दारिद दुकाल दुख दोष घोर घन घाम को। (वि० १२६)

दलमलि-कुचलकर, मसलकर। उ० भुजबल रिपुदल दल मलि देखि दिवस कर अंत। (मा० ६।७२) दलमले-(सं० दलन+मर्दन)-मसल डाला, मर्दन कर डाला। उ० रनमत्त रावन सकल सुभट प्रचंड भुजबल दलमले। (मा० ६।१२। छं० १)

दलित-(सं०)-१ जिसका दलन किया गया हो, मर्दित, २ रौंदा हुआ, कुचला हुआ, ३ खंडित, फाड़ा हुआ, घायल, ४ विनष्ट किया गया, ५ तिरस्कृत। उ० ३ अंग अंग दलित ललित फूले किंसुक से। (क० ६।४८)

दलु-दे० १ 'दल (१)'। उ० ३ सैलसृंग भय भग हेतु लसु, दलन कपट-पाखंड दंभ दलु। (वि० २४)

दलैया-नष्ट करनेवाला, तोड़नेवाला। उ० रोपि पाँव काढ्यो न दलैया दससीस को। (क० ६।२२)

दव-(सं०)-१ वन, जंगल, २ वन की आग, दावाग्नि, ३ आग, अग्नि, भयानक अग्नि, ४ तपन, जलन, दाह। उ० ३ जेहिं दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्ही। (मा० २।८४।२)

दवन (१)-(सं० दमन)-दमन करनेवाला, नाश करने वाला। उ० कंदर्प दर्प-दुर्गम दवन, उमारवन, गुनभवन हर। (क० ७।१५०)

दवन (२)-(सं० दव)-जलानेवाला।

दवनु-दे० 'दवन (१)'। उ० पुनि रिपु दवनु हरषि हियँ लाए। (मा० २।३१८।२)

दवनू-(सं० दमन)-दमन करनेवाला, नष्ट करने या दबाने वाला। उ० सिय समीप राखे रिपु दवनू। (मा० २।२४३।१)

दवरि-(सं० धोरण, हिं० धौरना)-दौड़कर। उ० मोहिं पर दवरि दमानक सी दई है। (ह० ३८)

दवा (१)-(सं० दव)-दावाग्नि, जंगल की आग, भयंकर आग। उ० तोसो समरथ सुसाहिब सेइ सहै तुलसी दुख दोष दवा से। (ह० १८)

दवा (२)-(फा०)-औषधि, औखद।

दवागि-(सं० दवाग्नि)-वन की आग, दावाग्नि।

दवारि-दे० 'दवारी'। उ० १ लागि दवारि पहार ढही लहकी कपि लंक जथा खरखौकी। (क० ७।१४३)

दवारी-(सं० दवाग्नि)-१ वन की आग, दावानल, २ दाह, जलन। उ० २ एकइ उर बस दुसह दवारी। (मा० २।१८२।३)

दशकंठ-(सं०)-रावण, जिसके दस कंठ हों।

दशकंध-(सं० दश+स्कंध)-रावण, जिसके दस कंधे हों।

दशकंधर-(सं०)-दे० 'दशकंध'।

दशगात्र-(सं०)-मृतक संबंधी एक कर्म जो मरने के पीछे दस दिनों तक होता रहता है।

दशमुख-(सं०)-रावण।

दशमौलि-(सं०)-रावण।

दशरत्थ-दे० 'दशरथ'। उ० जयति मुनिदेव नरदेव दशरत्थ के, देव मुनि-बंद्य किये अवधवासी। (वि० ४४)

दशरथ-(सं०)-अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशीय राजा अज के पुत्र एक प्राचीन राजा जिनके राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चार पुत्र तथा कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा तीन रानियाँ थीं। ये देवों की ओर से कई बार असुरों से लड़े और उन्हें परास्त किया था। एक बार युद्धस्थल में कैकेयी ने

दशरथ की सहायता की थी, जिसके बदले में दशरथ ने दो वर माँगने को कहा था। राम के राज्याभिषेक के समय अपनी दासी मथरा के कहने से कैकेयी ने राम को बन वास और भरत को राज्य, ये दो वर माँगे। अंत में राम बन को गये और उनके वियोग में दशरथ का शरीरांत हो गया।

दशशीश-(सं०)-दस सिरवाला, रावण।

दशा-(सं०)-१ अवस्था, स्थिति, हालत, २ चित्त, ३ कपड़े का छोर, ४ दीए की बत्ती, ५ मानव जीवन की दस दशाएँ या अवस्थाएँ, जिनके नाम गर्भवास, जन्म, बाल्य, कौमार, पौगंड, यौवन, स्थाविर्य, जरा, प्राणरोध और मृत्यु हैं। ६ साहित्य में विरह की अभिलाषा, चिंता, स्मरण, गुण कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मरण आदि दशाएँ। ७ फलित ज्योतिष के अनुसार मनुष्य के जीवन में प्रत्येक ग्रह का नियत भोग काल।

दशानन-(सं०)-दस मुखवाला, रावण।

दस-(सं० दश)-६ के बाद की संख्या, १०, ११ से एक कम। उ० दस दिसि देखत सगुन सुभ, पूजहि मन अभिलाष। (दो० ४६०) दसउ-दसो, सभी दस। उ० अस रिस होति दसउ मुख तोरौं। (मा० ६।३०।१) दसहुँ-दसों। उ० मगन कलस दसहुँ दिसि साजे। (मा० १।३१४) दसहु-दसों। उ० दसईं दसहु कर संयम जो न करिय जिय जानि। (वि० २०३) दसहूँ-दसों। उ० नाम जपत मगल दिसि दसहूँ। (मा० १।२८।१)

दसईं-(सं० दशमी)-चांद्र मास की किसी पक्ष की दसवीं तिथि, दसमी। उ० दसईं दसहु कर संयम जो न करिय जिय जानि। (वि० २०३)

दसकंठ-दे० 'दशकंठ'। उ० जयति मंदोदरी-केसकर्षन विद्यमान दसकंठ भट मुकुट-मानी। (वि० २६)

दसकंध-दे० 'दशकंध'। उ० मीत बालि-बंधु, पूत दूत, दसकंध-बंधु। (क० ७।२२)

दसकंधर-दे० 'दशकंधर'। उ० तोहि जिअत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ। (मा० ३।२१ख)

दसगात्र-दे० 'दशगात्र'। उ० कीन्ह भरत दसगात विधाना। (मा० २।१७०।३)

दसचारि-चौदह, दस और चार। उ० सुजस धवल, चातक मयन ! सुही भुवन दसचारि। (दो० २१५)

दस जान-(सं० दश+यान)-महाराज दशरथ। उ० जनक सुता दस जान-सुत उरग-हंस थ ग जोर। (स० २१४)

दसन (१)-(सं० दशन) दाँत, दंत। उ० तौ तुलसिहिं तारिहौ विप्र ज्यों दसन तोरि जमगन के। (वि० ९६) दसननि-दाँतों को। उ० कुलिस-कुंद कुडमल-दामिनि दुति दसननि देखि लजाई। (वि० ६२) दसनन्हि-दाँतों से। उ० दसनन्हि काटि नासिका काना। (मा० ३।२१४)

दसन (२)-(सं० दशन)-डँसनेवाला।

दसबदन-(सं० दश+वदन)-दस मुखवाला, रावण। उ० सहसबाहु दसबदन आदि नृप बचे न काल बली से। (वि० १६८)

दसमाथ-(सं० दश+मस्तक)-१ दस सिरवाला, रावण, २ दस सिर। उ० १ रावण की रानी जातुधानी विदुरानी कहै, हा हा! कोऊ कहै बीसबाहु दसमाथ सों। (क० ५।१३) २ जो संपति सिव रावनहिं दीन्हि दिए दसमाथ। (दो० १६२)

दसमुख-दे० 'दशमुख'। उ० सूपनखा, मृग पूतना, दसमुख प्रमुख विचारि। (दो० ४०८)

दसमौलि-दे० 'दशमौलि'। उ० हँसि बोलेउ दसमौलि तब कपि कर बड़ गुन एक। (मा० ६।२३ख)

दसरत्थ-दे० 'दशरथ'। उ० चिर जीवहुँ सुत चारि चक्रवर्ति दसरत्थ के। (मा० १।२९५)

दसरथ-दे० 'दशरथ'। उ० दसरथ राउ सहित सब रानी। (मा० १।१६।३) दसरथहि-दशरथ को। उ० आनहिं नृप दसरथहि बोलाई। (मा० १।२८७।१)

दसरथपुर-(सं० दशरथ+पुर)-दसरथ का नगर, अयोध्या। उ० दसरथपुर छबि आपनी सुरनगर लजाई। (गी० १।६)

दसरथु-दे० 'दशरथ'। उ० सोच जोगु दसरथु नृप नाहीं। (मा० २।१७२।१)

दससीस-दे० 'दशशीश'। उ० सुनि दससीस जरे सब गाता। (मा० ३।२२।६)

दससीसा-दे० 'दशशीश'। उ० सर मारत मगन दससीसा। (मा० ६।११।२)

दसस्यंदन-(सं० दश+स्यंदन)-महाराज दशरथ। उ० सुनि सानंद उठे दस स्यंदन सकल समाज समेत। (गी० १।२)

दसहि-दशा को, हालत को, अवस्था को। उ० बरनौं किमि तिनकी दसहि, निगम अगम प्रेम रसहि। (गी० २।१७)

दसा (१)-(सं० दशा)-दे० 'दशा'। उ० १ सुनिय, गुनिय, समुझिय, समुझाइय दसा हृदय नहिं आवै। (वि० ११६) ७ मान मीन दिन दीन दूबरे, दसा दुसह अब आई। (कृ० २६)

दसा (२)-(सं० दश)-दस की संख्या, १०।

दसानन-दे० 'दशानन'। उ० बारिद-दसानन बनाई दुनी, दीनबंधु! (क० ७।६०)

दसि-(सं० दशम)-कपड़ा। उ० अधर दसन दसि मींजत हाथा। (मा० ६।३१।६)

दसैं-(सं० दश)-दस, १०। उ० जनु पुर दसैं दिसि लागि दवारी। (मा० २।१५३।१)

दहइ-(सं०)-१ जलती है जल रही है, २ जलाती है, जला रही है। उ० १ दहइ न दागु दहइ हिम झारी। (मा० १।२८७।१) २ दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू। (मा० २।१२६।२) दहई-जलाया, जला दिया। उ० रावन नगर अल्प कपि दहई। (मा० ६।२३।४) दहत-१ जलता, जलता है, २ जलाता, जलाता है ३ जलता हुआ। उ० ३ कीन्हों छोनि दीन देख्यो दुरित दहत हौं। (वि० ७१) दहति-जला देती है। दहते-जलाते, भस्म करते। उ० जौ मुत हित लिए नाम अजामिल के अघ अमित न दहते। (वि० ९७) दहसि-भस्म करती हो, जलाती हो। उ० विष्णु-पदकंज मकरंद-इव अंबु वर बहसि, दुख दहसि अघ वृंद विद्रावनी। (वि० १८) दहहीं-जलते हैं, अन

हो जाते हैं। उ० ते नरेस बिनु पावक दहहीं। (मा० २। १२६।२) दहि-जलाकर। उ० जलधि लघि, दहि लंक प्रबल-दल दलन निसाचर घोर हो। (वि० ३१) दहिहौं-१ जलूँगा, २ जलाऊँगा। उ० १ यदि नाते नरकहुँ सचु पैहौं, या बिनु परम दहूँ दुख दहिहौं। (वि० २३१) दही (१)-(सं० दहन)-१ जली, जल गई, २ जला दी। उ० १ तीय सिरोमनि सीय तजी जेहिं पावक की कलु पाइ दही है। (क० ७।६) दहे-१ जलाए, २ जले, ३ जलने लगे। उ० ३ सुनत मातु पितु परिजन दारुन दुख दहे। (पा० ३३) दहेउ-जल उठा जलने लगा, जला। उ० उर दहेउ कहेउ कि धरहु धाए बिकट भट रजनीचरा। (मा० ३।१६।छं० १) दहेऊ-जला, जल उठा। उ० प्रभु अपमानु समुझि उर दहेऊ। (मा० १।६३।३) दहैं-जलते हैं। उ० अह यगिनि ते नहिं दहैं, कोटि करै जो कोइ। (वै० २४) दहै-१ जले, जल उठे, २ जलाये, जला डाले। उ० १ तुलसी न्यारे ह्वै रहै दहै न दुख की आगि। (वै० ४२) दहो-१ जलता, जला, २ जलाता। उ० १ जीय जहान में जायो जहाँ सो तहाँ तुलसी तिहुँ दाह दहो है। (क० ७।६१) दहौंगो-१ जलूँगा, २ जलाऊँगा। उ० १ परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो। (वि० १७२) दह्यति-जलते। उ० ते संसार पतंग घोर किरणैर्दह्यन्ति नो मानवा। (मा० ७।१३१।श्लो० २) दह्यो (सं० दहन)-जलाया, भस्म किया। उ० सो ज्ञान ध्यान बिराग अनुभव जातना पावक दह्यो। (वि० १३६)

दहन-(सं०)-१ आग, २ जलना, ३ जलाना ४ जलाने वाला, भस्म करनेवाला। उ० १ रामहि द्रोहानी जानि मुनिमन मानी सुनि नीच महिपावली दहन बिनु दही है। (गी० १।८५)

दहनकर-दहन करनेवाला, जलानेवाला। उ० मन धय्यान कहँ दहन कर मनत प्रचंड रकार। (स० १४७)

दहनि-१ दाह, जलन, २ भस्म करनेवाली, जलाने वाली।

दहनु-दे० 'दहन'। उ० ३ वेष सौ भिखारि को, भयंक रूप संकर, दयालु दीनबंधु दानि दारिद-दहनु है। (क० ७।१६०)

दहिन-(सं० दक्षिण)-दाहिना, दायाँ। उ० बाम दहिन दिसि चाप निषंगा। (मा० ६।११।३) दहिनि-दाहिनी, दायीं। उ० दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी। (मा० २। २०।२)

दही (२)-(सं० दधि)-जमा हुआ दूध, दधि। उ० सुखमा सुरभि सिंगार-छीर दुहि मयन अमिय मय किया है दही, री। (गी० १।१०४)

दहेंडि-(सं० दधि)-दही जमाने या रखने की मटकी। उ० अहिरिनि हाथ दहेंडि सगुन लेइ आवइ हो। (रा० ५)

दह्यो (२)-(सं० दधि)-दही, दधि। दह्योउ-दही भी। उ० दूध दह्योउ माखन खात हैं हुता पासात दान दिन दोयो। (कृ० ६)

दाँउ-दे० 'दाँव'।

दाँड़-(सं० दंड)-१ सज़ा, २ ताड़ना, ३ शासन, ४ नाव खेने का डाँड़ या डंडा।

दाँत-(सं० दंत)-दंत, दशन, रद। उ० तापर दाँत पीसि कर मीजत, को जानै चित कहा ठई है। (वि० १३६) मु० दाँत पीसि-दाँत पर दाँत रगड़कर, क्रोधित होकर। उ० दे० 'दाँत'।

दाँव(?)-(सं० प्रत्यय-दा)-१ चाल, पेच, कुश्ती जीतने के लिए काम में लाई जानेवाली युक्ति, २ उपाय, कार्य साधन की युक्ति, ३ कपट, छल, ४ चाल, खेलने की बारी, ५ मौका, उपयुक्त समय, सुअवसर, ६ बार, दफ़ा, मरतबा, ७ पारी, बारी, ओसरी, ८ स्वार्थ, ९ जुए आदि में कौड़ी का इस प्रकार पड़ना कि जीत हो, जीत का पासा।

दाँवरी-(सं० दाम) रस्सी, रसरी, जेंवर। उ० दुसह दाँवरी छोरि, थोरी खोरि कहा कीन्हों। (कृ० १५)

दा-(सं०)-देनेवाली, दान करनेवाली।

दाइ (१)-(सं० दायिन्)-देनेवाला, दान करनेवाला। उ० गगन, जल, थल विमल तब तें सकल मगनदाइ। (गी० ७।३३)

दाइ (२)-दे० 'दाँव'।

दाइज-(सं० दाय)-वह धन जो विवाह में वर पक्ष को कन्या पक्ष की ओर से दिया जाय। दहेज। उ० दाइज दीन्ह न जाइ बखाना। (मा० १।१०१।४)

दाइनि-(सं० दायिनी)-देनेवाली, दान करनेवाली।

दाई-(सं० दायिन्)-देनेवाला, दान करनेवाला। उ० हौं मन बचन कर्म पातक रत, तुम कृपालु पतितनि गति दाई। (वि० २४२)

दाउँ-दे० 'दाउ'। उ० ५ देखिबे को दाउँ, देखौ देखियो बिहाइ कै। (गी० १।८२।४)

दाउ-दे० 'दाँव'। उ० ४ जीति हारि चुचुकारि दुलारत, देत दिवावत दाउ। (वि० १००)

दाऊँ-दे० 'दाँव'।

दाऊ-दे० 'दाँव'। उ० ६ सूझ जुआरिहि आपन दाऊ। (मा० २।२५८।१)

दाग-(फा० दाग़)-१ धब्बा, चित्ती, कुअंक, २ चिह्न, अंक, निशान, ३ कलंक लांछन, दोष, ४ जलने का चिह्न। उ० १ बाम बिधि भालहू न कर्म-दाग दागिहै। (वि० ७०)

दागिहै-(सं० दग्ध)-१ दागेगा, दाग सकेगा, २ धब्बा लगा सकेगा, ३ कलंकित कर सकेगा ४ चिह्नित कर सकेगा, मिटा सकेगा। उ० १ बाम बिधि भालहू न कर्म-दाग दागिहै। (वि० ७०) दागी-(सं० दग्ध)-जला दी, जलाई। उ० गयो बपु बीति बादि कानन ज्यों कलप लता दव दागी। (गी० ३।१२)

दाघ-(सं०)-१ गरमी, ताप, दाह, जलन, २ जला हुआ, दग्ध।

दाड़िम-(सं० दाडिम)-अनार। उ० कुंद कली दाड़िम दामिनी। (मा० ३।३०।६)

दाढ़ी-(सं० दंष्ट्रा, प्रा० दड्ढा, हि० दाढ़)-मुख के नीचे का चिबुक भाग या चिबुक और कपोल आदि पर उगे बाल।

दाढ़ीजार-जिसकी दाढ़ी जल गई हो। 'दाढ़ीजार' एक गाली है, जिसे औरतें देती हैं। उ० बार-बार कहौं मैं पुकारि दाढ़ीजार सों। (क० ५।११)
दातन्ह-दाता से। उ० सुखिन्ह लातन्ह दातन्ह पावहिं। (मा० ६।२३।२)
दातहि-दाता को, देनेवाले को। उ० तुलसी जाचक पातकी दातहि दूषन देहिं। (दो० ३७१) दाता-(सं०)-१ देनेवाला, दानी, २ उदार। उ० १ होइ अलद जगजीवन दाता। (मा० १।७।६)
दातार-देनेवाला, दानी। उ० राजन राउर नामु जसु सब अभिमत दातार। (मा० २।३)
दातारु-दे० 'दातार'।
दाद (१)-(सं० दद्रु)-एक चर्म रोग जिसमें काले-काले चकत्ते पड़ जाते हैं और खुजली भी रहती है। दिनाय, दिनाई।
दाद (२)-(फा० दाद) इंसाफ, न्याय।
दादि-दे० 'दाद (२)'। उ० कृपासिंधु! जन दीन दुवारे दादि न पावत काहे? (वि० १४४)
दादु-दे० 'दाद (१)'। उ० ममता दादु कंडु इरषाई। (मा० ७।१२१।१७)
दादुर-(सं० दर्दुर)-मेढक, मंडूक। उ० हर गुर निंदक दादुर होई। (मा० ७।१२१।१२)
दान-(सं०)-१ धर्म, श्रद्धा या दया के भाव से दिया गया अन्न, वस्त्र या धन आदि, खैरात, २ कर, महसूल, ३ चंदा, ४ वह वस्तु जो दान में दी जाय, ५ राजनीति की चार उपायों में से एक, कुछ देकर शत्रु के विरुद्ध काम कराने की नीति, ६ हाथी के मस्तक से चूनेवाला मद, ७ दहेज, दायज। उ० १ साहिब सब बिधि सुजान, दान-खड्ग-सूरो। (वि० ८०)
दानव-(सं०)-कश्यप के वे पुत्र जो दनु नाम्नी पत्नी से पैदा हुए थे। असुर, राक्षस। उ० भक्त दीनबंधु दिनेश दानव दैत्य वंश निकंदन। (वि० ४५)
दाना-दे० 'दान'। उ० १ बिजैयाह देहिं बहु दाना। (मा० २।१२३।४)
दानि-दे० 'दानी'। १ दानि दसरथ राय के तुम बानइत सिरताज। (वि० २११) उ० २ राम कथा सुरधेनु सम सेवत सब सुख दानि। (मा० १।११३)
दानी-(सं० दानिन्)-१ दान करनेवाला, २ देनेवाला, दाता, ३ उदार। उ० १ दानी कहुँ संकर सम नाहीं। (वि० ४)
दानु-दे० 'दान'। उ० १ रवै माँगनेहि माँगियो, तुलसी दानिहि दानु। (दो० ३२७)
दाप-(सं० दर्प)-१ गर्व, अहंकार, २ शक्ति, बल, जोर, ३ तेज, प्रताप, ४ आतंक, ५ दुःख ६ क्रोध, ७ जोश, उमंग। उ० १ रथ चढ़ि चलेउ दसानन फिरहु फिरहु करि दाप। (मा० ६।८१) ३ भंजि भव चाप, दलि दाप भूपावली, सहित भृगुनाथ नत माथ भारी। (वि० ४३) ५ बिबिध ताप भव दाप नसावनि। (मा० ७।१२९।१)
दापा-दे० 'दाप'। उ० १ हारे सकल भूप करि दापा। (मा० १।२२१।२)
दापु-दे० 'दाप'। उ० १ भजेउ चापु दापु बड़ बाढ़ा। (मा० १।२८३।३) ४ ब्याही जेहि जानकी जीति जग हरे परसुधर-दापु। (गी० ६।१)
दाबि-(सं० दमन)-दबाकर, कुचलकर, तोड़-मरोड़कर। उ० ते रन-तीर्थनि लक्खन लाखन दानि ज्यों दारिद दाबि दले हैं। (क० ६।३३)
दाम (१)-(सं०)-१ रस्सी, रज्जु, २ माला, हार, ३ चमकता हुआ। उ० १ धूरि मेरु सम जनक जम ताहि ब्याल सम दाम। (मा० १।१७५) २ स्याम तामरस दाम शरीर। (मा० ३।११।२)
दाम (२)-(स्त्री०)-१ मूल्य, २ द्रव्य, ३ एक पैसे का पच्चीसवाँ भाग, ४ राजनीति की एक चाल जिसमें शत्रु को धन द्वारा वश में करते हैं। ५ खरा माल, ६ धातु। उ० २ करमजाल कलिकाल कठिन आधीन सुसाधित दाम को। (वि० १५५)
दामिनि-दे० 'दामिनी'। उ० दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों। (क० १।३)
दामिनी-(सं०)-बिजली, विद्युत। उ० मुक्ति की दूतिका, देह दुति दामिनी। (वि० ५८)
दामोदर-(सं०)-१ श्रीकृष्ण, २ विष्णु। उ० १ तुलसी जे तोरे बरु किए देव, दिए बरु कै न डरो कौन पर देव दामोदर तैं। (कृ० १७)
दाय-समय में। दे० 'दाय (३)'। उ० २ सिर धुनि धुनि पछि-तात मींजि कर, कोउ न मीत हित दुसह दाय। (वि० ८३)
दाय (१)-(सं०)-१ कन्यादान के बाद वर को कन्या पक्ष की ओर से दिया जानेवाला धन, २ बपौती।
दाय (२)-(सं० दाव)-१ दावानल, २ जलन, दुःख।
दाय (३)-(सं० प्रत्यय-दा, जैसे एकदा)-१ दफा, बार, २ अवसर, समय, ३ दाव। उ० ३ होत उठि बाहिं दाहिनो दिन दैव दारुन-दाय। (गी० ७।३१)
दायक-(सं०)-देनेवाला, दाता। उ० भगत बिपति भंजन सुखदायक। (मा० १।१८५)
दायकु-दे० 'दायक'। उ० बरनउँ रघुबर बिमल जसु जो दायकु फल चारि। (मा० २।१। दोहा १)
दायज-दे० 'दायजा'।
दायजा-(सं० दाय)-विवाह में वर पक्ष को कन्या पक्ष से दिया जानेवाला धन, यौतुक, दहेज।
दायनी-देनेवाली, प्रदान करनेवाली। उ० बिमल कथा हरिपद दायनी। (मा० ७।१२२।३)
दाया-(सं० दया)-दया, रहम, कृपा। उ० करि उपाय पचि मरिय तरिय नहिं जब लगि करहु न दाया। (वि० ११६)
दायिनि-(सं० दायिनी)-देनेवाली। उ० भक्ति-मुक्ति दायिनि, भयहरनि, कालिका। (वि० १६)
दार-(सं०)-स्त्री, पत्नी, भार्या। उ० सुत, दार, अगार, सखा, परिवार बिलोकु महा कुसमाजहि रे। (क० ७।३०)
दारण-(सं०)-१ फाड़ना, बिदारण, चीर-फाड़, २ फाड़ने वाला, चीरनेवाला।
दारदा-(सं० दरिद्र)-दरिद्र होती जाती है। उ० साहिब सरोष दुनी दिन-दिन दारदी। (क० ७।१८३)

दारन-दे० 'दारुण'। उ० २ भव वारन दारन सिंह प्रभो। (मा० ६।१११।१)
दारय-(सं० दारण, हिं० दारना)-नाश कीजिए, विनीर्ण कीजिए, फाड़िए। उ० मन संभव दारुन दुख दारय। (मा० ७।३४।२)
दारा-(सं० दार)-स्त्री, पत्नी, भार्या। उ० जे लपट पर धन पर दारा। (मा० १।१८४।१)
दारि-(सं० दालि)-दाल, दला हुआ अरहर, मूँग, उड़द, मटर तथा चने आदि का दाना। उ० चाहत अहारन पहार दारि कूरना। (क० ७।१४८)
दारिका-(सं०)-बालिका, कन्या। उ० पु दारिका परिचारिका करि पालियीं करुना नई। (मा०१।३२६। छं० ३)
दारिद-(सं० दारिद्रय)-दरिद्रता, निर्धनता। उ० दारिद दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु! (क० ७।९७)
दारिदी-दरिद्री, गरीब, निर्धन। उ० दारिदी दुखारी देखि भूसुर भिखारी भीरु। (क० ७।१७४)
दारु-(सं०)-काठ, लकड़ी। उ० दारु बिचारु कि करइ कोउ बंदिअ मलय प्रसंग। (मा० १।१० क)
दारुजोषित-(सं० दारु+योषित्)-कठपुतली। उ० उमा दारुजोषित की नाईं। (मा० ४।११।४)
दारुण-(सं०)-१ भयंकर, भीषण, घोर, २ कठिन, विकट, ३ विदारक, फाड़नेवाले, ४ भयानक रस, ५ एक नरक का नाम, ६ विष्णु, ७ शिव, ८ चीते का पेड़।
दारुन-दे० 'दारुण'। उ० १ दारुन दनुज जगत दुख दायक मारयो त्रिपुर एक ही बान। (वि० ३) २ दारुन बिपति हरन, करुनाकर। (वि० ७)
दारुनारि-(सं० दारुनारी)-कठपुतली। उ० सारद दारुनारि सम स्वामी। (मा० १।१०५।३)
दारू-(फा०)-१ शराब, मद्य, २ बारूद। उ० काल तोपची, तुपक महि, दारू अनय कराल। (दो० ५१५)
दारे-(सं० दलन)-दले, नष्ट किए। उ० भागे अजाल बिपुल, दुख-कदंब दारे। (गी० १।३६)
दारै-विनाश करे, फाड़े, दले, ध्वंस करे। उ० अभिमत दातार कौन दुख दरिद्र दारै। (वि० ८०)
दालि-(सं० दलन)-१ दलन करनेवाला, नष्ट करने वाला, २ दलन करके, नष्ट करके। उ० १ मंडलीक मंडली प्रताप-दाप दालि री। (क० १।१२)
दावन-(सं० दमन)-१ दमन, नाश, २ नाश करनेवाला, दमन करनेवाला। उ० २ जातुधान दावन, परावन को दुग भयो। (ह० ७) दावनी (१)-नष्ट करनेवाली, मिटानेवाली। उ० त्रिविध ताप भव भय दावनी। (मा० ७।१२।१)
दावनी (२)-(सं० दामिनी)-माथे का एक गहना।
दावा (१)-(सं० दाव)-१ वन की आग, २ आग, ३ दाह जलन। उ० १ रानिन्ह कर दारुन दुख दावा। (मा० १।२६०।३) ३ करत प्रबेस मिटे दुख दावा। (मा० २।२३६।२)
दावा (२)-(अर०)-१ स्वत्व, हक, अधिकार, २ नालिश, अभियोग, ३ दृढ़तापूर्वक कथन।
दाशरथि-(सं०)-१ दशरथ के पुत्र, २ रामचंद्र, ३ लक्ष्मण, ४ भरत, ५ शत्रुघ्न, ६ दशरथ के चारो पुत्र। उ० १ जयति दाशरथि, समर-समरथ, सुमित्रासुवन, शत्रुसूदन, राम भरत बंधो। (वि० ३८)
दास-(सं०)-१ सेवक, किंकर, नौकर, २ शूद्र, चौथे वर्ण का मनुष्य, ३ चोर, तस्कर, ४ धीवर, मल्लाह, ५ आत्मज्ञानी, ६ एक उपाधि जो शूद्रों या हरिभक्तों के नामांत में लगाई जाती है। जैसे तुलसीदास, रैदास। उ० १ मोद मंगल की रासि, दास कासी-बासी तेरे हैं। (क० ७।१७४) दासतुलसीस-(सं० दास, तुलसी+ईश)-तुलसी के ईश भगवान रामचंद्र के दास हनुमान। उ० दासतुलसीस के बिरुद बरनत बिदुष। (क० ७।४५)
दासन्ह-दासों, नौकरों, सेवकों। उ० अति आनंद दासन्ह कहँ दीन्हा। (मा० १।२०३।१)
दासरथि-दे० 'दाशरथि'। उ० १ दासरथि बीर बिरुदैत बाँको। (क० ६।२१)
दासरथी-दे० 'दाशरथि'। उ० २ पल में दल्यो दासरथी दसकंधर, लंक बिभीषन राज बिराजे। (क० ७।१)
दासा-दे० 'दास'। उ० १ सुंदरि सुनु मैं उन्हकर दासा। (मा० ३।१७।७)
दासीं-दासियाँ, नौकरानियाँ। उ० दासीं दास तुरग रथ नागा। (मा० १।१०१।४) दासी-(सं०)-नौकरानी, सेविका, सेवा करनेवाली स्त्री। उ० जानिअ सत्य मोहि निज दासी। (मा० १।१०८।१)
दासु-दे० 'दास'।
दाह-(सं०)१ जलन, ताप, २ जलाना, जलाने की क्रिया, ३ मुर्दा फूँकना, शवदाह, ४ डाह, ईर्ष्या, ५ दुःख। उ० १ देखत दुख-दोष-दुरित दाह दारिद-दरनि। (वि०२०)
दाहक-(सं०)-जलानेवाला। उ० सीतल सिख दाहक भइ कैसें। (मा० २।६४।१)
दाहने-दे० 'दाहिने'।
दाहा-१ जलन, २ जलाया, भस्म किया। उ० २ साँचेहु कीस कीन्ह पुर दाहा। (मा० ६।२३।४) दाहि-जलाकर, दहनकर, गमकर। उ० अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दंड। (मा० ७।३७) दाहे-१ जलाए, २ जलाने से, जलाने पर, ३ नष्ट किए, दूर किए। उ० ३ जब जहँ तुमहिं पुकारत आरत तब तिन्हके दुख दाहे। (वि० १४५) दाहै-जलाये, दहन करे। उ० मद अगिनि नहिं दाहै कोई। (वै० ५२)
दाहिन-दे० 'दाहिना'। उ० १ लखन चलहिं मगु दाहिन लाएँ। (मा० २।७२३।३) २ भयउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन। (मा० २।१।२) ४ तुलसी प्रभु दीनि दयालुहि रे, रघुनाथ अनाथहि दाहिन जू। (क० ७।७)
दाहिना-(सं० दक्षिण)-१ दायाँ, बाएँ का उलटा, २ अनुकूल ३ सरल, सीधा, ४ सहायक। दाहिनी-दाएँ, 'दाहिना' का स्त्रीलिंग। उ० रामबाम दिसि जानकी, लखन दाहिनी ओर। (वै० १) दाहिने-१ दाहिने तरफ, २ अनुकूल, ३ सीधे, अच्छे। उ० १ मन पछताइ दाहिने जो अपि तुलसिदास से बामो। (वि० २२८) दाहिनेउ-दाहिना भी, अनुकूल भी सहायक भी। उ० लागे दुसह दूषन न दाहिनेउ बाम। (गी० ७।२५)

दाढ़ीजार-जिसकी दाढ़ी जल गई हो। 'दाढ़ीजार' एक गाली है, जिसे औरतें देती हैं। उ० बार बार कहों मैं पुकारि दाढ़ीजार सों। (क० ५।११)

दातन्ह-दाँतों से। उ० मुठिकन्ह लातन्ह दातन्ह काटहिं। (मा० ६।४३।३)

दातहि-दाता को, देनेवाले को। उ० तुलसी जाचक पातकी दातहि दूषन देहि। (दो० ३०१) दाता-(सं०)-१ देने वाला, दानी, २ उदार। उ० १ होइ अकाज जगजीवन-दाता। (मा० १।७।६)

दातार-देनेवाला, दानी। उ० राजन राउर नामु जसु सब अभिमत दातार। (मा० २।३)

दातारु-दे० 'दातार'।

दाद (१)-(सं० दद्रु)-एक चर्म रोग जिसमें लाल-लाल चकत्ते पड़ जाते हैं और खुजली भी रहती है। दिनाय, दिनाई।

दाद (२)-(फा० दाद) इंसाफ, न्याय।

दादि-दे० 'दाद (२)'। उ० कृपासिंधु ! जन दीन दुवारे दादि न पावत काहे ? (वि० १४४)

दादु-दे० 'दाद (१)'। उ० ममता दादु कंडु इरषाई। (मा० ७।१२१।१७)

दादुर-(सं० दर्दुर)-मेढक, मंडूक। उ० हर गुर निंदक दादुर होई। (मा० ७।१२१।१२)

दान-(सं०)-१ धन, श्रद्धा या दया के भाव से दिया गया अन्न, वस्त्र या धन आदि, खैरात, २ कर, महसूल, ३ चंदा, ४ वह वस्तु जो दान में दी जाय, ५ राजनीति की चार उपायों में से एक, कुछ देकर शत्रु के विरुद्ध कार्य कराने की नीति, ६ हाथी के मस्तक से चूनेवाला मद, ७ दहेज, दायज। उ० १ साहिब सब विधि सुजान, दान-खग-सूरो। (वि० ८०)

दानव-(सं०)-कश्यप के वे पुत्र जो दनु नाम्नी पत्नी से पैदा हुए थे। असुर, राक्षस। उ० प्रभु दीनबंधु दिनेश दानव दैत्य वंश निकंदन। (वि०४५)

दाना-दे० 'दान'। उ० १ बिजैबाइ देहि बहु दाना। (मा० २।१२३।४)

दानि-दे० 'दानी'। १ दानि दसरथ राय के तुम बानइत सिरताज। (वि० २११) उ० २ राम कथा सुरधेनु सम सेवत सब सुख दानि। (मा० १।११३)

दानी-(सं० दानिन्)-१ दान करनेवाला, २ देने वाला, दाता, ३ उदार। उ० १ दानी कहुँ संकर सम नाहीं। (वि० ४)

दानु-दे० 'दान'। उ० १ दवी माँगनेहि माँगिबो, तुलसी दानिहि दानु। (दो० ३२७)

दाप-(सं० दर्प)-१ गर्व, अहंकार, २ शक्ति, बल, ज़ोर, ३ तेज, प्रताप ४ आतंक, ५ दुःख, ६ क्रोध, ७ जोश, उमंग। उ० १ रथ चढ़ि चलेउ दसानन फिरहु-फिरहु करि दाप। (मा० ६।८१) ३ भंजि भव चाप, दलि दाप भूपावली, सहित भृगुनाथ नत माथ भारी। (वि० ५३) २ त्रिविध ताप भव दाप नसावनि। (मा०७।३५।१)

दापा-दे० 'दाप'। उ० १ हारे सकल भूप करि दापा। (मा० १।२२६।२)

दापु-दे० 'दाप'। उ० १ भजेउ चापु दापु बड़ बाढ़ा। (मा० १।२८३।३) ४ ब्याही जेहि जानकी जीति जग हरयो परसुधर-दापु। (गी० ६।१)

दाबि-(सं० दमन)-दबाकर, कुचलकर, तोड़ मरोड़कर। उ० से रन-तीरथनि लक्खन लाखन दानि ज्यों दारिद दाबि दले हैं। (क० ६।३३)

दाम (१)-(सं०)-१ रस्सी, रज्जु, २ माला, हार, ३ चमकता हुआ। उ० १ धूरि मेरु सम जनक जम ताहि ब्याल सम दाम। (मा० १।१७५) २ स्याम तामरस दाम शरीरं। (मा० ३।११।२)

दाम (२)-(ग्री०)-१ मूल्य, २ द्रव्य, ३ एक पैसे का पच्चीसवाँ भाग, ४ राजनीति की एक चाल जिसमें शत्रु को धन द्वारा वश में करते हैं। ५ खरा माल, ६ धातु। उ० २ करमजाल कलिकाल कठिन आधीन सुसाधित दाम को। (वि० १५५)

दामिनि-दे० 'दामिनी'। उ० दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों। (क० १।३)

दामिनी-(सं०)-बिजली, विद्युत। उ० मुकि की पूतिका, देह दुति दामिनी। (वि० ४८)

दामोदर-(सं०)-१ श्रीकृष्ण, २ विष्णु। उ० १ तुलसी जे तोर तरु किए देव, दिए बर कै न लह्यो कौन पर दव दामोदर तें। (कृ० १७)

दाय-समय में। दे० 'दाय (३)'। उ०२ सिर धुनि धुनि पछि तात मींजि कर, कोउ न मीत हित दुसह दायँ। (वि०८३)

दाय (१)-(सं०)-१ कन्यादान के बाद वर को कन्या पक्ष की ओर से दिया जानेवाला धन, २ बपौती।

दाय (२)-(सं० दाव)-१ दावानल, २ जलन, दुःख।

दाय (३)-(सं० प्रत्यय-दा, जैसे एकदा)-१ दफा, बार, २ अवसर, समय, ३ दाव। उ० ३ होत हठि मोहि दाहिनो दिन दैव दारुन-दाय। (गी० ७।३१)

दायक-(सं०)-देनेवाला, दाता। उ० भगत बिपति भंजन सुखदायक। (मा० ३।१८।५)

दायकु-दे० 'दायक'। उ० परसउँ रघुबर बिमल जसु जा दायकु फल चारि। (मा० २।१। दोहा १)

दायज-दे० 'दायजा'।

दायजा-(सं० दाय)-विवाह में वर पक्ष को कन्या पक्ष से दिया जानेवाला धन, यौतुक, दहेज।

दायनी-देनेवाली, प्रदान करनेवाली। उ० विमल कथा हरिपद दायनी। (मा० ७।५२।३)

दाया-(सं० दया)-दया, रहम कृपा। उ० करि उपाय पचि मरिय तरिय नहिं जब लगि करहु न दाया। (वि० ११६)

दायिनि-(सं० दायिनी)-देनेवाली। उ० भक्ति-मुक्ति दायिनि, भयहरनि, कालिका। (वि० १६)

दार-(सं०)-स्त्री, पत्नी, भार्या। उ० सुत, दार, अगार, सखा, परिवार बिलोकु महा कुसमाजहि रे। (क० ७।३०)

दारउ-(सं०)-१ फाड़ना, विदारण चीड़-फाड़, २ फाड़ने वाला, चीरनेवाला।

दारदी-(सं० दरिद्र)-दरिद्र होती जाती है। उ० साहिब सराय दुनी दिन-दिन दारदी। (क० ७।१८२)

दारन-दे० 'दारण'। उ० २ भव वारन दारन सिंह प्रभो। (मा० ६।१११।१)

दारय-(सं० दारण, हिं० दारना)-नाश कीजिए, विदीर्ण कीजिए, फाड़िए। उ० मन सभव दारुन दुख दारय। (मा० ७।३४।२)

दारा-(सं० दार)-स्त्री, पत्नी, भार्या। उ० जे लपट पर धन पर दारा। (मा० १।१८४।१)

दारि-(सं० दालि)-दाल, दला हुआ अरहर, मूँग, उड़द, मटर तथा चने आदि का दाना। उ० चाहत अहारन पहार दारि घूरना। (क० ७।१४८)

दारिका-(सं०)-बालिका, कन्या। उ० ए दारिका परि चारिका करि पालिबीं करुना नई। (मा०१।३२६। छं० ३)

दारिद-(सं० दारिद्रय)-दरिद्रता, निर्धनता। उ० दारिद दसानन दबाई दुनी दीनबंधु ! (क० ७।९७)

दारिदी-दरिद्री, गरीब, निर्धन। उ० दारिदी दुखारी देखि भूसुर भिखारी भीरु। (क० ७।१७४)

दारु-(सं०)-काठ, लकड़ी। उ० दारु बिचारु कि करइ कोउ बंदिअ मलय प्रसंग। (मा० १।१० क)

दारुजोषित-(सं० दारु+योषित्)-कठपुतली। उ० उमा दारुजोषित की नाईं। (मा० ४।११।४)

दारुण-(सं०)-१ भयंकर, भीषण, घोर, २ कठिन, विकट, ३ विदारक, फाड़नेवाले, ४ भयानक रस, ५ एक नरक का नाम, ६ विष्णु, ७ शिव, ८ चीते का पेड़।

दारुन-दे० 'दारुण'। उ० १ दारुन दनुज जगत दुख दायक जारयो त्रिपुर एक ही बान। (वि० ३) २ दारुन बिपति हरन, करुनाकर। (वि० ७)

दारुनारि-(सं० दारुनारी)-कठपुतली। उ० सारद दारुनारि सम स्वामी। (मा० १।१०५।३)

दारू-(फा०)-१ शराब, मद्य, २ बारूद। उ० काल तोपची, तुपक महि, दारू अनय कराल। (दो० ५१४)

दारे-(सं० दलन)-दले, नष्ट किए। उ० भागे जजाल बिपुल, दुख-कदंब दारे। (गी० १।३६)

दारै-विनाश करे, फाड़े, दले, ध्वंस करे। उ० अभिमत दातार कौन दुख दरिद्र दारै। (वि० ८०)

दालि-(सं० दलन)-१ दलन करनेवाला, नष्ट करने वाला, २ दलन करके, नष्ट करके। उ० १ मदनीश मदली प्रताप-दाप दालि री। (क० १।१२)

दावन-(सं० दमन)-१ दमन, नाश, २ नाश करनेवाला, दमन करनेवाला। उ० २ जातुधान दावन, परावन को दुर्ग भयो। (ह० ७) दावनी (१)-नष्ट करनेवाली, मिटानेवाली। उ० त्रिविध ताप भव भय दावनी। (मा० ७।१५।१)

दावनी (२)-(सं० दामिनी)-माथे का एक गहना।

दावा (१)-(सं० दाव)-१ वन की आग, २ आग, ३ दाह, जलन। उ० १ रानिन्ह कर दारुन दुख दावा। (मा० १।२६०।३) ३ भरत प्रबेस मिटे दुख दावा। (मा० २।२३९।२)

दावा (२)-(अर०)-१ स्वत्व, हक, अधिकार, २ नालिश, अभियोग, ३ दृढ़तापूर्वक कथन।

दाशरथि-(सं०)-१ दशरथ के पुत्र, २ रामचंद्र, ३ लक्ष्मण, भरत, ५ शत्रुघ्न, ६ दशरथ के चारों पुत्र। उ०१ जयति दाशरथि, समर-समरथ, सुमित्रासुवन, शत्रु सूदन, राम भरत बंधो। (वि० ३८)

दास-(सं०)-१ सेवक, किंकर, नौकर, २ शूद्र, चौथे वर्ण का मनुष्य, ३ चोर, तस्कर, ४ धीवर, मल्लाह, ५ आत्मज्ञानी, ६ एक उपाधि जो शूद्रों या हरिभक्तों के नामांत में लगाई जाती है। जैसे तुलसीदास, रैदास। उ० १ मोद मंगल की रासि, दास कासी-बासी तेरे हैं। (क० ७।१७४) दासतुलसीस-(सं० दास, तुलसी+ईश)-तुलसी के ईश भगवान रामचंद्र के दास हनुमान। उ० दासतुलसीस के बिरुद बरनत बिदुष। (क० ७।४५) दासन्ह-दासों, नौकरों, सेवकों। उ० अति आनंद दासन्ह कहँ दीन्हा। (मा० १।२०३।१)

दासरथि-दे० 'दाशरथि'। उ० १ दासरथि बीर बिरदैत बाँको। (क० ६।२१)

दासरथी-दे० 'दाशरथि'। उ० २ पल में दल्यो दासरथी दसकंधर, लंक बिभीषन राज बिराजे। (क० ७।१)

दासा-दे० 'दास'। उ० १ सुंदरि सुनु मैं उन्ह कर दासा। (मा० ३।१७।७)

दासीं-दासियाँ, नौकरानियाँ। उ० दासीं दास तुरग रथ नागा। (मा० १।१०१।४) दासी-(सं०)-नौकरानी, सेविका, सेवा करनेवाली स्त्री। उ० जानिअ सदा मोहि निज दासी। (मा० १।१०८।१)

दासु-दे० 'दास'।

दाह-(सं०)१ जलन, ताप, २ जलाना, जलाने की क्रिया, ३ मुर्दा फूँकना शवदाह, ४ डाह, ईर्ष्या, ५ दुःख। उ० १ देखत दुख-दोष-दुरित दाह दारिद-दरनि। (वि०२०)

दाहक-(सं०)-जलानेवाला। उ० सीतल सिख दाहक भइ कैसें। (मा० २।६४।१)

दाहने-दे० 'दाहिने'।

दाहा-१ जलन, २ जलाया, भस्म किया। उ० २ साँचेहु कीस कीन्ह पुर दाहा। (मा० ६।२३।४) दाहि-जलाकर, दहनकर, भस्मकर। उ० अनल दाहि पीतत घनहिं परसु बदन यह दंड। (मा० ७।३७) दाहे-१ जलाए, २ जलाने से, जलाने पर, ३ नष्ट किए, दूर किए। उ० ३ जब जहँ तुमहिं पुकारत आरत तब तिन्हके दुख दाहे। (वि० १४५) दाहै-जलाये, दहन करे। उ० अस अगिनि नहिं दाहै कोई। (वै० ५२)

दाहिन-दे० 'दाहिना'। उ० १ सगुन सगुन प्रभु दाहिन लाएँ। (मा० १।३२३।३) २ भयउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन। (मा० २।१७।२) ४ तुलसी प्रभु दीनि दयालुहि रे, रघुनाथ अनाथहि दाहिन जू। (क० ७।७)

दाहिना-(सं० दक्षिण)-१ दायाँ, बाएँ का उलटा, २ अनुकूल, ३ सरल सीधा, ४ सहायक। दाहिनी-दाएँ, 'दाहिना' का स्त्रीलिंग। उ० रामबाम दिसि जानकी, लखन दाहिनी ओर। (वै० १) दाहिने-१ दाहिने तरफ, २ अनुकूल, ३ सीधे, अच्छे। उ० ३ भए बनाइ दाहिने जो अपि तुलसिदास से बामो। (वि० २२८) दाहिनेउ-दाहिना भी, अनुकूल भी सहायक भी। उ० लागे दुख दूषन से दाहिनेउ बाम। (गी० ५।२५)

दाहिनो–१ अनुकूल, २ दाएँ। उ० १ सबको दाहिनो, दीनबंधु काहू को न बाम। (वि० ७७)
दाहु–दाह, जलाना, भस्मीकरण। उ० लोक मान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु। (मा० १।१६१क)
दाहू–१ दाह, जलन, २ दुःख, संताप, ३ डाह, ईर्ष्या। उ० २ जेहि न बघोरि होइ डर दाहू। (मा० १।७१।३)
दिअटि–दे० 'दियट'। उ० चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ। (मा० ७।११७ख)
दिआ–दे० 'दिया (१)'। उ० १ चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ। (मा० ७।११७ख)
दिआसे–(सं० दीपक)–दे० 'दियरा'। उ० मनहुँ मृगी मृग देखि दिआसे। (मा० २।११६।२)
दिक्–(सं०)–१ दिशा, २ ओर, तरफ़।
दिक–दे० 'दिक्'। उ० १ उकपात, दिकदाह दिन, फेकरहिं स्वान सियार। (प्र० ५।६।३)
दिखराय–(सं० दृश्, प्रा० देक्खर, हिं० देखना, दिखाना) दिखलाकर, बताकर।
दिखाई–१ दिखा कर, २ दिखलाई, ३ देखने का भाव। उ० १ बिनु पूछें मगु देहिं दिखाई। (मा० ६।१८।४) दिखाया–दिखलाया, दिखा दिया। उ० प्रभु प्रतापु सब नृपन्ह दिखाया। (मा० १।२३६।३) दिखावहिं–दिखाते हैं, दिखलाते हैं। उ० जानहिं महा सो बिप्रबर, आँखि दिखावहिं डाँटि। (दो० ५५३) दिखाव–दिखलाते हैं, प्रत्यक्ष कराते हैं। दिखाव दिखाता है, प्रत्यक्ष कराता है। दिखावौं–दिखाता हूँ, दिखलाता रहता हूँ। उ० मृदुल सुभाव सील रघुपति को, सो बल मनहिं दिखावौं। (वि० १४२)
दिखात–दिखाई देता है, दिखलाई पड़ता है।
दिगंचल–(सं० दृगंचल)–पलक, नेत्रपट। उ० मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल। (मा० १।२३०।२)
दिगंत–(सं०)–१ दिशा का अंत, दिशा का छोर, २ चारो दिशाएँ, ३ दसों दिशाएँ।
दिगंबर–दिशाएँ ही जिसके वस्त्र हों, नंगा। उ० अकुल अगेह दिगंबर ब्याली। (मा० १।७६।३)
दिग–दे० 'दिक्'। उ० १ भुजबल जितेउँ सकल दिग पाला। (मा० ६।८।२)
दिगकुंजर–दिशाओं के हाथी, दिग्गज। उ० डगे दिग कुंजर, कमठ कोल कलमले। (क० ६।७)
दिगदंति–दे० 'दिगकुंजर'। उ० कमठ कोल दिगदंति सकल अँग सजग करहु प्रभु-काज। (गी० १।८८)
दिगपाल–(सं० दिक्पाल)–पुराणानुसार दसों दिशाओं के पालन करनेवाले देवता जो निम्नांकित हैं। पूर्व के इंद्र, अग्निकोण के वह्नि दक्षिण के यम, नैर्ऋत के नैर्ऋत, पश्चिम के वरुण, वायुकोण के मरुत, उत्तर के कुबेर, ईशान के ईश, ऊर्द्ध के ब्रह्म और अधो के अनंत। उ० ब्याल, बधिर भेदि काल, बिकल दिगपाल चराचर। (क० १।११)
दिगपुर–एक गाँव का नाम।
दिगभ्रम–(सं० दिग्भ्रम)–दिशाओं का भ्रम होना। उ० दिगभ्रम कारन ज्यारि ने जानहिं सत गुपाल। (स० १२६)
दिगसिंधुर–दे० 'दिग्गज'। उ० १ चलत कटक दिग सिंधुर डगहीं। (मा० ६।७९।३)
दिग्गज–(सं०)–१ पुराणों के अनुसार आठ दिशाओं के आठ हाथी जो रक्षा करते हैं तथा पृथ्वी को दबाए रहते हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं–पूर्व में ऐरावत, अग्नि में पुंडरीक, दक्षिण में वामन, नैर्ऋत में कुमुद, पश्चिम में अंजन, वायव्य में पुष्पदंत, उत्तर में सार्वभौम तथा ईशान में सुप्रतीक। २ बहुत बड़ा, अत्यंत भारी। उ० १ सकल-लोकांत-कल्पांत शूलाग्रकृत दिग्गजाव्यक्त-गुण नृत्यकारी। (वि० ११)
दिग्गयंद–दे० 'दिग्गज'। उ० १ दिग्गयंद लरखरत, परत दसकंठ मुक्ख भर। (क० १।११)
दिग्वसन–दिशा ही है वस्त्र जिनका, नंगा, वस्त्रहीन। उ० त्रिपुरारि त्रिलोचन दिग्वसन बिष भोजन भव भय-हरन। (क० ७।१४९)
दिगीस–दे० 'दिकपाल'। उ० सेये न दिगीस, न दिनेस, न गनेस गौरी। (वि० २५०) दिगीसनि–दिक्पालों को, दिगीशों को। उ० इसनि, दिगीसनि, जोगीसनि मुनीसनि हूँ। (वि० २४९)
दिच्छा–(सं० दीक्षा)–गुरु या आचार्य का नियमपूर्वक मंत्रोपदेश। उ० दिच्छा देउँ ग्यान जेहिं पावहु। (मा० ६।७४।४)
दिच्छित–(सं० दीक्षित)–१ जिसे दीक्षा मिली हो, जिसने शिक्षा पाई हो। २ जिसने यज्ञादि का संकल्पपूर्वक अनुष्ठान किया हो। उ० १ गज धीं कौन दिच्छित जाके सुमिरत लै सुनाम बाहन तजि धाए। (वि० २४०)
दिढ़ाई–(सं० दृढ़)–१ दृढ़ाई, दृढ़ता, मज़बूती २ दृढ़ होती। उ० २ प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई। (मा० ७।८६।४)
दिति–(सं०)–कश्यप ऋषि की एक स्त्री जो दक्ष प्रजापति की पुत्री थीं। दैत्यों की उत्पत्ति इन्हीं से हुई थी। जब इनके सभी पुत्र इंद्रादि मारे गए तो दिति ने कश्यप से एक ऐसे पुत्र की प्रार्थना की जो इंद्र का दमन कर सके। ऐसा ही हुआ पर उस गर्भ को भी इंद्र ने भीतर ही ४९ टुकड़ों में कर दिया जो उनचास पवन हुए।
दितिसुत–(सं०)–दिति के पुत्र। १ दैत्य, असुर, २ हिरण्यकशिपु या हिरण्याक्ष आदि। उ० २ दितिसुत-त्रास-त्रसित निसि दिन प्रहलाद प्रतिज्ञा राखी। (वि० ९३)
दिन (१)–(सं०–१ दिवस, उतना दिन का समय जब तक सूर्य क्षितिज के ऊपर रहता है। २ समय, काल, ३ प्रतिदिन ४ सदा, नित्य ५ निश्चित काल, ६ दशा, परिस्थिति। उ० १ दुख सुख पाप पुन्य दिन राती। (मा० १।६।१) २ सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। (मा० १।२।६) ३ दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरिहि तें सिर नाईं। (क० ७।२) दिन दिन–दिन प्रति दिन, रोज़ रोज़। उ० जेहि किए जीव निकाय बस रसहीन दिन-दिन अति मई। (वि० १३६) दिनदिन–दिन दिन, रोज़ रोज़, ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है। उ० प्रान प्रीति दिन दीन दूबरे, दसा दुसह अब आई। (कृ० ३१)
दिना दिमा, दिन का बहुवचन। उ० बहुते दिनन कीन्ह

मुनि दाया। (मा० १।१२८।३) दिननि–१ दिनों में, २ दिन का बहुवचन। उ० १ रिपु रन दलि, मख राखि, कुसल अति अलप दिननि घर ऐहैं। (गी०१।४८) दिनहिं–१ दिन में, २ प्रतिदिन, रोज। उ० २ मैं सुख रे सकल लगि दिनहि करबि जेवनार। (मा० १।१६८) दिनहीं–दिन में ही। उ० दिनहीं लूक परन बिधि लागे। (मा० ३।३२।४) दिनहुँ–दिनों। उ० देह दिनहुँ दिन दूबरि होई। (मा० २।३२५।१) मु० दिनहुँ दिन–दिन पर दिन। उ० दे० 'दिनहुँ'।

दिन (२)–(स० दीन)–गरीब, अनाथ, दुखी। उ० १ नीलकंठ कारुन्य सिंधु हर दीनबंधु दिन दानि है। (गी० १।७८)

दिनकर–(स०)–सूर्य। उ० हरन मोह तम दिनकर कर से। (मा० १।३२।५) दिनकरहि–दिनकर में, सूर्य में। उ० खलु खद्योत दिनकरहि जैसा। (मा० ६।६।३)

दिनचारी–(स० दिनचारिन्) १ सूर्य, २ पहर।

दिननाथ–(स०)–सूर्य। उ० कियो गमन जनु दिननाथ उत्तर सग मधु माधव लिए। (जा० ३६)

दिननायक–(स०)–सूर्य। उ० हा रघुकुल सरोज दिननायक। (मा० ३।२६।१)

दिनमणि–(स०)–सूर्य।

दिनमनि–दे० 'दिनमनि'। उ० प्रमुदित मन देखि दिनमनि भोर हैं। (गी० १।७१)

दिनमानी–(स० दिनमान)–सूर्य, जिसके द्वारा दिन का मान हो।

दिनराऊ–सूर्य। उ० बिधि हरि हरु दिसिपति दिनराऊ। (मा० १।३२१।३)

दिनु–दे० 'दिन'। उ० १ माहिं त मौन रहय दिनराती। (मा० २।१६।२)

दिनेश–(स०)–सूर्य, दिन के स्वामी। उ० दिनेश वश मडन। (मा० ३।४। छ० ४)

दिनेस–दे० 'दिनेश'। उ० लोल दिनेस त्रिलोचन, करनघट घग सी। (वि० २२)

दिनेसा–दे० 'दिनेस'। उ० सो कह पच्छिम उदय दिनेसा। (मा० ७।७३।२)

दिनेसू–दे० 'दिनेश'। उ० महामोह निसि सूलन दिनेसू। (मा० २।३२१।३)

दियोई–(स० दान, हि० देना)–देना ही। उ० दीनदयालु दियोई भावै जाचक सदा सोहाईं। (वि० ४)

दिव्य–दे० 'दिव्य'। उ० १ सुमिरत दिव्यदृष्टि हियँ होती। (मा० १।६।३) दिव्यतर–(स० दिव्यतर)–अधिक सुंदर। उ० पाद घपक घरम, बगर भूषनो धरम दिव्यतर, भाय लावण्यनिधो। (वि०३८) दिव्यदृष्टि–दे० 'दिव्यदृष्टि'। उ० सुमिरत दिव्यदृष्टि हियँ होती। (मा० १।६।३)

दिय–दिया, प्रदान किया। उ० मार्हुँ मारि मनसिज पुरारि दिय ससिहि चापसर मकर अनूपन। (गी० ७।१६)

दियउ–दिया है, प्रदान किया है। उ० स्वयसिद्ध सब काज नाथ मोहि आदरु दियउ। (मा० ६।१७ ख) दिया (१)–(स० दान, हि० देना) देना क्रिया का भूतकालिक रूप, प्रदान किया, अर्पित किया। दिए (१)–(स० दान)–१ दन पर, देने से, दीन्हे, २ दिये, प्रदान किये, अर्पित किये।

दियो–दिया, प्रदान किया। उ० बावन बलि सों छल कियो, दियो उचित उपदेस। (दो० ३६४)

दियावत–दिलाते हैं, दिलवाते हैं।

दियट–(स० दीपस्थ, प्रा० दीवट्ट)–दीवट, दीपक रखने की बैठक।

दियाट–दे० 'दियट'।

दियरा–(स० दीपक)–वही मशाल जिसे शिकारी लोग हिरनों को आकर्षित करने के लिए जलाते हैं। हिरन उन्हें देखते रह जाते हैं और शिकारी पकड़ लेता है। दियरे–'दियरा' का बहुवचन। उ० देखि नरनारि रहैं ज्यों कुरंग दियरे। (गी० १।४१)

दिया (२)–(स० दीपक, प्रा० दीअ)–१ दीपक, दीप, चिराग, २ श्रेष्ठ, उच्च, भूषण। उ० २ छुअत सरासन सलभ जरैगो ध दिनकर-बंस दिया रे। (गी० १।६६) दिये (२)–(स० दीपक)–दीया का बहुवचन, बहुत से दीपक।

दियासे–दे० 'दियरा'। उ० मनहुँ मृगी मृग देखि दियासे। (मा० २।११६।२)

दिरमानी–(फा० दरमान)–वैद्य, चिकित्सक, हकीम। उ० जस आमय भेषज न कीन्ह तस, दोस कहा दिरमानी। (वि० १२२)

दिव–(स०)–१, स्वर्ग, २ आकाश, अंतरिक्ष, ३ वन, जंगल, ४ दिन, दिवस।

दिवस–(स०)–१ दिन, वासर, २ प्रभात, प्रातःकाल। उ० १ मरमु न कोऊ जान कछु जुगसम दिवस सिराहिं। (मा० १।२८)

दिवसु–दे० 'दिवस'। उ० १ बैठे प्रभु भ्राता सहित दिवसु रहा भरि जानु। (मा० १।२१७)

दिवसेस–(स० दिवस+ ईश)–सूर्य। उ० सघन-तम घोर सम्भार भर शर्वरी-नाम दिवसेस-खर किरन माली। (वि० ५५)

दिवा–(स०)–दिन, दिवस। उ० दीनदयालु दिवाकर देवा। (वि० २)

दिवाकर–(स०)–सूर्य, दिनकर। उ० नाम प्रताप दिवाकर कर खर गरत तुहिन ज्यों कलिमलो। (गी० २।४२)

दिवान–(अर० दीवान)–१ राजा के बैठने की जगह, दरबार, २ मंत्री।

दिव्य–(स०)–१ स्वर्गीय, अलौकिक, स्वर्ग से संबंध रखने वाला, २ बहुत सुंदर, ३ शपथ, सौगंद, कसम, ४ प्रकाशमान, चमकीला, ५ जौ, यव, ६ आँवला ७ सतावर, ८ ब्राह्मी, ९ हड़, १० लवंग, ११ हरिचंदन, १२ कपूर, १३ जीरा, १४ श्वेत दूर्वा, १५ गुग्गुल, १६ चमेली, १७ शूकर। उ० २ तड़ितविनिंदक पीतपट सर्वांग सुंदर लसत, दिव्यपट भव्य भूषण विराजैं। (वि० १५)

दिव्यतन–१ ऐसा शरीर जो जरा और मरण से मुक्त हो, २ अप्सरा। दिव्यदृष्टि–ऐसी दृष्टि जिससे सब जगह की चीजें देखी जा सकें, ज्ञानचक्षु, त्रिकालदर्शी आँखें।

दिशा–(स०)–१ दिक्, ककुभ, क्षितिज के चार कल्पित विभागों में कोई एक। चारों दिशाओं के नाम पूरब, पश्चिम,

दाहिनो-१ अनुकूल, २ दाएँ। उ० १ सबको दाहिनो, दीनबंधु काहू को न बाम। (वि० ७७)

दाहु-दाह, जलाना, भस्मीकरण। उ० लोक मान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु। (मा० १।१६१क)

दाहू-१ दाह, जलन, २ दुःख, संताप, ३ डाह, ईर्ष्या। उ० २ जेहि न बहोरि होइ उर दाहू। (मा० १।७१।२)

दिअटि-दे० 'दियट'। उ० चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ। (मा० ७।११७ख)

दिआ-दे० 'दिया (१)'। उ० १ चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ। (मा० ७।११७ख)

दिआसे-(सं० दीपक)-दे० 'दियरा'। उ० मानहुँ मृगी मृग देखि दिआसे। (मा० २।११६।२)

दिक्-(सं०)-१ दिशा, २ ओर, तरफ़।

दिक-दे० 'दिक्'। उ० १ उकपात, दिकदाह दिन, फेकरहिं स्वान सियार। (प्र० ४।६।३)

दिखराय-(सं० दृश्, प्रा० देक्खर, हि० देखना, दिखाना) दिखलाकर, जनाकर।

दिखाई-१ दिखा कर, २ दिखलाई, ३ देखने का भाव। उ० १ बिनु पूछें मगु देहिं दिखाई। (मा० ६।११८।४) दिखाया-दिखलाया, दिखा दिया। उ० प्रभु प्रतापु सब नृपन्ह दिखाया। (मा० १।२३६।३) दिखावहिं-दिखाते हैं, दिखलाते हैं। उ० जानहि प्रभु सो निप्रवर, चारि दिखावहिं डाँटि। (दो० ४८३) दिखाव-दिखलाते हैं, प्रत्यक्ष कराते हैं। दिखावै दिखाता है, प्रत्यक्ष कराता है। दिखावौं-दिखाता हूँ, दिखलाता रहता हूँ। उ० मृदुल सुभाय सील रघुपति को, सो बल मनहिं दिखावौं। (वि० १४२)

दिखात-दिखाई देता है, दिखलाई पड़ता है।

दिगंचल-(सं० दृगंचल)-पलक, पट। उ० मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल। (मा० १।२३०।२)

दिगंत-(सं०)-१ दिशा का अंत, दिशा का छोर, २ चारो दिशाएँ, ३ दसों दिशाएँ।

दिगंबर-दिशाएँ ही जिसके वस्त्र हों, नंगा। उ० अकुल अगेह दिगंबर ब्याली। (मा० १।७९।३)

दिग-दे० 'दिक्'। उ० १ भुजबल जितेहुँ सकल दिग पाला। (मा० ६।८।२)

दिगकुंजर-दिशाओं के हाथी, दिग्गज। उ० डगे दिग कुंजर, कमठ कोल कलमले। (क० ६।७)

दिगदंति-दे० 'दिगकुंजर'। उ० कमठ कोल दिगदंति सकल अँग सजग करहु प्रभु-काज। (गी० १।८८)

दिगपाल-(सं० दिक्पाल)-पुराणानुसार दसों दिशाओं के पालन करनेवाले देवता जो निम्नांकित हैं। पूर्व के इंद्र, अग्निकोण के अग्नि, दक्षिण के यम, नैऋत के नैऋत, पश्चिम के वरुण, वायुकोण के मरुत, उत्तर के कुबेर, ईशान के ईश, ऊर्द्ध के ब्रह्म और अधो के अनंत। उ० ब्याल, बधिर तेहि काल, बिकल दिगपाल चराचर। (क० १।११)

दिगपुर-एक गाँव का नाम।

दिगभ्रम-(सं० दिग्भ्रम)-दिशाओं का भ्रम होना। उ० दिगभ्रम कारन चारि से नाहिं संग सुजान। (स० ११६)

दिगसिंधुर-दे० 'दिग्गज'। उ० १ चलत कटक दिग सिंधुर डगहीं। (मा० ६।७६।३)

दिग्गज-(सं०)-१ पुराणों के अनुसार आठ दिशाओं के आठ हाथी जो रक्षा करते हैं तथा पृथ्वी को दबाए रहते हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं-पूर्व में ऐरावत, अग्निकोण में पुंडरीक, दक्षिण में वामन, नैऋत में कुमुद, पश्चिम में अंजन, वायव्य में पुष्पदंत, उत्तर में सार्वभौम तथा ईशान में सुप्रतीक। २ बहुत बड़ा, अत्यंत भारी। उ० १ सकल-लोकांत-कल्पांत शूलाग्रकृत दिग्गजाव्यक्त-गुन नृत्यकारी। (वि० ११)

दिग्गयंद-दे० 'दिग्गज'। उ० १ दिग्गयंद लरखरत, परत दसकंठ मुक्ख भर। (क० १।११)

दिग्बसन-दिशा ही हैं वस्त्र जिसका, नंगा, वस्त्रहीन। उ० त्रिपुरारि त्रिलोचन दिग्बसन विष भोजन भव भय हरन (क० ७।१४६)

दिग्गीस-दे० 'दिक्पाल'। उ० सेये न दिगीस, न दिनेस, न गनेस गौरी। (वि० २१०) दिग्गीसनि-दिक्पालों को, दिशीश को। उ० ईसनि, दिगीसनि, जोगीसनि मुनीसनि हैं। (वि० २४६)

दिच्छा-(सं० दीक्षा)-गुरु या आचार्य का नियमपूर्वक मंत्रोपदेश। उ० दिच्छा देउँ ग्यान जेहिं पावहु। (मा० ६।५७।४)

दिच्छित-(सं० दीक्षित)-१ जिसे दीक्षा मिली हो, जिसने शिक्षा पाई हो। २ जिसने यज्ञादि का संकल्पपूर्वक अनुष्ठान किया हो। उ० १ गज धौं कौन दिच्छित जाके सुमिरत लै सुनाम बाहन तजि धाए। (वि० २४०)

दिढ़ाइ-(सं० दृढ़)-१ दृढ़ाई, दृढ़ता, मज़बूती, २ दृढ़ होती। उ० २ प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई। (मा० ७।८९।४)

दिति-(सं०)-कश्यप ऋषि की एक स्त्री जो दक्ष प्रजापति की पुत्री थीं। दैत्यों की उत्पत्ति इन्हीं से हुई थी। जब इनके सभी पुत्र इंद्रादि मारे गए तो दिति ने कश्यप से एक ऐसे पुत्र की प्रार्थना की जो इंद्र का दमन कर सके। ऐसा ही हुआ पर उस गर्भ को भी इंद्र ने भीतर ही ४९ टुकड़ों में कर दिया जो उनचास पवन हुए।

दितिसुत-(सं०)-दिति के पुत्र। १ दैत्य, असुर, २ हिरन्यकशिपु या हिरण्याक्ष आदि। उ० २ दितिसुत-त्रास-त्रसित निसि दिन प्रहलाद प्रतिज्ञा राखी। (वि० ९३)

दिन (१)-(सं०)-१ दिवस, उतनी देर का समय जब तक सूर्य क्षितिज के ऊपर रहता है। २ समय, काल ३ प्रतिदिन, ४ सदा, नित्य, ५ निरंतर रात, ६ बुरी परिस्थिति। उ० १ दुख सुख पाप पुन्य दिन राती। (मा० १।६।२) २ सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। (मा० १।२।६) ३ दासन दय दगासों दीन दुनी दिन दूरिहि न मिट जायँ। (क० ७।२) दिन दिन-दिन प्रति दिन हाँ रोगु। उ० जदपि किए जीव निकाय बस रसहीन दिन दिन अति नई। (वि० १२६) दिनहीं-दिन-दिन, रात रात, ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है। उ० प्रान मीत दिन दीन दूबर, दसा दुसह अब भाई। (कृ० ३१)

दिना-दिन, दिन का बहुवचन। उ० दहुँ दिनन कीन्ह

मुनि दाया। (मा० १।१२८।३) दिननि-१ दिनों में, २ दिन का बहुवचन। उ० १ रिपु रन दलि, मख राखि, कुसल अति अलप दिननि घर ऐहैं। (गी० १।४८) दिनहिं-१ दिन में, २ प्रतिदिन, रोज। उ० २ मैं तुम्ह रे सकवप लगि दिनहिं करवि जेवनार। (मा० १।१६८) दिनहीं-दिन में ही। उ० दिनहीं लूक परन विधि लागे। (मा० ६।३२।४) दिनहुँ-दिनों। उ० देह दिनहुँ दिन दूबरि होई। (मा० २।३२५।१) मु० दिनहुँ दिन-दिन पर दिन। उ० दे० 'दिनहुँ'।

दिन (२)-(स० दीन)-गरीब, अनाथ दुखी। उ० १ नीलकंठ कारुन्य सिंधु हर दीनबंधु दिन दानि है। (गी० १।७८)

दिनकर-(स०)-सूर्य। उ० हरन मोह तम दिनकर कर से। (मा० १।३२।५) दिनकरहि-दिनकर में, सूर्य में। उ० दलु खद्योत दिनकरहि जैसा। (मा० ६।६।२)

दिनचारी-(स० दिनचारिन्) १ सूर्य, २ यदर।

दिननाथ-(स०)-सूर्य। उ० कियो गमन जनु दिननाथ उत्तर सग मधु माघव लिए। (जा० ३६)

दिननायक-(स०)-सूर्य। उ० हा रघुकुल सरोज दिननायक। (मा० ३।२३।१)

दिनमणि-(स०)-सूर्य।

दिनमनि-दे० 'दिनमनि'। उ० प्रमुदित मन देखि दिनमनि भोर हैं। (गी० १।७१)

दिनमानी-(स० दिनमान)-सूर्य, जिसके द्वारा दिन का मान हो।

दिनराऊ-सूर्य। उ० विधि हरि हर दिसिपति दिनराऊ। (मा० १।३२१।३)

दिनु-दे० 'दिन'। उ० १ नाहिं त मौन रहब दिनराती। (मा० २।११६।२)

दिनेश-(स०)-सूर्य, दिन के स्वामी। उ० दिनेश यश मदन। (मा० ३।४। छ० ४)

दिनेस-दे० 'दिनेश'। उ० लोल दिनेस त्रिलोचन, करनघट घटा सी। (वि० २२)

दिनेसा-दे० दिनेस'। उ० सो फह पच्छिम उदय दिनेसा। (मा० ७।७३।२)

दिनेसू-दे० 'दिनेश'। उ० महामोह निसि दलन दिनेसू। (मा० २।३२६।३)

दिबोई-(स० दान, हि० देना)-देना ही। उ० दीनदयालु दिबोइ भावै जाचक सदा सोहाहीं। (वि० ४)

दिब्य-दे० दिव्य'। उ० १ सुमिरत दिव्यदृष्टि हियँ होती। (मा० १।६।३) दिब्यतर-(स० दिव्यतर)-अधिक सुंदर। उ० चारु चपक बरन, बसन भूषन धरन दिब्यतर, भव्य लावण्यमिपो। (वि०३८) दिब्यदृष्टि-दे० 'दिव्यदृष्टि'। उ० सुमिरत दिब्यदृष्टि हियँ होती। (मा० १।६।३)

दिय-दिया, प्रदान किया। उ० मनहुँ मारि मनसिज पुरारि दिय ससिहि चापसर मकर अर्पन। (गी० ७।१६)

दियउ-दिया है, प्रदान किया है। उ० स्वयसिद्ध सब काज नाथ मोहि आदरु दियउ। (मा० ६।१७ ग) दिया (१)-(सं० दान, हि० देना) देना क्रिया का भूतकालिक रूप, प्रदान किया, अर्पित किया। दिए (१)-(स० दान)-१ दान पर, देने से, दीन्हे, २ दिये, प्रदान किये, अर्पित किये। दियो-दिया, प्रदान किया। उ० बावन बलि सों छल कियो, दियो उचित उपदेस। (दो० ३६४)

दियावत-दिलाते हैं, दिलवाते हैं।

दियट-(स० दीपस्थ, प्रा० दीवट्ट)-दीवट, दीपक रखने की बैठक।

दियाट-दे० 'दियट'।

दियरा-(स० दीपक)-वही मशाल जिसे शिकारी लोग हिरना को आकर्षित करने के लिए जलाते हैं। हिरन उन्हें देखते रह जाते हैं और शिकारी पकड़ लेता है। दियरे-'दियरा' का बहुवचन। उ० देखि नरनारि रहैं ज्यों कुरग दियरे। (गी० १।४१)

दिया (२)-(स० दीपक, प्रा० दीअ)-१ दीपक, दीप चिराग, २ श्रेष्ठ, उच्च, भूषण। उ० २ छुअत सरासन-सलभ जरैगो ये दिनकरबस दिया रे। (गी० १।६६) दिये (२)-(स० दीपक)-दीया का बहुवचन, बहुत से दीपक।

दियासे-दे० 'दियरा'। उ० मनहुँ मृगी मृग देखि दियासे। (मा० २।११६।२)

दिरमानी-(फा० दरमान)-वैद्य, चिकित्सक, हकीम। उ० जस आमय भेषज न कीन्ह तस, दोस कहा दिरमानी। (वि० १२२)

दिव-(स०)-१, स्वर्ग, २ आकाश, अतरिक्ष, ३ वन, जगल, ४ दिन, दिवस।

दिवस-(स०)-१ दिन, वासर, २ प्रभात, प्रात काल। उ० १ मरमु न कोऊ जान कछु जुगसम दिवस सिराहिं। (मा० १।१५८)

दिवसु-दे० दिवस'। उ० १ बैठे प्रभु भ्राता सहित दिवसु रहा भरि जामु। (मा० १।२१७)

दिवसेस-(स० दिवस+ ईश)-सूर्य। उ० सघन-तम घोर-ससार भर शर्वरी-नाम दिवसेस-खर किरन माली। (वि० ५५)

दिवा-(स०)-दिन, दिवस। उ० दीन दयालु दिवाकर देवा। (वि० २)

दिवाकर-(स०)-सूर्य, दिनकर। उ० नाम प्रताप दिवाकर-कर खर गरत तुहिन ज्यों कलिमलो। (गी० ५।४२)

दिवान-(अर० दीवान)-१ राजा के बैठने की जगह, दरबार, २ मत्री।

दिव्य-(स०)-१ स्वर्गीय, अलौकिक, स्वर्ग से सबध रखने वाला, २ बहुत सुंदर, ३ शपथ, सौगंद, कसम, ४ प्रकाशमान, चमकीला, ५ जौ, यव, ६ आँवला, ७ सतावर, ८ ब्राह्मी, ९ हड़, १० लवंग, ११ हरिचदन, १२ कपूर, १३ जीरा, १४ श्वेत दूर्वा, १५ गुग्गुल, १६ चमेली १७ शूकर। उ० २ तड़िततर्भाग सर्वांग सुंदर लसत, दिव्यपट, भव्य भूषण विराजै। (वि० १५) दिव्यतन-१ ऐसा शरीर जो जरा और मरण से मुक्त हो, २ अप्सरा। दिव्यदृष्टि-एसी दृष्टि जिससे सब जगह की चीजें देखी जा सकें, ज्ञानचक्षु त्रिकालदर्शी आँखें।

दिशा-(स०)-१ दिक्, ककुभ, क्षितिज के चार कल्पित विभागों में कोई एक। चारों दिशाओं के नाम पूरब, पच्छिम,

दक्षिण तथा उत्तर है। २ ओर, तरफ, ३ दस की संख्या ४ नियत।
दिशि–दे० 'दिशा'।
दिशित्राता–दे० 'दिगपाल'।
दिशिनाथ–दे० 'दिगपाल'।
दिशिनायक–दे० 'दिगपाल'।
दिशिप–दे० 'दिगपाल'।
दिशिपति–दे० 'दिगपाल'।
दिशिपाल–दे० 'दिगपाल'।
दिशिराज–दे० 'दिगपाल'।
दिसा–दे० 'दिशा'। उ० १ परम सुभग सब दिसा बिभागा। (मा० १।८६।४)
दिसि (१)–दे० 'दिशा'। उ० १ बिकल बिधि बधिर दिसि बिदिसि झाँकी। (क० ६।४४)
दिसि (२)–(सं० दश)–किसी पक्ष की दसवीं तिथि, दशमी। उ० रबि हर दिसि गुन रस नयन, मुनि प्रथमादिक बार। (दो० ४५८)
दिसिकुंजर–दे० 'दिग्गज'। दिसिकुंजरहु–हे दिग्गजो, हे दिशाओं के हाथियो। उ० दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला। (मा० १।२६०।१)
दिसित्राता–(सं० दिशि+त्राता)–दे० 'दिगपाल'। उ० सिध बिष्नु सिव मनु दिसित्राता। (मा० ७।८१।१)
दिसिनायक–दे० 'दिगपाल'। उ० चौंके सिव, बिरंचि, दिसिनायक रहे मूँदि कर कान। (गी० १।८८)
दिसिप–दे० 'दिगपाल'। उ० कर जोरें सुर दिसिप बिनीता। (मा० २।२०।४)
दिसिपति–दे० 'दिगपाल'। उ० बिधि हरि हर दिसिपति दिनराऊ। (मा० १।३२१।३)
दिसिपाल–दे० 'दिगपाल'।
दिसिपाला–दे० 'दिगपाल'। उ० अमर नाग किंनर दिसिपाला। (मा० २।१३४।१)
दिसिराज–दे० 'दिगपाल'। उ० बिष्नु कहा अस बिहसि तब बोलि सकल दिसिराज। (मा० १।१८२)
दिहल–(सं० दान, हिं० देना)–दिया, दिया है। उ० हमहिं दिहल करि कुटिल करमचँद मंद मोल बिनु डोला रे। (बि० १८६) दिहेसु–देना।
दीक्षा–(सं०)–१ गुरु से मंत्र का विधिवत उपदेश, गुरु से मंत्र लेना, २ यज्ञ।
दीखा–दे० 'दीख'।
दीख–(सं० दृश् प्रा० देक्खइ)–१ दिखलाई दिया, २ देखा, दर्शन किया, ३ देखा हुआ। उ० २ दीख भरतु भरि नयन तुम्हारा। (मा० २।१३६।२) ३ सकल करहिं मनु दीख हमारा। (मा० २।१०१।२) दीखा–१ देखना, दर्शन करना, २ दिखाई दिया। उ० १ निजकर नयन काढ़ि चह दीखा। (मा० २।४७।२) दीखि–देखा। उ० आगें दीखि जरत रिस भारी। (मा० २।३३।१)
दीजहु–देना, दीजिए। उ० उचित सिखावन दीजहु मोही। (मा० १।३०।२) दीजे–दे० 'दीजै'। दीजै–(सं० दान हिं० देना) १ दीजिए, प्रदान कीजिए, २ दिया जावे। उ० १ दास प्रसन्न दीजै प्रभु पद पद। (मा० ७।२३।१)

दीठ–(सं० दृष्टि)–नजर, दृष्टि।
दीठा–१ देखा, २ दर्शक, देखनेवाला। दीठे–देखा, निहारा, अवलोकन किया।
दीठि–(सं० दृष्टि)–१ नेत्र, नयन, २ दर्शन, ३ दृष्टि, नजर, ४ वह नजर जिसका किसी अच्छी चीज पर बुरा असर पड़े। उ० ३ तुलसी आके होयगी अंतर बाहिर दीठि। (दो० ४१)
दीठी–दे० 'दीठि'।
दीन (१)–(सं०)–१ दरिद्र, निर्धन, २ दुखी, संतप्त, ३ नम्र, ४ कातर, ५ व्याकुल, ६ म्लान, ७ भीत, डरा हुआ। उ० १ कस न दीन पर द्रवहु उमावर। (बि० ७) २ परम दुखी भा पवन सुत देखि जानकी दीन। (मा० ५।८) दीनन्ह–गरीबों, दीनों। उ० कोमल चित दीनन्ह पर दाया। (मा० ७।३८।२)
दीन (२)–(अर०)–मत, मजहब।
दीन (३)–(सं० दान, हिं० देना)–दीन्ह, दिया।
दीनता–(सं०)–१ गरीबी, दरिद्रता, २ दुःख, ३ अधीनता, ४ नम्रता, ५ उदासी, ६ बेबसी, ७ आर्तभाव। उ० १ बड़ो सुख कहत बड़े सों, बलि, दीनता। (बि० २६२) ३ आरत मत दीनता कहे प्रभु संकट हरत। (बि० १३४)
दीनदयाल–दीनों पर दया करनेवाला। उ० नाथ दीनदयाल रघुराई। (मा० ६।७।१)
दीनदयालु–(सं०)–दे० 'दीनदयाल'। उ० दीनदयालु दिवाकर देवा। (बि० २)
दीनबंधु–(सं०)–दुखियों या दीनों का सहायक, भगवान। उ० प्रभु दीनबंधु दिनेश दानव दैत्यवंश निकंदन। (बि० ४५)
दीना–दे० 'दीन'। उ० १ राखहु सरन नाथ जन दीना। (मा० ७।१८।४)
दीन्ह–दिया। उ० करि बिनती पायन्ह परेउ दीन्ह बाम जिमि सोइ। (मा० २।१४) दीन्हा–दिया। उ० सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा। (मा० १।३०।२) दीन्हि–दी है। उ० मौंकि दीन्हि हरि सुंदरताई। (मा० १।१३४।१) दीन्हिउँ–दी है। उ० प्रिय भामिनि सिख दीन्हिउँ तोही। (मा० २।१५।१) दीन्हिसि–दी, दे दी। उ० दीन्हिसि अचल बिपति कै नेईं। (मा० २।२४।२) दीन्ही–दी, दी है। उ० लै उछंग सुंदर सिख दीन्ही। (मा० १।१०२।१) दीन्हे–दिए, प्रदान किए। उ० सपदि जथोचित आसन दीन्हे। (मा० १।१००।१) दीन्हेउ–दिया, दे दिया। उ० दीन्हेउ मोहि राज बरिआई। (मा० ४।५।२) दीबे–(सं० दान, हिं० देना)–देने, प्रदान करने। उ० दीबे जोग तुलसी न लेत काहू को कछुक। (क० ७।१५) दीबो–देना, दीजिएगा। उ० मोंके प्रिय की आनि बारनबी समुझि सिखावन दीबो। (कृ० ३५)
दीप (१)–(सं०)–१ दीपक, चिराग, दीया, २ भूखंड। उ० १ दीप मनोहर मनिमय नाना। (मा० १। २८८।२) दीपहि–१ दीप को, दीपक को, २ भूखंड को। उ० २ गगन दीपहि चढ़त सेवाई। (मा० १।३।५)
दीप (२)–(सं० द्वीप)–द्वीप, ऐसा भूखंड जिसके चारों

श्रोर पानी हो। उ० राम तिलक सुनि दीप दीप के नृप श्राए उपहार लिए। (गी० ६।२३)

दीप (२)-(स० दीप्त)-चमकता हुआ, प्रदीप्त। उ० सोमा की दीयटि माना रूप दीप दिया है। (गी० १।१०)

दीपक-(स०)-१ दीप, चिराग, दीया, २ एक अलंकार, ३ एक राग, जिसे ग्रीष्म ऋतु में गाया जाता है। उ० १ भयो मिथिलेस मानो दीपक बिहान को। (गी० १।८६)

दीपमालिका-(स०)-१ दीपदान, आरती या शोभा के लिए चिरागों की पंक्ति, २ दीवाली। उ० १ ललित दीपमालिका बिलोकहिं हित करि अवधधनी। (गी० ७।२०)

दीपसिखा-(स० दीपशिखा)-लौ, प्रदीपज्वाला, चिराग की लौ। उ० दीपसिखा सोइ परम प्रचंडा। (मा० ७।११८।१) दीपसिखाउ-दीपशिखा भी, चिराग की लौ भी। उ० कनक सलाक, कला ससि, दीपसिखाउ। (ब० ३१)

दीपा-दे० 'दीप (१)'। उ०१ अचल बात बुझावहिं दीपा। (मा० ७।११८।४)

दीपावली-(स०)-दे० 'दीपमालिका'। उ० १ भगति-बैराग बिग्यान दीपावली अर्पि नीराजन जगनिवास। (वि० ४०)

दीपिका-(स०)-छोटा दीपक, छोटा मशाल। दे० 'दियरा'। उ० रूप-दीपिका निहारि मृग-मृगी नर-नारि। (गी० १।८२)

दीप्त-(स०)-१ प्रज्वलित, जलता हुआ,२ प्रकाशित, जगमगाता हुआ, ३ उत्तेजित, ४ सोना, ५ हींग, ६, नीबू, ७ सिंह केशरी।

दीप्ति-(स०)-१ प्रकाश, उजाला, २ द्युति, आभा, चमक, ३ शोभा, कांति, छवि, ४ लाचा, लाख।

दीयट-दीवट, दीपक रखने का आधार जो धातु या लकड़ी का होता है। उ० सोभा की दीयटि मानो रूप दीप दियो है। (गी० १।१०)

दीया-(स० दीपक)-दीप, चिराग।

दीरघ-(स० दीर्घ)-१ बड़ा, बहुत बड़ा, २ आयत, लंबा, ३ दीघ, गुरु या द्विमात्रिक वर्ण, ह्रस्व या लघु का उलटा। उ० १ दीरघ रोगी, दारिदी, कटुबच लोलुप लोग। (दो० ४७७) ३ दीरघ लघु करि तहँ पदय जहँ सुरा लह बिस राम। (स० २६)

दील-(फा० दिल)-दिल, मन, जी, हृदय। उ० घायल लषनलाल लखि बिलखाने राम, भई आस सिथिल जग निवास-दील की। (क० ६।५२)

दीवट-दीपक रखने का आधार, दीयट।

दीवान-दे० 'दिवान'।

दीसा-(स० दृश, हि० दीसना)-दिखाइ पड़ा, दीखा, देखा। उ० बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा। (मा० २।२६३।४)

दुंदुभि-(सं०)-१ नगाड़ा, धौंसा, २ वरुण, ३ एक राक्षस का नाम जिसे बालि ने मारकर ऋष्यमूक पर्वत पर फेंका था। इस पर मतंग ऋषि ने शाप दिया था जिससे बालि उस पर्वत पर नहीं आ सकता था। उ० १ दुंदुभि धुनि घन गरजनि घोरा। (मा० १।३४७।३) ३ दुंदुभि अस्थि ताल देखराए। (मा०४।७।६) दुंदुभीं-बहुत सी दुंदुभियाँ। उ० होहिं सगुन बरषहिं सुमन सुर दुंदुभीं बजाइ। (मा० १।३४७) दुंदुभी-दे० 'दुंदुभि'। उ०१ गहगह गगन,दुंदुभी बाजी। (कृ० ६१)

दुःख-(स०)-१ कष्ट, तकलीफ, क्लेश, २ पीड़ा या दर्द जो मानसिक हो, ३ व्याधि, रोग, बीमारी, ४ आफत, विपत्ति, ५ कष्ट, ताप। सांख्य शास्त्र के अनुसार दुःख या ताप तीन प्रकार के माने गये हैं-आध्यात्मिक, आधिभौतिक, और आधिदैविक। आध्यात्मिक दुःख के अंतर्गत रोग व्याधि आदि शारीरिक तथा क्रोध आदि मानसिक दुःख, आधिभौतिक के अंतर्गत स्थावर, जंगम (पशु पक्षी तथा कीड़े आदि) आदि द्वारा पहुँचाए गए दुःख तथा आधिदैविक के अंतर्गत देवताओं या प्राकृतिक शक्तियों द्वारा पहुँचाये गये दुःख आते हैं। उ० ४ जयति मरुदंजना मोद-मंदिर, नतग्रीव-सुग्रीव-दुःखैक-बंधो। (वि० २७) दुःखत -(स०)-दुःख से, कष्ट से, वेदना से। उ० प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवास दुःखतः। (मा० २।१। श्लो० २)

दुःशासन-(स०)-धृतराष्ट्र के १०० पुत्रों में एक जो दुर्योधन का प्रेमपात्र और मंत्री था। द्रौपदी को पकड़कर सभास्थल में यही ले आया था, और दुर्योधन के कहने से उसका वस्त्र खींचने लगा, पर कृष्ण ने द्रौपदी की रक्षा की। भीम ने दुःशासन के वक्ष का रक्त पीने की प्रतिज्ञा की थी। द्रौपदी ने भी प्रण किया कि जब तक दुःशासन के रक्त से अपने बाल न रँगेगी, वह बालों को न बाँधेगी। महाभारत के युद्ध में भीम ने इन प्रतिज्ञाओं को पूरी की और इस तरह दुःशासन भीम द्वारा मारा गया।

दुःसासन-दे० 'दुसासन'।

दुअन-दे० 'दुवन'।

दुआर-(स० द्वार)-द्वार, दरवाजा। उ० बिप्र एक बालक मृतक, राखेउ रामदुआर। (प्र० ६।५।१) दुआरें-द्वार पर, दरवाज़े पर। उ० उर धरि धीरजु गयउ दुआरें। (मा० २।३६।२)

दुआरा-दे० 'दुआर'। उ० गावत पैठहिं भूप दुआरा। (मा० १।११४।२)

दुइ-दो, युग, एक और एक। उ० ससि सर नव दुइ छ दस गुन मुनिफल बसु हर भानु। (दो०४५६) दुइचारी-दो चार, कुछ थोड़े से। उ० सुनहु ज भव अवगुन दुइ चारी। (मा० १।६७।४) दुओ-(स० द्वि)-दोनों। उ० लिए दुओ जन पीठि चढ़ाई। (मा० ४।४।३) दुइमाता-चौदह, १४। उ० सुरा समेत सपत दुइमाता। (मा० २।२८०।४)

दुइज-(स० द्वितीया)-१ दूज, प्रत्येक पक्ष की दूसरी तिथि, २ शुक्ल पक्ष की दूज। उ० १ दुइज द्वैत-मति छाँडि चरहि महि मंडल धीर। (वि० २०३) २ दुइज न चंदा देखिये, उदौ कहा भरि पाख। (दो० ३४४)

दुकाल-(स० दुष्काल)-अकाल, कहत, ऐसा समय जब

चीजें इतनी महँगी हों कि लोग भूख से मरने लगें। उ० लखि सुदेस कपि भालु दल, जनु दुकाल समुदाय। (प्र० ४।७।२)

दुकालु-दे० 'दुकाल'। उ० बरषत सर हरषत विबुध, दला दुकालु दयाल। (प्र० ४।७।३)

दुकूल-(सं०)-१ रेशमी वस्त्र, २ महीन कपड़ा, ३ दुपट्टा, चद्दर, ४ नदी के दोनों किनारे। उ० १ निमल पीत दुकूल अनूपम उपमा हिय न समाइ। (वि० ६२)

दुख-दे० 'दुःख'। उ० १ किए दूर दुख सबनि के जिन जिन कर जोरे। (वि० ८) २ विष्णु-पदकंज मकरंद इव अंबु बर बहसि, दुख दहसि अघ वृंद विद्रावनी। (वि० १८) दुखउ-दुःख भी, कष्ट भी। उ० फिरत ललात बिनु नाम उदर लगि, दुखउ दुखित मोहिं हेरे। (वि० २२७)

दुखइ-दुखित की। दुखयत-दुःख देते हुए, कष्ट पहुँचाते हुए। उ० सुतहि दुखवत विधि न बरज्यो काल के घर जात। (वि० २१६) दुखवहु-दुखित करो, नाराज करो। उ० दुखवहु मोरे श्याम जनि, मानेहु मोरि रजाइ। (गी० २।४७)

दुखकारी-दुःख पहुँचानेवाला। उ० श्रुति-गुरु साधु-सुस्मृति सम्मत यह दृश्य सदा दुखकारी। (वि० १२०)

दुखद-(सं० दुःखद) दुखदायी, दुखकारी। उ० कपट मकट, बिकट व्याघ्र पाखंड मुख दुखद-मृगव्रात उत्पात कर्ता। (वि० २१) दुखदा-दुःख देनेवाली। उ० दुखदा कुमति कुनारिनिर अति सुखदायक राम। (स० २७२)

दुखदाइ-दुःख देनेवाला। उ० सम अति अजय देव दुख दाई। (मा० १।१७०।३)

दुखप्रद-दुःख देनेवाला। उ० दुखप्रद उभयबीच कछु बरना। (मा० १।५।२)

दुखारी-दुखी, कष्टित, पीड़ित। उ० अति आरत, अति स्वारथी, अति दीन दुखारी। (वि० ३४) दुखारे-दुखी, दुखित दुखारी। उ० विंध्य के बासी उदासी तपोव्रत धारी महा बिनु नारि दुखारे। (क० २।२८)

दुखित-जिसे दुःख पहुँचा हो, कष्टित। उ० फिरयौ ललात बिनु नाम उदर लगि, दुखउ दुखित मोहिं हेरे। (वि० २२७)

दुखी-कष्टित, पीड़ित। उ० दुख दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी। (वि० ४)

दुखु-दे० 'दुख'। उ० २ आना राम मती दुख पावा। (मा० ११।५९।२)

दुगुन-(सं० द्विगुण)-दूना, दुगुना। उ० कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा। (मा० ५।२।४)

दुघरा-(सं०)-(द्वि+घटी)-दुघड़िया मुहूर्त। एक मुहूर्त जो आवश्यक काम के समय काम में लाई जाती है। इसमें दिन के शुभ अशुभ होने का विचार नहीं किया जाता। दिन रात की साठ घड़ियों को दो दो घड़ियों में विभाग कर शांति के अनुसार फल निकालते हैं। उ० दुघरी साधि चले ततकाला। (मा० ३।२०२।८)

दुचित-(सं० द्वि+चित्त) जिसका मन डाँवाडोल हो, अस्थिरचित्त, द्विमन, चिंतित।

दुचितई-चित्त की अस्थिरता, दुबिधा, चिंता, आशंका, खटका। उ० आयसु भो राम को सो मेरे दुचितई है। (गी० १।८४)

दुति-(सं० द्युति)-१ द्युति, चमक, आभा, प्रकाश २ छवि शोभा, कांति, सौंदर्य, ३ किरण, रश्मि। उ० १ दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों। (क०१।३) २ अनुराग दुति चंपक कुसुममाल। (वि० १४)

दुतिकारी-चमकीला, प्रकाशयुक्त, कांतिमान। उ० तिलक ललाट पटल दुतिकारी। (मा० १।१४७।२)

दुतिवत-प्रकाशवान, चमकीला, कांतियुक्त। उ० चरन चरन अगुली मनोहर, नख दुतिवत कछुक अरुनाई। (गी० १।१०६)

दुत्त-(सं० द्रुत)-१ फुर्तीला, शीघ्रगामी, २ शीघ्र, जल्दी। उ० १ जोबन मद हरत दार, द्रुत मत्त हव मराल। (गी० २।४३)

दुनि-(फ़ा० दुनिया)-दुनियाँ में। उ० है दयालु दुनि दस दिसा दुख दोष-दलन छम, कियो न संभाषन काहूँ। (वि० २७४)

दुनिए-दुनिया ही। उ० हरष विषाद-राग रोष-गुन दोष मई, बिरची बिरंचि सब देखियत दुनिए। (क० ७४)

दुनी-(फ़ा० दुनिया)-संसार, जगत, विश्व। उ० आप ढूँक सबके विदित बात दुनी सो। (क० ७।०२)

दुबिद-(सं० द्विविद)-रामायण के अनुसार एक बंदर जो राम की सेना का एक सेनापति था। उ० कह नल नील दुबिद बलवंता। (मा० ६।४३।१)

दुभाषी-(सं० द्विभाषी)-दो भाषाओं का जाननेवाला ऐसा मनुष्य जो उन भाषाओं के बोलनेवाले दो मनुष्यों को एक दूसरे का अभिप्राय समझाए। दुभाषिया। उ० समर प्रबोधक चतुर दुभाषी। (मा० १।२१।४)

दुरंत-(सं०)-१ जिसका पार पाना असंभव हो, २ दुष्ट, शरारती, बदमाश, कुकर्मी। उ० १ काल कोटि सत सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुरंत। (मा० ७।९१ख)

दुर (१)-दे० 'दुर'।

दुर (२)-(सं० दूर)-एक तिरस्कारसूचक शब्द जो हटाने के लिए कहा जाता है।

दुरई-(सं० दूर)-छिपते। उ० बैर प्रीति नहिं दुरई दुराएँ। (मा० २।११३।१) दुरइ-छिपता, छिपता है। उ० बैर प्रेम नहिं दुरइ दुराएँ। (मा० ७।२६४।२) दुरई-दे० 'दुरइ'। दुरत-१ छिपता हुआ, २ छिपता है। उ० १ प्रगट दुरत आइ मृग माया। (मा० ३।१२०।१) दुरनि-छिपना छिपने का स्वभाव। उ० नील अमल पर निरमि धरिया दुरनि त्यागि दामिनि लगु रसकति। (गी० ७।१७) दुरहिं-छिप जाती हैं। उ० प्रगटहिं दुरहिं अटन्ह पर भामिनि। (मा० १।३४०।२)

दुरपट-दे० 'दुर्पट'।

दुरजन-(सं० दुर्जन)-खोटा आदमी। उ० यों मन गुनति दुमासम दुरजन तमकती सोरि नहिं दुर्ग दुर गारी। (कृ० ६०)

दुरतिक्रम-(सं०)-जो बड़ी कठिनाई से पार किया जा सके, दुस्तर, कठिन। उ० काल सदा दुरतिक्रम भारी। (मा० ७।६३।४)

दुरदसा-(स० दुर्दशा)-बुरी हालत, बुरी दशा, दुर्गति, दुर्दशा । उ० दिन दुरदिन, दिन दुरदसा, दिन दुख, दिन दूषन । (वि० १४१)

दुरदिन-दे० 'दुर्दिन' । उ० दिन दुरदिन, दिन दुरदसा, दिन दुख, दिन दूषन । (वि० १४१)

दुरवासनहि-दुर्वासना को, बुरी इच्छा को । उ० प्रगटै उपासना, दुरावै दुरवासनहिं । (क० ७।११६)

दुरवासा-दे० 'दुर्वासा' । यह महिमा जानहिं दुरवासा । (मा० २।२१८।३)

दुरलभ-दे० 'दुर्लभ' ।

दुराइ-छिपाकर । उ० देत मुनि मुनि सिसु खेलौना ते लै धरत दुराइ । (गी० ७।२६) दुराई-१ छिपाया, छिपा लिया, २ छिपाई हुई । उ० १ जानि कुअवसरु प्रीति दुराई । (मा० १।६८।२) दुराउ-१ दुराव, छिपाव, २ कपट, छल, ३ छिपाओ । उ० १ देखा देखी दंभ तें, कि संग तें भइ भलाइ, प्रगटि जनाइ, कियो दुरित दुराउ मैं । (वि० २६१) दुराऊ-दे० 'दुराउ' । उ० १ सती कीन्ह चह तहँहुँ दुराऊ । (मा० १।५३।३) दुराएँ-१ दुराने से, छिपाने से, २ छिपाए हुए । उ० १ बैरु प्रीति नहिं दुरइँ दुराएँ । (मा० २।१६३।१) दुराए-छिपा दिया, छिपा दिया है । उ० तेहिं हरिपा बन आनि दुराए । (मा० २।१२०।२) दुराय (१)-(स० दूर)-१ छिपाकर, २ दुराव, छिपाव । दुराएहु-छिप जाना । उ० चलेउ प्रसंग दुराएहु तबहूँ । (मा० १।१२७।४) दुरावउँ-छिपाऊँ, छिपाता हूँ । उ० अब जौं तात दुरावउँ तोही । (मा० १।१६२।२) दुरावहि-छिपाती हैं । उ० सुनि सुनि बचन-चातुरी ग्वालिनि हँसि हँसि बदन दुरावहिं । (कृ० ४) दुरावा-१ छिपावे, चुरावे, २ दुराव, छिपाव, कपट । उ० १ गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा । (मा० ४।७।२) दुरावै-१ छिपाता है, २ छिपावे । उ० १ प्रगटै उपासना, दुरावै दुरवासनहिं । (क० ७।११६।३) दुरावौं-१ दुराता हूँ, छिपाता हूँ, २ छिपाऊँ । उ० १ मन क्रम बचन लाइ कीन्हें अघ ते करि जतन दुरावौं । (वि० १४२)

दुराचार-(स०)-१ बुरा आचरण, बुरी चालचलन, २ अन्याय, अत्याचार, ३ पाप, अधर्म ।

दुराज-(स० दुर्+राज्य)-बुरा राज्य, ऐसा राज्य जिसमें अत्याचार और अन्याय होता हो । उ० दिन दिन दूनो देखि दारिद दुकाल दुख, दुरित दुराज, सुख सुकृत सकोचु है । (क० ७।८१)

दुराधरष-दे० 'दुराधर्ष' । उ० दुराधरष दुर्गम भगवाना । (मा० १।८६।२)

दुराधर्ष-(स०)-जिसका दमन करना कठिन हो, प्रचंड, भयंकर ।

दुरापं-(स० दुराप)-१ कठिनता से मिलनेवाला । उ० सिय कवि-कोविदानंद दायक पदद्वंद, मंदात्ममनुजै दुरापं । (वि० ५२)

दुराप-(स० दुः + अप्)-बुरा पानी, निकृष्ट जल ।

दुराप (२)-(स०)-कठिनता से मिलनेवाला, दुर्लभ ।

दुराराध्य-(स०)-जिसकी आराधना बहुत कठिन हो । उ० दुराराध्य पै अहहिं महेसू । (मा० १।७०।२)

दुराव-छिपाव, कपट, दुराने का भाव ।

दुराशा-(स०)-१ कुवासना, बुरी आशा, बुरी इच्छा, २ झूठी आशा, ऐसी आशा जो पूरी होनेवाली न हो, ३ निराशा ।

दुरासा-दे० 'दुराशा' । उ० १ अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जी तें । (वि० १६८)

दुरि-१ छिपकर, २ छिप । उ० २ कबहुँक प्रगट कबहुँ दुरि जाई । (मा० ६।७६।६) दुरीदुरा-छिप छिप कर, लुक-छिप कर । उ० दुरीदुरा करि नेगु सुनात जनाउ । (जा० १६६) दुरे-छिपे, छिप गए । उ० डग्यौ न धनु, जनु बीर बिगत महि, किधौं कहुँ सुभट दुरे । (गी० १।८७) दुरेउ-छिपा हो, छिप गया हो । उ० जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू । (मा० १। १२६।३) दुरेऊ-छिपा, छिप गया, छिप गया हो, छिपा हो । उ० जनु निहार महुँ दिनकर दुरेऊ । (मा० ६।११।२) दुरै-छिपे, ओट में हो जावे । दुरैगी-छिपेगी, ओट में होगी । उ० कहा क्यों दुरैगी बात मुख की औ हीय की । (वि० २६३)

दुरित-(स०)-१ पाप, पातक, २ छिपा हुआ, गुप्त ३ पापी, पाप करनेवाला । उ० १ दहन देव दुख दुरित रुजाली । (वि० २) ३ जीवत दुरित-दसानन गहियो । (गी० ५।१४) दुरितहारी-पापों को नाश करनेवाला । उ० जयति लवणांबुनिधि-कुंभसंभव, महादनुज-दुर्जन दवन दुरितहारी । (वि० ४०)

दुर्-(स०)-एक उपसर्ग जिसका प्रयोग (१) बुरे, (२) निषेध या (३) कष्टकर अर्थ में होता है । जैसे दुर्जन दुर्बल, दुर्गम । उ० ३ ते अति दुर्गम सैल बिसाला । (मा० १।३८।४)

दुर्ग-(स०)-१ दुर्गम, जहाँ जाना कठिन हो, २ गढ़, कोट, किला, ३ एक असुर का नाम जिसे मारने के कारण देवी का नाम दुर्गा पड़ा । ४ कठिन । उ० १ दुर्द्धर्ष दुस्तर दुर्ग, स्वर्ग अपवर्ग-पति भग्न-संसार-पादप-कुठार । (वि० ५०) २ बपुष ब्रह्मांड सो, प्रवृत्ति-लंका दुर्ग । (वि० ५८) ४ दुर्ग-दुर्वासना नासकर्त्ता । (वि० ५६)

दुर्गत-(स०)-दुर्दशाग्रस्त, जिसकी बुरी गति हुई हो, २ दरिद्र । दुर्गति-(स०)-१ दुर्दशा, बुरी गति ।

दुर्गम-दे० 'दुर्गम' । उ० १ यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्री शंभुना दुर्गमं । (मा० ७।१३१। श्लो० १) दुर्गम-(स०) १ जहाँ जाना कठिन हो, जहाँ जल्दी पहुँच न हो सके, २ जिसे जानना कठिन हो, दुर्ज्ञेय, ३ दुस्तर, कठिन, विकट, ४ वन, कानन, जंगल, ५ संकट का स्थान, भीषण स्थिति, ६ दुर्ग, किला, गढ़, ७ विष्णु, केशव, ८ अजेय । उ० ८ दुराधरष दुर्गम भगवाना । (मा० १।८६।२)

दुर्गार्ति-(स० दुर्ग+आर्ति)-बहुत कठिन दुःख । उ० सुकर दुष्कर दुराराध्य दुर्व्यसनहर दुर्ग दुर्द्धर्ष दुर्गार्ति-हर्ता । (वि० ५४)

दुर्घट-(स०)-१ कठिन, जिसका होना कष्टसाध्य हो, २ जो जाने योग्य न हो, दुर्गम । उ० १ प्रबल प्रचंड

सुघट महीधर, महागोह गिरि गुहा निबिड़ांधकारम्। (वि० ५१)
दुर्जन-(स०)-दुष्ट आदमी, नम या खोटा मनुष्य। उ० निज संगी निज सम करत, दुर्जन मन दुख दून। (वै०१८)
दुर्जय-(स०)-१ जो जीता न जा सके, अजेय, २ विष्णु, भगवान। उ० १ अमित बल परम दुर्जय निसाचर-निकर सहित षड्वर्ग गो-यातुधानी। (वि० ५८)
दुर्दशा-(स०)-बुरी दशा, दुर्गति।
दुर्दिन-(स०)-१. बुरा दिन, आफत या समय, आपद काल।
दुर्दोष-कठिन अपराध, अधर्म्य, अवगुण। उ० दुनुज सूदन दयासिंधु दंभापहन दहन-दुर्दोष दुष्पाप हर्ता। (वि०५६)
दुर्धप-दे० 'दुखप'।
दुर्द्धर्ष-(स०)-१ प्रचंड, उग्र, २ जिसका दमन करना कठिन हो, ३ रावण के दल का एक राक्षस, ४ धृतराष्ट्र का एक पुत्र, ५ निर्भय, निडर। उ० २ सुकर दुष्कर दुराराध्य दुर्व्यसनहर दुर्ग दुर्द्धर्ष दुर्गार्ति हर्त्ता। (वि०५४)
दुर्वचन-कटुवाणी, कड़ुवी बात, गाली। उ० मैं दुर्वचन कहे बहुतेरे। (मा० १।१३८।२)
दुर्बल-(स०)-कमज़ोर, अशक्त।
दुर्बलता-(स०)-१ कमज़ोरी, २ दुबलापन।उ० १ विषय आस दुर्बलता गई। (मा० ७।१२२।५)
दुर्बा-(सं० दूर्वा)-दूब। उ० दधि दुर्बा रोचन फल फूला। (मा० ७।३।३)
दुर्बाद-दे० 'दुर्वाद'। उ० ३ तेहि कारन करुनानिधि कहे कछुक दुर्बाद। (मा० ६।१०८)
दुर्बासा-दे० 'दुर्वासा'। उ० जथा चक्र भय रिषि दुर्बासा। (मा० ३।२।३)
दुर्मद-(स०)-१ उन्मत्त, मदमाता अभिमान में चूर, २ एक राक्षस का नाम। उ० १ कुंभकरन दुर्मद रन रंगा। (मा० ६।६४।१)
दुर्मुख-(स०)-१ बुरे या भयानक मुखवाला, २ अप्रिय या कटु बोलनेवाला, ३ महिषासुर का एक सेनापति, ४ राम की सेना का एक वीर बंदर, ५ धृतराष्ट्र का एक पुत्र, ६ साठ संवत्सरों में से एक, ७ शिव, ८ गणेश का एक गण। उ० ३ द्वैप-दुर्मुख, दुस्मर, अकंपन-कपट। (वि०५८)
दुर्योधन-(स०)-धृतराष्ट्र का पुत्र और कौरवों में सबसे बड़ा। यह पांडवों का विद्वेषी था। इसने लाक्षागृह में उन्हें एक बार जलवाने का प्रयास किया पर सफल न हो सका। इसने पांडवों को दो बार बनवास दिया। अंत में महाभारत का युद्ध इसी के कारण हुआ जिसमें १८वें दिन सबके मर जाने पर दुर्योधन भागकर एक तालाब में घुसा। भीम के ललकारने पर यह निकला और भीम ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार गदा से इसकी जाँघ तोड़कर इसे मार डाला।
दुर्लभ-(स०)-१ जो कठिनता से मिल सके, दुष्प्राप्य, २ अनोखा, ३ प्रिय, ४ विष्णु, ५ कष्टसाध्य। उ० १ अति दुर्लभ तनु पाइ कपट तजि भजे न राम मन बचन काय। (वि० ८३)
दुर्वाद-(स०)-१, अपवाद, निंदा, २ गाली, ३ कड़ी बात, ४ बकवाद।
दुर्वासना-(स०)-बुरी इच्छा, दुष्ट इच्छा, बुरी कामना। उ० दुष्टता दमन, दम भवन, दुःखौघहर दुर्ग-दुर्वासना नासकर्ता। (वि० ५६)
दुर्वासा-(स० दुर्वासस्)-अत्रि के पुत्र एक प्रसिद्ध ऋषि। ये बड़े क्रोधी थे। इनकी स्त्री और्व मुनि की कन्या कदली थीं। विवाह के समय यह प्रतिज्ञा हुई थी कि दुर्वासा इनके १०० अपराध क्षमा करेंगे पर १०१वें के समय भस्म कर देंगे। अंत में ऐसा ही हुआ। इस पर कदली ने भी इन्हें शाप दिया कि तुम्हारा दर्प चूर्ण होगा। इसी शाप के फलस्वरूप अंबरीष के साथ दुर्वासा को नीचा देखना पड़ा। दे० 'अंबरीष'। दुर्वासा एक बार इंद्र की सभा में बैठे थे। वहाँ एक अप्सरा और एक गंधर्व नाच-गा रहे थे। दुर्वासा की ओर देखकर उन सबों ने मुस्करा दिया। इस पर क्रोधित होकर दुर्वासा ने उन्हें राक्षस होने का शाप दिया पर फिर अनुनय-विनय करने पर ये प्रसन्न हुए और रामावतार में हनुमान द्वारा शाप मुक्त होने का वर दिया। वेही दोनों कालनेमि और मकरी होकर हनुमान से मिले थे जब वे जड़ी लेने जा रहे थे। हनुमान ने उन्हें मार कर शाप मुक्त किया। पपि सब दरस भइउँ निष्पापा। मिटा तात मुनिबर कर सापा। (मा० ६।५८।१)
दुर्विनीत-(स०)-अविनीत, अशिष्ट, उद्धत। उ० प्रनत पालक राम परम करुना धाम पाहि मामुर्विपति दुर्विनीतं। (वि० ५१)
दुर्विपाक-(स०)-१ बुरा परिणाम, बुरा फल, २ बुरा संयोग, दुर्घटना, ३ दुर्भाग्य, बदकिस्मती।
दुर्व्यसन-(स०)-बुरी आदत, खराब चस्का। उ० दे० 'दुर्द्धर्ष'।
दुलह-(स० दुर्लभ)-वर, ऐसा पुरुष या लड़का जिसका विवाह हो। दूल्हा, दुलहा। उ० दुलह दुलहिनिन्ह देखि नारिनर हरषहिं। (जा० १२६)
दुलहिनि-(स० दुर्लभ)-दुलही, नई विवाहिता स्त्री, दुल्हन। उ० बर लायक दुलहिनि जग नाहीं। (मा० १।९१।१) दुलहिनिन्ह-दुलहिनियों को। उ० देखि दुलहिनिन्ह होहि सुखारी। (मा० १।३५८।४) दुलहियन-दुलहियों को, बहुओं को। उ० पौगपनि दुलहियन सिखावति सरिस सासु सत-साता। (गी०१।१०८)
दुलहिया-दुलहि, दुल्हन। उ० कहिहैं सासु ससुर बली मुनि, हँसिहैं न्हइ दुलहिया सुराई। (कृ० १६)
दुलही-दूल्हन, दुलहिन, नववधू। उ० रामलखन बर, दुलही न नीच मानती। (क० ७।१९)
दुलार-(स० दुर्लालन, प्रा० दुल्लाड़न)-प्रेम, प्यार, लाड़। उ० रावरो भोर दुलार भाराई। (मा०२।१००।३)
दुलारइ-दुलारती है, प्यार करती है। उ० मातु दुलारइ कहि प्रिय ललना। (मा० १।१९८।४) दुलारत-दुलारता, दुलारता है, प्यार करता है। उ० माँगि हारि दुलारत, देत दिवावत दाद। (वि० १००) दुलार्‌यो-प्यार किया, स्नेह किया, लाड़-प्यार किया। उ० बार बार हिये

हरपि दुलारीं। (मा० १।३२४।२) दुलारी-१ प्यारी, २ प्यार किया। दुलारे-१ प्यारे, प्रिय, २ लाड़िले, प्रिय पुत्र, ३ दुलार किए हुए ४ मुँह लगे, ५ दुलार किया, दुलारा। उ० २ भावते भरत के, सुमित्रा सीता के दुलारे, चातक चतुर राम-स्याम घन के। (वि० ३७)

दुव-(स० द्वि)-दो, जोड़ा, युग।

दुवन-(स० दुर्मनस्)-१ दुष्ट, बुरा, दुर्जन, २ शत्रु, दुश्मन, ३ राक्षस। उ० १ ऋषि मख राख्यो, रन दले हैं दुवन। (गी० १।८१) २ आये देखि देखि दूत दारुन दुवन के। (क० ६।३) ३ दवन दुवन-दल भुवन विदित बल। (ह० ६)

दुवार-(स० द्वार)-१ द्वार, दरवाजा, २ किवाड़, कपाट। उ० देव दुवार पुकारत। (वि १३१) दुवारे-द्वार पर, दरवाज़े पर। उ० 'कृपासिंधु! जन दीन दुवारे दादि न पावत काहे ?' (वि० १४५)

दुष्कर-(स०)-१ दुःसाध्य, कठिन, २ आकाश, व्योम, ३ पाप, अघ, पातक। उ० १ सुकर दुष्कर दुराराध्य दुर्व्यसनहर दुर्ग वनचर ध्वज कोटिलावन्यरासी। (वि०५४)

दुष्कर्म-(स० दुष्कर्मन्)-बुरा काम, पाप।

दुष्कर्मा-(स० दुष्कर्मन्)-बुरा काम करनेवाला, पापी।

दुष्कर्मी-दे० 'दुष्कर्मा'।

दुष्कष-१ कठिन खिंचाव, २ अनुचित बढ़ावा, बुरा जोश।

दुष्कृत-(स०)-बुरा काम, कुकर्म।

दुष्ट-(स०)-१ खल, दुर्जन, दुराचारी, २ दोषयुक्त, ३ कुष्ट, कोढ़, ४ पित्त आदि दोष से युक्त। उ० १ करि केहरि निसिचर चरहिं दुष्ट जंतु बन भूरि। (मा० २।५६) २ एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा। (मा० ३।१५।४)

दुष्टता-(स०)-१ दुर्जनता, बदमाशी, २ बुराई, ३ ऐब, दोष। उ० १ दुष्टता दमन, दम भवन, दुःखौघहर दुर्ग दुर्वासना-नासकर्त्ता। (वि० ५६)

दुष्पार-जिसका पार पाना कठिन हो। उ० दुष्प्राप्य दुष्प्रेक्ष्य दुस्तर्क्य दुष्पार, संसार हर सुलभ मृदु भावगम्य। (वि०५३)

दुष्प्राप्य-(स०)-कठिनाई से मिलने योग्य। उ० दे० 'दुष्पार'।

दुष्प्रेक्ष्य-(स०)-जिसका दर्शन कठिनाई से हो। उ० दे० 'दुष्पार'।

दुसरे-(स० द्वि)-अन्य, किसी और। उ० पाइ सखा सेवक जाचक भरि जनम न दुसरे द्वार गए। (गी० १।४३)

दुसह-(स० दुःसह) जो सहा न जाय, असह्य, कठिन। उ० जनु ग्रह दसा दुसह दुखदाई। (मा० २।१२।४)

दुसही-१ जो कठिनता से रोका जा सके, २ वैरी, दुश्मन। उ० २ असही दुसही मरहु मनहिं मन, बैरिन बढ़हु विषाद। (गी० १।२)

दुसासन-दे० 'दुःशासन'। उ० यों मन गुनति दुसासन दुरजन तमक्यो तकि गहि दुहुँ कर सारी। (कृ० ६०)

दुस्तर-दे० 'दुस्तर'। उ० १ हरि नरा भजंति येऽति दुस्तर तरंति ते। (मा० ७।१२२ ग) दुस्तर-(स०)-१ जिसे पार करना कठिन हो, २ दुर्घट, विकट, कठिन। उ० १ दुर्दर्ष, दुस्तर, दुर्ग, स्वर्ग, अपवर्गपति भग्न संसार-पादप कुठार। (वि० ५०)

दुस्तर्क्य-(सं०)-तर्क से जो नहीं जाना जा सके। उ० दे० 'दुष्पार'।

दुस्त्यज-जिसका त्यागना अत्यंत कठिन हो। उ० गुरुगिरा गौरव अमरसु दुस्त्यज राज्य त्यक्त श्री सहित, सौमित्र भ्राता। (वि० ५०)

दुस्सह-(स० दुःसह)-असह्य, जिसका सहना कठिन हो।

दुहाइ (१)-(स० द्वि+आह्वाय)-१ घोषणा, २ पुकार, न्याय के लिए पुकार, ३ सौगंद, शपथ, ४ न्याय, ५ आन, ६ शत्रुता, ७ आतंक, प्रभाव, ८ जय की ध्वनि।

दुहाइ (२)-(सं० दोहन)-१ गाय भैंस आदि को दूहने का काम, २ दुहवाया। उ० २ सादर सब मंगल किए महि-मनि-महेस पर सबनि सुधेनु दुहाई। (गी० १।१२) दुहाए-दुहवाए दूध निकलवाया। उ० गनप गौरि हर पूजिकै गोवृंद दुहाए। (गी० १।६)

दुहि-१ दूहकर, दूध दूहकर, २ तत्त्व निकालकर, सार निचोड़कर, ३ स्वार्थ साधने के लिए। उ० ३ बेचहिं बेद धरमु दुहि लेहीं। (मा० २।१६८।१)

दुहिता-(स० दुहितृ)-कन्या, लड़की।

दुहिन-(स० द्रुहण)-ब्रह्मा। उ० जेहँ चले हरि दुहिन सहित सुर भाइ ह। (पा० १२४)

दुहुँ-दे० 'दुहूँ'। उ० १ बेद बिहित कुलरीति कीन्हि दुहुँ कुलगुर। (जा० १४२)

दुहूँ-(स० द्वि)-१ दोनों, उभय, २ दो।

दू-(स० द्वि)-दो। उ० कूर कौड़ी दू को हौं आपनी ओर हेरिए। (ह० ३४)

दूक-१ दोना, युग, २ दो, ३ दो, थोड़े। उ० ३ सदा बिचारहिं चारु मति सुदिन कुदिन दिन दूक। (दो० ४४४)

दूजा-१ द्वितीय, दूसरा, २ अन्य, अपर, और। उ० १ नारिधरमु पति देउ न दूजा। (मा० १।१०२।२) दूजी-दूसरी। उ० बोली मधुर बचन तिय दूजी। (मा० २।२२२।३) दूजें-दूसरे ने। उ० मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजें। (मा० २।३।३)

दूत-(स०)-समाचार या संदेशा ले जानेवाला, चर, हरकारा। उ० पठए दूत बोलि तेहि काला। (मा० १।२८७।१) दूतन्ह-दूतों को, सेवकों को। उ० दूतन्ह दन निद्रा पर लाग। (मा० १।२६३।४) दूतहि-दूत को। उ० माया पति दूतहि चह मोहा। (मा० ५०।२)

दूता-दे० 'दूत'। उ० मैं रघुपति सेवक कर दूता। (मा० ६।२०।४)

दूतिका-(स०)-दे० 'दूती'। उ० २ बुद्धि की दूतिका, देह-दुति दामिनी। (वि० ४८)

दूतिन्ह-दूतियों। उ० दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी। (मा० ५।२६।२) दूती-(स०)-१ संदेशा पहुँचानेवाली स्त्री, कुटनी, वह स्त्री जो प्रेमी का संदेशा प्रेमिका तक तथा प्रेमिका का संदेशा प्रेमी तक पहुँचावे २ प्रेम के अतिरिक्त अन्य संदेशा या अन्य चीज पहुँचानेवाली।

दूध-(स० दुग्ध)-१ पय, क्षीर, दुग्ध, सफेद पदार्थ जो स्तनों से निकलता है, २ कुछ वृक्ष या पेड़ों आदि से निकलनेवाला सफेद रस। उ० १ दग मुग दज्यो दूध-

माखी ज्यों आपु काढ़ि साढ़ी लई। (गी० ५।३७) दूध-माखी–(सं० दुग्ध + मक्षिका)-तुच्छ, बेकार। उ० दे० 'दूध'। दूधमुख-दूध पीनेवाला, छोटा। उ० सूध दूधमुख करिय न कोहू। (मा० १।२७७।१)

दून-(सं० द्विगुण)-१ दुगुना, २ दोनों। उ० १ निज सगी निज सम करत, दुर्जन मन दुख दून। (वै० १८) दूनउ-दोनों, दोनों ही। उ० विप्र श्राप तें दूनउ भाई। (मा० १।१२२।३)

दूना-दे० 'दून'। उ० १ सुख सोहागु तुम्ह कहुँ दिन दूना। (मा० २।२१।२)

दूब-(सं० दूर्वा)-एक प्रकार की घास जो पूजन के लिए मंगल द्रव्यों (हल्दी, दही आदि) के साथ स्थान पाती है। उ० राम की भगति भूमि मेरी मति दूब है। (क० ७।१०८)

दूबर-(सं० दुर्बल)-१ पतला, कमजोर, दुबला, २ असहाय, अनाथ। दूबरि-'दूबर' का स्त्रीलिंग। उ० १ देह दिनहुँ दिन दूबरि होई। (मा० २।३२५।१) दूबरी-दे० 'दूबरि'। उ० १ होय दूबरी दीनता, परम पीन संतोष। (दो०९६) दूबरे-दे० 'दूबर'। उ० १ छोटे बड़े, खोटे खरे मोटेऊ दूबरे। (वि० २४६)

दूबरो-दे० 'दूबर'। उ० १ राम प्रेम बिनु दूबरो, राम प्रेम ही पीन। (दो० ५७)

दूर-(सं०)-१ फासले पर, देश, काल मथवा आदि के विचार से अंतर पर या पास का उलटा, २ भिन्न, न्यारा, अलग। उ० १ एहि घाट तें थोरिक दूर अहै कटि लौं जल-थाह देखाइहौं जू। (क० २।६)

दूरति(सं० दूर)-१ छिपा देती है, २ तुच्छ कर देती है।

दूरि-दे० 'दूर'। उ० १ दीनबंधु दूरि किए दीन को न दूसरी सरन। (वि० २५७)

दूरिहि-१ दूर ही, फासले पर ही, २ दूरी ही। उ० १ दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता। (मा० ५।४५।१) दूरी-दे० 'दूर'। उ० १ एहि विधि सब संसय कर दूरी। (मा० १।३४।१)

दूर्वा-दे० 'दूब'।

दूलह-(सं० दुर्लभ)-१ वर, दुलहा, दूल्हा, जिसका विवाह हो रहा हो, या हाल में हुआ हो या शीघ्र होनेवाला हो, २ पति, स्वामी। उ०१ नहिं बरात दूलह अनुरूपा। (मा० १।९२।४)

दूषण-(सं०)-१ दोष, ऐब, बुराई, २ दोष लगाने की क्रिया या भाव ३ एक राक्षस। यह रावण के भाई खर नामक राक्षस के साथ पंचवटी में सूर्पणखा की रक्षा के लिए नियुक्त था। सूर्पणखा के नाक-कान काटने पर इसने राम से युद्ध किया और उनके हाथ से मारा गया। इसके वज्रवेग और प्रमाथि नामक दो भाई भी थे। उ० १ समस्त दूषणा पहं। (मा० ३।४। छं० ५) दूषणापह-दोषों को नाश करनेवाले। उ० समस्त दूषणापहं। (मा० ३।४। छं० ५)

दूषत-दोष देते हैं। उ० ता करि मन करि बचन करि, काहू दूषत नाहिं। (वै० २३)

दूषन-दे० 'दूषण'। उ० १ जे पर दूषन भूषन धारी। (मा० १।८।२) ३ भुवन भूषन, दूषनारि भुवनेस, भूनाथ श्रुतिमाथ जय भुवनभर्त्ता। (वि० ५५)

दूषनहा-दूषण राक्षस को मारनेवाले रामचंद्र। उ० खर दूषन बिराध बध पंडित। (मा० ६।१११। छं० ४)

दूषनारि-(सं० दूषणारि)-दूषण राक्षस को मारनेवाले राम। उ० भुवन भूषन, दूषनारि, भुवनेस। (वि० ५५)

दूषनारी-दे० 'दूषनारि'। उ० अज्ञान राकेस ग्रासन बिधुंतुद, गर्व-काम-करिमत्त-हरि दूषनारी। (वि० ५८)

दूषनु-दे० 'दूषण'। उ० १ कोउ कह दूषनु रानिहि नाहिन। (मा० २।२२३।३)

दूषा-दूषित, दोषयुक्त। उ० गुर अवमान दोष नहिं दूषा। (मा० २।२०१।३)

दूसर-(सं० द्वि, हि० दो)-१ दूसरा, जो क्रम से दो के स्थान पर हो, पहले के बाद का, २ अन्य, कोई और। उ० २ सब गुन अवधि, न दूसर पटतर लायक। (जा०६) दूसरि-'दूसर' का स्त्रीलिंग। उ० २ हठि फेरु रामहि जात बन जनि बात दूसरि चालही। (मा० २।५०। छं० १) दूसरी-दे० 'दूसरि'। उ० २ दीन-बंधु दूरि किए दीन को न दूसरी सरन। (वि० २५७)

दूसरो-दे० 'दूसर'। उ० २ दूसरो न देखतु साहिब सम रामै। (गी० ५।२५)

दृक (१)-(सं०)-छिद्र, छेद, सूराख।

दृक (२)-(सं० दृब्भू)-हीरा, वज्र, एक रत्न।

दृक (३)-(सं० दृक)-दृष्टि, नज़र, निगाह।

दृग्पत-(सं० दृषत्) पत्थर, शिला। उ० दृषत करत रचना बिहरि रंग-रूप सम तूल। (स० ३६७)

दृगंचल-(सं०)-पलक, नेत्रपट।

दृग-(सं० दृक)-नेत्र, आँख, नयन। उ० नयन अमिय दृग दोष बिभंजन। (मा० १।२।१)

दृढ़-(सं०)-१ पुष्ट, कड़ा, ठोस, मज़बूत, २ प्रगाढ़, जो ढीला न हो, ३ स्थायी, टिकाऊ, अटल, ४ निश्चित, ध्रुव, पक्का, ५ निडर, ढीठ, ६ विष्णु, ७ लोहा, ८ समर्थ। उ० ३ मास गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग। (मा० ७।६१)

दृढ़ता-१ दृढ़ होने का भाव, दृढ़त्व, २ मज़बूती, ३ स्थिरता। उ० ३ सब तीरथ साधन जोग बिराग सों होइ नहीं दृढ़ता तन की। (क० ७।८७)

दृढ़ाइ-मज़बूत करके, पक्का करके, स्थिर करके। उ० बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। (मा० २।२८।४) दृढ़ाई-दे० 'दृढ़ाइ'। उ० चले साथ अस मंत्रु दृढ़ाई। (मा० २।८४।४) दृढ़ावा-निश्चित किया, निश्चय किया। उ० करि बिचार तिन्ह मंत्र दृढ़ावा। (मा० ६।६३।२) दृढ़ाहीं-दृढ़ हो जाती है।

दृत-(सं०)-सम्मानित, आदृत, आदरित।

दृश्-(सं०)-१ देखना, दर्शन, २ दिखानेवाला, प्रदर्शक, ३ देखनेवाला, ४ दृष्टि, नज़र, निगाह, ५ आँख, नेत्र, नयन, ६ ज्ञान, विवेक, समझ, ७ दो की संख्या।

दृश्य-(सं०)-१ खेल तमाशा, कौतुक २ अभिनय, नाटक, ३ सुन्दर, मनोहर, सुहावना, ४ नेत्रों का विषय, जो दृष्टिगोचर हो, ५ दर्शनीय। उ० १ श्रुति-गुरु-

साधु-सुमति-समत यह दृश्य सदा दुखकारी। (वि० १२०) ४ परम कारन, कंजनाभ, जलदाभतनु सगुन निगुन सकल-दृश्य द्रष्टा। (वि० ५३)

दृष्ट-(स०)-१ देखा हुआ, जिस पर दृष्टि पड़ चुकी हो, २ जाना हुआ, समझा हुआ, ३ प्रत्यक्ष, प्रकट, ज़ाहिर।

द्रष्टा-देखनेवाला।

दृष्टि-(स०)-१ नजर, निगाह, देखने की शक्ति, २ ध्यान, विचार, ३ उद्देश्य, अभिप्राय, ४ पहचान, परख, तमीज़। उ० १ सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती। (मा० १।१।३)

दृष्टिगोचर-(स०)-जो देखने में आ सके, जिसका बोध नेत्रेंद्रिय द्वारा हो।

दृश्यमान-(स० दृश्यमान)-जो दिखाई पड़ रहा हो। उ० दृश्यमान चर अचर-गन एकहि एक न लीन। (स० ३३६)

दे (१)-(स० दान, हि० देना)-१ अर्पण करे, देवे, २ देनेवाले, ३ देकर, प्रदान कर, ४ दो। उ० ३ ज्ञान विज्ञान-वैराग्य ऐश्वर्य निधि, सिद्धि अणिमादि दे भूरि दानम्। (वि० ६१) देइ (१)-दे० 'देई (१)'। उ० १ देइ अभागहिं भागु को। (वि० १६१) देइअ-१ दीजिए, २ देना चाहिए। उ० १ आयसु देइअ हरपि हियँ कहि पुलके प्रभु गात। (मा० २।७५) देइगो-देगा। उ० सोकि कृपालुहि देइगो केवट पारहि पीठि? (दो० ४१) देइहहु-देंगे, प्रदान करेंगे, देवेंगे। उ०मोहि राज हठि देइहहु जबहीं। (मा० २।१७९।१) देइहि-देगा। उ० कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी। (मा० १।१२।४) देई (१)-१ देता है, प्रदान करता है, २ दीजिए, ३ देकर। उ० २ सो अवलंब देव मोहि देई। (मा० २।३०७।४) देउँ-१ देता हूँ अर्पण करता हूँ, २ दूँ, देऊँ। उ० १ निसि दिन नाथ! देउँ सिख बहु बिधि करत सुभाय निजै। (वि० ८१) देउ (१)-(स० दान)-दो, प्रदान करो। उ० कोउ मल कहहु देउ कछु कोउ, असि बासना न उर तें जाई। (वि० ११६) देऊँ-दूँ। उ० भरतहि समर सिखावन देऊँ। (मा० २।२३०।२) देऊ-दें, दे। उ० तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ। (मा० २।१६८।४) देत-(स० दान, हि० देना)-१ देता है, प्रदान करता है, २ देते हुए, देते समय, ३ देने में। उ० १ देत एक गुन लेत कोटि गुन भरि सो। (वि० २६४) देता-१ देने में, २ देना, अर्पित करना। उ० १ नाथ न सकुचब आयसु देता। (मा०२।११३९।४) देति-१ देते हुए २ देती है। उ० २ कर पग पैयूर मनोहर, देति मोद मुद्रिक न्यारी। (वि० ६२) देन-१ देने की क्रिया या भाव, दान, २ दी हुई चीज, ३ देने के लिए, ४ देने, अर्पण करने। उ० ३ अब तेहिं कहा दान बैदेही। (मा० २।२७।४) ४ लगे देन हिय हरषि कै हेरि हेरि हँकारी। (गी० १।६) देना-देने को, देने के लिए। उ० सत्य सराहि कहेहु बर देना। (मा० २।३०।३) देब-१ देने के लिए वचन देगा, २ देना, हारना अलग करना, ३ देगा। देबा-दे० 'दूबा'। उ० २ जोइ पूँछिहि तेहि ऊतरु देबा। (मा० २।१५६।३) देबि-दूँगी। उ०तदपि देबि मैं देबि असीसा। (मा०२।१०३।४) देबो-दे० 'देब'। देबोइ-देगा ही, दान करना ही। उ० देबोई पै जानिए सुभाव सिद्ध बानि सो। (क० ७।१६१)

देय (१)-(स० दान, हि० देना)-१ दो, दे दो प्रदान करो, २ देंगे, ३ देगा। देवा (१)-(स० दान, हि० देना)१ देना, प्रदान करना, २ दूँगा, ३ देना पड़ेगा। देवी (१)-(स०दान)-दूँगी, देऊँगी। देवे (१)-(स०दान)-देने को। देहउ-दूँगी, दूँगा। उ० जाइ उतरु अब देहउँ काहा। (मा० १।५४।१) देहि-(स० दान)-१ देते हैं, २ देंगे, ३ प्रकट करते हैं। उ० १ सुमिरहिं राम देहिं गनि गारी। (मा० १।७।५) ३ देहिं सुलोचनि सगुन कलस लिए सीस न्ह। (पा० ६०) देहि-१ दीजिए, प्रदान कीजिए, २ देगा। उ० १ देहि कामारि श्री राम पद पकजे। (वि० १०) देहीं-देते हैं, प्रदान करते हैं। उ० मिलत एक दुख दारुन देहीं। (मा० ११५।२) देही (१)-(स० दान)-१ देता है, २ दीजिए। देहु-दो, दीजिए। उ० जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ। (मा० २।१२७) देहू-१ दो, दीजिए, २ देती हो। उ० १ तौ प्रसन्न होइ यह बर देहू। (मा० १। १७६।२) २ केहिं अपराध आजु बन देहू। (मा० २। ४६।३) देहेसु-देगा। उ० तिन्हहि देखाइ देहेसु तैं सीता। (मा० ४।२८।५) दै-१ देकर, दानकर, २ दो, दीजिए। उ० १ तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं, समुझाइ कछू मुसुकाइ चली। (क० २।२२) दैअहिं (१)-(स० दान)-देवेंगे, देंगे। दैन-१ देना, २ देने के लिए। उ० १ खजन मीन कमल सकुचत तब जब उपमा चाहत कवि दैन। (गी० १।३२) २ अद्भुत त्रयी किधौं पठई है बिधि मग-लोगन्हि सुख दैन। (गी० २।२४) दैहउँ-दूँगा। उ० उतरु काह दैहउँ तोहि जाई। (मा० ६।६१।८) दैहैं-देंगे। उ० समरधीर महाबीर पाँच पति क्यों दैहैं मोहि होन उघारी। (कृ० ६०) दैहै-देगा। उ० को भोर ही उयटि अन्हवैहै, काढ़ि कलेऊ दैहै? (गी० १।६७) दैहौं-दूँगा। उ० मन समेत या तन के बासिन इहै सिखावन दैहौं। (वि० १०४) दो-(१)-(स० दान, हि० देना)-दीजिए, प्रदान करो।

दे (२)-(स० देवी)-देवी, देवताओं की स्त्री, देवांगना।

देइ (२)-दे० 'देई (२)'।

देई (२)-दे० 'दे (२)'।

देउ (२)-(स० देव)-देवता, सुर।

देख-(स० दृश, प्रपश्यति, प्रा० देक्खर, हि०,देखना) १ देखो, दर्शन करो, २ देखकर, ३ देखा, ४ देखता है। उ० ३ भोजन करत देख सुत जाई। (मा० १।२०१।२) देखइ-देखता है। उ० सकल धर्म देखइ बिपरीता। (मा० १।१८३।३) देखई-देखती हैं, देख रही हैं। उ० कोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई। (मा० २। २५। छं० १) देखउँ-१ देख रहा हूँ, २ देखूँगा, ३ देखा, देखता रहा। उ० १ देखउँ अति असक सठ तोही। (मा० ४।२१।१) देखत-१ अवलोकते, चितवत, निहारत देखते हुए, २ देखते ही, दर्शन करते ही, ३ दर्शन से ही, ४ देखते हुए भी। उ० १ करि प्रनामु देखत बन बागा। (मा० २।१०६।२) देखन-१ देखने के लिए, २ देखने। उ० १ मनो देखन तुमहिं आइ ऋतु

चसत। (वि० १४) देखब-देखेंगे, देखूँगा। उ० देखब कोटि बियाह जियत जो बाँचिय। (मा० ११६) देखहिं-देखते हैं। उ० मुदित नारि नर देखहिं सोभा। (मा० २।११२।२) देखहु-१ देखो, २ दृश्य लेवे, देखते। उ० २ देखहु कम न आइ सब सोभा। (मा० २।१४।२) देखि-१ देखकर, २ देखा, ३. देखने के लिए, ४ देखो। उ० १ देखि कुठार बान धनु धारी। (मा० १।२८२।१) देखिअ-१ देखा जाय, देखना चाहिए, २ देखिए, ३ देखा जाता है, ४ दिखाई देता है। उ० १ देखिअ करिहि कहाँ कर चाही। (मा० २।१६।१) देखिअत-दिखाई पड़ते हैं। उ० देखिअत बिपुल काल जनु क्रुद्धे। (मा० ६।८१।४) देखिअहिं-१ देखे जाते हैं, देखते हैं, २ देखेंगे, ३ देखा। उ० १ देखिअहिं रूप नाम आधीना। (मा० १।२१।२) देखिए-१ देख लीजिए, २ देखना। उ० २ बीरता बिदित ताकी देखिए चहतु हौं। (क० ११८) देखिन्ह-देखे, दर्शन किए। उ० देखिन्ह जाइ कपिन्ह के ठट्टा। (मा० ६।४१।२) देखिबी-देखेंगे, देखनी है। उ० देखि प्रीति की रीति यह, अब देखिबी रिसान। (दो० ४०३) देखिबो-देखेंगे, देखना है। उ० देखिबो बरस चौथेहु बड़ो लाभ, लघु हानी। (कृ० ४८) देखिय-१ देखें, २ देखिए। उ० १ धरि धीर कहै, चलु देखिय जाइ जहाँ सजनी रजनी रहिहै। (क० २।२३) देखियत-१ देखते हैं, २ दिखलाई दे रहे हैं। उ०२ बमसीम छैम जू की नीस होत देखियत। (क० ६।२०) देखिहहिं-देखेंगे। उ० जे देखहिं देखिहहिं जिन्ह देखे। (मा० २।१२०।४) देखिहि-देखेगा। उ० राम रहित रथ देखिहि जोई। (मा० २।१४२।४) देखी-१ देखा, देख लिया, २ देखकर, देखने पर। उ० १ देखी नयन दूत रखवारी। (मा० ६।२२।३) देखु-देखो, दर्शन करो। उ० देखु राम सेवक सुनु कीरति, रटहि नाम करि गान गाथ। (वि० ८४) देखू-देखु, देखो। उ० धरी कुघरी समुझि जियँ देखू। (मा० २।२६।४) देखें-देखने से, दर्शन से। उ० नाथ कुसल पद पंकज देखें (मा० २।८८।३) देखे-१ देख लिए, देखा, २ देखने पर, ३ देखे हुए, देखे सुने, जाने हुए। उ० १ देखे सुने जाने मैं जहान जेते बड़े हैं। (वि० १८०) देखेउ-देखा। उ० तेहिं दास देखेउ कोसल राऊ। (मा० १।२४२।४) देखेन्हि-देखा। उ० अनुपम बालक देखेन्हि जाइ। (मा० ७।१६३।४) देखेसि-देखा। उ० सचिव सहित रथ देखेसि आई। (मा० २।१४२।३) देखेहु-देखना, देखिएगा। उ० देखेहु कालि मोरि मनु साईं। (मा० ६।७०।४) देखो-अवलोकन करो, दर्शन करो। उ० देखो देखो बन बन्यो आजु उमाकंत। (वि० १४) देखौ-देखो, देखिए। उ० देखिबे को दाउँ, देखौ देखिबो बिहाइ के। (गी० १।८२) देख्यो-देखा, देख लिया। उ० लीन्हों छीनि दीन देख्यो दुरित दहत हौं। (वि० ७९) देख्योइ-देखना ही, दर्शन करना ही। उ० तुलसिदास प्रभु देख्योइ चाहति श्री उर ललित लतामहि। (कृ० २)

देखनिहारे-देखनेवाले। उ० सखि सब कौतुक देखनिहारे। (मा० १।२२६।१)

देखराइ-दिखलाकर। उ० रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु गएँ दिन चारि। (मा० २।८१) देखराए-दिखलाए, दिखलाया। उ० दुंदुभि अस्थि ताल देखराए। (मा० ४।७।६) देखरावा-दिखलाया, दिखलाए। उ० अस कहि लखन ठाउँ देखरावा। (मा० २।१३३।३)

देखवैया-देखनेवाले। उ० सोभा देखवैया बिनु बित ही बिकैहैं। (गी० १।३७)

देखा-१ दिखाकर, २. दिखला, ३ दिखलाई। उ० १ जनकसुता देखाइ पुनि दीन्ही। (मा० ६।१०७।२) देखाइयत-दिखलाती हो। उ० देवि! क्यों न दास को देखाइयत पाय जू। (क० ७।१३६) देखाउ-दिखाओ, दिखा। उ० बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू। (मा० १।२७०।१) देखाउब-दिखायेंगे, दिखाऊँगा। उ० सर निकर अब देखाउब। (मा० ३।१३६।४) देखाऊ-दिखलाओ, दिखाओ। उ० राम लखनु सिय आनि देखाऊ। (मा० २।८२।३) देखाए-दिखलाए। उ० सकल देखाए जानकिहि कहे सबन्हि के नाम। (मा० ६।११९ख) देखायउँ-दिखाया, दिखाया था। उ० सो बन तात न सोहि देखायउँ। (मा० ६।७२।४) देखाव-१ दिखाते हैं, २ दिखलायो। उ० १ पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू। (मा० १।२७२।१) देखावत-दिखला रहे हैं, दिखाते हैं। उ० कपिन्ह देखावत नगर मनोहर (मा० ७।४।१) देखावसि-दिखला। उ० अब जनि नयन देखावसि मोही। (मा० ६।४४।२) देखावहिं-दिखलाते हैं। उ० दिन प्रति नृपहि देखावहिं आनी। (मा० १।२०९।१) देखावहु-दिखाते हैं, दिखा रहे हैं। उ० भृगुबर परसु देखावहु मोही। (मा० १।२७६।१) देखावा-१ दिखाना, दर्शन कराना, २ दिखलाया। उ० का देखाइ यह काहु देखावा। (मा० २।४८।१) देखावौं-दिखाऊ। उ० अहै न होउ तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ। (मा० २।१२७) देखैहै-दिखलावेगा। उ० बहुरो सदल सनाथ, सलछिमन, कुसल-कुसल बिधि अवध देखैहै। (गी० २।४०)

देखा-देखी-दूसरों को देखकर या दिखाने के लिए। उ० देखा देखी दंभ तें, कि संग तें भई भलाई। (वि० २६१)

देखुवार-घर देखनेवाले, नेगी, तिलकहरू, देखहरू। उ० ऐहैं सुत देखुवार कालि तेरे, बबै ब्याह की बात चलाई। (कृ० १३)

देखैया-देखनेवाले। उ० सब के देखैया लोग, सब के लोगनि भले। (गी० १।६३।४)

देनी-१ देनेवाली, २ देनेवाला। उ० १ ग्यान बिराग भगति सुभ देनी। (मा० ७।१२१।२) २ बोअनहार लुनिहि सोई देनी लहइ निदान। (स० २००)

देबि-देवी, हे देवी। उ० तदपि देबि मैं देबि असीसा। (मा० २।१०२।४)

देय-देने योग्य, दातव्य।

देव (२)-(सं०)-१ स्वर्ग में रहनेवाले अमर प्राणी, देवता, सुर, २ स्वामी, ३ नाटकोक्ति या बातचीत में राजा या स्वामी या बड़े के लिए प्रयुक्त एक संबोधन, ४ मेघ। उ० १ दानव देव ऊँच अरु नीचू। (मा० १।६।३) २ जयति मुनि देव नर देव दसरथ के। (वि० ४४) दसक-

देव का, देवता का। उ० सपनेहुँ आन भरोस न देवक। (मा० ३।१०।१) देवदेव–देवताओं के देवता, १ परमेश्वर, भगवान, २ इंद्र, देवपति। देवन–देवताओं, देव का बहुवचन। देवनि–देवताओं ने। उ० देवनि हूँ देव परिहरयो। (वि० २७२) देवन्ह–दे० 'देवन'। उ० देवन्ह समाचार सब पाए। (मा० १।८८।२) देव-मुनि-(सं०)-नारद, मुनियों में देवता स्वरूप। उ० देव मुनि-बस किए अवधवासी। (वि० ४४)

देव (३)-(फा०)-राक्षस, दैत्य।

देवऋषि-देवताओं के लोक में रहनेवाले ऋषि। इनमें नारद, अत्रि, मरीचि, भरद्वाज, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु आदि प्रसिद्ध हैं। उ०राम जनम सुभकाज सब करत देव ऋषि। (जा० ४।४।१)

देवतरु-(सं०)-कल्पवृक्ष। पुराणों के अनुसार देवतरु समुद्र से निकले १४ रत्नों में से एक है। यह इंद्र को मिला था। कहा जाता है कि यह माँगने पर सभी वस्तुएँ देता है। उ० अभिमत दानि देवतरु बर से। (मा० १।३२।६)

देवतन्ह-देवताओं को। उ० देइ देवतन्ह गारि पचारी। (मा० १।१८२।४) देवता-(सं०)-१ कश्यप और अदिति से उत्पन्न संतान, देव, सुर, २ शरीर की इंद्रियों के स्वामी देवगण। ऋग्वेद में मुख्य देवता ३३ माने गए हैं। बाद में इसी आधार पर ३३ कोटि देवताओं की कल्पना की गई। उ० १ देवता निहोरे महामारिन्ह सों कर जोरे। (क० ७।१७५)

देवधुनि-(सं०)-गंगा नदी। उ० जुग बिच भगति देवधुनि धारा। (मा० १।४०।२)

देवधुनी-दे० 'देवधुनि'। उ० देवधुनी पास मुनिबास श्री निवास जहाँ, प्राकृत हूँ बट बूट बसत पुरारि हैं। (क० ७।१४०)

देवनदी-गंगा, सुरनदी। उ० देवनदी कहँ जो जन जान किये मनसा कुल कोटि उधारे। (क० ७।१४५)

देवबधू-(सं०)-१ अप्सरा, २ देवताओं की स्त्रियाँ। उ० १ देवबधू नाचहिं करि गाना। (मा० १।२६२।२)

देवमनि-(सं० देवमणि)-१ सूर्य, २ कौस्तुभ मणि, ३ घोड़े की भँवरी, ४ देवों में शिरोमणि। उ० ४ जयति रनधीर रघुबीर हित देवमनि रुद्र अवतार संसार पाता। (वि० २५)

देवमाया-(सं०)-देवताओं या परमेश्वर की माया जो अविद्यारूप होकर देवों को बंधन में डालती है।

देवरिषि-नारद मुनि। दे० 'देवऋषि'। उ० देखि देवरिषि मन अति भाया। (मा० १।१२५।१)

देवल-(सं०)-१ पुजारी, पूजा करनेवाला, २ पंडा ब्राह्मण, ३ नारदमुनि, ४ धर्म शास्त्र-वक्ता, ५ धार्मिक पुरुष, ६ एक प्रकार का पादप, ७ मंदिर, देवालय। उ० ७ तुलसी देवल देव को लागे लाख करोरि। (दो० ३८४)

देवलोक-(सं०)-देवताओं का लोक, स्वर्ग। उ० देवलोक सब देखहिं बारिद अति दिय हो। (रा० १)

देवसर-मानसरोवर आदि। उ० तिन्हहि देवसर सरित सराहहिं। (मा० २।११३।२)

देवसरि-(सं०)-गंगा, देवनदी। उ० देवसरि सेवौं बामदेव गाउँ रावरे ही। (क० ७।१६५)

देवसरित-दे० 'देवसरि'।

देवहूति-(सं०)-स्वायंभुव मनु की पुत्री और कर्दम ऋषि की कन्या। सांख्य शास्त्र के प्रणेता कपिल इनके ही पुत्र थे। उ० देवहूति पुनि तासु कुमारी। (मा० १।१४२।३)

देवा (२)-दे० 'देव'। उ० १ बिबिध बेष देखे सब देवा। (मा० १।५४।४)

देवाइ-दे० 'देवाई'। उ० १ भूपति गवने भवन तब दूतन्ह बासु देवाइ। (मा० १।२९४) देवाई-(सं० दान, हिं० देना)-१ दिलाकर, २ दिलाया। उ० १ सकुचि राम निज सपथ देवाई। (मा० २।१६।३)

देवान-(फा० दीवान)-१ दरबार, कचहरी, राजसभा, २ मंत्री, वज़ीर, ३ प्रबंधकर्ता। उ० १ मारे बागवान, ते पुकारत देवान गे। (क० ५।३१)

देवापगा-(सं० देव+आपगा)-गंगा, देवनदी। उ० यस्यांके च विभाति भूधर सुता देवापगा मस्तके। (मा० २।१। श्लो० १)

देवि-दे० 'देवी (२)'। उ० २ दुसह-दोष दुख दलनि करु देवि दाया। (वि० १५)

देवी (२)-(सं०)-१ देवता की स्त्री, २ चंडिका, भगवती, ३ पार्वती, ४ अच्छे गुणावाली स्त्री, ५ पटरानी, पट महिषी, ६ श्रेष्ठ स्त्री के लिए प्रयुक्त एक संबोधन।

देवे (२)-(सं० देव)-हे देव! उ० ताको जोर, देवे दीन द्वारे गुदरत हौं। (क० ७।१६५)

देवैया-देनेवाला। उ० तुलसी जहँ मातु पिता न सखा, नहिं कोऊ कहूँ अवलंब देवैया। (क० ७।५२)

देश-(सं०)-१ प्रदेश, वह भू भाग जिसका एक नाम हो, तथा जिसमें के निवासियों में भाषा, धर्म, संस्कृति आदि की एकता हो। राज्य, २ स्थान, जगह, ३ अंग, शरीर का कोई भाग।

देस-दे० 'देश'। उ० १ जासु देस नृप लीन्ह छुड़ाई। (मा० १।१५८।१) देस-देस-प्रत्येक देश सभी देश। उ० पुनि देस देस सँदेस पठयउ भूप सुनि सुख पावहीं। (जा० ६)

देसा-दे० 'देश'। उ० १ सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। (मा० १।२।६)

देसु-दे० 'देश'। उ० १ धन्य सो देसु सैलु बन गाऊँ। (मा० २।१२२।३)

देसू-दे० 'देश'। उ० १ बिपिन सुहावन पावन देसू। (मा० २।२३५।३)

देह-(सं०)-१ शरीर, तन, २ जीवन, जिंदगी। उ० १ मुक्ति की दूतिका, देह-दुति दामिनी। (वि० १८) १ संभ्रम सहित सनेह देह भरि काम धेनु बनि कासी। (वि० २२)

देहनि-शरीरों से। उ० मानहिं मानो है देहनि तें दुति पाइ। (गी० १।२७)

देहरी-(सं० देहली)-द्वार की नीचे की लकड़ी, निचला चौखट, दहलीज। उ० राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार। (मा० १।२१)

देहवंत-शरीरधारी, देही। उ० संतोष सम सीतल सदा दम देहवंत न लेखिए। (वि० ३६)
देहा-दे० 'देह'। उ० १ हठ न छूट छूटै बरु देहा। (मा० १।८०।३)
देही (२)-(सं० देहिन्)-१ देह को धारण करनेवाला, जीवात्मा, २ देहवाला। उ० १ मर्कट बदन भयंकर देही। (मा० १।१३४।४)
दैऍ-दैव ने, भगवान ने। उ० केहिं अघ एकहिं बार मोहि दैअँ दुसह दुखु दीन्ह। (मा० २।२०)
दैअहिं (२)-(सं० दैव)-१ दैव की, भगवान की, २ दैव को, ३ भाग्य को। उ० १ दैअहि लागि कहौं तुलसी प्रभु अजहुँ न तजत पयोधर पीयो। (कृ० ६)
दैउ-(सं० दैव)-दैव, भगवान। उ० देउ दैउ फिरि सो फलु ओही। (मा० २।१८४)
दैत्य-(सं०)-१ असुर, दिति और कश्यप की संतान, २ दुष्ट, दुराचारी। उ० १ भनु दीनबंधु दिनेश दानव-दैत्य वंश निकंदन। (वि० ४५)
दैव-(सं०)-१ भाग्य, प्रारब्ध, २ ईश्वर, भगवान, ३ विधाता, ४ ईश्वर का। उ० २ फरिय दैव जौं होइ सहाई। (मा० २।२१।१) दैवहिं-दैव को, भगवान को, ईश्वर को। उ० अति बरषे अनबरषे हूँ देहिं दैवहिं गारी। (वि० ३४)
दैविक-(सं०)-देवता या भाग्य से होनेवाले दुःख, जिसे तीन दुःखों या तापों में स्थान दिया गया है। उ० दैहिक दैविक भौतिक तापा। (मा० ७।२१।१)
दैहिक-(सं०)-देह संबंधी, शारीरिक, तीन तापों या दुःखों में से एक। सारी शारीरिक बीमारियाँ इसी के अंतर्गत आती हैं। उ० दैहिक दैविक भौतिक तापा। (मा० ७।२१।१)
दो (२)-(सं० द्वि)-एक और एक, तीन से एक कम, २। दोइ-दोनों, युगल। दोउ-दे० 'दोइ'। उ० दोउ तन तकि मयन सुधारत सायक। (जा० ६४) दोऊ-दे० 'दोइ'। उ० आखर मधुर मनोहर दोऊ। (मा० १।२०।१)
दोख-दे० 'दोष'।
दोखिबे-दे० 'दोषिबे'।
दोना-(सं० द्रोण)-पत्ते का बना हुआ पात्र विशेष। उ० फल फूल अंकुर मूल धरे सुधारि भरि दोना नये। (गी० ३।१७) दोनी-छोटा दोना। दे० दोना'। उ० सोमा सुधा पिए करि अँखिया दोनी। (गी० २।२२) दोने-दोना का बहुवचन। दे० 'दोना'। उ० सोमा-सुधा, आलि! अँचवहु करि नयन मंजु मृदु दोने। (गी० २।२३)
दोष (१)-(सं०)-१ दूषण, खराबी, बुराई, ऐब, २ अपराध, लांछन, कलंक, ३ पाप, ४ वैद्यक के अनुसार वात, पित्त और कफ, ५ छिद्रक। उ० २ बिनु कारन हठि दोष लगावति तात गए गृह तामहिं। (कृ० ५) दोषउ-दोष को भी। उ० दोषउ गुन सम कह सबु कोई। (मा० १।६९।२)
दोष (२)-(सं० द्वेष)-विरोध, शत्रुता।
दोषा-दे० 'दोष (१)'। उ० १ समन दुरित दुख दारिद दोषा। (मा० १।७३।२)
दोषिबे-दुखित कराने, दुखाने। उ० खल दुख दोषिबे को जन परितोषिबे को। (ह० ११)
दोषु-दे० 'दोष (१)'। उ० ५ सत्य कहउँ नहिं दोषु हमारें। (मा० २।३१।२)
दोस-दे० 'दोष' (१)। उ० ३ मोसे दोस-कोस पोसे, तोसे माय जायो को। (वि० १७६)
दोसा-दे० 'दोष (१)'। उ० १ गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा। (मा० २।१३१।२)
दोसु-दे० 'दोष(१)'। उ० २ बेषु बिलोकें कहेसि कछु बालकहू नहिं दोसु। (मा० १।२८१)
दोसू-दे० 'दोष(१)'। उ० २ छुअत टूट रघुपतिहु न दोसू। (मा० १।२७२।२)
दोहरा-दे० 'दोहा'। उ० साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान। (दो० ५५४)
दोहा-(सं० द्विपथक)-हिंदी का एक प्रसिद्ध छंद जिसे उलट देने से सोरठा हो जाता है। इसके पहले और तीसरे चरण में १३ १३ तथा दूसरे और चौथे में ११ ११ मात्राएँ होती हैं। उ० छंद सोरठा सुंदर दोहा। (मा० १।३७।३)
दोहाई-दे० 'दुहाई'। उ० ३ सोइ करिहउँ रघुबीर दोहाई। (मा० २।१०४।३) मु० फिरी दोहाई-राजा के सिंहासन पर बैठने पर उसके नाम की घोषणा हुई। उ० जब प्रताप रबि भयउ नृप फिरी दोहाई देस। (मा० १।१५३)
दौन (१)-(सं० दमन)-दमन करनेवाला, नष्ट करनेवाला, समाप्त करनेवाला। उ० दीजै दरस दूरि कीजै दुख हौ तुम्ह आरत आरति दौन। (गी० २।२०)
दौन (२)-(सं० दावाग्नि)-दावाग्नि, बहुत बड़ी आग। उ० कहा भलो धौं भयो भरत को लगे तरुन-तन दौन। (गी० २।८३)
दौर-(अर०)-चक्कर, भ्रमण, आना जाना। उ० स्वामी सीतानाथ जी तुम लगि मेरी दौर। (स० ६६)
दौरि-(सं० धोरण)-दौड़कर। उ० खोरि खोरि धाइ धाइ दौरि दीन्ही अति आगि है। (क० ५।१४) दौरे-दौड़े, भगे। उ० धाजि चली खर दूषन और अनेक गिरे जे जे भीति में दौरे। (क० ६।१२)
द्याइबी-दिखा देना, दिखाइयगा। द्यायबी-दे० 'द्याइबी'। द्यावबी-दे० 'द्याइबी'। उ० मेरिऔ सुधि द्यावबी कछु करुन-कथा चलाइ। (वि० ४१)
द्यु-(सं०)-१ स्वर्ग, २ आकाश, ३ अग्नि, ४ दिन, ५ सूर्य-लोक। (वि० ७१)
द्युति-(सं०)-१ चमक २ छवि, सुंदरता। उ० १ श्याम-नव-तामरस-दाम द्युति वपुष-छवि, कोटि मदनार्क अगणित प्रकाशम्। (वि० ५०)
द्युलोक-(सं०)-स्वर्गलोक।
द्यूत-(सं०)-जुआ, एक खेल जिसे बुरा समझा जाता है। पासा।
द्योत-(सं०)-१ प्रकाश, उजेला, २ धूप।
द्रव्य-दे० 'द्रव्य'। उ० मंगल द्रव्य लिएँ सब ठाढ़ीं। (मा० १।३४८।३)

द्रव-(सं०)-१ तरल पदार्थ, पानी आदि बहनेवाली चीजें, २ पिघला हुआ, ३ बहाव, दौड़, ४ विनोद, हँसी, ५ वेग, गति, ६ गीला, ओद, ७ बह जाती है। उ० ७ जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी। (मा० ३।१७।३)
द्रवइ-१ पिघलता है, दयालु होता है, २ दया करे, पिघले। उ० १ निज परिताप द्रवइ नवनीता। (मा० ७।१२५।४)
द्रवउँ-द्रवित होता हूँ, दयालु होता हूँ, प्रसन्न होता हूँ। उ० १ आतं येगि द्रवउँ मैं भाई। (मा० ३।१६।१) द्रवउ-दे० 'द्रवौ'। उ० जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवउ सो श्री भगवाना। (मा० १।१८६। छं० ४) द्रवत-द्रवित होता है, पिघलता है, दया करता है, प्रसन्न होता है। उ० औढर-दानि द्रवत पुनि थोरे। (वि० ६) द्रवति-टपकती है पिघलती है। उ० बिन ही ऋतु तरुवर फरत, सिला द्रवति जल जोर। (दो० १७३) द्रवहिं-पिघलते हैं, द्रवित होते हैं, विचलित होते हैं। उ० पर दुख द्रवहिं सत सुपुनीता। (मा० ७।१२५।४) द्रवहि-१ दया करे, पिघले, २ पिघलता है, पसीजता है। उ० १ तुलसिदास इन्द्र पर जो द्रवहि हरि तौ पुनि मिलौं बैर बिसराई। (कृ० २६) द्रवहु-१ द्रवित हो, पिघलो, २ पिघलते हो। उ० २ कस न दीन पर द्रवहु उमावर। (वि० ७)
द्रवै-दे० 'द्रवइ'। उ० २ जो लौं देवी द्रवै न भवानी अन्नपूरना। (क० ७।१४८)
द्रवित-१ बहता हुआ, पिघला हुआ, २ कृपायुक्त।
द्रव्य-(सं०)-१ वस्तु पदार्थ, चीज़, २ सामग्री, सामान, ३ धन, दौलत ४ औषधि, दवा।
द्रष्टा-(सं०)-१ देखनेवाला, साक्षात करनेवाला, २ प्रकाशक, ३ सांख्य के अनुसार पुरुष, ४ योग के अनुसार आत्मा। उ० १ परम कारन, कंजनाभ, जलदाभतनु, सगुन निर्गुन, सकल दृश्य द्रष्टा। (वि० ५३)
द्रुत-(सं०)-१ शीघ्र, तुरत, २ द्रवीभूत, गला या पिघला हुआ, ३ तेज़ जानेवाला, ४ विन्दु, शून्य ५ आकाश, गगन, ६ कूर्म, ७ पेड़, ८ बिल्ली, ९ बिच्छू।
द्रुपद-(सं०)-उत्तर पांचाल का महाभारतकालीन एक राजा। यह चन्द्रवंशी पृषत का पुत्र था। द्रुपद और द्रोण मित्र थे पर राजा होने पर द्रुपद ने मित्रता नहीं निभाई। इससे द्रोण रुष्ट हुए और कौरवों-पांडवों से विद्या देने के बाद दक्षिणा रूप में द्रुपद को बाँधकर सामने लाने को कहा। कौरव तो यह नहीं कर सके पर पांडव उन्हें ले आए। द्रुपद का आधा राज्य द्रोण ने ले लिया। इससे द्रुपद रुष्ट हुए और यज्ञ करके द्रोण से बदला लेने के लिए धृष्टद्युम्न नामक पुत्र और कृष्णा या द्रौपदी नामक पुत्री पैदा की। द्रौपदी का विवाह पांडवों से हुआ। महाभारत की लड़ाई में द्रुपद मारे गए। उ० प्रीति प्रतीति द्रुपद तनया की भली भूरि भय भभरि न भाजी। (कृ० ६१) द्रुपदसुता-द्रौपदी। उ० सास्त्र पुरान निगम आगम सब जानत द्रुपदसुता अरु बारन। (वि० २०६)
द्रुम-(सं०)-वृक्ष, पेड़। उ० डारे हैं नौ द्रुम चार गइ, धनु काँधे धरे कर सायक लै। (क० २।१३)
द्रोण-(सं०)-१ भारद्वाज के पुत्र एक प्रसिद्ध ऋषि। इन्होंने परशुराम से शस्त्र की शिक्षा पाई थी। शरद्वान की कन्या कृपी से इन्होंने विवाह किया था जिससे अश्वत्थामा पुत्र पैदा हुआ। द्रुपद से इनसे बैर था। (दे० 'द्रुपद') कौरवों पांडवों ने इनसे शिक्षा पाई थी। ये महाभारत युद्ध में कौरवों की ओर थे। युधिष्ठिर के मुख से, 'अश्वत्थामा मारा गया' सुनकर ये बेहोश हो गए और इतने में द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न ने इनका सिर काट लिया। २ कठौता, काठ का बर्तन, ३ नाव, डोंगी, ४ पेड़, ५ घड़ा, ६ द्रोणाचल नामक पर्वत जो रामायण के अनुसार क्षीरोद समुद्र के किनारे है और जिस पर सजीवनी नाम की जड़ी होती है। ७ एक प्राचीन माप जो १२६५ तोले ४ माशे अर्थात् २१ सेर के लगभग होता है। ८ बिच्छू। उ० १ कह्यो द्रोण भीषम समीर सुत महाबीर। (ह० ५)
द्रोणि-(सं०)-१ द्रोण का पुत्र अश्वत्थामा, २ द्रोण की स्त्री कृपी, ३ नौका, डोंगी, ४ एक प्राचीन तौल, ५ दोनियाँ, छोटा दोना, ६ काठ का पात्र, ७ केला, ८ नील का पौधा, ९ दो पर्वतों के बीच की भूमि, दर्रा, १० गुफा कंदरा।
द्रोन-दे० 'द्रोण'। उ० ६ द्रोन सो पहार लियो ख्याल ही उखारि कर। (ह० ६)
द्रोनाचल-(सं० द्रोणाचल)-दे० द्रोण का छठा अर्थ। उ० काल नेमि दलि बेगि बिलोक्यो, द्रोनाचल जिय जानि। (गी० ६।१)
द्रोनि-दे० 'द्रोणि'। उ० ९ जह्नु कन्या धन्य, पुन्य कृत सगर सुत, भूधर द्रोनि बिद्दरनि बहु नामिनी। (वि० १८)
द्रोह-(सं०)-बैर, द्वेष, दूसरे का अहित चिंतन। उ० कबहुँ मोह बस द्रोह करत बहु कबहुँ दया अति सोई। (वि०८१)
द्रोहा-दे० 'द्रोह'। उ० लोभ न छोभ न राग न द्रोहा। (मा० २।१३०।१)
द्रोहाई-द्रोह करने का भाव, द्रोहपना। उ० स्वामी की सेवक-हितता सब, कछु निज साँइ द्रोहाई। (वि० १७१)
द्रोहि-दे० 'द्रोही'। उ० हौं समुझत साँई द्रोहि की गति छार छिया रे। (वि० ३३)
द्रोहिहि-द्रोही को, द्वेषी को। उ० द्विज द्रोहिहि न सुनाइअ कबहूँ। (मा० ७।१२८।३) द्रोही-द्रोह करनेवाला, द्वेषी, विरोधी। उ० बिस्व बिदित छत्रिय कुल द्रोही। (मा० १।२७२।३)
द्रोहै-द्रोह करता है, बैर करता है। उ० को तुलसी से कुसेवक संग्रह्यो, सठ सब दिन साइँ द्रोहै। (वि० २६०)
द्रौपदी-(सं०)-राजा द्रुपद की कन्या जिसे अर्जुन ने जीता था पर माता कुंती की आज्ञा से जिसका विवाह पाँचों पांडवों से हुआ था। द्रौपदी अपने भाई धृष्टद्युम्न के साथ यज्ञकुंड से उत्पन्न हुई थी। जुआ में युधिष्ठिर ने सब कुछ हार जाने के बाद द्रौपदी को दाँव पर रखा और इसे भी हार गए। दुर्योधन ने द्रौपदी को जीत लेने के बाद दासी के रूप में बुलाया। रजस्वला होने के कारण द्रौपदी नहीं गई, इस पर दुःशासन उसे बलात् बाल पकड़कर घसीट ले गया और सबके सामने नंगा करने लगा। कृष्ण ने उस समय द्रौपदी की रक्षा की। द्रौपदी को पाँचों पांडवों से पाँच पुत्र थे जो अश्वत्थामा द्वारा मारे गए।

द्वंद-(सं०)-१ जोड़ा, मिथुन, दो, २ कलह, झगड़ा, बखेड़ा ३ राग द्वेष, ४ दुःख, ५ माया मोह, ६ रहस्य, गुप्त बात, ७ द्वंद युद्ध, दो आदमियों की परस्पर लड़ाई, ८ किला, ९ नर और मादे का जोड़ा, १० दुविधा, संशय। उ० १ पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे। (मा० ७।१३। छं० ४) २ रुचिर हरिसंकरी नाम मंत्रावली द्वंद दुख-हरनि आनंद खानी। (वि० ४९)

द्वंद्व-(सं०)-१ दो वस्तुएँ जो एक साथ हों, जोड़ा, २ नर और मादे का जोड़ा, ३ रहस्य, भेद की बात, ४ दो आदमियों की लड़ाई, ५ झगड़ा, बखेड़ा, कलह, ६ एक प्रकार का समास, ७ जन्म मरण, हर्ष-शोक, दुःख-सुख आदि युग्म। उ० ७ गोविंद गो पर द्वंद्व हर बिग्यान घन धरनीधर। (मा० ३।३२। छं० २)

द्वादश-(सं०)-बारह, दो और दस।

द्वादशि-दे० 'द्वादशी'।

द्वादशी-(सं०)-किसी पक्ष की बारहवीं तिथि।

द्वादस-दे० 'द्वादश'। उ० द्वादस अच्छर मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग। (मा० १।१४३)

द्वादसि-दे० 'द्वादशी'। उ० द्वादसि दान देहु अस अभय होइ त्रैलोक। (वि० २०३)

द्वापर-(सं०)-चार युगों में तीसरा युग। पुराणों के अनुसार यह युग ८६४००० वर्षों का माना गया है। उ० द्वापर परितोषत प्रभु पूजें। (मा० १।२७।२)

द्वार-(सं०)-१ दरवाजा, दुआर, दीवार में भीतर जाने या बाहर निकलने के लिए खुला हुआ स्थान, २ मुख, मुहाना, ३ सांख्य कारिका में अंतःकरण ज्ञान का प्रधान स्थान कहा गया है और ज्ञानेंद्रियाँ उसके द्वार बतलाई गई हैं। उ० १ का काहू के द्वार परौं, जो हौं सो हौं राम को। (क० ७।१०७) ३ इंद्री द्वार झरोखा नाना। (मा० ७।११८।६) द्वार-द्वार-दरवाज़े-दरवाज़े, दर-दर। उ० चंचल चरन लोभ लगि लोलुप द्वार द्वार जग लागे। (वि० १७०) द्वारे-दरवाज़े पर। उ० सूत मागध प्रबीन, बेनु बीना धुनि द्वार, गायक सरस राग रागे। (गी० ७।२) द्वारेहिं-द्वार पर, दरवाज़े पर। उ० द्वारेहिं भेंटि भवन लेइ आई। (मा० २।११९।२)

द्वारपाल-(सं०)-दरबान, ड्योढ़ीदार। उ० द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। (मा० १।१२२।२)

द्वारा (१)-(सं० द्वार)-१ द्वार, दरवाज़ा, २ द्वार पर। उ० २ बीना बेनु संख धुनि द्वारा। (मा० २।३७।३)

द्वारा (२)-(सं० द्वारात्)-ज़रिये, साधन से, कारण से।

द्विज-(सं०)-जिसका जन्म दो बार हो, १ ब्राह्मण, २ पक्षी, चिड़िया, ३ चंद्रमा, ४ ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य, ५ दाँत। उ० १ सब द्विज उठे मान बिस्वासू। (मा० १।१७३।४) ५ नासिका चारु, सुकपोल, द्विज बज्रदुति। (वि० ५१)

द्विजबंधु-(सं०)-१ संस्कार हीन द्विज या ब्राह्मण, नाम मात्र का ब्राह्मण, २ अजामिल। उ० २ गृध्र सबरि बाघ प्रह्लाद मय ब्याध गज गृद्ध द्विजबंधु निज धर्म-त्यागी। (वि० ५७)

द्विजराज-(सं०)-१ ब्राह्मण, २ चंद्रमा, ३ शिव, ४ गरुड़, ५ ब्राह्मणों में श्रेष्ठ, ६ कपूर।

द्विजराजू-दे० 'द्विजराज'। उ० गे जहँ बिबुध कुमुद, द्विजराजू। (मा० २।२१४।२)

द्वितिय-दे० 'द्वितीय'।

द्वितीय-(सं०)-दूसरा।

द्विधा-(सं०)-१ दो प्रकार से, दो तरह से, २ दो प्रकार का, भला-बुरा या ऊँच नीच इत्यादि।

द्विबिद-(सं० द्विविद)-राम की सेना का एक बंदर सेनापति। उ० द्विबिद मयंद नील-नल अंगद गद बिकटासि। (मा० ५।५४)

द्वेष-(सं०)-शत्रुता, बैर, रंज, चिढ़। उ० द्वेष दुसुख, दम खर, अवपन-कपट, दर्प मनुजाद मद-सूलपानी। (वि० ५८)

द्वेषु-दे० 'द्वेष'। उ० मनहुँ उडुगन निबह आए मिलन तम तजि द्वेषु। (गी० ७।६)

द्वै-(सं० द्वय)-दो, दोनों। उ० गुन गेह, सनेह को भाजन सो, सबही सों उठाइ कहौं भुज द्वै। (क० ७।३४)

द्वैत-(सं०)-१ युग्म, युगल, दो का भाव, २ अंतर, भेद, ३ भ्रांति, भ्रम, द्विविधा, ४ अज्ञान, मोह, अविवेक, ५ भेद-भाव, अपने को ऊँचा और दूसरों को लघु समझने का भाव, ६ द्वैतवाद। यह दार्शनिक सिद्धांत जिसमें आत्मा और परमात्मा को दो भिन्न पदार्थ मान कर विचार किया जाता है। उ० ४ द्वैत रूप तमकूप परौं नहिं अस कछु जतन बिचारी। (वि० ११३)

# ध

धंध-(?)-गड़बड़ी, गड़बड़। उ० धंध दखियत जग सोच परिनाम को। (क० ७।८३)

धधक-(?)-धधे का आडंबर, जंजाल। उ० धींग धरम ध्वज धंधक धोरी। (मा० १।१२।१)

धधा-(?)-काम, काज, पेशा।

धँसि-(सं० दशन, हि० धँसना)-धँसकर, घुसकर, पैठकर। उ० सुन्दर-स्याम सरीर-सैल तें धँसि जनु जुग जमुना अवगाहैं। (गी० ७।१३)

धकधकी-(अनु० धक)-१ जी के धक-धक करने की क्रिया या भाव, जी की धड़कन, २ गले और छाती के बीच का गड्ढा, धुकधुकी, दुगदुगी, ३ घबराहट। उ० २ सुरगन समय धकधकी धरकी। (मा० २।२४१।४) ३ दसकंधर

उर धकधकी अब जनि धावै धनु धारि। (गी० १।१६)
धका–दे० 'धक्का'। धकानि–धक्कों, टक्करों। उ० तुलसी जिन्हें धाय धुके धरनीधर, धौर धकानि सो मेरु हले हैं। (क० ६।३३)
धक्का–(अनु० धक)–१ टक्कर, आघात या प्रतिघात, २ ढकेलने की क्रिया, ३ आपदा, विपत्ति, ४ हानि, घाटा, टोटा, नुकसान।
धज–(सं० ध्वज)–१ सजावट, बनाव, सुंदर रचना, २ आकार, रूप, आकृति, ३ रंग, ४ शोभा, ५ व्यवहार।
धड़–(सं० धर)–सर, हाथ तथा पैर को छोड़कर शेष शरीर, रुंड।
धतूर (१)–(सं० धुस्तूर)–धतूरा, एक पेड़ जिसका फल विषैला होता है। इसके फल को भी धतूर या धतूरा ही कहते हैं। उ० भाँग धतूर अहार, छार लपटावहिं। (पा० ५७) धतूरै–धतूरा ही। उ० पात द्वै धतूरे के दै भोरे कै भवेस सो। (क० ७।१६२) धतूराई–धतूरा ही, केवल धतूरा। उ० भौन में भाँग, धतूरोइ आँगन, नाँगे के आगे हैं माँगने बाढ़े। (क० ७।१५४)
धतूर (२)–(अनु० धू+सं० तूर)–तुरही, नरसिंहा नाम का बाजा।
धतूरो–दे० 'धतूर'। उ० धाम धतूरो विभूति को कूरो, निवास तहाँ सब लै मरे दाहैं। (क० ७।१५५)
धनंजय–(सं०)–१ आग, अग्नि, २ पार्थ, अर्जुन, ३ अर्जुन वृक्ष, ४ चीता वृक्ष, ५ विष्णु नारायण। उ० २ जयति भीमार्जुन-व्याल सूदन-गरुड़ धनंजय रथत्रान केतू। (वि० २८)
धन (१)–(सं०)–१ संपत्ति, पूँजी २ द्रव्य, वित्त, रुपया, ३ जमीन, जायदाद, ४ स्नेह पात्र अत्यंत प्रिय व्यक्ति, ५ बारह राशियों में से एक। उ० १ हानि सुकृति धन धरम धाम के। (मा० १।३२।१)
धन (२)–(सं० धनी)–स्त्री, युवती।
धन (३)–(सं० धन्य)–प्रशंसा के योग्य, धन्य।
धनद–(सं०)–१ धन देनेवाला, दाता, २ कुबेर, ३ अग्नि। उ० २ पवन, पुरंदर, कृसानु, भानु, धनद से। (क० १।६) धनद मित्र–(सं०)–कुबेर के सखा शंकर को, शिव को। उ० ललित लल्लाट पर राज रजनीश कल, कलाधर, नौमि हर धनद मित्र। (वि० ११)
धनधारी–कुबेर। उ० रवि ससि पवन वरुन धनधारी। (मा० १।१८२।५)
धनपति–(सं०)–धन के देवता, कुबेर।
धनवत–धनी, धनवान, धनिक। उ० धनवत कुलीन मलीन अपी। (मा० ७।१०१।४)
धनवाना–दे० 'धनवान्'। उ० धनद कोटि सत सम धनवाना। (मा० ७।९२।४)
धनवान्–दे० 'धनवान्'। उ० सोचिअ बयसु कृपन धनवान्। (मा० २।१७२।३)
धनवान्–(सं०)–धनवाला, दौलतमंद, जिसके पास धन हो।
धनहीन–(सं०)–निर्धन, कंगाल। उ० धनहीन दुखी ममता बहुधा। (मा० ७।१०२।१)
धनाधिप–कुबेर, धन के स्वामी। उ० सुरराज सो राज समाज, समृद्धि विरंचि, धनाधिप सो धन भो। (क० ७।४२)
धनिक–(सं०)–१ धनी, अमीर, मालदार, २ महाजन, जो रुपया दे, ३ स्वामी, पति। उ० २ देबे को न कछू रिनियाँ हौं, धनिक तु पत्र लिखाउ। (वि० १००)
धनि (१)–(सं० धन्य)–प्रशंसनीय, सराहने लायक, धन्य।
धनि (२)–(सं० धनिन्)–धनी, अमीर, बड़ा आदमी। उ० माहुँ सरद विधु उभय, नखत धरनी धनि। (जा० ५५)
धनि (३)–(सं० धनी)–स्त्री, युवती स्त्री।
धनी–(सं० धनिक या धनिन्)–१ धनवाला, धनिक २ स्वामी, पति, ३ अधिकारी, महाजन। उ० १ बल्लभ उर्मिला के सुलभ सनेह बस, धनी धनु तुलसी से निरधन के। (वि० ३७)
धनु (१)–(सं०)–१ चाप, कमान, धनुष, २ चिरौंजी का पेड़, ३ एक राशि, ४ एक लग्न, ५ चार हाथ की माप।
धनु (२)–दे० 'धन (१)'। उ० १ बल्लभ उर्मिला के सुलभ सनेहबस, धनी धनु तुलसी से निरधन के। (वि० ३७)
धनुधर–(सं० धनुर्धर)–तीरदाज, धनुष धारण करनेवाला। उ० बीर बरियार धीर धनुधर राय हैं। (गी० २।२८)
धनुपानी–(सं० धनु+पाणि)–हाथ में धनुष लिए हुए, जिसके हाथ में धनुष हो। उ० सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी। (मा० १।१०५।२)
धनुमख–धनुयज्ञ। उ० धनुमख कौतुक जानकपुर, चले गाधिसुत साथ। (प्र० ३।६।४)
धनुधर–(सं० धनुर्धर)–१ धनुष धारण करनेवाला, तीरंदाज, २ धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।
धनुष–(सं० धनुस्)–धन्वा, कोदंड, चाप, कमान, तीर फेंकने का अस्त्र। उ० सुमन धनुष कर सहित सहाई। (मा० १।८४।२)
धनुषु–दे० 'धनुष'। उ० सनय धनुषु राम सुनु रानी। (मा० १।२५७।१)
धनुहियाँ–(सं० धनुस्)–बालकों के खेलने का धनुष, छोटा धनुष।
धनुहीं–छोटे धनुषों के समूह। उ० बहु धनुहीं तोरीं लरिकाई। (मा० १।२७१।४) धनुही–छोटा धनुष। उ० धनुही सम त्रिपुरारि धनु बिदित सकल संसार। (मा० १।२७१)
धनेश–(सं०)–१ धनी, धन का स्वामी, २ कुबेर, ३ धन राशि के स्वामी गुरु।
धनेसा–दे० 'धनेश'। उ० २ धनद कुबेर धनी धनेसा। (मा० १।४।३)
धन्य–(सं०)–१ प्रशंसा के योग्य, श्लाघ्य, ग्राह्य, २ पुण्यवान, सुकृती। उ० १ धन्य धन्य माता पिता, धन्य पुत्र बर सोइ। (दो० ३६)
धन्या–(सं०)–१ प्रशंसा के योग्य, पुण्यशीला, २ भाग्यवती स्त्री, ३ एक नदी का नाम, ४ धनदायी, ५ उप माता, ६ ध्रुव की स्त्री, ७ धनिया। उ० १ बसत

द्वंद-(सं०)-१ जोड़ा, मिथुन, दो, २ कलह, झगड़ा, बखेड़ा ३ राग-द्वेष, ४ दुःख, ५ माया मोह, ६ रहस्य, गुप्त बात, ७ द्वंद युद्ध, दो आदमियों की परस्पर लड़ाई, ८ किला, ९ नर और मादे का जोड़ा, १० दुविधा, संशय। उ० १ पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेश नित्य भजामहे। (मा० ७।१३। छं० ४) २ रुचिर हरिसकरी नाम मंत्रावली द्वंद दुख हरनि आनंद खानी। (वि० ४६)

द्वंद्व-(सं०)-१ दो वस्तुएँ जो एक साथ हों, जोड़ा, २ नर और मादे का जोड़ा, ३ रहस्य, भेद की बात, ४ दो आदमियों की लड़ाई, ५ झगड़ा, बखेड़ा, कलह, ६ एक प्रकार का समास, ७ जन्म मरण, हर्ष-शोक, दुःख सुख आदि युग्म। उ० ७ गोबिंद गो पर द्वंद्व हर बिग्यान घन धरनीधर। (मा० ३।३२। छं० २)

द्वादश-(सं०)-बारह, दो और दस।

द्वादशि-दे० 'द्वादशी'।

द्वादशी-(सं०)-किसी पक्ष की बारहवीं तिथि।

द्वादस-दे० 'द्वादश'। उ० द्वादस अच्छर मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग। (मा० १।१४३)

द्वादसि-दे० 'द्वादशी'। उ० द्वादसि दान देहु अस अभय होइ त्रैलोक। (वि० २०३)

द्वापर-(सं०)-चार युगों में तीसरा युग। पुराणों के अनुसार यह युग ८६४००० वर्षों का माना गया है। उ० द्वापर परितोषत प्रभु पूजें। (मा० १।२७।२)

द्वार-(सं०)-१ दरवाजा, दुआर, दीवार में भीतर जाने या बाहर निकलने के लिए खुला हुआ स्थान, २ मुख, मुहाना, ३ सांख्य कारिका में अंत करण ज्ञान का प्रधान स्थान कहा गया है और ज्ञानेंद्रियाँ उसके द्वार बतलाई गई हैं। उ० १ का बाहू के द्वार परौं, जो हौं सो हौं राम को। (क० ७।१०७) ३ इंद्री द्वार झरोखा नाना। (मा० ७।११८।६) द्वार-द्वार-दरवाज़े-दरवाज़े दर-दर। उ० चंचल चरन लोभ लगि लोलुप द्वार द्वार जग बागे। (वि० १७०) द्वारे-दरवाज़े पर। उ० सूत मागध प्रबीन, बेनु बीना धुनि द्वारे, गायक सरस राग रागे। (गी० ७।२) द्वारेहिं-द्वार पर, दरवाज़े पर। उ० द्वारेहिं भेंटि भवन लेइ आइ। (मा० २।११६।२)

द्वारपाल-(सं०)-दरबान, ड्योढ़ीदार। उ० द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। (मा० १।१२२।२)

द्वारा (१)-(सं० द्वार)-१ द्वार, दरवाज़ा, २ द्वार पर। उ० २ बीना बेनु संख धुनि द्वारा। (मा० २।३७।३)

द्वारा (२)-(सं० द्वारात्)-ज़रीये, साधन से, कारण से।

द्विज-(सं०)-जिसका जन्म दो बार हो, १ ब्राह्मण, २ पक्षी चिड़िया, ३ चंद्रमा, ४ ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य, ५ दाँत। उ० १ सब द्विज उठे मान बिस्वासू। (मा० १।१७३।४) ५ नासिका चारु, सुकपोल, द्विज बज्रद्युति। (वि० ५१)

द्विजबधु-(सं०)-१ संस्कार हीन द्विज या ब्राह्मण, नाम मात्र का ब्राह्मण, २ अजामिल। उ० २ वृत्र बलि बाण प्रह्लाद मय व्याध गज गृद्ध द्विजबंधु निज धर्म-त्यागी। (वि० ५७)

द्विजराज-(सं०)-१ ब्राह्मण, २ चंद्रमा, ३ शिव, ४ गरुड़, ५ ब्राह्मणों में श्रेष्ठ, ६ कपूर।

द्विजराजू-दे० 'द्विजराज'। उ० गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू। (मा० २।२६४।२)

द्वितिय-दे० 'द्वितीय'।

द्वितीय-(सं०)-दूसरा।

द्विधा-(सं०)-१ दो प्रकार से, दो तरह से, २ दो प्रकार का, भला-बुरा या ऊँच-नीच इत्यादि।

द्विविद-(सं० द्विविद्)-राम की सेना का एक बंदर सेनापति। उ० द्विविद मयंद नील नल अंगद गद विकटासि। (मा० ५।५४)

द्वेष-(सं०)-शत्रुता, बैर, रंज, चिढ़। उ० द्वेष दुर्मुख, दंभ खर, अकंपन-कपट, दर्प मनुजाद मद-सूलपानी। (वि० ५८)

द्वेषु-दे० 'द्वेष'। उ० मनहुँ उडुगन निबह आए मिलन तम तजि द्वेषु। (गी० ७।६)

द्वै-(सं० द्वय)-दो, दोनों। उ० गुन गेह, सनेह को भाजन सो, सबही सों उठाइ कहौं भुज द्वै। (क० ७।३४)

द्वैत-(सं०)-१ युग्म, युगल, दो का भाव, २ अंतर, भेद, ३ भ्रांति, भ्रम, द्विविधा, ४ अज्ञान, मोह, अविवेक, ५ भेद-भाव, अपने को ऊँचा और दूसरों को लघु समझने का भाव, ६ द्वैतवाद। यह दार्शनिक सिद्धांत जिसमें आत्मा और परमात्मा को दो भिन्न पदार्थ मानकर विचार किया जाता है। उ० ४ द्वैत रूप तमकूप परौं नहिं अस कछु जतन बिचारी। (वि० ११३)

## ध

धंध-(?)-गड़बड़ी, गड़बड़। उ० धंध देखियत जग सोच परिनाम को। (क० ७।८३)

धंधक-(?)-धंधे का आडंबर, जंजाल। उ० धींग धरम ध्वज धंधक धोरी। (मा० १।१२।१)

धंधा-(?)-काम, काज, पेशा।

धँसि-(सं० दंशन, हिं० धँसना)-धँसकर, घुसकर, पैठकर। उ० सुन्दर स्याम सरीर-सैल तें धँसि जनु जुग जमुना अवगाहैं। (गी० ७।१३)

धकधकी-(अनु० धक)-१ जी के धक-धक करने की क्रिया या भाव, जी की धड़कन, २ गले और छाती के बीच का गड्ढा, धुकधुकी, दुगदुगी, ३ घबराहट। उ० २ सुरगन समय धकधकी धरकी। (मा० २।२५१।४) ३ दसकंधर

उर धकधकी अब जनि धावै धनु धारि। (गी० १।१६)

धका–दे० 'धक्का'। धकानि–धक्कों, टक्करों। उ० तुलसी जिन्हैं धाय धुके धरनीधर, धौर धकानि सा मेरु हले हैं। (क० ६।३३)

धक्का–(अनु० धक)–१ टक्कर, आघात या प्रतिघात, २ ढकेलने की क्रिया, ३ आपदा, विपत्ति, ४ हानि, घाटा, टोटा, नुकसान।

धज–(स० ध्वज)–१ सजावट, बनाव, सुन्दर रचना, २ आकार, रूप, आकृति, ३ रंग, ४ शोभा, ५ व्यवहार।

धड़–(स० धर)–सर, हाथ तथा पैर को छोड़कर शेष शरीर, रुंड।

धतूर (१)–(स० धुस्तूर)–धतूरा, एक पेड़ जिसका फल विषैला होता है। इसके फल को भी धतूर या धतूरा ही कहते हैं। उ० भाँग धतूर अहार, छार लपटावहिं। (पा० ५७) धतूरै–धतूरा ही। उ० पात द्वै धतूरे के दै भोरे कै भवेस सो। (क० ७।१६२) धतूराई–धतूरा ही, केवल धतूरा। उ० भौन में भाँग, धतूरोइ आँगन, माँगे के आगे हैं माँगने बावे। (क० ७।१५४)

धतूर (२)–(अनु० धू+स० तूर)–तुरही, नरसिंहा नाम का बाजा।

धतूरो–दे० 'धतूर'। उ० धाम धतूरो विभूति को कूरो, निवास तहाँ सब लै मरे दाहे। (क० ७।१५२)

धनंजय–(स०)–१ आग, अग्नि, २ पार्थ, अर्जुन, ३ अर्जुन वृक्ष, ४ चीता वृक्ष, ५ विष्णु नारायण। उ० २ जयति भीमार्जुन-व्याल सूदन-गर्वहर धनंजय-रथत्रान केतू। (वि० २८)

धन (१)–(स०)–१ संपत्ति, पूँजी, २ द्रव्य वित्त, रुपया, ३ ज़मीन, जायदाद, ४ स्नेह पात्र, अत्यंत प्रिय व्यक्ति, ५ बारह राशियों में से एक। उ० १ ग्यानि सुकृति धन धरम धाम के। (मा० १।३२।१)

धन (२)–(स० धनी)–स्त्री, युवती।

धन (३)–(स० धन्य)–प्रशंसा के योग्य, धन्य।

धनद–(स०)–१ धन देनेवाला, दाता, २ कुबेर ३ अग्नि। उ० २ पवन, पुरंदर, कृसानु, भानु धनद से। (क० १।६) धनद मित्र–(स०)–कुबेर के सखा शंकर को, शिव को। उ० ललित ललाट पर राज रजनी शकल, कलाधर, नौमि हर धनद मित्र। (वि० ११)

धनधारी–कुबेर। उ० रवि ससि पवन बरुन धनधारी। (मा० १।१८२।५)

धनपति–(स०)–धन के देवता, कुबेर।

धनवत–धनी, धनवान, धनिक। उ० धनवत कुलीन मलीन अपी। (मा० ७।१०१।४)

धनवाना–दे० 'धनवान्'। उ० धनद कोटि सत सम धनवाना। (मा० ७।९२।४)

धनवान्–दे० 'धनवान्'। उ० सोचिअ बयसु कृपन धनवान्। (मा० २।१७२।३)

धनवान्–(स०)–धनवाला, दौलतमंद, जिसके पास धन हो।

धनहीन–(स०)–निर्धन, कंगाल। उ० धनहीन दुखी ममता बहुधा। (मा० ७।१०२।१)

धनाधिप–कुबेर, धन के स्वामी। उ० सुरराज सो राज समाज, समृद्धि बिरंचि, धनाधिप सो धन भो। (क० ७।४२)

धनिक–(स०)–१ धनी, अमीर, मालदार, २ महाजन, जो रुपया दे, ३ स्वामी, पति। उ० २ देवे को न कछू रिनियाँ हौं, धनिक तु पत्र लिखाउ। (वि० १००)

धनि (१)–(स० धन्य)–प्रशंसनीय, सराहने लायक, धन्य।

धनि (२)–(स० धनिन्)–धनी, अमीर, बड़ा आदमी। उ० मानहुँ सरद बिधु उभय, नखत धरनी धनि। (जा० ५५)

धनि (३)–(स० धनी)–स्त्री, युवती स्त्री।

धनी–(स० धनिक या धनिन्)–१ धनवाला, धनिक २ स्वामी, पति, ३ अधिकारी, महाजन। उ० १ बल्लभ उर्मिला के सुलभ सनेह बस, धनी धनु तुलसी से निरधन के। (वि० ३७)

धनु (१)–(स०)–१ चाप, कमान, धनुष, २ चिरौंजी का पेड़, ३ एक राशि, ४ एक लग्न, ५ चार हाथ की माप।

धनु (२)–दे० 'धन (१)'। उ० १ बल्लभ उर्मिला के सुलभ सनेहबस, धनी धनु तुलसी से निरधन के। (वि० ३७)

धनुधर–(स० धनुर्द्धर)–तीरदाज, धनुष धारण करनेवाला। उ० बीर बरियार धीर धनुधर राय हैं। (गी० ३।२८)

धनुपानी–(स० धनु+पाणि)–हाथ में धनुष लिए हुए, जिसके हाथ में धनुष हो। उ० सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी। (मा० १।१०४।२)

धनुमख–धनुषयज्ञ। उ० धनुमख कौतुक जनकपुर, चले गाधिसुत साथ। (प्र० ४।६।४)

धनुधर–(स० धनुर्द्धर)–१ धनुष धारण करनेवाला, तीरदाज, २ धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

धनुष–(स० धनुस्)–धन्वा, कोदंड, चाप, कमान, तीर फेंकने का अस्त्र। उ० सुमन धनुष कर सहित सहाइ। (मा० १।८४।२)

धनुषु–दे० 'धनुष'। उ० भजेउ धनुषु राम सुनु रानी। (मा० १।२५७।१)

धनुहियाँ–(स० धनुस्)–बालकों के खेलने का धनुष, छोटा धनुष।

धनुहीं, छोटे धनुषों के समूह। उ० बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं। (मा० १।२७१।४) धनुही–छोटा धनुष। उ० धनुही सम त्रिपुरारि धनु बिदित सकल संसार। (मा० १।२७१)

धनेश–(स०)–१ धनी, धन का स्वामी, २ कुबेर, ३ धन राशि के स्वामी गुरु।

धनेसा–दे० 'धनेश'। उ० २ सब अवगुन धन धनी धनेसा। (मा० १।४।३)

धन्य–(स०)–१ प्रशंसा के योग्य, श्लाघ्य, वाह, २ पुण्यवान, सुकृती। उ० १ धन्य धन्य माता पिता, धन्य पुत्र बर सोइ। (वै० ३६)

धन्या–(स०)–१ प्रशंसा के योग्य, पुण्यशीला, २ भाग्यवती स्त्री, ३ एक नदी का नाम, ४ वनदेवी, ५ उपमाता, ६ ध्रुव की स्त्री, ७ धनिया। उ० १ बसत

विबुधापगा निकट तट सदनवर, नयन निरखति नर तेऽति धन्या। (वि० ६१)

धन्विनौ–दोनो धनुर्धर, दोनो धनुषधारी। उ० शोभाढ्यौ वर धन्विनौ श्रुतिनुतौ, गो विप्रवृ द प्रियौ। (मा० ४।१। श्लो० १) धन्वी–(सं० धन्विन्)–धनुर्धर, धनुषधारी। उ० धन्वी कामु नदी पुनि गगा। (मा० ६।२६।३)

धमधूसर–(अनु० धम+सं० धूसर)–स्थूल और बेडौल मनुष्य, भद्दा मोटा और सुस्त आदमी। उ० कलिकाल बिचार अचार हरो, नहिं सूझै कछू धमधूसर को। (क० ७।१०३)

धर–धारण करनेवाले। उ० धर त्रिलोक नायक। (मा० ३।४। छं० ३) धर (१)–(सं०)–१ धारण करनेवाला, ग्रहण करनेवाला, पकड़नेवाला, २ पकड़ा, ३. धारण किए हुए, पकड़कर, ४ पर्वत, ५ अमृत, ७ धर्मराज, कच्छप जो पृथ्वी को शिर पर लिए हैं। ८ धरती, पृथ्वी। उ० १ बसन किंजल्क-धर चक्र-सारग-दर-कज-कौमोदकी अति बिसाला। (वि०५१) ८ मम पाछें धर धावत धरें सरासन बान। (मा० ३।२६)

धर (२)–दे० 'धड़'। उ० धरनि धसइ धर धाव प्रचडा। (मा० ६।७१।३)

धरइँ–(सं० धरण, हिं० धरना)–पकड़ती हैं, धरती हैं। उ० ललना-गन जब जेहि धरइँ धाइ। (गी० ७।२२) धरइ–धारण करता है, धरते हैं। उ० तपबल सेषु धरइ महिभारा। (मा०१।७३।४) धरउँ–१ धारण करता, २ धारण करूँ। उ० १ जोइ तनु धरउँ तजउँ पुनि अनायास हरि जान। (मा०७।१०१ ग) धरऊँ–धारण करता। उ० त्रिजग देव नर जोइ तनु धरऊँ। (मा० ७।११०।१) धरत–१ धरते हैं, रखते हैं, २ पकड़ते हैं, ३ धारण करने के समय। उ० १ सुनि अनुकूल मुदित मन मानहुँ धरत धीर अहि धाइ कै। (गी० १।६८) ३ का सुनि सकुचे कृपालु नर सरीर धरत। (वि०१३४) धरनि (१)–१ धारणा, २ धरना, रखने का भाव। उ० २ ठुमुक ठुमुक पग धरनि नटनि, लरखरनि सुहाई। गी०१।२७) धरहिं–(सं०धरण, हिं० धरना)–धरते हैं, पकड़ते हैं। उ० एक धरहिं धनु धाय नाइ सिर बैठहिं। (जा०१२) धरहि–धारण करो, रक्खो। उ० धरनि धरहि मन धीर कह बिरचि हरिपद सुमिरु। (मा० १।१८४) धरहीं–१ रखते हैं, २ धारण करते हैं, ३ पकड़ते हैं, ४ आरोपित करते हैं। उ० २ कृपा सिंधु जन हित तनु धरहीं। (मा० १।१२२।१) ३ तमकि ताकि तकि सिवधनु धरहीं। (मा० १।२५०।४) ४ निज अयान राम पर धरहीं। (मा० ७।७३।५) धरहु–धरो, पकड़ो, पकड़ लो। उ० कोउ कह जिअत धरहु द्वौ भाई। (मा० ३।१८।५) धरहू–१ पकड़ो, पकड़ लो, २ पकड़े रहिए। उ० २ जानि मनुज जनि हठ मन धरहू। (मा० ६।१४।४) धरा (१)–(सं०धरण) १ रक्खा, २ धारण किया, उठाया, ३ पकड़ लिया। उ० २ छुइ नाथ केहि रतिनाथ जेहि कहुँ कोपि कर धनु सरु धरा। (मा० १।८४।छं०१) ३ धाइ धरा जिमि जतु बिसपा। (मा०६।२४।८) धरि–१ धारण कर, २ रखकर, ३ पकड़ कर। उ० १ सुनि धरि धरि नृप बेष चले प्रमुदित मन। (जा० ११) धरिअ–धरिए, धरिएगा, धरना चाहिए, रखना चाहिए। उ० ससय असम धरिअ उर काऊ। (मा० १।५१।३) धरित (१)–(सं० धरण)–१ धारण कर, २ पकड़कर, थामकर, ३ थामती, पकड़ती, गहती। उ० १ अतुल मृगराज वपु धरित, बिदरित अरि, भक्त-प्रह्लाद अह्लादकर्ता। (वि० ५२) धरिबे–धारण करने, धरने। उ० धरिबे को धरनि, तरनि तम दलिबे को। (ह० ११) धरिहउँ–धारण करूँगा। उ० तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा। (मा० १।१८७।१) धरिहहिं–धारण करेंगे, ग्रहण करगे। उ०धरिहहिं बिनु मनुज तनु तहिआ। (मा० १।१३६।२) धरिहौ–१ रक्खोगे, २ ध्यान धोगे, ध्यान करोगे। उ० २ जौ पै जिय धरिहौ अवगुन जन के। (वि०९६) धरी–१ रक्खा, धारण किया, २ धरकर, धारण कर, ३ उपस्थित की। उ० १ धरी न काहूँ धीर सब के मन मनसिज हरे। (मा० १।८५) ३ धर बात धरनि समेत कन्या आनि सब आगे धरी। (पा० ९२) धरु–धारण करो, पकड़ो रक्खो। उ० सम, सतोष, बिचार बिमल अति, सतसगति, ए चारि दृढ़ करि धरु। (वि० २०५) धरे–रक्खे हुए, धारण किए हुए, रक्खे। उ० सुख-मदिर सुंदर रूप सदा उर आनि धरे धनु भाथहि रे। (क० ७।२९) धरेउँ–धारण किए। उ० एहि बिधि धरेउँ बिबिध तनु ग्यान न गयउ खगेस। (मा० ७।१०९) धरेउ–धारण किया। उ० भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप। (मा०७।७२ क) धरेऊ–धरा, रक्खा। उ० कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ। (मा० ७।८३।२) धरेन्हि–धरे, पकड़े, ग्रहण किए। उ० तदपि न उठइ धरेन्हि कच जाई। (मा०६।७६।२) धरेसि–१ पकड़ लिया, २ पकड़ लेता है। उ० १ कोपि कूदि द्वौ धरसि बहोरी। (मा० ६।६८।५) धरेहु–रखना, रक्खे रहना, रक्खो। उ०सतत हृदय धरेहु मम काजू। (मा०४।१२।५) धरै–१ धारण करता है, धारण कर लेता है, २ धारण करे। धरो–१ रक्खा हुआ, २ पकड़ो, ३ रक्खो, ४ रक्खा है। उ० २ कह्यो 'धरो धरो' धाए बीर बलवान हैं। (क० ५।७) धरोइ–रख लिया, रख ही लिया। उ० दीपक काजर सिर धरयो, धरयो सु धरयो धरोइ। (दो० १०९) धरौं–१ धरूँ, धारण करूँ, २ धारण करता हूँ। उ० १ बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। (मा०१।२५८।३) धरयो–१ धरता है, धारण करता है, २ रक्खा, ३ धारण किया। उ० १ निज तालूगत रुधिर पान करि मन सतोष धरयो। (वि० ९२)

धरकत–१ धड़कते हैं, डरते हैं, २ डरते हुए। उ० २ दास तुलसी परत धरनि, धरकत झुकत। (क०६।४६) धरकी–(अनु० धड़)–धड़कने लगी, धड़धड़ करने लगी। उ० सुर गन समय धकधकी धरकी। (मा० २।२४१।४)

धरण–(सं०)–१ धारण करनेवाला, २ थामने या धरने की क्रिया, ३ सेतु, पुल, ४ ससार, जगत।

धरणि–(सं०)–दे० 'धरणी'।

धरणी–(सं०)–१ पृथ्वी धरती, २ धारण करनेवाली, ३ शाल्मलि वृक्ष। उ० १ अतुल बल विपुल विस्तार,

बिग्रह गौर, अमल अति धवल धरणी धराभ। (वि० ११)
धरन-दे० 'धरण'। उ० १ तरल-तृष्णा-तमी-तरणि धरनी धरन सरन-भय हरन करुना निधान। (वि० ५४) २ तिन्हहि धरन कहुँ भुजा पसारी। (मा० ६।६८।४)
धरनहार-धरनेवाला, थामने या पकड़नेवाला। उ० धरनी धरनहार भजन भुवन भार। (वि० ३७)
धरनि-दे० 'धरणि'। उ० १ वारिचर वपुधर, भक्त निस्तार पर, धरनिकृत नाव महिमाति गुर्वी। (वि० ५२) २ धर्म वर्मनिकर कृपान, सूल सेल धनुषवानधरनि, दलनि दानव दल, रन करालिका। (वि० १६) धरनिहिं-पृथ्वी को। उ० तव ब्रह्मा धरनिहि समुझावा। (मा० १।१८७।५)
धरनिधर-(स० धरणि+धर)-१ भूधर, पर्वत २ हिमाचल, पार्वती के पिता, ३ त्रिकूट पर्वत, ४ शेषनाग, ५ कच्छप भगवान्, ६ राजा, ७ विष्णु, राम, ८ शिव, ९ पृथ्वी को धारण करनेवाला। उ० १ गुन निधान हिमवान धरनिधर धुर धनि। (पा०६) २ कन्यादान सकलप कीन्ह धरनिधर। (पा० १४४) ३ तज्यो धीर धरनि, धरनिधर धमकत। (क० ६।१६)
धरनिसुतौं-जानकी ने, सीता ने। उ० धरनिसुतौं धीरजु धरेउ समउ सुधरमु बिचारि। (मा० २।२८६) धरनिसुता-(स० धरणि+सुता)-जानकी, सीता।
धरनी (१)-दे० 'धरणी'। उ० १ तरल-तृष्णा-तमी तरणि धरनी धरन सरन-भय-हरन करुना निधानं। (वि० ५४) धरनीधनि-(स० धरणी+धनिन्)-राजा, नृप। उ०मनहुँ मरद बिधु उभय, नखत धरनीधनि। (जा० ५५)
धरनी (२)-(स० धरण, हि० धरना)-१ टेक, प्रतिज्ञा, २ रटन। उ० १ तुलसी अब राम को दास कहाइ हिये धरु चातक की धरनी। (क० ७।३२)
धरनीधर-दे० 'धरनिधर'। उ० ४ तुलसी जिन्हें धाये धुकै धरनीधर, धौर धकानि सों मेरु हले हैं। (क० ६।३३) ७ जब पच मिलै जेहि देह करी, करनी लखु धौं धरनीधर की। (क०७।२७) ९ सकल धरम धरनीधर सेसू। (मा० २।३०६।१)
धरम-(स० धर्म)-धर्म, अधर्म का उलटा, न्यायोचित शुभ और अच्छे कर्म। उ० सपनेहुँ जिन्हकें धरम न दाया। (मा०१।१८।१) धरमादिक-अर्थ धर्म, काम तथा मोक्ष चार फल। उ० जनु धन धरमादिक तनुधारी। (मा० १।३०९।१)
धरमसील-दे० 'धर्मशील'। उ० धरमसील पंडित अरु सुभाएँ। (मा० १।२१४।२)
धरमी-(स० धर्मिन्)-धर्मात्मा, पुण्यात्मा, धर्मी। उ० करमी, धरमी, साधु, सेवक बिरत, रत। (वि० २५१)
धरमु-दे० 'धरम'। उ० धरमु बाइ बरु बपु बिरोधू। (मा० २।२२।२)
धरमू-दे० 'धरम'। उ० मागउँ भीख त्यागि निज धरमू। (मा० २।२०४।४)
धरषा-(स० धर्षण)-धर्षित हुआ, मर्दित हुआ, दब गया। उ० डोल धराधर धारि, धराधर धरषा। (क० ६।७)
धरषि-दबाकर, मर्दनकर, डराकर। उ० रिपुदल धरषि हरषि कपि बालितनय बचखपुंज। (मा० ७।३५ क)
धरहर-(स० धरण, हि० धरना)-१ गिरफ्तारी, धर पकड़, २ सहाय, अवलंब, आश्रय, ३ लड़नेवालों या झगड़ा करनेवालों को धर पकड़कर लड़ाई झगड़ा समाप्त करने का काम, बीच बिचाव, ४ रक्षा, बाचाव, ५ धैर्य, धीरज।
धरहरि-दे० 'धरहर'। उ० ३ लरत, धरहरि करत रुचिर जनु जुग फनी। (गी० ७।५)
धरा (२)-(स०)-पृथ्वी, जमीन। उ० परम सभीत धरा अकुलानी। (मा० १।१८४।२)
धराधर-(स०)-१ वह जो पृथ्वी को धारण करे, २ कूर्म, कच्छप, ३ शेषनाग, ४ विष्णु, ५ पर्वत, पहाड़, ६ धरातल। उ० ३ तथा ५ डोले धराधर धारि, धराधर धरषा। (क०६।७) धराधरन-(स०धरा+धरण)-पृथ्वी को धारण करनेवाले। उ० मरन बिपति-हर धुरधरम धराधरन वल धाम। (स०२२३) धराधरनि-१ पृथ्वी को धारण करने वालों ने, २ पहाड़ों ने। उ० १ धरा धराधरनि सु साव धान करी है। (गी० १।६०)
धराइ-१ पकड़ाकर, थमाकर, धराकर, २ धारणकर। उ० २ जेहि देह सनेह न रावरे सों असि देह धराइ कै जाय जियैं। (क०७।३८) धराई-धराया, रक्खा, निश्चय किया। उ० राम तिलक हित लगन धराई। (मा० २।१८।२)
धरासुर-(स०)-१ पृथ्वी के देवता ब्राह्मण, २ भृगु ऋषि। उ० २ भुजदंड पीन मनोहरायत उर धरासुर पद लस्यो। (मा० ६।८६। छं० १)
धरित (२)-(स० धरित्री)-धरती, पृथ्वी।
धरोहर-(स० धरण, हि० धरना)-वह वस्तु जो किसी के पास इस विश्वास पर रक्खी हो कि उसका स्वामी जब भी माँगेगा वह मिल जायेगी। थाती।
धर्ता-(स० धर्तृ)-१ धारण करनेवाला, कोई काम अपने ऊपर लेनेवाला, २ ऋणी।
धर्म-(स०)-१ प्रकृति, स्वभाव, किसी वस्तु या व्यक्ति की वह वृत्ति जो उसमें सर्वदा रहे, २ गुण, वृत्ति, ३ अलकार शास्त्र के अनुसार उपमेय और उपमान की वह बात जिसके आधार पर तुलना की जाती है। ४ शुभ कर्म, पुण्य कर्म, धरम, सत्कर्म, ५ कर्तव्य, फर्ज, ६ सम्प्रदाय, मज़हब, पथ, ७ न्याय, नीति, कानून, ८ उचित अनुचित का विचार करनेवाली चित्तवृत्ति, ९ यमराज, धर्मराज, १० धनुष, धनु, कमान, ११ सध्या-तर्पण आदि धर्मकांड जो वर्णों एवं आश्रमों के अनुसार होते हैं। उ०४ श्रुति कह परम धरम उपकारा। (मा० १।८४।१)
धर्मज्ञ-(स०)-धर्म को जाननेवाला, धार्मिक।
धर्मध्वज-(स०)-पाखंडी, दिखावे का धर्मात्मा, कपटी। उ० धींग धरमध्वज धधक धोरी। (मा० १।१२।२)
धर्मशील-(स०)-धर्म के अनुसार आचरण करनेवाला, धार्मिक।
धर्मा-१ दे० 'धर्म', २ धर्मवाला, स्वभाववाला। उ० २ महिष मत्सर क्रूर लोभ सूकर रूप, फेरु छल, दंभ, दंभ मार्जार-धर्मा। (वि० ५८)

धर्मार्थ-(स०)-धर्म का काम।
धर्मी-(स० धर्मिन्)-१ जिसमें धर्म हो, धर्मात्मा, २ मत या धर्म को माननेवाला, ३ विष्णु, हरि, ४ धर्म का आधार।
धर्ष-(स०)-१ धृष्टता, गुस्ताख़ी, २ असहनशीलता, तुनकमिज़ाज़ी, ३ अधीरता, बेसब्री, ४ अपमान, अना दर, ६ नपुंसक, नामर्द, ७ रोक, दबाव, ८ हिंसा, हत्या, ९ सतीत्व हरण।
धर्षण-(स०)-१ अवज्ञा, अपमान, २ दबाने या हराने का कार्य, ३ मर्दित करना।
धर्षि-मदन करके।
धर्षित-(स०)-हारा हुआ, मर्दित।
धव-(स०)-१ पति, २ एक वृक्ष।
धवरहर-(?)-मकान के ऊपर बनी मीनार, धौरहरा।
धवल-(स०)-१ श्वेत, उजला, २ निर्मल, झकाझक साफ़, ३ सुन्दर, मनोहर, ४ गुणयुक्त। उ० १ कुंद कर्पूर-वपु धवल निर्मल मौलि, जटा सुर तटिनि, सित सुमन माला। (वि० ४९) २ मयल धवल कल कीरति सकल भुवन भरे। (पा० ४३)
धवलिहउँ-उज्ज्वल कर दूँगा। उ० जस धवलिहउँ भुवन दस चारी। (मा० २।११०।३)
धसइ-धँसी जाती थी। उ० धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। (मा० ६।७१।३) धसी-(स० ध्वसन)-उतरी, पैठीं। उ० जनु कलिंदजा सुनील सैल तें धसी समीप। (गी० ७।७)
धाँकि-(स० धाक)-१ धाक जमा दी, २. आतंक जमाए हुए ३ रोब में आ गए। उ० ३ बीर बिरदैत बर बैरि धाँके। (क० ६।४५)
धाइ (१)-(स० धावन, हि० धाना)-१ तेज़ी से चली, शीघ्रता से दौड़ी, २ दौड़कर। उ० २ धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। (मा० २।३८।२) धाइ-दौड़ीं। उ० हरषित जहँ-तहँ धाईं दासी। (मा० १।१९३।१) धाई (१)-१ दौड़ी, २ दौड़कर। उ० १ सुनि ताड़का क्रोध करि धाई। (मा० १।२०९।३) धाउ-धावा बोल देता है, चढ़ जाता है। उ० धूलत लखि, पग डगत लखि, चपरि चहूँ दिसि धाउ। (दो० ५२०) धाए-१ दौड़े, २ दौड़ने पर। उ० १ नगर निकट बिमान आए सब नर नारी देखन धाए। (गी० ७।३८) धाय (१)-(स० धावन)-दौड़कर, चलकर। उ० अब साधत मनि बिनु भुजग ज्यों बिकल अंग दले जरा धाय। (वि० ८३) धायउँ-दौड़ा। उ० निर्भर प्रेम हरषि उठि धायउँ। (मा० ७।८२।२) धायउ-दौड़ा, दौड़ा आता हो। उ० क्रोधवत जनु धायउ काला। (मा० ६। ९१।१) धायल-दौड़ा। उ० अस कहि कोपि गगन पर धायल। (मा० ६।६७।३) धाय-१ दौड़ने पर, चलने पर, २ चले। उ० १ तुलसी जिन्हें धाये धुके धरनीधर, धौर धकानि सों मेरु हले हैं। (क०६।३३) धायो-दौड़ता, इधर-उधर फिरता। उ० काहे को फिरत मूढ़ मन धायो। (वि० १९९) धाव-दौड़ा। उ० धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। (मा० ६।७१।३) धावइ-दौड़ता। उ० आयुन ... उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा। (मा० १।१८३। छ०१) धावत-(स० धावन)-१ दौड़ते, ... २ ध्यान धरता है, ध्यान करता है। उ० १ जेहि कृपा सुनि अघन दीन-दुख धावत हौ तजि धाम। (वि० ९१) धावहिं-दौड़ते हैं, दौड़ रहे हैं। उ० राम-राम कहि चहूँ दिसि धावहिं। (मा० २।८६।१) धावहीं-दौड़ते हैं, दौड़ रहे हैं। उ० अतावरी गहि उड़त गीध पिसाच कर गहि धावहीं। (मा० ३।२०। छ० २) धावा-(स० धावन)-१ आक्रमण, हमला, चढ़ाई, २ दौड़, जल्दी-जल्दी आना, ३ दौड़ा, दौड़ता है। उ० ३ ताहि धरै जननी हठि धावा। (मा० १।२०३।४) धावै-दौड़े। उ० तौ ... मृग जल रूप बिषय कारन निसि बासर धावै। (वि० ११६) धावौं-चला जाऊँ। उ० जोजन सत प्रमान लै धावौं। (मा० १।२४३।४)
धाइ (२)-(स० धात्री)-धाय, दाई।
धाई (२)-दे० 'धाइ (२)'।
धाता-(स० धातृ)-१ ब्रह्मा, विधाता, २ विष्णु, ३ पालनेवाला, ४ बनानेवाला, ५ शिव। उ० १ रामहि भजहिं तात सिव धाता। (मा० ७।१०६।२)
धातु-(स०)-१ खान से उत्पन्न सोना, लोहा, चाँदी आदि खनिज पदार्थ, २ धारण करने योग्य वस्तु, ३ शब्द का मूल, माद्दा, ४ तत्व, सार, ५ शरीरस्थ रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र नाम की सात धातुएँ, ६ माला। उ० ६ गुंजावतंस विचित्र, सब अँग धातु भवभय-मोचन। (कृ० २३)
धातुराग-(स०) धातु से निकला रक्त, गेरू। उ० सिय अँग लिखैं धातुराग, सुमननि भूषन बिभाग। (गी० २। ४४)
धातुवाद-(स०)-कीमियागरी, ताँबे से सोना बनाना। उ० धातुवाद, निरुपाधि बर, सद्गुरु-लाभ, सुमीत। (दो० ५२७)
धान-(स० धान्य)-१ बिना कूटा हुआ चावल, २ चावल का पौधा, ३ अनाज। उ० २ देव न बरषहिं धरनीं बए न जामहिं धान। (मा० ७।१०१ ख)
धानी (१)-(स०)-१ स्थान, ठौर, २ धान की पत्ती के रङ्ग का। उ० १ जातुधान धारि धूरि धानी करि डारी है। (ह० २७)
धानी (२)-(स० धाना)-भुना हुआ जौ या गेहूँ।
धान्य-(स०)-१ अन्न, गल्ला। कुछ स्मृतियों के अनुसार खेत में के अन्न को शस्य और छिलके सहित अन्न को धान्य कहते हैं, २ धान, व्रीहि, शालि, ३ धनिया, धना, ४ एक प्रकार का नागरमोथा।
धाम-दे० 'धाम'। धाम-(स०)-१ घर, भवन, स्थान, २ बैकुंठ, ३ देश, ४ आश्रय, ५ तेज, प्रभा, दीप्ति, ६ राशि, ७ प्रभाव, ८ पुण्य क्षेत्र, देवालय मंदिर, ९ शक्ति, १० जन्म, ११ किरण, १२ अवस्था, १३ गति, १४ विष्णु, १५ शोभा, १६ समूह। उ० १ साधक कलेस ... सब गौरिहि निहोरत धाम कों। (पा० ३६) ... को। उ० कबहुँ न जात पराये धामहिं ... -पद ... प्रकाशिनी- ... (मा० ... दे ... देने

वाला। धामदा-बैकुंठ देनेवाली, धाम देनेवाली। उ० राम धामदा पुरी सुहावनि। (मा० ११३५१२)
धामा-दे० 'धाम'। उ० १ लूटहिं तस्कर तव धामा। (वि० १२५)
धामिनी-१ धामवाली, घर बनानेवाली, २ स्थान करनेवाली, ३ रहनेवाली, ४ गमन करनेवाली, दौड़नेवाली। उ० ४ मिलित जल पात्र अज-युक्त हरि चरन रज, विरज वरवारि त्रिपुरारि सिर धामिनी। (वि० १८)
धामू-दे० 'धाम'। उ० १६ मायाधीस ग्यान गुन धामू। (मा० ११११७१४)
धाय (१)-(सं० धात्री)-दाइ, बच्चों को दूध पिलानेवाली स्त्री।
धार-(सं०)-१ जल आदि का प्रवाह, बहाव, २ हथियारों का तेज अंश, किनारा, ३ किनारा, छोर, ४ सेना, फ़ौज, ५ दिशा, ओर, तरफ़, ६ गंभीर, गहरा, ७ ऋण, क़र्ज़, ८ प्रांत, प्रदेश, ९ नोक, अनी, कोर, १० रेखा, लकीर। उ० १ सुरजन-पूजोपहार सोभित ससि धवल धार। (वि० १७) ४ जमकर धार किधौं वरिआता। (मा० ११९५१४)
धारण-(सं०)-१ धारने की अवस्था, ग्रहण, अवलंबन, रखना, २ रक्षण, ३ क़र्ज़ लेना, ४ धारण करनेवाला।
धारणा-(सं०)-१ बुद्धि, विषयों को ग्रहण करनेवाली बुद्धि, २ मन की स्थिरता, विश्वास, ३ स्मरण, चेत, ४ उत्साह, ५ अष्टांग योग में की एक स्थिति जिसमें मन में ब्रह्म के अतिरिक्त कोई विचार नहीं आता।
धारन-दे० 'धारण'। उ० ४ धरम धुरीन सु धीर धर धारन भर पर पीर। (स० ३०५)
धारना-दे० 'धारणा'। उ० ५ ध्यान, धारना, समाधि, साधन प्रवीनता। (क० ७१६२)
धारमिक-दे० 'धार्मिक'।
धारा (१)-(सं०)-१ धार जलप्रवाह, २ घोड़े की चाल ३ समूह, समुदाय, ४ उत्कर्ष, उन्नति, ५ चलन, रीति। उ० १ मध्य धारा बिशद विश्व अभिरामिनी। (वि० १८) ३ चतुरंगिनी घनी बहु धारा। (मा० ६१७३११)
धारा (२)-(सं० धार)-किसी हथियार का तेज़ भाग जिससे काटा जाता है।
धारि (१)-(सं० धारा)-१ फ़ौज, सेना, २ डाकुओं का समूह, ३ झुंड समूह, ४ धारा, प्रवाह, बहाव। उ० १ वाटिका उजारि, अच्छ धारि मारि, जारि गढ़। (क० ५१२८) २ धाई धारि फिरि कै गोहारि हितकारी होति। (क० ७१७५)
धारि (२)-(सं० धारण, हिं० धारना)-१ धारण करके, २ क़र्ज़ लेकर के। धारिअ-धरिए, रखिए। उ० अवउ समउ अब धारिअ पाऊ। (मा० ११३११।४) धारिबे-धारण करने, पकड़ने। उ० कठिन कुठार धार धारिबे की धीरताहि। (क० ११९८) धारिहैं-रखेंगे। उ० पुर पाँव धारिहैं उधारिहैं तुलसी हूँ से जन। (गी० २१५१) धारी (१)-(सं० धारण)-धारण की, धारण किया। उ० विकृत मकरादि-सुर सिद्ध-सकोप पद-विमल-गुण-गेह-नर दह धारी। (वि० ५२) धारे-१ रक्खे हुए हैं, २ धारण किया।
उ० १ जिनको पुनीत बारि धारे सिर पै पुरारि। (क० २१८)
धारेउ-धरा, रक्खा। उ० भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ। (मा० २११६०११) धारै-धारण करे। उ० तुलसी कोटि तपनि हरै, जो कोउ धारै कान। (वै० २१)
धारिनि-(सं० धारिणी)-१ धारण करनेवाली, २ पृथ्वी, धरती, ३ अपने ऊपर लेनेवाली। उ० १ निज इच्छा लीला बपु धारिनि। (मा० ११९८१२)
धारी (२)-(सं० धारिन्)-धारण करनेवाला, जिसने धारण किया हो। उ० भस्म तनुभूपण, व्याघ्रचर्म्मांबर, उरग नरमौलि उरमालधारी। (वि० ११)
धारी (३)-(सं० धारा)-१ सेना, फ़ौज, २ समूह, झुंड, ३ रेखा, लकीर। उ० १ थकित भइ रजनीचर धारी। (मा० ३११६११)
धारैं-धाराएँ हैं, धाराएँ। उ० धारैं बान, कूल धनु, भूषन जलचर, भँवर सुभग सब घाहैं। (गी० ७११३)
धार्मिक-(सं०)-१ धर्मशील, धर्मात्मा, पुण्यात्मा, २ धर्म संबंधी, धर्म का।
धार्मीक-दे० 'धार्मिक'। उ० १ जयति धार्मीक-धुर धीर रघुवीर ! गुरु-मातु पितु बंधु-बचनानुसारी। (वि० ४३)
धार्य-(सं०)-धारणीय, धारण करने योग्य।
धावन-(सं०)-१ वेगपूर्वक गमन, दौड़ना, २ दूत, हरकारा, ३ गति, फिराव। उ० २ सो सुग्रीव केर लघु धावन। (मा० ६१२३१५)
धाहैं-(?)- ज़ोर से चिल्लाकर रोना, धाहें देना। उ० जिन्ह रिपु मारि सुरारि नारि तेइ सीस उघारि दिवाई धाहैं। (गी० ७११३)
धिक-(सं० धिक्) धिक्कार, लानत, २ फटकार।
धिग-१ धिक्कार है, २ फटकार, ३ व्यर्थ। उ० १ साँचेहु सुत वियोग सुनिबे कहँ धिग विधि मोहिं जिआयो। (गी० २१५६) ३ धिग जीवनु रघुबीर विहीना। (मा० २१८६१३)
धी-(सं०)-बुद्धि, अक्ल, समझ। उ० सरनागत तेहि राम के जिन्ह दिय धी सिय रूप। (स० १८४)
धींग-(सं० डिंगर)-१ गँवार, असभ्य, २ हट्टा-कट्टा, पुष्ट, ३ जार, उपपति, ४ पापी, कुमार्गी। उ० ४ अपनायो तुलसी सो धींग धमधूसरो। (क० ७११६)
धीम-(सं० मध्यम)-धीमा, सुस्त, आलसी, मंद।
धीय-(सं० दुहिता)-बेटी, पुत्री। उ० धीय की न माय, बाप पूत न सँभारहीं। (क० ७११५)
धीर (१)-(सं०)-१ जिसमें धैर्य हो, जो जल्द घबरा न जाय, २ बलवान, ताक़तवर, ३ विनीत, नम्र, ४ गंभीर, ५ मनोहर। उ० १ साँवरे गोरे सरीर, धीर महाबीर दोऊ। (क० ११२१) धीरौ-धैर्यवान भी। उ० दे० 'धीरै'।
धीर (२)-(सं० धैर्य)-धैर्य, धीरज, ढारस, संतोष, सब्र। धीरै-धैर्य को। उ० तुलसी मुनि सौमित्रि-बचन सब धरि न सकत धीरौ धीरै। (गी० ९११२)
धीरज-(सं० धैर्य)-धीरता, चित्त की स्थिरता, धैर्य। धीरजहि-धीरज को, धैर्य को। उ० उर धीरजहि धरि, जन्म सफल करि। (गी० २११६)

धीरजु–दे॰ 'धीरज'। उ॰ मुनि महिमा सुनि रानिहि धीरजु आयउ। (जा॰ ८७)
धीरता–(सं॰)–१ चित्त की स्थिरता, मन की दृढ़ता, धैर्य, २ शिष्टता, ३ प्रतिज्ञा। उ॰ १ मीच बिलोकि धीरता भागी। (मा॰ १।३३८।३)
धीरन्ह–धीर पुरुषों, विवेकी पुरुषों। उ॰ धीरन्ह कें मन बिरति दृढ़ाई। (मा॰ ३।३६।१)
धीरा–दे॰ 'धीर' (१)। उ॰ १ सेवत जाहि सदा मुनि धीरा। (मा॰ १।२११४)
धुआँ–(सं॰ धूम्र)–१ धूम, धुँआँ, २ नाश, विनाश, ३ मुर्दा, ४ मृत्यु, मरण, ५ टुकड़े टुकड़े होना। उ॰ २ धुआँ देखि खरदूषन केरा। (मा॰ ३।२१।३)
धुंध–(सं॰ धूम्र + अंध)–अँधेरा, मैलापन, धुँधलापन, २ अंधा।
धुकधुकी–(अनु॰ धुक धुक)–१ घबराहट, छाती का धुक-धुक करना, २ छाती, कलेजा।
धुकि–(अनु॰ धुक)–झपटकर, जल्दी से। उ॰ बाधि लकुट पट फेरि बोलाई।सुनि।कल बेनु धेनु धुकि धैया। (कृ॰ १६)
धुकै–(अनु॰ धुक) १ काँपता है, २ झुकता है। उ॰ १ तुलसी जिन्हें धाये धुकै धरनीधर, धौर धकानि सों मेरु हले हैं। (क॰६।३३)
धुज–(सं॰–ध्वजा)–पताका, ध्वजा, झंडा। उ॰ तोरन कलस चँवर धुज बिबिध बनाइन्हि। (पा॰ ६७)
धुजा–दे॰ 'धुज'। उ॰ कदलि ताल बर धुजा पताका। (मा॰ ३।३८।१)
धुन (१)–(सं॰ धनुस, हि॰ धुनकी, हि॰ धुनना)–१ लगन, किसी काम को निरंतर करते रहने की प्रवृत्ति, २ मन की तरंग, मौज, ३, चित्त, ख्याल, फ़िक्र।
धुन (२)–(सं॰ ध्वनि)–आवाज, नाद, ध्वनि।
धुन (२)–(सं॰)–काँपने की क्रिया, कंपन।
धुनइ–धुनता है, पीटता है। उ॰ जो जहँ सुनइ धुनइ सिर सोई। (मा॰ २।४६।४) धुनत–१ हिलते हैं, काँपते हैं, २ टकोरते हैं, धनुष की डोरी पर मारते हैं, ३ धुनते हैं। उ॰ २ निकट निषंग, संग सिय सोभित, करनि धुनत धनु तीर। (गी॰ २।६६) धुनहिं–धुनते हैं। उ॰ देखि निषाद बिषाद बस धुनहिं सीस पछिताहिं। (मा॰ २।८६) धुना–पीटा, पटका। उ॰ पुनि पुनि कालनेमि सिर धुना। (मा॰ ६।५६।२) धुनि (१)–(सं॰ धनुस)–१ धुनकर, पीट कर, २ सिर मारकर, ३ कँपाकर, ४ अनुनय विनय कर, ५ मन की तरंग। उ॰ १ कोमल सरीर, गँभीर बेदन, सीस धुनि धुनि रोवहीं। (वि॰ १३६) धुनेउ–धुना, पीटा। उ॰ नृप सनेहु लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ। (मा॰२।७३) धुनेऊ–पीटा, पटका, धुना।उ॰अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ। (मा॰६।६२।३)
धुनि (२)–(सं॰ ध्वनि)–१ आवाज, नाद ध्वनि, २ आशय, गूढ़ अर्थ मतलब, ३ काव्य में ... के नियत अर्थों के योग से सूचित होनेवाले अर्थ ... प्रसंग से निकलनेवाले अर्थ में विशेष ... 'ध्वनि' या 'धुनि' कहते हैं। उ॰ १ ... काज गगन भइ अस धुनि। (पा॰ ८६) ३ धुनि अवरेब कबित गुन जाती। (मा॰ १।३७।४)
धुनि (३)–(सं॰)–नदी।
धुरंधर–(सं॰)–१ भारवाही, बहुत बड़ा, २ श्रेष्ठ, ३ मन्त्र, ४ आधार, भार ढोनेवाला, धुरी धारण करनेवाला, ५ गाड़ी या हल आदि खींचनेवाला, ६ प्रधान, नेता, मुखिया, अगुआ, ७ एक राक्षस का नाम जो प्रहस्त का मन्त्री था। उ॰ ४ धर्म धुरंधर रघुकुलनाथा। (मा॰७।१।३)
धुर–(सं॰ धुर)–१ गाड़ी या रथ आदि का धुरा, २ प्रांत या प्रधान, ३ बोझ, भार, ४ आरंभ, शुरू, ५ जुआ, ६ जमीन की एक माप, ७ सटीक, ठीक, ८ दृढ़, पक्का, ९ अवधि, १० अंत, किनारा, ११ जड़, मुख्य। उ॰ १ धर्मधुर धीर रघुबीर भुजबल अतुल, हेलया दलित भू भार भारी। (वि॰ ४४)
धुरधनि–(सं॰ धुर+धन्य)–धन्य, बहुत बड़े-चढ़े। उ॰ गुन निधान हिमवान धरनिधर धुरधनि। (पा॰ ६)
धुरा–(सं॰ धुर्)–१ धुर, अक्ष, गाड़ी या रथ की धुरी, २ भार, बोझ।
धुरी–छोटा धुरा, लकड़ी या लोहे का छोटा डंडा जिस पर गाड़ी के पहिए घूमते हैं।
धुरीण–(सं॰)–१ बोझ सँभालनेवाला, धुरी को धारण करनेवाला, २ मुख्य, प्रधान, ३ धुरंधर, दिमाज, ४ साहसी, ५ अगुआ, अग्रगण्य।
धुरीन–दे॰ 'धुरीण'। उ॰ १ धरम धुरीन विषय रस रूखे। (मा॰ २।२०।२) २ भार धुरीन धरे धनुमाथा। (मा॰ २।६६।१)
धुवाँ–(सं॰ धूम्र)–१ धुआँ, धूम, २ नाश, खंड खंड होना, नष्ट भ्रष्ट होना।
धूत–(सं॰ धूर्त)–धूर्त कपटी। उ॰ धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ। (क॰ ७।१०६)
धूति–१ ठगाई, धूर्तता, कपट, २ पलट देना, ३ ठग करके, धूर्तता करके, छल से, ४ ठग, धोखा दे। उ॰ ४ तुलसी रघुबर सेवकहिं, सकै न कलिजुग धूति। (दो॰ ८७)
धूतिहौं–ठगूँगा।
धूप–(सं॰)–१ देव पूजन में सुगंधि के लिए गुग्गुल, अगर, कपूर, चंदन आदि गंध द्रव्यों को जलाकर उठाया हुआ धुआँ, सुगंधित धूम, २ आतप, घाम, ३ सरल निर्यास। उ॰ १ अचर-चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत इति बासना धूप दीजै। (वि॰ ४७)
धूम–(सं॰)–१ धुआँ, धूम्र, २ कोलाहल, हल्ला, शोर, ३ प्रसिद्धि, जनरव, शुहरत, ४ समारोह, भारी आयोजन, ५ उपद्रव, उत्पात, ६ धारा ओर सुनाई देनेवाली चर्चा। उ॰ १ होइ कुपूत सुपूत के, ज्यों पावक में धूम। (दो॰ २६८) ६ भरि भुवन सकल कल्यान-धूम। (गी॰ २।१६) धूमउ–धुआँ भी। उ॰ धूमउ तजइ सहज करुआई। (मा॰ १।१०।५)
... (सं॰)–१ अग्नि, जिसकी पताका धूम है। २ तारा, ३ केतु ग्रह, ४ शिव, ५ एक राक्षस जो ... सेना में था। उ॰ २ कैधौं ब्योम बीथिका धूमकेतु। ... २।५)

धूमकेतू-दे० 'धूमकेतु'। उ० १ घृष्णिकुल-कुमुद-राकेस राधारमन कंस बसाटवी धूमकेतू। (वि० ५२)
धूमधुज-दे० 'धूमध्वज'।
धूमध्वज-(सं०)-अग्नि, धूम ही है ध्वजा जिसकी। उ० दहन इव धूमध्वज, वृषभ-यान। (वि० १०)
धूरि-(सं० धूलि)-धूल, मिट्टी, रज। उ० बाल विभूषन बसन बर, धूरि धूसरित अंग। (दो० ११७) धूरिधानी-धूल की ढेर, नष्ट, बर्बाद। उ० जातुधान धारि धूरिधानी करि डारी है। (ह० २७)
धूरी-दे० 'धूरि'। उ० सिर धरि गुर पद पंकज धूरी। (मा० १।३५।१)
धूर्जटि-(सं०)-महादेव, शिव।
धूर्त-(सं०)-१ मायावी, छली, चालबाज २ वंचक, ३ जुआरी, ४ धतूरा, कनक, ५ साहित्य में शठ नायक का एक भेद।
धूसर-(सं०)-१ धूल के रङ्ग का, मटमैला, २ धूल लगा हुआ, धूल से भरा। उ० १ धूसर धूरि भरें तनु आए। (मा० १।२०३।५)
धूसरित-(सं०)-१ धूसर किया हुआ, धूल से मटमैला, २ धूल से भरा। उ० २ बाल बिभूषन बसन धर, धूरि धूसरित अंग। (प्र० ४।३।१)
धृत-(सं०)-१ धारण किया हुआ, ग्रहण किया हुआ, २ धरे या पकड़े हुए, ३ निश्चित, स्थिर या ठहराया हुआ, ४ पतित, गिरा हुआ। उ० २ धृत बर चाप रुचिर कर सायक। (मा० ६।११५।१)
धृति-(सं०)-१ धैर्य, धीरता, साहस, मन की स्थिरता, ठहराव, २ सुख, ३ योग विशेष। उ० १ धृति सम जावनु देइ जमाई। (मा० ७।११७।७)
धृष्ट-(सं०)-१ उद्धत, ढीठ, गुस्ताख़, २ निर्लज्ज, बेहया, ३ साहित्य में नायक का एक भेद। वह नायक जो अप राध करता जाता है, पर छल कपट से बातें बनाकर नायिका के पीछे भी लगा रहता है।
धेइ-(सं० ध्यान)-ध्यान करके, सुरति लगाकर। उ० सेइ न धेइ न सुमिरि कै पद प्रीति सुधारी। (वि० १४८)
धेनु-(सं०)-१ गाय, २ दूध देनेवाली गाय, ३ पृथ्वी। उ० १ बाँधि लकुट पट फेरि बोलाई सुनि कल धेनु धेनु धुकि धैया। (कृ० १६) २ बसन कनक मनि धेनु दान बिप्रन्ह दिए। (जा० २१२) धेनुहि-धेनु को। उ० खरी सेव सुर धेनुहि त्यागी। (मा० ७।११०।४)
धेनुमति-दे० 'धेनुमती'। उ० पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा। (मा० १।१४३।३)
धेनुमती-(सं०)-गोमती नदी।
धेनू-दे० 'धेनु'। उ० १ सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। (मा० १।१४६।१)
धैया-दौड़ पड़ी, धाई। उ० बाँधि लकुट पट फेरि बोलाइ सुनि कल धेनु धेनु धुकि धैया। (कृ० १६)
धैर्य-(सं०)-धीरज, धीरता, अव्यग्रता, उतावला न होने का भाव।
धैहै-(सं० धावन)-दौड़ेगा, धावेगा। उ० कनक-पुरी भयो भूप बिभीषन, बिबुध-समाज बिलोकन धैहै। (गी० २।२०) धैही-दौड़ोगे। उ० छगन मगन अँगना खेलिहौ मिलि ठुमुक-ठुमुक कब धैहौ। (गी० १।८)
धोइ-(सं० धावन, हि० धोना)-धोकर। उ० पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं। (मा० २।१००। छं०१)
धोएँ-धोने से। उ० छूटइ मल कि मलहि के धोएँ। (मा० ७।४९।३) धोए-धोया, साफ़ किया। उ० जिन्ह एहिं बारि न मानस धोए। (मा० १।४३।४) धोयो-साफ़ किया, धोया। उ० करम कीच जिय जानि सानि चित चाहत कुटिल मलहि मल धोयो। (वि० २४५) धोवै-दे० 'धोए'।
धोख-दे० 'धोखा'। उ० १ भाइहु लावहु धोख जनि आजु काज बड़ मोहि। (मा० २।१६१)
धोखहूँ-धोखे में भी। उ० कृपा, कोप, सति भायहूँ धोखहूँ, तिरछेहुँ राम तिहारेहि हेरे। (वि० २७२) धोखा-(सं० धूक्ता = धूर्तता)-१ छल, भुलावा, दग़ा, २ दूसरे के छल द्वारा उपस्थित भ्रांति, मिथ्या प्रतीति, ३ भूल-चूक, ग़लती, ४ निराशा, ५ संदेह, ६ मृगतृष्णा।
धोखें-धोखे से, अनजाने में। उ० जिमि धोखें मदपान कर सचिव सोच तेहि भांति। (मा० २।१४७) धोखेउ-धोखे से भी, धोखे में भी। उ० तुलसी जाके बदन तें धोखेउ निकसत राम। (वै० ३७)
धोखो-दे० 'धोखा'। उ० १ तुलसी प्रभु झूठे जीवन लगि समय न धोखो लैहौं। (गी० ३।१२)
धोबी-(सं० धावन, हि० धोना) एक जाति जिसका काम कपड़े धोना है। रजक। उ० धोबी कैसो कूकर न घर को न घाट को। (क० ७।६६) मु० धोबी कैसो कूकर-धोबी के कुत्ते सा जिसका घर पर या घाट पर कहीं भी ठिकाना न हो। व्यर्थ इधर उधर घूमनेवाला। उ० दे० 'धोबी'।
धोरी-(सं० धौरेय)-१ धुरे को उठानेवाला, भार उठाने वाला, २ बैल, ३ श्रेष्ठ पुरुष, ४ गाड़ी में आगे चलने-वाला बैल। उ० १ धींग धरमध्वज धंधक धोरी। (मा० १।१२।२) ३ नृप दोउ धरम धुरंधर धोरी। (गी०।१०२)
धौं-(सं० अथवा, हि० दैव, दहुँ)-१ एक अव्यय जो ऐसे प्रश्नों के पहले लगाया जाता है जिनमें जिज्ञासा का भाव कम और संशय का अधिक होता है। २ अथवा, ३ एक शब्द जिसका प्रयोग ज़ोर देने के लिए ऐसे प्रश्नों के पहले 'तो' या 'भला' अर्थ में होता है जिनका उत्तर काकु से 'नहीं' होता है। ४ किसी वाक्य के पूरे होने पर उससे मिले हुए प्रश्न वाक्य का आरंभ सूचक शब्द जो 'कि' का अर्थ देता है। ५ विधि, आदेश आदि के पहले केवल ज़ोर देने के लिए आनेवाला एक शब्द। ६ तो, ७ ध्रुव, निश्चय, ८ भी। उ० १ कृपा सो धौं कहाँ बिसारी राम? (वि०१२) ६ नाद पथ मिलै जेहि देह करी, करनी लघु धौं धरनीधर की। (क० ७।२७)
धौज-(सं० ध्वजन)-१ दौड़ धूप, धाप धूप, दौड़ना धूपना, २ व्याकुलता, घबराहट, ३ विवेचना, विचार, परिशीलन। उ० १ एक करै धौज, एक कहै काढ़ौ सौंज। (क० ५।१८) २ एक कहै सौज, एक धौज करै कहा है। (क० ५।६)
धौत-(सं०)-धोया हुआ, साफ़, शुद्ध, परिष्कृत।

धौर-(सं० धोरण, हिं० धौरना)-दौड़ने, दौड़ना। उ० तुलसी जिन्हें धाय धुकै धरनीधर, धौर धकानि सा मेरु हले हैं। (क० ६।३३)

धौरहर-(?)-भवन का वह ऊपरी भाग जो बहुत ऊँचा खमे की तरह हो, और जिस पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बनी हों। धरहरा, मीनार। उ० धुवाँ के से धौरहर देखि तू न भूलि रे! (वि० ६६)

धौल (१)-(सं० धवल) सफ़ेद, उज्वल। उ० मानों हरे तृन चारु चरैं बगरे सुर धेनु के धौल कलोरे। (क० ७।१४४)

धौल (२)-(अनु०)-थप्पड़, चाँटा।

ध्याइबे-ध्यान करने। उ० ध्याइबे को, गाइबे को, सेइबे सुमिरिबे को। (गी० २।३६) ध्याव-ध्यान करते हैं। ध्यान लगाते हैं, भजते हैं। उ० कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव। (मा० ६।११३।७) ध्यावहिं-ध्यान करते हैं। उ० निसि बासर ध्यावहिं गुनगन गावहिं जयति सच्चिदानंदा। (मा० १।१८६।२) ध्यावहीं-ध्यान करते हैं। उ० जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मन पर ध्यावहीं। (मा० ७।१३। छं०६)

ध्याता-(सं० ध्यातृ)-१ ध्यान करनेवाला, २ विचारक, सोचनेवाला।

ध्यान-(सं०)-१ मानसिक प्रत्यक्षीकरण, अंतःकरण में उपस्थित करने की क्रिया या भाव, २ चिंतन, मनन, सोच विचार, ३ स्मृति, याद, ४ बुद्धि, समझ, ५ चित्त को चारों ओर से हटाकर किसी एक पर स्थिर करने की क्रिया। अष्टांग योग में इसका भी स्थान है। ६ भावना, विचार, ख्याल, ७ ज्ञात वस्तु का पुनर्स्मरण। उ० ५ जीवन मुक्त ब्रह्म पर चरित सुनहिं तजि ध्यान। (मा० ७।४२)

ध्याना-दे० 'ध्यान'। उ० तब सकर देखेउ धरि ध्याना। (मा० १।५६।२)

ध्यानि-(सं० ध्यानिन्)-ध्यानी, मुनि, साधु, ध्यान लगाने वाला। उ० सोइ ज्ञानी सोइ गुनी जन, सोई दाता ध्यानि। (वै० २१)

ध्यानी-दे० 'ध्यानि'। उ० सब योगी तापस बग ध्यानी। (मा० १।१६२।३)

ध्येय-(सं०)-ध्यान करने योग्य, स्मरणीय।

ध्रुवँ-ध्रुव ने। उ० १ ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। (मा० १।२६।३) ध्रुव-१ पक्का, दृढ़, अटल, सदा एक स्थान पर रहनेवाला, २ नित्य, अनीश्वर, ३ आकाश, ४ पर्वत, ५ खंभा, ६ बरगद या पेड़, ७ विष्णु, हरि, ८ शिव, ९ ध्रुवतारा जो एक ही स्थान पर स्थिर रहता है, १० प्रसिद्ध भक्त जो राजा उत्तानपाद के पुत्र थे। राजा उत्तानपाद की सुरुचि और सुनीति नाम की दो स्त्रियाँ थीं। सुरुचि से उत्तम और सुनीति से ध्रुव पैदा हुए। राजा सुरुचि पर अधिक स्नेह रखते थे जिसका फल यह हुआ कि ध्रुव का अपमान होने लगा और वे घर से निकलकर जंगल में तप करने लगे। अंत में भगवान् ने दर्शन दिया और इनके नाम से एक ध्रुवलोक बनाकर उसमें इन्हें अवस्थित कर दिया। बाद में घर लौटकर ध्रुव ने ३६००० वर्ष तक राज्य किया और उसके बाद अपने लोक में निवास करने लगे। विष्णु के प्रसिद्ध भक्तों में इनका नाम लिया जाता है। उ० १ सिव बिरोध ध्रुव मरनु हमारा। (मा० १। ८४।२) ६ बदम यदि, मथि बिधि धरि, ध्रुव देखेउ। (पा० १४६) १० ध्रुव हरि भगत भयउ सुत जासु। (मा० १।१४२।२)

ध्रू-दे० 'ध्रुव'। उ० १० रामकथा बरनी न बनाइ, सुनी न कथा प्रह्लाद न ध्रू की। (क० ७।८८)

ध्वंस-(सं०)-नाश, क्षय, हानि।

ध्वज-(सं०)-१ ध्वजा, पताका, २ निशान, चिह्न, ३ छोटी-छोटी झंडी, ४ दर्प, घमंड। उ० १ चौकैं पूरैं चारु कलस ध्वज साजहिं। (जा० २०५)

ध्वजा-दे० 'ध्वज'।

ध्वजी-(सं० ध्वजिन्)-पताकाधारी, चिह्न धारण करने वाला।

ध्वनि-(सं०)-शब्द, नाद, स्वर।

ध्वांत-(सं०)-अंधकार, अँधेरा। उ० वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघन ध्वांतापहं तापहम्। (मा० ३।१। श्लो० १)

ध्वैहौं-(सं० धावन)-१ धाऊँगा २ धुलवाऊँगा। उ० सौ जननी! जग में या मुख की कहाँ कालिमा ध्वैहौं। (गी० २।६२)

# न

नँचहिं-(सं० नृत्य, हिं नाँच)-नाचते हैं। नँचहीं-दे० 'नचहिं'।

नंद-(सं०)-१ आनंद, हर्ष, २ सच्चिदानंद, परमेश्वर, ३ पुराणानुसार नौ निधियों में से एक ४ विष्णु, ५ लड़का, पुत्र, ६ गोकुल के गोपों के मुखिया जिनके यहाँ कृष्ण जन्म के बाद पाले गये थे। नंद की स्त्री का नाम यशोदा था। ६ महात्मा बुद्ध के सौतेले भाई। उ० ६ सुनि हँसि उठ्यो नंद को नाहरु, लियो कर कुधर उठाइ। (कृ० १८)

नंदकुमार-(सं०)-नंद के पुत्र, श्रीकृष्ण। उ० सहित सहाय तहाँ बसि अब जेहि हृदय न नंदकुमार। (वि० १८८)

नंदनंदन-(सं०)-नंद के पुत्र, श्रीकृष्ण। उ० सुम सकुचत कत हौं हीं नीके जानति, नंदनंदन हो निपट करी सठई। (कृ० ३६)

नंदन-(सं०)-१ आनंद देनेवाला, २ इंद्र के उपवन का नाम, ३ एक प्रकार का विष, ४ शिव, महादेव, ५ लड़का, ६ विष्णु, ७ एक प्रकार का अस्त्र, ८ मेघ,

बादल, ६ एक वर्ण वृत्त। उ० १ या २ सकर सुवन भवानी नदन। (वि० १)
नदललन-श्रीकृष्ण, नद के पुत्र। उ० तुलसिदास नदललन ललित लखि रिस क्यों रहति उर एन। (कृ० १५)
नंदललाऊ-(स० नद + लालक)-नदलला भी, नंदलाल भी, कृष्ण भी। उ० तुलसिदास ग्वालिनि अति नागरि, नट नागर मनि नदललाऊ। (कृ० १२)
नदसुवन-कृष्ण, नद के पुत्र। उ० तुलसिदास प्रय नदसुवन हित। (कृ० १७)
नदिनी-(स०)-१ कन्या, पुत्री, २ रेणुका नामक गध द्रव्य, ३ उमा, ४ गगा, ५ ननद, ६ दुर्गा, ७ तेरह अक्षरों का एक छद, ८ वशिष्ट की कामधेनु जो सुरभि की कन्या थी। दिलीप ने इसी गौ की सिंह से रक्षा की और इसी की आराधना करके उन्होंने रघु नामक पुत्र प्राप्त किया। ६ पत्नी। उ० १ दास तुलसी सभय बदति मयनदिनी। (क० ६।२१)
नंदी-(स० नदिन्)-१ धव का पेड़, २ बरगद, ३ शिव का बैल, ४ आनदयुक्त, प्रसन्न।
नंदीमुख-(स०)-एक आभ्युदायिक श्राद्ध जो पुत्रजन्म, विवाह आदि मगल अवसरों पर किया जाता है। वृद्धि श्राद्ध। उ० नदीमुख सराध करि, जातकरम सब कीन्ह। (मा० १।१९३)
न -(स०)-हमें, हम सब को। उ०सीतान्वेषण तत्परौ पथि गतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः। (मा० ४।१। श्लो० १)
न-(सं०)-१ उपमा, २ रत्न, ३ सोना, हेम, ४ नहीं, मत, निषेधवाचक शब्द। उ० ४ लोकहुँ बेद न आन उपाऊ। (मा० १।३।३)
नइ (१)-(स० नय)-नवीन, नूतन, नया। उ० नित नइ प्रीति राम पद पकज। (मा० ७।१५।५)
नइ (२)-(स० नय)-नीतिवान, नीतिज्ञ।
नइ (३)-(स० नमन)-१ झुक गई, २ झुककर। नई (१)-दे० 'नइ (३)'। उ० १ सोहत सकोच सील नेह नारि नई है। (गी० १।८२) नए (१)-(स० नमन)-झुक गए, नय गए। उ० हारे हरष होत हिय भरतहि, जिते सकुच सिर नयन नए। (गी० १।४३) नया (१)-(स० नमन, हि० नयना)-१ झुका हुआ। २ झुके। नये (१)-१ झुके, २ झुके हुए। नयो-(स० नमन)-१ झुक गया, झुका, २ झुकाया, ३ प्रणाम किया, नमस्कार किया। उ० १ प्रेम पुलकि पहि चानि कै पदपदुम नयो है। (गी० ६।१०) ३ रघुबीर बंधु प्रताप पुंज बहोरि प्रभु चरनन्हि नयो। (मा० ६।८४। छ० १) नयं (१)-(स० नमन)-नवेगा नवता है, दबता है। उ० बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहि पइ नव नीच। (मा० ५।५८) नवइ-नवता है, झुकता है, नीचे आता है। नवहिं-झुक जाते हैं। उ० लता निहारि नवहिं तरु साखा। (मा० १।८५।१) नवहीं-नत होते हैं, झुकते हैं, विनम्र होते हैं। उ० मुनि रघुबीर परसपर नवहीं। (मा० २।१०८।२)
नई (२)-दे० 'नइ (१)'। उ० प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नइ पहिचानि। (दो० २८१)

नउनियाँ-(स० नापित, हि० नाऊ)-नाइन, नाई की स्त्री। उ० नैन बिसाल नउनियाँ भौं चमकावइ हो। (रा० ८)
नए (२)-नवीन, नूतन। उ० कौसिक बसिष्ठहि पूजि पूजे राउ दै अबर नए। (जा० १५३)
नक (१)-(?)-रात, निशा।
नक (२)-(स० नासिका)-नाक, नासिका।
नकपानी-(स० नासिका + पानीय)-नाक में पानी, नाक में दम। उ० दे० मु० 'नकवानी आयों'। मु० नकवानी आयो-नाक में दम हो गया। उ० तिन रकन को नाक सँवारत हौं आयों नकवानी। (वि० ५)
नकीब-(अर०)-बदीजन, भाट, चारण। उ० बोलत पिक नकीब गरजनि मिस मानहुँ फिरति दोहाई। (कृ० ३२)
नकुल-(स०)-१ नेवला, २ महादेव, ३ पांडवों में से एक, ४ निर्वंश, जिसके कुल में कोइ न हो। उ० १ नकुल सुदरसन दरसनी, छेमकरी चक चाप। (दो० ४६०)
नक्खत-दे० 'नक्षत्र'।
नक्र-(स०)-घड़ियाल, मगर। उ० नक्र-रागादि-संकुल सकुल मनोरथ सकल सग सकल्प-बीची-विकारम्। (वि० ५८)
नक्षत्र-(स०)-चद्रमा के पथ में पड़नेवाले तारों का समूह या गुच्छ। ये ग्रहों से भिन्न हैं। इनकी सख्या २७ मानी गइ है। इनके स्थान से शुभ अशुभ समय का ज्योतिष में पता लगाया जाता है।
नख-(स०)-१ नाखून, नहर, २ एक गध द्रव्य, ३ एक प्रकार का फल। उ० १ विकट भ्रुकुटि, बज्र दसन नख, बैरि-मदमत्त-कुंजर-पुंज-कुंजरारी। (वि० २८) नखन्हि-नखों से, नाखूनों से। उ० नखन्हि लिलार बिदारत भयऊ। (मा० ७।१८।३)
नखत-१ दे० 'नक्षत्र', २ तारे। उ० २ मनहुँ सरद बिधु उभय, नखत धरनी धनि। (जा० ५५)
नखतु-दे० 'नक्षत्र'। उ० सुदिनु सुनखतु सुघरी सोचाइ। (मा० १।९१।२)
नखसिख-(स० नखशिख)-नख से शिखा तक, पूरे शरीर में। उ० हँसत देखि नखसिख रिस ब्यापी। (मा० १। २७७।२)
नग-(स०)-जो गमन न करे। १ पर्वत, २ वृक्ष, ३ सात की सख्या, ४ सप, ५ सूर्य, ६ नगीना रत्न, मणि, ७ सख्या। उ० ६ सोभासिंधु-सभव से नीके नीके नग हैं। (गी० २।२७)
नगन (१)-(स० नग्न)-नगा, जिसके शरीर पर कोइ वस्त्र न हो। उ० जागी नारि अकाम मन नगन अमगल बेष। (मा० १।६७)
नगन (२) (स० नगण)-पिंगल शास्त्र के अनुसार तीन लघु अक्षरों का एक गण।
नग पैग-(स०नग्न + ?)-नगे, नग्नागा। उ० हौ भले नग-पैंग परे गढ़ीये अब एक गढ़त मदरि-मुख चोप। (कृ० ११)
नगफनियाँ-(स० नाग + फण)-सर्प के फन की आकृति का एक आभूषण जो कान में पहना जाता है। उ० बिस्ट

धौर-(स० धोरण, हि० धौरना)-दौड़ने, दौड़ा। उ० तुलसी जिन्हे धाय धुकै धरनीधर, धौर धकानि सों मेरु हले हैं। (क० ६।३३)
धौरहर-(?)-भवन का वह ऊपरी भाग जो बहुत ऊँचा खमे की तरह हो, और जिस पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बनी हों। धरहरा, मीनार। उ० धुवाँ के से धौरहर देखि तू न भूलि रे! (वि० ६६)
धौल (१)-(स० धवल) सफ़ेद, उज्वल। उ० मानों हरे तृन चारु चरैं बगरे सुर धेनु के धौल कलोरे। (क० ७।१४४)
धौल (२)-(अनु०)-थप्पड़, चाँटा।
ध्याइबे-ध्यान करने। उ० ध्याइबे को, गाइबे को, सेइबे सुमिरिबे को। (गी० २।३३) ध्यान-ध्यान करते हैं। ध्यान लगाते हैं, भजते हैं। उ० कोउ ब्रह्म निगुन ध्याव। (मा० ६।११३।७) ध्यावहिं-ध्यान करते हैं। उ० निसि बासर ध्यावहिं गुनगन गावहिं जयति सच्चिदानंदा। (मा० १।१८६।२) ध्यावहीं-ध्यान करते हैं। उ० जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मन पर ध्यावहीं। (मा० ७।१३। छं०६)
ध्याता-(स० ध्यातृ)-१ ध्यान करनेवाला, २ विचारक, सोचनेवाला।
ध्यान-(स०)-१ मानसिक प्रत्यक्षीकरण, अंतःकरण में उपस्थित करने की क्रिया या भाव, २ चिंतन, मनन, सोच विचार, ३ स्मृति, याद, ४ बुद्धि, समझ, ५ चित्त को चारों ओर से हटाकर किसी एक पर स्थिर करने की क्रिया। अष्टांग योग में इसका भी स्थान है। ६ भावना, विचार, ख्याल, ७ ज्ञात वस्तु का पुनर्स्मरण। उ० ५ जीवन मुक्त ब्रह्म पर चरित सुनहिं तजि ध्यान। (मा० ७।४२)
ध्याना-दे० 'ध्यान'। उ० तब संकर देखेउ धरि ध्याना। (मा० १।५६।२)
ध्यानि-(स० ध्यानिन्)-ध्यानी, मुनि, साधू, ध्यान लगाने वाला। उ० सोइ ज्ञानी सोइ गुनी जन, सोई दाता ध्यानि। (वै० ५१)
ध्यानी-दे० 'ध्यानि'। उ० तब योगी तापस बग ध्यानी। (मा० १।१६२।३)
ध्येय-(स०)-ध्यान करने योग्य, स्मरणीय।
ध्रुवँ-ध्रुव ने। उ० १ ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। (मा० १।२६।३) ध्रुव-१ पक्का, दृढ़, अटल, सदा एक स्थान पर रहनेवाला, २ नित्य, अनीश्वर, ३ आकाश, ४ पर्वत, ५ खंभा, ६ बरगद का पेड़, ७ विष्णु, हरि, ८ शिव, ९ ध्रुवतारा जो एक ही स्थान पर स्थिर रहता है, १० प्रसिद्ध भक्त जो राजा उत्तानपाद के पुत्र थे। राजा उत्तानपाद की सुरुचि और सुनीति नाम की दो स्त्रियाँ थी। सुरुचि से उत्तम और सुनीति से ध्रुव पैदा हुए। राजा सुरुचि पर अधिक स्नेह रखते थे जिसका फल यह हुआ कि ध्रुव का अपमान होने लगा और वे घर से निकलकर जंगल में तप करने लगे। अंत में भगवान् ने दर्शन दिया और इनके नाम से एक ध्रुवलोक बनाकर उसमें इन्हें अवस्थित कर दिया। बाद में घर लौटकर ध्रुव ने ३६००० वर्ष तक राज्य किया और उसके बाद अपने लोक में निवास करने लगे। विष्णु के प्रसिद्ध भक्तों में इनका नाम लिया जाता है। उ० १ सिव विरोध ध्रुव मरनु हमारा। (मा० ।।८४।२) ६ बदन यदि, प्रथि विधि करि, ध्रुव देखेउ। (पा० १४६) १० ध्रुव हरि भगत भयउ सुत जासू। (मा० १।१४२।२)
ध्रू-दे० 'ध्रुव'। उ० १० रामकथा बरनी न बनाइ, सुनी न कथा प्रह्लाद न ध्रू की। (क० ७।८८)
ध्वंस-(स०)-नाश, क्षय, हानि।
ध्वज-(स०)-१ ध्वजा, पताका, २ निशान, चिह्न, ३ छोटी-छोटी कड़ी, ४ दर्प, घमंड। उ० १ चौकें चारु कलस ध्वज साजहिं। (जा० २०५)
ध्वजा-दे० 'ध्वज'।
ध्वजी-(स० ध्वजिन्)-पताकाधारी, चिह्न धारण करने वाला।
ध्वनि-(स०)-शब्द, नाद, स्वर।
ध्वांत-(स०)-अंधकार, अँधेरा। उ० वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघन ध्वांतापहं तापहम्। (मा० ३।१। श्लो० १)
ध्वैहौं-(स० धावन)-१ धोऊँगा, २ धुलवाऊँगा। उ० जननी! जग में या मुख की कहाँ कालिमा ध्वैहौं (गी० २।६२)

# न

नँचहिं-(स० नृत्य, हि० नाँच)-नाचते हैं। नँचहीं-दे० 'नचहिं'।
नंद-(स०)-१ आनंद, हर्ष, २ सच्चिदानंद, परमेश्वर, ३ पुराणानुसार नौ निधियों में से एक, ४ विष्णु, ५ लड़का, पुत्र, ६ गोकुल के गोपों के मुखिया जिनके यहाँ कृष्ण जन्म के बाद पाले गये थे। नंद की स्त्री का नाम यशोदा था। ६ महात्मा बुद्ध के सौतेले भाई। उ० ६ मुनि हँसि उठ्यो नंद को नाहरू, लियो कर कुधर उठाइ। (कृ० १८)
नंदकुमार-(स०)-नंद के पुत्र, श्रीकृष्ण। उ० सखि सहाय तहाँ बसि भ्रम जेहि हृदय न नंदकुमार। (कृ० १८८)
नंदनंदन-(स०)-नंद के पुत्र, श्रीकृष्ण। उ० सुम सकुच करत हौं हौं नीके जानति, नंदनंदन हो नित क सरई। (कृ० ३६)
नंदन-(सं०)-१ आनंद देनेवाला, २ इंद्र के उपवन का नाम, ३ एक प्रकार का विष, ४ शिव, महादेव, ५ मेंढक, ६ लड़का, ६ विष्णु, ७ एक प्रकार का अस्त्र, ८ मेघ

यादव, ६ एक वर्ण वृत्त। उ० १ या ४ सकर सुवन भवानी नदन। (वि० १)
नंदललन-श्रीकृष्ण, नंद के पुत्र। उ० तुलसिदास नंदललन ललित लखि रिस क्यों रहति उर ऐन। (कृ० १४)
नंदललाऊ-(स० नद + लालक)-नदलला भी, नदलाल भी, कृष्ण भी। उ० तुलसिदास ग्वालिनि अति नागरि, नट नागर मनि नदलालाऊ। (कृ० १२)
नदसुवन-कृष्ण, नद के पुत्र। उ० तुलसिदास श्रय नदसुवन हित। (कृ० ३७)
नंदिनी-(स०)-१ कन्या, पुत्री, २ रेणुका नामक गध द्रव्य, ३ उमा, ४ गगा, ५ ननद, ६ दुर्गा, ७ तेरह अक्षरों का एक छद, ८ वशिष्ट की कामधेनु जो सुरभि की कन्या थी। दिलीप ने इसी गौ की सिंह से रक्षा की और इसी की आराधना करके उन्होंने रघु नामक पुत्र प्राप्त किया। ६ पत्नी। उ० १ दास तुलसी समय वदति मयनदिनी। (क० ६।२१)
नंदी-(स० नदिन्)-१ धव का पेड़, २ वरगद, ३ शिव का बैल, ४ आनदयुक्त, प्रसन्न।
नदीमुख-(स०)-एक आभ्युदायिक श्राद्ध जो पुत्रजन्म, विवाह आदि मगल अवसरों पर किया जाता है। वृद्धि श्राद्ध। उ० नदीमुख सराध करि, जातकरम सब कीन्ह। (मा० १।१६३)
नः-(स०)-हमें, हम सब को। उ०सीतान्वेषणतत्परौ पथि गतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः। (मा० ४।१। श्लो० १)
न-(स०)-१ उपमा, २ रत्न, ३ सोना, हेम, ४ नहीं, मत, निषेधवाचक शब्द। उ० ४ लोकहुँ वेद न आन उपाऊ। (मा० १।३।३)
नइ (१)-(स० नव)-नवीन, नूतन, नया। उ० नित नइ प्रीति राम पद पकज। (मा० ७।१५।५)
नइ (२)-(स० नय)-नीतिवान, नीतिज्ञ।
नइ (३)-(स० नमन)-१ झुक गई, २ झुककर। नइ (१)-दे० 'नइ (३)'। उ० १ सोहत सकोच सील नेह नारि नई है। (गी० १।८३) नए (१)-(स० नमन)-झुक गए, नय गए। उ० हारे हरष होत हिय भरतहि, जिते सकुच सिर नयन नए। (गी० १।४३) नया (१)-(स० नमन, हि० नयना)-१ झुका हुआ। २ झुके। नये (१)-१ झुके, २ झुके हुए। नयो-(स० नमन)-१ झुक गया, झुका, २ झुकाया ३ प्रणाम किया, नमस्कार किया। उ० १ प्रेम पुलकि पहि चानि कै पदपदुम नयो है। (गी० ६।१०) ३ रघुबीर बंधु प्रताप पुंज बहोरि प्रभु चरनन्हि नयो। (मा० ६।८४। छ० १) नयं (१)-(स० नमन)-नवेगा नयता है, दबता है। उ० विनय न मान खगेस सुनु डाटहिं पइ नव नीच। (मा० ५।५८) नवइ-नवता है, झुकता है, नीच आता है। नवहिं-झुक जाते हैं। उ० लता निहारि नवहिं तरु-साखा। (मा० १।८४।१) नवहीं-नत होते हैं, झुकते हैं, विनम्र होते हैं। उ० मुनि रघुबीर परसपर नवहीं। (मा० २।१०८।२)
नई (२)-दे० 'नइ (१)'। उ० प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नइ पहिचानि। (दो० २८१)
नउनियाँ-(स० नापित, हि० नाऊ)-नाइन, नाई की स्त्री। उ० नैन बिसाल नउनियाँ भौं चमकावइ हो। (रा० ८)
नए (२)-नवीन, नूतन। उ० कौसिक बसिष्ठहि पूजि पूजे राउ दै अबर नए। (जा० १९३)
नक (१)-(?)-रात, निशा।
नक (२)-(स० नासिका)-नाक, नासिका।
नकवानी-(स० नासिका + पानीय)-नाक में पानी, नाक में दम। उ० दे० मु० 'नकवानी आयों'। मु० नकवानी आयों-नाक में दम हो गया। उ० तिन रकन को नाक सँवारत हौं आयों नकवानी। (वि० ५)
नकीब-(अर०)-बदीजन, भाट, चारण। उ० बोलत पिक नकीब गरजनि मिस मानहुँ फिरति दोहाई। (कृ० ३२)
नकुल-(स०)-१ नेवला, २ महादेव, ३ पांडवों में से एक, ४ निर्वंश, जिसके कुल में कोई न हो। उ० १ नकुल सुदरसन दरसनी, छेमकरी चक चाप। (दो० ४६०)
नक्खत-दे० 'नक्षत्र'।
नक्र-(स०)-घड़ियाल, मगर। उ० नक्र-रागादि-सकुल सकुल मनोरथ सफल सग सकल्प-वीची विकारम्। (वि० ५८)
नक्षत्र-(स०)-चद्रमा के पथ में पड़नेवाले तारों का समूह या गुच्छ। ये ग्रहों से भिन्न हैं। इनकी सख्या २७ मानी गई है। इनके स्थान से शुभ अशुभ समय का ज्योतिष में पता लगाया जाता है।
नख-(स०)-१ नाखून, नहर, २ एक गध द्रव्य, ३ एक प्रकार का फल। उ० १ बिकट भ्रुकुटि, बज्र दसन नख बैरि-मदमत्त-कुंजर-पुंज-कुंजरारी। (वि० २८) नखन्हि-नखों से, नाखूनों से। उ० नखन्हि लिलार बिदारत भयऊ। (मा० ७।६८।३)
नखत-१ दे० 'नक्षत्र', २ तारे। उ० २ मनहुँ सरद बिधु उभय, नखत धरनी धनि। (जा० ५५)
नखतु-दे० 'नक्षत्र'। उ० सुदिनु सुनखतु सुघरी सोचाई। (मा० १।३११।२)
नखसिख-(स० नखशिख)-नख से शिखा तक, पूरे शरीर में। उ० हँसत दखि नखसिख रिस ब्यापी। (मा० १। २७०।३)
नग-(स०) जो गमन न करे। १ पर्वत, २ वृक्ष, ३ सात की सख्या, ४ सर्प, ५ सूर्य, ६ नगीना, रत्न, मणि, ७ सख्या। उ० ६ सोभासिंधु-सभव से नीके नीके नग हैं। (गी० २।२७)
नगन (१)-(स० नग्न)-नगा, जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो। उ० जोगी जटिल अकाम मन नगन अमगल बेष। (मा० १।६७)
नगन (२) (स० नगण)-पिंगल शास्त्र के अनुसार तीन लघु अक्षरों का एक गण।
नगपँग-(स०नग्न+ई)-नगे, अन्मारा। उ० द्वौ भले नगपँग परे गढ़ाधे भय एक गढ़त महरि-सुत न्हाए। (कृ०११)
नगफनियाँ-(स० नाग+फण)-सर्प के फन की आकृति का एक आभूषण जो कान में पहना जाता है। उ० बिकट

भृकुटि सुखमानिधि आनन कल कपोल काननि नग फनियाँ। (गी० १।३१)

नगर-(सं०)-शहर, पुर, नगरी। उ० नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं। (मा० १।१८३।३)

नगरु-दे० 'नगर'। उ० तीख मथुरा नगरु बनाया। (मा० २।१३।१)

नग्न-(सं०)-नंगा, वस्त्रहीन।

नचत-(सं० नृत्य, हिं० नाच)-नाचते हैं, नाचता है।

नचाइ-नाच नचाकर। उ० छाँड़हि नचाइ हाहा कराइ। (गी० ७।२२) नचाइहि-नचाएँगी। उ० निगा नाँग करि नितहिं नचाइहि नाच। (ब० २४) नचायो-नचाया, घुमाया। उ० करतल ताल बजाइ ग्वाल-जुवतिन तेहि नाच नचायो। (वि० ९८) नचाव-१ नचाता है, नृत्य कराता है, २ घुमाता है, फिराता है। उ० १ भूपति उडगन सहित धनु जनु बर बरहि नचाव। (मा० १।३१६) नचावइ-नचाते हैं। उ० भृकुटि बिलास नचावइ ताही। (मा० १।२००।३) नचावत-नचाते हैं। उ० नट मरकट इव सबहि नचावत। (मा० ४।७।१२) नचावती-नचाती है। उ० चुटकी बजावती नचावती कौसल्या माता। (गी० १।३०) नचावहिं-नचाते हैं, नचाया करते हैं। उ० कपि उर अजिर नचावहिं बानी। (मा० १।१०५।३) नचावा-नचाया, नचाया है। उ० जेहिं बहु बार नचावा मोही। (मा० ७।४३।३)

नचावनिहारे-नचानेवाले। उ० बिधि हरि संभु नचावनिहारे। (मा० २।१२७।१)

नछत्र-१ दे० 'नक्षत्र', २ तारा, ३ नक्षत्र विशेष, हस्त नक्षत्र। उ० ३ के दिग बून नछत्र हनि तुलसी तेहि पद लीन। (स० २२१)

नट-(सं०)-१ कौतुकी, तमाशा करनेवाला, तमाशा दिखाने वाला, २ जादूगर, ३ एक राग जो तीसरे पहर गाया जाता है, ४ नाचनेवाला, ५ नाटक में अभिनय करने वाला। उ० ४ तुलसिदास ग्वालिनि अति नागरि, नट नागर मनि नंदलला। (कृ० १२)

नटत-(सं० नट)-१ नाचते हैं, २ बहाना करता है, अस्वीकार करता है। उ० १ कूजत बिहग नटत कल मोरा। (मा० १।२२७।२)

नटन-नाचना, नृत्य करना। उ० घट घट लट नट नादि जहँ, तुलसी रहित न जान। (स० ५७६)

नटनागर-१ नाचने में चतुर, चतुर, खिलाड़ी, २ कृष्ण। नाचने में चतुर होने के कारण ही कृष्ण का नटनागर नाम है। उ० २ ऊधो जू! क्यों न कहैं कुबरी जो बरी नटनागर हेरि हलाकी। (क० ७।१३४)

नटनि (१)-(सं० नर्त्तन)-नाचना, नृत्य करना। उ० मुखनि झाँकनि, छाँह सों किलकनि, नटनि, हटि लरनि। (गी० १।२५)

नटनि (२)-(सं० नट)-इनकार, अस्वीकृति।

नटी-(सं०)-१ नाटक में सूत्रधार की स्त्री, २ वेश्या, नर्तकी। उ० २ नाच नटी इव सहित समाजा। (मा० ७।७२।१)

नटैया-(?)-गर्दन, गला। उ० जयै जमराज रजायसु तें मोहिं लै चलिहैं भट बाँधि नटैया। (क० ७।५१)

नत -प्रणाम करता हूँ।

नत-(सं०)-नया हुआ, झुका हुआ, नम्र, दीन। उ० बाल को अचल, नत करत निहाल को? (वि० १८०)

नतपाल-शरणागत को पालनेवाले, शरणागतवत्सल, शरण में आए के रक्षक। उ० बाल ज्यौं कृपाल नतपाल पालि पोसो है। (ह० २१)

नतपालक-दे० 'नतपाल'।

नतपालु-दे० 'नतपाल'।

नतरु-(दे० 'नतु')-नहीं तो, अन्यथा। उ० नतरु बाँझ भलि बादि बियानी। (मा० २।७८।१)

नति-(सं०)-१ प्रणाम, नमस्कार, २ विनय, विनती। उ० १ पितुपद गहि कहि कोटि नति बिनय करब करजोरि। (मा० २।१६५)

नतु-(सं० न + हिं० तो) नहीं तो, अन्यथा। उ० नतु और सबै बिष बीज बये हर हाटक काम दुहा नहि कै।। (क० ७।३३)

नतो-नमस्कार करता हूँ। नतोऽहं-मैं नमस्कार करता हूँ। उ० सर्व श्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं राम वल्लभाम्। (मा० १।१। श्लो० ५)

नथुनियाँ-(सं० नाथ, हिं० नाथना)-नाक में पहनने की छोटी सी नथ या बाली। उ० रुचिर चिबुक, रद अधर मनोहर, ललित नासिका लसति नथुनियाँ। (गी० १।३१)

नद-(सं०)-बड़ी नदी या ऐसी नदी जिसका नाम पुल्लिंग-वाची हो। उ० सब सर सिंधु नदीं नद नाना। (मा० २।१३८।३)

नदीं-नदियाँ, सरिताएँ। उ० नदीं कुतर्क भयंकर नाना। (मा० १।३८।५) नदी-(सं०)-दरिया, सरिता, तटिनी।

नदीश-(सं० नदी + ईश)-समुद्र, जलधि।

नदीस-दे० 'नदीश'। उ० सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस। (मा० ६।५)

ननिअउरें-(?)-ननिहाल, नाना के घर। उ० पठए भरतु भूप ननिअउरें। (मा० २।१८।१)

नपुंसक-(सं०)-१ नामर्द, हिजड़ा, क्लीव, २ डरपोक, कायर। उ० १ पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ। (मा० ७।८७ क)

नफीरि-(फा० नफ़ीरी)-तुरही, शहनाई। उ० भेरि नफीरि बाज सहनाई। (मा० ७।७१।५)

नबीन-दे० 'नवीन'। नबीने-नए, नवीन। उ० काटत हीं पुनि भए नबीने। (मा० ६।९२।६)

नबीना-(सं० नवीन)-नवीन, नया, नूतन। उ० प्रेम पेम निज निपुन नबीना। (मा० २।२३४।२)

नभ-(सं०)-१ आकाश, आसमान, २ पंचतत्त्वों में से एक, ३ आश्रय, आधार, ४ सावन का महीना, ५ निकट, पास, ६ मेघ, बादल, ७ शिव, शंकर, ८ पानी, जल, ९ अबरक, १० हिंसक, ११ सूर्य। उ० १ ईस-सीस बससि, त्रिपथ लससि नभ-पाताल धरनि। (वि० २०)

नभग-(सं०)-आकाशचारी, उड़नेवाला, पक्षी।

नभगनाथ-(सं०)-दे० 'नभगेस'। उ० नभगनाथ पर प्रीति न थोरी। (मा० ७।७०।१)
नभगामी-दे० 'नभग'। उ० पायहु कहाँ कहहु नभगामी। (मा० ७।६४।२)
नभगिरा-आकाशवाणी। उ० सुनि नभगिरा सती उर सोचा। (मा० १।५७ क)
नभगेस-(सं० नभगेश)-पक्षियों के स्वामी, गरुड़। उ० राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं। (मा० ७।२१)
नभचर-(सं० नभश्चर)-१ पक्षी, चिड़िया, आकाश में उड़नेवाले जीव, २ बादल, ३ हवा, ४ देवता, गंधर्व और ग्रह आदि। उ० १ जलचर थलचर नभचर नाना। (मा० १।३।२)
नभबानी-(सं० नभवाणी)-आकाशवाणी। उ० मंदिर माझ भई नभबानी। (मा० ७।१०७।१)
नम (१) (सं० नमस्)-१ नमस्कार, २ अन्न, अनाज, ३ वज्र, गाज, ४ यज्ञ, मख, ५ स्तोत्र, स्तुति, ६ त्याग, विरक्ति।
नम (२)-(फ़ा०)-तर, गीला।
नमत (१)-(सं०)-१ प्रभु, स्वामी, २ नट, नर्तक, ३ धूम, धुआँ। उ० १ जयति वैराग्य विज्ञान-वारांनिधे नमत नर्मद पाप-ताप हर्त्ता। (वि० ४४)
नमत (२)-(सं० नमन, हिं० नमना)-१ झुकते हैं, नमस्कार करते हैं, २ प्रणाम करते ही। उ० २ जयति श्रुति कीर्ति वल्लभ सुदुर्लभ सुलभ नमत नर्मद भक्ति-मुक्ति-दाता। (वि० ४०) नमाम-नमस्कार करता हूँ। उ० जय प्रनतपाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमाम हे। (मा० ७।१३। छं० १) नमामि-नमस्कार करता हूँ। उ० नमामि भक्त वत्सलं। (मा० ३।४। छं० १) नमामी-दे० 'नमामि'। रिपुसूदन पदकमल नमामी। (मा० १।१७।५) नमिहै-नमित हो जायगा, झुक जायगा।
नमित-(सं०)-झुका हुआ, नत, नम्र। उ० बैठि नमित मुख सोचति सीता। (मा० २।५८।१)
नम्र-(सं०)-१ विनीत, जिसमें नम्रता हो, २ नमित, झुका हुआ, ३ दीन, ४ लज्जित। उ० १ बाहिज नम्र देखि मोहि साईं। (मा० ७।१०२।३)
नय (१)-(सं०)-१ नीति, २ नम्रता, ३ विष्णु, ४ न्याय, ५ धर्म, ६ द्यूत, ७ नेता, ८ नवीन, नया। उ० १ नय परमारथ स्वारथ सामी। (मा० २।२५५।२) २ नय नगर बसाए बिपिन मारि। (गी० २।४६) नयसानी-नीतियुक्त, नीतिपूर्ण। उ० भगति बिबेक बिरति नय सानी। (मा० ५।२४।१)
नय (२)-(सं० नद)-नदी, सरिता।
नयन (१)-(सं०)-१ नेत्र, लोचन, आँख, दृष्टि, नज़र, २ दूज, द्वितीया, ३ आँखें दो होती हैं, अतः इनसे दो का भी बोध होता है। उ० १ इंदु पावक-भानु-नयन मदन मयन, धाम गुण-अयन, विज्ञान रूप। (वि० ११) २ रवि हर दिसि गुन रस नयन, मुनि प्रथमादिक बार। (दो० ४५८) नयननि-१ नयनों का, आँखों का, २ आँखों से। उ० १ नयननि को फल बिसेष ब्रह्म अगुन सगुन बेष। (गी० ७।७) नयननि-आँखों से। उ० जे हर हिय नयननि कबहुँ निरखे नहीं अघाइ। (मा० २।२०६)
नयन (२)-(?)-एक प्रकार की मछली।
नयनगोचर-(सं०)-समक्ष, जो आँखों के सामने हो।
नयनपट-(सं०)-पलक, आँख की पलक। उ० एकटक रहे नयनपट रोकी। (मा० १।१४८।३)
नयनवंत-आँखवाला। उ० नयनवंत रघुबरहि बिलोकी। (मा० २।१२३।१)
नयना-दे० 'नयन (१)'। उ० १ प्रभु सोभा सुख जानहिं नयना। (मा० ७।८८।२)
नयनी-आँखवाली। उ० सोउ सुनि ग्यान निधान मृग नयनी बिधु मुख निरखि। (मा० ७।११५ ख)
नयपाल-नीति का पालन करनेवाला। उ० खग मृग मीत पुनीत किय, बनहु राम नयपाल। (दो० ४४२)
नयवान-नीतिवान, नीतिज्ञ। उ० सगुन सत्य ससि नयन गुन, अवधि अधिक नयवान। (प्र० ७।७।३)
नया-(सं० नव, फ़ा० नौ)-नवीन, नूतन, ताज़ा। नये (२)-'नया' का बहुवचन।
नरं-दे० 'नर'। उ० ६ नौमि नारायण नर करुणायन ध्यान पारायण ज्ञान मूलम्। (वि० ६०) नर (सं०)-१ पुरुष, मर्द, आदमी, २ मनुष्य, मानव, ३ अर्जुन, पार्थ, ४ विष्णु, ५ शिव, ६ धर्मराज और दक्ष प्रजापति की कन्या से उत्पन्न एक ऋषि जो ईश्वर के अवतार माने जाते हैं। नारायण इनके बड़े भाई थे। सहस्र-कवची दैत्य ने तप से सूर्य भगवान् को प्रसन्न करके वर माँग लिया था कि मेरे शरीर में हजार कवच हों। जब कोई हज़ार वर्ष युद्ध करे तब कहीं एक-एक कवच टूटे परन्तु कवच टूटते ही शत्रु भी मर जाय। उसे मारने के लिए सत्ययुग में नर-नारायण का अवतार हुआ। एक भाई हजार वर्ष तक युद्ध करके मरता और दूसरा उसे मंत्र द्वारा जिला देता और स्वयं हजार वर्ष लड़कर दूसरा कवच तोड़कर मरता, पर पहला इसे जिलाकर फिर वैसा ही करता। इस तरह करते-करते जब केवल एक कवच बच रहा तो वह भाग कर सूर्य में लय हो गया और नर नारायण बद्रीनारायण में जाकर तप करने लगे। वही असुर द्वापर में कर्ण हुआ जो गर्भ से ही कवच धारण किए था। नर नारायण ने अर्जुन और कृष्ण होकर उसे मारा। उ० १ जग बहु नर सर सरि सम भाई। (मा० १।८।७) ६ नर नारायण सरिस सुभ्राता। (मा० १।२०।३) नरहि-आदमियों को, पुरुषों को। उ० समय परे सु-पुरुष नाहि लघु करि गनिय न कोइ। (स० ६२६) नरा-नर का बहुवचन। उ० स्वद्भ्रि मूलये नरा। (मा० ३।४। छं० ७) नराणां-१ मनुष्यों में, २ मनुष्यों को। उ० १ भजंतीह लोके परे वा नराणां। (मा० ७।१०८। छं० ७) नरेषु-मनुष्यों में।
नरक-(सं०)-१ दोज़ख, जहन्नुम। पुराणों और धर्मशास्त्रों के अनुसार वह स्थान जहाँ पापी मनुष्यों की आत्मा फल भोगने के लिए भेजी जाती है। मनु ऋषि के अनुसार इनकी संख्या २१ है। २ मल, पुरीष, ३ बहुत अपवित्र और गंदा स्थान। उ० १ नरक अधिकार मम घोर संसार-तम-कूप कहि। (वि० २०८) नरकहु-१ नरक भी, २

नरक में भी। उ० १ मुनि अघ नरकहुँ नाक सकोरी। (मा० १।२४।१) २ सुत संपति की का चली नरकहु नाहीं ठौर। (दो० ६४) नरकै-नरक को, नरक में। उ० प्रतिमाहीं जीते नहीं, दाता नरकै जाय। (दो० ४६३)

नरका-दे० 'नरक'। उ० १ कल्प-कल्प भरि एक-एक नरका। (मा० ७।१००।२)

नरकु-दे० 'नरक'। उ० १ सरगु नरकु अपबरगु समाना। (मा० २।१३१।४)

नरकेसरी-(सं०)-विष्णु के एक अवतार जिनका नाम नृसिंह या नरसिंह था। प्रह्लाद के पिता हिरण्यकशिपु का वध इन्होंने किया था।

नरकेसरी-दे० 'नरकेसरी'। उ० राम नाम नरकेसरी कनककसिपु कलिकाल। (मा० १।२७)

नरत्व-(सं० नरत्व)-मनुष्यत्व, मानवता।

नरदेव-(सं०)-१ राजा, नृप, भूपाल, २ ब्राह्मण, ३ मनुष्य रूप में देवता राम। उ० ३ जयति मुनि देव नर देव दसरथ के, देव मुनि बंद्य किय अवधवासी। (वि० ४४)

नरनाथ-(सं०)-राजा, नृप। उ० तब गुर भूसुर सहित गृह गवनु कीन्ह नरनाथ। (मा० १।१२१)

नरनायक-(सं०)-राजा, नृप। उ० जनक नाम तेहि नगर बसै नरनायक। (जा० ६)

नरनारायण-(सं०)-नर और नारायण नामक दो ऋषि जो द्वापर में अर्जुन और कृष्ण रूप में पैदा हुए। दे० 'नर'।

नरनारायन-दे० 'नरनारायण'। उ० नरनारायण की तुम्ह दोऊ। (मा० ७।१।६)

नरनारी-अर्जुन (नर) की स्त्री द्रौपदी। उ० बसन बेष राखी बिसेषि लखि बिरदावलि मूरति नरनारी। (कृ०६०)

नरपति-(सं०) राजा, नृप। उ० नरपति सकल रहहिं रुख राखें। (मा० २।२४।१)

नरपाल-(सं०) राजा, नृप।

नरपालू-दे० 'नरपाल'। उ० बिवरन भयउ निपट नरपालू। (मा० २।२४।३)

नरम-(फ़ा० नर्म)-मृदु, कोमल, मुलायम।

नरलोक-(सं०)-मृत्युलोक, संसार। उ० नाग नरलोक पाताल कोउ कहत किन। (क० ६।४५)

नरवर-(सं० नर+वर)-मनुष्यों में श्रेष्ठ, राजा। उ०भयउ न होइहि, है न, जनक सम नरवइ। (जा० ७)

नरहरि-(सं०)-१ दे० 'नरकेसरी', २ तुलसीदास के गुरु नरहरदास, ३ नर रूप से लीला करनेवाले भगवान् रामचंद्र। उ० १ नरहरि किए प्रगट प्रहलादा। (मा० २। २६५।३)

नरहरी-दे० 'नरहरि'। उ० ३ तबहिं घलेउ सुमिरि नर हरी। (मा० ४।४।१)

नरेश-(सं०)-राजा, नृप, भूप।

नरेस-दे० 'नरेश'। उ० ब्याही जानकी, जीते नरेस देस देस के। (क० १।२१) नरेसहि-राजा को। उ० परिजन पुरजन सहित प्रमोद नरेसहि। (जा० १२८)

नरेसु-दे० 'नरेश'। उ० कहँ तुलसीदास क्यों मतिमंद सकल नरेसु। (गी० ७।३)

नरेसू-दे० 'नरेश'। उ० सचिव बिराग बिवेकु नरेसू। (मा० २।२३५।२)

नरो-नर, पुरुष, मर्द। उ० स्वारथ को परमारथ को कि नरो नरो। (वि० २२६)

नरौं-(?)-आगे या पीछे का कौन सा निर्देश, चाहे कि काल्हि परौं कि नरौं वह जाहिये पर्ही, को तैयो। (क० ७।१०६)

नर्क-दे० 'नरक'।

नर्तक-(सं० नर्तक)-नाचनेवाला, नट। उ० बहु भेद जहँ नर्तक नृत्य समान। (मा० ७।२७)

नर्तकी-(सं० नर्तकी)-नाचनेवाली स्त्री, रंडी, उ० माया खलु नर्तकी बिचारी। (मा० ७।११६)

नर्म-(सं० नर्म)-१ परिहास, क्रीड़ा, केलि, कल्याण, कुशल, २ आनंद, हर्ष, सुख। उ० नर्मद गुणग्राम। (मा० ३।११ छं० ८)

नर्मद-(सं०)-१ सुख देनेवाला, आनंददायक, मसखरा। उ० १ घन सम [illegible] ३।११। छं० ८)

नल-(सं०)-१ निषध देश के चंद्रवंशी पुत्र एक राजा। ये विद्वान तथा सुंदर थे। की परीक्षा तथा उनके संचालन में व [illegible] विवाह दमयंती से हुआ था। २ नरकट, ३ नाल, ४ राम की एक सेना का बंदर लाघने के लिए पुल बनाया था। कहा- [illegible] हाथ द्वारा पानी में रक्खा हुआ पत्थर एक से कभी नहीं डूबता था। यह विश्वकर्मा पशु के एक पुत्र का नाम। उ० ४ तब अंगद नल हनुमत। (मा० ४।२२)

नलिन-(सं०)-१ कमल, पद्म, २ पानी, ३ [illegible] १ अलकैं कुटिल, ललित लटकन भ्रू, नीके नयन सुहाए। (गी० १।२०)

नलिनी-(सं०)-१ पद्मिनी, २ कुमुदिनी, [illegible] समूह, ४ ऐसा देश जहाँ कमल बहुत [illegible] उ० १ कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा।

नलु-दे० 'नल'। उ० १ सकृत प्रवेस बिगत बिषाद भए पारथ नलु। (वि० ११)

नव (१)-(सं०)-१ नया, नवीन, २ [illegible] श्याम नव-तामरस-दाम-द्युति वपुष-छवि, अगणित प्रकाशम्। (वि० ६०)

नव (२)-(सं०)-१ नौ, आठ और एक। उ० १ सात द्वीप नव खंड [illegible] (वै० ४०) नवगुन-(सं० नवगुण)-[illegible] शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता [illegible] आस्तिकता। उ० नवगुन परम [illegible] १।२८२।४) नवग्रह-(सं०, [illegible] मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु [illegible] उ० नवग्रह निकर अनीक बनाई। [illegible] द्वारपुर-ऐसा नगर जिसमें ९ द्वार हों। २ आँख, २ कान, २ नाक, १ मुख, मूत्रेंद्रिय, कुल ९ द्वार हैं। उ० [illegible]

जेहि न आपु भल कीन्ह । (वि० २०३) नवनिद्धि-दे० 'नवनिधि' । उ० अष्टसिद्धि नवनिद्धि भूति सब भूपति भवन कमाहिं । (गी० १।२३) नवनिधि-दे० 'निधि' ।
नवरस-(स०)-काव्य के नौ रस । शृंगार, करुण, हास्य, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शांत । उ० तौ नवरस, षटरस रस, अनरस ह्वै जाते सब सीठे । (वि० १६९) नवसत-दे० 'नवसस' । उ० सो समौ देखि सुहावनो नवसत सँवारि सँवारि । (गी० ७।१८) नवसप्त-(स०)-नौ और सात, १६ शृंगार । पूर्ण शृंगार । उ० नवसप्त साजें सुंदरीं सब मत्त कुंजर गामिनीं । (मा० १। ३२२। छं० १) नव सात-दे० 'नवसस' । उ० सग नारि सुकुमारि सुभग सुठि राजति बिन भूषन नव-सात । (गी० २।१५)
नवजर-दे० 'नवज्वर' । उ० तुलसी कान्ह बिरह नित नव जर जरि जीवन भरिबे हो । (कृ० ३६)
नवजल-प्रथम वर्षा का पानी । उ० मनहुँ मीनगन नवजल जोगा । (मा० २।२६४।३)
नवज्वर-(स०)-नवीन ज्वर, चढ़ता हुआ बुखार ।
नवधा-(स०)-नव प्रकार की । उ० नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं । (मा० ३।३५।७) नवधाभक्ति-(स०)-नौ प्रकार की भक्ति । श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, सख्य, दास्य और आत्म निवेदन ।
नवनि-१ झुकना नवना, नम्र होना, २ झुकाव । उ० १ तैसेई अम-सीकर रुचिर राजत मुख तैसिए ललित भ्रकुटिन्ह की नवनि । (गी० ३।५)
नवनीत-(स०)-मक्खन, माखन । उ० संत हृदय नवनीत समाना । (मा० ७।१२५।४)
नवनीता-दे० 'नवनीत' । उ०तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता । (मा० ७।११७।८)
नवम-(स०)-नवाँ, जो गिनती में नवाँ हो । उ० नवम सरल सब सन छलहीना । (मा० ३।३६।३)
नवमी-(सं०)-चांद्र मास के किसी पक्ष की नवीं तिथि । उ० नवमी नवद्वारपुर बसि जेहि न आपु भल कीन्ह । (वि० २०३)
नवल-(स०)-१ नया, नवीन, २ सुंदर, मनोहर, ३ अनोखा, ४ उज्ज्वल, ५ जवान, युवा । उ० १ पूँछत कहत नवल इतिहासा । (मा० ५।२८।३) ५ सुजन भवन, घातक मदन ! सुही सुमन दस चारि । (दो० २३५)
नवला-(स०)-नवीन स्त्री, तरुणी । उ० का घूँघट मुख मूँदहु नवला नारि । (ब० १६)
नवावहिं-नवाते हैं, नवा रहे हैं । उ० प्रभु कर जोरें सीस नवावहिं । (मा० ७।३३।२) नवावौं-नवाऊँ, झुकाऊँ, झुका दूँ । उ० का बापुरो पिनाकु मेलि गुन मंदर मेरु नवावौं । (गी० ८७)
नवीन-(स०)-१ नया, नूतन, हाल का, २ विचित्र, अपूर्व, अनोखा, ३ तरुण, जवान । उ०१ गावन लगे राम कल कीरति सदा नवीन । (मा० ७।२०)
नव्य-(स०)-नया, नवीन । उ० दिव्यतर दुष्कृत नव्य, नव्य रुधिर चपक चय । (गी० ७।४)
नश्वर-(स०)-१ नष्ट होनेवाला, जो नष्ट होने के योग्य हो, मिथ्या, २ हिंसक, विनाशी ।
नष्ट-(स०)-१ जिसका नाश हो गया हो, जो बरबाद हो गया हो, २ जो समाप्त हो गया हो और दिखाई न दे, ३ अधम, नीच, पापी, ४ दरिद्र, निर्धन, कंगाल, ५ व्यर्थ, बेफायदा । उ० ३ नष्टमति, दुष्ट अति, कष्ट रत, खेदगत । (वि० १०)
नस-(स० स्नायु)-नाड़ी, आँत, अँतड़ी, शरीर के तंतु या रक्तवाहिनी नालिकाएँ । उ० अस्थि सैल सरिता नस जारा । (मा० ६।१५।४)
नसाइ-(स० नाश)-१ नष्ट हो, बिगड़े, २ नष्ट होकर, बिगड़कर । उ० १ सोइ मत कर फल पावै आवागमन नसाइ । (वि० २०३) नसाइहि-बिगड़ जायगा, नष्ट हो जायगा । उ० काज नसाइहि होत प्रभाता । (मा० ६। ६०।३) नसाई-१ बिगड़े नष्ट हो, २ नष्ट कर दी, ३ बिगड़ने से । उ० २ भलो कियो खल को निकाइ सो नसाइ है । (क० ७।१८१) नसाउ-दे० 'नसाई' । उ० ३ तिन्हहि लागि धरि देह करौं सब, डरौं न सुजस नसाउ । (गी० ५। ४५) नसाऊ-दे० 'नसाई' । उ० १ अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ । (मा० २।४५।१) नसाए-१ नाशकर, २ नाश किया । उ० १ सियनिंदक अघ ओघ नसाए । (मा० १।१६।२) नसातो-नष्ट होता, बरबाद हो जाता । नसाना-नष्ट होता है, खराब होता है । उ० स्वारथरत परलोक नसाना । (मा० ७।४१।२) नसानी-नष्ट हो गई, बिगड़ी, नाश हुई । उ० काम क्रोध बासना नसानी । (वै० ६०) नसाय-दे० 'नसाई' । नसावा-१ नाश करनेवाला, २ नाश किया, बिगाड़ा, खो दिया । उ० १ तपु सुख प्रद दुख दोष नसावा । (मा० १।७३।१) नसावै-१ नष्ट हो सकती, २ मिटे, नाश हो । उ० १ चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह लिखे न बिपति नसावै । (वि० १२३) नसावौं-नष्ट करता हूँ । उ० तेहि सुख पर अपवाद भेक ज्यों रटि रटि जनम नसावौं । (वि० १४२) नसाहिं-नाश हो जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं । उ० सुनत नसाहिं काम मद दंभा । (मा० १।३२।३) नसाहीं-नाश हो जाते हैं । उ० पर संपदा बिनासि नसाहीं । (मा० १।१२१।१०) नसै-नष्ट हो, नाश को प्राप्त हो । नसैहैं-नाश हो जायँगे, नष्ट होंगे । उ० बधु समेत प्रानवल्लभ पद परसि सकल परिताप नसैहैं । (गी० २।५१) नसैहौं-नाश करूँगा । उ० अब लौं नसानी अब न नसैहौं । (वि० १०५)
नसावन-नाश करनेवाला । उ० काम कोह मद मोह नसावन । (मा० १।४३।३) नसावनि-नाश करनेवाली । उ० सरजू सरि कलि कलुष नसावनि । (मा० १।१६।१)
नस्वर-दे० नश्वर' । उ० १ नस्वर रूप जगत सब देखहु हृदयँ बिचारि । (मा० ६।७७)
नहछू-(स० नख + क्षौर)-विवाह की एक रस्म जिसमें वर की हजामत बनती है, नाखून काटे जाते हैं और उसे मेंहदी आदि लगाइ जाती है । उ० नहछू आइ करावहु बैठि सिंहासन हो । (रा० ३)
नहत-(स० नद्ध हिं० नाधना)-नाधना है, जोतता है, काम में लगाना है । उ० पशु लौं पशुपाल इस बाँधत

नरक में भी। उ० १ मुनि बध नरकहुँ नाक सकोरी। (मा० १।२८।१) २ सुख संपति की का चली नरकहु नाहीं ठौर। (दो० ६४) नरकै-नरक को, नरक में। उ० प्रतिग्राही जीवै नहीं, दाता नरकै जाय। (दो० ४६६)

नरका-दे० 'नरक'। उ० १ कल्प-कल्प भरि एक-एक नरका। (मा० ७।१००।२)

नरकु-दे० 'नरक'। उ० १ सरगु नरकु अपबरगु समाना। (मा० २।१३१।४)

नरकेशरी-(स०)-विष्णु के एक अवतार जिनका नाम नृसिंह या नरसिंह था। प्रह्लाद के पिता हिरण्यकशिपु का वध इन्होंने किया था।

नरकेसरी-दे० 'नरकेशरी'। उ० राम नाम नरकेसरी कनककसिपु कलिकाल। (मा० १।२७)

नरत-(स० नरत्व)-मनुष्यत्व, मानवता।

नरदेव-(स०)-१ राजा, नृप, भूपाल, २ ब्राह्मण, ३ मनुष्य रूप में देवता राम। उ० ३ जयति मुनि देव नर देव दशरत्थ के, देव मुनि बंद्य किए अवधवासी। (वि० ४४)

नरनाथ-(स०)-राजा, नृप। उ० तब गुर भूसुर सहित गृह गवनु कीन्ह नरनाथ। (मा० १।३५१)

नरनायक-(स०)-राजा, नृप। उ० जनक नाम तेहि नगर बसै नरनायक। (जा० ६)

नरनारायण-(स०)-नर और नारायण नामक दो ऋषि जो द्वापर में अर्जुन और कृष्ण रूप में पैदा हुए। दे० 'नर'।

नरनारायन-दे० 'नरनारायण'। उ० नरनारायण की तुम्ह दोऊ। (मा० ४।१।५)

नरनारी-अर्जुन (नर) की स्त्री द्रौपदी। उ० बसन बेष राखी बिसेषि लखि बिरदावलि मूरति नरनारी। (कृ०६०)

नरपति-(स०)-राजा, नृप। उ० नरपति सकल रहहिं रुख ताकें। (मा० २।२५।१)

नरपाल-(स०)-राजा, नृप।

नरपालू-दे० 'नरपाल'। उ० बिवरन भयउ निपट नरपालू। (मा० २।२६।३)

नरम-(फ़ा० नर्म)-मृदु, कोमल, मुलायम।

नरलोक-(स०)-मृत्युलोक, संसार। उ० नाम नरलोक पाताल कोउ कहत किन। (क० ६।४५)

नरवइ-(स० नर + वर)-मनुष्यों में श्रेष्ठ, राजा। उ०भयउ न होइहि, है न, जनक सम नरवइ। (जा० ७)

नरहरि-(स०)-१ दे० 'नरकेशरी', २ तुलसीदास के गुरु नरहरदास, ३ नर रूप से लीला करनेवाले भगवान् रामचंद्र। उ० १ नरहरि किए प्रगट प्रहलादा। (मा० २।२६५।३)

नरहरी-दे० 'नरहरि'। उ० ३ सकहि चलेउ सुमिरि नरहरी। (मा० ५।४।१)

नरेश-(स०)-राजा, नृप, भूप।

नरेस-दे० 'नरेश'। उ० ब्याही जानकी, जीते नरेस देस देस के। (क० १।२१) नरेसहि-राजा को। उ० परिजन पुरजन सहित प्रमोद नरेसहि। (जा० १२८)

नरेसु-दे० 'नरेश'। उ० कहै तुलसीदास क्यों मतिमंद सकल-नरेसु। (गी० ७।३)

नरेसू-दे० 'नरेश'। उ० सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू। (मा० २।२३५।३)

नरो-नर, पुरुष, मर्द। उ० स्वारथ औ परमारथ हू को नहिं कुंजरो नरो। (वि० २२६)

नरों-(?)-आगे या पीछे का चौथा दिन, नरसों। उ० आजु कि कालिह परौं कि नरौं जड़ जाहिंगे चाटि दिवारी को दीयो। (क० ७।१७३)

नर्क-दे० 'नरक'।

नर्तक-(स० नर्त्तक)-नाचनेवाला, नट। उ० बहु जाति कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज। (मा० ७।२८)

नर्तकी-(स० नर्त्तकी)-नाचनेवाली स्त्री, रंडी, वेश्या। उ० माया खलु नर्तकी बिचारी। (मा० ७।११६।२)

नर्म-(स० नर्मन्)-१ परिहास, क्रीडा, खेल, हँसी, २ कल्याण, कुशल, ३ आनंद, हर्ष, खुशी। उ०३ धर्म वर्म नर्मद गुणग्राम। (मा० ३।११। छं० ८)

नर्मद-(स०)-१ सुख देनेवाला, आनंददायक, २ दिल्लगीबाज, मसखरा। उ० १ धर्म वर्म नर्मद गुणग्राम। (मा० ३।११। छं० ८)

नल-(स०)-१ निषध देश के यशस्वी राजा वीरसेन के पुत्र एक राजा। ये विद्वान तथा सुंदर थे। विशेषतः घोड़ों की परीक्षा तथा उनके संचालन में ये बड़े दक्ष थे। इनका विवाह दमयंती से हुआ था। २ नरकट, ३ कमल, सरोज, ४ राम की एक सेना का बंदर जिसने समुद्र लाँघने के लिए पुल बनाया था। कहा जाता है कि इसके हाथ द्वारा पानी में रक्खा हुआ पत्थर एक ऋषि के शाप से कभी नहीं डूबता था। यह विश्वकर्मा का पुत्र था। ५ यदु के एक पुत्र का नाम। उ० ४ तब सुग्रीवँ बोलाए अंगद नल हनुमंत। (मा० ४।२२)

नलिन-(स०)-१ कमल, पद्म, २ पानी, ३ सारस। उ० १ अलकैं कुटिल, ललित लटकन भ्रू, नील नलिन दोउ नयन सुहाए। (गी० १।२०)

नलिनी-(स०)-१ कमलिनी, २ कुमुदिनी, ३ कमलों का समूह, ४ ऐसा देश जहाँ कमल बहुत अधिक होते हों। उ० १ कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा। (मा० २।८।४)

नलु-दे० 'नल'। उ० १ सकृत प्रबेस करत जेहि आस्रम बिगत बिषाद भए पारथ नलु। (वि० २४)

नव (२)-(स०)-१ नया, नवीन, २ सुंदर। उ० १ श्याम नव-तामरस-दाम-द्युति बपुष छबि, कोटि-मदनार्क-अगणित प्रकाशम्। (वि० ६०)

नव (३)-(स०)-१ नौ, आठ और एक, २ नव व्याकरण। उ० १ सात द्वीप नव खंड लौं तीनि लोक जग माहिं। (वै० ४०) नवगुन-(स० नवगुण)-नव प्रकार के गुण। शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान तथा आस्तिकता। उ० नवगुन परम पुनीत तुम्हारें। (मा० १।२८२।४) नवग्रह-(स०)-फलित ज्योतिष में सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु शुक्र, शनि, राहु और केतु ये नवग्रह। उ० नवग्रह निकर अनीक बनाई। (मा० ७।२०।३) नवद्वारपुर-ऐसा नगर जिसमें ९ द्वार हों। शरीर। शरीर में २ आँख, २ कान, २ नाक, १ मुख, १ गुदा तथा १ मूत्रेंद्रिय, कुल ९ द्वार हैं। उ० नवमी नवद्वारपुर बसि

जेहि न आपु भल कीन्ह । (वि० २०३) नवनिद्धि-दे० 'नवनिधि'। उ० अष्टसिद्धि नवनिद्धि भूति सब भूपति भवन कमाहिं। (गी० १।२३) नवनिधि-दे० 'निधि'।
नवरस-(स०)-काव्य के नौ रस। श्रृंगार, करुण, हास्य, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शांत। उ० तौ नवरस, षटरस रस, अनरस ह्वै जाते सब सीठे। (वि० १६९) नवसत-दे० 'नवसप्त'। उ० सो सभी देखि सुहायो नवसत सँवारि सँवारि। (गी० ७।१८) नवसप्त-(स०)-नौ और सात, १६ श्रृंगार। पूर्ण श्रृंगार। उ० नवसप्त साजें सुंदरी सब मत्त कुंजर गामिनीं। (मा० १।३२२। छं० १) नव सात-दे० 'नवसप्त'। उ० सग नारि सुकुमारि सुभग सुठि राजति बिन भूषन नव-सात। (गी० २।१५)
नवजर-दे० 'नवज्वर'। उ० तुलसी कान्ह बिरह नित नव जर जरि जीवन भरिबे हो। (कृ० ३९)
नवजल-प्रथम वर्षा का पानी। उ० मनहुँ मीनगन नवजल जोगा। (मा० २।२३४।३)
नवज्वर-(सं०)-नवीन ज्वर, चढ़ता हुआ बुखार।
नवधा-(स०)-नव प्रकार की। उ० नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। (मा० ३।३५।७) नवधाभक्ति-(स०)-नौ प्रकार की भक्ति। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वदन, सख्य, दास्य और आत्म निवेदन।
नवनि-१ झुकना नवना, नम्र होना, २ झुकाव। उ० १ सेसेहि स्रम-सीकर रुचिर राजत मुख तैसिए ललित भ्रुकुटिन्ह की नवनि। (गी० ३।५)
नवनीत-(स०)-मक्खन, माखन। उ० संत हृदय नवनीत समाना। (मा० ७।१२५।४)
नवनीता-दे० 'नवनीत'। उ०तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता। (मा० ७।११७।८)
नवम-(स०)-नवाँ, जो गिनती में नवाँ हो। उ० नवम सरल सब सन छलहीना। (मा० ३।३६।३)
नवमी-(सं०)-चांद्र मास के किसी पक्ष की नवीं तिथि। उ० नवमी नवद्वारपुर बसि जेहि न आपु भल कीन्ह। (वि० २०३)
नवल-(स०)-१ नया, नवीन, २ सुंदर, मनोहर, ३ अनोखा, ४ उज्ज्वल, ५ जवान, युवा। उ० १ पूँछत कहत नवल इतिहासा। (मा० ५।२८।३) ५ सुजस धवल, चातक नवल! तुही भुवन दस चारि। (दो० २९५)
नवला-(स०)-नवीन स्त्री, तरुणी। उ० का घूँघट मुख मूँदहु नवला नारि। (ब० ११)
नवावहिं-नवाते हैं, नवा रहे हैं। उ० प्रभु कर जोरें सीस नवावहिं। (मा० ७।३३।२) नवावौं-नवाऊँ, झुकाऊँ, झुका दूँ। उ० का बापुरो पिनाकु मेलि गुन मंदर मेरु नवावौं। (गी० ८७)
नवीन-(स०)-१ नया, नूतन, हाल का, २ विचित्र, अपूर्व, अनोखा, ३ तरुण, जवान। उ०१ गावन लगे राम कल कीरति सदा नवीन। (मा० ७।२०)
नव्य-(सं०)-नया, नवीन। उ० दिग्पवर दुकूल भव्य, नव्य रुचिर चपक चय। (गी० ७।४)
नश्वर-(स०)-१ नष्ट होनेवाला, जो नष्ट होने के योग्य हो, मिथ्या, २ हिंसक, विनाशी।
नष्ट-(स०)-१ जिसका नाश हो गया हो, जो बरबाद हो गया हो, २ जो समाप्त हो गया हो और दिखाई न दे, ३ अधम, नीच, पापी, ४ दरिद्र, निर्धन, कंगाल, ५ व्यर्थ, बेफायदा। उ० ३ नष्टमति, दुष्ट अति, कष्ट रत, खेदगत। (वि० १०)
नस-(स० स्नायु)-नाड़ी, आँत, अँतड़ी, शरीर के तंतु या रक्तवाहिनी नालिकाएँ। उ० अस्थि सैल सरिता नस जारा। (मा० ६।१५।४)
नसाइ-(स० नाश)-१ नष्ट हो, बिगड़े, २ नष्ट होकर, बिगड़कर। उ० १ सोइ मत कर फल पावै आवागमन नसाइ। (वि० २०३) नसाइहि-बिगड़ जायगा, नष्ट हो जायगा। उ० काज नसाइहि होत प्रभाता। (मा० ६।६०।३) नसाई-१ बिगड़े, नष्ट हो, २ नष्ट कर दी, ३ बिगड़ने से। उ० २ भलो कियो खल को निकाई सो नसाई है। (क० ७।१८१) नसाउ-दे० 'नसाई'। उ० ३ तिन्हहिं लागि धरि देह करौं सब, डरौं न सुजस नसाउ। (गी० ५।४५) नसाऊ-दे० 'नसाइ'। उ० १ अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ। (मा० २।४५।१) नसाए-१ नाशकर, २ नाश किया। उ० १ सियनिंदक अघ ओघ नसाए। (मा० १।१६।२) नसातो-नष्ट होता, बरबाद हो जाता। नसाना-नष्ट होता है, खराब होता है। उ० स्वारथरत परलोक नसाना। (मा० ७।४१।२) नसानी-नष्ट हो गई, बिगड़ी, नाश हुई। उ० काम क्रोध बासना नसानी। (वि० ६०) नसाय-दे० 'नसाई'। नसावा-१ नाश करनेवाला, २ नाश किया, बिगाड़ा, खो दिया। उ० १ तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा। (मा० १।७३।१) नसावै-१ नष्ट हो सकती, २ मिटे, नाश हो। उ० १ चिंत्र कल्पतरु कामधेनु गृह लिखे न बिपति नसावै। (वि० १२३) नसावौं-नष्ट करता हूँ। उ० जेहि मुख पर अपवाद भेक ज्यों रटि रटि जनम नसावौं। (वि० १४२) नसाहिं-नाश हो जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं। उ० सुनत नसाहिं काम मद दंभा। (मा० १।३२।३) नसाहीं-नाश हो जाते हैं। उ० पर संपदा बिनासि नसाहीं। (मा० १।१२१।१०) नसै-नष्ट हो, नाश को प्राप्त हो। नसैहैं-नाश हो जावेंगे, नष्ट होंगे। उ० बधु समेत प्रानवल्लभ पद परसि सकल परिताप नसैहैं। (गी० २।२१) नसैहौं-नाश करूँगा। उ० अब लौं नसानी अब न नसैहौं। (वि० १०५)
नसावन-नाश करनेवाला। उ० काम कोह मद मोह नसावन। (मा० १।७३।३) नसावनि-नाश करनेवाली। उ० सरजू सरि कलि कलुष नसावनि। (मा० १।१६।१)
नस्वर-दे० नश्वर'। उ० १ नस्वर रूप जगत सब देखहु हृदयँ बिचारि। (मा० ६।७७)
नहछू-(स० नख + क्षौर)-विवाह की एक रस्म जिसमें वर की हजामत बनती है, नाखून काटे जाते हैं और उसे मेंहदी आदि लगाई जाती है। उ० नहछू जाइ करावहु बैठि सिंहासन हो। (रा० ३)
नहत-(स० नह, हिं० नाधना)-नाधता है, जोतता है, काम में लगाता है। उ० पसु लौं पसुपाल इस बाँधत

छोरत नहत। (वि० १३३) नहते-नाधते, जोतते, काम में लगाते। उ० तौ जमभट साँसति-हर हमसे वृषभ खोजि खोजि नहते। (वि० ९७) नहिकै-नाधकर, जोतकर। उ० नतु और सबै विष बीज बये हर हाटक काम दुहा नहि कै। (क० ७।३३) नहे-नधे, जुते, जुड़े। उ० सोइ सींचिवे लागि मनसिज के रहँट नयन नित रहत नहे री। (गी० ५।४६)

नहरनी-(स० नख + हरणी)-नाखून काटने के लिए प्रयुक्त एक औजार। उ० कनक चुनिन सों लसित नहरनी लिए कर हो। (रा० १८)

नहाइ-(स० स्नान, हि० नहाना)-१ नहाकर, स्नान करके, २ रोग से मुक्त होने पर नहाकर। उ० २ सगुन कुमल कल्यान सुभ, रोगी उठै नहाइ। (प्र० ४) नहात-नहा रहे थे। उ० जाना मरमु नहात प्रयागा। (मा० २।२०८।३) नहाने-स्नान किया। उ० सबिधि सितासित नीर नहाने। (मा० २।२०४।२) नहावा-स्नान किया। उ० सकल सौच करि राम नहावा। (मा० २।९४।२) नहाहीं-स्नान करते हैं। उ० ते सुकृती मन मुदित नहाहीं। (मा० १।४३।३) नहाहू-नहा लो, नहाओ। उ० तात जाउँ बलि बेगि नहाहू। (मा० २।५३।१) नह्यो-नहाना, नहाया। उ० जूठनि को लालची चहौं न दूध नह्यो हौं। (वि० २६०)

नहारू (१)-(?)-१ बाज, २ ताँत, ३ चाम का टुकड़ा। उ० २ मारसि गाइ नहारू लागी। (मा० २।३६।७)

नहारू (२)-(स० नरहरि, हि० नाहर)-बाघ, व्याघ्र।

नहिं-दे० 'नहीं'। उ० पाप सताप घाघोर ससति दीन, भ्रमत जगयोनि, नहिं कोपि त्राता। (वि० ११)

नहिन-नहीं। उ० रामचरन तजि नहिन आन गति। (वि० १२८)

नहियर-(स० मातृगृह, हि० मैहर)-पीहर, मैका।

नहीं-(स० नहि)-एक अव्यय जिसका प्रयोग निषेध या अस्वीकृति प्रकट करने के लिए होता है। न। उ० जनि लेहु मातु कलकु करुना, परिहरहु अवसर नहीं। (मा० १।९७। छ० १)

नहुष-(स०)-अयोध्या के एक प्राचीन राजा जो अबरीष के पुत्र और ययाति के पिता थे। बृहस्पति ने कुछ दिन के लिए इन्हें इंद्रासन दिया था। वहाँ ये इन्द्राणी पर आसक्त हुए और हठकर उनसे मिलने के लिए सप्तर्षियों को कहार बना पालकी पर चले। इस पर अगस्त्य ने उन्हें सर्प हो जाने का शाप दिया। बाद में युधिष्ठिर ने उन्हें मुक्त किया। उ० हठ बस सब सकट सहे गालव नहुष नरेस। (मा० २।९१)

नहुषु-दे० 'नहुष'। उ० ससि गुर तिय गामी नहुषु चढ़ेउ भूमिसुर जान। (मा० २।२२८)

नाँगे-(स० नग्न)-नगा, वस्त्रहीन, जिसके पास कुछ न हो। उ० भौन में भाँग, धतूरोई आँगन, नाँगे के आगे हैं, माँगने बाढ़े। (क० ७।१५४)

नाँगो-दे० 'नाँगे'। उ० नाँगो फिरै कहै माँग तो देखि 'न खाँगो कछू, जनि माँगिए थोरो'। (क० ७।१५३)

नाँघी-(स० लंघन)-लाँघी, फलाँगकर पार की। उ० कहे कटु बचन, रेख नाँघी मैं, तात छमा सो कीजै। (गी० ३।७)

नांत-(न + अत)-जिसका अत न हो, अनत।

नांदीमुख-(स०)-एक आभ्युदयिक श्राद्ध जो विवाह आदि मगल अवसरों पर किया जाता है।

नाँय-दे० 'नाउँ'।

ना-(स०)-नहीं, न। उ० केवट की जाति कछु वेद ना पढ़ाइहौं। (क० २।८)

नाइ (१)-नम्र होकर, २ नवाकर, ३ डालकर, ४ खोया, बहाया। उ० २ चले मनहिं मन कहत बिभीषन सीस महेसहि नाइ कै। (गी० ५।२८) नाइन्हि-नवाया। उ० सिय सुमिरे मुनि सात आइ सिर नाइहि। (पा० ८४) नाइहि-नवावेगा, झुकावेगा। उ० कालउ तुअ पद नाइहि सीसा। (मा० १।१६५।१) नाइहै-नवावेगा, झुकावेगा। उ० भलो मानिहैं रघुनाथ जोरि जो हाथ माथो नाइहै। (वि० १३५) नाइ (१)-दे० 'नाइ (१)'। नाउ (१)-१ झुको, नम्र हो, २ नाधो, डालो, ३ झुकाओ। उ० ३ सत्रु सयानो सलिल ज्यों राज सीस रिपु नाउ। (दो० ५२०) नाऊँ (१)-झुकाता हूँ, नवाता हूँ। नाए-१ नवाया, झुकाया, २ झुकाने पर, ३ परास्त किया, ४ डाला। उ० १ प्रभुपद जलज सीस तिन्ह नाए। (मा० १।६३।३) ३ निज सुंदरता रति को मद नाए। (क० ७।४५) नाएसि-नवाया, नाया। उ० जाइ कमल पद नाएसि माथा। (मा० २।२२।४) नाओं-नवाता हूँ, सिर नवाता हूँ। नायउ-नाया, नवाया। उ० द्वार आइ पद नायउ माथा। (मा० २।६।१) नाये-(स० नमन)-१ नवा दिये, २ नम्र हुए, ३ नवाए हुए, ४ नवाने से। नायो-१ डाल दिया, डाला, २ नवाया, ३ नम्र हुए, सिर झुकाए। उ० १ तुलसिदास सुनि बचन क्रोध अति पावक जरत मनहुँ घृत नायो। (गी० ४।२) नाव (१)-(स० नामन)-१ नाओ, डालो, २ नमन होने का आदेशसूचक शब्द। नावइ-नवाते हैं, नवाने लगे। उ० बार-बार नावइ पद सीसा। (मा० ५।७।७) नावत-१ डालने पर, २ झुकाने पर, ३ डालते हैं, ४ नवाते हैं, झुकाते हैं। उ० ४ सुरनर मुनि सब नावत सीसा। (मा० १।२७।३) नावहिं-नवाते हैं। उ० भए परसपर प्रेमबस फिरि फिरि नावहिं सीस। (मा० १।३०२) नावा (१)-(स० नमन)-नवाया, झुकाया। उ० बहुरि राम नायहि सिरु नावा। (मा० १।२७।१) नावौं-१ नवाता, २ नवाता हूँ, ३ डालता हूँ। उ० १ आश्रम जाइ जाइ सिरु नावौं। (मा० ७।११०।५) २ सरन सनमुख हात सकुचि सिर नावौं। (वि० २०८)

नाइ (२)-दे० 'नाइ (२)'।

नाई-(स० न्याय)-तरह, समान। उ० नहिं आदरेहु भगति की नाईं। (मा० ७।११५।२)

नाइ (२)-(स० नापित)-हज्जाम, नाऊ, बाल बनाने वाला।

नाई (३)-(स० न्याय)-तरह, भाँति, समान। उ० राजिव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं। (क० २।२)

नाउँ-(सं० नाम)-नाम, नावँ। उ० लीजे गाँउ, नाउँ लै रावरो है जग ठाउँ कहूँ हूँ जीयो। (कृ० ३)

नाउ (२)-(सं० नौ, फा नाव)-नौका, तरणी।

नाऊँ (२)-दे० 'नाउँ'। उ० भुएँ सगजानि जपेउ हरिनाऊँ। (मा० १।२६।३)

नाऊ-(सं० नापित)-नाई, हजामत बनानेवाला। उ० नाऊ बारी भाट नट राम निछावरि पाइ। (मा० १।३११)

नाक (१)-(सं० नक, प्रा० नक्क)-१ सूँघने और साँस लेने की इंद्रिय, नासा, नासिका, २ प्रतिष्ठा, मर्यादा। उ० १ दसमुख विवस तिलोक लोकपति बिकल बिनाए नाक चना है। (गी०७।१३) २ नाक पिनाकहि संग सिधाई। (मा० १।२६६।४) मु० बिनाए नाक चना है-बहुत तंग किया है, बहुत परेशान किया है। उ०दे०'नाक'। मु० नाक सकोरी-घृणा करेगा, नहीं चाहेगा। उ० सुन अघ नरकहु नाक सकोरी। (मा० १।२६।१) मु० नाकहि आइ-परेशान हो गया, तंग आ गया। उ० सहि देख्यो तुम्ह सो कह्यो, अब नाकहि आई, कौन दिनहु दिन छीजै। (कृ०७) नाकहि-नाक में। उ० दे० मु० 'नाकहि आई'।

नाक (२)-(सं० नक्र)-मगर की जाति का एक जीव।

नाक (३)-(सं०)-१ स्वर्ग, २ आकाश। उ० १ महि पाताल नाक जसु ब्यापा। (मा० १।२६५।२)

नाकनटी-स्वर्ग की नर्तकियाँ, अप्सराएँ। उ० नाकनटीं नाचहिं करि गाना। (मा० १।३०४।२)

नाक-नायक-स्वर्ग के नायक, इंद्र। उ० फरि पुटपाक नाक नायक हित घने घने घर घलतो। (गी० ५।१३)

नाकप-(सं०)-१ लोकपाल, २ इंद्र। उ० २ राँकनि नाकप रीझि करै, तुलसी जग जो जुरै, जाचक जोरो। (क० ७।१५२)

नाकपति-(सं०)-इंद्र।

नाकपाल-(सं०)-इंद्र, स्वर्ग के राजा। उ० भूमि भूमिपाल ब्यालपालक पताल, नाकपाल, लोकपाल जेते सुभट समाज है। (क०५।२२)

नाकेस-(सं० नाकेश)-इंद्र। उ० नाकेस-दुर्लभ भोग लोग करहिं न मन विषयनि हरै। (गी ७।११)

नाग-(सं०)-१ सर्प, साँप, २ हाथी, ३ मेघ बादल ४ आठ की संख्या, ५ पान, ६ दुष्ट या निर्दय मनुष्य, ७ एक देश का नाम, ८ सीसा, सातों धातुओं में एक, ९ नागकेसर, १० नागरमोथा, ११ हस्तिनापुर, १२ एक जाति विशेष, जिसकी उत्पत्ति कश्यप और कद्रू से मानी गई है और जिसका स्थान पाताल है। उ० १ जसु पावन रावन नाग महा। (मा० ६।१११।२) २ मत्त नाग तम कुंभ बिदारी। (मा० ६।१२।१)१२ नर-नाग बिबुध बंदिनि, जय जह्नु बालिका। (वि० १७)

नागअरि-हाथी का शत्रु सिंह। उ० जिमि ससु चहै नाग अरि भागू। (मा० १।२६७।१)

नागनग-(सं०)-गजमुक्ता। उ० निज गुन घटत न नागनग परखि परिहरत कोल। (दो० २८४)

नागपाश-(सं०)-वरुण के एक अस्त्र का नाम जिससे शत्रुओं को बाँध लेते थे। तंत्र के अनुसार पाश फेर के बंधन को नागपाश कहते हैं।

नागपास-दे० 'नागपाश'। उ० नागपास बाँधेसि लै गयऊ। (मा० ५।२०।१)

नागफाँस-दे० 'नागपाश'।

नागभूप-नागों के राजा, शेषनाग। उ० बरनत यह अमित रूप थकित निगम नाग भूप। (गी० ७।७)

नागमनि (सं० नागमणि)-गजमुक्ता। उ० उर अति रुचिर नागमनि माला। (मा० १।२१६।३)

नागर-(सं०)-१ चतुर, निपुण, २ नगर में रहनेवाला, ३ नायक, ४ सोंठ, ५ नारंगी। उ० १ मधुरा बड़ो नगर नागर जन जिन्ह जातहि जदुनाथ पढ़ाए। (कृ० ५०) २ गनी गरीब ग्रामनर नागर। (मा० १।२८।३)

नागराज-गजेन्द्र जिसका उद्धार विष्णु ने किया था। उ० नागराज निज बल बिचारि हिय हारि चरन चित दीन। (वि० ६३)

नागरि-चतुर स्त्री। उ० तुलसिदास ग्वालिनि अति नागरि, नट नागरमनि नंदलला। (कृ० १२) नागरिन्ह-१ शहर की स्त्रियाँ, चतुर स्त्रियाँ, २ चतुर या शहर की स्त्रियों के। उ० २ तुलसी ये नागरिन्ह जोगपट जिन्हहिं आजु सब सोही। (कृ० ४१)

नागरिपु-१ हाथी का शत्रु, सिंह, २ सर्पों के शत्रु गरुड़। उ० १ निजकर खासि नागरिपु छाला। (मा०१।१०६।३)

नागरी-१ नगर की रहनेवाली या चतुर स्त्री, २ भारत की प्रसिद्ध लिपि जिसमें हिंदी आदि भाषाएँ लिखी जाती हैं। उ० १ ज्यों सुभाय प्रिय लगति नागरी नागर नवीन को। (वि० २६६)

नागा-दे० 'नाग'। उ० २ दासी दास तुरग रथ नागा। (मा० १।१०१।४)

नागु-दे० 'नाग'।

नागेन्द्र-(सं०)-१ गजेन्द्र, २ शेषनाग। उ० १ लोभ अति मत्त नागेंद्र पंचानन, भक्त हित-हरन-संसार भार। (वि० ४६)

नाघइ-(सं० लंघन, हि० लाँघना)-लाँघेगा, लाँघ सकेगा। उ० जो नाघइ सत जोजन सागर। (मा० ४।२८।१) नाघत-लाँघते हुए, इस पार से उस पार जाते हुए। उ० नाघत सरित सैल बन बाँके। (मा० २।११८।१) नाघहिं-लाँघ जाते हैं। उ० नाघहिं खग अनेक बारीसा। (मा० ६।२८।१) नाघि-(सं० लंघन)-लाँघकर, फाँदकर। उ० बारिधि नाघि एक कपि आवा। (मा० ६।६।१)

नाच-(सं० नृत्य, प्रा० णच्च नच्च)-१ नृत्य, नर्तन, नाचने की क्रिया, २ कृत्य, कर्म, धंधा, ३ इधर उधर फिरना, दौड़ना। उ० १ करतल ताल बजाइ ग्वाल जुवतिन तेहि नाच नचायो। (वि० ६८)

नाचइ-नाचता है। उ० जहँ तहँ नाचइ परिहरि लाजा। (मा० ६।२४।१) नाचत-१ नाचते हैं, २ नाचते हुए। उ० २ जाकी मायावस बिरंचि सिव नाचत पार न पायो। (वि० ६८) नाचहिं-नाचते हैं, नृत्य करते हैं। उ० नाचहिं नगन पिसाच, पिसाचिनि जोवहिं। (पा० २६) नाचा-नाचने लगा। उ० सिर मुकुटीन रुद्र महि नाचा। (मा० ६।१०३।१) नाचि-नाचकर। उ० नाचि कूदि करि लोग रिझाई। (मा० ६।२४।१)

नाज (१)-(फा० नाज)-१ नखरा, बनावट, दिखावा, २ घमंड।
नाज (२)-(स० अनाद्य)-अनाज, खाद्य सामग्री।
नाजु-दे० 'नाज (२)'। उ० बलकल विमल दुकूल मनोहर, कंदमूल फल अमिय नाजु। (गी० २।७)
नाजुक-(फा० नाजुक)-कोमल, सुकुमार।
नाटक-(स०)-१ अभिनय, वह दृश्य जिसमें स्वांग के द्वारा चरित्र दिखाए जायँ, २ दृश्यकाव्य, अभिनय ग्रंथ, ३ नट, नाच या अभिनय करनेवाला।
नाठी-(स० नष्ट)-नष्ट हो गई। उ० मुनि अति बिकल मोंह मति नाठी। (मा० १।१३४।३) नाठे-नष्ट हो गए। उ० आपनि सूझि कहौं, पिय! बूझिए, जूझिबे जोग न ठाहरु नाठे। (क० ६।२८)
नाइ-दे० 'नारि'।
नात-(स० ज्ञाति, प्रा० णाति, हि० नात)-१ नाता, रिश्ता, संबंध, २ समधी, नातेदार। उ० १ आरज सुत पद कमल बिनु बादि जहाँ लगि नात। (मा० २।६७)
नाता-रिश्ता, संबंध। उ० मानउँ एक भगति कर नाता। (मा० ३।३५।२) नाते-दे० 'नात'। उ० १ तोहिं मोहिं नाते अनेक मानिये जो भावे। (वि० ७६)
नाती-(स नप्तृ, प्रा० नत्ति)-लड़की या लड़के का लड़का। उ० सुत समूह जन परिजन नाती। (मा० १।१८१।२)
नातो-रिश्ता, संबंध। उ० नातो मिल्यो न थोर। (गी० २।६१)
नात्र-(स० ना+अत्र)-यहाँ नहीं, इसमें नहीं, इस विषय में नहीं। उ० भजति नात्र संशय। (मा० ३।४।१२)
नाथ-(स०)-१ स्वामी, मालिक, भगवान, २ पति, भर्तार, ३ नाक का नथ, एक आभूषण, ४ पशुओं की नाक की रस्सी, ५ गोरखपंथी साधुओं की एक पदवी। उ० १ तत्र अच्छिप्त तव विषम माया नाथ! अंध मैं मंद ब्यालाद गामी। (वि० ५६) नाथहिं-स्वामी को, मालिक को, भगवान को। उ० अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जी तें। (वि० १६८) नाथहि-प्रभु को, नाथ को। उ० तब रिपि निज नाथहि जियँ चीन्ही। (मा० १।२०६।४) नाथहू-नाथ भी, भगवान भी। उ० नाथहू न अपनायो, लोक झूठी ह्वै परी, पै प्रभू हू तें प्रबल प्रताप प्रभु नाम को। (क० ७।७०)
नाथा-दे० 'नाथ'। उ० १ आयसु काह होइ रघुनाथा। (मा० २।२६१।४)
नाथु-दे० 'नाथ'। उ० १ कियउ निषादनाथु अगुआई। (मा० २।२०३।१)
नाथू-दे० 'नाथ'। उ० १ चलत चहत बन जीवननाथू। (मा० २।५८।२)
नाद-(स०)-१ शब्द, ध्वनि, आवाज़, २ वर्णों का अव्यक्त मूल रूप, ३ संगीत। उ० १ पुनि-पुनि सिंघनाद करि भारी। (मा० १। १८२।४)
नादत-बजते हैं, शब्द करते हैं, ध्वनि करते हैं। उ० इन्द्र हीं के भाए ते बधाए ब्रज नित नए, नादत बादत सब सब सुख जियो है। (कृ० १९)
नादा-दे० 'नाद।
नादु-दे० 'नाद'। उ० १ मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू। (मा० २।५४।२)
नाना (१)-(सं०)-१ अनेक प्रकार के, बहुत तरह के, विविध, २ अनेक, बहुत। उ० १ मध्य वयस धनहेतु गँवाइ कृपी बनिज नाना उपाय। (वि० ८३)
नाना (२)-(?)-मातामह, माता का पिता।
नान्ह-(स० न्यच)-१ छोटा, लघु, २ हीन, क्षुद्र, तुच्छ, ३ पतला, बारीक, महीन। उ० ३ तुलसी लोग रिझाइबो करषि कातिबो नान्ह। (दो० ४१२)
नाप-(स० मापन, हि० माप)-१ पानी या अनाज मापने का बड़ा मटका, २ पैमाइश, परिमाण, माप। उ० १ नाप के भाजन भरि जलनिधि जल भो। (ह० ७।१) २ तुलसी प्रेम पयोधि की तातें नाप न जोख। (दो० २८१)
नापे-नापा, पैमाइश की। नापे जोखे-अंदाज़ा किया, अनुमान लगाया। उ० भल इनको पिनाक नीके नापे जोखे हैं। (गी० १।८३)
नाभ-दे० 'नाभि'। उ०तप्त कांचन-वस्त्र शस्त्र विद्या निपुन सिद्ध सुर-सेव्य पाथोजनाभ। (वि० ५०) नाभ-दे० 'नाभि'।
नाभि-(स०)-नाभी तुंडिका, पिंडज जीवों के पेट के बीच का वह गड्ढा जहाँ गर्भावस्था में जरायु-नाल जुड़ा रहता है। उ० नाभि मनोहर लेति जनु जमुन भवँर छवि छीनि। (मा० १।१४७)
नाभी-दे० 'नाभि'। उ० नाभी सर त्रिबली निसेनिका, रोमराजि सैवल छवि पावति। (गी० ७।१७)
नाम-(स० नामन्)-१ संज्ञा, आख्या, किसी व्यक्ति या वस्तु का निर्देश करनेवाला शब्द। वह शब्द जिससे किसी व्यक्ति या वस्तु का बोध हो। २ ख्याति, प्रसिद्धि। उ०१ सम प्रकास तम पाख दुहुँ नाम भेद बिधि कीन्ह। (मा० १।७ ख) नामन्ह-नामों। उ० राम सकल नामन्ह ते अधिका। (मा० ३।४२।४) नामहुँ-नाम ने भी। उ० यह धरि भाव तास तुलसी प्रभु नामहुँ पाप न जारो। (वि० ९६) नामैं-नाम को। उ० हर से हरनिहार जपें जाके नामैं। (गी० ५।२४)
नामा-दे० 'नाम'। उ० १ रामचरित मानस एहि नामा। (मा० १।३५।४)
नामानि-दे० 'नामानी'।
नामानी-(स० नामानि)-अनेक नाम, नामों का समूह। उ० अमल कर्म अगल नामानी। (मा० ७।५२।२)
नामिनी-१ नामवाली, संज्ञावाली, २ विख्यात, प्रसिद्ध, ३ नामधारी, ४ प्रसिद्धि पाना, ५ रूप। उ० १ जय महेसभामिनी, अनेक रूप नामिनी। (वि० १६)
नामी-नामवाला। उ० समुझत सरिस नाम अरु नामी। (मा० १।२१।१)
नामु-दे० 'नाम'। उ० १ नामु सत्य अस लाग न केहू। (मा० २।२७१।१)
नामू-दे० 'नाम'। उ० १ सुमिरि पवन सुत पावन नामू। (मा० १।२६।३)
नार्यँ-दे०'नाय (२)'। नाम से। उ०तुलसी अजहुँ सुमिरि रघुनाथहिं तरो गयंद जाके अर्द्ध नार्यँ। (वि० ८३)

नाय (१)-(सं०)-१ नीति, २ उपाय, युक्ति, ३ नेता, अगुआ, ४ आधार, सहारा।
नाय (२)-(सं० नामन्)-नाम।
नायक-दे० 'नायक'। उ० २ धर त्रिलोक नायक। (मा० ३।४।छं०३) नायक-(सं०)-१ नेता, अगुआ, प्रधान, २ स्वामी, प्रभु, ३ श्रेष्ठ पुरुष, ४ सेनाध्यक्ष, फौज का अफसर, ५ कलावंत, संगीतकला में निपुण, ६ एक वर्ण वृत्त, ७ नायिका का पति, ८ साहित्य में शृंगार का आलंबन या साधक वह पुरुष जिसका चरित्र किसी काव्य या नाटक आदि का मुख्य विषय हो। उ० १ दच्छहि कान्ह प्रजापति नायक। (मा० १।६०।३) नायकहि-नायक से, स्वामी से। उ० चले मिलन मुनि नायकहि, मुदित राउ एहि भाँति। (मा० १।२१४)
नायका (१)-(सं० नायिका) नायक की स्त्री।
नायका (२)-(सं० नायक) नायकों को, सेनापतियों को। उ० दस दस बिसिख उर माझ मारे सकल निसिचर नायका। (मा० ३।२०।छं०३)
नायकु-दे० 'नायक'।
नारकी-(सं० नारकिन्)-१ पापी, नरक में जाने योग्य कर्म करनेवाला, २ नरक में रहनेवाला। उ० २ पाव नारकी हरि पदु जैसें। (मा० १।१३२।३)
नारद-(सं०)-१ एक प्रसिद्ध देवर्षि जो ब्रह्मा के पुत्र कहे जाते हैं। ये बहुत बड़े हरिभक्त थे साथ ही कलहप्रिय भी थे। इन्हें ब्रह्मा का शाप था कि तुम सर्वदा घूमते रहोगे और इसी कारण ये एक स्थान पर स्थिर नहीं रहते थे। घूमने और कलहप्रिय स्वभाव के कारण ये चुगली और लड़ाई झगड़ा लगानेवाले थे। इनके इस कृत्य से पौराणिक कहानियाँ भरी पड़ी हैं। २ विश्वामित्र के एक पुत्र, ३ एक प्रजापति, ४ झगड़ा लगानेवाला आदमी। उ० १ बालमीक नारद घट जोनी। (मा० १।३।२) नारदहि-नारद को। उ० सनकादिक नारदहि सराहहिं। (मा० ७।४२।४) नारदहूँ-नारद भी। उ० नारदहूँ यह भेदु न जाना। (मा० १।६८।१) नारदी-(सं० नारद)-सत्य भी कहना और झगड़ा भी लगा देना, चतुरतापूर्ण बात। उ० लखि नारद नारदी उमहि सुख भा उर। (पा० ११)
नारा-(सं० नाल)-१ सूत, २ जल, ३ छोटी नदी, नाला, ४ कुसुम। उ० ३ चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा। (मा० ३।१३।१)
नाराच-(सं०)-तीर, ऐसा तीर जो पूर्णतः लोहे का बना हो। उ० छाँड़े बिपुल नाराच। (मा० ३।२०।४)
नारायणं-नारायण को। उ० नौमि नारायणं नर करुणायन ध्यान पारायणं ज्ञान मूलम्। (वि० ६०) नारायण-(सं०)-ईश्वर, भगवान्। कहीं-कहीं इन्हें नर का पुत्र और कहीं-कहीं भाई होना लिखा है। दे० 'नर'।
नारायन-दे० 'नारायण'। उ० नर नारायन सरिस सुभ्राता। (मा० १।२०।३)
नारि (१)-(सं० नाल, नाड़)-ग्रीवा, गर्दन। उ० नियम न नाइ नारि पातक घर तजि धूमरहि। (दो० ३०४)
नारि (२)-(सं० नारी)-स्त्री, औरत। उ० का घूँघट मुख मूँदहु नवला नारि। (ब० १६)
नारियरु-(सं० नारिकेल)-नारियल का फल। उ० टक टोरि कपि ज्यों नारियरु सिर नाइ सब बैठत भए। (जा० ३३)
नारी (१)-(सं०)-स्त्री, औरत। उ० सोह न बसन बिना बर नारी। (मा० १।१०।२) नारिन्ह-स्त्रियाँ, औरतें। उ० सब नारिन्ह मिलि भेंटि भवानी। (मा० १।१०२।४) नारिहि-नारी को, स्त्री को। उ० पुरुष त्यागि सक नारिहि जो बिरक्त मतिधीर। (मा० ७।११५ क)
नारी (२)-(सं० नाड़ी)-नाड़ी, नब्ज।
नारी (३)-(सं० नाल)-नाली, प्रणाली।
नाल-(सं०)-कमल का डंठल, नलकी। उ० कमलनाल जिमि चाप चढ़ावौं। (मा० १।२५३।४)
नाव (२)-(सं० नौ का बहुवचन, मि० फा० नाव)-नौका, तरणी, डोंगी, जलयान। उ० पावन पायँ पखारि कै नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है? (क० २।७)
नावरि-१ नाव की एक क्रीड़ा २ छोटी नौका। उ० १ जनु नावरि खेलहिं सरि माहीं। (मा० ६।८८।३)
नावा (२)-(सं० नौ)-नाव, नौका।
नाश-(सं०)-१ न रह जाना, लोप, ध्वंस, मृत्यु, २ गायब होना, ३ पलायन।
नास-दे० 'नाश'। उ० कठदर, चिबुक बर, बचन गभीर तर, सत्य संकल्प सुरत्रास नास। (वि० ५१)
नासक-(सं० नाशक)-१ नाश करनेवाला, २ दूर भगाने वाला। उ० १ को हित सत अहित कुटिल नासक को हित लोभ। (स० २६१)
नासन-(सं० नाश)-नाश करना, वध करना। नासहिं-नष्ट हो जाते हैं। उ० नासहिं बेगि नीति अस सुनी। (मा० ३।२१।६) नासा (१)-(सं० नाश)-१ नाश किया, नाश करता है, २ नाश, ३ नष्ट करने वाला। उ० १ दुलइ नामु जिमि रबि निसि नासा। (मा० १।२४।३) नासिबे-नष्ट करने। उ० जैसे तम नासिबे को चित्र के तरनि। (वि० १८४) नासी-१ नष्ट कर दी है, २ नष्ट हो गई है। उ० १ दास तुलसी दीन, धन बसलहीन श्रमित अति खेद, मति मोहनासी। (वि० ६०) नासे-१ नष्ट हो गए, २ नष्ट हो जायँगे, ३ नष्ट हो जाने पर। नासै-नष्ट हो सकता है, नष्ट होता है। उ० संपति-सन्निपात दारुन दुख दिनु हरिकृपा न नासै। (वि० ८१)
नासा (२)-(सं०)-नाक, नासिका। उ० मुकुट कुंडल तिलक, अलक अलि व्रात इव, भृकुटि द्विज अधर बर चारु नासा। (वि० ६१)
नासापुट-(सं०)-१ नाक का अगला भाग, नथना, २ नाक के पुरवे या छेद।
नासिक-दे० 'नासिका'। नाक। उ० नासिक सुभग कृपा परिपूरन, तदन करन राजीव बिलोचन। (गी० ७।१६)
नासिका-(सं०)-नाक। उ० नासिका चारु, सुकपोल, द्विज पत्रदुति, अधर बिंबोपमा, मधुर हास। (वि० ५१)
नासु-(सं० नाश)-नाश, विनाश, मृत्यु। उ० नाथ न होइ मोर अब नासू। (मा० १।१६५।२)
नाह-दे० 'नाथ'। नाथ न। उ० १ तब नर नाहँ बसिष्ठ

नाज (१)-(फा० नाज)-१ नखरा, बनावट, दिखावा, २ घमंड।
नाज (२)-(सं० अन्नाद्य)-अनाज, खाद्य सामग्री।
नाजु-दे० 'नाज (२)'। उ० बलकल विमल दुकूल मनो हर, कंदमूल फल अमिय नाजु। (गी० २।७)
नाजुक-(फा० नाजुक)-कोमल, सुकुमार।
नाटक-(सं०)-१ अभिनय, वह दृश्य जिसमें स्वांग के द्वारा चरित्र दिखाए जायँ, २ दृश्यकाव्य, अभिनय ग्रंथ, ३ नट, नाच या अभिनय करनेवाला।
नाठी-(सं० नष्ट)-नष्ट हो गई। उ० मुनि अति विकल मोंह मति नाठी। (मा० १।१३४।३) नाठे-नष्ट हो गए। उ० आपनि सूझि कहौं, पिय! बूझिए, जूझिबे जोग न ठाहर नाठे। (क० ६।२८)
नाड़-दे० 'नारि'।
नात-(सं० ज्ञाति, प्रा० णाति, हिं० नात)-१ नाता, रिश्ता, संबंध, २ संबंधी, नातेदार। उ० १ आरज सुत पद कमल बिनु बादि जहाँ लगि नात। (मा० २।६७)
नाता-रिश्ता, संबंध। उ० मानउँ एक भगति कर नाता। (मा० ३।३५।२) नाते-दे० 'नात'। उ० १ तोहिं मोहिं नाते अनेक मानिये जो भावै। (वि० ७६)
नाती-(सं नप्तृ, प्रा० नत्ति)-लड़की या लड़के का लड़का। उ० सुत समूह जन परिजन नाती। (मा० १।१८१।२)
नातो-रिश्ता, संबंध। उ० नातो मिटत न घोए। (गी० २।६१)
नात्र-(सं० ना + अत्र)-यहाँ नहीं, इसमें नहीं, इस विषय में नहीं। उ० भजति नात्र संशय। (मा० ३।४।१२)
नाथ-(सं०)-१ स्वामी, मालिक, भगवान, २ पति, भर्तार, ३ नाक का नथ, एक आभूषण, ४ पशुओं की नाक की रस्सी, ५ गोरखपंथी साधुओं की एक पदवी। उ० १ तत्र अविप्त तव विषम माया नाथ! अंध मैं मंद व्यालाद गामी। (वि० ५६) नाथहिं-स्वामी को, मालिक को, भगवान को। उ० अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जी तें। (वि० १९८) नाथहि-प्रभु को, नाथ को। उ० सब रिषि निज नाथहि जियँ चीन्ही। (मा० १।२०६।४) नाथहू-नाथ भी, भगवान भी। उ० नाथहु न अपनायो, लोक झूठी ह्वै परी, पै प्रभु हू तें प्रबल प्रताप प्रभु नाम को। (क० ७।७०)
नाथा-दे० 'नाथ'। उ० १ आयसु काह होइ रघुनाथा। (मा० २।२६।४)
नाथु-दे० 'नाथ'। उ० १ कियउ निषादनाथु अगुआई। (मा० २।२०३।१)
नाथू-दे० 'नाथ'। उ० १ चलन चहत बन जीवननाथू। (मा० २।२८।२)
नाद-(सं०)-१ शब्द, ध्वनि, आवाज, २ वर्णों का अव्यक्त मूल रूप, ३ संगीत। उ० १ पुनि-पुनि सिंघनाद करि भारी। (मा० १। १८२।४)
नादत-बजते हैं, शब्द करते हैं, ध्वनि करते हैं। उ० इन्द्र ही के आपु ते घघाए गज नित मए, नादत बादत सब सब सुख जियो है। (कृ० १६)
नादा-दे० 'नाद'।
नादू-दे० 'नाद'। उ० १ मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू। (मा० २।२४।२)
नाना (१)-(सं०)-१ अनेक प्रकार के, बहुत तरह के, विविध, २ अनेक, बहुत। उ० १ मध्य बयस धनहेतु गँवाई कृषी बनिज नाना उपाय। (वि० ८३)
नाना (२)-(?)-मातामह, माता का पिता।
नान्ह-(सं० न्यच)-१ छोटा, लघु, २ हीन, क्षुद्र, तुच्छ, ३ पतला, बारीक, महीन। उ० ३ तुलसी लाग रिझा इबो करषि कातिबो नान्ह। (दो० ४६२)
नाप-(सं० मापन, हिं० माप)-१ पानी या अनाज भरने का बड़ा मटका, २ पैमाइश, परिमाण, माप। उ० १ नाप के भाजन भरि जलनिधि जल भो। (ह० ७।१) २ तुलसी प्रेम पयोधि की ताते नाप न जोख। (दो० २८१)
नापे-नापा, पैमाइश की। नापे जोखे-अंदाजा किया, अनुमान लगाया। उ० बल हाको पिनाक नीके नापे जोखे हैं। (गी० १।६३)
नाभ-दे० 'नाभि'। उ० तप्त कांचन-वस्त्र शस्त्र विद्या निपुन सिद्ध सुर-सेव्य, पाथोजनाभ। (वि० ५०) नाभ-दे० 'नाभि'।
नाभि-(सं०)-नाभी, तुंदिका, पिंडज जीवों के पेट के बीच का वह गड्ढा जहाँ गर्भावस्था में जरायु-नाल जुड़ा रहता है। उ० नाभि मनोहर लेति जनु जमुन भवँर छवि छीनि। (मा० १।१४७)
नाभी-दे० 'नाभि'। उ० नाभी सर त्रिबली निसेनिका, रोमराजि सैवल छवि पावति। (गी० ७।१७)
नाम-(सं० नामन्)-१ संज्ञा, आख्या, किसी व्यक्ति या वस्तु का निर्देश करनेवाला शब्द। वह शब्द जिससे किसी व्यक्ति या वस्तु का बोध हो। २ ख्याति, प्रसिद्धि। उ०१ सम प्रकास तम पाख दुहुँ नाम भेद बिधि कीन्ह। (मा० १।७ ख) नामन्ह-नामों। उ० राम सकल नामन्ह ते अधिका। (मा० ३।४२।४) नामहुँ-नाम ने भी। उ० यह बढ़ि बास दास तुलसी प्रभु नामहुँ पाप न जारा। (वि० ६३) नामैं-नाम को। उ० हर से हरनिहार जपैं जाके नामैं। (गी० २।२५)
नामा-दे० 'नाम'। उ० १ रामचरित मानस एहि नामा। (मा० १।३५।४)
नामानि-दे० 'नामानी'।
नामानी-(सं० नामानि)-अनेक नाम, नामों का समूह। उ० जन्म कर्म अनंत नामानी। (मा० ७।५२।२)
नामिनी-१ नामवाली, संज्ञावाली, २ विख्यात, प्रसिद्ध, ३ नामधारी, ४ प्रसिद्धि पाना, ५ रूप। उ० १, अव महेसभामिनी, अनेक रूप नामिनी। (वि० १६)
नामी-नामवाला। उ० समुझत सरिस नाम अरु नामी। (मा० १।२१।१)
नामु-दे० 'नाम'। उ० १ नामु सत्य अस लाग न केहू। (मा० २।२७१।१)
नामू-दे० 'नाम'। उ० १ सुमिरि पवन सुत पावन नामू। (मा० १।२६।३)
नायँ-दे०'नाय (२)'। नाम से। उ० तुलसी अजहुँ सुमिरि रघुनाथहिं तरो गयद जाके अर्द्ध नायँ। (वि० ८३)

नाय (१)-(सं०)-१ नीति, २ उपाय, युक्ति, ३ नेता, अगुआ ४ आधार, सहारा।
नाय (२)-(सं० नामन्)-नाम।
नायक-दे० 'नायक'। उ० २ धर त्रिलोक नायक। (मा० ३।७।छं०३) नायक-(सं०)-१ नेता, अगुआ, प्रधान, २ स्वामी, प्रभु, ३ श्रेष्ठ पुरुष, ४ सेनाध्यक्ष, फौज का अफ़सर, ५ कलावत, संगीतकला में निपुण, ६ एक वर्ण वृत्त, ७ नायिका का पति, ८ साहित्य में शृंगार का आलंबन या साधक वह पुरुष जिसका चरित्र किसी काव्य या नाटक आदि का मुख्य विषय हो। उ० १ दच्छहि कान्ह प्रजापति नायक। (मा० १।६०।३) नायकहि-नायक से, स्वामी से। उ० चले मिलन मुनि नायकहि, मुदित राउ एहि भाँति। (मा० १।२१४)
नायका (१)-(सं० नायिका) नायक की स्त्री।
नायका (२)-(सं० नायक) नायका को, सेनापतियों को। उ० दस दस बिसिख उर माझ मारे सकल निसिचर नायका। (मा० ३।२०।छं०३)
नायकु-दे० 'नायक'।
नारकी-(सं० नारकिन्)-१ पापी, नरक में जाने योग्य कर्म करनेवाला, २ नरक में रहनेवाला। उ० २ पाव नारकी हरि पदु जैसें। (मा० १।३३५।३)
नारद-(सं०)-१ एक प्रसिद्ध देवर्षि जो ब्रह्मा के पुत्र कहे जाते हैं। ये बहुत बड़े हरिभक्त व साथ ही कलहप्रिय भी थे। इन्हें ब्रह्मा का शाप था कि तुम सर्वदा घूमते रहोगे और इसी कारण ये एक स्थान पर स्थिर नहीं रहते थे। घूमने और कलहप्रिय स्वभाव के कारण ये चुगली और लड़ाई झगड़ा लगानेवाले थे। इनके इस कृत्य से पौराणिक कहानियाँ भरी पड़ी हैं। २ विश्वामित्र के एक पुत्र ३ एक प्रजापति, ४ झगड़ा लगानेवाला आदमी। उ० १ बालमीक नारद घट जोनी। (मा० १।३।२) नारदहि-नारद को। उ० सनकादिक नारदहि सराहहिं। (मा० ७।४२।४) नारदहूँ-नारद भी। उ० नारदहूँ यह भेदु न जाना। (मा० १।६८।१) नारदी-(सं० नारद)-सत्य भी कहना और झगड़ा भी लगा देना, चतुरतापूर्ण बात। उ० लखि नारद नारदी उमहि सुख भा उर। (पा० ११)
नारा-(सं० नाल)-१ सूत, २ जल ३ छोटी नदी, नाला, ४ कुसुम। उ० ३ चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा। (मा० ३।१३३।१)
नाराच-(सं०)-तीर, ऐसा तीर जो पूर्णतः लोहे का बना हो। उ० छाँडे बिपुल नाराच। (मा० ३।२०।४)
नारायणं-नारायण को। उ० नौमि नारायणं नर करुणायन ध्यान पारायणं ज्ञान मूलम्। (वि० ६०) नारायण-(सं०)-ईश्वर, भगवान्। कहीं-कहीं इन्हें नर का पुत्र और कहीं-कहीं भाई होना लिखा है। दे० 'नर'।
नारायन-दे० 'नारायण'। उ० नर नारायन सरिस सुभ्राता। (मा० १।२०।३)
नारि (१)-(सं० नाल, नाड़)-गीवा, गर्दन। उ० जियत न नाइ नारि चातक घन तजि दूसरहि। (दो० ३०२)
नारि (२)-(सं० नारी)-स्त्री, औरत। उ० का घूँघट मुख मूँदहु नवला नारि। (ब० ११)
नारियरु-(सं० नारिकेल)-नारियल का फल। उ० टक टोरि कपि ज्यौं नारियरु सिर नाइ सब बैठत भए। (जा० ६६)
नारी (१)-(सं०)-स्त्री, औरत। उ० सोह न बसन बिना बर नारी। (मा० १।१०।२) नारिन्ह-स्त्रियाँ, औरतें। उ० सब नारिन्ह मिलि भेटि भवानी। (मा० १।१०२।४) नारिहि-नारी को, स्त्री को। उ० पुरुष त्यागि सक नारिहि जो बिरक्त मतिधीर। (मा० ७।११५ क)
नारी (२)-(सं० नाडी)-नाड़ी, नब्ज़।
नारी (३)-(सं० नाल)-नाली, प्रणाली।
नाल-(सं०)-कमल का डंठल, नलकी। उ० कमलनाल जिमि चाप चढ़ावौं। (मा० १।२५३।४)
नाव (२)-(सं० नौ का बहुवचन, मि० फ़ा० नाव)-नौका, तरनी, डोंगी, जलयान। उ० पावन पायँ पखारि कै नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है ? (क० २।७)
नावरि-१ नाव की एक क्रीड़ा २ छोटी नौका। उ० १ जनु नावरि खेलहिं सरि माहीं। (मा० ६।८८।३)
नावा (२)-(सं० नौ)-नाव, नौका।
नाश-(सं०)-१ न रह जाना, लोप, ध्वंस, मृत्यु, २ गायब होना, ३ पलायन।
नास-दे० 'नाश'। उ० कठदर, चिबुक बर, बचन गंभीर तर, सत्य संकल्प सुरत्रास नास। (वि० ५१)
नासक-(सं० नाशक)-१ नाश करनेवाला, २ दूर भगाने वाला। उ० १ को हित सत अहित कुटिल नासक को हित लोभ। (स० २६१)
नासन-(सं० नाश)-नाश करना वध करना। नासहिं-नष्ट हो जाते हैं। उ० नासहिं बेगि नीति अस सुनी। (मा० ३।२१।६) नासा (१)-(सं० नाश)-१ नाश किया, नाश करता है, २ नाश, ३ नष्ट करने वाला। उ० १ दलइ नासु जिमि रवि निसि नासा। (मा० १।२४।३) नासिबे-नष्ट करने। उ० जैसे तम नासिबे को चित्र के तरनि। (वि० १८४) नासी-१ नष्ट कर दी है, २ नष्ट हो गई है। उ० १ दास तुलसी दीन, धन बसलहीन श्रमित अति खेद, मति मोहनासी। (वि० ६०) नासे-१ नष्ट हो गए, २ नष्ट हो जायँगे, ३ नष्ट हो जाने पर। नासै-नष्ट हो सकता है, नष्ट होता है। उ० ससृति-सन्निपात दारुन दुख बिनु हरिकृपा न नासै। (वि० ८१)
नासा (२)-(सं०)-नाक, नासिका। उ० मुकुट कुंडल तिलक, अलक अलि ब्रात इव, भृकुटि द्विज अधर बर चारु नासा। (वि० ६१)
नासापुट-(सं०)-१ नाक का अगला भाग, नथना, २ नाक के पुरवे या छेद।
नासिक-दे०'नासिका'। नाक। उ० नासिक सुभग कृपा परि पूरन, तरुन अरुन राजीव विलोचन। (गी० ७।१६)
नासिका-(सं०)-नाक। उ० नासिका चारु, सुकपोल, द्विज वज्रद्युति, अधर बिंबोपमा, मधुर हास। (वि० ५१)
नासु-(सं० नाश)-नाश, विनाश, मृत्यु। उ० नासु न होइ मोर अस नासू। (मा० १।१६५।४)
नाह-दे० 'नाह'। नाथ ने। उ० १ सब नर नाहँ बसिष्ठ

की छोटी सो निगोड़ी छोटी जाति पाँति। (क० ७।१८)

निग्रह-(स०)-१ रोक, अवरोध, २ दमन, ३ चिकित्सा, ४ दंड, ५ पीड़न, सताना, ६ बधन, ७ डाँट, फटकार, ८ सीमा, हद। उ० ६ सागर निग्रह कथा सुनाई। (मा० ७।६७।४)

निग्रहण-(स०)-१ रोकने का कार्य, थामने का कार्य, २ दंड देने का कार्य।

निग्रोध-(स० न्यग्रोध)-१ वट वृक्ष, २ अक्षयवट।

निघटत-१ घटता है, २ बहुत कँपता है, ३ घटने पर। उ० १ जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे। (मा० २।३२४।२) ३ निघटत नीर मीन गन जैसें। (मा० २।१४७।२) निघटि-समाप्त हो, नष्ट हो। उ० निघटि गए सुभट, सत सब को छूट्यो। (क० ६।४६)

निचय-(स०)-१ समूह, झुंड, २ निश्चय, ठीक, ३ सचय, इकट्ठा करना। उ० १ यथा रघुनाथ सायक निसाचर चमू निचय निर्दलन-पटु बेग भारी। (वि० ५७)

निचाइहि-(स० नीच)-नीचता को ही। उ० भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु। (मा० १।५) निचाई-नीचता, ओछापन, कमीनापन। उ० नीच निचाइ नहिं तजै सज्जन हू के संग। (दो० ३३७)

निचोइ-[स० नि० + च्यवन (=चूना)]-निचोड़कर। उ० कहे बचन बिनीत प्रीति प्रतीति नीति निचोइ। (गी० ५।५) निचोयो-निचोड़ा, गारा। उ० तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ फिरि फिरि बिकल अकास निचोयो। (वि० २४५)

निचोड़-(स० नि+च्यवन) तत्व सार।

निचोर-दे० 'निचोड़'। उ० दामिनि बरन तनु रूप के निचोर हैं। (गी० १।३१)

निचोरि-१ निचोड़कर, गारकर, २ निचोड़, सार वस्तु, ३ मुख्य तात्पर्य, कथन का सारांश। उ० १ बरनहु रघुबर बिसद जसु श्रुति सिद्धांत निचोरि। (मा० १।१०९)

निचोल-(स०)-१ आच्छादन, ऊपर का वस्त्र, २ वस्त्र, कपड़ा, ३ ओढ़नी, ४ चोली, ५ लहँगा, घाघरा। उ० २ हेमलता जनु तरु तमाल ढिग नील निचोल ओढ़ाई। (वि० ६२)

निछावर-(?)-१ उतारा, बलिहारी, क़ुर्बान, २ पारितोषिक, इनाम। निछावरि-दे० 'निछावर'। उ० १ करि आरती निछावरि बरहिं निहारहिं। (जा०१२२) २ भूतन्ह देह निछावरि लागे। (मा०१।२२३।४)

निज-(स०)-१ अपना, स्वीय, जो पराया न हो २ प्रधान, मुख्य, ३ वास्तविक, ठीक, यथार्थ, ४ उत्कृष्ट। उ० १ जौं फुर कहहु त नाथ निज कीजिअ बचनु प्रवान। (मा० २।२२६) निजै-अपनी ही। उ० निसि दिन नाथ! देउँ सिख बहु बिधि करत सुभाव निजै। (वि० ८६)

निजु-दे० 'निज'। उ० १ प्रीति प्रतीति निगम निजु गाइ। (मा० २।७२।३)

निठुर-(स० निष्ठुर)-कठोर, निर्दय, स्नेहशून्य। उ० पुरी सुरबेलि केलि काटत किरात कलि, निठुर निहारिए उघारि डीठि भाउ की। (क० ७।१६६)

निठुरता-(स० निष्ठुरता)-निठुराई, कठोरपन, क्रूरता। उ० निठुरता अरु नेह की गति कठिन परति कही न। (कृ०५५)

निठुराई-निष्ठुरता, निर्दयता, क्रूरता। उ० तुलसिदास सीदत निसि दिन देखत तुम्हारि निठुराई। (वि० ११३)

निडर-(नि + डर)-निर्भय, निःशंक, जिसे डर न हो, साहसी, हिम्मतवाला। उ० बाल सुभाए बिबिध बिधि निडर होहु डरु नाहिं। (मा० १।१५)

नितंब-(स०)-कमर के पीछे का उठा हुआ भाग, चूतड़।

नित-(स०)-१ प्रतिदिन, रोज, २ सदा, सर्वदा, हमेशा, ३ नाशरहित, अविनाशी। उ० १ पछिले पहर भूपु नित जागा। (मा० २।३८।१) नितई-नित्य ही, हर रोज़। नितहिं-नित्य ही, सर्वदा ही। उ० सुर पुर नितहिं परावन होई। (मा० १।१८०।४) नितहीं-नित्य ही। उ० अति दीन मलीन दुखी नितहीं। (मा० ७।१४।६)

निति (१)-(?)-के लिए। उ० मीन जिअन, निति बारि उलीचा। (मा० १।१६१।४)

निति (२)-(सं० नित्य)-हमेशा, सर्वदा।

निति (३)-(सं० नीति)-नीति। उ० बिरह बिबेक धरम निति सानी। (मा० ६।१०६।२)

नितै-(स० नित्य)-नित्य ही। उ० भागीरथी जलपान करौं अरु नाम द्वै राम के लेत नितै हौं। (क० ७।१०१)

नित्य-सर्वदा रहनेवाले को। उ० वन्दे बोधमयं नित्य गुरु शंकर रूपिणम्। (मा० १।१। श्लो० ३) नित्य-(स०)-१ शाश्वत, जिसका कभी भी नाश न हो, २ प्रतिदिन का, रोज का, ३ प्रतिदिन, रोज, सदा, सर्वदा, हमेशा, ४ दृढ़, अटल, निश्चय, ध्रुव, ५ यथार्थ, ठीक। उ० २ नित्य नेम-कृत अरुन उदय जब कीन। (ब० १६) ३ नित्य निर्मम, नित्य मुक्त निर्मान, हरि ज्ञान घन सच्चिदानंद मूल। (वि० ५३)

निदरत-(स० निरादर)-निरादर करता। उ० सब सद्गुन सनमानि आनि उर, अघ औगुन निदरत को? (गी० ५।१२) निदरहिं-निरादर करते हैं। उ० जौं हम निदरहिं बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगु नाथ। (मा० १।२८३) निदरहु-निरादर करें। उ० कै निदरहु कै आदरहु सिंहहि स्वान सियार। (दो० ३८१) निदरि-१ तिरस्कार करके, निरादर करके, अपमान करके, २ रोककर, ३ धुड़क कर, ५ जबरदस्ती, हठ करके। उ० १ बोलसि निदरि बिप्र के भोरें। (मा० १।२८३।३) निदरे-१ निरादर करके, २ निरादर किया, ३ निरादर करता है, ४ तिरस्कार करने पर। उ० १ सानुज निदरि निपातउँ खेता। (मा० २।२३०।४) २ निदरे रामु जानि असहाइ। (मा० २।२२४।२) निदरेसि-निरादर किया। उ० जाग-जग-मद निदरेसि हर, पायेसि फर तेउ। (पा० ७१) निदरौं-१ अनादर करता हूँ, २ अनादर करूँ। उ० १ रज सम पर अवगुन सुमेर करि गुन-गिरि सम रज ते निदरौं। (वि० १४१)

निदाघ-(स०)-ग्रीष्म ऋतु, घाम, उष्ण। उ० हुम-दव सिसिर सुपात, सब सह निदाघ अति लाग। (स० ६२६)

निदान-(स०)-१ आदि कारण, २ कारण, ३ रोग-निर्णय, रोग की पहिचान, ४ अंत, अवसान, ५ अंत

में, आखिरकार, ६ सर्वनाश, ७ निश्चय। उ० १ कर्म हू के कम, निदानहू के निदान हौ। (क० ७।१२६) ५ तुलसी गुसाईं भयो, भोंडे दिन भूलि गयो, ताको फल पावत निदान परिपाक हौं। (ह० ४०)

निदाना-दे० 'निदान'। उ० ४ देहि अगिनि जनि करहि निदाना। (मा० ५।१२।६)

निदानु-दे० 'निदान'। उ० ६ परउ राउ कहि कोटि विधि काहे करसि निदानु। (मा० २।३६)

निदेश-(स०)-१ शासन, २ आज्ञा, हुक्म, ३ कथन, ४ पास।

निदेस-दे० 'निदेश'। उ० २ प्रीति को बधिक, रस रीति को अधिक, नीति निपुन, विवेक है निदेस देसकाल को। (क० ७।११३,२)

निदेसा-दे० 'निदेश'। उ० २ सोइ करेहु जेहि होइ निदेसा। (मा० ७।२६१४)

निद्रा-(स०)-नींद, उँघाई, एक ऐसी अवस्था जिसमें पलकें बंद करके प्राणी चेतनारहित हो जाता है।

निधड़क-[नि + धड़क (अनु० धड़)]-१ निर्भय, निडर, साहसी, २ बिना डर के, बेखटके।

निधन-(स०)-१ नाश, २ मरण, ३ धनहीन, कंगाल। उ० १ भीषम द्रोन करनादि पालित, काल दृक, सुयोधन चमू निधन हेतू। (वि० २८) २ मधु निधन सुनि उपजा क्रोधा। (मा० ५।१।१२)

निधरक-दे० 'निधड़क'। उ० २ निधरक बैठि कहइ कटु बानी। (मा० २।४१।१)

निधान-दे० 'निधान'। उ० १ चम असि शूलधर, डमरु शर चापकर, यान वृषभेश, करुणानिधान। (वि० ११)

निधान-(स०)-१ भंडार, खज़ाना, ढेर, २ लय स्थान, वह स्थान जहाँ कोई चीज जाकर लय हो जाय, ३ घर, ४ आधार, आश्रय। उ० १ गुन ग्यान निधान अमान अज। (मा० ६।१११।५)

निधाना-दे० 'निधान'। उ० १ तापस सम दम दया निधाना। (मा० १।४४।१)

निधानु-दे० 'निधान'। उ० १ पति रविकुल कैरव बिपिन बिधु गुन रूप निधानु। (मा० २।५८)

निधानू-दे० 'निधान'। उ० १ रामु सहज आनंद निधानू। (मा० २।५१।३)

निधि-(स०)-१ कुबेर का खज़ाना, कुबेर के रत्न जिनकी संख्या ६ कही गई है। नौ निधियाँ ये हैं—पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील और खर्व, २ ख़ज़ाना, ढेर, भंडार, ३ आधार, आसरा, ४ समुद्र, ५ धन का भंडार, ६ घर। उ० १ जेहि गए सिधि होय परम निधि पाइय हो। (रा० १) २ सुषम-सौंदर्य निधि, विपुल-गुण धाम विधि-वेद बुध शंभु सेवित अमानम्। (वि० ६०) निधिम्-धाम को, ढेर को। उ० योगीन्द्र ज्ञानगम्य गुणनिधिमजित निर्गुणं निर्विकारम्। (मा० ६।१। श्लो० १)

निनाद-(स०)-शब्द, आवाज़।

निनारे-(स० नि + निष्ट, प्रा० निनिष्ट, हि० निनार)-अलग, दूर, हटा हुआ। उ० ज्ञान कृपान समान लगत उर, बिहरत छिन छिन होत निनारे। (कृ० ४६)

निपट-(?)-१ निरा, विशुद्ध, खाली, २ सरासर, एकदम, बिल्कुल, नितांत। उ० १ भीर बाहँ पीर की निपट राखी महावीर कौन के सँकोच तुलसी के सोच भारी है। (ह० २७) २ बियरन भयउ निपट नरपालू। (मा० २।२६।३)

निपटहि-निरा ही, बहुत ही, बिल्कुल ही। उ० निपटहि डाँटति निठुर ज्यों, लकुट कर तें डारु। (कृ० १४)

निपात-(स०)-१ पतन, नाश, विनाश, २ मृत्यु ३ अध पतन, गिराव। उ० ३ मनजात किरात निपात किए। (मा० २।१४।४)

निपातउँ-गिराऊँगा, पछाड़ूँगा। उ० सानुज निदरि निपातउँ खेता। (मा० २।२३०।४) निपाता-१ गिराया, २ नष्ट किया, ३ उखाड़ फेंका हो, ४ काट डाला। उ० ४ केहिं तव नासा कान निपाता। (मा० ३।२२।१) निपाते-मार डाला, नष्ट कर डाला। उ० बड़े-बड़े बानइत बीर बलवान बड़े, जातुधान जूथप निपाते बात जात हैं। (क० ६।४१) निपाति-मारकर, नष्ट कर। उ० ताहि निपाति महाधुनि गर्जा। (मा० ५।१८।४)

निपुण-(स०)-दक्ष, कुशल, पटु, चतुर।

निपुन-दे० 'निपुण'। उ० अखिल खल निपुन-छल छिद्र निरखत सदा जीव-जन-पथिक मन-खेदकारी। (वि० ५६)

निपुनता-(स० निपुणता)-चतुरता, चातुरी, निपुणाई। उ० लघु लाग विधि की निपुनता अवलोकि पुर सोभा सही। (मा० १।६४। छं० १)

निपुनाई-निपुणता, चतुराई। उ० लागइ लघु बिरंचि निपुनाई। (मा० १।६५।४)

निफन-(स० निष्पन्न, पा० निप्फन्न)-पूरा, पूर्ण, संपूर्ण, अच्छी तरह भली भाँति। उ० जोते बिनु बए बिनु निफन निराए बिनु। (गी० २।३२)

निफल-(स० निष्फल प्रा० निप्फल)-निरर्थक, बेकार, निष्फल। उ० निफल होहिं रावन सर कैसें। (मा० ६।९१।३)

निबंध-(स०)-प्रबंध, रचना। उ० स्वान्त सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा-भाषा निबंध मति मंजुलमातनोति। (मा० १।१। श्लो० ७)

निबरत-(स० निवर्तन, प्रा० निवट्टन) निबरते, छुटकारा पाते, निवृत्त होते। उ० पाइके उराहनो उराहनो न दीजै मोहिं, काल-कला कासीनाथ कहे निबरत हौं। (क० ७।१६२) निबरयो-१ चुक गया, २ निश्चित हो गया, ३ छुटकारा पा गया। उ० २ प्रभु की सौं करि निबरयो हौं। (वि० २६७)

निबल-(स० निर्बल)-कमज़ोर, कमज़ोर, निबल। उ० प्रभु समीप छोटे, बड़े, निबल होत बलवान। (दो० ५२७)

निबहंत-निबाह करते हैं। उ० पर काजै परमारथी, प्रीति लिए निबहंत। (वै० १०) निबह (?)-समूह हों। उ० सनु बिधु-निबह रहे करि दामिनि निकर निकेत। (गी० ७।२१)

निबहइ-(स० निर्वाह)-१ निभता है, २ निभेगा। उ० २ सपथ परम निबहइ केहि भाँती। (मा० २।१४१।३)

निबहति-निभती है, निभ जाती है। उ० राम! रावरे

निबाहे सब ही की निबहति। (वि० २४६) निबहते–निर्वाह होता। उ० तौ कालि कठिन करम मारग जड़ हम केहि भाँति निबहते? (वि० ६७) निबहहिंगे–निर्वाह करेंगे। निबहा–निबह गया निभ गया। उ० कै तुलसी जाको राम-नाम सों प्रेम-नेम निबहा है। (गी० २।६४) निबही–भरी, पूरी, पूरी है। उ० घन-दामिनि-बर बरन, हरन मन सुंदरता नखसिख निबही री। (गी० १।१०४) निबहे–निर्वाह हो, बनी रहे। उ० जन्म जहाँ तहँ रावरे सों निबहे भरि देह सनेह सगाई। (क० ७।२८) निबहैगो–निभेगा। उ० तुलसी पै नाथ के निबाह निबहैगो। (वि० २५१) निबहौंगो–निभाऊँगा, पालन करूँगा, निर्वाह करूँगा। उ० परहित निरत निरंतर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो। (वि० १७२) निबह्यो–निर्वाह हो गया, पूरा हो गया। उ० ताको तौ कपिराज ब्याज लगि कछु न काज निबह्यो है। (गी० ४।२)

निबह (२)–(?)–समूह। उ० मनहुँ उडुगन निबह आए मिलन तम तजि द्वेषु। (गी० ७।६)

निबाह–(सं० निर्वाह)–१ रहाइस, गुजारा, निर्वाह, २ लगातार साधना, परंपरा की रक्षा, किसी बात के अनुसार निरंतर व्यवहार, ३ पालन, ४ बचाव का ढंग, छुटकारे का रास्ता। उ० १ नाम महाराज के निबाह नीको कीजै उर। (क० ७।१२३)

निबाहा–(सं० निर्वाह) १ दे० 'निबाह', २ निर्वाह किया। उ० २ जेहिं न प्रेमपनु मोर निबाहा। (मा० १।२५१।३) निबाहि–१ निबाहकर, पूरा करके, २ उबारो, बचाओ, ३ समाप्त करके। उ० १ निरय निबाहि मुनिहि सिर नाए। (मा० १।२२७।१) निबाहिब–निर्वाह कीजिएगा, निबाहिएगा। उ० तहँ तहँ राम निबाहिब नाम सनेहु। (ब० ६१) निबाहिये–निबाह कराइए निबाह करा दीजिए। उ० तुलसी तिहारो मन बचन करम, तेहि नाते नेह नेम निज ओर तें निबाहिए। (क० ७।७१) निबाहीं–निबाह दिया, इच्छाएँ पूरी कीं, पूरी कीं। उ० प्रभु प्रसाद सिव सबइ निबाहीं। (मा० २।४।२) निबाही–निबाह, निबाह कर। उ०धातु बयरु सबु लेउँ निबाही। (मा० ६।१०।४) निबाहु–१ निबाओ, निर्वाह करो, २ जैसी चाहिए वैसी लगन। उ० १ राम नाम पर तुलसी नेहु निबाहु (ब० ६७) २ चितै चित हित-सहित नखसिख अंग अंग निबाहु। (गी० १।६९) निबाहें–निबाहनेवाले हैं, निबाह किया है। उ० तोसे पसु पाँवर पातकी परिहरे न सरन गए रघुबर ओर निबाहें। (वि० २७४) निबाहें–निबाहने से ही। उ० तुलसी हित अपनो अपनी दिसि निरुपधि नेम निबाहें। (वि० ६२) निबाहे–निबाहने से, निबाहने के कारण। उ० प्रेम-नेम के निबाहे चातक सराहिए। (वि० १७८) निबाहेउ–निबाहा, निर्वाह किया। उ० कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू। (मा० २।२०२।३) निबाहै–निबाह दें निर्वाह कर दें। उ० जौं बिधि कुसल निबाहै काजू। (मा० २।१०।२)

निबाहू–दे० 'निबाह'। उ० १ उघरहिं अंत न होइ निबाहू। (मा० १।७।३)

निबिड़–(सं० निबिड़)–१ घना, सघन, २ भीषण, घोर, भयानक। उ० १ कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग। (मा० ४।१५ ख)

निबुकि–(सं० निमुक्त, प्रा० निम्मुक्क)–निमुक्त होकर, छूटकर। उ० लघु ह्वै निबुकि गिरि मेरु तें बिसाल भो। (क० ५।४)

निबृत्ति–दे० 'निवृत्ति'। उ० होइ निबृत्ति पात्र बिस्वासा। (मा० ७।११७।६)

निबेदित–(सं० निवेदन) प्रार्थना करके, भोग लगा कर, अर्पण करके। उ० तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं। (मा० २।१२९।१)

निबेरीं–(सं० निवृत्त) पूरा किया। उ० नेग सहित सब रीति निबेरीं। (मा० १।३२५।४) निबेरे–(सं० निवृत्त) छुड़ाए, दूर किए। उ० तुलसिदास यह बिपति बाँगुरी तुमहि सों बनै निबेरे। (वि० १८७) निबेरो–दूर कर दिया है, हटा दिया है। उ० छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति स्रुति संदेह निबेरो। (वि० ८७)

निबेही–(सं० निवृत्त)–अछूता, मुक्त, उन्मुक्त। उ० कोउ न मान मद तजेउ निबेही। (मा० ७।७१।१)

निभ–(सं०)–तुल्य, समान। उ० हिमगिरि निभ तनु कछु एक लाला। (मा० ६।५३।१)

निभरम–(सं० निर्भ्रम)–निःशंक, भ्रमरहित। उ०जीते लोक नाथ नाथ बल निभरम। (वि० २४१)

निमग्न–(सं०)–मग्न, डूबा हुआ, तन्मय, लीन।

निमज्जत–(सं० निमज्जित)–१ डूबता हुआ, २ स्नान करता है, ३ स्नान करने पर। उ० १ सोक-समुद्र निमज्जत काढ़ि कपीस कियो जग जानत जैसो। (मा० ७।४) ३ प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी। (मा० २।३१०।४) निमज्जहिं–स्नान करते हैं। उ० निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा। (मा० २।२२४।१)

निमज्जन–(सं०)–स्नान। उ० पूजहि सिवहि समय तिहुँ करहि निमज्जन। (पा० ४०)

निमज्जनु–दे० 'निमज्जन'। उ० कीन्ह निमज्जनु तीरथ राजा। (मा० २।२१६।१)

निमि–(सं०)–इक्ष्वाकुवंशी एक राजा जिनका निवास मनुष्य की पलकों पर माना जाता है। कहा जाता है कि उन्हीं के अधिकार से पलकें खुलतीं और बंद होती हैं। उ० निरखहिं नारि निकर बिदेहपुर निमि नृप की मरजाद मिटाई। (गी० १।१०६)

निमिराज–(सं०)–निमिवंशी राजा जनक।

निमिष–(सं०)–१ निमेष, आँखों का मिलना, पलकों का गिरना, २ वह समय जो पलकों के गिरने में लगता है, ३ पलकों का एक रोग, ४ पलक। उ० २ परम पावन पाप पुंज-मुंजाटवी अनल-इव-निमिष निर्मूल कर्ता। (वि० ५५)

निमेखी–(सं० निमेष)–पलक का गिरना।

निमेष–(सं०)–पलक मारने का समय, बहुत थोड़ी देर, क्षण मात्र। उ० लव निमेष महुँ भुवन निकाया। (मा० १।२२५।२) निमेषें–पलक मारना, पलक गिराना। उ० १।२४३।१) निमेषैं–पलकों के मारने को। उ० बिधु के बिलोचन निमेषैं बिसराइ कै। (गी० १।८२)

निमोह-(सं०)-१ बिना मोह का, मोहरहित, २ ज्ञानी, ३ निर्दय, निठुर, दयारहित। उ० १ निर्भरानंद नि कंप नि सीम निर्युक्त निरुपाधि निर्मम विधाता। (वि० ५६)

नियंता-(सं० नियंतृ)-१ व्यवस्था करनेवाला, कायदा बाँधनेवाला, २ कार्य को चलानेवाला, ३ शिक्षक, ४ घोड़ा फेरनेवाला, ५ विष्णु। उ० १ नित्य निर्मुक्त संयुक्त गुन निर्गुनानंत भगवंत नियामक नियंता। (वि० ५५)

नियत-(सं०)-१ निश्चित, स्थिर, २ संयत, परिमित, पाबंद, ३ शिव, महादेव, ४ प्रारब्ध। उ० ४ तहँ तहँ सु विषय सुखहिं चहत, लहत नियत। (वि० १३२)

नियम-(सं०)-१ प्रतिबंध, रोक, पाबंदी २ परंपरा, दस्तूर, ३ व्यवस्था, पद्धति, ४ प्रतिज्ञा, व्रत, ५ शासन, ६ योग के ८ अंगों में से एक। शौच, संतोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान, इन सब क्रियाओं का पालन नियम कहलाता है। ७ याज्ञवल्क्य स्मृति में १० नियम गिनाए गए हैं-स्नान, मौन, उपवास, यज्ञ, वेद पाठ, इंद्रिय निग्रह, गुरु-सेवा, शौच, अक्रोध तथा अप्रमाद। ८ विष्णु, ९ शिव, १० एक अर्थालंकार। उ० ६ सम जम नियम फूल फल ज्ञाना। (मा० १।३७।७)

नियर-(सं० निकट, प्रा० निअड)-पास, समीप।

नियराइन्हि-समीप आ गया। उ० सिय नैहर जनकौर नगर नियराइन्हि। (जा० १६४) नियरानु-दे० 'निअरानु'।

नियरे-समीप, पास। उ० सुनि सुख लहै मनु रहै नित नियरे। (गी० १।४१)

नियामक-(सं०)-१ नियम करनेवाला, प्रबंधक, २ व्यवस्था करनेवाला, ३ मारनेवाला, वधिक, ४ माझी, मल्लाह ५ पार करनेवाला, समुद्र या नदी आदि पार उतारनेवाला। उ० १ नित्य निर्मुक्त संयुक्त गुन निर्गुना नंत भगवंत नियामक नियंता। (वि० ५५)

नियारा-(सं० निर्निकट प्रा० निण्णियर, हि० न्यारा)-अलग, पृथक, न्यारा।

नियोग-(सं०)-१ तैनाती, मुकर्ररी, २ आज्ञा, आदेश, ३ निश्चय, ४ शासन, ५ अनुमति, ६ प्रवृत्ति। उ० २ निगम नियोग ते सो केलि ही छरो सो है। (क० ७। ८४)

नियोगा-दे० 'नियोग'। उ० २ मागि मातु गुर सचिव नियोगा। (मा० २।२३३।३)

निरंकुश-(सं०)-स्वतंत्र, बेअदब, हठीला, स्वेच्छाचारी, उद्दंड।

निरंकुस-दे०, निरंकुश'। उ० निपट निरंकुस निठुर निसंकू। (मा० २।११७।२)

निरंजन-(सं०)-अंजनरहित, कलुष या माया से रहित, स्वच्छ, निर्मल, मोह या राग-द्वेष आदि विकारों से मुक्त। यह परमात्मा का एक विशेषण है। उ०व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन विगत बिनोद। (मा० १।१९८)

निरंतर-(सं०)-१ अंतररहित अविच्छिन्न, २ घना, निबिड़, ३ लगातार, अटूट, ४ स्थायी सदा रहनेवाला, ५ सर्वदा, हमेशा, ६ जो अंतर्धान न हो, जो दृष्टि से ओझल न हो। उ० ४ संत भगवंत अंतर निरंतर नहीं किमपि मति मलिन कह दास तुलसी। (वि० ५७)

निरंबु-जल के बिना, बिना पानी का, सूखा, निर्जल। उ० व्रतु निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। (मा० २।२४७।४)

निरक्षर-(सं०)-अक्षर शून्य, मूर्ख, अपढ़, अनपढ़।

निरखति-(सं० निरीक्षण)-अवलोकन करते हैं, देखते हैं, निहारते हैं। उ० लसत बिबुधापगा निकट तट सदन वर, नयन निरखति नरतेऽतिधन्या। (वि०६१) नि---- १ देखता है, देखते हैं, २ देखते ही। उ० १ अखिल खल निपुन-छल छिद्र निरखत सदा जीव जन पथिक मन खेदकारी। (वि० ५९) निरखतहि-देखते ही। उ० दे० 'निरखनिहारू'। निरखहिं-१ देखते हैं, २ देखकर उ० २ निरखहिं छबि जननी तृन तोरी। (मा०१।१९८।३)

निरखि-देखकर, निहारकर। उ० नयन मलिन पर नारि निरखि। (वि० ८२) निरखु-देख, देखो। उ० स्यामल गौर किसोर पथिक दोउ सुमुखि! निरखि भरि नैन। (गी० २।२४) निरखे-देखने, देखे पाए। उ० जे हर हिय नयननि कबहुँ निरखे नहीं अघाइ। (मा० २।२०९)निरखै-देखती है। उ० माता लै उछंग गोबिंद मुख बार-बार निरखै। (कृ० १)

निरखनिहारू-देखनेवाला, निरखनेवाला। उ० दास तुलसी निरखतहि सुख लहत निरखनिहारू। (गी० ७।८)

निरगुन-(सं० निर्गुण)-१ गुणरहित, व्यर्थ, निकम्मा, २ निराकार ब्रह्म, जो गुणों से बँधा नहीं है। उ० १ निलज, नीच, निरधन, निरगुन कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाउँ। (वि० १२३)

निरगुनी-मूर्ख, गुणहीन। उ० रंक निरगुनी नीच जितने नियाजे हैं। (वि० १८०)

निरच्छर-दे० 'निरक्षर'। उ० विप्र निरच्छर लोलुप कामी। (मा० ७।१००।४)

निरजोखु-(सं० क्षुप)-जो तौला न जा सके, अतौल।

निरजोस-(सं० निर्यास)-१ निचोड़, २ निर्णय, ३ निश्चय।

निरजोसु-दे० 'निरजोस'। उ० १ यह निरजोसु दोसु बिधि बामहिं। (मा० २।२०१।४) २ मोद-मंगल मूल अति अनुकूल निज निरजोसु। (वि० १५९)

निरझर-(सं० निर्झर)-झरना, निर्झर। उ० निरझर मधु वर मृदु मलय बात। (वि० २३)

निरत-लगे हुए को। निरत-(सं०)-१ तत्पर, लीन, २ आसक्त, लिप्त। उ० १ राम भगत परहित निरत पर दुख दुखी दयाल। (मा०२।२१९) २ एहि आरसी निरत सम कादि श्रुति सेव सिव देव ऋषि अखिल मुनि तत्त्वदरसी। (वि० ४०)

निरति-(सं०)-१ अप्रीति, २ वैराग्य।

निरदय-(सं० निर्दय)-दयाहीन, कठोर। उ० निज सुख पोषक निरदय भारी। (मा० २।१०३।२)

निरदहन-निश्चय ही जलानेवाले अत्यंत जलानेवाले। उ० गहन-दहन निरदहन लंक नि:संक बंक भुव। (ह० १)

निरदयो अनाथा। उ० को न क्रोध निरदह्यो, काम बस केहि नहिं कीन्हों? (क० ७।११७)

निरधन-(सं० निर्धन) गरीब, धनहीन। उ० निलज, नीच, निरधन, निरगुन कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाउँ। (वि० १२३)

निरधार-(स० निर्धारण)-१ ठीक, २ निश्चय, निर्णय।
निरनउ-(स० निर्णय)-निर्णय, फैसला। उ० चलत मास लखि निरनउ नीके। (मा० २।१८२।१)
निरनय-(स० निर्णय)-निश्चित बात, निर्णय, फैसला।
निरपने-(स० निर्+आत्मनो, प्रा० अप्पणो)-अन्य, गैर, पराये, अपने नहीं। उ० जानकी-रमन मेरे! रावरे बदन फेरे, ठाउँ न समाउँ कहाँ सकल निरपने। (क० ७ ७८)
निरपेछ-वासनाहीन, जिसे किसी चीज़ की इच्छा न हो, बेपरवाह। उ० शांत निरपेछ निर्मम निरामय अगुन शब्द ब्रह्मैक पर-ब्रह्म-ज्ञानी। (वि० ५७)
निरबहई-दे० 'निर्बहइ'। निरबहनि-निर्वाह होने का भाव, पूरा पड़ते जाने का भाव। उ० दिन दिन पन प्रेम नेम निरुपाधि निरबहनि। (गी० २।८१) निरबहा-निभ गया, अच्छी तरह बीत गया। उ० कहतेउँ तोहि समय निर बहा। (मा० ६।६३।३) निरबही-पूरी उतर गई, निभ गई। उ० सिथिल सनेह सराहत नखसिख नीक निकाई निरबही। (गी० ५।२१) निरबहो-शान्त हो गया, निश्चित हो गया। उ० अपनो सो नाथ हूँ सों कहि निर बह्यो हौं। (वि० २६०)
निरबान-(स० निर्वाण)-मोक्ष, मुक्ति। उ० नाना पथ निर बान के, नाना विधान बहु भाँति। (वि० १६२)
निरबाहक-निर्वाह करनेवाले, गुज़र करनेवाले, रक्षा करने वाले। उ० गई-बहोर, ओर निरबाहक, साजक बिगरे साज के। (गी० ५।२६)
निरबाहा-निबाह सकता है। उ० तुम्ह बिनु असु मतु को निरबाहा। (मा० १।७६।३) निरबाहिबो-निर्वाह करेंगे।
निरबाहु-(स० निर्वाह)-गुज़र, निबाह। उ० का सेवा सुग्रीव की, का प्रीति-रीति निरबाहु। (वि० १६३)
निरभय-(स० निर्भय)-निडर, निशक, बिना भय का। उ० तुलसी निरभय होत नर सुनियत सुरपुर जाइ। (दो० ४६७)
निरमई-(स० निर्माण)-रची, बनाई। उ० मोको गति दूसरी न बिधि निरमई। (वि०२५२) निरमय-१ बनाना, बनाइएगा, २ बनाया। निरमयउ-बनाया, रचा, रचना की। उ० बदउँ मुनि पद कजु, रामायन जेहिं निर मयउ। (मा० १।१४ घ) निरमयऊ-रचा, बनाया, रचना की। उ० निज मायाँ बसत निरमयऊ। (मा०१।१२६।१) निरमये निर्माण किये, बनाये। उ० तुलसी आइ पवन सुत बिधि मानो फिरि निरमये नये हैं। (गी० ६।५)
निरमल-(स० निर्मल)-स्वच्छ, साफ़, बिना मैल का। उ० सत्य सध, सत्य व्रत परम धरम रत, निरमल करम बचन अरु मन के। (वि० ३७)
निरमान (१)-(स० निर्माण)-निर्माण, रचना, बनाने की क्रिया। उ० बिरचि बुद्धि को बिलास लक निरमान भो। (क० ५।३२)
निरमान (२)-(नि +मान)-अहकाररहित।
निरमित-(स० निर्मित)-बना हुआ, रचित।
*निरमूलिनी*-दे० '*निर्मूलिनी*'।
निरमोल-(स० निर्मोल)-त्याग। उ० त्याग गरीबी गुरु धरम भरम बचग निरमोल। (स० १२३)
निरमोहियन-ऐसे लोग जिनके हृदय में मोह न हो। उ० ऊधो! प्रीति करि निरमोहियन सों को न भयो दुख दीन? (कृ० ५५) निरमोही-(स० निर्मोह)-मोहरहित, जिसे किसी से प्रेम न हो।
निरय-(सं०)-नरक, दोज़ख़। उ० जातें निरय निकाय निरतर सोइ इन्ह तोहिं सिखायो। (वि० ११६)
निरलज्ज-(स० निर्लज्ज)-बेशर्म, जिसे किसी बात की लाज न हो।
निरलेप-(स० निर्लेप)-जो किसी विषय में आसक्त न हो। उ० जे बिरचि निर्लेप उपाए। (मा० २।३१७।४)
निरवद्य-(स० निरवद्य)-निर्दोष, साफ़, जिससे कोई त्रुटि न हुई हो।
निरवधि-(स०)-अवधि रहित, सीमा रहित, असीम, जिसकी कोई मर्यादा न हो। उ० निरवधि गुन निरुपम पुरुष भरतु भरत सम जानि। (मा० २।२८८)
निरवाहक-निर्वाह करनेवाले। उ० गई-बहोर, ओर निर वाहक, साजक बिगरे साज के। (गी० ५।२६)
निरव्यलीक-निष्कपट। दे० 'निर्व्यलीक'।
निरस-(स०)-१ जिसमें रस न हों, रसविहीन, सूखा, २ लाभरहित, ३. विरक्त, ४ बिना स्वाद का, फीका। उ० १ निरस भूरुह सरस फूलत फलत अति अधिकाइ। (गी० ७।३१) ३ जयति सीतेस-सेवा सरस, विषयरस निरस, निरुपाधि, धुर धर्मधारी। (वि० ३८)
निरस्य-(स०)-१ हटाने के योग्य, फेंकने लायक, २ निग्रह करके, दूर हटाकर। उ० २ निरस्य इद्रियादिक। प्रयाति ते गतिं स्वक। (मा० ३।४। छ० ८)
निराए-खेत में से व्यर्थ की घासों को निकाले, खेत के सरों को साफ किए। उ० जोते बिनु, बए बिनु, निफन निराए बिनु। (गी० २।३२) निरावहिं-(स० निराकरण)-निराते हैं। उ० कृषी निरावहिं चतुर किसाना। (मा० ४।१५।४)
निराकार-निराकार को। उ० निराकारमोंकार मूल तुरीय। (मा० ७।१०८।२) निराकार-(स०)-बिना आकार का, ब्रह्म, ईश्वर। यह ब्रह्म का एक विशेषण है। उ० निर्गुन गगनायक निराकार। (वि० १२)
निराचार-आचारभ्रष्ट, आचारविहीन। उ० निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। (मा० ७।९८।४)
निरादर-(स०)-तिरस्कार, अपमान, अप्रतिष्ठा। उ० मुक्ति निरादर भगति लुभाने। (मा० ७।११९।४)
निरादरु-दे० 'निरादर'। उ० उचित न तासु निरादरु कीन्हें। (मा० २।४३।३)
निराधार-(स०)-१ जिसका कोई भी आधार न हो, बे सहाय, २ मिथ्या, जो प्रमाणों से पुष्ट न हो। उ० १, माय बाप भूखे को अधार निराधार को। (वि०६३)
निरापने-(निः+आपने)-पराए, बेगाने, जो अपने नहीं हैं। उ० सब दुख आपने, निरापने सकल सुख, जौ लौं जन भयो न बजाइ राजा राम को। (क० ७।१२४)
निरामयं-नीरोग को। उ० तुमहु दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं। (मा० ३।१०। छ०१) निरामय-(स०)-निरोग, सुखी। उ० शांत निरपेछ निर्मम निरामय अगुन शब्द ब्रह्मैक पर-ब्रह्म ज्ञानी। (वि० ५७)

निरामिष-(स०)-मांस न खानेवाला। उ० होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा। (मा० १।५।१)
निरारी-(स० निरालय, हि० निराला)-निराली, अनोखी। उ० तुलसी पर तेरी कृपा निरुपाधि निरारी। (वि० ३४)
निरास-(स० निराश)-नाउम्मेद, जिसे आशा न हो। उ० भा निरास उपजी मन त्रासा। (मा० ३।२।२)
निरासा-(स० निराशा)-आशा का न होना, नाउम्मेदी। उ० नृप समाज सब भयउ निरासा। (मा० १।१२४।२)
निरीश-(स०)-१ बिना ईश या स्वामी का, अनाथ, २ नास्तिक, अनीश्वरवादी।
निरीस-दे० 'निरीश'। उ० २ नीच निसील निरीस निसकी। (मा० २।२११।१)
निरीह-(स०)-१ चेष्टारहित, जो किसी चीज़ के लिए प्रयत्न न करे, २ इच्छारहित, जिसे किसी बात की चाह न हो, निस्पृह, ३ शांत, ४ विरक्त। उ० २ ब्रह्म निरीह बिरज अविनासी। (मा० ७।७२।४)
निरुअरइ-(स० निवारण, हि० निरुवार)-छूट पाती है, सुलझ पाती है। उ० तबहु कदाचित सो निरुअरई। (मा० ७।११७।४)
निरुआरे-सुलझाया। उ० निज कर राम जटा निरुआरे। (मा० ७।११।२)
निरुक्त-(स०)-१ निश्चय रूप से कहा हुआ, नियुक्त, ठहराया हुआ, २ वेद के छः अंगों में से चौथा अंग। इसे यास्क मुनि ने लिखा था। इसमें वैदिक शब्दों की व्याख्या की गई है।
निरुज-(स० नीरुज)-निरोग, स्वस्थ। उ० मारिए तो अनायास कासी बास खास फल, ज्याइए तौ कृपा करि निरुज सरीर हौं। (क० ७।१६६)
निरुत्तर-(स०)-चुप, बे जवाब। उ० यदु बधू-रत कहि कियो बचन निरुत्तर बालि। (दो० १२७)
निरुपउँ-(स० निरूपण)-निरूपण किया।
निरुपधि-दे० 'निरुपाधि'।
निरुपाधि-(स०)-१ उपाधिरहित, संसाररहित, २ बाधा रहित, व्यवधानरहित, ३ मायारहित, ४ ब्रह्म। उ० २ धातुवाद, निरुपाधि बर, दुरे दुरात सुभ ग्रंथ। (दो०२२६) ३ गृध्र सबरी भक्ति-विवश करुणासिंधु, चरित निरुपाधि त्रिविधार्ति-हर्ता। (वि० ४३)
निरुपाधी-दे० 'निरुपाधि'। उ० २ कलि मति विकल न कछु निरुपाधी। (वि० १२८)
निरूपन-(सं० निरूपण)-किसी विषय का विवेचनापूर्ण वर्णन, विस्तार से किसी चीज़ का वर्णन, निदर्शन। उ० भगति निरूपन बिबिध बिधाना। (मा० १।३७।८)
निरूपउँ-दे० 'निरुपउँ'। उ० सगुन निरूपउँ करि हठ भूरी। (मा० ७।१११।७) निरूपहिं-निरूपण करते हैं, वर्णन या विवेचन करते हैं। उ० भगति निरूपहिं भगत कलि, निंदहिं बेद पुरान। (दो० ५५४) निरूपा-निरूपण किया है, वर्णन किया है, विवेचना की है, कहा है। उ० नेति नेति जेहि बेद निरूपा। (मा० १।१४४।२)
निरै-(सं० निरय)-नरक, दोज़ख़।
निर्-१ नहीं, बिना, २ निश्चय, ३ बाह्य, बाहरी, बाहर का, ४ उचित। उ० १ दे० 'निर्दय', 'निर्दंभ', 'निर्गुण'।
निर्गत-(स०)-निकला हुआ, बाहर आया हुआ।
निर्गता-(स०)-निकली हुई। उ० नख निर्गता मुनि बंदिता त्रैलोक पावनि सुरसरी। (मा० ७।१३।छं० ४)
निर्गम-निकलना, बाहर जाना।
निर्गमहिं-बाहर निकलते हैं। उ० एक प्रबिसहिं एक निर्गमहिं भीर भूप दरबार। (मा० २।२३)
निर्गुण-निर्गुण को। उ० योगींद्र ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजित निर्गुणनिर्विकारम्। (मा० ६।१। श्लो० १) निर्गुण-(स०)-१ सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों से परे, परमेश्वर, २ जिसमें कोई गुण न हो, मूर्ख, बुरा।
निर्गुन-दे० 'निर्गुण'। उ० १ नित्य निर्मोह निर्गुन निरंजन निजानंद निर्वाण निर्वाणदाता। (वि० ५६)
निर्जोप-निश्चय, अवश्य। दे० 'निरजोपु'।
निर्झर-(स०)-१ झरना, पर्वत से गिरता हुआ जल प्रवाह, २ सूर्य का घोड़ा। उ० १ ऋषिन के आश्रम सराहैं, मृग नाम कहैं, लागी मधु, सरित झरत निर्झर हैं। (गी० २।४५)
निर्णय-(स०)-औचित्य और अनौचित्य आदि का विचार करके किसी विषय के दो पक्षों में से एक पक्ष को ठीक ठहराना। निश्चय, फैसला।
निर्दंभ-(स०)-अहंकार रहित, दंभ या गर्व से रिक्त। उ० सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। (मा० ७।२१।४)
निर्दय-(स०) जिसके हृदय में दया न हो, बेरहम, निठुर। उ० द्वेष मत्सर राग प्रबल प्रत्यूह प्रति, भूरि निर्दय, क्रूर-कर्म-कर्त्ता। (वि० ६०)
निर्दयी-दयाहीन, बेरहम।
निर्दलन-दलनेवाले, नष्ट करनेवाले। उ० यथा रघुनाथ सायक निसाचर चमू निचय निर्दलन-पटु बेग भारी। (वि० ५७)
निर्दहन-जलानेवाले, दहन करनेवाले।
निर्दह्यो-जलाया, संतप्त किया।
निर्देश-(स० निर्देश)-१ आज्ञा, कथन, २ प्रस्ताव, ३ निर्णय।
निर्द्वंद-(स०)-१ बिना विरोध या झगड़े का, जिसके लिए कोई द्वंद्व न हो, २ जो राग, द्वेष, मान, अपमान आदि द्वंद्वों से परे हो, ३ स्वतंत्र, स्वच्छंद।
निर्धन-(स०)-जिसके पास धन न हो, धनहीन, कंगाल।
निर्नय-दे० निरनय'। उ० निर्नय सकल पुरान बेद कर। (मा० ७।४९।१)
निर्पेन-(स०)-१ निस्पृह निरीह, इच्छारहित, २ उदासीन, विरक्त, ३ जो किसी का शत्रु मित्र न हो।
निर्बंस-दे० 'निर्वंश'। उ० १ दुष्ट-दनुजेस निर्बंस कृत दास हित विश्व दुख-हरन बोधैक रासी। (वि० ४८)
निर्बहई-(स० निर्वाह) निर्वाह कर लेता है, निबाह लेता है। उ० जा निदिन पंथ निर्बहई। (मा० ७।११८।१) निर्बहिहौं-पूरा करूँगा, निबाहूँगा। उ० दीन्हे बचन कि हृदय आनिए सुकर्मा को पन निर्बहिहौं। (वि० २३१) निर्बहै-निर्वाह चाहता है। उ० दास तुलसी राम-परन

निरधार-(सं० निर्धारण)-१ ठीक, २ निश्चय, निर्णय।
निरनउ-(सं० निर्णय)-निर्णय, फैसला। उ० चलत मात लखि निरनउ नीके। (मा० २।१८२।१)
निरनय-(सं० निर्णय)-निश्चित बात, निर्णय, फैसला।
निरपने-(सं० नि + आत्मनो, प्रा० अप्पणो)-अन्य, गैर, पराये, अपने नहीं। उ० जानकी-रमन मेरे! रावरे बदन फेरे, ठाउँ न समाउँ कहाँ सकल निरपने। (क० ७ ७८)
निरपेच्छ-वासनाहीन, जिसे किसी चीज़ की इच्छा न हो, बेपरवाह। उ० शांत निरपेच्छ निर्मम निरामय अगुन शब्द ब्रह्मैक पर-ब्रह्म-ज्ञानी। (वि० ५७)
निरबहइ-दे० 'निर्बहइ'। निरबहनि-निबाह होने का भाव, पूरा पड़ते जाने का भाव। उ० दिन दिन पन प्रेम नेम निरुपाधि निरबहनि। (गी० २।८१) निरबहा-निभ गया, अच्छी तरह बीत गया। उ० कहतेउँ तोहि समय निर बहा। (मा० ६।६३।३) निरबही-पूरी उतर गई, निभ गई। उ० सिथिल सनेह सराहत नखसिख नीके निकाई निरबही। (गी० ५।३१) निरबह्यो-शान्त हो गया, निश्चित हो गया। उ० अपनो सो नाथ हूँ सों कहि निर बह्यो हौं। (वि० २६०)
निरबान-(सं० निर्वाण)-मोक्ष, मुक्ति। उ० नाना पथ निर बान के, नाना बिधान बहु भाँति। (वि० ११२)
निरबाहक-निर्वाह करनेवाले, गुज़र करनेवाले, रक्षा करने वाले। उ० गई-बहोर, ओर निरबाहक, साजक बिगरे साज के। (गी० ५।२६)
निरबाहा-निबाह सकता है। उ० सुनहु बिनु अस प्रभु को निरबाहा। (मा० १।७६।३) निरबाहिबो-निर्वाह करेंगे।
निरबाहु-(सं० निर्वाह)-गुज़र, निबाह। उ० का सेवा सुग्रीव की, का प्रीति-रीति निरबाहु। (वि० १६३)
निरभय-(सं० निर्भय)-निडर, निर्शंक, बिना भय का। उ० तुलसी निरभय होत नर सुनियत सुरपुर जाइ। (दो० ४६७)
निरमई-(सं० निर्माण)-रची, बनाई। उ० मोको गति दूसरी न बिधि निरमई। (वि०२५२) निरमब-१ बनाना, बनाइएगा, २ बनाया। निरमयउ-बनाया, रचा, रचना की। उ० बदउँ मुनि पद कंजु, रामायन जेहिं निर- मयउ। (मा० १।१४ घ) निरमयऊ-रचा, बनाया, रचना की। उ० निज मायाँ बसत निरमयऊ। (मा०१।१२६।१) निरमये निर्माण किये, बनाये। उ० तुलसी थाह पवन सुत बिधि मानो फिरि निरमये नय हैं। (गी० ६।५)
निरमल-(सं० निर्मल)-स्वच्छ, साफ़, बिना मैल का। उ० सत्य सध, सत्य व्रत परम धरम रत, निरमल करम बचन अरु मन के। (वि० ३७)
निरमान (१)-(सं० निर्माण)-निर्माण, रचना, बनाने की क्रिया। उ० बिरचि बुद्धि को बिलास लंक निरमान भो। (क० ५।३२)
निरमान (२)-(नि +मान)-अहंकाररहित।
निरमित-(सं० निर्मित)-बना हुआ, रचित।
निरमूलिनी-दे० निर्मूलिनी'।
निरमोख-(सं० निर्मोक्ष)-त्याग। उ० ग्यान गरीबी गुरु धरम नरम बचन निरमोख। (स० १२३)
निरमोहियन-ऐसे लोग जिनके हृदय में मोह न हो। उ० ऊधो! प्रीति करि निरमोहियन सों को न भयो दुखदीन? (कृ० ५५) निरमोही-(सं० निर्मोह)-मोहरहित, जिसे किसी से प्रेम न हो।
निरय-(सं०)-नरक, दोज़ख़। उ० जातें निरय निकाय निरतर सोइ इन्ह तोहिं सिखायो। (वि० ११६)
निरलज्ज-(सं० निर्लज्ज)-बेशर्म, जिसे किसी बात की लाज न हो।
निरलेप-(सं० निर्लेप)-जो किसी विषय में आसक्त न हो। उ० जे बिरचि निरलेप उपाए। (मा० २।३।७।४)
निरवद्य-(सं० निरवद्य)-निर्दोष, साफ़, जिससे कोई त्रुटि न हुई हो।
निरवधि-(सं०)-अवधि रहित, सीमा रहित, असीम, जिसकी कोई मर्यादा न हो। उ० निरवधि गुन निरुपम पुरुष भरतु भरत सम जानि। (मा० २।२८८)
निरवाहक-निर्वाह करनेवाले। उ० गई-बहोर, ओर निर बाहक, साजक बिगरे साज के। (गी० ५।२६)
निरव्यलीक-निष्कपट। दे० 'निर्व्यलीक'।
निरस-(सं०)-१ जिसमें रस न हो, रसविहीन, सूखा, २ लाभरहित, ३ विरक्त, ४ बिना स्वाद का, फीका। उ० १ निरस भूरुह सरस फूलत फलत अति अधिकाइ। (गी० ७।३३) ३ जयति सीयेस-सेवा सरस, विषयरस निरस, निरुपाधि, धुर धर्मधारी। (वि० ३८)
निरस्य-(सं०)-१ हटाने के योग्य, फेंकने लायक, २ निग्रह करके, दूर हटाकर। उ० २ निरस्य इंद्रियादिकं। प्रयाति ते गतिं स्वकं। (मा० ३।४। छं० ८)
निराए-खेत में से व्यर्थ की घासों को निकाले, खेत के खरों को साफ किए। उ० जोते बिनु, बए बिनु, निफन निराए बिनु। (गी० २।३२) निरावहिं-(सं० निराकरण)- निराते हैं। उ० कृषी निरावहिं चतुर किसाना। (मा० ४।१५।४)
निराकार-निराकार को। उ० निराकारमोंकार मूलं तुरीयं। (मा० ७।१०८।२) निराकारु-(सं०)-बिना आकार का, ब्रह्म, ईश्वर। यह ब्रह्म का एक विशेषण है। उ० निगुंन गननायक निराकार। (वि० १३)
निराचार-आचारभ्रष्ट, आचारविहीन। उ० निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। (मा० ७।६८।४)
निरादर-(सं०)-तिरस्कार, अपमान, अप्रतिष्ठा। उ० मुक्ति निरादर भगति लुभाने। (मा० ७।११६।४)
निरादरु-दे० 'निरादर'। उ० उचित न तासु निरादरु कीन्हें। (मा० २।४३।३)
निराधार-(सं०)-१ जिसका कोई भी आधार न हो, बे सहाय, २ मिथ्या, जो प्रमाणों से पुष्ट न हो। उ० १ माय बाप भूखे को अधार निराधार को। (वि०६३)
निरापने-(निः + आपने)-पराए, बेगाने, जो अपने नहीं हैं। उ० सब दुख आपने, निरापने सकल सुख, जौ लौं जन भयो न बजाइ राजा राम को। (क० ७।१२४)
निरामयं-नीरोग को। उ० हुमहु दियो निज धाम राम निरामयं। (मा० ३।१०२। छं०१) निरामय- (सं०)-निरोग, सुखी। उ० शांत निरपेच्छ निर्मम निरामय अगुन शब्द ब्रह्मैक पर-ब्रह्म ज्ञानी। (वि० ५७)

निरामिष-(स०)-मांस न खानेवाला। उ० होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा। (मा० १।५।१)
निरारी-(स० निरालय, हिं० निराला)-निराली, अनोखी। उ० तुलसी पर तेरी कृपा निरुपाधि निरारी। (वि० ३४)
निरास-(स० निराश)-नाउम्मेद, जिसे आशा न हो। उ० भा निरास उपजी मन त्रासा। (मा० ३।२।२)
निरासा-(स० निराशा)-आशा का न होना, नाउम्मेदी। उ० नृप समाज सब भयउ निरासा। (मा० १।१३४।२)
निरीश-(स०)-१ बिना ईश या स्वामी का, अनाथ, २ नास्तिक, अनीश्वरवादी।
निरीस-दे० 'निरीश'। उ० २ नीच निसील निरीस निसकी। (मा० २।२६६।१)
निरीह-(स०)-१ चेष्टारहित, जो किसी चीज़ के लिए प्रयत्न न करे, २ इच्छारहित, जिसे किसी बात की चाह न हो, निस्पृह, ३ शांत, ४ विरक्त। उ० २ अज निरीह बिरज अविनासी। (मा० ७।७२।४)
निरुआरई-(स० निवारण, हिं० निरुआर)-छूट पाती है, सुलझ पाती है। उ० तबहु कदाचित सो निरुआरई। (मा० ७।११७।४)
निरुआरे-सुलझाया। उ० निज कर राम जटा निरुआरे। (मा० ७।११।२)
निरुक्त-(स०)-१ निश्चय रूप से कहा हुआ, नियुक्त, ठहराया हुआ, २ वेद के छ अंगों में से चौथा अंग। इसे यास्क मुनि ने लिखा था। इसमें वैदिक शब्दों की व्याख्या है।
निरुज-(स० नीरुज)-निरोग, स्वस्थ। उ० मारिए तो अनायास कासी बास खास फल, ज्याइए तौ कृपा करि निरुज सरीर हौं। (क० ७।१६६)
निरुत्तर-(स०)-चुप, बे जवाब। उ० बधु बधू-रत कहि कियो बचन निरुत्तर बालि। (दो० १२७)
निरुपउँ-(स० निरूपण)-निरूपण किया।
निरुपधि-दे० 'निरुपाधि'।
निरुपाधि-(स०)-१ उपाधिरहित, संज्ञारहित, २ बाधारहित, व्यवधानरहित, ३ मायारहित, ४ ब्रह्म। उ० २ धातुवाद, निरुपाधि बर, दुरे पुरान सुभ ग्रंथ। (दो०४९६) ३ गृध्र शबरी भक्ति-विवश करुणासिंधु, चरित निरुपाधि त्रिविधार्ति-हर्त्ता। (वि० ४३)
निरुपाधी-दे० 'निरुपाधि'। उ० २ कलि मति विकल न कछु निरुपाधी। (वि० १२८)
निरूपन-(स० निरूपण)-किसी विषय का विवेचनापूर्ण वर्णन, विस्तार से किसी चीज़ का वर्णन, निदर्शन। उ० भगति निरूपन बिबिध बिधाना। (मा० १।३७।८)
निरूपउँ-दे० 'निरुपउँ'। उ० सगुन निरूपउँ करि हठ भूरी। (मा० ७।१११।७) निरूपहिं-निरूपण करते हैं, वर्णन या विवेचन करते हैं। उ० भगति निरूपहिं भगत कलि, निंदहिं बेद पुरान। (दो० ५५४) निरूपा-निरूपण किया है, वर्णन किया है, विवेचना की है, कहा है। उ० नेति नेति जेहि बेद निरूपा। (मा० १।१४४।२)
निरै-(स० निरय) नरक, दोज़ख।

निर्-१ नहीं, बिना, २ निश्चय, ३ बाह्य, बाहरी, बाहर का, ४ उचित। उ० १ दे० 'निर्दंभ', 'निर्दंभ', 'निर्गुण'।
निर्गत-(स०)-निकला हुआ, बाहर आया हुआ।
निर्गता-(स०)-निकली हुई। उ० नख निर्गता मुनि बंदिता त्रैलोक पावनि सुरसरी। (मा० ७।१३।छं० ४)
निर्गम-निकलना, बाहर जाना।
निर्गमहिं-बाहर निकलते हैं। उ० एक प्रबिसहिं एक निर्गमहिं भीर भूप दरबार। (मा० २।२३)
निर्गुणं-निर्गुण को। उ० योगींद्र ज्ञानगम्य गुणनिधिमजित निर्गुणनिर्विकारम्। (मा० ६।१। श्लो० १) निर्गुण-(स०)-१ सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों से परे, परमेश्वर, २ जिसमें कोई गुण न हो, मूर्ख, बुरा।
निर्गुन-दे० 'निर्गुण'। उ० १ नित्य निर्मोह निर्गुन निरंजन निजानंद निर्वाण निर्वाणदाता। (वि० ५६)
निर्जोष-निश्चय, अवश्य। दे० 'निरजोषु'।
निर्झर-(स०)-१ झरना, पर्वत से गिरता हुआ जल प्रवाह, २ सूर्य का घोड़ा। उ० १ अवनि के आश्रम सराहैं, मृग नाम कहैं, लागी मधु, सरित झरत निर्झर हैं। (गी० २।४५)
निर्णय-(स०)-औचित्य और अनौचित्य आदि का विचार करके किसी विषय के दो पक्षों में से एक पक्ष को ठीक ठहराना। निश्चय, फैसला।
निर्दंभ-(स०)-अहंकार रहित, दंभ या गर्व से रिक्त। उ० सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। (मा० ७।२१।४)
निर्दय-(स०)-जिसके हृदय में दया न हो, बेरहम, निठुर। उ० द्वेष मत्सर राग प्रबल प्रत्यूह प्रति, भूरि निर्दय, क्रूर-कर्म-कर्त्ता। (वि० ६०)
निर्दयी-दयाहीन, बेरहम।
निर्दलन-दलनेवाले, नष्ट करनेवाले। उ० यथा रघुनाथ सायक निसाचर चमू निचय निर्दलन-पटु बेग भारी। (वि० ५७)
निर्दहन-जलानेवाले, दहन करनेवाले।
निर्दह्यो-जलाया, संतप्त किया।
निर्देश-(स० निर्देश)-१ आज्ञा, कथन, २ प्रस्ताव, ३ निर्णय।
निर्द्वंद-(स०)-१ बिना विरोध या झगड़े का, जिसके लिए कोई द्वंद्व न हो, २ जो राग, द्वेष, मान, अपमान आदि द्वंद्वों से परे हो, ३ स्वतंत्र, स्वच्छंद।
निर्धन-(स०)-जिसके पास धन न हो, धनहीन, कंगाल।
निर्नय-दे० 'निर्णय'। उ० निर्नय सकल पुरान बेद कर। (मा० ७।४१।१)
निर्पन-(स०)-१ निस्पृह निरीह, इच्छारहित २ उदासीन, विरक्त, ३ जो किसी का शत्रु मित्र न हो।
निर्बैरा-दे० 'निर्बैर'। उ० १ दुष्ट-दनुजेस निर्बंस कृत दास हित बिस्व दुख-हरन बोधैक रासी। (वि० ५८)
निरबहई-(स० निर्वाह)-निर्वाह कर लेता है, निबाह लेता है। उ० जो निर्बिघ्न पंथ निर्बहई। (मा० ७।११८।१)
निरबहिहौं-पूरा करूँगा, निबाहूँगा। उ० बीनी बचन हिं हृदय आनिए तुलसी को पन निरबहिहौं। (वि० २६१)
निर्बही-निर्वाह चाहता है। उ० दास तुलसी राम-परन-

पकज सदा बचन मनकम चहै प्रीति नित निर्बही। (गी० ७।६) निर्बहे–१ छूट गए, २ बचा गए ३ निभ गए। उ० १ जे नाथ करि करना बिलोके त्रिबिधि दुख ते निर्बहे। (मा० ७।१३।२)
निर्बान–दे० 'निर्वाण'। मुक्ति, मोक्ष। उ० राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान। (मा० ३।२० क)
निर्बिकार–(स० निर्विकार) बिना किसी विकार का, शुद्ध। उ० निर्बिकार निरवधि सुखरासी। (मा० ७।१११।३)
निर्भय–(सं०)–जिसे भय न हो, निडर। उ० निर्भय होहु देव समुदाई। (मा० १।१८७।४)
निर्भर–(स०)–पूर्ण, भरा। उ० तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुख पकज दिए। (मा० ३।६। छ० १)
निर्मत्सर–द्वेषरहित, बिना ईर्ष्या का। उ० अखिल जीव वत्सल निर्मत्सर चरन-कमल अनुरागी। (वि०११८)
निर्मथनकर्त्ता–मथनेवाला, मथन करनेवाला, हलचल मचाने वाला। उ० वेद पय सिंधु, सुविचार-मदर महा, अखिल मुनिवृ द निमथनकर्त्ता। (वि० ५७)
निर्मम–(स०)–जिसे ममता न हो, जिसको कोइ वासना न हो। उ० नित्य निमम नित्य मुक्त निर्मान हरि ज्ञान धन सच्चिदानद मूल। (वि० ५३)
निर्मयउ–(स० निर्माण)–निर्माण किया, रचा, बनाया। निर्मयी–रची, बनाई, निर्माण की।
निर्मर्ल–दे० 'निर्मल'। उ० ४ निर्मल सांत सुबिसुद्ध बोधा यतन क्रोध मद हरन करुना निकेत। (वि० ५३) निर्मल–(स०)–१ मलरहित स्वच्छ, २ निष्पाप, पापरहित ३ शुद्ध, पवित्र, ४ निर्दोष, कलकरहित, ५ अभ्रक, अभ्र, ६ निर्मली। उ० १ निर्मल अति पीत चैल दामिनि जनु जलद नील। (गी० ७।७)
निर्मली–विशुद्ध स्वच्छ। उ० जय कोसलेस महेस वदित चरन रति अति निर्मली। (मा० ६।१०१।छ० १)
निर्मान (१)–(स० निर्माण)–१ रचना, बनावट, २ रचना का कार्य, बनाने का काम।
निर्मान (२)–(स०)–१ अभिमानरहित, बिना घमड का, २ बेहद, सीमारहित, अपार। उ० २ नित्य निर्मम, नित्य मुक्त निर्मान हरि ज्ञानघन सच्चिदानद मूल। (वि० ५३)
निर्मित–(स०)–रचित, बनाया हुआ। उ० भ्राजत सिर मुकुट पुरट निर्मित मनि रचित चारु। (गी० ७।७)
निर्मुक्त–१ जो छूट गया हो, आवागमन के दुख से मुक्त, जिसे कोई बधन न हो, २ स्वतत्र, आज़ाद, ३ वह साँप जिसने तुरत केंचुली छोड़ी हो। उ०१ नित्य निमुक्त सयुक्त गुन निर्गुनानत भगवत नियामक नियता। (वि० ५५)
निर्मूल–(स०)–१ बिना जड़ का, मूल रहित, २ ऐसी बात जिसकी कोई जड़ न हो, बे बुनियाद ३ ध्वस, नष्ट। उ० ३ परम पावन, पाप पुंज-मुजाटवी-अनल-इव निमिष निर्मूलकर्ता। (वि० ५५) निमूलकर–जड़ से उखाड़ने वाला, नष्ट भ्रष्ट करनेवाले। उ० भक्त अनुकूल, भव सूल निर्मूलकर, तूल अघ-नाम पावक समान। (वि० ५४)
निर्मूलन–जड़ से उखाड़नेवाले को, नष्ट करनेवाले को। उ० भय शूल निर्मूलन शूलपाणिम्। (मा० ७।१०८। श्लो० ५)
निर्मूला–दे० 'निर्मूल'। उ० ३ जेहि बिधि होइ धर्म निमूला। (मा० १।१८३।३)
निमूलिन–दे० 'निर्मूलन'।
निर्मूलिनी–नाश करनेवाली, जड़ से उखाड़नेवाली। उ० बृहति दुख दोष निर्मूलिनी काम की। (वि० १८)
निर्लेप–(स०)–लगावरहित, निर्लिप्त, ससार में जो लीन न हो।
निर्वंश–(स०)–१ वंशरहित, जिसका वश नष्ट हो गया हो, २ सतानहीन, बे औलाद।
निर्वहा–दे० 'निरवहा'।
निर्वाण–(स०)–१ बुझा हुआ, २ अस्त, डूबा, ३ शांत, धीमा पड़ा हुआ, ४ मृत, मरा, ५ निश्चल, ६ बुझना, ठढा होना, ७ समाप्ति, न रह जाना, ८ शांति, ९ मुक्ति, मोक्ष। उ० ८ सत्य सधान निर्वाणप्रद सर्वहित सर्वगुन ज्ञान विज्ञान साली। (वि० ५५) निर्वाणप्रद–शांति प्रदान करनेवाला। उ० दे० 'निर्वाण'।
निर्वान–दे० 'निर्वाण'। उ०१ भक्त वर देश वागीश व्यापक विमल विपुल बलवान निर्वान स्वामी। (वि० ५४)
निर्वापकर्ता–(स०)–हरण करनेवाला, हरनेवाला। उ० वेद गर्भार्भकादभगुण-गर्व अर्वाग पर गर्व निर्वापकर्ता। (वि० ५४)
निर्वापण–(स०)–१ त्याग, २ दान, ३ प्राणनाश, ४ हरण करना, दूर करना, ५ बुझाना, ६ समाप्त होना, ७ भुला देना, ८ नि शेष होना।
निर्वाह–(स०)–१ किसी परपरा या क्रम का चला चलना, निबाह, २ किसी बात के अनुसार बराबर आचरण, पालन, ३ समाप्ति, पूरा होना।
निर्विकल्प–दे० 'निर्विकल्प'। उ० निज निर्गुण निर्विकल्प निरीह। (मा० ७।१०८। श्लो० १) निर्विकल्प–(स०)–दृढ सकल्पवाला, स्थिर, निश्चित।
निर्विकार–दे० 'निर्विकार'। उ० नौमि करुणाकर, गरल गगाधर, निर्मल, निर्गुण, निर्विकार। (वि० १२) निर्विकार–(स०)–विकाररहित, परिवर्तनरहित, सदा एक प्रकार का रहनेवाला।
निर्विघ्न–(स० निर्विघ्न)–बाधारहित, अड़चन शून्य। उ० जो निर्विघ्न पथ निर्बहई। (मा० ७।११९।१)
निर्व्यलीक–(स०)–१ निष्कपट, कपटरहित, २ पीड़ा रहित, बाधाहीन, सुखी, प्रसन्न, ३ सत्य, जो झूठ न हो। उ०१ निर्व्यलीक मानस-गृह सतत रहे छाई। (गी० ७।३)
निलज–(स० निर्लज्ज)–बेहया, बेशरम, निर्लज्ज। उ० निलज, नीच, निरधन, निरगुन कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाउँ। (वि० १५३)
निलजई–निलज्जता, बेहयाई, बेशर्मी। उ० रीझिबे लायक तुलसी की निलजई। (वि० २५२)
निलज्ज–(स० निलज्ज)–अधम, जिसे लज्जा न हो। उ० अधम निलज्ज लाज नहिं तारी। (मा० २।३।५)
निलय–(स०)–घर, मकान, स्थान, जगह। उ० दोष-निलय

यह विषय सोकप्रद कहत सत स्तुति टेरे। (वि० १८७) निलयकारी-घर बनानेवाले। उ० यस्यांघ्रि पाथोज अज शंभु सनकादि सुक शेष मुनिवृंद अलि निलयकारी। (वि० ६१)

निवसत-(स० निवसन)-बसते हैं, रहते हैं। उ० निवसत जहँ नित कृपालु राम-जानकी। (गी० २।४४) निवसति-बसती हैं, रहती हैं। निवसीं-बसीं, स्थिर हुईं। उ० केहि भांति कहौं, सजनी! तोहि सों मृदु मूरति द्वै निवसीं मन मोहैं। (मा० २।२२५) निवसे-रहे, निवास किया। उ० तेहि आश्रम तिचसे कछु काला। (मा० १।१२२।४)

निवह-(स०)-समूह, झुंड। उ० जनु बिधु निवह रहे करि दामिनि निकर निकेत। (गी० ७।२१)

निवहति-निबहती है, पूर्ण पड़ती है।

निवाज-(फा० नेवाज)-कृपा करनेवाला, दया करनेवाला। उ० तूँ गरीब को निवाज, हौं गरीब तेरो। (वि० ७८)

निवाजब-दया करना, मेहरबानी करना, दया करेंगे, रक्षा करेंगे। निवाजियो-दया करना, दया कीजिएगा। निवाजिहैं-रक्षा करेंगे, दया करेंगे। उ० राम गरीब निवाज निवाजिहैं जानिहैं ठाकुर ठाउँगो। (गी० ५।३०) निवाजिहौं-शरण दूँगे, रक्षा करेंगे। उ० राज दै निवाजिहौं बजाइ कै बीषनै। (क० ६।२) निवाजे-१ शरण में लिए हुए, २ शरण में लिए, ३ दया की। उ० १ आपने निवाजे कीन काहू को सरम। (वि० २४६) ३ एक निरगुनी नीच जितने निवाजे हैं। (वि० १८०) निवाजो-शरण में लिया। उ० एते बड़े साहेब समर्थ को निवाजो आजु। (ह० ३१) निवाज्यो-अनुगृहीत किया, दया की। उ० सोंव तुलसी निवाज्यो ऐसो राजा राम रे। (वि० ७१) निवाज्यौ-१ अपनाया हुआ, अपनाया, २ निहाल कर दिया। उ० १ जानत जहान हनुमान को निवाज्यौ जन। (ह० २०)

निवाजू-दे० 'निवाज'।

निवारक-(स०)-१ रोकनेवाला, २ हटानेवाला। उ० २ जाउँ कहाँ, को बिपति निवारक भव-तारक जग माहीं। (वि० १४४)

निवारण-(स०)-रोक, रुकावट, अटकाव, हटाना, दूर करना।

निवारन-दे 'निवारण'। उ० करिअ जतन जेहिं होइ निवारन। (मा० २।४०।३)

निवारा-(स० निवारण)-रोका, रोका था। उ० बाढ़त बिधि जिमि घन्ज निवारा। (मा० २।२२७।१) निवारि-१ हटाकर, दूर हटा कर। २ रोककर, बरकर। उ० १ सर निवारि रिपु के सिर काटे। (मा० ६।९३।३) निवारिए-१ रोकिए २ दूर कीजिए, निवारण कीजिए ३ बचाइए। उ० ३ तासों।रारि निवारिए, समय सँभारिए आपु। (दो० ४२२) २ बाँह पीर महावीर बेगिही निवारिए। (ह० २०) निवारी-(स० निवारण) निवारण किया, हटाया। उ० कहँ लगि कहौं दीन अगनित जिन्हकी तुम बिपति निवारी। (वि०१६६) निवारे-निवारण किया, दूर किया। उ० कौतुक हीं प्रभुकाटि निवारे। (मा०६।२१।३)

निवास-(स०)-१ वासस्थान, रहने का स्थान, २ रहने की क्रिया या भाव। उ० १ मम हृदयकंज निवास कामादि-खल-दल-गंजन। (वि० ४५)

निवासा-दे० 'निवास'। उ० १ रूप तेज बल नीति निवासा। (मा० १।१३०।२)

निवासिनि-रहनेवाली, निवास करनेवाली। उ० सदा सम्भु अरधंग निवासिनि। (मा० १।१८८।२)

निवासी-रहनेवाला, बसनेवाला। उ० पुन्य पुंज मग निकट निवासी। (मा० २।११३।२)

निवासु-दे० 'निवास'। उ० १ मानहुँ कीन्ह करुनाँ बिरहँ निवासु। (मा० १।३२७)

निवासू-दे० 'निवास'। उ० १ सदा जहाँ सिव उमा निवासू। (मा० १।१०५।४)

निवृत्त-(स०)-१ मुक्त, विरक्त, ससार से अलग, २ दूर, अलग। उ० २ निसि गृह मध्य दीप की बातन तम निवृत्त नहिं होइ। (वि० १२३)

निवृत्ति-(स०)-सांसारिक विषयों और प्रपचों से हटना।

निवेरी-(स०-निवृत्त, प्रा० निविट्ठ)-१ निबराई, पूरी की, २ तय की, ३ छुड़ाई।

निशंकी-(स० नि शंक)-निर्भय, निडर।

निशा-दे० 'निशा'।

निशा-(स०)-१ रात्रि, रजनी, रात, २ हल्दी।

निशाकर-(स०)-१ चंद्रमा, २ मुर्गा, कुक्कुट, ३ शिव, महादेव, ४ एक ऋषि का नाम।

निशाचर-(स०)-१ राक्षस, २ शृगाल, गीदड़, ३ उल्लू, ४ चोर, तस्कर, ५ सर्प, साँप, ६ भूत, पिशाच ७ चक्रवाक, चकवा, ८ रात में विचरनेवाले जीव-जंतु, ९ सूर्य। उ० १ मनय अभोधि कुंभज, निशाचर निकर तिमिर-घनघोर-खर किरणमाली। (वि० ४४)

निशान-(फा०)-१ नगाड़ा, डंका, २ चिह्न।

निशानी-(फा०)-१ स्मृति, चिह्न, यादगार, २ निशान, लक्षण, ३ रेखा, लकीर।

निशि-(स०)-रात। निशिदिन-रात-दिन, सदा, सर्वदा।

निशिचर-(स०)-राक्षस, निशाचर।

निशिचरि-दे० 'निशिचरी'।

निशिचरी-राक्षसी, निशाचरों की स्त्रियाँ। उ० दिव्य-देवी वेष देखि, लखि निशिचरी जनु बिडंबित करी बिश्वबाधा। (वि० ४३)

निशित-(स०)-चोखा, तेज़।

निशेश-(स०)-चद्रमा, शशि, रात्रि का स्वामी। उ० सीता नयन चकोर निशेशा। (मा० ३।११।४)

निशेष-(स० निःशेष)-सब, समूचा, पूरा।

निशोच-चिंतारहित, बिना सोच का।

निश्चय-(स०) १ अवश्य, २ तय।

निश्चल-(स०)-अचल, जो अपने स्थान से न हटे, स्थिर, अडिग। उ० अपति काल-गुन-कर्म-माया-मथन, निश्चल ज्ञान व्रत, सत्यरत, धर्मचारी। (वि० २६)

निश्चलता-स्थिरता, शांति।

निषंग-(स०)-तूण, तरकश। उ० कटि निषंग पट पीत, करनि सर धनु धरे। (जा० ३०)

निपंगा–दे० 'निपंग'। उ० बाम दहिन दिसि चाप निषंगा। (मा० ६।११।३)
निषाद–(स०)–१ चांडाल जो ब्राह्मण पति और शूद्रा पत्नी के गर्भ से पैदा हो, २ मल्लाह, माँझी, ३ निषाद के भेजे हुए घाटों मल्लाह, ४ एक राग, ५ वह निषाद जिसने राम को पार उतारा था। उ० ५ सजल कठौता कर गहि कहत निषाद। (ब० २५) निषादहि–निषाद (पाँचवाँ अर्थ) को। उ० भयउ विषादु निषादहि भारी। (मा० २।६२।१)
निषादा–दे० 'निषाद'। उ० ३ चले अवध लेइ रथहि निषादा। (मा० २।१४४।१)
निषादू–दे० 'निषाद'। उ० मंत्री विकल बिलोकि निषादू। (मा० २।१४२।३)
निषिद्ध–(स०)–१ दूषित, बुरा, खराब, २ जो न करने योग्य हो, जिसके लिए मनाही हो, ३ अपवित्र, अशुद्ध। उ० ३ पावक परत निषिद्ध लाकरी होति अनल जग जानी। (कृ० ४३)
निषेध–(स०)–१ वर्जन, मनाही, न करने का आदेश, २ निषिद्ध बात, न करने योग्य बात। उ० २ राम को बिसारियो निषेध सिरताज रे। (वि० ६७) निषेध वाक्य–ऐसे वाक्य या वेद वाक्य जो अकरणीय कार्यों के विषय में निषेध करते हैं।
निष्कंप–(स०)–स्थिर, अचल।
निष्काम–(स०)–१ इच्छारहित, जिसको किसी प्रकार की कामना न हो, २ बिना प्रयोजन, बिना मतलब।
निष्केवल–अकेला, अनन्य। उ० राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम। (मा० ६।११७ ख)
निष्पाप–(स०)–पाप रहित, बिना कलुष का।
निष्पापा–दे० 'निष्पाप'। उ० कपि तव दरस भइउँ निष्पापा। (मा० ६।१०८।१)
निष्प्राप्य–न प्राप्त होने योग्य, दुर्लभ।
निसंकी–(स० निःशंक)–निडर, निशंक। उ० नीच निसील निरीस निसंकी। (मा० २।२६३।१)
निसंकु–(स० नि शंक)–निशंक, निडर। उ० निपट निरंकुस निठुर निसंकु। (मा० २।११६।२)
निसंबर–दे० 'निसबल'। उ० सबर निसबर को, सखा असहाय को। (वि० ६६)
निसंबल–(स० निःसंबल)–राहखर्च के बिना, असहाय। उ० पगु अध निरगुनी निसंबल जो न लहै आँचे जाके। (गी० २।५२)
निसरत–(नि सरण)–निकलने में। उ० निसरत प्रान करहिं हठि बाधा। (मा० २।३१।३) निसरि–निकलकर। उ० निसरि परहिं भालु कपि ठाटा। (मा० ६।६७।२) निसरी–निकली, बाहर आई। उ० निसरी रुधिर धार तहँ भारी। (मा० ४।६।४) निसरिगे–निकल गए, बाहर हो गए। उ० देह गेह नेह नाते मन से निसरिगे। (गी० २।३२) निसरे–निकले, बाहर हुए।
निसा–(स०)-निशा)–१ रात, रात्रि, २ हरिद्रा।
निसाकर–(स० निशाकर)–चन्द्रमा। उ० निरखि निसाकर नृप मुख भए मलीन। (ब० १३)
निसाचर–(स० निशाचर)–१ विभीषण, २ राक्षस, निशिचर। उ० १ कीस निसाचर की करनी न सुनी, न बिलोकी, न चित्त रही है। (क० ७।१) निसाचरहि–निसाचर को, राक्षस को।
निसान–दे० 'निशान'। उ० १ मगन गगन निसान नभ, नगर मुदित नर नारि। (प्र० ४।२।२)
निसाना–दे० 'निशान'। उ० अरु बाजे गहगहे निसाना। (मा० १।११२४।२)
निसानु–दे० 'निशान'। उ० १ बाजहिं निसानु सुगान नभ, चढ़ि बसह बिधु भूषन चले। (पा० १०८)
निसास–(स० निःश्वास)–१ उसास, पश्चाताप की साँस, २ पछतावा।
निसि–(स० निशा)–रात, रात्रि। उ० दुलह नासु जिमि रबि निसि नासा (मा० १।२४।३) निसिदिन–दे० 'निशि दिन'। उ० रघुबीर चरित पुनीत निसिदिन दास तुलसी गावई। (मा० ३।६। छ० १) निसिहि–रात्रि को। उ० निसिहि ससिहि निंदति बहु भाँती। (मा० ६।१००।२)
निसिचर–दे० 'निशिचर'। उ० निसिचर निकर दले रघु नदन। (मा० १।२४।४) निसिचरन्हि–राक्षसों ने। उ० परे भूमि निसिचरन्हि जे मारे। (मा० ६।११४।१) निसिचरिन्हि–राक्षसियों को। उ० कहेसि सकल निसि चरिन्ह बोलाई। (मा० ४।१०।४) निसिचरी–(सं० निशि चरी) १ राक्षसी, २ सूर्पणखा। उ० २ जय निसिचरी बिरूप-करन रघुबंस बिभूषन। (क० ७।११३)
निसित–दे० 'निशित'। उ० चले बिसिख निसित निकाम। (मा० ३।२०। छ० १)
निसिनाथ–(सं० निशिनाथ)–चन्द्रमा। उ० साथ निसिनाथ मुखी पाथ नाथ-नदिनी सी। (क० २।१५)
निसिराज–(स० निशिराज)–चन्द्रमा, राकेश। उ० चैत चतुरदसि चाँदनी, अमल उदित निसिराज। (गी० ११५)
निसील–(स० नि+शील) शीलहीन, बिना शील का। उ० नीच निसील निरीस निसंकी। (मा० २।२२६।१)
निसेनि–दे० 'निसेनिका'।
निसेनिका–(सं० निःश्रेणी)–सीढ़ी, जीना। नाभी सर त्रिबली निसेनिका, रोमराजि सैवल छबि पावति। (गी० ७।१७)
निसेनी–दे० 'निसेनिका'। उ० नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी। (मा० ७।१२१।५)
निसेस–(स० निशा+ईश)–चन्द्रमा को। निसेस (१)–(सं० निशेश)–चन्द्रमा।
निसेस (२)–दे० 'निशेष'। उ० रघुबस-कुमुदसुखप्रद निसेस। (वि० ६४)
निसेष–दे० 'निशेष'। उ० काम क्रोध अरु लोभ मोह मद राग द्वेष निसेष करि परिहरु। (वि० २०५)
निसोच–(स० नि+शोच)–बिना सोच के, बिना चिंता के, निश्चित।
निसोचु–दे० 'निसोच। उ० नाम के भरोसे परिनाम को निसोचु है। (क० ७।८१)
निसोत–(स० निःसंयुक्त)–१ शुद्ध खालिस, जिसमें किसी और चीज का मेल न हो, २ अकेला, केवल। निसोती–

दे० 'निसोत'। उ० २ सो कत त्रिविध सूल निसि बासर सहते बिपति निसोती। (वि० १६८) निसोतैं-विशुद्ध से बेमेल से। उ० रीझत राम सनेह निसोतैं। (मा० १।२८।६)
निसोतो-निराला, खरा, विशुद्ध। उ० कृपा सुधा जलदान माँगियो कहौं सो साँच निसोतो। (वि० १६१)
निस्तरइ-(स० निस्तारण)-निस्तार पा सकता है, पार उतर सकता है। उ०सो निस्तरइ तुम्हारेहि छोहा। (मा० ४।३।१) निस्तरिये-निस्तार कीजिए, उद्धार कीजिए, पार लगाइए। उ० जब कब निज करुना सुभाय तें द्रवहु तो निस्तरिए। (वि० १८६) निस्तरै-दे० 'निस्तरइ'।
निस्तार-(स०)-१ उद्धार, छुटकारा, मोक्ष, २ बचाव। उ० १. गुनउ बहुत कलिजुग कर बिनु प्रयास निस्तार। (म० ७।१०२ क)
निस्तारा-उद्धार किया। उ० तुम्ह प्रभु सब देवन्हि निस्तारा। (मा० ६।७७।२)
निहकाम-(स० निष्काम)-जिसमें किसी प्रकार की वासना, इच्छा या आसक्ति न हो। उ० मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम। (मा० ३।११)
निहचय-दे० 'निश्चय'। उ० दुतिय कोल राजिव प्रथम वाहन निहचय माहिं। (स० २२५)
निहचलता-दे० 'निश्चलता'। उ० निहचलता तुलसी कठिन राम कृपा बस होइ। (स० ५६५)
निहत-(स०)-१ फेंका हुआ, २ नष्ट, ३ मारा हुआ, जो मार डाला गया हो। उ० २ निसिचर कलि-कर निहत तरु मोहि कहत विधि वाम। (स० ४०)
निहार (१)-(स० निभालन=देखना)-देखकर, घूरकर। निहारइ-देखे, देखती हो, घूरती हो। उ० मानहुँ सरोष भुअग भामिनि बिषम भाँति निहारई। (मा० २।२५।छं१) निहारत-देखता है, निहारता है। उ० ज्यों कदली तरु मध्य निहारत कबहुँ न निकसत सार। (वि० १८८) निहारहि-१ देखे, चितवे, अवलोकन कर, २ निहारा, देखा, भली भाँति देखा, ३ देखता है। उ०३ रंगभूमि पुर कौतुक एक निहारहि। (जा० १२) निहारा-१ देखा, २ देखता है। उ० २ सहस नयन पर दोष निहारा। (मा० १।४।६) निहारि-देखकर, अवलोकन कर। उ० लता निहारि नवहिं तरसाखा। (मा० १।८२।१) निहारी-देखा। उ० भरि लोचन छबिसिंधु निहारी। (मा० १।५०।१) निहारु (१)-देखो, निहारो। उ० सरद बिधु रबि-सुवन मनसिज-मान भजनिहारु। (गी० ७।८) निहारे-देखा। उ० सनमुख दोउ रघुसिंघ निहारे। (मा० १।२२४।२)
निहार-(२) (स० नीहार)-कुहरा, पाला। उ० मोह निहार दिवाकर संकर सरन-सोक-भयहारी। (वि० ०४)
निहारु-(स० नीहार)-बर्फ। उ०चारु चदन मनहुँ मरकत सिखर लसत निहारु। (गी० ७।८)
निहाल-(फा)-सतुष्ट, प्रसन्न, तृप्त। उ० जे जे तैं निहाल किए फूले फिरत पाए। (वि० ८०)
निहालु-दे० 'निहाल'। उ० तुलसिदास भलो पोच रावरो नेकु निरखि कीजै निहालु। (वि० १२४)
निहिचर-दे० 'निशिचर'।
निहित-(स०)-१ छिपा हुआ, २ रक्खा हुआ।
निहोर-(स०मनोहार, हि०मनुहार)-१ निहोरा कर, बिनती कर, २ बिनती, प्रार्थना, निहोरा, ३ एहसान, ४ उपकार। उ०३ राखा राम निहोर न ओही। (मा० ४।२६।३) निहोरउँ-निहोरा करता हूँ। उ० देखौं बेगि सो जतनु करु सखा निहोरउँ तोहि। (मा०६।११६ ख) निहोरत-विनती करते हैं, प्रार्थना करते हैं। उ० साधक कलेस सुनाइ सब गौरिहि निहोरत धाम कों। (पा० ३६) निहोरहिं-प्रार्थना करती हैं। उ० बार बार रघुनाथहि निरखि निहोरहिं। (जा० १८७) निहोरा-१ बिनती, २ उपकार, भलाई, ३ कारण से, बदौलत, द्वारा, ४ मनाने की क्रिया, मनाना, ५ मना रहे हैं, निहोरा कर रहे हैं, ६ निहोरा किया। उ० १ मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा। (मा० १।५।१) २ बोझे रामहि देइ निहोरा। (मा० १।२७८।४) ५ सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। (मा० २।१०१।२)
निहोरि-बिनती कर के, मधुर बाणी से। उ० सब बस किये सुभ सुनाए सकल लोक निहोरि। (वि० १५८) निहोरिहौं-मनाऊँगा, मनौती करूँगा। उ० दुहुँ ओर की बिचारि अब न निहोरिहौं। (वि० २४८) निहोरी-विनय करके। उ० देखि देव पुनि कहहिं निहोरी। (मा० २।१२।१) निहोरें-१ लिए, २ विनय करने। उ०१ तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरें। (मा०२।१६०।३) निहोरे-१ विनती करके, २ प्रार्थना की, ३ उपकार में, ४ एहसान, कृतज्ञता, ५ कारण, ६ मनाना, मनौती करना। उ० २ देवता निहोरे महामारिन्ह सों कर जोरे। (क०७।१७५) निहोरैं-विनती करे। उ० सपने पर बस परयो जागि देखत केहि जाइ निहोरैं। (वि० ११६)
नींद-(स० निद्रा, प्रा० निद्दा)-जीवन की एक नित्यप्रति होनेवाली अवस्था जिसमें चेतन क्रियाएँ रुकी रहती हैं और शरीर तथा अतःकरण दोनों विश्राम करते हैं। सोने की अवस्था। उ० जातहिं नींद जुड़ाई होई। (मा० १।३।१)
नींदरी-दे० 'नींद'। उ० गाइ गाइ हलराइ बोलिहौं सुख नींदरी सुहाई। (गी० १।१६)
नीक-(स० निक)-अच्छा, साफ, सुंदर। उ० कहेहु नीक मोरेहुँ मन भावा। (मा०१।६२।१) नीकि-अच्छी, बढ़िया। उ० नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई। (मा०१।१३४।२) नीकिये-नीकी ही, अच्छी ही। उ०भूपति बिदेह कही नीकिये जो भई है। (गी०१।८३) नीके-अच्छी तरह से, अच्छे प्रकार से, भली भाँति। उ० नीके देखे देखता देवैया घने गय के। (क० ७।२४) नीकेइ-अच्छे ही। उ० तुलसिदास इहै अधिक कान्ह पहिं, नीकेइ लागत मन रहत समाने। (कृ० ३८)
नीका-१ अच्छा, २. ठीक, यथार्थ। उ० २ कह मुनि बिहसि कहेहु नृप नीका। (मा० १।२१६।३) नीकी-अच्छी। उ० प्रभुपद प्रीति न सामुझि नीकी। (मा० १।६।५)
नीको-अच्छा। उ० सुभ दिन, सुभ घरी, नीको नखत लगन सुहाइ। (ग० ७।२४)
नीच-(स०)-१ क्षुद्र, तुच्छ, अधम, बुरा, २ मूढ़, नीच मूढ़। उ० १ बर-बारि बिरस नर नारि नीच। (वि०

२३) २ प्रभुहि बिलोकत गोदगत, सिय हित घायल नीच। (दो० २२२) नीचउ-नीच भी। उ० भगतिवंत अति नीचउ प्रानी। (मा० ७।८६।१) नीचऊ-नीच भी, नीचों को भी। उ० नीचऊ निवाजे प्रीति रीति की अबी नता। (वि० २६२) नीचि-नीची, निम्न श्रेणी की। उ० नीचि टहल गृह कै सब करिहउ। (मा० ७।१८।४) नीचियौ-नीची भी, तुच्छ भी, हलकी भी। उ० सील सिंधु तोसो ऊँचो नीचियौ कहत सोभा। (वि० २४७)
नीचा-नीच, स्वार्थी। उ० नाइ माथ स्वारथरत नीचा। (मा० ३।२४।३)
नीचु-नीच, अधम। उ० भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु। (मा० १।५)
नीचू-नीच, कमीने। उ० दानव देव ऊँच अरु नीचू। (मा० १।६।२)
नीड़-(सं० नीड)-पक्षियों का घोंसला, खोंता। उ० मदन सकुन जनु नीड़ बनाए। (मा० १।२४६।३)
नीति-(स०)-१ आचार पद्धति, व्यवहार की रीति २ व्यवहार की वह रीति, जिससे अपना कल्याण हो और समाज को भी कोई बाधा न हो। ३ सदाचार, लोक मर्यादानुसार व्यापार, ४ राजाओं के लिए आवश्यक ज्ञानशास्त्र, ५ युक्ति, उपाय, ६ नीति के ग्रंथ। वह पुस्तक जिसमें नीति की बातें कही गई हों। जैसे शुक्र नीति, चाणक्य नीति आदि। उ० २ नीतिनिपुन जिन्ह कइ जग लीका। (मा० २।१३१।१)
नीती-दे० 'नीति'। उ० २ पठइअ बाज नाथ असि नीती। (मा० २।६।३)
नीर-(स०)-पानी, जल। उ० चरन नख नीर त्रैलोक्य पावन परम, बिबुध जननी-दुसह-सोक हरण। (वि० ५२) नीरै-नीर को, जल को। उ० उपमा राम लषन की प्रीति की क्यों दीजै खीरै-नीरै। (गी० ६।१२)
नीरचारी-जलजंतु, जल के जीव। उ० सुभट सरीर नीरचारी भारी भारी तहाँ। (क० ६।४६)
नीरज-(स०)-१ कमल, पंकज, २ मोती मुक्ता, ३ जल में उत्पन्न वस्तु, ४ धूल, ५ रजोगुणरहित। उ० १ नीरज नयन भावते जी के। (मा० १।२४३।१)
नीरद-(स०)-१ मेघ, बादल, २ जल देनेवाला।
नीरधर-(सं०)-बादल, मेघ। उ० नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम। (मा० १।१४६)
नीरनिधि-(सं०)-समुद्र। उ० बाँध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस। (मा० ६।५)
नीराजन-(स०)-आरती, देवता को दीपक दिखाने की विधि।
नीरा-दे० 'नीर'। उ० हरषि नहाने निरमल नीरा। (मा० १।१४३।३)
नीराजन-आरती को। उ० भगति-बैराग्य बिज्ञान दीपावली अर्पि नीराजन जगनिवास। (वि० ४७)
नीरु-दे० 'नीर'। उ० नयनन्हि नीरु रोमावलि ठाढ़ी। (मा० १।१०४।१)
नीरू-दे० 'नीर'। उ० जीह नामु जप लोचन नीरू। (मा० २।३२६।१)

नील-(स०) श्याम रंग को, श्याम रंगवाले को। उ० केकी कण्ठाभनीलं सुरवर विलसद्विप्रपादाब्ज चिह्नं। (मा० ७।१। श्लो० १) नील-(स०)-१ नीला, गहरे आसमानी रंग का। २ काला, ३ एक बंदर जो राम की सेना में था। इसके छू देने से पत्थर पानी में तैरने लगते थे। इसका कारण एक मुनि का शाप था। नल और नील ने राम का सेतु बाँधा था। ४ सौ अरब की संख्या, ५ एक पौधा, ६ विष, जहर, ७ एक पर्वत, ८ कुबेर की नौ निधियों में एक ९ कलंक, १० नीलमणि। उ० १ नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन। (मा० १।१। सो० ३) ४, द्विविद मयंद नील नल अंगद गद बिकटासि। (मा० ६।५४) नीलहि-नील को। उ० नल नीलहि सब कथा सुनाई। (मा० ६।१।३)
नीलकंठ-(स०)-जिसका कंठ नीला हो, १ शिव, २ एक पक्षी, ३ मोर। उ० १ नीलकंठ मृदु सील कृपामय मूरति। (पा० ३०) २ नीलकंठ कलकंठ सुक चातक चक्क चकोर। (मा० २।१३७)
नीलमणि-(स०)-नीलम नाम का नीले रंग का रत्न विशेष।
नीलमनि-दे० 'नीलमणि'। उ० नील सरोरुह नीलमनि नील नीरधर स्याम। (मा० १।१४६)
नीला-दे० 'नील'। उ० ३ सिलिप कर्म जानहिं नल नीला। (मा० ६।२३।२)
नीलोपल-(स०)-नीलमणि, नीलम।
नीसान-(फा० निशान)-१ निशान, झंडा, २ नगाड़ा। उ०२ नीसान गान प्रसून झरि तुलसी सुहावनि सो निसा। (मा० १४७)
नीहार-(स०)-१ कुहरा, २ पाला, हिम, बर्फ।
नुतौ-(स०)-वंदित, स्तुति किए गए। उ० शोभाढ्यौ वर धन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ। (मा० ४।१। श्लो०१)
नूतन-(स०)-नया, नवीन, ताजा। उ० जिमि नूतन पट पहिरइ नर परिहरइ पुरान। (मा० ७।१०६ ग)
नूपुर-(स०)-१ घुँघुरू, २ पैंजनी, पाजेब। उ० १ कंकन किंकिनि नूपुर बाजहिं। (मा० १।२३१।८।२) २ पग नूपुर औ पहुँची करकंजनि, मंजु बनी मनिमाल हिये। (क०१।२)
नूपुरा-नूपुर शब्द का बहुवचन, बहुत से नूपुर। उ०युगल पद नूपुरा मुखर कलहंसवत सुभग सर्वांग सौंदर्यवपम्। (वि० ६१)
नृ-(सं०)-नर, मनुष्य। उ० ब्याल-नृकपाल माला बिराजै। (वि० १०)
नृकेहरि-नृसिंह, भगवान नरसिंह। उ० 'राम कहाँ' 'सब ठाँउ हैं' खंभ में?' 'हाँ' सुनि हाँक नृकेहरि जाग। (क० ७।१२८)
नृग-(सं०)-एक राजा का नाम। ये बड़े दानी थे। एक बार इनकी गायों के झुंड में एक ब्राह्मण की गाय आ मिली। उन्हें इसका पता न चला और एक दूसरे ब्राह्मण को हजार गाएँ दान देते समय उन्होंने वह गाय भी दे डाली। जिस ब्राह्मण की गाय गायब हो गई थी उसने संयोग से उन हजार गायों में अपनी गाय पहचान ली और दोनों ब्राह्मण लड़ते झगड़ते महाराज नृग के पास पहुँचे। जिस

ब्राह्मण की गाय थी वह उसे लेना चाहता था पर जिसे दान मिली थी वह नहीं देना चाहता था। राजा उस एक गाय के बदले एक हजार और एक लाख गाय तक देने को तैयार हो गए पर दोनों में किसी ने भी स्वीकार न की। अत दोनों ब्राह्मण रुष्ट होकर चले गए। जाते-जाते उन्होंने राजा को गिरगिट होने का श्राप दिया। मरने के बाद एक सहस्र वर्ष के लिए वे गिरगिट होकर एक कुएँ में रहने लगे। अवधि समाप्त होने पर कृष्ण के हाथों इनका उद्धार हुआ। उ० विप्रतिय, नृग, बधिक के दुख दोष दारुन दरन। (वि० २१८) नृगउद्धरन–राजा नृग के उद्धार करनेवाले, भगवान्। उ० तुलसिदास प्रभु को न अभय कियो नृगउद्धरन। (वि० ९०)

नृत्य–(स०)–नाच, नाचना, सगीत के ताल और गति के अनुसार हाथ पाँव हिलाने उछलने-कूदने आदि का व्यापार। उ० सकल-लोकांत-कल्पांतशूलाग्रकृत दिग्गजाव्यक्त-गुण नृत्यकारी। (वि० ११) नृत्यकारी–नाचनेवाला, नृत्यक। उ० दे० 'नृत्य'। नृत्यपर–नृत्य में तत्पर, नृत्य करते हुए।

नृप–(स०)–राजा, नरपाल, नरेश। उ० नृप कियो भोजन पान, पाइ प्रमोद जनवासहि चले। (जा० १८०) नृपघाती–राजाओं को मारनेवाला, परशुराम। उ० भा कुठारु कुंठित नृपघाती। (मा० १।२८०।१) नृपन–राजा लोग। नृपन्ह–नृपों को, राजाओं को। उ० प्रभु प्रतापु सब नृपन्ह दिखाया। (मा० १।२३९।३) नृपहिं–राजा को। उ० दिन प्रति नृपहि देखावहिं आनी। (मा० १।२०४।१)

नृपति–(स०)–१ राजा, नृप, २ राजा परीक्षित। उ० १ मज्जन पान समेत हय कीन्ह नृपति हरषाइ। (मा० १।१५८) २ ब्रह्म विसिख ब्रह्मांड-दहन-छम गर्भ न नृपति जर्यो। (वि० २३९)

नृपती–दे० 'नृपति'। उ० १ सुखी भए मानहुँ जग नृपती। (मा० ७।६३।२)

नृपनय–राजनीति, राजाओं की नीति। उ० धरम साधु मत लोकमत नृपनय निगम निचोरि। (मा० २।२५८)

नृपाल–(स०)–राजा, नृप। उ० भयभनु घलि जानकी बियाही भए बिहाल नृपाल त्रपा हैं। (गी० ७।१३) नृपालन–राजाओं, राजा गण। उ० काल कराल नृपालन के धनुभंग सुने फरसा लिए धाए। (क० १।२२)

नृपाला–नृप राजा। उ० साधु सुजानु सुसील नृपाला। (मा० १।२८।४)

नृपु–दे० 'नृप'। उ० नृपु सब भाँति सराह बिभूती। (मा० १।३३३।१)

नेइ –(स० नेमि, प्रा० नेई)–नीव, मूल, जड़। उ० दीन्हि सि अचल बिपति कै नेइ। (मा० २।२९।२)

नेउ (१)–दे० 'नेइ'।

नेक (२)–(हि० नेक)–थोड़ा, कुछ, नेकु।

नेक (१)–(हि० न+एक)–थोड़ा, कुछ, अत्यल्प।

नेक (२)–(फा०)–अच्छा, भला, उत्तम।

नेकु (१)–दे० 'नेक (१)'। उ० पै सौ नौं जौ लौं रावरे न नेकु नयन फेरे। (वि० ७८)

नेकु (२)–दे० 'नेक (२)'। उ० भलो नेकु लोक राखे निपट निपाई हैं। (गी० २।२६)

नेग–(स० नैयमिक, हि० नेवग)-विवाह आदि में ब्राह्मण या नाई बारी आदि को दी जानेवाली दक्षिणा या दस्तूर। उ० नेगी नेग जोग सब लेहीं। (मा० १।३२३।३)

नेगचारु–(नेग+चाल)रसम, कुलरीति। उ० नेगचारु कहँ नागरि गहरु लगावहि। (जा० १४१)

नेगी–१ लेनेवाले, नेग पाने के हकदार ब्राह्मण, नाई आदि, २ लेनेवाला, ३ सहायक। उ० १ नेगी नेग जोग सब लेहीं। (मा० १।३२३।३) ३ लछिमन होहु धरम के नेगी। (मा० ६।१०६।१)

नेगु–दे० 'नेग'। उ० नेगु मागि मुनि नायक लीन्हा। (मा० १।३४३।१)

नेति–(स० न+इति)-यह एक सस्कृत वाक्य है जिसका अर्थ 'अत नहीं है' होता है।

नेत्र–दे 'नेत्र'। उ० चलत्कुंडल भ्रू सुनेत्र विशाल। (मा० ७।१०८।४) नेत्र–(स०)–आँख, लोचन, नयन।

नेपथ्य–(स०)–नाटक आदि में परदे के भीतर का स्थान जहाँ नाट्य करनेवाले सजाये जाते हैं।

नेब–(फा० नायब)–सहायक, नायब। उ० भरतु मदिगृह सेइहहिं लखनु राम के नेब। (मा० २।११)

नेम–(स० नियम)–१ नियम, सयम, २ धम, ३ व्रत, ४ प्रतिज्ञा, सकल्प।

नेमा–दे० 'नेम'। उ० १ असन बसन बासन व्रत नेमा। (मा० २।३२४।२)

नेमु–दे० 'नेम'। उ० १ देखि प्रेम व्रतु नेमु सराहहिं सज्जन। (पा० ४०)

नेरी–दे० 'नेरे'। उ० जाहि मृत्यु आइ अति नेरी। (मा० ३।२३।२)

नेरे–(स० निकट)–समीप, पास, नजदीक। उ० अगम अप वर्ग, अरु स्वर्ग सुकृतैक फल, नाम बल क्यों बसौं जम नगर नेरे ! (वि० २१०)

नेरो–दे० 'नेरे'। उ० कबहुँक हौं सगति प्रभाव ते जाउँ सुमारग नेरो। (वि० १४३)

नेवछावरि–(स० न्यासावर्त)–न्योछावर निछावर, उतारा, वारापेरा। उ० तुलसी नेवछावरि करति मातु अति प्रेम मगन मन, सजल सुलोचन कोय। (गी० १।१२)

नेवत–दे० 'नेवता'। उ० यह अनुचित नहिं नेवत पठावा। (मा० १।६२।१)

नेवता–(स० निमत्रण)–१ निमत्रण, न्योता, २ निमत्रण दिया है। उ० २ मुनिहि सोच पाहुन बड़ नेवता। (मा० २।२१३।२) नेवति–१ निमत्रण देकर, न्यौता देकर, २ निमत्रण। उ० १ सुदिन सोधि पोथी नेवति, पूजि प्रभात सप्रेम। (प्र० ७।७।१) २ सब कहँ गिरिबर-नायक नेवति पठायउ। (पा० १४) नेवते–निमत्रण दिया, निमन्त्रित किया। उ० नेवते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग। (मा० १।६०)

नेवनि–(दे० 'नेब')–सहायकों, मत्रियों। उ० कुल गुर, सचिव, निपुन नेवनि अवरेब न समुझि सुधारी। (गी० १।६८।१)

नेवाज-(फा० नेवाख्तन, नेवाज) कृपा करनेवाला। उ०दे० 'नेवाजी'।
नेवाजा-कृपा की है। उ० राम कृपाल निषाद नेवाजा। (मा० २।२२०।४) नेवाजि-रक्षा करके। उ० बिभीषन नेवाजि सेतु सागर तरन भो। (क० ६।५६) नेवाजिये-१ कृपा कीजिए, २ कृपा करते हैं। उ० १ रीति महा राज की नेवाजिये जो माँगनो सो। (क० ७।२५) नेवाजिहैं-रक्षा करेंगे, शरण में लेंगे। नेवाजी-१ शरण में ली, कृपा की, २ शरण में लेकर, कृपा करके, ३ दया, ४ दया करना, ५ कृपा करनेवाला। उ० ४ राम गरीब नेवाज ! भये हौ गरीब नेवाज गरीब नेवाजी। (क०७।१४) नेवाजे-कृपा की। उ० नाम गरीब अनेक नेवाजे। (मा० १।२५।१)
नेवाजू-दयालु, कृपालु। उ० गइ बहोर गरीब नेवाजू। (मा० १।१३।४)
नेवारई-(सं० निवारण)-हटाती है, हटा देती है। उ० केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि नेवारइ। (मा० २।२५। छं० १) नेवारत-मना करता, रोकता। नेवारिहैं-हटायेगा, हटायेंगे। उ० मोह-मन कलिमल पल पीन जानि जिय, साधु गाय बिप्रन के भय को नेवारिहैं। (क० ७। १४२) नेवारे-मना किया। उ० सयनहिं रघुपति लखनु नेवारे। (मा० १।२५४।२)
नेवारित-(?)-मढ़ा हुआ, पानी चढ़ाया हुआ। उ० कु तिय सु भूषन भूखियत लोह नेवारित हेम। (स० ६८६)
नेह-(सं० स्नेह)-१ प्यार, प्रेम, स्नेह, २ तेल। उ० १ जानकी नाह को नेह लख्यौ, पुलको तनु बारि बिलोचन बाढ़े। (क० २।१२)
नेहरुआ-(?)-एक रोग जो प्रायः कमर के निचले भाग में होता है। इसमें पहले सूजन और फिर घाव हो जाता है, जिसमें सफेद रक्त के लंबे-लंबे कीड़े पड़ जाते हैं। उ० दंभ कपट मद मान नेहरुआ। (मा० ७।१२१।१८)
नेहा-दे० 'नेह'। उ० बिपति काल कर सतगुन नेहा। (मा० ४।७।३)
नेही-प्रेमी स्नेह करनेवाला। उ० जान्यो तुलसीदास, जोग वत नेही नेह मन। (दो० ३०७)
नेहु-दे० 'नेह'। उ० १ अब बिनती मम सुनहु सिव जौं मोपर निज नेहु। (मा० १।७६)
नेहू-दे० 'नेह'। उ० मन क्रम बचन रामपद नेहू। (मा० २।६३।२)
नैंया-(सं० न्याय)-एक सी, नाइ, समान, तरह। उ० किलकि सखा सब नचत मोर ज्यों, कूदत कपि कुरंग की नैंया। (कृ० १६)
नैन-(सं० नयन)-नेत्र। उ० सरद सर्बरीनाथ मुखु सरद सरोरुह नैन। (मा० २।११६)
नैमिष-दे० 'नैमिषारण्य'। उ० तीरथवर नैमिष बिख्याता। (मा० १।१४३।१)
नैमिषारण्य-एक प्राचीन वन। यह स्थान सीतापुर जिले में है। किसी मुनि ने यहाँ असुरों की अपार सेना एक निमिष में भस्म कर दी थी अतः इसका नाम नैमिषारण्य पड़ा। आजकल यह एक तीर्थ माना जाता है।
नैया-(फा० नाव, सं० नौ) नौका, तरणी।
नैव-(सं० न+एव)-नहीं। उ० न जानामि योग जप नैव पूजां। (मा० ७।१०८। छं० ८)
नैवेद्य-(सं०)-देवबलि, भोग, देवता के निवेदन के लिए भोज्य द्रव्य। भोजन की वह सामग्री जो देवता को चढ़ाई जाय। उ० भाव अतिसय बिसद प्रवर नैवेद्य सुभ श्री रमन परम-संतोषकारी। (वि० ४७)
नैहर [सं० ज्ञाति, प्रा० णाति, णाइ (=पिता)+हिं० घर]-मायका, पीहर। उ० नैहर जनमु भरब बरु जाई। (मा० २।२१।१)
नैहौं-नवाऊँगा, नाऊँगा, झुकाऊँगा। उ० मोकि हौं नयन बिलोकत औरहिं, सीस ईस ही नैहौं। (वि० १०४),
नो-(सं०)-१ मेरी, हमारी, २ हमको, ३ नहीं। उ० १ प्रासु सदा नो भव खग बाज। (मा०३।११।६) ३ पतति नो भवार्णवे। (मा० ३।४।७)
नोइ-दे० 'नोई'। उ० १ नोइ निवृत्ति पात्र बिस्वासा। (मा० ७।११७।६)
नोइनि-दे० 'नोई'।
नोई-(सं० नद्ध, हिं० नहना)-१ दूध दूहते समय गौ के पिछले पैरों में बाँधने की रस्सी, २ दूहते समय गाय की टाँग बाँधना।
नौ (१)-(सं०नव)-१ नया, नवीन, २ ९ की संख्या, नव। उ० १ गाढ़े हैं नौ गुम बार गढ़े। (क०२।१३) २ तुलसी तेहि औसर लावनिता दस, चारि, नौ, तीनि इकीस सबै। (क० १।७)
नौ (२)-(सं० नौः)-नौका, नाव।
नौका-(सं०)-नाव, किश्ती। उ० श्री हरिचरन-कमल-नौका तजि फिरि फिरि फेन गह्यो। (वि० ९२)
नौमि-(सं० नमामि)-मैं स्तुति करता हूँ, प्रणाम करता हूँ, मैं झुकता हूँ। उ० नौमि नारायण नर करुणायन ध्यान पारायण ज्ञान मूलम्। (वि० ६१)
नौमी-(सं० नवमी)-पक्ष की नवीं तिथि। उ० नौमी तिथि मधुमास पुनीता। (मा० १।१९१।१)
नौमीड्य-(सं०)-स्तुति करने योग्य। उ० नौमीड्य जानकीश रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम्। (मा०७।१। श्लो०१)
न्याउ-दे० 'न्याय'। उ० २ मोर न्याउ मैं पूछा साईं। (मा० ४।२।४)
न्याय-(सं०)-१ ठीक या उचित बात, निसाफ, इन्साफ, २. प्रमाणपूर्वक निश्चय, विवाद या व्यवहार में उचित अनुचित का निबटारा, इन्साफ, ३ वह शास्त्र जिसमें किसी वस्तु के यथार्थ ज्ञान के लिए विचारों की उचित योजना का निरूपण होता है। ४ तर्कशास्त्र, ५ लौकिक कहावत, जैसे 'बजीनर्द न्याय' आदि। उ०२. ऐस तो सोचहिं न्याय निठुर-नायक-रत। (गी० ५।१८) ५ होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक। (मा० ७।११८ ख)
न्यारिये-(सं० निर्निकट, प्रा० निष्णिअड, निन्नियर, हिं० न्यारा)-भिन्न प्रकार की, अलग ढंग की, विशेष प्रकार की, अनोखी। उ० दीनबंधु दया कीन्हीं निरुपाधि न्यारिये। (वि० २१) न्यारी-१ विलक्षण, अनोखी, निराली, २ पृथक् अलग,

३ दूर, जो पास न हो, ४ अन्य, भिन्न, ५ एक ओर, जुदे ही, अलग ही । उ० ५ 'कर कंकन केयूर मनोहर, देति मोद मुद्रिक न्यारी । (वि० ६३) न्यारे-१ अलग, २ विलक्षण ।
न्यारो-दे० 'न्यारे' । उ० १ जो कलिकाल प्रबल अति होते तुव निदेस तें न्यारो । (वि० ६४)
न्याय-(सं० न्याय)-१ न्याय, इन्साफ, २ उचित, यथार्थ विचार, ठीक बात ।
न्यास-(सं०)-१ अर्पण, त्याग, २ धरोहर, थाती, ३ धरोहर रखने योग्य धन।
न्हाइ-(सं० स्नान)-स्नान कर, नहाकर । उ० न्हाइ प्रातहि पूजिबो बट बिटप अभिमत दानि । (गी० ७।३२) न्हात-१ स्नान करते समय, नहाते समय भी, २ नहाते हैं। उ० १ न्हात खसै जनि बार, गहरु जनि लावहु । (जा० ३२) न्हाहु-स्नान करो, नहाओ । उ० उबटि न्हाहु, गुहौं चोटिया, बलि, देखि भलो बर करिहि बड़ाई । (कृ० १३)

# प

पंक-(सं०)-१ कीचड़, कीच, दलदल, २ पाप, पातक । उ० प्रेम पंक जनु गिरा समानी । (मा० १।३३७।१)
पंकज-(सं०)-कीचड़ से उत्पन्न, कमल, कंज । उ० भजेउ चाप प्रयास बिनु जिमि गज पंकजनाल । (मा० १।२६१) पंकजे-पंकज में, कमल में ।
पंकजात-दे० 'पंकज' । उ० पद पंकजात पखारि पूजे पंथ स्त्रम बिरहित भये । (गी० ३।१७)
पंकनिधि-समुद्र ।
पंकरुह-(सं०)-कमल, पंक से निकलनेवाला । उ० अब रघुपति पद पंकरुह हियँ धरि पाइ प्रसाद । (मा० १। ४३ ख)
पँख-(सं० पक्ष)-पर, डैना, पंख । उ० हम पँख पाइ पींजरनि तरसत, अधिक अभाग हमारो । (गी० २।६६)
पंख-(सं० पक्ष)-१ पक्षियों के पर, डैने, २ फूल की पखड़ी । उ० १ काटेसि पंख परा खग धरनी । (मा० ३। २९।११) २ पल्लव पंख सुमन सिर सोहत, क्यों कहौं बेष सुनाइ । (गी० १।२०) पंखन-पाँखें ।
पंगति-(सं० पंक्ति)-पंक्ति, कतार, श्रेणी । उ० बर दंत की पंगति कुंदकली, अधराधर-पल्लव खोलन की । (क० १।५)
पंगु-(सं०)-लँगड़ा, जो पाँव से ठीक से न चल सके । उ० मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन । (मा० १।१। सो० २)
पंच-(सं०)-१ पाँच, २ पाँच या अधिक व्यक्तियों का समुदाय, समाज, ३ वह जो किसी मामले का फ़ैसला करे, ४ मध्यस्थ, ५ पंचतत्व । उ० २ गारो भयो पंच में पुनीत पच्छ पाइकै । (क० ७।६१) ५ जब पंच मिलि जेहि देह करी, करनी लघु धौं धरनीधर की । (क० ७। २०) पंचन-कई पंच, पंचों का समूह, मुकदमे का फ़ैसला करनेवालों का समूह ।
पंचकोस-(सं० पंचकोश)-१ पाँच कोस में बसी काशी की पवित्र भूमि, काशी, २ आत्मा सबंधी अन्न, प्राण, मन, विज्ञान तथा आनंदमय पाँच कोष । उ० १ स्वारथ परमारथ-परिपूरन पंचकोस महिमा सी । (वि० २२)
पंचकोसि-काशी की पाँच कोस की परिक्रमा । दे०'पंचकोस' ।
पंचगव्य-(सं०)-गाय से प्राप्त होनेवाले पाँच द्रव्य—दूध दही, घी, गोबर और गोमूत्र—जो पवित्र माने जाते हैं, और पापों के प्रायश्चित या शुद्धि के लिए खिलाए जाते हैं ।
पंचग्रह-मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि नाम के पाँच ग्रह। उ० सरल-बक्रगति पंचग्रह, चपरि न चितवत काहु । (दो० ३३७)
पंचदश-(सं०)-१ पंद्रह, २ दस पाँच, थोड़ी सख्या का द्योतक शब्द ।
पंचदस-दे० 'पंचदश'। उ० १ नयन पंचदस अति प्रिय लागे । (मा० १।३१७।१)
पंचदसा-दे० 'पंचदश' ।
पंचनदा-पंच गंगा, पाँच नदियों का समूह । उ० पंचाक्षरी प्रान, मुद माधव गव्य सुपंचनदा सी । (वि० २२)
पंचवटी-(सं० पंचवटी)-रामायण के अनुसार दंडकारण्य के अंतर्गत एक स्थान जहाँ राम वनवास में रहे थे । यहाँ पीपल, बेल, बट, आँवला और अशोक ये पाँच वृक्ष थे । उ० पंचवटी पावन राघव करि सूपनखा कुरूप कीन्हीं । (गी० ७।३८)
पंचबान-(सं०पंचबाण)-कामदेव । इनके पाँच बाणों के नाम द्रवण, शोषण, तापन, मोहन और उन्मादन हैं तथा पाँच पुष्पबाणों के नाम कमल, अशोक, आम्र, नवमल्लिका और नीलोत्पल हैं । उ०उर बसि प्रपंच रचै पंचबान । (वि०१४)
पंचबीस-(सं० पंचविंशति)-पच्चीस । उ० परकथ साखा पंचबीस अनेक पर्न सुमन घने । (मा० ७।१३। छं० ५)
पंचम-(सं०)-पाँचवाँ, चौथे के बाद का । उ० तुलसी जय मंगल कुसल, सुभ पंचम उनचास । (प्र० ७।३।७)
पंचमुख-(सं०)-शिव, महादेव । उ० पंचमुख छमुख भृगु मुख्य भट, असुर-सुर सर्व सरि समर समरथ सूरो । (ह० ३)
पंचबिस-दे० 'पंचबीस' ।
पंचसर-(सं० पंचशर)-कामदेव ।
पंचसबद-(सं० पंच+शब्द)-पाँच प्रकार के बाजे । तंत्री, ताल, झाँझ, नगारा और तुरही । उ० पंच सबद धुनि मंगल गाना । (मा० १।३१६।२)

पचाच्छरी-(स० पंच + अक्षर)-'नमः शिवाय' का मंत्र। उ० पंचाच्छरी प्रान मुद माधव गव्य सुपंचनदा सी। (वि० २२)
पंचानन-(स०)-जिसके पाँच मुँह हों। १ महादेव, २ सिंह। उ० २ जथा मत्त गज जूथ महुँ पंचानन चलि जाइ। (मा० ६।११)
पंचीकरण-(स०) वेदांत में पंचभूतों का सिद्धांत विशेष। प्रत्येक भूत में शेष चार भूतों के अंश भी वर्तमान रहते हैं। भूतों की यह स्थूल स्थिति पंचीकरण द्वारा होती है। पंचभूतों के भागों का मिलान।
पंजर-(स०)-१ पिंजड़ा, २ ठठरी, कंकाल। उ० १ प्रनतारति-भंजन जनरंजन सरनागत पवि पंजर नाईं। (वि० १२३)
पंडित-(स०)-१ शास्त्रज्ञ, विद्वान्, ज्ञानी, २ कुशल, प्रवीण, चतुर, ३ ब्राह्मण, ४ संस्कृत भाषा का विद्वान्। उ०१ कबहुँ मूढ़ पंडित विडंब रत, कबहुँ धरम-रत ज्ञानी। (वि० ८१)
पंडु (१)-(स०)-१ पीलापन लिए हुए मटमैला, २ श्वेत, उज्ज्वल, ३ पीत, पीला।
पंडु (२)-(स० पांडु)-पांडु राजा जो पांडवों के पिता थे।
पंडुवने-पांडवों को ही।
पंथ-(स० पथ)-१ मार्ग, रास्ता, २ धर्म, सम्प्रदाय, मत। उ० १ तेहि परिहरिहिं विमोह बस, कल्पहिं पंथ अनेक। (दो०५५५) मु० पंथ लाग-१ अनुयायी होकर, २ पीछे पड़कर, तंग करके। उ० २ हठि सिद्ध मुनिन के पंथ लाग। (गी० २।४६) पंथहि-रास्ते को, रास्ते पर। मु० पंथहिं लागा-पीछे पड़ गया। उ० हठि सबहीं के पंथहिं लागा। (मा० १।१८२।६)
पंथा-दे० 'पंथ'।
पंथाना-दे० 'पंथ'। उ० १ रघुपति भगति केर पंथाना। (मा० ७।१२६।२)
पंथि-(स० पथिन्)-पथिक, यात्री। उ० राम लखन सिय पंथि की कथा पृथुल। (गी० २।३७)
पंथु-दे० 'पंथ'। उ० १ नाथ साथ रहि पंथु देखाइ। (मा० २।१०४।२)
पंनग-(स० पन्नग)-दे० 'पन्नग'।
पंपा-(स०)-दक्षिण भारत का एक तालाब। उ० पंपा नाम सुभग गंभीरा। (मा० ३।३६।३)
पँवारे-(स० प्रवारण)-फेंकने पर, फेंका जाय तो। उ० रज होइ जाइ पषान पँवारे। (प० १।३०।२)
पँवरि-(स० पुर)-पौरि, ड्योढ़ी, प्रवेशद्वार। उ० पहिलिहि पँवरि सुसामध भा सुखदायक। (पा० १२६)
पँवारत-(स० प्रवारण)-फेंकते हैं, दूर हटाते हैं। उ० सर तोमर सेल समूह पँवारत, मारत बीर निसाचर के। (क० ६।३४) पँवारे-(स० प्रवारण)-फेंकने से, डालने से।
पँवारा-(स० प्रवाद)-पँवाड़ा, लंबी चौड़ी कथा या बात जिसे सुनते-सुनते जी ऊब जाय।
पँवारो-दे० 'पँवारा'। उ० बीर बड़ो बिरदैत बली, अजहूँ जग जागत जासु पँवारो। (क० ६।३८)
प-(स०)-१ वायु, हवा, २ पत्र, पत्ता, ३ प्रभु, स्वामी, जैसे नृप, ४ पीनेवाला, जैसे मधुप।
पइठि-(स० प्रविश्य)-घुसकर, प्रवेश करके। उ० बदन पइठि पुनि बाहेर आवा। (मा० ५।२।६) पइठिहउँ-घुस जाऊँगा। उ० तव मुख बदन पइठिहउँ आइ। (मा० ५।२।३)
पइयत-(स० प्रापण, प्रा० पावण)-पाता हूँ, प्राप्त करता हूँ। पइहहिं-पाएँगे।
पइसार-दे० 'पैसार'। उ० अतिलघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार। (मा० ५।३)
पकये-(सं पक्व)-पकाए हुए, पकने के पहले तोड़कर पाल में पकाए हुए। उ० पाके पकाये बिटप-दल उत्तम मध्यम नीच। (दो० ५१०)
पकरै-(स० प्रकृष्ठ, प्रा० पक्कड्ढ)-१ पकड़े, ग्रहण करे, २ पकड़ता है, थामता है। पकरयो-पकड़ा। उ० अस्थि पुरातन छुधित स्वान अति ज्यों भरि मुख पकरयो। (वि० ६२)
पकवान-(स० पक्वान्न)-घी में तलकर बनाई गई पूरी, कचौरी आदि खाने की चीजें। उ० पान, पकवान विधि नाना को सँधानो सीधो। (क० ५।२३)
पकवाना-दे० 'पकवान'। उ० बिबिध भाँति मेवा पकवाना। (मा० १।३३३।२)
पकवाने-दे० 'पकवान'। उ० भरे सुधा सम सब पकवाने। (मा० १।३०५।१)
पक्खर (१)-(स० प्रखर)-प्रचंड, प्रखर।
पक्खर (२)-(स० प्रखर, प्रा० पक्खर)-लोहे की वह झूल जो लड़ाई के समय रक्षा के लिए हाथी या घोड़े पर डाली जाती है। उ० लखन में पक्खर तिक्खन तेज जे सूर समाज में गाज गने हैं। (क० ६।३४)
पक्ष-(स०)-१ पाख, अँधेरा और उजेला पाख, २ आधा महीना, ३ पंख, पर, ४ सहाय, बल, ५ तरफ, ओर, ६ अंग, पार्श्व, ७ जत्था, दल, टोली, ८ मित्र, ९ आधा, १० शरीर का आधा भाग, ११ तीर का पंख, १२ तरफदारी, १३ जुल्फ, बाल, जूरा।
पक्षपात-(स०)-बिना अनुचित-उचित विचार के किसी के अनुकूल प्रवृत्ति, तरफदारी।
पखवारा-(स० पक्ष)-आधा महीना, पक्ष, १५ दिन। उ० परितेसु मोहि एक पखवारा। (मा० ४।६।३)
पखाउज-(स० पक्ष + वाद्य) मृदंग की तरह का उससे कुछ छोटा एक बाजा। उ० बाजहिं ताल पखाउज बीना। (मा० ६।१०।५)
पखान-(स० पाषाण)-पत्थर, पाथर।
पखारत-(स० प्रक्षालन, प्रा० पक्खालन)-१ धो रहे हैं, २ धोने पर, धोते ही। उ० १ ते पद पखारत भाग्य भाजनु जनकु जय जय सब कहैं। (मा० १।३२४।छं० ३) पखारि-धोकर, धो करके। उ० पायन पायँ पखारि कै नाव चढ़ाइहौं आयसु होत कहा है? (क० २।७) पखारिहउँ-दे० 'पखारिहौं'। पखारिहौं-धोऊँगी, धोऊँगा। उ० पाँयि पखारि करौं, पद पायँ पखारिहौं भूसुरि काढ़े। (क० २।१२) पखारु-धो ले, पखार ले। उ०मेगि आनु जल पाय पखारू। (मा० २।१०१।१) पखारे-१ धोए, शुद्ध किए, प्रक्षालन किया, २ धोने से, धोने पर। उ० १ अतर मलिन

विषय मन थति, तन पावन करिय पखारे। (वि ११५) २ तुलसी पहिरिय सो बसन जो न पखारे फीक। (दो० ४६६)

पखावज–दे० 'पखाउज'।

पग–(सं० पद्क, प्रा०पग्गक)–१ पाँव, पैर, २ डग, फाल। उ०१ ताके पग की पगतरी, मेरे तनुको चाम। (वै०३७) पगन–१ पग का बहुवचन, पैरों, २ पैरों में। उ० २ उमहिं बोलि ऋषिपगन मातु मेलति भइ। (पा० १२) पगनि–१ पैरों से, चरणों से, २ पैरों में। उ० १ पगनि कब चलिहौ चारौ भैया ? (गी० १।६) २ छोटिए धनुहियाँ पनहियाँ पगनि छोटी। (गी० १।४२) पगहुँ–दे० 'पगहु'। पगहु–पग से भी, कदम से भी। उ० जेहिं जगु किय तिहु पगहु ते थोरा। (मा० २।१०१।२)

पगतरी–(हि० पग+तल)–जूता। उ० दे० 'पग'।

पगाई–(सं० पक्व)–पागा, डुबाया। उ० का कियो जोग अजामिल जू, गनिका कबहीं मति पेम पगाई। (क० ७।६३)

पगार–(सं० प्रकार)–गढ़, मकान या बाग आदि के रक्षार्थ बनी हुई चहारदीवारी। रखवाली के लिए बनी हुई दीवार। उ० तुलसी अगार न पगार न बजार बच्यो। (क० ५।२३)

पगि–(सं०पक्व) सनकर, पगकर, मिलकर, मग्न होकर, अनुरक्त होकर। पगी–मिली, मग्न हुई, सन गई।

पगियाँ–(सं० पग)–पगड़ी, पाग। उ० सुंदर बदन, सिर पगिया जरकसी। (गी० १।४२)

पगु–दे० 'पग'। उ० १ जो पगु नाउनि धोवइ राम धोवा चहुँ हो। (रा० १४)

पघिलाइ–(सं० प्र+गलन)–पिघला कर, गलाकर। उ० बालधी फिरावै बार बार झहरावै, झरैं बूँदियाँ सी, लंक पघिलाइ पाग पागिहै। (क० ५।१४)

पचत–(सं० पचन)–१ नष्ट होता है, समाप्त होता है, २ क्षीण होता है, खिन्न होता है ३ चुरता है, पकता है, ४ तन्मय होता है, लीन होता है, पूर्णरूप से लगता है, ५ कष्ट उठाता है, दुःख सहता है, ६ जल रहा, खौल रहा। उ० ५ पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी। (क० ७।९६) ६ तुलसी बिकल पाहि पचत कुपीर हौं। (क० ७।१६६) पचवइ–दे० 'पचवै'। पचवै–पचा डालती है। उ० जिमि सो असन पचवै जठरागी। (मा० ७।११६।५) पचहि–पचेगा, नष्ट हो जायगा। उ० परिनाम पचहि पातकी पाप। (गी० ५।१६) पचा–परिश्रम करके थक गया। उ० रामके घननाद से बीर पचारि कै हारि निसाचर सैन पचा। (क० ६।१५) पचि–१ कष्ट झेलकर, २ तन्मय होकर, पूर्णरूप से लगकर, ३ परेशान होकर, ४ बहुत श्रम करके, खपकर। उ० ४ करि उपाय पचि मरिय, तरिय नहिं जब लगि करहु न दाया। (वि० ११६) मु० पचि मरहिं–बहुत परिश्रम करते हैं। उ० करहिं ते फोकट पचि मरहिं, सपनेहु सुख न सुबोध। (दो० २०४)

पचारि–(सं० प्रचार)–ललकार कर, ज़ोर से सुनाकर। उ० जामवंत हनुमंत बलु, कहा पचारि पचारि। (प्र० ५।२।१) पचारी–ललकार करके, ज़ोर से कहकर। उ० भइ देव तन्ह गारि पचारी। (मा० १।१८२।४) पचारै–(सं० प्रचार)– ललकारे। उ० जौं रन हमहि पचारै कोऊ। (मा० १।२८४।१) पचारयो–१ प्रचारा, ललकारा, २ फटकारा, बुरा-भला कहा। उ० १ फिरत न बारहिं बार पचारयो। (गी० ३।८)

पचास–(सं० पचाशत, प्रा० पचासा)–५०, संख्या में ४९ से एक अधिक। पचासक–पचासों। उ० राज सुरेस पचासक को, बिधि के कर को जो पटो लिखि पाए। (क० ७।४५)

पचीसा–(सं० पचविंशति)–पच्चीस। उ० तुरग लाख रथ सहस पचीसा। (मा० १।३३३।२)

पची–(सं० पचित)–लगा हुआ, संयुक्त।

पच्छ–(सं० पक्ष)–दे० 'पक्ष'। उ० १ सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता। (मा० १।१९१।१) ३ जयति धर्मांसु संपाति-नवपच्छ-लोचन दिव्यदेह दाता। (वि० २८) १२ सापयस मुनिबधू मुक्तकृत, बिप्रहित-यज्ञरच्छन दच्छ पच्छ कर्ता। (वि० ५०) पच्छजुत–पंख के साथ, पाँखवाले। उ० भए, पच्छजुत मनहुँ गिरिंदा। (मा० ५।३५।२)

पच्छधर–(सं० पक्ष+धारण)–पक्ष ग्रहण करनेवाला, पक्षपात करनेवाला। उ० तुलसी हरि भए पच्छधर, ताते कह सब मोर। (दो० १०७)

पच्छपात–(सं० पक्षपात)–तरफ़दारी, पक्षपात, न्यायतः उचित न होने पर भी किसी का पक्ष लेना। उ० इहाँ न पच्छपात कछु राखउँ। (मा० ७।११६।१)

पच्छिम–(सं० पश्चिम)–पश्चिम दिशा। उ० पच्छिम द्वार रहा बलवाना। (मा० ६।४३।२)

पच्छी–(सं० पक्षी)–पखेरू, खग, चिड़िया। उ० सपदि होहि पच्छी चंडाला। (मा० ७।११२।८)

पछताउ–दे० 'पछताव'। पछतात–पछताते हैं, पश्चाताप करते हैं। उ० मानिय सिय अपराध बिनु प्रभु परिहरि पछतात। (प्र० ६।७।२) पछताय–दे० 'पछताव'। पछताव–(सं० पश्चाताप)–१ अनुताप, पछतावा, पश्चाताप, २ पछता करके।

पछारहिं–(सं० पश्च, पश्चात्, प्रा० पच्छा)–पछाड़ देते हैं, गिरा देते हैं, पटक देते हैं। उ० मारहिं काटहिं धरहिं पछारहिं। (मा० ६।८१।३) पछारहु–पछाड़ो, पछाड़ दो। उ० पद गहि धरनि पछारहु कीसा। (मा० ६।३४।५) पछारा–गिराया, पछाड़ दिया। उ० सिर लंगूर लपटि पछारा। (मा० ६।५८।३) पछारि–पछाड़कर, पटककर। उ० महि पछारि निज बल देखरायो। (मा० ६।७३।४) पछारु–पछाड़ो, गिराओ। उ० धरु मारु काटु पछारु घोर गिरा गगन महि भरि रही। (मा० ६।८१।छं०२) पछार–पछाड़ा, गिराया। उ० मारे पछार उर बिदारे बिपुल भट कहँरत परे। (मा० ६।२०।छं०२) पछारेसि–पछाड़ा, गिरा दिया, पटक दिया। उ० पुनि नल नीलहि अवनि पछारेसि। (मा० ६।६५।५)

पछालि–(सं० प्रक्षालन)–धोकर, प्रक्षालनकर। उ० मधुकर चरन पछालि तौं अति सुकुमारी हो। (रा० १५)

पछि–(सं० पक्ष) सहायक, पक्षपात करनेवाला।

पछिताई–(सं० पश्चाताप, प्रा० पच्छाताव)–पछताकर, पश्चाताप कर। उ० अगम दखि नृप अति पछिताई। (मा०

१।१२७।४) पछिताउ-१ पछतायो, २ पश्चाताप, अनुताप। उ०२ दइ सुगति सो न हेरि हरप हिय, चरन छुए पछिताउ। (वि० १००) पछिताऊँ-पछताती हूँ, पछताया करती हूँ। उ० मैं सुनि बचन बैठि पछिताऊँ। (मा०२।२६।४) पछिताऊ-दे०'पछिताउ'। उ० २ जेहि न होइ पाछें पछिताऊ। (मा० २।४।३) पछितात-पश्चाताप करते हैं। उ० सिर धुनि धुनि पछितात मींजि कर, कोउ न मीत हित दुसह दाय। (वि० ८३) पछिताति-पछता रही हैं, पछतावा कर रही हैं। उ० मन पछताति सीय महतारी। (मा०१।२७०।४) पछितातीं-पछता रही हैं, पश्चाताप कर रही हैं। उ० सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछितातीं। (मा०२।१२।१) पछिताना-पछताने, पश्चाताप करने। उ० सिर धुनि गिरा लगत पछिताना। (मा० १।११।४) पछितानि-पछताना, पश्चाताप करना। उ०प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। (मा० २।१०।४) पछितानी-पछतायीं, पश्चाताप किया। उ० करि कुचालि अतहुँ पछितानी। (मा० २।२०७।३) पछिताने-(स० पश्चाताप)-पछताना, पश्चाताप करना। उ० समय चुकें पुनि का पछिताने। (मा० १।२६१।२) पछिताने-पछताने लगे। उ० भए दुखी मन महुँ पछिताने। (मा० ६।६०।१) पछितैहैं-पछतायँगे, पछताया करेंगे। उ० भली भाँति पछिताब पिताहूँ (मा० १।६४।१) पछिताय-१ पश्चाताप करके, पछताकर, २ पछतावा, पश्चाताप। उ० २ सुखी हरिपुर बसत होत परीछितहिं पछिताय। (वि० २२०) पछितायो-पश्चाताप किया। उ० बूझि न सकत कुसल प्रीतम की हृदय यहै पछितायो। (गी० २।५६) पछिताहिं-पछताते हैं, पछता रहे हैं। उ० देखि निषाद विषादबस धुनहिं सीस पछिताहिं। (मा० २।६४) पछिताहीं-पछताते हैं। उ० सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं। (मा० २।४।४) पछिताहू-पछताओ, पश्चाताप करो। उ० पैहहु सीतहि जनि पछिताहू। (मा० ४।२५।३) पछितैहसि-पछतायगी, पश्चाताप करेगी। उ० पिरि पछितैहसि अंत अभागी। (मा० २।३६।४) पछितैहहु-पछताओगी। उ० ब्याह-समय सिख मोरि समुझि पछितैहहु। (पा० ६२) पछितैहै-पछतावेगा, पश्चाताप करेगा। उ० तौ पु पछितैहै मन मीजि हाथ। (वि० ८४) पछितैहौ-पछताओगे। उ० जानिकै जोर करौ परिनाम तुम्है पछितैहौ। (क० ७।१०२)

पछितावा-पश्चाताप। उ० जौं नहिं जाउँ रहइ पछितावा। (मा० १।४६।१)

पछिले-(स० पश्च)-बाद के, पीछे के। उ० पछिले पहर भूपु नित जागा। (मा० २।३८।१)

पछु-(स० पक्ष)-१ पक्ष, २ सहाय, ३ बल। उ० २ सहि न सक्यौ सो कठिन बिधाता बड़ो पछु आजुहि भा यौ। (गी० ३।१२)

पछोरन-(स० प्रक्षालन, प्रा० पच्छाडना)-अन्न आदि सूप से साफ़ करने पर बची हुई बेकार और गंदी वस्तु। उ० ठाली ग्वालि आवि परए, बलि कह्यो है पछोरन छूछो। (कृ० ४३)

पट (१)-(स०)-१ वस्त्र, कपड़ा, २ पर्दा, ओट, ३ रेशमी वस्त्र। उ० १. यथा पट-तंतु घट-मृत्तिका, सर्प स्रग दारु करि, कनक-कटकांगदादी। (वि० ५४) २ ध्वज पताक पट चमर सुहाए। (मा० १।२८६।१) पटनि-'पट' का बहुवचन। दे० 'पट'। रेशमी वस्त्रों। उ० बसनि सरासन लसत, सुचिक्कर सर, तून कटि मुनिपट लूटक पटनि के। (क० २।१६)

पट (२)-(स० पट्ट)-किवाड़, कपाट।

पटक-(स० पतन)-पटक दिए, धराशायी कर दिए। उ० बिकट चटकन चपट चरन गहि पटक महि। (क० ६।४६) पटकइ-पटकने लगा, पटकता है। उ० महि पटकइ गज राज इव सपथ करइ दससीस। (मा० ६।६३) पटकत-पटकते समय, पटकते वक्त। उ० महि पटकत भजे भुजा मरोरी। (मा० ६।६८।५) पटकहिं-पटकते हैं, गिराते हैं। उ० भागत भट पटकहिं धरि धरनी। (मा० ६।४७।४) पटकि-पटककर, गिराकर। उ० तोहि पटकि महि सेन हति चौपट करि तव गाउँ। (मा० ६।३०) पटके-पटक दिये, पटका। पटकेउ-पटक दिया, मार गिराया। उ० गहि पद पटकेउ भूमि भवाँई। (मा० ६।१८।३)

पटतर-१ बराबरी, समानता, २ उपमा। उ० २ बैदेही मुख पटतर दीन्हे। (मा० १।२३८।१) पटतरहि-तुलना, उपमा। उ० प्रनतपाल, सेवक कृपालु चित, पितु पटतरहि दियो हौं। (गी० ३।१७) पटतरिअ-उपमा दी जाय, तुलना की जाय। उ० यह छबि सखी पटतरिअ जाही। (मा० १।२२०।४) पटतरिय-उपमा दी जाय। उ० कहहु काहि पटतरिय गौरि गुनरूपहि। (पा० ४०) पटतरौं-उपमा दूँ, मुकाबिला करूँ। उ० केहि पटतरौं बिदेहकुमारी। (मा० १।२३०।४)

पटल-(स०)-१ पंक्ति, श्रेणी, कतार, २ आवरण, पर्दा, ३ छप्पर, छत, ४ समूह, राशि, ढेर, परत, तह, ५ मोतियाबिंद, आँख का एक रोग, ७ माथे का तिलक, ८ पटरा, तख्ता। उ० १. पिंगल जटा पटल शत कोटि विद्युच्छटाभ। (वि० ११) २ उघरे पटल परसुधर मति के। (मा० १।२८४।३) पटली-दे० 'पटल'। 'पटल' का स्त्रीलिंग, पंक्तियाँ। उ० १ चंचरीक पटली कर गाना। (मा०३।४०।४)

पटु-(स०)-१ प्रवीण, चतुर, २ धूर्त, छलिया, ३ क्रूर, निर्दय, ४ सुन्दर, ५ तीक्ष्ण, तेज़, ६ स्वस्थ, ७ व्यक्त, प्रकाशित, ८. उग्र, प्रचंड, ९ पप, १० ज़ीरा, ११ करेला, १२ परवल, १३ नमक, १४ नकछिकनी, १५ चीनीकपूर, १६ ठोस, मज़बूत। उ० १ पाप-ताप तिमिर तुहिन-विघटन-पटु। (ह० ३) ४ रघुपति पद्द पावरी मगाई। (मा० २।३२०।२) ५ गर्भ के अर्भक काटन को पटु धार कुठार कराल है जाको। (क० १।२०)

पटुली-(स० पट्ट)-झूले के रस्सों पर रक्खी जानेवाली पटरी या तख्त। उ० पटुली पदिक रति-हृदय जनु कलधौत कोमल-माल। (गी० ७।१८)

पटो-(स० पट्टा)-किसी स्थावर संपत्ति विशेषतः भूमि के उपयोग का अधिकार-पत्र जो किसी के नाम लिखा जाता है। उ० राज सुरेस पचासक को, बिधि के कर को जो पटो लिखि पाए। (क० ७।४५)

पटोर (स० पटोल)-रेशमी कपड़ा। पटोरन्हि-रेशमी कपड़ों से। उ० हाट पटोरन्हि छाय, सफल तरु लाइन्हि। (पा०

६७) पटोरे-रेशमी कपड़े। उ० सिअनि सुहावनि टाट पटोरे। (मा० १।३।६)

पटोसिर-(?)-पाँवड़ा। उ० धन-धावन, बगपाँति पटोसिर, बैरख-तड़ित सोहाई। (कृ० ३२)

पट्टन-(स०)-नगर, शहर।

पठति-(स० पठ)-पढ़ते हैं। उ० पठति ये स्तव इद। (मा० ३।४। छ० १२)

पठइ-(स० प्रस्थान, प्रा० पट्ठान)-भेजकर, पठाकर। उ० जहँ-तहँ धावन पठइ पुनि मंगल द्रव्य मगाइ। (मा० ७।१० ख) पठइअ-पठा दिया जाय, भेजा जाय, भेजिये। उ० भग भग करि पठइअ बदर। (मा० ५।२७।५) पठइन्हि-भेजा। उ० पठइन्हि, आइ कही तेहिं बाता। (मा० ५।२।१) पठइब-भेजूँगा, रवाना करूँगा। उ० अवसि दूत मैं पठइब प्राता। (मा० ५।३३।४) पठइहि-भेजेंगे, रवाना करेंगे। उ० तासु खोज पठइहि प्रभु दूता। (मा० ४।२८।४) पठई-भेजी, रवाना की। उ० जोग कथा पठई ब्रज को। (क० ७।१३४) पठउ-भेजो, भेजिए। उ० प्रथम बसीठ पठउ सुनु नीती। (मा० ६। ६।५) पठउब-भेजूँगा। पठए-भेजे। उ० पठए बोलि गुनी तिन्ह नाना। (मा० १।२८७।४) पठएउ-१ भेजिएगा, २ भेजा है। पठएसि-भेजा। उ० पठएसि मेघनाद बल धाना। (मा० ५।१३।१) पठएहु-भिजवाइए, भेजिए। उ० गिरिहि प्रेरि पठएहु भवन दूरि करेहु सदेहु। (मा० १। ७७) पठयउ-भेजा, भेजा है। उ० गुर बोलाइ पठयउ दोउ भाई। (मा० २।१५७।२) पठये-दे० 'पठए'। पठवत-भेजता है। उ० तौ बसीठ पठवत केहि काजा। (मा० ६।२८।४) पठवन-भेजने, पहुँचाने। उ० पठवन चले भगत कृत चेता। (मा० ७।१३।१) पठवहु-भेजो, भेज दो। उ० पठवहु कत जो चहहु भलाई। (मा० ५।३६।४) पठवा-भेजा। उ० चलहु तात मुनि कहेउ तब पठवा जनक बोलाइ। (मा० १।२३६) पठवौं-भेजूँ, भेज दूँ। उ० पठवौं तोहि जहँ कृपानिकेता। (मा० ६।६०।२) पठाइअ-पठाया जाय, भेजा जाय। उ० दूत पठाइअ बालिकुमारा। (मा० ६।१७।२) पठाइहि-भेजेगा। उ० जहँ-तहँ मरकट कोटि पठाइहि। (मा० ४।४।२) पठाई-भेजा, भेजा था। उ० गिरिजा पूजन जननि पठाई। (मा० १।२२८।१) पठाए-भेजा। उ० बीरभद्र करि कोपु पठाए। (मा० १। ६५।१) पठाएउ-भेजा। उ० दूत पठाएउ तव हित हेतू। (मा० ६।३७।१) पठाओ-दे० 'पठावौं'। पठाऊ-भेजा। उ० लिखि लगन तिलक समाज सजि कुल गुरहि अवध पठायऊ। (जा० १२६) पठायो-भेजा। उ० ज्ञान परसु दै मधुप पठायो। (कृ०२६) पठावा-भेजा। उ० पद अनुचित नहिं मेवत पठावा। (मा० १।६२।१) पठावौं-भेजता हूँ, पठाता हूँ। उ०आपु सरिस कपि अनुज पठावौं। (मा० ६।१०५।२) पठै-१ पठए, भेजे, २, भेजकर। उ० १ सदुम-दुम धारि रावत सहित सर दूषनहि पठै जम धाम, तैं तउ न चीन्हो। (क० ६।१८) २ गौतम नारि उधारि पठै पति धामहिं। (जा० ७४)

पठावनी-भाड़ती, भेजने का पारिश्रमिक। उ० ल्यैहौं न पठावनी कै हैं हौं न हँसाइ कै। (क० २।६)

पडिक-(स० पदक)-चाँदी, रजत। उ० भीतर सुक्ति विभव पडिक मनि गति प्रगट लखात। (स० ३७४)

पढ़-(स० पठ्)-पढ़े। उ० सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी। (मा० १।२०४।३) पढ़त-पढ़ते हुए। उ० चले पढ़त गावत गुन गाथा। (मा० १।३३१।४) पढ़न-पढ़ने से-लिए, पढ़ने। उ० गुरगृह गए पढ़न रघुराई। (मा० १।२०४।२) पढ़हिं-पढ़ते हैं, पढ़ रहे हैं। उ० पढ़हिं भाट गुन गावहिं गायक। (मा० २।३७।३) पढ़ि-पढ़ कर, अध्ययन कर, सीख कर। उ० गाढ़ि ग्रनथि पढ़ि कठिन कुमन्त्र। (मा० २।२१।२) पढ़िबो-पढ़ना, अध्ययन करना। उ० पढ़िबो पर्यो न छठी छमत, ऋगु जजुर अथर्वन साम को। (वि० १५५) पढ़िय-१ बाँचिए, पढ़िए, २ पढ़ता हूँ। पढ़े-१ पढ़ा, २ पढ़ा है, पढ़ दिया है। उ० २ तुलसी प्रभु किधौं प्रभु को प्रेम पढ़े प्रगट कपट बिनु टोने। (गी० २।२३)

पढ़ाइ-पढ़ाकर। उ० हारेउ पिता पढ़ाइ पढ़ाई। (मा० ७। ११०।४) पढ़ाई-१ दे० 'पढ़ाइ', २ पढ़ाया, ३ पढ़ाई हुई। उ० ३ कोटि कुटिल मनि गुरू पढ़ाई। (मा० २। २७।३) पढ़ाये-१ पढ़ाया, २ सिखा पढ़ाकर अपने पक्ष में कर लिया। उ० २ मधुरा बड़ो नगर नागर जन जिन्ह जातहि जदुनाथ पढ़ाए। (कृ० ४०) पढ़ाव-पढ़ाते थे। उ० विप्र पढ़ाव पुत्र की नाइ। (मा० ७।१०५।३) पढ़ावहि-पढ़ाते हैं। उ० सुक सारिका पढ़ावहिं बालक। (मा० ७।२८।४) पढ़ावा-पढ़ाया, पढ़ाने लगे। उ० प्रौढ़ भएँ मोहि पिता पढ़ावा। (मा० ७।११०।३) पढ़ैया-पढ़नेवाला, उच्चारण करनेवाला। उ० ज्ञान को गढ़ैया, बिनु गिरा को पढ़ैया। (क० ७।१३५)

पणव-(स०)-छोटा नगारा, छोटा ढोल।

पतंग-(स०)-सूर्य २ पतिंगा, शलभ, ३ टिड्डी, ४ गेंद, ५ पारा, ६ पक्षी, चिड़िया, ७ जटायु, ८ एक लकड़ी जिससे लाल रङ्ग निकलता है। ६ नाव, १० गुड्डी, कन कौआ। उ० १ पवन धगु पावक पतग ससि दुरि गए थके बिमान। (गी० ५।२२) २ जरहिं पतग मोह बस भार बहहिं खर वृद। (मा०६।२६) ४ बहुविधि क्रीड़हि पानि पतगा। (मा० १।१२६।३) ७ पाहन पसू पतग कोल भील निसिचर। (वि० २४७)

पतंगसुत-(स०)-सूर्य का पुत्र, १ अश्विनीकुमार, २ कर्ण, राधेय, ३ यम, ४ सुग्रीव। उ० २ भग्न पतंगसुत आदि कहँ मृत्युजय-अरि ब्रत। (स० २२६)

पतगा-दे० 'पतग'। उ० १ देखेउ रघुकुल कमल पतगा। (मा० १।६८।७)

पतति-(स० पत्)-गिरते हैं। उ० पतति नो भवार्णवे। (मा० ३।४। छ० ७)

पति-(स० पति)-१ प्रतिष्ठा, बड़ाई, इज्जत, २ नाथ, स्वामी, ३ लज्जा।

पत्नी-(स० पत्नी)-स्त्री, औरत।

पताक-(स० पताका)-झंडा, निशान रूप में दंड में चढ़ पाया जानेवाला कपड़ा। उ० बिपुल बरन पताक ध्वज नाना। (मा० ६।७।१)

पताका-(स०)-१ ध्वजा, झंडा, फरहरा, २ चिह्न, निशान,

२ झंडे का डंडा, ध्वज। उ० १ रघुपति कीरति विमल पताका। (मा० १।१७।३)
पतार-दे० 'पाताल'। उ० ईस सीस बससि त्रिपथ लससि नभ-पताल धरनि। (वि० २०)
पताला-दे० 'पाताल'। उ० बलिहि जितन एक गयउ पताला। (मा० ६।२४।७)
पति-पति को। उ० नतोऽहमुर्विजा पति। (मा० ३।५। छं० ११) पति-(स०)-१ मालिक, स्वामी, २ प्रतिष्ठा, इज्जत, ३ प्रभु, ४ भर्ता, ५ रक्षक, ६ लाज। उ० २ नीच यहि बीच पति पाइ भरु आइगो। (ह० ४१) ४ शुद्ध मति युपति पति-प्रेम पागी। (वि० ३६) ६ नाम प्रताप बड़े कुसमाज बजाइ रही पति पांडु वधू की। (क० ७।१) पतिधाम-(स०)-१ स्त्री की ससुराल, २ पति का लोक। पतिधामहिं-पति के लोक को। उ० गौतम नारि उधारि पठै पतिधामहिं। (जा० ४४) पतिन्ह-पतियों को। उ० पतिन्ह सौंपि बिनती अति कीन्ही। (मा० १।३३६।१) पतिहिं-पति को। उ० तीरथ पतिहिं आव सब कोइ। (मा० १।४४।२) पतिहि-पति के। उ० केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि नेवारइ। (मा० २।२५। छं० १) पते-हे स्वामिन्। उ० नान्या स्पृहा रघुपते। (मा० ५।१। श्लो० २)
पतिआउ-(स० प्रत्यय, प्रा० पत्तय)-विश्वास करो। उ० पुनि-पुनि भुजा उठाइ कहत हौं सकल सभा पतिआउ। (गी० ५।४५) पतिआतो-विश्वास करता। उ० स्वारथ परमारथ-पथी तोहिं सब पतिआतो। (वि० १५१) पतिआनि-विश्वास कर लिया। उ० सुर माया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि। (मा० २।१६) पतिआयो-विश्वास किया, भरोसा किया। पतिआहु-विश्वास कर लो या कर लेना। उ० काजु सँवारेहु सजग सबु सहसा जनि पतिआहु। (मा० २।२२) पतिआहू-विश्वास करो। उ० कहउँ साँचु सब सुनि पतिआहू। (मा० २।१७३।१)
पतित-(स०)-१ गिरा, नीचे आया हुआ, च्युत, २ आचारच्युत, भ्रष्ट, ३ पापी, ४ जाति से निकाला हुआ, ५ नीच, बुरा, अपवित्र। उ० २ अधम आरत दीन पतित पातक-पीन। (वि० ४४) ३ तुलसिदास कहँ आस इहै बहु पतित उधारे। (वि० ११०) ४ तैं उदार, मैं कृपन पतित मैं तैं पुनीत स्रुति गावै। (वि० ११३) पतितन-पतितों, पापियों को। 'पतित' का बहुवचन। उ० हौं मन बचन कर्म पातक-रत तुम कृपालु पतितनि गतिदाई। (वि० २४२) पतितन्ह-दे० 'पतितन'।
पतितपवन-दे० 'पतितपावन'।
पतितपावन-(स०)-पतितों को पवित्र करनेवाला, भगवान्, ईश्वर। उ० पतितपावन सुनत नाम बिश्रामकृत। (वि० २०३)
पतिनिहि-(स०, पत्नी)-पत्नी को, स्त्री को। पतिनी-स्त्री, औरत। उ० जे परम सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनि पतिनी तरी। (मा० ७।१३। छं० ४)
पतिब्रत-(स० पतिव्रत)-पति में अनन्य प्रीति और भक्ति, पातिव्रत्य। उ० प्रिय चरिहहिं पतिब्रत असिधारा। (मा० १।६७।३)
पतिब्रता-(स० पतिव्रता)-पति में अनन्य अनुराग रखने वाली, ऐसी स्त्री जिसका उपास्य और प्रेम पात्र एकमात्र पति हो। उ० जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। (मा० ३।५।६)
पती-दे० 'पति'। मर्द, शौहर, भर्त्ता। उ० लियो हृदयँ लाइ कृपानिधान सुजान रायँ रमापती। (मा० ६। १२१। छं० १)
पतीजै-(स० प्रत्यय) १ विश्वास कीजिए, २ विश्वास दिलाइए। उ० १ बोल्यो बिहग बिहँसि रघुबर बलि कहौं सुभाय पतीजै। (गी० ३।१५)
पतोहू-(स० पुत्रवधू)-बेटे की स्त्री।
पतौवा-(स० पत्र)-पत्ता। उ० सियहि चढ़ाये हैं बेल के पतौवा हैं। (क० ७।१६२)
पत्नी-(स०)-जोरू, स्त्री, भार्या।
पत्यात-(स० प्रत्यय) पतियाते, विश्वास करते, विश्वास करते हैं। उ० तौलों तुम्हहिं पत्यात लोग सब, सुसुकि, सभीत साँचु सो रोए। (कृ० ११)
पत्र-(स०)-१ पत्ता, दल, २ कागज, ३ चिट्ठी, ४ पंख, ५ वह कागज जिस पर कर्ज या किसी मामले आदि की बात लिखी हो, दस्तावेज, ६ तीर, ७ पत्र। उ० १ हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल। (मा० १।२८७) ३ तेहि खल जहँ तहँ पत्र पठाये। (मा० १।१७५।२) ५ देबे को न कछू रिनियाँ हौं, धनिक तू पत्र लिखाउ। (वि० १००)
पत्रिका-(स०)-१ पत्र, चिट्ठी, २ कोई छोटा लेख आदि, जैसे जन्मपत्रिका। उ० १ पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची। (मा० १।२९०।३)
पत्री-(स०)-१ चिट्ठी, पत्र, २, तृण, ३ पक्षी, ४ कमल। उ० १ महि पत्री करि सिंधु मसि, तरु लेखनी बनाइ। (वै० ३५)
पथ-(स०)-१ मार्ग, रास्ता, राह, २ पथ मत, मजहब ३ विधान, व्यवहार। उ० १ परमारथ पथ परम सुजाना। (मा० १।४४।१) पथे-मार्ग पर, मार्ग में। उ० तापस बेष बनाइ, पथिक पथे सुहाइ। (क० २।१७)
पथि-१ पथिक, २ रास्ते में, पथ में। उ० १ धर्म-कल्प द्रुमाराम हरिधाम-पथि-संबल, मूलमिदमेव एक। (वि० ५६)
पथिक-(स०)-मुसाफिर, बटोही। उ० अखिल लोक निपुन छल-छिद्र निरखत सदा जीव मन-पथिक-मन-खेदकारी। (वि० ११)
पथी-(स० पथ)-पथिक, मुसाफिर। उ० स्वारथ-परमारथ पथी तोहिं सब पतिआतो। (वि० १५१)
पथु-दे० 'पथ'।
पथ्य-(स०)-१ वह हलका और जल्दी पचनेवाला भोजन जो रोगी के लिए लाभकर हो, २ उचित, ३ परहेज, ४ हित, ५ हितकर, हितकारी। उ० १ गुरु पथ्य गुर आयसु अहई। (मा० २।१७६।१)
पद-दे० 'पद'। उ० २ भयाद्रेस ते पद। (मा० ३।२।१०)
पद-(स०)-१ पैर, गोड़, २ मोक्ष, मुक्ति, ३ व्यवसाय, ४ उपाधि, पदवी, ५ ओहदा, जगह, दर्जा, ६ शब्द,

रखा ७ लक्षण, निशान, ८ पदार्थ, चीज, ९ कदम, १० श्लोक या छंद का चतुर्थांश, एक चरण, ११ पद्य, गीत, ईश्वर भजन संबंधी भजन, १२ शब्द, वाक्य, १३ प्रतिष्ठा। उ० १ कल कदलि जंघ पद कमल लाल। (वि० १४) ९ भुवन पर्यंत पद तीनि करण। (वि०५२) ११ उघटहिं छंद प्रबंध गीत पद राग तान बंधान। (गी० १।२) पदतल-(सं०)-पैर का तलवा। उ० पदुमराग रुचि मृदु पदतल, धुज अंकुस कुलिस कमल यहि सूरति। (गी० ७।१७) पदात्-पद से, स्थान से। उ० ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी। (मा० ७।१३। छं० ३)

पदक-दे० 'पदिक'।

पदचर-(सं०)-पैदल चलनेवाला, प्यादा। उ० जुग पदचर असवार प्रति जे असि कला प्रवीन। (मा०१।२१८)

पदचार-पैदल चलकर। उ० दसचारि बरिस बिहार बन पदचार करिबे पुनीत सैल सर सरि मही है। (गी० २।४१)

पदचारी-(सं०)-पैदल चलनेवाला, प्यादा। उ० ते अब फिरत बिपिन पदचारी। (मा० २।२०१।२)

पदज-(सं०)-१ पैर की अँगुली, २ शूद्र। उ० १ मृदुल चरन सुभ चिह्न पदज नख अति अद्भुत उपमाई। (वि० ६२)

पदत्राण-(सं०)-जूता, खड़ाऊ।

पदत्रान-दे० 'पदत्राण'।

पदवी-(सं० पदवी)-१ उपाधि, खिताब, २ तरीका, परिपाटी, ३ ओहदा, दरजा,४ पथ, रास्ता। उ० १ रंक धनद पदवी जनु पाई। (मा० २।५२।३)

पदाति-(सं०)-पैदल सेना। उ० बहु गज रथ पदाति असवारा। (मा० ६।८६।२)

पदादिका-(सं० पदातिक)-पैदल सेना। उ० प्रभु-कर सेन पदादिका बालक राज समाज। (दो० ५२४)

पदारथ-(सं० पदार्थ)-वस्तु, चीज। उ० प्रमुदित परम दरिद्र जनु पाइ पदारथ चारि। (मा० १।३५४)

पदार्थ-(सं०)-१ वस्तु, द्रव्य चीज २ वैशेषिक दर्शन के अनुसार द्रव्य, गुण कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय ये छः पदार्थ होते हैं। ३ वह चीज जिसका कोई नाम हो और जिसका ज्ञान प्राप्त किया जा सके।

पदिक (१)-(सं०)-पैदल सेना।

पदिक (२)-(सं० पदक)-१ मणि, २ माला के बीच में जड़ी चौकी, ३ गुगनू नाम का गले में पहनने का एक आभूषण। उ० १ रुचिर उर उपबीत राजत, पदिक गजमनि हार। (गी० ७।८)

पदिक (३)-(सं० पद)-१ भृगुलता, २ चरण।

पदु-दे० 'पद'।

पदुम-(सं० पद्म)-१ कमल २ एक संख्या जो अंकों में १००००००००००००००० लिखी जाती है। ३ एक निधि का नाम, ४ एक पुराण। उ० १ बंदउँ गुरुपद पदुम परागा। (मा० १।१।१)

पदुमराग-दे० 'पद्मराग'। उ० हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल। (मा० १।२८७)

पदुमराज-दे० 'पद्मराग'।

पदुमु-दे० 'पदुम'।

पद्म-(सं०)-१ कमल, कंज, २ एक निधि का नाम, ३ सौ नील की संख्या, ४ एक पुराण। उ० १ राम पद पद्म-मकरंद-मधुकर पाहि। दास तुलसी-सरन-सूलपानी। (वि० २६)

पद्मनाभ-(सं०)-विष्णु, नारायण, जिसकी नाभि में कमल हो।

पद्मराग-(सं०)-माणिक या लाल नाम का रत्न।

पद्मा-(सं०)-लक्ष्मी। उ० युगल पद पद्म सुख सद्म पद्मा लय। (वि० ५१)

पद्मालय-(सं०)-ब्रह्मा।

पद्मासन-पद्मासन लगाए हुए। दे० 'पद्मासन'। उ० पुन्य बन सैल सरि बदरिकाश्रम सदाऽसीन पद्मासन एक रूप। (वि० ६०) पद्मासन-(सं०)-१ योग का एक आसन, २ ब्रह्मा, ३ शिव।

पन (१)-(सं० प्रण)-प्रतिज्ञा, संकल्प। उ० सुमिरे संकट हारी सकल सुमंगलकारी; पालक कृपालु अपने पन के। (वि० ३७)

पन (२)-(सं० पर्वन्)-अवस्था, आयु के चार भागों में एक।

पन (३)-(सं० पण)-मोल।

पनच-(सं० पतंचिका)-प्रत्यंचा धनुष की डोरी। उ० नदी पनच सर सम दम दाना। (मा० २।१३३।२)

पनव-(सं० पणव)-१ छोटा नगारा, २ छोटा ढोल, ३ डंका। उ० १ हरषहिं सुनि सुनि पनव निसाना। (मा० १।२६६।१)

पनवार-दे० 'पनवारा'।

पनवारा-(सं० पर्ण, प्रा० पण्ण)-पत्तल, पत्तों का बना बर्तन, दोना। पनवारे-पत्तलों का समूह, दोनें। उ० सादर लगे परन पनवारे। (मा० १।३२८।४)

पनवारो-दे० 'पनवारा'। उ० अब केहि लाज कृपानिधान परसत पनवारो टारो। (वि० ९४)

पनस-(सं०)-कटहल का वृक्ष। उ० संसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा। (मा० ६।९०।छं०१)

पनहि-दे० 'पनही'। उ० पनहि लिहे कर सोभित सुंदर आँगन हो। (रा० ७)

पनहियाँ-दे० 'पनहीं'। उ० बार बार उर नैननि लावति प्रभुजू की ललित पनहियाँ। (गी० २।५२)

पनहीं-जूते, पनही का बहुवचन। उ० राम लखन सिय बिनु पग पनहीं। (मा० २।२११।४) पनहीं-(सं० उपानह)-जूता। पनहीं-पनहीं भी। उ० पाइँ पनही न, मृदु पंकज से पग हैं। (गी० २।२७)

पनारे-(सं० प्रणाली)-पनाला, नाला। उ० जनु कज्जल गिरि गेरु पनारे। (मा० ६।६६।४)

पनिघट-(सं० पानीय+घट्ट)-पानी भरने का घाट। उ० पनिघट परम मनोहर नाना। (मा० ७।२९।१)

पनी-(सं० प्रण)-प्रण करनेवाला। उ० बाँह-पगार उदार सिरोमनि नत पालक पावन पनी। (गी० ५।३६)

पनु (१)-दे० 'पन (१)'। उ० सुमिरि पिता पनु मनु अति छोभा। (मा० १।२३४।२)

२ झंडे का डंडा, ध्वज। उ० १ रघुपति कीरति विमल पताका। (मा० ११२७।२)
पतान-दे० 'पाताल'। उ० इन सीस बसति त्रिपथ लसति नभ-पताल धरनि। (वि० २०)
पताला-दे० 'पाताल'। उ० चलिहि जितन एक गयउ पताला। (मा० ६।२४।७)
पति-पति को। उ० नतोऽहमुर्विजा पति। (मा० ३।४। छं० ११) पति-(सं०)-१ मालिक, स्वामी, २ प्रतिष्ठा, इज्जत, ३ प्रभु, ४ भर्ता, ५ रक्षक, ६ लाज। उ० २ नीच यहि बीच पति पाइ भरु आइगो। (ह० ४१) ४ शुद्ध मति सुपति पति प्रेम पागी। (वि० ३६) ६ नाम प्रताप बड़े कुसमाज बजाइ रही पति पांडु बधू की। (क० ७।६) पतिधाम-(सं०)-१ स्त्री की ससुराल, २ पति का लोक। पतिधामहि-पति के लोक का। उ० गौतम नारि उधारि पठै पतिधामहि। (जा० ४४) पतिन्ह-पतियों को। उ० पतिन्ह सौंपि बिनती अति कीन्ही। (मा० ११३३६।१) पतिहिं-पति को। उ० तीरथ पतिहि आव सब कोइ। (मा० ११४४।२) पतिहि-पति के। उ० केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि नेवारइ। (मा० २।२५। छं० १) पते-हे स्वामिन्। उ० नान्या स्पृहा रघुपते। (मा० ५।१। श्लो० २)
पतिआउ-(सं० प्रत्यय, प्रा० पत्तय)-विश्वास करो। उ० पुनि-पुनि भुजा उठाइ कहत हौं सकल सभा पतिआउ। (गी० ५।४५) पतिआतो-विश्वास करता। उ० स्वारथ परमारथ पथी तोहि सब पतिआतो। (वि० १५१) पति आनि-विश्वास कर लिया। उ० सुर माया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि। (मा० २।१६) पतिआयो-विश्वास किया, भरोसा किया। पतिआहु-विश्वास कर लो या कर लेना। उ० काजु सँवारेहु सजग सबु सहसा जनि पतिआहु। (मा० २।२२) पतिआहू-विश्वास करो। उ० कहउँ साँचु सब सुनि पतिआहू। (मा० २।१७४।१)
पतित-(सं०)-१ गिरा, नीचे आया हुआ, च्युत, २ धर्माचारच्युत, भ्रष्ट, ३ पापी, ४ जाति से निकाला हुआ, ५ नीच, बुरा, अपवित्र। उ० २ अधम आरत दीन पतित पातक-पीन। (वि० ४७) ३ तुलसिदास कहँ आस इहै बहु पतित उधारे। (वि० ११०) ४ तैं उदार, मैं कृपन पतित मैं तैं पुनीत स्रुति गावै। (वि० ११३) पतितन-पतितों, पापियों को। 'पतित' का बहुवचन। उ० हौं मन बचन कर्म पातक-रत तुम कृपालु पतितनि गतिदाई। (वि० २४२) पतितन्ह-दे० 'पतितन'।
पतितभवन-दे० 'पतितपावन'।
पतितपावन-(सं०)-पतितों को पवित्र करनेवाला, भगवान्, ईश्वर। उ० पतितपावन सुनत नाम विश्रामकृत। (वि० २०६)
पतिनिहि-(सं० पत्नी)-पत्नी को, स्त्री को। पतिनी-स्त्री, औरत। उ० जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनि पतिनी तरी। (मा० ७।१३।छं० ४)
पतिव्रत-(सं० पतिव्रत)-पति में अनन्य प्रीति और भक्ति, पातिव्रत्य। उ० प्रिय चरिहहिं पतिव्रत असिधारा। (मा० ११६७।३)
पतिव्रता-(सं० पतिव्रता)-पति में अनन्य अनुराग रखने वाली ऐसी स्त्री जिसका उपास्य और प्रेम-पात्र एकमात्र पति हो। उ० जग पतिव्रता चारि विधि अहहीं। (मा० ३।५।६)
पती-दे० 'पति'। मर्द, शौहर, भर्ता। उ० लियो हृदयँ लाइ कृपानिधान सुजान रायँ रमापती। (मा० ६। १२१। छं० १)
पतीजै-(सं० प्रत्यय) १ विश्वास कीजिए, २ विश्वास दिलाइए। उ० १ बोल्यो बिहग बिहँसि रघुबर बलि कहौं सुभाय पतीजै। (गी० ३।१५)
पतोहू-(सं० पुत्रवधू)-बेटे की स्त्री।
पतौवा-(सं० पत्र)- पत्ता। उ० सिवहि चढ़ाये ह्वै हैं बेल के पतौवा द्वै। (क० ७।१६३)
पत्नी-(सं०)-जोरू, स्त्री, भार्या।
पत्यात-(सं० प्रत्यय) पतियाते, विश्वास करते, विश्वास करते हैं। उ० तौलों तुम्हहिं पत्यात लोग सब, सुखुकि, सभीत साँचु सो रोप। (कृ० ११)
पत्र-(सं०)-१ पत्ता, दल, २ कागज, ३ चिट्ठी, ४ पन्ना, ५ वह कागज जिस पर कर्ज या किसी मामले आदि की बात लिखी हो, दस्तावेज, ६ तीर, ७ पंख। उ० १ हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल। (मा० ११२८७) ३ तेहि सन जहँ तहँ पत्र पठाये। (मा० ११७५।२) ५ देवे को न कछू रिनियाँ हौं, धनिक तू पत्र लिखाउ। (वि० १००)
पत्रिका-(सं०)-१ पत्र, चिट्ठी, २ कोई छोटा लेख आदि, जैसे जन्मपत्रिका। उ० १ पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची। (मा० ११२९०।३)
पत्री-(सं०)-१ चिट्ठी, पत्र, २, पुष्प, ३ पट्टी ४ कमल। उ० १ महि पत्री करि सिंधु मसि, तरु लेखनी बनाइ। (वै० ३५)
पथ-(सं०)-१ मार्ग, रास्ता, राह, २ पंथ, मत, मजहब, ३ विधान, व्यवहार। उ० १ परमारथ पथ परम सुजाना। (मा० ११४४।१) पथै-मार्ग पर, मार्ग में। उ० तापस बेषै बनाइ, पथिक पथै सुहाइ। (क० २।१७)
पथि-१ पथिक, २ रास्ते में, पथ में। उ० १ धर्म-कल्प द्रुमाराम हरिधाम-पथि-संबल, मूलमिदमेव एक। (वि० ४६)
पथिक-(सं०)-मुसाफिर, बटोही। उ० अखिल खल निपुन छल छिद्र निरखत सदा जीव जन-पथिक-मन-खेदकारी। (वि० ५६)
पथी-(सं० पथ)-पथिक, मुसाफिर। उ० स्वारथ-परमारथ पथी तोहि सब पतिआतो। (वि० १५१)
पथु-दे० 'पथ'।
पथ्य-(सं०)-१ वह हलका और जल्दी पचनेवाला भोजन जो रोगी के लिए लाभकर हो, २ उचित, ३ पाथेय, ४ हित, ५ हितकर, हितकारी। उ० १ पूछ पथ्य गुर आयसु अहई। (मा० २।१७६।१)
पद-दे० 'पद'। उ० २ मयादरेख से पद। (मा० ३।४।१२)
पद-(सं०)-१ पैर, पाद, २ मोक्ष, मुक्ति, ३ व्यवसाय, ४ उपाधि, पदवी, ५ ओहदा, जगह, दर्जा, ६ त्राण,

रखा ७ लक्ष्य, निशान, ८ पदार्थ, चीज़, ६ कदम, १० श्लोक या छंद का चतुर्थांश, एक चरण, ११ पद्य, गीत, ईश्वर भजन संबंधी भजन, १२ शब्द, वाक्य, १३ प्रतिष्ठा। उ० १ कल कदलि जंघ पद कमल लाल। (वि० १४) ६ भुवन पर्यंत पद तीनि करण। (वि०५२) ११ उघटहिं छंद प्रबंध गीत पद राग तान बंधान। (गी० १।२) पदतल-(स०)-पैर का तलवा। उ० पदुमराग रुचि मृदु पदतल, धुज अंकुस कुलिस कमल यहि सूरति। (गी० ७।१७) पदात्-पद से, स्थान से। उ० ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी। (मा० ७।१३। छं० ३)

पदक-दे० 'पदिक'।

पदचर-(स०)-पैदल चलनेवाला, प्यादा। उ० जुग पदचर असवार प्रति जे असि कला प्रबीन। (मा०१।२१८)

पदचार-पैदल चलकर। उ० दसचारि बरिस बिहार बन पदचार करिबे पुनीत सैल सर सरि मही है। (गी० २।४१)

पदचारी-(सं०)-पैदल चलनेवाला, प्यादा। उ० ते अब फिरत बिपिन पदचारी। (मा० २।२०१।२)

पदज-(स०)-१ पैर की अँगुली, २ शूद्र। उ० १ मृदुल चरन सुभ चिह्न पदज नख अति अद्भुत उपमाई। (वि० ६२)

पदत्राण-(स०)-जूता, खड़ाऊ।

पदत्रान-दे० 'पदत्राण'।

पदवी-(स० पद्वी)-१ उपाधि, ख़िताब, २ तरीका, परिपाटी, ३ ओहदा, दरजा, ४ पथ, रास्ता। उ० १ रंक धनद पदवी जनु पाइ। (मा० २।५२।३)

पदाति-(स०)-पैदल सेना। उ० बहु गज रथ पदाति असवारा। (मा० ६।८६।२)

पदादिका-(स० पदातिक)-पैदल सेना। उ० प्रभु-कर सेन पदादिका बालक राज समाज। (दो० ५२२)

पदारथ-(स० पदार्थ)-वस्तु, चीज। उ० प्रमुदित परम दरिद्र जनु पाइ पदारथ चारि। (मा० १।३४५)

पदार्थ-(स०)-१ वस्तु, द्रव्य, चीज २ वैशेषिक दर्शन के अनुसार द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय ये छः पदार्थ होते हैं। ३ वह चीज जिसका कोई नाम हो और जिसका ज्ञान प्राप्त किया जा सके।

पदिक (१)-(स०)-पैदल सेना।

पदिक (२)-(सं० पदक)-१ मणि, २ माला के बीच में जड़ी चौकी, ३ जुगनू नाम का गले में पहनने का एक आभूषण। उ० १ रुचिर उर उपबीत राजत, पदिक गजमनि हार। (गी० ७।८)

पदिक (३)-(स० पद)-१ भृगुलता, २ चरण।

पदु-दे० 'पद'।

पदुम-(स० पद्म)-१ कमल २ एक संख्या जो अंकों में १००००००००००००००० लिखी जाती है। ३ एक निधि का नाम, ४ एक पुराण। उ० १ बंदउँ गुरुपद पदुम परागा। (मा० १।१।१)

पदुमराग-दे० 'पद्मराग'। उ० हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल। (मा० १।२८७)

पदुमराज-दे० 'पद्मराग'।

पदुमु-दे० 'पदुम'।

पद्म-(स०)-१ कमल, कंज, २ एक निधि का नाम, ३ सौ नील की संख्या, ४ एक पुराण। उ० १ राम पद पद्म-मकरंद-मधुकर पाहि दास तुलसी-सरन-सूलपानी। (वि० २६)

पद्मनाभ-(स०)-विष्णु, नारायण, जिसकी नाभि में कमल हो।

पद्मराग-(स०)-माणिक या लाल नाम का रत्न।

पद्मा-(स०)-लक्ष्मी। उ० जुगल पद पद्म सुख सद्म पद्मा लय। (वि० ५१)

पद्मालय-(स०)-ब्रह्मा।

पद्मासन-पद्मासन लगाए हुए। दे० 'पद्मासन'। उ० पुन्य बन सैल सरि बदरिकाश्रम सदाऽसीन पद्मासन एक रूप। (वि० ६०) पद्मासन-(स०)-१ योग का एक आसन, २ ब्रह्मा, ३ शिव।

पन (१)-(स० प्रण)-प्रतिज्ञा, संकल्प। उ० सुमिरे सकट हारी सकल सुमंगलकारी, पालक कृपालु अपने पन के। (वि० ३०)

पन (२)-(स० पर्वन्)-अवस्था, आयु के चार भागों में एक।

पन (३)-(स० पण)-मोल।

पनच-(स० पतंचिका)-प्रत्यंचा धनुष की डोरी। उ० नदी पनच सर सम दम दाना। (मा० २।१३३।२)

पनव-(स० पणव)-१ छोटा नगारा, २ छोटा ढोल, ३ डंका। उ० १ हरषहिं सुनि सुनि पनव निसाना। (मा० १।२६६।१)

पनवार-दे० 'पनवारा'।

पनवारा-(स० पर्ण, प्रा० पण्ण)-पत्तल, पत्तों का बना बर्तन, दोना। पनवारे-पत्तलों का समूह, दोने। उ० सादर लगे परन पनवारे। (मा० १।३२८।४)

पनवारो-दे० 'पनवारा'। उ० अब केहि लाज कृपानिधान परसत पनवारो टारो। (वि० ६४)

पनस-(स०)-कटहल का वृक्ष। उ० ससार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा। (मा० ६।६०। छं०१)

पनहि-दे० 'पनही'। उ० पनहि लिहे कर सोभित सुंदर आँगन हो। (रा० ७)

पनहियाँ-दे० 'पनहीं'। उ० बार बार उर नैननि लावति लावति प्रभुजू की ललित पनहियाँ। (गी० २।५२)

पनहीं-जूते, पनही का बहुवचन। उ० राम लखन सिय बिनु पग पनहीं। (मा० २।२११।४) पनही-(स० उपानह)-जूता। पनहीं-पनहीं भी। उ० पाइँ पनही न, मृदु पंकज से पग हैं। (गी० २।२७)

पनारे-(स० प्रणाली)-पनाला, नाला। उ० जनु कज्जल गिरि गेरु पनारे। (मा० ६।६६।४)

पनिघट-(स० पानीय + घट)-पानी भरने का घाट। उ० पनिघट परम मनोहर नाना। (मा० ७।२६।१)

पनी-(स० प्रण)-प्रण करनेवाला। उ० बाँह-पगार उदार सिरोमनि नत पालक पावन पनी। (गी० ५।३६)

पनु (१)-दे० 'पन (१)'। उ० सुमिरि पिता पनु मनु अति छामा। (मा० १।२५४।२)

पनु (२)–दे० 'पन (२)'। उ० मनहुँ जठरपनु अस उप वेमा। (मा० २।२।४)
पन्नग–(सं०)–सर्प, साँप। उ० रामकथा कलि पन्नग भरनी। (मा० १।३१।३)
पन्नगारि–(सं०)–गरुड़ पक्षी, जो सर्पों का शत्रु होता है। उ० पन्नगारि असि नीति श्रुति सम्मत सज्जन कहहिं। (मा० ७।६९ क)
पन्नगारी–दे० 'पन्नगारि'। उ० त्रिपुर-मद भंगकर, मत्तगज चर्म धर, अंधकोरग ग्रसन पन्नगारी। (वि० ४६)
पन्हाइ–(सं० पय स्रवन, प्रा० पहण्वन)–थनों में दूध उतार कर, पसुराकर। उ० धावत धेनु पन्हाइ लवाइ ज्यों बालक बोलनि कान किये तें। (क० ७।१२६)
पपीहरा–दे० 'पपीहा'। उ० व्याधा बधे पपीहरा परेउ गंग जल जाइ। (स० ६८)
पपीहा–(हिं० पपी (प्रिय)+हा या सं० पपि (पीना)+सं० हार (वाला)=पीनेवाला) एक पक्षी जो केवल स्वाती नक्षत्र का पानी पीने तथा पी कहाँ पी कहाँ कहने के लिए प्रसिद्ध है। इसकी ध्वनि बड़ी सुरीली होती है। उ० देहि मा ! मोहि प्रण प्रेम, यह नेम निज राम घन स्याम, तुलसी पपीहा। (वि० ५९)
पबारें–(सं० प्रवारण)–फेंकने से। उ० रज होइ जाइ पषान पबारें। (मा० १।२०१।२) पबारे–(सं० प्रवारण)–फेंक दिए। उ० कछु अंगद प्रभु पास पबारे। (मा० ६।३२।३) पबारै–फेंके, फेंकता है। उ० कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पबारै। (मा० ६।६१।२)
पबि–दे० 'पवि'। उ० २ गरजि तरजि पाषान बरषि पबि प्रीति परखि जिय जानै। (वि० ६५)
पबिपात–वज्रपात, बिजली का गिरना। उ० घहरात जिमि पबिपात गर्जत जनु प्रलय के बादले। (मा० ६।४३। छं०१०)
पबै–(सं० प्रापण, प्रा० पावण)–१ प्राप्त हो, मिले, २ प्राप्त हुई मिली। उ० १ बिचारि फिरी उपमा न पबै। (क० १।७) २ मति भारति पंगु भई जो निहारि, बिचारि बिचारि फिरी उपमान पबै। (क० १।७)
पब्बइ–(सं० पर्वत)–पहाड़, पर्वत। उ० कूदिए कृपाल तुलसी सु प्रेम पब्बइ तें। (ह० २३)
पब्बै–दे० 'पब्बइ'। उ० खिगति उर्वि अति गुर्वि सर्व पब्बै समुद्र सर। (क० १।११)
पय–(सं०)–१ दूध, २ जल, ३ पयस्विनी, नदी, ४ पानी। उ० १ संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार। (मा० १।६) २ दे० 'पयनिधि'।
पयज–(सं० प्रतिज्ञा, प्रा० पतिज्ञा, अप० पइज्जो, पुरानी हिं० पैज) प्रण, प्रतिज्ञा, टेक, हठ। उ० परखत प्रीति प्रतीति पयज पनु रहे काज ठटु ठानिहैं। (गी० १।७८)
पयद–(सं०)–दूध या जल देने वाला, १ बादल, २ स्तन। उ० १ पोषत पयद समान सब बिष पियूष के रूख। (दो० ३७७) २ स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए। (मा० २।५२।२)
पयनिधि–(सं०)–१ समुद्र, २ क्षीर सागर, दूध का समुद्र। उ० २ कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई। (मा० १।१८४।१)
पयमुख–दूध पीनेवाला, दुधमुहाँ, छोटा। उ० कालकूट मुख पयमुख नाहीं। (मा० १। २७७।४)
पयस–(सं० पयस्)–दूध। उ० बचन गाय सब के बिबिध कहहु पयस के देइ। (स० २६७)
पयसरित–मदाकिनी नदी। उ० पावनि पयसरित सकल मल निकंदिनी। (गी० २।४३)
पयस्विनी–(सं०)–मंदाकिनी, चित्रकूट की एक नदी।
पयादें–(फ़ा० प्यादा)–पैदल, बिना किसी सवारी के। उ० तेहि पाछें दोउ बंधु पयादें। (मा० २।२२१।३) पयादेहिं–पैदल ही। उ० चलत पयादेहिं बिनु पद त्राना। (मा० २।६२।३) पयादेहि–पैदल ही। उ० पाँयन तौ पनही न, पयादहि क्यों चलिहैं ? सकुचात हियो है। (क० २।२०)
पयान–(सं० प्रयाण)–१ गमन, जाना, यात्रा, २ धावा, आक्रमण या आक्रमण के लिए गमन, ३ कूच करने या प्रयाण करने का समय। उ० १ प्रभु पयान जाना बैदेहीं। (मा० ५।३५।३) ३ राम पयान निसान नभ बाजहिं गाजहिं बीर। (प्र० ५।५।५)
पयाना–दे० 'पयान'। उ० १ एहि बिधि कीन्ह बरात पयाना। (मा० १।३०४।२)
पयानो–दे० 'पयान'। उ० १ जब रघुबीर पयानो कीन्हौं। (गी० २।२२)
पयोद–(सं०)–१ बादल, २ स्तन। उ० १ सान्द्रानन्द पयोद सौभगतनु पीताम्बर सुन्दर। (मा० ३।१। श्लो० २)
पयोदनाद–(सं०)–मेघनाद। उ० कुंभकर्न-रावन-पयोदनाद ईंधन को तुलसी प्रताप जाको प्रबल अनल भो। (ह० ७)
पयोधर–(सं०)–१ स्तन, २ बादल। उ० १ दैबहि लागि कहौ तुलसी प्रभु अजहुँ न तजत पयोधर पीयो। (कृ० ६)
पयोधि–(सं०)–१ समुद्र, २ दूध का समुद्र, क्षीर सागर। उ० २ संत समाज पयोधि रमा सी। (मा० १।३१।१)
पयोधी–दे० 'पयोधि'। उ० १ पुर दहि नाघेउ बहुरि पयोधी। (मा० ७।६७।२)
पयोनिधि–(सं०)–समुद्र। उ० जौं छबि सुधा पयोनिधि होइ। (मा० १।२४७।४)
परं–दे० 'पर'। उ० ६ यन्देऽहं तमशेषकारण परं रामाख्य मीशं हरिम्। (मा०१।१।श्लो०६) परतु–(सं० पर+तु)–किंतु, लेकिन। उ० तहाँ परतु एक कठिनाई। (मा०१।१९७।१) पर (१)–(सं०)–१ दूसरा, अन्य, और, २ पराया, जो अपना न हो, ३ भिन्न, जुदा, ४ पीछे का, बाद का, ५ अलग, तटस्थ, जो सीमा के बाहर हो, ६ श्रेष्ठ, सर्वोत्तम, सबसे आगे, ७ प्रवृत्त, लीन, ८ शत्रु दुश्मन, ९ शिव, १० ब्रह्म, ११ ब्रह्मा, १२ मोक्ष। उ० २ अनहित-अप परहित किये, पर अनहित हितहानि। (दो० ४६७) ५ घोर संसार पर पारदाता। (वि० ५५) ८ जयति भुवनैक भूषन बिभीषन-बरद बिहित-कृत, राम संग्राम-साका। (वि० २६)
पर (२)–(सं० उपरि)–अधिकरण का चिह्न, ऊपर, पर। उ० नाहिं छगी पर जानै सोइ। (क० ७।१३४)

पर (३)-(स० परम्)-पश्चात्, पीछे।
पर (४)-(फ़ा०)-पत्र, पंख।
परइ-(स० पतन, प्रा० पडन, हि० पडना)-पड़ता, गिरता। उ० सोच विकल मग परइ न पाऊ। (मा० २।३।१।२) परई-पड़ जावे, पड़े, गिरे। उ० होइ सुखी जौं एहिं सर परई। (मा० १।३२।४) परउँ-१ पड़ती हूँ, २ पड़ूँ। उ० १ मैं पाँ परउँ कहइ जगदंबा। (मा० १।८१।४) परत (१)-१ पड़ते हैं, गिरते हैं, २ घटित होता है, होता है, पड़ता, पड़ता है, बनता है, ३ ठहरता है, ४ पड़ते हुए, गिरते हुए, ५ पड़ने में, गिरने में। उ० १ समय पुराने पात परत डरत वात। (क० ५।११) २ परखे प्रपंची प्रेम परत उघरि सो। (वि० २६४) ५ नाहिन नरक परत मो कहँ डर। (वि० ६४) परति-पड़ती पड़े, जाती है, जाती। उ० निठुरता अरु नेह की गति कठिन परति कही न। (कृ० ५५) परतिहुँ-पड़ते भी, गिरते भी। उ० परतिहुँ बार कटकु संघारा। (मा० ५।२०।१) परब (१)-(स० पतन)-पड़ूँगा। उ० इन्ह कर कहा न कीजिए बहुरि परब भवकूप। (वि० २०३) परहिं-गिर जाते हैं, पड़ जाते हैं। उ० अटुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछें। (मा० २।१४३।२) परहीं-पड़ते हैं, गिरते हैं। उ० बारहिं बार पायलै परहीं।(रा० २।११।४) परा (१)-पड़ा, पड़ गया, पड़ गया है। उ० मनु हठ परा न सुनइ सिखावा। (मा० १।७८।३) परि (१)-(स० पतन, प्रा० पडन)-पड़ी। उ० परि न बिरह बस नींद बीति गइ जामिनि। (जा० १८२) परिअ-पड़ता है, पड़ेगा, पड़ना चाहिए। उ० भारत हूँ पा परिअ तुम्हारें। (मा०१।२७२।४) परिए-पड़ा रहूँ। उ० सतत सोइ प्रिय मोहिं सदा जातें भवनिधि परिए। (वि० १८६) परिगा-(स० पतन, प्रा०पडन)-पड़ गया। उ० कीन्हेंहु रानि कौसिलहि परिगा भोर हो। (रा० १२) परिय-(स० पतन)-पड़ना चाहिए। परिहहिं-(स० पतन, हि० पड़ना, परना)-गिरेंगे, पड़ेंगे। उ० परिहहिं धरनि राम सर लागें। (मा० ६।२७।२) परिहिं-पड़ेंगे, गिरेंगे, पतित होंगे। परिहि-गिर पड़ेंगे, गिरेंगे। उ० सोक-कूप पुर परिहि, मरिहि नृप, सुनि सँदेस रघुनाथ सिधायक। (गी० २।३) परिहै-पड़ेगा। उ० तुलसी पर यम हाथ पर परिहै पुहुमी नीर। (दो० ३०१) परिहो-पड़ोगे, गिरोगे। परीं-पड़ीं, गिरीं। उ० बिनु प्रयास परीं प्रेम मही। (गी० २।२८) परी-१ पड़ी, गिरी, पतित हुई, २ हुई, घटी। उ० १ अस कहि परी चरन धरि सीसा। (मा० १।७१।४) परीगो-पड़ ही गया। उ०हाय हाय करत परीगो काल फँग मैं। (क०७।७६) परे (१)-१ गिरे, गिर पड़े, २ पड़कर ३ पड़ने पर, ४ पड़े हुए, गिरे हुए। उ० ३ ही भले नग-फँग परे गढ़ीवे, अब ए गढ़त महरि मुख जोए। (कृ० ११) परेउँ-पड़ा हूँ, गिरा हूँ। उ० गिरत चहेरे परउँ भुनाइ। (मा० १। १२१।३) परेउ-पड़ा, पड़ा था। उ० अभिमत बिटप परेउ जनु पानी। (मा०२।२।३) परेऊ-पड़े, पड़ गए। उ०सोच बिकल बिबरन महि परेऊ। (मा० २।३८।४) परेहु-पड़े हो। उ० परेहु धरनि रावन के पाछे। (मा० ६।१०।४) परै-पड़ता, पड़ती। उ० जागइ मनोभव मुएहुँ मन बन सुभगता न परै कही। (मा० १।८६। छं० १) परौं-(स० पतन)-गिर पड़ूँ, गिरूँ। परो-पड़ा, पड़ा हुआ। उ० कृपनु देह पाइय परो, बिन साधा सिधि होइ। (प्र० ७।४।३) परयो-१ पड़ा, गिर पड़ा, २ पड़ा हुआ। उ० २ रन परयो बंधु बिभीषन ही को सोच हृन्य अधिकाई। (वि० १६४)

परखि-(सं० परीक्षा)-१ देखकर, पहचानकर, २ परीक्षा लेकर। उ० १ प्रेम परखि रघुबीर सरासन भंजेउ। (जा० ११६) परखिअहिं-परीक्षा होती है, परीक्षा की जाती है। उ० आपद काल परिखिअहिं चारी। (मा० ३।५।४) परखिय-परखिए, परीक्षा कीजिए। उ० प्रेम न परखिय परुष पन, पयद सिखावन एह। (दो० २८८) परखी-परख ली, परीक्षा कर चुका। उ० परखी पराइ गति, आपने हूँ कीय की। (वि० २६२) परखे-१ परीक्षा कर ली, परख लिया, २ परख कर। उ० १ परखे प्रपंची प्रेम,परत उघरि सो। (वि० २६४)

परचंड-दे० 'प्रचंड'। उ० १ प्रबल भुजदंड परचंड को-दंड धर। (वि० ५०)

परचा-(स० परिचय)-१ परिचय, जान पहचान, २ परीक्षा, जाँच।

परचारि-(स० प्रचार)-ललकारकर, डंके की चोट पर, पुकार कर। उ० चारु चरन-तल चिह्न चारि फल देत परचारि जानि जन। (गी० ७।१६) परचारे-ललकारने पर। उ० उठा आपु कपि के परचारे। (मा० ६।३५।१)

परचे-(स० परिचय)-परिचय, पहचान। उ० रामचरन परचे नहीं बिनु साधुन पद नेह। (स० ३८८)

परजंक-(स० पर्यंक)-पलंग, चारपाई।

परजरा-(स० प्रज्वलन)-जला, जल उठा, भभक उठा, जल गया। उ० सुनत बचन रावन परजरा। (मा० ६।२७।४)

परजारि-जलाकर, प्रज्वलित कर। उ० लंका परजारि मकरी बिदारि बार-बार। (ह० २७)

परत (२)-(स० पत्र)-१ स्तर, तह, पटल, २ लड़।

परतच्छ-(सं० प्रत्यक्ष)-प्रत्यक्ष, सम्मुख, सामने, प्रकट। उ० यह तुलसी परतच्छ जो सो कछु अपर को ध्यान। (स० ५०६)

परतीति-(स० प्रतीति)-विश्वास, यकीन। उ० बिधुरत श्री मजराज आजु इन नयनन की परतीति गई। (कृ० २४)

परतीती-दे० 'परतीति'। उ० सखी बचन सुनि भै परतीती। (मा० १।२२०।२)

परत्र-(स०)-१ परलोक में, २ दूसरी जगह, अन्यत्र। उ० १ सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताय। (मा० ७।४३)

परदछिना-(सं० प्रदक्षिणा)-परिक्रमा, किसी देवमूर्ति या देवस्थान के चारों ओर घूमना। उ० परदछिना करि करहिं प्रनामा। (मा० २।२०२।२)

परदा-(फा०)-१ कपड़े आदि का आड़, पट, चिक, २ बनी हुई प्रतिष्ठा या मर्यादा, ३ छिपाव, दुराव, लाज, ४ व्यवधान। उ० २ सेवक को परदा फटे तू समरथ सी

लो। (वि० ३२) ३ नारदको परदा न मारद सो पारिलो। (क० ११६)
परदेस-(स० पर+देश)-पराया देश, दूसरा देश। उ० ते तुलसी तजि जात किमि निज घरतर परदेस। (स० ७)
परधान (१)-(स० प्रधान)-१ प्रधान, मुखिया, अगुवा, २ मुख्य, खास। उ० २ पुरुषारथ, पूरब करम, परमेस्वर परधान। (दो० ४६८)
परधान (२)-(स० परिधान)-वस्त्र, परिधान, पहिरन।
परधानू-दे० 'परधान (१)'। उ०२ जहँ नहिं राम प्रेम परधानू। (मा० २।२६१।१)
परधाम-(स०)-१ वैकुंठ, परलोक, २ ईश्वर। उ० १ को जानै को जैहै जमपुर को सुरपुर परधाम को। (वि० १५५)
परधामा-दे० 'परधाम'। उ० २ कहि सच्चिदानद परधामा। (मा० १।५०।४)
परन (१)-(स० पर्ण)-पत्ता, पत्र। उ० मरकत बरन परन, फल मानिक से। (क० ७।१३६)
परन (२)-(स० प्रण)-प्रतिज्ञा, प्रण।
परनकुटी-(स० पर्णकुटी)-पत्तों की झोपड़ी। उ० रघुबर परनकुटी जहँ छाई। (मा० २।२३७।३)
परनकुटीर-दे० 'परनकुटी'। उ० सानुज सीय समेत प्रभु राजत परनकुटीर। (मा० २।२२१)
परनगृह-(स० पर्णगृह)-कुटी, झोंपड़ी। उ० गोदावरी निकट प्रभु रहे परनगृह छाइ। (मा० ३।१३)
परनपुटी-(स० पर्ण+पुटिका)-दोनों में, पत्ते के बरतनों में। उ० भरि भरि परमपुटी रचि रूरीं। (मा० २।२५०।१)
परनसाल (स० पर्ण+शाला)-झोपड़ी, पर्णकुटी। उ० माय साय सुरसदन सम परनसाल सुख मूल। (मा० २। ६५)
परना-(स० पर्ण)-पत्र, पत्ता। उ० पुनि परिहरे सुखानेउ परना। (मा० १।७४।४)
परनाम-दे० 'प्रणाम'।
परनामा-(स० प्रणाम)-प्रणाम, नमस्कार। उ० कलि के कबिन्ह करउँ परनामा। (मा० १।१४।२)
परपचु-(स० प्रपच)-१ ससार, २ झमेला। उ० १ मिलइ रचइ परपचु बिधाता। (मा० २।२२२।३)
परपद-परमपद, ब्रह्मपद। उ० सतसैया तुलसी सतर तम हरि परपद देत। (स० ३१४)
परब (२)-(स० पर्व)-१ त्योहार, उत्सव, २ योग, घड़ी। उ० १ परब जोग जनु जुरे समाजा। (मा० १।४१।४)
परबस-(स० परवश)-पराधीन, दूसरे के वश में। उ० करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा। (मा० २।११६।३)
परवास-(स०)-ऊपर का कपड़ा, वेठन। उ० कपटसार सूची सहस, बाँधि बचन-परवास। (दो० ४१०)
परब्बत-(स० पर्वत)-पहाड़। उ० मानो प्रतापु परब्बत की गम खीक हासी कवि या बुकि धायो। (क० ६।२५)
परब्रह्म-(स०)-ब्रह्म जो जगत से परे है।
परभात-दे० 'प्रभात'। उ० हरपु हृदयँ परभात पयाना। (मा० २।१८६।१)
परम-महान्, बड़ा। उ० भव बारिधि मदर परम दर। (मा० ६।११५।३) परम-(स०)-१ भारी, बड़ा, अधिक, अत्यत, २ उत्कृष्ट, श्रेष्ठ, ३ प्रधान, मुख्य, ४. आद्य, आदिम, ५ शिव, ६ विष्णु। उ० १ परम कृपाल प्रनत अनुरागी। (मा० १।१३।३) २ रघुपति पद परम प्रेम तुलसी चह अचल नेम। (वि०१६) ४ परम कारन, कज नाम, जलदाभ तनु सगुन निगुन सकल दृश्य द्रष्टा। (वि० ५३)
परमगति-(स०)-मोक्ष, मुक्ति। उ० सकल परमगति के अधिकारी। (मा० ७।२१।२)
परमपद-मोक्ष, मुक्ति। उ० लहत परमपद पय पावन जेहि चहत प्रपच-उदासी। (वि० २२)
परमा-(स०)-शोभा, छवि।
परमाणु-(स०)-१ अत्यत सूक्ष्म अणु, ऐसा अणु जो विभाजित न हो सके, २ सात निमेष का समय, अत्यत अल्प समय।
परमातम-(स० परमात्मन्)-परमात्मा, सबसे बड़ी आत्मा। उ० नमो-नमो श्रीराम प्रभु परमातम परधाम। (स० १)
परमातमा-दे० 'परमात्मा'। उ० प्रगट परमातमा प्रकृति स्वामी। (वि० ४६)
परमात्मा-(स० परमात्मन्)-ब्रह्म, ईश्वर, भगवान्।
परमाधर-(स०)-बड़ी शोभा को धारण करनेवाला।
परमानंद-(स०)-१ बहुत बड़ा सुख, २ ब्रह्म के अनुभव का सुख, ३ आनदस्वरूप ब्रह्म। उ० १ परमानद अमित सुख पावा। (मा० १।१११।४)
परमान-(स० प्रमाण)-१ प्रमाण, सबूत, २ यथार्थ बात, सत्य बात, ३ सीमा, मिति, हद, ४ समान, सदृश; ५ यथेष्ठ, पर्याप्त। उ० ५ दान मान परमान प्रेम पूरन किए। (जा० १७६)
परमानु-दे० 'परमाणु'। उ० १ बुद्धि मन इंद्रिय प्रान चित्तातमा काल-परमानु चिच्छक्ति गुर्वी। (वि०५४) २ लव निमेष परमानु जुग बरष कलप सर चड। (मा० ६। ११ दो० १)
परमारथ-दे० 'परमार्थ'। उ० २ रामब्रह्म परमारथ रूपा। (मा० २।९३।४) परमारथहि-परमारथ को, ज्ञान को। उ० तौ सकोच परिहरि पालागौं परमारथहि बखानो। (कृ० ३५)
परमारथी-१ असली चीज़ को जानने की इच्छा रखनेवाला, तत्त्वजिज्ञासु, २ सिद्धहस्त, ३ मोक्षार्थी, मोक्ष की चिंता करनेवाला। उ० १ घर घाल चालक कलहप्रिय कहियत परम परमारथी। (पा० १२१)
परमारथु-दे० 'परमार्थ'। उ० १ सत्य परम परमारथु एहू। (मा० २।९३।१)
परमार्थ-(स०)-१ उत्कृष्ट पदार्थ, सबसे बढ़कर वस्तु, २ यथार्थ तत्त्व, सार वस्तु, ३ मोक्ष, ४ दुःख का सर्वथा अभाव।
परमीसा-(स० परम+ईश)-परमेश्वर, भगवान्। उ० माया मोह पार परमीसा। (मा० ७।५८।४)
परलोक-(स०)-१ दूसरा लोक, वह स्थान जो शरीर छोड़ने पर आत्मा को प्राप्त होता है। २ श्रेष्ठ जन, उत्तम पुरुष, ३ अन्य जन, दूसरे मनुष्य। उ० १ प्रभु लोक

परलोक दुरा दिन दिन सोक समाजु। (मा० २।२१८)
परलोका–दे० 'परलोक'। उ० १ तजि माया सेइअ पर लोका। (मा० ४।२३।३)
परलोकु–दे० 'परलोक'। उ० १ सुकृतु सुजसु परलोकु नसाऊ। (मा० २।७१।२)
परलोकू–दे० 'परलोक'। उ० १ नाहिन डरु बिगरिहि पर लोकू। (मा० २।२११।२)
परवान–(सं० प्रमाण)–१ प्रमाण, सबूत, २ यथार्थ बात, सत्य, ३ सीमा, तक, अवधि। उ० ३ तुलसिदास तनु तजि रघुपति हित कियो प्रेम परवान। (गी० २।५६)
परवाना–दे० 'परवान'। उ० २ रखिहउँ इहाँ बरष पर वाना। (मा० १।१६१।३)
परवास–(सं० प्र+वास)–आच्छादन, प्रबंध, रक्षा। उ० कपट सार सूची सहस बाँधि बचन परवास। (दो० ४१०)
परवाह–(फा० परवा)–१ फिक्र, चिंता, व्यग्रता, २ अपेक्षा, ३ सहारा, ४ खटका, ५ ध्यान, ख्याल, ६ आसरा। उ० २ जग में गति जाहि जगतपति की, परवाह है ताहि कहा नर की। (क० ७।२७)
परवाहि–दे० 'परवाह'। उ० १ फरैं तिनकी परवाहि ते जो बिनु पूँछ बिषान फिरैं दिन दौरे। (क० ७।४६)
परशु–(सं०)–एक अस्त्र जिसमें एक डंडे के सिरे पर एक अर्द्ध चन्द्राकार लोहे का फल लगा रहता है। कुल्हाड़ी, कुठार।
परशुराम–(सं०)–विष्णु के अवतारों में एक। इनकी उत्पत्ति के विषय में एक कथा है। ऋचीक ऋषि ने एक बार प्रसन्न होकर अपनी स्त्री सत्यवती तथा सत्यवती की माता के लिए दो चरु प्रस्तुत किए। प्रथम चरु के खाने से शान्त पुत्र की प्राप्ति होती और दूसरे के खाने से प्रचंड और वीर की। सत्यवती को खाना तो था प्रथम पर वह भूल से दूसरा खा गई। जब उसे यह भूल ज्ञात हुई तो उसने अपने पति से प्रार्थना की कि मेरा पुत्र उग्र और प्रचंड न हो बल्कि पौत्र हो। अंत में यही हुआ। सत्यवती के गर्भ से जमदग्नि ऋषि पैदा हुए। परशुराम इन्हीं के पुत्र थे और पूर्वकथा में दिए गए कारणों से उग्र, प्रचंड और क्रोधी थे। एक बार परशुराम की माँ रेणुका चित्ररथ राजा को अपनी रानी के साथ जल क्रीड़ा करते देख कामातुर हो गई और उसी दशा में जमदग्नि के आश्रम में प्रवेश किया जिस पर जमदग्नि क्रुद्ध हुए और उन्होंने अपने चार पुत्रों को एक-एक करके रेणुका का वध करने की आज्ञा दी। और कोई पुत्र तो इसके लिए तैयार न हुआ पर परशुराम ने आज्ञा पाते ही माता का सिर काट डाला। पिता ने प्रसन्न होकर वर माँगने के लिए कहा। परशुराम ने प्रथम वर तो माता पुनर्जीवित करने के विषय में माँगा और दूसरा अपने को दीर्घायु तथा अतुल पराक्रमी बनाने के संबंध में। पिता ने दोनों वर स्वीकार किए। एक बार राजा कार्तवीर्य सहस्रार्जुन ने जमदग्नि के आश्रम को नष्ट भ्रष्ट कर डाला। इस पर परशुराम ने उसकी सहस्र भुजाओं को भाले से काट डाला। इस पर सहस्रार्जुन के कुलवालों ने एक दिन जमदग्नि को मार डाला। यह देखकर परशुराम इतने क्रुद्ध हुए कि संपूर्ण क्षत्रियों के नाश की प्रतिज्ञा की और सचमुच क्षत्रियों का नाश कर डाला। एक दिन विश्वामित्र के पौत्र परावसु ने व्यंग्य में कहा कि तुम्हारी प्रतिज्ञा व्यर्थ है, अब भी संसार में बहुत से क्षत्रिय पड़े हैं। इस पर परशुराम की क्रोधाग्नि फिर भड़की और बचे-खुचे क्षत्रियों को मारकर उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया और उसमें संपूर्ण पृथ्वी कश्यप ऋषि को दान दे दी। वाल्मीकि रामायण के अनुसार धनुषभंग और ब्याहोपरांत राम जब लौट रहे थे तो परशुराम ने उनका रास्ता रोका और वैष्णव धनु उनके हाथ में देकर कहा कि शैव धनुष तो तुमने तोड़ा अब इस वैष्णव धनुष को चढ़ाओ। यदि इस पर बाण न चढ़ा सकोगे तो तुम्हारे साथ युद्ध करूँगा। राम ने धनुष चढ़ा दिया और परशुराम हतप्रभ हो गए।
परस–(सं० स्पर्श)–१ छूने की क्रिया, छूना, २ छूकर। उ० २ पाँचहूँ पाँच परस, रस, सब्द, गंध अरु रूप। (वि० २०३) परसत–१ स्पर्श करता है, छूता है, छूते हैं, २ छूते ही, ३ परोसते ही, ४ परोसा हुआ। उ० १ लगे सुमग तरु परसत धरनी। (मा० १।३४४।४) २ परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भइ तपपुंज मही। (मा० १।२११। छं० १) ४ अब येहि लाज कृपानिधान परसत पनवारो टारो। (वि० ६४) परसति–छूती है। उ० गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि। (दो० १८६) परसा–स्पर्श किया। उ० कर परसा सुग्रीव सरीरा। (मा० ४।८।३) परसि–छूकर, स्पर्श कर। उ० तुलसी जिनकी धूरि परसि अहल्या तरी। (क० २।६) परसे–छूने से, छूने में, स्पर्श करने से। उ० परसे पग धूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू? (क० २।६) परसेउ–स्पर्श किया, छूआ। उ० कर सरोज सिर परसेउ कृपा सिंधु रघुबीर। (मा० ४।२०) परसै–१ छुवे, स्पर्श करे, २ स्पर्श करता है, छूता है। उ० १ बास नासिका बिनु लहै, परसै बिना निकेत। (वै० ३) परस्यो–छूआ, स्पर्श किया। उ० बदन बदनदुति भूपन पट ज्यों चह पाँवर परस्यो। (वि० १००)
परसपर–(सं० परस्पर)–आपस में, एक दूसरे के साथ। उ० प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी। (मा० १।२१।१)
परसमनि–(सं० स्पर्शमणि)–पारस पत्थर, जिसके स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है। उ० गुंजा ग्रहइ परसमनि लोइ। (मा० ७।४४।२)
परसाद–(सं० प्रसाद)–दया, कृपा, प्रसाद।
परसु–दे० 'परशु'। उ० बोले चितइ परसु की ओरा। (मा० १।२७२।२)
परसुधर–(सं० परशुधर) परशुराम, विष्णु के एक अवतार। उ० क्षत्रियाधीश-करिनिकर-बर-केसरी परसुधर विप्र ससि जलद रूप। (वि० ५२) परसुधरहि–परशुराम को। उ० बोले परसुधरहि अपमाने। (मा० १।२७१।३)
परसुपानि–(सं० परशु + पाणि)–परशुराम, हाथ में परशु या कुठार धारण करनेवाले। उ० परसुपानि विप्र किए महा-मुनि जे चितए कबहूँ न कृपा है। (गी० ७।१६)

परसुराम-दे० 'परशुराम'। उ० परसुराम पितु अग्या राखी। (मा० २।१७४।७)
परस्पर-(स०)-अन्योन्य, आपस में। उ० सुरविमान हिम भानु भानु संघटित परस्पर। (क० ३।११)
परहुँ-(सं० परश्व)-तीसरे दिन भी। उ० ज्यों आजु काल्हिहु परहुँ जागन होहिंगे नेवते दिये। (गी० १.४)
परहेलि-(स० प्रहेलन)-तिरस्कार कर, निरादर कर, उल्लंघन कर। उ०सींचि सनेह सुधा खनि काढ़ी लोक-बेद पर हेलि। (कृ० २९) परहेलु-तिरस्कार कर, अवहेलना कर, अनादर कर। उ० के करु ममता राम सों के ममता परहेलु। (दो० ७९) परहेलें-अवहेलना कर, परवा न कर। उ० सुन्दर सुवा जीव परहेलें। (मा० १।१५६।२)
परा (२)-(स०)-१ ब्रह्मविद्या, वह विद्या जो ऐसी चीजों का ज्ञान कराती है जो सब गोचर पदार्थों से परे हों। २ सायण के अनुसार वह नादात्मक वाणी जो मूलाधार से उठती है और जिसका निरूपण नहीं हो सकता। ३ श्रेष्ठ उत्तम, ४ श्रेणी, पंक्ति, कतार, ५ प्रभुता, बड़ाई, ६ उलटा, विपरीत, ७ सामर्थ्य, बल, ८ अपमान, निरादर, ९ मडली, गरोह।
पराइ (१)-(स० पलायन)-१ भागकर, २ पराता है, भगता है। उ० २ तुलसी छुवत पराइ ज्यों पारद पावक आँच। (दो० ३३१) पराई (१)-१ भगी, २ भग जाती है, ३ भग जाय। उ० ३ श्रवन मूदि नत चलिअ पराइ। (मा० १।९४।२) पराउ-पलायन कर जाय, भग जाय। उ० जरत तुहिन लखि बनजबन रवि दै पीठि पराउ। (दो० ३१६) परातहि-(स० पलायन)-भागते ही, भागते। उ० समरे, बनइ न रहत, न बनइ परातहि। (पा०११५) परान (१)-भागने। उ० तब लगे कीस परान। (मा० ६। १०१।२) परानि-भगी हुई, भागी। उ० निश्वसि चिता तें अधजरति मानहुँ सती परानि। (दो० २५३) परानी-भागती भगती, दौड़ती। उ० जाति हैं परानी, गति जानि गज चालिहै। (क० ५।१०) पराने-भाग गए, दूर हो गए। उ० बालक सब लै जीव पराने। (मा० १।१६२।३) परान्यो-भाग गया, भाग चला, भागा। उ० तब मसि काढ़ि काढ़ि पर पाँवर लै प्रभु प्रिया परान्यो। (गी० ३।८) पराय (१)-(स० पलायन)-१ भागे, भाग गए, २ भागकर, ३ भागता है। उ० २ पुन्य पराय पहार बन, दुरे पुराण सुभ ग्रंथ। (दो० ५५६) ३ दिए पीठि पाछे लगै सनमुख होत पराय। (दो० ३४७) पराये (१)-(स० पलायन)-भागे, भाग गए। परावन (१)-(स० पलायन)-भागना, भगदड़ मचाना। उ० सुरपुर नितहिं परावन होई। (मा० १।१८०।४) परावना-दे० 'परावन'। पराहिं-(स० पलायन)-भाग जाते हैं। उ० आउँ समीप गहन पद फिरि फिरि चितइ पराहिं। (मा० ७।७७ क) पराहि-पलायन करो, भाग जाओ। उ० पाप! तू पराहि, पूत पूत! तू पराहि रे। (क० ५।१६) पराहीं-भाग जाते हैं। उ० कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं। (मा० ४।१५।४)
पराइ (२)-(स० पर)-दूसरे की अन्य की। उ० देखि न सकहिं पराइ विभूती। (मा० २।१२।३)
पराई (२)-दूसरे की। उ० बेगि पाइअहिं पीर पराई। (मा० २।८५।१)
पराक्रम-(स०)-१ बल, शक्ति, सामर्थ्य, २ पौरुष, उद्योग, ३ शूरता, शूरत्व। उ० २ बाहुबल बिपुल परमिति पराक्रम अतुल, गूढ़ गति जानकी जानि जानी। (वि० ५१)
पराग-(स०)-वह रज या धूलि जो फूलों के बीच लंबे केसरों पर जमा रहती है, पुष्परज। उ० सोइ पराग मकरंद सुबासा। (मा० १।३७।३)
परागा-दे० 'पराग'। उ० परसि राम पद पदुम परागा। (मा० २।११३।४)
पराजय-(स०)-हार।
पराधीन-(स०)-परवश, परतंत्र। उ० पराधीन नहिं थोर सुपासा। (मा० २।१०।७)
पराधीनता-(स०)-परतंत्रता, गुलामी। उ० बूझिए पदी रावरे की प्रेम पराधीनता। (वि० २६२)
परान (२)-(स० प्राण)-जान, प्राण।
पराभउ-दे० 'पराभव'। उ० १. सोउ तेहि सभाँ पराभउ पावा। (मा० १।२६३।४)
पराभव-(स०)-१ हार, पराजय, २ निरादर, तिरस्कार, ३ प्रलय, नाश। उ० ३ भव भव विभव पराभव कारिनि। (मा० १।२३५।४)
पराभौ-दे० 'पराभव'। उ० २ बाये मुँह सहत पराभौ देस देस को। (क० ७।१२५)
पराय (२)-(स० पर)-१ दूसरा, अन्य, गैर, २ पराया, दूसरे का।
परायन-(स० परायण)-१ निरत, तत्पर, लगा हुआ, २ गत, गया हुआ, ३ आश्रय, भागकर शरण लेने का स्थान। उ० १ काम क्रोध मदलोभ परायन। (मा० ७।३९।३)
पराये (२)-(स० पर)-दूसरे के, गैर के, अन्य के। उ० कबहुँ न जात पराये धामहिं। (कृ० २)
परारथ-(स० परार्थ) परमार्थ, पारलौकिक सुख। दूसरे का सुख। स्वार्थ का विलोम। उ० पचकोस पुन्यकोस स्वारथ परारथ को। (क० ७।१७२)
पराव-(स० पर)-पराया, दूसरे का। उ० घनु पराव बिष ते बिष भारी। (मा० २।१३०।३)
परावन (२)-(स० पतन, प्रा० पडन हिं० पड़ाव)-पड़ाव का बहुवचन, पड़ावों। उ० जातुधान दावन परावन को दुग भयो। (ह० ७)
परावनो-(स० पलायन) भगदड़, पलायन। उ० भहराने भट परयो प्रबल परावनो। (क० ५।८)
परावर-(स०)-१ सर्वश्रेष्ठ, २ दूर और पास, सर्वत्र, ३ जड़ चेतन, चराचर, ४ ब्रह्मादि और मनुष्य आदि। उ० ४ पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ। (मा० १।११६) ३ कामनाप्यक पावन परावर विभो। (वि० ५६)
पराया-(स० पर)-१ अन्य का, दूसरे का, २ दूसरे से। उ० २ करहिं मोदमय मोद पराया। (मा० ७।५०।३)
पराशर-(स०)-एक ऋषि। ये वशिष्ठ और शक्ति के पुत्र थे। व्यास इनके पुत्र कहे जाते हैं।

परास-(सं० पलाश)-पलाश, ढाक, टेसू। उ० पाटल पनस परास रसाला। (मा० ३।४०।३)
परि (२)-(सं०)-एक संस्कृत का उपसर्ग जिसके लगने से शब्द के अर्थ में वृद्धि हो जाती है। वृद्धि की दिशाएँ हैं—१ चारों ओर (परिभ्रमण), २ अच्छी तरह (परिपूर्ण), ३ अति (परिवर्द्धन), ४ पूर्णता (परित्याग), ५ दोषाख्यान (परिहास) तथा ६ नियम (परिच्छेद)।
परि (३)-(सं० परम्)-परन्तु, किंतु, पर।
परिकर-(सं०)-१ पलंग, चारपाई, २ कमर, ३ नौकर, ४ परिवार, ५ समूह, ६ साज, ७ तैयारी, समारंभ, ८ घेरनेवालों का समूह, अनुयायियों का दल, ९ फेंटा, कमर में बाँधने का वस्त्र। उ० २ परिकर बाँधि उठे अकुलाइ। (मा० १।२५०।३) ९ मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा। (मा० ३।२७।४)
परिखेसु-(सं० प्रतीक्षा)-इंतजार करना, प्रतीक्षा करना। उ० परिखेसु मोहि एक पखवारा। (मा० ४।६।२) परिखेहु-प्रतीक्षा करना, राह देखना। उ० तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई। (मा० ५।१।१)
परिगहैगो-(सं० परिग्रहण)-आश्रय देगा, ग्रहण करेगा, थामेगा, सहारा देगा। उ० तेरे मुँह फेरे मोसे कायर कपूत कूर लटे लटपटेनि को कौन परिगहैगो ? (वि०२५९)
परिग्रह-(सं०)-१ प्रतिग्रह, ग्रहण, लेना, २ स्वीकार, अंगीकार, ३ सेना के पीछे का भाग, ४ पत्नी, भार्या, ५ परिजन, परिवार ६ नौकर, सेवक, ७ शाप, ८ शपथ ९ सूर्यग्रहण, राहुग्रस्त सूर्य।
परिघ-(सं०)-१ मूसलाकार एक शस्त्र विशेष, २ लोहाँगी, गड़ाँसा। उ० १ सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसुधरा। (मा० ३।१९।छं० १)
परिचरजा-दे० 'परिचर्या'। उ० निजकर गृह परिचरजा करई। (मा० ७।२४।३)
परिचर्या-(सं०)-सेवा, टहल, सुश्रूषा।
परिचारक-(सं०) सेवक, नौकर। उ० पुनि परिचारक बोलि पठाए। (मा० १।२८७।३) परिचारिका-(सं०)-दासी, सेविका, नौकरानी। उ० छमा करुना प्रमुख तत्र परिचारिका श्रुति सेष सिव देव ऋषि अखिल मुनि तत्वदरसी। (वि० ५७)
परिचारे-(सं० प्रचार)-१ ललकारने पर, २ ललकारा।
परिचेहु-(सं० परिचय) परच गए हो, परक गए हो, आदी हो गए हो। उ० बहकि बहकि परिचेहु सब काहू। (मा० १।१२७।२)
परिचौ-(सं० परिचय)-पता, परिचय। उ० करतल निरखि कहत सब गुनगन, बहुत न परिचौ पायो। (गी० १।१४)
परिच्छन्न-(सं०)-१ ढका हुआ, छिपा हुआ, २ साफ किया हुआ।
परिच्छा-(सं० परीक्षा)-इम्तहान, परीक्षा।
परिछन-(सं०परि+अर्चन)-एक विशेष प्रकार की आरती। विवाह की एक रीति जिसमें बारात द्वार पर आने पर कन्या पक्ष की स्त्रियाँ वर के पास जाती हैं और उसे दही अक्षत, आदि का टीका लगाकर आरती आदि करती हैं। वर जब अपने घर से चलता है तो वहाँ भी उसका परिछन होता है तथा विवाहोपरांत या द्विरागमन के बाद जब वर वधू के साथ अपने घर आता है तब भी परिछन होता है। उ० परिछन चली हरहि हरषानी। (मा० १।९६।२)
परिछनि-दे० 'परिछन'। उ० चलीं मुदित परिछनि करन गजगामिनि बर नारि। (मा० १।३१७)
परिछाँहि-(सं० प्रतिच्छाया)-छाया, परछाहीं। उ० तुलसी सुनी न कबहुँ काहु कहुँ तनु परिहरि परिछाहि रही है। (गी० २।९)
परिछाहीं-दे० 'परिछाँहि'। उ० जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाहीं। (मा० २।१४१।३)
परिछि-परिछन करके। दे० 'परिछन'। उ० बधुन्ह सहित, सुत परिछि सब चलीं लवाइ निकेत। (मा० १।३४९)
परिछिन्न-(सं० परिच्छिन्न)-१ आच्छादित, घिरा, २ कटा हुआ, अलग। उ० १ माया बस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान। (मा० ७।१११ ख)
परिजन-(सं०)-१ परिवार, घर के लोग, २ नौकर चाकर, सेवक। उ० १ प्रनवउँ परिजन सहित बिदेहू। मा० १।१७।१) परिजनन्हि-कुटुंबियों को। उ० प्रभु सुभाउ परिजनन्हि सुनावा। (मा० ७।२०।३) परिजनहि-परिजन को, सेवक को। उ० तो प्रभु-चरन-सरोज सपथ जीवत परिजनहि न पैहौ। (गी० २।७६)
परिडरै-(सं० परि+सं० दर)-डरकर, डरकर के। उ० सो परिडरै मरै रजु अहि तें बूझै नहिं ब्यवहार। (वि० १८८)
परिणाम-(सं०)-१ फल, नतीजा, २ अंत, समाप्ति।
परिताप-(सं०)-१ दुःख, कष्ट, मानसिक या शारीरिक व्यथा, २ जलन, ताप। उ० १ भय बिषाद परिताप घनेरे। (मा० २।६६।३)
परितापा-दे० 'परिताप'। उ० १ आए अवध भरे परितापा। (मा० २।८६।४)
परितापी-(सं० परितापिन्)-दुख देनेवाला, दुखदायक। उ० बरनि न जाहिं बिस्व परितापी। (मा० १।१०१।४)
परितोष-(सं०)-१ संतोष, तृप्ति, २ प्रसन्नता, हर्ष, ३ समाधान। उ० १ कहि प्रिय बचन बिबेकमय कीन्हि मातु परितोषु। (मा० २।६०)
परितोषत-प्रसन्न होता है, प्रसन्न होते हैं। उ० द्वापर परितोषत प्रभु पूजें। (मा० १।२०।२) परितोषा-संतुष्ट किया, तृप्त किया। उ० कहि प्रिय बचन काम परितोषा। (मा० १।१२७।१) परितोषि-संतुष्ट कर, संतोष देकर। उ० परितोषि गिरिजहि चले बरनत प्रीति नीति नवीनता। (पा० ८३) परितोषिबे-संतुष्ट करने, तृप्त करने। उ० खल दुख दोषिबे को, जन परितोषिबे को। (ह० ११) परितोषी-संतोष दिया, दिलासा दी। उ० तापस नृपहि बहुत परितोषी। (मा० १।१७१।३) परितोषे-संतुष्ट हुए। उ० पूरन काम रामु परितोषे। (मा० १।३४२।३)
परितोषु-दे० 'परितोष'। उ० १ बिबिध भाँति परितोषु करि बिदा कीन्ह वृषकेतु। (मा० १।१०२)
परितोषू-दे० 'परितोष'। उ०१ रहहु करहु सब कर परितोषू। (मा० २।७१।३)

परसुराम-दे० 'परशुराम'। उ० परसुराम पितु अग्या राखी। (मा० २।१७४।४)

परस्पर-(सं०)-अन्योन्य, आपस में। उ० सुरविमान हिम भानु भानु संघटित परस्पर। (क० १।११)

परहुँ-(सं० परश्व)-तीसरे दिन भी। उ० ज्यों आजु कालिहु परहुँ जागन होहिंगे नेवते न्यिे। (गी० १.५)

परहेलि-(सं० प्रहेलन)-तिरस्कार कर, निरादर कर, उल्लंघन कर। उ०सींचि सनेह सुधा रानि काढ़ी लोक-बेद पर हेलि। (कृ० २६) परहेलु-तिरस्कार कर, अवहेलना कर, अनादर कर। उ० कै करु ममता राम सों कै ममता पर हेलु। (दो० ७१) परहेलें-अवहेलना कर, परवा न कर। उ० सुन्दर श्रुया जीन परहेलें। (मा० १।१५४।२)

परा (२)-(सं०)-१ ब्रह्मविद्या, वह विद्या जो ऐसी चीजों का ज्ञान कराती है जो सब गोचर पदार्थों से परे हों। २ सायण के अनुसार वह नादात्मक वाणी जो मूलाधार से उठती है और जिसका निरूपण नहीं हो सकता। ३ श्रेष्ठ उत्तम, ४ श्रेणी, पंक्ति, कतार, ५ प्रभुता, बड़ाई, ६ उलटा, विपरीत, ७ सामर्थ्य, बल, ८ अपमान, निरादर, ९ मडली, गरोह।

पराइ (१)-(सं० पलायन)-१ भागकर, २ पराता है, भागता है। उ० २ तुलसी छुवत पराइ ज्यों पारद पावक आँच। (दो० ३३१) पराइ (१)-१ भगी, २ भग जाती है, ३ भग जाय। उ० ३ श्रवन मूंदि नत चलिअ पराइ। (मा० १।१४।२) पराउ-पलायन कर जाय, भग जाय। उ० अरत तुहिन लखि बनजबन रवि दै पीठि पराउ। (दो० ३१६) परातहिं-(सं० पलायन)-भागते ही, भागते। उ० भभरे, बनइ न रहत, न बनइ परातहिं। (पा०११५) परान (१)-भागने। उ० तब लगे कीस परान। (मा० ६। १०१।३) परानि-भगी हुई, भागी। उ० निकसि चिता तें अधजरति मानहुँ सती परानि। (दो० २२३) परानी-भागती भगती, दौड़ती। उ० जाति हैं परानी, गति जानि गज चालिहै। (क० ५।१०) पराने-भाग गए, दूर हो गए। उ० बालक सब लै जीव पराने। (मा० १।१५१।२) पराऱ्यो-भाग गया, भाग चला, भागा। उ० तब ससि कादि काटि पर पाँवर लै प्रभु प्रिया पराऱ्यो। (गी० ३।८) पराय (१)-(सं० पलायन)-१ भागे, भाग गए, २ भागकर, ३ भागता है। उ० २ पुन्य पराय पहार बन, दुरे पुरान सुभ ग्रंथ। (दो० ५५६) ३ दिए पीठि पाछे लगै सनमुख होत पराय। (दो० २२७) पराये (१)-(सं० पलायन)-भागे, भाग गए। परायन (१)-(सं० पलायन)-भागना, भगदड़ मचाना। उ० सुरपुर नितहिं परावन होई। (मा० १।१८०।४) परायना-दे० 'परावन'। पराहिं-(सं० पलायन)-भाग जाते हैं। उ० जाईं समीप गहन पद फिरि फिरि चितइ पराहिं। (मा० ७।७७ क) पराहि-पलायन करो, भाग जाओ। उ० बाप! तू पराहि, पूत पूत! तू पराहि रे। (क० ५।१६) पराहीं-भाग जाते हैं। उ० कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं। (मा० ४।१५।५)

पराइ (२)-(सं० पर)-दूसरे की अन्य की। उ० देखि न सकहिं पराइ बिभूती। (मा० २।१२।१)

पराई (२)-दूसरे की। उ० बेगि पाइअहिं पीर पराई। (मा० २।८५।१)

पराक्रम-(सं०)-१ बल, शक्ति, सामर्थ, २ पौरुष, उद्योग, ३ शूरता, शूरत्व। उ० २ बाहुबल बिपुल परमिति पराक्रम अतुल, गूढ़ गति जानकी जानि जानी। (वि० ५१)

पराग-(सं०)-वह रजया धूलि जो फूलों के बीच लंबे केसरों पर जमा रहती है, पुष्परज। उ० सोइ पराग मकरंद सुवासा। (मा० १।३७।३)

परागा-दे० 'पराग'। उ० परसि राम पद पदुम परागा। (मा० २।११३।४)

पराजय-(सं०)-हार।

पराधीन-(सं०)-परवश, परतंत्र। उ० पराधीन नहिं तोर सुपासा। (मा० २।१७।७)

पराधीनता-(सं०)-परतंत्रता, गुलामी। उ० भूमि परी रावरे की प्रेम-पराधीनता। (वि० २६२)

परान (१)-(सं० प्राण)-जान, प्राण।

पराभउ-दे० 'पराभव'। उ० १ सोउ तेहि सभाँ पराभउ पावा। (मा० १।२६२।४)

पराभव-(सं०)-१ हार, पराजय, २ निरादर, तिरस्कार, ३ प्रलय, नाश। उ० ३ भव भय विभव पराभव कारिनि। (मा० १।२३५।४)

परामौ-दे० 'पराभव'। उ० २ बामे मुँह सहत परामौ देस देस को। (क० ७।१२५)

पराय (२)-(सं० पर)-१ दूसरा, अन्य, गैर, २ पराया, दूसरे का।

परायन-(सं० परायण)-१ निरत, तत्पर, लगा हुआ, २ गत, गया हुआ, ३ आश्रय, भागकर शरण लेने का स्थान। उ० १ काम क्रोध मद लोभ परायन। (मा० ७।३९।३)

पराये (२)-(सं० पर)-दूसरे के, गैर के, अन्य के। उ० कबहुँ न जात पराये धामहिं। (कृ० ५)

परारथ-(सं० परार्थ) परमार्थ, पारलौकिक सुख। दूसरे का सुख। स्वार्थ का विलोम। उ० पचकोस पुन्यकोस स्वारथ परारथ को। (क० ७।१०५)

पराव-(सं०-पर)-पराया, दूसरे का। उ० भनु पराव बिन से बिष भारी। (मा० २।१३०।३)

परावन (२)-(सं० पतन, प्रा० पडन, हि० पड़ाव)-पड़ाव का बहुवचन, पड़ावों। उ० जातुधान दावन परावन को दुर्ग भयो। (ह० ७)

परावनो-(सं० पलायन) भगदड़, पलायन। उ० महाबले भट पायो प्रबल परावनो। (क० ५।८)

परावर-(सं०)-१ सर्वश्रेष्ठ, २ दूर और पास, सर्वत्र, ३ जड़-चेतन, चराचर, ४ ब्रह्मादि और मनुष्य आदि। उ० ४ पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ। (मा० १।११६) ३ बामनाध्यात पावन परावर बिभो। (वि० ५१)

पराया-(सं० पर)-१ अन्य का, दूसरे का, २ दूसरे से। उ० २ करहिं मोहबस द्रोह परावा। (मा० ७।४०।१)

पराशर-(सं०)-एक ऋषि। ये वशिष्ठ और शक्ति के पुत्र थे। व्यास इनके पुत्र कहे जाते हैं।

परास-(स० पलाश)-पलाश, ढाक, टेसू। उ० पाटल पनस परास रसाला। (मा० ३।४०।३)
परि (२)-(स०)-एक सस्कृत का उपसर्ग जिसके लगने से शब्द के अर्थ में वृद्धि हो जाती है। वृद्धि की दिशाएँ हैं—१ चारों ओर (परिभ्रमण), २ अच्छी तरह (परिपूर्ण), ३ अति (परिवर्द्धन), ४ पूर्णता (परित्याग), ५ दोषाख्यान (परिहास) तथा ६ नियम (परिच्छेद)।
परि (३)-(स० परम्)-परंतु, किंतु, पर।
परिकर-(स०)-१ पलग, चारपाई, २ कमर, ३ नौकर, ४ परिवार, ५ समूह, ६ साज, ७ तैयारी, समारभ, ८ घेरनेवालों का समूह, अनुयायियों का दल, ९ फेंटा, कमर में बाँधने का वस्त्र। उ० २ परिकर बाँधि उठे अकुलाई। (मा० १।२५०।३) ९ मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा। (मा० ३।२७।४)
परिखेहु-(स० प्रतीक्षा)-इंतजार करना, प्रतीक्षा करना। उ० परिखेहु मोहि एक पखवारा। (मा० ४।६।३) परिखेहु-प्रतीक्षा करना, राह देखना। उ० तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई। (मा० ५।१।१)
परिगहैगो-(स० परिग्रहण)-आश्रय देगा, ग्रहण करेगा, थामेगा, सहारा देगा। उ० तेरे मुँह फेरे मोसे कायर कपूत कूर लटे लटपटेनि को कौन परिगहैगो? (वि०२५९)
परिग्रह-(स०)-१ प्रतिग्रह, ग्रहण, लेना, २ स्वीकार, अगीकार, ३ सेना के पीछे का भाग, ४ पत्नी, भार्या, ५ परिजन, परिवार ६ नौकर, सेवक, ७ शाप, ८ शपथ ९ सूर्यग्रहण, राहुग्रस्त सूर्य।
परिघ-(स०)-१ मूसलाकार एक शस्त्र विशेष, २ लोहाँगी, गड़ाँसा। उ० १ सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसुधरा। (मा० ३।१९।छं० १)
परिचरजा-दे० 'परिचर्या'। उ० निजकर गृह परिचरजा करई। (मा० ७।२४।३)
परिचर्या-(सं०)-सेवा, टहल, शुश्रूषा।
परिचारक-(स०) सेवक, नौकर। उ० पुनि परिचारक बोलि पठाए। (मा० १।२८७।३) परिचारिका-(स०)-दासी, सेविका, नोकरानी। उ० छमा करुना प्रमुख तत्र परिचारिका श्रुति सेव सिव देव व्यापि अखिल मुनि तत्वदरसी। (वि० ४७)
परिचारे-(स० प्रचार)-१ ललकारने पर, २ ललकारा।
परिचेहु-(स० परिचय) परच गए हो, परक गए हो, आदी हो गए हो। उ० दहकि दहकि परिचेहु सब काहू। (मा० १।११७।२)
परिची-(स० परिचय)-पता, परिचय। उ० करतल निरखि कहत सब गुनगन, बहुत न परिची पायो। (गी० १।१४)
परिच्छन्न-(स०)-१ ढका हुआ, छिपा हुआ, २ साफ किया हुआ।
परिच्छा-(स० परीक्षा)-इम्तहान, परीक्षा।
परिछन-(सं०परि+अर्चन)-एक विशेष प्रकार की आरती। विवाह की एक रीति जिसमें बारात द्वार पर आने पर कन्या पक्ष की स्त्रियाँ वर के पास जाती हैं और उसे दही-अक्षत, आदि का टीका लगाकर आरती आदि करती है। वर जब अपने घर से चलता है तो वहाँ भी उसका परिछन होता है तथा विवाहोपरांत या द्विरागमन के बाद जब वर वधू के साथ अपने घर आता है तब भी परिछन होता है। उ० परिछन चली हरहि हरपानी। (मा० १।९६।२)
परिछनि-दे० 'परिछन'। उ० चलीं मुदित परिछनि करन गजगामिनि बर नारि। (मा० १।३१७)
परिछाँहि-(स० प्रतिच्छाया)-छाया, परछाहीं। उ० तुलसी सुनी न कयहुँ काहु कहुँ तनु परिहरि परिछाँहि रही है। (गी० २।६)
परिछाहीं-दे० 'परिछाँहि'। उ० जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाहीं। (मा० २।१४१।३)
परिछि-परिछन करके। दे० 'परिछन'। उ० बधुन्ह सहित, सुत परिछि सब चलीं लवाइ निकेत। (मा० १।३४९)
परिछिन्न-(स० परिच्छिन्न)-१ आच्छादित, घिरा, २ कटा हुआ, अलग। उ० १ माया बस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान। (मा० ७।१११ ख)
परिजन-(स०)-१ परिवार, घर के लोग, २ नौकर चाकर, सेवक। उ० १ प्रनवउँ परिजन सहित बिदेहू। मा० १।१७।१) परिजनन्हि-कुटुंबियों को। उ० प्रभु सुभाउ परिजनन्हि सुनावा। (मा० ७।२०।३) परिजनहि-परिजन को, सेवक को। उ० तो प्रभु चरन-सरोज सपथ जीवत परिजनहि न पैहौ। (गी० २।७६)
परिहरै-(स० परि+स० दूर)-हरकर, डरकर से। उ० सो परिहरै मरै रजु अहि तें बूझै नहिं ब्यवहार। (वि० १८८)
परिणाम-(सं०)-१ फल, नतीजा, २ अत, समाप्ति।
परिताप-(स०)-१ दु ख, कष्ट, मानसिक या शारीरिक व्यथा, २ जलन, ताप। उ० १ भय विषाद परिताप घनेरे। (मा० २।६६।३)
परितापा-दे० 'परिताप'। उ० १ आपु अवध भरे परितापा। (मा० २।८६।४)
परितापी-(स० परितापिन्)-दु ख देनेवाला, दुखदायक। उ० बरनि न जाहिं बिस्व परितापी। (मा० १।१७९।४)
परितोष-(स०)-१ सतोष, तृप्ति, २ प्रसन्नता, हर्ष, ३ समाधान। उ० १ कहि प्रिय बचन बिबेकमय कीन्हि मातु परितोषु। (मा० २।६०)
परितोषत-प्रसन्न होता है, प्रसन्न होते हैं। उ० द्वापर परितोषत प्रभु पूजें। (मा० १।२७।२) परितोषा-सतुष्ट किया, तृप्त किया। उ० कहि प्रिय बचन काम परितोषा। (मा० १।१२७।१) परितोषि-सतुष्ट कर, सतोष देकर। उ० परितोषि गिरिजहि चले बरनत प्रीति नीति प्रबीनता। (पा० ८३) परितोषिबे-सतुष्ट करने, तृप्त करने। उ० खल दुख दोषिबे को, जन परितोषिबे को। (ह० ११) परितोषी-सतोष दिया, दिलासा दी। उ० तापस नृपहि बहुत परितोषी। (मा० १।१७१।३) परितोषे-सतुष्ट हुए। उ० पूरन काम रामु परितोषे। (मा० १।३४२।३)
परितोषु-दे० 'परितोष'। उ० १ बिबिध भाँति परितोषु करि बिदा कीन्ह दसकंठु। (मा० १।१०२)
परितोषू-दे० 'परितोष'। उ०१ रहहु करहु सब कर परितोषू। (मा० २।७१।३)

परित्याग-(सं०)-सब प्रकार से त्याग, निसर्जन, छोड़ना। उ० पति परित्याग हृदयँ दुखु भारी। (मा० १।६१।४)

परित्राण-(सं०)-बचाव, रक्षा, रक्षण।

परित्राता-(सं० परित्रातृ)-रक्षा करनेवाला, बचानेवाला। उ० तपबल बिष्नु भए परित्राता। (मा० १।१६३।१)

परिधन-(सं० परिधान)-१ नाभि से नीचे पहिरने का कपड़ा, २ पहनने का वस्त्र, पहिरन। उ० २ सीस जटा, सरसीरुह लोचन, बने परिधन मुनिचीर। (गी० २।६६)

परिधान-(सं०)-१ पोशाक, पहनावा, २ नाभि से नीचे पहनने का वस्त्र। उ०१ व्याघ्र-गज-चर्म परिधान विज्ञान घन। (वि० १०)

परिधाना-दे० 'परिधान'। उ० १ कृस सरीर मुनिपट परिधाना। (मा० १।१४३।४)

परिनाम-(सं० परिणाम)-फल, नतीजा, अंत। उ० कलह न जानब छोट करि, कलह कठिन परिनाम। (दो० ४२९) परिनामहिं-परिणामस्वरूप, अंत में। उ० तौ कोउ नृपहि न देत दोषु परिनामहिं। (जा० ८३) परिनामहु-फल में भी, अंत में भी। उ० तुलसी जियत बिडंबना, परिनामहु गत जान। (दो० ३६०) परिनामै-फल, फल है। उ० भलो नाथ सोई आगें भलो परिनामै। (गी० ५।२५) परिनामो-अंत में भी। उ० ताको भलो कठिन कलिकालहु आदि मध्य परिनामो। (वि० २२८)

परिनामा-दे० 'परिनाम'। उ० बर दोउ दल दुख फल परिनामा। (मा० २।२३।३)

परिनामु-दे० 'परिनाम'। २ परिनामु मंगल जानि अपने आनिए धीरजु हिएँ। (मा० २।२०१।छं०१)

परिनामू-दे० 'परिनाम'। उ० सो सब मोर पाप परिनामू। (मा० २।३६।१)

परिपाक-(सं०)-१ फल, नतीजा, २ जीर्णता, ३ भली भाँति पका हुआ, ४ निपुणता, ५ पचना, ६ प्रौढ़ता, पूर्णता, ७ पकने का भाव, ८ बहुदर्शिता। उ० १ कर्म परिपाक-दाता। (वि० २६)

परिपाका-दे० 'परिपाक'। उ० १ सोइ पाइहि बहु फल परिपाका। (मा० २।२१।३)

परिपाकू-दे० 'परिपाक'। उ० १ बिनु समुझें निज अघ परिपाकू। (मा० २।२६१।३)

परिपाटी-(सं०)-रीति, दस्तूर, परंपरा। उ० प्रगटी धनु बिघटन परिपाटी। (मा० १।२३६।३)

परिपालन-(सं०)-रक्षा, पालन, बचाव।

परिपालय-रक्षा करो, बचाओ। उ० ममन्नि सदा हम कहुँ परिपालय। (मा० ७।३४।४)

परिपूरन-(सं० परिपूर्ण)-१ संपूर्ण, पूर्ण, भरा-पूरा, जैसा चाहिए, २ समाप्त, ख़तम, ३ तृप्त आसूदा। उ० १ रूपसील बय बस राम परिपूरन। (जा० ४३) ३. पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे। (मा० २।१०७।१)

परिपोषे-(सं० परिपोष)-१ पुष्ट हुए, परिपुष्ट हुए, २ पालन किया। उ० १ आदर दाम प्रेम परिपोषे। (मा० १।३५२।२)

परिपूरित-पूर्ण, भरा। उ० मिले प्रेम परिपूरित गाता। (मा० १।२०८।४)

परिबारु-दे० 'परिवार'।

परिबे-(सं० पतन)-पड़ना, बँधना। उ० उन्हहिं राग रवि नीरद-जल ज्यों, प्रभु-परमिति परिबे को। (कृ० ३१)

परिमित-(सं०)-नापा हुआ, सीमित, नियमित।

परमिति-(सं० परिमिति)-१ परिमाण, २ नाप, तौल, सीमा, ३ मर्यादा, इज़्ज़त, ४ हद से परे, बहुत, ५ किनारा। उ० १ पन-परमिति और भाँति सुनि गई है। (गी० १।८३) ३ प्रीति रीति समुझाइबी नत पाल कृपा हुहि परमिति पराधीन की। (वि० २७८) ४ बाहुबल बिपुल, परमिति पराक्रम अतुल। (वि० ३१)

परिवा-(सं० प्रतिपदा, प्रा० पडिवआ)-किसी पक्ष की पहली तिथि, पड़वा। उ० परिवा प्रथम प्रेम बिनु राम मिलन अति दूर। (वि० २०३)

परिवार-(सं०)-कुल, कुटुंब, खान्दान। उ० सब परिवार मेरो याही लागि, राजा जू! (क० २।८)

परिवारा-दे० 'परिवार'। उ० मैं जनु मीचु सहित परिवारा। (मा० २।८८।३)

परिवारु-दे० 'परिवार'। उ० प्रिय परिवारु मातु सम सासू। (मा० २।६८।३)

परिवारू-दे० 'परिवार'। उ० देसु कोसु परिजन परिवारू। (मा० २।३१२।४)

परिशिष्ट-(सं०) शेष, बँचा हुआ।

परिहर-(सं० परिहरण)-छोड़ता, तजता। उ० आरतु सहज न परिहर सोई। (मा० १।८०।३) परिहरइ-छोड़ता, त्यागता, त्यागता है। उ० सुनि धीरजु परिहरइ न कोई। (मा० १।२३८।१) परिहरई-छोड़ देता है। उ० सोचिय बटु निज ब्रतु परिहरई। (मा० २।१७२।४) परिहरऊँ-छोड़ूँगी। उ० नारद बचन न मैं परिहरऊँ। (मा० १।८०।४) परिहरत-छोड़ देते हैं, छोड़ रहे हैं। उ० निज गुन घटत न नाग मग परखि परिहरत कोल। (दो० ३८९) परिहरते-छोड़ते, त्यागते। उ० तौ कि जानिकिहि जानि जिय परिहरते रघुराउ। (दो० ४१३) परिहरहिं-१. त्याग दे, त्याग देंगे, २ त्यागते हैं। उ० १ जौं परिहरहिं मलिन मनु जानी। (मा० २।२३४।१) परिहरहि-त्याग दे। उ० बेगि प्रिया परिहरहि कुबेषू। (मा० २।२६।४) परिहरहीं-१ छोड़ते हैं, छोड़ देते हैं, २ छोड़ दें, त्याग करें। उ० २ हमहि सीयपद जनि परिहरहीं। (मा० २।२८८।३) परिहरही-छोड़ दे, त्याग दे। उ० सुनु मम बचन मान परिहरही। (मा० ६।३०।१) परिहरहु-त्याग दो, छोड़ो। उ० अब सुमत्र परिहरहु बिषादू। (मा० २।१५३।१) परिहरहू-छोड़ दो। उ० अस अनुमानि सोच परिहरहू। (मा० २।११६।२) परिहरि-छोड़कर, त्यागकर। उ० इस उदार उमापति परिहरि अनत जे जाँचन जाहीं। (वि० ४) परिहरिअ-१ त्याज्य, त्यागने के योग्य, २ छोड़ दो। उ० १ कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई। (मा० ३।०२।१) परिहरिए-१ छोड़िए, त्यागिए २ छोड़ रहा हूँ। उ० १ जेहि साधन हरिअ पदु जानि जन सो हठि परिहरिए। (वि० १८९) परिहरिय-छोड़ो, त्यागो। उ० तुलसी भरम न परिहरिय, कहि करि गए सुजान। (दो० ४१६) परिहरिहि-छोड़ देगी। उ० सीय कि पिय सँगु परिहरिहि लखनु कि

रहिहहिं धाम। (मा० २।४१) परिहरिहु-छोड़ा, छोड़ दिया। उ० जनकसुता परिहरिहु अकेली। (मा० ३।३०।१) परिहरीं-त्याग दिया, छोड़ा। उ० सिय बेषु सतीं जो कीन्ह तेहिं अपराध संकर परिहरीं। (मा० १।६८। छं० १) परिहरी-छोड़ दिया। परिहरु-त्याग दो, छोड़ो। उ० काम क्रोध अरु लोभ मोह मद राग द्वेष निसेष करि परिहरु। (वि० २०५) परिहरे-१ छोड़ा, त्याग दिया, २ छोड़ने पर। उ० १ बड़े अजेखी लखि परे, परिहरे न जाहीं। (वि० १४७) परिहरेउ-त्यागा, त्याग दिया। उ० बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ। (मा० १।१६) परिहरेऊ-छोड़ा, छोड़ दिया। उ० मानहुँ कमल मूल परिहरेऊ। (मा० २।३८।४) परिहरेहिं-छोड़ने में, त्यागने में। उ० अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई। (मा० ४।७।४) परिहरै-त्याग दे छोड़े। उ० जो निज मन परिहरै बिकारा। (वि० १२४) परिहरयो-१ छोड़ दिया, २ छोड़ा हुआ, त्यक्त। उ० १ देवनि हूँ देव परिहरयो अन्याव न तिनको हौं अपराधी सब केरो। (वि० २७२) २ तुलसी प्रभु को परिहरयो सरनागत सो हौं। (वि० १५०)

परिहार-(सं०)-१ दोषादि दूर करने या छुड़ाने का कार्य, २ उपचार, इलाज, ३ अवज्ञा, अपमान, ४ त्याग।

परिहास-(सं०)-१ हँसी, ठट्ठा, २ व्यंग्य वचन, ३ निंदा, उपहास। उ० १ रिस परिहास कि साँचेहुँ साँचा। (मा० २।३२।३) ३ सहि न जात मो पै परिहास एते। (वि० २४१)

परीक्षा-(सं०)-दे० 'परीछा'।

परीक्षित-(सं०)-१ जिसकी जाँच की गई हो, निश्चित, निश्चय रूप से, २ पांडु कुल के एक राजा जो अर्जुन के पोते और अभिमन्यु के पुत्र थे। इनकी माँ उत्तरा थीं। अश्वत्थामा ने इन्हें गर्भ में ही मारने का उपाय किया पर कृष्ण की कृपा से ये जीवित हो गए। इन्होंने कृपाचार्य से अस्त्र विद्या सीखी थी। इन्हीं के राज्यकाल में द्वापर का अंत और कलियुग का आरंभ हुआ।

परीच्छित-दे० 'परीक्षित'। उ० १ संकर कोप सों पाप को दाम परीच्छित जाहिगो जारि कै हीयो। (क०७।१७१)

परीछा-(सं० परीक्षा)-परीक्षा, इम्तहान। उ० तौ किन जाइ परीछा लेहू। (मा० १।५२।१)

परीछित-दे० 'परीक्षित'। उ० २ छाँडि छितिपाल जो परीछित भए कृपालु। (क० ७।१८१) परीछितहिं-परीछित को। उ० सुनी हरिपुर बसत होत परीछितहि पछिताय। (वि० २२ )

परुख-दे० 'परुष'।

परुष-(सं०)-कठोर, कड़ा, कठिन। उ० सापत ताड़त परुष कहंता। (मा० ३।३४।१) परुषा-'परुष' का स्त्रीलिंग। दे० 'परुष'। उ० परुषा रासि कै परुषा बरषा हिम मारुत घाम सदा सहि कै। (क० ७।३३)

परुषपन-परुषता, कठोरता। उ० प्रेम न परखिय परुषपन। (दो० २४८)

परुषाच्छर-(सं० परुषाक्षर)-कड़ुई बात, कड़ए वचन। उ० हरिषा परुषाच्छर लोलुपता। (मा० ७।१०२।४)

परुसन-(सं० परिवेषण)-परोसने की क्रिया, परोसना। उ० परुसन जबहिं लाग महिपाला। (मा० १।१७३।३)

परुसहु-परोसो, परोसने का कार्य करो। उ० तुम्ह परुसहु मोहि जान न कोई। (मा० १।१६८।३) परुसि-परोसकर। उ० सो हौं सुमिरत नाम सुधारस पेखत परुसि धरो। (वि० २२६)

परे (२)-(सं० पर)-१ दूर, २ अतीत, बाहर, दूसरे, ३ ऊपर, ऊँचे, ४ बाद, पीछे। उ० ३ भजतीह लोके परे वा नराणां। (मा० ७।१०८।८)

परेखा-दे० 'परेखो'।

परेखो-(सं० परीक्षा)-१ परीक्षा लेते हो, २ पछतावा, पश्चाताप। उ० १ काहे को परेखो पातकी प्रपंची पोच हौं। (क० ७।१२१)

परेवा-(सं० पारावत)-कबूतर।

परेश-दे० 'परेश'। उ० प्रचंड प्रकृष्ट प्रगल्भ परेश। (मा०७।१०८।५) परेश-(सं०)-परमेश्वर, परमात्मा, परात्पर प्रभु।

परेषो-दे० 'परेखो'। उ०२ ससुझि सो प्रीति की रीति स्याम की सोइ बावरि जो परेषो उर आनै। (कृ० ३८)

परेस-दे० 'परेश'। उ० परमानंद परेस पुराना। (मा० १।११६।४)

परोक्ष-(सं०)-१ जो प्रत्यक्ष न हो, जो सामने न हो, २ अज्ञात।

परोपकार-(सं०)-दूसरे की भलाई।

परोसो-(सं० परिवेषण)-१ परोसनेवाला, २ परोस दो। उ० १ पाहुने कृसानु पवमान सों परोसो। (क० ५।२४) परोसौ-१ सामने परोसा हुआ भोजन, परोसा, २ परोस दो। उ० १ तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर रे! (वि० ६७)

पर्रा-(सं० परश्व )-परसों, कल के बाद या पूर्व। उ० आजु कि काल्हि परौं कि नरौं जड़ जाहिंगे चाटि दिवारी को दीयो। (क० ७।१७६)

पर्जंत-दे० 'पर्यंत'।

पर्ण-(सं०)-पत्र, पत्ता।

पर्णकुटी-(सं०) तृण आदि की बनी झोपड़ी।

पर्णपुटी-पत्रों से बने हुए दोने।

पर्णशाल-(सं० पर्णशाला)-पत्रों से बनी कुटी।

पर्न-दे० 'पर्ण'। उ० पत्र्थ साखा पवप्रसीस अनेक पर्न सुमन घने। (मा० ७।१३। छं० ५)

पर्नकुटी-दे० 'पर्णकुटी'। उ० पंचवटी बर पर्नकुटी तर बैठे हैं राम सुभाय सुहाए। (क० ३।१)

पर्नसाल-दे० 'पर्णशाल'। उ० बिरचित तहँ पर्नसाल, अति विचित्र लषनलाल। (गी० २।४४)

पर्यंक-(सं०)-१ पलंग, खाट, २ सेज ३ मंच, ४ एक प्रकार का वीरासन। उ० १ नील पर्यंक कृत शयन सर्पेश जनु। (वि० १८)

पर्यंत-(सं०)-१ तक, लौं २ सीमा, अंत, ३ पार्श्व, बगल। उ०१ भुवन पर्यंत पद-तीनि-करण। (वि० ५२)

पर्यालोचना-(सं०)-ध्यान से देखना, समीक्षा, पूरी जाँच पड़ताल।

पर्व-(सं० पर्वन्)-१ गाँठ, संधि २ अष्टमी, ३ पूर्णिमा,

४ अमावस्या, ५ चतुर्दशी, ६ संक्रांति, ७ उत्सव, ८ सुयोग, ६ अवसर, १० पुण्यकाल। उ० ३ मंगल-मूल सिद्धि सदनि पर्व पूर्णिमा-चंदनि। (वि० ३६)
पर्वत-(सं०)-१ पहाड़, गिरि, २ देवर्षि विशेष। उ० १ पाप पर्वत-कठिन कुलिस रूप। (वि० ४६)
पलँग-(सं० पर्यंक)-चारपाई, खाट, सेज। उ० परन पखारि पलँग बैठाए। (मा० ४।२०।३)
पल (१)-(सं०)-१ घड़ी या दंड का ६० वाँ भाग, दम, क्षण, थोड़ी देर, २ मांस, ३ पयाल, ४ तृण, ५ धोखे बाजी। उ० १ जनक-नगर नर नारि मुदित मन निरखि नयन पल रोके। (गी० १।८६) २ सुधा सुनाज कुनाज पल। (दो० ४०१) ५ मोह-घन कलिमल-पल पीन जानि जिय। (क० ७।१४२) पल पल-प्रत्येक पल, क्षण क्षण। उ० पल पल के उपकार रावरे जानि बूझि सुनि नीके। (वि० १७१)
पल (२)-(सं० पलक)-पलक। उ० कर टेकि रही पल टारति नाहीं। (क० १।१७)
पलक-(सं०)-१ आँख के ऊपर का चमड़े का परदा, २ क्षण, पल। उ० १ दीन्हें पलक कपाट सयानी। (मा० १।२३२।४) २ बासर जाहिं पलक सम बीती। (मा० २।१४२।१) पलकन्हि-पलकों ने। उ० पलकन्हि हूँ परिहरी निमेषे। (मा० १।२३२।३) पलकें-'पलक' का बहुवचन। दे० 'पलक'। उ० १ पलकें न लावतीं। (क० १।१३) मु० पलकें लैहैं-सोयेंगे, पलकें बंद करेंगे। उ० यह सोभा सुख समय बिलोकत काहू तो पलकैं नहिं लैहैं। (गी० ५।५१)
पलकु-दे० 'पलक'।
पलटि-(सं० प्रलोटन) पलटकर। उ० उलटि पलटि लंका सब जारी। (मा० ५।२६।४)
पलना-(सं० पल्यंक)-झूला। उ० कबहुँ उछंग कबहुँ बर पलना। (मा० १।११८।४)
पलायन-(सं०)-भागना, भागने की क्रिया।
पलास-(सं० पलाश)-ढाक, परास का पेड़।
पलिअहिं-(सं० पालन) पालिये। उ० बायस पलिअहिं अति अनुरागा। (मा० ११५।१)
पलीता-(फ़ा० फ़तील)-बत्ती, मशाल, जिससे बारूद में आग लगाते हैं। उ० पाप पलीता, कठिन गुरु गोला पुहुमी पाल। (दो० ४१५)
पलु-(सं० पल) पल, क्षण। उ० सरप पाछिले सम अगिलो पलु। (वि० २४)
पलुहइ-(सं० पल्लव) हरा भरा कर देती है। उ० पलुहइ नारि सिसिर रितु पाइ। (मा० २।४४।३) पलुहत-हरा भरा होता है। उ० फूलत फलत पल्लवत पलुहत बिटप बेलि अभिमत सुखदाई। (गी० २।४६)
पलुहावहिंगे-(सं० पल्लव) हरा भरा करेंगे, पल्लवित करेंगे। उ० बिरह अगिनि जरि रही लता ज्यों कृपा दृष्टि जल पलुहावहिंगे। (गी० ५।१०)
पलोटन-(सं० प्रलोटन)-धीरे से पाँव दबाता है। उ० गुरु पद कमल पलोटत प्रीते। (मा० १।२२६।३) पलोटिहिं-दबावेंगी। उ० पाय पलोटिहि सब निसि दासी। (मा० २।६७।३)

पल्लव-(सं०)-१ नया पत्ता, २ अंकुर, कोंपल, ३ पत्ता, पत्र, ४ अँगुली, करज, ५ चपलता, ६ हाथ का कड़ा, ७ बल, ८ विस्तार। उ० १ बदन निकट पद पल्लव लाए। (गी० १।२०) २ घर नवल बकुल-पल्लव रसाल। (वि० १४)
पल्लवत-पल्लवयुक्त होता है, फलता-फूलता है। उ० फूलत फलत पल्लवत पलुहत। (गी० २।४६)
पल्लवित-(सं०)-१ हरा भरा, पल्लवयुक्त, २ प्रसन्न, खुश, ३ रोमांचित। उ० २ चलीं मुदित परिछनि करन पुलक पल्लवित गात। (मा० १।३४६)
पव-(सं०)-१ गोबर, २ हवा, वायु, ३ बरसाना।
पवन (१)-(सं०)-१ हवा, वायु, २ हनुमान तथा भीम के पिता, ३ प्राण, ४ जल, ५ श्वास। उ० १ गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा। (मा० १।७।५) ३ जिति पवन मन गो निरस करि। (मा० ४।१०।छं०१)
पवन (२)-(सं० पावन)-१ पवित्र, २ पवित्र करनेवाला। उ० २ परम कृपालु प्रनत प्रतिपालक पतित-पवन। (वि० २१२)
पवनकुमार-(सं०)-१ हनुमान, पवन के पुत्र, २ भीम। उ० १ प्रनवउँ पवनकुमार। (मा० १।१७)
पवनज-(सं०)-१ हनुमान, २ भीम। उ० १ सही नाथ पवनज प्रसन्नता। (गी० ५।२१)
पवनतनय-१ हनुमान, २ भीम। उ० १ पवनतनय संतत हितकारी। (वि० ३६)
पवननंदन-१ हनुमान, २ भीम। उ० १ तुलसीस पवन नंदन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत। (क० ६।४७)
पवनपूत-हनुमान। उ० सेवक भयो पवनपूत साहिब अनुहरत। (वि० १३४)
पवनसुत-१ हनुमान, २ भीम। उ० १ सुमिरि पवनसुत पावन नामू। (मा० १।२६।३)
पवनसुव-(सं० पवनसुत)-हनुमान। उ० जातुधान-बल-मान-मद दवन पवनसुव। (ह० १)
पवनसुवन-(सं० पवनसुत)-हनुमान। उ० पवनसुवन रिपु दवन भरतलाल, लखन दीन की। (वि० २०८)
पवनि (सं० पावन)-पवित्र, पूत। 'पावन' का स्त्रीलिंग। उ० गावत तुलसिदास कीरति पवनि। (गी० १।५)
पवमान-(सं०)-हवा, वायु। उ० पाहुने कृसानु पवमान सों परोसो। (क० ५।२४)
पवरि-(सं० प्रतोली)-द्वार, देहली, दरवाज़ा।
पवि-(सं०)-१ वज्र, २ बिजली, ३ हीरा, ४ सेंहुड़, ५ रास्ता, ६ वाक्य। उ० १ राहु-रवि-सक्र पवि-गर्व खर्वी करन। (वि० २५)
पवित्र-(सं०)-१ शुद्ध, साफ़, पूत, निर्मल, २ यज्ञ, ३ पानी, ४ दूध, ५ कुश। उ० १ चरित पवित्र किए संसारा। (मा० १।१२३।२)
पशु-(सं०)-जानवर, पूँछवाला प्राणी।
पशुपति-(सं०)-पशुओं के स्वामी, महादेव।
पशुपाल-(सं०)-दे० 'पसुपाल'।
पशु-दे० 'पशु'।
पश्चात्-(सं०)-१ पीछे, बाद, अनंतर, २ पश्चिम दिशा, ३ शेष, अंत।

पश्यति-(सं० -देखते हैं, निरखते हैं। उ० याम्यां बिना न पश्यति। (मा० १।श्लो० २) पश्यामि-(सं०)-मैं देख रहा हूँ।
पखवारा-(सं० पक्ष)-पाख, १५ दिन का समय।
पषाउज-दे० 'पखाउज'।
पषान-(स पाषाण)-दे० 'पखान'। १ पत्थर, २ अहल्या। उ० १ कंचन काचहि सम गनै, कामिनि काठ पषान। (वै० २७) २ कौसिक की चलत, पषान की परस पायँ। (क० ७।२०) पषाननि-पत्थरों से। उ० सुनियत सेतु पयोधि पषाननि करि कपि कटक तरो। (वि० २२६)
पषाना-दे०'पषान'। उ०१ स्रवहिं नचन सुनि कुलिस पषाना। (मा० २।२२०।४)
पषारन-(सं० प्रक्षालन)-पखारना, धोना। पषारे-पखारा। धोया। पषारि-धोकर।
पसाउ-(सं० प्रसाद, प्रा० पसाव)-१ कृपा, २ प्रसाद, ३ प्रसन्नता, ४ प्रेम, छोह। उ० २ गुरु-सुर-सम्भु-पसाउ। (प्र० ११६।३)
पसाऊ-दे० 'पसाउ'। उ० १ सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। (मा० १।८६।२)
पसारत-(सं० प्रसारण)-फैलाते हैं, फैलाता है। उ० किल कत पुनि पुनि पानि पसारत। (गी० १।२०) पसारा-फैलाया। उ० जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा। (मा० ५।२।४) पसारि-फैलाकर, पसारकर। उ० सोयत गोद पसारि। (दो० ४१४) पसारी (१)-(सं० प्रसारण)-१ फैलाया, बिछाया, २ फैलाकर। उ० २ सरन गए आगे ह्वै लीन्हों भेंट्यो भुजा पसारी। (वि० १६६)
पसारी (२)-(?)-एक प्रकार का धान।
पसीजै-(सं० प्र+स्विद्)-द्रवित होता है, पसीजता है, दयार्द्र होता है। उ० गति सुनि पाहनौ पसीजै। (कृ० ५१)
पसु-दे० 'पशु'। उ० पसु पच्छी नभ जल थल चारी। (मा० १।८५।२)
पसुपति- सं० पशुपति)-महादेव, शंकर। उ० तुलसी बराती भूत प्रेत पिसाच पसुपति सँग लसे। (पा० १०८)
पसुपाल-पशुओं का पालनेवाला, ग्वाला, अहीर। उ० पसु ज्यौं पसुपाल ईस बाँधत छोरत नहत। (वि० १३३)
पसेउ (१)-(सं० प्रस्वेद)-१ पसीना, २ पसीजना। उ० १ पोंछि पसेउ बयारि करौं। (क० २।११)
पसेउ (२)-(सं० प्रसाद)-प्रसाद।
पसेऊ-दे० 'पसेउ (१)'। उ० १ स्याम सरीर पसेऊ लसे। (क० २।२६)
पसेव-दे० 'पसेउ (१)'।
पसोपेश-(फ़ा० पस व पेश)-१ सोच विचार, आगापीछा, २ हानिलाभ, ऊँच-नीच।
पस्यामि-दे० 'पश्यामि'। उ० रन जीति रिपुदल बंधुजुत पस्यामि राम मनामय। (मा० ६।१०७।छं०१)
पहँ-(सं० पार्श्व)-पास, निकट।
पहर (१)-(सं०प्रहर)-१ तीन घंटा का समय, दिन या रात का चतुर्थांश, २ समय, ज़माना, वक्त, ३ पहरा। उ० १ पछिले पहर भूपु नित जागा। (मा०२।३८।१)
पहर (२)-(प्रा० *पहिल्ल)-प्रथम, पहला।
पहरी-(सं० प्रहर)-रक्षक, चौकीदार, पहरुआ। उ० जमकाल करालहु को पहरी है। (क० ६।२६)
पहरु-दे० 'पहरी'। उ० नाथ ही के हाथ सब चोरऊ पहरु। (वि० २५०)
पहरू-दे० 'पहरी'। उ० जम के पहरू दुख रोग वियोग। (क० ७।३१)
पहार (१)-(सं० पाषाण)-पर्वत, पहाड़। उ० छार ते सँवारिकै पहार हू तें भारी कियो। (क० ७।६१)
पहार (२)-(सं० प्रस्तार)-पहाड़ा, किसी अंक के गुणन फलों की क्रमागत सूची या नक्शा। उ० जैसे घटत न अंक नव नव के लिखत पहार। (स० १३८)
पहारा-दे० 'पहार (१)'। उ० अगम पंथ बनभूमि पहारा। (मा० २।६८।४)
पहारू-दे० ' पहार (१)'। उ० अवध सौध सत सरिस पहारू। (मा० २।६६।२)
पहिं-दे० 'पहँ'। उ० तबहिं सखरिपि सिव पहिं आए। (मा० १।७७।४)
पहचानत-पहचानता है, पहचान लेता है। उ० बिषय सुनत पहिचानत प्रीती। (मा० १।२८।३)
पहिचान-(सं० प्रत्यभिज्ञान)-१ परिचय चिन्हारी, मुलाकात, पहचानने का भाव, २ पहचाने, जाने। उ० २ पहिचान को केहि जान। (मा० १।३२१। छं० १)
पहिचानहु-पहचानते हो। उ० पहिचानहु तुम्ह कहहु सुभाऊ (मा० १।२६१।३) पहिचाना-पहिचान लिया, जान लिया, जाना। उ० राउ नृपित नहिं सो पहिचाना। (मा० १।१५८।४) पहिचानि-१ जान-पहिचान, परिचय, २ पहिचान कर, ३ पहिचानो। उ० १ प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि। (दो० २८१) पहिचानिहौ-पहिचानोगे, परिचित होगे। उ० पाल्यो है, पालत पाल हुगे प्रभु प्रनत प्रेम पहिचानिहौ। (वि० २७३) पहिचानी-१ परिचय, पहिचान, २ पहचाना, परिचय प्राप्त किया। उ० १ जदि मन हठि करिहउँ पहिचानी। (मा० ५।६।२) पहिचाने-पहिचान लिया, पहचाना। उ० राम मातु भलि सब पहिचाने। (मा० २।३३।४) पहिचानेउ-पहचानना, पहचान लेना। पहिचानेहु-पहचान लेना। उ० मैं आउब सोइ बेषु धरि पहिचानेहु तब मोहि। (मा० १।१६६) पहिचानै-पहिचान लेता है। उ० अधिक अधिक अनुराग उमँग उर, पर परमिति पहिचानै। (वि० ६५)
पहिरइ-(सं० परिधान, हि० पहिरना)-पहनता है। पहिरत-पहनते हैं। उ० देत लेत पहिरत पहिरावत प्रजा प्रमोद अघानी। (गी० १।४) पहिरहिं-पहनते है, धारण करते हैं। उ० पहिरहिं सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग। (मा० १।११) पहिरि-पहनकर। उ० छन्दिन्ह पहिरि सनाह अभागे। (मा० १।२६६।१) पहिरिय-पहिनना चाहिए। उ० तुलसी पहिरिय सो बसन जो न पखारे फीर। (दो०४६६) पहिरें-१ पहने, २ पहने हुए। उ० २ कहत चले पहिरें पट नाना। (मा०१।२६६।१) पहिरे-१ पहने, पहन लिया, २ पहने हुए।

४ अमावस्या, ५ चतुर्दशी, ६ संक्रांति, ७ उत्सव, ८ सुयोग, ९ ग्रहण, १० पुण्यकाल। उ० ६ मंगल-मुद सिद्धि सदनि पर्व शर्वरीश-वदनि। (वि० १६)
पर्वत-(सं०)-१ पहाड़, गिरि, २ देवर्षि विशेष। उ० १ पाप पर्वत-कठिन कुलिस रूप। (वि० ४६)
पलँग-(सं० पर्यंक)-चारपाई खाट, मेज। उ०चरन पखारि पलँग बैठाए। (मा० ४।२०।३)
पल (१)-(सं०)-१ घड़ी या दंड का ६० वाँ भाग, दम, छण, थोड़ी देर, २ मांस, ३ पयाल, ४ तृण, ५ धोखेबाज़ी। उ० १ जनक-नगर नर नारि मुदित मन निरखि नयन पल रोके। (गी०१।८६) २ सुधा सुनाज कुनाज पल। (दो० ५०१) ५ मोह-वन कलिमल-पल पीन जानि जिय। (क० ७।१४२) पल पल-प्रत्येक पल, छण छण। उ०पल पल के उपकार रावरे जानि बूझि सुनि नीके। (वि०१७१)
पल (२)—(सं० पलक)-पलक। उ० कर टेकि रही पल टारति नाहीं। (क० १।१७)
पलक-(सं०)-१ आँख के ऊपर का चमड़े का परदा, २ छण, पल। उ० १ दीन्हें पलक कपाट सयानी। (मा० १।२३२।४) २ बासर जाहिं पलक सम बीती। (मा० २।२५२।१) पलकन्हि-पलकों ने। उ० पलकन्हि हूँ परिहरी निमेषे। (मा० १।२३२।३) पलकैं-'पलक' का बहुवचन। दे० 'पलक'। उ० १ पलकैं न लावतीं। (क० १।१३) मु० पलकैं लैहैं-सोवेंगे, पलकें बंद करेंगे। उ० यह सोभा सुख समय बिलोकत काहु तो पलकैं नहिं लैहै। (गी० ५।२१)
पलकु-दे० 'पलक'।
पलटि-(सं० प्रलोठन) पलटकर। उ० उलटि पलटि लंका सब जारी। (मा० ५।२६।४)
पलना-(सं० पल्यंक)-झूला। उ० कबहुँ उछंग कबहुँ बर पलना। (मा० १।१६८।४)
पलायन-(सं०)-भागना, भागने की क्रिया।
पलास-(सं० पलाश)-ढाक पलाश का पेड़।
पलिअहिं-(सं० पालन) पालिये। उ० बायस पलिअहिं अति अनुरागा। (मा० १।५।१)
पलीता-(फ़ा० फ़तील)-बत्ती, मशाल, जिससे बारूद में आग लगाते हैं। उ० पाप पलीता, कठिन गुरु गोला पुहुमी पाल। (दो० ५१६)
पलु-(सं० पल) पल, छण। उ० बरप पाछिले सम अगिलो पलु। (वि० २४)
पलुहइ-(सं० पल्लव)-हरा भरा कर देती है। उ० पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई। (मा० ३।४४।३) पलुहत-हरा भरा होता है। उ० फूलत फलत पल्लवत पलुहत बिटप बेलि अभिमत सुखदाई। (गा० २।४६)
पलुहावहिंगे-(सं०पल्लव) हरा भरा करेंगे, पल्लवित करेंगे। उ० बिरह अगिनि जरि रही लता ज्यों कृपा दृष्टि जल पलुहावहिंगे। (गी० ५।१०)
पलोटत-(सं० प्रलोठन)-धीरे से पाँव दबाता है। उ० गुरु पद कमल पलोटत प्रीते। (मा० १।२२६।२) पलोटिहि-दबावेगी। उ० पाय पलोटिहि सब निसि दासी। (मा० २।६७।३)
पल्लव-(सं०)-१ नया पत्ता, २ अंकुर, कोंपल, ३ पत्ता, पत्र, ४ अँगुली, करज, ५ चंचलता, ६ हाथ का कड़ा, ७ बल, ८ विस्तार। उ० १ बदन निकट पद पल्लव लाए। (गी० १।२०) २ फर नवल बकुल-पल्लव रसाल। (वि० १४)
पल्लवत-पल्लवयुक्त होता है, फलता-फूलता है। उ० फूलत-फलत पल्लवत पलुहत। (गी० २।४६)
पल्लवित-(सं०)-१ हरा भरा, पल्लवयुक्त, २ प्रसन्न, खुश, ३ रोमांचित। उ०२,चली मुदित परिछनि करन पुलक पल्लवित गात। (मा० १।३४६)
पव-(सं०)-१ गोबर, २ हवा, वायु, ३ बरसाना।
पवन (१)-(सं०)-१ हवा, वायु, २ हनुमान तथा भीम के पिता, ३ प्राण, ४ जल, ५ श्वास। उ० १ गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा। (गा० १।७।५) ३ छिति पवन मन गो निरस करि। (मा० ४।१०।छं०१)
पवन (२)-(सं०पावन)-१ पवित्र, २ पवित्र करनेवाला। उ० २ परम कृपालु प्रनत प्रतिपालक पतित-पवन। (वि०२१२)
पवनकुमार-(सं०)-१ हनुमान, पवन के पुत्र, २ भीम। उ० १ प्रनवउँ पवनकुमार। (मा० १।१७)
पवनज-(सं०)-१ हनुमान, २ भीम। उ० १ जहाँ नाव पवनज प्रसन्नता। (गी०५।२१)
पवनतनय-१ हनुमान, २ भीम। उ० १ पवनतनय संतन हितकारी। (वि० ३६)
पवननंदन-१ हनुमान, २ भीम। उ० १ तुलसीस पवन नंदन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत। (क० ६।४७)
पवनपूत-हनुमान। उ० सेवक भयो पवनपूत साहिब अनुहरत। (वि० १३४)
पवनसुत-१ हनुमान, २ भीम। उ० १ सुमिरि पवनसुत पावन नामू। (मा० १।२६।३)
पवनसुव-(सं० पवनसुत)-हनुमान। उ० जातुधान-बल ग्यान-मान-मद दवन पवनसुव। (ह०१)
पवनसुवन-(सं० पवनसुत)-हनुमान। उ० पवनसुवन रिपु दवन भरतलाल, लखन दीन की। (वि० २७८)
पवनि (सं० पावन)-पवित्र, पूत। 'पावन' का स्त्रीलिंग। उ० गावत तुलसिदास कीरति पवनि। (गी० ३।५)
पवमान-(सं०)-हवा, वायु। उ० पाहुने कृसानु पवमान सों परोसो। (क० ५।२४)
पवरि-(सं० प्रतोली)-द्वार, देहली, दरवाज़ा।
पवि-(सं०) १ वज्र, २ बिजली, ३ हीरा, ४ सेंहुड़, ५ रास्ता, ६ वाक्य। उ० १ राहु-रवि-सक्र पवि-गर्व खर्वी करन। (वि० २५)
पवित्र-(सं०)-१ शुद्ध, साफ़, पूत, निर्मल, २ कुश, ३ पानी, ४ यूप, ५ कुआँ। उ० १ चरित पवित्र किए संसारा। (मा० १।१०३।२)
पशु-(सं०)-जानवर, पूँछवाला प्राणी।
पशुपति-(सं०)-पशुओं के स्वामी, महादेव।
पशुपाल-(सं०)-दे० 'पसुपाल'।
पशु-दे० 'पशु'।
पश्चात्-(सं०)-१ पीछे बाद, अनंतर, २ पश्चिम दिशा, ३ शेष, अंत।

पश्यंति-(सं० -देखते हैं, निरखते हैं। उ० यान्यां विना न पश्यंति। (मा० १।श्लो० २) पश्यामि-(सं०)-मैं देख रहा हूँ।

पषवारा-(सं० पक्ष)-पाख, १५ दिन का समय ।

पषाउज-दे० 'पखाउज'।

पषान-(सं पाषाण)-दे० 'पखान'। १ पत्थर, २ अहल्या। उ० १ कंचन काँचहि भ्रम गनै, कामिनि काठ पषान। (वै० २७) २ कौसिक की चलत, पषान की परस पायँ। (क० ७।२०) पषाननि-पत्थरों से। उ० सुनियत सेतु पयोधि पषाननि करि कपि कटक तरो। (वि० २२६)

पषाना-दे०'पषान'। उ०१ श्रवहिं बचन सुनि कुलिस पषाना। (मा० २।२२०।४)

पषारन-(सं० प्रक्षालन)-पखारना, धोना। पषारे-पखारा। धोया। पषारि-धोकर ।

पसाउ-(सं० प्रसाद, प्रा० पसाव)-१ कृपा, २ प्रसाद, ३ प्रसन्नता, ४ प्रेम, छोह। उ० ३ गुरु-सुर-सम्भु-पसाउ। (प्र० १।६।३)

पसाऊ-दे० 'पसाउ'। उ० १ सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। (मा० १।८१।२)

पसारत-(सं० प्रसारण)-फैलाते हैं, फैलाता है। उ० किलकत पुनि-पुनि पानि पसारत। (गी० १।२०) पसारा-फैलाया। उ० जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा। (मा० ५।२।४) पसारि-फैलाकर, पसारकर। उ० सोवत गोड़ पसारि। (दो० ४८४) पसारी (१)-(सं० प्रसारण)-१ फैलाया, बिछाया, २ फैलाकर। उ० २ सरन गए आगे ह्वै लीन्हों भेंट्यो भुजा पसारी। (वि० १६६)

पसारी (२)-(?)-एक प्रकार का धान।

पसीजै-(सं० प्र+स्विद्)-द्रवित होता है, पसीजता है, दयार्द्र होता है। उ० गति सुनि पाहनौ पसीजै। (कृ० ४२)

पसु-दे० 'पशु'। उ० पसु पच्छी नभ जल थल चारी। (मा० १।८५।२)

पसुपति-(सं० पशुपति)-महादेव, शंकर। उ० तुलसी बराती भूत प्रेत पिसाच पसुपति संग लसे। (पा० १०८)

पसुपाल-पशुओं का पालनेवाला, ग्वाला, अहीर। उ० पसु ज्यों पसुपाल ईस बाँधत छोरत नहत। (वि० १३३)

पसेउ (१)-(सं० प्रस्वेद)-१ पसीना, २ पसीजना। उ० १ पोंछि पसेउ बयारि करौं। (क० २।११)

पसेउ (२)-(सं० प्रसाद)-प्रसन्न।

पसेऊ-दे० 'पसेउ (१)'। उ० १ स्याम सरीर पसेऊ लसै। (क० २।२६)

पसेव-दे० 'पसेउ (१)'।

पसोपेश-(फा० पस व पेश)-१ सोच विचार, आगापीछा, २ हानिलाभ, ऊँच नीच।

पस्यामि-दे० 'पश्यामि'। उ० रन नीति रिपुदल बधुयुत पस्यामि राम अनामय। (मा० ६।१०७।छं०१)

पहँ-(सं० पार्श्व)-पास, निकट।

पहर (१)-(सं०प्रहर)-१ तीन घंटा का समय, दिन या रात का चतुर्थांश, २ समय, ज़माना, वक्त, ३ पहरा। उ० १ पछिले पहर भूपु नित जागा। (मा०२।३८।१)

पहर (२)-(प्रा० ४पहिल्ल)-प्रथम, पहला।

पहरी-(सं० प्रहर)-रक्षक, चौकीदार, पहरुवा। उ० जमकाल करालहु को पहरी है। (क० ६।२६)

पहरु-दे० 'पहरी'। उ० नाथ ही के हाथ सब चोरऊ पहरु। (वि० २५०)

पहरू-दे० 'पहरी'। उ० जम के पहरू दुख रोग बियोग। (क० ७।३१)

पहार (१)-(सं० पाषाण)-पर्वत, पहाड़। उ० छार तें सँवारिकै पहार हू तें भारी कियो। (क० ७।६१)

पहार (२)-(सं० प्रस्तार)-पहाड़ा, किसी अंक के गुणन फलों की क्रमागत सूची या नकशा। उ० जैसे घटत न अंक नव नव के लिखत पहार। (स० १३८)

पहारा-दे० 'पहार (१)'। उ० अगम पंथ बनभूमि पहारा। (मा० २।१६८।४)

पहारू-दे० 'पहार (१)'। उ० अवध सौध सत सरिस पहारू। (मा० २।६६।२)

पहिँ-दे० 'पहँ'। उ० तबहिं सखरिपि सिव पहिं आए। (मा० १।७७।४)

पहचानत-पहचानता है, पहचान लेता है। उ० विनय सुनत पहिचानत प्रीती। (मा० १।२८।३)

पहिचान-(सं० प्रत्यभिज्ञान)-१ परिचय चिन्हारी, मुलाकात, पहचानने का भाव, २ पहचाने, जाने। उ० २ पहिचान को केहि जान। (मा० १।३२१। छं० १) पहिचानहु-पहचानते हो। उ० पहिचानहु तुम्ह कहहु सुभाऊ (मा० १।२६१।३) पहिचाना-पहिचान लिया, जान लिया, जाना। उ० राउ तृषित नहिं सो पहिचाना। (मा० १।१५८।४) पहिचानि-१ जान-पहिचान, परिचय, २ पहिचान कर, ३ पहिचानो। उ० १ प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि। (दो० २८१) पहिचानिहौ-पहिचानोगे, परिचित होगे। उ० पाल्यो है, पालत पालहुगे प्रभु प्रनत प्रेम पहिचानिहौ। (वि० २२३) पहिचानी-१ परिचय पहिचान, २ पहचाना, परिचय प्राप्त किया। उ० १ एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। (मा० ५।६।२) पहिचाने-पहिचान लिया पहचाना। उ० राम मातु भखि सब पहिचाने। (मा० ७।३३।४) पहिचानेउ-पहचानना पहचान लेना। पहिचानेहु-पहचान लेना। उ० मैं आउब सोइ बेषु धरि पहिचानेहु तब मोहि। (मा० १।१३६) पहिचानै-पहिचान लेता है। उ० अधिक अधिक अनुराग उमँग उर, पर परमिति पहिचानै। (वि० ६२)

पहिरइ-(सं० परिधान, हि० पहिरना)-पहनता है। पहिरत-पहनते हैं। उ० देत लेत पहिरत पहिरावत प्रजा प्रमोद बधानी। (गी० १।४) पहिरहिं-पहनते हैं, धारण करते हैं। उ० पहिरहिं सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग। (मा० १।११) पहिरि-पहनकर। उ० उठि उठि पहिरि सनाह अभागे। (मा० १।२६६।१) पहिरिय-पहिनना चाहिए। उ० तुलसी पहिरिय सो बसन जो न पखारे फीर। (दो०४१६) पहिरें-१ पहने, २ पहन हुए। उ० २ बदत चले पहिरें पट नाना। (मा०१।२६६।१) पहिरे-१ पहने, पहन लिया, २ पहन हुए।

पहिराइ-पहनायी। प्रेम बिबस पहिराइ न जाइ। (मा० १।२६७।३) पहिराई-पहनाइ है। उ० पीत मगुलिया तनु पहिराई। (मा० १।१९९।६) पहिराए-पहनाया। उ० दान मान सनमानि जानि रुचि जाचक जन पहिराए। (गी० ६।२२) पहिरायउ-पहनाना। उ० यापि धनज हरषहि बसन पहिरायउ। (पा० १३७) पहिरावत-१ पहनाते हैं, २ पहिनाते हुए। उ० १ दे० 'पहिरत'। पहिरावनि-१ पहनावा, २ वस्त्रादि जो मान्य नेगी इत्यादि को विवाह में दिए जाते हैं। ३ बड़े लोगों द्वारा दिए हुए वस्त्र, खिलअत। उ० २ रुचि बिचारि पहिरावनि दीन्हीं। (मा० १।३२३।३) ३ सनमाने सुर सकल दीन्ह पहिरावनि। (पा० १५६) पहिरावहु-पहनायो। उ०पहिरावहु जयमाल सुहाई। (मा० १।२६४।३)

पहिलिहि-(प्रा०ऽप्रथिला)-पहली ही, प्रथम ही। उ०पहिलिहि पँवरि सुसामध भा सुखदायक। (पा० १२०) पहिले-प्रथम, शुरू में। पहिलेहिं-पहले से ही। उ० मो सब जनु पहिलेहिं करि रहेऊ। (मा० १।१८३।१)

पहुँच-(प्रा० प्रहुच)-१ प्रवेश, पैठ, गति, २ पकड़ दौड़, ३ प्राप्ति, ४ परिचय। उ०जाकहँ जहँ लागि पहुँच है ता कहँ तहँ लगि डार। (म० ५०)

पहुँचइहउँ-पहुँचाऊँगा। पहुँचाई-१ पहुँचायी, २ बिदा करके, पहुँचाकर। उ० २ गुह सारथिहि फिरेउ पहुँचाई। (मा०२।१४४।१)पहुँचाए-पहुँचाया। उ० अति आदर सब कपि पहुँचाए। (मा० ७।१४।३) पहुँचाएसि-पहुँचा दिया, पहुँचाया। उ०पहुँचाएसि छन माझ निकेता। (मा०१।१७१।४) पहुँचाव-१ पहुँचावेगा, २ पहुँचाता है। उ० १ जो पहुँचाव रामपुर तनु अवसान। (ब० ६७) पहुँचावन-पहुँचाने के लिए। उ० सहित सचिव गुरुबंधु चले पहुँचावन। (जा० १११) पहुँचावहि-पहुँचाती हैं, भेजती हैं। उ० भेंटि बिदा करि बहुरि भेंटि पहुँचावहि। (पा० १२८) पहुँचैहउँ-पहुँचा दूँगा। उ० पहुँचैहउँ सोवतहि निकेता। (मा० १।१६९।४)

पहुँचति-पहुँचती है। उ० बाहु बिसाल जानु लगि पहुँचति। (गी० ७।१७) पहुँची-(१)-पहुँच गई। पहुँचे-पहुँच गए। उ० स ग बेरपुर पहुँचे जाई। (मा० २।८७।१)

पहुँचियाँ-(सं० प्रकोष्ठ)-'पहुँची' नाम के एक आभूषण की जोड़ी। उ० पकज पानि पहुँचियाँ राजैं। (गी० १।२८) पहुँची (२)-कलाइ में पहनने का एक आभूषण। उ० पहुँची मन कनक सोहति। (गी० ७।१७)

पहुनइ-(सं० प्राघुण, हिं० पाहुन)-मेहमानी, पहुनाई, २ आतिथ्य, आदर। उ० २ पूनि पहुनई कीन्हि पाइ प्रिय पाहुन। (पा० १७)

पहुनाई-१ मेहमानी, २ अतिथि-सत्कार, आगत व्यक्ति की खातिर। उ०२ बिबिध भाँति होइहि पहुनाई। (मा०१।३१।१)

पाँ-(सं० पाद) पैर, पाँव।

पाँउ-दे० 'पाँ'। उ० धरहि न पाउँ धरा रे। (वि० १८१)

पाँगुर-(सं० पगु)-लँगड़ा-लूला लुंज पुंज। पाँगुरे-दे० 'पाँगुर'। उ० पाँगुरे को हाथ पाँय, आवरे को आँखि है। (वि० ६६)

पाँच-(सं० पच)-१ पाँच की संख्या, २ पंच, लोग, बहुत लोग, जनता। उ० १ मिलि दस-पाँच राम पहिं जाहीं। (मा० २।२४।१) २ तदपि उचित आचरत पाँच भल बोलहि। (जा० १०२) पाँचहि-पंचों को, लोगों को। उ० जौं पाँचहि मत लागै नीका। (मा० २।५।२)

पाँचौं-पंचों से, लोगों से, सभासदों से। उ० पहुँचि पूँछिए पाँचो। (वि० २७७)

पाँचइँ-(सं० पचमी)-प्रत्येक पक्ष की पाँचवीं तिथि। उ० पाँचइँ पाँच, परस, रस, सब्द, गंध अरु रूप। (वि० २०३)

पाँचसर-(सं० पंचसर) कामदेव। उ० नाच काँच सखि मन नाच सिखि जनु, पाँचसर सुकँसौरि। (गी० ७।१८)

पाँचा-(सं० पंच)-पाँच। उ० कहहिं परसपर मिलि दस पाँचा। (मा० २।२०६।१) दस पाँचा-कुछ, दस पाँच।

पाँछि-(?)-पाछकर, चीर कर। उ० मरसु पाँछि जनु माहुर देई। (मा० २।१६०।४)

पांडव-(सं०)-पांडु के युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव पाँच पुत्र। ये कुंती और माद्री से उत्पन्न थे। उ० ध्रुव, प्रहलाद, बिभीषन कपि जदुपति पांडव सुदाम को। (वि० ६६)

पांडु-(सं०)-१ पांडवों के पिता, २ कुछ लाली लिए पीला रंग, ३ एक रोग। उ० १ प्रभु प्रसाद सौभाग्य बिजय जस पांडु-तनय बरिआईं वरे। (वि० १२०)

पाँडर-(सं० पाडर)-१ पीला और सफेद, २ कुद का फूल। उ० २ बर बिहार चरन चारु पाँडर चपक चनार करम हार बार पार पुर पुरगिनी। (गी० २।४३)

पाँति-(सं० पंक्ति)-१ कतार, पंक्ति, अवली, २ समूह, एक। उ० १ खग-मालिका-गज ब्याधि पाँति जहँ रहँ हीँ हुँ वैगरो। (वि० १४) २ पूजत चल सता तरु पाँती। (मा० ३।२०।४)

पाँय-(सं० पाद)-पैर, पाँव। उ० सौंपि राम कर नाइन पाँय पकज गहे। (जा० २६) पाँयन-(सं० पाद)-'पाँय' का बहुवचन, चरणों। उ० सानुज भरत सप्रेम राम पाँयन नए। (जा० ३३)

पाँलागनि-(सं० पाद+लग)-पैर पड़ने की रीति, पाय लागी, प्रणाम। उ० पाँलागनि दुलहियन सिखावति सरिस सासु सत-साता। (गी० १।१०८)

पाँय-(सं० पद)-पैर।

पाँवड़ा-(सं० पाद)-वह कपड़ा जिस पर बड़े आदमी पैर रखकर चलते हैं या जो पैर पोंछने के लिए दरवाजे पर रक्खा रहता है। पायदाज। पाँवड़े-दे० 'पाँवड़ा'। उ० बसन बिचित्र पाँवड़े परहीं। (मा० १।३०६।३)

पाँवर-(सं० पामर)-पतित, पापी नीच। पाँवरनि-नीच लोगों ने। उ० बाहु पीन पाँवरनि पीना खाइ पाली हैं। (गी० १।१३)

पाँवरी-(सं० पाद, हिं० पाँव) जूता, खड़ाऊँ। उ० मुनि सिर आसिष, पाँवरी, पाइ, माह पद माथ। (म०२।५।१)

पांशु-(सं०)-धूल, रज, कण।

पांसु-दे० 'पांशु'। उ० तुलसी पुष्प-जय-कर चरन-पांसु धुष्धत। (स० २२६)

पाँसुरी-(सं० पांसुरी)-पसली, अस्थि पंजर। उ० मसक की पाँसुरी पयोधि पाटियत है। (क० ७।६६)

पा (१)-(सं० पाद)-पैर, पाँव, चरण। उ० मारतहूँ पा परिय तुम्हारें। (मा० १।२७३)

पा (२)-(सं० प्रापण) प्राप्त कर, पा कर। पाइ (१)-(सं० प्रापण)-पा कर, प्राप्त कर, पाने पर। उ० साधक सुपथिक बड़े भाग पाइ। (वि० २३) पाइअ-पायें। उ० कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा। (मा० १।१८२।१) पाइअहिं-पाते हैं, पा जाते हैं। उ० बेगि पाइअहिं पीर पराइ। (मा० २।८२।१) पाइए-१ पाए जाते हैं, २ पाए जावेंगे। उ० १ २ विरले विरले पाइए मायात्यागी संत। (वै० ३२) पाइन्हि-१ पाए, २ पा लिया। उ० १ बाजहिं ढोल निसान सगुन सुभ पाइन्हि। (जा० १२४) २ कीन्ह सभु सनमानु जनमफल पाइन्हि। (पा० ८४) पाइबी-पा जाइएगा, पा जाओगे। उ० तुलसी तीरहु के चले समय पाइबी थाह। (दो० ४४१) पाइबे-पाने, पा लेने। उ० सुगम उपाय पाइबे केरे। (मा० ७।१२०।६) पाइहउँ-दे० 'पाइहौं'। पाइहहु-पा जाओगे। उ० पुनि मम धाम पाइहहु। (मा० ६।११६ घ) पाइहि-पा जावेगा, पावेगा। उ० राम धाम पथ पाइहि सोई। (मा० २। १२४।१) पाइहैं-पायेंगे। उ० तुलसी उमा-संकर प्रसाद प्रमोद मन प्रिय पाइहैं। (पा० १६४) पाइहौं-पाऊँगा। उ० अवध विलोकि हौं पाइहौं। (गी० १।४६) पाई (१)-पाया, प्राप्त किया। उ० जब जेहिं जतन जहाँ जेहि पाई। (मा० १।३।३) पाउ (२)-१ पाया, २ पावे, मिले। उ० १ राम नाम को प्रभाव पाउ महिमा प्रताप। (क० ७।७२) पाउब-पाउँगी, पाओगे। उ० जाब जहँ पाउब तहाँ। (मा० १।६७। छं० १) पाऊँ-१ प्राप्त हो, मिले मिल जाय, २ मैं पाऊँ। पाए-१ पाया, पा गए, २ पाने पर। उ० १ पाए जू! बँधायो सेतु। (क० ६।३) २ पाए पालिये जाग मनु मृग। (गी० ३।३) पाएहि-पाने, मिलने। उ० पाएहि पै जानियो करम-फल। (वि० १७३) पाता (१)-पा जाता, प्राप्त करता। पाती (१)-प्राप्त करती, हासिल करती। पाय (१)-१ पाकर, २ पाया, पा गया। पायउ-पाया, प्राप्त किया। उ० देखि वसा करुनाकर हर दुख पायउ। (पा० ४६) पायऊ-पाए। उ० सिय रूप रासि निहारि लोचन लाहु लोगन्हि पायऊ। (जा० ६०) पायहु-पाये, पाए हैं। उ० वर पायहु कीन्हेहु सब काजा। (मा० ६।२०।२) पाया (१)-प्राप्त किया। उ० यह अपराध कीन्ह फल पाया। (मा० १।१३६।२) पाये-१ प्राप्त किए, मिले, २ प्राप्त करने में। पायेसि-पा लिया, पा गया। उ० जग जय-मद निदरेसि हर, पायेसि फर सेउ। (पा० २१) पायो-पाया, पाया है। उ० पायो केहि घृत बिचार हरिन बारि महत। (वि० १३३) पाव (१) (सं० प्रापण)-१ पावेगा, पा सकेगा, २ पा जाय, ३ पाता है, पाते हैं। उ० १ राम मीतिरत काम कहा यह पाव' (व० ७) २ सरलसील जिमि पाय सिऊरा। (मा० १।३३४।३) पावइ-पावे। उ० आपुनु उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा। (मा० १।१८३। छं० १) पावइ-१ पावे, प्राप्त करे, २ पाते हैं। उ० २ जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई। (मा० ४।३०। छं० १) पावत-१ पा करके, २ पाते हैं, ३ पाते ही। उ० २ नेवते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग। (मा० १।६०) पावति-पाती, पाती है। उ० पावति नाव न बोहितु बेरा। (मा० २।२२७।२) पावहिं-१ पाते हैं, २ पावेंगे, ३ पावें। उ० ३ आवहुँ बेगि नयन फलु पावहिं। (मा० २।११।१) पावहीं-१ पाते हैं, २ पावेंगे। उ० १ भूप सुनि सुख पावहीं। (जा० ६) २ तुलसी सकल कल्यान ते नर नारि अनुदिन पावहीं। (जा० २१६) पावहु-पाओ, प्राप्त करो। उ० ईस मनाइ असीसहिं जय जस पावहु। (जा० ३२) पावहुगे-पाओगे, प्राप्त करोगे। उ० पावहुगे फल आपन कीन्हा। (मा० १। १३७।३) पावा-पाए, प्राप्त किए, पा सके। उ० सपनेहुँ नहि प्रतिपच्छिन्ह पावा। (मा० २।१०४।३) पावै-प्राप्त हो। उ० मुनि उदवेगु न पावै कोई। (मा० २।१२६।१) पावौं-पाऊँ, प्राप्त करूँ। उ० पावौं में तिन्हकै गति घोरा। (मा० २।१६८।२) पैयत-१ पाये जाते हैं, २ पाता हूँ, ३ मिलता है, मिल सकता है। उ० ३ अलि पैयत रवि पाहीं। (कृ० ४८) उ० १ धरम बरन आस्रमनि के पैयत पोथिही पुरान। (वि० १६२) पैहहिं-पावेंगे। उ० एहि तें जसु पैहहिं पितु माता। (मा० १।६७।२) पैहहि-पावेगी, पावेगा। उ० पैहहि सनाय तनु कहत बजाय तोहि। (ह० २६) पैहहु-पाओगी, पाओगे। उ० हिये हेरि हठ तजहु हठै दुख पैहहु। (पा० ६२) पैहैं-पावेंगे। उ० राम बाम दिसि देखि तुमहिं सब नयनवत लोचन फल पैहैं। (गी० २।२१) पैहै-पावेगा। उ० विस्वद्रवन सुर-साधु-सतावन रावन कियो आपनो पैहै। (गी० २।४८) पैहौं-पाऊँगा, पा जाऊँगा। उ० उपजी उर प्रतीति, सपनेहुँ सुख प्रभुपद विमुख न पैहौं। (वि० १०४) पैहौ-पाओगे।

पाइँ-दे० 'पाँ'। उ० पाइँ तर थाइ रहौं सुरसरि तीर हौं। (क० ७।१६६)

पाइ (२)-(सं० पाद)-पैर, पाँव। उ० कमल कंटकित सजनी, कोमल पाइ। (ब० २६)

पाइक-(सं० पादातिक, पायिक)-१ पियादा, हरकारा, २ मल्ल, कसरत या तमाशा करनेवाले। उ० २ सब करहिं पाइक फहराहीं। (मा० १।३०४।४)

पाइमाल-(सं०पाद्+मलना)-पददलित,पामाल,नष्ट। उ० देहि सीय मतो, पिय! पाइमाल जाहिगो। (क० ६।२३)

पाई (२)-(सं० पाद) एक चौपाई अनुमान।

पाउ (१)-(सं० पाद)-१ पाँव, चरण, २ चौपाई। उ० १ बेगि पाउ धारिअ थलहि। (मा० २।२८४) २ राम! रावरे बनाए बनै पल पाउ में। (वि० २६१)

पाऊ-दे० 'पाउ (२)'।

पाक (१)-(सं०)-१ पकाने की क्रिया, २ रसोई पक्वान, ३ औषधियों का पाक, ४ पचना, ५ एक दैत्य जिसे इंद्र ने मारा था। उ० २ आपु गए जहँ पाक बनावा। (मा० १।२०१।२) ५ दे० 'पाकरिपु'।

पाक (२)-(फ़ा०)-पवित्र, साफ, शुद्ध । उ० अजनीकुमार सोध्यो राम पानि पाक हौं । (ह० ४०)
पाकड़-(स० पर्कटी)-एक वृक्ष ।
पाकत-(स०पक्व)-१ पकते समय, २ पकते हुए, ३ पकता है । उ० १ ईति भीति जिमि पाकत साली । (मा० २।२२३।१) पाकी-१ पक्का, परिपक्व, २ तैयार, ३ पक गई । उ० १ धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी । (मा० ७।१२७।४) पाके-पके, पककर तैयार हुए । उ० पाके, पक्ये बिटप-दल उत्तम मध्यम नीच । (दो० ४१०)
पाकरि-दे० 'पाकड़' ।
पाकरिपु-(स०)-'पाक' नाम के राक्षस को मारनेवाले इंद्र । उ० मनहुँ पाकरिपु चाप सँवारे । (मा० १।२४७।२)
पाकरी-दे० 'पाकड़' । उ० बट पीपर पाकरी रसाला । (मा० ७।२६।४)
पाकारिजित्-(स०)-दे० 'पाकरिपु' । पाकारि अर्थात् इंद्र को जीतनेवाला मेघनाद । उ० दुष्ट-रावन-कुंभकरन पाकारिजित्-मर्मभित्-कर्म-परिपाक-दाता । (वि० ३६)
पाखंड-(स० पाषंड)-१ ढोंग, आडंबर, ढकोसला, २ छल, धोखा, ३ दंभ, ४ वेदविरुद्ध आचार । उ० १ प्रबल पाखंड-महिमंडलाकुल देखि । (वि० ४२) ४ सदा खंडि पाखंड निर्मूलकारी । (वि० ४३)
पाखंडमुख पाखंडी, धूर्त । उ० कपट मकट, विकट व्याघ्र पाखंडमुख । (वि० ४६)
पाखंडी-पाखंड करनेवाला, धूर्त ।
पाख-(स० पक्ष)-१ पक्ष, प्रत्येक महीने का अँधेरा या उजेला पक्ष, २ १५ की संख्या ।
पाखु-दे० 'पाख' । उ० २ भयउ पाखु दिन सजत समाजू । (मा० २।११।२)
पाग-(स० पाक)-चीनी या गुड़ की तैयार चाशनी जिसमें मिठाई आदि पागते हैं । उ० बुँदिया सी लंक पचिलाइ पाग पागिहै । (क० ५।१७)
पागिहैं-(स० पाक) पागेंगे, चाशनी में डुबाएँगे । उ० दे० 'पाग' । पागी-मग्न हुई, तन्मय हुई सनी, चिपटी । उ० शुद्ध-मति-युवति-पत प्रेम-पागी । (वि० ३६) पागे-१ पगे हुए, लीन सने, २ पग गए, ३ पागा । उ० १ मृदुल विनीत प्रेम रस पागे । (मा० १।१९६।४)
पाछ-(सं० पश्च)-पीछे । उ० ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं चितयउँ पाछ उड़ात । (मा० ७।७९ क)
पाछिल-(स० पश्च)-पिछला, पीछे का । उ० पाछिल दुख न हृदय अस ब्यापा । (मा० १।६३।३) पाछिली-पिछली, पीछे की, पहली । उ० परिहरि पाछिली गलानि । (वि० १३३) पाछिले-पीछे का, पहले का, पुराने लोगों का । उ० सगति न जाइ पाछिले को उपजातु है । (क०७।६७)
पाछे-१ बाद में, अनतर, २ पीछे । उ० १ बाँचिहैं न पाछे त्रिपुरारिहू मुरारिहू के । (क० ६।१)
पाटबर-रेशमी वस्त्र । उ० दे० 'पाट (१)' ।
पाट (१)-(स० पट्ट, पाट)-१ रेशम, २ पटुआ, सन्मन । उ० १ हेम और मरकत धवरि लसत पाटमय डोरि । (मा० १।२८८) १ पाट कीट तें होइ तेहि तें पाटबर रुचिर । (मा० ७।६५ ख)
पाट (२)-(स० पट्ट)-प्रधान, मुख्य । उ० जनक पाटमहिषी जग जानी । (मा० १।३२४।१)
पाटन-(स० उत्पाटन)-नष्ट भ्रष्ट करना । उ० मोहाम्भोधर पूग पाटनविधौ स्वःसंभव शंकर । (मा० ३।१। श्लो० १)
पाटल-(स०)-१ गुलाब, २ वृक्ष विशेष, जिसमें केवल फूल होते हैं फल नहीं । ३ सफेदी मिला लाल रंग, गुलाबी । उ० २ ससार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा । (मा० ६।६०। छं० १)
पाटि-(स० पाट)-१ पट्टी, पटिया, तख्ता, २ पाटकर । उ० १ चारु पाटि पटी पुरट की झरकत मरकत भौंर । (गी० ७।१६) पाटियत-(स० पाट)-पाटना चाहता, पाटता । उ० मसक की पाँसुरी पयोधि पाटियत है । (क० ७।६६) पाटे-पाट दिया, भर दिया, समथल कर दिया ।
पाटीर-(स०)-एक प्रकार का चंदन । उ० पाटीर पाटि विचित्र भँवरा बलित बेलिन लाल । (गी० ७।१८)
पाठ-(स०)-सबक, पढ़ाई । उ० बारिदु को धुदु को मन को दस आठ को पाठ कुठाट ज्यों फारै । (क० ७।१०४)
पाठक-(स०)-१ पढ़ानेवाला, गुरु, २ विद्यार्थी, पढ़ने वाला ।
पाठीन-(स०)-एक मछली, पहिना । उ० मीन पीन पाठीन पुराने । (मा० २।११६।२)
पाणि-(स०)-हाथ । पाणौ-दोनों हाथों में । उ० पाणौ महा सायक चारु चापं । (मा० ३।१। श्लो० २)
पाणिग्रहण-(स०)-विवाह की एक रीति, विवाह ।
पाणी-दे० 'पाणि' ।
पात (१)-(स०)-१ पतन, गिरना, २ राहु । उ०१ बार बार पविपात, उपल घन बरषत बूँद बिसाल । (दो० १८)
पात (२)-(स० पत्र)-१. पत्ता, २ कान का एक आभूषण ।
पात (३) (स० पक्ति)-१ कतार, पंक्ति २ साथ खाने वाले, कुल के लोग । उ० २ पात भरी सहरी, सकल सुत बारे-बारे । (क० २।८)
पातक-(स०)-पाप, महापाप, अघ । उ० ते पातक मोहि होहुँ बिधाता । (मा० २।१६७।४)
पातकिनि-पापिनी, पापाचारिणी । उ० यह कुचालु करि पातकिनि कहसि कोपगृह जाहु । (मा० २।२२) पातकी-पापी पाप करनेवाला । उ० तेरे ही नाय को नाम लै येचिहौं पातकी पामर प्रानन्हि पोसों । (क० ७।१२०)
पातकु-दे० 'पातक' । उ० दीन्ह उतर फिरि पातकु लहऊँ । (मा० २।११२।४)
पातरि-दे० 'पातरी । उ० २. चाटत रह्यौं स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो । (वि० २२६)
पातरी-(सं० पत्र)-१ पतली महीन, २ पत्तल, पत्रों का थाल ।
पाता (२)-(स० पातृ)-रक्षक, रक्षा करनेवाला, त्राता । उ० अपति रनधीर रघुबीर-हित देवमनि रुद्र अवतार ससार पाता । (वि० २५)
पाता (३)-(सं० पत्र)-पत्ता । उ० ए महि परहिं डासि कुस पाता । (मा० २।११६।४)
पाताल-(सं०)-१ पुराणानुसार पृथ्वी के नीचे के सात लोकों में सातवाँ, २ गुफा, बिल, ३ सात पाताल, यथा

अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल। उ० १ भूमि-पाताल जल गगन-गाता। (वि० २४)
पातालु–दे० 'पाताल'।
पाती (२)–(स० पत्र)–पत्र, चिट्ठी। उ० तात कहाँ ते पाती आई। (मा० १।२९०।४)
पाती (३)–स० पति)–इज्जत, मर्यादा।
पातु–(स०)–रक्षा करें, रक्षा करो। उ० श्री शंकर पातु माम्। (मा० २।१। श्लो० १)
पात्र–(स०)–१ बर्तन, २ उपयुक्त, योग्य, ३ नाटक का पात्र। उ० १ मिलित जल पात्र अज-युक्त हरिचरन रज। (वि० १८) २ कृपापात्र रघुनायक केरे। (मा० ७।७०।१)
पाथ (१)–(स० पाथस्)–पानी जल। उ० जैसे श्रम-फल घृतहित मथे पाथ। (वि० ८४)
पाथ (२)–(स० पथ)–मार्ग, रास्ता।
पाथकी–१ रास्ता, २ नदी, ३ जल की।
पाथनाथ–(स०)–समुद्र। उ० कृपा पाथनाथ सीतानाथ सानुकूल हैं। (क० ५।३०)
पाथप्रद–(स०)–बादल। उ० 'भले नाथ!' माइ माथ चले पाथप्रदनाथ। (क० ५।११)
पाथा–दे० 'पाथ (१)'। उ० सोइ गुन अमल अनूपम पाथा। (मा० १।१२।४)
पाथोज–(स०)–कमल। उ० नील पीत पाथोज-बरन बपु, बय किसोर बनिआई। (गी० १।५०)
पाथोजनाभ–(स०)–विष्णु, जिनकी नाभि से कमल उत्पन्न हुआ हो। उ० तप्तकांचन-वस्त्र शास्त्र विद्या निपुन सिद्ध सुर-सेव्य पाथोजनाभ। (वि० ५०)
पाथोजपानी–(स० पाथोजपाणि)–कमल जिनके हाथ में है, विष्णु। उ० मदन मर्दन मदातीत मायारहित मंजुमानाथ पाथोजपानी। (वि० ५६)
पाथोद–(स०)–बादल, मेघ। उ० पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचन। (मा० ३।३२। छं० १)
पाथोधि–(स०)–समुद्र। उ० सर्वदानंद-संदोह, मोहापह, घोर-संसार-पाथोधि-पोत। (वि० ४६)
पाद–(स०)–१ पाँव, चरण, पैर, २ चतुर्थांश, किसी चीज का चौथा भाग, ३ किरण, ४ छोटा पर्वत, ५ श्लोक या पद्य का चरण ६ पुस्तक का खंड या अंश, ७ वृक्ष का मूल, ८ नीचे का भाग, ९ चलना, गमन। उ० १ न यावद् उमानाथ पादारविन्दं। (मा० ७।१०८।७)
पादप–(स०)–वृक्ष, पेड़। उ० भव-संसार-पादपे-कुठार। (वि० ५०)
पादुकन्हि–पादुकाओं में। उ० जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ। (मा० २।५२) पादुका–(स०)–खड़ाऊँ, जूता। उ० सिंहासन पर पूजि पादुका बारहिं बार जोहारे। (गी० २।७६)
पादोदक–चरणोदक, देवता अथवा ब्राह्मण के पैर धोने का पानी या चरण धोया पानी। उ० पद पखारि पादोदक लीन्हा। (मा० ७।४८।१)
पान–पीने की क्रिया पीना, आचमन। उ० मधुप मुनिवृन्द कुर्वन्ति पान। (वि० ६०) पान (१)–(स०)–१ पीने की वस्तुएँ, २ पीना, ३ मद्यपान। उ० १ पान, पकवान विधि नाना को सँधाना, सीधो। (क० ५।२३) ३ मान ते ग्यान पान तें लाजा। (मा० ३।२१।४)
पान (२)–(स० पर्ण)–१ पत्र, पत्ता, २ तांबूल। उ० २ देइ पान पूजे जनक दसरथु सहित समाज। (मा० १। ३२९)
पानहिन्ह–(स० उपानह)–पानहीं का बहुवचन, जूते। उ० बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाएँ। (मा० २।२६२।३) पानही–जूता पनहीं। उ० इतनी जिय लालसा दास के कहत पानही गहिहौं। (वि० २३१) पानहीं–(स० उपानह)–पनहीं भी, जूता भी। उ० मंजु मधुर मृदु मूरति, पानहीं न पायनि। (गी० २।२४)
पाना (१)–(स० पान)–१ पान, पीना, २ पीने की वस्तु, ३ मद्यपान। उ० १ दरस परस मज्जन अरु पाना। (मा० १।३५।१)
पाना (२)–(स० पर्ण)–१ पत्र, पत्ता, २ तांबूल। उ० १ औषध मूल फूल फल पाना। (मा० २।६।१)
पानि–दे० 'पाणि'। उ० दक्षिण पानि बानमेकं। (वि० ५१) पानिहि–हाथ में। उ० कटि के छीन बरिनिआँ छाता पानिहि हो। (रा० ८)
पानिग्रहन–दे० 'पाणिग्रहण'। उ० पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा। (मा० १।१०१।२)
पानी (१)–(स० पानीय)–१ जल, २ वर्षा, ३ ओप, चमक, ४ प्रतिष्ठा, मान, ५ वर्ष, साल, ६ शुक्र, बीज, ७ समय, अवसर। उ० १ राम सुप्रेमहिं पोषत पानी। (मा० १।४३।१)
पानी (२)–(स० पाणि)–हाथ, कर। उ० जयत जय वज्र तनु, दसन नख, मुख विकट, चंड भुजदंड-तरु, सैल-पानी। (वि० २५)
पाप–(स०)–१ अघ, अधर्म, बुरा कर्म २ कष्ट, कठिनाई। उ० १ पाप संताप घनघोर संसृति दीन। (वि० ११) २ भयो परिताप पाप जननी जनक को। (क० ७।७३)
पापवंत–पापी, पाप करनेवाला, अघी। उ० पापवंत कर सहज सुभाऊ। (मा० २।४४।२) पापहि–पाप का, पापों का। उ० हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति। (मा० १।१८३)
पापा–दे० 'पाप'। उ० प्रभु पद देखि मिटा सो पापा। (मा० ३।३३।४)
पापिउ–(स०पापिन्)पापी भी। उ०पापिउ जाकर नाम सुमिरहीं। (मा०४।२९।२) पापिन–'पापी' का बहुवचन, पाप करने वाले। उ० चलिहैं छूटि पुंज पापिन के असमंजस जिय जनिहैं। (वि० ९५) पापिनि–दे० 'पापिनी'। उ० सबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि। (मा० २।१३।४) पापिनिहि–पापिन को। उ० नहिं पापिनिहि बूझि का परेऊ। (मा० २।४७।१) पापिनी–पाप करनेवाली, अघिनी। उ० ताहि आहि पापिनी! मलीन मन माहँ की। (ह० २१) पापिहि–पापी को। उ० एहि पापिहि मैं बहुत रोआवा। (मा० १।७१।७) पापी–पातकी, अघी, पाप करने

पाक (२)-(फा०)-पवित्र, साफ, शुद्ध। उ० सजनीकुमार सोध्यो राम पानि पाक हीं। (ह० ४०)

पाकड़-(स० पर्कटी)-एक वृक्ष।

पाकत-(स०पक्व)-१ पकते समय, २ पकते हुए, ३ पकता है। उ० १ ईति भीति जिमि पाकत साली। (मा० २।२५३।१) पाकी-१ पक्का, परिपक्व, २ तैयार, ३ पक गई। उ० १ धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी। (मा० ७।१२७।४) पाके-पके, पककर तैयार हुए। उ० पाके, पकये विटप-दल उत्तम मध्यम नीच। (दो० ४१०)

पाकरि-दे० 'पाकड़'।

पाकरिपु-(स०)-'पाक' नाम के राक्षस को मारनेवाले इन्द्र। उ० मनहुँ पाकरिपु चाप सँवारे। (मा० १।२४७।२)

पाकरी-दे० 'पाकड़'। उ० बट पीपर पाकरी रसाला। (मा० ७।२६।४)

पाकारिजित्-(स०)-दे० 'पाकरिपु'। पाकारि अर्थात् इन्द्र को जीतनेवाला मेघनाद। उ० दुष्ट-रावन-कुंभकरन पाकारिजित्-मर्मभित्-कर्म-परिपाक-दाता। (वि० २६)

पाखंड-(स० पाषंड)-१ ढोंग, आडंबर, ढकोसला, २ छल, धोखा, ३ दंभ, ४ वेदविरुद्ध आचार। उ० १ प्रबल पाखंड महिमंडलाकुल देखि। (वि० ५२) ४ सदा खंडि पाखंड निर्मूलकारी। (वि० ५३)

पाखंडमुख-पाखंडी, धूर्त। उ० कपट मर्कट, विकट व्याघ्र पाखंडमुख। (वि० ५६)

पाखंडी-पाखंड करनेवाला, धूर्त।

पाख-(स० पक्ष)-१ पक्ष, प्रत्येक महीने का अँधेरा या उजेला पक्ष, २ १५ की संख्या।

पाखु-दे० 'पाख'। उ० २ भयउ पाखु दिन सजत समाजू। (मा० २।१।२)

पाग-(स० पाक)-चीनी या गुड़ की तैयार चाशनी जिसमें मिठाई आदि पागते हैं। उ० मूँदिया सी लंक पघिलाइ पाग पागिहै। (क० २।१४)

पागिहै-(स० पाक) पागेंगे, चाशनी में डुबायेंगे। उ० दे० 'पाग'। पागी-मग्न हुई, तन्मय हुई, सनी, चिपटी। उ० शुद्ध मति-युवति-रत प्रेम-पागी। (वि० ३६) पागे-१ पगे हुए, लीन भये, २ पग गए, ३ पागा। उ० १ मृदुल विनीत प्रेम रस पागे। (मा० १।१४६।४)

पाछु-(सं० पश्च)-पीछे। उ० ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं चितयउँ पाछ उड़ात। (मा० ७।७९ क)

पाछिल-(स० पश्च)-पिछला, पीछे का। उ० पाछिल दुखु न हृदय अस व्यापा। (मा० १।६३।३) पाछिली-पिछली, पीछे की, पहली। उ० परिहरु पाछिली गलानि। (वि० १६३) पाछिले-पीछे का, पहले का, पुराने लोगों का। उ० सुगति न जाइ पाछिले का उपसानु है। (क०७।६४)

पाछे-१ बाद में, अनन्तर, २ पीछे। उ० १ बांधिहैं न पाछ त्रिपुरारिहू मुरारिहू के। (क० ६।१)

पाटंबर-रेशमी वस्त्र। उ० दे० 'पाट (१)'।

पाट (१)-(स० पट्ट, पाट)-१ रेशम, २ पटुआ, पटसन। उ० १ हेम बौर मरकत घवरि लसत पाटमय डोरि। (मा० १।२८८) १ पाट कीट तें होइ तेहि तें पाटंबर रुचिर। (मा० ७।९५ ग)

पाट (२) (स० पट्ट)-प्रधान, मुख्य। उ० जनक पाटमहिषी जग जानी। (मा० १।३२४।१)

पाटन-(स० उत्पाटन)-नष्ट भ्रष्ट करना। उ० मोहाम्भोधर पूग पाटनविधौ स्व सम्भव शंकर। (मा० ३।१। श्लो० १)

पाटल-(स०)-१ गुलाब, २ वृक्ष विशेष, जिसमें केवल फूल होते हैं फल नहीं। ३ सफेदी मिला लाल रंग, गुलाबी। उ० २ ससार महँ पूरुष त्रिविध पाटल रसाल पनस समा। (मा० ६।९०। छं० १)

पाटि-(स० पाट)-१ पट्टी, पटिया, तख्ता, २ पाटकर। उ० १ चारु पाटि पटी पुरट की भरकत मरकत भौंर। (गी० ७।१६) पाटियत-(स० पाट)-पाटना चाहता, पाटता। उ० मसक की पाँसुरी पयोधि पाटियत है। (क० ७।६६)

पाटे-पाट दिया, भर दिया, समथल कर दिया।

पाटीर-(स०)-एक प्रकार का चंदन। उ० पाटीर पारि विचित्र भँवरा वलित बेलिन लाल। (गी० ७।१८)

पाठ-(स०)-सबक, पढ़ाई। उ० बारिहु को छुहु को मन को दस आठ को पाठ कुकाठ ज्यों फारै। (क० ७।१०४)

पाठय-(सं०)-१ पढ़ानेवाला, गुरु, २ विद्यार्थी, पढ़ने वाला।

पाठीन-(स०)-एक मछली, पहिना। उ० मीन पीन पाठीन पुराने। (मा० २।११६।२)

पाणि-(सं०)-हाथ। पाणी-दोनों हाथों में। उ० पाणौ महा सायक चारु चापं। (मा० २।१। श्लो० ३)

पाणिग्रहण-(स०)-विवाह की एक रीति, विवाह।

पाणी-दे० 'पाणि'।

पात (१)-(स०)-१ पतन, गिरना, २ राहु। उ० १ बार बार पविपात, उपल घन बरषत बूँद बिसाल। (कृ० १८)

पात (२)-(स० पत्र)-१ पत्ता, २ कान का एक आभूषण।

पात (३)-(स० पंक्ति)-१ कतार, पंक्ति २ साथ खाने वाले, कुल के लोग। उ० २ पात भरी सहरी, सकल सुत बारे-बारे। (क० २।८)

पातक-(स०)-पाप, महापाप, अघ। उ० ते पातक मोहि होहुँ बिधाता। (मा० २।१६७।४)

पातकिनि-पापिनी, पापाचारिणी। उ० यह कुघातु करि पातकिनि कहेसि कोपगृह जाहु। (मा० २।२२) पातकी-पापी, पाप करनेवाला। उ० तेरे ही नाथ को नाम लै बेचिहैं पातकी पामर प्रानन्हि पोसों। (क० ७।१२७)

पातउ-दे० 'पातक'। उ० दीन्ह उतर फिरि पातकु लहई। (मा० २।१६२।४)

पातरि-दे० 'पातरी'। उ० २ चाटत रह्यौ स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो। (वि० २२६)

पातरी-(सं० पत्र)-१ पतली, महीन, २ पत्तल, पत्तों का थाल।

पाता (२)-(स० पातृ)-रक्षक, रक्षा करनेवाला, त्राता। उ० जयति रनधीर रघुबीर-हित देवमनि रुद्र-अवतार संसार पाता। (वि० २२)

पाता (३)-(स० पत्र)-पत्ता। उ० ए महि परहिं डासि कुस पाता। (मा० २।११६।४)

पाताल-(सं०)-१. पुराणानुसार पृथ्वी के नीचे के सात लोकों में सातवाँ, २ गुफा, बिल, ३ माया पाताल, धमा

अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल। उ० १ भूमि-पाताल जल-गगन-गाता। (वि० २४)
पातालु–दे० 'पाताल'।
पाती (२)–(सं० पत्र)–पत्र, चिट्ठी। उ० तात कहाँ से पाती आई। (मा० १।२९०।४)
पाती (३)–(सं० पति)–इज्जत, मर्यादा।
पातु–(सं०)–रक्षा करें, रक्षा करो। उ० श्री शंकर पातु माम्। (मा० २।१। श्लो० १)
पात्र–(सं०)–१ बर्तन, २ उपयुक्त, योग्य, ३ नाटक का पात्र। उ० १ मिलित जल पात्र अज युक्त हरिचरन रज। (वि० १८) २ कृपापात्र रघुनायक केरे। (मा० ७।७०।१)
पाथ (१)–(सं० पाथस्)–पानी, जल। उ० जैसे श्रम-फल घृतहित मथे पाथ। (वि० ८४)
पाथ (२)–(सं० पथ)–मार्ग, रास्ता।
पाथकी–१ रास्ता, २ नदी, ३ जल की।
पाथनाथ–(सं०)–समुद्र। उ० कृपा पाथनाथ सीतानाथ सानुकूल हैं। (क० ५।३०)
पाथप्रद–(सं०)–बादल। उ० 'भले नाथ!' नाइ माथ चले पाथप्रदनाथ। (क० ५।११)
पाथा–दे० 'पाथ (१)'। उ० सोइ गुन अमल अनूपम पाथा। (मा० १।४२।४)
पाथोज–(सं०)–कमल। उ० नील पीत पाथोज-बरन बपु, बय किसोर बनिआइ। (गी० १।५०)
पाथोजनाभ–(सं०)–विष्णु, जिनकी नाभि से कमल उत्पन्न हुआ हो। उ० तप्तकांचन-वस्त्र शस्त्र विद्या निपुन सिद्ध सुर-सेव्य पाथोजनाभ। (वि० ५०)
पाथोजपानी–(सं० पाथोजपाणि)–कमल जिनके हाथ में है, विष्णु। उ० मदन मर्दन मदातीत मायारहित मंजुमानाथ पाथोजपानी। (वि० ५६)
पाथोद–(सं०)–बादल, मेघ। उ० पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचन। (मा० ३।३२। छं० १)
पाथोधि–(सं०)–समुद्र। उ० सर्वदानंद-संदोह, मोहापह, घोर-संसार-पाथोधि-पोत। (वि० ४६)
पाद–(सं०)–१ पाँव, चरण, पैर, २ चतुर्थांश, किसी चीज का चौथा भाग, ३ किरण, ४ छोटा पर्वत, ५ श्लोक या पद्य का चरण, ६ पुस्तक का खंड या अंश, ७ वृक्ष का मूल ८ नीचे का भाग ९ चलना, गमन। उ० १ म यावद् उमानाथ पादारविन्दं। (मा० ७।१०८।७)
पादप–(सं०)–वृक्ष, पेड़। उ० भव-संसार-पादपे-कुठार। (वि० ५०)
पादुकन्हि–पादुकाओं में। उ० जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ। (मा० ५।४२) पादुका–(सं०)–खड़ाऊँ, जूता। उ० सिंहासन पर पूजि पादुका बारहिं बार जोहारे। (गी० २।०६)
पादोदक–चरणोदक देवता अथवा ब्राह्मण के पैर धोने का पानी या चरण धोया पानी। उ० पद पखारि पादोदक लीन्हा। (मा० ७।४८।१)
पान–पीने की क्रिया पीना, आचमन। उ० मधुप मुनिवृंद कुर्वन्ति पान। (वि० ६०) पान (१)–(सं०)–१ पीने की वस्तुएँ, २ पीना, ३ मद्यपान। उ० १ पान, पकवान विधि नाना को सँधानो, सीधो। (क० ५।२३) ३ मान ते ग्यान पान तें लाजा। (मा० ३।२१।५)
पान (२)–(सं० पर्ण)–१ पत्र, पत्ता, २ तांबूल। उ० २ देइ पान पूजे जनक दसरथु सहित समाज। (मा० १। ३२९)
पानहिन्ह–(सं० उपानह)–पानहा का बहुवचन, जूते। उ० बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाएँ। (मा०२।२१२।३) पानही–जूता, पनहीं। उ० इतनी जिय लालसा दास के कहत पानही गहिहौं। (वि० २३१) पानहीं–(सं० उपानह)–पनहीं भी, जूता भी। उ० मंजु मधुर मृदु मूरति, पानहीं न पायनि। (गी० २।२५)
पाना (१)–(सं० पान)–१ पान, पीना, २ पीने की वस्तु, ३ मद्यपान। उ० १ दरस परस मज्जन अरु पाना। (मा० १।३५।१)
पाना (२)–(सं० पर्ण)–१ पत्र, पत्ता, २ तांबूल। उ० १ औषध मूल फूल फल पाना। (मा० २।६।१)
पानि–दे० 'पाणि'। उ० दक्षिण पानि बानमेक। (वि० ५१) पानिहि–हाथ में। उ० कटि के छीन बरिनियाँ छाता पानिहि हो। (रा० ८)
पानिग्रहन–दे० 'पाणिग्रहण'। उ० पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा। (मा० १।१०१।२)
पानी (१)–(सं० पानीय)–१ जल, २ वर्षा, ३ ओप, चमक, ४ प्रतिष्ठा, मान, ५ वर्ष, साल, ६ शुक्र, वीर्य, ७ समय, अवसर। उ० १ राम सुप्रेमहिं पोषत पानी। (मा० १।४३।१)
पानी (२)–(सं० पाणि)–हाथ, कर। उ० जयत जय वज्र तनु, दसन नख, मुख विकट, चंड-भुजदंड-तरु, सैल पानी। (वि० २५)
पाप–(सं०)–१ अघ, अधम, बुरा कर्म, २ संकट, कठिनाई। उ० १ पाप संताप घनघोर संसृति दीन। (वि० ११) २ भयो परिताप पाप जननी जनक को। (क० ७।७३) पापवत–पापी, पाप करनेवाला, अघी। उ० पापवत कर सहज सुभाऊ। (मा० ५।४४।२) पापहि–पाप का, पापों का। उ० हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति। (मा० १।१८३)
पापा–दे० 'पाप'। उ० प्रभु पद देखि मिटा सो पापा। (मा० ३।३३।७)
पापिउ–(सं०पापिन्) पापी भी। उ०पापिउ जाकर नाम सुमिरहीं। (मा०१।२११।२) पापिन–'पापी' का बहुवचन, पाप करने वाले। उ० चलिहैं छूटि पुंज पापिन के असमंजस जिय जनिहैं। (वि० ९५) पापिनि–दे० 'पापिनी'। उ० तबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि। (मा० २।११३।४) पापिनिहि–पापिन को। उ० जदि पापिनिहि बूझि का परेउ। (मा० २।२७।१) पापिनी–पाप करनेवाली, अपिनी। उ० पराहि जाहि पापिनी! मलीन मन मांहँ की। (ह० २६) पापिहि–पापी को। उ० पुरि पापिहि मैं बहुत सेवाया। (मा० ६।७१।७) पापी–पातकी, अघी, पाप करने

याला। उ० होहु निमाचर जाइ तुम्ह कपटी पापी दोउ। (मा० १।१३५)
पापिष्ट-पापात्मा, अधर्मी, अघी। उ० पायो सो फलु पापिष्ट। (मा० ६।११३।५)
पापु-दे० 'पाप'।
पामर-(स०)-नीच, अधम, कमीना, दुष्ट। उ० तेरे ही नाथ को नाम लै बेचिहौं पातकी पामर प्राननि पोसों। (क० ७।१२७) पामरन्हि-'पामर' का बहुवचन। दे० 'पामर'।
पायँ-(स० पाद)-पैर को। उ० दडक-दुहुमि पायँ-परस पुनीत भइ। (वि० २५७) पायँन-'पाय' का बहुवचन, पैरों। उ० रावरे दाय म पायँन को, पग धूरि की भूरि प्रभाउ महा है। (क०२।७) पाय (२)-(स० पाद)-चरण, पैर। उ०लपन सीय रघुवस मनि, पथिक पाय उर आनि। (प्र० २।२।४) पायनि-पैरों में। उ०-पानह्यों न पायनि। (गी० २।२२) पायन्ह-चरणों में। उ० परिहरि सकुचि सप्रेम पुलकि पायन्ह परी। (जा० १८६)
पायक (१)-(स० प्रापण)-पाने को। उ० कछु सुभाउ अनु नरतनु-पायक। (गी० २।३)
पायक (२)-(स० पादातिक)-१ दूत, हरकारा, २ नट, ३ प्रैदल, ४ ध्वजा। उ० १ जाकेहनूमान से पायक। (मा० ६।६३।२)
पायम-(स०)-खीर, तसमयी। उ० पायस पाइ विभाग करि। (प्र० ४।१।२)
पाया (२)-(स० पाद)-खभा, खम।
पाया (३)-(स० पद)-पद, पदवी, ओहदा।
पायिर-(स० पादातिक)-दूत, हरकारा।
पार-दे० 'पार'। उ० २ विकट वेष, विभु वेद पार। (वि० १२) पार-(स०)-१ नदी या समुद्र का अपर तट या सीमा, २ परे, बाहर, ३ आगे, ४ दूर अलग, ५ अंत, समाप्ति, छोर, ६ ओर, तरफ। उ० १ सिंधु पार सेना सब आई। (मा० ५।२७।४) २ प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। (मा० ७।०२।४) पारहि-(स० पार)-उस पार, उस पार को। उ० अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहिं। (मा० ६।४)
पारई-(?)-पराइ, सकोरा, मिट्टी का कटोरा। उ० मनि भाजन मधु, पारइ पूरन अमी निहारि। (दो० ३५१)
पारखी-(स० परीक्षा, हिं० परख)-१ 'परख' करनेवाला जिसमें परखने की योग्यता हो, योग्य, २ जौहरी। उ० १ सोइ पंडित सोइ पारखी सोइ सत सुजान। (वै० ४८)
पारण-(स०)-१ व्रत या उपवास के दूसरे दिन किया जानेवाला पहला भोजन और तत्संबंधी कृत्य, २ बादल, ३ समाप्ति, अंत, ४ तृप्त करने की क्रिया या भाव।
पारथ-(सं० पार्थ) १ पृथा (=कुंती) के पुत्र अर्जुन, २ पांडव। उ० १ भारत में पारथ के रथकेतु कपिराज। (ह० २) २ सहज प्रवेस करत जेहि आश्रम विगत-विषाद भए पारथ नलु। (वि० २४)
पार्थिव-(स० पार्थिव)-पृथ्वी का। मिट्टी का बना शिव लिंग। उ० पूजि पार्थिव नायउ माथा। (मा०२।१०३।१)
पारथी-दे० 'पारधिर'।
पारद-(स०)-१ पारा, रसराज, २ पार कर देनेवाला, ससार समुद्र से पार करानेवाला। उ० तुलसी तुरत पराइ ज्यों पारद पावक-आँच। (दो० ३२१)
पारन-दे० 'पारण'। उ० परहित निरत सो पारन बहुरि न व्यापत मोक। (वि० २०३)
पारबति-दे० 'पारबती'। उ० रामकृपा तें पारबति सपनेहुँ तव मन माहि। (मा० १।११२)
पारबतिहि-पार्वती को। उ०पारबतिहि निरमयउ जेहिं सद करिहि कल्यान। (मा० १।७१) पारबती-(स० पार्वती)-उमा, गौरी, शकर की स्त्री। उ० पारबती मन मति अचल धनु चालक। (जा० १०४)
पारस (१)-(स० स्पर्श)-एक कल्पित पत्थर जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि यदि लोहा उसमे छू जाए तो सोना हो जाता है। उ० जनम रक जनु, पारस पावा। (मा० १।३५०।४)
पारस (२)-(स० परिवेषण)-परसा हुआ भोजन, परोसा।
पारसु-दे० 'पारस (१)'। उ० मानहुँ पारसु पायउ रक। (मा० २।२३८।२)
पारहिं (१)-(स० पारय, हिं० पारना)-समर्थ नहीं हो सकता, नहीं सकता। उ० ललकि लोभाहिं नयन मन, फेरि न पारहिं। (जा० १३)
पारहिं (२)-(स० पतन, हिं० पड़ना, पाटना)-१ पटकते हैं, गिराते हैं, डालते हैं, २ डालें, पटकें। उ० १ पकरि एक मर्दि महि पारहिं। (मा० ६।८१।३) पारा (१)-(स० पतन)-गिराया, पटका। उ० तुम्ह जेहि लागि बज्रपुर पारा। (मा० २।४१।४) पारी (१)-(स० पतन)-गिराया, डाला, डाल दिया, फेंका। उ० प्रभु सात भुजा काटि महि पारी। (मा० ६।१००।५)
पारा (२)-(स० पार)-१ पार, उस पार, २ पार किया। उ० १ कब जैहउँ दुखसागर पारा। (मा० ११५।१)
पारा (३)-(स० पारय)-पूरा किया बनाया। पारी (२)-बनाया, पूरा किया।
पारायणं-दे० 'परायण'। उ० नौमि नारायण नर करुणा-यन ध्यान पारायणं ज्ञान मूलम्। (वि० ३०) परायण (स०)-१ समाप्ति, पूरा करने का कार्य, २ समय बाँध कर किसी ग्रंथ का आद्योपांत पाठ, ३ लीन, तत्पर।
पारावत-(स०)-कबूतर, कपोत। उ० मोर हस सारस पारावत। (मा० ७।२८।३)
पारावार-(स०)-१ आरपार, दोनों तट, २ सीमा, अंत, हद, ३ समुद्र। उ० २ रूप कन पारावार। (गी०७।१६)
पारिखि-दे० 'पारखी'। उ० २ कर्म कनक मनि पारिखि पाएँ। (मा० २।२८३।२)
पारिखी-दे० 'पारखी'।
पारिखो-दे० 'पारखी'। उ० १ नारद को परदा न सो पारिखो। (क० ११६)
पारिजात-(स०)-१ स्वर्गलोक का एक वृक्ष, २ हरसिंगार
पारिषद-(सं०)-१ सभासद, परिषद में बैठनेवाला, २ गण, ३ सेवक।
पारी (३) (स० वार, हिं० बारी)-बारी, अवसर, क्रम

पारी (४)-(स० पार)-पार किया ।

पारु-(स० पार)-पार, किनारा । उ० निगम सेष नारद सुख शकर बरनत रूप न पावत पारु । (गी० ७।१०)

पारू-पार, उस पार । उ० होत बिलबु उतारहि पारू । (मा० २।१०१।१)

पारे-सामर्थ्य, समर्थता । उ० प्रभु कोमल चित चलत न पारे । (गी० २।२)

पारो-पार पा सकते हो । उ० मधुकर कहहु कहन जो पारो । (कृ० २४)

पार्थ-(स०)-अर्जुन । दे० 'पारथ' ।

पार्थिव-(स०)-दे० 'पारथिव' ।

पार्‌यो-(स० पतन)-गिरा कर । उ० गहि भूमि पारयो लात मार्‌यो । (मा० ६।९७।छं१)

पार्वती-(स०)-हिमालय की कन्या और शिव की स्त्री । पार्वती ने एक बार राम की परीक्षा लेने के लिए 'सीता' का रूप धारण किया । यह बात उन्होंने शकर से छिपाई जिससे वे रुष्ट हो गए । बाद में पार्वती बिना निमत्रण के अपने पिता हिमालय के घर चली गईं जहा शकर का अपमान देख उन्होंने यज्ञ विध्वस किया तथा कुंड में अपने को जला डाला । दूसरे जन्म में पार्वती ने फिर बहुत तप के बाद शकर को पति रूप में प्राप्त किया । उ० जासु नाम सर्वस सदा सिव पार्वती के । (गी० १।१२)

पार्षद-दे० 'पारिषद' ।

पार्श्व-(स०)-१ कख का अधोभाग, बगल, २ समीप, पास ।

पाल (१)-(स०)-१ पालक, पालन करनेवाला, २ पालन, रक्षा । उ० १ दुर्जन को काल सो कराल पाल सज्जन को । (ह० १०)

पाल (२)-(स० पट) नाव पर तानने का कपड़ा ।

पालइ-(स० पालन)-पालता है । उ० पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक । (मा० २।३१५) पालत-१ पालते हैं, पाला करते हैं । २ पालन कर रहे हो, ३ पालते हुए । उ० १ पालत नीति प्रीति पहिचानी । (मा० २।२०४।३) २ पाल्यो है, पालत, पालहुगे । (वि० २२३) पालति-पालती है, रक्षा करती है । उ० जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की । (मा० २।१२६। छं० १) पालबी-पालना, पालन करना, पालन कीजिएगा । उ० पालबी सब तापसनि ज्यों राज धरम बिचारि । (गी० ७।२६) पालहिं-१ रक्षा करते हैं पालन पोषण करते हैं, २ रखते हैं, निर्वाह करते हैं, ३ नहीं टलते हैं । उ० २ अनुचित उचित बिचार तजि जे पालहिं पितु बैन । (दो० ५२१) पालही-रक्षा करो, पालन करो । उ० जेहि भाँति सोकु कलकु जाइ उपाय करि कुल पालही । (मा० २।५०। छं० १) पालहु-पालन करो, रक्षा करो । उ० पालहु प्रजा सोकु परिहरहू । (मा० २।१७५।१) पालहुगे-पालन करोगे, रक्षा करोगे । उ० दे० 'पालत' । पाला (१)-रक्षा की, पालन-पोषण किया । पालि-१ रक्षा करके, पालन करके, २ पाला करो । उ० २ सखी कहै सखी सों तू प्रेम पय पालि, री । (क० १।१२) पालिए-रक्षा कीजिए, पालन कीजिए । उ० दिन सदा सा पालिए सेवक की नाईं । (वि० ३५) पालित-(स०)-रक्षित, पाला हुआ, २ स्थापित । उ० १ भीषम-द्रोन करनादि-पालित, कालदृक, सुयोधन चमू निधन हेतू । (वि० २८) पालिबीं-पालन कीजिएगा । उ० ए दारिका परिचारिका करि पालिबीं करुना नई । (मा० १।३२६।छं३) पालिबी-पालन कीजिएगा । पालिबे-पालने, रक्षा करने । उ० पालिबे को कपि-भालु-चमू जमकाल कराजहु को पहरी है । (क० ६।२६) पालिहइ-दे० 'पालिहै' । पालिहिं-पालन करें । उ० पितु आयसु पालिहिं दुहुँ भाईं । (मा० २।३१५।२) पालिहै-पालेगा, रक्षा करेगा । उ० आनन सुखाने कहैं 'क्योंहूँ कोऊ पालिहै ?' (क० ५।१०) पाली-१ पालन किया, रक्षा की, २ पूरी की । उ० २ बसत हिये हित जानि मैं सबकी रुचि पाली । (वि० १४७) पालु-१ पालन करो, २ पालन करनेवाला । उ० १ पालु बिबुधकुल करि छल छाया । (२।२९५।१) २ सरनागत प्रिय प्रनत-पालु । (वि० १५४) पालू-१ पालन करो, २ रक्षा करो । पाले-१ पालने पर, रक्षा करने पर, २ पाला, रक्षा की, निर्वाह किया, ३ अधीन, वश में । उ० २ आलसी अभागे मोसे तैं कृपालु पाले पोसे । (वि० २५०) ३ परेहु कठिन रावन के पाले । (मा० ६।६०।४) पालेहु-पालन करना । उ० पालेहु प्रजहि करम मन बानी । (मा० २।१५२।२) पालो-१ पालन करो, २ पाला हुआ । उ० २ पालो तेरे टूक को, परहूँ चूक मूकिए न । (ह० ३४) पाल्यो-पालन किया, पाला । उ० पाल्यो है, पालत, पालहुगे प्रभु प्रनत प्रेम पहिचानिहौ । (वि० २२३)

पालउ-(स० पल्लव)-पत्रों को, पत्ते को । उ० पेड काटि तैं पालउ सींचा । (मा० २।१६१।४)

पालक-(स०)-१ पालन करनेवाला, रक्षक, २ पाला हुआ, लड़का । उ० १ बिस्वनाथ पालक कृपालुचित, लालति नित गिरिजा सी । (वि० २२)

पालकिन्ह-पालकियों पर । उ० कुअँरि चढ़ाईं पालकिन्ह सुमिरे सिद्धि गनेस । (मा० १।३३८) पालकीं-पालकियाँ । दे० 'पालकी' । उ० सजि सुंदर पालकीं मगाईं । (मा० १।३३८।४) पालकी-(स० पर्यक)-एक प्रकार की सवारी जिसे आदमी कंधे पर लेकर चलते हैं । म्याना, डोली ।

पालन-(स०)-१ रक्षण, भरण पोषण, २ भग न करना, न टलना, निर्वाह । उ० १ जग सभव पालन लय कारिनि । (मा० १।१८।२)

पालनकरता-(स० पालनकर्त्ता)-पालनेवाला, रक्षक ।

पालना-(स० पर्यक)-झूला, हिंडोला । पालने-पालने पर । दे० 'पालना' । उ० रहत न बैठे ठाढ़ पालने झुलावत हू । (गी० १।१२)

पालनिहार-पालनेवाला, रक्षक । उ० बिधि से करनिहार, हरि से पालनिहार । (गी० ५।२५)

पालनो-दे० 'पालना' । उ० कनक रतनमय पालनो रच्यो मनहुँ मार सुत हार । (गी० १।११)

पालन्ह-पालनेवाला, रक्षक गण ।

पालव-(स० पल्लव)-१ कोमल पत्ते, २ शाखा, डाली, टहनी । उ० २ पालव बैठि पेडु एहिं काटा । (मा० २।४७।१)

पाला (२)-पालनेवाले, रक्षक। उ० विधि हरि हर ससि रवि दिसिपाला। (मा० २।२४४।३)
पालागौं-(सं० पाद+लग्न)-पैर लगती हूँ, पैर पड़ती हूँ। उ० तौ सकोच परिहरि पाउँलागौं परमारथहि बखानो। (कृ० ३४)
पालिका-(सं०)-पालन करनेवाली, पालनेवाली। उ० देहि द्वै प्रमत्त, पाहि प्रणत पालिका। (वि० १६) पालिके-हे पालन करनेवाली। उ० तेरे ही प्रसाद जग जग जग पालिके। (क० ७।१७३)
पाँवर-दे० 'पाँवर'। उ० आन जात पाँवर का जाना। (मा० ११११।३) पाँवरन्हि-दे० 'पामरन्हि'। उ० भए काम बस जोगीस तापस पाँवरन्हि की को कहै। (मा० १।८५। छं० १)
पाव (२)-(सं० पाद)-१ चतुर्थांश, २ पैर। उ० २ पंथ देत नहिं पाव। (वै० १२)
पावक-(सं०)-१ आग, अग्नि, २ ताप, गर्मी, ३ तेज, ४ सूर्य, ५ शुद्ध या पवित्र करनेवाला, ६ सदाचार, ७ एक वृक्ष। उ० १ इंदु-पावक-भानु नयन। (वि० ११)
पावकु-दे० 'पावक'। उ० १ छाइ भवन पर पावकु धरेऊ। (मा० २।४७।१)
पावड़े-दे० 'पाँवड़े'।
पावन-(सं०)-१ पवित्र, शुद्ध, २ पवित्र करनेवाला। जल, अग्नि, गोबर, गंगा, तथा सत्संग आदि। उ० १ जासु पावन रावन नाग महा। (मा० ६।१११।२) पावनि-(सं० पावन)-१ पवित्र, २ पवित्र करनेवाली। उ० १ रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी। (मा० १।३१।६) पावनी-१ पवित्र, २ पवित्र करनेवाली। उ० २ जयति जय सुरसरी जगदखिल-पावनी। (वि० १७)
पावनताई-पवित्रता। उ० कहि सक्‍क न पावनताई। (मा० ७।६६।१)
पावनि (२)-(सं० प्रापण)-पानेवाली। उ० समधी सकल सुआसिनि गुरु तिय पावनि। (जा० २१४)
पावनो-पवित्र। उ० सुनि पवन सोधि सनेहु तुलसी सोच पयपिचस पावनो। (पा० ७४)
पावस-(सं० प्रावृष्)-बरसात, सावन भादों का महीना। उ०पावस समय कछु अवध बरनत सुनि अघौघ नसावहीं। (गी० ७।१६)
पाश-(सं०)-१ रस्सी, २ फन्दा, फाँसी।
पाषंड-दे० 'पाखंड'। १ ढोंग, आडंबर, २. माया, छल, धोखा, ३ वेदविरुद्ध आचार। उ० २ मुनि उग्र करि पावड। (मा० ३।६)
पाषंडी-पाखंड करनेवाला, धूर्त, नीच। उ० पाषंडी हरिपद विमुख, जानहिं झूठ न साच। (मा० ७।११४)
पाप-दे० 'पाप'।
पापर,-(सं० पर्पट) पंखुरी, छोटे-छोटे पत्ते, तृण।
पाषाण-(सं०)-१ पत्थर, २ ओला, ३ गौतम की स्त्री अहल्या ४ कठोर, ५ गेरू।
पाषान-दे० 'पाषाण'। उ० २ गाजि तरजि पाषान बरषि। (वि० ६५)
पाषाना-दे० 'पाषाण'। उ० १ टारइ परसु परिघ पाषाना। (मा० ६।७३।१)
पासंग-(फा०)-पसँघा, डंडी बराबर करने के लिए तराजू के पलड़े पर रक्खी गई कोई चीज़। पासंगहू-पसँगा भी। दे० 'पासंग'। उ० मेरे पासंगहु न पूजिहैं। (वि० २४१)
पास (१)-दे० 'पाश'। उ० असित माया-पास। (वि० ६०)
पास (२)-(सं० पार्श्व)-१ पास, समीप, २ ओर।
पासा (१)-दे० 'पास (२)'। उ० १, होत सिमिटि इक पासा। (वि० ४२) २ उमगत प्रेमु मनहुँ चहुँ पासा। (मा० २।२२०।४)
पासा (२)-(सं० पाशक)-चौसर खेलने की गोटी। पासे-दे० 'पासा (२)'। उ० तुलसी सबै सराहत भूपहि भल पैंत पासे सुढर ढरे, री। (गी० १।७४)
पासु-(सं० पार्श्व)-१ समीप, निकट, २ निकटता, समीपता। उ० २ सुमुख मधुप इव तजइ न पासू। (मा० १। १७।२)
पाहन-(सं० पाषाण)-१ पत्थर, ओला, २ अहल्या। उ० १ जागत जलु पवि पाहन डारइ। (मा० ७।२०।२) २ पाहन पसु पतग कोल भील निसिचर। (वि० २५७)
पाहनी-पत्थर भी। उ० खग मृग मीन सलभ सरसिज गति सुनि पाहनी पसीजै। (कृ० ४२)
पाहनकृमि-पत्थर का कीड़ा जो लाल रंग का होता है। यह पत्थर में पैदा होता और वहीं रहता है। उ० पाहनकृमि जिमि कठिन सुभाऊ। (मा० २।६०।१)
पाहरु-(सं० प्रहर)-प्रहरी, चौकीदार।
पाहरू-दे० 'पाहरु'। उ० गुहँ बोलाइ पाहरू प्रतीती। (मा० २।६०।२) पाहरूई-पहरेदार ही, प्रहरी ही। उ० पाहरूई चोर हेरि हिय हहरानु है। (क० ७।८०)
पाहि-(सं०)-रक्षा करो, बचाओ। उ० तुलसी 'पाहि' कहत नत-पालक मोहुँ से निपट निकाम पे। (गी० ५।२१)
पाहीं-(सं० पार्श्व)-१ समीप, पास, निकट, २ से, प्रति। उ० १ अछि पैरत रवि पाहीं। (कृ० ५८) २ राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं। (मा० २।१०६।१)
पाहीं (१)-दे० 'पाहि'। उ० कहेसि पुकारि प्रनत हित पाहीं। (मा० ३।२।५)
पाही (२)-(सं० पार्श्व) वह खेती जो दूसरे गाँव में की जाय। घर से दूर की खेती। उ० पाही खेती, लगन बट, ऋण कुब्याज मग-खेत। (दो० ४७८)
पाहुन-(सं० प्राघुण)-अतिथि, मेहमान। उ० दे० 'पाहुनई'। पाहुनि-पाहुनी, स्त्री मेहमान। उ० पाहुनि पावन प्रेम प्रान की। (मा० १।२८६।२) पाहुने-दे० 'पाहुन'। उ० पाहुने कृसानु पवमान सों परोसो। (क० ५।२१)
पाहूँ (१)-(सं० पार्श्व) पास समीप।
पाहूँ (२)-(सं० पाद) पैर भी। उ० द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद परि पाहूँ। (वि० २७५)
पिंग-(सं०)-पीला, पीलापन लिए भूरा। उ० पिंग नयन, भृकुटी कराल, रसना दसनानन। (क० ३)
पिंगल-(सं०)-१ पीला, भूरापन या ललाई लिए पीला, २ सूर्य, ३ एक मुनि जो छंद शास्त्र के आदि आचार्य कहे

जाते हैं। ४ एक बंदर का नाम, ५ आग, ६ उल्लू पक्षी, ७ एक संवत्सर, ८ चमगादर। उ० १ जयति बालार्क बर-बदन, पिंगल नयन, कपिस-कर्कस-जटाजूट धारी। (वि० २८)

पिंगला-(सं०)-एक प्रसिद्ध भगवद्भक्त वेश्या। इसने एक धनिक को जाते देखा और उनकी प्रतीक्षा में बहुत रात तक बैठी रही। जब धनिक बहुत रात बीत जाने पर भी न आया तो उसे ज्ञान प्राप्त हुआ और आशा को जो सारे दुखों का मूल है छोड़ उसने शांति प्राप्त की। उ०गज पिंगला अजामिल। (वि० २१२)

पिंजरन्हि-पींजरों में। दे० 'पिंजरा'। उ० कनक पिंजरन्हि राखि पढ़ाए। (मा० १।३३८।१) पिंजरा-(सं० पंजर)-लोहे या बाँस आदि की तीलियों का बना झाबा जिसमें पक्षी आदि पाले जाते हैं।

पिंड-(सं०)-१ शरीर, २ कोई गोल वस्तु, गोला, ३ पके चावल का गोल लादा जो श्राद्ध में पितरों को दिया जाता है। ४ भोजन, आहार। उ० ३ कौने गीध अधम को पितु ज्यों निज कर पिंड दियो। (गी० ५।४६) पिंडोदक-(सं०)-पिंडा और तर्पण, पिंडा-पानी। उ० दे० 'पिंड'।

पिअत-(सं०पा)-दे० 'पियत'। उ० १ पिअत नयन पुट रूपु पियूषा। (मा०२।११४।३) पिअहिं-पीते हैं। उ० जहँ जल पिअहिं बाजि गज ठाटा। (मा० ७।२९।१) पिउ (१)-पिओ, पान करो। पिए-पान किए।

पिअर-दे० 'पियर'। उ० पिअर उपरना काखासोती। (मा० १।३२७।४)

पिआउ-पिलाओ, पान कराओ। उ० आँचों जल जाहि कहै अमिय पिआउ सो। (वि० १८२) पिआएँ-१ पिलाया, २ पिलाने से। उ० १ भयउँ जथा अहि दूध पिआएँ। (मा० ७।१०६।३)

*पिआरा-(सं० प्रिय)-प्यारा, प्रिय। उ० रामहि सेवकु परम* पिआरा। (मा० २।२१०।१) पिआरी-दे० 'पियारी'। उ० दे० 'पियहिं'।

पिआस-(सं० पिपासा)-प्यास, तृषा। उ० आस पिआस मनो मलहारी। (मा० १।४३।१)

पिआसे-(पिपासित)-प्यासे, तृषित। उ० थके नारि नर प्रेम पिआसे। (मा० २।११६।२)

पिउ (२)-(सं० प्रिय)-प्रियतम, पिय।

पिक-(सं०)-कोयल, कोकिला। उ० सुनहु तमचुर मुखर, कीर कलहंस पिक। (गी० १।३४) पिकबयनी-कोयल के समान मधुर बोलनेवाली। उ० पिकबयनी मृगलोचनी सारद ससि सम तुंड। (गी० ७।११)पिकबैनी-दे० 'पिकबयनी'। उ० मनसहु अगम समुझि यह अवसरु कत सकुचति पिकबैनी। (गी० १।७६)

पिचकनि-(सं० पिच्च)-पिचकारियाँ। उ० भरत परसपर पिचकनि मनहुँ मुदित नर नारि। (गी० २।४७)

पिचकारि-दे० पिचकारी'। उ० कोलिन्द अबीर, पिचकारि हाथ। (गी० ७।२२)

पिचकारी-(सं० पिच्च) एक प्रकार का नलदार यंत्र जिसका व्यवहार जल या दूसरे तरल पदार्थ जोर से फेंकने और फेंकने के लिए होता है। पिचका।

पिछौरी-(सं० पक्ष+पट)-दुपट्टा, चादर, ओढ़नी। उ० मंगलमय दोउ, अंग मनोहर ग्रथित चूनरी पीत पिछौरी। (गी० १।१०३)

पिटारी-(सं० पिटक)-छोटा संदूक, डब्बा।

पितर-(सं० पितृ)-पुरखा, पूर्वपुरुष, पूर्वज। उ० गुर सुर संत पितर महि देवा। (मा० १।१२५।२)

पितहि-पिता को। उ० पितहि बुझाइ कहहु बलि सोई। (मा० २।४३।३) पितहु-पिता के। उ० पितहु मरन कर मोहि न सोकू। (मा० २।२११।१) पिता-(सं० पितृ का कर्त्ता एक वचन)-१ बाप, उत्पन्न करनेवाला, जनक, २ रक्षक। उ० १ पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू। (मा० ६।६१।३) पिताहूँ-पिता भी। उ० भली भाँति पछिताब पिताहूँ। (मा० १।६४।१) पितै-पिता भी। उ० तुलसिदास कासों कहै तुमहीं सब मेरे प्रभु गुरु मातु पितै हौ। (वि० २७०) पितौ-पिता भी। उ० तुलसी प्रभु भजिहैं सभु धनु भूरि भाग सिय मातु पितौ री। (गी० १।७५)

पितु-दे० 'पिता'। उ० १ काहि कृपान, कृपा न कहूँ पितु काल कराल बिलोकि न भागे। (क०७।१२८) पितुआना-पिता की। उ० लखन तुम्हार सपथ पितुआना। (मा० २।२३२।२)

पिधान-(सं०)-आच्छादन, ढक्कन। उ० सुख के निधान पाए, हिय के पिधान लाए। (गी० १।६२)

पिनाक-(सं०)-शिव का धनुष, अजगव। उ० लोकप बिलोकत पिनाक भूमि लई है। (गी० १।८४) पिनाकहि-धनुष के, पिनाक के। उ० नाक पिनाकहि संग सिधाई। (मा० १।२६६।४)

पिनाकी-(सं० पिनाकिन्)-शिव, महादेव। उ० सेव सकुचित, सकित पिनाकी। (क० ६।४४)

पिनाकु-दे० 'पिनाक'। उ० घोर कठोर पुरारि-सरासन नाम *प्रसिद्ध पिनाकु। (गी० १।८७)*

पिपासा-(सं०)-१ प्यास, तृषा, २ लालच, लोभ। उ० १ जातें लाग न छुधा पिपासा। (मा० १।२०१।४)

पिपीलिकउ-चींटी भी। उ० चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु बिनु श्रम पारहि जाहिं। (मा० १।१३) पिपीलिका-(सं०)-चींटी। उ० जिमि पिपीलिका सागर थाहा। (मा० ३। १।३)

पिबंति-पीते हैं, पीते रहते हैं। उ० धन्यास्ते कृतिनः पिबंति सततं श्रीराम नामामृतम्। (मा० ७।१। श्लो० २)

पिय-(सं० प्रिय)-१ स्वामी, पति २ प्यारा। उ० १ कहन चह्यो संदेस, नहिं कह्यो, पिय क जिय की जानि हृदय दुसह दुख दुरायो। (गी० ५।१५) २ पूजति सिय पिय-पतिहि बिसूरि। (गी० २।११)

पियत-(सं० पा)-१ पीता है ? पीता, पान करता। पियतु-दे० 'पियत'। पियहिं-पीते हैं। पियहि-(१) पीता है। पिये-१ पीने पर, पान करने पर, २ पान किया, पीया। उ० १ पुलकति प्रेम पियूर पिये। (गी० १।७) पियौं-पीऊँ, पीनू। उ० मुनिहि कृपि जग पियौं जाइ श्रम। (मा० ६।२०।१) पिवत-पीता है पान करता है। उ० चरित-सुर सरित कबि-मुख्य गिरि निःसरति पिबत मज्जत मुदित संत समाजा। (वि० ५५) पी (१)-पीकर,

पान करके। पीयो-१ पीना, पान करना, २ पीयोगे। उ० १ अजहुँ न तजत पयोधर पीयो। (कृ० ६) पीय (१)-पीकर, पानकर। पीवत-१ पीता है, पान करता है, २ पीते हुए। उ० २ मज्जत पय पावन पीवत जलु। (वि० २४) पीवन-पीना, पान करना। उ० चोंच मूदि पीवै नहीं धिग पीवन पन जाइ। (स० १८) प.ते-पीता, पान करता। उ० दे० 'पीवन'।

पियर-(स० पीत)-पीला। पियरी-पीली। उ० पियरी झीनी झँगुली साँवरे सरीर खुली। (गी० १।३०) पियरे-पीले। उ० तैसी तरकसी, कटि कसे पट पियरे। (गी० १।४१)

पियहि (२)-(स० प्रिय)-पति को, स्वामी को। उ० होइहि सतत पियहि पिआरी। (मा० १।६७।२)

पियाउ-पिलाओ, पान कराओ। पियावहिं-पिलाते हैं। उ० मरकपाल जल भरि भरि पियहिं पियावहिं। (पा० १११)

पियारा-(स० प्रिय)-'प्यारा'। पियारी-प्यारी प्रिया, प्रेम पात्री। उ० दीन्हीं मुदित गिरिराज जे गिरिजहि पियारी। (पा० १४७) पियारे-प्यारे, प्रीतम, स्नेही। उ० समरथ सुवन समीर के रघुबीर पियारे। (वि० ३३)

पियास-(स० पिपासा)-१ प्यास, पानी पीने की इच्छा, २ इच्छा, कामना। उ० १ तुलसिदास प्रभु बिनु पियास मरै पसु। (वि० १६६)

पियासा-(स० पिपासित)-१ प्यासा, २ लालची, जिसमें किसी तरह की कामना हो। उ० १ राम नाम-रति स्वाति-सुधा सुभ-सीकर प्रेम पियासा। (वि० ६५) पियासे-प्यासे, तृषित। उ० बिहूने गुन पथिक पियासे जात पथ के। (क० ७।२४)

पियूष-(स०)-१ अमृत, २ दूध, ३ पानी ४ उस गाय का दूध जिसे बच्चा दिये सात दिन से अधिक हो गया हो। उ० १ पोषत पयद समान सब विष पियूष के रूप। (दो० ३७७)

पियूषा-दे० 'पियूष'। उ० पिअत नयन पुट रूपु पियूषा। (मा० २।१११।६)

पिराति-(स० पीडन)-दुखती, दर्द करती। उ० तीन तेरी, पीर, मोहिं पीर तें पिराति है। (ह० ३०) पिरातो-१ पिराना दर्द करता, २ दुखी होता। उ० २ मइ साधु सुनि समुझि कै पर-पीर पिरातो। (वि० १५१) पिराने-दुखने लग। उ० बैठिअ होइहिं पाय पिराने। (मा० १।२०८।१) पिरानो-दुखा, दर्द किया, पीड़ा की।

पिरीते-(स० प्रीति)-१ प्यारा, २ प्रेमी ३ प्रेमयुक्त, प्रेम से। उ० १ हा रघुनदन प्रान पिरीते। (मा० २। १५५।४) ३ बोले गुर सन राम पिरीते। (मा० २। २४८।२)

पिरोजा-(फा० फीरोजा)-हरापन लिए एक प्रकार का नीला पत्थर। उ० मानिक मरकत कुलिस पिरोजा। (मा० ११ २८८।२)

पिसाच-(स०)-एक हीन देवयोनि, भूत बैताल।

पिशित-(स०)-मांस, गोश्त।

पिशुन-(स०)-१ चुगला, चुगलखोर, निंदक, २ दुष्ट, ३ केसर, ४ कौआ।

पिसाच-दे० 'पिशाच'। उ० प्रेत पिसाच भूत बेताला। (मा० १।८२।३) पिसाचिनि-पिशाचों की स्त्रियाँ। उ० नाचहिं गगन पिसाच, पिसाचिनि जोवहिं। (पा० ४१)

पिसाचा-दे० 'पिशाच'। उ० लगे कटन भट बिकट पिसाचा। (मा० ६।६८।२) पिसाची-पिशाच की स्त्री, पिशाचिनी, भूतिनी। उ० अघ मुजसिहि दुरत दलि दयानिधि दारुन आस-पिसाची। (वि० १६३)

पिसुन-दे० 'पिशुन'। उ० पिसुन पराय पाप कहि देहीं। (मा० २।१६८।१)

पिसुनता-(स० पिशुनता)-चुगलखोरी। उ० पाप कि पिसुनता सम कछु आना। (मा० १।११२।४)

पिहानी-(स० पिधान)-ढक्कन, छिपानेवाली वस्तु। उ० आलस, अनख न आचरज प्रेम पिहानी जानु। (दो० ३७०)

पींजरनि-पींजरों में। उ० हम पाँख पाइ पींजरनि तरसत। (गी० २।६६) पींजरा-दे० 'पिंजरा'। उ० तेहि निसि आश्रम-पींजरा राखे भा भिनुसार। (दो० २०६)

पी (२)-(स० प्रिय)-प्रिय, प्रियतम, स्वामी, पति। उ० सेवक स्वामि सखा सिय पी के। (मा० १।१५।२)

पीछें-(स० पश्च)-१ बाद में, पश्चात, २ आगे का उलटा, पीछे की ओर। उ० २ चढ़ुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछें। (मा० २।१४३।३)

पीटत-(स० पीडन)-पीटते है, मारते हैं। उ० अनख दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दव। (मा० ७।२७) पीटहिं-पीटती हैं, पीटने लगीं। उ०मारि पृ द पर पीटहिं छाती। (मा० ६।४४।२) पाटि-पीटकर, घाट पहुँचाकर, मारकर।

पीठ (१)-(स० पृष्ठ)-पीछे का भाग।

पीठ (२)-(स०)-१ पीढ़ा, आसन, २ स्थान, ३ देव स्थान। उ० १ पलँग पाठ तजि गोद हिंडोरा। (मा०२। २६।२) २ जोग जप जाग को बिराग को पुनीत पीठ। (क० ७।१४०)

पीठि (१)-दे० 'पीठ (१)'। उ० सो कि कृपालुहि देइगो केवट पालहि पीठि? (दो० ४५)

पीठी-दे० 'पीठ (१)'। उ० त्रिकुटी चढ़हिं न रिपु रन पीठी। (मा० १।१२३।४)

पीड़त-पीड़ा देते हैं, कष्ट पहुँचाते हैं।

पीड़ा-(स० पीडा)-कष्ट, दुःख। उ० पर पीड़ा सम नहिं अधमाई। (मा० ७।४१।१)

पीड़ित-(स० पीडित)-पीड़ायुक्त, दुखित, रोगी बीमार, दबाया हुआ। उ०त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रह मारी। (मा० २।२३५।२)

पीढ़न्ह-पीढ़ों पर, आसनों पर। उ० अथा जोगु पीढ़न्ह बैठारे। (मा० १।३२८।२) पीढ़ा-(स० पीठ)-आसन, चौकी।

पीत (१)-(स०)-पीला रंग, पीला। उ० दिव्य भूषन बसन पीत उपवीत। (वि० ४७)

पीत (२)-(स० पा)-पीया हुआ, जिसका पान किया गया हो।

पीतांबर-(स०)-१ पीले रंग का रेशमी वस्त्र, २ रेशमी वस्त्र, ३ पीला कपड़ा।

पीन-(स०)-१ स्थूल, मोटा, मांसल, २ पुष्ट, प्रौढ़, ३ मोटाई, स्थूलता। उ० १ जल ज्यों दादुर मोर भए पीन पावस प्रथम। (मा० २।२२१) २ बिसद किसोर पीन सुंदर बपु। (वि० ६२)
पीनता-(स०)-१ मोटाई स्थूलता, २ पुष्टता, प्रौढ़ता, ३ अधिकता। उ०१ पाप ही की पीनता। (क०७।६२)
पीना (१)-(स० पीन)-पुष्ट, पीन, प्रौढ़। उ० नित नय राम प्रेम पनु पीना। (मा० २।३२४।१)
पीना (२)-(स० पीडन)-तिल की खरी, नि सार भोजन। उ० बाहु पीन पाँवरनि पीना खाइ पोसि है। (गी० ११६३)
पीपर-(स० पिप्पल)-पीपल का वृक्ष। उ० पीपर पात सरिस मनु डोला। (मा० २।४४।२)
पीय (२)-(स० प्रिय)-१ पति, भर्तार, स्वामी, २ प्यारा, प्रिय। उ० १ हौं किए कहौं सौंह साँची सीयपीय की। (वि० २६३)
पीयूष-(स०)-१ अमृत, २ दूध, ३ पानी। उ० १ नाम प्रेम पीयूष ह्रद तिनहुँ किए मन मीन। (दो० ३०)
पीर-(सं० पीडा)-१ पीड़ा, दर्द, २ सहानुभूति, हमदर्दी। उ० १ रावन धीर न पीर गनी। (क० ६।२१) २ काहू सो न पीर रघुबीर दीन जन की। (वि० ७४)
पीरा (१)-(स० पीडन)-१ दे० 'पीड़ा'। २ पीड़ा पहुँचाया, पीड़ा पहुँचाते हैं। उ० २ नर सरीर धरि जे पर पीरा। (मा० ७।४१।२)
पीरा (२)-(स० पीत)-पीला, पीतवर्ण।
पील-(फा०)-हाथी, गज, गजेंद्र। उ० पील-उद्धरन सील सिंधु ढील देखियत। (वि० २४८)
पीवर-(स०)-मोटा, स्थूल, तगड़ा, बलिष्ट। उ० तनु बिसाल पीवर अधिकाई। (मा० १।१२६।४)
पीसत-(स० पेषण)-१ रगड़ता है, पीसता है, २ चूर करता है, चूर-चूर करता है। उ० १ पीसत दाँत गए रिस रेते। (वि० २४१)
पुग-(सं० पूग)-सुपारी।
पुंगव-(स०)-१ बैल, २ श्रेष्ठ, प्रधान, बड़ा। उ० २ ब्यास आदि कवि पुंगव नाना। (मा० १।१४।१)
पुंगीफल-(स० पूगी) सुपारी, कसैली। उ० जातुधान पुंगीफल जव तिल धान है। (क० ५।७)
पुंज-(स०)-ढेर, समूह, राशि। उ० परम पावन पापपुंज मुंजाटवी-अनल-इव निमिष निर्मूलकर्ता। (वि० ५५)
पुंजा-दे० 'पुंज'। उ० सुरत उठाए करनापुंजा। (मा० १।१४८।४)
पुंजी-पूँजी, धन राशि। उ० तुलसी सो सब भाँति परम हित पूंजी प्रान से प्यारो। (वि० १७४)
पुंडरीक-(स०)-१ कमल, २ सफेद कमल, ३ बाघ, शेर, ४ अग्नि ५ अग्निकोण के दिग्गज का नाम ६ सफ़ेद रंग का हाथी। उ० १ शंकर-हृदि-पुंडरीक निसि बस हरि चंचरीक। (गी० ७।३)
पुकार-(?)-१ हाँक, टेर, बुलाना, २ गोहार, दुखी होकर बुलाना, सहायता के लिए बुलाना, ३ ललकार। उ० २ एकहि एक न देखइ जहँ तहँ करहिं पुकार। (मा०६।४६)
पुकारत-(?)-१ पुकारते हैं, बुलाते हैं, २ दोहाइ देते हैं, हाय हाय करते हैं, ३ ललकारते हैं, ४ घोषणा करते हैं। उ० ४ बेद पुरान पुकारत, कहत पुरारि। (ब० ५६)
पुकारहीं-पुकारते हैं। उ०धरि केस नारि निकारि बाहेर तेति दीन पुकारहीं। (मा० ६।८२। छं० १) पुकारा-क दे० 'पुकार'। ख १ बुलाया, टेरा, २ ललकारा। उ० क २ कहँ पाइय प्रभु करिअ पुकारा। (मा०१।१८२।१) ख २ अर्धराति पुर द्वार पुकारा। (मा० ५।६।२) पुकारि-पुकार कर, चिल्लाकर। उ० बार बार कह्यो मैं पुकारि दाढ़ीजार सों। (क० ५।११) पुकारी-पुकारा, बुलाया। उ० राम राम सिय लखन पुकारी। (मा० २।१४२ ४) पुकारे-१ पुकारा, बुलाया, टेरा, २ पुकारने पर, बुलाने पर, टेरने पर। उ० २ मद्दे से स्रवन नहिं सुनति पुकारे। (गी० ५।१८) पुकारेसि-पुकारा। उ०परउ भूमि जय राम पुकारेसि। (मा० ६।६११४)
पुजाइ-(स० पूजा)-पूजा लेकर, आराधना कराकर। पुजाइबे-पूजा कराने, पुजवाने। उ० बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि। (वि० १५८) पुजाइये-१ पूजा कराइए, आराधना कराइए, पुजावन-पूजा कराने। पुजावहिं-पुजाते हैं, पुजवाते हैं। उ० ते बिप्रन्ह सन आपु पुजावहिं। (मा० ७।१००।४)
पुट-(स०)-१ आच्छादन, आवरण, २ मध्य, ३ चूर्ण, ४ कमल, ५ पेषण, ६ औषधि पकाने का पात्र, ७ मिलाव, मिश्रण, ८ दोना, कटोरा, ९ अँगुली, १० घोड़े की टाप, ११ मियान, १२ युगल, दो। उ० १२ पुट सूखि गए मधुराधर वै। (क० २।११) पुटन्हि-पुटों में। उ० श्रवन पुटन्हि मन पान करि नहिं अघात मति धीर। (मा० ७।५२ ख)
पुटपाक-(स०)-पत्ते के दोने में रखकर औषध पकाने का विधान। उ० जातुधान बुट, पुटपाक लंक जातरूप। (क० ५.२५)
पुटीं-पुटी का बहुवचन। दे० 'पुटी'। उ० १ भरि भरि परन पुटीं रचि रूरीं। (मा०२।२५०।१) पुटी-(स० पुट)-१ छोटा दोना, पत्ते का छोटा पात्र, २ आच्छादन, आवरण, ३ कौपीन, लँगोटी।
पुण्य-दे० 'पुण्य। पुण्यस्वरूप। उ० पुण्य पापहर सदा शिवकर विज्ञान भक्तिप्रद। (मा० ७ का अंतिम श्लोक)
पुण्य-(स०)-१ धर्म, धर्म का काय, २ शुभ, ३ पवित्र, ४ सुंदर।
पुण्यभूमि-(स०)-आर्यावर्त्त देश।
पुण्यश्लोक-(स०) जिसका सुंदर चरित्र या यश हो। पुण्यात्मा।
पुतरि-पुतली। उ० नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। (मा० २।५६।१)
पुतरिका-(स० पुत्तलिका)-पुतली, कठपुतली।
पुताहू-दे० 'पतोहू'। उ० गोदु राम सिय पूत पुतोहू। (मा० २।१२।४)
पुत्र-(स०)-बालक लड़का सुत बेटा। उ० राम अनुमन्द पुत्रकन्, होइहि सगुन बिसेष। (प्र० ३।३।४)

पान करके। पीयो-१ पीना, पान करना, २ पीयोगे। उ० १ कबहुँ न तजत पयोधर पीयो। (कृ० ६) पीय (१)-पीकर, पानकर। पीवत-१ पीता है, पान करता है, २ पीते हुए। उ० २ भजत पय पावन पीवत जलु। (वि० २७) पीवन-पीना, पान करना। उ० बाघ मूदि पीवे नहीं धिग पीवन पन जाइ। (स० ३८) पा्ये-पीता, पान करता। उ० दे० 'पीवन'।

पियर-(सं० पीत)-पीला। पियरी-पीली। उ० पियरी झीनी झँगुली साँवरे सरीर खुली। (गी० १।३०) पियरे-पीले। उ० सैमी तरकसी, कटि कसे पट पियरे। (गी० १।४१)

पियहि (२)-(सं० प्रिय)-पति को, स्वामी को। उ० होइहि सतत पियहि पियारी। (मा० १।६७।२)

पियाउ-पिलाओ, पान कराओ। पियावहिं-पिलाते हैं। उ० नरकपाल जल भरि भरि पियहिं पियावहिं। (पा० १११)

पियारा-(सं० प्रिय)-'प्यारा'। पियारी-प्यारी, प्रिया, प्रेम पात्री। उ० धीन्हीं मुदित गिरिराज जे गिरिजहि पियारी। (पा० १४७) पियारे-प्यारे, प्रीतम, स्नेही। उ० समरथ सुवन समीर के रघुबीर पियारे। (वि० ३३)

पियास-(सं० पिपासा)-१ प्यास, पानी पीने की इच्छा, २ इच्छा, कामना। उ० १ तुलसिदास प्रभु बिनु पियास मरै पसु। (वि० १६६)

पियासा-(सं० पिपासित)-१ प्यासा, २ लालची, जिसमें किसी तरह की कामना हो। उ० १ राम नाम-रति स्वाति-सुधा सुभ-सीकर प्रेम पियासा। (वि० ६५) पियासे-प्यासे, तृषित। उ० बिहूने गुन पथिक पियासे जात पथ के। (क० ७/२४)

पियूष-(सं०)-१ अमृत, २ दूध, ३ पानी ४ उस गाय का दूध जिसे बच्चा दिये सात दिन से अधिक हो गया हो। उ० १ पोषत पयद समान सब बिष पियूष के रूप। (दो० ३७७)

पियूषा-दे० 'पियूष'। उ० पियत नयन पुट रूपु पियूषा। (मा० २।१११।३)

पिराति-(सं० पीड़न)-दुखती, दर्द करती। उ० हील तेरी, पीर, मोहि पीर तें पिराति है। (ह० ३०) पिराता-१ पिराता दर्द करता, २ दुखी होता। उ० २ सेवु साधु सुनि समुझि कै पर-पीर पिरातो। (वि० १५१) पिराने-दुखने लगे। उ० बैरिन्ह होइहहिं पाय पिराने। (मा० १।२०८।१) पिरानो-दुखा, दर्द किया, पीड़ा की।

पिरीते-(सं० प्रीति)-१ प्यारा, २ प्रेमी ३ प्रेमयुक्त, प्रेम से। उ० १ हा रघुनंदन प्रान पिरीते। (मा० २। १२२।४) ३ बोले गुर मन राम पिरीते। (मा० २। २४८।२)

पिरोजा-(फा० फीरोजा)-हरापन लिए एक प्रकार का नीला पत्थर। उ० मानिक मरकत कुलिस पिरोजा। (मा० १। २८८।२)

पिशाच-(सं०) एक हीन देवयोनि, भूत, बैताल।

पिशित-(सं०)-मांस, गोश्त।

पिशुन-(सं०)-१ चुगला, चुगलखोर, निंदक, २ दुष्ट, ३ केसर, ४ कौआ।

पिसाच-दे० 'पिशाच'। उ० प्रेत पिसाच भूत बेताला। (मा० १।८२।४) पिसाचिनि-पिशाचों की स्त्रियाँ। उ० नाचहिं गगन पिसाच, पिसाचिनि जोवहिं। (पा० २१)

पिसाचा-दे० 'पिशाच'। उ० लगे कटन भट बिकट पिसाचा। (मा० ६।६८।२) पिसाची-पिशाच स्त्री, पिशाचिनी, भूतिनी। उ० अब तुलसिहि दुख देति दयानिधि दारुन आस पिसाची। (वि० १६३)

पिसुन-दे० 'पिशुन'। उ० पिसुन पराय पाप कहि देहीं। (मा० २।१६८।१)

पिसुनता-(सं० पिशुनता)-चुगलखोरी। उ० अघ कि पिसुनता सम कछु आना। (मा० ७।११२।२)

पिहानी-(सं० पिधान)-ढक्कन, छिपानेवाली वस्तु। उ० आलस, अनख न आचरन प्रेम पिहानी जानु। (दो० ३२०)

पींजरनि-पींजरों में। उ० हम पँख पाइ पींजरनि तरसत। (गी० २।६६) पींजरा-दे० 'पिंजरा'। उ० तेहि निसि आस्रम-पींजरा राखे भा भिनुसार। (दो० २०६)

पी (२)-(सं० प्रिय)-प्रिय, प्रियतम, स्वामी, पति। उ० सेवक स्वामि सखा सिय पी के। (मा० १।१५।२)

पीछें-(सं० पश्च)-१ बाद में, पश्चात् २ आगे का उलटा, पीछे की ओर। उ० २ भ्रुकुटि परहिं फिरि हेरहिं पीछें। (मा० २।१२३।३)

पीटत-(सं० पीडन)-पीटते हैं, मारते हैं। उ० अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दंड। (मा० ७।३७) पीटहिं-पीटती हैं, पीटने लगीं। उ० नारि बृंद कर पीटहिं छाती। (मा० ६।१०४।२) पाटि-पीटकर, चोट पहुँचाकर, मारकर।

पीठ (१)-(सं० पृष्ठ)-पीछे का भाग।

पीठ (२)-(सं०)-१ पीढ़ा, आसन, २ स्थान, ३ केन्द्र स्थान। उ० १ पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। (मा० २। २१।२) २ जोग मय आग को विराग को पुनीत पीठ। (क० ७।१४०)

पीठि (१)-दे० 'पीठ (१)'। उ० सो कि कृपालुहि देइगो केवट पालहिं पीठि? (दो० ७६)

पीठी-दे० 'पीठ (१)'। उ० जिन्हके लरहिं न रिपु रन पीठी। (मा० १।२६१।४)

पीड़त-पीड़ा देते हैं, कष्ट पहुँचाते हैं।

पीड़ा-(सं० पीडा) कष्ट, दुःख। उ० पर पीड़ा सम नहिं अधमाई। (मा० ७।४१।१)

पीड़ित-(सं० पीडित)-पीड़ायुक्त, दुखित, रोगी, बीमार, दबाया हुआ। उ० त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रह मारी। (मा० २।२३५।२)

पीढ़ें-पीढ़ों पर, आसनों पर। उ० अपर जोगु पीढ़न्ह बैठार। (मा० १।३२८।२) पीढ़ा-(सं० पीठ) आसन, चौकी।

पीत (१)-(सं०)-पीला रंग, कपिश। उ० दिव्य भूषन बसन पीत उपबीत। (वि० ४५)

पीत (२)-(सं० पा)-पीया हुआ, जिसका पान किया गया हो।

पीतांबर-(सं०)-१ पीले रंग का रेशमी वस्त्र, २ श्रीकृष्ण ३ पीला कपड़ा।

पीन-(सं०)-१ स्थूल, मोटा, मांसल, २ पुष्ट, प्रौढ़, ३ मोटाई, स्थूलता। उ० १ जल ज्यों दादुर मोर भए पीन पावस प्रथम। (मा० २।२२१) २ बिसद किसोर पीन सुंदर बपु। (वि० ६२)
पीनता-(सं०)-१ मोटाई, स्थूलता, २ पुष्टता, प्रौढ़ता, ३ अधिकता। उ०३ पाप ही की पीनता। (क०७।६२)
पीना (१)-(सं० पीन)-पुष्ट, पीन, प्रौढ़। उ० नित नव राम प्रेम पनु पीना। (मा० २।३२२।१)
पीना (२)-(सं० पीडन)-तिल की खरी, नि सार भोजन। उ० बाहु पीन पाँवरनि पीना खाइ पोखि हैं। (गी० १।६३)
पीपर-(सं० पिप्पल)-पीपल का वृक्ष। उ० पीपर पात सरिस मनु डोला। (मा० २।४१।२)
पीय (२)-(सं० प्रिय)-१ पति, भर्तार, स्वामी, २ प्यारा, प्रिय। उ० १ हौं बिप्र कहीं सौंह साँची सीयपीय की। (वि० २६१)
पीयूष-(सं०)-१ अमृत, २ दूध, ३ पानी। उ० १ नाम प्रेम पीयूष ह्रद तिनहुँ किए मन मीन। (दो० ३०)
पीर-(सं० पीडा)-१ पीड़ा, दर्द, २ सहानुभूति, हमदर्दी। उ० १ रावन धीर न पीर गनी। (क० ६।२१) २ काहू तो न पीर रघुबीर दीन जन की। (वि० ७५)
पीरा (१)-(सं० पीडन)-१ दे० 'पीड़ा'। २ पीड़ा पहुँचाया, पीड़ा पहुँचाते हैं। उ० २ नर सरीर धरि जे पर पीरा। (मा० ७।४१।२)
पीरा (२)-(सं० पीत)-पीला, पीतवर्ण।
पील-(फा०)-हाथी, गज, गजेंद्र। उ० पील-उद्धरन सील सिंधु ढील देखियत। (वि० २४८)
पीवर-(सं०)-मोटा, स्थूल, तगड़ा, बलिष्ट। उ० तनु बिसाल पीवर अधिकाई। (मा० १।१२६।४)
पीसत-(सं० पेषण)-१ रगड़ता है, पीसता है, २ कुच लता है, चूर-चूर करता है। उ० १ पीसत दाँत गए रिस रेंते। (वि० २४१)
पुग-(सं० पूग)-सुपारी।
पुंगव-(सं०)-१ बैल, २ श्रेष्ठ, प्रधान, बड़ा। उ० २ ब्यास आदि कबि पुंगव नाना। (मा० १।१४।१)
पुंगीफल-(सं० पूगी)-सुपारी, कसैली। उ० जातुधान पुंगीफल जव तिल धान है। (क० ५।७)
पुंज-(सं०)-ढेर, समूह, राशि। उ० परम पावन पापपुंज मुंजाटवी अनल-इव निमिष निर्मूलकर्त्ता। (वि० ५५)
पुंजा-दे० 'पुंज'। उ० सुरत उगण करतापुंजा। (मा० १।१८८।४)
पुंजी-पूँजी, धन, राशि। उ० तुलसी मो सब भाँति परम हित पुंजी प्रान ते प्यारो। (वि० १०४)
पुंडरीक-(सं०)-१ कमल, २ सफ़ेद कमल, ३ बाघ, शेर, ४ अग्नि ५ अग्निकोण के दिग्गज का नाम ६ सफ़ेद रंग का हाथी। उ० १ शकर हृदि पुंडरीक निसि बस हरि चंचरीक। (गी० ७।३)
पुकार-(?)-१ हाँक टेर, बुलाना, २ गोहार, दुखी होकर बुलाना, सहायता के लिए बुलाना, ३ ललकार। उ० २ एकहि एक न देखइ जहँ तहँ करहिं पुकार। (मा०६।४६)
पुकारत-(?)-१ पुकारते हैं, बुलाते हैं, २ दोहाइ देते हैं, हाय हाय करते हैं, ३ ललकारते हैं, ४ घोषणा करते हैं। उ० ४ बेद पुरान पुकारत, कहत पुरारि। (ब० ५६)
पुकारहीं-पुकारते हैं। उ०धरि केस नारि निकारि बाहेर तेति दीन पुकारहीं। (मा० ६।८१। छं० १) पुकारा-क दे० 'पुकार'। ख १ बुलाया, टेरा, २ ललकारा। उ० क २ कहँ पाइय प्रभु करिअ पुकारा। (मा०१।१८२।१) ख २ अर्धराति पुर द्वार पुकारा। (मा० ४।६।२) पुकारि-पुकार कर, चिल्लाकर। उ० बार बार कह्यों मैं पुकारि दाढ़ीजार सों। (क० ५।११) पुकारी-पुकारा, बुलाया। उ० राम राम सिय लखन पुकारी। (मा० २।१४२।४) पुकारे-१ पुकारा, बुलाया, टेरा, २ पुकारने पर, बुलाने पर, टेरने पर। उ० २ मदे से स्रवन नहिं सुनति पुकारे। (गी० ५।१८) पुकारेसि-पुकारा। उ०परेउ भूमि जय राम पुकारेसि। (मा० ६।६१।४)
पुजाइ-(सं० पूजा)-पूजा लेकर, आराधना कराकर। पुजाइबे-पूजा कराने, पुजवाने। उ० बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि। (वि० १५८) पुजाइये-१ पूजा कराइए, आराधना कराइए, पुजावन-पूजा कराने। पुजावहिं-पुजवाते हैं, पुजवाते हैं। उ० ते विप्रन्ह सन आपु पुजावहिं। (मा० ७।१००।४)
पुट-(सं०)-१ आच्छादन, आवरण २ मध्य, ३ चूर्ण, ४ कमल, ५ पेषण, ६ औषधि पकाने का पात्र, ७ मिलाव, मिश्रण, ८ दोना, कटोरा ९ अँगुली, १० घोड़े की टाप, ११ सियान, १२ युगल, दो। उ० १२ पुट सूखि गए मधुराधर वै। (क० २।११) पुटन्हि-पुटों में। उ० श्रवन पुटन्हि मन पान करि नहिं अघात मति धीर। (मा० ७।५२ ख)
पुटपाक-(सं०)-पत्ते के दोने में रखकर औषध पकाने का विधान। उ० जातुधान पुट, पुटपाक लंक जातरूप। (क० ५ २५)
पुटीं-पुटी का बहुवचन। दे० 'पुटी'। उ० १ भरि भरि परन पुटीं रचि रूरीं। (मा०२।२५०।१) पुटी-(सं० पुट)-१ छोटा दोना, पत्ते का छोटा पात्र, २ आच्छादन, आवरण, ३ कौपीन, लँगोटी।
पुण्य-दे० 'पुण्य'। पुण्यस्वरूप। उ० पुण्य पापहर सदा शिवकर विज्ञान भक्तिप्रद। (मा० ७ का अंतिम श्लोक) पुण्य-(सं०)-१ धर्म, धर्म का कार्य, २ शुभ, ३ पवित्र, ४ सुंदर।
पुण्यभूमि-(सं०)-आर्यावर्त्त देश।
पुण्यश्लोक-(सं०)-जिसका सुंदर चरित्र या यश हो। पुण्यात्मा।
पुतरि-पुतली। उ० नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। (मा० २।५१।१)
पुतरिका-(सं० पुत्तलिका)-पुतली, कठपुतली।
पुतोहू-दे० 'पतोहू'। उ० सासु राम सिय पूत पुतोहू। (मा० २।१२।४)
पुत्र-(सं०)-आत्मज, लड़का, सुत, बच्चा। उ० राम भनुमद पुत्रफल, होइहि सगुन विभव। (प्र० ४।३।४)

पान करके। पीयो-१ पीना, पान करना, २ पीयोगे। उ० १ अजहुँ न तजत पयोधर पीयो। (कृ० १) पीय (२)-पीकर, पानकर । पीवत-१ पीता है, पान करता है, २ पीते हुए। उ० २ मज्जत पय पावन पीवत जलु। (वि० २३) पीवन पीना, पान करना। उ० पाँच मूदि पीवे नहीं धिग पीवत पन जाइ। (स० ६८) पीवै-पीता, पान करता। उ० दे० 'पीवन'।

पियर-(स० पीत)-पीला। पियरी-पीली। उ० पियरी झीनी झँगुली साँवरे सरीर खुली। (गी० १।३०) पियरे-पीले। उ० तैसी तरकसी, कटि कसे पट पियरे। (गी० १।४१)

पियहि (२)-(स० प्रिय)-पति को, स्वामी को। उ० होइहि सतत पियहि पियारी। (मा० १।६७।२)

पियाउ-पिलाओ, पान कराओ। पियावहिं-पिलाते हैं। उ० मरकपाल जल भरि भरि पियहि पियावहिं। (पा० १११)

पियारा-(स० प्रिय)-'प्यारा'। पियारी-प्यारी, प्रिया, प्रेम पात्री। उ० दीन्हीं मुदित गिरिराज जे गिरिजहि पियारी। (पा० १४७) पियारे-प्यारे प्रीतम, स्नेही। उ० समरथ सुवन समीर के रघुबीर पियारे। (वि० ३३)

पियास-(स० पिपासा)-१ प्यास, पानी पीने की इच्छा, २ इच्छा, कामना। उ० १ तुलसिदास प्रभु बिनु पियास मरै पसु। (वि० १६६)

पियासा-(स० पिपासित)-१ प्यासा, २ लालची, जिसमें किसी तरह की कामना हो। उ० १ राम नाम-रति स्वाति-सुधा सुभ-सीकर प्रेम पियासा। (वि० ६५) पियासे-प्यासे, तृषित। उ० बिहूने गुन पथिक पियासे जात पथ के। (क० ७।२४)

पियूष-(स०)-१ अमृत, २ दूध, ३ पानी ४ उस गाय का दूध जिसे बच्चा दिये सात दिन से अधिक न हो गया हो। उ० १ पोषत पयद समान सब बिष पियूष के रूख। (दो० ३७७)

पियूषा-दे० 'पियूष'। उ० पिअत नयन पुट रूपु पियूषा। (मा० २।११११)

पिराति-(स० पीडन)-दुखती, दर्द करती। उ० बील तेरी, बीर, मोहि पीर तें पिराति है। (ह० २०) पिरातो-१ पिराता दर्द करता, २ दुखी होता। उ० २ सेइ साधु सुनि समुझि कै पर-पीर पिरातो। (वि० १५१) पिराने-दुखने लगे। उ० बैठिय होइहिं पाय पिराने। (मा० १।२०८।१) पिरानो-दुखा, दर्द किया, पीड़ा की।

पिरीते-(स० प्रीति)-१ प्यारा, २ प्रेमी, ३ प्रेमयुक्त, प्रेम से। उ० १ हा रघुनंदन प्रान पिरीते। (मा० २। १५५।४) ३ चोखे गुर सन राम पिरीते। (मा० २। २४८।२)

पिरोजा-(फा० फीरोजा) हरापन लिए एक प्रकार का नीला पत्थर। उ० मानिक मरकत कुलिस पिरोजा। (मा० १। २८८।२)

पिशाच-(स०) एक हीन देवयोनि, भूत, शैतान।

पिशित-(स०)-मांस, गोश्त।

पिशुन-(स०)-१ चुगला, चुगलखोर, निंदक, २ दुष्ट, ३ केसर, ४ कौआ।

पिसाच-दे० 'पिशाच'। उ० प्रेत पिसाच भूत बेताला। (मा० १।८२।३) पिसाचिनि-पिशाचों की स्त्रियाँ। उ० नाचहिं गगन पिसाच, पिसाचिनि जोवहिं। (पा० २६)

पिसाचा-दे० 'पिशाच'। उ० लगे कहन भर बिस्व पिसाचा। (मा० ६।६८।२) पिसाची-पिशाच स्त्री, पिशाचिनी, भूतिनी। उ० भ्रम भुलसिहि दुख दति दयानिधि वाहन खास पिसाची। (वि० १६१)

पिसुन-दे० 'पिशुन'। उ० पिसुन पराय पाप कहि देहीं। (मा० २।१६८।१)

पिसुनता-(स० पिशुनता)-चुगलखोरी। उ० अघ कि पिसुनता सम कछु आना। (मा० ७।११२।५)

पिहानी-(स० पिधान) ढक्कन, छिपानेवाली वस्तु। उ० आलस, अनख न आचरज प्रेम पिहानी जानु। (दो० ३२७)

पींजरनि-पींजरों में। उ० हम पंछि पाइ पींजरनि तरसत। (गी० २।६६) पींजरा-दे० 'पिंजरा'। उ० तेहि मिसि आस्रम-पींजरा राखे भा मिनुसार। (दो० २०६)

पी (२)-(स० प्रिय)-प्रिय, प्रियतम, स्वामी, पति। उ० सेवक स्वामि सखा सिय पी के। (मा० १।१५।२)

पीछें-(स० पश्च)-१ बाद में, पश्चात्, २ आगे का उलटा, पीछे की ओर। उ० २ चढ़ुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछें। (मा० २।१४३।३)

पीटत-(स० पीडन)-पीटते हैं, मारते हैं। उ० बनउ हाटि पीटत धनहिं परसु बदन यह दूट। (मा० ७।१७) पीटहिं-पीटती हैं, पीटने लगीं। उ०मारि हृ हू भर पीटहिं छाती। (मा० ६,१४१२) पीटि-पीटकर, चोट पहुँचाकर, मारकर।

पीठ (१)-(स० पृष्ठ)-पीछे का भाग।

पीठ (२)-(स०)-१ पीढ़ा, आसन, २ स्थान, ३ कन्द्र स्थान। उ० १ पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। (मा० २। ५१।३) २ जोग जप जाग को बिराग को पुनीत पीठ। (क० ७।१४०)

पीठि (१)-दे० 'पीठ (१)'। उ० सो कि कृपालुहि देइगो केवट पालहि पीठि ? (दो० ४१)

पीठी-दे० 'पीठ (१)'। उ० जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी। (मा० १।२९३।४)

पीड़त-पीड़ा देते हैं, कष्ट पहुँचाते हैं।

पीड़ा-(स पीड़ा)-कष्ट, दुःख। उ० पर पीड़ा सम नहिं अधमाई। (मा० ७।४१।१)

पीड़ित-(स० पीड़ित)-पीड़ायुक्त, दुःखित, रोगी, बीमार, दबाया हुआ। उ० त्रिविध ताप पीड़ित ग्रह मारी। (मा० ७।१२१।२)

पीढ़न्ह-पीढ़ों पर, आसनों पर। उ० तात चारु पीढ़न्ह बैठारे। (मा० १।३२८।२) पीढ़ा-(स० पीठ)-आसन, चौकी।

पीत (१)-(स०) पीला रंग, कपिश। उ० दिव्य भूषन बसन पीत उपबीत। (वि० ५४)

पीत (२)-(स० पा)-पीया हुआ जिसका पान किया गया हो।

पीतांबर-(स०)-१ पीले रंग का रेशमी वस्त्र, २ रेशमी वस्त्र ३ पीला कपड़ा।

पीन-(स०)-१ स्थूल, मोटा, मांसल, २ पुष्ट, प्रौढ, ३ मोटाई, स्थूलता। उ० १ जल ज्यों दादुर मोर भए पीन पावस प्रथम। (मा० २।२४१) २ बिसद किसोर पीन सुंदर बपु। (वि० ६२)
पीनता-(स०)-१ मोटाई, स्थूलता, २ पुष्टता, प्रौढता, ३ अधिकता।उ०३ पाप ही की पीनता। (क०७।६२)
पीना (१)-(स० पीन)-पुष्ट, पीन, प्रौढ। उ० नित नव राम प्रेम पनु पीना। (मा० २।३२४।१)
पीना (२)-(स० पीडन)-तिल की खरी, नि सार भोजन। उ० बाहु पीन पावरनि पीना खाइ पेखि हैं। (गी० १। ६३)
पीपर-(स० पिप्पल)-पीपल का वृक्ष। उ० पीपर पात सरिस मनु डोला। (मा० २।४५।२)
पीय (२)-(स० प्रिय)-१ पति, भर्तार, स्वामी, २ प्यारा, प्रिय। उ० १ हौं किए कहीं सौंह साँची सीयपीय की। (वि० २६३)
पीयूष-(स०)-१ अमृत, २ दूध, ३ पानी। उ० १ नाम प्रेम पीयूष हद तिनहुँ किए मन मीन। (दो० ३०)
पीर-(सं० पीडा)-१ पीडा, दर्द, २ सहानुभूति, हमदर्दी। उ० १ रावन धीर न पीर गनी। (क० ६।५१) २ काहू सों न पीर रघुबीर दीन जन की। (वि० ७५)
पीरा (१)-(स० पीडन)-१ दे० 'पीडा'। २ पीडा पहुँचाया, पीडा पहुँचाते हैं। उ० २ नर सरीर धरि जे पर पीरा। (मा० ७।४१।२)
पीरा (२)-(स० पीत)-पीला, पीतवर्ण।
पील-(फा०)-हाथी, गज, गजेंद्र। उ० पील उद्धरन सील सिंधु ढील देखियत। (वि० २४८)
पीवर-(स०)-मोटा, स्थूल, तगडा, बलिष्ट। उ० तनु बिसाल पीवर अधिकाई। (मा० १।१२६।४)
पीसत-(स० पेषण)-१ रगडता है, पीसता है, २ कुच लता है, चूर-चूर करता है। उ० १ पीसत दाँत गए रिस रते। (वि० २५१)
पुग-(स० पूग)-सुपारी।
पुंगव-(स०)-१ बैल, २ श्रेष्ठ, प्रधान, बडा। उ० २ व्यास आदि कवि पुंगव नाना। (मा० १।१४।१)
पुंगीफल-(स० पूगी) सुपारी कसैली। उ० जातुधान पुंगीफल जव तिल धान है। (क० ५।७)
पुंज-(स०)-ढेर, समूह राशि। उ० परम पावन पापपुंज मुंजाटवी अनल इव निमिष निर्मूलकर्त्ता। (वि० ५५)
पुंजा-दे० 'पुंज'। उ० सुरत उठाए करुनापुंजा। (मा० १।१४८।४)
पुंजी-पूँजी, धन, राशि। उ० तुलसी सो सब भाँति परम-हित पूंजी प्रान से प्यारो। (वि० १०४)
पुंडरीक-(स०)-१ कमल २ सफेद कमल, ३ बाघ, शेर, ४ अग्नि ५ अग्निकोण के दिग्गज का नाम, ६ सफेद रंग का हाथी। उ० १ मकर-हृदि पुंडरीक निसि बस हरि चंचरीक। (गी० ७।२)
पुकार-(?)-१ हाँक टेर, बुलाना, २ गोहार, दुखी होकर बुलाना, सहायता के लिए बुलाना, ३ ललकार। उ० २ एकहि एक न देखइ जहँ तहँ करहिं पुकार। (मा०६।४६)
पुकारत-(?)-१ पुकारते हैं, बुलाते हैं, २ दोहाई देते हैं, हाय हाय करते हैं, ३ ललकारते हैं, ४ घोषणा करते हैं। उ० ४ बेद पुरान पुकारत, कहत पुरारि। (ब० ५६)
पुकारहीं-पुकारते हैं। उ०धरि केस नारि निकारि बाहेर तेति दीन पुकारहीं। (मा० ६।८४। छं० १) पुकारा-क दे० 'पुकार'। ख १ बुलाया, टेरा, २ ललकारा। उ० क २ कहँ पाइय प्रभु करिअ पुकारा। (मा०१।१८५।१) ख २ अर्धराति पुर द्वार पुकारा। (मा० ५।६।२) पुकारि-पुकार कर, चिल्लाकर। उ० बार बार कह्यों मैं पुकारि दाढ़ीजार सों। (क० ५।११) पुकारी-पुकारा, बुलाया। उ० राम राम सिय लखन पुकारी। (मा० २।१४२ ४) पुकारे-१ पुकारा, बुलाया, टेरा, २ पुकारने पर, बुलाने पर, टेरने पर। उ० २ मद्दे से स्रवन नहिं सुनति पुकारे। (गी० ५।१८) पुकारेसि-पुकारा। उ०परेउ भूमि जय राम पुकारेसि। (मा० ६।६१।४)
पुजाइ-(स० पूजा)-पूजा लेकर, आराधना कराकर। पुजाइबे-पूजा कराने, पुजवाने। उ० बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि। (वि० १५८) पुजाइये-१ पूजा कराइए, आराधना कराइए, पुजावन-पूजा कराने। पुजावहिं-पुजाते हैं, पुजवाते हैं। उ० ते विप्रन्ह सन आपु पुजावहिं। (मा० ७।१००।४)
पुट-(स०)-१ आच्छादन, आवरण २ मध्य, ३ चूर्ण, ४ कमल, ५ पेषण, ६ औषधि पकाने का पात्र, ७ मिलाव, मिश्रण, ८ दोना, कटोरा, ९ अँगुली, १० घोडे की टाप, ११ मियान, १२ युगल, दो। उ० १२ पुट सूखि गए मधुराधर वै। (क० २।११) पुटन्हि-पुटों में। उ० स्रवन पुटन्हि मन पान करि नहिं अघात मति धीर। (मा० ७।५२ ख)
पुटपाक-(स०)-पत्ते के दोने में रखकर औषध पकाने का विधान। उ० जातुधान पुट, पुटपाक लंक जातरूप। (क० ५।२५)
पुटीं-पुटी का बहुवचन। दे० 'पुटी'। उ० १ भरि भरि परन पुटीं रचि रूरीं। (मा०२।२५०।१) पुटी-(स० पुट)-१ छोटा दोना, पत्ते का छोटा पात्र, २ आच्छादन, आवरण, ३ कौपीन, लँगोटी।
पुण्य-दे० 'पुण्य'। पुण्यस्वरूप। उ० पुण्य पापहर सदा शिवकर विज्ञान भक्तिप्रद। (मा० ७ का अंतिम श्लोक)
पुण्य-(स०)-१ धर्म, धर्म का कार्य, २ शुभ, ३ पवित्र, ४ सुंदर।
पुण्यभूमि-(स०)-आर्यावर्त्त देश।
पुण्यश्लोक-(स०) जिसका सुंदर चरित्र या यश हो। पुण्यात्मा।
पुतरि-पुतली। उ० नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। (मा० २।५९।१)
पुतरिका-(स० पुत्तलिका)-पुतली, कठपुतली।
पुतोहू-दे० 'पतोहू'। उ० हाहु राम सिय पूत पुतोहू। (मा० २।११५।४)
पुत्र-(स०)-आत्मज लडका, सुत बेटा। उ० राम अनुमद पुत्रफल, होइहि सगुन बिसेष। (प्र० ३।४।४)

पुत्रजागु-(सं० पुत्रयज्ञ)-पुत्र प्राप्त्यर्थ किया गया यज्ञ। उ० पुत्रजागु करवाइ ऋषि, राजहि दीन्ह प्रसाद। (प्र० १।२।२)
पुत्रबधू-(सं० पुत्रवधू)-पतोहू। उ० मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। (मा० २।५६।१)
पुत्रवती-पुत्रवाली। उ० पुत्रवती जुबती जग सोई। (मा० २।७५।१)
पुत्रि-हे पुत्री! उ० पुत्रि! न सोचिए आइ हौं जनक-गृह जिय जानि। (गी० ७।२२)
पुत्रिका-(सं०)-१ पुतली, कठपुतली, २ बेटी, पुत्री, लड़की, ३ स्त्री की तसवीर। उ० १ बिटप मध्य पुत्रिका सूत्र महँ कंचुक बिनहिं बनाए। (वि० १२४)
पुन-(सं० पुनर्)-१ फिर, पुनः, दोबारा, २ बाद, पीछे, अनंतर।
पुनि-दे० 'पुन'। उ० १ पुनि फिरि राम निकट सो आई। (मा० ३।१७।१) २ तुलसिदास यह अवसर बीते का पुनि के पछिताए? (वि० २०१)
पुनी (१)-(सं० पुनर्)-पुनः, फिर। उ० राम को सहाय पाल दगाबाज पुनी सो। (क० ७।७२)
पुनी (२)-(सं० पुण्य)-१ पुण्य कार्य, पवित्र काम, २ पवित्र, शुद्ध, ३ पुण्यात्मा। उ० ३ सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। (मा० ७।२१।४)
पुनी (३)-(सं० पूर्णिमा)-पूर्णिमा। शुक्लपक्ष का १५वाँ दिन।
पुनीत-दे० 'पुनीत'। पुनीत-(सं०)-पवित्र, पाक, शुद्ध। उ० प्रीतम पुनीत कृत नीचन निदरि सो। (वि०२६४)
पुनीतता-पवित्रता, निर्मलता। उ० प्रभु की पुनीतता आपनी खोयाई खोगी। (वि० २६२)
पुनीता-दे० 'पुनीत'। उ० रूपरासि पति प्रेम पुनीता। (मा० २।५८।१)
पुन्य-दे० 'पुण्य'। उ० १ पहु कन्या धन्य, पुन्य कृत सगर सुत, भूधर द्रोनि बिद्दरनि बहुनामिनी। (वि० १८) २ बाप्यो अधिक परयो पुन्य जल उलटि उठाइ चोंच। (दो० ३०२)
पुन्यसिलोक-दे० 'पुण्यश्लोक'। उ० पुन्यसिलोक तात तर तोरें। (मा० २।२६३।३)
पुरंगिनी-(सं० पुर+रंगिनी)-गाँव की स्त्रियाँ। उ० घर बिहार चारु पौंडर चपर चनार कामदार बार बार पुर पुरंगिनी। (गी० २।५१)
पुरंदर-(सं०)-इंद्र। उ० नीच निसाचर बैरी को बंधु बिभीषन कीन्ह पुरंदर कैसो। (क० ७।४)
पुर (१)-(सं०)-१ नगर, शहर, कसबा, २ एक राक्षस, जिसका शंकर ने संहार किया था, ३ पुरा, छोटी बस्ती, ४ शरीर, ५ घर, मकान, ६ लोक, भुवन, ७ दुर्ग किला, ८ कोठा, अट्टालिका, ९ मदन, १० ढेर, राशि। उ० २ मयनदहन पुरदहन गहन जानि। (क० १।१०) पुरइ (१) नगरी में, नगरी को। उ० नृप जोबन छबि पुरइ चहत जनु जानन। (जा० ११)
पुर (२)-पूर्ण-भरा पूरा, पूर्ण।
पुरइ (२)-(सं० पूर्ण)-पूरा कर के। पुरइहि-पूरा करेगा। उ० सो पुरइहि जगदीस पैज पन राखिहि। (जा० ९१)
पुरई-पूरा किया, पूरी की। उ० हौं बलि बलि गई पुरई मंजु मनोरथ मोरि। (गी०१।१७) पुरउब-पूरा करेंगे, पूर्ण करेंगे, पूरा करूँगा। उ० पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा। (मा० १।१५२।३) पुरउबि-पूरा कीजिएगा। उ० मातु मनोरथ पुरउबि मोरी। (मा० २।१०३।१) पुरव-पूरा करेगा, पूरा कर दे। उ० जौं बिधि पुरब मनोरथु काली। (मा० २।२३।२) पुरवइ-पूरी करेगा। पुरवहु-पूरा करो, पुजा दो, भर दो। उ०होइ प्रसन्न पुरवहु सकल मंजु मनोरथ मोरि। (मा० १।१४८) पुरवै-दे० 'पुरवहु'। उ० तुलसिदास लालसा दरस की सोइ पुरवै जेहि आनि देखाए। (गी० २।५२)
पुरइनि-(सं० पुटकिनी)-१ कमल का पत्ता, २ कमल, ३ कमल की बेल। उ० १ पुरइनि सघन चारु चौपाई। (मा० १।३७।२)
पुरजन-पुरवासी, गाँव या नगर के लोग। उ० प्रभु अनुराग माँगि आयसु पुरजन सब काज सँवारे। (गी० २।७१)
पुरट-(सं०)-सोना, सुवर्ण। उ० मनहुँ पुरट-संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम। (दो० ७)
पुरदहन-तीनों पुरों (लोकों) या त्रिपुरासुर का संहार करने वाले, शिव। उ० मयनदहन पुरदहन गहन जानि। (क० १।१०)
पुरहूत-(सं० पुरहूत)-इंद्र।
पुरा-(सं०)-पहले का, प्राचीन काल का। उ० यह सपनु तब हो जब पुन्य पुराकृत भूरि। (मा० १।२२२) पुराकृत-पहले का किया हुआ, पूर्व जन्म का किया हुआ। उ० दे० 'पुरा'।
पुराइ-(सं० पूर्ण)-१ पुरवाकर, भराकर, २ पुरवाए, सजवाए। पुराईं-पुरवाया, भरवाया। उ० चौकें भाँति अनेक पुराईं। (मा० १।२८८।४)
पुराण-(सं०)-१ प्राचीन, पुरातन, २ हिंदुओं के धर्म संबंधी कथाओं के ग्रंथ जिनमें सृष्टि, लय तथा प्राचीन ऋषियों और राजाओं के वृत्तांत हैं। पुराण दो प्रकार के हैं, एक तो पुराण और दूसरे उपपुराण। पुराणों की संख्या १८ और उपपुराणों की कुछ मतों से १८ और कुछ मतों से १८ से ऊपर है। उ०नाना पुराण निगमागम सम्मत यद् (मा० १।श्लो०७)
पुराणपुरुष-विष्णु भगवान।
पुरातन-(सं०)-पुराना, प्राचीन। उ० अति पुरातन दूषित त्याग अति क्यों भरि गुन बढ़ायो। (वि० ११)
पुरान-(सं० पुराण)-१ प्राचीन, पुराना, २ पुराण, १८ पुराण दे० 'पुराण', ३ अनादि। उ० २ पुरान प्रसिद्ध सुन्यो प्रभु मैं। (क० ७।१८) पुरानि-पुराणों में। दे० 'पुराण'। उ० बहु मत सुनि बहु पंथ पुरानति जहाँ-तहाँ झगरो सो। (वि० १७३) पुरानन्ह-पुराणों में। उ० बुध बेद पुरानन्ह गाव। (मा० ७।१२।१)
पुराना-(सं० पुराण)-१ प्राचीन, पहले का, २ जीर्ण-शीर्ण ३ परिपक्व, ४ अनुभवी ५ १८ पुराण आदि। उ० १ परमानंद परम पुराना। (मा० १।११६।४) पुराने-

दे० 'पुरानि'। उ० सुनु मुनिकथा पुनीत पुरानी। (मा० १।१५३।१) पुराने–प्राचीन।

पुरानि–(स० पुराण)-प्राचीन, पुरानी। उ० आइ अनत सुनाइ मधुकर ज्ञानगिरा पुरानि। (कृ० ५२)

पुरारि–(स०)-तीनों पुरों या त्रिपुरासुर के शत्रु शंकर, महादेव। उ० टूट्यौ मानों वारे ते पुरारि ही पढ़ायो है। (क० १।१०)

पुरारी–दे० 'पुरारि'। उ० जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। (मा० १।१३८।४)

पुरि–दे० 'पुरी'।

पुरिन–पुरियों में पवित्र नगरों में। उ० सुर-सदननि तीरथ, पुरिन, निपट कुचालि कुसाज। (दो० ५५८) पुरिहि–पुरी को, पुरी में। उ० अपनी बीसी आपुही पुरिहि लगाये हाथ। (दो० २४०) पुरी–(स० पुरी)-१ नगरी, पत्तन, शहर, २ जगन्नाथ पुरी, ३ गोसाइयों की एक उपाधि। उ० बंदउँ अवधपुरी अति पावनि। (मा० १।१६।१)

पुरीष–(स०)-विष्टा, मल, मैला। उ० सोनित पुरीष जो मूत्र मल कृमि कर्दमावृत सोवहि। (वि० १३६)

पुरु–(स०)-एक राजा जो ययाति के पुत्र थे।

पुरुष–दे० 'पुरुषा'।

पुरुखा–दे० 'पुरुषा'। उ० पुरुखा ते सेवक भए, हर ते भे हनुमान। (दो० १४४)

पुरुष–(स०)-१ मनुष्य, आदमी, २, आत्मा, जीव, ३ विष्णु, ४ सूर्य, ५ शिव, ६ पति, स्वामी, ७ पारा, ८ पुरखा, पूर्व पुरुष। उ० १ पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। (मा० ६।३४।७) ३ पुरुष प्रसिद्ध प्रकासनिधि प्रगट परावर नाथ। (मा० १।११) ८ सो सठु कोटिक पुरुष समेता। (मा० २।१८४।४) पुरुषहि–पुरुष को। उ० जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाहीं। (मा० २।१४१।३)

पुरुषा–(स० पुरुष)-पुरखा, पूर्व पुरुष।

पुरुषारथ–दे० 'पुरुषार्थ'। उ० १ बेद पुरान प्रगट पुरुषारथ, सकल सुभट सिरमोर को। (वि० ३१)

पुरुषारथु–दे० 'पुरुषार्थ'। उ० ४ मोर तुम्हार परम पुरुषारथु। (मा० २।३१५।२)

पुरुषार्थ–(स०)-१ परिश्रम, उद्यम, उद्योग पराक्रम, पौरुष, २ साहस, हिम्मत ३ पुरुष का प्रयोजन, ४ चार पुरुषार्थ-अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष।

पुरुषोत्तम–(स०)-१ राम, २ विष्णु, ३ मलमास का महीना, ४ उत्तम व्यक्ति।

पुरोडास–(स० पुरोडाश)-जौ के आटे की बनी टिकिया जिसकी यज्ञों में आहुति दी जाती है। उ० पुरोडास चह रासभ खाया। (मा० ३।२३।३)

पुरोध–दे० 'पुरोधा'।

पुरोधा–(स० पुरोधस्)-पुरोहित, कुलगुरु, यज्ञ करानेवाला। उ० हंस बंस गुर जनक पुरोधा। (मा० २।२०८।१)

पुलक–(स०)-प्रेमभय या हर्ष आदि के उद्वेग से रोम कूपों का प्रफुल्ल होना, रोमांच। उ० मोद न मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहर खाउ। (वि० १००)

पुलकत–१ पुलकते हैं, २ पुलकते हुए। उ० २ पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता। (मा० १।५०।२) पुलकहिं–रोमांचित होते हैं। उ० द्रवहिं स्रवहिं पुलकहिं नहीं तुलसी सुमिरत राम। (दो० ४१) पुलकाहीं–पुलकित होते हैं, प्रसन्न होते हैं। उ० कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं। (मा० १।४१।३) पुलकि–रोमांचित होकर, प्रसन्न होकर। उ०परिहरि सकुच सप्रेम पुलकि पायन्ह परी। (जा० १८६) पुलके–पुलकित हो गए, प्रसन्न हो गए। उ० आयसु देइअ हरषि हियँ कहि पुलके प्रभु गात। (मा० २।४५) पुलकेउ–पुलकित हो गए, प्रसन्न हुए। उ० सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ। (मा० २।१०१।४)

पुलकित–हर्षित, रोमांचयुक्त। उ० पुलकित तनु आनंदघन छन छन मन हरषै। (कृ० १)

पुलकालि–पुलकावली, हर्ष या भय से प्रफुल्ल रोमावलि। उ० बीज राम-गुनगन, नयन जल, अंकुर पुलकालि। (दो० ५६८)

पुलकावलि–हर्ष या भय आदि से प्रफुल्ल रोमावलि। उ० अंभोज अंबक अंबु उमगि सुअंग पुलकावलि छई। (मा० १।३१८।छं०१)

पुलस्ति–दे० 'पुलस्त्य'। उ० रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका। (मा० ५।२३।१)

पुलस्त्य–(स०)-एक ऋषि जिनकी गणना प्रजापतियों और सप्तर्षियों में होती है।

पुष्कर–(स०)-एक तीर्थ जो अजमेर के पास है। उ० तुलसी पुष्कर-जग्य कर चरन-पांसु कृतकृत। (स० २२१)

पुष्ट–(स०)-पाला हुआ, मोटा ताज़ा, दृढ़, प्रौढ़, मज़बूत, सामर्थ्यवान। उ० सुगढ़ पुष्ट उन्नत कृकाटिका कंबु कंठ सोभा मन मानति। (गी० ७।१७)

पुष्पक–(स०)-कुबेर का विमान जिसे रावण ने छीन कर लंका पुरी में रक्खा था। राम ने रावण को मारने के बाद अयोध्या आने में इसका उपयोग किया और फिर इसे कुबेर को लौटा दिया। उ० पुष्पक जान जीति लै आवा। (मा० १।१७९।४) पुष्पकहि–पुष्पक विमान से। उ० उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहिं जाहु। (मा० ७।४क)

पुहकर–दे० 'पुष्कर'।

पुहुप–(स० पुष्प)-फूल, सुमन। उ० भाँति सय पुहुप के माल राम-उर सोहइ हो। (रा० १४)

पुहुमि–दे० 'पुहुमी'। उ० पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी। (मा० २।३१३।४)

पुहुमी–(स० भूमि)-पृथ्वी, धरती। उ० तुलसी परपस हाड़ पर परिहै पुहुमी नीर। (दो० ३०१)

पूँग–दे० 'पूग'।

पूँछउँ–(स० पृच्छण)-पूछता हूँ, प्रश्न करता हूँ। उ० एक बात प्रभु पूँछउँ तोही। (मा०७।११५।४) पूँछत–१ पूछते हैं, प्रश्न करते हैं। २ पूछते, पूछते समय। उ० दे० 'पूँछेहु'। पूँछति–पूछती है। उ० सादर पुनि पुनि पूँछति ओही। (मा० २।१७।१) पूँछा–पूछने, पूछने के लिए। पूँछब–पूछूँगा। पूँछहि–पूछते हैं। पूछहूँ–पूछूँ। पूँछहु– पूछो। पूँछा–पूछा, प्रश्न किया। पूँछि–१ पूछकर, २ पूछ। उ० १ चहुँ दिसि चितइ पूँछि मालीगन। (मा० १।२२८।१) २ भरत कुसल पूँछि न

सकहिं भय विपाद मन माहिं। (मा० २।१२८) पूँछिय–१ पूछे २ पूछिए। पूँछिहहिं–पूछेंगे। उ०धाइ पूँछिहहिं मोहि जब बिकल नगर नर नारि। (मा०२।१४२) पूँछिहहि–पूछेगा। पूँछिहि–पूछेगा। पूँछिहु–पूछा। उ०पूँछिहु माय राम कटकाइ। (मा०२।२४।३) पूँछो–पूछा। पूँछें–पूछे हुए। उ० मैं सबु कीन्ह तोहि बिन पूँछें। (मा० २।३२।१) पूँछे–पूछा, पूछा था। पूँछेउँ–पूछा। उ० पूँछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। (मा० २।२१।४) पूँछेउ–पूछा। पूँछेसि–१ पूछा, २ पूछना। पूँछेहु–पूछा, प्रश्न किया। उ० पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ। (मा० २।१२७) पूँछेहू–दे० 'पूँछेहु'।

पूँजी–(स० पुंज)–संचित धन या वस्तु, संपत्ति, रुपया पैसा। उ० पूँजी बिनु बाढ़ी सइ। (गी० २।३७)

पूग–(सं०)–१ सुपारी, कसैली, २ समूह, ढेर, पुंज। उ० १ सफल रसाल पूगफल केरा। (मा० २।६।३) २ मोहांभोधर पूग पाटन विधौ स्वःसंभव शंकर। (मा० ३।१। श्लो० १) पूगफल–(स०)–सुपारी का फल, सुपारी, कसैली। उ० सफल पूगफल कदलि रसाला। (मा० १।३४४।४)

पूगनि–(स० पूर्यते)–पूरा होने, पूरने। उ० काज जुग पूगनि को करतल पल भो। (ह० ६)

पूगुन–'पू' जिनके आदि में हो ऐसे ३ नक्षत्र। पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ और, पूर्वा भाद्र पद। उ० ऊगुन पूगुन वि अज कृम, आ भ अ मू गुनु साथ। (दो० ४५७)

पूछ–(स० पुच्छ)–जानवरों आदि के शरीर के पीछे का अंतिम भाग, दुम, लांगूल, पूँछ। उ० पूछ सों प्रेम, विरोध सींग सों, यहि बिचार हित हानी। (कृ० ४६)

पूछउँ–(स० पृच्छ)–पूछूँ, पूछता हूँ। पूछत–पूछते, पूछते हैं। उ० नाथ नाइ पूछत अस भयऊ। (मा० ४।१।२) पूछति–पूछती है। पूछन–पूछने। पूछब–पूछूँगा। पूछहिं–पूछते हैं। पूछहु–पूछो, प्रश्न करो। पूछा–प्रश्न किया, दरियाफ्त किया। उ० पूछा सिवहि समेत सकाया। (मा० १।८७।३) पूछि–पूछकर, प्रश्न कर। पूछिअ–पूछ रहे हैं, पूछते हो। उ० जानत हूँ पूछिअ कस स्वामी। (मा० ३।६।४) पूछिये–प्रश्न कीजिए, पूछो। पूछिहहिं–पूछेंगे, प्रश्न करेंगे। पूछिहहि–पूछेगा। पूछिहि–पूछेंगी, पूछेगी। उ० पूछिहि जबहिं लखन महतारी। (मा० २।१४६।१) पूछिहैं–पूछेंगे। पूछिहै–पूछेगा। उ० हमैं पूछिहै कौन? (दो० ४६४) पूछी–पूछा, प्रश्न किया। पूछु–पूछो, प्रश्न करो। पूछे–प्रश्न किये। पूछेसि–पूछा। उ० पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। (मा० २।१३।१) पूछेहु–पूछना, प्रश्न करना। पूछेहू–दे० 'पूछेहु'।

पूजइ–(स० पूजा)–पूजेगी, पूजा करेगी। पूजत–१ पूजते, पूजते हैं, २ पूजते समय, पूजते हुए। उ० १ गिरिवर मैना मुदित मुनिन्हि पूजत भए। (पा० ११) पूजहिं (१)–(स० पूजा)–पूजती है आराधना करता या करते हैं। उ० सिद्ध सची सारद पूजहिं। (वि० २२) पूजहु–पूजा करो। पूजि (१)–(स०पूजा)–पूजा करके, आराधना करके। उ० देखि पूजि पदकमल तुम्हारे। (मा० १।२३६।१) पूजिअ–पूजना चाहिए। उ० पूजिअ विप्र सील गुन हीना। (मा० ३।३४।१) पूजिअत–पूजे जाते हैं। उ० प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ। (मा० १।१६।२) पूजिअहिं–पूजते हैं। उ० देव प्रताप पूजिअहिं तेऊ। (मा० १।७०।३) पूजिबे–पूजा करने। उ० दे० 'पुजाइबे'। पूजिबो–पूजना, सेवा या पूजा करना। पूजिये–पूजा कीजिए। उ०देव, पितर, ग्रह पूजि के तुला तौलिए घी के। (गी० १।१२) पूजिहि (१)–पूजा करेगा। पूजिहैं (१)–पूजा करेंगे। पूजीं (१)–(स० पूजा)–पूजन किया। पूजी (१)–(सं० पूजा)–१ पूजा, पूजन किया, २ सम्मान किया। उ० २ तेहि सराहि बानी फुरि पूजी। (मा० २।२२२।३) पूज–पूजा करके, पूजने पर। उ० सबु पायउँ रज पावनि पूजें। (मा० २।३।३) पूजे–पूजन किया। उ० पूजे देव पितर सब राम उदय कहँ। (जा० २१३) पूजेउ–पूजा, पूजन किया। उ० मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि। (मा० १।१००) पूजेहु–पूजा की। उ० सिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती। (मा० ६।२०।२) पूजैं (१) (स० पूजा)–पूजें, पूजा करें। पूजै (१)–(स० पूजा)–पूजा करे।

पूजक–पूजा करनेवाला। उ० जापक पूजक पेखियत, सहत निरादर भार। (दो० ३६३)

पूजन–अर्चन, आराधना, पूजा। उ० गिरिजा पूजन जननि पठाई। (मा० १।२२८।१)

पूजनीय–(स०)–पूजा के योग्य, पूज्य। उ० पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। (मा० २।७४)

पूजहि (२)–(स० पूर्यते)–पूरी होती हैं। पूजहिं–१ पूरा हो, २ पूरी होगी। उ० २ पूजहि मन अभिलाष। (दो० ४६०) पूजा (१)–(स० पूर्यते)–पूरा हुआ। पूजि (२)–(स० पूर्यते)–पूरी हो। उ० ताकी पैज पूजि आइ यह रखा कुलिस पषान की। (वि० ३०) पूजिहि (२)–पूरी होगी, पूर्ण होगी। उ० तौ हमार पूजिहि अभिलाषा। (मा० १।१४४।४) पूजिहैं (२)–पूरे होंगे। उ० मेरे पासगहु न पूजिहैं। पूजीं (२)–(स० पूर्यते)–पूरी हुई। उ० पूजीं सकल बासना जी की। (मा०१।३२१।१) पूजी (२)–(स० पूर्यते)–पूरी हुई, पूर्ण हो गई। पूजैं (२)–दे० 'पूजै (२)'। पूजै (२)–(स० पूर्यते)–बराबरी करते हैं। उ० धन धाम निकर, करनि हू न पूजै कै। (क० ७।१६३) पूजो (१)–(स० पूर्यते)–पूरा पड़ा, पूजा। पूज्यो–पूरा हुआ, पूजा। उ० टूट्यो धनुष, मनोरथ पूज्यो। (गी० १।६६)

पूजों–पूजा को। उ० न जानामि योग जप नैव पूजां। (मा० ७।१०८।छ०८) पूजा (२)–(स०)–१ अर्चना, आराधना, उपासना, २ सम्मान, सत्कार। उ० १ करि पूजा मुनि सुजसु बखानी। (मा० १।४५।३)

पुजाइबे–पुजाने, पुजवाने, पूजा कराने। उ० बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि। (वि० १५८)

पूजि (३)–(स० पुज्य)–पूज्य, माननीय, पूजनीय। उ० पाप हरे परिताप हरे, तन पूजि भो सीतल सीतलताई। (क० ७।१८८)

पूजित–(स०)–अर्चित, आराधित, जिसकी पूजा की गई हो। पूजे हुए। उ० पूजित कलिजुग माहिं। (वै० ४४)

पूजो (२)-(स० पूजा)-पूजा, आराधना, अर्चना। उ० पूत सुजाति कुपूत अधी सब की सुधरै जो करै नर पूजो। (क० ७।५)
पूज्य-(स०)-पूजा के योग्य। उ० अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। (मा० १।३२।४)
पूत (१)-(स० पुत्र)-लड़का, बेटा। पूतऊ-पुत्र भी। उ० छोटे और बड़े पूतऊ अनेरे सब। (क० ५।११)
पूत (२)-(स०)-पवित्र, शुद्ध। उ० यत्र संभूत अति पूत जल सुरसरी। (वि० ५५)
पूतना-(स०)-१ एक दानवी जिसे कंस ने कृष्ण को मारने के लिए भेजा था। यह अपने स्तनों में विष लगा कर बाल कृष्ण को दूध पिलाने गई पर कृष्ण का कुछ न हुआ और उन्होंने इसका सारा खून खींच लिया और यह मर गई। २ बालकों का एक रोग। उ० १ पूतना पिसाच प्रेत डाकिनि साकिनि समेत। (वि० १६)
पूतरा-मर्द पुतली, गुड्डा। मु० पूतरो बाँधिहैं-निंदा करेंगे। उ०अब तुलसी पूतरो बाँधिहै सहि न जात मो पै परिहास एते। (वि० २४१) पूतरि-दे० 'पूतरी'। उ० २ करौं तोहि चख पूतरि आली। (मा० २।२३।२) पूतरी-(स० पुत्तलिका)-१ काठ या कपड़े की पुतली, २ आँख की पुतली।
पूतरो-पुतला, गुड्डा। काठ या कपड़े का आदमी। उ० दे० 'पुतरा'।
पूति-(स०)-१ पवित्रता, शुद्धता, २ दुर्गंध, बदबू।
पूतु-दे० 'पूत (१)'। उ० पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारें। (मा० २।१५।२)
पूनों-(स० पूर्णिमा)-पूनमासी, शुक्ल पक्ष की १५ वीं तिथि। उ० पूनों प्रेम भगति-रस हरिरस जानहिं दास। (वि० २०३)
पूप-(स०)-पूआ, मालपूआ। उ० पचउँ भागि तब पूप देखावहिं। (मा० ७।७७।५)
पूय-(स०)-पीप, मवाद। उ०बिग्न पूय रुधिर कच हाडा। (मा० ६।५२।२)
पूर-(स० पूर्ण)-१ पूरा, संपूर्ण, २ भरा हुआ, ३ वह पदार्थ जो किसी पकवान के भीतर भरा जाय। ४ अधिक, ज्यादा, पूरे, ५ पूरा हो। उ० १ देखि पूर बिधु बाढइ जोई। (मा०१।८।७) २ कल केयूर पूर-कचन मनि। (गी० ७।१७)
पूरक-(स०)-पूर करनेवाला, भरनेवाला।
पूरण-(स० पूर्ण)-१ भरा हुआ, पूरा २ पूरा करनेवाला, ३ समाप्त, खतम, ४ सब, ५ पूर्ण करने की क्रिया, समाप्त करने का भाव, ६ पुल, ७ सकल।
पूरत-(स० पूर्ति)-पूरा करता है, पूरा पड़ता है। पूरति-१ पूर्ण कर देती, २ भर देती है। उ० १ मुक्तमिदाम बड़े भाग मन लागेहु तें सब सुख पूरति। (कृ० २८) २ पुलक तन पूरति। (पा० ७६) पूरहिं-१ भर दें पूरा कर दें, पाट दें, २ भर देंगे, पाट देंगे। उ०१ पूरहिं नत भरि कुधर बिसाला। (मा० ५।५५।३) पूरि-१ पूरा कर के, पूर्ण कर, २ भरे, ३ समाप्त कर। उ० १ असम पूरि अरि दरप दूरि करि भूरि कृपा दनुजारी। २ रह पूरि सर धरनी गगन दिसि बिदिसि कहँ कपि भागहीं। (मा० ६।८२।छं० १) पूरीं-पूरा, बनाया, भरा। उ० चौकें चारु सुमित्राँ पूरीं। (मा० २।८।२) पूरे-१ पूर्ण हो गए भर गए, २ पूर्ण, भरपूर, भरे हुए, ३ बजाया। उ० १ सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता। (मा० १।२६८।१) २ सुचि सुगंध-मंगल जल पूरे। (मा० १।३२७।२) ३ रूरे सृगी पूरे काल कटक हरत हैं। (क० ७।१२६) पूरैं-बनाते हैं, पूरते हैं। उ० चौकें पूरैं चारु कलस ध्वज साजहिं। (जा० २०४)
पूरन-दे० 'पूरण'। उ० १ प्रेम परिपूरन हियो। (मा० १।१०१।छं०१) १ जनु चकोर पूरन ससि लोभा। (मा० १।२०७।३) ७ देखि राम भए पूरनकामा। (मा० १। ३२३।२) पूरनकामा-दे० 'पूर्णकाम'। उ० देउँ काह तुम्ह पूरनकामा। (मा० ३।३१।५)
पूरनिहारु-पूर्ण करनेवाला। उ० स्याम सुभग सरीर जनु मन काम-पूरनिहारु। (गी० ७।८)
पूरब-(स० पूर्व) १ पूर्व दिशा, प्राची, प्राची की ओर, २ पहले, पूर्व।
पूरा-पूर्ण, भरा हुआ। उ० राम भुज सागर थल जल पूरा। (मा० ६।२८।२)
पूरित-भरे हुए। उ० सबकें उर निभर हरषु पूरित पुलक सरीर। (मा० १।३००)
पूरुब-दे० 'पूरब'। उ० १ पुर पूरुब दिसि गे दोउ भाई। (मा० १।२२४।१) २ पूरुब भाग मिलाहिं। (वै० २४)
पूरुष-(स० पुरुष)-१ पुरखा, बड़े लोग, २ आदमी। उ० २ मसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा। (मा० ६।१०।छं० १)
पूरो-पूरा, पूर्ण। उ० पिय पूरो आयो अब काढ़ि कहु करि रघुबीर बिरोधु। (गी० ६।१)
पूरोहितहि-(स० पुरोहित)-पुरोहित को।
पूर्ण-(स०)-१ परिपूर्ण, पूरा, अखंडित, २ अभाव, शून्य, जिस कोइ इच्छा न हो, ३ काफी, पर्याप्त, ४ समस्त, संपूर्ण। उ० १ मूलं धर्म तरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं। (मा० ३।१।श्लो०।१)
पूर्णकाम-(स०)-जिसकी सारी इच्छाएँ पूरा हो चुकी हों।
पूर्व-दे० 'पूर्व'। उ० ३ यत्पूर्वं प्रभुणाकृतं सुकविना श्री शम्भुना दुर्गमं। (मा० ७।१३१। श्लो० १) पूव-(स०)-१ प्राची, पूरब, २ आगे का, अगला, पुराना, पहले का, ३ पहले।
पूपण-दे० 'पूरा'।
पूषन-(स० पूषण)-सूर्य, रवि। उ० पूषन-बंस बिभूषन-पूषन तेज प्रताप गरे अरि आर। (क० ६।२७)
पृथक-(स० पृथक्) भिन्न, अलग जुदा। उ० पृथक-पृथक तिन्ह कीन्हि प्रसंसा। (मा० १।८८।३)
पृथुराज-एक राजा का नाम जो वेनु के पुत्र थे और जिन्होंने पृथ्वी को समतल किया। इन्होंने पृथ्वी का दोहन कर औषधियाँ तथा रत्नादि भी निकाले थे। पृथु ने भगवान् का यश सुनने के लिए १० हजार कान माँगे थे। उ० पुनि मनवउँ पृथुराज समाना। (मा० १।४।२)

सकहिं भय विषाद मन माहिं। (मा० २।११८) पूँछिय–१ पूछे, २ पूछिए। पूँछिहहिं–पूछेंगे। उ०धाइ पूँछिहहिं मोहि जय बिकल नगर नर नारि। (मा०२।१४५) पूँछिहहि–पूछेगा। पूँछिहि–पूछेगा। पूँछिहु–पूछा। उ०पूँछिहु नाथ राम कस काइ। (मा०२।२४।३) पूँछी–पूछा। पूँछु–पूछे हुए। उ० मैं सबु कीन्ह तोहि बिन पूँछे। (मा० ७।३२।१) पूँछे–पूछा, पूछा था। पूँछेउँ–पूछा। उ० पूँछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। (मा० २।२१।४) पूँछेउ–पूछा। पूँछेसि–१ पूछा, २ पूछना। पूँछेहु–पूछा, प्रश्न किया। उ० पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ। (मा० २। १२७) पूँछेहू–दे० 'पूँछेहु'।

पूँजी–(सं० पुंज)–संचित धन या वस्तु, सम्पत्ति, रुपया पैसा। उ० पूँजी बिनु बाढ़ी सई। (गी० ५।२७)

पूग–(सं०)–१ सुपारी, कसैली, २ समूह, ढेर, पुंज। उ० १ सफल रसाल पूगफल केरा। (मा० २।६।३) २ मोहांभोधर पूग पाटन विधौ स्वःसम्भव शंकर। (मा० ३। १। श्लो० १) पूगफल–(सं०)–सुपारी का फल, सुपारी, कसैली। उ० सफल पूगफल कदलि रसाला। (मा० १।३४४।४)

पूगनि–(सं० पूर्यते)–पूरा होने, पूगने। उ० काज जुग पूगनि को करतल पल भो। (ह० ६)

पूगुन–'पू' जिनके आदि में हों ऐसे ३ नक्षत्र। पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ और, पूर्वा भाद्र पद। उ० ऊगुन पूगुन वि अज कृम, आ भ अ मू गुनु साथ। (दो० ४५७)

पूछ–(सं० पुच्छ)–जानवरों आदि के शरीर के पीछे का अंतिम भाग, दुम, लांगूल, पूँछ। उ० पूछ सा प्रेम, विरोध सींग सों, यहि विचार हित हानी। (कृ० ४३)

पूछउँ–(सं० पृच्छ)–पूँछूँ, पूछता हूँ। पूछत–पूछते, पूछते हैं। उ० नाथ नाइ पूछत अस भयऊ। (मा० ४।१।३) पूछति–पूछती है। पूछन–पूछने। पूछब–पूँछूगा। पूछहिं–पूछते हैं। पूछहु–पूछा, प्रश्न करो। पूछा–प्रश्न किया, दरियाफ्त किया। उ० पूछा सियहि समेत सकोपा। (मा० १।२७।३) पूछि–पूछकर, प्रश्न कर। पूछिअ–पूछ रहे हैं, पूछते हो। उ० जानत हूँ पूछिअ कस स्वामी। (मा० ३। ६।४) पूछिये–प्रश्न कीजिए, पूछो। पूछिहहिं–पूछेंगे, प्रश्न करेंगे। पूछिहहि–पूछेगा। पूछिहि–पूछेंगी, पूछेगी। उ० पूछिहि जबहिं लखन महतारी। (मा० २।१४६।१) पूछिहैं–पूछेंगे। पूछिहै–पूछेगा। उ० हमैं पूछिहै कौन? (दो० ४६४) पूछी–पूछा, प्रश्न किया। पूछु–पूछो, प्रश्न करो। पूछे–प्रश्न किये। पूछेसि–पूछा। उ० पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। (मा० २।१३।१) पूछेहु–पूछना, प्रश्न करना। पूछेहू–दे० 'पूछेहु'।

पूजइ–(सं० पूजा)–पूजेगी, पूजा करेगी। पूजत–१ पूजते पूजते हैं, २ पूजते समय, पूजते हुए। उ० १ गिरिवर मैना मुदित मुनिहि पूजत भए। (पा० ११) पूजहिं (१)–(सं० पूजा)–पूजती है, आराधना करती या करते हैं। उ० सिद्ध सची सारद पूजहिं। (वि० २२) पूजहु–पूजा करो। पूजि (१)–(सं०पूजा)–पूजा करके, आराधना करके। उ० देवि पूजि पदकमल तुम्हारे। (मा० १।२३६।१) पूजिअ–पूजना चाहिए। उ० पूजिअ विप्र सील गुन हीना। (मा० ३।३४।१) पूजिअत–पूजे जाते हैं। उ० प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ। (मा० १।१९।२) पूजिअहिं–पूजते हैं। उ० सेष प्रताप पूजिअहिं तेऊ। (मा० १।७०।३) पूजिये–पूजा करने। उ० दे० 'पुजाइबे'। पूजिबो–पूजना, सेवा या पूजा करना। पूजिये–पूजा कीजिए। उ०देव, पितर, ग्रह पूजि के तुला तौलिए घी के। (गी० १।१२) पूजिहि (१) पूजा करेगा। पूजिहैं (१)–पूजा करेंगे। पूजीं (१)–(सं० पूजा)–पूजन किया। पूजी (१)–(सं० पूजा)–१ पूजा, पूजन किया, २ सम्मान किया। उ० २ तेहि सराहि बानी फुरि पूजी। (मा० २।२२२।३) पूजु–पूजा करके, पूजने पर। उ० सबु पायउँ रज पायनि पूजें। (मा० २।३।२) पूजे–पूजन किया। उ० पूजे देव पितर सब राम-उदय कहँ। (जा० २१३) पूजेउ–पूजा, पूजन किया। उ० मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ सभु भवानि। (मा० १।१००) पूजेहु–पूजा की। उ० सिय बिरंचि पूजेहु बहु भाँती। (मा० ६।२०।?) पूजैं (१) (सं० पूजा)–पूजें, पूजा करें। पूजै (१)–(सं० पूजा)–पूजा करे।

पूजक–पूजा करनेवाला। उ० जापक पूजक पेखियत, सहत निरादर भार। (दो० ३१३)

पूजन–अर्चन, आराधना, पूजा। उ० गिरिजा पूजन जननि पठाई। (मा० १।२२८।१)

पूजनीय–(सं०)–पूजा के योग्य, पूज्य। उ० पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। (मा० २।७४)

पूजहिं (२)–(सं० पूर्यते)–पूरी होती हैं। पूजहि–१ पूरा हो, २ पूरी होगी। उ० २ पूजहि मन अभिलाष। (दो० ४६०) पूजा (१)–(सं० पूर्यते)–पूरा हुआ। पूजि (२)–(सं० पूर्यते)–पूरी हो। उ० ताकी पैज पूजि आइ यह रेखा कुलिस पषान की। (वि० ३०) पूजिहि (२)–पूरी होगी, पूर्ण होगी। उ० तौ हमार पूजिहि अभिलाषा। (मा० १।३४४।४) पूजिहैं (२)–पूरे होंगे। उ० मेरे पासगहु न पूजिहैं। पूजीं (२)–(सं० पूर्यते)–पूरी हुई। उ० पूजीं सकल बासना जी की। (मा० १।३२१।१) पूजी (२)–(सं० पूर्यते)–पूरी हुई, पूर्ण हो गई। पूजे (२)–दे० 'पूजे (२)'। पूजै (२)–(सं० पूर्यते)–बराबरी करते हैं। उ० धन धाम निकर, करनि हू न पूजै क्वै। (क० ७।१६३) पूजो (१)–(सं० पूर्यते)–पूरा पड़ा, पूजा। पूज्यो–पूरा हुआ, पूजा। उ० टूट्यो धनुष, मनोरथ पूज्यो। (गी० १।१६)

पूजौं–पूजा करो। उ० न जानामि योग जपं नैव पूजां। (मा० ७।१०८।छं०८) पूजा (२)–(सं०)–१ अर्चना, आराधना, उपासना, २ सम्मान, सत्कार। उ० १ करि पूजा मुनि सुजसु बखानी। (मा० १।४४।३)

पुजाइबे–पुजाने, पुजवाने, पूजा कराने। उ० बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि। (वि० १५८)

पूजि (३)–(सं० पूज्य)–पूज्य, माननीय, पूजनीय। उ० पाप हरे परिताप हरे, तन पूजि भो सीतल सीतलताई। (क० ७।१४८)

पूजित–(सं०)–अर्चित, आराधित, जिसकी पूजा की गई हो। पूजे हुए। उ० पूजित कलिजुग माहिं। (दो० ५५)

पूजो (२)-(सं० पूजा)-पूजा, आराधना, अर्चना। उ० कूर कुजाति कुपूत अघी सब की सुधरै जो करै नर पूजो। (क० ७।५)

पूज्य-(सं०)-पूजा के योग्य। उ० अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। (मा० १।३२।४)

पूत (१)-(सं० पुत्र)-लड़का, बेटा। पूतऊ-पुत्र भी। उ० छोटे और बड़ेरे पूतऊ घनेरे सम। (क० ५।११)

पूत (२)-(सं०)-पवित्र, शुद्ध। उ० यत्र सभूत अति पूत जल सुरसरी। (वि०५५)

पूतना-(सं०)-१ एक दानवी जिसे कंस ने कृष्ण को मारने के लिए भेजा था। यह अपने स्तनों में विष लगा कर बाल कृष्ण को दूध पिलाने गई पर कृष्ण का कुछ न हुआ और उन्होंने इसका सारा खून खींच लिया और यह मर गई। २ बालकों का एक रोग। उ० १ पूतना पिसाच प्रेत डाकिनि साकिनि समेत। (वि० १६)

पूतरा-मर्द पुतली, गुड्डा। मु० पूतरो बाँधिहैं-निंदा करेंगे। उ०अब तुलसी पूतरो बाँधिहै सहि न जात मो पै परिहास एते। (वि० २४१) पूतरि-दे० 'पूतरी'। उ० २ करौं तोहि चख पूतरि आली। (मा० २।२३।२) पूतरी-(सं० पुत्तलिका)-१ काठ या कपड़े की पुतली, २ आँख की पुतली।

पूतरा-पुतला, गुड्डा। काठ या कपड़े का आदमी। उ० दे० 'पुतरा'।

पूति-(सं०)-१ पवित्रता, शुद्धता, २ दुर्गंध, बदबू।

पूतु-दे० 'पूत (१)'। उ० पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारें। (मा० २।१४।३)

पूनों-(सं० पूर्णिमा)-पूर्णमासी, शुक्ल पक्ष की १५ वीं तिथि। उ० पूनों प्रेम भगति-रस हरिरस जानहिं दास। (वि० २०३)

पूप-(सं०)-पूआ, मालपूआ। उ० चलउँ भागि तव पूप देखावहिं। (मा० ७।७७।५)

पूय-(सं०)-पीप, मवाद। उ०विष्ठा पूय रुधिर कच हाड़ा। (मा० ६।५२।२)

पूर-(सं० पूर्ण)-१ पूरा, संपूर्ण, २ भरा हुआ, ३ वह पदार्थ जो किसी पकवान के भीतर भरा जाय। ४ अधिक, ज्यादा, पूरे, ५ पूरा हो। उ० १ देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई। (मा० १।८।७) २ कल केयूर पूर-कंचन-मनि। (गी० ७।१७)

पूरक-(सं०)-पूर करनेवाला, भरनेवाला।

पूरण-(सं० पूर्ण)-१ भरा हुआ पूरा २ पूरा करनेवाला, ३ समाप्त, ख़तम, ४ सब, ५ पूर्ण करने की क्रिया, समाप्त करने का भाव, ६ पुल, ७ सफल।

पूरत-(सं० पूर्ति)-पूरा करता है, पूरा पड़ता है। पूरति-१ पूर्ण कर देती, २ भर देती है। उ० १ तुलसिदास बड़े भाग मन लागेहु तें सब सुख पूरति। (कृ० २८) २ चुनक ता पूरति। (पा० ७६) पूरहिं-१ भर दें पूरा कर दें, पाट दें २ भर देंगे, पाट देंगे। उ०१ पूरहिं मत भरि कुधर बिसाला। (मा० ५।५५।३) पूरि-१ पूरा कर के, पूर्ण कर, २ भरे, ३ समाप्त कर। उ० १ चसन पूरि भरि दरप दूरि करि भूरि कृपा दनुजारी। २ रह पूरि सर धरनी गगन दिसि बिदिसि कहँ कपि भागहीं। (मा० ६।८२।छं० १) पूरीं-पूरा, बनाया, भरा। उ० चौकें चारु सुमित्राँ पूरीं। (मा० २।८।२) पूरे-१ पूर्ण हो गए भर गए, २ पूर्ण, भरपूर, भरे हुए, ३ बजाया। उ० १ सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता। (मा० १।२३८।१) २ सुचि सुगंध-मंगल जल पूरे। (मा० १।३२४।२) ३ रूरे सगी पूरे काल कटक हरत हैं। (क० ७।१२६) पूरैं-बनाते हैं, पूरते हैं। उ० चौकैं पूरैं चारु कलस ध्वज साजहिं। (जा० २०५)

पूरन-दे० 'पूरण'। उ० १ प्रेम परिपूरन हियो। (मा० १।१०१।छं०१) १ जनु चकोर पूरन ससि लोभा। (मा० १।२०७।३) ७ देखि राम भए पूरनकामा। (मा० १। ३२३।२) पूरनकामा-दे० 'पूर्णकाम'। उ० देउँ काह तुम्ह पूरनकामा। (मा० ३।३१।५)

पूरनिहारु-पूर्ण करनेवाला। उ०स्याम सुभग सरीर जनु मन काम-पूरनिहारु। (गी० ७।८)

पूरब-(सं० पूर्व) १ पूर्व दिशा, प्राची, प्राची की ओर, २ पहले, पूर्व।

पूरा-पूर्ण, भरा हुआ। उ० गम भुज सागर बल जल पूरा। (मा० ६।२८।२)

पूरित-भरे हुए। उ० सबकें उर निभर हरषु पूरित पुलक सरीर। (मा० १।३००)

पूरुब-दे० 'पूरब'। उ० १ पुर पूरुब दिसि गे दोउ भाइ। (मा० १।२२७।१) २ पूरुब भाग मिलाहिं। (वै० २७)

पूरुष-(सं० पुरुष)-१ पुरखा, बड़े लोग, २ आदमी। उ० २ नमार महू पूरुष त्रिविध पाटल रसाल पनस समा। (मा० ६।१०।छं० १)

पूरो-पूरा, पूर्ण। उ० पिय पूरो आयो अब काहि कछु करि रघुबीर बिरोधु। (गी० ६।१)

पूरोहितहिं-(सं० पुरोहित)-पुरोहित को।

पूर्ण-(सं०)-१ परिपूर्ण, पूरा, अखंडित, २ अभाव, शून्य, जिस कोई इच्छा न हो, ३ काफ़ी, पर्याप्त, ४ समस्त, संपूर्ण। उ० १ मूलं धर्म तरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं। (मा० ३।१।श्लो०।१)

पूर्णकाम-(सं०)-जिसकी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो चुकी हों।

पूर्व-दे० 'पूर्व'। उ० १ यत्पूर्वं प्रभुणाकृतं सुकविना श्री शम्भुना दुर्गमं। (मा० ७।१३१। श्लो० १) पूर्व-(सं०)-१ प्राची पूरब, २ आगे का, अगला, पुराना, पहले का, ३ पहले।

पूषण-दे० 'पूषन'।

पूषन-(सं० पूषण)-सूर्य, रवि। उ० पूषन-बंस-बिभूषन-पूषन तेज प्रताप गरे अरि घोरे। (क० ६।२७)

पृथक-(सं० पृथक्)-भिन्न, अलग, जुदा। उ० पृथक-पृथक तिन्ह कीन्हि प्रसंसा। (मा० १।८८।३)

पृथुराज-एक राजा का नाम जो वेनु के पुत्र थे और जिन्होंने पृथ्वी को समतल किया। इन्होंने पृथ्वी का दोहन कर औषधियाँ तथा रत्नादि भी निकाले थे। पृथु ने भगवान् का यश सुनने के लिए १० हज़ार कान माँग थे। उ० पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना। (मा० १।४।५)

पृथुल-(स०)-महत्, बड़ा, अति विस्तृत। उ० राम-लषन सिय-पथि की कथा पृथुल। (गी० २।३७)
पृथ्वी-(स०)-पृथिवी, धरती, भूमि। उ० तुलसी ऐसे संत जन, पृथ्वी ब्रह्म समान। (वै० २७)
पृष्ठ-(स०)-१ पीठ, २ पन्ना, पुस्तक आदि का सफ्हा। उ० १ कमठ अति विकट-तनु, कठिन पृष्ठोपरि भ्रमत मंदर कडु-सुख मुरारी। (वि० ५२)
पेखक-(स० प्रेक्षण)-देखनेवाला, दर्शक। उ० व्योम विमानि विबुध विलोकत खेलक पेखक छाँह छये। (गी० १।४३)
पेखत-(स० प्रेक्षण)-१ देखता हूँ देख रहा हूँ, २ देखता है, ३ देखते ही। उ० २ पेखत प्रगट प्रभाउ प्रतीत न आवइ। (पा० ७८) ३ सीता वट पेखत पुनीत होत पातकी। (क० ७।१३८) पेखहु-देखो, दर्शन करो। उ० देखहु पनम रसाल। (दो० ३५४) पखा-देखा, अवलोकन किया। उ० भूमि बिबर एक कौतुक पेखा। (मा० ४।२४।३) पखि-देखकर, अवलोकन कर। उ० लछिमन देखु मोरगन नाचत बारिद पेखि। (मा०४।१३) पखिअ-देखिए, देखो। उ० सज्जनफल पेखिअ तत काला। (मा० १।३।१) पेखियत-दिखलाई दे रहा है, दिखाई दे रहा है, देखते हैं। पेखी-१ देखकर, २ देखा। उ० १ समर सरोष राम मुखु पेखी। (मा० २।२२६।२) पखु-देख, देखो। उ० सुमुखि! केस सुदेस सुंदर सुमन संजुत पेखु। (गी० ७।६) पखेउ-देखा, देख लिया। उ० पेखेउ जनम फल भा बियाहु, उछाह उमगहिं दस दिसा। (पा०१४७)
पेखन-(स० प्रेक्षण)-१ दृश्य, देखने की चीज़, २ देखने के लिए, देखना, देखने की क्रिया। उ० १ जनु पेखन सुग्ह पेखनिहारे। (मा० २।१२७।१) २ ऋषि तिय तारि स्वयं बर पेखन जनक-नगर पगु धारे। (गी० १।५८)
पेखनिहारे-देखनेवाले। दे० 'पेखन'।
पखनो-खेल, तमाशा, दृश्य। उ०पेखनो सो पेखन चले हैं पुर-नर नारि। (गी० १।७१)
पेट-(स०)-१ उदर, तुंद, शरीर का वह भाग जिसमें पहुँच कर भोजन पचता है, २ गर्भ, हमल। उ० १ पेट की कठिन, जग जीव को जवारु है। (क० ७।९७) पेटै-पेट को। उ० तब लौं उथैने पायँ फिरत पेटै खलाय। (क० ७।१२५)
पेटक-(स० पिटारा)-संदूक, पेटी। उ० रघुबीर जस-मुकुता बिपुल सब भुवन पटु पेटक भरे। (जा० ११७)
पटारा-(स० पिटक)-बाँस, बेंत या मूँज आदि का बना संदूक। पटारे-पेटारियाँ, संदूकें। उ० कनक किरीट कोटि, पलंग पेटारे, पीठ काढ़त कहार सब जरे भरे भारही। (क० ५।२३)
पेड़-(स० पिंड)-वृक्ष, दरख्त। उ० पेड़ काटि तैं पालउ सींचा। (मा० २।१६१।४)
पेन्हाई-(दे० 'पन्हाई')-पेन्हावे, ... हाथ से छूकर थनों में दूध उतारे ... या ... सिसु ... पाइ पेन्हाई। (मा० ७।११७।६)
पेम-(स० प्रेम)-प्रीति, स्नेह। उ० ... भजा ... मिल जू, गनिका कबहीं मति पेम ... ३)

पेरि-(स० पीडन)-पीसकर, दबाकर, पेरकर। उ० समर तैलिक यंत्र तिल तिल तमीचर निकर पेरि डारे सुभट घालि घानी। (वि० २५) पेरो (१)-१ पेरा, दबाया, पीसा, २ बहुत सताया, कष्ट दिया। उ० १ भूल्यो सूल कर्म-कोल्हुन तिल ज्यों बहु बारनि पेरो। (वि० १४३)
पेरो (२)-(स० प्रेरणा)-१ प्रेरणा की, २ पठाया।
पेलइहि-(स०पीडन)-१ त्याग करेंगे, २ टाल देंगे, छोड़ देंगे, ३ मिटा देंगे। पेलि-१ पीछे हटाकर, २ टालकर, धक्का देकर, ३ बलात् हठात्, जबरदस्ती। उ०१ भारी भीर ठेलि पेलि रौंदि खौंदि डारहीं। (क० ५।१५) २ सुनि पेलि पैठे मधुबन में। (क० ५।२१) ३ ठकनि ठकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि। (क० ५।८) पलिहहिं-त्याग करेंगे, टाल देंगे, छोड़ देंगे। उ० भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं मनसहुँ राम रजाइ। (मा० २।२८६) पली-१ टालकर, हटाकर, २ टाला, हटाया। उ० १ आयसु तात वचन मम पेली। (मा० ३।३०।१)
पेव (१)-(स० प्रेम)-प्रेम, प्रीति। उ०दीन्हीं मुदित गिरि राज जे गिरिजहि पियारी पेव की। (पा० १४७)
पव (२)-(?)-बचपन, दूध पीने का समय।
पेषण-(स०)-पीसना, चूर्ण करना।
पेषत-(स० प्रेक्षण)-देखते हुए, देखकर। उ० बचन कहे अभिमान के पारथ पेषत सेतु। (दो० ४४०) पेषन-(स० प्रेक्षण)-१ निरीक्षण, देखना, २ तमाशा, दृश्य। उ० १ पटु पेप पेपन पेम पन ब्रत नेम ससि सेखर गए। (पा० ४५) पेषि-देखकर। उ० पेषि पुरुषारथ परखि पन, पेम नेम। (गी० १।६०) पेषिय-१ देखो, २ प्रेष्य, देखने के योग्य। पेषियत-दे० 'पेखियत'। उ० सातें तनु पेषियत घोर बरतोर मिस। (ह० ४१) पेषिये-देखिए, दर्शन कीजिए। उ० राम प्रेम-पथ पेषिये दिये विषय तनु पीठि। (दो० ८२) पेषु-देखो।
पैंजनि-दे० 'पैंजनी'। उ० कटि किंकिनि, पग पैंजनि बाजैं। (गी० १।२८)
पैंजनी-(?)-पाँव का एक गहना, घुँघरू।
पैंत-(स० पणकृत, प्रा० पणइत)-१ दाँव में रखा हुआ द्रव्य, जूए पर का दाँव, २ घात, दाँव, बाज़ी। उ० १ प्रमुदित पुलकि पैंत पूरे जनु बिधि बस सुढर ढरे हैं। (गी० ६।१३) २ माँगे पैंत पायन पचारि पातकी प्रचंड। (क० ७।८१)
पै (१)-(स० पर)-१ पर, परन्तु, लेकिन, २ निश्चय, ज़रूर ३ ... पीछे। उ० १ मन सौं न ... पै ... ४६) २ मिलिए पै नाथ ... ।२९) ... प्रति ... पइ)-१ पास, समीप, २ ... तरम ... । उ० १ ... ओ ... ।२९) २ ... न पिये। ... कुलिस

'पयान की। (वि०३०) २ पैज परे प्रह्लादहु को प्रगटे प्रभु पाहन तें न हिये तें। (क० ७।१२९)

पैठ-(सं० प्रविष्ठ)-पैठे, प्रवेश किया। उ० पैठ भवन रघु राखि दुआरें। (मा० २।१४७।३) पैठत-१ प्रवेश करते हुए घुसते हुए, २ प्रवेश करते हैं। उ० १ पैठत नगर सचिव सकुचाई। (मा० २।१४७।२) पैठहिं-प्रवेश करती हैं, घुसती हैं, भीतर आते हैं। उ० गावत पैठहिं भूप दुआरा। (मा० १।१९४।२) पैठा-प्रवेश किया। उ० पैठा नगर सुमिरि भगवाना। (मा० ५।५।२) पैठि-प्रविष्ट होकर, पैठकर, घुसकर। उ० पैठि उर बरबस दयानिधि दंभ लेत अँजोरि। (वि० १५८) पैठीं-घुस गई, घुसीं। उ० भागि भवन पैठीं अति त्रासा। (मा० १।९६।३) पैठे-१ पैठना, घुसना, २ घुसे, प्रवेश किया। उ० १ चहत सकुच गृहँ जनु भजि पैठे। (मा० २।२०६।२) पैठेउ-घुसे, प्रवेश किया। उ० चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा। (मा० ५।१८।१) पैठो-प्रविष्ट हुआ, पैठा, घुसा। उ० पैठो बाटिका बजाइ बल रघुबीर को। (क० ५।२)

पैठारा-(सं० प्रविष्ठ)-प्रवेश करते समय, प्रवेश में। उ० असगुन होहिं नगर पैठारा। (मा० २।१५८।२)

पैन-(सं० पैण)-पैना, तेज़। उ० सनमुख सहै बिरह सर पैन। (गी० ५।२१)

पैना-दे० 'पैन'। उ० सन्मुख हनै गिरा-सर पैना। (वै० ४६) पैनी-तीखी, तेज़, तीव्र। उ० कुलगुरु-तिय के मधुर बचन सुनि जनक-जुवति मति-पैनी। (गी० १।७१)

पैरत-(सं० प्लवन)-१ तैरते हैं, २ तैरते हुए। पैरि-तैरकर, पैर कर। उ० पावत न पैरि पार पैरि-पैरि थाके हैं। (गी० १।६२)

पैसार-(सं० प्रवेश) पहुँच प्रवेश।

पैहहिं-(सं० प्रापण)-पायेंगे। उ० पैहहिं सुख सुनि सुजन सब। (मा० १।८) पैहहु-पायोगे, प्राप्त करोगे।

पोंछि-(सं० प्रोञ्छन)-पोंछकर। उ० आँसु पोंछि मृदु बचन उचारे। (मा० २।१६५।२)

पोऊ-(सं० प्रोत)-पिरोना, पिरोओ। उ० परसपर कहैं, सखि! अनुराग ताग पोऊ। (गी० २।१६)

पोख (१)-सने हुए, पोषित। उ० प्रेम परिहास-पोख-बचन परसपर। (गी० १।६५)

पोखे-(सं० पोषण)-पुष्ट हुए, पली हुए। उ० बाहु पीन पाँवरनि पीना खाइ पोखे हैं। (गी० ७।१३)

पोच-(फा० पूच)-१ तुच्छ, छोटा, नीच, बुरा, २ अशक्त, क्षीण, हीन। उ० १ भोचन जनरु पोच पेच परि गइ है। (गी० १।८४) १ मिटे सकल सोच पोच प्रपंच पाप निकाय। (वि० २१०)

पोचा-(फा० पूच)-नीच, ओछा। उ० सकल कहहिं दस कंधर पोचा। (मा० ६।०७।४) पोची-ओछी, छोटी। उ० जदपि मातु कै कुमातु तें है भाई अति पोची। (गी० २।६५)

पोचु-दे० 'पोच'। उ० १ काहे को परेखो पातकी प्रपंची पोसु हौं। (क० ७।१२१)

पोचू-दे० 'पोच'। उ० कहि दुखु जियँ जगु जानिहि पोचू। (मा० २।२११।२)

पोत-(सं०)-१ पशु पक्षी आदि का छोटा बच्चा, २ नाव, जहाज़। उ० १ रे कपि पोत न बोलु सँभारी। (मा० ६। २१।१) २ बिप्ररूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत। (मा० ७।१ क)

पोतक-(सं०)-बालक, बच्चा। उ० जो भव पातक पोतक डाकिनि। (मा० २।१३२।३)

पोतो-बच्चा। उ० स्वाति-सनेह-सलिल-सुख चाहत चित चातक को पोतो। (वि० १६१)

पोथा-(सं० पुस्तिका, प्रा० पोत्थिआ)-पुस्तक, पोथी।

पोथिन-(सं० पुस्तक)-पोथियों, पुस्तकों। उ० देव दरस कलिकाल में पोथिन दुरे सभीत। (दो० ५५७) पोथिही-पुस्तकों में ही, पोथियों में ही। उ० धरम बरन आस्रम नि के पैयत पोथिही पुरान। (वि० १६२) पोथी-पुस्तक, किताब। उ० सुदिन साँझ पोथी नेवति, पूजि प्रभात सप्रेम। (प्र० ७।७।१)

पोष-(सं०)-१ पोषण, पुष्टि, २ उन्नति, तरक्की, ३ वृद्धि, बढ़ती, ४ संतोष, तुष्टि। उ० १ रसना मंत्री, दसन जन, तोष पोष निज काज। (दो० ५२५)

पोषइ-(सं० पोषण)-पोषण करता है। उ० पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक। (मा० २।३१५) पोषत-पोषण करता है, पालता है, पुष्ट करता है। उ० राम सुप्रेमहि पोषत पानी। (मा० १।४३।२) पोषि-रक्षा करके, पालकर। उ० पोषि तोषि थापि आपनो न अवडेरिए। (ह० ३४) पोषिए-पालन कीजिए, रक्षा कीजिए। उ० अब गरीब जन पोषिए, पायबो न हेरो। (वि० १४६) पोषिबे-पालने, रक्षा करने को। उ० सोखिबे कृसानु पोषिबे को हिम भानु भो। (ह० ११) पोषी-पुष्ट कर दी। उ० जनु कुमुदिनीं कौमुदीं पोषी। (मा० २।११८।२) पोषे-१ पुष्ट किए हुए, २ पाले हुए। उ० १ सुनि बर बचन प्रेम जनु पोषे। (मा० १।२४२।३) २ आपुन मारे आपने पोषे। (गी० ५।१२) पोषेउ-पुष्ट किया। उ० जानकी तोषि पोषेउ प्रताप। (गी० ५।१६)

पोषक-(सं०)-पालन करनेवाला, रक्षक, पुष्टिकर्ता, बढ़ाने वाला। उ० ससि पोषक सोषक समुझि जग जस अपजस दीन्ह। (दो० ३७२)

पोषण-(सं०)-पालन, रक्षण, सहायता, वृद्धि, पुष्टि।

पोषन-दे० 'पोषण'। उ० बिस्व-पोषन भरन बिस्व कारन करन सरन-तुलसीदास-त्रासहर्ता। (वि० ५५)

पोषनिहारा-पालनकर्ता, पालनेवाला। उ० भानु कमल कुल पोषनिहारा। (मा० २।१७।४)

पोखरिन-(सं० पुष्कर)-पोखरियों में, छोटे तालाबों में। उ० डोलत बिपुल बिहग बन, पियत पोखरिन बारि। (दो० २६५) पोखरी-पोखरी तलैया। उ० पोखरी बिसाल बाहुँ, बलि, बारिचर पीर। (ह० २२)

पोसात-(सं० पोषण)-पोस जाते, पोषण होते, पोष पाते, पुष्ट या पालित होते। उ० नृप कलोउ आलस पारस हैं हुतो पोसात दान दिन दीबो। (कृ० ६)

पोषु-(सं० पोषण)-१ पोषण करनेवाला, पालक, २ पोष, पोषण, पालन। उ० १ सील सिंधु, कृपालु नाथ, अनाथ आरत पोषु। (वि० १५९) पोसे-पाला, पालन किया।

उ० मोसे दोस-कोस पोसे तोसे माय जायो को। (वि० १७१) पोसों–पालन करता हूँ, पालता हूँ। उ० पातकी पामर प्राननि पोसों। (क० ७।१३७) पासो–१ पालन करो, पालो, पोषण करो, २ पालना, पोषण करना, ३ पालन किया है। उ० २ बाल ज्यों कृपाल नतपाल पालि पोसो है। (ह० २१) ३ निज दिसि देखि दयानिधि पोसो। (मा० १।२८।२)

पोहत–(सं० प्रोत)–१ गूथते हैं, गुहते हैं, २ लगाते हैं, मिलाते हैं। उ० २ तुलसी प्रभु जोहत पोहत चित, सोहत मोहत कोटि मदन। (गी० १।४१) पोहहीं–लगा रहे हों, गूथ रहे हों, पिरो रहे हों। उ० जनु धोपि दिनकर कर निकर जहँ तहँ विधुंतुद पोहहीं। (मा० ६।१२। छं० १) पोहिअहिं–१ पोहेंगे, पिरोएँगे, २ पिरो। उ० १ जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं रामचरित बर ताग। (मा० १।११) पोही–१ पिरो लिया है २ पिरोकर, गूथकर। उ० १ चारु चित बलि चतुर लेति चित पोही। (गी० २।१८) पोहैं–पिरो लेते हैं, लगा लेते हैं। उ० कुंचित, कुंडल कल नासिक चित पोहैं। (गी० ७।४)

पौढ़ाए–(सं० प्रलोठन)–लिटा दिए, लेटाए। उ० करि सिंगार पलनाँ पौढ़ाए। (मा० १।२०।११)

पौढ़ि–(सं० प्रलोठन)–लेटकर, सोकर। उ० कबहुँ पौढ़ि पय पान करावति। (गी० १।७) पौढ़िये–लेट जाइए, सोइए। उ० पौढ़िये लालन, पालने हौं झुलावौं। (गी० १।१२) पौढ़े–सो रहे, सोए। उ० पौढ़े धरि उर पद जलजाता। (मा० १।२२६।४)

पौन–(सं० पवन)–हवा, वायु। उ० पौन के गौनहुँ तें बढ़ि जाते। (क० ७।४४)

पौर–(सं० प्लवन)–पैरकर, तैरकर। उ० तुलसिदास दस पद परसि भवसागर यों पौर। (स० २१४) पौरि (१)–तैरकर, पैरकर।

पौरि (२)–(सं० प्रतोली)–ड्योढ़ी, देहली, द्वार। उ० हाट, बाट, कोट, ओट, अटनि अगार, पौरि। (क० ५।१४)

पौरुष–(सं०)–पुरुषत्व, पुरुषार्थ। उ० धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता। (मा० ३।१८।१)

प्याइ–(सं० पा)–पिलाकर, पान करा कर। उ० जे पय प्याइ पोखि कर-पंकज बार बार चुचुकारे। (गी० २।८७) प्याइहौं–पान कराऊँगा, पिलाऊँगा। उ० रामचंद्र मुखचंद्र सुधा-छबि नयन-चकोरनि प्याइहौं। (गी० १।४६)

प्यार–(सं० प्रिय)–मुहब्बत, प्रेम।

प्यारा–प्रेमपात्र, प्रिय, स्नेही। प्यारी–'प्यारा' का स्त्रीलिंग। उ० मरन तुम्हारि माहि अति प्यारी। (मा० ७।६१।१) प्यारे–दे० 'प्यारा'। उ० प्रानहुँ तें प्यारे प्रियतम उपही। (गी० २।३८)

प्यास–(सं० पिपासा)–१ तृषा, जल पीने की इच्छा, २ कामना, लालसा। उ० १ जन महाइ नाम लेत हौं किए पन चातक ज्यों, प्यास प्रेम प्रान की। (वि० ४२)

प्यासा–तृषित, जिसे प्यास लगी हो।

प्र–एक संस्कृत उपसर्ग जो आरंभ, उन्नति, यश, श्रेष्ठ, प्रधान, मुख्य, अधिक तथा चारों ओर से आदि अर्थों के लिए धातुओं या शब्दों के पूर्व लगता है। 'प्रकृति' में यह 'प्र' उपसर्ग है जिसका अर्थ है 'श्रेष्ठ' कृति या 'बड़ी' कृति। दे० 'प्रकृति'।

प्रकट–(सं०)–१ प्रत्यक्ष, स्पष्ट, सामने, ज़ाहिर, २. उत्पन्न, पैदा, आविर्भूत। उ० १ लग धारामती प्रथम रेखा प्रकट। (वि० ३६)

प्रकर्ष–(सं०)–१ उत्कर्ष, श्रेष्ठता, बड़ाई, २ अधिकता, बहुतायत।

प्रकार–(सं०)–१ क्रम, २ रीति, ढंग, युक्ति, तरह, ३ भेद, ४ समानता, बराबरी। उ० २ एहि प्रकार बल मनहि देखाइ। (मा० १।१४।१)

प्रकारा–दे० 'प्रकार'। उ० ३ कवित दोष गुन विविध प्रकारा। (मा० १।६।५)

प्रकाशं–दे० 'प्रकाश'। उ० १ कोटि-मदनार्क अगणित प्रकाशम्। (वि० ५१) प्रकाश–(सं०)–१ रोशनी, उजेला, दीप्ति, २ प्रकट, स्पष्ट, व्यक्त।

प्रकाशक–(सं०)–प्रकाश करनेवाला, प्रकट करनेवाला।

प्रकाशनीय–दे० 'प्रकाश्य'।

प्रकाशी–१ प्रकाश करनेवाला, जो चमके और प्रकाश करे, २ सूर्य, ३ दीपक, ४ प्रकाश होता था।

प्रकाश्य–(सं०)–प्रकाश के योग्य, जिसे स्पष्ट किया जाय।

प्रकास–दे० 'प्रकाश'। उ० १ भय प्रभात प्रगट ज्ञान भानु के प्रकास। (वि० ७४) २ पाइ उमा अति गोप्य मपि सज्जन करहिं प्रकास। (मा० ७।६९ ख) प्रकासे–प्रकाश से। उ० जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे। (मा० २।३२२।२)

प्रकासक–दे० 'प्रकाशक'। उ० जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। (मा० १।११७।४)

प्रकासति–प्रकाशित कर रही है, प्रकाश कर रही है। उ० सिरसि हेम हीरक-मानिकमय मुकुट प्रभा सब भुवन प्रकासति। (गी० ७।१७)

प्रकासा–दे० 'प्रकाश'। उ० १ सोत सुद सम सहज प्रकासा। (मा० १।२४२।२)

प्रकासी–दे० 'प्रकाशी'। उ० बचन मसत प्रवलीन प्रकासी। (मा० १।२२१।१)

प्रकासु–दे० 'प्रकाश'। उ० करत प्रकासु फिरइ फुलवाई। (मा० १।२३१।१)

प्रकासू–दे० 'प्रकाश'। उ० १ तहँहुँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू। (मा० २।७४।२)

प्रकास्य–दे० 'प्रकाश्य'। उ० जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। (मा० १।११७।४)

प्रकृति–(सं०)–१ स्वभाव, तासीर, २ स्वभाव, मिज़ाज, ३ माया, ४ ईश्वरीय शक्ति, वह आदि शक्ति जिसे विश्व में अनेक रूपों में हम देखते हैं। जगत् का मूल बीज। सांख्य में पुरुष के अतिरिक्त केवल प्रकृति का ही अस्तित्व माना गया है। उ० ३ प्रगट परमात्मा प्रकृति-स्वामी। (वि० ४१) ४ प्रकृति महतत्त्व, सब्दादि, गुन, देवता, व्योम, मरुदग्नि अमलांबु उर्वी। (वि० ५४)

प्रकृष्ट–(सं०)–१ उत्तम, श्रेष्ठ, २ मुख्य। उ० १ प्रबल प्रकृष्ट प्रताप परम। (मा० ७।१०८।५)

प्रक्रिया–(सं०)–१ प्रकरण, २ क्रिया, युक्ति, तरीका।

प्रखर–(सं०)–१ तेज, तीखा, २ घोड़े हाथी का बख्तर, ३ पैना, धारदार।

प्रख्यात–(सं०)–मशहूर, विख्यात, नामवर, प्रतिष्ठित।

प्रगट–दे० 'प्रकट'। उ० १ अब प्रभात प्रगट ज्ञान भानु के प्रकास। (वि० ७४) २ भूमि भर-भारहर प्रगट परमातमा ब्रह्म नररूप धर-भक्त हेतू। (वि० ५२)

प्रगटइ–(सं० प्रकट)–प्रकट होता है। प्रगटउँ–प्रकट करता हूँ। उ० अस बिचारि प्रगटउँ निज मोहू। (मा० १।४६।१) प्रगटत–१ प्रकट होता है, सामने आता है, स्पष्ट होता है। २ प्रकट करते हुए, स्पष्ट करते हुए। उ० १ प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी। (मा० १।३२२।३) २ प्रेम प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहिं। (जा० ६६) प्रगटसि–प्रकट होती। उ० मिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं। (मा०२।२०।८) प्रगटहि–प्रकट होती हैं, स्पष्ट होती हैं। उ० प्रगटहिं दुरहिं अटन्ह पर भामिनि। (मा० १।३४७।२) प्रगटि–१ उत्पन्न होकर, २ उत्पन्न करके, ३ कहकर, ४ प्रकट करके, ज़ाहिर कर, स्पष्ट कर। उ० १ मानहुँ प्रगटि बिपुल लोहित पुर पठइ दिये अवनी। (गी० ७।२०) २ समा सिंधु जदुपति जय जय जनु रमा प्रगटि त्रिभुवन भरि भ्राजी। (कृ० ६१) प्रगटिहु–प्रकाशित किया। उ० जनमि जगत जस प्रगटिहु मातु पिता कर। (पा० ४१) प्रगटी–उत्पन्न हुई, प्रकट हुई, जन्म लिया। उ०सीय लच्छि जहँ प्रगटी सब सुख सागर। (जा० ५) प्रगटें–१ प्रकट होने से, प्रकट होने में, २ पैदा हुए। उ० १ यह प्रगटें अथवा द्विज श्रापा। (मा० १।१६६।२) प्रगटे–१ प्रकट हुए, २ प्रकट होने पर। प्रगटेउ–प्रकटे, प्रकट हो गए। उ० प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला। (मा० १।१३२।२) प्रगटेसि–१ प्रकट किया, २ प्रकट हुआ। उ० १ प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा। (मा० १।८६।३) प्रगटै–१ प्रकट करता है, २ प्रकट होवे, उत्पन्न हो। उ० १ प्रगटै उपासना, दुरावै दुरवासनाहि। (क०७।११६) प्रगट्यौ–प्रकट किया, दिखाया, स्पष्ट किया। उ० कौतुक ही मारीच नीच मिस प्रगट्यौ बिसिष प्रतापु। (गी० ३।१)

प्रगल्भ–दे० 'प्रगल्भ'। उ० ५ प्रचंड प्रकृष्ट प्रगल्भ परेसं। (मा० ७।१०८।५) प्रगल्भ–(सं०)–१ ढीठ, दुःसाहसी, उद्दंड, २ वाक्‌पटु, बड़ी, ३ अच्छी बुद्धिवाला, चतुर, ४ क्षमी, घमंडी, ५ तेजस्वी।

प्रगाढ़–(सं० प्रगाढ)–१ कठोर, कठिन, २ बड़ा गहरा, ३ बहुत, अधिक।

प्रघोर–(सं०)–१ अत्यंत कठिन, २ भयंकर, अत्यंत भया-वह। उ० २ आयत कमिहि हन्यो तेहिं मुष्टि प्रहार प्रघोर। (मा० ६।८३)

प्रचंड–दे० 'प्रचंड'। उ० ८ प्रचंड प्रकृष्ट प्रगल्भ परेसं। (मा० ७।१०८।५) प्रचंड–(सं०)–१ भयानक, २ बहुत तीखा, करारा, तेज, ३ प्रबल, ४ असह्य ५ क्रोधी, ६ क्रूर, कठोर, सख्त, ७ बड़ा, भारी, ८ तेजस्वी, प्रताप वाला। उ० २ रघुबीर बान प्रचंड खंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा। (मा० ३।२० छं० १)

प्रचंडा–दे० 'प्रचंड'। उ० १ तोमर मुद्गर परसु प्रचंडा। (मा० ६।४०।४)

प्रचलित–(सं०)–चलता, रायज, जारी, जिसका प्रचलन हो।

प्रचार–(सं०)–१ चलन, रवाज, २ प्रसिद्धि, ३ प्रकाश, ४ विस्तार, फैलाव, ५ उत्तेजन, ललकार, चुनौती, ६ प्रेरणा, ७ प्रवेश, पैठ। उ० ४ राम सुजस कर चहुँ जुग होत प्रचार। (ब० ३६)

प्रचारइ–प्रचार करता है। प्रचार–क दे० 'प्रचार'। ख फैलाया, प्रचार किया, ग ललकारा। उ०क ६ भँवर कूपरीं बचन प्रचारा। (मा० २।३४।२) प्रचारि–ललकार कर। उ० मामी मेघनाद सों प्रचारि भिरे भारी भट। (क० ६।४२) प्रचारी–दे० 'प्रचारि'। प्रचारू–१ दे० 'प्रचार', २ प्रचार करो। उ० १ ७ इहाँ जथा मति मोर प्रचारू। (मा० २।२८८।२) प्रचारे–उत्तेजित किया, ललकारा। उ० जामवंत हनुमंत बोलि तब औसर जानि प्रचारे। (गी० ६।७।) प्रचार्‌यो–१ ललकारा २ फटकारा।

प्रचुर–(सं०)–१ अधिक, बहुत, अपार, २ यथेष्ट, ३ चोर, तस्कर। उ० १ जयति पाथोधि पाषान-जलजान कर जातुधान प्रचुर हरष हाता। (वि० २६) २ प्रचुर भव भंजन, प्रणत-जन रंजन। (वि० १२)

प्रच्छन्न–(सं०)–१ ढका हुआ, छिपा हुआ, २ झरोखा, खिड़की।

प्रजंत–(सं० पर्यंत)–तक, ताईं। उ० अयन प्रजंत सरासनु तान्यो। (मा० ६।७१।१)

प्रजंता–दे० 'प्रजंत'। उ० तुम्हहि आदि खग मसक प्रजंता। (मा० ७।६१।३)

प्रजउ–प्रजा भी। उ० परिजन प्रजउ चहिअ जस राजा। (मा० २।२५०।४) प्रजा–(सं०)–१ रिआया, रैयत, वह जनसमूह जो किसी राजा के अधीन रहता हो। २ संतान, औलाद। उ० १ प्रजा सहित रघुबंसमनि किमि गवने निज धाम। (मा० १।११०)

प्रजापति–(सं०)–१ सृष्टि को उत्पन्न करनेवाला, सृष्टिकर्ता, ब्रह्मा, २ पिता, ३ आग, ४ सूर्य, ५ मनु, ६ राजा, ७ घर का स्वामी। उ० १ दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक। (मा० १।६०।३)

प्रजारी–(सं० प्रज्वलन)–१ जलानेवाला, २ जलाई, ३ जलाकर भस्मकर। उ० १ कानन उजार्‌यो अब नगर प्रजारी है। (क० ५।५)

प्रजार्‌यो–जलाया, अच्छी तरह जलाया। उ० नगर प्रजार्‌यो सो बिलोक्यो बल कीस को। (क० ६।२२)

प्रजाशन–(सं०)–प्रजा को खानेवाला, अत्याचारी।

प्रजासन–दे० 'प्रजाशन'। उ० द्विज श्रुति बंचक भूप प्रजासन। (मा० ७।६८।१)

प्रजेस–(सं०)–१ प्रजापति, प्रजा का स्वामी, २ ब्रह्मा, ३ दक्ष प्रजापति।

प्रजेसु–दे० 'प्रजेस'। उ० १ दच्छ प्रजेस भए तेहि काला। (मा० १।६०।२)

प्रजेसकुमारि–(सं० प्रजेशकुमारी)–दक्ष प्रजापति की पुत्री सती। उ० एहि बिधि दुखित प्रजेसकुमारी। (मा० १।६०।१)

प्रज्वलित–(स०)–१ जलता हुआ, धधकता हुआ, २ खरा, साफ।

प्रज्ञा–(स०)–१ बुद्धि, मनीषा, २ ज्ञान, विवेक, ३ सरस्वती, शारदा।

प्रण–(स०)–१ प्रतिज्ञा, कौल, २ नियम, अटल निश्चय, ३ प्राचीन, पुराना।

प्रणत–(स०)–१ झुका, नम्र, २ दास, सेवक, ३ अधीन, वश में, शरणागत, ४ भक्त। उ० ३ देहि हैं प्रसन्न, पाहि प्रणत पालिका। (वि० १६) ४ सदय हृदय तपनिरत प्रणतानुकूलम्। (वि० ६०)

प्रणति–दे० 'प्रनति'।

प्रणय–(स०)–१ प्रेम, प्यार, २ भरोसा, ३ नम्रता, विनय, विनती, ४ श्रद्धा, ५ सुशीलता।

प्रणव–(स०)–१ ओंकार, ओंकार मंत्र, २ ब्रह्मा, ३ विष्णु, ४ महेश।

प्रणवौं–प्रणाम करता हूँ, सर झुकाता हूँ।

प्रणाम–(स०)–अभिवादन, नमस्कार।

प्रणामी–प्रणाम करनेवाला।

प्रतच्छ–दे० 'प्रत्यक्ष'। उ० १ मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो। (क० ६।२४)

प्रताप–(स०)–१ पौरुष, मरदानगी, २ तेज, इकबाल, ३ गर्मी, ताप, ४ महिमा, ५ ऐश्वर्य, ६ प्रखरता, प्रचंडता। उ० २ वेग जीत्यो मारुत, प्रताप मारतंड कोटि। (क० २।१) प्रतापहि–प्रताप को।

प्रतापा–दे० 'प्रताप'। उ० २ सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा। (मा० ६।७६।८)

प्रतापी–पराक्रमी, प्रतापवाला, तेजवाला। उ० सोइ रावन जग बिदित प्रतापी। (मा० ६।२५।४)

प्रतापु–दे० 'प्रताप'। उ० २ बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रतापु। (मा० १।२७४)

प्रतापू–दे० 'प्रताप'। उ० २ प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू। (मा० १।१२।३)

प्रति–(स०)–१ एक उपसर्ग जो शब्दों के आरंभ में लग कर विपरीत, सामने, बदले या आदि का अर्थ देता है। २ हर एक, प्रत्येक। उ० २ प्रति सवत अति होइ अनंदा। (मा० १।४२।१)

प्रतिउत्तर–(स० प्रति + उत्तर)–उत्तर का उत्तर, जवाब का जवाब, वादविवाद। उ० प्रतिउत्तर सढ़सिन्ह मनहुँ काढ़त भट दससीस। (मा० ६।२३ क)

प्रतिउपकार–उपकार का बदला, नेकी का बदला। उ०प्रति उपकार करौं का तोरा। (मा० ५।३२।३)

प्रतिकार–(स०)–१ प्रतीकार, बदला, जवाब, २ चिकित्सा, इलाज, ३ मुक्ति, छुटकारा, उद्धार, ४ यजन, निवारण।

प्रतिकूल–(स०)–१ उलटा, विरुद्ध, विमुख, २ दूसरा किनारा। उ० १ जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं बिस्व प्रतिकूल। (मा० १।२७७)

प्रतिकूला–दे० 'प्रतिकूल'। उ० १ जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला। (मा० ७।१२२।८)

प्रतिग्रह–(स०)–१ दान २ स्वीकार, ग्रहण।

प्रतिग्राही–(सं० प्रतिग्राहिन्) लेनेवाला, दान लेनेवाला। उ० प्रतिग्राही जीवै नहीं, दाता नरकै जाय। (दो० ४३३)

प्रतिछाँह–प्रतिबिंब, छाँह, छाया। उ० प्रतिछाँह छबि कवि भाखि दै प्रति सों कहैं गुरु हौं रि। (गी०७।१८)

प्रतिछाँहीं–(स० प्रतिच्छाया)–प्रतिबिंब, परछाहीं। उ० राम सीय सुंदर प्रतिछाहीं। (मा० १।३२५।२)

प्रतिज्ञा–(स०)–१ प्रण, वादा, २ कसम, सौगंध। उ० १ प्रहलाद प्रतिज्ञा राखी। (वि० ६२)

प्रतिदिन–रोज प्रत्येक दिन। उ० बिहरहिं बन चहुँ पास प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब। (मा० २।२५१)

प्रतिपक्ष–वैरी, दूसरे पक्ष का।

प्रतिपच्छी–(स०)–दूसरे पक्षवाले, शत्रु।

प्रतिपच्छिन्ह–दूसरे पक्षवालों ने, शत्रुओं ने। उ० सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा। (मा० २।१०५।३) प्रतिपच्छी–दे० 'प्रतिपच्छी'।

प्रतिपद–पगपग पर, हर कदम पर। उ० विनय छत्र सिर जासु के प्रतिपद पर-उपकार। (स० ५५२)

प्रतिपादक–(स०)–१ बोधक, ज्ञापक २ संस्थापक, ३ प्रकाशक, संपादक, ४ निरूपक।

प्रतिपादन–(स०)–१ संपादन, २ बोधन, ३ निरूपण।

प्रतिपाद्य–(स०)–१ जिसका प्रतिपादन किया जाय, २ जानने योग्य जिसका ज्ञान किया जाय। उ० २ प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना। (मा० ७।६१।३)

प्रतिपाल–(स०)–पोषक, रक्षक, पालन करनेवाला।

प्रतिपालइ–पालता है, पालन करता है। उ० जो प्रति पालइ तासु हित करइ उपाय अनेक। (मा० ६।२३ च) प्रतिपालउँ–पालता हूँ, पोषता हूँ। उ० एहि प्रतिपालउँ सबु परिवारू। (मा०२।१००।४) प्रतिपालहिं–पालते हैं, रक्षा करते हैं। उ० जे कहुँ सत मारग प्रतिपालहिं। (मा० ७।१००।१) प्रतिपाला–पालन किया, पाला। उ० प्रभु आयसु सब बिधि प्रतिपाला। (मा० १४३।७) प्रतिपालि–पालन करके, रक्षा करके। उ० प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहौं। (मा०२।१५१।छं०१) प्रतिपाली–पाला, पालन पोषण किया। उ० सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली। (मा० २।५६।२) प्रतिपाल्यो–पाला, निर्वाह किया। उ० दसरथ सों न प्रेम प्रतिपाल्यो हुतो जो सकल जग साखी। (गी० २।१२)

प्रतिपालक–पालनेवाला, रक्षक। उ० बोले बचन नीति प्रतिपालक। (मा० २।२०।२)

प्रतिपालन–पालन, रक्षा करना, निर्वाह। उ० बहु बिधि प्रतिपालन प्रभु कीन्हीं। (वि० १३६)

प्रतिफल–(स०)–१ परिणाम, फल, नतीजा, २ प्रतिबिंब, छाया, ३ बदला, प्रतिशोध।

प्रतिबिंब–(स०)–१ परछाहीं, छाया, प्रतिरूप, २ मूर्ति, प्रतिमा, ३ चित्र, ४ मुकुर, दर्पण, ५ आभा, झलक। उ० १ निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता। (मा० ३।२४।२)

प्रतिबिंबनि–१ प्रतिबिंबों में, परछाहियों में, छाया में, २ परछाहियों को। उ० १ हँसे हसत अनरसे अनरसत प्रतिबिंबनि ज्यों झाँई। (गी० १।१६) २ किलकत झुकि झाँकत प्रतिबिंबनि। (गी० १।२८)

प्रतिबिंबु–दे० 'प्रतिबिंब'। उ० १ निज प्रतिबिंबु बरुकु गहि जाइ। (मा० २।४७।४)
प्रतिभट–बराबरी का वीर, बराबरी करनेवाला। उ० जेहि कहुँ नहिं प्रतिभट जग जाता। (मा० १।१८०।२)
प्रतिभा–(स०)–बुद्धि, ज्ञान, बुद्धि की तेज़ी या चमक।
प्रतिमा–(स०) मूर्ति, पुतली, मूरत। उ० सुर प्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ीं। (मा० १।२८८।३)
प्रतिमूरति–(स० प्रतिमूर्ति) प्रतिरूप, अक्स, प्रतिबिंब, परछाहीं। उ०निज पानि मनि महुँ देखि प्रतिमूरति सुरूप निधान की। (मा० १।३२७।३)
प्रतिवाद–(स०)–खंडन, विरोध।
प्रतिष्ठा–(स०)–१ मान, इज़्ज़त, आदर, २ स्थापना, प्रतिष्ठापित करना, ३ देवताओं की मूर्ति की स्थापना करना, प्राण प्रतिष्ठा, ४ ख्याति, प्रसिद्धि, ५ कीर्ति, यश, ६ शरीर, देह, ७ पृथ्वी, ८ यज्ञ की समाप्ति।
प्रतिहत–(स०)–१ अवरुद्ध, रुका, २ श्रीहत, निराश, हर्षहीन, ३ तिरस्कृत, अपमानित, पतित, ४ समाप्त। उ० ४ सिरकंप, इंद्रिय-सक्ति प्रतिहत बचन काहु न भावई। (वि० १३६)
प्रतीत–(स०)–१ ज्ञात, जाना, विदित, २ प्रसिद्ध, विख्यात, ३ प्रसन्न, खुश,।
प्रतीति–(स०)–१ भरोसा, विश्वास, २ ज्ञान, जानकारी उ० १ सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी। (मा० २।७।३)
प्रतीती–विश्वासपात्र, जिस पर भरोसा किया जा सके। उ० गुहँ बोलाइ पाहरू प्रतीती। (मा० २।६०।२)
प्रतोषीं–(स० प्रतोष)–संतुष्ट किया, संतोष दिया। उ० राम प्रतोषीं मातु सब कहि बिनीत बर बैन। (मा० १।३५७)
प्रत्यक्ष–(स०)–१ जो सामने हो, स्पष्ट, प्रकट, २ चार प्रमाणों में से एक।
प्रत्याहार– स०)–योग के आठ अंगों में एक, इंद्रियनिग्रह।
प्रत्युत–(स०)–१ बल्कि, वरन् २ विपरीतता।
प्रत्युत्तर–(स०)–उत्तर का उत्तर, जवाब का जवाब।
प्रत्यूह–(स०)–विघ्न, बाधा, उपद्रव। उ० होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक। (मा० ७।११८ ख)
प्रथक–दे० 'पृथक'।
प्रथम–(स०)–१ पहला, शुरू का, आरंभ का, २ प्रधान, मुख्य, सर्वश्रेष्ठ। उ० १ सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। (मा० ७।१२७।४) प्रथमहिं–पहले ही। उ० प्रथ महि कहहु नाथ मतिधीरा। (मा० ७।१२१।२)
प्रथुल–दे० 'पृथुल'।
प्रद–दे० 'प्रद'। उ०शांत शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशांति प्रदं। (मा० ५।१। श्लो० १) प्रद–(स०)–देनेवाला, दाता। उ० सपु सुखप्रद दुख दोष नसावा। (मा० १।०१।१) प्रदा–(स०)–देनेवाली, दात्री। 'प्रद' का स्त्री लिंग। उ० सा मञ्जुल मङ्गलप्रदा। (मा० २।१। श्लो० २) प्रदे–'प्रदा' शब्द का संबोधनकारक का रूप। हे देने वाली! प्रदौ–देनेवाले दोनों। उ० सीतान्वेषणतत्परौ पथिगता भक्तिप्रदौ तौ हि नः। (मा० ४।१। श्लो० १)
प्रदक्षिण–(स०)–पूजन आदि के समय, प्रतिमा, मंदिर या किसी स्थान के चारों ओर घूमना, परिक्रमा।
प्रदछिणा–दे० 'प्रदक्षिण'।
प्रदच्छिन–दे० 'प्रदक्षिण'। उ० उभय घरी महँ दीन्हीं सात प्रदच्छिन धाइ। (मा० ४।२६)
प्रदच्छिना–दे० 'प्रदक्षिण'। उ० दै दै प्रदच्छिना करति प्रनाम न प्रेम अघाइ। (गी० ३।१७)
प्रदान–(स०)–१ दान, २ देने की क्रिया, ३ विवाह, शादी, ४ अंकुश।
प्रदीप–(स०)–१ दीपक, चिराग, २ उजाला, प्रकाश।
प्रदेश–दे० 'प्रदेश'। उ० ३ रतन जटित मणि मेखला कटि प्रदेशम्। (वि० ६१) प्रदेश–(स०)–१ देश, भूखंड, २ स्थान, जगह, ३ अंग।
प्रदेस–दे० 'प्रदेश'। उ० १ पुन्य प्रदेस देस अति चारू। (मा० २।१०४।२)
प्रदोष–(स०)–१ संध्याकाल, दो घड़ी दिन से दो घड़ी रात तक का समय, २ बहुत बड़ा अपराध, ३ दुष्ट, पाजी। उ०१ जातुधान प्रदोष बल पाइ। (मा०६।१६।२)
प्रधान–(स०)–१ मुख्य, श्रेष्ठ, २ मुखिया, ३ ईश्वर, ४ सेनापति। उ० १ करम प्रधान सत्य कह लोगू। (मा० २।११।४)
प्रध्वसन–नष्टकर देनेवाला। उ० मथाम्भोधि समुद्भव कलि मल प्रध्वसन चाव्यय। (मा० ४।१। श्लो० २)
प्रन–दे० 'प्रण'।
प्रनत–दे० 'प्रणत'। शरणागत। उ० ३ कहेसि पुकारि प्रनतहित पाही। (मा० ३।२।५) प्रनतनि–भक्त शरणागतों। उ० सरनागत आरत प्रनतनि को दै दै अभयपद ओर निबाहैं। (गी० ७।१३) प्रनतपाल–शरण में आए की रक्षा करनेवाला। उ० प्रनतपाल, कृपालु पतित-पावन नाम। (वि० ७७)
प्रनति–(स० प्रणति)–प्रणाम, नमस्कार।
प्रनमामि–प्रणाम करता हूँ। उ० प्रनमामि निरंतर श्रीरमनं। (मा० ७।१४।१०)
प्रनय–दे० 'प्रणय'। उ० १ प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। (मा० ३।२१।६)
प्रनवउँ–प्रणाम करता हूँ, नमस्कार करता हूँ। उ० प्रनवउँ सबहि कपट सब त्यागें। (मा० १।१४।२) प्रनवौं–दे० प्रनवउँ'।
प्रनाम–दे० 'प्रणाम'। उ० सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत सुनत कहत फिरि गाउ। (वि० १००)
प्रनामा–दे० 'प्रणाम'। उ० बार बार कर दंड प्रनामा। (मा० ७।११।२)
प्रनामु–दे० 'प्रणाम'। उ० कीन्ह प्रनामु चरन धरि माथा। (मा० १।२१२।१)
प्रनामू–दे० 'प्रणाम। उ० जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। (मा० १।५३।४)
प्रपंच–(स०)–१ संसार, भवजाल सृष्टि, २ संसार का जंजाल, ३ विस्तार, फैलाव, ४ झंझट, झमेला, झगड़ा, ५ आडंबर, ढोंग ६ छल, कपट, ७ माया। उ० २ तुलसिदास परिहरि प्रपंच सब। (वि० ८७) ४ गोदि सों जानि प्रपञ्च रचा है। (क० ७।१०१) ५ स्वारथ सवा-मय प्रपञ्च परमारथ। (क० ७।८०) प्रपंचहिं–१ प्रपंच

को, प्रपञ्चयुक्त संसार को, २ माया को। उ० २ रचहु प्रपञ्चहि पञ्च मिलि। (मा० २।२६४)
प्रपची–१ छली, २ ढोंगी, ३ झगड़ालू। उ० १ दूरि कीजै द्वार तें लवार लालची प्रपञ्ची। (वि० २४८)
प्रपचु–दे० 'प्रपञ्च'। उ० १ विधि प्रपञ्चु गुन अवगुन साना। (मा० १।६।२) ६ प्रेम प्रपञ्चु कि झूठ फुर। (मा० २। २६१)
प्रपुंज–भारी झुंड, बड़ा समूह। उ० विकसित कमलावली, चले प्रपुञ्ज चञ्चरीक। (गी० १।३६)
प्रफुलित–(सं० प्रफुल्ल)-खिले हुए, प्रसन्न। उ० निसि मलीन यह प्रफुलित नित दरसाइ। (ब० २६)
प्रफुल्ल–(सं०)–१ फूला हुआ, खिला, प्रस्फुटित, २ प्रसन्न। उ० १ प्रफुल्ल कंज लोचन। (मा० ३।४। छ० २)
प्रफुल्लित–प्रसन्न, पुलकित। उ० सुनि पुलक प्रफुल्लित गात। (मा० १।१४५)
प्रबंध–(सं०)–१ इंतजाम, बंदोबस्त, २ एक प्रकार का काव्य जिसमें कथा रहती है। इस प्रकार के काव्य की रचना। ३ बंधन, बँधाव। उ० २ परम पुनीत प्रबंध बनाई। (मा० १।१४०।२)
प्रबरषन–(सं० प्रवर्षण)–एक पर्वत का नाम। उ० कपिहि तिलक करि प्रभुकृत सैल प्रबरषन बास। (मा० ७।६६ ख)
प्रबल–(सं०)–१ बलवान, मज़बूत, बली, २ समर्थ, ३ धृष्ट, साहसी, ४ प्रचंड, उग्र। उ० १ प्रबल-भुजदंड परचंड कोदंडधर। (वि० ४०) ४ प्रबल अहंकार दुर्घट महीधर। (वि० ४६)
प्रबलता–१ आधिक्य, अधिकता, २ प्रभाव। उ० २ निज माया कै प्रबलता करषि कृपानिधि लीन्हि। (मा० १। १३७)
प्रबाल–(सं० प्रवाल)–१ मूँगा, २ नया पत्ता।
प्रबाह–(सं० प्रवाह)–धारा, प्रवाह। उ० प्रेम प्रबाह बिलोचन बाढ़े। (मा० १।२४०।३)
प्रबाहू–दे० 'प्रबाह'। उ० उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू। (मा० १।३६।४)
प्रबिसहिं–(सं० प्रवेश)–प्रवेश करते हैं, भीतर जाते हैं। उ० एक प्रबिसहिं एक निगमहिं, भीर भूप दरबार। (मा० २। २३) प्रबिसि–प्रवेश करके, भीतर घुसकर। उ० प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। (मा० ५।५।१) प्रबिसे–प्रवेश कर गये, घुसे। उ० मुनि रघुबीर निपग महुँ प्रबिसे सब नाराच। (मा० ६।६८) प्रबिसेउ–पैठ गया, प्रवेश किया। उ० अस कौतुक करि रामसर प्रबिसेउ आइ निषंग (मा० ६।१३ ख)
प्रबीन–(सं० प्रवीण)–चतुर, होशियार। उ० सोह उपा सुन्दर करेहु सब पुरजन परम प्रबीन। (मा० २।८०)
प्रबीनता–(सं० प्रवीणता)–चतुराई, होशियारी। उ० नीच निवाजे प्रीति रीति की ... २)
प्रबीना–दे० 'प्रबीन'। उ० सेवा ...
(मा० १।२४।३)
प्रबीनु–दे० 'प्रबीन'।
प्रबीनू–दे० 'प्रबीन'। उ० कबि ... प्रबीनू
(मा० १।६।४)

प्रबेस–(सं० प्रवेश)–घुसना, पैसार। उ० करत प्रबेस मिटे दुख दावा। (मा० २।२३६।२)
प्रबेसा–दे० 'प्रवेस'। उ० अंगद अरु हनुमत प्रबेसा। (मा० ६।४४।४)
प्रबेसु–दे० 'प्रवेश'। उ० २ निजपुर कीन्ह प्रबेसु। (मा० १।१२४)
प्रबोध–(सं०)–१ जागना, नींद का टूटना, २ यथार्थ ज्ञान, पूर्णबोध, ३ सांत्वना, आश्वासन, तसल्ली, संतोष। उ० ३ मोरें मन प्रबोध जेहिं होइ। (मा० १।३१।१)
प्रबोधक–(सं०)–जतानेवाला, उपदेशक, ज्ञानदाता। उ० उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी। (मा० १।२१।४)
प्रबोधन–(सं०)–१ जागरण, जागना, २ उपदेश, सीख, सिखाना, ३ सिखाने, शिक्षा देने। उ० ३ लगे प्रबोधन जानकिहि। (मा० २।६०) प्रबोधहिं–समाधान को, प्रबोध को। उ० पारबती महिमा सुनत रहे प्रबोधहि पाइ। (मा० १।७३) प्रबोधा–आश्वासन दिया, समझाया-बुझाया। उ० प्रभु सब मोहि बहु भाँति प्रबोधा। (मा० १।१०४।१) प्रबोधि–समझाकर, सांत्वना देकर। उ० मुनि बिनय साधु प्रबोधि तब रघुबंस मनि पितु पहिं गये। (जा० १८१) प्रबोधिसि–समझाया, धीरज दिलाया। उ० धीरज धरहु प्रबोधिसि रानी। (मा० २।२०) प्रबोधी–१ समझायी, २ समझाकर, शिक्षा देकर, ३ समझायी हुई, सिखलाई हुई। उ० ३ बन उजारि रावनहि प्रबोधी। (मा० ७। ६७।३) प्रबोधे–सांत्वना दी, समझाया। उ० सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे। मा० २।३२३।१)
प्रबोधु–दे० 'प्रबोध'। उ० ३ पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी। (मा० २।२४४।४)
प्रबोधू–दे० 'प्रबोध'। उ० २ बैरु अघ प्रेमहि न प्रबोधू। (मा० २।२६३।४)
प्रभंजन–(सं०)–१ प्रचंड वायु, आँधी, २ तोड़-फोड़, उखाड़-पछाड़, नाश। उ० १ मोह महा घन पटल प्रभंजन। (मा० ६।११२।१)
प्रभंजनजाया–वायु के पुत्र, हनुमान। उ० जीति न जाइ प्रभंजनजाया। (मा० ५।३।५)
प्रभंजनतनय–दे० 'प्रभंजनजाया'। उ० प्रबल वैराग्य दारुण प्रभंजनतनय विषयवन दहनमिव धूमकेतु। (वि०४८)
प्रभंजनसुत–दे० 'प्रभंजनजाया'। उ० चला प्रभंजनसुत बल भाषी। (मा० ६।५६।१)
प्रभव–(सं०)–१ उत्पत्तिकारण, जन्महेतु, जिससे पैदा हो जैसे मातृ ... २ जन्म, उत्पत्ति, ३ पराक्रम, ...कस्यप प्रभव-अगदार्तिहर्ता।
... उजेला, २ छवि, शोभा, एक स्त्री। उ० १ प्रभा जाइ ...
... भाँति यहु
... २ प्रताप, ...। (मा०

प्रभाकर-(सं०)-१ सूर्य, २ अग्नि, ३ चंद्रमा, ४ समुद्र, ५ आक का वृक्ष। उ० १ सील सोभा सागर प्रभाकर प्रभाय के। (गी० १।६५)

प्रभात-(सं०)-सवेरा, प्रात काल। उ० अब प्रभात प्रगट ज्ञान भानु के प्रकास। (वि० ७४)

प्रभाता-दे० 'प्रभात'। उ० कासु नसाइहि होत प्रभाता। (मा० ६।६०।३)

प्रभाय-दे० 'प्रभाव'। उ० १ कौन पाप कोप, लोप प्रगट प्रभाय को। (ह० ३१) ३ सील सोभा सागर प्रभाकर प्रभाय के। (गी० १।६५)

प्रभाव-(सं०)-१ असर, महिमा, शक्ति, २ उद्भव, प्रादुर्भाव, ३ प्रताप, तेज, इकबाल। उ०१ गुरु प्रभाव पालिहि सबहिं। (मा० २।३०५)

प्रभावा-दे० 'प्रभाव'। उ० १ राम नाम कर अमित प्रभावा। (मा० १।४६।१)

प्रभु-प्रभु को। प्रभु-(सं०)-१ स्वामी, मालिक, २ पालक, रक्षक, ३ भगवान्, ईश्वर, राम, कृष्ण। उ० ३ तुलसिदास प्रभु हरहु भेद मति। (वि० ७) प्रभुणा-प्रभु ने। उ०यत्पूर्वं प्रभुणा कृत सुकविना श्री शंभुना दुर्गमं। (मा० ७।१३१। श्लो० १) प्रभुदासी-विष्णु की दासी। तुलसी। प्रभु-दासी-दास-विष्णु की दासी तुलसी के दास अर्थात् तुलसीदास। उ० नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ। (वि० ४१) प्रभुन्ह-प्रभुओं, स्वामियों। उ० नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ। (मा० १।८६।२) प्रभुहि-प्रभु को, राजा को, स्वामी को। उ० प्रभुहि न प्रभुता परिहरै। (दो० ५१७) प्रभो-हे प्रभु। उ० प्रभोऽप्रमेय वैभव। (मा० ३।४।३)

प्रभुता-(सं०)-१ बड़ाई, महत्व, २ शासनाधिकार, हुकूमत, ३ वैभव, ४ साहिबी, मालिकपन, ५ सामर्थ्य। उ० १ दे० 'प्रभु'। २ श्रीमद वक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि। (दो० २६२)

प्रभुताई-दे० 'प्रभुता'। उ० ५ अतुलित बल अतुलित प्रभुताई। (मा० ३।२।६)

प्रमथ-(सं०)-शिव के गण। ये भोगी और योगी दो प्रकार के कहे गए हैं। उ० प्रमथनाथ के साथ प्रमथ गन राजहिं। (पा० ११०)

प्रमथनाथ-(सं०)-शंकर, महादेव। उ० दे० 'प्रमथ'।

प्रमथराज-दे० 'प्रमथनाथ'। उ० त्रैलोक-सोकहर, प्रमथराज। (वि० १३)

प्रमदा-(सं०)-१ स्त्री, सुंदरी स्त्री, २ मालकँगनी, प्रियगु, काकुन। उ० १ प्रेम मगन प्रमदा गन तनु न सम्हारहिं। (जा० १५२)

प्रमाण-(सं०)-१ वह बात जिसके द्वारा कोई दूसरी बात सिद्ध की जाय सबूत, २ सत्य, सच्चा, यथार्थ, ३ निश्चय, प्रतीति, ४ मर्यादा, माप, सार, ६ प्रामाणिक बात या वस्तु, ७ इयत्ता, ८ मान ८ शास्त्र, ९ मूलधन, १० प्रमाणपत्र, ११ आदेशपत्र १२ तक, पर्यंत, १३ सच है, सायता, १४ ... । विशेष-न्याय के अनुसार प्रमाण (सबूत) प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द प्रमाण ये चार माने गए हैं।

प्रमाद-(सं०)-१ मतवालापन, नशा, २ असावधानी, ३ अहंकार, गर्व।

प्रमादू-दे० 'प्रमाद'। उ० २ तात किएँ प्रिय प्रेम प्रमादू। (मा० २।७७।२)

प्रमान-दे० 'प्रमाण'। उ०२ नाइ राम पद कमल सिर बोले गिरा प्रमान। (मा० १।२५२) १२ जोजन सत प्रमान लै धावौं। (मा० १।२५३।४) १४ यह प्रमान पन मोरे। (वि० ११२)

प्रमाना-दे० 'प्रमाण'।

प्रमानिक-(सं० प्रामाणिक)-जिसका प्रमाण हो, मानने योग्य, ठीक, सत्य। उ० पूतो बड़ो प्रमानिक माखन सकर नाम सुहायो। (गी० १।१४)

प्रमुख-(सं०)-१ प्रधान, श्रेष्ठ, २ मुखिया, अगुआ, ३ प्रथम, पहला। उ० १ छमा करुना प्रमुख तत्र परिचारिका। (वि० ४७)

प्रमुदित-(सं०)-प्रसन्न, आह्लादित, आनंदित। उ० हरषे निरखि बरात प्रेम प्रमुदित हिए। (जा० १३६)

प्रमोद-(सं०)-हर्ष, आनंद, सुख। उ० उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू। (मा० १।३६१।५)

प्रमोदु-दे० 'प्रमोद'। उ० प्रेमु प्रमोदु कहै को पारा। (मा० १।३४६।१)

प्रयच्छ-(सं०)-दीजिए, प्रदान कीजिए। उ० भक्ति प्रयच्छ रघु पुंगव निर्भरामे कामादि दोष रहित कुरु मानस च। (मा० ५।१। श्लो० २)

प्रयांति-(सं०)-जाते हैं, प्राप्त होते हैं। उ० प्रयांति ते गतिं स्वक। (मा० ३।४।छं० ८)

प्रयाग-(सं०)-गंगा और यमुना के संगम पर बसा प्रसिद्ध नगर और तीर्थस्थान। इलाहाबाद। कहा जाता है कि यहाँ गंगा जमुना के संगम पर सरस्वती की अप्रत्यक्ष धारा मिलती है इसी कारण संगम त्रिवेणी नाम से प्रसिद्ध है। मकर की संक्रांति पर यहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है। इसे 'तीर्थराज' या 'तीर्थपति' भी कहते हैं।

प्रयागा-दे० 'प्रयाग'। उ० आना मरमु महात प्रयागा। (मा० २।२०८।३)

प्रयागु-दे० 'प्रयाग'। उ० जनु सिंघलवासिन्ह भयउ विधिबस सुलभ प्रयागु। (मा० २।२२३)

प्रयाण-(सं०) जाना, प्रस्थान, गमन।

प्रयान-दे० 'प्रयाण'। उ० रघुबीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी। (मा० ५।३५।छं०२)

प्रयास-(सं०)-१ परिश्रम, आयास, श्रम, २ कोशिश, यत्न, ३ इच्छा, ख्वाहिश। उ० १ करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं। (मा० ६।१।३)

प्रयासा-दे० 'प्रयास'। उ० भगति करत बिनु जतन प्रयासा। (मा० ७।११६।४)

प्रयोजन-(सं०)-१ अभिप्राय, उद्देश्य, आशय, २ कार्य, काम, ३ उपभोग, व्यवहार। उ० १ हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं। (मा० ७।१६७।१)

प्रलय-(सं०)-लय, विनाश। उ०भुज मनज परिघन मुनि धीरा। (मा० १।१०६।३)

प्रलय-(सं०)-संसार का अंत, जगत के नाना रूपों का

प्रकृति में विलीन हो जाना । उ० उदभव पालन प्रलय कहानी । (मा० १।१६३।३) प्रलयहुँ–प्रलय में भी । उ० महा प्रलयहुँ नास तव नाहीं । (मा० ७।६७।३)

प्रलाप–(सं०)–१ व्यर्थ की बकवाद, व्यर्थ बात, बड़बड़, २ वियोग की विशेष अवस्था में उच्चरित व्यर्थ के वचन । उ० २ प्रभु प्रलाप सुनि कान । (मा० ६।६१)

प्रलापी–बकवाद करनेवाला । उ० सुनेहि न श्रवन अलीक प्रलापी । (मा० ६।२२।४)

प्रलापु–दे० 'प्रलाप' । उ० १ विद्यमान रन पाइ रिपु कायर करहिं प्रलापु । (दो० ४३६)

प्रवर–(सं०)–१ संतान, संतति, २ गोत्र, वंश, ३ श्रेष्ठ, उत्तम, प्रधान, बड़ा । उ० ३ तांडवित-नृत्य-पर, डमरु डिमडिम प्रवर । (वि० १०)

प्रवर्षण–(सं०)–१ वर्षा, २ किष्किंधा के पास के एक पर्वत का नाम, ३ वह स्थान जहाँ पानी विशेष बरसे ।

प्रवान–(सं० प्रमाण)–प्रामाणिक, सत्य । उ० मैं पुनि करि प्रवान पितुबानी । (मा० २।६२।१)

प्रवाहँ–प्रवाह में, धारा में । उ० जल प्रवाहँ जल अलि गति जैसी । (मा० २।२३४।४) प्रवाह–(सं०)–१ बहाव, नदी की धारा, धारा, २ प्रवृत्ति, झुकाव ।

प्रविसति–(सं० प्रविश्यति)–घुसती है, प्रवेश करती है । उ० केहि मग प्रविसति जाति केहि कहु दर्पन में छाँह । (दो० २४७)

प्रवीण–(सं०)–१ दक्ष, चतुर, निपुण, कुशल, २ अच्छा गाने-बजानेवाला ।

प्रवृत्त–(सं०)–१ तत्पर, उद्यत, तैयार, २ लगा हुआ, लीन ।

प्रवृत्ति–(सं०)–१ प्रवाह, बहाव, झुकाव, २ वृत्तांत, हाल, ३ संसार के कामों में लगाव निवृत्ति का उलटा, ४ उत्पत्ति, आरम्भ, ५ प्रवेश, पहुँच, पैठ, ६ इच्छा, ख्वाहिश । उ० ३ वपुष ब्रह्मांड सो, प्रवृत्ति लंका दुर्ग रचित मन-दनुज-मय रूपधारी । (वि० ५८)

प्रवेश–(सं०)–१ पहुँच, गति, २ घुस जाना, पैठ, दखल ।

प्रवेसु–दे० 'प्रवेश' ।

प्रशंसक–(सं०)–प्रशंसा करनेवाला, सराहने या स्तुति करनेवाला ।

प्रशंसत–१ प्रशंसा करता है, बड़ाई करती है, २ प्रशंसा करते हुए ।

प्रशंसा–(सं०)–बड़ाई, स्तुति, तारीफ, गुण-वर्णन ।

प्रशस्त–(सं०)–१ सराहने योग्य, श्रेष्ठ, उत्तम, २ विस्तृत, चौड़ा ।

प्रशस्ति–(सं०)–प्रशंसा, स्तुति, बड़ाई ।

प्रश्न–(सं०)–१ सवाल, पूछताछ, २ विचारणीय विषय, ३ एक उपनिषद ।

प्रसंग–(सं०)–१ संबंध, लगाव, साथ, संग, २ विषय का लगाव, अर्थ की संगति, ३ बात, वार्ता, चर्चा, कथा, ४ उपयुक्त संयोग, अवसर, ५ हेतु, कारण, ६ विस्तार, फैलाव, ७ संसर्ग, संगम । उ० ३ कतहुँ प्रसंग दुराएहु तबहूँ । (मा० १।१२७।४)

प्रसंगा–दे० 'प्रसंग' । उ० १ गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा । (मा० १।७।५)

प्रसंगु–दे० 'प्रसंग' । उ० ३ सब प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई । (मा० २।९१।२)

प्रसंगू–दे० 'प्रसंग' । उ० ३ भूप सोचकर कवन प्रसंगू । (मा० २।२१।४)

प्रसंसक–दे० 'प्रशंसक' । उ० बस प्रसंसक बिरिद सुनावहिं । (वि० ३१६)

प्रसंसत–(सं० प्रशंसा)–दे० 'प्रशंसत' । उ० १ सुनत बचन प्रसंसत सिद्ध कहँ । (वि० २२५) प्रसंसहिं–प्रशंसा करते हैं । उ० संतत संत प्रसंसहिं तेही । (मा० १।८४।१) प्रसंसि–बड़ाई करके । उ० बहु विधि उमहि प्रसंसि पुनि बोले कृपानिधान । (मा० १।१२० क) प्रसंसी–प्रशंसा की । उ० कहहुँ सुभाउ न कुलहि प्रसंसी । (मा० १।२८४।२) प्रसंसे–प्रशंसा की । प्रसंसेउ–प्रशंसा की । उ० नृप बहु भाँति प्रसंसेउ ताही । (मा० १।१६०।१)

प्रसंसा–दे० 'प्रशंसा' । उ० दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी । (मा० २।१३०।२)

प्रसन्नं–प्रसन्न को । उ० सदा सुप्रसन्नं । (मा० ७।१। श्लो० १) प्रसन्न–(सं०)–१ खुश, हर्षित, २ संतुष्ट, तुष्ट । उ० १ प्रभुहि तथापि प्रसन्न विलोकी । (मा० १।१६४।४)

प्रसन्नतां–प्रसन्नता को । उ० प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवास दुःखतः । (मा० २।१। श्लो० २)

प्रसन्नता–(सं०)–१ खुशी, हर्ष, २ तुष्टि, संतोष । उ० १ लही नाथ पवनज प्रसन्नता, बरबस तहाँ गयो गुन मैन । (गी० ५।२१)

प्रसन्नु–दे० 'प्रसन्न' ।

प्रसन्ने–प्रसन्नता में, प्रसन्न होने पर । उ० नि प्राप्य गति त्वयि प्रसन्ने । (वि० ५७)

प्रसव–(सं०)–१ बच्चा जनने की क्रिया, जनन, २ जन्म, उत्पत्ति, ३ बच्चा, संतान, ४ निकलना, बाहर आना । उ० १ ज्यों युवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै । (वि० ८१) ४ अरुन नील पाथोज प्रसव जनु मनिजुत दल समुदाई । (वि० ६२)

प्रसाद–(सं०)–१ दया, कृपा, २ प्रसन्नतापूर्वक दी हुई वस्तु ३ उच्छिष्ट, जूठन, ४ वह वस्तु जो देवता पर चढ़ाई जाय, ५ देवता या बड़ों आदि को देने पर बची हुई वस्तु, ६ भोजन, रसोई । उ० १ ईस प्रसाद असीस तुम्हारी । (मा० २।२८३।१) ५ प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं । (मा० ७।१२३।१)

प्रसादा–दे० 'प्रसाद' । उ० १ सुखी भइउँ प्रभु चरन प्रसादा । (मा० १।१२०।२)

प्रसादु–दे० 'प्रसाद' । उ० १ मुनि प्रसादु कहि द्वार सिधाए । (मा० १।२१५।४)

प्रसादू–दे० 'प्रसाद' । उ० १ नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू । (मा० १।२६।२)

प्रसिद्ध–(सं०)–१ विख्यात, मशहूर, २ अलंकृत, भूषित, ३ यशस्वी, कीर्तिवान, नामवर । उ० १ पुरुष प्रसिद्ध प्रकासनिधि प्रगट परावर नाथ । (मा० १।११६)

प्रसिद्धि–(सं०)–१ ख्याति, नामवरी, २ शृंगार, बनाव ।

प्रसीद–(सं०)–प्रसन्न हो, कृपा करो, प्रसाद दो । उ०

प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी। (मा० ७।१०८। छ० ६)
प्रसीदति-(सं०)-प्रसन्न होते हैं। उ० तेषां शम्भुः प्रसीदति। (मा० ७।१०८। श्लो० १)
प्रसूति-(सं०)-१ प्रसव, जनन, २ उद्भव, जन्म, ३ उत्पन्न करनेवाली, माता। उ० ३ तुलसी सूधी सकल विधि रघुबर प्रेम प्रसूति। (दो० १५२)
प्रसूती-दे० 'प्रसूति'। उ० १ मजुल मगल मोद प्रसूती। (मा० १।१।२)
प्रसून-(सं०)-१ फूल, पुष्प, सुमन, २ उत्पन्न, ३ फल, परिणाम। उ० १ भूषन प्रसून बहु विविध रंग। (वि० १४)
प्रस्तार-(सं०)-१ फैलाव, विस्तार, २ आधिक्य, वृद्धि, ३ पत्तों की सेज।
प्रस्थान-(सं०)-गमन, यात्रा, जाना।
प्रस्थिति-(सं०)-अटलता, स्थिरता, दृढ़ता। उ० रघुबीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी। (मा० ५।३५।२)
प्रस्न-दे० 'प्रश्न'। उ० १ कुसल प्रस्न करि आसन दीन्हे। (मा० २।१०७।१)
प्रहरषे-(सं० प्रहर्ष)-अत्यंत प्रसन्न हुए। उ० पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई। (मा० ७।१२।२)
प्रह्लाद-दे० 'प्रह्लाद'। उ० सुग बलि बाण प्रह्लाद मय। (वि० ४७)
प्रहलादू-दे० 'प्रह्लाद'। उ० भगत सिरोमनि भे प्रहलादू। (मा० १।२६।२)
प्रहस्त-(सं०)-रावण का एक पुत्र जिसके हाथ बहुत बड़े थे। उ० सबके बचन श्रवन सुनि कह प्रहस्त कर जोरि। (मा० ६।८)
प्रहार-(सं०)-१ चोट, वार, आघात, मारना, २ मार काट। उ० १ सामुख ते करहिं प्रहार। (मा० ३।२०।३)
प्रहारा-दे० 'प्रहार'। उ० १ अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। (मा० २।४१।२)
प्रहारी-मारनेवाला, प्रहार करनेवाला।
प्रह्लाद-(सं०)-हिरण्यकश्यप का पुत्र एक बड़ा भक्त। इसके पिता ने इसे भक्ति से विमुख करने के लिए बहुत प्रयास किया पर इसे न मोड़ सका। अंत में हिरण्यकश्यप एक दिन तलवार लेकर इसे मारने आया और अपने भगवान् को बुलाने को कहा। प्रह्लाद ने कहा कि वह सर्वत्र है। इस पर हिरण्यकश्यप ने पूछा कि क्या इस खंभ में भी है? प्रह्लाद ने 'हाँ' कहा। यह सुनते ही हिरण्यकश्यप ने उस खंभे पर प्रहार किया और नरसिंह रूप में भगवान् खंभे में से ही प्रकट हुए। नरसिंह ने हिरण्यकशिपु को वहीं मार डाला। प्रह्लादपति-नरसिंह भगवान्। उ० प्रह्लादपति नतु विविध तनु। (मा० ६।८६। छ० २)
प्राकार-(सं०) प्राचीर, दीवाल, चहारदीवारी।
प्राकृत-प्रकृति से पड़ा मनुष्य तनधारी। उ० प्राकृतं प्रकट परमातमा परम हित। (वि० ५३) प्राकृत-(सं०)-साधारण, प्रकृति का, सांसारिक। उ० करहु सदा जस प्राकृत राजा। (मा० २।१२७।३) प्राकृतहु-साधारण मनुष्य को भी। उ० सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु। (मा० २।३११)
प्राक्-(सं०) पहले का, अगला, शुरू का।
प्राग-दे० 'प्राक'। उ० प्राग वचन, गुरु-लघु, जगा तुलसी अटर न थान। (स० २८४)
प्राची-(सं०)-पूर्व दिशा, पूरब। उ० प्रगटे कौसल्या दिसि प्राची। (मा० १।१६।२)
प्राचीन-(सं०)-पुराना, पहले का।
प्राज्ञ-(सं)-पण्डित, विद्वान्, प्रज्ञावान।
प्राण-(सं०)-१ पवन, वायु, हवा, २ जीव, जीवन तत्त्व, ज्ञान, ३ शक्ति, पराक्रम, ४ साँस, दम, ५ अत्यंत प्यारा, ६ दस प्राण, ५ प्राण तथा ५ उपप्राण, ५ प्राण—प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान। ५ उपप्राण—नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय।
प्राणदाता-जीवनदाता, प्राणरक्षक।
प्राणनाथ-१ स्वामी, नाथ, पति, २ प्रभु, ईश्वर, भगवान्।
प्राणपति-दे० 'प्राणनाथ'।
प्राणवल्लभा-(सं)-प्राणप्यारी, प्रेयसी, प्राणेश्वरी।
प्रात-(सं० प्रातः)-तड़के, सबेरे। उ० प्रात बरात चलिहि सुनि भूपतिभामिनि। (जा० १८२) प्रातक्रिया-प्रातःकाल के कार्य, प्रातःकाल के स्नान संध्या वंदन आदि। उ० प्रातक्रिया करि तात पहिं आए चारिउ भाइ। (मा० १।३५८) प्रातहि-सवेरे ही। उ० ऋषि साथ प्रातहि चले प्रभु दिन ललित लगन लिखाइ कै। (पा० ६२)
प्राता-दे० 'प्रात'। उ० अवसि दूतु मैं पठइब प्राता। (मा० २।३१।४)
प्रातु-प्रात, सबेरा, तड़का। उ० होत प्रातु मुनिबेष धरि जौं न रामु बन जाहिं। (मा० २।३३)
प्रान-दे० 'प्राण'। उ० ४ पचारपुरी प्रान, मुद माधव, गव्य सुपंचनदा सी। (वि० २२) ६ बुद्धि मन इन्द्रिय प्रान चित्तातमा। (वि० ५४) प्रानप्रिय-१ प्राणों के प्रिय, अत्यंत प्यारे। उ० १ रामु प्रानप्रिय जीवन जी के। (मा० २।७४।३) प्रानहु-प्राण भी। उ० प्रानहु से प्रिय लागत सब कहुँ राम कृपाल। (मा० १।२०४) प्रानौ-प्राण भी जान भी। उ० प्रानौ चलहिं परिमिति पाई। (कृ० २५)
प्राननाथ-दे० 'प्राणनाथ'। उ० १ प्राननाथ प्रिय देवर साथा। (मा० २।६६।१)
प्रानपति-दे० 'प्राणनाथ'। उ० २ उर धरि उमा प्रानपति चरना। (मा० १।७४।१)
प्रानपियाउ-प्राणप्रिया भी प्यारी भी। उ० राम सोगवत सीय-मनुप्रिय नाहि प्रानपियाउ। (गी० ७।२५)
प्रानप्रिया-प्रिय स्त्री प्यारी, प्राणप्यारी। उ० प्रानप्रिया कहि हृदु रिसानी। (मा० २।२५।४)
प्रानवल्लभ-(सं० प्राणवल्लभ)-१ अत्यंत प्रिय, प्राणों से भी प्यारा, २ पति, स्वामी। उ० २ प्रभु सखा प्रान मञ्जुलपद परसि सकल परिताप नसैहैं। (गी० ७।२१)
प्रानवल्लभा-प्राणप्यारी, प्राणेश्वरी। उ० पल्लव मालन हरी, मा[illegible] न री। (गी०२।१०)

प्रकृति में विलीन हो जाना। उ० उदभव पालन प्रलय कहानी। (मा० १।१६२।३) प्रलयहुँ-प्रलय में भी। उ० महा प्रलयहुँ नास तव नाहीं। (मा० ७।६४।३)
प्रलाप-(सं०)-१ व्यर्थ की बकवाद, व्यर्थ बात, बड़बड़, २ वियोग की विशेष अवस्था में उच्चरित व्यर्थ के वचन। उ० २ प्रभु प्रलाप सुनि कान। (मा० ६।६१)
प्रलापी-बकवाद करनेवाला। उ० सुनेहि न श्रवन अलीक प्रलापी। (मा० ६।२२।४)
प्रलापु-दे० 'प्रलाप'। उ० १ विद्यमान रन पाय रिपु कायर करहिं प्रलापु। (दो० ४३६)
प्रवर-(सं०)-१ संतान, संतति, २ गोत्र, वंश, ३ श्रेष्ठ, उत्तम, प्रधान, बड़ा। उ० ३ तांडवित-नृत्य-पर, डमरु डिमडिम प्रवर। (वि० १०)
प्रवर्षण-(सं०)-१ वर्षा, २ किष्किंधा के पास के एक पर्वत का नाम, ३ वह स्थान जहाँ पानी विशेष बरसे।
प्रवान-(सं० प्रमाण)-प्रामाणिक, सत्य। उ० मैं पुनि करि प्रवान पितुबानी। (मा० २।६२।१)
प्रवाहँ-प्रवाह में, धारा में। उ० जल प्रवाहँ जल अलि गति जैसी। (मा० २।२३४।४) प्रवाह-(सं०)-१ बहाव, नदी की धारा, धारा, २ प्रवृत्ति, झुकाव।
प्रविसति-(सं० प्रविश्यति)-घुसती है, प्रवेश करती है। उ० केहि मग प्रविसति जाति केहि कहु दर्पन में छाँह। (दो० २४४)
प्रवीण-(सं०)-१ दक्ष, चतुर, निपुण, कुशल, २ अच्छा गाने बजानेवाला।
प्रवृत्त-(सं०)-१ तत्पर, उद्यत, तैयार, २ लगा हुआ, लीन।
प्रवृत्ति-(सं०)-१ प्रवाह, बहाव, झुकाव, २ वृत्तांत, हाल, ३ संसार के कामों में लगाव निवृत्ति का उलटा, ४ उत्पत्ति, आरम्भ, ५ प्रवेश, पहुँच, पैठ, ६ इच्छा, रुचि दिशा। उ० ३ वपुष ब्रह्मांड सो, प्रवृत्ति लंका दुर्ग रचित मन-दनुज मय रूपधारी। (वि० ५८)
प्रवेश-(सं०)-१ पहुँच, गति, २ घुस जाना, पैठ, दखल।
प्रवेसु-दे० 'प्रवेश'।
प्रशंसक-(सं०)-प्रशंसा करनेवाला, सराहने या स्तुति करनेवाला।
प्रशंसत-१ प्रशंसा करता है, बड़ाई करती है, २ प्रशंसा करते हुए।
प्रशंसा-(सं०)-बड़ाई, स्तुति, तारीफ, गुण वर्णन।
प्रशस्त-(सं०)-१ सराहने योग्य,श्रेष्ठ, उत्तम, २ विस्तृत, चौड़ा।
प्रशस्ति-(सं०)-प्रशंसा, स्तुति, बड़ाई।
प्रश्न-(सं०)-१ सवाल, पूछताछ, २ विचारणीय विषय, ३ एक उपनिषद।
प्रसंग-(सं०)-१ संबंध, लगाव, साथ, संग, २ विषय का लगाव, अर्थ की संगति, ३ बात, वार्ता, चर्चा, कथा ४ उपयुक्त संयोग, अवसर, ५ हेतु कारण, ६ विस्तार, फैलाव, ७ संसर्ग, संगम। उ० ३ चलेहुँ प्रसंग दुराएहु तबहूँ। (मा० १।१२७।४)
प्रसंगा-दे० 'प्रसंग'। उ० १ गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा। (मा० १।७।५)
प्रसंगु-दे० 'प्रसंग'। उ० ३ सबु प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई। (मा० २।४१।२)
प्रसंगू-दे० 'प्रसंग'। उ० ३ भूप सोचकर कवन प्रसंगू। (मा० २।२११।४)
प्रसंसक-दे० 'प्रशंसक'। उ० बस प्रसंसक विरिद सुना चहिं। (वि० २१६)
प्रसंसत-(सं० प्रशंसा)-दे० 'प्रशंसत'। उ० १ सुकृत पवन प्रसंसत तिन्ह कहँ। (वि० २३५) प्रसंसहिं-प्रशंसा करते हैं। उ० संतत संत प्रसंसहिं तेही। (मा० १।८४।१) प्रसंसि-बड़ाई करके। उ० बहु विधि उमहि प्रसंसि पुनि बोले कृपानिधान। (मा० १।१२० क) प्रसंसी-प्रशंसा की। उ० कहउँ सुभाउ न कुलहि प्रसंसी। (मा० १। २८४।२) प्रसंसे-प्रशंसा की। प्रसंसेउ-प्रशंसा की। उ० नृप बहु भाँति प्रसंसेउ ताही। (मा० १।१६०।१)
प्रसंसा-दे० 'प्रशंसा'। उ० दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी। (मा० २।१३०।२)
प्रसन्न-प्रसन्न को। उ० सर्वदा सुप्रसन्नम्। (मा० ७।१। श्लो० १) प्रसन्न-(सं०)-१ खुश, हर्षित, २ संतुष्ट, तुष्ट। उ० १ प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी। (मा० १। १६४।४)
प्रसन्नतां-प्रसन्नता को। उ० प्रसन्नतां या न गताभिषेक-तस्तथा न मम्ले वनवास दुःखतः। (मा० २।१। श्लो० २)
प्रसन्नता-(सं०)-१ खुशी हर्ष, २ तुष्टि, संतोष। उ० १ लही नाथ पवनज प्रसन्नता, बरबस तहाँ गह्यो गुन मैन। (गी० ५।२१)
प्रसन्नु-दे० 'प्रसन्न'।
प्रसन्ने-प्रसन्नता में, प्रसन्न होने पर। उ० निःपाप्य गति त्वयि प्रसन्ने। (वि० ५७)
प्रसव-(सं०)-१ बच्चा जनने की क्रिया, जनन, २ जन्म, उत्पत्ति, ३ बच्चा, संतान ४ निकलना, बाहर आना। उ० १ ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै। (वि० ८१) ४ अरुन नील पाथोज प्रसव जनु मनिजुत दल समुदाई। (वि० ६२)
प्रसाद-(सं०)-१ दया, कृपा, २ प्रसन्नतापूर्वक दी हुई वस्तु ३ उच्छिष्ट, जूठन, ४ वह वस्तु जो देवता पर चढ़ाई जाय, ५ देवता या बड़ों आदि को देने पर बची हुई वस्तु, ६ भोजन, रसोई। उ १ ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। (मा० २।२८३।१) ५ प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं। (मा० २।१२६।१)
प्रसादा-दे० 'प्रसाद'। उ० १ सुखी भइउँ प्रभु चरन प्रसादा। (मा० १।१२०।२)
प्रसादु-दे० 'प्रसाद'। उ० १ मुनि प्रसादु कहि द्वार सिधाए। (मा० १।२६५।४)
प्रसादू-दे० 'प्रसाद'। उ० १ नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। (मा० १।२६।२)
प्रसिद्ध-(सं०)-१ विख्यात, मशहूर, २ अलंकृत, भूषित, ३ यशस्वी, कीर्तिवान, नामवर। उ० १ पुरुष प्रसिद्ध प्रकासनिधि प्रगट परा बरनाय। (मा० १।११६)
प्रसिद्धि-(सं०)-१ ख्याति, नामवरी, २ शृंगार, बनाव।
प्रसीद-(सं०)-प्रसन्न हो, कृपा करो, प्रसाद दो। उ०

प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी। (मा० ७।१०८। छ० ६)
प्रसीदति-(सं०)-प्रसन्न होते हैं। उ० तेषां शम्भु प्रसीदति। (मा० ७।१०८। श्लो० ९)
प्रसूति-(सं०)-१ प्रसव, जनन, २ उद्भव, जन्म, ३ उत्पन्न करनेवाली, माता। उ० ३ तुलसी सूधी सकल विधि रघुबर प्रेम प्रसूति। (दो० १५२)
प्रसूती-दे० 'प्रसूति'। उ० १ मंजुल मंगल मोद प्रसूती। (मा० १।१।२)
प्रसून-(सं०)-१ फूल, पुष्प, सुमन, २ उत्पन्न, ३ फल, परिणाम। उ० १ भूषन प्रसून बहु बिबिध रंग। (गी० १४)
प्रस्तार-(सं०)-१ फैलाव, विस्तार, २ आधिक्य, वृद्धि, ३ पत्तों की सेज।
प्रस्थान-(सं०)-गमन, यात्रा, जाना।
प्रस्थिति-(सं०)-अटलता, स्थिरता, दृढ़ता। उ० रघुबीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी। (मा० ५।३५।२)
प्रस्न-दे० 'प्रश्न'। उ० १ कुसल प्रस्न करि आसन दीन्हे। (मा० २।१०७।१)
प्रहरषे-(सं० प्रहर्ष)-अत्यंत प्रसन्न हुए। उ० पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई। (मा० ७।१२।२)
प्रहलाद-दे० 'प्रह्लाद'। उ० ध्रुव बलि बाण प्रहलाद मय। (वि० २७)
प्रहलादू-दे० 'प्रह्लाद'। उ० भगत सिरोमनि भे प्रहलादू। (मा० १।२६।२)
प्रहस्त-(सं०)-रावण का एक पुत्र जिसके हाथ बहुत बड़े थे। उ० सबके बचन श्रवन सुनि कह प्रहस्त कर जोरि। (मा० ६।८)
प्रहार-(सं०)-१ चोट, मार, आघात, मारना, २ मार काट। उ० १ सनमुख ते करहिं प्रहार। (मा० ३।२०।३)
प्रहारा-दे० 'प्रहार'। उ० १ अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। (मा० २।४१।२)
प्रहारी-मारनेवाला, प्रहार करनेवाला।
प्रह्लाद-(सं०)-हिरण्यकश्यप का पुत्र एक बड़ा भक्त। इसके पिता ने इसे भक्ति से विमुख करने के लिए बहुत प्रयास किया पर इसे न मोड़ सका। अंत में हिरण्यकश्यप एक दिन तलवार लेकर इसे मारने आया और अपने भगवान् को दिखलाने को कहा। प्रह्लाद ने कहा कि वह सर्वत्र है। इस पर हिरण्यकश्यप ने पूछा कि क्या इस खंभे में भी है? प्रह्लाद ने 'हाँ' कहा। यह सुनते ही हिरण्यकश्यप ने उस खंभे पर प्रहार किया और नरसिंह रूप में भगवान् खंभे में से ही प्रकट हुए। नरसिंह ने हिरण्यकशिपु को वहीं मार डाला। प्रह्लादपति-नरसिंह भगवान्। उ० प्रह्लादपति पशु विविध तनु। (मा० ६।८१। छ० २)
प्राकार-(सं०) प्राचीर, दीवाल, चहारदीवारी।
प्राकृत-प्रकृति से पैदा मनुष्य रूपधारी। उ० प्राकृतं प्रकट परमात्मा परम हित। (वि० ५१) प्राकृत-(सं०)-साधारण, प्रकृति के, सांसारिक। उ० प्रभु प्रभु दास जस प्राकृत राजा। (मा० २।१२७।२) प्राकृतहु-साधारण मनुष्य को भी। उ० सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु। (मा० २।२११)
प्राक्-(सं०) पहले का, अगला, शुरू का।
प्राग-दे० 'प्राक'। उ० प्राग पवन, गुरु-लघु, जगत तुलसी अपर न आन। (स० २८४)
प्राची-(सं०)-पूर्व दिशा, पूरब। उ० बंदउँ कौसल्या दिसि प्राची। (मा० १।१६।१)
प्राचीन-(सं०)-पुराना, पहले का।
प्राज्ञ-(सं)-पण्डित, विद्वान, प्रज्ञावान।
प्राण-(सं०)-१ पवन, वायु, हवा, २ जीव, जीवन तत्त्व, जान, ३ शक्ति, पराक्रम, ४ साँस, दम, ५ अत्यंत प्यारा, ६ दस प्राण, ५ प्राण तथा ५ उपप्राण, ५ प्राण--प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान। ५ उपप्राण--नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय।
प्राणदाता-जीवनदाता, प्राणरक्षक।
प्राणनाथ-१ स्वामी, नाथ, पति, २ प्रभु, ईश्वर, भगवान्।
प्राणपति-दे० 'प्राणनाथ'।
प्राणवल्लभा-(सं)-प्राणप्यारी, प्रेयसी, प्राणेश्वरी।
प्रात-(सं० प्रातः)-तड़के, सबेरे। उ० प्रात बरात चलिहि सुनि भूपतिभामिनि। (जा० १८२) प्रातक्रिया-प्रातःकाल के कार्य, प्रातःकाल के स्नान संध्या-वंदन आदि। उ० प्रातक्रिया करि तात पहिं आए चारिउ भाइ। (मा० १।३५८) प्रातहि-सबेरे ही। उ० ऋषि साथ प्रातहि चले प्रभु दिन ललित लगन लिखाइ कै। (पा० ६२)
प्राता-दे० 'प्रात'। उ० अवनि दूत मैं पठइय प्राता। (मा० २।३१।४)
प्रातु-प्रात, सबेरा, तड़का। उ० होत प्रातु मुनिबेष धरि जौं न रामु बन जाहिं। (मा० २।३३)
प्रान-दे० 'प्राण'। उ० ४ पचाक्षरी प्रान, मुद माधव, गव्य सुपचाक्षरा सी। (वि० २२) ६ बुद्धि मन इंद्रिय प्रान चित्तातमा। (वि० ५४) प्रानप्रिय-१ प्राणों के प्रिय, अत्यंत प्यारे। उ० १ रामु प्रानप्रिय जीवन जी के। (मा० २।७४।३) प्रानहु-प्राण भी। उ० प्रानहु ते प्रिय लागत सब कहुँ राम कृपाल। (मा० १।२०४) प्रानौ-प्राण भी जान भी। उ० प्रानौ चलिहैं परिमिति पाई। (कृ० २५)
प्राननाथ-दे० 'प्राणनाथ'। उ० १ प्राननाथ प्रिय देवर साथा। (मा० २।६६।१)
प्रानपति-दे० 'प्राणनाथ'। उ० २ उर धरि उमा प्रानपति चरना। (मा० १।७४।१)
प्रानपियाउ-प्राणप्रिया भी प्यारी भी। उ० राम लोगपत सीय मनुप्रिय मनहि प्रानपियाउ। (गी० ७।२५)
प्रानप्रिया-प्रिय भी प्यारी, प्राणप्यारी। उ० प्रान प्रिया कहि हेतु रिसानी। (मा० २।२५।४)
प्रानवल्लभ-(सं० प्राणवल्लभ)-१ अत्यंत प्रिय, प्राणों से भी प्यारा, २ पति, स्वामी। उ० २ बधु समर प्रानवल्लभ पद परसि सकत परिताप मरमहिं। (गी० २।५१)
प्रानवल्लभा-प्राणप्यारी, प्राणेश्वरी। उ० पल्लव मारन देहीं, प्रानवल्लभा न दरी। (गी०३।११०)

प्राना–दे० 'प्रान'। उ० २ की तनु प्रान कि केवल प्राना। (मा० २।२८८।२)
प्रानी–(स० प्राणी)–व्यक्ति, प्राणवाला। उ० जीवत सव समान तेइ प्रानी। (मा० १।११३।३)
प्राप–(स० प्रापण)–पाते हैं। उ० सत ससंग मय यगं पर परमपद प्राप। (वि० ४७)
प्रापति–(स० प्राप्ति)–लाभ, आमदनी, मिलना, प्राप्ति। उ० रतिन के लालचिन प्रापति मनक की। (क० ७।२०) प्रपतिउ–प्राप्ति भी, मिलना भी। उ० पुन्य, प्रीति, पति, प्रापतिउ, परमाथ पथ पाँच ॥(दो० ३६३)
प्राप्त–(स०)–१ लब्ध, हस्तगत, मिला, २ उत्पन्न, उपजा, पैदा हुआ, ३ विद्यमान, मौजूद।
प्राप्ति–(स०)–१ उपलब्धि, मिलना, २ उपार्जन, पैदा करना, ३ प्रवेश, पहुँच, पैठ, ४ उदय, निकलना, पैदा होना, ५ आठ सिद्धियों में से एक, ६ आमदनी, आय। प्राप्त्यै–प्राप्त होने के लिए। उ० श्री मद्रामपदाब्ज भक्ति मनिश प्राप्त्यै तु रामायणम् (मा० ७।१३०।श्लो० १)
प्राप्नोतु–प्राप्त कर।
प्राप्य–(स०)–१ पाने योग्य, मिलने योग्य, २ गम्य, जहाँ तक पहुँच हो।
प्राविट–(स० प्रावृट)–१ वर्षा ऋतु, बरसात, २ बरसना। उ० १ प्राविट सरद पयोद घनेरे। (मा० ६।४६।५)
प्रारंभ–(स०)–आरंभ, शुरू, अनुष्ठान।
प्रारब्ध–(स०)–पूर्व कर्म, भाग्य।
प्रार्थित–(स०)–वांछित, निवेदित, माँगा।
प्रबिट–दे० 'प्राविट'।
प्रावृट–दे० 'प्राविट'।
प्रावृप–दे० 'प्राविट'।
प्रासाद–(स०)–१ मकान, भवन, २ मंदिर, देवस्थान, ३ राजमहल।
प्रियं–प्रिय को। उ० वदे मह्म कुल कलंक शमन श्री राम भूपप्रियम्। (मा० ३।१।श्लो० १) प्रिय–(स०)–१ प्यारा, जिससे प्रेम हो, २ मनोहर, सुंदर, ३ प्रियतम, पति, स्वामी, ४ दामाद, जामाता, ५ हित, कल्याण, भलाई। उ० १ राम लखन सम प्रिय तुलसी के। (मा०१।२०।२) ३ प्रिय मनहिं मान प्रियाउ। (गी० ७।२५) प्रियहि–प्रिय को। उ० सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाइ। (मा० २।८७।३) प्रियौ–प्यारे (दोनों)। उ० शोभाढ्यौ वरधन्विनी श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ। (मा० ४।१। श्लो० १)
प्रियतमा–(स०)–अत्यंत प्यारी, भार्या। उ० प्रियतमा-पति देवता जिहि उमा रमा सिहाहिं। (गी० ७।२६)
प्रियव्रत–(स० प्रियव्रत)–ध्रुव का छोटा भाइ। उ० लघु सुत नाम प्रियव्रत ताही। (मा० १।१४२।२)
प्रिया–(स०)–प्यारी, पत्नी, स्त्री। उ० गिरजा सर्वदा संकर प्रिया। (मा० १।६८।छं० १) प्रियाउ–प्यारी भी, प्रिया भी। उ० प्रिय मनहिं मानप्रियाउ। (गी० ७।२५) प्रियाहि–प्यारी को। उ० प्रेम सों पीछे तिरीछे प्रियाहि चितै चितु दै, चले लै चित चोर। (क० २।२६)
प्रीत–(स०) प्रीतियुक्त, सप्रेम।
प्रीतम–(स० प्रियतम)–प्यारा, पति, प्राणवल्लभ। उ० प्रीतम पुनीत कृत नीचन निदरि सो। (वि० २६७)
प्रीतमु–दे० 'प्रीतम'। उ० हृदय न बिदरेउ पंक जिमि बिछुरत प्रीतमु नीरु। (मा० २।१४६)
प्रीता–प्यारा, दोस्त, प्रीति-पात्र। उ० हित अनहित मानहु रिपु प्रीता। (मा० ४।४०।४)
प्रीति–(स०)–प्रेम, स्नेह, प्यार। उ० प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हौं। (वि० ७६)
प्रीती–दे० 'प्रीति'। उ० सीता देइ करहु पुनि प्रीती। (मा० ६।३।५)
प्रीते–१ प्रीतियान हुए, २ प्रेमपूर्वक, सप्रेम। उ० २ गुर पद कमल पलोटत प्रीते। (मा० १।२२६।३)
प्रीय–प्रिय, प्यारा।
प्रेक्ष्य–प्रेक्षणीय, देखने योग्य।
प्रेत–(स०)–१ मरा हुआ, मृतक, २ भूत, पिशाच, विशा योनि, ३ नरक में रहनेवाला, ४ पुराणों के अनुसार वह कल्पित शरीर जो मनुष्य को मरने के बाद प्राप्त होता है। उ० १ ईति अति भीति-ग्रह प्रेत चौरानल व्याधि बाधा समन घोर मारी। (वि० २८)
प्रेतपावक–(स०) दलदलों और मैदानों में रात को दिखाई देता हुआ लुक जिसे आग समझकर लोग धोखा खाते हैं। उ० उभय प्रकार प्रेतपावक ज्यों धन दुखप्रद स्रुति गायो। (वि० ११६)
प्रेम–(स०)–अनुराग, स्नेह, प्रीति। उ० प्रेम प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहिं। (जा० ६५)
प्रेमा–दे० 'प्रेम'। उ० करत कठिन रिपिधरम सप्रेमा। (मा० २।३२४।२)
प्रेमु–दे० 'प्रेम'। उ० नेमु प्रेमु संकर कर देखा। (मा० १। ७६।२)
प्रेरइ–(स० प्रेरणा)–१ प्रेरणा देती है, २ भेजती है। उ० २ रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई। (मा०७।११८।४) प्रेरत–१ प्रेरणा देते हैं, प्रेरित करते हैं, २ चलाते हैं, हिलाते हैं। उ० २ रूप निहारत पलक न प्रेरत। (गी० २।१४) प्रेरा–उसकाया, उभारा, प्रेरणा दी। उ० जाइ सुपनखाँ रावन प्रेरा। (मा० ३।२१।३) प्रेरि–प्रेरणा देकर, प्रेरित कर, उसका कर। उ० प्रेरि सतिहि जेहिं झूँठ कहाया। (मा० १।५६।३) प्रेरी–प्रेरित किया, प्रेरणा की, प्रेरा, उसकाया, आज्ञा दी। उ० श्रीपति निज माया तब प्रेरी। (मा० १।१२६।४) प्रेरे–प्रेरणा देने से, उसकाने या उभाड़ने से। उ० लरत मनहुँ मारुत के प्रेरे। (मा० ६।४८। ५) प्रेरेउ–प्रेरणा दी, प्रेरा, उसकाया। उ० मन्मथ पवन प्रेरेउ अपराधी। (वि० १२६) प्रेर्यो–दे० 'प्रेरेउ'। उ० प्रेर्यो जो परम प्रचंड मारुत कष्ट नाना तैं सह्यो। (वि० १३६)
प्रेरक–(स०)–किसी कार्य में प्रवृत्त या प्रेरणा करनेवाला, जो प्रेरणा देकर कोइ कार्यादि करवाए, आज्ञा देनेवाला। उ० तुलसिदास यस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै। (वि० ८६)
प्रेरण–दे० 'प्रेरणा'।
प्रेरणा–(स०)–१ कार्य में प्रवृत्त करना, उत्तेजना देना, उभाड़ना, २ दबाव, ज़ोर।

प्रेरित-(सं०)-१ भेजा हुआ, पठाया, २ जिसे किसी दूसरे से प्रेरणा मिली हो, उकसाया गया, ३ जिसे किसी ने आज्ञा दी हो, आज्ञा से। उ० १ कठिन काल प्रेरित चलि आई। (मा० २।२३।३) ३ तव प्रेरित मायाँ उपजाए। (मा० ४।२१।२)

प्रोक्त-(सं०)-कहा हुआ, कहा गया, कहा। उ० रुद्राष्ट कमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये। (मा० ७।१०८। श्लो० ९)

प्रौढ़-(सं० प्रौढ)-१ बड़ा, अवस्था में अधिक, २ पुष्ट, मज़बूत, ३ तगड़ा, मोटा, ४ साहसी, हिम्मती, ५ जवानी और बुढ़ापे के बीच की अवस्था, ६ गूढ़, रहस्यमय, गंभीर, ७ दृढ़, अटल। उ० १ प्रौढ़ भएँ मोहि पिता पढ़ावा। (मा० ७।११०।३) ७ प्रौढ़ अभिमान चितवृत्ति छीजै। (वि० ५७)

प्रौढ़ि-अभिमानयुक्त कथन, ढिठाई। उ० प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जन की। (मा० १।२३।२)

प्लवग-(सं०)-१ बंदर, मर्कट, वानर, २ दादुर, ३ हरिन, ४ सूर्य का सारथी।

प्लव-(सं०)-१ नाव, नौका, डोंगी, २ मेंढक, ३ बंदर, ४ चांडाल, ५ बगुला, ६ सारस। उ० १ यत्पाद प्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां। (मा० १। श्लो० ६)

# फ

फक-(?)-कवर, ग्रास।

फग-(?)-१ कीट, कीड़ा, पतंग, २ फंदा, बंधन, ३ लफंगा, भूठा, गप्पी, ४ अनुराग, प्रेम। उ० २ बड़े बर जोर परे फँग पाए। (क० ६।२७) ३ हौ भले नग फँग परे गढ़ीये। (कृ० ११)

फंद-(सं० बंध)-१ पाश, बंधन, फंदा, जाल, २ छल, धोखा, ३ कष्ट, दुःख ४ रहस्य, मर्म, गुप्त भेद। उ० १ मनहुँ मनोभवँ फंद सँवारे। (मा० १।२८६।१)

फँदायत-(सं० बंध)-फँसाते हैं, फंदे में डालते हैं। उ० फंद जनु पक्षिनि पनज फँदायत। (जा० १२२)

फँसौरि-(सं० पाश)-फंदा, पाश। उ० पाँचसर सुफँसौरि। (गी० ७।१८)

फगुआ-(सं० फाल्गुन)-१ होली, होली का त्यौहार, २ एक दूसरे पर रंग आदि डालना। उ० २ लोचन आँजहिं फगुआ मनाइ। (गी० ७।२२)

फजीहति-(अर० फ़ज़ीहत)-दुर्दशा, दुर्गति। उ० धन फजीहति होहिंगे गनिका के से पूत। (दो० ६५)

फटत-(सं० स्फटन)-फटता है, चिरता है, खंड-खंड होता है। उ० तिमिर-तोम फटत। (वि० १२१) फटे-१ फटने पर, २ फटा, चिर गया, खंड-खंड हो गया। फटैं-फट जाते हैं, तितर बितर हो जाते हैं। उ० लिए नाम फटैं मकरी के से जाले। (ह० १७) फट्यौ-फटे, फटे हुए। उ० घन बिमोह छटयौ फट्यौ गगन मगन सियत। (वि० १२२)

फटिक-(सं० स्फटिक) संगमरमर, सफ़ेद पत्थर। उ० फटिकसिला बैठे द्वौ भाई। (मा० २।२१।७)

फण-(सं०)-साँप का फन, भोग।

फणिक-(सं०)-१ साँप, सर्प, २ साँप का।

फणींद्र-(सं०)-साँपों का राजा, १ शेषनाग, अनंत, २ वासुकी नाग। उ० १ यस्य अंगे फणींद्र, सेव्यमनिश वेदांत वेद्य विभुम्। (मा० ४।१। श्लो० १)

फणी-(सं० फणिन्)-सर्प, साँप।

फन-(सं० फण)-साँप का फण, भोग। उ० जैसो अहि आसु गई मनि फन की। (गी० २।७१)

फनि-(सं० फणी)-साँप, सर्प। उ० राम नाम महा मनि फनि जगजाल रे। (वि० ६७) फनिहि-साँप को, सर्प को। उ० तुलसी मनि निज दुति फनिहि ब्याधहि देउ दिखाइ। (दो० ३१५)

फनिक-दे० 'फणिक'। उ० १ तुलसी मनहुँ फनिक मनि ढूँढ़त निरखि हरषि हिय धायो। (गी० २।६८) फनिकन्ह-सर्पों ने, सापों ने। उ० फनिकन्ह जनु सिरमनि उर गोई। (मा० १।२५८।२) फनिकि-(सं० फणिक) सर्पिणी, नागिन।

फनिकु-दे० 'फणिक'। उ० १ मनि बिनु फनिकु जिए दुख दीना। (मा० २।३३।१)

फनी-(सं० फणिन्)-साँप, सर्प। उ० लरत, धरहरि करत रुधिर जनु जुग फनी। (गी० ७।५)

फनीश-(सं० फणीश)-सर्पों के राजा, १ शेषनाग, अनंत २ वासुकि नाग।

फनीस-दे० 'फणीश'। उ० १ बरनि न सकइ फनीस सारदा। (मा० ७।२२।३)

फबि-(सं० प्रभवन)-१ छबि, शोभा, २ अनुकूल। उ० १, कंचन, कुसुम, बालसिन को पाखियो फबि भायो रघुनायक नर्षीत को। (वि० २७४) १ फबि न जाइ जो निधि फबि आई। (कृ० २५)

फबी-१ शोभा, २ सुंदर, ३ फबना, सजना, ४ माकूल।

फबै-शोभा देते हैं, सुंदर लगते या लगते हैं। उ० तुलसी तीनिउ तब फबै। (दो० २८५)

फर-दे० 'फल'। उ० १ बिनु फर बान राम तेहि मारा। (मा० १।२१०।२) ४ अग जग-मद निदरे सिहर, पायनि पर सेउ। (पा० २१) ५ बसनु अमिअ सम कंद मूल फर। (मा० २।१४०।३) फरनि-१ फलनवाला, २ 'फल' का बहुवचन, फलसमूह, ३ फलने, फलना। उ० ३ उकठ बिटप लाग फूलन फलन। (वि० २२०) फरनि-१

फलों को, २ फलाय, फल आना, ३ फलों से। उ० १ दे० 'फरत उ० ३'। २ सर फर्यो है अद्भुत फरनि। (गी० १।२४) ३ फिरि सुख फरनि फरी। (गी० १।४५)

फरइ-(सं० फल)-फलता है। उ० फरइ कि कोदव बालि सुसाली। (मा० २।२६१।१) फरत-१ फलता है, फल देता है, २ फलते समय, ३ फल देता, फलता। उ० १ बिनु ही ऋतु तरुवर फरत। (दो० १७३) २ फरत करिनि जिमि हतेउ समूला। (मा० २।२६१।४) ३ अभिमत फरनि फरत को। (गी० ६।१२) फरहि-फलते हैं। उ० फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। (मा० ७।२३।१) फरहिं-फलता है। फरि-फलकर। फरी-१ फली, फल लगे, २ फली हुई, ३ फलती हुई। उ० १ जनक मनोरथ कलपवेलि फरी है। (गी० १।६०) फरे-फले, फल लगे। उ०कलप तरु रूप फरे, री। (गी० १।७४) फरै-फलेगा, फल लगेगा। उ० सुरतर सोउ बिप फरनि फरै। (वि० १३७) फरैगो-फलेगा। उ० कुटिल कटुक फर फरैगो तुलसी करत अचेत। (दो० ४४२) फरा-फला, फला है। उ० मोको तो राम को नाम कलपतर कलि कल्यान फरो। (वि० २२६) फर्यो-फला, फरा। उ० जनु सुभग सिंगार सिसु-तरु फर्यो है अदभुत फरनि। (गी० १।२४)

फरकइ (सं० स्फुरण)-फड़का करती है, काँपती है। उ० दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी। (मा० २।२०।३) फरकत-१ काँपता, फड़कता, हिलता, २ फड़क रहे थे, ३ फड़कते है, फड़कता है। उ० १ अरुन नयन चढ़ि भ्रुकुटि, अधर फरकत भए। (पा० ६८) २ फरकत अधर कोप मन माहीं। (मा० १।१३६।१) फरकन-फरकने, फड़फड़ाने। उ० मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे। (मा० १।२३६) फरकहिं-फड़कते हैं, फड़क रहे हैं। उ० फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू। (मा० २।२२५।१) फरकि-फड़क फड़फड़ा। उ० फरकि उठीं हैं भुजा बिसाला। (मा० ४।६।७) फरके-फड़के, फड़कने लगे। उ० फरके बाम बाहु लोचन बिसाल। (गी० ३।६) फरकेउ-फड़क उठे। उ० फरकेउ बाम नयन अरु बाहू। (मा० ६।१००।३)

फरसा-(सं० परशु)-फावड़ा, कुल्हाड़ी। उ० काल कराल नृपालन|के धनुभंग सुने फरसा लिए धाए। (क० १।२०)

फरहार-दे० 'फलहार'। उ० पूजि पितर सुर अतिथि, गुर लगे करन फरहार। (मा० २।२७६)

फराक (१)-(फ़ा० फ़राख़)-१ खुली जगह, २ मैदान।

फराक (२)-(फ़ा० फ़र्क़)-अलग, हटकर। उ० दूरि फराक रुचिर सो घाटा। (मा० ७।२६।१)

फरित-(सं० फलित)-फला, फला हुआ। उ० बिलसति महि|कल्पवेलि मुद-मनोरथ फरित। (वि० १६)

फरु-दे० 'फल'। उ० २ नाम प्रेम चारि फलहू को फरु है। (वि० २५५)

फलँग-(सं०ूप्लवन)-कूदने।की क्रिया। उ० लगि फलँग फलाँगहू तें घाटि नभतल भो। (ह० ९)

फल-(सं०)-१ हथियार की नोक या धार या उसका वह प्रधान भाग जो तेज़ या नोकीला रहता है। २ लाभ, ३ कर्मभोग, ४ परिणाम, नतीजा ५ पेड़ पौधों का फल, मेवा, फलहरी, ६ चार फल—अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष, ७ चौथा, चार। उ० ५ थारि अधार मूल फल त्यागे। (मा० १।१४४।१) ६ राम नाम काम तरु देत फल चारि, रे। (वि० ६७) ७ मुनिफल बसु हर भानु। (दो० ४५६) फलनि-फल का बहुवचन। उ० सुखमा बेलि नवल जनु रूप फलनि फली। (पा० १३६) फलहू-फल भी। दे० 'फल'। उ० ६ नाम प्रेम चारि फलहू को फरु है। (वि० २५५)

फलइ-१ फलते हैं, फल देते हैं, २ फल ही। उ० १ एक सुमनप्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागहीं। (मा० ६।१०।छं० १) फलत-१ फलने के समय, २ फलता है। उ० १ फूलत फलत भयउ बिधि बामा। (मा० २।२१।२) फलहिं-फलते हैं। उ० फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना। (मा० २।१३७।३) फली-(सं० फल)-१ बीजदार फल, छीमी, २ फलयुक्त हुई। उ० २ सुखमा बेलि नवल जनु रूप फलनि फली। (पा० १३६) फलैं-फलते हैं। फलैं-१ फलयुक्त हों २ सफल होते है, सफल मनोरथ होते हैं, ३ फलते हैं। उ० २ फलैं फूलैं फैलैं खल, सीदैं साधु पल पल, खाती दीपमालिका ठठाइयत सूप हैं। (क० ७।१७१)

फलदायक-(सं०)-फल देनेवाला। उ० फलदायक फल चारि के दसरथ-सुत चारी। (गी० १।६)

फलहार-(सं० फलाहार)-फलों का भोजन।

फलाँग-दे० 'फलँग'।

फलित-(सं०)-१ फला हुआ, २ सफल, पूर्ण। उ० १ फलित बिलोकि मनोरथ बेली। (मा० २।१।४)

फलु-दे० 'फल'। उ० ४ सब फलु उन्हहि देउँ करि साका। (मा० २।३३।४)

फहम-(अर० फ़हम)-१ अनुमान, अटकल, २ ज्ञान, विचार। उ०२ मोहिं कछु फहम न तरनि तमी को। (वि० २६५)

फहराहीं-(सं० प्रसरण)-१ फहराते हैं, उड़ते है, २ प्रसन्नता से रोमांचित होते हैं। उ० १ सरय फरहिं पाइक फहराहीं। (मा० ३।३०२।४)

फाँस-(सं० पाश)-१ बंधन जाल, पाश, २ काँटा। उ० १ माधव। मोह फाँस क्यों टूटै? (वि० ११५)

फागु-(सं० फाल्गुन)-होली, फगुआ, फागुन में होनेवाला एक प्रसिद्ध त्योहार। उ० नगर नारि नर हरषित सब चले खेलन फागु। (गी० ७।२१)

फाटत-(सं० स्फाटन)-फट जाता है, खंड-खंड होता है। उ० नहि फाटत हियो। (वि० १३१) फाटहु-फट जाय, फटे। उ० हिय फाटहु, फूटहु नयन, जरउ सो तन केहि काम। (दो० ४१) फाटी-फट जाती है। उ० जिमि रबि उएँ जाहि तम फाटी। (मा० ६।६७।१)

फाबी-(सं० प्रभा)-फब गई, ठीक बैठ गई, सुंदर लगी, अच्छी लगी। उ० कुमतहि कसि कुबेषता फाबी। (मा० २।२५।४)

फारहिं-(सं० स्फाटन)-फाड़ते हैं। उ० धरि गाल फारहिं उर बिदारहिं गल अँतावरि मेलहीं। (मा० ६।८८।छं०

१) फारे-१ फाड़डाले, २ फाड़ेगा, ३ फाड़ता है। उ० १ चारिहु को छहु को नव को दस आठ को पाठ कुकाठ ज्यों फारे। (क० ७।१०४)

फिर-(स०प्रेरणा)-१ पुन, पुनि, पीछे, इसके बाद, २ एक बार और, फिर, दोबारा, लौटकर, घूमकर, उलटकर। ४ लौट, घूम। फिरइ-लौट आवे, लौटे। उ० फिरइ त होइ प्रान अवलंबा। (मा० २।८२।३) फिरउँ-फिरूँ, लौट आऊँ। फिरत-१ फिरता है, डोलता है, चलता है, विचरता है, २ लौटने में, फिरने में। उ०१ फिरत सनेह मगन सुख अपनें। (मा० १।२२।४) २ फिरत लाज कछु करि नहिं जाई। (मा० १।८६।३) फिरति-लौटती, आती। उ० फिरती बार मोहि जो देवा। (मा० २।१०२।४) फिरहीं-१ फिरते हैं, घूमते हैं, २ लौटते हैं। उ०मुग्ध से खल मृग खोजत फिरहीं। (मा० ३।११।५) फिरहु-१ फिरो, घूमो, २ लौट जाओ, लौटो। उ० २ फिरहुत सब कर मिटै खभारू। (मा० २।१७।२) फिरा-१ पलट गया, २ घूमा, ३ लौट गया। उ० १ फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। (मा० २।२०।२) फिरि (१)-लौटकर, फिरकर। उ० पुनि फिरि भिरे प्रबल हनुमाना। (मा० ६।६५।३) फिरिअ-फिरे, लौटे। उ० जौं एहि मारग फिरिअ बहोरी। (मा० २।११८।१) फिरिय-लौट जाइए। फिरिहहिं-फिरेंगे, घूमेंगे, भटकेंगे। उ० फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी। (मा० १।४३।४) फिरिहि-फिरेगी, उलटेगी, बदलेगी। उ० फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी। (मा० २।६८।४) फिरिहैं-लौटेंगे। उ० फिरिहैं किधौं फिरन कहिहैं। (गी० २।७०) फिरें-१ लौटे, घूमे, २ फिर जाने पर। उ०२ समय फिरें रिपु होहिं पिरीते। (मा०२।१७।३) फिरे-१ लौटे, २ लौटने पर। उ० १ फिरे सराहत सुंदरताई। (मा० २।१०८।४) फिरेउँ-फिरा, फिरता रहा, घूमता रहा। उ०सकल भुवन मैं फिरउँ बिहाला। (मा० ४।६।६) फिरेउ-फिरे, लौटे। उ० फिरेउ बनिक जिमि मुर गवाँई। (मा० २।९९।४) फिरेहु-लौटना, लौट आना। उ० रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु गएँ दिन चारि। (मा० २।८१) फिरै-१ फिरे, २ फिरना। उ० २ जनकु प्रेम बस फिरै न चहहीं। (मा० १।३४०।२) फिरौ-१ फिरा, लौटा, २ विमुख। उ० २ जो तोसों हो तौ फिरौ मेरो हेत हिया रे। (वि० ३३)

फिरि (२)-(स प्रेरणा)-पुन, फिर। उ० चढ़ुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछें। (मा० २।१४३।३)

फीक-दे० 'फीका'। उ० २ तुलसी पहिरिय सो बसन जो न पखारत फीक। (दो० ४६६)

फीका-(स० अपक्व ?)-१ नीरस, स्वादहीन, २ जिसका रंग चटक न हो, धूमिल, ३ जो अच्छा न लगे। उ० १ सरस होउ अथवा अति फीका। (मा० १।८।६) फीकी-'फीका' का स्त्रीलिंग। उ०३ तिनहि कथा सुनि लागहि फीकी। (मा० १।९।२) फीके-दे० 'फीका'। उ० ३ जोरे नये नाते नेह फोकट फीके। (वि० १७६)

फीको-दे० 'फीका'।

फीरोजा-(फ़ा० फ़ीरोज़ा)-हरापन लिए नीले रंग का बेशकीमत पत्थर।

फुंकरत-(स० फूत्कार)-१ फूत्कारता है, २ फूत्कारते हुए, फुफकारते हुए। उ० २ तब चले बान कराल फुंकरत जनु बहु ब्याल। (मा० ३।२०।१)

फुंकार-(स० फूत्कार)-फुफकार, 'फू' 'फू' का शब्द।

फुर-(स० स्फुरण)-सत्य, यथार्थ, ठीक, साँच। उ०बामदेव फुर, राम काममद मोचन। (पा०५८) फुरे-सच्चे। उ० जाना प्रताप ते रहे निर्भय कपिन रिपु माने फुरे। (मा० ६।१६। छ०१)

फुरि-सचमुच, सच। उ० कब ऐहैं मेरे लाल कुसल घर कहहु काग फुरि बाता। (गी० ६।१६)

फुरी-दे० 'फुरि'।

फुरै-सच्चे, सत्य। उ० जासों सब नातो फुरै तासों न करी पहचानि। (वि० १९०)

फुलवाई-(स० फुल्ल)-उपवन, फुलवारी। उ० गए रहे देखन फुलवाई। (मा० १।१५।२)

फुलाई-(स० फुल्ल)-फुलाकर। उ० बचन कहहिं सब गाल फुलाई। (मा० ६।६।३) फुलाउब-१ फुलाऊँगा, २ फुलाकर, ३ फुलाना। उ० ३ हँसब ठठाइ फुलाउब गाला। (मा० २।३५।३) फुलाए-फुलाया, फुला लिया। उ० हरषित खगपति पंख फुलाए। (मा० ७।६३।१)-फुलावौं-प्रफुल्लित करूँ। उ०तुलसी भनित भली भामिनि उर सो पहिराइ फुलावौं। (गी० १।१५)

फुल्ल-(स०)-१ प्रसन्न, २ फूला हुआ।

फूँक-(अनु०फू फू)-१ फेंकना, २ फूँककर, उ०२ सभय फूँक मकु मेरु उड़ाई। (मा० २।२३२।२) फूँकि-फूँककर, फूँक से। उ० चहत उड़ावन फूँकि पहारू। (मा० १।२७३।१)

फूट-(स० स्फुटन)-१ मेल का न होना, २ फूट गया, खंडित हो गया। उ० २ धनुष टूटेउ फूट कपार। (मा० २।१६३।२) फूटहिं-फूटते हैं, फूट रहे हैं। उ० रावन आगें परहिं ते जनु फूटहिं दधिकुंड। (मा० ६।४४) फूटहु-१ फूट जावे, फूटे, २ फूटो। उ० १ हिय फाटहु फूटहु नयन जरउ सो तन केहि काम। (दो० ४१) फूटि-फूटकर, खंडित होकर, टूटकर। उ० महा वृष्टि चलि फूटि कियारीं। (मा० ४।१५।४) फूटिहि-फूटेगी, नष्ट हो जायगी। उ० अवस राम के उठत सरासन टूटिहि। गवनिहि राज समाज नाक असि फूटिहि। (जा० ६८) फूटी-१ फूट गई २ फूटने का, आँख फूटने का। उ० २ लोकरीति फूटी सहैं आँजी सहै न कोइ। (दो० ४२३) फूटे-१ फूट गए, टूट गए, २ अपने पक्ष से फूटकर शत्रु पक्ष से मिल गए, ३ बेधकर, छेदकर, पारकर, ४ अपना चिह्न बना सके। उ० ४ भिन्द्र के दमन कराल न फूटे। (मा० ६।२५।२) फूटेहु-फूटे हुए या फूटी हुई भी। उ० फूटेहु बिलोचन पीर होत हितकरिय। (रि० ७७१)

फूरति-(स० स्फुरण)-स्फुरित होती है, विकसित होती है। उ० नील मलिन स्याम सोभा अगनित काम पावन रूप जेहि उर फूरति। (कृ० २८)

फूल-(स० फुल्ल)-१ पुष्प, कुसुम, २ खुशी, प्रफुल्ल होने का भाव, ३ गर्व घमंड। उ० १ सम श्रम नियम फूल फल ग्याना। (मा० १।३७।७) ३ सपदि भाँति सब कहूँ सुखद दलनि फलनि बिनु फूल। (दो० ५२१)

फूलइ-(सं० फुल्ल)-१ फूलता है, २ गर्व से भर जाता है, ३ प्रसन्न होता है। उ० १ फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद। (मा० ६।१६ ख) फूलत-१ फूलता है, २ फूलते हुए, ३ फूलने के समय। उ० ३ फूलत फूल सबद बिधि बासा। (मा० २।२४।२) फूलहिं-फूलते हैं, पुष्पित होते हैं। उ० फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना। (मा० २।१३७।३) फूला-१ फूल गया, पुष्पित हो गया, फूल चुका, २ फूल, पुष्प। उ० १ मोर मनोरथु सुरतरु फूला। (मा० २।२६।४) २ जनु सनेह सुरतरु के फूला। (मा० २।५३।२) फूलि-१ फूलकर, २ गर्व कर, ३ प्रसन्न होकर। फूली (१)-१ फूल गई, २ गर्व से भर गई, ३ फूलकर, ४ गर्व से भर कर। उ० ४ जेहि दिसि बैठे नारद फूली। (मा० १।१३५।१) फूले-१ फूल गए, पुष्पित हुए, २ गर्व से भर गए, ३ फूले हुए, फूलकर, ४ गर्व से भर कर, घमंड में फूलकर, ५ प्रसन्न। उ० १ सरनि सरोज बिटप बन फूले। (मा० २।१२४।४) ५ जे जे तैं निहाल किए फूले फिरत पाए। (बि० ८०) फूलेउ-फूला हो। उ० मनहुँ काम आराम कल्पतरु फूलेउ। (जा० १४०)

फेट-(?)-फेरा, घुमाव, २ कमरबंद, कटिबंधन, ३ पटुका, ४ पल्ला, ५ कमर में लपेटा गया धोती का भाग। उ० ५ सघन चोर मग मुदित मन धनी गही ज्यों फेट। (दो० २०७)

फेकरहिं-(?)-रोते हैं, चिल्लाते हैं। उ० कटु कुठायँ करटा रटहिं फेकरहिं फेरु कुभाँति। (प्र० ३।१।५) फेकरि-रोकर, चिल्लाकर। उ० फेकरि फेकरि फेरु फारि फारि पेट खात। (क० ६।४६)

फेन-(सं०)-झाग, गाज, बुलबुलों का समूह, समुद्रफफ, जल विकार। उ० सुभग सुरभिमय फेन समाना। (मा० १।३२६।१) विशेष-फेन बहुत कोमल होता है पर जो नमुचि असुर वज्र से भी नहीं मरता था इंद्र द्वारा समुद्र के फेन से मारने पर ही मर गया था। उ० अजर अमर कुलिसहुँ नाहिन बध सो पुनि फेन मर्‌यो। (वि० २३६)

फेनु-दे० 'फेन'।

फेनू-दे० 'फेन'। उ० जलधि अगाध मौलि बह फेनू। (मा० १।१६७।४)

फेर-(सं० प्रेरण, हिं० फेरना)-१ पुन फिर, बहुरि, २ चक्कर, घुमाव, ३ कठिनाई, ४ ओर, तरफ। उ० ४ प्रभु आगवन जनाव जनु नगर रम्य चहुँ फेर। (मा० ७।१। दो० २)

फेरइ-(सं० प्रेरण)-फेरता है घुमाता है। उ० सुरतरु सुर बेलि पवन जनु रस फेरइ। (जा० १२१) फेरत-१ फेरते हैं, घुमाते हैं, २ फेरते हुए, फेरने से, ३ लौटाते हैं। उ० १ कर कमलनि धनु सायक फेरत। (मा० २।२३१।४) २ चले भाजि गज बाजि फिरत नहिं फेरत। (पा० ११६) फेरति-फेरती है, लौटाती है। उ० फेरति सबुँ मातु कृत खोरी। (मा० २।२२४।३) फेरि-फिर, पुनः। उ० कूदि चरहिं कपि फेरि चलावहिं। (मा० ६।४१।४) फेरिअ-फेरिए, लौटा दीजिए। उ० फेरिअ प्रभु मिथिलेस किसोरी। (मा० २।८२।१)

फोकट-(सं० वल्कल)-१ बिना मूल्य का, व्यर्थ, २ झूठा, असत्य, ३ सारहीन। उ० २ जारे नये नाते नेह फोकट फीके। (वि० १७६)

फोरइ-(सं० स्फोटन)-फोड़ता है, टूक टूक करता है। फोरहिं-फोड़ते हैं। उ० फोरहिं सिल लोढ़ा सदन लागे अढ़ुक पहार। (दो० ५६०) फोरा-फोड़ दिया। उ० राखा जिअत आँखि गहि फोरा। (मा० ६।३६।६) फोरि-फोड़कर, तोड़कर। उ० पर्बत फोरि करहिं गहि बाटा। (मा० ६।४१।३) फोरी-१ फोड़ दी, २ फोड़नेवाली। उ० २ मुनि अस कबहुँ कहसि घर फोरी। (मा० २।१४।२) फोरै-१ फोड़े, टुकड़े टुकड़े करे, २ फोड़ने। उ० २ फोरै जोगु कपारु अभागा। (मा० २।१६।१)

फौज-(अर० फ़ौज)-१ सेना, २ झुंड, समूह। उ० १ अस कहि सन्मुख फौज रँगाई। (मा० ६।७१।६)

# ब

बंचेहु-(सं० वंचन)-ठगा, ठगा है। उ० बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। (मा० १।१३७।३)

बंजुल-(सं० वंजुल)-१ बेंत, २ गुच्छा। उ० १ बंजुल मंजु, बकुल कुल सुरतरु ताल, तमाल। (गी० २।४७)

बँटावन-(सं० वितरण)-बँटानेवाला, बाँट लेनेवाला। उ० बिपति बँटावन बंधु-बाहु बिनु करौं भरोसो का को? (गी० ६।७)

बँटैया-बटानेवाला, सहयोगी, साझेदार। उ० तात न मात न स्वामि सखा सुत बंधु बिसाल बिपत्ति बँटैया। (क० ७।५१)

बंद (१)-(फ़ा०)-१ बंधन, क़ैद, २ प्रतिज्ञा, क़ौल, क़रार, ३ बंध, ताला, ४ अवयव, अंग, ५ नस, नाड़ी, ६ आधार सहारा।

बंद (२)-(सं० बंध)-भाग, शाखा। उ० नगर-रचना सिखन को बिधि तकत बहु बिधि बंद। (गी० ७।२३)

बंदइ-(सं० वंदन)-वंदना करते हैं, झुकते हैं, नमस्कार करते हैं। उ० देइ जानि सब बंदइ काहू। (मा० १।२८१।३) बंदउँ-वंदना करता हूँ, प्रणाम करता हूँ। उ० बंदउँ संत समान चित हित अनहित नहिं कोइ। (मा० १।३ क) बंदत-प्रणाम करता है, वंदना करता है। उ० मनसा वाचा कर्मना तुलसी बंदत ताहि। (वै० २६) बंदि (१)-(सं० वंदन)-वंदना करके,

पूजकर । उ० विधिहि वंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा। (मा० १।२८७।४) वंदिअ-वंदना करते हैं, आदर करते हैं। उ० दारु बिचारु कि करइ कोउ बंदिअ मलय प्रसंग। (मा० १।१० क) बंदे-वंदना की, स्तुति की। उ० पुनि पुनि पारबती पद बंदे। (मा० १।९९।१)

वंदन-(सं० वंदन)-१ सिंदूर, ईंगुर, २ वंदना, प्रणाम। उ० १ वंदन वंदि ग्रंथि विधि करि धुव देखेउ। (मा० १४६)

वंदनवार-(सं०वंदन+माला)-तोरण, द्वार पर बाँधी जाने वाली फूल पत्ता की माला। उ० वंदनवार बितान पताका घर घर। (जा० २०६)

वंदना-(सं० वंदन)-नमस्कार, प्रणाम, स्तुति।

बंदनिवारे-दे० 'वंदनवार'। उ० रचे रुचिर बर बंदनिवारे। (मा० १।२८९।१)

वंदनीय-(सं० वंदनीय)-वंदना करने योग्य, सराहनीय। उ० वंदनीय जेहिं जग जस पावा। (मा० १।२।३)

वंदारु-(सं० वंदारु)-वंदना करनेवाला। उ० बहुल वंदारु-बृंदारका बृंद पद-द्वंद। (वि० ५४)

वंदि (२)-(सं० वंदी)-क़ैद किया हुआ, मुजरिम।

वंदि (३)-(सं० वंदी)-भाट, राजाओं की बड़ाई करनेवाली एक जाति। उ० वंदि मागधन्हि गुन गन गाए। (मा० १।३२८।३) वंदिन्ह-वंदी जनों ने, भाट लोगों ने। उ० तब विदेहपन वंदिन्ह प्रगटि सुनायउ। (जा० ९८)

वंदिगृह-(सं०)-क़ैदखाना, जेल। उ०भरतु वंदिगृह सेइहहिं लखनु राम के नेव। (मा० २।१९)

वंदिछोर-बंधन से छुड़ानेवाले, मुक्तिदाता। उ० उथपे थपन, थपे उथपन पन बिबुधबृंद-बंदिछोर को। (वि० ३१)

वंदिनि-वंदना या आदर के योग्य, पूज्य। उ० नर-नाग बिबुध बंदिनि जय जह्नुबालिका। (वि० १७)

बंदी (१) (फ़ा)-क़ैदी, जो क़ैद हो।

वंदी (२)-(सं०)-एक चारणों की जाति, भाट, मागध। उ० बंदी बेद पुरान गन कहहिं बिमल गुन ग्राम। (मा० २।१०५)

बंदी (३)-(सं० बिंदु)-एक आभूषण।

बंदीछोर-क़ैद से छुड़ानेवाले। उ० केसरी किसोर, बंदीछोर को निवाजे सब। (ह० १३)

बंदीजन-भाट, प्रशंसक, मागध। उ० मागध सूत बिदुष बंदीजन। (मा० १।३०२।३)

वंद्य-वंदना करने योग्य, पूज्य। उ० देव मुनि-वंद्य विप्र अघधामी। (वि० ५४)

बंध-(सं०)-१ बंधन, बाँधने की रस्सी आदि, २ क़ैद, ३ उत्पत्ति, ४ धारा, ५ रोध, रोक। उ० १ तेहि व रचि पचि बंध बनाए। (मा० १।२८८।२)

बंधन-(सं०)-१ बाँधने की क्रिया, २ बाँधने की रस्सी आदि, ३ वह जो किसी की स्वतंत्रता आदि में बाधक हो। ४ शरीर,का संधि-स्थान, जोड़, ५ क़ैद जेल। उ० ४ हारि सुनत दसरथ के भए बंधन ढील। (बि० ३२)

बँधाइअ-(सं० बंधन)-बँधाइए। उ० एहि विधि नाथ पयोधि बँधाइअ। (मा०२।६०।२) बँधायउ-बँधाया, बँधा लिया। उ० जेहिं बारीस बँधायउ हेलाँ। (मा० ६।६।३) बँधाया-बंधन में डलवाया, बँधवाया। उ० छोभ पाँस जहिं गर न बँधाया। (मा० ४।२१।३) बधायो-बँधाया, बँधवाया। उ०कौतुकहीं पायोधि बँधायो। (मा० ६।६।१) बँधावा-बँधवाया। उ० प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा। (मा० ५।२०।२)

बँधान-(सं० बंधन)-१ नियम, सिद्धांत, परिपाटी, २ नियत आजीविका, ३ किसी बात का निश्चय, ४ लेन-देन या व्यवहार आदि की नियत परिपाटी। उ० १ नागर नट चितवहिं चकित डगहि न ताल बँधान। (मा० १।३०२)

बंधु-(सं०)-१ भाई, भ्राता, २ मित्र, ३ सहायक, ४ पिता, ५ बंधूक नाम का फूल, ६ नीच, ७ अपने लोग। उ० १ बंधु गुरु जनक जननी बिधाता। (वि० ११) ६ छत्र बंधु तैं बिप्र बोलाई। (मा० १।१७४।१) बंधुना-भाई द्वारा, भाई से। उ० पायो नाराच चाप कपि निकरयुत बंधुना सव्यमार। (मा० ७।१। श्लो० १)

बंधुक-(सं०)-गुल दुपहरिया का फूल या पौधा। उ० बंधुक-सुमन-अरुन पद पंकज अंकुस प्रमुख चिह्न बनि आए। (गी० १।२३)

बंधुजीव-(सं०)-दे० 'बंधुक'।

बंधुर-(सं०)-१ मुकुट, २ बहरा ३ सुंदर, रम्य, ४ स्त्रीचिह्न।

बंधूक-(सं०)-१ दे० 'बंधुक', २ लाल छींट, लाल बूटी।

बँधेउ-(सं० बंधन,-बँध गये, फँस गए। उ० बँधेउ सनेह विदेह बिराग बिरागेउ। (जा० ४६) बँधो-१ बँधा हुआ, २ फँसा, लगा, अटका।

बंधो-(सं० बंधु)-हे बंधु, हे भाई। उ० नत भीष-सुग्रीव दु खैक-बंधो। (वि० २७)

बंध्या-(सं०)-वह स्त्री जिसे संतान न हो सके, बाँझ। उ० बंध्यासुत बरु काहुहि मारा। (मा० ७।१२२।८)

बंब-(अ०)-१ युद्ध आदि में वीरों को उत्साहवर्द्धक शब्द, २ नगारा, डंका। उ० १ कूदत बंधध के कदम बंब सी करत। (क० ६।४८)

बंस-(सं० वंश)-बाँस नाम का पेड़। उ० उपजेहु बंस अनल कुल घालक। (मा० ६।२१।३)

बंसी-(सं० वंशी)-मछली फँसाने का एक औज़ार। उ० जन मन-मीन हरन बंदर्ध बंसी रची सँवारि। (गी० ७।२१)

बँसुला-दे० 'बसूला'। उ० तेहिं हमार हित कीन्ह बँसूला। (मा० २।१९२।२)

बइ-(सं० वपन)-बोया बीज डाला। उ० कामधेनु धरनी कलि-गोमर बिबस बिकल, जामति न बइ है। (वि० १३९)

बए-(सं० वचन)-कहा, बखाना। उ० बदिन्ह बाँकुरे बिरद बए। (गी० १।६)

बक (१)-(सं० बक) बगला। उ० हमहि बक दादुर चातक कहीं। (मा० १।१।१) बकउ-बगला भी। उ० काक होहि पिक बकउ मराला। (मा० १।३।१)

बक (२) (सं० वच्)-बकना, गपशप, व्यर्थ की बातें।

बकता-दे० 'बक्ता'। उ० ते श्रोता बकता समसीला। (मा० १।३०।३)
बकध्यानी-बगुला भगत, पाखंडी।
बकसत-(फ़ा० बख़्श)-दान देते हैं, ईनाम देते हैं। उ० प्रभु बकसत गज बाजि बसनमनि, जय धुनि गगन निसान हय। (गी० १।४३)
बकसीस (फ़ा० बख़्शिश)-१ इनाम, पारितोषिक, २ दान। उ० १ जो बकसीस जाचकन्हि दीन्हा। (मा० १।३०६।२)
बकहिं-बक, व्यर्थ का बढ़-चढ़ कर। उ० तुलसिदास जनि बकहिं, मधुप सठ! हठ निसि दिन अँबराई। (कृ० ४१)
बकहि-बकती है, बढ़ बढ़ करती है। उ० ठली ग्वालि भोरहने के मिस थाइ बकहि बेकामहिं। (कृ० ४) बकि-(सं० वच्)-बक, बकबक, व्यर्थ प्रलाप कर। उ० बकि जनि उठहि बहोरि। (पा० ७३) बक्यो-बकवाद किया, बका, कहा। उ० जीह हू न जप्यों नाम, बक्यो आउ बाउ मैं। (वि० २६१)
बकिहि-(सं० बक)-बगली को। उ० बकिहि सराहइ मानि मराली। (मा० २।२०।२)
बकी-(सं० बकी)-पूतना, बकासुर की बहिन। उ० बकी बक भगिनी काहू तें कहा डरैगी? (कृ० १४)
बकुचौहीं-(तुर०बुकचा)-गठरी की भाँति। उ० राखी सचि कूबरी पीठ पर ये बातें बकुचौहीं। (कृ० ४१)
बकुल (१)-(सं०)-मौलश्री का पेड़ या फूल। उ० रोपे बकुल कदंब तमाला। (मा० १।३४४।४)
बकुल (२)-(सं० बक)-बगला।
बकैयाँ-(?)-दोनों हाथ तथा पैर के सहारे लड़कों के चलने का ढंग।
बक्ता-(सं० वक्ता)-बोलने या कहनेवाला।
बक्त्र-(सं०)-मुख, आनन। उ० बक्त्र आलोक त्रैलोक्य सोकापह, मार रिपु हृदय-मानस मराल। (वि० ११)
बक्र-(सं० वक्र)-१ टेढ़ा, कुटिल, २ टेढ़ाई, कुटिलता। उ० १ बक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू। (मा० १।२८१।३) २ तुलसी बढ़ विहंगम भई, बादि लेति नव बक्र। (दो० ४३७)
बखसीस-(फ़ा० बख़्शिश)-दिया हुआ धन, ईनाम, पारितोषिक। उ० बखसीस ईस जू की खीस होत देखियत। (क० ६।१०)
बखान-(सं० व्याख्यान)-१ वर्णन, कथन, २ तारीफ़, कीर्तन, यश गाना। उ०२ नर कर करसि बखान। (मा० ६।२४)
बखानउँ-बखानता हूँ। उ० अस तव रूप बखानउँ जानउँ। (मा० ३।१३।७) बखानत-१ बखान करते हुए, २ बखानते हैं। उ० १ बाहर भीतर भीर न बनै बखानत। (जा० १४) बखानहिं-बखानते हैं, बड़ाई करते हैं। उ० प्रगट बखानहिं राम सुभाऊ। (मा० २।२२।१) बखानहीं-बखानते हैं, यश गाते हैं, प्रशंसा करते हैं। उ० 'काहु न कीन्ह सुकृत' सुनि सुनि मुदित नृपहि बखानहीं। (जा० १८) बखानहु-वर्णन कीजिए, बखान करो। उ० तिन्ह कर सहज सुभाउ बखानहु। (मा० ७।१२१।३) बखाना-१ कहा, वर्णन किया, २ कहा जाता है, ३ बड़ाई की। उ० २ कलि जुग सोइ गुनवत बखाना। (मा० ७।९८।३) ३ राम जासु जस आपु बखाना। (मा० १।७।४) बखानि-१ बखानकर, सराहना कर, २ से, ३ प्रशंसा करते हुए, बखानते हुए, ४ बखानी की। उ० २ कहा भुसुंडि बखानि। (मा० १। ४ परेउ दृढ जिमि धरनितल दसा न जाइ (मा० २।११०) बखानिय-१ बखान किया है, २ किया जाय, ३ बखानकर, प्रशंसा कर। उ० १ नैहर केहि बिधि कहहुँ बखानिय। (पा० ४८) बखानिहैं-बखानेंगे, वर्णन करेंगे। उ० त्रैलोक पावन मुनि नारदादि बखानिहैं। (मा० ४।३०। कृ० १। बखानी-वर्णन की, कही, गायी। उ० जाइ न कोटिहुँ बखानी। (मा० १।१००।४) बखाने-बखान किया, की। उ० राज सभाँ रघुबीर बखाने। (मा० बखानै-बखान करे, कहे, यश गावे। उ० षट प्रकार भोजन कोउ दिन अरु रैनि बखानै। (वि० १२ बखानो-१ वर्णन करो, २ सराहो, सराहना करो। उ० १ तौ सकोच परिहरि पालागों परमारथहि बखानो। (कृ० ३४) बखान्यो-बखाना है, वर्णन किया है। उ० होइ न बिमल बिबेक-नीर बिनु, बेद पुरान बखान्यो। (वि० ८८)
बखार-(सं० प्राकार)-गल्ला रखने का स्थान, भंडार।
बखारहीं-बखारों में। दे० 'बखार'। उ० बिबिध भाँति धान बरत बखारहीं। (क० ६।२१)
बग-(सं० बक)-बगला नाम का पक्षी। उ० बग झगरत गये, अवध जहाँ रघुराउ। (ब० १।६।२)
बगध्यानी-बगले की तरह ध्यान धरनेवाला, बय मोला तापस बगध्यानी। (मा० १।१६
बगपाती (?)-कच, कारा।
बगमेल-(सं० वल्गा + मेल)-१ बाग की बाग ढीली करके, २ एक पंक्ति धावा करना। उ० १ हरषि चले बगमेल। (मा० १।३०५)
बगरि-(सं० विकिरण)-फैलकर, जग लोक बेद रह्यो है बगरि सो।
बगरे-फैले, बिखरे, पसरे। उ० बगरे जनु जुवारि जय धान। (गी०
बगुर-(?)-फंदा, जाल, पाश।
बगुरा-फंदा, जाल।
बगूला-दे० 'बघूरा'।
बघनहा-(सं० व्याघ्र + नख) प्रकार का हथियार जो बाघ ३ एक सुगंधित द्रव्य, ४ एक बालक गले रहते हैं। उ० ४ (गी० १।२८)
बघूर-दे० 'बघूरा'। उ० तुलसी को पात। (ब० ३८१)
बघूरा-(सं० वायु + गोल)-बवंडर, हवा। बघूरे-दे० 'बघूरा'। बघूरे में,

बधूरे चग ज्या, ज्ञान ज्या लोक-समाज। (दो० ४१३)

बच-(स० वचः)-१ वचन, बात, वाणी, २ वाक्य। उ० १ मन बच क्रम बानी छाँड़ि सयानी सरन सकल सुर जूथा। (मा० १।१८६। छं० ३)

बचइ-दे० 'बचै'। उ० बचइ काल-क्रम दोख तें। (स० ६०७) बचउँ-(स० वचन)-१ बचता हूँ, बच रहा हूँ, २ टाल देता हूँ, तरह देता हूँ। उ० १ बिप्र बिचारि बचउँ नृप द्रोही। (मा० १।२७६।३) बचा (?) शेष रहा, बाकी बचा। उ० तुलसी सब सूर सराहत हैं 'जग में बलसालि है बालि बचा'। (क० ६।१५) बचे-१ रक्षित हुए बच गए, शेष रहे, उबरे, २ भिन्न हुए, छूटे, अलग हुए। उ० १ सहसबाहु दस बदन आदि नृप बचे न काल बली ते। (वि० ११८) बचै-बचा। दे० 'बचे'। बचौं-१ बचता हूँ, हटता हूँ, २ बचूँ, बच जाऊँ।

बचन-(स० वचन)-१ बात, वाणी, बोल, २ कौल, प्रतिज्ञा, ३ होड़, शर्त। उ० १ तौ क्यों बदन देखावतो कहि बचन इया रे। (वि० ३३) बचनहि-बचन के लिए। उ० तजे रामु जेहिं बचनहि लागी। (मा० २।१७३।२)

बचना-दे० 'बचन'। उ० १ सुनि सिव के भ्रमभंजन बचना। (मा० १।११६।४)

बचनि-बोलनेवाली। उ० बार-बार कह राउ सुमुखि सुलोचनि पिक बचनि। (मा० २।२५)

बचनु-दे० 'बचन'। उ० २ सुत सनेहु इत बचनु उत संकट परेउ नरेसु। (मा० २।४०)

बचा (२)-(स० वत्स)-बच्चा, शिशु, बालक।

बचावन-(स० वचन) बचाने, रक्षा करने। उ० सचिव बोलि सठ लाग बचावन। (मा० ५।२६।५) बचावा-१ बचाया, रक्षा की २ बचाता जाता है। उ० २ करि छल सुअर सरीर बचावा। (मा० १।१५७।२)

बचासि-बातों से, बात करके।

बच्छ-(स०वत्स)-१ बच्चा, शिशु, २ पुत्र, लड़का, बेटा, ३ प्रिय, प्यारा, स्नेही, ४ बछड़ा, गाय का बच्चा। उ० २ अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। (मा० २।१६५।२) ४ भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई। (मा० ७।११७।६) बच्छ-पद-बछड़े के पैर का पृथ्वी पर बना हुआ चिह्न।

बच्छल-दे० 'बछल'।

बच्छलता-दे० 'बछलता'।

बच्छु-(स० वत्स)-बछड़ा। उ० सुमिरि बच्छु जिमि धेनु लवाई। (मा० २।१५६।२)

बछरु-(स० वत्स)-बछड़ा, बछवा। उ० बछरु छबीलो छगन मगन मेरे कहति मल्हाइ मल्हाइ। (गी० १।१६)

बछल-(स० वत्सल) प्रेमी, कृपालु। उ० भगत बछल कृपालु रघुराई। (मा० ७।११।३)

बछलता-(स० वत्सलता)-वत्सलता, प्रेम, प्रेमभाव। उ० भगत बछलता प्रभु कै देखी। (मा० ७।८३।४)

बजनिआ-(स० वाद्य)-बजानेवाला, बाजावाला। उ० सेवक सकल बजनिआ नाना। (मा० १।३२१।४)

बजाइ-(स० वाद्य)-१ बजाकर, गा बजाकर, २ ठुद करा कर, ठुकारकर, ३ निर्भर होकर, ४ सबको जताकर, डंके की चोट पर। उ०१ रारि दे निसाजिरौं बजाइ के जीवनै। (क० ६।२) ४ हौं बजाइ जाइ रह्यो हौं। (वि० २६०) बजाइ-१ बजाया, शब्दायमान किया, २ बनाकर, डंका बजाकर। उ० २ देखैं भरत कहुँ राजु बजाई। (मा० २।३१।४) बजायउ-१ बजाया, २ बजा कर। उ०२ चले देव सजि जान निसान बजायउ। (पा० १४५) बजावत-बजाते हुए, शब्दायमान करते हुए। उ० जाइ नगर नियरानि बरात बजावत। (पा० ११३) बजा-वती-बजाती है। उ० चुटकी बजावती। (गी० १।३०) बजावन-बजाने। उ० जहँ-तहँ गाल बजावन लागे। (मा० १।२६६।१) बजावहिं-१ बजाते हैं २ बजाने लगे। उ० २ मुखहिं निसान बजावहिं भेरी। (मा० ६।३६।५) बजावहु-बजाओ। उ० कहेसि बजावहु जुद्ध निसाना। (मा० ६।८६।१) बजावा-बजाता है। उ० पंडित सोइ जो गाल बजावा। (मा० ७।९८।२) बजैहैं-बजावेंगे। उ० ब्योम बिमान निसान बजैहैं। (गी० ५।२१)

बजाज-(अर० बज़्ज़ाज़)-कपड़े का व्यापारी। उ० बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते। (मा० ७।२८। छं०१)

बजारी-(फा० बाज़ार)-बाजारू आदमी, जिसका विश्वास न किया जा सके। उ० कीरति बड़ो, करतूति बड़ो जन, बात बड़ों सो बड़ोई बजारी। (क० ६।५)

बजारु-बाजार, हाट। उ० चारु बजारु बिचित्र अँबारी। (मा० १।२१३।१)

बजारू-१ दे०'बजारी' २ बाजार, हाट। उ०२ छाया परम बिचित्र बजारू। (मा० १।२६६।४)

बजे-(स० वाद्य) १ बजता है, पड़ता है, २ बजे। उ०१ जहँ तहँ सिर पदत्रान बजै। (वि० ८६)

बज्जत-बजता है, शब्दायमान होता है। उ० घाय चोट चटका चकोट अरि उर सिर बज्जत। (क० ६।४७)

बज्र-(स० वज्र)-१ कुलिश, बिजली, इंद्र का शस्त्र, २ हीरा। उ० १ तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा। (मा० २।४१।४) बज्रन्हि-बज्रों से, हीरों से। उ० प्रतिहार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि रचे। (मा०७।२७।छं० १)

बज्रसार-दे० 'बज्रसार'। उ० बज्रसार सर्वांग भुजदंड भारी। (वि० २६)

बझत-(स० बद्ध, पा० बज्झ)-१ बझता है, फँसता है, २ उलझता है, लिपटता है। उ० २ बझत बिनहिं पास सेमर सुमन-आस। (वि० १४७)

बझाऊ-१ फँसानेवाला, उलझानेवाला, २ फँसाव, उलझाव। उ० १ कहि सुराईं लपेटन लोटन ठौरहिं ठौर बझाऊ रे। (वि० १८६)

बझावौं-(स० बद्ध) बझाता हूँ, फँसाता हूँ। उ० ब्याध ज्यों बिषय बिहँगनि बझावौं। (वि० २०८)

बट-(स० वट)-१ बरगद का पेड़, २ अक्षयवट नाम का पेड़ जो प्रयाग में है। उ० १ तहि गिरि पर बट बिटप बिसाला। (मा० १।१०६।१)

बटत-(स० वट)-१ बटता हूँ पूरता हूँ २ बटता है। उ० १ बाँधिबे को भवगयंद रेनु की रजु बटत। (वि० १२९)

बटपार-(स० वाट+पार)-ठग, डाकू, लुटेरा, दुष्ट।

बटपारा–दे० 'बटपार'। उ० मैं एक अमित बटपारा। (वि० १२१)

बटाऊ (१)–(सं० वाट)–पथिक, मुसाफिर, राही। उ० राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं। (क० २।२)

बटाऊ (२)–(सं० वितरण) हिस्सा बटानेवाला।

बटु (१)–दे० 'बट'। उ० २ बटु बिस्वास अचल निज धरमा। (मा० १।२।६)

बटु (२)–(सं०बटु)–१ ब्रह्मचारी, वेदपाठी, क्वारा लड़का, २ विद्यार्थी। उ०१ बटु बेष पेषन पेम पन ब्रत नेम ससि सेखर गये। (पा० ७१)

बटुक–दे० 'बटु'।

बटोरत–(सं० वर्तुल, हि० बटुरना)–बटोरते हैं, एकत्र करते हैं। उ० सुचि सुन्दर सालि सकेलि सुवारि कै बीज बटोरत ऊसर को। (क० ७।१०३) बटोरा–१ एकत्र किया, एक स्थान पर किया, २ बटोरकर, सिकोड़कर। उ०१ राम भालु कपि कटकु बटोरा। (मा० १।२२।२) बटोरि–एकत्र कर, एक जगह पर। उ० सानुज कुसल कपि कटक बटोरि कै। (क० ५।२७) बटोरी–१ बटोरकर, एकत्रकर, २ इकट्ठा किया, एक स्थान पर किया। उ० १ सब कै ममता ताग बटोरी। (मा० ५।४८।३) बटोरै–१ सिकोड़े, २ एकत्र किये, ३ इकट्ठा करे। उ० ३ जेहि के भवन बिमल चिंतामनि सो कत काँच बटोरै। (वि० ११६) बटोरयो–इकट्ठा किया, एकत्र किया। उ० करि पिनाक-पन, सुता-स्वयंबर सजि, नृप कटक बटोरयो। (गी० १।१००)

बटोही–(सं० वाट)–राहगीर, यात्री, पथिक। उ० देखु कोउ परम सुंदर सखि। बटोही। (गी० २।१८)

बड़ (१)–(सं० वट)–बरगद का पेड़।

बड़ (२)–(सं० वर्द्धन)–बड़ा, भारी। उ० हित लागि कहौं सुभाय सो बड़ बिषय बैरी रावरो। (पा० ५४)

बड़प्पन–(सं० वर्द्धन+पन)–बड़ाई, श्रेष्ठता, बड़ापन।

बड़प्पनु–दे० 'बड़प्पन'। उ० केहिं न सुसग बड़प्पनु पावा। (मा० १।१०।४)

बड़भागी–भाग्यशाली, भाग्यवान। उ० अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही। (मा० १। २११। छं० १)

बड़री–(सं० वर्द्धन)–बड़ी, भारी। उ० त्रिकुटी भृकुटी बड़री अँखियाँ, अनमोल कपोलन की छबि है। (क० २।१३)

बड़वागि–दे० 'बड़वाग्नि'। उ० आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की। (क० ७।९६)

बड़वाग्नि–(सं०)–दे० 'बड़वानल'।

बड़वानल–(सं०)–बड़वाग्नि, समुद्र की आग। उ० जदपि है दारुन बड़वानल राख्यो है जलधि गँभीर धीरतर। (कृ० ३१)

बड़ा (१)–(सं० वर्द्धन)–१ बृहत्, विशाल, २ भारी, गुरु, ३ प्रधान, मुखिया, श्रेष्ठ, ४ उम्र में बड़ा।

बड़ा (२)–(सं घटक)–उर्द की दाल का बना एक पकवान।

बड़ाइ–बड़ाई, बड़प्पन, श्रेष्ठता। उ० सानानि सकल बरात आदर दान विनय बड़ाइ कै। (मा० १।३२६। छं० १)

बड़ाई–(सं० वर्द्धन) १ श्रेष्ठता, बड़प्पन, २ यश, कीर्ति, ३ उच्चता, ऊँचाई। उ० १ कालऊ करालता बड़ाइ जीतो बावनो। (क० ५।६)

बड़ि–'बड़ा' का स्त्रीलिंग। दे० 'बड़ा'। भारी, बड़ी। उ० बड़ि अवलंब बाम बिधि बिघटित। (गी० २।८८)

बड़िआर–बलवान, बलवाला, शक्तिशाली।

बड़िए–बड़ी ही, बहुत ही। उ० ताके अपमान तेरी बड़िए बड़ाई है। (गी० ५।२६) बड़ी–'बड़ा' का स्त्रीलिंग, भारी, बहुत। उ० दैहै तौ प्रसन्न ह्वै बड़ी बड़ाइ बौंड़िये। (क० ७।२५) बड़े–१ बड़ा, भारी। दे० 'बड़ा'। २ बड़े लोग। उ० १ बड़े पाप बाढ़े किए, छोटे किये लजात। (दो० ४१३) २ बड़े की बड़ाई, छोटे की छोटाइ दूरि करै। (वि० १८३) बड़ेहि–बड़े का ही। उ० बधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू। (मा० २।१०।४)

बड़ेरी–बड़ी-बूढ़ी। बड़ेरे–बड़े। उ० छोटे औ बड़ेरे मेरे पूतऊ अनेरे सब। (क० ५।११)

बड़ेरो–१ बड़प्पन, श्रेष्ठता, बड़ाई, २ बड़ा, महान, ३ मुख्य। उ० २ बदि छोर तेरो नाम है, बिरुदैत बड़ेरो। (वि० १४६) ३ तहँ रिपु राहु बड़ेरो। (वि० ८७)

बड़ो–बड़ा। दे० 'बड़ा'। उ० बड़ो सुसेवक साँइ तें, बड़ो नेम तें प्रेम। (दो० ७०३) बड़ोइ–बड़ा ही। उ० सुपन समीर को धीर धुरीन बीर बड़ोइ। (गी० ५।५) बड़ोई–बड़ा ही। उ० कीरति बड़ी, करतूति बड़ी जन, बात बड़ी, सो बड़ोइ बजारी। (क० ६।५)

बड़ौ–दे० 'बड़ो'।

बढ़इ–(सं०वर्द्धन) १ बढ़ता है, २ बढ़े, वृद्धि करे। बढ़ई–(१) बढ़ता है। बढ़त–(सं०वृद्धि)–१ बढ़ता है, २ बढ़कर, ३ बढ़ते ही, ४ बढ़ता हुआ। उ० ४ बढ़त बौंड़ जनु लही सुसाखा। (मा०२।२।४) बढ़ता–उन्नत होता वृद्धि करता, ऊँचे जाता। बढ़ति–बढ़ती है। उ०राम दूरि माया बढ़ति। (दो० ६९) बढ़ा–बढ़ गया। बढ़ि–१ बढ़कर, अधिक, २ बाढ़, वृद्धि बढ़ती। उ० १ साँची बिरुदावली न बढ़ि कहि गई है। (वि० १८०) २ पाय प्रतिष्ठा बढ़ि परी। (दो० ४४७) बढ़े–१ वृद्धि को प्राप्त हुए, २ बढ़ने पर। उ० १ तुलसी प्रभु भूषन किए गुंजा बढ़े न मोल। (दो० ३८५)

बढ़ई–(२) (सं० वर्द्धकि)–लकड़ी का काम करनेवाला। उ० मातु कुमत बढ़ई अघमूला। (मा० २।२१२।२)

बढ़ाइहौं–बढ़ाऊँगा। उ० प्रभु सों निषाद ह्वै के बाद न बढ़ाइहौं। (क० २।८) बढ़ाउ–(सं० वृद्धि)–१ बढ़ाओ, २ उन्नति, बढ़ती, ३ बढ़ावा, उत्तेजना। उ० १ समुझि समुझि गुन ग्राम राम के उर अनुराग बढ़ाउ। (वि० १००) बढ़ाव–दे० 'बढ़ाउ'। बढ़ावइ–बढ़ावे, वृद्धि करे। उ० को करि बादु बिवादु बिषादु बढ़ावइ ? (पा० ७२)

बढ़ावन–१ बढ़ाना, २ बढ़ानेवाला। उ० २ बिमल बिबेक बिराग बढ़ावन। (मा०१।४३।३) बढ़ावनो–बढ़ाना, अधिक करना। उ० निपट बली सों बादि बैर को बढ़ावनो। (क०५।१) बढ़ियार–बढ़ने पर, वृद्धि पाने पर। उ० बिगत मलिन मति, मलिन जल, सुरसरिहु बढ़ियारि। (दो० ४४८)

बढ़ैया–बढ़ानेवाला। उ० खाल को कढ़ैया सो बढ़ैया उर साल को। (क० ७।१२४)

बढ़ोइ–बढ़ा ही, बढ़ा ही था। उ० भवनि कटुबानी कुटिल की क्रोध विंध्य बढ़ोइ। (गी० २।५)

बणिक–(सं० वणिक)–व्यापार करनेवाला, बनिया।

बत–(सं० वार्त्ता)–बात, बोली, वचन। उ० अब जनि बत बढ़ाव खल करही। (मा० ६।३०।१) बतबढ़ाव–बातचीत को बढ़ाना, विवाद। उ० दे० 'बत'।

बतकही–बातचीत, बोल चाल, बात। उ० करत बतकही अनुज सन मन सियरूप लोभान। (मा० १।२३१)

बताई–(सं०वार्त्ता)१ बतलाकर,कहकर,समझाकर,२ बतलायी, कही। बतायो–बतलाया, जताया, सूचित किया। उ० बूझत 'चित्रकूट कहँ' जेहि तेहि मुनि बालकनि बतायो। (गी० २।६८) बतावत–बतलाता है, ज्ञात कराता है।

बतास–(सं० वातास्र)–१ एक रोग, गठिया, २ हवा, पवन, ३ एक मिठाई।

बतासा–दे०'बतास'। उ०२ कछु दिन भोजनु बारि बतासा। (मा० १।७४।३)

बतिआ–(सं० वर्तिका)–छोटा फल, थोड़े दिन का फल, जई। उ० इहाँ कुम्हड़ बतिआ कोउ नाहीं। (मा० १। २७३।२)

बतियाँ–(सं० वार्त्ता)–बातें। उ० सुख पाइहैं कान सुने बतियाँ। (क०२।२३) बतिया–(सं० वार्त्ता)–बातचीत, बात। उ० बतिया के सुघरि मलिनिया सुंदर गातहि हो। (रा० ७)

बत्तिस–(सं० द्वात्रिंशत्, प्रा० बत्तीसा)–तीस और दो। उ० सुरत पवन सुत बत्तिस भयऊ। (मा० ५।२।४)

बत्स (१)–(सं० वत्स)–१ बछड़ा, २ प्रिय, प्यारा, ३ बच्चा, ४ वत्सासुर, ५ छाती। बत्सपद–(सं०वत्सपद)–बछड़े के खुर का निशान। उ० जो बछु कहिय करिय भवसागर तरिय वत्सपद जैसे। (वि० ११८)

बत्स (२)–(सं० वत्सर)–वर्ष।

बत्सर–(सं० वत्सर)–वर्ष, साल।

बदति–कहते हैं। उ० इति बेद बदति न दंतकथा। (मा० ६।१११।८) बद (१)–(सं० वद्)–१ कहो, बोलो, २ कहते हैं। उ० १ मोसन भिरिहि कवन जोधा बद। (मा० ६।२३।१) २ बेद काल पूरन सदा बद, बेद पुरान। (त्रि० १०७) बदत–कहता है, बोलता है। उ० भद्रसिंधु दीनबंधु बेद बदत र। (वि० ७४) बदति–(सं० वद्)–१ बोलती, कहती, २ कहती है। उ० १ रोदति बदति बहु भाँति करुना करत संकर पहिं गईं। (मा० १।८७। छं० १) बदहिं–कहते हैं बखानते हैं। उ० बंदी मागध सूत गन बिरुद बदहिं मतिधीर। (मा० १।२६२) बदहि–१ कहिए, बतलाइए, २ कहता है। उ० १ इह महुँ रावन तैं कवन सत्य बदहि तजि माख। (मा० ६।२४) बदौं–(सं० वद्)–१ कहता हूँ, २ मानता हूँ। उ० १ प्रेम बदौं प्रह्लादहि को जिन पाहन तें परमेस्वर काढ़े। (क० ७।१२७)

बद (२) (फ़ा०)–बुरा, नीच, खराब।

बदन (१)–(फ़ा०) शरीर, देह।

बदन (२)–(सं० वदन)–मुख, मुँह। उ० मकरी ज्यों पकरि कै बदन बिदारिए। (ह०२२) मु० बदन फेरे–मुख मोड़ने पर, अप्रसन्न होने पर। उ० जानकी रमन मेरे! रावरे बदन फेरे। (क० ७।७८) बदननि–बदन (मुँह) का बहुवचन। उ० बदननि बिधु निदरे हैं। (गी० २।२५)

बदनि–मुखवाली। उ० पर्व शर्वरीश-बदनि। (वि० १६) बदनीं–मुखवाली स्त्रियाँ। उ० बिधु बदनीं मृग सावक नयनीं। (मा० २।८।४)

बदनु–दे० 'बदन'। उ० निरखि बदनु कहि भूप रजाई। (मा० २।३६।४)

बदर–(सं० बदरि)–१ बेर का पौदा, २ बेर का फल। उ० २ बिस्व बदर जिमि तुम्हरें हाथा। (मा० २। १२५।४)

बदरि–(सं०)–बेर का पेड़ या फूल।

बदरिकाश्रम–नर नारायण के तपस्या का प्रसिद्ध स्थान जो चार प्रसिद्ध धामों में है। उ० पुन्यवन शैल सरि बदरिका श्रम सदाऽसीन पद्मासन एक रूप। (वि० ६०)

बदरी–दे० 'बदरि'। उ० बदरीबन कहुँ सो गई, प्रभु अग्या धरि सीस। (मा० ४।२५) बदरीबन–(सं०बदरि+वन)–बदरिकाश्रम। बेर के पेड़ों के आधिक्य के कारण उसका यह नाम पड़ा है। उ० बदरीबन कहुँ सो गई प्रभु अग्या धरि सीस। (मा० ४।२५)

बदलि–(अर० बदल)–बदलकर, एक के बदले दूसरी देकर या लेकर।

बदली (१)–(सं० वारिद)–मेघ, बादल।

बदली (२)–दे० 'बदरि'। उ० कदली बदली बिटप गति, पेखहु पनस रसाल। (दो० २५७)

बदलें–(अर० बदल) बदले में। उ० काँच किरिच बदलें ते लेहीं। (मा० ७।१२१।६)

बदि–दे० 'बदि (२)'। उ० १ जौं हम निदरहिं बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ। (मा० १।२८३)

बदी (१)–(?)–कृष्ण पक्ष, अँधेरा पाख।

बदी (२)–(फ़ा०)–बुराई, अपकार।

बद्ध–(सं०)–बँधा हुआ, जकड़ा हुआ, गुथा हुआ, हद के भीतर रक्खा या किया हुआ। उ० १ बद्ध-बारिधि-सेतु, अमर मंगल हेतु। (वि० २५)

बध–(सं०)–मारना, हत्या, हनन। उ० निसिचर बध मैं होय सनाथा। (मा० १।२०७।५)

बधउँ–१ मारता हूँ, २ मारूँ। उ० १ बालकु बोलि बधउँ नहिं तोही। (मा० १।२७२।३) बधब–बध करेंगे, मारेंगे, मारूँगा। उ० तेहि बधब हम निज पानि। (मा० ३।२०।३) बधि–१ मारकर, हत्याकर, २ मारनेवाले। उ० १ बालि-बलशालि बधि, करन-सुग्रीव राजा। (वि० ४६) २ जयति मद मोह कुवेष बधि। (वि० ४१) बधिहि–बध करेगा। उ० निज पानि सर सधानि सो मोहि बधिहि सुख सागर हरी। (मा० ३।२६। छं० १) बधी–(सं० वध)–मार डाली। उ०बधी ताड़का, राम जानि सब लायक। (जा० ४०) बधें–दे० 'बधे'। उ० २ बधे पापु अपकीरति हारें। (मा० १।१०३।४) बधे–१ मारे, २ मार डालने पर। बधउ–मार डाला, वध किया। उ०

जेहि अघ बधेउ व्याध जिमि बाली। (मा० ३।२६।३)
बधाई-(सं० वर्द्धन)-१ मंगल के अवसर गाना-बजाना, मंगलाचार, २ किसी शुभ अवसर पर आनंद प्रकट करने वाला वचन या संदेश, ३ वृद्धि, बढ़ती। उ० १ रघुबर जनम अनंद बधाई। (मा० १।१७०।४)
बधाए-दे० 'बधाइ'। उ० १ नित नव मंगल मोद बधाए। (मा० २।१।१)
बधाय-दे० 'बधाई'। उ० १ दई दीनहिं दादि सो सुनि सुजन-सदन बधाय। (वि० २२०)
बधाव-बधाइ के बाजे, मंगल वाद्य। उ० सुनि पुर भयउ अनंद बधाव बजावहिं। (जा० १३२) बधावन-बधाइ, बधाई के गाज-बाजे। उ० गावहिं गीत सुवासिनि, बाज बधावन। (जा० १२७) बधावने-दे० 'बधावन'। उ० अनुदिन अवध बधावने नित नव मंगल मोद। (दो० ११८)
बधावनो-बधाई के बाजे। उ० आयो कुल मंगन, बधावनो बजायो सुनि। (क० ७।७३)
बधावा-मंगल या बधाइ के बाजे। उ० घर घर उत्सव बाज बधावा। (मा० १।१७२।२)
बधिक-(सं० बधक)-१ हत्यारा, जल्लाद, बहेलिया, कसाई, २ वाल्मीकि, ३ निषाद राज। उ० १ 'हा धुनि' खगी लाज पिंजरी महँ राखि हिये बड़े बधिक हठि मौन। (गी० ४।२०) २ विप्र बधिक गज, गीध कोटि खल कौन के पेट समाने। (वि० २३६) ३ बिप्रतिय, नृग बधिक के दुख दोष दारुन दरन। (वि० २१८)
बधिका-दे० 'बधिक'। उ० १ होउ नाथ अघ खग गन बधिका। (मा० ३।४२।४)
बधिर-(सं०)-बहरा, जो न सुने। उ० बिकल बिधि बधिर दिसि बिदिसि झाकी। (क० ६।४४)
बधु-दे० 'बधू'। उ० सखि ! यहि मग जुग पथिक मनोहर, बधु बिधु-बदनि समेत सिधाए। (गी० २।२५)
बधुन्ह-(सं० बधू)-बहुओं को। उ० सुंदर बधुन्ह सासु लै सोई। (मा० १।३५८।२) बधू-(सं० बधू)-१ बहू, पतोहू, २ जवान स्त्री, ३ पत्नी, ४ द्रौपदी। उ० १ बधू लरिकिनी पर घर आई। (मा० १।३५५।४) ४ सिथिल-सनेह मुदित मन ही मन बसन बीच बिच बधू बिराजी। (कृ० ६१)
बधूटिन्ह-बहुओं, स्त्रियाँ। उ० सहित बधूटिन्ह कुअँर सब तब आए पितु पास। (मा० १।३२७) बधूटीं-बधूटियाँ, नई स्त्रियाँ। उ० भइ मुदित सब ग्राम बधूटीं। (मा० २।११७।४) बधूटी-(सं० बधू)-बधू स्त्री, नवविवाहिता स्त्री।
बधैया-दे० 'बधाई'। मंगल या आनंद के गीत या बाजे आदि। उ० भूपति पुन्य पयोधि उमँग घर घर आनंद बधैया। (गी० १।६)
बध्यो-मारा मार डाला। उ० बध्यो बधिक परयो पुन्य जल, उलटि उठाइ चोंच। (दो० ३०२)
बन (१)-(सं० वन)-१ जंगल, २ समूह, ३ पानी, जल, ४ बगीचा, उपवन, ५ कपास का पौदा। उ० १ सो क्यों कटत सुकुठ-नख तें जो पै बिटप पुष्ट अघ-बन के। (वि० ८६) ३ बालचरित बहु बधु के बनज बिपुल बहु रंग। (मा० १।४०) ४ सुजन सुतरु बन ऊख सम खल टंकिका रूखान। (दो० ३४२) बनहिं-बन को। बनहि-बन को। उ० चलिहउँ बनहि बहुरि पग लागी। (मा० २।६६।२) बनहीं-दे० 'बनहि'। बनहु (१)-बन में भी। उ० राम लषन बिजयी भए बनहु गरीब निवाज। (दो० ४४१)
बन (२)-(सं० बणन) बनकर। बनइ-(सं० वर्णन, प्रा० वराअन)-१ बनता है, बनती है, २ बनता। उ० १ ससुझत बनइ न जाइ बखानी। (मा० ७।११७।१) २ भभरे, बनइ न रहत न बनइ परातहि। (पा० ११५)
बनत-१ रचना, बनावट, २ बनता है, बनता। उ० २ करत बिचारु न बनत बनावा। (मा० १।४४।१) बनहु (२)-(सं० बणन)-बनो। बना-१ बन गया, सिद्ध हो गया, २ बना हुआ, सिद्ध, तैयार, ३ दूल्हा, बर, ४ उपस्थित, मौजूद। उ० ४ बना आइ असमंजस आजू। (मा० १।१६७।३) बनि-१ बनकर, सजकर, २ पूर्ण, सिद्ध, ३ मज़दूरी, ४ बन, हो, समय हो। उ० ३ आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी। (मा० २।१०२।३) ४ बहुत नात रघुनाथ तोहिं मोहिं अब न तजे बनि आवै। (वि० ११३) बनिहि-बनेगी, सुधरेगी। उ० तुलसिदास इंद्रिय संभव दुख हरे बनिहि प्रभु तोरे। (वि० ११५) बनिहैं-सुधरेंगी, बनेंगी। उ० ज्यों-त्यों तुलसिदास कोसलपति अपना यहि पर बनिहैं। (वि० ९५) बनिहै-बनेगी। उ० शुभ दयालु बनिहै दिए बलि, बिलंब न कीजिए जात गलानि गरयो है। (वि० २६७) बनी-१ मज़दूरी, २ सुन्दर, सजी, बनी-ठनी, ३ बधू, दुलहिन, ४ बनी है सुन्दर लग रही है, बिराज मान है। उ० ४ हिम गिरि सृंग बनी जनु मयना। (मा० १।३२४।२) बने-१ बने हैं, शोभित हैं, २ सजे हुए, बने-ठने, ३ बन गए। उ० १ आगें रासु ३ खलनु बने पाहें। (मा० २।१२३।१) २ बने बराती न जाहीं। (मा० १।३२८।२) बनै-१ बन, बनती है, बनता है, २ सुधरती है, ३ बन पड़ती है। उ० १ तुलसी कहै न बनै सहे ही बनैगी सब। (क० ७।१२५) ३ बाहर भीतर भीर न बनै बखानत। (जा० १४) बनैगी-सुधरेगी, ठीक होगी। उ० दे० 'बनै'। बन्यो-१ बना, २ बना हुआ, सँवारा। उ० १ देखो देखो बन बन्यो आजु उमाकंत। (वि० १४)
बनचर-(सं० वनचर)-१ बन में चरने या विचरनेवाला, बनवासी, २ मछली। उ० १ लइ आए बनचर बिपुल भरि भरि काँवरि भार। (मा० २।२७८) २ बनचर-ध्वज कोटि लावन्यरासी। (वि० ५४)
बनचारी-(सं० वनचारिन्)-१ बन में रहनेवाले, विचरण करनेवाले या चरनेवाले, २ बंदर, मृग आदि जंगली जानवर, ३ जंगली लोग, कोल-भील। उ० १ सुरसर सुभग बनज बनचारी। (मा० २।६०।३) ३ हिंसारत निषाद तामस बपु पसु समान बनचारी। (वि० १६६)
बनज-(सं० वनज)-१ कमल, २ पानी में उत्पन्न होने वाले जोंक आदि कीड़े या सेवार आदि वनस्पति, ३ जो जंगल में उत्पन्न हो। उ० १ सुरसर सुभग बनज बन चारी। (मा० २।६०।३)

बनद-(स० वनद)-बादल। उ० बनज-लोचन बनज नाभ बनदाभ-बपु। (वि० ४४)

बनधातु-(स०) स्वयं उत्पन्न वृक्षों के पुष्पों से बनी माला। उ० मोर चदा चारु सिर मञ्जु गुञ्जा पुञ्ज धरे बनि बन धातु तन ओढ़े पीतपट हैं। (कृ० २०)

बननिधि-(स० वननिधि)-समुद्र। उ० बाँध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस। (मा० ६।५)

बनपट-(स० वनपट)-वल्कल के वस्त्र। उ० बन-पट कसे कटि, तून तीर धनु धरे। (गी० २।३०)

बनपाल-बन के पालक या रक्षक। उ० माली मेघमाल बन पाल विकराल भट। (क० ५।२)

बनबाहन-(स० वन+वाहन)-पानी की सवारी। नाव, नौका। उ० जय वाहन मे बनबाहन से। (क० ६।६)

बनमाल-(स० वनमाल)-तुलसी, कुंद, मदार, पारिजात और कमल, इन पाँच के पुष्पों से बनी माला। उ० मृदुल बनमाल उर भ्राजमान। (वि० ५१)

बनमाला-दे० 'बनमाल'।

बनरन्ह-बंदरों की। उ० देखहु बनरन्ह केरि ढिठाई। (मा० ६।४०।१)

बनरा (१)-(स० वर्णन, हि० बनना)-दूल्हा, वर।

बनरा (२)-(सं० वानर)-बंदर, मरकट। उ० जय वाहन मे बनबाहन से, उतरे बनरा 'जयराम' रटे। (क० ६।६)

बनरुह-(स० वनरुह)-कमल। उ० फेरत चाप बिसिष बन रुह-कर। (गी० ६।१६)

बनसी-(स० वंशी)-१ बाँसुरी, २ मछली पकड़ने का एक डंडा जिसमें एक रस्सी बँधी होती है। रस्सी के अंत में एक लोहे का काँटा लगा रहता है।

बनाइ-१ भली प्रकार, अच्छी तरह, २ सजाकर, बना कर। उ० १ कसे हैं बनाइ, नीके राजत निषंग हैं। (क० २।१४) २ प्रभु सों बनाइ कहौं जीह जरि जाउ सो। (वि १८२) बनाइन्हि-बनाई, ठीक कीं। उ० तोरन कलस चँवर धुज विविध बनाइन्हि। (पा० १०) बनाई-१ रची, तैयार की, बनी, २ बनाकर, ३ अच्छी तरह। उ० १ जहाँ स्वयंवर भूमि बनाई। (मा० १।१३३।२) ३ अपने अनल प्रकास बनाई। (मा० ७।११७।७) बनाउ-१ बनावट, शृंगार, २ बनाओ। उ० १ सात दिवस भए साजत सकल बनाउ। (ब० २०) बनाए-१ निर्माण किया, बनाया, २ सँवारे, सुधारे, ३ सुधार कर, सँवार कर। उ० २ गृह आँगन चौहट गली बाजार बनाए। (गी० १।६) बनाव-१ शृंगार, सजावट, सजधज, २ तैयारी ३ बनाकर, सँभालकर, ४ तरकीब, युक्ति, तद बीर, ५ संयोग। उ०१ देखि बनाव सहित अगवाना। (मा० १।३०५।४) बनावइ-बनाता है। बनावत-बनाता है, सुधारता है सजाता है। बनावन-१ बनाने के लिए, २ सजाने के लिए। उ० २ चहहु बनावन बेगि बजारू। (मा० २।६।४) बनावहिं-१ सजाते हैं, २ तैयार करते हैं। उ० १ बाट बाट पुर द्वार बजार बनावहिं। (जा० २०५) बनावहि-बनाता है, तैयार करता है। उ० जात रूप मति जुगति रुचिर मनि रचि रचि हार बनावहिं। (वि० २३७) बनावा-१ बनाव, सजावट, २ तैयारी, ३ बनाया, ४ तदबीर, तरकीब, ५ योग, संयोग। उ० ४ करत बिचारु न बनत बनावा। (मा० १।४६।१) बनावैं-१ बनाने, तैयार करने, २ सजाने। उ० १ पटतर जोग बनावैं लागा। (मा० २।१२०।३) बनैहौं-बनाऊँगी, सजाऊँगी। उ० बाल बिभूषन-बसन मनोहर अंगनि बिरचि बनैहौं। (गी० १।८)

बनिक-दे० 'वणिक'। उ० भयउ बिकल बड़ बनिक समाजू। (मा० २।८६।२)

बनिकि-दे० 'बनिक'।

बनिज-(स० वाणिज्य)-व्यापार, बनिजई। उ० खेती, बनि बिद्या बनिज सेवा सिलिप सुकाज। (दो० १८४)

बनितनि-(स० वनिता)-स्त्रियाँ। उ० सुखमा निरखि ग्राम बनितनि के। (गी० २।१५) बनिता-दे० 'वनिता'। उ० १ बनिता बनी स्यामल गौर के बीच। (क० २।१८)

बपत-(स० वप्)-१ बोता है, २ बोते हुए। उ० २ कहु केहि लहे भल रसाल बबुर बीज बपत। (वि० १३०)

बपु-(स० वपु)-शरीर, देह। उ० सकुचहिं बसन विभूषन परसत जो बपु। (पा० ३६)

बपुरा-(?)-१ बेचारा, असहाय, २ दरिद्र, कंगाल। उ० २ सिव बिरंचि कहुँ मोहइ को है बपुरा आन। (मा० ७। ६२ ख) बपुरे-बेचारे। उ० काह कीट बपुरे नरनारी। (मा० २।२६।२)

बपुष-दे० 'बपु'। उ० बपुष-बारिद बरषि छबि-जल हरहु लोचन-प्यास। (गी० १।३८)

बबा-(तुर० बाबा)-१ पिता, बाप, २ दादा, पितामह। उ० १ तुलसी सुखी निसोच राज ज्यों बालक माय बबा के। (वि० २२४) बबै (१)-बाबा-ने। उ० बबै ब्याह की बात चलाइ। (कृ० १३)

बबुर-(स० बब्बूरः)-बबूल का वृक्ष। उ० नाम प्रसाद लहत रसाल फल अब हौं बबुर बहेरे। (वि० २२७) बबूरहि-बबूल में। उ० जो फलु चहिअ सुरतरुहि सो बरबस बबू रहि लागइ। (मा० १।३६। छं० १)

बबै (२)-(स० वपन)-बोये, बीज डाले।

बमत-(स० वमन)-वमन करते हुए, वमन करता है। उ० रुधिर बमत धरनीं ढनमनी। (मा० ५।५।२)

बमन-दे० 'वमन'। उ० १ तजउ बमन जिमि जन बड़ भागी। (मा० २।३२४।४) ३ प्रलय पावक-महाज्वाल माला-बमन। (वि० ३८)

बय-दे० 'वय'। उ० बय किसोर कौसिक मुनि साथा। (मा० १।२६१।३)

बयऊ-बो दिया। उ० मुद्द कहुँ बिपति बीजु बिधि बयऊ। (मा० २।१४।२) बये (१)-(स० वपन)-१ बोए, बीज डाला, २ बोने का। उ०२ ऊसर बीज बये फल जथा। (मा० ५।५८।२) बयो-(स० वपन)-बोया, बीज डाला। उ० बयो लुनियत सब याही दाढ़ीजार को। (क० ५।१२)

बयदेही-(सं० वैदेही)-सीता, वैदेही। उ० बरथ का बोझे बयदही बरनाज के। (क० १।८)

बयन-(स० वयन)-वाणी, बोली, बात।

बयना-दे० 'बयन'। उ० कहि बिमि मर्कहि तिन्हहि महि बयना। (मा० ७।८८।१)

बयनीं–बोलनेवाली, बोलनेवालियों का समूह। उ० करहिं गान फल कोकिल बयनीं। (मा० १।२८६।१) बयनी–बोलनेवाली।
बयर–दे० 'बैर'। उ० लेत केहरि को बयर ज्यों भेक हनि गोमाय। (वि० २२०)
बयरु–दे० 'बैर'। उ० तेहिं खल पाछिल बयरु सँभारा। (मा० १।१७०।४)
बयस–(सं० वय)–आयु, अवस्था। उ० स्याम गौर मृदु बयस किसोर। (मा० १।२१२।३)
बयारि–(सं० वायु)–हवा, पवन। उ० लागिहि तात बयारि न मोही। (मा० २।६७।३)
बयारी–दे० 'बयारि'। उ० सानुकूल बह त्रिबिध बयारी। (मा० १।३०३।२)
बये (२)–(सं० वचन)–बोले, कहे, बखाने।
बये (३)–(सं० वय)–उम्र बिताई।
बर (१)–(सं० वर)–१ वरदान, आशीर्वाद, २ स्वामी, दूलहा, ३ श्रेष्ठ, बड़ा बड़ा। उ० १ गननायक बरदायक देवा। (मा० १।२२७।४) २ बर अनुहारि बरात न भाई। (मा० १।९३।१) ३ बर सुषमा लही। (मा० ७।२।छं०१) बरतर–(सं० वरतर)–अधिक, श्रेष्ठ। बरहिं–दुलहे को। उ० मंगल आरति सालि बरहिं परिछन चलीं। (जा० १४८) बरहि (१)–दुलहे को। उ० बरहि पूजि नृप दीन्ह सुभग सिंहासन। (जा० १२७)
बर (२)–(सं० वट)–बरगद, बड़।
बर (३)–(सं० ज्वल)–१ जलकर, २ जलना। बरत (१)–(सं० ज्वल)–१ बलता हुआ, जलता हुआ, गरम, २ बलते हैं, जलते हैं। उ० १ बार बार बर बारिज लोचन भरि-भरि बरत बारि उर ढरति। (गी० २।१६) बरति (१)–जलती है। उ० बाके उए बरति अधिक अँग-अँग दव। (कृ० २१) बरी–(सं० ज्वल)–बल उठी, जली।
बर (४)–(सं० बल)–ज़ोर, शक्ति। उ० बर करि कृपासिंधु उर लाए। (मा० ७।२।४)
बर (५)–(सं० वर, हिं० बरु)–बरन्, बल्कि।
बरइ–(सं० वरण)–ब्याहेगा। उ० जो एहि बरइ अमर सोइ होई। (मा० १।१३१।२) बरई (१) (सं० वरण)–वरेगा, विवाह करेगा। उ० लछिमन कहा तोहि सो बरई। (मा० २।१७।६) बरउँ–१ वरूँ, विवाह करूँ। उ० १ बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी। (मा० १।८१।३) बरवे–ब्याह करने, ब्याहने। उ० बरबे को बोले बयदेही बरकाज के। (क० १।८) बरहि (२)–वर, वरेगा। बरि (१)–१ ब्याह कर, २ बचकर। बरिय–वरो, विवाह करो। उ० कहा मोर मन धरि न बरिय बर बौरेहि। (पा० ६१) बरिहि–वरेगी, ब्याहेगी। उ० मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरें। (मा० १।१३२।३) बरीं–ब्याह किया, ब्याहा। उ० जीति बरीं निज बाहु बल बहु सुन्दर बर नारि। (मा० १।१८२ ख) बरी (१)–(सं० वरण)–वरा, ब्याहा। बरे (१)–१ ब्याह करे, २ निमंत्रण दे, ३ नियुक्त करे, नियुक्त किया। उ० २ बरे सुरत सत सहस बर बिप्र कुटुंब समेत। (मा० १।१७२) ३ सुवन-सोक संतोष सुमित्रहि रघुपति-भगति बरे हैं। (गी० ६।१३)
बरेहु–वरा, ब्याहा। उ० जेहि दीन्ह अस उपदेस बरेहु कलेस करि बर बावरो। (पा० ८४) बरै–वरे, विवाह करे। उ० जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी। (मा० १।१३१।४)
बरई (२)–(सं० वरुजीवी)–एक जाति जो पान का कारबार करती है।
बरक्खत–(सं० वर्षा)–बरसते हैं। उ० कतहुँ बिटप भूधर उपारि परसेन बरक्खत। (क० ६।४७)
बरखइ–बरसता है बरसे। उ० कोटिन्ह दीन्हेउ दान मेघ जनु बरखइ हो। (रा० १६)
बरगद–(सं० वट)–१ वट वृक्ष, २ बरगद का फल। उ० २ बेधे बरगद से बनाइ बानबान हैं। (ह० ३६)
बरजउँ–(सं० वर्जन)–बरजता हूँ, मना करता हूँ। उ० सातें मैं तोहि बरजउँ राजा। (मा० १।१६६।१) बरजत–बरजता है, मना करता है। बरजति–मना करती है। उ० गरजति कहा तरजनिन्ह तरजति बरजति सैन नयन के कोए। (कृ० ११) बरजहु–रोको, रोकना, रोक देना। उ० तौ मोहि बरजहु भय बिसराई। (मा० ७।४३।३) बरजि–मनाकर, मना करके, निषेध करके। उ० सरुष बरजि तरजिए तरजनी, कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जइ है। (वि० १३६) बरजी–मना किया, निवारण किया। उ० जब नयनन प्रीति ठई ठग स्याम सों स्यानी सखी हठि हौं बरजी। (क० ७।१३३) बरजे–मना किया। उ० प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी। (मा० २।६६।२) बरजें–रोकें, मना किए। उ० तुलसिदास बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजें। (वि० ८९) बरज्यो–रोका, मना किया। उ० सुतहिं दुखवत बिधि न बरज्यो काल के घर जात। (वि० २१९)
बरजित–(सं० वर्जित)–१ मना किया हुआ, छोड़ा हुआ, २ छोड़कर, अलग। उ० २ जो जप जाप जोग-ब्रत-बरजित केवल प्रेम न चहते। (वि० ९७)
बरजोर–(सं० बल + फा० ज़ोर)–प्रबल, जबरदस्त, बलवान, जोरावर। उ० अनरजन, अरिगन-गजन, मुख भंजन खल बरजोर को। (वि० ३१)
बरजोरा–जबरदस्ती। दे० 'बरजोर'। उ० अति कठिन करहिं बरजोरा। (वि० १२५)
बरजोरी–जबरदस्ती, जोरावरी।
बरत (२)–(सं० वट)–बटते हैं, बरते हैं।
बरत (३)–(सं० व्रत)–१ व्रत, उपवास, २ प्रण, प्रतिज्ञा। उ० १ सौं कपि कहत कृपान-धार-मग चलि आचरत बरत को? (गी० ६।१२)
बरतमान–दे० 'वर्तमान'। उपस्थित। उ० सा बिधि रघुबर नाम महँ बरतमान गुन तीन। (स० १४५)
बरति (२)–(सं० वर्तन)–व्यवहार करके। उ० जनम पत्रिका बरति के देखहु मनहिं बिचारि। (दो० ३९८)
बरतेउ–बरताव किया। उ० बामदेव सन काम बाम होइ बरतेउ। (पा० २६)
बरतिका–(सं० वर्तिका)–बत्ती।
बरतोर–(सं० बाल + त्रुट)–बाल टूटने से निकलनेवाला फोड़ा या घाव। उ० सातें तनु पोषियत घोर बरतोर मिस। (ह० ४१)

बरतोरू-दे० 'बरतोर'। उ० जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू। (मा० २।२७।२)

बरद (१)-(सं० वरद)-वर देनेवाला, वरदाता। बरदा (१)-(सं० वरदा)-वर देनेवाली। उ० सीस बसै बरदा, बरदानि, चढ्यो बरदा, घरन्यो बरदा है। (क० ७।१५५)

बरद (२)-(सं० बलीवर्द)-बैल। उ० बावरे बढे की रीझ बाहन-बरद की। (क० ७।१५८)

बरदा (२)-(सं० बलीवर्द)-बैल।

बरदा (३)-(?) गंगा।

बरदान-(सं० वरदान)-वर, आशीर्वाद।

बरदाना-दे० 'बरदान'। उ० सबहि मदि मागहिं बरदाना। (मा० १।३५१।१)

बरदानि-वर देनेवाला। उ० सीस बसै बरदा, बरदानि, चढ्यो बरदा, घरन्यो बरदा है। (क० ७।१५५)

बरदायक-वर देनेवाला। उ० ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बरदानि। (मा० १।२५)

बरध-(सं० बलीवर्द)-बैल, बरद।

बरन (१)-(सं० वर्ण)-१ रंग, २ अक्षर, ३ जाति, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण। उ० १ रूप के निधान, धन दामिनी-बरन हैं। (क० २।१७) ४ थापे मुनि सुर साधु आस्रम बरन। (वि० २४८) बरन बरन-तरह तरह के। उ० पहिरें बरन-बरन बर चीरा। (मा० १।३१८।१)

बरन (२)-(सं० वर्णन)-१ वर्णन करके, २ वर्णन। उ० २ केहि विधि बरन करौं। (पा० २७) बरनइ-वर्णन करते हैं। उ० सहस बदन बरनइ पर दोषा। (मा० १।४।४) बरनउँ-दे० 'बरनौं'। बरनत-वर्णन, वर्णन करते, कहते हुए। उ० राम सीय सनेह बरनत अगम सुकवि सकाहिं। (गी० ७।२६) बरनब-वर्णन करूँगा। उ० बरनब सोइ बर बारि अगाधा। (मा० १।३७।१) बरनहिं-वर्णन करते हैं। उ० सुर बार बार बरनहिं लँगूर। (गी० ५।१६) बरनहीं-वर्णन कर रहे हैं। उ० जस मता पहिं बरनहीं। (जा० १८०) बरनि-१ वर्णन करके, २ वर्णन किया, ३ वर्णन करते। उ० २ नगर सोहावन लागत बरनि न जातै हो। (रा० २) ३ दुसह दसा सो मो पै परति नहीं बरनि। (कृ० ३०) बरनिसि-वर्णन किया। उ० निसिचर कीस लराई बरनिसि विविध प्रकार। (मा० ७।६७ ख) बरनी-वर्णन की, कही, बखानी। उ० मनिति महेस बस्तु भलि बरनी। (मा० १।१०।२) बरनै-करे, बखाने। उ० को बरनै मुख एक। (वै० ३४) बरनौं-कहता हूँ, वर्णन कर रहा हूँ।

बरननिहार-वर्णन करनेवाला। उ० सकल अंग अनूप नहिं कोउ सुकवि बरननिहार। (गी० ७।८)

बरनसंकर-दे० 'वर्णसंकर'। उ० भए बरनसंकर कलि भिन्न सेतु सब लोग। (मा० ७।१०० क)

बरनित-वर्णित, भाषित।

बरबर-(?) बकवादी, बड़बड़िया। उ० भालि ' बिद्रा कर बढ़हि बेनि, बड़ बरबर। (पा० ६३)

बरबस-(सं० बल+वश)-बलपूर्वक, जबरदस्ती। उ०



बली बधु ताको जेहिं बिमोह-बस बैर-बीज बरबस बए। (गी० ५।३२)

बरम-(सं० वर्म)-कवच, ज़िरहबख्तर। उ० बसन बिनु बन, बरम बिनु रन, बच्यौ कठिन कुधाय। (गी० ७।३१)

बररे-दे० 'बर्रे'। उ० बररे बालकु एकु सुभाऊ। (मा० १।२७४।२)

बरष-(सं० वर्ष)-साल, वर्ष। उ० एहि बिधि बीते बरष षट सहस बारि आहार। (मा० १।१४४) बरषासन-(सं० वर्ष+अशन)-वर्ष भर का भोजन। उ० गुर सन कहि बरषासन दीन्हे। (मा० २।८०।२)

बरषइ-बरसाता था। उ० बरषइ कबहुँ उपल बहु छारा। (मा० ६।५२।२) बरषत-१ बरसता है, बरसाता है, २ बरसते हुए। उ० १ बरषत करषत आपु जल, हरषत अरघनि भानु। (दो० ४५५) बरषतु-दे० 'बरसतु'। उ० अनुकूल देव मुनि फूल बरसत हैं। (मा० ६।४८) बरषहिं-१ बरसते हैं, २ बरसाते हैं। उ० २ देहिं असीस मुनीस सुमन बरषहिं सुर। (जा० १६३) बरषहु-बरसा दो। उ० गगन जाइ बरषहु पट भूषन। (मा० ६।११७।३) बरषि-बरस कर, पानी बरसा कर। उ० गरजि तरजि पाषान बरषि पवि प्रीति परखि जिय जानै। (वि० ६५) बरषे-१ बरसाये, २ बरसने से, ३ वर्षा से। उ० १ साधु सराहि सुमन सुर बरषे। (मा० २।२१०।४) बरषै-वृष्टि करे, बरसे। उ० पीत बसन सोभा बरषै। (वि० ६३)

बरषा-(सं० वर्षा)-बरसात, पानी बरसना। उ० बरषा को गोबर भयो। (दो० ७३)

बरस-(सं० वर्ष) साल, वर्ष।

बरसत-(सं० वर्षा)-१ बरसता है, २ बरसते हुए। बरसतु-बरसता, बरसाते।

बरह-(?)-१ गोचर भूमि, २ खेतों में पानी आने की नाली।

बरहि (३)-(सं० बर्हि)-मोर, मयूर। उ० जनु बर बरहि नचाव। (मा० १।३१६)

बरहि (४)-(सं० वारण)-बराकर, अलग कर।

बरहा-(?)-१ बरहे में, पानी की नाली में, २ गोचर भूमि में। उ० १ सो थाक्यो बरहा एकहि तक देखत इनकी सहज सिंचाई। (कृ० ५१)

बराइ-(सं० वारण)-बराकर, चुनकर। उ० तुलसी रायन बाग-फल, खात बराइ बराइ। (प्रा० ५।३।७) बराई-१ छाँटी, चुन कर रक्खा, २ चुनकर, छाँटकर, ३ बचाकर, ४ हटाकर। ३ करि केहरि कपि बाघ बराइ। (मा० २।१३६।३) बराएँ-बचाए, बचाते हुए। उ० सीय राम पद अंक बराएँ। (मा० २।१२३।३) बराय (१)-(सं० वारण)-१ बचाकर, २ हटाकर, ३ छाँटकर, चुनकर। उ० ३ कीने देव बराय बिरद-हित। (वि० १०१) बरायो-छाँटा हुआ, चुना हुआ। उ० महाबीर बिदित बरायो रघुबीर का। (ह० १०)

बराक-(सं० वराक) बेचारा, तुच्छ, गरीब। उ० चले दस दिसि रिस भरि धर धरु कहि, का बराक मनुजाद। (गी० ५।२२) बराकी-बेचारी, तुच्छ। उ० महाबीर बाँकुरे बराकी बाहुपीर क्यों न? (ह० २१)

बयनीं-बोलनेवाली, बोलनेवालियों का समूह। उ० करहिं गान कल कोकिल बयनीं। (मा० १।२८६।१) बयनी-बोलनेवाली।

बयर-दे० 'बैर'। उ० लेत केहरि को बयर ज्यों भेक हनि गोमाय। (वि० २२०)

बयरु-दे० 'बैर'। उ० तेहिं खल पाछिल बयरु सँभारा। (मा० १।१७०।४)

बयस-(स० वय)-आयु, अवस्था। उ० स्याम गौर मृदु बयस किसोर। (मा० १।२१२।३)

बयारि-(स० वायु)-हवा, पवन। उ० लागिहि तात बयारि न मोही। (मा० २।६७।३)

बयारी-दे० 'बयारि'। उ० सानुकूल बह त्रिबिध बयारी। (मा० १।३०३।२)

बये (२)-(स० वचन)-बोले, कहे, बखाने।

बये (३)-(स० वय)-उम्र बिताई।

बर (१)-(स० वर)-१ वरदान, आशीर्वाद, २ स्वामी, दूलहा, ३ श्रेष्ठ, बढ़ा चढ़ा। उ० १ गननायक बरदायक देवा। (मा० १।२४७।४) २ बर अनुहारि बरात न भाई। (मा० १।९३।१) ३ बर सुषमा लही। (मा० ७।२। छं०१) बरतर-(स० वरतर)-अधिक, श्रेष्ठ। बरहिं-दुलहे को। उ० मगल आरति सालि बरहिं परिछन चलीं। (जा० १४८) बरहिं (१)-दुलहे को। उ० बरहि पूजि नृप दीन्ह सुभग सिंहासन। (जा० १५७)

बर (२)-(स० वट)-बरगद, वट।

बर (३)-(स० ज्वल)-१ जलकर, २ जलना। बरत (१)-(स० ज्वल)-१ बलता हुआ, जलता हुआ, गरम, २ बलते हैं, जलते हैं। उ० १ बार बार बर बारिज लोचन भरि भरि बरत बारि उर ढरति। (गी० २।१३) बरति (१)-जलती है। उ० बाके उए बरति अधिक अँग अँग दव। (कृ० २६) बरी-(स० ज्वल)-बल उठी, जली।

बर (४)-(स० बल)-ज़ोर, शक्ति। उ० बर करि कृपासिंधु उर लाए। (मा० ७।५।४)

बर (५)-(स० वर, हिं० बरु)-बरन्, बल्कि।

बरइ-(स० वरण)-ब्याहेगा। उ० जो एहि बरइ अमर सोइ होइ। (मा० १।१३१।२) बरई (१) (स० वरण)-बरेगा, विवाह करेगा। उ० लछिमन कहा तोहि सो बरई। (मा० ३।१७।६) बरउँ-१ बरूँ, विवाह करूँ। उ० १ बरउँ संभु न त रहउँ कुमारी। (मा० १।८१।३) बरबे-ब्याह करने, ब्याहने। उ० बरबे को बोले बयदेही बरकाज के। (क० १।८) बरहि (२)-बर, बरेगा। बरि (१)-१ ब्याह कर, २ बधकर। बरिय-बरो, विवाह करो। उ० कहा मोर मन धरि न बरिय बर बौरेहि। (पा० ६१) बरिहि-बरेगी, ब्याहेगी। उ० मोहि तजि आनहि बरिहि न मोरें। (मा० १।१३३।३) बरीं-ब्याह किया, ब्याहा। उ० जीति बरीं निज बाहु बल बहु सुन्दर बर नारि। (मा० १।१८२ ख) बरी (१)-(स० वरण)-बरा, ब्याहा। बरे (१)-१ ब्याह करे, २ निमंत्रण दे, ३ नियुक्त करे, नियुक्त किया। उ० २ बरे तुरत सत सहस बर बिप्र कुटुंब समेत। (मा० १।१७२) ३ सुवन-सोक संतोष सुमित्रहि रघुपति-भगति बरे हैं। (गी० ६।१३) बरेहु-बरा, ब्याहा। उ० जेहि दीन्ह अस उपदेस बरेहु कलेस करि बर बावरो। (पा० ५७) बरै-बरे, विवाह करे। उ० जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी। (मा० १।१३१।४)

बरइ (२)-(स० वरुजीवी)-एक जाति जो पान का कारबार करती है।

बरक्खत-(स० वर्षा)-बरसते हैं। उ० कतहुँ बिटप भूधर उपारि परसेन बरक्खत। (क० ६।४७)

बरखइ-बरसता है, बरसे। उ० कोटिन्ह दीहेउ बान मेघ जनु बरखइ हो। (रा० १६)

बरगद-(स० वट)-१ वट वृक्ष, २ बरगद का फल। उ० २ बेधे बरगद से बनाइ बानवान हैं। (ह० ३६)

बरजउँ-(स० वर्जन)-बरजता हूँ, मना करता हूँ। उ० तातें मैं तोहि बरजउँ राजा। (मा० १।१६६।१) बरजत-बरजता है, मना करता है। बरजति-मना करती है। उ० गरजति कहा तरजनि तरजति बरजति सैन नयन के कोए। (कृ० ११) बरजहु-रोको, रोकना, रोक देना। उ० सो मोहि बरजहु भय बिसराई। (मा० ७।४३।३) बरजि-मनाकर, मना करके, निषेध करके। उ० सरुप बरजि तरजिए तरजनी, कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जई है। (वि० १३६) बरजी-मना किया, निवारण किया। उ० जब नयनन प्रीति ठई ठग स्याम सों स्यानी सखी हठि हौं बरजी। (क० ७।१३३) बरजे-मना किया। उ० प्रभु बरजे यह अनुचित जानी। (मा० २।१६१।२) बरजैं-रोकें, मना किए। उ० तुलसिदास बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजैं। (वि० ८६) बरज्यो-रोका, मना किया। उ० सुतहिं दुखवत बिधि न बरज्यो काल के घर जात। (वि० २१६)

बरजित-(स० वर्जित)-१ मना किया हुआ, छोड़ा हुआ, २ छोड़कर, अलग। उ० २ जो जप जाग जोग-ब्रत-बरजित केवल प्रेम न चहते। (वि० ९७)

बरजोर-(स० बल + फा० ज़ोर)-प्रबल, जबरदस्त, बलवान, ज़ोरावर। उ० अनरजन, अरिगन-गजन, मुख भजन खल बरजोर को। (वि० ३१)

बरजोरा-जबरदस्ती। दे० 'बरजोर'। उ० अति कठिन करहिं बरजोरा। (वि० १२५)

बरजोरी-जबरदस्ती, ज़ोरावरी।

बरत (२)-(स० वट)-बटते है, बरते हैं।

बरत (३)-(स० व्रत)-१ व्रत, उपवास, २ प्रण, प्रतिज्ञा। उ० १ सौं कपि कहत कृपान धार-मग चलि आवरत बरत को? (गी० ६।१२)

बरतमान-दे० 'वर्तमान'। उपस्थित। उ० सा बिधि रघुबर नाम महँ बरतमान गुन तीन। (स० १४५)

बरति (२)-(सं० वर्तन)-व्यवहार करके। उ० जनम-पत्रिका बरति के देखहु मनहिं बिचारि। (दो० १७८)

बरतेउ-बरताव किया। उ० बामदेव सन काम बाम होइ बरतेउ। (पा० २६)

बरतिका-(सं० वर्तिका)-बत्ती।

बरतोर-(सं० बाल + तुर)-बाल टूटने से निकलनेवाला फोड़ा या घाव। उ० तातें तनु पोषियत घोर बरतोर मिस। (ह० ३१)

बरतोरू-दे० 'बरतोर'। उ० जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू। (मा० २।२७।२)

बरद (१)-(सं० वरद)-वर देनेवाला, वरदाता। बरदा (१)-(सं० वरदा)-वर देनेवाली। उ० सीस बसै बरदा, बरदानि, चढ़यो बरदा, धरन्यो बरदा है। (क० ७।१५५)

बरद (२)-(सं० बलीवर्द)-बैल। उ० बावरो बड़े की रीझ बाहन-बरद की। (क० ७।१५८)

बरदा (२)-(सं० बलीवर्द)-बैल।

बरदा (३)-(?) गंगा।

बरदान-(सं० वरदान)-वर, आशीर्वाद।

बरदाना-दे० 'बरदान'। उ० सबहि मनि मागहिं बरदाना। (मा० १।३५।१)

बरदानि-वर देनेवाला। उ० सीस बसै बरदा, बरदानि, चढ़यो बरदा, धरन्यो बरदा है। (क० ७।१५५)

बरदायक-वर देनेवाला। उ० महा राम तें नामु बड़ बर दायक बरदानि। (मा० १।२५)

बरध-(सं० बलीवर्द)-बैल, बरद।

बरन (१)-(सं० वर्ण)-१ रंग, २ अक्षर, ३ जाति, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण। उ० १ रूप के निधान, धन दामिनी बरन हैं। (क० २।१७) ४ थापे मुनि सुर साधु आस्रम बरन। (वि० २४८) बरन बरन-तरह तरह के। उ० पहिरें बरन-बरन बर चीरा। (मा०१।३१८।१)

बरन (२)-(सं० वर्णन)-१ वर्णन करके, २ वर्णन। उ० २ केहि विधि बरन की। (पा० २७) बरनइ-वर्णन करते हैं। उ० सहस बदन बरनइ पर दोषा। (मा०१।४।४) बरनउँ-दे० 'बरनौं'। बरनत-वर्णत, वर्णन करते, कहते हुए। उ० राम सीय सनेह बरनत अगम सुकबि सकाहिं। (गी० ७।२६) बरनब-वर्णन करूँगा। उ० बरनब सोइ बर बारि अगाधा। (मा० १।३७।१) बरनहिं-वर्णन करते हैं। उ०सुर बार बार बरनहिं लँगूर। (गी० ५।१६) बरनहीं-वर्णन कर रहे हैं। उ० अस मता पहिं बरनहीं। (जा० १८०) बरनि-१ वर्णन करके, २ वर्णन किया, ३ वर्णन करते। उ० २ नगर सोहावन लागत बरनि न जाते हो। (रा० २) ३ दुसह दसा सो मो पै बरनि नहीं परनि। (कृ० ३०) बरनिसि-वर्णन किया। उ० निसिचर कीस लराई बरनिसि विविध प्रकार। (मा० ७।६७ ख) बरनी-वर्णन की, कही, बखानी। उ० भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी। (मा० १।१०।५) बरनै-कहे, बखाने। उ० को बरनै मुख एक। (वै० ३४) बरनौं-कहता हूँ, वर्णन कर रहा हूँ।

बरननिहार-वर्णन करनेवाला। उ० सकल अंग अनूप नहिं कोउ सुकवि बरननिहार। (गी० ७।८)

बरनसंकर-दे० 'वर्णसंकर'। उ० भए बरनसंकर कलि भिन्न सेतु सब लोग। (मा० ७।१०० क)

बरनित-वर्णित, भाषित।

बरबर-(?) बकवादी, बड़बड़िया। उ० जानि ? पिदा कर बहुरि बेगि, बड़ बरबर। (पा० ६६)

बरबस-(सं० बल+वश)-बलपूर्वक, जबरदस्ती। उ० बली बधु ताको जहि बिमोह-बस बैर-बीज बरबस बए। (गी० ५।३२)

बरम-(सं० वर्म)-कवच, जिरहबख्तर। उ० बसन बिनु बन, बरम बिनु रन, बच्यौ कठिन कुघाय। (गी०७।३१)

बररे-दे० 'बर्रे'। उ० बररे बालकु एकु सुभाऊ। (मा० १।२७६।२)

बरष-(सं० वर्ष)-साल, वर्ष। उ० एहि बिधि बीते बरष षट सहस बारि आहार। (मा० १।१४४) बरषासन-(सं० वर्ष+अशन)-वर्ष भर का भोजन। उ० गुर सन कहि बरषासन दीन्हे। (मा० २।८०।२)

बरषइ-बरसाता था। उ० बरषइ कबहुँ उपल बहु छारा। (मा० ६।५२।२) बरषत-१ बरसता है, बरसाता है, २ बरसते हुए। उ० १ बरषत करषत आपु जल, हरषत अरधनि भानु। (दो० ४५५) बरषतु-दे० 'बरसतु'। उ० अनुकूल देव मुनि फूल बरसत है। (मा० ६।५८) बरषहिं-१ बरसते हैं, २ बरसाते हैं। उ० २ देहिं असीस मुनीस सुमन बरषहिं सुर। (जा० १६३) बरषहु-बरसा दो। उ० गगन जाइ बरषहु पट भूषन। (मा० ६।११७।३) बरषि-बरस कर, पानी बरसा कर। उ०गरजि तरजि पाषान बरषि पबि प्रीति परखि जिय जानै। (वि० ६५) बरषे-१ बरसाये, २ बरसने से, ३ वर्षा से। उ० १ साधु सराहि सुमन सुर बरषे। (मा० २।२१०।४) बरषै-वृष्टि करे, बरसे। उ० पीत बसन सोभा बरषै। (वि० ६३)

बरषा-(सं० वर्षा)-बरखा, पानी बरसना। उ० बरषा को गोबर भयो। (दो० ७३)

बरस-(सं० वर्ष) साल, वर्ष।

बरसत-(सं० वर्षा)-१ बरसता है, २ बरसते हुए। बरसतु-बरसता, बरसाते।

बरह-(?)-१ गोचर भूमि, २ खेतों में पानी जाने की नाली।

बरहि (३)-(सं० बर्हि)-मोर, मयूर। उ० जनु बर बरहि नचाव। (मा० १।३१६)

बरहि (४)-(सं० वारण)-बराकर, अलग कर।

बरहयो-(?)-१ बरह में, पानी की नाली में, २ गोचर भूमि में। उ० १ सो धाक्यो बरहा एकहि तक देखत इनकी सहज सिंचाई। (कृ० ५६)

बराइ-(सं० वारण)-बराकर, चुनकर। उ० तुलसी रावन बाम फल, खात बराइ बराइ। (प्रा० ५।३।७) बराई-१ छाँटी, चुन कर रक्खा, २ चुनकर, छाँटकर, ३ बचाकर, ४ हटाकर। ३ करि कहरि कपि बाघ बराई। (मा० २।१३६।३) बराएँ-बचाए, बचाते हुए। उ० सींव राम पद अंक बराएँ। (मा० २।१२३।३) बराय (१)-(सं० वारण)-१ बचाकर, २ हटाकर, ३ छाँटकर, चुनकर। उ० ३ कीने देव बराय बिरद-हित। (वि० १०१) बरायो-छाँटा हुआ, चुना हुआ। उ० महाबीर बिदित बरायो रघुबीर को। (ह० १०)

बराक-(सं० वराक)-बेचारा, तुच्छ, गरीब। उ० चढ़े दस दिसि रिस भरि घर घर कहि, का बराक मनुजाद। (गी० ५।२२) बराकी-बेचारी, तुच्छ। उ० महाबीर बाँकुरे बराकी बाहुपीर क्यों न ? (ह०२१)

बराका–दे० 'बराक'।

बराट–दे० 'बराट'। उ० नाम प्रेम पारस हौं लालची बराट को। (क० ७।६६)

बरात–(सं० वरयात्रा)–विवाह में जानेवाले लोगों का समूह। बारात। उ० चढ़ि चढ़ि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात। (मा० १।२९९) बरातहि–बरात को। उ० सौ अगवान बरातहि आए। (मा० १।३०६।१)

बराता–दे० 'बरात'। उ० चढ़ि चढ़ि बाहन चले बराता। (मा० १।३०२।४)

बरातिन्ह–बरातियों को। उ० देखत देव सिहाहिं अनत बरातिन्ह। (जा० १४१) बराती–बारात में जानेवाले। उ० उमा महेस बियाह बराती। (मा० १।४०।४)

बराबरि–(फ़ा० बर)–बराबरी, तुल्यता, समानता। उ० तौकि बराबरि करत अयाना। (मा० १।२७७।१)

बराबरी–दे० 'बराबरि'।

बराय (२)–(सं० ज्वल)–जलाकर, बालकर। उ० मानिक दीप बराय बैठि तेहि आसन हो। (रा० ४)

बराय (३)–(सं० बल)–बलात, ज़बरदस्ती। उ० निगम अगम मूरति महेस-मति-जुबति बराय बरी। (गी० १।५२)

बरायन–(सं० वर+आयन)–लोहे का छल्ला जो ब्याह के समय दुलहे के हाथ में पहिनाया जाता है। उ० बिहँसत आउ लोहारिनि हाथ बरायन हो। (रा० ५)

बरासन–दे० 'बरासन'। उ० बैठि बरासन कहहिं पुराना। (मा० ७।१००।२)

बराह–(सं० वराह)–शूकर, विष्णु का तीसरा अवतार। उ० धरि बराह बपु एक निपाता। (मा० १।१२२।४),

बराहा–दे० 'बराह'। उ० खगहा करि हरि बाघ बराहा। (मा० २।२३६।२)

बराहु–दे० 'बराह'। उ० नील महीधर सिखर सम देखि बिसाल बराहु। (मा० १।१५६)

बराहू–दे० 'बराह'। उ० फिरत बिपिन नृप दीख बराहू। (मा० १।१५६।३)

बरि–(सं० बट)–बरकर, बटकर। उ० मम पद मनहिं बाँधि बरि डोरी। (मा० २।४८।३)

बरिआइँ–(सं० बल)–ज़बरदस्ती, हठपूर्वक। उ० प्रभु प्रसाद सौभाग्य बिजय जस पांडु तनय बरिआईं बरे। (वि० १३७)

बरिआई–दे० 'बरिआईं'। उ० करपाउब बिबाहु बरिआई। (मा० १।८२।३)

बरिआत–दे० 'बरिआता'।

बरिआता–(सं० वर+यात्रा)–बरात, बारात। उ० जमकर धार किधौं बरिआता। (मा० १।९२।४)

बरिआर–(सं० बल+आर)–मज़बूत, बलिष्ठ, बलवान।

बरिआरा–दे० 'बरिआर'। उ० सपबल बिप्र सदा बरिआरा। (मा० १।१६५।२)

बरिनिअॉं–(सं० वर+जीवी)–दोना-पत्तल आदि बनाने वाली जाति की स्त्रियाँ। उ०कटि कै छीन बरिनिआँ छाता पानिहि हो। (रा० ८)

बरिबंड–(सं०बलवत)–१ बलवान, २ तेजस्वी, ३ दुष्ट इट, ४। उ०प्रबल प्रचंड बरिबंड बरबेष बपु। (क० १।८)

बरिबंडा–दे० 'बरिबंड'। उ० १ रावन नाम बीर बरिबंडा। (मा० १।१७६।१)

बरियाँ–(सं० वेला)–समय, वक्त।

बरियाई–दे० 'बरिआई'।

बरियाईं–दे० 'बरिआईं'।

बरियार–(सं० बल)–१ बलवान, मज़बूत, २ समर्थ। उ० १ बीर बरियार धीर धनुधर राय हैं। (गी० २।३५)

बरियो–(सं० बल)–१ बली, बलिष्ट, २ समर्थ। उ० २ कोसलपति सब प्रकार बरियो। (गी० ५।२६)

बरिस–(सं० वर्ष)–साल, वर्ष। उ० जिअहु जगतपति बरिस करोरी। (मा० २।५।३)

बरिसन–(सं० वर्षा)–बरसने, बरसाने। उ० बरिसन लगे सुमन सुर। (जा० १०६) बरिसहिं–बरसते हैं। उ० देखि दसा सुर बरिसहिं फूला। (मा० २।२११।१) बरिसा–वर्षण किया, बरसा। उ० बारिद तपत तेल जनु बरिसा। (मा० ५।१५।२) बरिसो–बरसो, पानी बरसो। उ० राम को सों होम है, ऊसर कैसो बरिसो। (वि० २६४)

बरी (२)–(सं० वटी)–उर्द आदि की बड़ी जो खाने के काम आती है। उ० बरी बरी कै लोन। (दो० ४७६)

बरीसा–(सं० वर्ष)–वर्ष, साल। उ० जिअहु सुखी सय लाख बरीसा। (मा० २।१६६।३)

बरु (१)–(सं० बल)–बल, शक्ति। उ० दास तुलसी को, बलि, बड़ो बरु है। (वि० २५५)

बरु (२)–(सं० वर)–१ वरदान, २ दुलहा, दूल्हा। उ० १ होइ प्रसन्न दीजे प्रभु यह बरु। (मा० ७।३४।१) २ पूजो मन कामना भावतो बरु बरि कै। (गी० १।१००)

बरु (३)–दे० 'बरुक'। उ० बारि मथे घृत होइ बरु सिकता तें बरु तेल। (दो० १२६)

बरुक–(सं० वर)–बल्कि, भले ही, चाहे।

बरुकु–दे० 'बरुक'। उ० निज प्रतिबिंबु बरुकु गहि जाई। (मा० २।४७।४)

बरुण–(सं० वरुण)–१ जल के देवता, २ एक वृक्ष विशेष।

बरुन–दे० 'बरुण'। उ० बरुन पास मनोज धनु हंसा। (मा० ३।३०।१)

बरुनालय–दे० 'वरुणालय'। उ० पान कियो बिष भूषन भो, करुना-बरुनालय साइँ हियो है। (क० ७।१५७)

बरूथ–दे० 'वरूथ'। उ० १. जातुधान बरूथ बल भंजन। (मा० ७।५१।२) बरूथन्हि–समूहों को। उ० गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै। (मा० ६।३।१)

बरूथा–दे० 'बरूथ'। उ० २ हमरे बैरी बिबुध बरूथा। (मा० १।१८१।३)

बरे (२)–स्वीकार किया, माना। उ० रघुपति-भगति बरे हैं। (गी० ६।१३)

बरेली–(?)–१ मँगनी, सगाई, २ भुजा पर पहनने का एक गहना।

बरेषी–दे० 'बरच्छी'। उ०१ इहि न आइ बिनु रिपु बरेषी। (मा० १।८३।२)

बरोरु-दे० 'बरोरू'।
बरोरू-(सं०वरोरु)-सुन्दरी, सुन्दर जंघेवाली स्त्री, हे सुंदरी। उ० जानसि मोर सुभाउ बरोरू। (मा० २।२६।२)
बर्ग-दे० 'वर्ग'। उ० मारि बर्ग जानइ सब कोऊ। (मा० ७।११६।२)
बर्जे-दे० 'वर्जे'। उ० रामकथा मुनि बर्ज बखानी। (मा० १।४७८।२)
बर्जित-दे० 'वर्जित'।
बर्बर-(सं०)-१ असभ्य, उजड्ड, जंगली, २ घुँघराले बाल, ३ बकी। उ० १ रे कपि बर्बर खर्ब खल अब जाना तव ज्ञान। (मा० ६।२५)
बर्म-दे० 'वर्म'। उ० जयति सुभग शारंग सु निखंग-सायक सक्ति चारु चर्मासि-वरवर्म धारी। (वि० ४४)
बर्य-(सं० वर्य)-श्रेष्ठ, उत्तम।
बर्रै-(सं० वरट)-भिड़, ततैया।
बलंद-(फ़ा०)-१ ऊँचा, ऊपर को उठा हुआ, २ भारी, बड़ा।
बल-(सं०)-१ शक्ति, ज़ोर, सामर्थ्य, बूता, २ बलदेव, ३ सेना, ४ स्थूलता, मोटाई, ५ शुक्र, बीज, ६ एक राक्षस, ७ वरुण नाम का वृक्ष। उ० १ अतुल बल विपुल विस्तार। (वि० ११) बलउ-बल भी। उ० बिधि बस बलउ लजान। (जा० १७) बलधामा-बल के धाम, अत्यंत बली। उ० भयउ सो कुंभकरन बलधामा। (मा० १।१७६।२) बलधीर-बल तथा धैर्यवाला। उ० टरैं न चाप, करैं अपनी सी महा-महा बलधीर। (गी० १।८७) बलनि-बल के। उ० जीते लोकनाथ नाथ बलनि भरम। (वि०२४६) बलमूल-बल की जड़, बलवान। उ०सुवा सो लँगूल बलमूल, प्रतिकूल हवि। (क० ५।७) बलसीम-बल की सीमा, बलवान। उ० कौन के तेज बलसीम भट भीम से। (क० ६।४५)
बलकल-(सं० वल्कल)-पेड़ों की छाल जो प्राचीन काल में पहनने के काम आती थी। उ० बिसमउ हरषु न हृदयँ कछु पहिरे बलकल चीर। (मा० २।१६५)
बलकहीं-(?, बलबलाते हैं, व्यर्थ की बकवाद करते हैं। उ० बेद-बुध बिद्या पाइ बिबस बलकहीं। (क० ७।१८)
बलकाया-(?)-१ आपे से बाहर किया, २ नीचा दिखाया, झुकाया। उ० १ जोबन ज्वर केहि नहिं बलकाया। (मा० ७।७१।१)
बलतोड़-बाल टूटने के कारण उत्पन्न फोड़ा। दे० 'बरतोर'।
बलदाऊ-(सं० बलदेव)-बलराम। उ० 'सिगरियै हौं हौं रौहौं, बलदाऊ को न देहौं। (कृ० २)
बलभैया-बलदेव, बलराम। उ० मैया मिरार चढ़ि चितै चकित चित अति हित बचन कह्यो बलभैया। (कृ० १६)
बलमीक-(सं०वाल्मीकि)-१ बाँबी, बिल, २ वाल्मीकि मुनि। उ० १ मरै न उरग अनेक जतन बलमीक बिबिध बिधि मार। (वि० ११५)
बलय-(सं० वलय)-कंकण, चूड़ी, कड़ा। उ० मंजीर-नूपुर-बलय धुनि जनु काम-करतल तार। (कृ० १८)
बलयंउ-(सं० बलवतः) बलवान, बलशाली। उ० प्रभु माया बलवंत भवानी। (मा० ७।६२।५)
बलवता-दे० 'बलवंत'। उ० कहँ नल नील दुबिद बलवंता। (मा० ६।४३।१)
बलवान-(सं०बलवान्)बलवाला, शक्तिशाली। उ०हरि पाच्छे भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान। (मा० ६।४५ क)
बलवाना-दे० 'बलवान'। उ० पच्छिम द्वार रहा बलवाना। (मा० ६।४३।२)
बलशाली-(सं० बलशालिन्)-बलवान, बलवाला।
बलसालि-दे०'बलशाली'। उ० बालि-बलसालि-बध-मुख्य हेतू। (वि० २५)
बलसाली-दे० 'बलशाली'। उ० बधे सकल अतुलित बल साली। (मा० ५।२३।५)
बलसील-(सं० बलशील)-बलवान, बलिष्ठ। उ० बंगद मयंद नल-नील बलसील महा। (क० ५।२६)
बलसीला-दे० 'बलसील'। उ० है कपि एक महा बल सीला। (मा० ६।२२।३)
बलहा-(सं० बलहन्) १ श्लेष्मा, कफ, २ बल-नाशक।
बलाइ-(अर० बला)-विपत्ति, बलाय। उ० बानर बड़ी बलाइ घने घर घालिहै। (क० ५।१०)
बलाक-(सं०)-बक, बगला। उ० कामी काक बलाक बिचारे। (मा० १।३८।३)
बलाका-बगलों की पंक्ति।
बलाय-(अर० बला)-आपत्ति, आपदा, विपत्ति।
बलाहक-(सं०)-१ मेघ, बादल, २ पर्वत। उ० १ गरजहिं मनहुँ बलाहक घोरा। (मा० ६।८७।२)
बलि-(सं०)-१ प्रह्लाद का पौत्र और विरोचन का पुत्र जो दैत्यों का राजा था। विष्णु ने वामन अवतार धारण कर इसे छला था। २ बलिदान, न्यौछावर। उ० १ बृत्र बलि बाण प्रहलाद। (वि० ४०) २ जानकी जीवन की बलि जैहौं। (वि० १०४) बलिहि-बलि को। उ० बलिहि जितन एक गयउ पताला। (मा० ६।२५।७)
बलित-(?)-१ घेरा हुआ, वेष्टित, २ सिकुड़न पड़ा हुआ, गड़ेदार, सिमटा। उ० १ मनु बलित बर बेलि बिताना। (मा० २।१३७।३) २ पाटीर पाटि बिचित्र भँवरा बलित बेलिन लाल। (गी० ७।१८)
बलिदान-(सं०)-१ देवता पर कोई पूजा चढ़ाना, २ किसी जीव को किसी देवता को चढ़ाने के लिए मारना।
बलिष्ट-(सं० बलिष्ठ)-बहुत बलवान।
बलिहारी-(सं० बलि)-१ न्यौछावर, कुर्बान, २ बलि हारी जाती है, कुर्बान होती है। उ० २ कहहु तात जननी बलिहारी। (मा० २।२२।४)
बली-(सं०बलिन्) बलवान। उ०बालि बली बलसालि दली सखा कीन्ह कपिराज। (दो० १२८)
बलीमुख-(सं० बलिमुख) बंदर। उ० चली बलीमुख सेन पराइ। (मा० ६।५।२)
बलु-(सं० बल)-ज़ोर, ताकत। उ० चले बलु गयनि गयी है। (गी० ४।२)
बलैया-(अर० बला) बला, बलाय। मु० बलैया लेऊँ-मंगल कामना करते हुए प्यार करूँ। उ० ल्याइहु न राम से बलैया लेउँ सीता की। (क० ६।२२)

बलौ-बल वाले दोनों। उ० कुन्देन्दीवर सुंदरावतिबलौ विज्ञान धामावुभौ। (मा० ४।१।श्लो० १)

बल्लभ-(स० बल्लभ)-प्यारा, प्रिय। उ० ताते सुर सीसन्ह चढ़त जग बल्लभ श्रीखंड। (मा० ७।३७)

बवनहार-(स० वपन)-बोनेवाला।

बवरि-(स० मुकुल)-बौर, मंजरी।

बवा-(स० वपन)-बोया, लगाया। उ० बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा। (मा० २।१६।३) बवै-बोवे। उ० बवै सो लवै निदान। (वै० ५)

बषान-(स० व्याख्यान)-स्तुति, बड़ाई।

बषाना-(स० व्याख्यान)-कहा।

बसंत-(स० वसंत)-१ एक प्रसिद्ध ऋतु जिसका समय चैत और वैसाख है। २ फाग, ३ एक पर्व। उ० १ औरै सो बसंत, और रति, औरै रतिपति। (क० २।१७)

बसंता-दे० 'बसंत'।

बस (१)-(स० वश)-अधीन, काबू में। उ० जिन्ह के बस सब जीव दुखारी। (मा० ७।१२०।४)

बस (२)-(सं० बसन)-१ बसता था, २ बसे। उ० १ बस मारीच सिंधुतट जहवाँ। (मा० ३।२३।४) २ राम भगति मनि उर बस जाके। (मा० ७।१२०।२) बसइ-बसती है। उ० बसइ जासु उर सदा अबाधी। (मा० ७।११६।३) बसउ-१ बसे, बस जाये, २ बसो। उ० २ बसउ भवन उजरउ नहिं डरऊँ। (मा० १।८०।४) बसत-१ बसें, रहें, २ बसते हैं, रहते हैं, ३ बसते हुए, ४ बसता हूँ। उ० २ अचर चर-रूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत, इति बासना धूप दीजै। (वि० ४७) बसति (१)-(स० बसन)-बसती हो, रहती हो। उ० बसति सो तुलसी हिए। (जा० ३६) बसतु-१ रहो, निवास करो, २ बसता। उ० १ बसतु मनसि मम काननचारी। (मा० ३।११।६) बसब-१ बसना, रहना, २ रहोगे, निवास करोगे। उ० २ जेहिं आश्रम तुम्ह बसब पुनि सुमिरत श्री भगवंत। (मा० ७।११३ ख) बससि-१ बसती हो, बसते हो, बसता है, २ बसनेवाली, रहनेवाली। उ० १ ईस सीस बससि, त्रिपथ लससि नभ-पताल धरनि। (वि० २०) बसहिं-बसते हैं, निवास करते हैं। उ० सीय समेत बसहिं दोउ बीरा। (मा० २।२२५।३) बसहीं-बसते हैं, रहते हैं। उ० अत्रि आदि मुनिबर बहु बसहीं। (मा० २।१३२।४) बसही-बसता है, बस गया है। बसहु-१ ठहर जाओ, २ निवास करो। उ० १ बसहु आजु अस जानि तुम्ह जाएहु होत बिहान। (मा० १।१२१ क) बसा-(१)-१ निवास किया, २ ठहरा, रुका। बसि-बसकर, निवास करके, रहकर। उ० उर बसि प्रपंच रचे पंचबान। (वि० १४) बसिहहिं-बसेंगे। उ० सब सुभ गुन बसिहहिं उर तोरें। (मा० ७।८५।३) बसी-टिकी, ठहरी। उ० बसी मानहुँ चरन कमलनि अरुनता तजि तरनि। (गी० १।२४) बसे-१ रहे, निवास किए २ टिके, रुके। उ० २ असु थलु भेटि बसे निसि तीतें। (मा० २।२२६।१) बसेऊ-बस गए। उ० मंदोदरी सोच उर बसेऊ। (मा० ६।१४।३) बसैं-बस जायँ, रहें। उ० बसैं सुपास सुपास होहि सब फिरि गोकुल रजधानी। (कृ० ४८) बस्यौ-१ बसा, २ बसा हुआ। उ० २ चाहत अनाथ नाथ तेरी बाँह बस्यो हौं। (वि० १८१)

बसकर्ता-(स० वशकर्त्ता)-वश में करनेवाला।

बसकारी-(स० वशकारिन्)-वश में रखनेवाला। उ० अकुस मन गज बसकारी। (वि० ६३)

बसति (२)-(स० वसति)-बस्ती, स्थान, नगर। उ० बिरची बिरंचि की बसति बिस्वनाथ की जो। (क० ७।१८२)

बसन-(स० वसन)-१ कपड़ा, वस्त्र, २ बसनेवाले। उ० १ दिव्य भूषन-बसन। (वि० ४४)

बसवर्ती-(स० वशवर्ती)-अधीन, वश में।

बसवास-(स० वसन + वास)-निवास, रहना। उ० मुनि मुनि आयसु प्रभु कियो, पंचवटी बसवास। (प्र० ३।७।१)

बसवर्ती-वश में रहनेवाला। उ० दसमुख बसवर्ती नर नारी। (मा० १।१८२।६)

बसहँ-बैलों पर। उ० भरि भरि बसहँ अपार कहारा। (मा० १।३२३।३) बसह-(स० वृषभ)-बैल। उ० बसह बाजि गज पसु हियँ हारें। (मा० २।३२०।४)

बसा-(२)-(स० वसा,-चर्बी, मज्जा।

बसाइ (१)-(स० वश)-वश चले। उ० काटिअ तासु जीभ जो बसाई। (मा० १।६४।२) बसात (१)-(स० वश)-वश चलता है। बसाति-वश चला। उ० बिधि सों न बसाति। (गी० २।७)

बसाइ-(स० वास)-बसा करके। उ० बिधि की न बसाइ उजारो। (गी० २।६६) बसाइहौं-बसाऊँगी, टिकाऊँगी। उ० हँसनि, खेलनि, किलकनि, आनदनि भूपति-भवन बसाइहौं। (गी० १।१८) बसाइ-(२)-टिकाया, ठहराया। बसावत-१ बसाता, बसाता है, २ टिकाता, ठहराता है। उ० १ आप पाप को नगर बसावत। (वि० १४३) बसैहैं-बसायेंगे। उ० तिलक सारि अपनाय बिभी पन अभय-बाँह दै अमर बसैहैं। (गी० ५।२१) बसैहौं-बसाऊँगा, टिकाऊँगा। उ० मन-मधुकर पन करि तुलसी रघुपति पद कमल बसैहौं। (वि० १०५)

बसाई (१)-(स० वास)-१ बुरा महँकता है, गंधाता है, २ महकता है, अच्छा महँकता है, ३ वासयुक्त होकर, सुवासयुक्त होकर, ४ सुवासित कर देता है। उ० ३ अगरु प्रसंग सुगंध बसाई। (मा० १।१०।२) ४ निज गुन देइ सुगंध बसाई। (मा० ७।३७।४) बसात (१)-(स० वास)-बुरा महँकता है, महँकता। उ० तेहि न बसात जो खात नित लहसुनहू को बासु। (दो० ३५५)

बसावन-(स० वास) बसानेवाले, टिकानेवाले। उ० उथपे थपन, उजार-बसावन। (वि० १३६)

बसिष्ठ-(स० वसिष्ठ)-एक ऋषि जो राम के कुलगुरु थे। उ० भरतु बसिष्ठ निकट बैठारे। (मा० २।१७१।२)

बसीठ-(स० अवसृष्ट)-दूत, संदेशवाहक। उ० प्रथम बसीठ पठउ सुनु नीती। (मा० ६।६।५)

बसीठीं-'बसीठी' का बहुवचन। दे० 'बसीठी'। उ० त्रिबिध बयारि बसीठीं आईं। (मा० ३।३८।५) बसीठी-संदेशा देने का काम, दूतत्व।

बसुंधरा-(सं० वसुंधरा)-पृथ्वी, धरती।
बसुधा-(सं० वसुधा)-पृथ्वी, धरती। उ० कमल सेष सम धर बसुधा के। (मा० १।२०।४) बसुधाहूँ-पृथ्वी पर भी, पृथ्वी को भी। उ० की देउ सुलभ सुधा बसुधाहूँ। (मा० २।२०१।३)
बसूला-(सं० वासि)-एक हथियार जिससे बढ़ई काम करते हैं।
बसेरा-(सं०वास) बसने का स्थान, घोंसला, घर, रहने की जगह। उ०मानहुँ बिपति बिषाद बसेरा। (मा०२।३८।२)
बसेरें-बसने में, बसने पर। उ० उजरें हरष बिषाद बसेरें। (मा० १।४।१) बसेरे-१ बसने पर, २ स्थान, निवास स्थान, घर। उ० १ गोरस हानि सहौं न कहौं कछु यहि ब्रजबास बसेरे। (कृ०३) २ निपट बसेरे अघ औगुन घनेरे नर। (क० ७।१७४)
बसैया-बसनेवाले। उ० तुलसी तब के से अजहुँ जानिबे रघुबर-नगर-बसैया। (गी० १।६)
बस्ती-(सं० वसति)-बसने का स्थान, गाँव, आबादी। उ० बस्ती हस्ती हस्तनी देति न पति रति दानि। (स० १६२)
बस्तु-(सं० वस्तु)-चीज़, जिन्स। उ० मनि गन मंगल बस्तु अनेका। (मा० २।६।२)
बस्य-(सं० वश्य)-वश में, अधीन, वशीभूत। उ० रुचिर रूप आहार-बस्य उन पावक लोह न जान्यो। (वि०९२)
बह-(सं० वहन)-१ बहता है, चलता है, २ चले, बहे, ३ भार ढोवे। उ० १ सानुकूल बह त्रिबिध बयारी। (मा०१।३०३।२) बहइ-१ चलता है, २ बहता है,३ ढोता है। उ० १ बहइ न हाथु दहइ रिस छाती। (मा० १।२८०।१) बहई-१ बहता है, २ ढोता है। उ० १ सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई। (मा० १।६९।४) बहत-१ बहता है, प्रवाहित होता है, २ बहते हुए, ३ ढोता है, ४ ढोते हुए। उ० १ बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हे। (मा०२।३११।३) बहति-१ बहती है, २ ढोती है। उ० १ क्रोध कृन्त दल रथ रेत चक्र अवर्त बहति भया बनी। (मा० ६।८७। छं० १) बहतु-१ बहता, २ बहन करना, ढोता, ३ धारण करना। उ० २ छोनिप-छपन बाँको बिरुद बहतु हौं। (क० १।१८) बहते-१ बहन किया होता, धारण किया होता, २ प्रवाहित होते। बहसि-१ ढोता है, वहन करता है, धारण करता है, २ बहता है। उ० २ बिमल बिपुल बहसि बारि। (वि० १७) बहहिं-१ उठाते हैं, ढोते हैं, २ बहते हैं। उ० १ जरहिं पतंग मोह बस भार बहहिं खर बृंद। (मा० ६।२१) बहहीं-१ बहते हैं, २ ढोते हैं। उ० १ सरिता सब पुनीत जलु बहहीं। (मा० १।६६।१) बहहू-बो रहे हैं। उ० मुधा मान ममता मद बहहू। (मा० ६।३०।३) बहिबे-१ भुगतोगे, सहन करोगे, २ भोगना पड़ेगा, सहना पड़ेगा। उ० २ गाढ़े भनी उघारे अनुचित, बनि आए बहिबे ही। (कृ० ५०) बहिबो-बहना। उ० तजे चरन अजहूँ न मिटत नित बहिबो ताहू केरो। (वि० ८७) बही-बह निकली, बहने लगी। उ० अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही। (मा०१।२११।छं०१) बहे-१ बह गए, २ बहते, बिगड़े, गिरे। उ० २ बहे जात कइ भइसि अधारा। (मा० २।२३।१) बह्यो-१ बहा, २ बहा हुआ, गया, ३ बहता। उ० ३ महामोह सरिता अपार महँ सतत फिरत बह्यो। (वि० ९२)
बहन (१)-(सं० वहन)-१ ढोने या धारण करने की क्रिया या भाव, २ जाना, बहना।
बहन (२)-(सं० भगिनी)-बहिन।
बहनु-ढोनेवाला, बाहन। उ० भवन बिभूति भाँग बृषभ बहनु है। (क० ७।१६०)
बहरावा-(प्रा० बहाल)-भुलाया, टाला। उ० सुनि कपि बचन बिहँसि बहरावा। (मा० ५।२२।१)
बहरी (१)-(अर०)-एक शिकारी चिड़िया। उ० तीतर-तोम तमीचर-सेन समीर को सूनु बड़ो बहरी है। (क० ६।२१)
बहरी (२)-(सं० बधिर) जो न सुने। 'बहरा' का स्त्री लिंग।
बहाई-(सं० वहन)-बहाया है, बहा दिया है। उ० दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई। (मा० ७।४९।४) बहावै-दूर कर देता है। उ० मोह अघ रवि बचन बहावै। (वै० २२) बहैहौं-(सं० वहन)-बहा दूँगा, अलग कर दूँगा, बर्बाद कर दूँगा। उ० नातो नेह नाथ सों करि सब नातो नेह बहैहौं। (वि० १०४)
बहि-(सं० बाह्य) बाहर, अलग, दूर। उ० ज्यों ज्यों सुकृत सुभट कलि भूपहि निदरि लगे बहि काढ़न। (वि० २१)
बहिनी-(सं० भगिनी)-बहन, भगिनी। उ० सूपनखा रावन कै बहिनी। (मा० ३।१७।२)
बहिर-(सं० बधिर)-जो न सुने, बहरा।
बहिमुख-(सं०)-१ विमुख, विरुद्ध, २ अधर्मी, ३ पापी।
बहु (१) (सं०) अधिक, अनेक। उ० तुलसी अभिमान महिपेस बहु कालिका। (वि० ४८) बहुबाहु-बहुत सी भुजाओंवाला, रावण। उ० नाहिं त अस होइहि बहुबाहू। (मा० ३।२१।८)
बहु (२)-(सं० वधू)-बहू, वधू।
बहुत-(सं० बहुतर)-अधिक, झुंड, समूह, अनेक, बहु। उ० बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी। (मा० २।२५६।३) बहुतक-बहुत से, अनेक। उ० बहुतक बीर होहिं सतखंडा। (मा० ६।६८।३) बहुतन-बहुत से, बहुतों ने। उ० बहुतन परिची पायो। (गी० १।१४) बहुते-बहुत, अधिक। उ० बहुते दिनन कीन्हि मुनि दाया। (मा० १।१२८।३) बहुतेन्ह-बहुतों को। उ० बहुतेन्ह सुख बहुतन मन सोका। (मा० ७।३१।१) बहुतै-बहुत से। उ० पूत भय, बलि, मेरहि बार, कि हारि परे बहुतै नत पाळे। (ह० १७)
बहुताई-१ बहुतता, अधिकता, बहुत्व, बहुतायत, २ विस्तार। उ० १ बचे बिलोकत बन बहुताई। (मा० ३।३३।२) २ बिलप कराल सिंधु बहुताई। (मा० ६।४।२)
बहुतेरे-(सं० बहुतर+परा) बहुत से, अधिक, अनेक। उ० अवलोके रघुपति बहुतेरे। (मा० १।५५।२)
बहुतेरो-बहुत से बहुत। उ० पर-गुन सुनत दाह, पर-दूषन सुनत हरष बहुतेरो। (वि० १४३)

बहुधा-(सं०)-प्राय, अक्सर, २ बहुत प्रकार के, बहुत तरह के। उ० २ धनहीन दुखी ममता बहुधा। (मा० ७।१०२।१)

बहुरग-दे० 'बहुरंगा'। उ० १ सोइ बहुरंग कमलकुल सोहा। (मा० १।३७।२)

बहुरंगा-(सं० बहु + रंग)-१ बहुत से रंगोंवाला, रंगबिरंगा। २ तरह तरह का। उ० २ गैयउँ बालचरित बहुरंगा। (मा० ७।७१।४)

बहुरहिं-(प्रा० पहोलन)-१ बहुरते हैं, लौटते हैं, २ लौटेंगे, फिरेंगे। उ० २ मातु कहेहुँ बहुरहिं रघुराऊ। (मा० २।२२३।२) बहुरि-१ पुन, २ फिर, लौट, ३ लौटकर, फिरकर। उ० २ आवहिं बहुरि रामु रजधानी। (मा० २।१८३।४) बहुरे-फिरे, लौटे। उ० बहुरे लोग रजायसु भयऊ। (मा० १।३६१।२) बहुरो-१ फिर, पुन, २ लौटे, फिरे। उ० १ बहुरो भरत कह्यो कछु चाहैं। (गी० २।७३)

बहुल-(सं०)-प्रचुर, बहुत, अधिक, पर्याप्त। उ० बहुल बदारु छू दारका छू द-पद छुद। (वि० ५४)

बहू-(सं० वधू)-वधू, सौभाग्यवती स्त्री।

बहूता-(सं० बहुतर)-बहुत, अधिक। उ० तात मोर अति पुन्य बहूता। (मा० ५।४।४)

बहेड़ा-(सं० बिभीतक)-एक विशेष पेड़ या उसका फूल। यह निषिद्ध वृक्षों में गिना जाता है।

बहेरा-दे० 'बहेड़ा'। बहेरे-दे० 'बहेड़ा'। उ० नाम प्रसाद लहत रसाल फल अब हौं बबुर बहेरे। (वि० २२७)

बहोर-(प्रा० पहोलन)-बहोरनेवाला, लौटानेवाला, फिर से ले आनेवाला। उ० गई बहोर गरीब नेवाजू। (मा० १।१३।४)

बहोरि-१ फिर, दोबारा, दोहरैया, २ लौटानेवाला, ३ लौटाकर, फेरकर, ४ फेरी। उ० १ जौं बहोरि कोउ पूछन आवा। (मा० १।३४।२)

बहोरी-दे० 'बहोरि'। उ० १ भनयउँ पुर नर नारि बहोरी। (मा० १।१६।१)

बाँक-(सं० वक्र)-१ टेढ़ा, घुमावदार, २ एक शस्त्र, ३ हाथ का एक आभूषण। उ० दे० 'होइहि बारु न बाँक'। मु० होइहि बार न बाँक-बाल न टेढ़ा होगा, कुछ भी बुरा न होगा। उ० सकल सगुन मंगल कुसल, होइहि बारु न बाँक। (प्र० ६।३।४)

बाँका-(सं० वक्र)-१ टेढ़ा, २ बहादुर, वीर, ३ छैला, बना ठना आदमी ४ पैना, तेज, ५ कुशल, चतुर, ६ सुंदर, अनूठा। बाँकी-(सं० वक्र)-१ टेढ़ी, तिरछी २ गहरी ३ विकट, ४ अपूर्व, चोखी, अनोखी, ५ तीव्र, ६ सुंदर, मनोहर। उ० ३ सुनत हनुमान की हाँक बाँकी। (क० ६।४४) ४ बाँकी बिरदावली बनैगी पाले ही कृपालु। (वि०२५६) ६ चितवनि चारु भृकुटि बर बाँकी। (मा० १।२१६।४) बाँके-अच्छे, मज़े के। उ० कहाँ हनुमान से बीर बाँके। (क० ६।४५)

बाँकुर-दे० 'बाँका'। उ० ६ जौ जग विदित पतित-पावन अति बाँकुर बिरद न बहते। (वि० ९७)

बाँकुरा-दे० 'बाँका'। उ० २ रन बाँकुरा बालिसुत बंका। (मा० ६।१८।१) बाँकुरे-दे० 'बाँका'। उ० ६ बाँकुरे बिरद बिरुदैत बेहि बेरे। (वि० २१०)

बाँकुरो-दे० 'बाँका'। उ० ६ बाँकुरो बीर बिरुदैत बिरदावली। (ह० ३)

बाँको-(सं० वक्र)-१ बाँका, टेढ़ा, २ सुंदर, सुघर। उ० १ होइ न बाँको बार भगत को जो कोउ कोटि उपाय करै। (वि० १३७) मु० होइ न बाँको बार-कुछ भी हानि न हो। उ० दे० 'बाँको'।

बाँगुरो-(?) जाल, फंदा। उ० तुलसिदास यह बिपति बाँगुरो तुमहि सों बनै निबेरे। (वि० १८७)

बाँच (१)-(सं० वाचन)-बाँचकर, पढ़कर। बाँचत-बाँचते समय, पढ़ते समय। उ० बारि बिलोचन बाँचत पाती। (मा० १।२९०।२) बाँचि (१)-(सं० वाचन)-पढ़कर, बाँच कर। बाँची (१)-(सं० वाचन)-१ पढ़ी, २ पढ़कर। उ० १ पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची। (मा० १।२९०।२) बाँचो (१)-(सं० वाचन)-१ पढ़ो, पाठ करो, २ अवलोकन करो, देखो। उ० १ बिनयपत्रिका दीन की बापु! आपु ही बाँचो। (वि० २७७)

बाँच (२)-बचा, शेष रहा। बाँचा-१ बचा, जीवित रहा, २ बचाया। उ० २ बार बिलोकि बहुत मैं बाँचा। (मा० १। २७५।२) बाँचि (२)-(सं० वञ्चन)-१ बचे, शेष रहे २ बचे, रक्षा पाये, ३ बचाकर, रक्षा कर। उ० १ बड़े ही की ओट, बलि, बाँचि आए छोटे हैं। (वि० १७८) बाँचिय-बचेंगे, बचें, शेष रहें। उ० देखब कोटि बियाह जियत जो बाँचिय। (पा० ११६) बाँची (२)-(सं० वञ्चन)-बचा कर, छोड़ कर, २ बची, शेष रही, छूटी, ३ बचे, शेष रहे। उ० २ बिरचे बिरचि बनाइ बाँची रुचिरता रंची नहीं। (जा० ३६) ३ सो माया रघुबीरहि बाँची। (मा० १।८६।४) बाँचु-१ बँचे, २ बँचा। बाँचें-१ बचे, शेष रहे, २ बचते हैं, बच जाते हैं। उ० २ तुलसी बाँचें संत जन, केवल सांति अधार। (वै० ५३) बाँचो (२)-बचा, शेष रहा। उ० बड़ी ओट राम नाम की जहि लई सो बाँचो। (वि० १४६)

बाँझ-(सं० वन्ध्या)-वह स्त्री या किसी प्राणी की मादा जिसे संतान न हो। उ० अमर्नी कत भार मुई दस मास भई किन बाँझ, गइ किन च्वै। (क० ७।४०)

बाँझा-दे० 'बाँझ'।

बाँट-(सं० वितरण)-भाग, अंश हिस्सा। उ० बिप्रद्रोह जनु बाँट परयो, हठि सब सों बैर बढ़ायों। (वि० १४२)

बाँटि-बाँटकर। बाँटी-(सं० वितरण)-१ बाँट ली बँटाया, २ हिस्सा किया, ३ हिस्सा करके दिया। उ० १ बाँटी बिपति सबहि मोहि भाई। (मा० २।२०६।२)

बाँध-(सं० बंधन) बाँध देता है। उ० मम पद मनहि बाँध बरि डोरी। (मा० ५।४८।३) बाँधई-बाँधे, रोके। उ० तुलसी भली मो बैदइ बेगि बाँधई ब्याधि। (स० ४६) बाँधत-१ बाँधता है, जकड़ता है, बंधन में डालता है, २ बाँधते हुए। उ० २ कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जटजूट बाँधत सोह क्यों? (मा० ३।१८छं० १) बाँधहु-बाँधो। उ० धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ। (मा० १।२६६।२) बाँधा बाँध दिया। उ० बाँधा सिंधु इहइ प्रभुताई। (मा०

६।२८।१) बाँधि-१ पुल बाँधकर, २ बाँध, बाँध कर। उ० १ राम बाँधि उतरे उदधि लाँघि गए हनुमान। (दो० ५२८) बाँधियैगा-बाँधेगी। उ० जानी है जानपनी हरि की, अब बाँधियैगी कछु मोटि कला, की। (क० ७।१३४) बाँधी-बाँध दी। बाँधे-बाँधा, बाँध लिया। उ० उ० जिन बाँधे सुर असुर नागनर प्रबल करम की डोरी। (वि० ६८) बाँधउ-दे० 'बाँधे'। बाँधेसि-बाँध दिया। उ० हय गृहँ बाँधेसि बाजि बनाई। (मा० १।१७१।४) बाँधिसु-बाँधना, बाँध लेना। उ० मारसि जनि सुत बाँधेसु ताही। (मा०५।१६।१) बाँधिहु-बाँध लो। बाँधै-१ बाँधो, २ बाँध ले। उ० १ मेरो कह्यो मानि तात ! बाँधै जिनि मेरे। (गी० ५।२७) बाँध्यो-बाँधा, बाँध दिया। उ० सोइ अविछिन्न ब्रह्म जसुमति बाँध्यौ हठि सकत न छोरी। (वि० ६८)

बाँय-(स० वाम)-बाँयें, दायें का उलटा। उ० घोर हृदय कठोर करतब सृज्यो हौं विधि बाँय। (गी० ७।३१)

बाँया-१ बाँयीं ओर का, २ उलटा।

बाँयो-बायाँ।

बाँवों-बाँयाँ। मु० दियो बावों-१ न माना, टाल दिया, २ अनादर किया, विरोध किया, ३ बचकर निकल गया। उ० १ जो दसकंठ दियो बावों जेहि हर गिरि कियो है मनाकु। (गी० १।८७)

बाँस-(स० वंश)-१ बाँस नाम का एक पेड़, २ जमीन मापने की लग्गी, ३ वंशलस, भाला, ४ लाठी। उ० ३ परसा बाँस सेल सम करहीं। (मा० २।१९१।३)

बाँह-(स० बाहु)-१ भुजदंड, भुजा, बाहु, २ शरण, रक्षा, पनाह, ३ सहायता, बल, मदद। उ० १ सुरपति बसइ बाँह बल जाकें। (मा० २।२५।१) मु० बाँह बस्यो हौं-शरण में हूँ। उ० चाहत अनाथ नाथ तेरी बाँह बस्यो हौं। (वि० १८१) बाँह बोल दै-अपना भरोसा देकर। उ० बाँह बोल दै थापिए जो निज बरिआइँ। (वि० ३५) बाँह बोलि-आश्वासन या भरोसा देकर। उ० मीजो गुरु पीठ अपनाइ गहि बाँह बोलि। (वि० ७६) बाँह बोले की-शरण में लेने की, सहायता की प्रतिज्ञा करने की। उ० लाज बाँह बोले की, नेवाजे की सँभार सार। (क० ७।१२)

बा-(स० वा)-वा, अथवा।

बाइ-(स० व्यापन) फैलाकर, खोलकर। उ० मुख बाइ धावहिं खान। (मा० ६।१०१।छं० ३) बाई (१)-(स० व्यापन)-१ खुली, २ खोली।

बाइन-(स० वायन)-१ भेंट, उपहार, खुशी के उपलक्ष में बाँटी गई मिठाई आदि, २ बेरागी, बगनइ।

बाई (२)-(?) स्त्री, अबला।

बाउ (१)-(स० वायु)-हवा, पवन। उ० संतत बहै त्रिविध बाउ। (गी० २।४४)

बाउ (२)-(फा० बाद)-१ धन्यवाद, २ वाह।

बाउर-(स० वातुल)-बौरहा, पागल, बौरहा। उ० सेहि जड़ बर बाउर कस कीन्हा। (मा० १।६६।४) बाउरि-बावली, पगली। उ० बौरहि क अनुराग भईउँ बड़ि बाउरि। (पा० ७०)

बाऊ-(स० वायु)-हवा, पवन। उ० सीतल मंद सुरभि बह बाऊ। (मा० १।१६१।२)

बाएँ-(स० वाम)-१ बाईं ओर, २ बायाँ, ३ विरोधी, प्रतिकूल। मु० बाएँ लाइ-न मानकर, अवहेलना कर। उ० आयउँ लाइ रजायसु बाएँ। (मा० २।२००।१)

बाक्य-(स० वाक्य)-वचन।

बाग (१)-(स० वाक्)-वाणी, वचन। उ० मृदु मञ्जुल जनु बाग बिभूषण। (मा० २।७१।३) बागहीं-वाणी से, मुँह से, जीभ से। उ० एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं। (मा० ६।६०।छं० १)

बाग (२)-(अर० बाग)-बगीचा, उपवन, उद्यान। उ० पुलक बाटिका बाग बन, सुख सुबिहंग बिहारु। (मा० १।३७) बागन्ह-(अर० बाग)-बागों में, वाटिकाओं में। उ० बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। (मा० २।८३।४)

बाग (३)-(स० वल्गा)-लगाम, बागडोर।

बागत (१)-(स० वक=चलना)-चलते, फिरते, टहलते हुए। उ० बैठे उठे जागत बागत सोए सपने। (क० ७।७८) बागिहै-भटकता फिरेगा। उ० पाइ परितोष तू न द्वार द्वार बागिहै। (वि० ७०) बागे-फिरे, डोले। उ० चपल चरन लोभ लगि लोलुप द्वार द्वार जग बागे। (वि० १७०)

बागत (२)-(स० वाक्)-बोलते हुए। उ० जागत बागत सपने न सुख सोइहैं। (वि० ६८)

बागबान-(फ़ा० बागबान)-माली, बाग की देख रेख करनेवाला। उ० मार बागबान ते पुकारत देवान गे। (क० ५।३१)

बागा-दे० 'बाग'। बगीचा। उ० करि मनाम देखत बन बागा। (मा० २।१०६।२)

बागीसा-(स० वाग+ईश)-आकाशवाणी। उ० जानेहु तब प्रमान बागीसा। (मा० १।७५।२)

बागु-दे० 'बाग'। बगीचा। उ० बागु तड़ागु बिलोकि प्रभु हरषे बंधु समेत। (मा० १।२२७)

बागुर-(?)-पशु या पक्षी आदि फँसाने का जाल। उ० बागुर बिषम तोराइ मनहुँ भाग मृगु भाग बस। (मा० २।७५)

बागुरा-दे० 'बागुर'। बागुरी-दे० 'बागुर'।

बागुरि-दे० 'बागुर'।

बाघ-(स० व्याघ्र)-शेर, सिंह, नाहर। उ० तिन्हके बचन बाघ हरि ब्याला। (मा० १।३८।४) बाघउ-बाघ भी। उ० बाघउ सनमुख गएँ न खाई। (मा० ६।७।१) बाघिनि-दे० 'बाघिनी'। उ० मृगिन्द चितव जनु बाघिनि भूखी। (मा० २।५१।१)

बाघिनी-बाघ की स्त्री, शेरनी।

बाचक-(स० वाचक)-कहने या बाँचनेवाला।

बाचत-(स०वाचन)-१ बाँचते या पढ़ते हैं, २ बाँचते समय, पढ़ते समय। उ०२ बाचत प्रीति न हृदयँ समाती। (मा०१।२११।१) बाचा-१ पढ़ा, पाठ किया, २ बोलने की शक्ति, ३ वचन बात, वाणी, ४ सरस्वती। उ० ३ मनसा बाचा कर्मना, तुलसी बदत तादि। (वै० २६) ४ राघव

कुंभकरन यर माँगत सिव बिरंचि बाचा छले। (गी० ५।४१) बाचि-बाँचकर, पढ़कर। उ० जनक पत्रिका बाचि सुनाई। (मा० १।२९२।१) बाचिहै (१)-पढ़ेगा।

बाचाल-(सं० वाचाल)-बोलने में तेज़, बकवादी। उ० मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन। (मा० १।१। सो० २)

बाचाला-दे० 'बाचाल'। उ० धन मद मत्त परम बाचाला। (मा० ७।६७।२)

बाचिहै (२)-(सं० वचन)-बचेगा, शेष रहेगा। उ० बाचिहै न पाछे त्रिपुरारिहू मुरारिहू के। (क० ६।१)

बाज (१)-(सं० वाद्य)-१ बजने लगे, २ बज सकता है। उ० १ गावहिं गीत सुवासिनि बाज बधावन। (जा० १२७) बाजइ-बजता है। उ० कर कंकन, कटि किंकिनि, नूपुर बाजइ हो। (रा० ११) बाजत-१ बजता है, शब्द करता है, २ लड़ता है, युद्ध करता है। उ० १ राजत बाजत बिपुल निसाना। (मा० १।२९७।२) बाजन-(सं० वाद्य) १ बाजा, बाद्य, २ बजने, शब्दायमान होने। उ० १ कोटिन्ह बाजन बाजहिं दसरथ के गृह हो। (रा० २) २ बिपुल बाजने बाजन लागे। (मा० १। ३४८।२) बाजने-१ बाजे, २ बजने, ३ लड़ने। उ० १ दे० 'बाजन' का 'उ० २'। बाजनेऊ-बाजे भी। उ० बोले बंदी बिरुद बजाइ बर बाजनेऊ। (क० १।८) बाजहिं- बजते हैं, बज रहे हैं। उ० बिबिध प्रकार गहगहे बाजन बाजहिं। (जा० २०५) बाजा-(सं० वाद्य)-१ कोई बजनेवाली चीज, २ लड़ा, लड़ गया, ३ बजा, शब्दायमान हुआ। उ० २ तिन्हहि निपाति ताहि सन बाजा। (मा० ५।१६।४) बाजिहैं-बाजेंगे, बजेंगे। उ० लंका खरभर परैगी, सुरपुर बाजिहैं निसान। (गी० ५।१६) बाजी (२)-(सं० वाद्य)-१ बजी, २ लगी। उ० २ सेइ साधु गुरु, सुनि पुरान स्रुति बूझ्यो राग बाजी ताँति। (वि० २३३) बाज (१)-(सं० वाद्य)-१ बजने के यंत्र, २ बजने लगे। बाजै-बजता है। उ० सुसमय दिन द्वै निसान सबके द्वार बाजै। (वि० ८०)

बाज (१)-(अर० बाज़)-एक प्रसिद्ध शिकारी पक्षी।

बाज (२)-(फ़ा० बाज़)-बिना, रहित। उ० दीनता दारिद दलै को कृपा बारिधि बाज। (वि० २१६) मु० आए बाज-छोड़ा, तर्क किया। उ० कहे की न लाज, पिय! अजहूँ न आए बाज। (क० ६।२४)

बाजपेई-अश्वमेध यज्ञ करनेवाला। उ० कौन गजराज धौं बाजपेई। (वि० १०६)

बाजराज-बाज, बड़ा बाज। उ० बागराज के बालकहि लवा दिखावत आँखि। (दो० ४७७)

बाजार-(फ़ा० बाज़ार)-जहाँ दूकानें हों। उ० बाजार रुचिर न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए। (मा० ७।२८। छं० १)

बाजि-(सं०वाजिन्)-घोड़ा, अश्व। उ० चढ़ि बर बाजि बार एक राजा। (मा० १।१५६।२)

बाजी (२)-(फ़ा० बाज़ी)-१ खेल, २ ऐसा शर्त जिसमें हार जीत के अनुसार कुछ लेन देन भी हो। शर्त, ३ प्रतिज्ञा, ४ प्रतिष्ठा। उ० ३ जग जाचत दानि दुती नहीं तुमहीं सब की सब राखत बाजी। (क० ७।१६) ४ तुलसी की बाजी राखी। (क० ७।६७) मु० बाजी राखी-खेल में जिताया। उ० तुलसी की बाजी राखी राम के नाम। (क० ७।६७)

बाजी (३)-(सं० वाजिन्)-घोड़ा, अश्व। उ० आवत देखि अधिक रव बाजी। (मा० १।१२७।१)

बाजीगर-(फ़ा० बाज़ीगर)-जादूगर। उ० बाजीगर के सूम ज्यों, खल! खेह न खाते। (वि० १२१)

बाजु-दे० 'बाज (२)'। उ० मिलिहि जिमि छाड़न चहति बचनु भयकर बाजु। (मा० २।०८)

बाजू-दे० 'बाज (२)'। उ० लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू। (मा० २।२३०।३)

बाजे (२)-(फ़ा० बाज़)-कोई, कोई कोई। उ० बाजे बाजे बीर बाहु धुनत समाज के। (क० १।८)

बाट-(सं० वाट)-रास्ता, पथ, राह। उ० बाट बाट पुर द्वार बजार बनावहिं। (जा० २०४) मु० बाट परै-मार हो, बर्बाद हो। उ० बाट परै मोरि नाव उड़ाई। (मा० २।१००।३)

बाटा-दे० 'बाट'। उ० मुख नासा श्रवनन्हि की बाटा। (मा० ६।६७।२)

बाटिकाँ-उपवन में फुलवारी में। उ० बिष बाटिकाँ कि सोह सुत सुभग सजीवनि मूरि। (मा० २।५६) बाटिका-(सं० वाटिका)-फुलवारी, उपवन। उ० बन बाटिका बिहग मृग नाना। (मा० २।२१५।२)

बाड़वानल-(सं० वाड़व+अनल)-समुद्र की आग।

बाढ़ (१)-(सं० वाट)-धार, तलवार आदि की धार।

बाढ़ (२)-(सं० वृद्धि)-१ बढ़ाव, बढ़ना, २ नदी में पानी का बढ़ना, ३ बढ़ती है। उ० ३ मत्ता बाढ़ जिमि पाइ सुराजा। (मा० ४।१५।६) बाढ़इ-१ बढ़ जायगी, २ बढ़े। उ० १ बाढ़इ कथा पार नहिं लहउँ। (मा० १।१२।६) बाढ़त-१ बढ़ता, उमड़ता, २ बढ़ते हुए। उ० १ नित नूतन सब बाढ़त जाई। (मा० १।१८०।१) बाढ़ति-बढ़ती हुई। उ० प्रेमतृषा बाढ़ति भली। (दो० २०१) बाढ़न-१ बढ़ने, वृद्धि करने, २ बढ़नेवाला। उ० १ जमुना ज्यों-ज्यों लागी बाढ़न। (वि० २१) बाढ़हिं-बढ़ते हैं, बढ़ जाते हैं। उ० बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी। (मा० १। १२१।६) बाढ़हीं-बढ़ती हैं। बाढ़ा-बढ़ा, बढ़ गया। उ० बेनु बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा। (मा० १।१३२।४) बाढ़ि-१ बढ़ती, वृद्धि, २ बढ़ी। उ० १ बिभव बिलास बाढ़ि दसरथ की देखि न जिनहिं सोहानी। (गी० १।४) बाढ़ी-बढ़ी, बढ़ गई। उ० पाय प्रतिष्ठा बढ़ि परी, ताते बाढ़ी रारि। (दो० ४५५) बाढ़े-१ बढ़े, २ बढ़ने पर। उ० २ तापस को बरदायक देव, सबै पुनि बैर बढ़ावत बाढ़े। (क० ७।१५) बाढ़ैउ-दे० 'बाढ़े'।

बाण-(सं०)-१ शर विशिख, तीर, २ 'बाण' नाम का असुर जो बलि के सौ पुत्रों में सबसे बड़ा था। उ० २ वृत्र बालि बाण प्रह्लाद मय व्याध गज गृद्ध द्विजबंधु निज धर्मत्यागी। (वि० ५७)

बाणी-(सं० बाणी)-१ वचन, बोली, भाषण, उक्ति, २ सरस्वती।
बात (१)-(सं० वार्ता)-१ कथन, जो कहा जाय, वचन, २ कथा। उ० १ बात चलै बात को न मानिबो बिलग बलि। (क० ७।१३) बातन-बातों से। उ० तिमि गृह मध्य दीप की बातन तम निवृत्त नहिं होई। (वि० १२३) बातह-बात से, बात करने से। बातहि-बात ही। उ० बातहि बातहि बनि परै। (स० ४१८) बातहु-बात भी। उ० बातहु कितिक तिन तुलसी तनक की। (क० ७।२०) बातैं-'बात' का बहुवचन। बातैं-'बात' का बहुवचन। बहुत से वचन। उ० सुसुकि सभीत सकुचि रूखे मुख बातैं सकल सवाँरी। (कृ० ६) बातो-बात भी। उ० जौ पै कहुँ कोउ बूझत बातो। (वि० १७७)
बात (२)-(सं०वात)-वायु पवन। उ० लपट झपट झहराने, हहराने बात। (क० ५।८)
बातसजात-वायु के पुत्र हनुमान। उ० जयति बातसजात। (वि० २८)
बाता-दे० 'बात'। बात, वचन। उ० भए बिकल मुख आव न बाता। (मा० १।७३।४)
बाति-दे० 'बाती'। उ० दीप बाति नहिं टारन कहऊँ। (मा० २।२६।३)
बाती-(सं० वर्तिका)-बत्ती, पलीता। उ० नहिं कछु चहिअ दिया घृत बाती। (मा० ७।१२०।२)
बातुल-(सं० वातुल)-पागल, सनकी। उ० बातुल भूत बिबस मतवारे। (मा० १।११५।४)
बाद-(सं० वाद)-बहस, तर्क, झगड़ा। उ० प्रभु सों निषाद ह्वै कै बाद न बढ़ाइहौं। (क० २।८)
बादर-(सं० वारिद)-बादल, मेघ। उ० उमगि चलेउ आनंद भुवन भुईं बादर। (जा० २१०)
बादल-(सं० वारिद)-मेघ, बदली।
बादले-बादल, मेघ। उ० घहरात जिमि पविपात गर्जत जनु प्रलय के बादले। (मा० ६।४१।छं० १)
बादहिं-(सं० वाद) विवाद करते, तर्क करते हैं। उ०बादहिं सूद्र द्विजन सन, हम तुम तें कछु घाटि? (दो० ५५३)
बादि-(सं० वादि)-व्यर्थ, फ़जूल। उ० नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। (मा० २।७५।१) बादिहिं-व्यर्थ ही। उ० जनम गयो बादिहिं बर बीति। (वि० २३४)
बादिनि-१ बोलनेवाली २ झगड़ालू, कलहप्रिय। उ० १ प्रिय बादिनि सिख दीन्हिउँ तोही। (मा० २।१२।१)
बादिनी-दे० 'बादिनि'।
बादी-(सं०वादिन्)-१ कहनेवाला, बोलनेवाला, २ झगड़ालू, विवाद करनेवाला, ३ वाला। उ० ३ प्रभु जे मुनि परमारथ बादी। (मा० १।१०८।३)
बाद्य-(सं० वाद्य)-बाजा बजनेवाला यंत्र।
बाधक-(सं०) रुकावट डालनेवाला, हानिकर। उ० जो न होहिं मंगलमग सुर बिधि बाधक। (पा० ३२) बाधको-बाधकउ, बाधक भी। उ० जाकी छाँह छुए सहमत ब्याध बाधको। (क० ७।६८)
बाधा-(सं०) १ विघ्न, रुकावट, अड़चन, २ संकट, कष्ट। उ०१ करम सुभासुभ तुम्हहि न बाधा। (मा०१।१२०।२)
२ सपने ब्याधि बिबिध बाधा भइ, मृत्यु उपस्थित आई। (वि० १२०)
बाधित-(सं०)-रोका हुआ।
बाधिये-रोकिए, रोके देना चाहिए। बाधी-बाधा को प्राप्त हुई, रुकी, बाधित हो गई। उ० सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी। (मा० १।१२५।२)
बान (१)-(सं० बाण)-१ बाण, तीर, २ 'बाण' नाम का असुर। उ० १ दस-दस बान भाल दस मारे। (मा० ६।९२।४) २ रावन बान छुआ नहिं चापा। (मा० १।२५१।२) बानन्ह-बाणों से। उ० पुनि निज बानन्ह कीन्हि प्रहारा। (मा० ६।८३।३)
बान (२)-(सं० वर्ण)-१ रंग, वर्ण, २ चमक, दीप्ति, पानी। उ० २ कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें। (मा० २।२०५।३) मु० बान चढ़इ-पानी चढ़ने पर, ओप आने पर। उ० दे० 'बान (२)'।
बानइत-(सं० बाण+ऐत)-१ बानैत, तीरंदाज़, तीर चलाने वाला, २ सैनिक, योद्धा, ३ प्रख्यात, प्रसिद्ध। उ० १ लोकपाल महिपाल बात बानइत। (गी० १।१०१) २ रोप्यो रन रावन, बोलाए बीर बानइत। (क० ६।३०) ३ दानि दसरथ राय के तुम बानइत सिरताज। (वि० २११)
बानक-(सं० वर्णक)-१ वेश, सजधज, बनाव, २ ख्याति, नामवरी। उ० १ मैं पतित, तुम पतितपावन, दोउ बानक बने। (वि० १६०)
बानति-(सं० वर्णन)-बनती है। उ० कछु कहत न बानति। (गी० ७।१७)
बानधर-बाण धारण करनेवाला, बानैत।
बानर-(सं० वानर)-बंदर, मर्कट। उ० बानर-बाज! बढ़े खल खेचर, लीजत क्यों न लपेटि लवा से? (ह० १८) बानरहि-बानर का। उ० नर बानरहि संग कहु कैसें। (मा० ५।११।६)
बाना (१) दे० 'बान (१)'। उ० १ चले सुधारि सरासन बाना। (मा० ६।७०।३)
बाना (२)-दे० 'बानक'। उ० १ जनु बानैत बने बहु बाना। (मा० ३।३८।२)
बाना (३)-(सं० वर्ण)-स्वभाव, प्रकृति।
बानि (१)-दे० 'बानी (१)'। उ० २ बानि बिनायकु अंब रवि, गुरु हर रमा रमेस। (प्र० १।१।१)
बानि (२)-दे० 'बानी (२)'। उ० तजहि तुलसी समुझि यह उपदेसिबे की बानि। (कृ० ४२)
बानिक-(सं० वर्णन)-वेष, सजधज, बनाव, सिंगार। उ० आपनी आपनी बर बानिक बनाइ कै। (गी० १।८१)
बानिहि-(सं० वाणी)-वाणी को। उ० पर अपवाद बिवाद-बिदूषित बानिहि। (पा० ४) बानी (१)-१ बात, वाणी, वचन, २ सरस्वती। उ० १ तुलसी कहइ बानि बिमलउ बिमल-बारि-बरनि। (वि० २०) २ बानी बिधि गौरी हर सेसहु गनेस कही। (क० १।१६)
बानी (२)-(सं० वर्णन) आदत, लत, टेव। उ० १ छरि-फाइहि तें रघुबर बानी। (मा० २।२०५।३)
बानी (३)-(सं० वणिज)-बनिया।

बानु-(सं० बाण)-१ बाणासुर नाम का प्रसिद्ध असुर, २ बाण, तीर। उ० १ तथा २ बानु-बानु जिमि गयउ गर्वहि दसकधरु। (जा० १०३)

बानैत (१)-(सं० वर्णन)-बनानेवाला, निमाता।

बानैत (२)-(सं० बाण)-१ बाण चलानेवाला, धनुर्धर, २ वीर, ३ नामवर, प्रसिद्ध। उ० १ बर बिपुल बिटप बानैत बीर। (गी० २।४६)

बानैत (३)-(?)-प्रण या बात का पक्का। उ० बाहु-बली, बानैत बोल को, बीर बिस्वबिजयी जई। (गी० २।३८)

बानो-(सं० वर्ण)-बाना, स्वरूप। उ० लहि नाथ हौं रघुनाथ बानो पतितपावन पाइ कै। (गी०३।१७)

बाप-(सं० वाप)-पिता, जनक। उ० बाप आपने करत मेरी घनी घटि गइ। (वि० २५२)

बापवा-दे० 'बापुरा'।

बापरो-दे० 'बापुरा'।

बापिका-(सं० वापिका)-बावली, छोटा तालाब। उ० देखे घर बापिका तड़ाग बाग को बनाव। (क० ५।१)

बापीं-बावलियाँ, तालाब। दे० 'बापिका'। उ० बापीं कूप सरित सर नाना। (मा० १।२१०।३)

बापु-दे० 'बाप'। उ० बिनय पत्रिका दीन की, बापु! आपु ही बाँचो। (वि० २७७)

बापुरा-(?)-तुच्छ, बेचारा, असमर्थ, दीन। बापुरे-बेचारे। दे० 'बापुरा'। उ० बापुरे बराक बीर राजा रामा राँक को। (ह० १२)

बापुरो-बेचारा। दे० 'बापुरा'। उ० को बापुरो पिनाक पुराना। (मा० १।२५२।३)

बाम (१)-(सं० वाम)-१ बायाँ, २ उलटा, प्रतिकूल, ३ टेढ़ा, कुटिल, खोटा, ४ कामदेव, ५ महादेव। उ० १ राम बाम दिसि सीता सोई। (मा० १।१४८।२) २ राम से बाम भए तेहि बामहि। (क० ७।२) ३ पूतना पिसाची जातुधानी जातुधान बाम। (ह० ३२) बामहि-कुटिल को। उ० राम से बाम भए तेहि बामहि बाम सबै सुख संपति लाबैं। (क० ७।२) बामहू-विमुख या प्रतिकूल के लिए भी। उ० पतित पावन नाम, बामहू दाहिनो, देव। (वि० २५७)

बाम (२)-(सं० वामा)-स्त्री।

बामता-(सं० वामता)-१ कुटिलता, कुटिलाई, २ उलटापन, प्रतिकूलता। उ० १ समुझे सदै हमारो है हित बिधि बामता बिचारि। (कृ० २७)

बामदेउ-(सं० वामदेव)-१ एक प्रसिद्ध ऋषि, २ शिव। उ० १ बामदेउ अरु देवरिषि बालमीकि जाबालि। (मा० १।३३०)

बामदेव-(सं० वामदेव)-१ शिव, २ ऐसे देवता जो अनुकूल न हों, ३ एक ऋषि। उ० १ बामदेव सन काम बाम होइ बरतेउ। (पा० २१)

बामन-(सं० वामन)-विष्णु के ५वें अवतार जो बलि को छलने के लिए अदिति के गर्भ से हुए थे। उ० छलन बलि कपट बटुरूप बामन ब्रह्म। (वि० ५२)

बामा-(सं० वामा)-स्त्री, औरत। उ० बाम अंग बामा बर बिस्व-बंदिनी। (गी० २।४२)

बामू-टेढ़ा, विपरीत। दे० 'बाम'। उ० भयउ कुठाहर जेहिं बिधि बामू। (मा० २।३६।१)

बाम्हन-(सं० ब्राह्मण)-१ ब्राह्मण, द्विज, २ उपरोहित।

बायँ-(सं० वाम)-१ टेढ़ा, प्रतिकूल, २ बायाँ। उ० १ घोर हृदय कठोर करतब सृज्यो हौं बिधि बायँ। (गी० ७।३१)

बाय (१)-(सं० वायु)-१ हवा, पवन, २ बाइ, बात का रोग, सन्निपात। उ० १ भरत-गति लखि मातु सब रहीं ज्यों गुड़ी बिनु बाय। (गी० ६।१४)

बाय (२)-(सं० वर्तते)-है, होता है। उ० काक सुता गृह ना करै, यह अचरज बड़ बाय। (स० १६०)

बायन-(सं० वायन)-१ वह मिठाई या पकवान जो उपहार स्वरूप दूसरे के पास भेजा जाता है। भेंट, उपहार। मु० बायन दीन्हा-छेड़खानी की, छेड़छाड़ की। उ० मेरे भवन भय बायन दीन्हा। (मा० १।१३७।३)

बायस-(सं० वायस)-१ कौआ, काग, २ कागभुसुंडि, ३ इंद्र का पुत्र जयंत। उ० १ करतब बायस बेष मराला। (मा० १।१२।१) ३ बायस, बिराध, खर, दूषन, कबंध, बालि। (क० ६।२७)

बायें-(सं० वाम)-१ बायाँ, दाहिना का उलटा, २ विरुद्ध, प्रतिकूल।

बायों-(सं० वाम)-बायाँ। मु० बायों दियो-टाल दिया, छोड़ दिया। उ० बायों कियो बिभव कुरुपति को। (वि० २४०)

बायो-(सं० व्यापन)-फैलाया, पसारा, खोला। उ० परी न छार मुँह बायो। (वि० २०१)

बार (१)-(सं० द्वार)-१ द्वार, दरवाजा, २ ठिकाना, आश्रय, स्थान, ३ दरबार।

बार (२)-(सं० वार)-१ काल, समय, २ देर, विलंब, ३ दफा, मरतबा, ४ दिन, दिवस, ५ बार-बार। उ० २. यहु बिधि करत मनोरथ जात लागि नहिं बार। (मा० २।२०६) ३ अँधियारे मेरी बार क्या? (वि० ३३)

बार (३)-(फ़ा०)-भार, बोझा।

बार (४)-(सं० वाल)-केश, लोम। उ० भूपर अनूप मनि बिनु बारे-बारे बार। (गी० १।१०)

बार (५)-(सं० ज्वल)-१ जला, आग, प्रज्वलित कर, २ जलावे। उ० २ तेहि बिधि दीप को बार बहोरी। (मा० ७।११८।८) बारी (१)-जलाई, भस्म किया। उ० बारी बारानसी बिनु कहे चक्रपानि। (क० ७।१०२)

बारक-(सं० बार+एक)-एक बार, एक बार भी। उ० बारक बिलोकि बलि कीजै मोहि आपनो। (वि० १८०)

बारन (१)-(सं० वारण)-रोकना, रोक, रुकावट। बारय-दूर करो, मना करो। उ० बारय तारय सकति दुःख। (मा० ६।११२।३) बारि (१) मना करके। बारिये (१)-(सं० वारण)-मना कीजिए, वर्जिए। बारें-छोड़कर। उ० बानर मनुज जाति दुइ बारें। (मा० १।१७७।२) बारे (१)-(सं० वारण)-१ मना किए, रोके, २ छोड़कर। बारेहि (१)-मना करते हैं, रोकते हैं।

बारन (२)-(?)-गजेन्द्र, जिसे भगवान ने ग्राह से बचाया

था। उ० नाम अजामिल से खल तारन तारन वारन बारवधू को। (क० ७।६०)
बारवधू–(सं०वार + वधू)–वेश्या, रंडी। उ०दे०'वारन (२)'।
बारह–(सं० द्वादश)–दस से दो अधिक, १२। मु० बारह बाट–तितर बितर, नष्ट-भ्रष्ट। उ० सूधे-टेढ़े, सम विषम, सब महँ बारह बाट। दो० ४००)
बारहिं (१)–(सं० वार)–कई बार। मु० बारहिं बार–कई बार, बार बार। उ० होहिं हानि भय मरन-दुख-सूचक बारहिं बार। (प्र० १।४।२)
बारहीं–(सं० द्वादश)–पुत्र जन्म के १२वें दिन होनेवाली संस्कार विधि, बरही। बारहें–दे० 'बारहीं'। उ० मुनिवर करि छठी कीन्हीं बारहें की रीति। (गी० ७।२४)
बारहौं–दे० 'बारहीं'। उ० छठी बारहौं-लोक-वेद विधि करि सुविधान विधानी। (गी० १।४)
बारांनिधे–(सं० वारांनिधि)–हे समुद्र! उ० जयति वैराग्य विज्ञान-वारांनिधे नमत नर्मद पाप-ताप हर्त्ता। (वि० ४४)
बारा–दफा, बार। दे० 'बार (२)'। उ० परहिं भूमितल बारहिं बारा। (मा० २।१४६।२)
बारानिधे–दे० 'बारांनिधे'।
बाराह–(सं० वराह)–१ शूकर, सूअर, २ विष्णु का एक अवतार।
बारि (२)–(सं० वारि) जल, पानी। उ० मरिबे को बारा नसी, बारि सुरसरि को। (ह० ४२)
बारि (३)–(सं० वाटिका)–बाड़ी, बगीची।
बारि (४)–(सं० अवार)–बाड़ा, घेरा, डाँड़। उ० जनु इंद्र धनुष अनेक की बर बारि तुंग तमालही। (मा० ६। १०१। छं० १)
बारि (५)–(सं० अवतरण)–निछावर करके। बारिये (२)–न्यौछावर कीजिए। बारी (२)–न्यौछावर किया। उ० काम कोटि सोभा अंग अंग ऊपर बारी। (गी० १।२२) बारौं–न्यौछावर करूँ, वारूँ। उ० बारौं सत्य बचन स्रुति सम्मत जाते हौं बिछुरत चरन तिहारे। (गी० २।२)
बारिक–(फा० बारीक)–महीन, बारीक। उ० है निगुण सारी बारिक। (कृ० ४१)
बारिखो–(सं० वर्ष)–वर्षोवाला। उ० सही भरी लोमस भुसुंडि बहु बारिखो। (क० १।१६)
बारिज–(सं० वारिज)–कमल, जलज। उ० नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन। (मा० १।१। सो० ३)
बारिद–(सं० वारिद)–मेघ, बादल। उ० मनहुँ मिखिनि सुनि बारिद बानी। (मा० १।२४४।२)
बारिधर–(सं० वारिधर)–बादल जलद। उ० तात न वर्षन कीजिये बिना बारिधर धार। (दो० ३०४)
बारिधि–(सं० वारिधि)–समुद्र। उ० बदउँ बारिद बेद भव बारिधि बोहित सरिस। (मा० १।१४ ङ)
बारिनिधि–दे० 'बारिधि'। उ० मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू। (मा० २।८६।२)
बारिपुर–एक स्थान का नाम। कुछ लोगों के अनुसार यह काशी का नाम है। उ० बारिपुर दिगपुर बीच बिलसति भूमि। (क० ७।१४८)

बारी (३)–(सं० बाल)–१ कुमारी कन्या, २ छोटी, नन्हीं। उ० २ कुंदकली जुगल जुगल परम सुभ्र बारी। (गी० १। २२)
बारी (४)–(सं० वालिका)–कान में पहनने की बाली।
बारी (५)–(सं० वाटिका)–१ बगीचा, उपवन, २ खिड़की, झरोखा।
बारी (६)–(सं० अवार)–डाँड़, मेंड़, खेत आदि का घेरा। उ० कानन विचित्र बारी बिसाल। (वि० २३)
बारी (७)–(सं० वारि)–पानी।
बारी (८)–(सं० वरुजीवी)–पत्तो आदि से संबंधित कार्य करनेवाली एक जाति। अब पत्तल आदि बनाना ही इनका प्रधान काम है। उ० नाऊ बारी भाट नट राम निछावरि पाइ। (मा० १।३१६)
बारी (९)–(सं० वार)–पारी ओसरी।
बारीस–(सं० वारीश)–समुद्र। उ० जेहिं बारीस बँधायउ हेलाँ। (मा० ६।६।३)
बारु–(सं० बाल)–केश, बाल। उ० भैंट पितरन को न मूड़ हू में बारु है। (क० ७।६७)
बारुणी–(सं० वारुणी)–१ मदिरा, शराब, २ पश्चिम दिशा, ३ एक विशेष पर्व।
बारुनि–दे० 'बारुणी'। उ० १ सुरसरि जलकृत बारुनि जाना। (मा० १।७०।१)
बारुनी–दे० 'बारुणी'। उ० १ सत सुधा ससि धेनु प्रगटे खल बिष बारुनी। (मा० १।१४ च)
बारे (२)–(सं०बाल)–१ बच्चे, बालक,२ बचपन,३ छोटे। उ० १ भैया कहहु कुसल दोउ बारे। (मा० १।२९१।२) २ हौं तो बिन मोल ही बिकानो, बलि बारे ही तें। (ह० ३८) ३ बारे बारिधर। (गी० १।३०) बारेहि (२)–(सं० बाल)–१ लड़कपन से ही, २ बचपन में। उ० १ बारहि ते निज हित पति जानी। (मा० १।११८।२)
बारो–(सं० बाल)–किशोर, बच्चा, छौना। उ० बारिदनाद अकपन कुंभकरन से कुंजर केहरि-बारो। (ह० १३)
बाल (१)–(सं०)–१ लड़का, बालक, २ अज्ञानी, मूर्ख, ३ बार, केश, लोम, ४ अन्नों की बाली या फली। उ० १ बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा। (मा० १।२०२।२) २ सो भ्रम बादि बाल बनि करहीं। (मा० १।१५।४) ३ बाल कुमार जुवा जरा। (म० २०४)
बाल (२)–(सं० वारि)–पानी, जल।
बाल (३)–(सं० बाला)–युवती। उ० मोजि के खवास खासो कूबरी सी बाल को। (क० ७।१३२)
बालक–(सं०)–१ लड़का, २ बेटा पुत्र, ३ छोटा। उ० १ राज मराल के बालक पेलि कै। (क० ७।१०३) ३ बालक दामिनि ओढ़ी मानो बार बारिधर। (गी० १।३०)
बालकन्ह–१ लड़कों,२ लड़कों को। बालकन्हि–बालकों को, लड़कों को। उ० मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं। (मा० ७।११।४) बालकहि–बालक को। बालकहू–बालक भी, बालक का भी। उ० बेनु बिलोकें कहेसि बपु बालकहू नहिं दोसु। (मा० १।२८१) बालको–बालक भी।

बालकु–दे० 'बालक'। उ० १ कटुबादी बालक बध जोगू। (मा० १।२७२।२)

बालधि–(स०)–पूँछ, दुम। उ० कुलिस नख दसन बर, लसति बालधि-बृहद् बैरिसस्त्रास्त्रधर-कुधरधारी। (वि० २६)

बालधी–दे० 'बालधि'। उ० बालधी बढ़न लागी, ठौर ठौर दीन्हीं आगि। (क० ५।२)

बालपन–लड़कपन, बचपन। उ० समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत। (मा० १।३० क) बालपने–लड़कपन में, बचपन में। उ० बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो। (ह० ४०)

बालमीक–(स० वाल्मीकि)–एक प्रसिद्ध ऋषि और आदि कवि। रामायण की रचना सबसे पहले इन्होंने ही की थी। उ० बालमीक नारद घटजोनी। (मा० १।३।२)

बाला–(स०)–१ युवती, १२ से १६ वर्ष की स्त्री, २ स्त्री, पत्नी, ३ औरत, नारी, ४ लड़की, कुमारी, ५ हाथ का कड़ा, ६ कान का एक आभूषण।

बालि (१)–(स०)–अंगद का पिता और सुग्रीव का भाई एक बंदर जो किष्किंधा का राजा था। इसे राम ने धोखे से मारा। उ०तौ सुरपति कुरुराज बालि सों कत हठि बैर बिसहते? (वि०९७) बालिहि–बालि को। उ० सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान। (मा० ४ ६)

बालि (२)–(स० वाल)–बाल जौ आदि की फली।

बालिका–(स०)–छोटी लड़की, कन्या। उ० नर नाग बिबुध-बंदिनि, जय जह्नुबालिका। (वि० १७)

बालिकुमार बालि के पुत्र अंगद। दे० 'अंगद'। उ० व्याकुल नगर देखि तब आयउ बालिकुमार। (मा० ५।१६)

बालिश–(स०)–१ मूर्ख, अज्ञ, २ बालक, लड़का।

बालिस–दे० 'बालिश'। उ० बालिस बासी अवध को बूझिए न खाको। (वि० १५२) बालिसो–रे मूर्खो, अज्ञो! उ० बाहौ बल, बालिसो! बिरोध रघुनाथ सों। (क० ५।१३)

बाली–दे० 'बालि'। उ० जेहिं सायक मारा मैं बाली। (मा० ५।१८।२)

बालु–(स० वालुका)–बालू, रेत। उ० बापुरो बिभीषन घरौंधा हुतो बालु को। (क० ७।१७)

बालू–दे० 'बालु'। उ० ऊपर डारि देहिं बहु बालू। (मा० ६।८।१४)

बालेंदु–(स० बालेंदु)–दूज का चाँद। उ० लसद्भालबालेंदु कंठे भुजंगा। (मा० ७।१०८।२)

बाल्मीकि–दे० 'बाल्मीकि'।

बाल्य–(स० बाल्य)–शैशव, लड़कपन।

बावन–दे० 'बामन'। विष्णु का एक अवतार। बावनो–बामन भगवान का अवतार भी। उ० कालकूट कराउत्ता बड़ाई जीतो बावनो। (क० ५।६)

बावरि–(स० बातुल)–बावली, पगली। उ० समुझि सो प्रीति की रीति स्याम की सोइ बावरि जो परेखो उर आनै। (कृ० ३८)

बावरी–दे० 'बावरि'। उ० बावरी न होहि बानि जानि कपिनाह की। (क० ७।२६)

बावरे–रे पागल, रे सनकी। उ० राम जपु राम जपु राम जपु बावरे। (वि० ६६)

बावरो–पागल, बौरहा, उन्मत्त। उ० राम, राम! रावरो सयानो किधौं बावरो। (क० ७।७३)

बावाँ–(स० वाम)–१ बाम, बायाँ, २ प्रतिकूल, विपरीत। उ० २ ऐसेहु कुमति कुसेवक पर रघुपति न कियो मन बावाँ। (वि० १७१)

बास–(स० वास)–१ गंध, महँक, २ रहने का स्थान, डेरा, आवास, घर। उ० १ अहह प्रान बिनु बास असेषा। (मा० १।११८।४) २ बास चले सुमिरत रघुबीरा। (मा० २।२०३।१) बासहि–१ स्थान को, निवास को, २ महँक को, गंध को। उ० १ नाइ माइ सिर देव चले निज बासहि। (पा० १६१)

बासन (१)–(?)–बरतन, भाँडा। उ० होहिं न बासन बसन चोराई। (मा० २।२२१।२)

बासन (२)–(स० वास)–१ महँक, २ रहने के स्थान।

बासना–(स० वासना)–१ इच्छा, अभिलाषा, कामना, २ सुगंध। उ० १ बासना बल्लि खर कंटकाकुल बिपुल निबिड़ बिटपाटवी कठिन भारी। (वि० ५९)

बासर–(स० वासर)–दिन, दिवस। उ० पाप करत निसि बासर जाहीं। (मा० २।२२१।३)

बासरु–दे० 'बासर'। उ० नींद न भूख पियास, सरिस निसि बासरु। (पा० ७१)

बासव–(स०)–इंद्र। उ० जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत। (मा० २।१४१)

बासा–(स० वास)–घर, निवास। उ० भगत होहिं मुद मंगल बासा। (मा० १।२४।१)

बासि–१ बासकर, महँकाकर, बासयुक्त करके, २ बासने की, महँकाने की। उ० १ दै दै सुमन तिल बासि कै अरु खरि परिहरि रस लेत। (वि० १६०) २ सुकृत-सुमन तिल-मोद बासि बिधि जतन-जंत्र भरि घानी। (गी० १।४)

बासिंद–(स० वास)–निवासियों को, वासियों को। उ० कोसलपुर बासिन्द सुखदाता। (मा०१।२००।१) बासी–१ रहनेवाला, निवासी, २ सुगंधित किया हुआ, ३ पुराना, जो ताज़ा न हो। उ० १ मरजादा चहुँ ओर चरन बर सेवत सुरपुर बासी। (वि० २२)

बासु–(स० वास)–१ बास, महँक २ पुरी गंध, ३ डेरा, रहने का स्थान। उ० २ जेहि न भ्रमर भों जात मिले खलकुसुमहु को बासु। (दो० ३५५) ३ भूपति गवने भवन तब दूतन्ह बासु देवाइ। (मा० १।२९७)

बासुदेव–(स० वासुदेव)–वसुदेव के पुत्र कृष्ण। उ० बासुदेव पद पंकरुह दंपति मन अति लाग। (मा० १।१४२)

बासू–बास, स्थान, निवास। उ० भीतर भवन दीन्ह बर बासू। (मा० १।३५२।४)

बाहक–(स० वाहक)–ढोनेवाला भार पहुँचानेवाला।

बाहन–(स० वाहन)–सवारी, जो ढोवे। उ० भूषन, भवन, स्यान, नर बाहन साजहिं। (पा० १०३)

बाहनी–(स० वाहिनी) सेना।

बाहर-(सं० बाह्य)-भीतर का उलटा, अलग, दूर, बहिर्गत। बाहरहुँ-बाहर भी।
बाहरजामि-(सं० बाह्ययामी)-बाहर की बात जाननेवाला। उ० अंतरजामिहु ते बड़ बाहरजामि हैं। (क० ७।१२९)
बाहीं-दे० 'बाहु'। हाथ। उ० बैठारे रघुपति गहि बाहीं। (मा० २।७७।३)
बाहिज-(सं० बाह्य)-ऊपर से, देखने में। उ० बाहिज चिंता कीन्हि बिसेषी। (मा० ३।३०।१)
बाहिनी-(सं० वाहिनी)-१ ढोनेवाली, सवारी, २ बहनेवाली, ३ सेना। उ० ३ बिबिध बाहिनी बिलसति सहित अनंत। (ब० ४२)
बाहिर-दे० 'बाहर'।
बाहु-(सं०)-भुजा, हाथ। उ० आजानु भुजदंड, कोदंड मंडित बाम बाहु, दच्छिन पानि बानमेकं। (वि० ५१)
बाहुक-(सं० बाहु+?)-बाहु की पीड़ा, हाथ का दर्द। उ० बाहुक-सुबाहु नीच, लीचर-मरीच मिलि। (ह० ३३)
बाहुल्य-(सं०)-आधिक्य, बहुलता, अधिकाई।
बाहू-दे० 'बाहु'। उ० बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू। (मा० १।१३।४)
बाहेर-दे० 'बाहर'। उ० गयउ जहाँ बाहेर नगर सीय सहित दोउ भाइ। (मा० २।८२)
बाहैं-१ बाहें, भुजा, २ भुजाओं में। उ० १ सुमिरत श्री रघुबीर की बाहैं। (गी० ७।१३) बाहैं-बाहों में। उ० सपनेहुँ नहीं अपने बर बाहैं। (क० ७।२६)
बिंजन-(सं० व्यंजन)-रसोई, भोजन। उ० बिंजन बहु गनि सकइ न कोई। (मा० १।१७३।१)
बिंद-(सं० बिंदु)-बिंदी, शून्य। उ० सोभन नील सरोज से भ्रूपर मसि बिंद बिराज। (गी० १।१४)
बिंदक-(?)-१ जाननेवाले, ज्ञाता, २ पानेवाला, ३ नामयुक्त। उ० १ भय कि परहिं परमात्मा बिंदक। (मा० ७।११२।३)
बिंध-दे० 'बिंधि'। उ० बिंध न ईंधन पाइए, सायर जुरै न नीर। (दो० ७२)
बिंधि-(सं० विंध्य)-विंध्य नाम का पर्वत। उ० बिंधि मुदित मन सुखु न समाई। (मा० २।१३८।४)
बिंध्य-दे० 'बिंधि'। उ० चित्रकूटादि बिंध्यादि दंडक बिपिन धन्यकृत। (वि० ४३)
बिंध्याचल-(सं० विंध्याचल)-एक प्रसिद्ध पर्वत। उ० बिंध्याचल गंभीर बन गयऊ। (मा० १।१५६।२)
बिंब-(सं० बिंब)-१ बिंबाफल, कुंदरू नाम का फल, २ छाया, प्रतिबिंब, ३ मूर्ति ४ सूर्य अथवा चंद्र का मंडल। उ० १ अधर बिंबोपमा मधुर हास। (वि० ५१)
बिआधि-(सं० व्याधि)-रोग, बीमारी। उ० बिनु औषध बिआधि बिधि खोई। (मा० १।१७१।२)
बिआनी-(?)-१ बच्चा देना, प्रसव करना, २ ब्याई, जनी। उ० १ मनहु बाँझ भनि बादि बिआनी। (मा० २।७५।१)
बिआहबि-(सं० विवाह)-ब्याहेंगे, ब्याहूँगा। उ० सीय बिआहबि राम गरब दूरि करि नृपन्ह के। (मा० १।२४५)
बिआही-विवाह किया। उ० भंजि धनुष जानकी बिआही। (मा० ६।३६।६) बिआहेसि-विवाह किया, ब्याहा। उ० पुनि दोउ बंधु बिआहेसि जाई। (मा० १।१०८।२)
बिएतें-दे० 'बियेतें'।
बिकट-(सं० विकट)-१ भयंकर, २ कठिन, मुश्किल। उ० १ बिकट बेष मुख पंच पुरारी। (मा० १।२२०।४)
बिकटी-टेढ़ी, वक्र। उ० बिकटी भृकुटी बड़री अँखियाँ। (क० २।१३)
बिकरारा-(सं० विकराल)-१ भयंकर, विकराल, प्रचंड, २ टेढ़ा, ३ कठिन। उ० १ नाक कान बिनु भइ बिकरारा। (मा० ३।१८।१)
बिकराल-(सं० विकराल)-भयंकर, प्रचंड। उ० बड़ो बिकराल बेष देखि। (क० ५।६)
बिकल-(सं० विकल)-व्याकुल, बेचैन, घबराया। उ० बिरह बिकल नर इव रघुराई। (मा० ३।४३।४) बिकलतर-अधिक विकल, अधिक दुखी। उ० चले समीचर बिकलतर गढ़ पर चढ़े पराइ। (मा० ६।७४ ख)
बिकलाइ-दे० 'बिकलाई'। उ० प्रभु कृत खेल सुरन्ह बिकलाई। (मा० ६।६४।२)
बिकलाई-विकलता, व्याकुलता। उ० उठहु न सुनि मम बच बिकलाई। (मा० ६।६१।३)
बिकस-(सं० विकास)-खिलना, प्रसन्न होना। उ० उदय बिकस, अथवत सकुच, मिटै न सहज सुभाउ। (दो० ३१६) बिकसत-१ विकसता है, खिलता है, २ खिलते हुए प्रसन्न। उ० २ बिकसत मुख निकसत धाइ धाय कै। (गी० १।८२) बिकसे-फूले, खिले, प्रफुल्लित हुए, प्रसन्न हुए। उ० बिकसे सरन्हि बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा। (मा० ८६।छं०१) बिकसो-खिला, प्रफुल्लित हुआ। उ० रबिकुल रबि अवलोकि सभा-सर हित चित-बारिज-बन बिकसो री। (मा० १।१०२)
बिकसित-खिला हुआ, फूला हुआ, प्रसन्न।
बिकाइ-(सं० विक्रय)-बिकता है। उ० जासु पय सरिस बिकाय देखहु प्रीति की रीति भलि, बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई परत पुनि। (मा० १।५७ ख) बिकाउँ-बिकता हूँ, विक्रीत होता हूँ। बिकात-बिकता है। बिकातो-बिकता, बेचा जाता। उ० तौ तुलसी बिनु मोल बिकातो। (वि० १०७) बिकानी-बिकी, बिक चुकी। उ० तुलसी हाथ पराए प्रीतम, तुम्ह प्रिय हाथ बिकानी। (कृ० ४७) बिकाने-बिके, बिक गए। उ० को करि सोच मरै, तुलसी, हम जानकी नाथ के हाथ बिकाने। (क० ७।१०५) बिकानो-१ बिका, बिक गया, २ बिक गया हूँ। उ० २ हौं तो बिन मोल ही बिकानो। (ह० ३८) बिकैहैं-बिक जायँगे। उ० सोभा देखवैया बिनु बित्त ही बिकैहैं। (गी० २।३७।२)
बिकार-(सं० विकार)-अवगुण, खराबी, ईर्ष्या आदि मन के विकार। उ० कहैं दससीस ईस बामता बिकार है। (क० ५।२०)
बिकारी-जिसका रूप बिगड़ गया हो, विकारयुक्त, बुरा, हानिकर। उ० अमुभ होइ जिनके सुमिरे तें बानर रीछ बिकारी। (वि० १६६)
बिकास-(सं० विकास)-उन्नति, आगे बढ़ना, खिलना। बिकासा-१ खिला हुआ है, २ विकास, खिलना,

३ उद्धति । उ० १ वचन किरन मुनि कमल विकास्ता । (मा० २।२७७।१) विकासी-प्रकाशित है । उ० स्वामि सुरति सुरबीथि विकासी । (मा० २।३२४।३) विकासे-विकसित होते हैं, खिलते हैं । उ० विलसत बेतस बनज विकासे । (मा० २।३२४।२)

विक्रम-(स० विक्रम)-वीरता, पराक्रम । उ० सुन विक्रम जानहिं दिगपाला । (मा० ६।२४।२)

विखडन-१ नाश करना, खड खड करना, २ नाश करनेवाले । उ० २ तुलसिदास प्रभु त्रास विखडन । (मा० ६।११२।५)

विखान-(स० विषाण)-सींग । उ० तुलसी जेहि राम सों नेह नहीं सो सही पसु पूँछ विखानन हैं । (क० ७।४०)

विखाना-दे० 'विखान' ।

विख्यात-(स० विख्यात)-प्रसिद्ध, मशहूर । उ० जग विख्यात नाम तेहिं लंका । (मा० १।१७८।४)

विख्याता-दे० 'विख्यात' ।

विगत-(स० विगत)-१ रहित, शून्य, हीन, २ बीता, गुज़रा ३ निकम्मा, ४ पुराना । उ० १ पवन कुमार जो विगत समसूल हैं । (क० ५।२०)

विगता-(स० विगत)-नष्ट हो गई, जाती रही । उ० भरि पूरि रही समता विगता । (मा० ७।१०२।४)

विगरत-(स० विकार)-१ बिगड़ता है, खराब होता है । २ अप्रसन्न होता है, ३ नष्ट होता है । उ० १ विगरत मन सन्यास लेत जल नावत आम घरो सो । (वि० (१०३) २ हरष न रखत, विषाद न बिगरत । (कृ० २६)

विगरन-बिगड़ने, खराब होने । विगरहिं-बिगड़ते हैं । विगरहि-बिगड़ता है । विगरिए-१ खराब कीजिए, बिगाड़िए, २ नाराज़ हूजिए । उ० १ दे० 'विगरायल' ।

विगरिऔ-बिगड़ी हुई भी । उ० सुनत राम कृपालु के मेरी विगरिऔ बनि जाइ । (वि० ४१) विगरिहै-बिगड़ेगा । उ० दैव ! दिनहूँ दिन विगरिहै । (वि० २७२) विगरी-१ खराब, नष्ट, २ भूल, गलती, ३ खराब हुई । उ० १ विगरी-सँवार अजनीकुमार कीजे मोहिं । (ह० १४) २ विगरी सेवक की । (वि० ३४) विगरीयौ-बिगड़ी हुई भी । उ० घरियों तरति, विगरीयौ सुधरति बात । (क० ७।७४)

विगरे-१ बिगड़ने, बिगड़ने पर, २ बुरा होने पर । ३ बिगड़ गए । उ० २ विगरे सेवक स्वान ज्यों साहिब सिर गारी । (वि० १५०) विगरो-१ बिगड़ा हुआ, २ बिगड़ गया । उ० १ दे० 'विगरायल' ।

विगरायल-बिगड़ा हुआ, खराब, बिगड़ैल । उ० हौं तो विगरायल और का, विगरो न विगरिए । (वि० २७१)

विगसत-(स० विकास)-१ विकसित होती है, खिलती है, २ खिल उठी । विगसी-(स० विकास)-खिली प्रफु ल्लित हुई । उ० अनुराग-तड़ाग में भानु उदै विगसीं मनो मंजुल कज-कली । (क० २।२२)

विगसाइ-१ खिलाकर, २ खिला रहता है । उ० निसि मलीन यह, निसि दिन यह विगसाइ । (ब० ३)

विगसित-दे० 'विकसित' । उ० दीख जाइ उपवन बर सर विगसित बहु कंज । (मा० ४।२७)

विगार-(स० विकार)-१ बिगड़ने की क्रिया या भाव, बिगाड़ २ खराबी दोष, ३ झगड़ा, लड़ाई वैमनस्य । उ० १ सुधि न विचार, न विगार न सुधार सुधि । (गी० २।३२)

विगारा-(स० विकार)-बिगाड़ दिया, बिगाड़ा । उ० कौसल्यां अब काह विगारा । (मा० २।४९।४) विगारी-१ बिगाड़ी, खराब की, बुराई की, ३ शत्रुता की, ४ बिगाड़ने से । उ० ४ रावरी सुधारी जो विगारी विगरैगी मेरी । (वि० २४९) विगारे-बिगाड़ा । विगारेउ-बिगाड़ा, बिगाड़ दिया । उ० कछुक काज विधि बीच विगारेउ । (मा० २।१६०।१) विगारो-बिगाड़ा, खराब किया । उ० हारो विगारो मैं का को कहा केहि कारन खीझत हौ तो तिहारो । (ह० १६) विगार्यो-१ बिगाड़ा था, २ हानि पहुँचाई थी, अपकार किया था । उ० १ कहा विभीषन लै मिलो कहा विगार्यो बालि ! (दो० १५९)

विगारू-(स० विकार) १ बिगाड़, सुधार का उलटा, २ झगड़ा, शत्रुता । उ० १ नरदेह कहा, करि देखु बिचार विगारु गँवार न काजहि रे । (क० ७।३०)

विगोइए-(स० विगोपन)-१ बिगाड़िए, बिगाड़ो, नष्ट करो, २ नष्ट करता हूँ, बिगाड़ता हूँ । उ० २ जागिए न सोइए विगोइए जनम जाय । (क० ७।८३) विगोई-१ नष्ट कर दी, २ नष्ट हो गई, ३ भुलाया, ४ छिपाए । उ० २ राजु करत निज कुमति विगोई । (मा०२।२३।४)

विगोए-दे० 'विगोवै' । विगोयो-१ बिगाड़ा, नष्ट किया, गँवाया, २ छिपाया, ३ भुलाया । उ० १ माहि मूढ़ मन बहुत विगोयो । (वि० २४५) विगोवति-बिताती है, बुरी तरह बिताती है, खराब करती है । उ० बहु राधनी सहित सरु के तर तुम्हरे विरह निज जनम विगोवति । (गी० ५।१७) विगोवहु-१ नष्ट करते हो, खराब करते हो, २ भुलावे में डालते हो । उ० १ बिनु काज राज समाज महँ तजि लाज आपु विगोवहू । (जा० ७२)

विगोवा-१ धोखे में डाला, भरमाया, २ नष्ट किया, दुर्दशा की । उ०१ प्रथम मोहँ मोहि बहुत विगोवा । (मा०७।६६।३) विगोवै-१ नष्ट कर, बिगाड़, २ छिपाने, छिपाती है, ३ भुलाती है । उ० १ तुलसी अँसुवै रोइ रोइकै विगोवै आपु । (क० ५।११)

विग्यानी-(सं० विज्ञान)-ज्ञानी, विशेष ज्ञानवाला । उ० अनघ अदोष दच्छ विग्यानी । (मा० ७।७६।३)

विग्रह-(स० विग्रह)-लड़ाई, विरोध । उ० बैर न विग्रह आस न त्रासा । (मा० ७।४६।३)

विघटन-(स०विघटन)-१ विनाशना, बिगाड़ना २ तोड़ना, ३ नष्ट-भ्रष्ट करनेवाला । उ०१ पाप-ताप तिमिर-तुहिन विघटन पटु । (ह० ५) २ मानो धनु विघटन परिपाटी । (मा०१।२३४।३) विघटै-नाश करे, नाश करता है । उ० रजनीचर मत्तगयंद घटा, विघटै मृगराज के साज लरै । (क०६।३६)

विघटित-नष्ट किया हुआ, बिगाड़ा हुआ । उ० यदि अब ल्लय बाम विधि विघटित, बिषम बिषाद बढ़ाए । (गी० २।८८)

विघन-(स० विघ्न)-बाधा, रुकावट, अड़चन ।

विघ्न-दे० 'विघन' । उ० जौं हठि विघ्न बुद्धि नहिं बापी । (मा० ७।११८।२)

बिच-(सं० विच)-बीच, मध्य। उ० अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। (मा० १।२१।४)
बिचछन-(सं० विचक्षण)-चतुर, प्रवीण।
बिचर-(सं० विचरण)-विचर रहे हैं। उ० दसरथ अजिर बिचर प्रभु सोई। (मा०१।२०३।३) बिचरउ-दे० 'बिचरहु'। बिचरत-विचरता है,डोलता है, फिरता है। उ०सुक सनकादि मुक्त बिचरत तेउ भजन करत अजहूँ। (वि०८६) बिचरति-विचरण करती है, घूमती है। बिचरन-पर्यटन, घूमना-फिरना चलना। बिचरनि-चलना, फिरना। उ० जानु पानि बिचरनि मोहि भाई। (मा० १।१९९।६) बिचरहिं-घूमते हैं, फिरते हैं। उ० जे जग महँ बिचरहिं धरे रहे बिगत अभिमान। (स० १७१) बिचरहु-विचरण करो, फिरो, डोलो। उ० अस उर धरि महि बिचरहु जाइ। (मा० १।१३८।४)
बिचलत-(सं० विचलन)-विचलते, विचलित होते। उ० बिचलत सेन कीन्हि इह माया। (मा० ६।४७।२) बिचलि-विचलित होकर। उ० चले बिचलि मर्कट भालु सकल कृपाल पाहि भयातुरे। (मा० ६।९६ छं० १)
बिचलाइ-(सं० विचलन)-हटाकर, दूरकर, विचलित कर। उ० रे नीच! मारीच बिचलाइ, हति ताड़का। (क०६।१८) बिचलाए-हटाए, विचलित किए। उ० भारी भारी भूरि भट रन बिचलाए हैं। (गी० १।७२)
बिचार-(सं० विचार)-ख्याल, भावना, धारणा। उ० मुदितौं मथै बिचार मथानी। (मा० ७।११७।८)
बिचारत-(सं० विचार)-विचारते हैं, सोचते हैं। उ० हृदयँ बिचारत सभु सुजाना। (मा० १।२६।३) बिचारति-विचारती है। बिचारहिं-विचार करते हैं। बिचारहीं-विचारते हैं, विचारने लगे। उ० सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं। (मा० १।२६१।छं० १) बिचारहु-विचारो, सोचो। उ० मोर कहा कछु हृदयँ बिचारहु। (मा० ६।३६।४) बिचारा (१)-१ विचार, ख्याल, २ विचार किया। उ० २ तापस नृप मिलि मंत्र बिचारा। (मा० १।१७०।४) बिचारि-विचारकर, सोच समझकर। उ० कहहु नाथ गुन दोष मय एहि के हृदयँ बिचारि। (मा० १।१३०) बिचारिए-विचार कीजिए, समझिए। उ० आस रावरीयै, दास रावरो बिचारिए। (ह० २१) बिचारी (१)-(सं० विचार)-१ विचार कर, २ विचारनेवाला, ३ सोचा। उ०१ इनको बिलगु न मानिए बोलहिं न बिचारी। (वि० ३४) बिचारु-१ विचार कर, सोचकर, २ विचारो सोचो, ३ विचार, ख्याल। उ० २ करु बिलंब, बिचारु चारु मति। (वि० २४) ३ सबहिं बिचारु कीन्ह मन माहीं। (मा० २।८४।३) बिचारू-दे० 'बिचारु'। उ० ३ नाथ समुझि मन करिय बिचारू। (मा० २।१२४।२) बिचारे (१)-१ विचारा, समझा, २ सकल कर, विचार कर। उ० २ सुमति बिचारे बोलिये समुझि कुफेर सुफेर। (दो० ४३७) बिचारेउ-दे० 'बिचारहु'। बिचारेहु-विचारो, सोचो। उ० मन क्रम बचन सो जतन बिचारेहु। (मा० ५।२३।२)
बिचारा (२) (बेचारा)-दीन, विवश। उ० मृदुल चित मिथु बिचारा। (मा० ३।२३।४) बिचारी (२)-बेचारी, विवश। उ० माया खलु नर्तकी बिचारी। (मा० ७।११६।२) बिचारे (२)-बेचारे। उ० कामी काक बलाक बिचारे। (मा० १।३८।३)
बिचित्र-(सं० विचित्र)-अनोखा। उ० बिपुल बिचित्र बिहग मृग नाना। (मा० २।२३६।१)
बिच्छेदकारी-(सं० विच्छेदन)-काटनेवाला, अलग करने वाला। उ० सोक संदेह भय हर्षतम तर्षगण साधु-सद्युक्ति बिच्छेदकारी। (वि० ५७)
बिछुरत-(सं० वि-छेद)-१ अलग होता है, वियुक्त होता है, २ अलग होते, बिछुड़ते। उ० २ बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। (मा० १।५।२) बिछुरनि-बिछुड़ना, अलग होना। उ० तबतें बिरह रबि उदित एकरस सखि बिछुरनि वृष पाई। (कृ० २६) बिछुरे-१ अलग हुए, २ अलग होने पर, बिलगने पर। उ० २ बिछुरे ससि रवि, मन! नयननि तें पावत दुख बहुतेरो। (वि० ८७)
बिछोइ-(सं० विच्छेद)-अलगाव, जुदाई, वियोग, बिरह।
बिछोहइ-(सं० विच्छेद)-छुड़ाती है, दूर करती है, अलग करती है। उ० सुमिरत सकृत मोह मल सकल बिछोहइ। (जा० १०७) बिछोही-१ छोड़कर, २ अलग किया। उ० १ राजति तड़ित निज सहज बिछोही। (गी० २। १९) २ जेहि हौं परिपद कमल बिछोही। (मा०६।११।२) बिछोहे-अलग हुए। उ० राम प्रेम अतिसय न बिछोहे। (मा० २।१०२।२) बिछोहै-अलग कर देता है, दूर कर देता है। उ० जाको नाम अनख आलस कहें अघ अव गुननि बिछोहै। (वि० २३०)
बिछोहनि-छुड़ाने वाली, अलग करनेवाली। उ० सय मल बिछोहनि जानि मूरति जनक कौतुक देखहू। (जा० १०८)
बिछोहू-(सं० वि-छेद)-वियोग बिछुड़ना। उ० जौं जन तेउँ बन मधु बिछोहू। (मा० ६।६१।३)
बिजई-दे० 'बिजयी'। उ० कुंभकरन रावन सुभट सुर बिजइ जग जान। (मा० १।१२२)
बिजन-(सं० विजन)-एकांत।
बिजय-(सं० विजय)-१ जय, जीत, फतह, २ जय का भाई विजय जो भगवान का पार्षद था। दे० 'जय'। उ० २ जय अरु बिजय जान सब काऊ। (मा० १। १२२।२)
बिजयी-(सं० विजयी) जिसकी जीत हुई हो।
बियाग-(सं०वियोग)-बिछुड़ना अलग होना।
बिज्ञान-(सं० विज्ञान)-विशेष ज्ञान, ज्ञान। बिज्ञानमय-विज्ञानरूप, विज्ञानयुक्त। दे० 'बिग्यान'।
बिज्ञाना-दे० 'बिज्ञान'।
बिज्ञानी-(सं० विज्ञानिन्)-विद्वान्, विशेष ज्ञानवाला।
बिटप-(सं० विटप)-१ पेड़, वृक्ष, २ यमलार्जुन। उ० २ खग, मृग, ब्याध, बिटप, जड़ जमन कवन सुर तारे। (वि० १०१)
बिटपी-वृक्ष।
बिटपु-दे० 'बिटप'।
बिडंब-दुर्दशा, दुर्गति। उ० करि दृढ़ बिडंब प्रभा निदरी। (मा० ७।१०।१।३)

बिडबना-(सं० विडंबन)-१ नकल, स्वरूप बनाना, २ उपहास, हँसी, ३ निंदा। उ० २ केहि कै लोभ बिडबना कीन्हि न यहि संसार ? (दो० २६१)

बिडबित-१ तिरस्कृत, अपमानित, २ त्रासित, डराया। उ० १ दिव्य देवी वेष देखि, लखि निशिचरी जनु बिडबित करी बिरव बाधा। (वि० ४३) २ तुलसी सूझे सूर ससि, समय बिडबित राहु। (दो० ३३७)

बिडरि-डरकर, भयभीत होकर। उ० बिडरि चले बाहन सब भागे। (मा० ११८४।२)

बिडरो-(सं०बिट) १ विशेष भय, २ छितराकर।

बिडार-(सं० विट्)-१ भगाते हैं, २ भगाकर। उ० २ तुलसी सोरत तीर तरु मानस हंस बिडार। (स० ३८)
बिडारी-१ भगाई, २ भगाकर। उ० २ कुमकरन कपि फौज बिडारी। (मा० ६।६७।४)

बिढ़इ-(सं० वृद्धि)-१ कमाकर अर्जन कर, २ सामर्थ्य। उ० १ बिढ़इ सुकृत जसु कीन्हेउ भोगू। (मा० २।१६०।१) बिढ़ई-दे० 'बिढ़इ'।

बिढ़तो-१ कमाई, २ लाभ। उ०१ दै पठयो पहिलो बिढ़तो ब्रज सादर सिर धरि लीजै। (कृ० ४६)

बित-दे० 'वित्त'। उ० सुत बित नारि भवन परिवारा। (मा० ६।६१।४)

बितई-(सं० व्यतीत)-बिता दी, खतम कर दी। उ० सुजन सुभाय सराहत सादर अनायास साँसति बितई है। (वि० १३६) बितए-बिताए, खतम किए। उ० रहे इक टक भर नारि जनकपुर, लागत पलक कलप बितए, री। (गी० १।७६)

बितान-(सं० वितान)-१ चँदवा, मंडप, शामियाना, २ फैलाव, विस्तार। उ० १ सजहिं सुमंगल कलस बितान बनावहिं। (जा० १३२)

बिताना-दे०'बितान'। उ०१ मधु बलित बर बेलि बिताना। (मा० २।१३७।३)

बितैहो-(सं० व्यतीत)-१ बिताओगे, व्यतीत करोगे, २ खत करोगे। उ० २ अवगुन अमित बितैहो। (वि० २७०)

बित्त-(सं० वित्त)-१ धन, दौलत, पूँजी, २ सामर्थ्य, शक्ति। उ० १ देहिं निछावरि बित्त बिसारी। (मा० १।२६२।३)

बिथक-(सं० स्थक)-थक जाते हैं। उ० रचना विचित्र बिलोकि लोचन बिथक ठौरहि ठौरही। (पा० ११)
बिथकनि-विशेष थकना। उ० धावनि, नवनि, बिलोकनि, बिथकनि बसै तुलसि उर आवै। (गी० ३।३) बिथकहिं-स्तंभित होते हैं, थकित होते हैं। उ० बिथकहिं बिबुध बिलोकि बिलासू। (मा० १।२१३।४) बिथकि-१ विशेष थककर, २ तन्मय या लीन होकर। उ० १ सबु रनि धामु बिथकि सखि रहेउ। (मा० २।२८३।४) बिथकी-थकित, स्तंभित। उ० बिथकी है ग्वालिनि-सील-मन मोए। (कृ० ११) बिथके-१ थक गए, २ रुक गए ३ अचंभित हो गए। उ० १ बिथके बिलोचन निमेषै बिसराइ कै। (गी० १।८२) २ बिथके हैं बिबुध बिमान। (गी० १।३)

बिथकित-शिथिल, हैरान। उ० तुलसी भइ मति बिथकित करि अनुमान। (ब० २३)

बिथा-(सं० व्यथा)-पीड़ा, दुख।

बिथारे-(सं० वितरण)-फैला दिए हैं। उ० ललित [illegible] लसित मनिगन बिथारे। (गी० १।३)

बिथुरित-फैले, बिखरे। उ० बिथुरित सिररुह-बरूथ कुंचित बिच सुमन-जूथ। (गी० ७।३)

बिथुरे-(सं० वितरण)-बिखरे हुए, फैले हुए। उ० [illegible] नभ मुकुताहल तारा। (मा० ६।१२।२)

बिदरत-(सं०विदीर्ण)-बिदरता है फटता है, खंड-खंड [illegible] है। उ० बिदरत छिन छिन होत निनारे। (कृ० [illegible])
बिदरेउ-विदीर्ण हुआ, फट गया। उ० हृदय न बिदरेउ पंक जिमि बिछुरत प्रीतम नीरु। (मा० २।१४६) बिदर्यो-फटा, फट गया। उ० हृदय दाड़िम ज्यों न [illegible], समुझि सील सुभाउ। (गी० २।२७)

बिदरनि-१ फाड़नेवाली, विदीर्ण करनेवाली, २ फाड़ने या मारने की रीति। उ० १ बिदरनि अगजाल की। (क० ७।१८२) २ रथनि सों रथ बिदरनि बलवान की। (क० ६।४०)

बिदले-(सं०वि+दलन) विदारण किए, फाड़े। उ० तैं केहरि के बिदले अरि कुंजर छैल छवा से। (ह० १८)

बिदा-(अर०)-प्रस्थान, गमन रवानगी, बिदाई। उ० भूधर मोर बिदा करि साज सजायउ। (पा० १२१)

बिदारन-फाड़नेवाले, फाड़नेवाले। उ० जय कवच सुर बिसाल-तरलाल बिदारन। (क० ७।११४)

बिदारहिं-(सं०विदीर्ण) फाड़ते हैं। उ० उदर [illegible] उपारहिं। (मा०६।८१।३) बिदारि-विदीर्ण कर, फाड़कर उ० भैरी बिदारि भए बिकराल। (क०७।१२८) बिदारी-[illegible] टुकड़े टुकड़े किया। बिदारे-१ बिदारे हुए, फाड़ हुए, फाड़ा, विदीर्ण किया। उ० १ मारे पछारे उर बिपुल भट कहँरत परे। (मा० ३।२०। छं० २)। [illegible]रसि-फाड़ा, फाड़ डाला। उ० बोचन्ह मारि [illegible] देही। (मा० ३।२१।१०)

बिदित-(सं० विदित)-ज्ञात, मालूम। उ० सब प्रभाउ बिदित न केही। (मा० २।१०३।३)

बिदिसहु-(सं० वि + दिशा)-दिशाओं के कोनों में। उ० काल दिसि बिदिसहु माहीं। (मा० १।१८९।३)

बिदिसि-(सं० विदिशा)-दिशाओं का कोना। उ० [illegible] मानर, बिदिसि दिसि बानर है। (क० ५।१७)

बिदुषन्ह-(सं० विदुष)-पंडित गण, विद्वान लोग। बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा। (मा० १।२४२।१)

बिदूषक-(सं० विदूषक) भाँड़, हँसानेवाला। उ० बेद बिदूषक बिस्व बिरोधी। (मा० २।१६८।२)

बिदूषहिं-(सं० दोष)-दोष लगाते हैं। उ० इन्हहि न बिदूषहिं काऊ। (मा० १।२७९।२)

बिदेस-(सं० विदेश)-परदेश, दूसरा देश। उ० [illegible] करहु सब काज सुभ, भगाउ देस बिदेस। (प्र० १।[illegible])

बिदेह-(सं० विदेह)-१ राजा जनक, २ बिना देह जिसे देह की सुधि बुधि न हो। १ [illegible] (मा० १।२१२।२) बिदेहनगर-जनकपुर। बिदेह[illegible]

जानकी, जनक की पुत्री सीता। उ० येहि पटतरौं विदेह कुमारी। (मा० १।२३०।४) विदेहपन–राजा जनक का प्रण। उ०तब विदेहपन बंदिन्ह प्रगटि सुनायउ। (जा०१८)
विदेहता–१ देहहीनता, २ देहाभिमान से रहित होना। उ० २ कब ग्रज तज्यौ, ज्ञान कब उपज्यौ ? कब विदेहता लही है। (कृ० ४२)
विदेहु–दे० 'विदेह'। उ० १ २ भयउ विदेहु विदेहु विसेषी। (मा० १।२१५।४)
विदेहू–दे० 'विदेहु'। उ० २ भा निषाद तेहि समयँ विदेहू। (मा० २।२३४।४)
विद्दरत–(सं० विदारण)–विदारण करते हैं, फाड़ते हैं। उ० विकट कटक विद्दरत बीर बारिद जिमि गज्जत। (क० ६। ४७)
विद्या–(सं० विद्या)–ज्ञान, शास्त्र, शिक्षा। उ० विद्या विनय निपुन गुन सीला। (मा० १।२०४।३)
विद्रुम–(सं० विद्रुम)–मूँगा। उ० मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरीं विद्रुम रचीं। (मा० ७।२७। छं० १)
विधंस–(सं० विध्वंस)–नष्ट, बर्बाद। उ० जग्य विधंस बिलोकि भृगु रच्छा कीन्हि मुनीस। (मा० १।६४)
विधंसा–दे० 'विधंस'। उ० कीन्ह कपिन्ह सब जग्य विधंसा। (मा० ६।७६।१)
विधंसि–नाश कर, समाप्त कर, तोड़-फाड़कर। उ० बन विधंसि सुत बधि पुर जारा। (मा० ६।२४।३)
विध–(सं० विधि)–१ रीति, व्यवहार, २ तरह, भाँति। उ० २ संसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा। (मा० ६।९०। छं० १)
विधवन्ह–विधवा स्त्रियाँ। उ० विधवन्ह के सिंगार नवीना। (मा० ७।११।३) विधवा–(सं० विधवा)–धव से विहीन। जिसका पति मर गया हो।
विधातहि–विधाता को, ब्रह्मा को। उ० विलपहिं बाम विधातहि दोष लगावहिं। (पा० २४) विधाता–(सं० विधाता)–ब्रह्मा। उ० सुभग सेज कत सृजत विधाता। (मा० २। ११६।४) विधातो–विधाता भी, ब्रह्मा भी। उ० होतो मंगलमूल तू अनुकूल विधातो। (वि० १२१)
विधान–(सं० विधान)–नियम, रीति। उ० चलीं बेद विधान सँवारी। (मा० १।१००।१)
विधाना–दे० 'विधान'। उ० बेद विदित कहि सकल विधाना। (मा० २।६।३)
विधानी–विधान करनेवाला, रचनेवाला। उ० छुटी चारहीं लोक-बेद विधि करि सुविधान विधानी। (गी० १।१२)
विधि–(सं० विधि)–१ भाँति, तरह, २ भाग्य, किस्मत, ३ ब्रह्मा, ४ कार्य करने की रीति, ५ किसी ग्रंथ या शास्त्र में लिखी व्यवस्था, ६ क्रिया का एक रूप जिसमें आज्ञा देते हैं, ७ आचार-व्यवहार। उ० १ जदपि साधु सब ही बिधि हीना। (वै० ४१) २ विधि के सुंदर होत सुंदर सुदाय के। (गी० १।६२) ३ विधि को न बसाइ उजारो। (गी० २।६६) विधिहिं–दे० 'विधिहि'। विधिहि–ब्रह्मा को। उ० प्रातनिसि विधिहि मनावत रहहीं। (मा० ७।२२।३) विधिहू–दे० 'विधिहू'। विधिहू–ब्रह्मा भी। उ० तेरे हेर लोपे लिपि विधिहू गनक की। (क० ७।२०)

विधिवत–(सं० विधिवत्)–विधिपूर्वक, नियमपूर्वक। उ० लिंग थापि विधिवत करि पूजा। (मा० ६।२।३)
विधिसुत–विश्वकर्मा जो ब्रह्मा के पुत्र कहे गए हैं। उ० मनहुँ भानु-मंडलहि सँवारत धर्यो सूत विधि-सुत बिचित्र मति। (गी० ७।७)
विधुंतुद–(सं० विधुंतुद)–राहु। उ० जनु कोपि दिनकर कर निकर जहँ तहँ विधुंतुद पोहही। (मा० ६।६२। छं० १)
विधु–(सं० विधु)–चंद्रमा, शशि। उ० बार बार विधु बदन बिलोकति लोचन चारु चकोर किये। (गी० १।७) विधुहि–चंद्रमा को। उ० विधुहि जोरि कर बिनवति कुलगुर जानि। (ब० ४१)
विधूम–१ निर्धूम, बिना धुएँ की, २ वैद्यक में धातुओं को भस्म करने की एक रीति। उ० १ जारि बारि कै विधूम, बारिधि बुताइ लूम। (क० ५।२६)
विन–(सं० विना)–बिना, बिला, बगैर। बिनहिं–बिना ही। उ० छोइ मरनु जेहिं बिनहिं श्रम दुसह बिपत्ति बिहाइ। (मा० १।५६)
विनइ–(सं० विनय)–वंदना करके, विनय करके। उ० विनइ गुरहि गुनि गनहि गिरिहि गननाथहि। (पा० १) विनव–(सं०विनय)–विनती की। उ०भाइन्ह सहित बहोरि विनव रघुबीरहि। (जा० १६६) बिनवउँ–विनती करता हूँ। उ० महाबीर बिनवउँ हनुमाना। (मा० १।१७।१) बिनवत–प्रार्थना करता है। बिनवति–विनती करती है। उ० विधुहि जोरि कर बिनवति कुलगुरु जानि। (ब० ४१)
विनई–विनयशील। उ० दोउ बिनई बिनइ गुन मंदिर। (मा० ७।२५।४)
विनतहि–(सं० विनता)–विनता को। उ० कहुँ बिनतहि दीन्ह दुखु तुम्हहि कौसिलाँ देव। (मा० २।११) बिनता–(सं० विनता)–दक्ष प्रजापति की एक कन्या जो कश्यप की स्त्री और गरुड़ की माता थी।
विनती–(सं० विनय)–प्रार्थना, विनय। उ० बिनती करइँ जोरि कर रावन। (मा० ५।२२।४)
विनय–(सं० विनय)–मिन्नत, विनती, प्रार्थना। उ० जौं जिय धरिअ विनय पिय मोरी। (मा० २।१५५।४)
विनसइ–(सं० विनाश)–नष्ट हो जाता है, विनष्ट हो जाता है। उ० बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग। (मा० ४।१५ ख)
विनसाइ–(सं० विनाश)–नष्ट हो, नष्ट हो सकता है। उ० कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीर सिंधु बिनसाइ। (मा० २। २३१)
विना–(सं० विन)–बिला, बगैर। उ० बर मारिए मोहि बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू। (क० २।६)
विनाए–(सं० वीनना)–बिनवाया, चुनवाया। मु० बिनाए नाक चना–परेशान किया। उ० विनाए नाक चना हैं। (गी० ७।१३)
विनास–(सं० विनाश)–नाश, संहार।
विनासन–नष्ट करनेवाला। उ० दससीस बिनासन बीस भुजा। (मा० ७।१४।२)
विनासि–(सं०विनाश)–विनष्ट कर, नाश कर। उ०दंभ लोभ लालच उपासना विनासि नीके। (वि० १८४) विनासी–

नष्ट कर दिया। उ० करम उपासना कुबासना विनास्यो ज्ञान। (क० ७।८४)
विनिंदक-(सं० वि+निंदक)-विशेष निंदा करनेवाला, नीचा दिखानेवाला। उ० तड़ित विनिंदक पीत पट उदर रेख वर तीनि। (मा० १।१४७)
विनीत-(सं० विनीत)-विनय-युक्त, विनीत, नम्र। उ० सुनि उमा वचन विनीत कोमल सकल अबला सोचहीं। (मा० १।६७। छं० १)
विनीता-दे० 'विनीत'। उ० नवहिं आइ नित चरन विनीता। (मा० १।१८२।७)
विनु-दे० 'विन'। उ० वैद्य अनेक उपाय करहिं जागे बिनु पीर न जाई। (वि० १२०)
विनोद-(सं० विनोद)-खेल, आनंद, क्रीड़ा। उ० एहि विधि सिसु विनोदु प्रभु कीन्हा। (मा० १।२००।४)
विनोदु-दे० 'विनोद'। उ० मोजनु करहिं सुर अति बिलंबु बिनोदु सुनि सचु पावहीं। (मा० १।६६। छं० १)
विपच्छ-(सं० विपक्ष)-विमुख, प्रतिकूल। उ० परै उपास कुबेर घर जो विपच्छ रघुबीर। (दो० ७२)
विपति-(सं० विपत्ति)-दु:ख, कष्ट, आफत। उ० परी आसु फल विपति घनेरी। (मा० १।४३।४)
विपत्ति-दे० 'विपति'। उ० होइ मरनु जेहिं बिनहिं श्रम दुसह विपत्ति बिहाइ। (मा० १।२६)
विपदा-दे० 'विपति'। उ० तिन्ह के सम बैभव या बिपदा। (मा० ७।१४।७)
विपरीत-(सं० विपरीत)-उलटा, विरुद्ध। उ० बिधि बिपरीत चरित सब करई। (मा० ६।११।२)
विपरीता-दे० 'विपरीत'। उ० भयउ कराल काल बिपरीता। (मा० २।२७।३)
विपिन-(सं० विपिन)-जंगल, वन। उ० खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई। (मा० १।४३।४)
विपुल-(सं० विपुल)-१ प्रशस्त, बड़ा, २ बहुत। उ० २ बालचरित चहुँ बंधु के बनज बिपुल बहु रंग। (मा० १।४०)
विपुलाई-अधिकता। उ० राम तेज बल बुधि बिपुलाई। (मा० २।२६।१)
विप्र-(सं० विप्र)-ब्राह्मण। उ० विप्र सहित परिवार गोसाईं। (मा० २।३।२) विप्रन्ह-ब्राह्मणों। उ० विप्रन्ह सहित गवनु गुर कीन्हा। (मा० २।२०३।१) विप्रहु-हे ब्राह्मणो! उ० विप्रहु श्राप बिचारि न दीन्हा। (मा० १।१७४।२)
विफल-(सं० निष्फल)-निष्फल, व्यर्थ। उ० बिफल होहिं सब उद्यम ताके। (मा० ६।६२।२)
विबर-(सं० विवर)-बिल, छेद, माँद, गुफा, कंदरा। उ० भूमि बिबर एक कौतुक पेखा। (मा० ७।२४।३)
बियरन (१)-(सं० विवरण)-वर्णन, विवेचना।
बिवरन (२)-(सं० विवर्ण)-बदरंग, उदास, शोभारहित, श्रीहीन। उ० बिबरन भयउ निपट नरपालू। (मा० २।२६।३)
बिबराए-(?) खोला। उ० मुनि निज ज्ञान राम बिबराए। (मा० ७।११।४)
बिबरिहि-(?) सुलझ जायगा। उ० नीर सगुन बिबरिहि अगार होइहि धरम निआउ। (प्र० ३।६।२)
बिबर्ध-बढ़ता है, बढ़ता जाता है। उ० सेवत विषय बिबर्ध जिमि नित नित नूतन मार। (मा० ६।६२)
बिबल-विशेष बल, अधिक बल। उ० त्रिबिध बिबल तें ते हयहिं तुलसी कहहिं प्रमान। (स० ६०७)
बिबस-(सं० विवश)-१ मजबूर, लाचार, विवश, २ परतंत्र, पराधीन। उ० १ बेद-बुध बिद्या पाइ बिबस बलकहीं। (क० ७।६८) बिबसहु-विवश भी।
बिबहार-(सं० व्यवहार)-१ आचार, व्यवहार, रीति-नीति, २ रुपए पैसे की लेन देन। उ० १ कुल-बिबहार, बेद बिधि चाहिय जहँ जस। (जा० १२६)
बिबाकी-(फा० बेबाकी)-चुकता, भुगतान, खत। उ० महित सेन सुत कीन्हि बिबाकी। (मा० १।२४।२)
बिबाक-बेबाक किया, छोड़ा। उ० मे सनेह बिबस बिदेहता बिबाके हैं। (गी० १।६२)
बिबाद-(सं० विवाद)-कलह, झगड़ा। उ० जिमि पाखंड बिबाद तें गुप्त होहिं सदग्रंथ। (मा० ४।१४) बिबादन-(सं० विवाद)-झगड़े को, विवाद करने को। उ० यह तो मोहिं खिझाइ कोटि बिधि उलटि बिबादन आइ अगाऊ। (कृ० १२)
बिबाह-(सं० विवाह) ब्याह, शादी। उ० उमा महेस बिबाह बराती। (मा० १।४०।४)
बिबाहहु-विवाह करो। उ० जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहि माँगें देहु। (मा० १।७६) बिबाहीं-१ ब्याही, २ ब्याही गई थी। उ० २ सबहु सती सकाहि बिबाहीं। (मा० १।६८।३) बिबाही-ब्याहा, ब्याह किया। उ० पच कहँ सिव सती बिबाही। (मा० १।७६।४)
बिबाहु-दे० बिबाह'।
बिबाहू-दे० 'बिबाह'। उ० सीय राम कर करै बिबाहू। (मा० १।२४६।२)
बिबिध-(सं० विविध)-बहुत से, अनेक तरह के। उ० साइअ भयउ बिबिध बिधि, जाइ न सो गनि। (जा० १०४) बिबिध बिधान बाजने बाजे। (मा० १।३४६।२) बिबिधि-'विविध' का स्त्रीलिंग। उ० बिबिधि पाँति बैठी जेवनारा। (मा० १।६६।४)
बिबुध-(सं० वि+बुध)-देवता, देव। उ० हिमवान कन्या जोग बर बाउर बिबुध बंदित सही। (पा० १८) बिबुध नदी-देवताओं की नदी, गंगा। उ० ताकहँ बिबुध नदी बैतरनी। (मा० ३।२।४)
बिबुधेस-(सं० विबुधेश)-देवताओं के राजा इंद्र। उ० जयति बिबुधेस धनदादि दुर्लभ। (वि० ३६)
बिबुधेस-दे० 'बिबुधेस'। उ० जीते जातुधान जे जितैया बिबुधेस को। (क० १।२१)
बिबि-(सं० द्वि)-दो, दोनों। उ० सोभित स्रवन कनक-कुंडल कल लंबित बिबि भुज मूले। (गी० ७।१२)
बिबेक-(सं० विवेक)-ज्ञान, सत्यासत्य का विचार। उ० धन बिबेक जय देह बिधाता (मा० १।७।१)
बिबेका-दे० 'बिबेक'। उ० कहहु नाथ अति बिमल बिबेका। (मा० १।११।२)
बिबेकी-(सं० विवेकिन्)-ज्ञानी, ज्ञानवान। उ० ज्ञान बढ़िक मुनि परम बिबेकी। (मा० १।७१।२)

विवेकु–दे० 'विवेक'। उ० प्रिया हास रिस परिहरहि मागु बिचारि बिबेकु। (मा० २।३२)
विवेकू–दे० 'विवेक'। उ० नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। (मा० १।२७।४)
विभंजन–नाश करनेवाला। विभजनि–नाश करनेवाली। उ० रामकथा कलि कलुष बिभंजनि। (मा० १।३१।२)
विभजय–नष्ट करो। उ० द्वद विपति भव फद बिभंजय। (मा० ७।३४।४) विभंजि–नष्ट करके, तोड़कर। उ० आतुर बहोरि बिभंजि स्यदन् सूत हति व्याकुल कियो। (मा० ६।८४।छ० १)
विभव–(स० विभव)–ऐश्वर्य, सपत्ति, धन। उ० ते जनु सकल बिभव बस करहीं। (मा० २।३।३)
विभाग–(स० विभाग)–भाग, हिस्सा। उ० महा निरुपन धरम बिधि बरनहिं तत्त्व विभाग। (मा० १।४४)
विभागा–दे० 'विभाग'। उ० बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा। (मा० १।४०।३)
विभिचारी–(स०व्यभिचारिन्)–पर-स्त्री-गामी, व्यभिचारी। उ०व्यसनी धन सुभगति बिभिचारी। मा० ३।१७।८)
विभीखन–दे० 'विभीषन'।
विभीखनु–दे० 'विभीषन'।
विभीषण–(स०)–दे० 'विभीषन'।
विभीषन–(स० विभीषण)–रावण का भाई जो राम का भक्त था। रावण की मृत्यु के बाद यही लका का राजा हुआ। उ० नाम बिभीषन जेहि जग जाना। (मा० १। १७६।३) विभीषनहिं–विभीषण को। उ० सोइ सपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ। (मा० ५।४९ ख)
विभीषनु–दे० 'विभीषन'। उ० आरत बिभीषनु राखेउ दीन्हेउ राजु अखडु। (मा० ५।४६ क)
विभु–(स० विभु)–प्रभु सर्वव्यापी। उ० जौं अनीह ब्यापक बिभु कोई। (मा० १।१०९।१)
विभूति–(स० विभूति)–सपत्ति धन, ऐश्वर्य। उ० भोग बिभूति भूरि भर राखे। (मा० २।२१४ ३)
विभूती–दे० 'विभूति'। उ० कहि न जाइ कछु नगर बिभूती। (मा० २।१।२)
विभूषन–(स० विभूषण)–गहना, आभूषण। उ० सहुगा सिसिहि बिभूषन जैसें। (मा० २।३७।४)
विभेद–(स० विभेद)–भेद, अतर। विभेदकरी–विभेद या भेद करनेवाली।
विभेदा–दे० 'विभेद'। उ० समदरसी मुनि बिगत बिभेदा। (मा० ७।३२।३)
विभो–(स० विभो)–हे सर्वव्यापी! उ० अवधेस सुरेस रमेस बिभो। (मा० ७।१४।१)
विमत्त–मतवाले। उ० जे ग्यान मान बिमत्त तव भवहरनि भक्ति न आदरी। (मा० ७।१३। छ० ३)
विमद–(स० वि+मद)–मद से रहित, गर्वरहित। उ० सम अभूतरिपु बिमद बिरागी। (मा० ७।३८।१)
विमर्दि–(स० वि+मर्दन)–मर्दन करके।
विमल–(स० विमल)–शुद्ध, मल से रहित, निर्मल। उ० बानि बिमल जस भाजन जानी। (मा० ६।२४।६)
विमात–(स० विमाता) सौतेली मा, मैमा।
विमातु–(स० विमाता)–सौतेला। उ० भयउ बिमात्र बधु लघु तासू। (मा० १।१७६।३)
विमान–(स० विमान)–१ आकाश का जहाज़, वायुयान, २ रथ, ३ घोड़ा, ४ अरथी। उ० १ लगे सँवारन सकल सुर बाहन बिबिध बिमान। (मा० १।९१)
विमानु–दे० 'विमान'।
विमुक्त–(स० वि+मुक्त)–सांसारिकता से मुक्त, जीवन्मुक्त। उ० सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु बिषइ। (मा० ७।१५।३)
विमुख–(स० विमुख)–विरुद्ध, खिलाफ। उ० बिषय बिमुख बिरागरत होई। (मा० ७।४५।१)
विमूढ–(स०वि+मूढ)–महा मूढ, अत्यत मूर्ख। उ० किमि समुझौं मैं जीव जड़ कलिमल ग्रसित बिमूढ। (मा०१।३०ख)
विमूढ़ा–दे० 'विमूढ'। उ० सील काम बस कृपिन बिमूढ़ा। (मा० ६।३१।१)
विमोचन–(स० विमोचन)–छुड़ानेवाला, मुक्तकर्त्ता। उ० भए सोचबस सोच बिमोचन। (मा० २।२२६।३) विमोचनि–छुड़ानेवाली। उ० निज सरूप रतिभानु बिमोचनि। (मा० १।२२७।१)
विमोचहिं–छोड़ते हैं, निकालते हैं। विमोचहीं–निकालती हैं, बहाती हैं, छोड़ती हैं। उ० बहु भाति बिधिहि लगाइ दूषन नयन बारि बिमोचहीं। (मा० १।९७। छ० १)
विमोह–(स० विमोहन)–मोहित हों। उ० श्री बिमोह जिसु रूपु निहारी। (मा० १।१३०।२)
विमोहन–(स० विमोहन)–मोहित करना।
विमोहनि–मोहित करनेवाली। उ० दनुज बिमोहनि जन सुखकारी। (मा० ७।७३।१)
विमोहनसीला–मोहित करनेवाली। उ० सुर हित दनुज बिमोहनसीला। (मा० १।११३।४) विमोहा–१ मोहित किया, २ मोह। उ० २ कीन्ह राम मोहि बिगत बिमोहा। (मा० ७।८३।३)
विय (१)–(स० बीज)–बीज, गुठली। उ० बरनै जामवंत तेहि अवसर, बचन बिबेक बीर रस बिय के। (गी०५।१)
विय (२) (स० द्वि)–१ दो, २ दूसरा। उ०२ प्रथम बद्दे पद बिय बिकल, चहत प्रकित निज काज। (दो० १९१)
विये–(स० द्वि)–दूसरे। उ० कहिये की न बावरि बात बिये तें। क० ७।१२१) वियौ–(स० द्वि)–दूसरा भी। उ० कहाँ रघुबीर सो बीर बियौ है। (क० ६।२१)
विया (१)–(स० विजनन)–उत्पन्न हुआ। वियो (१)–(स० विजनन)–उपजा, पैदा हुआ।
विया (२)–(स० द्वि)–दूसरा अन्य। उ० तो सो ग्यान निधान को सर्बग्य बिया र ? (वि० ३३) वियो (२)–(स० द्वि)–दूसरा ही। उ० तुलसी सो समान बड़ भागी को कहि सकै बियो हौं। (गी० ३।१७)
विया (३)–(स० बीज)–बीज, बीया।
वियाह–(स० विवाह)–ब्याह, शादी।
वियाहन–(स० विवाह)–विवाह करने। उ० कहहिं बियाहन चलहु बुलाइ अमर सब। (पा० १००) वियाहब–ब्याहेंगे, ब्याह करेंगे।
वियाहा–ब्याह, बियाह।
वियाहू–दे० 'वियाह'।

बियो (२)-(स० बीज)-बीज।
बियोग-(स० वियोग)-विरह, जुदाई। उ० राम वियोग विकल सब ठाढ़े। (मा० २।८४।१) बियोगन्हि-वियोगों से। उ० यहु रोग बियोगन्हि लोग हए। (मा० ७।१४।२)
बियोगा-दे० 'बियोग'। उ०कृस तन श्री रघुबीर बियोगा। (मा० ७।२।१)
बियोगी-वियोगी, बिछुड़ा, छूटा हुआ। उ० मरमारथी प्रपंच बियोगी। (मा० २।९३।२)
बियोगु-दे० 'बियोग'। उ० जौं पै प्रिय बियोगु बिधि कीन्हा। (मा० २।८६।३)
बियोगू-दे० 'बियोग'। उ० बरनत रघुबर भरत बियोगू। (मा० २।३१८।१)
बिरंचि-दे० 'बिरचि'। उ० दे० 'बिरचा'।
बिरचि-(स० बिरचि)-ब्रह्मा, विधाता। उ० विरचे बिरचि बनाइ बाँची रुचिरता रचौ नहीं। (जा० ३६)
बिर-(स० वीर)-वीर, बहादुर।
बिरक्त-(स० विरक्त)-उदास, त्यागी। उ० कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई। (मा० ७।५४।२)
बिरचत-(स० विरचन -१ बनाते हैं, २ बनाते हुए रचते हुए। उ० २ विरचत हंस काग किय जेहीं। (मा० १। १७४।१) बिरचति-१ बनाती है, रचती है, २ रचते हुए। बिरचि-रचकर, बनाकर। उ० कपट नारि बर बेष बिरचि मंडप गईं। (जा० १४७) बिरची-रची, बनायी। उ० बिरची बिधि सँकेलि सुषमा सी। (मा० २।२३० ३) बिरचे-बनाया। उ०दे० 'बिरचि'। बिरचेउ-बनाया, रचा।
बिरज-दे० 'बिरज'। बिरज-रजरहित, विशुद्ध। उ० व्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा। (मा० ७।५८।४)
बिरत-(स० विरत)-१ विरक्त, अलग, २ वैरागी, साधु। उ० २ बिरत, करमरत, भगत, मुनि, सिद्ध ऊँच अरु नीचु। (दो० २२३)
बिरति-(स० विरति)-उदासीनता त्याग। उ० बिरति ग्यान बिग्यान दृढ़ राम चरन अति नेह। (मा० ७।५३)
बिरथ-(स० वि + रथ)-रथरहित, बिना रथ का। उ० रावनु रथी बिरथ रघुबीरा। (मा० ६।८०।१)
बिरद-(स० विरुद)-यश, बड़ाई।
बिरदावलि-दे० 'बिरिदावली'।
बिरदु-दे० 'बिरद'।
बिरदैत-(स० विरुद) प्रसिद्ध वीर, यशस्वी योद्धा। उ०धरन धरन बिरदैत निकाया। (मा० ६।७३।२)
बिरलइ-बिरला ही। दे० 'बिरला'।
बिरला-(स० विरल)-कोई-कोई, शायद ही कोई।
बिरले-दे० 'बिरला'। उ० तुलसी ऐसे सतजन बिर[illegible] ससार। (वै० २६)
बिरवँ-बिरवा में। दे० 'बिरवा'[illegible] बिरवँ [illegible] जनु पानी। (मा० २।५।३)
बिरव-दे० 'बिरवा'।
बिरवाने-वृक्षों में, पेड़ों में [illegible]
बिरवनि रूप-करह [illegible]
बिरवा-(स० विरुट) वृक्ष, [illegible]
बिरवा बिरंचि बिरचो [illegible]

बिरह-(स० विरह)-वियोग, बिछोह, बिछुड़न। उ० बेलिक बीच बिरह परमारथ जानत हौ बिधौं नाहीं। (कृ० ३३)
बिरहनी-दे 'बिरहिनि'।
बिरहवंत-विरही, वियोगी। उ० बिरहवंत भगवतहि देखी। (मा० ३।५१।२)
बिरहा-दे० 'बिरह'। उ० अब ब्यौंत करै बिरहा दवनी। (क० ७।१३३)
बिरहित-छोड़ा हुआ, अलग।
बिरहिन-दे० 'बिरहिनि'।
बिरहिनि-(स० विरहिणी)-वियोगिनी, अपने प्रिय से अलग स्त्री। उ० घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई। (मा० १।२३८।१)
बिरहिनी-दे० 'बिरहिनि'। उ० जात निकट न बिरहिनी अरि अकनि ताते बैन। (गी० २।२)
बिरही-(स० विरहिन्)-वियोगी, बिछुड़ा। उ० बिरही इव प्रभु करत बिषादा। (मा० ३।२७।१)
बिरहु-दे० 'बिरह'।
बिराग-(स० विराग)-वैराग्य की अवस्था। उ० बँधेउ सनेह बिदेह, बिराग बिरागेउ। (जा० ४६)
बिरागी-जिसके हृदय में वैराग्य हो, विरक्त। उ०जदि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगत मोह मुनिबृंदा। (मा० १।१८६।२)
बिरागु-वैराग्य, संसार से विरक्त होने का भाव। उ० देखि नगरु बिरागु बिसरावहिं। (मा० ७।२७।१)
बिरागेउ-विरक्त हो गए, दूर हो गए, अलग हो गए। उ० बँधेउ सनेह बिदेह, बिराग बिरागेउ। (जा० ४६)
बिराज-(स० वि० + रजन)-१ विराजमान शोभित, २ उपस्थित, बैठा, वर्तमान, ३ विराजमान है। उ० ३ बर बिराज मंडप महँ बिस्व बिमोहइ। (जा०१४५) बिराजइ-१ बैठी है,२ सुशोभित है। उ०जुबति जूथ महँ सीय सुभाइ बिराजइ। (जा०१४८) बिराजत-१ बैठे हैं, बैठे रहते हैं, रहते हैं, २ शोभायमान हैं। उ०१ तेरे निवाजे गरीब निवाज बिराजत बैरिन के उर माझे। (क० १०) बिराजति-विराजती है। बिराजते-१ बिराजते थे, रहते थे, २ शोभित होते थे। बिराजहिं-१ शोभित हैं,२ बैठे हैं, हैं। उ०१ बिबिध भाँति मुख, मादन, बेष बिराजहिं। (पा० ११०) बिराजा-विराजमान हुआ। उ० राजसभाँ रघुराज बिराजा। (मा० २।२।१) बिराजी-[illegible] हुई सुशोभित हुई। उ०मिथिल मुदित [illegible] बसन बीच बिच बपु बिराजी। [illegible] ६१) [illegible] । बिराजै-१ बैठे, बैठे हैं [illegible] रहे हैं। उ० १ तुलसी [illegible] भानु। (क० ३।१८) [illegible] सुशोभित। [illegible] ऐसे [illegible] मा दि[illegible] (क० ३। [illegible] (क० [illegible] मध्य का [illegible] मनु

विराधा-(सं० विराध)-एक राक्षस जिसे लक्ष्मण ने दंडका रण्य में मारकर पृथ्वी में गाड़ दिया था। यह पूर्व जन्म का एक गंधर्व था और कुबेर के शाप से राक्षस हो गया था। इसकी प्रार्थना पर कुबेर ने लक्ष्मण के हाथ से इसे मुक्त होने का वर दिया था। उ०खनि गर्त गोपित विराधा। (वि० ४३)

बिराना-(फा०बेगाना ?)-पराया दूसरे का। बिराने-पराये, दूसरे के। उ० माननाथ रघुनाथ से प्रभु तजि सेवत चरन बिराने। (वि० २३४)

बिरावत-(?)-चिढ़ाते हैं। उ० बाल बोलि डहकि बिरावत चरित लखि। (कृ० २)

बिरिद-दे० 'बिरद'। उ० लोक बेद बर बिरिद बिराजे। (मा० १।२४।१)

बिरिदावली-(सं० बिरुद+आवलि)-यशोगान, बड़ाई। उ० बिरिदावली कहत चलि आए। (मा० १।२४ ६।४)

बिरिया-(सं० वेला)-समय, बार।

बिरुचि-(सं०वि + रुचि)-अपनी रुचि या प्रसन्नता से। उ० बिरुचि परखिए सुजन जन, राखि परखिये मंद। (दो० ३७४)

बिरुज-रोगरहित, स्वस्थ। उ०भय सुंदर सब बिरुज सरीरा। (मा० ७।२१।३)

बिरुझे-(सं० विरुद्ध)-लड़े। उ० बिरुझे बिरुदैत जो खेत अरे, न टरे हठि बैर बढ़ावन के। (क० ६।३४) बिरुझो-१ क्रुद्ध हुआ, २ लड़ा, लड़ गया। उ० २ बिरुझो रन मारुत को बिरुदैत जो कालहु काल को बूझि परै। (क० ६।१६)

बिरुद-(सं० विरुद)-यश, कीर्ति। उ० प्रनतपाल बिरुदा- वली सुनि जानि बिसारी। (वि० १४८) बिरुदावलि-दे० 'बिरिदावली'।

बिरुदावली-दे० 'बिरिदावली'।

बिरुदैत-(सं० बिरुद+ऐत,-१ लड़ाका, योद्धा, २ बाने वाला, बानेबंद। उ० १ दे० 'बिरुझो'।

बिरुद्ध-(सं० विरुद्ध)-प्रतिकूल, खिलाफ। उ० सुद्ध बिरुद्ध मुद्ध ह्वै बदर। (मा० ६।४४।१)

बिरुद्धा-दे० 'बिरुद्ध'। उ० कुंभकरन रन रंग बिरुद्धा। (मा० ६।६७।१)

बिरुद्धे-बिरुद्ध हुए। उ० बीर बली सुभ क्रुद्ध बिरुद्धे। (मा० ६।८१।४)

बिरूप-(सं० विरूप)-कुरूप, असुंदर। उ० जय निसिचरी बिरूप-करन रघुबंस बिभूषन। (क० ७।११२)

बिरोध-(सं० विरोध)-झगड़ा, बैर। उ० सिव बिरंचि जेहि सेवहिं तासों करन बिरोध। (मा० ६।४८)

बिरोधा-१ विरोध, २ विरोध किया। बिरोधि-विरोध करके। उ० तिन्हहि बिरोधि न आइहि पूरा। (मा० ३।२२।४) बिरोधें-विरोध करने से। उ० जनहि बिरोधें नहिं कल्याना। (मा० ३।२६।२) बिरोधे-विरोध किया, २ विरोध करने से।

बिरोधी-शत्रु विरोध करनेवाला। उ० राम बिरोधी हृदय तें प्रगट कीन्ह बिधि मोहि। (मा० २।१६२)

बिरोधू-दे० 'बिरोध'।

बिलंद-(फ़ा० बुलंद)-ऊँचा। उ० कंद बिलंद अभेरा दल- कन पाइय दुख झकझोरा रे। (वि० १८६)

बिलँब-दे० 'बिलंब'।

बिलंब-(सं० विलंब)-देर, देरी। उ० बिलंब किए अपना हुए सवेरो। (वि० २७२)

बिलँबत-(सं० विलंब)-विलंब करते हैं, देर करते हैं। उ० खेलत चलत करत मग कौतुक बिलँबत सरित-सरोवर तीर। (गी० १।५२) बिलँबे-ठहरे। उ० तुलसी प्रभु तरु तर बिलँबे किए प्रेम कनौड़े के न ? (गी० २।२४)

बिलँबा-दे० 'बिलंब'। उ० तुम्ह गृह गवनहु भयउ बिलंबा। (मा० १।८१।४)

बिल-(सं० बिल)-माँद, छेद, विवर। उ० खोजत गिरि, तरु लता भूमि, बिल परम सुगंध कहाँ ते आयो। (वि० २४४) बिलै-(सं० बिल)-बिल में। उ० सो सहेतु ज्यों बक्रगति ब्यालन बिलै समाइ। (दो० ३३४)

बिलख-(सं० विकल)-१ उदास, २ रोकर, बिलख कर। उ० १ व्याकुल बिल बिलख बदन उठि धाए। (मा० २।७०।१) बिलखत (?)-रोते हैं, दुखी होते हैं। बिलखि-दुखी होकर, रोकर। उ० सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ। (मा० २।१७१) बिलखेउ-उदास हुआ, रोया। उ०सुनत बचन बिलखेउ रनिवासू। (मा० १।३३६।४)

बिलखत (२)-विशेष प्रकार से देखते हैं। उ० इन महँ चेतन अमल अल बिलखत तुलसीदास। (स० ४६२)

बिलखाइ-(सं० विकल)-१ बिलखकर, रोकर, २ प्रेम से गद्गद होकर। उ० १ सीता मातु सनेह बस बचन कहइ बिलखाइ। (मा० १।२५५) २ करिअ न सोचु सनेह बस कहेउ भूप बिलखाइ। (मा० २।२८६) बिलखाइ-१ विलाप करता है, दुखी होता है, २ रोकर, दुखी होकर। उ० १ सबइ सुमन बिकसत रबि निकसत, कुमुद बिपिन बिलखाई। (गी० १।१) बिलखात-उदास होते हैं। बिलखाति-उदास होती है। बिलखान- बिलखाया, उदास हुआ। उ० काल कराल बिलोकि मुनि, सब समाज बिलखान। (प्र० १।६।२) बिल खानी-उदास होकर, उदास होती हुई। उ० भरत मातु पहिं गइ बिलखानी। (मा० २।१३।३) बिलखाने- उदास हुए दुखी हुए। उ० धायल लपन लाल लखि बिलखाने राम। (क० ६।५२) बिलखाहिं-दुखित होते हैं, रोते हैं। उ० जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना। (मा० २।२१४।२) बिलखाहीं-दुखी होते हैं, रोते हैं। उ० सुनि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं। (मा० २।३३।४)

बिलखावति-उदास करती है दुखित करती है। उ० काम सूल-सूल सरिस जानु जुग, उर करि-कर करभहि बिलखावति। (गी० ७।१७)

बिलखित-उदास, दुखी। उ० मृदु मुसुकाइ बुझाइ फिरे बिलखित मन। (पा० १६०)

बिलग-(सं० वि + लग्न)-१ अलग न्यारा, २ बुरा, अयुक्त। उ०१ बिलग बिलग होइ चलहु सब निज निज सहित समाज। (मा० १।६२)

बिलगाइ-(सं० वि+लग्न)-अलग हो, अलग हो जाने,

अलग हो सकता है। उ० किमि बिलगाइ मुनीस मयीना। (मा० ७।११११९) बिलगा-अलग करके। उ० पुनि पुनि मिलत सखिन्ह बिलगाई। (मा० १।३३७।४) बिलगाउ-अलग हो, अलग हो जाये। उ० सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। (मा० १।२७१।३) बिलगाऊ-१ अलग करो, २ दे० 'बिलगाउ'। बिलगाए-अलग किया, अलग किया है। उ० गनि गुन दोष बेद बिलगाए। (मा० १।६।२) बिलगान-बिलगाया, फटा, विदीर्ण हुआ। उ० ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदय बिलगान। (मा० २।६७) बिलगाना-अलग हुआ। बिलगावै-अलग कर, अलगावे। उ० ज्यां सर्करा मिलै सिकता महँ बल तें न कोउ बिलगावै। (वि० १६७) बिलगान्यो-अलग हुआ। उ० जिय जब तें हरि तें बिलगान्यो। (वि०१३६) बिलगायउ-अलग कर लिया। उ० आपन आपन साज सबहिं बिलगायउ। (पा० १०६) बिलगाव-१ भिन्नता, अलगाव, २ बिलगाओ, अलग करो। बिलगाहिं-अलग होते हैं। बिलगाहीं-अलग होते हैं। उ० जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं। (मा० १।५।३)

बिलगु-दे० 'बिलग'। उ० २ इनको बिलगु न मानिए बोलहिं न बिचारी। (वि० ३४)

बिलपत-विलाप करते। उ० बिलपत नृपहि भयउ भिनुसारा। (मा० २।३७।३) बिलपति-विलाप करती है। उ० बिलपति अति कुररी की नाइं। (मा० ३।३१।२) बिलपहिं-(सं० विलाप)-विलाप करते हैं, रोते हैं। उ० बिलपहिं बाम बिधातहि दोष लगावहिं। (पा० ३२)

बिलपाता-(सं० विलाप) विलाप करते हुए। उ० परबस परी बहुत बिलपाता। (मा० ४।५।२)

बिलम-(सं० विलंब)-देर, देरी।

बिललात-(सं० विलाप)-बिललाते हैं रोते हैं। उ० नाम लै चिल्लात, बिललात अकुलात अति। (क० ५।१५)

बिलप-(सं० विकल)-१ उदास, २ उदास होकर, सुस्त होकर, ३ उदासीनता, व्याकुलता।

बिलपाइ-(सं० विकल)-२ दुखित होकर, १ रोकर। बिलपाता-रोता, दुखी होता।

बिलसत-(सं० विलसन)-१ सुंदर लगते हैं, २ विलास करते है, आनंद मनाते हैं, भोगते हैं, ३ भोगते हुए। उ० १ कोपित कलि, लोपित मगल-मगु, बिलसत बढ़त मोह-माया मलु। (वि० २४) ३ राज भवन सुख बिलसत सिय सँग राम। (ब० २१) बिलसति-'बिलसत' का स्त्री लिंग। सुंदर लगती है। उ० बिबिध बाहिनी बिलसति सहित अनंत। (ब० ४२) बिलसइ-विलास करता है, भोगता है। उ० शांत सुसंपति सौंपि सुत बिलसहि नित नरनाहु। (दो० ४२१) बिलसै-विलास करे, भोगे सुख लूटे। उ० सज्जन-सीव बिभीषन भो, अजहूँ बिलसै बर बधु-बधू जो। (क० ७।२)

बिलाई-(सं० बिडाल)-बिल्ली। उ० जिमि मकुम धनु उरग बिलाई। (मा० ३।२४।४)

बिलानें-(सं० विलयन)-मिट गए, नष्ट हो गई, समाप्त हो गईं। उ० मरून काम बासना बिलानी। (वि० ४१)

बिलाहिं-(सं० विलयन)-नष्ट हो जाते हैं, विलीन हो जाते हैं, नहीं रह जाते हैं। उ० सुख देखत पातक हरै, परसत कर्म बिलाहिं। (वै०२४) बिलाहीं-दे० 'बिलाहिं'। उ० निमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं। (मा० ७।१२१।१०)

बिलाप-(सं० विलाप)-रोना, रुदन। उ० बरनि न जाहिं बिलाप कलापा। (मा० २।५०।४)

बिलापु-दे० 'बिलाप'।

बिलास (सं० विलास)-क्रीड़ा, आनंददायक क्रिया। उ० उपमा बीचि बिलास मनोरम। (मा० १।३७।२)

बिलासा-दे० 'बिलास'।

बिलासिनि-(सं० विलासिनी)-स्त्रियाँ। उ० बिबुध बिलासिनि सुर मुनि जाचक जो जेहि जोग। (गी० १।१)

बिलासु-दे० 'बिलास'।

बिलासू-दे० 'बिलास'।

बिलुलित-(?) उलझे हुए। उ० अति सुगंध सनकन सुअति बिथुरे चिकुर बिलुलित हार। (गी० ७।१८)

बिलोएँ-(सं० विलोडन)-मथने से। उ० घृत कि पाव कोइ बारि बिलोएँ। (मा० ७।४९।३) बिलोये-(सं० विलोडन)-मथे, मथ डाले। बिलोयो-मथा, मथ डाला। उ० बहु भाँतिन स्रम करत मोहबस वृथहि मंद मति बारि बिलोयो। (वि० २४५) बिलोवत-मथते हुए। उ०साह आदरी जाय जाके जिय बारि बिलोवत घी की। (कृ०४३)

बिलोक-(सं० विलोकन)-१ देखकर, २ देखो। बिलोकइ-देखता है। बिलोकउँ-(सं० विलोकन)-देखूँ। उ० तेसे प्रभुहि बिलोकउँ जाई। (मा० ३।४१।४) बिलोकत-१ देखते हैं २ देखते ही। उ० २ राम बिलोकत प्रगटेउ सोई। (मा० १।१७।३) बिलोकति-देखती है। बिलोकना-देखना, अवलोकन करना। बिलोकनि-देखने की क्रिया, चितवनि। उ० उग्र बिलोकनि प्रभुहि बिलोका। (मा० ६।७०।६) बिलोकन्हु-देखो, अवलोकन करो। बिलोकहिं-देखती हैं। उ०जाकी ओर बिलोकहि मन तेहि सामहि हो। (रा० ६) बिलोकहु-देखो। बिलोका-देखा, अवलोकन किया। उ० उग्र बिलोकनि प्रभुहि बिलोका। (मा० ६।०।६) बिलोकि-देखकर। उ०जय धन्य जय जय धन्य धन्य बिलोकि सुर नर मुनि कहे। (जा० १४४) बिलोकिब-१ देखूँगी, २ देखना। उ० १ बारक बहुरि बिलोकिबे काऊ। (गी० २।३६) बिलोकिय-देखिए, देखा। बिलोकियत दिखाई देता है। उ० लोक परलोक हूँ बिलोक न बिलोकियत। (ह० २४) बिलोकी-देखा, अवलोकन किया। बिलोकु-देखो, अवलोकन, समझो। उ० सुत दार अगार सखा परिवार बिलोकु महा कुसमाजहि रे। (क० ७।३०) बिलोके-१ देखे, अवलोके २ देखने पर। उ० १ मूरति बिलोके सम मन के हरन हैं। (क० ७।१०) बिलोकेउँ-देखा, बिलोका। उ० जात बिलोकेउँ सबहि कृपाला। (मा० ६।२२।१)

बिलोकनिहार-देखनेवाले। उ० तुलसी सुमन एक मनहि सों लगत बिलोकनिहारे। (गी० १।२८)

बिलोकित-देखा हुआ।

बिलोचन-(सं० लोचन)-आँख। उ० मूकनि बचन-लाहु, मानो अधनि लहे हैं बिलोचन-तारे। (गी० १।५८) बिलोचनन्हि-आँखों से, नेत्रों से। उ० निरखि बिबेक बिलोचन्नहि सिथिल सनेहँ समाजु। (मा० २।२६७)
बियाह-दे० 'बियाह'।
बिवेक-दे० 'बिबेक'।
बिशोका-दे० 'बिसोका'।
बिशोकी-दे० 'बिसोका'।
बिश्राम-(सं० विश्राम)-१ आराम, २ शयन। उ० १ ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहुँ मन बिश्राम। (मा० ६।७८)
बिश्रामा-दे० 'बिश्राम' उ० १ सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा। (मा० १।३५।४)
बिश्रामु-दे० 'बिश्राम'। उ० १ चलिअ करिअ बिश्रामु यह बिचारि दृढ़ आनि मन। (मा० २।२०१)
बिष-(सं० विष)-ज़हर, गरल। उ० बदु चयै वरु अनल कन सुधा होइ बिष मूल। (मा० २।४८)
बिषइक-(सं० विषय)-संबंधी, विषयक। उ० सुत बिषइक तव पद रति होऊ। (मा० १।१५१)
बिषई-(सं० विषयी)-विषयों में आसक्त। उ० सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु बिषई। (मा० ७।१५।३)
बिषद-(सं० विशद)-१ विस्तृत, २ पवित्र, निर्मल।
बिषम-(सं० विषम)-विकट, कठिन, टेढ़ा। उ० तव बिषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे। (मा० ७।१३। छं० २)
बिषमता-(सं० विषमता)-कठोरता, कठिनता।
बिषमु-दे० 'बिषम'।
बिषय-(सं० विषय)-१ बारे, संबंध २ स्त्री-संभोग, ३ संसार के प्रलोभन। उ० १ आपु बिषय बिस्वास बिसेषी। (मा० १।१६१।३) ३ धरम धुरीन बिषय रस रूखे। (मा० २।५०।२) बिषया-विषयों ने, संसार के प्रलोभनों ने। उ० बिषया हरि लीन्हि न रहि बिरती। (मा०७।१०२।१)
बिषयिक-दे० 'बिषइक'।
बिषयी-दे० 'बिषई'।
बिषाद-(सं० विषाद)-दु:ख, कष्ट। उ० उजरें हरष बिषाद बसेरें। (मा० १।४।१)
बिषादा-दे० 'बिषाद'। उ० होहिं छनहिं छन मगन बिषादा। (मा० २।१५५।१)
बिषादु-दे० 'बिषाद'। उ० बिरह बिषादु बरनि नहिं जाई। (मा० २।१५४।१)
बिषादू-दे० 'बिषादु'। उ० कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू। (मा० २।५१।२)
बिषाना-(सं० विषाण)-सींग। उ० ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना। (मा० २।२०।१)
बिषु-दे० 'बिष'। उ० जनमु सिंधु पुनि बंधु बिषु दिन मलीन सकलंक। (मा० १।२३७)
बिषेषा-विशेष, अधिक। उ०सिय उर भयउ बिषाद बिषेषा। (मा० १।२५६।४)
बिष्टा-(सं० विष्टा)-गुह, पाख़ाना। उ० बिष्टा पूय रुधिर कच हाडा। (मा० ६।२२।२)
बिष्नु-(सं० विष्णु)-भगवान। रामादि दस या चौबी अवतार इन्हीं के हुए थे। उ० बिधि बिष्नु सिव मनु दिसि त्राता। (मा० ७।८१।१)
बिसद-(सं० विशद)-स्वच्छ, निर्मल। उ० निरस बिसद गुनमय फल जासू। (मा० १।२७।३)
बिसमउ-(सं० विस्मय)-१ शोक, २ आश्चर्य। उ० १ हरष समय बिसमउ कत कीजै। (मा० २।७७।२)
बिसमय-दे० 'बिसमउ'।
बिसमित-(सं० विस्मित)-आश्चर्यचकित। उ० सुनत बचन बिसमित महतारी। (मा० १।७३।३)
बिसर-(सं० विस्मरण)-भूलना, विस्मृत हो जाना। उ० एक सूल मोहि बिसर न काऊ। (मा०७।११०।१) बिसरा-भूला। उ० बिसरा मरन भई रिस गाढ़ी। (मा०६।६३।१)
बिसरि-भूल, विस्मृत हो। उ० सुत बियोग सभय दारुन दुख बिसरि गई महिमा सुमान की। (गी० २।११) बिसरिए-भूलिए, भूल जाइए। उ०अपराधी तउ आपनो तुलसी न बिसरिए। (वि० २७१) बिसरी-भूल गई। उ० बिसरी देह तबहिं मनु लागा। (मा० १।७४।२) बिसरे-भूल गये, दूर हो गये। उ० दुसह बियोग-जनित दारुन दुख रामचरन देखत बिसरे। (गी० ७।३८) बिसरेउ-भूल गया, याद जाती रही। उ० भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौनु। (मा० २।१६०)
बिसरयो-(सं० विस्मरण)-भूला, विस्मरण हुआ। उ० जो निज धर्म बेद-बोधित सो करत न कछु बिसर्यो। (वि० २२६)
बिसराइ-(सं० विस्मरण)-भूलकर। उ० सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान। (मा० १।१४ क) बिसराइयो-१ भुला दिया, २ भूलिएगा। उ० १ मतिमंद तुलसीदास सो प्रभु मोहबस बिसराइयो। (मा०६।१२१। छं०२) बिसराई-१ भूले, भूल गए, २ छोड़कर, भुलाकर। उ० १ कारन कौन कृपा बिसराई। (वि०२४२) २ तुलसिदास इन्द पर जो द्रवहिं हरि तौ पुनि मिलौं बैर बिसराइ। (कृ० ५१) बिसराए-१ भुलाकर, २ भूले। उ० १ देखत नभ घन ओट चरित मुनि जोग समाधि बिरति बिसराए। (गी० १।२६) बिसरायो-भुला दिया। उ० नीच! मीचु लात न सीस पर, इस निपट बिसरायो। (वि० २००) बिसरावहिं-भुला देते हैं, भूल जाते हैं। उ० देखि नगर बिरागु बिसरावहिं। बिसरावहिंगे-दूर करेंगे। उ० तुलसिदास प्रभु माइ जनित भ्रम भेद बुद्धि कब बिसरावहिंगे? (गी० ५।१०) बिसरावहीं-भूलेंगे।
बिसराते-(सं० बेशर)-खच्चर। उ० ऐक महान ऊँट बिसराते। (मा० ३।३८।३)
बिसहत(-सं० व्यवसाय)-माल लेते, खरीदते। उ० सो सुरपति कुरराज बालि सों कत हठि बैर बिसहते? (वि० ९७)
बिसारउ-भूलो भूल जाओ। बिसारहि बिसारो, भूलो। उ० तौ जनि तुलसिदास निसिबासर हरिपद-कमल बिसारहि। (वि० ८५) बिसारए-भूले, भूल गए। उ० राम काजु सुग्रीवँ बिसारा। (मा० ४।१८।१) बिसारि-छोड़कर, भूलकर। उ० निसि दिन भ्रमत

बिसारि मदन सुख जहँ तहँ इंद्रिन-तान्यो। (वि० ८८) बिसारियौ-भूलेंगे, बिसार देंगे। उ० तुलसीऔ तारियो बिसारियो न अंत मोहिं। (क० ७।१८) बिसारी-१ भूल कर, २ छोड़कर, ३ भूले, भुला दिया। उ० १ अपनेनि को अपनो बिलोकि बल सकल आस बिस्वास बिसारी। (कृ० ६०) ३ कृपा सो धौं कहाँ बिसारी राम? (वि० ९३) बिसारे-भूले, भूल गए। उ० सोइ फलु करहु रहहु ममता मम फिरहुँ न तुमहिं बिसारे। (वि० ११२) बिसारेउ-दे० 'बिसारेहु'। बिसारेहु-भुला दी, भुलाया। उ० केहिं अपराध बिसारेहु दाया। (मा० ३।२१।१) बिसारो-भुलाया, भुला दिया। उ० काहे तें हरि मोहिं बिसारो। (वि० ९४) बिसारौं-छोड़ दूँ, भूल जाऊँ, भुला दूँ। उ०वह अति ललित मनोहर आनन कौने जतन बिसारौं। (कृ० ३३) बिसार्‍यो-भुला दिया।

बिसारद-(सं० विशारद)-चतुर। उ० जे मुनिबर बिग्यान बिसारद। मा० १।१८।३)

बिसारन-१ भूल जानेवाला, २ भूलना, भूलने का भाव। उ० १ जन-गुन अलप गनत सुमेरु करि, अवगुन कोटि बिलोकि बिसारन। (वि० २०६) बिसारनसील-विस्मरण शील भूल जानेवाली। उ० बानि बिसारनसील है मानद अमान की। (वि० ४२)

बिसाल-(सं० विशाल)-बड़ा, भारी। उ० नीच निरादर ही सुखद आदर सुखद बिसाल। (दो० ३२४)

बिसाला-दे० 'बिसाल'। उ० एक ललित लघु एक बिसाला। (मा० २। १३३।४)

बिसाही-(सं० व्यवसाय)-खरीदी हुई, क्रीत। उ० संगरव पार्यो सो ययर जानि बिसाही मीचु। (दो० ४७६)

बिसिख-दे० 'बिसिष'। उ० कटि कसि निषंग चाप बिसिख सुधारि कै। (मा० २।१८। छं० १)

बिसिष-(सं० विशिख)-बाण, तीर।

बिसिषासन-(सं० विशिख+आसन)-धनुष, कमान। उ० बान बिसिषासन, बसन बन ही के कटि। (क० २।१५)

बिसुद्ध-(सं० विशुद्ध)-बहुत पवित्र। उ० भए बिसुद्ध दिए सब दाना। (मा० २।१००।४)

बिसूरति-(सं० विसूरण)-१ दुखित होती हुई विलाप करती हुई, २ दुखी होती हैं, रोती हैं, चिंता करती हैं। उ० १ जानि कठिन सिव चाप बिसूरति। (मा० १। २३२।१) २ काहि प्रिय बचन सखि दमन सानि बिसूरति। (जा० ८२) बिसूरन-दुखी होने, चिंता करने। उ० समुझि कठिन पन आपन, लाग बिसूरन। (जा० ४३) बिसूरि-चिंता कर, चिंतित होकर। उ० जहाँ गवन कियो कुँवर कोसलपति, बूझति सियपिय पतिहि बिसूरि। (गी० २।१३)

बिसेक-दे० 'बिसेष'। उ० गोरस, सेलग पारिरग तीना माहिं बिसेक। (दो० ४३८)

बिसेष-(सं० विशेष)-प्रकार, जिसमें कोई विशेषता हो, विशेष।

बिसेषा-दे० 'बिसेष'।

बिसेषा-विशेष, अधिक। उ० बरषा हियँ अति हरषु बिसेषा। (मा० १।२०।१) बिसेषी-विशेष, अधिक।

उ० जौं सुन्दरे हठ हृदय बिसेषी। (मा० १।८१।२)

बिसेषि-दे० 'बिसेष'। उ० विपुल धनिन, बिद्या, बसन, सुर बिसेषि गृहकाज। (प्र० ७।१।६)

बिसेषु-दे० 'बिसेष'। उ० उतरि सिंधु जार्‍यो प्रचारि पुर जाको दूत बिसेषु। (गी० ६।१)

बिसेषे-(सं० विशेष)-१ विशेष, खास, २ अधिक।

बिसोक-(सं० वि+शोक)-१ शोकरहित, निश्चिंत, २ शोक रहित करनेवाला। उ० १ होत न बिसोक ओत पावै न मनाक सो। (क० ४।२४) २ लोक परलोक को बिसोक सो बिसोक ताहि। (ह० १३)

बिसोका-(सं० वि+शोक)-शोक रहित, निश्चित। उ० भए नाम जपि जीव बिसोका। (मा० १।२०।१) बिसोकी-दे० 'बिसोक'। उ० जासु नाम बल करउँ बिसोकी। (मा० १।११४।१)

बिस्तर-(सं० विस्तर)-विस्तार, बढ़ाव। उ० बिस्तर सहित कृपानिधि बरनी। (मा० १।७६।४)

बिस्तरिहहिं-विस्तारेंगे, फैलाएँगे। उ० जग पावनि कीरति बिस्तरिहहिं। (मा० ६।६६।२)

बिस्तार-(सं० विस्तार)-विस्तार, फैलाव। उ० राम अनंत अनंत गुन अमित कथा बिस्तार। (मा० १।३३)

बिस्तारक-विस्तार करनेवाला। उ० बिनय बिबेक बिरति बिस्तारक। (मा० ७।३५।३)

बिस्तारय-विस्तार कीजिए। उ० दीनबंधु समता बिस्तारय। (मा०७।३५।२) बिस्तारहिं-फैलाएँगे, विस्तार करेंगे। बिस्तारा-फैलाया, विस्तार किया। बिस्तारी-फैलायी। उ० तब रावन माया बिस्तारी। (मा० ६।८१।१) बिस्तारे-फैलाया। बिस्तारेउ-फैलाया फैला दिया, विस्तार कर दिया।

बिस्राम-(सं० विश्राम)-आराम।

बिस्रामा-दे० 'बिस्राम'।

बिस्रामु-दे० 'बिस्राम'।

बिस्व-(सं० विश्व)-संसार, जगत। उ० जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार। (मा० १।६)

बिस्वधृत-(सं० विश्वधृत) शेषनाग।

बिस्वनाथ-(सं० विश्वनाथ)-शंकर, महादेव। उ० बिरची बिरंचि की बसति बिस्वनाथ की जो। (क० ७।१८२)

बिस्वामित्र-(सं० विश्वामित्र)-एक प्रसिद्ध ऋषि जो गाधि के पुत्र थे। उ० बिस्वामित्र महामुनि ग्यानी। (मा० १। २०६।१)

बिस्वास-(सं० विश्वास)-एतबार, यकीन। उ० हिय हरषे मुनि बचन सुनि देखि प्रीति बिस्वास। (मा० १।१०)

बिस्वासा-दे० 'बिस्वास'। उ० तेहि के बचन मानि बिस्वासा। (मा० १।७४।३)

बिस्वासु-दे० बिस्वास। उ० प्रभु बिस्वासु अवधि राखा सी। (मा० २।१०२।३)

बिहंग-दे० 'बिहग'। उ० २ मातु धाम भानु करि कपट बिहग जो जो। (क० ७।१३) ३ कौन भार जा मारहिं जहि लगि रतत बिहंग? (कृ० ४७)

बिहँगराज–दे० 'बिहगेस'। उ० बिहँगराज-बाहन तुरत काढ़िय मिटइ कलेस। (दो० २३५)

बिहंगा–दे० 'बिहग'। उ० १ तेइ सुक पिक बहु बरन बिहंगा। (मा० १।३७।८)

बिहड्डत–नष्ट करता है, तोड़ता है। उ० मख रक्खन मो भुज दंड बिहड्डत। (क० ६।३५)

बिहड्डन–(सं० विघटन, प्रा० विहडन)–तोड़नेवाले, नष्ट करनेवाले। उ० नृपगन-बलमद सहित संभु कोदंड बिहड्डन। (क० ७।११२)

बिहँसत–(सं० विहसन)–१ हँसते ही, २ हँसते हुए। उ० १ बिहँसत तुरत गयउँ मुख माहीं। (मा० ७।८०।१)

बिहँसहिं–मुस्कराते हैं, हँसते हैं। उ० साखोच्चार समय सब सुर मुनि बिहँसहिं। (पा० १४३) बिहँसा–हँसा, मुस्कराया। बिहँसि–हँसकर, मुस्कराकर। उ० बिहँसि राम कह्यो सत्य है सुधि मैं हूँ लही है। (वि० २७१) बिहँसी–हँसी, हँस पड़ी। उ० बिहँसी ग्वालि जानि तुलसी प्रभु सकुचि लगे जननी उर धाई। (कृ० १२) बिहँसे–हँसे, मुस्कराए।

बिहग–(सं० विहग)–१ पक्षी चिड़िया, २ जटायु, ३ पपीहा। उ० १. बदत बच बिहग सुनि ताल करतालिका। (वि० ४८)

बिहगेस–(सं० विहगेश)–पक्षियों के राजा, गरुड़। उ० प्रथम जन्म के चरित अब कहउँ सुनहु बिहगेस। (मा० ७। ९६ क)

बिहबल–(सं० विह्वल)–आनंदविभोर, प्रसन्न। उ० बिहबल बचन पेम बस बोलहिं। (मा० २।२२५।२)

बिहर–(सं० विदीर्ण)–१ फट जा २ फट जाता है। उ० २ अहसिहुँ मति उर बिहर न तोरा। (मा० ६।२२।१) बिहरइ–फट जाता है। बिहरत (१)–फट जाता है। उ० ग्यान कृपान समान लगत उर, बिहरत छिन छिन होत निनारे। (कृ० ५६) बिहरो–विदीर्ण हुआ फटा। उ० तुलसिदास ऐसे बिरद-बचन सुनि कठिन हिया बिहरो न आजु। (गी० २।७) बिहर्‍यो–१ फटा २ फटा हुआ विदीर्ण। उ० २ तुलसिदास बिहर्‍यो अकास सो कैसे कै जात सियो है। (गी० ६।१०)

बिहरत (२)–(सं० विहार)–विहार करते हैं, आनंद लूटते हैं। उ० राजमराल बिराजत बिहरत जे हर हृदय-तड़ाग। (गी० १।२६) बिहरहिं–विहार करते हैं। बिहरि–क्रीड़ा करके, विहार करके। उ० आदि बराह बिहरि बारिधि मनो उठ्यो है दसन धरि धरनी। (गी० २।५०) बिहरैं–दे० 'बिहरहिं'। उ० अयपेम व बालक चारि सदा तुलसी मन मंदिर में बिहरैं। (क० १।४)

बिहरन–(सं० विहरण)–१ विहरना, घूमना फिरना २ आनंद लूटना। बिहरनसीला–(सं० विहरणशीला)–विहार करनेवाली। उ० नव रसाल बन बिहरनसीला। (मा० २।६३।४)

बिहाइ–(?)–१ छोड़कर, भूलकर, २ अतिरिक्त सिवाय, ३ छोड़ता है। उ० १ सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। (मा० १।२७१।३) ३ मिलै जो सरलहि सरल ह्वै कुटिल न सहज बिहाइ। (दो० ३३४) बिहाई–दे० 'बिहाइ'। उ० १ रहि न सकइ हरि भगति बिहाई। (मा० ७।११६।३) बिहाउ–छोड़ दो, छोड़ो। उ० रिपु सों बैर बिहाउ। (दो० ६६) बिहाय–छोड़कर, भूलकर। बिहाव–छोड़ दो।

बिहात–(?)–जाता है, व्यतीत होता है। उ० कहा कहौं, तात! देखे जात ज्यों बिहात दिन। (क० ५।२६)

बिहान (१)–दूर होती, बीतती। उ० तहँ तव रहिहि सुखेन सिय जब लगि बिपति बिहान। (मा० २।६६)
बिहानी–१ बिता दी, बिताई २ बीत गई, बीती। उ० १. कहत कथा सिय राम लखन की बैठहिं रैनि बिहानी। (गी० २।६८)

बिहान (२)–(सं० विभात)–१ प्रात, सबेरा, २ कल, अगिम दिन। उ० १ भयो मिथिलेस मानो दीपक बिहान को। (गी० १।८६)

बिहाना–दे० 'बिहान (२)'। उ० १ नहिं तहँ पुनि बिग्याग बिहाना। (मा० १।११६।३)

बिहार–(सं० विहार)–१ विलास, २ खेल, क्रीड़ा, ३ आनंद से फिरना, ४ स्त्री प्रसंग। उ० २ भूमि बिलोकु राम-पद अंकित, बन बिलोकु रघुबर बिहार थलु। (वि० २४) ३ तम तड़ित उडुगन अरुन बिधु जनु करत ब्योम बिहार। (गी० ७।१८)

बिहारा (१)–दे० 'बिहार'।

बिहारा (२)–(सं० व्यवहार)–व्यवहार। उ० तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। (मा० २।२१६।३)

बिहारिनि–(सं० विहारिणी)–विहार करनेवाली। उ० बिस्व बिमोहनि स्वबस बिहारिनि। (मा० १।२३५।४)

बिहारी–बिहार करनेवाला। उ० दयउ सो दसरथ अजिर बिहारी। (मा० १।११२।२)

बिहारु–क दे० 'बिहार'। ख बिहार करते हैं। उ० ख तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु। (मा० १।३१)

बिहारू–(सं० विहार)–१ विहार, आनंद, २ विहार करने वाले, ३ विहारस्थान। उ० ३ करि केहरि मृग बिहग बिहारू। (मा० २।१३२।२)

बिहाल–(फा० बेहाल)–परेशान, बेचैन। उ० कलिकाल बिहाल किए मनुजा। (मा० ७।१०२।३)

बिहाला–दे० 'बिहाल'। उ० सकल भुवन में फिरउँ बिहाला। (मा० ४।६।६)

बिहालु–दे० 'बिहाल'। उ० बिहालु भयो भयभालु परम मरालचरे। (वि० ७४)

बिहालू–दे० 'बिहाल'। उ० राम बिरहँ मगु साजु बिहालू। (मा० २।३२२।१)

बिहित–(सं० विहित)–जिसका विधान किया गया हो। उ० बेदबिहित कहि सकल बिधाना। (मा० २।६।३)

बिहीन–(सं० विहीन)–रहित, बिना। उ० मनहुँ कोक कार्की कमल दीन बिहीन तमारि। (मा० २।८६)

बिहीना–दे० 'बिहीन'। उ० धिग जीवन रघुबीर बिहीना। (मा० २।१४४।२)

बिहून–(सं० वि+हीन)–विहीन रहित, बिना। उ० भजन-प्रभाउ हैं सब जन सुकर्मा दोष बिहून। (वै० १८) बिहूने–

दे० 'बिहून' । उ० सेवा अनुरूप फल देत भूपकूप ज्यों, बिहूने गुन पथिक पियासे जात पथ के । (क०७।२४)

बीके–(सं० विक्रय)–बिक गए । उ० आपने आपने मन मोल बिनु बीके हैं । (गी० २।३०)

बीच–(सं० विच)–१ मध्य, माँझ, २ मौका, ३ अंतर, फरक, ४ भीतर, ५ बैर, विरोध । उ० १ गजमनि-माला बीच भ्राजत कहि जाति न पदिक-निकाई । (वि० ६२) २ सून बीच दसकंधर देखा । (मा० ३।२८।४) ३ दुख प्रद उभय बीच कछु बरना । (मा० १।५।२) मु० बीच कियो–बीच में पड़कर, मध्यस्थता की । उ० लरत मधुप अवलि मानो बीच कियो आई । (गी० ७।३) बीचहि–बीच ही में । उ० अब सो सुनहु जो बीचहि राखा । (मा० १।१८८।३) बीचहि–दे० 'बीचहि' ।

बीचा–दे०'बीच' । उ०१ मची सकल बीथिन्ह बिच बीचा । (मा० १।१९४)

बीचि–(सं० वीचि)–लहर, तरंग । उ० बिलसति बीचि बिजय बिरदावलि, कर-सरोज सोहत सुषमा हैं । (गी० ७।१३)

बीची–दे० 'बीचि' ।

बीचु–दे० 'बीच' । उ० २ बीचु पाइ निज बात सँवारी । (मा० २।१८।१)

बीछी–(सं० वृश्चिक)–बिच्छू । उ० डसत चढ़ी जनु सब तन बीछी । (मा० २।४६।३)

बीछे–(सं० विष)–चुने, छँटे । उ० आछे आछे बीछे बिछौना बिछाइ के । (गी० १।८२)

बीज–(सं०)–१ फूलवाले वृक्षों या पौदों का गर्भांड जिससे अंकुरित होकर वृक्ष या पौदे आदि उत्पन्न होते हैं । बीया, दाना, तुख्म, २ प्रधान कारण, कारण, ३ जड़, मूल, ४ शुक्र, वीर्य । उ० १ सुचि सुंदर सालि सकेलि सुवारि कै बीज बटोरत ऊसर को । (क० ७।१०३) २ बीज-मंत्र जपिए सोई जो जपत महेस । (वि० १०८)

बीजु–दे० 'बीज' । उ० १ सुगइ कहँ बिपति बीजु बिधि बयऊ । (मा० २।११।३)

बीता–(सं० व्यतीत)–१ बीत गया, २ पूरा हो गया, ३ बीतने लगा । उ० २ सब कर आजु सुकृत फल बीता । (मा० २।२७।३) ३ अरध निमेष कलप सम बीता । (मा० १।२७०।४) बीति–बीत, खतम हो, समाप्त । उ० जनम गयो बादिहिं बर बीति । (वि० २३४) बीती–१ बीत गई, २ पूरी हो गई । उ० १ लरिकाई बीती अचेत चित, चंचलता चौगुनी चाय । (वि० ८३) बीते–बीत गए, समाप्त हो गये । उ०देखत रघुबर प्रताप, बीते संताप पाप । (वि० ७४) बीत्यो–बीता, बीत गया ।

बीथि–दे० 'बीथी' । उ० स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी । (मा० २।३२४।३)

बीथिन्ह–(सं० वीथी)–गलियों में । उ० बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले । (मा० १।१३३।२) बीथीं–गलियों को । उ० बीथीं सींचीं चतुर सम चौकें चारु पुराइ । (मा० १।२९६) बाथी–वीथी, पतली सड़क ।

बीन–दे० 'बीना' । उ० तेहि अवसर मुनि नारद आए कर तल बीन । (मा० ७।५०)

बीनती–(सं० विनय)–विनती, विनय । उ० पैठारि परम समीप पूछी कुसल सो कर बीनती । (मा०१।३२१।छं०१)

बीना–(सं० वीणा)–बीन, एक प्रकार का बाजा । उ० बीना बेनु मधुर धुनि सुनि किन्नर गंधर्ब । (गी० ७।२१)

बीर–(सं० वीर)–योद्धा, बहादुर । उ० एक ही बिसिष बस भयो बीर बाँकुरो सो । (क० ६।११)

बीरता–(सं० वीरता)–बहादुरी, शूरता । उ० कीरति बिजय बीरता भारी । (मा० १।२९।२)

बीरबहूटि–दे० 'बीरबहूटी' । उ० बीरबहूटि बिराजहीं, दादुर धुनि चहुँ ओर । (गी० ७।१६)

बीरबहूटी–(सं० वीरन वधूटी)–एक लाल मखमली बरसाती कीड़ा । उ० मानो मरकत-सैल बिसाल में फैलि चली बर बीरबहूटी । (क० ६।२१)

बीरभद्र–(सं० वीरभद्र)–शिव का एक प्रसिद्ध गण । उ० बीरभद्र करि कोपु पठाए । (मा० १।६५।१)

बीरा (१)–(सं० वीटक)–पान की गिलौरी । उ० रूपह सलोनि तँबोलिनि बीरा हाथहि हो । (रा० ६)

बीरा (२)–(सं० वीर)–शूर, योद्धा, बहादुर । उ० इन्द्रजाति कहुँ कहिअ न बीरा । (मा० ६।२६।५)

बीरासन–(सं० वीरासन)–एक आसन विशेष जिसमें वीर लोग बैठते हैं । उ० जागन लगे बैठि बीरासन । (मा० २।६०।१)

बीरु–दे० 'बीर' । उ० बिरद बाँधि बर बीरु कहाई । (मा० २।१७।४)

बीरू–दे० 'बीर' । उ० जसु न लहेउ बिपुरत रघुबीरू । (मा० २।१४४।२)

बीस–(सं० विंशति)–२०, दस का दूना । उ० दस सिर ताहि बीस भुजदंडा । (मा० १।१७६।१) मु० बीस कै–निश्चय ही । उ० निडर इस तें बीस के बीस बाहु सो होइ । (दो० ४८८) बीसहू कै–पूरी तरह से । उ० माको बीसहू के इस अनुकूल आजु भो । (गी० २।३६) बीसहुँ–बीस भी । उ० बीसहुँ लोचन अंध धिग तव जन्म कुजाति जड़ । (मा० ६।३३ क)

बीसबाहु–(सं० विंशति + बाहु)–बीस भुजाओंवाला, रावण । उ० निडर इस तें बीस के बीस बाहु सो होइ । (दो० ४८८)

बीसा–दे० 'बीस' । उ० मुंडित सिर खंडित भुज बीसा । (मा० २।११।२)

बीसी–१ बीस वर्ष का समय, २ उत्पत्ति से प्रलय तक कुल तीन बीसियाँ कही गई हैं । प्रथम बीसी ब्रह्मा की दूसरी विष्णु की और तीसरी शंकर की होती है । ३ एक मत से प्रत्येक साठ वर्ष ३ बीसियों में बटता है जिसमें प्रथम ब्रह्मा की, दूसरी विष्णु की और तीसरी शिव की होती है । शंकर की एक बीसी संवत् १६६५ से १६८५ तक थी । उ० ३ बीसी बिस्वनाथ की बिषाद बड़ो बारानसी । (क० ७।१७०)

बीहा–(सं० विंशति)–बीस, २० । उ० साँपेहुँ मैं लबार भुजबीहा । (मा० ६।२४।४)

बुंद–(सं० बिंदु)–बूँद ।

बुफयो (१)–(?)–बुझ गया, शांत हो गया ।

बुझयो (२)-(सं० बुद्धि)-समझ गया, जान गया।

बुझाइ (१)-(सं० बुद्धि)-समझाकर, ज्ञान कराकर। उ० कहहु बुझाइ कृपानिधि मोही। (मा० ७।११२।४) बुझाइ (१)—१ बुझाया, बतलाया, समझाया, २ समझ पड़ता है, मालूम होता है। उ० १ कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै। (मा० १।१९२।छं०३) बुझाउ (१)-(सं० बुद्धि)-१ ज्ञान, समझ, २ समझाओ। उ० १ तेरे ही बुझाए बूझै अबुझ बुझाउ सो। (वि० १८२) बुझाए (१)-(सं० बुद्धि)-१ बुझाने से, समझाने से, २ बुझाया, समझाया। उ० १ तेरे ही बुझाए बूझै अबुझ बुझाउ सो। (वि० १८२) २ बाल बुझाए बिबिध बिधि निडर होहु डरु नाहिं। (मा० १।१५) बुझायो (१)-(सं० बुद्धि)-समझाया। बुझावहि (१)-समझाते हैं। बुझावा-समझाता, समझाता था। उ० सर निंदा करि ताहि बुझावा। (मा० १।२६।२)

बुझाइ (२)-(?)-बुझाकर, ठंढा कर कर शांत कर। बुझाइ (२)-(?)-१ बुझाकर, गुल करके, शांतकर, २ बुझ जाता है, गुल हो जाता है। उ० २ तबहिं दीप बिग्यान बुझाई। (मा० ७।११८।७) बुझाउ (२)-बुझाओ, ठंढा करो। बुझाए (२)-बुताए, गुल किये। बुझानी-बुझी, ज्यों ही बुझी। उ० राग द्वे पकी अगिनि बुझानी। (वै० ६०) बुझायो (२)-बुताया, गुल किया। उ० पावक-काम भोग घृत तें सठ कैसे परत बुझायो ? (वि० १९९) बुझावहिं (२)-बुझाते हैं, शांत करते हैं।

बुझिहैं-(सं० बुद्धि)-पूछेंगे। उ० सादर समाचार नृप बुझिहैं, हौं सब कथा सुनाइहौं। (गी० १।४६)

बुझैये-बतलाइए, समझाइए। उ० तुम तें कहा न होय, हा हा! सो बुझैये मोहिं। (ह० ४४)

बुट-(सं० विटप,-बूटी, जड़ी। उ० जातुधान बुट पुटपाक लंक जातरूप। (क० ५।२५)

बुड़ि-(?)-डूबकर, मग्न होकर। बुड़िबे-डूबने, गोता खाने। उ० गोपद बुड़िबे जोग करम करौं बातनि जलधि थहावौं। (वि० २१२)

बुढ़ाई-(सं० वृद्ध)-बुढ़ापा, वृद्धावस्था। उ० जनु बरपाकृत प्रगट बुढ़ाई। (मा० ४।१६।१)

बुताइ-(?)-१ बुझाकर, गुलकर २ बुतती, बुझती, शांत होती। उ० १ पूँछ बुताइ प्रबोधि सिय, आइ गहे प्रभु पाय। (प्र० ५।५।३) २ रघुपति-कृपा-बारि बिनु नहिं बुताइ लोभागि। (वि० २०३) बुताई-१ बुझाकर, २ बुझती है। उ० २ मनमोदकन्हि कि भूख बुताई। (मा० १।२४६।१) बुताओ-बुझाओ, गुल करो। उ० कहो लंकपति लंक बरत बुताओ बगि। (क० ५।११) बुतावत-बुझाते हैं।

बुतैहै-(?)-बुझेगी, शांत होगी। उ० गुरु पुर लोग, सास, दोउ देवर, मिलत दुसह उर तपनि बुतैहै। (गी० ५।२०)

बुद्ध-(सं०)-१ पंडित, ज्ञानी, २ ज्ञात, विदित, ३ विष्णु का नवाँ अवतार। भगवान बुद्ध जिन्होंने बौद्ध धर्म स्थापित किया। उ० ३ जो निंदत निंदित भयो विदित बुद्ध अवतार। (दो० ४६४)

बुद्धि-(सं०)-धी, मनीषा, अक्ल, ज़ेहन, चेतना, विवेक, ज्ञान। उ० विद्या वारिधि बुद्धि बिधाता। (रा० १) बुद्धिहि-बुद्धि को। उ० बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई। (मा० ७।११८।४) बुद्ध्या-१ बुद्धि के लिए, २ बुद्धि से।

बुध-(सं०)-१ पंडित, विद्वान्, ज्ञानी, २ सप्ताह का चौथा दिन, बुधवार, ३ नवग्रहों में एक। बुध का जन्म बृहस्पति की स्त्री और चद्रमा के वीर्य से हुआ था। उ० १ बुध बरनहिं हरि जस अस जानी। (मा० १।१३।४) २ बिपुल बनिज बिद्या बसन बुध बिसेषि गृहकाज। (प्र० ७।१।६) ३ जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही। (मा० २।१२३।२)

बुधि-(सं० बुद्धि) बुद्धि, समझ, अक़्ल। उ० बुधि न बिचार, न बिगार न सुधार सुधि। (गी० २।३२)

बुबुक-(?)-१ ज़ोर का रोना, २ आग की लपट या भभक। उ० २ जहाँ तहाँ बुबुक बिलोकि बुबुकारी देत। (क० ५।६)

बुबुकारी-(?) ज़ोर से रोने की क्रिया। उ० दे० 'बुबुक'।

बुरो-(सं० विरूप)-ख़राब, निकृष्ट। उ० राम के बिरोधे बुरो बिधि हरिहरहू को। (क० ६।८)

बुलाइ-(सं० ब्रू, प्रा० बुल्लइ)-बुला करके। उ० कहेहि बियाहन चलहु बुलाइ अमर सब। (पा० १००) बुलाई-१ बुलाया २ बुलाकर, ३ बुलाइ हुई। उ० ३ ताहि तर्कै सब ज्यों नदी बारिधि न बुलाई। (वि० ३५) बुलायउ-बुलाया। उ० देव दरसि मल समउ मनोज बुलायउ। (पा० २८) बुलाये-बुलाया, तलब किया। बुलावन-बुलाने। बुलैहो-बुलाओगे। उ० कल बल बचन तोतरे मंजुल कहि 'माँ' मोहिं बुलैहो। (गी० १।८)

बूँद-(सं० बिंदु)-टोप, क़तरा, बुंद, जल या किसी द्रव का थोड़ा अंश। उ० बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें। (मा० ४।१४।२)

बूँदिया-(सं० बिंदु)-१ एक प्रकार की मिठाई, बूँदी, २ बूँदें। उ० १ बालधी फिरावै बार बार झहरावै, झरैं, बूँदिया सी, लंक पघिलाइ पाग पागिहै। (क० ५।१४)

बूझ-(सं० बुद्धि)-१ समझ, अक़्ल, २ बूझने हो। उ० २ अयमय खाँड न ऊखमय अजहुँ न बूझ अबूझ। (मा० १। २७५) बूझइ-१ मालूम पड़ता है, ज्ञात होता है, २ मालूम करना चाहिए, खोजना चाहिए, ३ समझना चाहिए। उ० १ बिनु कामना कलेस कलेस न बूझइ। (पा० ५०) २ तेज प्रताप रूप जहँ तहँ बल बूझइ। (जा० ६६) बूझउँ-बूझूँ, समझूँ। बूझत-१ बूझता है समझता है, जानता है, २ पूछता, ३ पूछते हुए। उ० १ तुलसी धनि, अजहूँ नहिं बूझत। (कृ० ५०) २ जो पै कहुँ कोउ बूझत बाता। (वि० १७७) ३ तेहि ते बूझत काजु बरौं गुननायक। (पा० २४) ४ मग बूझत बूझत बूझे। (वि० १२४) बूझति-१ बूझती हो, समझती हो, २ पूछती। उ० १ बूझति और भाँति भामिनि कत कानन कठिन कलेस रहा है। (गी० २।६) २ फिरि बूझति हैं, चलनो अब केतिक, पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै ? (क० २।११) बूझन-१ पूछना, २ पूछेंगे। उ० १ बूझब राउर सादर साइँ। (मा० २।२००।४) बूझहिं-पूछते हैं। बूझा-मालूम किया, समझ गया। उ० प्रथमहिं मैं कहि सिव चरित बूझा मरमु तुम्हार। (मा० १।१०४) बूझि-१ दे० 'बूझ'। २ समझकर, जानकर, ३ समझ से, ४ पूछ में।

बेगि-(सं० वेग)-१ जल्दी से, शीघ्रतापूर्वक, चटपट, २ शीघ्र, जल्दी। उ० १ बेगि बोलि बलि बरजिए करतूति कठोरे। (वि० ८) बेगिहिं-जल्दी ही। उ० गेहउँ बेगिहि होउ रजाइ। (मा० २।४६।२)
बेगिअ-जल्दी करनी चाहिए। उ० बेगिअ नाथ न लाइअ बारा। (मा० २।२।४)
बेगी-शीघ्र, तुरत। उ० पावक प्रगट करहु तुम्ह बगी। (मा० ६।१०८।१)
बेचक-बेचनेवाला। उ० द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। (मा० ७।९८।१)
बेचहिं-(सं० विक्रय)-बेचते हैं। उ० बेचहिं बेदु धरमु दुहि लेहीं। (मा० २।१६८।१)
बेचारा-(फ़ा०)-दीन, असहाय, गरीब, बेचारा।
बेटकी-(सं० वटु)-बेटी, पुत्री। उ० पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी। (क० ७।९६)
बेटा-(सं० वटु)-लड़का, पुत्र। उ० पुर पैठत रावन कर बेटा। (मा० ६।१८।२)
बेठन-(सं० वेष्ठन)-खोल, आच्छादन, वह कपड़ा जिसमें कोई चीज़ बाँधी जाय।
बेड़ा-(सं० वेष्ठ)-१ घरनई, चौघड़ा, २ नाव या जहाज़ों का समूह।
बेण-दे० 'बेणु'।
बेणु-दे० 'बेनु (१)' तथा 'बेनु' (२)'।
बेत-(सं० वेत्र)-बेंत। उ० फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद। (मा० ६।१६ ख)
बेतस-बेंत। उ० बिलसत बेतस बनज बिकासे। (मा० २।३२४।२)
बेताल (१)-(सं० वैतालिक)-भाट, बंदीजन।
बेताल (२)-(सं० वेताल)-एक प्रकार के भूत। उ० बेताल भूत पिसाच। (मा० ६।१०१।१)
बेताला-दे० 'बेताल (२)'। उ० मज्जहिं भूत पिसाच बेताला। (मा० ६।८८।१)
बेद-दे० 'वेद'। उ० बेद निरूपक बिस्व बिरोधी। (मा०२। १६८।१) बेदन्ह-बेदों ने। उ० सबके देखत बेदन्ह बिनती कीन्हि उदार। (मा० ७।१३ क) बेदहि-बेद को। उ० नहिं गाव पुरान न बेदहि जो। (मा० ७।१०१।४) बेदहुँ-बेद में। उ० से लोकहुँ बेदहुँ बड़ भागी। (मा०२।२२४।३)
बेदसिरा-(सं० वेदशिरा)-एक ऋषि का नाम। उ० बद सिरा मुनि आइ तब सबहि कहा समुझाइ। (मा०१।७३)
बेदा-दे० 'बेद'। उ०कहि नित नेति निरूपहिं बेदा। (मा० २।९३।४)
बेदिका-(सं० वेदिका)-चबूतरा करने की बेदी। उ०बिमल बेदिका रुचिर सँवारी। (मा० १।२२४।१)
बेद-(सं० वेदी)-धार्मिक कार्यों के लिए बनाई गई ऊँची भूमि, वेदिका। उ० बेदी बेद बिधान सँवारी। (मा० १। १००।३)
बेदु-दे० 'बेद'। उ० लाइ बेदु गुन गनत दाऊ। (मा० २। २०७।१)
बेध-(सं० वध)-१ छेद, २ किसी नोकीली चीज़ से छेदन की क्रिया, बेधना, ३ ग्रहों का एक विशेष योग। उ० २ करनबेध उपबीत बिआहा। (मा० १।१०।३)
बेधत-(सं० वेधन)-छेदता है, धँसता है, चुभता है, बेधता है। बेधि-छेदकर, फोड़कर। उ० जुगुति बेधि पुनि पोहि अहिं रामचरित बर ताग। (मा० १।११) बेधय-छेदो। बेधे-छेद डाला, बेधा। उ० सधानि धनु रघुबसमनि हँसि सरन्हि सिर बेधे भले। (मा० ६।९३।छ० १) बेध्यो-छेदा, बेधा।
बेन-दे० 'बेनु (२)'। उ० लोक बेद तें बिमुख भा अधम न बेन समान। (मा० २।२२८)
बनि-त्रिवेणी। दे० 'बेनी (२)'।
बेनी (१)-(सं० वेणी)-१ चोटी, बाल की लट, २ किवाड़ में लगाने की लकड़ी, ३ बेणीमाधव। उ० १ कुस तनु सीस जटा एक बेनी। (मा० १।८।४)
बेनी (२)-(सं० त्रिवेणी)-त्रिवेणी, गंगा, जमुना तथा सरस्वती नदियों का संगम। उ० एहि बिधि आइ बिलोकी बेनी। (मा० २।१०६।३)
बेनु (१)-(सं० वेणु)-१ बंशी, मुरली बाँसुरी, २ बाँस। उ० १ घंटा घंटि पखाउज आउज झाँझ बेनु डफ तार। (गी० १।२) २ बेनु हरित मनिमय सब कीन्हे। (मा० १। २८८।१)
बेनु (२)-(सं० वेन)-एक प्रसिद्ध राजा जो धर्म-विमुख थे।
बेर (१)-(सं० बदरी)-एक कटिदार वृक्ष या उसका फल।
बेर (२)-(सं० वार)-१ बार, दफ़ा, २ देर, विलंब, ३ समय। उ० १ हमरि बेर कस भयो कृपिनतर। (वि०७)
बेर (३)-(?)-शरीर। उ० कुसल गो कीस बर बेर जाको। (क० ६।२१)
बेरा (१)-(सं० वेला)-१ समय, वक्त, २ तड़का, प्रातः काल। उ० १ गिरिबर पठए बोलि लगन बेरा भई। (पा० १२८)
बेरा (२)-(सं० वेष्ट)-बाँस या तख्ते या नावों आदि को जोड़कर बनाया गया ढाँचा जो पानी पर तैरता है। बेड़ा। बेरे-दे० 'बेरा (२)' बेड़े के। उ०बहुत पतित भवनिधि तरे बिनु तरि बिनु बेरे। (वि०२७३) बेरै-बेड़े को। दे० 'बेरा (२)'। उ० मेरे कह्यो मानि, तात! बाँध जिनि बेरै। (गी० २।२७)
बेरिआँ-दे० 'बिरिया'। उ० पुनि आउब एहि बेरिआँ काली। (मा० १।२३४।३)
बेरो-दे० 'बेरा (२)'। उ० साधन-फल, स्रुति सार नाम तव, भव-सरिता कहँ बेरो। (वि० १४३)
बेल-(सं०बिल्व)-एक विशाल पेड़ या उसका फल, श्रीफल। इसका फल अमरूद से बड़ा और गोला होता है। बेल की पत्तियाँ महादेव की पूजा में चढ़ाई जाती हैं। उ० सिवहि चढ़ाये हैं बेल के पतौवा है। (क० ७।१६३) बेलपाती-(सं० बिल्वपत्र)-श्रीफल की पत्ती। उ० बेलपाती महि परइ सुखाइ। (मा० १।७४।३)
बेला (१)-(सं० मल्लिका)-एक पुष्प विशेष, बेइल।
बेला (२)-(सं० वेला)-१ समय, २ कटोरा। उ० १ धनु धुरि बेला बिमल सकल सुमंगल मूल। (मा० १। ३१२)

बेलि (१)-(सं० वल्ली)-लता, लतर। उ० सुखमा बेलि नवल जनु रूप फलनि फली। (पा० १२१)
बेलि (२)-(सं० मल्लिका)-बेला का फूल। उ० हार बेलि पहिरावौं चंपक होत। (ब० ६)
बेलिन-(सं० वलन)-ऊपर का वह बेलन जिसके आधार पर झूला रहता है। उ० पाटीर पाटि बिचित्र भँवरा वलित बेलिन लाल। (गी० ७।१८)
बेवहरिया-(सं० व्यवहार)-१ महाजन, कर्ज देनेवाला, २ हिसाब किताब ठीक से करनेवाला।
बेष-(सं० वेष)-वेश। उ० जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष। (मा० १।६७)
बेषा-दे० 'बेष'। उ० पूजहिं प्रभुहि देव बहु बेषा। (मा० १।६६।२)
बेषु-दे० 'बेष'।
बेसरि-(?)-खच्चर। उ० बेसर ऊँट बृषभ बहु जाती। (मा० १।३००।३)
बेसरि-(?)-नाक का एक गहना, बुलाक। उ० कनि कनक तरीवन, बेसरि सोहइ हो। (रा० ११)
बेसा-(सं० वेष)-वेष, भेष, रूप।
बेसाहि-(सं० व्यवसाय)-खरीदकर, दाम देकर। उ० आनेहु मोल बेसाहि कि मोही। (मा० २।३०।१) बेसाहत-खरीदते हैं। उ० ठेरे बेसाहे बेसाहत औरनि, और बेसाहि कै बेचनहारे। (क० ७।१२) बेसाहिं-(सं० व्यवसाय)-खरीदकर। उ० आनेहु मोल बेसाहि कि मोही। (मा० २।३०।१) बेसाहिए-खरीद लीजिए। उ० बेंचिये बिबुध धेनु रासभी बेसाहिए। (क० ७।७६) बेसाहे-खरीदे हुए, दास, क्रीत दास। उ० दे० 'बेसाहत'। बेसाहै-खरीदे। उ० दिन प्रति भाजन कौन बेसाहै? घर निधि काहू फेरे। (कृ० ३) बेसाहो-१ खरीदा, २ खरीदा हुआ, मोल लिया हुआ। उ० १ तब तें बेसाहो दाम लोह कोह काम को। (क० ७।७०)
बेह-(सं० वेध)-छेद, सूराख।
बेहड़-(सं० विकट)-बीहड़, भयकर, कठिन। उ० बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा। (मा० २।१३६।३)
बेहाल-(फा० बे + अर० हाल)-व्याकुल, बेचैन, विकल।
बेहालू-दे० 'बेहाल'। उ० जनु बिनु पंख बिहग बेहालू। (मा० २।३७।१)
बेहू-दे० 'बेह'। उ० कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू। (मा० २।९६।२।३)
बैकुंठ-(सं०वैकुंठ)-विष्णु का धाम, स्वर्ग। उ० पुर बैकुंठ जान कह कोई। (मा० १।१८२।१)
बैकुंठा-दे० 'बैकुंठ'। उ० सुनु मतिमंद लोक बैकुंठा। (मा० ६।३१।४)
बैखानस-(सं० वैखानस)-वह जो वानप्रस्थ आश्रम में हो। उ० बैखानस सोइ सोचै जोगू। (मा० २।१७३।१)
बैजंतीमाला-भगवान की माला जिसमें नीलम, मोती, माणिक, पुखराज और हीरा ये पाँच रत्न होते हैं।
बैठ-(सं० वेशन)-बैठे। उ० कहि जयजीव बैठ सिर नाइ। (मा० १।१८८।३) बैठत-१ बैठता है, २ बैठे हुए, ३ बैठते ही। उ०२ बैठत बठए रिषय बोलाई। (मा० २।२९३।४) बैठन-बैठने के लिए। उ० कतहुँ बैठन कहा न ओही। (मा० ३।१।३) बैठहिं-१ बैठते हैं, २ बैठेंगे। उ० बैठहिं राम होइ चित चेता। (मा० २।११।३) बैठहि-१ बैठ, बैठो, २ बैठते हैं। उ० १ आँखि ओट उठि बैठहि जाई। (मा०२।१६२।४)बैठि-बैठकर। उ०बैठि हंस पाँति बय सुख चहत मन मतिहीन। (कृ०२२) बैठिअ-बैठ जाइए। उ० बैठिअ होइहिं पाय पिराने। (मा०१।२०८।१) बैठिय-दे० 'बैठिअ'। बैठी-बैठ गई, विराजमान हुई। उ० बैठीं सिव समीप हरषाई। (मा० १।१०७।२) बैठी-बैठ गई। बैठु-बैठो। बैठे-बैठ गए। बैठेउ-बैठे। उ० आपु लखन पहिं बैठेउ जाइ। (मा० २।९०।२) बैठेहि-बैठे ही। उ० बैठेहि बीति गई सब राती। (मा० २।१९१।२) बैठो-बैठकर, २ बैठा ३ बैठ जाओ। उ०१ तासों क्योंहू शुरी, सो अभागो बैठो तोरिहौं। (वि०२६८) बैठ्यो-बैठा, बैठा है। उ० चित्रकूट अचल अहेरि बैठ्यो घात मानो। (क० ७।१४२)
बैठाया-(सं०वेशन) बिठलाया। बैठारि-बैठाकर। बैठारी-१ बिठलाया २ बिठलाकर। उ०१ गहि पद बिनय कीन्ह बैठारी। (मा० २।३४।३) बैठारे-बिठलाए। उ० सचिव सँभारि राउ बैठारे। (मा० २।४४।१) बैठारेन्हि बैठाया, बिठलाया। उ० निज आसन बैठारेन्हि आनी। (मा० १।२०७।१) बैठारो-बैठाया, बैठा लिया। उ० राग-गनिका गज-ब्याध-पाँति जहँ तहँ हौं हूँ बैठारो। (वि० ९४)
बैठाइ-(सं०वेशन) बैठा, बैठाकर। उ० कोपवत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ। (मा० ३।२८) बैठाई-बैठाया, बिठलाया। बैठाए-बैठा लिए। बैठायउ-बैठाया। उ०मरथ देइ मनि आसन पर बैठायउ। (पा० १२२)
बैतरनी-(सं० वैतरणी)-एक पौराणिक नदी जो यम के द्वार पर है। उ० ताकहुँ बिबुध नदी बैतरनी। (मा० ३।१।४)
बैद-(सं० वैद्य)-चिकित्सक, वैद्य। उ० सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस। (मा० ५।३७)
बैदिक-(सं०वैदिक) १ वेद का, २ वेद के अनुसार। उ०२ बिप्र एक बैदिक सिव पूजा। (मा० ७।१०२।२)
बैदेहि-दे० 'बैदेही'। उ० बैदेहि अनुज समेत। (मा० ६।११३।छं० ८)
बैदेही-(सं० वैदेही)-जानकी, सीता। उ० ता पर हरषि चढ़ी बैदेही। (मा० ६।१०८।४)
बैन-(सं० वचन)-वाणी, बोल, वचन। उ० सुनि कठोर कै बैन प्रेम लपेटे अटपटे। (मा० २।१००)
बैनतेय-(सं० वैनतेय)-विनता के पुत्र गरुड़। उ० बैनतेय खग बहि महसासन। (मा० ६।२६।४)
बैना (१)-दे० 'बैन'। उ० नाथ न मैं समुझे मुनि बैना। (मा० १।७१।१)
बैना (२)-(सं० वायन)-उपहार स्वरूप दी जानेवाली मिठाई या कोई और भेंट।
बैनी-बोलनेवाली। दे०'पिकबैनी'।
बैभव-(सं० वैभव)-ऐश्वर्य। उ० नित बैभव बिलास मैं बीता। (मा० २।१८८।१)
बैमात्र-(सं० वैमात्र)-सौतेला, सौतेली माई।
बैयर-दे० 'बैर'।

बैर-(सं० वैर)-शत्रुता, विरोध, अदावत, द्वेष। उ० तौ सुरपति कुरराज बालि सों कत हठि बैर बिसहवै ? (वि० ९७)

बैरक-(तुर० बैरख)-पताका, झंडा। उ० दीजै भगति बाँह बैरक ज्यों सुबस बसै अब खेरो। (वि० १४५)

बैरख-दे० 'बैरक'। उ० घन धावन बगपाँति पटो सिर बैरख तड़ित सोहाई। (कृ०३२)

बैरागी-जिसके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो गया हो।

बैराग्य-(सं० वैराग्य)-विराग, विरक्ति की भावना। उ० भगति ग्यानु बैराग्य जनु सोहत धरे सरीर। (मा० २। ३२१)

बैरिउ-बैरी भी। उ० बैरिउ राम बड़ाई करहीं। (मा० २। २००।४) बैरिनिहि-बैरिन को। उ० सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि। (मा०२।१६) बैरी-(सं० वैरी)-शत्रु, दुश्मन। उ० सो छाँड़िए कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही। (वि०१७४)

बैरु-दे० 'बैर'। उ० बैरु अंध प्रेमहि न प्रबोधू। (मा० २। २६३।४)

बैरू-दे०'बैर'।

बैल-(सं० बलद)-१ बरद, वृषभ, २ मूर्ख, अनाड़ी।

बैश्वानर-दे० 'वैश्वानर'।

बैस (१)-(सं० वयस्)-१ अवस्था, उमर, २ जवानी, युवावस्था।

बैस (२)-(सं० वैश्य)-बनिया, वैश्य।

बैसा-(सं०वेशन)-१ बैठा, २ बैठा हुआ। बैसें-बैठे हुए। उ० अगद दीख दसानन बैसें। (मा० ६।१९।२) बैसे-बैठे। उ० मेरु के शृंगनि जनु घन बैसे। (मा० ६।४३।१)

बोअनहार-(सं० वपन)-बोनेवाला। उ० बोअनहार लुनिहै सोइ देनी लहइ निदान। (स० २००)

बोझा-(सं० वहन)-भार, वज़न।

बोड़ी-(?)-कौड़ी, दमड़ी।

बोध-(सं०)-१ ज्ञान, समझ, जानकारी, २ तसल्ली, धीरज, संतोष। उ० १ दुष्ट-दनुजेस निर्बंस कृत दासहित बिस्व दुख हरन बोधैकरासी। (वि० ५८) २ तदपि मलिन मन बोधु न आवा। (मा० १।१०९।२)

बोधा-दे० 'बोध'। उ० मायाबस न रहा मन बोधा। (मा० १।१३९।३)

बोधित-बोध कराया हुआ, ज्ञान कराया हुआ। उ० बेद बोधित करम धरम बिनु अगम अति। (वि० २०६)

बोरउँ-(सं० ब्रुड)-बोरूँ, डुबाऊँ। बोरत-१ डुबाता है, बोरता है, २ खोता है, गँवाता है। उ० १ बोरत न बारि ताहि जानि आपु सींचा। (वि० ७२) बोरति-डुबाती है। उ० बोरति ग्यान बिराग करारे। (मा० २।२७६।१) बोरहिं-डुबा देते हैं। उ० बूड़हिं आनहि बोरहिं जेई। (मा० ६।३।४) बोरा-डुबोया। उ० तासु दूत होइ हम कुल बोरा। (मा० ६।२२।१) बोरि-डुबाकर। उ० कपट बोरि बानी मृदुल बोलेउ जुगुति समेत। (मा० १।१६०) बोरिहौं-डुबा दूँगा। उ० तौ किए नाम-महिमा की नाव बोरिहौं। (वि० २२८) बोरी-डुबाई, डुबाया। बोरे-१ डुबोए हुए, २ डुबाया, डुबा दिया। उ० १ आपु कृत मकरंद सुधा हृद हृदय रहत नित बोरे। (कृ० ४४) २ सुंभ निसुंभ कुंभीस रन केसरिनि क्रोध बारिधि बैरिबृंद बोरे। (वि०१५) बोरौं-डुबा दूँ, डुबाऊँ। उ० कोसलराज के काज हौं आज त्रिकूट उपारि लै बारिधि बोरौं। (क०६। १४) बोर्‌यो-डुबोया, बोरा। उ० महामोह मृगजल सरिता महँ बोर्‌यो हौं बारहि बार। (वि० १८८)

बोल-(सं० ब्रू)-१ शब्द, आवाज़, २ वचन, बात, प्रतिज्ञा, ३ बुलाया, बोला,४ बुलाते हैं। उ०२ बोल को अचल, नत करत निहाल को ? (वि० १८०) ४ भोजन करत बोल जब राजा। (मा० १।२०३।३) बोलत-१ बोलते हुए, २ बोलते हैं, ३ बुलाते, ४ बोलने में। उ० १ बोलत लखनहि जनकु डेराहीं। (मा० १।२७८।२) ४ रे नृप बालक काल बस बोलत तोहि न सँभार। (मा० १। २७१) बोलन-बोलना, बोली। बोलनि-आवाज़, शब्द, बोली। उ० धावत धेनु पन्हाइ लवाइ ज्यों बालक बोलनि कान किये तें। (क० ७।१२९) बोलब-बोलना। उ० मौन मलिन मैं बोलब बाउर। (मा० २।२६३।३) बोलसि-बोल रहा है। उ० बोलसि निदरि बिप्र के भोरें। (मा०१।२८३।३) बोलहिं- बोलते हैं। उ० भाँति भाँति बोलहिं बिहग श्रवन सुखद चित चोर। (मा० २।१३७) बोलहु-बोलो। उ० काहु न बोलहु बचन सँभारे। (मा० २।३०।२) बोला-कहा, उच्चरित किया। उ०अस मन गुनइ राउ नहिं बोला। (मा० २।४२।२) बोलि-१ बुलाकर, बुला, २ बुलाना, ३ बुलाया, ४ बोली। उ० १ बिष्नु कहा अस बिहसि तब बोलि सकल दिसिराज। (मा० १।६२) ४ नृप लखि कुँअरि सयानि बोलि गुरु परिजन। (जा० ८) बोलिबे-बुलाने। उ० मेरे जान इन्हें बोलिबे कारन चतुर जनक ठयो ठाट इतौ री। (गी० १।७५) बोलिहैं-बोलेंगे। उ० अब तौ दादुर बोलिहइ हमै पूछिहै कौन ? (दो० ५६४) बोलिहौं-१ बुलाऊँगी, २ बोलूँगी। उ० १ गाइ-गाइ हलराइ बोलिहौं सुख नींदरी सुहाई। (गी० १।१६) बानी-कही उच्चरित किया। उ० बिहसि उमा बोलीं प्रिय बानी। (मा० १।१०७।३) बोली-कहा, कही। उ० बोली सती मनोहर बानी। (मा० १।६१।४) बोलु-बोलो, कहो। उ० बोलु सँभारि अधम अभिमानी। (मा० ६।२६।१) बोले-१ कहने लगे, कहा, २ बुलाया। उ० १ बोले चितइ परसु की ओरा। (मा० १।२७२।१) २ जामवंत बोले दोउ भाई। (मा० ६।१।३) बोलेउँ-१ बोले, २ बोला। बोलेउ-बोले। उ० पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ। (मा० ७।१२१।१) बोलेसि-कहा, प्रणाम किया, प्रणाम किया। उ० भूपनसहि समुझाइ करि पत्र बोलेसि बहु भाँति। (मा० ३।२०) बोलेहु-१ बोले, २ बुलाए। उ० २ आइस बिनु बोलेहु न सँदहा। (मा० १।६२।३) बोल्या-१ बुलाया, २ बोला, कहा। उ०१ तिलक को बोल्यो, दियो बन चौगुनो चित चाव। (गी० २।२०)

बोलाइ-(सं० ब्रू)-बुलाकर, बुला। उ० गुर बोलाइ पठए दोउ भाई। (मा० २।१२७।२) बोलाउब-बुलाएँगे। उ० बारहिं बार सनेह बस जनक बोलाउब सीय। (मा० १।

३१०) बोलावन-बुलाने। उ० धावै पिता बोलावन जबहीं। (मा० १।७४।२)
बोलहिं-(सं० ब्रू) बोल रहे हैं। उ०सीस परे महि जय जय बोलहिं। (मा० ६।८८।४)
बोड़-(?)-डुबकी, गोता। बोड़ैं-डुबकियाँ। दे० 'बोड़'। उ० रूप जलधि वपुष लेत मन-गयद बोड़ैं। (गी० ७।४)
बोहित-(सं० बोहित्थ)-नाव, जहाज़। उ० सगु धाप बंद बोहितु पाइ। (मा० १।२६०।४)
बौंड़-(सं० वोंट)-१ बेल, लता, बैंवर, २ मंजरी, बाल। उ०१ बढ़त बौंड़ जनु लही सुसाखा। (मा०२।२४।७) बौंड़ी-१ लता, २ फली, छीमी, ३ बौर, ४ दमड़ी, छदाम। उ० २ राम कामतरु पाइ बेलि ज्यों बौंड़ी बनाइ। (गी० १।७०)
बौंडि-(सं०वोंट) लता। उ० नवत सुमन, नम बिटप बौंडि मानो छपा छिटकि छवि छाइ। (गी० १।१६)
बौंड़िये-(?)-कौड़ी ही, दमड़ी ही, छदाम ही। उ० देहैं तौ प्रसन्न ह्वै बड़ी बड़ाई बौंड़िए। (क० ७।२५)
बौर (१)-(सं० मुकुल)-बउर, मंजरी। उ० हेम बौर मरकत घवरि लसत पाटमय डोरि। (मा० १।२८८)
बौर (२)-(सं० वातुल)-भोला, बावला।
बौरहा-दे० 'बौराहा'।
बौरा-दे० 'बौराहा'। उ० भ सब लोक सोक बस बौरा। (मा० २।२७१।१)
बौराइ-(सं०वातुल) १ पागल हो जाता है, मतवाला हो जाता है, २ पागल होकर। उ०१ जग बौराइ राजपदु पाएँ। (मा० २।२२८।४) बौराई-१ पागलपन, २ पागल हो जाता है, बौरा जाता है। उ०१ सुनहु नाथ ! मन जरत, त्रिविध ज्वर करत फिरत बौराइ। (वि० ८१) बौराएँ-बहकाने में, बहकाने पर। उ० मल मूलिहु दग के बौराएँ। (मा० १।७१।४) बौरात-बौरा जाता है, पागल हो जाता है। बौराना-बौराया, पागल हुआ। बौरानी-१ पागल, बौराइ हुई २ पागल हुई। उ० १ सती सरीर रहिहु बौरानी। (मा० १।५४।२) बौरायहु-पागल बना दिया। उ०मथत सिंधु रुद्रहि बौरायहु। (मा० १।१३६।४)
बौराह-दे० 'बौराहा'। उ० वर बौराह बसहँ असवारा। (मा० १।६२।४)
बौराहा-(सं० वातुल)-पागल, सिड़ी। उ० तृस्ना केहि न कीन्हि बौराहा। (मा० ७।७०।४)
बौरे-उन्मत्त, पागल। उ० रघुनाथ विरोध न कीजिय बौरे। (क० ६।१२) बौरेहि-बावले को, पागल को। उ० कहा मोर मन धरि न धरिय धर बौरेहि। (पा० ६१)
ब्यंग-दे० 'बिम्ब'।
ब्यंजन-(सं० व्यंजन)-१ भोजन, भाँप पकवान, २ स्वर के अतिरिक्त वर्ण जो बिना स्वर की सहायता के नहीं बोले जा सकते।
ब्यग्र-(सं० व्यग्र)-आतुर, व्याकुल। उ० करन हेतु मन ब्यग्र अति परस्पर आपहु तात। (मा० १।२४)
ब्यजन-(सं० व्यजन)-पंखा। उ० गहे छत्र चामर ब्यजन धनु असि चर्म सक्ति बिराजते। (मा० ७।१२।छं० १)

ब्यथा-(सं० व्यथा)-दुःख, कष्ट। उ० नहि तें करन ब्यथा मनबाना। (मा० २।८९।४)
ब्यरथ-दे० 'ब्यर्थ'। उ० ब्यरथ धरहि पर कीजिय रोषू। (मा० २।१७२।१)
ब्यर्थ-(सं० व्यर्थ)-बेकार, बेमतलब। उ० ब्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा। (मा० १।२७३।४)
ब्यलीक-(सं० व्यलीक) झूठा। उ० कालनीक ब्यलीक मद खवन। (मा० ७।५१।४)
ब्यवहरिआ-(सं० व्यवहार)-१ हिसाब करनेवाले, २ व्यापारी। उ० १ अब आनिअ ब्यवहरिआ बोली। (मा० १।२७६।२)
ब्यवहारु-(सं० व्यवहार)-व्यवहार, आचार, सलूक। उ० तदपि जाइ तुम्ह करहु अब जथा बंस ब्यवहारु। (मा० १।२८६)
ब्यवहारु-दे० 'ब्यवहारु'। उ० सरबु मरकु जहँ लगि ब्यवहारु। (मा० २।३२।४)
ब्याकुल-(सं० व्याकुल) घबराया, आतुर। उ० पुर लोग सब ब्याकुल भागी। (मा० २।८४।२)
ब्याकुलता-(सं० व्याकुलता)-घबराहट। उ० मरुछी ब्याकुलता बड़ि जानी। (मा० १।१२४।२)
ब्याज-(सं० व्याज)-१ बहाना, २ सूद, ३ लाभ, ४ निशाना। उ०१ ईस मामता मिलाकु, बानर को ब्याज है। (क० ५।२२)
ब्याध-(सं० व्याध)-बहेलिया, चिड़ीमार। उ० बधेहु ब्याध इव बालि बिचारा। (मा० ६।२०।३)
ब्याधि-(सं० व्याधि)-रोग। उ० देनी ब्याधि असाधि नृप परेउ धरनि धुनि माथ। (मा० २।३४) ब्याधिन-रोगों। ब्याधिन्ह-रोगों। उ० मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। (मा० ७।१२१।१५)
ब्याप-(सं० व्यापन)-व्यापते, व्याप्त होते। उ० तादि न ब्याप त्रिविध भवसूला। (मा० २।१०७।३) ब्यापइ-व्यापती है, असर होती है। उ० प्रभु प्रेरित ब्यापइ तेहि बिया। (मा० ७।७३।१) ब्यापई-व्यापता है, व्याप्त होता है। ब्यापत-१ फैलता है, पसरता है, २ व्यापता, दुखता, सताता। उ०२ तुम्हहि न ब्यापत काल अति कराल कारन कवन। (मा० ७।९४क) ब्यापहिं-१ व्यापते हैं, प्रभाव हैं, असर होते हैं, २ फैलते हैं। ब्यापहि-व्यापता, प्रभावित। उ० कबहुँ काल न ब्यापहि तोही। (मा० ७।८८।१) ब्यापा-१ छा गया, पसर गया, २ भ्रम लिया। उ०१ दारुन दुसह दाहु उर ब्यापा। (मा० २।१६०।४) ब्यापि-(सं० व्यापन) फैल, पसर। उ० अगर ब्यापि गई बात सुनीकी। (मा० २।४६।२) ब्यापिहिंहि-१ फैलेंगी, पसरेंगी, २ असर करेंगी। ब्यापिहि-दे० 'ब्यापहि'। ब्यापी-ब्याप गई, छा गई। उ० रघुपति प्रेरित ब्यापी माया। (मा० ७।७८।१) ब्यापै-१ फैले, पसर, २ लगे, बीते। उ० २ अब जनि कबहुँ ब्यापै प्रभु मोरि माया। (मा० ११२०१)
ब्यापक-(सं० व्यापक) व्याप्तिनेवाला, सर्वव्यापी। उ० ब्यापक ब्याप्य अखंड अनंता। (मा० १।१ २।१)

ब्यापित–व्याप्त, लीन। उ०मोह कलिल ब्यापित मति मोरी। (मा० ७।८२।४)
ब्याप्य–व्याप्त होने योग्य। उ० दे० 'व्यापक'।
ब्याल–(सं० व्याल)–सर्प। उ० मत्र महामनि विषय ब्याल के। (मा० १।३२।५) ब्यालहि–सर्प को। उ० चितव गरुड़ लघु ब्यालहि जैसें। (मा० १।२५६।४)
ब्याला–दे० 'ब्याल'। उ० किंनर निसिचर पसु खग ब्याला। (मा० ७।८१।१)
ब्यालू–दे० 'ब्याल'। उ० मनि बिहीन जनु ब्याकुल ब्यालू। (मा० २।१५४।१)
ब्यास–(सं० व्यास)–महाभारत के तथाकथित रचयिता ऋषि। उ० ब्यास आदि कवि पुंगव नाना। (मा० १।१४।१)
ब्याह–(सं० विवाह)–शादी, विवाह।
ब्याहब–(सं० विवाह)–ब्याह दूँगा। उ० काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगार न सोऊ। (क० ७।१०६) ब्याहि–विवाह करके। उ० एहि बिधि ब्याहि सकल सुत जग जस छायउ। (जा० २०२)
ब्याहु–दे० 'ब्याह'। उ० राम रूपु भूपति भगति ब्याहु उछाहु अनंदु। (मा० १।३६०)
ब्याहू–दे० 'ब्याह'। उ० हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू। (मा० १।४२।१)
ब्योंत–(सं० व्यवस्था)–काट छाँट। उ० भय देह भई पट नेह के घाले सों, ब्योंत करै बिरहा दरजी। (क० ७।१३३)
ब्योम–(सं० व्योम) आकाश। उ० पुर अरु ब्योम बाजने बाजे। (मा० १।२६२।१)
ब्रज–(सं०)–मथुरा-गोकुल के आस पास की भूमि। यह कृष्ण की लीला भूमि है। उ० नयननि को फल लेत निरखि खगमृग सुरभी ब्रज बधू अहीर। (गी० १।५२)
ब्रजनाथ–(सं०)–कृष्ण। उ० जीवन कठिन, मरन की यह गति दुसह बिपति ब्रजनाथ निवारे। (कृ० ५९)
ब्रत–(सं० व्रत)–१ उपवास, २ नियम। उ०२ सत्य सध दृढ़ब्रत रघुराई। (मा० २।८२।१)
ब्रता–ब्रत धारण करनेवाली। दे० 'पतिब्रता'।
ब्रतु–दे० 'ब्रत'।
ब्रन–(सं० व्रण)–घाव। उ० तन बहु ब्रन पीता अरु छाती। (मा० ४।१२।२)
ब्रह्मंड–दे० 'ब्रह्मांड'। उ० थी प्रभु के सग सो बड़ो, गयो अखिल ब्रह्मंड। (दो० ५१२)
ब्रह्मदा–दे० 'ब्रह्मांड'। उ० जय जय मुनि पूर्ण ब्रह्मदा। (मा० ६।१०३।५)
ब्रह्म–(सं० ब्रह्मन्)–परमब्रह्म, परमात्मा। उ० साहु अविदित ब्रह्म जसुमति बाँध्यो हठि सकत न छोरी। (वि० ६८)
ब्रह्मचरज–दे० 'ब्रह्मचर्य'। उ० १ ब्रह्मचरज ब्रत रत मति धीरा। (मा० १।१२६।१)
ब्रह्मचर्ज–दे० 'ब्रह्मचर्य'। उ० १ ब्रह्मचर्ज ब्रत सजम नाना। (मा० १।८४।४)
ब्रह्मचर्य–(सं०)–१ वीर्य को रक्षित रखने का प्रतिबंध, २ पहला आश्रम जिसमें वेदाध्ययन किया जाता है।
ब्रह्मचारी–(सं० ब्रह्मचारिन्)–ब्रह्मचर्य का व्रत धारण करने वाला। पहले आश्रम में रहकर वेदाध्ययन करनेवाला। उ० शक्र प्रेरित घोर-मारमद भगकृत, क्रोधगत बोधरत, ब्रह्मचारी। (वि० ६०)
ब्रह्मग्यान–(सं०)–ब्रह्म विषयक ज्ञान, तत्व ज्ञान। उ० ब्रह्म ज्ञान बिनु नारि-नर कहहिं न दूसरि बात। (दो० ५५२)
ब्रह्मज्ञानी–(सं० ब्रह्मज्ञानिन्)–ब्रह्म को जाननेवाला, तत्व वेत्ता। उ० शांत निरपेक्ष निर्मम निरामय अगुन शब्द ब्रह्मैक पर ब्रह्म ज्ञानी। (वि० ५७)
ब्रह्मन्य–(सं० ब्रह्मण्य)–१ ब्राह्मणों का, २ ब्राह्मणों पर श्रद्धा रखनेवाला। उ० १ प्रभु ब्रह्मन्य देव मैं जाना। (मा० १।२०६।२) ब्रह्मन्यदेव–ब्राह्मणों के भक्त। उ० दे० 'ब्रह्मन्य'।
ब्रह्मर्षि–(सं०)–ऐसा ऋषि जो ब्राह्मण हो।
ब्रह्मविद्–(सं०)–ब्रह्म या परमात्मा को जाननेवाला। उ० ब्यापक ब्योम बर्याग्रि बामन बिभो ब्रह्मविद्-ब्रह्मचिंता पहारी। वि० ५६)
ब्रह्माँ–ब्रह्मा से। दे० 'ब्रह्मा'। उ० मैं ब्रह्माँ मिलि तेहि बर दीन्हा। (मा० १।१७७।३) ब्रह्मा–(सं० ब्रह्म)–भगवान का एक रूप जो जगत की सृष्टि करता है। उ० ब्रह्मादिक गावहिं जसु जासू। (मा० १।६६।२)
ब्रह्मांड–(सं०)–चौदहो भुवन का समूह, सपूर्ण विश्व। उ० कदुक इव ब्रह्मांड उठावौं। (मा० १।२५३।२)
ब्रह्मानंद–ब्रह्मप्राप्ति का आनंद। उ० मानहुँ ब्रह्मानंद समाना। (मा० १।१६३।२)
ब्रह्मानी–(सं० ब्रह्माणी)–१ ब्रह्मा की स्त्री, शक्ति, २ सरस्वती। उ० १ अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी। (मा० १।१४८।२)
ब्रात–(सं० व्रात)–समूह। उ० गुन दूषक ब्रात न कोपि गुनी। (मा० ७।१०१।५)
ब्राता–दे० 'ब्रात'। उ० दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता। (मा० ७।१३।३)
ब्राह्मण–(सं०)–चारो वर्णों में प्रथम और सर्वश्रेष्ठ, विप्र।
ब्राह्मन–दे० 'ब्राह्मण'। उ० बूझो बड़ो प्रमानिक ब्राह्मन सकर नाम सुहायो। (गी० १।१५)
ब्रीड़ा–(सं० व्रीडा)–लज्जा। उ० बरनत मोहि होति अति ब्रीड़ा। (मा० ७।७७।५)

३।०) बोगायन-बुलान। उ० आवै पिता बोलायन जयहीं। (मा० १।७४।२)

बोलहिं-(स० ब्रू) बोल रहे हैं। उ०सीस परे महि जय जय बोलहिं। (मा० ६।८८।४)

बोह-(?)-डुबकी, गोता। बोहैं-डुबकियाँ। दे० 'बोह'। उ० रूप जलधि वपुष लेत मन-मयद बोहैं। (गी० ७।४)

बोहितु-(स० बोहित्य)-नाव, जहाज। उ० ससु चाप बड़ बोहितु पाइ। (मा० १।२६१।४)

बौंड़-(स० वोंट)-१ बेल, लता, बँवर, २ मजरी, बाल। उ०१ बढ़त बौंडजनुलही सुसाखा। (मा०२।२।४)बौंड़ी-१ छता, २ फली, छीमी, ३ बौर, ४ दमड़ी, छदाम। उ० २ राम कामतरु पाइ बेलि ज्यों बौंड़ी बनाइ। (गी० १।७०)

बौंड़े-(स०वोंट) लता। उ० नसत सुमन, नभ बिटप बौंडि मानो छपा छिटकि छवि छाई। (गी०६।११६)

बौड़िये-(?)-कौड़ी ही, दमड़ी ही, छदाम ही। उ० देहैं तौ प्रसन्न ह्वै बड़ी बड़ाई बौंड़िए। (क० ७।२५)

बौर (१)-(स० मुकुल)-बउर, मजरी। उ० हेम बौर मरकत घवरि लसत पाटमय डोरि। (मा० १।२८८)

बौर (२)-(स० वातुल)-भोला, बावला।

बौरहा-दे० 'बौराहा'।

बौरा-दे० 'बौराहा'। उ० भे सब लोक सोक बस बौरा। (मा० २।२७१।१)

बौराइ-(स०वातुल) १ पागल हो जाता है, मतवाला हो जाता है, २ पागल होकर। उ०१ नाग बौराइ राजपदु पाएँ। (मा० २।२१८४) बौराइ-१ पागलपन, २ पागल हो जाता है, बौरा जाता है। उ०१ सुनहु नाथ! मन जरत, त्रिविध ज्वर करत फिरत बौराई। (वि० ८१) बौराएँ-बहकाने में, बहकाने पर। उ० भग भूलिहु दस के बौराएँ। (मा० १।७३।४) बौराव-बौरा जाता है, पागल हो जाता है। बौराना-बौराया, पागल हुआ। बौरानी-१ पागल, बौराई हुई २ पागल हुई। उ० १ सती सरीर रहिहु बौरानी। (मा० १।१४।२) बौरायहु-पागल बना दिया। उ०गभत सिंधु रुद्रहि बौरायहु। (मा० १।१३६।४)

बौराह-दे० 'बौराहा'। उ० बर बौराह बसहँ असवारा। (मा० १।९२।४)

बौराहा-(स० वातुल)-पागल, सिड़ी। उ० तृस्ना केहि न कीन्ह बौराहा। (मा० ७।७०।४)

बौरे-उन्मत्त, पागल। उ० रघुनाथ बिरोध न कीजिय बौरे। (क० ६।१२) बौरहिं-बावले को, पागल को। उ० सदा भोर मन धरि न धरिय बर बौरेहि। (पा०१३)

ब्यंग-दे० 'बिंग'।

ब्यंजन-(स० व्यजन)-१ भोजन, खाने के पदार्थ, २ स्वर के अतिरिक्त वर्ण जो बिना स्वर की सहायता के नहीं बोले जा सकते।

ब्यग्र-(स० व्यग्र)-आतुर, व्याकुल। उ० भयन हेतु सग ब्यग्र अति अकल्पर आमहु तात। (मा० २।२४)

ब्यजन-(स० व्यजन)-पंखा। उ० गहें छत्र चामर ब्यजन धनु असि धर्म सक्ति बिराजते। (मा० ७।१२।छं० १)

ब्यथा-(स० व्यथा)-दुःख, कष्ट। उ० यदि तें कवन ब्यथा बलवाना। (मा० २।८।४)

ब्यरथ-दे० 'ब्यर्थ'। उ० ब्यरथ काहि पर कीजिय रोसू। (मा० २।१७३।१)

ब्यर्थ-(स० व्यर्थ)-बेकार, बेमतलब। उ० ब्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा। (मा० १।२७३।४)

ब्यलीक-(स० व्यलीक) झूठा। उ० कारुनीक ब्यलीक मद खंडन। (मा० ७।५१।४)

ब्यवहरिआ-(स० व्यवहार)-१ हिसाब करनेवाले, २ व्यापारी। उ० १ अब आनिअ ब्यवहरिआ बोली। (मा० १।२०६।७)

ब्यवहारु-(स० व्यवहार)-व्यवहार, आचार, सलूक। उ० तदपि जाइ-तुम्ह करहु अब जथा बस ब्यवहारु। (मा० १।२८६)

ब्यवहारू-दे० 'ब्यवहार'। उ० मरसु नरक जहँ लगि ब्यवहारू। (मा० २।१४२।४)

ब्याकुल-(स० व्याकुल)-घबराया, आतुर। उ० चले लोग सब ब्याकुल भागी। (मा० २।८४।२)

ब्याकुलता-(स० व्याकुलता)-घबराहट। उ० सकुची ब्याकुलता बड़ि जानी। (मा० १।२५४।२)

ब्याज-(स० व्याज)-१ बहाना, २ सूद, ३ लक्ष्य, ४ निशाना। उ०१ हँस बाराता मिलाउ, मातर को ब्याज है। (क० ४।२२)

ब्याध-(स० व्याध)-बहेलिया, चिड़ीमार। उ० बधेउ ब्याध इव बालि बिचारा। (मा० ४।१०।१)

ब्याधि-(स० व्याधि)-रोग। उ० देखी ब्याधि असाधि नृप परेउ धरनि धुनि माथ। (मा० २।३४) ब्याधिन-रोगों। ब्याधिद-रोगी। उ० मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। (मा० ७।१२१।१५)

ब्याप-(स० व्यापन)-व्यापते, व्याप्त होते। उ० ताहि न ब्याप त्रिविध भवसूला। (मा० २।४७।३) ब्यापइ-व्यापती है, दुःख देती है। उ० प्रभु प्रेरित ब्यापइ तेहि बिद्या। (मा० ७।७४।१) ब्यापई-व्यापता है, व्याप्त होता है। ब्यापत-१ फैलता है, पसरता है, २ व्यापता, घेरता, ग्रसता। उ०२ सुनहहि न ब्यापत काल अति कराल कारन कवन? (मा० ७।४४क) ब्यापहिं-१ व्यापते हैं, ग्रसते हैं, दुख देते हैं, २ फैलते हैं। ब्यापहि-व्यापेगा, ग्रसेगा। उ० कबहुँ काल न ब्यापहि तोही। (मा० ७।८८।१) ब्यापा-१ छा गया, पसर गया, २ ग्रस लिया। उ०१ दारुन दुसह दाहु उर ब्यापा। (मा० २।५७।४)

ब्यापि-(स० व्यापन) फैल, पसर। उ० भारु ब्यापि गइ बात सुनीता। (मा० २।४६।२) ब्यापिहहि-१ फैलेगी, पसरेगी २ ग्रसेगी दुख देगी। ब्यापिहि-दे० 'ब्यापहि'।

ब्यापी-ब्याप गई, छा गई। उ० सापनि प्रेरित ब्यापी माया। (मा० ७।७८।१) ब्यापे-१ छेक, पसरे, २ ग्रस लिये। उ० २ अब जनि कबहूँ ब्यापे प्रभु मोहि माया छोरि। (मा० १।२०२)

ब्यापक-(स० व्यापक) व्यापनेवाला, सर्वव्यापी। उ० ब्यापक ब्याप्य अखंड अनंता। (मा० ७।२।१)

व्यापित–व्याप्त, लीन। उ० मोह कलिल व्यापित मति मोरी। (मा० ७।८२।४)
व्याप्य–व्याप्त होने योग्य। उ० दे० 'व्यापक'।
व्याल–(सं० व्याल)–सर्प। उ० मंत्र महामनि विषय व्याल के। (मा० १।३२।५) व्यालहि–सर्प को। उ० चितव गरुड़ लघु व्यालहि जैसें। (मा० १।२५९।४)
व्याला–दे० 'व्याल'। उ० किंनर निसिचर पसु खग व्याला। (मा० ७।८९।१)
व्यालू–दे० 'व्याल'। उ० मनि बिहीन जनु व्याकुल व्यालू। (मा० २।१५४।१)
व्यास–(सं० व्यास)–महाभारत के तथाकथित रचयिता ऋषि। उ० व्यास आदि कबि पुंगव नाना। (मा० १।१४।१)
व्याह–(सं० विवाह)–शादी, विवाह।
व्याहब–(सं० विवाह)–व्याह करूँगा। उ० काहू की बेटी सों बेटा न व्याहब, काहू की जाति बिगार न सोऊ। (क० ७।१०६) व्याहि–विवाह करके। उ० एहि बिधि व्याहि सकल सुत जग जस छायउ। (जा० २०२)
व्याहु–दे० 'व्याह'। उ० राम रूपु भूपति भगति व्याहु उछाहु अनंदु। (मा० १।३६०)
व्याहू–दे० 'व्याह'। उ० हिम हिमसैलसुता सिव व्याहू। (मा० १।४२।१)
ब्योंत–(सं० व्यवस्था)–काट छाँट। उ० सब देह भइ पट नेह के घाले सों, ब्योंत करै बिरहा दरजी। (क० ७।१३३)
व्योम–(सं० व्योम) आकाश। उ० पुर अरु व्योम बाजने बाजे। (मा० १।२६२।१)
व्रज–(सं०)–मथुरा-गोकुल के आस पास की भूमि। यह कृष्ण की लीला भूमि है। उ० नयननि को फल लेत निरखि खगमृग सुरभी व्रज बधू अहीर। (गी० १।४२)
व्रजनाथ–(सं०)–कृष्ण। उ० जीवन कठिन, मरन की यह गति दुसह बिपति व्रजनाथ निवारे। (कृ० ४६)
व्रत–(सं० व्रत)–१ उपवास, २ नियम। उ० २ सत्य संध दृढ़व्रत रघुराई। (मा० २।८२।१)
व्रता–व्रत धारण करनेवाली। दे० 'पतिव्रता'।
व्रतु–दे० 'व्रत'।
व्रन–(सं० व्रण)–घाव। उ० तन बहु व्रन चिंता जर छाती। (मा० ४।१२।२)
ब्रह्मंड–दे० 'ब्रह्मांड'। उ० थी प्रभु के संग सो बड़ो, गयो अखिल ब्रह्मंड। (दो० ५१२)
ब्रह्मंडा–दे० 'ब्रह्मांड'। उ० जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा। (मा० ६।१०३।५)
ब्रह्म–(सं० ब्रह्मन्)–परब्रह्म, परमात्मा। उ० साइ अविदित ब्रह्म जसुमति बाँध्यो हरि सकत न छोरी। (वि० ९८)
ब्रह्मचरज–दे० 'ब्रह्मचर्य'। उ० १ ब्रह्मचरज व्रत रत मति धीरा। (मा० १।१२६।१)
ब्रह्मचर्ज–दे० 'ब्रह्मचर्य'। उ० १ ब्रह्मचर्ज व्रत संजम नाना। (मा० १।८४।४)
ब्रह्मचर्य–(सं०)–१ वीर्य को रक्षित रखने का प्रतिबंध, २ पहला आश्रम जिसमें वेदाध्ययन किया जाता है।
ब्रह्मचारी–(सं० ब्रह्मचारिन्)–ब्रह्मचर्य का व्रत धारण करने वाला। पहले आश्रम में रहकर वेदाध्ययन करनेवाला। उ० शक्र प्रेरित घोर-मारमद भंगकृत, क्रोधगत बोधरत, ब्रह्मचारी। (वि० ६०)
ब्रह्मज्ञान–(सं०)–ब्रह्म विषयक ज्ञान, तत्त्व ज्ञान। उ० ब्रह्म ज्ञान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात। (दो० ५५२)
ब्रह्मज्ञानी–(सं० ब्रह्मज्ञानिन्)–ब्रह्म को जाननेवाला, तत्त्व वेत्ता। उ० शांत निरपेक्ष निर्मम निरामय अगुन शब्द ब्रह्मैक पर ब्रह्म ज्ञानी। (वि० ५७)
ब्रह्मन्य–(सं० ब्रह्मण्य)–१ ब्राह्मणों का, २ ब्राह्मणों पर श्रद्धा रखनेवाला। उ० १ प्रभु ब्रह्मन्य देव मैं जाना। (मा० १।२०६।२) ब्रह्मन्यदेव–ब्राह्मणों के भक्त। उ० दे० 'ब्रह्मन्य'।
ब्रह्मर्षि–(सं०)–ऐसा ऋषि जो ब्राह्मण हो।
ब्रह्मविद्–(सं०)–ब्रह्म या परमात्मा को जाननेवाला। उ० व्यापक व्योम वर्धाग्रि वामन विभो ब्रह्मविद्-ब्रह्मचिंता पहारी। वि० ५६)
ब्रह्माँ–ब्रह्मा से। दे० 'ब्रह्मा'। उ० मैं ब्रह्माँ मिलि तेहि बर दीन्हा। (मा० १।१७७।३) ब्रह्मा–(सं० ब्रह्म)–भगवान का एक रूप जो जगत की सृष्टि करता है। उ० ब्रह्मादिक गावहिं जसु जासु। (मा० १।६६।२)
ब्रह्मांड–(सं०)–चौदहो भुवन का समूह संपूर्ण विश्व। उ० कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं। (मा० १।२५३।२)
ब्रह्मानंद–ब्रह्मप्राप्ति का आनंद। उ० मानहुँ ब्रह्मानंद समाना। (मा० १।११३।२)
ब्रह्मानी–(सं० ब्रह्माणी)–१ ब्रह्मा की स्त्री, शक्ति, २ सरस्वती। उ० १ अगनित लछि उमा ब्रह्मानी। (मा० १।१४८।२)
ब्रात–(सं० व्रात)–समूह। उ० गुन दूषक ब्रात न कोपि गुनी। (मा० ७।१०१।५)
ब्राता–दे० 'ब्रात'। उ० दुसह लहरि कुतर्क बहु ब्राता। (मा० ७।९३।३)
ब्राह्मण–(सं०)–चारो वर्णों में प्रथम और सर्वश्रेष्ठ, विप्र।
ब्राह्मन–दे० 'ब्राह्मण'। उ० बूढ़ो बड़ो प्रमानिक ब्राह्मन संकर नाम सुहायो। (गी० १।१४)
व्रीड़ा–(सं० व्रीडा)–लज्जा। उ० परमत मोहि देखि अति व्रीड़ा। (मा० ७।७७।२)

# भ

भंगं–भंग करने या काटने के लिए। उ० सुहृद सुग्रीव-दुख रासि भंगं। (वि० ५०) भंग–(सं०)–१ खंड, टुकड़े टुकड़े, २ पराजय, हार, ३ नाश। उ० १ महिषमद भंग करि अंग तोरे। (वि० १५) भंगकर–भंग करनेवाले। उ० त्रिपुर मद भंगकर, मत्तगज चर्म धर, अन्धकोरग-ग्रसन-पन्नगारी। (वि० ४९) भंगकृत–तोड़ने या नाश करनेवाले। उ० काम-प्रेरित घोर मारमद-भंगकृत, क्रोधगत, बोधरत, ब्रह्मचारी। (वि० ६०)

भगा–दे० 'भग'।

भंगुर–(सं०)-नाशवान।

भंगू–(सं० भग)-नाश होनेवाला। उ० राम बिरहँ तजि तनु छन भंगू। (मा० २।२११।४)

भंजक–(सं०)-तोड़नेवाला, नाशक।

भंजन–(सं०)-१ भंजन, तोड़ना, ध्वंस करना, नष्ट करना, २ तोड़नेवाला नष्ट करनेवाला, समाप्त करनेवाला। उ० १ नाहिं न करि सुख भंजन तोरा। (वि० ३०) २ अम रुजा भंजन सोक भय। (मा० ६।११२।३) भंजनि–भंग करनेवाली, तोड़नेवाली। उ० भव भंजनि भ्रम भेक भुअंगिनि। (वि० ३१।४)

भंजनिहारु–(सं भंजन+धार)-तोड़नेवाले, समाप्त करनेवाले। उ० सरद बिधु रबि-सुवन मनसिज मान भंजनिहारु। (गी० ७।८)

भंजनु–दे० 'भंजन'।

भंजब–(सं० भंजन)–१ तोड़ूँगा, २ तोड़ेंगे। उ० २ भंजब धनुषु राम सुनु रानी। (मा० १।२५०।१) भंजहिं–तोड़ते हैं। भंजहु–नाश कीजिए, तोड़िए। उ० तुलसिदास प्रभु यह दारुन दुख भंजहु राम उदार। (वि० ६३) भंजा–तोड़ डाला, तोड़ा। उ० हर कोदंड कठिन जेहि भंजा। (मा० ५।२१।४) भंजि–तोड़कर, भंगकर। उ० भंजि भवचाप, दलि दाप भूपावली, सहित भृगुनाथ नत माथ भारी। (वि० ४३) भंजिहि–नाश करेगा, तोड़ेगा। उ० जानत सन की पीर प्रभु भंजिहि दारुन बिपति। (मा० १।१८४) भंजिहैं–तोड़ेंगे। उ० तुलसी प्रभु भंजिहैं संभु धनु भूरि भाग सिय मातु पितौ री। (गी० १।७२) भंजी–तोड़ा, नष्ट किया। भंजे–तोड़ा, टुकड़े टुकड़े किया। भंजेउ–तोड़ा, खंडित किया। उ० भंजेउ राम आपु भव चापू। (मा० १।२५४।३) भंजौं–१ तोड़ूँ, तोड़ डालूँ, २ तोड़ता हूँ। उ० २ लै धावौं भंजौं मृनाल ज्यौं तौ प्रभु अनुग कहावौं। (गी० ३।८७) भंज्यो–१ तोड़ा तोड़ डाला, २ दूर किया। उ० १ भंज्यो संभु-चाप भारी। (गी० ७।३८) २ भंज्यो दारिद काल। (दो० १६०)

भंजिक–दे० 'भंजक'।

भंड–(सं०)–१ भ्रष्ट, २ धूर्त, ३ भँड़ैती करनेवाला। उ० १ चोर, चतुर, बटपार, नट प्रभुप्रिय भँडुआ भंड। (दो० ५४१)

भंडार–(सं० भांडागार)–कोष, खजाना।

भँडारहा–भंडार में, खजाने में। उ० कपट सयाने भरे भरा भँडारही। (क० ५।२३)

भँडारु–दे० 'भंडार'। उ० नगरु बाजि गज भवन भँडारु। (मा० २।१८६।१)

भँडारी–(सं०भंडार+ई) १ छोटा भंडार, छोटा कोष, खजाना या कोठरी, २ खजाने का मालिक, ३ रसोइया। उ० ३ बोलि सचिव सेवक सखा पट धारि भँडारी। (गी० १।६)

भँडुआ–(सं० भंड)–वेश्या के साथ रहनेवाला, वेश्यापुत्र। उ० चोर चतुर बटपार नट प्रभु प्रिय भँडुआ भंड। (दो० ५४१)

भँभोरि–(सं० भय)–डर, भय।

भँवनि–(सं० भ्रमण)-घूमना, भ्रमण। उ० दमत खग निकर, मृग रवनिन्ह जुत थकित बिसारि जहाँ तहाँ की भँवनि। (गी० ३।५)

भँवर–(सं० भ्रमर)–१ आवर्त, चक्कर, २ भँवरा, मधुकर, ३ गड्ढा, गर्त। उ० १ भँवरवर विभंगतर तरंग मालिका। (वि० १७) २ किहेसि भँवर कर हरवा हृदय विचारि। (ब० ३२)

भँवरा–(सं० भ्रमर)–१ भौंरा, भ्रमर, द्विरेफ, २ घूमनवाली चीज, ३ भँवर, चर्खी, लोहे या पीतल की वह कड़ी जो कील में इस प्रकार जड़ी रहती है कि वह जिधर चाहे घूम सके। उ० ३ पाटीर पाटि विचित्र भँवरा खचित पेखिग जाल। (गी० ७।१८)

भ–(सं०)–भरणी नक्षत्र। उ० उगुन पुगुन वि मज कृ म, भा भ म भू गुनु साथ। (दो० ४५०)

भइँ–(सं० भू) हुई। उ० उमा रमादिक सुरतिय सुनि प्रमुदित भईं। (जा० १५०) भइ–हुई, हो गई। उ० भइ बदि बार आनि कहुँ काज सिधारहि। (पा० ७१) भइउँ–हो गई हूँ। उ० धीरेहि अनुराग भइउँ बदि बागरि। (पा० ७०) भइन्ह–हो गईं, हुईं। उ० भइँ धन्य युवती जा देखि। (मा० २।२२३।२) भइसि–हुई है। उ० दहे आत पइ भइसि अपारा। (मा०२।२१।१) भइहु–भईं, हो गईं। उ० भामिनि भइहु दूध कइ माखी। (मा० २।१९।४) भई–हुई, हो गई। उ० दिन दूसरे भूप भामिनि दोउ भईं सुमंगल-खानी। (गी० १।७) भई (१)–(सं० भू)–हो गई, हुई। उ० तुलसी जाके चित भई राग द्वेष की हानि। (वै० २१) भए–१ हुए, हो गए २ उत्पन्न हुए, उपजे, ३ होने पर। उ० १ मो मन गयो, फिर्यो भए सब गर्व-गर्हाले। (वि० ३१) ३ सरि सना सावर सधार भए देव दिव्य। (वि० ७५) भएउ–हुआ, हो गया। भएसि–हुआ, हुआ है। उ० भएसि काल बस निसिचर नाहा। (मा० ३।२८।८) भयउ–हुआ, भया। उ० सुमनादि भयउ पर्वताकारा। (मा० ४।२०।२) भयऊ–दे० 'भयउ'। उ० सब बिलोकि उर अति सुख भयऊ। (मा० १।१०५।२) भयहु–हुआ, हो गया।

भयो-१ हुआ, हो गया, २ पैदा हुआ। उ० भयो कनौड़ो जाचकहि पयद प्रेम पहिचानि। (दो० २६१) भा(१)-१ हुआ, २ होते ही। उ० १ लखि मारद-नारदी उमहिं सुख भा उर। (पा० १६) २ भा मिनुसार गुदारा लागा। (मा०२।२०२।४) भे-हुए, हो गये। उ० भे मन लोक सोक बस बौरा। (मा० २।२७१।१)

भइया-(सं० भ्राता)-भैया, भाई। उ० एक कहत भइया भरत जये। (गी० १।४६)

भई (२)-(सं० भ्राता)-भाई।

भकुश्रा-(सं० भेक)-मूर्ख, जड़, अज्ञानी।

भक्त-(सं०)-१ ईश्वर का भक्त साधु, २ सेवक, ३ प्रेमी, ४ भात, पकाया चावल, ५ यांटकर दिया हुआ। उ० १ भक्त-हृदि भवन अज्ञान-तम-हारिनी। (वि० ४८) भक्तवत्सल-दे० 'भक्तवत्सल'। भगवान को। उ०नमामि भक्तवत्सल। (मा० ३।४।१) भक्तवत्सल-(सं०)-भक्त के लिए जिसके हृदय में प्रेम हो। भगवान

भक्ति-भक्ति को, प्रेम को, अनुराग को। उ० भक्ति प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे कामादि दोष रहित कुरु मानस च। (मा० ५।१। श्लो० २) भक्ति-(सं०)-१ परमात्मा के प्रति अनुराग, २ श्रद्धा, आदर भाव, ३ प्रेम। उ० १ भजति भवहार, भक्त कल्प थालिका। (वि० १७) भक्त्या-भक्ति से, भक्तिपूर्वक। उ०ये पठति नरा भक्त्या तेषां शम्भु प्रसीदति। (मा० ७।१०८।६)

भक्ष-(सं०)-आहार, भोजन।

भक्षक-(सं०)-खानेवाला, भोजन करनेवाला।

भक्षण-(सं०)-१ खाना, आहार, २ भोजन करना, खाना खाना।

भक्षित-(सं०)-खाया हुआ।

भक्ष्य-(सं०)-भोजन के योग्य भक्षणीय।

भक्ष्याभक्ष्य-(सं०)-खाने योग्य और न खाने योग्य।

भख-दे० 'भक्षण'।

भखा-(सं० भक्षण)-भक्षण किया, खाया।

भग-(सं०)-१ ऐश्वर्य, २ स्त्री चिह्न।

भगत-(सं० भक्त)-भक्त, उपासक, दास। उ० भगत काम सह नाम राम परिपूरन चंद चकोर को। (वि० ३१) भगतन-१ भक्तों, २ भक्तों को, ३ भक्तों ने। भगतन्ह-भक्तों, भक्तों ने। उ० हरि भगतन्ह देखे दोउ भ्राता। (मा०१।२४२।३) भगतबछलता-(सं०भक्त+वत्सलता)-भक्त के प्रति उपास्य के हृदय में प्रेम भाव। उ० भगत बछलता हियँ हुलसानी। (मा० १।२१८।२)

भगति-दे० 'भक्ति'। उ० १ सेये नहिं सीतापति-सेवक साधु सुमति भले भगति भाय। (वि० ८३) ३ तुलसिदास हरिचरन कमल, हर ! देहु भगति अविनासी। (वि० ६) भगतिहि-भक्ति में। उ० स्याहि भगतिहि अतर केता। (मा० ७।११५।६)

भगतु-दे० 'भगत'।

भगन-(सं० भगण)-एक गण जिसके आदि में गुरु और मध्य तथा अंत में लघु होता है। उ० भगन जगन का सों करमि राम अपर नहिं कोय। (स० ३८८)

भगवत-(सं० भगवत्)-१ ईश्वर, भगवान् विष्णु, २ शिव। उ०१ तेहिं मागेउ भगवत पद कमल अमल अनुरागु। (मा० १।१७७) भगवतहि-भगवान् को, भगवंत को। उ० विरहवंत भगवतहि देखी। (मा० ३।४१।३)

भगवता-दे० 'भगवत'। उ० १ जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता। (मा० १।१८६। छं० १)

भगवान-(सं० भगवद्)-ईश्वर, परमेश्वर। उ० सगुन महा अवराधन मोहि कहहु भगवान। (मा० ७।११० ख)

भगवाना-दे० 'भगवान'। उ० मुनि मति पुनि फेरी भगवाना। (मा० ७।११३।२)

भगवान्-दे० 'भगवान'। उ० राजा राम स्वयम भगवान्। (मा० २।२२४।१)

भगान-(?)-भागना। उ० सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान। (मा० २।२३०)

भगिनि-दे० 'भगिनी'। उ० सिय लघु भगिनि लखन कहँ रूप उजागरि। (जा० १७३)

भगिनी-(सं०)-बहन। उ० अनुजवधू भगिनी सुत नारी। (मा० ४।६।४)

भगीरथ-(सं०)-सूर्यवंशी राजा जो गगा को पृथ्वी पर लाने में सफल हुए थे। उ० भूप भगीरथ सुरसरि आनी। (मा० २।२०६।४)

भगीरथनदिनि-गगा। उ० जय जय भगीरथनंदिनि, मुनि चय चकोरि चंदिनि। (वि० १७)

भग्न-(सं०)-१ टूटा हुआ, खंडित, २ पराजित, हारा, ३ नष्ट भ्रष्ट, ४ नश्वर, ५ विफल, असफल। उ० ४ भग्न-ससार पादप-कुठार। (वि० ६०) ५ जदपि भगन मनोरथ विधि बस सुख इच्छत दुख पावै। (वि० ११६)

भग्नी-दे० 'भगिनी'।

भच्छ-(सं० भक्ष्य)-भक्ष्य, जो खाया जाय। उ० अशुभ वेष भूषन धरे भच्छाभच्छ जे खाहिं। (मा० ७।१८ क)

भच्छक-दे० 'भक्षक'। उ० ते फल भच्छक कठिन कराला। (मा० ३।१३।४)

भच्छन-(सं० भक्षण)-भक्षण, खाना। उ० आनु सबहि कहँ भच्छन करऊँ। (मा० ४।२७।२)

भच्छहीं-खाते हैं भक्षण करते हैं। उ० कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं। (मा०५।३।छं०३)

भच्छाभच्छ-दे० 'भक्ष्याभक्ष्य'। उ० अशुभ वेष भूषन धरें, भच्छाभच्छ जे खाहिं। (मा० ७।१८ क)

भजति-भजन करते हैं। उ० भजति हीन मत्सरा। (मा० ३।४। छं० ७) भज-(सं० भजन)-१ भजनकर, २ सेवा, टहल ३ भजता है। उ० ३ सब भरोस तजि जो भज रामहि। (मा० ७।१०३।६) भजइ-१ भजन करे, २ भजन करता है। भजइ-१ भजन करे, भजेगा, सेवेगा, २ भजन करता है। उ० १ विधि बस हठि अविवेकहि भजइ। (मा० १।२२३।२) भजत-१ भजते करते ही, २ भजता है। उ० १ भजत कृपा करिहहिं रघुराई। (मा० १।२००।३) भजति-भजती है। भजते-१ भजते हुए, २ भजा करते। उ० १ तौ हरि रोस भरोस दोस गुन तेहिं भजते तजि गारो। (वि० १६) भजसि-भजता है, भजन करता है। उ० तुलसिदास सठ तेहि न भजसि कस कारुनीक जो अनाथहि दाहिन।

(वि० २०७) भजहिं-भजते हैं, स्मरण करते हैं। उ० भजहिं मोहि सचत हुम जाने। (मा० ७।४१।२) भजहि-१ भज, भजनकर, २ भजता, भजन करता। उ० १ समुझि तजहि भ्रम भजहि पद सुगम। (वि० २३६) २ तुलसिदास तेहि सकल तजि भजहि न अजहुँ अयाने। (वि० ११६), भजहु-भजो, भजन करो। उ० भ्रम तजि भजहु भगत भयहारी। (मा० ४।२२।४) भजामहे-हम लोग भजते हैं, हम लोग भजते रहते हैं। उ० पदकंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे। (मा० ७।१३।छं०४) भजामि-भजता हूँ, भजन करता हूँ। उ० भजामि ते पदांबुज। (मा० ३।४।छं०१) भजि (१)-भजकर, भजन कर। उ० पाई न केहिं गति पतित पावन राममजि सुनु सठ मना। (मा० ७।१३०।छं०१) भजिअ-भजिए, स्मरण कीजिए। उ० अस बिचारि मन माहिं भजिय महामाया पतिहि। (मा० १।१४०) भजिय-दे० 'भजिअ'। भजी(१)-भजा, याद किया। भजु-भजो, भजन करो। उ० सो तजि विषय विकार-सार भजु, अजहूँ जो मैं कहौं सोइ करु। (वि०२०५) भजे(१)-१ भजन किए, २ मैं भजन करता हूँ। उ०१ छुटै न विपति भजे बिनु रघुपति स्रुति संदेह निबेरो। (वि० ८७) २ मुनि मानस पंकज भृंग भजे। (मा० ७।१४।छं० ६) भजेसु-भजना, भजन करते रहना। उ० सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोही। (मा० ७।८८।१) भजेहु-भजा, याद किया। उ० भजेहु राम सोभा सुख सागर। (मा० ६।६४।५) भजै-१ भजे, भजन करे, २ भजन करता है। उ० २ भावै सो जेहि भजै सुभ असुभ सगाई। (वि० ३५) भजौं (१)-१ भजता हूँ, भजन करता हूँ २ सेवा करता हूँ। उ० १ भायो भरत भजौं, न तजौं तिहि यह पावन अधिराउ। (गी०५।४५) भज्यो-१ भजो, २ भजना, याद करना, ३ भजा, स्मरण किया। उ० २ जौ मन भज्यो चहै हरि सुरतरु। (वि० २०५)

भजतहि-भजते हुए को। उ० किए छोह छाया कमल कर की भगत पर भजतहि भजे। (वि० १२५)

भजन-(सं०)-बार बार किसी आराध्य का नाम स्मरण या गुण-कथन करना, जप, ईश्वर का नाम स्मरण या कीर्तन आदि। उ० जब तब सुमिरन भजन न होई। (मा० ५।३२।२)

भजनि-(सं० भजन) भागना, भागने का भाव। उ० भजनि मिलनि रूठनि तूठनि किलकनि। (गी० १।२७) भजहिं-भाग, भग जा। उ० तुलसिदास प्रभु के दासन तजि भजहि जहाँ मदमार। (वि०१८८) भजि (२)-भाग कर, दौड़कर। उ० किलकनि नटनि चलनि चितवनि भजि मिलनि मनोहर तैसी। (गी०१।६) भजी (२)-भगी भाग गई। भजे (२)-भगे, भाग गए। भजौं (२)-भागता हूँ।

भजनीय-भजन करने योग्य। उ० परमारथिन्ह महँ भगे भजनीय सुर-मुनि-दुलभ। (कृ० २३)

भट-(सं०)-१ वीर, बहादुर २ सैनिक सिपाही, योद्धा। उ० भट महुँ प्रथम लीक जग जासू। (मा० १।१८०।४) भटन्ह-भटों का, वीरों का। उ० रुग्पतिन्ह गगन बसुन्धि सुभटहि सुभट भटन्ह बढावहीं। (मा० छं० १)

भटकत-(?) १ भटकते हैं, २ भटकते हुए। उ० भटकत पद अद्वैतता अटकत ग्यान गुमान। (मा० १।...) भटकि-भूलकर, भ्रम में पड़कर। उ० तहँ तहँ ... उलूक ज्यौं भटकि कुतरु-कोटर गहौं। (वि० २२२) भटकै, भटकते हैं। उ० नाहिं त दीन ... कोटि जनम भ्रमि भ्रमि भटकै। (वि० ६३)

भटभेरे-(सं० भट + भिड़ना)-ठोकर, धक्का। उ० ... भाग्य देहिं भटभेरे। (मा० ७।१२०।६)

भटभेरो-दे० 'भटभेरे'। उ० तब करि क्रोध संग ... देत कठिन भटभेरो। (वि० १४३)

भटमानी-अपने को भट (=योद्धा) माननेवाला। ... महा मुनीसु महा भटमानी। (मा० १।२०३।१)

भटा-दे० 'भट'। उ० १ गज बाजि घटा, भले भूरि भट वनिता सुत भौंह तकैं सब वै। (क० ७।४१)

भट्ट-(?) एक संबोधन जो ब्रज में स्त्रियों के लिए आता है। उ० सो क्यों भट्ट तेरो कहा करि ... जात। (कृ० २)

भट्टा-दे० 'भट'। उ० १ देखि चले सन्मुख कपि भट्टा। (मा० ६।८७।१)

भड़िहाई-(सं० भंड)-१ चोरी, २ भँड़ैती। उ० ... उत चितइ चला भड़िहाई। (मा० ३।२८।५)

भँडुआ-(सं० भंड)-वेश्यापुत्र, वेश्या के साथ रहने ... उ० चोर चतुर बटपार नट, प्रभुप्रिय भँडुआ भ... २४६)

भडुवा-दे० 'भँडुआ'।

भणित-(सं०) दे० 'भनिति'।

भदेस-(सं० भद्र)-१ भद्दा, कुरूप बेडौल, २ निंद्य, अनुचित। उ० ३ भले भूप कहत भले भदेस भूपनि ... (क० १।१५)

भदेसू-दे० 'भदेस'। उ० २ मोर अभाग सब भाँति भदेसू। (मा० २।२६६।४)

भद्र-(सं०)-१ मंगल, कल्याण, २ सभ्य, सुशिक्षित, ३ श्रेष्ठ। उ० १ कह तुलसिदास किन भजसि मन ... सदन भद्र भवन। (क० ७।१५२) ३ ... राम भद्र ... भाहू। (मा० २।११६।४)

भनता-(सं० भण)-कहते हैं, वर्णन करते हैं। उ० ... गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनता। (मा० १।१९२।२) भनई-१ कहता है, २ पाता है, ३ वर्णन कर सकता है। उ० ३ सुकवि लखन मन की गति भनई। (मा० २।२४०।३) भनत-कहते हैं। भनि-कहकर, ... कर। भनियत-कही जाती। उ० मोऊ ... भली भाँति भनियत है। (वि० १८३) भनिहैं ... उ० दमि ... अधिकार प्रभु सों भली भाँति ... भनिहैं। (वि० ६५) भनी-१ कही, वर्णन की, १ ... कर, कहते हुए, ३ कविता की। उ० २ ... यदपि प्रसुन ... निज स्लोक जय ... भनी। (मा० १।१२०। छं० ४) भनु-१ कहो, २ कहते हो। उ० १ ... भनु प्रभुत्व ... हम माहीं। (मा० १।१।१) ...

भाषे, बोले। उ० ब्याध, गनिका गज अजामिल साखि निगमनि भने। (वि०१६०) भनै-कहे। उ० तेहि रघुनाथ हाथ माथे दियो, को तार्की महिमा भनै। (गी० ५।४०)
भन्यो-१ कहा, २ पुकारा। उ० १ महि परत पुनि उठि लरत देवन्ह जुगल कहुँ जय जय भन्यो। (मा० ६।६२। छं० १)
भनक-(अनु०)-ध्वनि, आहट, धुनि।
भनित-१ कहा हुआ, २ कविता, रचना। उ० १ सहस नाम मुनि भनित सुनि, तुलसी-बल्लभ नाम। (दो० १८८) २ तुलसी भनित सबरी प्रनति, रघुबर प्रकृति करुनामई। (गी० ३।१७)
भनिति-दे० 'भनित'। उ० २ भाषा भनिति भोरि मति मोरी। (मा० १।६।२)
भभर-(सं० भय)-१, खटका, डर, २ घबराहट, व्याकुलता।
भभरा-(सं० भय)-घबराया। भभरि-१ घबराकर, २ डरकर। उ० १ सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान। (मा० २।२३०) २ तुलसी भभरि मेघ भागे मुख मोरि कै। (क० ५।११) भभरे-डरे, डर गये। उ० भभरे, बनइ न रहत न बनइ परातहि। (पा० ११५)
भभेरि-(?)-१ चक्कर, २ मूर्खता, ३ शोरगुल। उ० १ गुन ज्ञान-गुमान भभेरि बड़ी। (क० ७।१०३)
भय-भय, डर। उ० जनरंजन भंजन सोक भय। (मा० ६।१११।३) भय-(सं०)-डर, त्रास, खौफ। उ० भक्ति मुक्ति-दायिनि, भयहरनि कालिका। (वि० १६)
भयंक-दे० 'भयंकर। उ० बेष तौ भिखारि को, भयंक रूप संकर। (क० ७।१६०)
भयंकर-(सं०)-भीषण, भयानक, डरावना। उ० प्रभु सिव रुद्र संकर भयंकर भीम घोर-तेजायतन क्रोधरासी। (वि० ४१)
भयंकरा-दे० 'भयंकर'। उ० तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा। (मा० १।६२। छं० १)
भयकारी-भयभीत करनेवाला। उ० असगुन अमित होहिं भयकारी। (मा० ३।१८।४)
भयचक-डरा हुआ, भयभीत।
भयदा-(सं०) भय देनेवाला, भयानक। उ० दंडपानि भैरव बिषान, मलरुचि खलगन भयदा सी। (वि०२२)
भयदायक-(सं०)-भय देनेवाला। उ० भयदायक खल कै प्रिय बानी। (मा० १।२४।४)
भयभीत-(सं०)-डरा हुआ, भयातुर।
भयमोचन-डर दूर करनेवाला। उ० स्यामल गात प्रनत भयमोचन। (मा० ५।४५।२)
भयातुर-(सं० -डरा हुआ, भयभीत। उ० मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकंजा। (मा० १। १८६।४)
भयातुरे-भयातुर होकर, डरकर। उ० चले बिचलि मर्कट भालु सकल कृपाल पाहि भयातुरे। (मा० ६।६१।छं० १)
भयानक-(सं०)-भयंकर, भीषण, डरावना। उ० मनहु भयानक मूरति भारी। (मा० १।२४१।३)
भयाव-(सं०) डरावना, भयंकर। उ० कहाँ अमंगल बेषु बिसेषु भयावन। (पा०९०) भयावनि-डरावनी, भयंकर। 'भयावन' का स्त्रीलिंग। उ० मारग जात भयावनि भारी। (मा० १।१५६।४)
भयावनी-दे० 'भयावनि'।
भयावने-दे० 'भयावन'।
भयावनो-दे० 'भयावन'। उ० नाथ न चलै गो बल अनल भयावनो। (क० ५।८)
भयावह-(सं०)-भयंकर, भयकारक।
भयावहा-दे० 'भयावह'। उ० प्रभु कीन्हि धनुष टकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा। (मा० ३।१७।छं० १)
भरदर-(?) अधाधुंध।
भर (१)-(सं० भरण)-१ पूर्ण, भरा पूरा, २ भारी, ३ भरण-पोषण करनेवाला, ४ भरण, भरने की क्रिया, ५ धारण करनेवाला। उ० १ सघन तम घोर-संसार भर-शर्वरी-नाम दिवसेस खर किरनमाली। (वि० ५५) ५ बिस्वभार भर अचल छमा सी। (मा० १।३१।५)
भर (२)-(सं०भरत)-एक जाति। उ० प्रभु तिय लूटत नीच भर। (दो० ५४०)
भरई-(सं० भरण)-भरती है, भर देती है। उ० भरत उपाय प्रथम तेहि भरई। (मा० ७।१०६।६) भरऊँ-१ भरता हूँ, पूरा करता हूँ, २ ऋण चुकाता हूँ। भरत (१)-१ भर देता है, २ भरण-पोषण करते हुए। उ० १ देत जो भू भाजन भरत, लेत जो घूँक पानि। (दो० २८७) भरब-भरूँगी, पूरा करूँगी। उ०नैहर जनमु भरब बरु जाई। (मा०२।२१।१) भरहीं-भरते हैं। उ० तब सब मारि बिलोचन भरहीं। (मा० २।११३।२) भरहु-भरो। भरहुगे-भर दोगे। उ० अमल दृढ़ भगति दै परम सुख भरहुगे। (वि० २११) भरा-१ बोझा हुआ, भरा हुआ, आपूर्ण, २ भरण पोषण किया, ३ लादा, पूरा किया, ४ धारण किया। उ०१ बिषरस भरा कनक घटु जैसे। (मा०१।२७८) भरि-१ पूर्ण करके, भरकर, अच्छी तरह, २ पोषण करके, ३ पाल करके, ४ भर, पर्यंत। उ० १ जोवन-ज्वर जुवती कुपथ्य करि भयो त्रिदोष भरि मदन-बाय। (वि० ८३) ४ दुहत न चदा देखिये, उदो कहा भरि पाख। (दो० ३४४) भरिबे-भरना, पूरा करना। उ० तुलसी कान्ह बिरह नित नव जर भरि जीवन भरिबे हो। (कृ० ३१) भरिया-भर गया, आपूर्ण हो गया। उ०तिन सोने के मेरु से ढेर लहे मन तौ न भरो घर पै भरिया। (क० ७।४५) भरी-१ भर गई, पूर्ण हो गई, भरी है, २ भरी हुई, आपूर्ण। उ० १ भरी क्रोध जल जाइ न जोई। (मा० २। ३४।१) भरे-१ भरा, भर दिया, २ भरे हुए। उ० २ भय पथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुननि भरे। (मा० ७।१३।छं० २) भरेउ-भरा। भरेऊ-भरा। भर्‌यो-भरा हुआ। उ०तीय हरी रन बंधु पर्‌यो पै भर्‌यो सरनागत-सोच हियो है। (क० ६।५३)
भरत (२)-(सं०)-१ राम के छोटे भाई जो कैकेयी के पुत्र थे। इनके ही लिए कैकेयी ने राम को १४ वर्ष का बनवास दिलाया था, पर ये राम के अनन्य भक्त थे, अतः इन्होंने राज्य को ठुकरा दिया। २ एक प्रसिद्ध राजा जो शकुन्तला के पुत्र थे। उ० १ कहै मोहि मैया, कहौं, मैं न

स्थान। उ० १ घोर अगाह भव-आपगा। (वि०५६) १ २ सब भव विभव पराभय कारिनि। (मा० ११२३५१४) ५ भव अग भूति मसान की। (मा० ११११०। छ० २) ६ प्रचुर भव भजन, प्रणत जन-रंजन। (वि० १२)

भवचाप-शिव का धनुष, पिनाक। उ० भजि भवचाप, दलि दाप भूपावली। (वि० ४३)

भवतव्यता-(स० भवितव्यता)-होनहार, भावी, होनी, भाग्य। उ० तुलसी जसि भवतव्यता तैसी मिलइ सहाइ। (मा० ११११५९ ख)

भवदीय-(स०)-आपका, तुम्हारा। उ० एक गति राम भव दीय पदत्रान की। (वि० २०९)

भवन (१)-(स०)-१ मकान, महल, घर, २ यज्ञ, हवन, ३ होमकुंड। उ० १ भवन आनि सनमानि सकल मंगल किए। (जा० २१२) भवनानि-घरों, भवनों। उ० भवननि पर सोभा अति पावत। (मा० ७।२८।३) भवनन्हि-दे० 'भवननि'।

भवन (२)-(स० भुवन)-ससार।

भवनि-(स० भ्रमण)-घूमना। भवे-घूमवे फिरे, भटकते फिरे।

भवनी-(स० भवन)-स्त्री, भार्या। उ० कहति मुदित मुनि भवनी। (गी० ११५६)

भवनु-भवन, घर, महल। उ० कलस सहित गहि भवनु ढहावा। (मा० ६।४४।२)

भवभामिनी-(स०)-शिवकी स्त्री पार्वती। उ० दास तुलसी त्रास हरणि भवभामिनी। (वि० १८)

भवाँइ-(स० भ्रमण)-घुमाकर। उ० गहि पद पटकेउ भूमि भवाँइ। (मा० ६।१८।३)

भवानिए-भवानी ही। उ० मेरे माय बाप गुरु संकर भवानिए। (क० ७।१६८) भवानिहिं-पार्वती को। उ० पावनि करउँ सो गाइ भवेस भवानिहि। (पा० ४) भवानी-(स०)-१ पार्वती २ दुर्गा। उ० १ कीन्हि प्रस्न जेहि भाति भवानी। (मा० ११३३।१)

भवानीनदन-(स०)-गणेश, पार्वती के पुत्र।

भवान्-आप। उ० नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये सत्य वदामि च भवानखिलांतरात्मा। (मा० ५।१। श्लो० २)

भविष्य-(स० भविष्यत्)-आनेवाला काल।

भवेस-(स० भवेश)-महादेव, विश्व के स्वामी। उ० तुलसी भरोसो न भवेस भोलानाथ को तो। (क० ७। १६१)

भव्य-(स०)-१ सुन्दर, अच्छा, २ शुभ, मगलप्रद। उ० १ ललित नर्मांग सर्वांग सुन्दर लसत, दिव्य पद, भव्य भूषण बिराजै। (वि० १५)

भसम-दे० 'भस्म'। उ० भये भसम जनु जान। (प्र० ३। ११६)

भस्म-(स० भस्मन्)-जलने के बाद बची राख, राख। उ० भस्म तनु भूषण, व्याघ्र चर्मांबर। (वि० ११)

भहरानि-(?)-गिरी, गिर पड़ीं। उ० हहरानी फौजें भह रानी जातुधान की। (क० ६।४०) भहराने-गिर पड़े। उ० भहराने भट परयो प्रबल परावनो। (क० ५।८)

भाँग-(स० भृंगा)-भग, प्रसिद्ध पौधा जिसकी पत्तियाँ मादक होती हैं। उ० जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु। (मा० ११२६)

भाँट-दे० 'भाट'। उ० किसबी किसान कुल बनिक भिखारी भाँट। (क० ७।९६)

भाँड़-(स० भड)-मसखरा, विदूषक। उ० मूड़ मुड़ाए बाद ही भाँड़ भए तजि गेह। (स० ३८८)

भाँड़ा-(स० भांड)-बरतन, मटका। भाँड़े-बर्तन, भाँड़ा। उ० कपट कलेवर कलि मल भाँड़े। (मा० ११ २।१)

भाँड़िगो-(स० भड)-नष्ट भ्रष्ट कर गया। उ० सहित समाज गढ़ राँड़ कैसो भाँड़िगो। (क० ६।२४)

भाँडु-दे० 'भाँड़'। उ० राम विमुख कलिकाल को भयो न भाँडु। (ब० ६३)

भाँडू-(स० भांड)-भड़ा-फोड़, भेद का खुलना।

भाँति-(स०)-१ तरह, किस्म २ मर्यादा, चाल। उ० १ अस सब भाँति अलौकिक करनी। (मा० ११११८।४) २ रटत रटत लटयो जाति पाँति भाँति घट्यो। (वि० २६०) भाँतिन्ह-तरहों, रीतियों। उ० १ जनक कीन्ह पहुनाई अगनित भाँतिन्ह। (जा० १८१) भाँतिहिं-प्रकार से, तरह से। उ० सिय कृपा सागर ससुर कर संतोषु सब भाँतिहिं कियो। (मा० ११०१। छ० १)

भाँती-दे० 'भाँति'। उ०१ मोरि सुधारिहि सो सब भाँती। (मा० ११२८।२)

भाँवर-(स० भ्रमण)-१ फेरी, २ विवाह के अवसर पर सम्पन्न होनेवाली सप्तपदी।

भाँवर-दे० 'भाँवर'।

भाँवरि-दे० 'भाँवर'। उ० २ लावा होम विधान बहुरि भाँवरि परी। (पा० १४५)

भाँवरी-दे० 'भाँवर'। उ० २ सिंदूर बदन होम लावा होन लागीं भाँवरी। (जा० १६२)

भा (२)-प्रकाश, उजाला। उ० अच्छ विमर्दन कानन भाम दसानन आनत भा न निहारो। (ह० १४)

भाइ (१)-दे० 'भाइ (२)'। उ० जाइ देखि आवहु नगरु सुख निधान दोउ भाइ। (मा० ११२१८)

भाइ (२)-दे० 'भाइ (१)'। भाई (१)-(स० भान)-१ अच्छी लगी, २ सोहि। उ० १ नासा नयन कपोल ललित श्रुति कुंडल भ्रू मोहि भाई। (वि० ६२) भाऊ (१)-भावे, अच्छा लगे। भाए-१ अच्छे लगे, २ चाह हुए। उ० २ सुरत मुदित जहँ तहँ चस मन के भए भाए। (गी० ११६) भायउ-अच्छा लगा। उ० रघुपतिहि यह मत भायउ। (मा० ५।६०। छ० १) उ० १ सुनि हनुमान हृदय अति भाये। (मा० ५।१।१) भायो-१ अच्छा लगा, २ मन का चाहा हुआ। भावइ-अच्छा लगे, सुहावे। उ० मीन काट छवि कर्हहि जाहि जोइ भावइ। (पा० ७२) भावई-१ दे० 'भावइ', २ अच्छी लगती है, सुहाती है। उ० २ दम्भिहि नीति कि भावई। (मा० ७।१२ ग) भावत-अच्छा लगता है। भावता-१ अच्छा लगता, २ प्रिय, पसद का। भावति-सुहाती है। उ० भावति हृदय जाति नहि बरनी। (मा०

१।२४१।२) भावती-१ अच्छी लगती है, २ मनभाती, ३ प्यारी। भावते-१ प्यारे, अच्छे, २ अच्छे लग। उ० १ भैया भरत भावते के सँग। (गी० २।६६) भाया-१ अच्छा लगा, अच्छा लगता है, २ दे० 'भाव'। उ० १ अमहुँ को आनइ का तहि भाया। (मा० २।१६२।४) भावै-अच्छा लगे, पसंद हो। उ० मोहि तोहि नात अनेक मानिय जो भावै। (वि० ७४) भावौं-अच्छा लगूँ।

भाइन्ह-भाइयों का। उ० पुनि अर्मीस हुहु भाइन्ह दीन्ही। (मा० १।२२७।४) भाई (२)-(स० भ्राता)-बंधु, भ्राता। उ० जग बहु नर सर सरि सम भाई। (मा० १।८।७)

भाउ-(स० भाव)-१ भावना, भाव, २ प्रेम, ३ स्वभाव। उ० २ इनकी भगति कीन्हीं इनहीं को भाव मैं। (वि० २६१)

भाऊ (२) दे० 'भाउ'। उ० २ जिन्ह के राम चरन भल भाऊ। (मा० १।३३।४)

भाएँ-१ भाव से, २ समझ में, अनुमान से।

भाखइ-(स० भाषण)-भाषण करे। भाखउँ-कहूँ कहता हूँ। भाखा-१ कहा, २ भाषा, ज़बान। भाखि-कहकर। भाखी-कही। भाखें-कहते हैं, वर्णन करते हैं। भाखे-कहा। भाख्यो कहा।

भाग (१)-(स०) हिस्सा, अंश। उ० अर्ध भाग कौसल्यहि दीन्हा। (मा० १।१९०।१)

भाग (२)-(स० भाग्य)-भाग्य, किस्मत। उ० वर दुलहिनि अनुरूप छवि सखी सराहहिं भाग। (प्र० १।७।२)

भाग (३)-(स० भाज्)-१ भागो, भाग जाओ, २ भाग गया। उ० २ मनहुँ भाग मृग भाग बस। (मा० २।७५) भागउँ-भागूँ, भाग जाऊँ। भागन-भागने, भाग जाने। भागहिं-भागते हैं, भगते हैं। भागहि-भाग जाती है। उ० रवि भारती भमरि भागहि, मगुदाहि अमित अन भाई। (वि० ११५) भागा-भाग गया, दौड़ा। उ० धाया चालि हेरि मो भागा। (मा० ४।६।२) भागि-भागकर। उ० भागि भवन पैठीं अति त्रासा। (मा० १।९६।२) भागिहै-भाग जायगा। उ० सहित सहाय कलिराज भीर भागिहै। (वि० ७०) भागु-(स० भाज्) भागो, भाग जाओ। उ० भागु भाग सजि भाग यतु। (प्र० ७।४।५) भागू (१)-भागो, भाग जाओ। भागे-१ भाग गए २ भागने पर। उ० २ भागे भल भाषेहु भलो। (दो० ४२७) भागेउ-दे० 'भागेहु'। भागेहु-भागने पर भी।

भागी-(स० भाग्य)-भाग्यवान। उ० भरत भूरि भागी। (वि० ३६)

भागी (२)-(स० भाग)-साझी, हिस्सेदार।

भागीरथी-(सं०)-गंगा नदी। उ० भागीरथी जलपान करौं अरु नाम द्वै राम के लेत नितै हौं। (क० ७।१०२)

भागू (२) (स० भाग)-भाग, हिस्सा।

भागू (३)-(स० भाग्य)-भाग्य, तक़दीर।

भाग्य-(स०) क़िस्मत, प्रारब्ध। उ० चरन देखि जिन भाग्य सराही। (मा० १।१६०।१)

भाजइ-(स० भाज्)-१ भागता है, २ भाग जाने पर। उ० २ भाजन मिलइ हँसहिं मगु भाजत ... करहिं। (मा० ७।७७ क) भाजहिं-भागते हैं, भाग जाते हैं। उ० बहुतक हेरि कठिन सर भाजहिं। (मा० ६।६८।४) भाजि-भागकर, भाग, परा, पलायन कर। उ० कहँ कुटि निपट गइ लाजि भाजि। (गी० ७।२२) भाजी-भाग गई, भागी। उ० सपरी ... नृप बिनु भूप न भाजी। (क० ७।४५) भाजे-भगे, भाग गए। उ० होंक सुनत रजनीचर भाजे। (मा० ६।४७।३)

भाजन-(स०)-१ पात्र, बर्तन, २ योग्य। उ० १ जीव सकल संताप के भाजन जग माहीं। (वि० १२०)

भाजनु-दे० 'भाजन'।

भाट-(स० भट्ट)-चारण, बंदी एक गायक जाति। उ० चले भाट हियँ हरषु न थोरा। (मा० १।२९१।४)

भाटा-दे० 'भाट'। उ० भूप भीर नट मागध भाटा। (मा० १।२१७।१)

भात (१)-(स० भक्त) पका चावल। उ० छाक महँ साथ कोउ भात राँध्यो। (क० ६।४) मु० नहिं खात भात रीन्हो-तुच्छ समझता। कुछ परवा न करता। उ० दे० 'भात'।

भात (२)-(स०)-सवेरा, प्रभात।

भाति-(स० भान)-१ ज्ञान होता है, २ प्रकाशित होता है, ३ शोभित होता है। उ० १ यत्सत्त्वाद मृषैव भाति सकलं। (मा० १।१ श्लो० ६)

भाथ-(स० भस्त्रा, पा० भत्था) तरकश तुणीर। उ० जौं न करौं प्रभुपद सपथ कर न धरौं धनु भाथ। (मा० १।२५३) भाथहि-तरकश को। उ० हृदय आनि सिदराम धरे धनु भाथहि। (पा० १)

भाथा-(स० भस्त्रा)-तुणीर, तरकश। उ० भाथा बाँधि चढ़ाइन्हि धनुहीं। (मा० २।१९१।२)

भाथी-(स० भस्त्रा)-१ धौंकनी, २ छोटा तरकश। उ० १ करि भाथी नर पाप चढ़ाइ। (मा० २।१०।२)

भादव-(स० भाद्रपद)-भादों का महीना। उ० राम नाम बर बरन जुग सावन भादव मास। (मा० १।१९)

भान-(सं०)-ज्ञान, चमक, स्मरण, बोध।

भानन-(स० भञ्जन)-तोड़नेवाला। उ० खल-दल-बन भानन। (ह० २) भानना-तोड़नेवाली, मिटानेवाली। उ० बचन गँभीर गदुदाम भव भानना। (गी० ७।१९)

भानि-(स० भंजन)-१ तोड़कर, २ तोड़नेवाला। भानिहौं-तोड़ोगे, नष्ट करोगे। उ० सरनागत-भय भानिहौ। (वि० २२६) भानी-तोड़ी, तोड़ दी, नष्ट की। उ० विषम वियोग व्यथा सहि भानी। (गी० ६।२०) भान्या-तोड़ डाला, नष्ट किया। उ० सहि न सक्यो सो कठिन बिधाता बड़ो पचु भाखुदि भान्यो। (गी० ३।१३)

भानु-(स०)-१ सूर्य रवि २ राजा, ३ विष्णु। उ० १ दुहु-पावक-भानु-नयन। (वि० ११) भानुहि-भानु को, सूर्य को। उ० समय भाक निविड़ तम भानुहि। (मा० ७।३०।४)

भानुकुल-(स०)-सूर्यवंश वह वंश जिसमें राम पैदा हुए थे। उ० भानुकुलभानु कीरति-पताका। (वि० ४६)

भानुजा-(स०)-यमुना।

भानुभुवन-१ हरिश्चंद्रकुमार, २ शनैश्चर, ३ यमराज, ४ राजा कर्ण। उ० १ कोटि भानुभुवन मारकनाम कारि मगन। (गी० २।१०)

भामा–(सं०)–दे० 'भामिनी'। उ० जगदंबिका जानि भवभामा। (मा० १।१००।४) भामो–भामा भी, स्त्री भी। उ० दे० 'भील'।
भामिन–दे० 'भामिनी'।
भामिनि–दे० 'भामिनी'। उ० नहिं अघाहिं अनुराग भाग भरि भामिनि। (जा० १५०)
भामिनी–(सं०)–स्त्री, औरत। उ० तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु समुझि धौं जिय भामिनी। (मा० २।५०।छं०१)
भायँ–प्रेम में, भाव से। उ० भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। (मा० १।२८।१) भाय (१)–(सं० भाव)–१ भाव, २ प्रेम।
भाय (२)–(सं० भ्राता)–भाइ। उ० बिगरे तें आपु ही सुधारि लीजै भाय जू। (क० ७।१३६)
भायप–भाईपन। उ० भायप भगति भरत आचरनू। (मा० २।२२३।१)
भारं–बोझ, भार। भार–(सं०)–१ बोझ, २ उत्तरदायित्व, ३ भारी। उ० १ दुष्ट बिबुधारि संघात महिभार अपहरन। (वि० ५०) भारहि–भार को। उ० मुनिरंजन भंजन महि-भारहि। (मा० ७।३०।५)
भारत–(सं०)–१ कौरव-पांडव युद्ध, २ महाभारत ग्रंथ ३ युद्ध, ४ बहुत बड़ी कहानी। उ० १ भारत में पारथ के रथकेतु कपिराज। (ह० ५)
भारति–दे० 'भारती'। उ० १ मति भारति पंगु भइ जो निहारि। (क० १।७)
भारती–(सं०)–१ सरस्वती, २ वाणी वचन, बोली। उ० १ भरत भारती रिपुदवनु, गुरु गनेस बुधवार। (प्र० १।१।४)
भारद्वाज–(सं०)–भरद्वाज ऋषी के पुत्र द्रोणाचार्य।
भारा–दे० 'भार'। उ० ३ नित नव सोच सती उर भारा। (मा० २।८८।१)
भारिए–भारी है। उ० जीव जामवंत को भरोसो तेरो भारिये। (ह० २३)
भारी–(सं० भार)–१ वजनी गरुआ, २ बड़ा, ३ कठिन, ४ भीषण ५ अधिक, ६ प्रबल, ७ गंभीर, ८ शांत। उ० २ त्रिपुर मदन भीम कर्म भारी। (वि० ११) ३ भारी पीर दुसह सरीर तें बिहाल होत। (क० १।४२) ५ सोभा अति भारी। (वि० ५१)
भारु–दे० 'भार'। उ० ३ गुरहिं भयउ दुख भारु। (मा० २।८८)
भारू–दे० 'भार'।
भारे–१ बोझल, २ बड़े, विशालकाय। उ० २ नाना बरन बली सुर भारे। (मा० ६।५६।४)
भार्गव–(सं०)–भृगुवंशी, १ परशुराम, २ दैत्यगुरु शुक्राचार्य, ३ लक्ष्मी। उ० १ भार्गवागर्व-गरिमापहर्ता। (वि० ५०)
भार्या–(सं०)–स्त्री, पत्नी।
भाल–(सं०)–ललाट, मस्तक। उ० भाल बिसाल तिलक झलकाहीं। (मा०१।२४३।३) भाले–भाल पर, मस्तकपर। उ० भाले बाल विधुर्गले च गरलं। (मा० २।१ श्लो० १)
भाला (१)–(सं० भल्ल)–बरछा, एक नोकीला हथियार।
भाला (२)–(सं० भाल)–ललाट, मस्तक। उ० विधि के लिखे अंक निज भाला। (मा० ६।२६।१)
भालु–(सं० भल्लुक)–१ भालू रीछ, २ जामवंत। उ० १ सुभट मर्कट भालु-कटक-संघट सजत। (वि० ४३) २ जातुधान भालु कपि केवट बिहग जो जो। (क० ७।१३)
भालुनाथ–जामवंत। उ० भालुनाथ नल नील साथ चले। (गी० ५।१)
भालू–दे० 'भालु'। उ० १ निसिचर भट महि गाड़हिं भालू। (मा० ६।८१)
भाव–(सं)–१ विचार, भावना, मनोवृत्ति, २ प्रेम। उ० १ भावभेद रसभेद अपारा। (मा० १।९।५) २ जौ श्रीपति महिमा बिचारि उर भजते भाव बढ़ाये। (वि० १६८)
भावतो–(सं० भाव)–भानेवाला, चाहा हुआ। उ० मन भावतो धेनु पय स्रवहीं। (मा० ७।२३।३)
भावन–भानेवाला, अच्छा लगनेवाला। जैसे मनभावन।
भावना–(सं०)–१ विचार, मनोवृत्ति, २ इच्छा, कामना, ख्वाहिश। उ० २ जिन्हकें रही भावना जैसी। (मा० १।२४१।२)
भावनि–अच्छी लगनेवाली। उ० सुक सनकादि संभु मन भावनि। (मा० ७।१२३।३)
भावनी–दे० 'भावनि'।
भाविउ–भावी भी, होनहार भी। उ० भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी। (क०१।७०।३) भावी–(सं०भाविन्) होनेवाला, होनहार, भविष्य। उ० भावी बस न जान कछु राऊ। (मा० १।१७०।४)
भावें–विचार में, मन में।
भाषउँ–(सं० भाषा)–कहता हूँ। उ० बेद पुरान संत मत भाषउँ। (मा० ७।११६।१) भाषा–(सं०)–१ बोली, २ बात, वचन, ३ कहा, ४ हिंदी। उ० ३ पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा। (मा०१।३५।६) ४ भाषा निबंध मति मंजुल मातनोति। (मा० १।१ श्लो० ७) भाषी–(सं० भाषण)–१ कहनेवाला, २ कहा, ३ कहकर। उ० १ कोशला-कुशल-कल्यान भाषी। (वि० २७) ३ सतधाम भये अस भाषी। (मा० १।७७।४)
भाषित–(सं०)–कहा हुआ, कथित।
भास–(सं० भास)–ज्ञात होता है। उ०भास सत्य इव मोह सहाया। (मा० १।११७।४) भासै–ज्ञात हो, दीखे। उ० रिपुमय कबहुँ मारिमय भासै। (वि० ८१)
भास्कर–(सं०)–१ सूर्य, २ अग्नि।
भिंडिपाल–(?)–हाथ से चलाने का एक अस्त्र, गोफिया। उ० गहि कर भिंडिपाल बर साँगी। (मा० ६।५०।४)
भिखार–दे० 'भिखारी'।
भिक्षु–(सं०)–भिखारी।
भिखारि–दे० 'भिखारी'। उ० बेष तौ भिखारि को भयंक रूप संकर। (क० ७।१६०)
भिखारी–(सं० भिक्षा, हिं० भीख)–भीख माँगनेवाला, भिक्षुक। उ० राम निवाजि लेत को हठि होत भिखारी। (गी० १।६)
भिजई–(सं० अभ्यञ्जन) भिगो दी, तर कर दी। उ० कदना

मारि भूमि भिजइ है। (वि० १२६) भींजै-(सं०अभ्यञ्ज)-भीगता है, भीजता है। उ० तन राम मयन जन भींजै। (गी० ३।१५)

भितैहौं-(सं० भीति)-डरूँगा, भयभीत होऊँगा। उ० पै मैं न भितैहौं। (क० ७।१०२)

भियो-(सं० भित्)-१ भुना, धँसा, २ टूटा, छिदा। उ० २ भिया न कुलिसहु तें कठोर चित। (वि० १०१)

भिनुसार-(सं० विनिशा)-सबेरा, भोर। उ० भा भिनुसार गुदारा लागा। (मा० २।२०२।४)

भिनुसारा-दे० 'भिनुसार'।

भिनुसारु-दे० 'भिनुसार'।

भिन्न-(सं०)-अलग, दूसरा। उ० गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न। (मा० १।१८)

भिया-(सं० भ्राता)-भाई, हे भाई। उ० कोउ कहै तेज प्रताप पुंज चितए नहिं जात, भिया रे! (गी० १।६९)

भियो-(सं० भय)-डरा भयभीत हुआ। उ० कलिमल खल देखि भारी भीति भियो हौं। (वि० १८१)

भिरउँ (१)-भिड़ा, टकराया। उ० जब जब भिरउँ जाइ बरिआई। (मा० ६।२२।३) भिरत लड़ते हैं, भिड़ते हैं। उ० सहि परत उठि भट भिरत मरत। (मा०३।२०।छं०४) भिरहि-भिड़ते हैं, टकराते हैं, लड़ते हैं। भिरिहि-भिड़ेगा। भिरे-भिड़ गए। उ० जहँ तहँ कम्पगाइ भट भिरे। (मा० ६।७६।३) भिरेउँ-दे० 'भिरउँ'।

भिल्ल (सं०)-भील, कोल। उ० स्वपच खल भिल्ल जवनादि। (वि० ४६) भिल्लनि-भीलों, मुसहरों। उ० नर नारि निदरहिं नेहु निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा। (मा० २।२२१। छं० १) भिल्लिनि-भील जाति की स्त्री। उ० भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति बचनु भयंकर बाजु। (मा० २।२८)

भिषक्-(सं०)-वैद्य।

भी-(सं०)-भय, डर। उ० सुमिरत भय भी के। (गी० १।१२)

भीख-(सं० भिक्षा)-भिक्षा, माँगने पर मिली वस्तु। उ० भूसुर मिलै न भीख। (दो० ४२०)

भीत-(सं०)-डरा हुआ, भयभीत। उ० भारी भीति भियो हौं। (वि० १८१)

भीतर-(सं० आभ्यन्तर)-बीच, मध्य, अन्दर। उ० बाहर भीतर भीर न बनै बखानत। (जा० १४)

भीता-दे० 'भीत'। उ० लंकेस बस नाथ! अत्यन्त भीता। (वि० ४८)

भीति (१)-(सं०)-डर, भय। उ० ईति अति भीति ग्रह प्रेत। (वि० २८)

भीति (२)-(सं० भित्ति)-दीवार। उ० सुन्य भीति पर चित्र रंग नहिं तनु बिनु लिखा चितेरे। (वि० १११)

भीती-दे० 'भीति (१) तथा 'भीति (२)'।

भीम-(सं०)-१ पाँच पांडवों में एक, २ भीषण, भयानक, ३ शिव। उ० १ पाँचहि मारि न सौ सके सयो सँहारे भीम। (दो० ४२८) २ बिपुल बैद भव भीम रोग के। (मा० १।३२।२)

भीमता-भयंकरता। उ० भीमता निरखि कर नयन ढाँके। (क० ६।४२)

भीर (१)-(?)-भीड़, लोगों का समूह। उ० १ बाहर भीतर भीर न बनै बखानत। (जा० १४)

भीर (२)-(सं० भीरु)-१ डरपोक, २ कोमल हृदयवाला।

भीर (३)-(सं० भी)-डर। भीरहि-डर को, भय को। उ० कस न भजहु भजन भव भीरहि। (मा० ७।३०।४)

भीरा (१)-दे० 'भीर (१)'।

भीरा (२)-दे० 'भीर (२)'। उ० सील सनेह न छाड़िहि भीरा। (मा० २।७१।२)

भीरा (३)-दे० 'भीर (३)। उ० परधर घातक लाज न भीरा। (मा० १।१८७।२)

भीरु-(सं०)-डरपोक, कायर। उ० दारिदी दुखारी देखि भूसुर भिखारी भीरु। (क० ७।१०४)

भील-(सं० भिल्ल) एक जंगली जाति, कोल। उ० सुकृत सील भील भामो। (वि० २२८) भीलनी-१ भील की स्त्री, २ शबरी। उ० २ भीलनी को खायो फल। (वि० १८३)

भीषण-(सं०)-भयकर, भयानक। उ० भीषणाकार, भैरव भयकर। (वि० ११)

भीषन-दे० 'भीषण'।

भीष्म-(सं०)-१ भयानक, २ शांतनु के पुत्र।

भुअँग-दे० 'भुजग'।

भुअग-दे० 'भुजग'। उ० तुलसी चंदन बिटप बसि बिनु बिष भये न भुअग। (दो० ३६७) भुअगिनि-सर्पिणी। उ०भय भजनि भ्रम भेक भुअगिनि। (मा०१।३१।७)

भुअँगिनि-दे० 'भुअगिनि'।

भुअंगू-(सं० भुजग)-साँप, सर्प। उ० मनहुँ दीन मनिहीन भुअंगू। (मा० २।४०।१)

भुअन-दे० 'भुवन'।

भुआल-दे० 'भुवाल'। उ० हाहाहु अवध भुआल तव मैं होव तुम्हार सुत। (मा० १।१५१)

भुआला-दे० 'भुपाल'। उ० दुहकि होइ एक समय भुआला। (मा० २।२४।३)

भुआलु-दे०'भुवाल'। उ० चतुर भुआलु सुनिय सुनिनायक। (मा० २।३।१)

भुआलू-दे० 'भुवाल'। उ० राम राम रट बिकल भुआलू। (मा० २।३७।१)

भुइँ-(सं० भूमि)-पृथ्वी पर, धरती पर। उ०उमगी अवध अनंद भुरम भुइँ बादर। (जा० २१०)

भुक्ति-(सं०)-लौकिक सुख। उ० भुक्ति मुक्तिदायिनि भय हरनि कालिका। (वि० १६)

भुगँग-दे० 'भुजग'। उ०भुजंग-भोग भुजदंड, कज दर चक्र गदा बनि आई। (वि० ६२)

भुजंग-(सं०)-साँप। उ० जिमि भुजग बिनु रज्जु पहिचाने। (मा० १।११२।१)

भुजगा-दे० 'भुजग'। उ० नदय लागि उरगारि भुजगा'। (मा० १।१६१।५)

भुज-(सं० भुजा) बाँह, बाहु। उ० नाग सुंड सम भुज चारी। (वि० ६१) भुजन-भुजाएँ। भुजनि-भुजाओं।

,उ० भुजनि पर जननी वारि फेरि डारी। (गी० १।१०७)
भुजन्ह-भुजाएँ। भुजहिं-भुजा में। उ०जुग अंगुलकर बीन सम रामभुजहि मोहि तात। (मा०७।७१ क)
भुजबीहा-बीस भुजाओंवाला, रावण। उ० साचेहु मैं लयार भुजबीहा। (मा० ६।३४।४)
भुजग-दे० 'भुजग'। उ० भुजग भूति भूषन त्रिपुरारी। (मा० १।१०६।४)
भुजगेंद्र-(स० भुजगेन्द्र)-शेषनाग, सर्पों का राजा। उ० ससार-सार भुजगेंद्र हार। (वि० १३)
भुजदड-बाहु, भुजा। उ० चड भुजदड ख"नि विहडनि महिप। (वि० १५)
भुजा-(स०) बाँह, भुज। उ०सत्य कहौं दोउ भुजा उठाई। (मा० १।१६२।३)
भुवि-दे० 'भुवि'। उ० सुर रजन सज्जन सुखद हरिभजन भुवि भार। (मा० १।१३१)
भुलाइ-(स० विह्वल)-१ भूल, भूलने का भाव, २ भूल गये। उ० १ फिरत ग्रहेरें परेउँ भुलाइ। (मा० १। १५१।३) भुलान-भूला, भूला हुआ। उ० बालक भभरि भुलान फिरहिं घर हेरत। (पा० ११६) भुलाना-दे० 'भुलान'। उ० तव माया बस फिरउँ भुलाना। (मा० ४। २।५) भुलानी-भूल गई। भुलाने-१ भूले, भूले हुए, २ भूल गये, भूले। उ० २ लच्छन तासु बिलोकि भुलाने। (मा० १।१३।१) भुलाव-(स० विह्वल)-१ भुलवाया, २ भूलने का भाव। भुलावा-भुलवाया, भटकाया। उ० जेहिं सूकर होइ नृपहि भुलावा। (मा० १।१७०।२)
भुवग-दे० 'भुजग'।
भुवगिनि-दे० 'भुअंगिनि'।
भुव-(स० भ्रू)-भृकुटी, भौहें। उ० गहन-दहन निरदहन-लक, नि सक बक भुव। (ह० १)
भुवन-(स०)-१ लोक, जगत, २ १४ भुवन, ३ १४ की सख्या। उ० १ भूनाथ श्रुतिमाथ जय भुवन भर्ता। (वि० ५५)
भुवाल-(स० भूपाल)-राजा, नरेश। उ० बन तें आइ कै राजा राम भए भुवाल। (गी० ७।१)
भुवि-(स० भू)-पृथ्वी, ज़मीन।
भुशुंडि-दे० 'भुशुंडी'।
भुशुंडी-(स०)-काक भुशुंडी ऋषि।
भुसुंड-(स० भुशुंड)-बहुत मोटे शरीरवाला।
भुसुंडा-दे० 'भुशुंडी'। उ० गयउ गरुड़ जहँ बसइ भुसुंडा। (मा० ७।६३।१)
भुसुंडि-दे०'भुशुंडी'। उ० कहा भुसुंडि बखानि सुना बिहग नायक गरुड़। (मा० १।१२० ख) भुसुंडिहि-भुशुंडी को। उ० सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा। (मा० १।३०।२)
भुसुंडी-दे० 'भुशुंडी'।
भूँजय-(स० भुज्)-भोगेंगे, भोग सकेंगे। उ० राजु कि भूँजब भरतपुर नृपु कि जिइहि बिनु राम। (मा० २।४६)
भू-(स०)-पृथ्वी। उ० कपट भू भट अकुर। (मा० ६।११। छ० १)
भूख-(स० बुभुक्षा)-भोजन करने की इच्छा। उ० दास तुलसी रही नयननि दरस ही की भूख। (गी० ५।६)
भूखा-जिसे भूख लगी हो। उ० मुदित छुधितनु पाइ जिमि भूखा। (मा० २।११।३) भूखी-जिसे भूख लगी हो। 'भूखा' का स्त्रीलिंग। उ० मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी। (मा० २।५१।१) भूखे-क्षुधित, जिसे भूख लगी हो। उ० एक भूखे जानि आगे आने कद मूल फल। (क० २।३०)
भूचर-दे० 'भूचर'। उ० डाकिनी-शाकिनी-खेचर भूचर। (वि० ११) भूचर-(स०)-१ पृथ्वी पर चलनेवाले जीव, २ भूत प्रेत, ३ शिव, ४ एक प्रकार की सिद्धि।
भूत-(स०)-१ प्राणी, जीव, २ शिव के गण, ३ शरीर, ४ पिशाच, जिंद। उ० १ भूत द्रोहरत मोह बस। (मा० ६।७८) २ भूत प्रेत प्रमथाधिपति। (वि० ११) ४ भूत ग्रह-बेताल-खग मृगालि-जालिका। (वि० १६)
भूतनाथ-(स०)-शकर महादेव। उ० तुलसी की सुधरै सुधारे भूतनाथ ही के। (क० ७।१६८)
भूतल-पृथ्वी, ज़मीन या धरातल। उ० सब साज भूप भए भूतल भरन। (वि० २४८)
भूता-दे० 'भूत'।
भूति-(स०)-१ वैभव, सपत्ति, ऐश्वर्य, २ राख, भस्म, ३ मोक्ष। उ० १ कीरति भनिति भूति भलि सोई। (मा० १।१४।५) २ भव अग भूति मसान की। (मा० १।१०। छ० २)
भूतेश-(स० भूतेश)-शकर।
भूधर-(स०)-१ पर्वत, पहाड़, २ पृथ्वी को धारण करने वाले, ३ शेषनाग, ४ विष्णु, ५ राजा। उ० १ कनक भूधराकार सरीरा। (मा० ५।१६।४) २ जय इंदिरारमण जय भूधर। (मा० ७।३४।२) भूधरन-१ दे० 'भूधर', २ 'भूधर' का बहुवचन, बहुत से पर्वत। भूधरनि-पहाड़। उ० अति ऊँचे भूधरनि पर भुजगन के अस्थान। (वै० ३६)
भूप-(स० -राजा। उ० सेवा अनुरूप फल देत भूप कूप ज्यों। (क०७।२४) भूपहिं-राजा को। उ० बोलि ब्याहि सिय देत दोष नहिं भूपहिं। (जा० ७७) भूपहि-राजा को।
भूपतहि-राजपद को, भूप के पद को। उ०चहत न भरत भूपतहि भोरें। (मा० २।३६।१) भूपता-(स०) राजपद।
भूपतिं-१ राजा को, राजा के। भूपति-(स०) राजा। उ० शिव धनु भजि निदरि भूपति भृगुनाथ खाइ गये ताउ। (वि० १००) भूपतिहि-भूपति को।
भूपा-दे० 'भूप'।
भूपाल-(स०)-राजा। उ० रुचिर रूप भूपाल मनि भीमि राम। (वि० ५३)
भूपाला-दे० 'भूपाल'। उ० तात राम नहिं नर भूपाला। (मा० ५।३३।१)
भूपु-दे० 'भूप'। उ० पछिले पहर भूपु नित जागा। (मा० २।३८।१)
भूभुरि-(?)-गर्म रेत। उ० पोंछि पसेउ बयारि करौं अरु पाय पखारि हौं भूभुरि डाढ़े। (क० २।१२)
भूमि-(स०)-पृथ्वी, ज़मीन। उ० भूमि-उद्धरन भूधरन धारी। (वि० ५६)

भूमिजा-सीता । उ० भूमिजा दु ख-समाज शोषोवहन् । (वि० २१)
भूमिदेव-(सं०)-ब्राह्मण । उ० भूमिदेव देव देखिके नरदेव सुखारी । (गी० ११६)
भूमिधर-(सं०)-पर्वत । उ० भूतनाथ भयहरन भीम भय भवन भूमिधर । (क० ७।१५२) भूमिधरनि-पहाड़ों, पर्वतों । उ० भूमि के हरैया उखरैया भूमिधरनि के । (गी० ११८३)
भूमिनागु-(सं० भूमिनाग)-केंचुवा । उ० भूमिनागु सिर धरै कि धरनी । (मा० १।२२२।३)
भूमिपति-(सं०)-राजा । उ० व्याकुल भयउ भूमिपति भारी । (मा० २।७६।४)
भूमिपाल-(सं०)-१ राजा, २ ईश्वर । उ० १ भूमिपाल व्यालपाल नाकपाल लोकपाल । (क० ७।२३)
भूमिसुर-(सं०)-ब्राह्मण । उ० सब विधि करहु भूमिसुर सेवा । (मा० २।६।४)
भूरज-(सं० भूर्ज)-'भूर्ज' नाम का पेड़ या उसकी 'भूर्ज पत्र' या 'भोजपत्र' नाम की छाल जिस पर पहले लिखा जाता था ।
भूरि-(सं०)-अधिक, बहुत, भारी । उ० करि भूरि कृपा बनुजारी । (वि० ३३)
भूरी-दे० 'भूरि' । उ० सगुन निरूपउँ करि हठ भूरी । (मा० ७।१११।७)
भूरुह-(सं०)-वृक्ष, पेड़ । उ० सारा सुरुग भूरुह सुपात । (वि० २३)
भूर्ज-दे० 'भूरज' । उ० भूर्ज तरु सम संत कृपाला । (मा० ७।१२१।८)
भूल-(सं० विह्वल ?)-१ चूक, गलती २ विस्मृति, बिसरना । उ० १ रचना देखि विचित्र अति मनु बिरचि पर भूल । (मा० १।२८७)
भूलत-(सं० विह्वल)-भूल जाते हैं । उ० भूलत सरीर सुधि सक रवि राहु की । (क० २८) भूलहिं-भूलते हैं, भूल जाते हैं । भूलहिं-भूलो । उ० भूलहिं जनि भरम । (वि० १६१) भूला-भूल गया, याद न रहा । उ० एतना कहत नीति रस भूला । (मा० २।२२३।३) भूलि-भूल कर । भूलिहु-भूले, भूली । उ० मन भूलिहु सो के बौराई । (मा० १।७३।४) भूलिहैं-भूलेगा । उ० भूलिहैं दस दिसा । (क० ६।२०) भूली-१ भूल गई, २ भूल कर । भूले-१ भूले हुए, २. भूल गए । उ० १ गुनत मनु मधुर रस भूले । (मा० २।१२३।४) भूलेहु-१ भूल गए, २ भूलने पर भी ।
भूष-(सं० भूषण)-भूषित कर रहा है । उ० सभिहि भूष भदि लोम धनी के । (मा० १।६३५।५)
भूषण-(सं०)-आभूषण, गहना ।
भूषन-दे० 'भूषण' । उ० भूषन प्रसून बहु बिबिध रंग । (वि० १४) भूषनहि-भूषण को, भेंट को । उ० रवि भानुकुल भूषनहि बिसरा सतिन्द प्रनाम । (मा० १।२६३)
भूषत-(सं०)-शोभायमान, सजा हुआ । उ० स्यामतनु पद भूषित भूषण भूषन । (गी० १६४)
भूसुर-(सं०)-१ ब्राह्मण, २ ब्राह्मण मुनि । उ० २ हार्‌यौ हिय भारी भयो भूसुर डरनि । (वि० २४७)
भृंग-(सं०)-भ्रमर, भौंरा । उ० बोलत मधुर मयन मत्त पिक-बर गुंजत भृंग । (गी० ७।२१) भृंगी (१)-भ्रमरी, भौंरी ।
भृंगा-दे० 'भृंग' । उ० कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा । (मा० २।१२६।१)
भृंगिहि-(सं० भृंगिन्)-भृंगी नाम के गण को । दे० भृंगी (२)' । उ० भृंगिहि प्रेरि सकल गन टेरे । (मा० १। ६३।२) भृंगी(२)-महादेव का गण ।
भृकुटि-दे० 'भृकुटी' । उ० रमा राम कर भृकुटि बिलासा । (मा० ६।३५।४)
भृकुटी-(सं०)-भौंह, भ्रू । उ० भृकुटी कुटिल नयन रिस राते । (मा० १।२६८।३)
भृगु-(सं०)-एक महर्षि जिन्होंने विष्णु की छाती में लात मारी थी । परशुराम इन्हीं के कुल के थे । उ० भृगु-कुल कमल-पतंग । (मा० १।२६८।१)
भृगुनाथ-(सं०)-परशुराम । उ० भृगुनाथ से रिसी भिरैया कौन सीता को । (वि० १८०)
भृगुनायकु-परशुराम । उ० मुनि सरोष भृगुनायकु आए । (मा० १।२६३।१)
भृगुपति-(सं०)-परशुराम । उ० भृगुपति केरि गरब गरुआई । (मा० १।२६०।३)
भृत-(सं०)-१ दास, नौकर, २ पाला हुआ, ३ वेतन, तनख्वाह ।
भृत्य-(सं०)-नौकर । उ० भृत्य अंबरीष निरा गुनत सुरा तिहारे । (गी० ११६६)
भेंट-(?)-१ मिलना, मिलाप, २ पूजा, नजराना, सौगात, उपहार, ४ मिलाप, ५ दर्शन । उ० ३ मिए फलफूल भूल भेंट भरि भारा । (मा० २।८८,१)
भेंटत-(?)-भेंटते हैं, मिलते हैं, गले से लिपटते हैं । भेंटु-भेंटो । भेंटा-हृदय से लगाया । उ० रामसखा रिपि बर बस भेंटा । (मा० २।२४३।६) भेंटि-भेंट कर । भेंटी-भेंट की, भेंटा । भेंटे-१, भेंट की, २ मिल गए । उ०१ पुलक सरीर प्रामगनु भेंटे । (मा० १।१०८।२) भेंटेउ-भेंटे, मिले । उ० भेंटेउ सहसा लखनहि लगु भाई । (मा० २। ७४०।१) भेंटचो-भेंटा, हृदय से लगाया । उ० जेहि कर-कमल उठाइ बंधु ज्यों परम प्रीति केवट भेंटचो । (वि० ११८)
भै (१)-(सं० भू)-१. हुए, हो गए, २ होने पर । उ० १ भय भा नाइ कबहिं ना जन्म भे भ्रम-भ्रमत हार हाँपद हहाहरु । (वि० २४) भै (१)-(सं० भू) हुई, भई । उ० गौव गुसा ने माउ सकल मंगल भई । (जा० ७) भौ (१)-(सं० भू)-भया हुआ । उ० राजन भरम जाए टाका नहि काल भो । (क० ३१७)
भै (२) (सं० भी)-डर, त्रास, भय । उ० जातना जमहि छंद ताको भे है । (वि० २२१)
भैंहें-(सं० भ्रामण) फिरीं, टेढ़ी कर दीं । उ० साख गुसाईं सबी भौं भाईं । (मा० २।२४४।४) भैंहैं-डिलाते हैं, हिलाते हैं । उ० अति आदर अनुराग भरी मन भरहि । (गी० ७६)

भेउ–(स० भेद)–१ भेद, २ फूट, अंतर । उ०१ रहे तहाँ दुइ रुद्र गन ते जानहिं सब भेउ । (मा० १।१३३)
भेऊ–दे० 'भेउ' । उ०१ जानी जौं यहु जानौं भेऊ । (मा० २।११८।४)
भेक–(स० मंडूक)–मेंढक, दादुर । उ० रामबान अहिगन सरिस निकर निसाचर भेक । (मा० ५।३६)
भेका–दे० 'भेक' ।
भेख–(स० वेष)–१ वेश, पहनावा, २ रूप, आकृति ।
भेटि–(?)–भेंटकर । उ० जनक जानकिहि भेटि सिखाइ सिखावन । (जा० १९१) भेटे–भेंटा । भेटेउ–दे० 'भेटे' ।
भेड़ी–(स० मेष)–भेड़, गाडर । उ० तुलसी भेड़ी की धँसनि जड़-जनता सनमान । (दो० ४९५)
भेद–(स०)–१ अंतर, अलगाव, भिन्नता, २ शत्रुता, खट पट । उ० १ भक्ति अनवरत गत भेद-माया । (वि० १०)
भेदा–दे० 'भेद' । उ० १ सकल विकार रहित गत भेदा । (मा० २।९३।४)
भेदि–(स० भेदन)–फोड़कर, छेदकर । उ० भेदि भुवन करि भानु बाहिरो । (गी० ९।८) भेदै–१ छेदा, बेधा । २ भेदती, छेदती, नष्ट करती । उ०१ तहँ उतपात न भेदै आई । (वै० ४६)
भेदु–दे० 'भेद' ।
भेरि–दे० 'भेरी' । उ० भेरि संख धुनि हय गय गाजे । (मा० १।३४४।१)
भेरी–(स०)–दुंदुभी, नगारा । उ० मुखहिं निसान बजा वहिं भेरी । (मा० ६।३९।५)
भेव–(स० भेद)–१ अंतर, भेद, २ स्वभाव, प्रकृति, ३ फूट, जुदाई ४ भाँति, प्रकार ।
भेष–(स०वेष) १ वेश, लिबास, २ रूप, आकार ।
भेषज(स०)–दवा, औषधि । उ० काल बिबस कहुँ भेषज जैसें । (मा० ६।१०।२)
भैंसा–(स० महिष)–भैंस का नर । उ० आहुति देत रुधिर अरु भैंसा । (मा० ७।७६।१)
भै (२)-(स० भय)–डर, खौफ ।
भैया–(स० भ्राता)–भाई । उ० भैया भरत भावते के सँग । (गी० २।६६)
भैरव–(स०)–१ भयंकर, भयानक, २ शंकर, महादेव । उ० १ पाहि भैरव रूप राम रूपी रुद्र । (वि० ११)
भैषज्य–दवा, औषधि । उ० भक्त भैषज्यमद्वैत दरसी । (वि० ५०)
भोंड़ा–(?)-भद्दा, कुरूप, बुरा । भोंड़े–दे० 'भोंड़ा' । उ० अभागे तिय त्यागे भोंड़े भागे जात साथ सो ! (क०५।११)
भोंदू–(?)–मूर्ख, बेवकूफ ।
भो (२)-(?)-हे, ए । उ० हृदय अवलोकि यद मोक्ष सरनागत पाहि मां पाहि, भो विश्वभर्ता । (वि० ५९)
भोग–(स)–१ दुःख या सुख का अनुभव, २ विषय, भोग विलास, ३ उपभोग, ४ शरीर, ५ भोजन, खाना, ६ सुख की सामग्री, ७ ऐश्वर्य ८ देवता का नैवेद्य, ९ फन, १० हाथी का मेंड़ । उ० २ कबहुँ भोगरत, भोगनिरत सठ । (वि० ८१) ७ भोग बिभूति भूरि भरि राखे । (मा० ३।२१४।३) १० भुजँग भोग भुजदंड, कंज दर चक्र गदा बनि आई । (वि० ६२)
भोगा–दे० 'भोग' ।
भोगावति–नागलोक, पाताल । उ० भोगावति जसि अहिकुल बासा । (मा० १।१७८।४)
भोगी–(स० भोगिन्)–१ विषयी, विषयासक्त, २ सुखी, ३ साँप, ४ साँप खानेवाला, ५ भोगनेवाले । उ० १ समुझि काम सुख सोचहिं भोगी । (मा०१।८७।४) ५ नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी । (मा० १।२६।१)
भोगु–दे० 'भोग' ।
भोगू–दे० 'भोग' । उ० ७ पति पद सुमिरि तजेउ सबु भोगू । (मा० १।७४।१)
भोज–(स० भोजन)–१ भोजन, खाना, २ दावत ।
भोजन–(स०)–आहार, भोजन । उ० ह्वै हैं बिष भोजन जो सुधा सानि खायगो । (वि० ६८)
भोजनखानी–(स० भोजन + फ़ा०खाना)–रसोईघर । उ० भूप गयउ जहँ भोजनखानी । (मा० १।१७४।२)
भोजनु–दे० 'भोजन' ।
भोर (१)–(?)–सवेरा, तड़का । उ०जासो बाल विनोद समुझि जिय डरत दिवाकर भोर को । (वि०२१) भोरहिं–सवेरे ही ।
भोर (२)–(?) सीधा, भोला । उ० बिसरि गयेउ मोहि भोर सुभाऊ । (मा० २।२८।१) भोरे (१)–भोले, सीधे ।
भोर (३)–(?)–भूल, भूलना । उ० कीन्हेहुँ रानि कौसिलहि परिगो भोर हो । (रा० १२) भोरें–धोखे में भी, भूलकर भी । उ०मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरें । (मा०१।१३३।३) भोरे (२)-भूलकर । भोरेहुँ–धोखे से भी, भूलकर भी । उ० भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं मनसहुँ राम रजाइ । (मा० २।२८९)
भोरा–भूल, भूलना, चूकना । उ०जिन्ह निज ओर न लाउब भोरा । (मा०१।८।१) भोरी–१ सीधी, भोली,२ घबराई, भूली हुई । उ० २ भाषा भनिति भोरि मति भोरी । (मा० १।९।२)
भोरानाथ–भोलानाथ, शंकर, महादेव । उ० भोरानाथ भोरे जानि अपनी सी ढई है । (क० ७।१७५)
भोरि–दे० 'भोरी' । उ० २ नारि बिरह मति भोरि । (मा० १।१०८)
भोरु–दे० 'भोरू' ।
भोरू–दे० 'भोर (१)' । सवेरा । उ० जागे सकल लोग भएँ भोरू । (मा० २।८६।१)
भोरो–भोला, सीधा । उ० पति रावरो दानि है बावरो भोरो । (क० ७।१५३)
भोला–(?)–सीधा, निष्कपट ।
भोलानाथ–शंकर । उ० कपिनाथ, रघुनाथ, भोलानाथ भूत नाथ । (ह० ४३)
भौं–(स० भ्रू)–भौंह, भृकुटी । उ० नैन बिसाल नचनियाँ भौं चमकावइ हो । (रा० ८)
भौंड़े–(?)-भद्दे, कुरूप, बुरे । उ० नाम गुनगी मैं भौंड़ भाग सो कढ़ायो दाम । (क० ७।११)
भौंड़ो–(?) बुरा, भद्दा ।
भौंतुआ–(?) नदियों में तैरनेवाला एक काला कीड़ा ।

उ० कहा भयो जो मन मिलि कलिकालहिं कियो भौंतुवा भौंर को हौं। (वि० २२६)

भौंर-(सं० भ्रमर)-१ पानी का आवर्त, चक्कर, २ वह घूमनेवाली लकड़ी जिसमें कुएं की डोरी बंधी रहती है। उ० २ चारु चारि पगी पुरट की लटकत मरकत भौंर। (गी० ७।१६)

भौंरा-(सं० भ्रमर) १ एक उड़नेवाला काला कीड़ा। भ्रमर। यह फूलों का रस लेता फिरता है। २ एक प्रकार का खिलौना। उ० २ खेलत अवध खोरि, गोली भौंरा चक डोरि। (गी० १।४१)

भौंह-(सं० भ्रू)-भृकुटी, भौं। उ० पिय तन चितय भौंह करि बाँकी। (मा० २।११७।३) भौंहैं-'भौंह' का बहु वचन। उ० माथे लसत कुटिल भईं भौंहैं। (मा० १।२२२।४)

भौचक-(?)-अकस्मात्, सहसा।

भौतिक-(सं०)-१ भूत-संबंधी, भूत का, २ भूतों से उत्पन्न। उ० २ दैहिक दैविक भौतिक तापा। (मा० ७।२१।१)

भौम-(सं०)-मंगल। उ० प्रिय भ्राता के समय भौम तहँ आयउ। (जा० १६६)

भौमवार-(सं० भौमवार)-मंगलवार। उ० नौमी भौमवार मधुमासा। (मा० १।३४।१)

भ्रम-(सं०)-१ भूल, मिथ्या ज्ञान, २ घूमना। उ० १ निज संदेह मोह भ्रम हरनी। (मा० १।३१।२)

भ्रमत-(सं० भ्रम)-भटकते हैं। उ० भव पथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुननि भरे। (मा० ७।१३।छं० १) भ्रमति-१ घूमता है, २ भूलता है, ३ घूमती है। भ्रमहिं-घूमते हैं। भ्रमहीं-१ घूमते हैं, २ भूलते हैं।

भ्रमाहीं-(सं० भ्रम)-भटकते हैं। उ० हरिमाया बस जगत भ्रमाहीं। (मा० १।११२।३) भ्रमि-भ्रमित होकर। उ० कोटि बरस लगि भ्रमि भ्रमि भटके। (वि० ९३)

भ्रमर-(सं०)-भौंरा। उ० भ्रमर हूँ रवि किरनि ल्याये करत जनु उनमेसु। (गी० ७।६)

भ्रमित-भ्रम में पड़ा।

भ्रमु-दे० 'भ्रम'।

भ्रष्ट-(सं०)-पतित, च्युत, गिरा, अधर्मी, खराब। उ० भव भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना। (मा० १।१८३। छं० १)

भ्राज-(सं० भ्राजन)-सुशोभित है, सुन्दर लगता है। उ० भ्राज विबुधापगा आप पावन परम। (वि० ११) भ्राजत-शोभित होता है। उ०गज मनिमाल बीच भ्राजत कहि जाति न पदिक निकाई। (वि०६२) भ्राजहिं-शोभित होता है। उ० बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं। (मा० ७।२७।४) भ्राजहीं-दे० 'भ्राजहिं'। भ्राजा-१ शोभित हुआ, २ शोभित है। उ० १ राम बाम दिसि सोभति रमा रूप गुन खानि। (मा० १।२२३।३) भ्राजी-सुशोभित हुई।

भ्राजमान-शोभायमान। उ० सुभ्र वनमाल उर भ्राजमानं। (वि० ५१)

भ्रात-दे० 'भ्राता'। उ० होर कौम गृह मोर सब मम वचन सुनु भ्रात। (मा० ६।११६ क) भ्रातन्ह-भाइयों। भ्रातहि-भाई का। भ्रातहि-भाई से। उ० तब भ्रातहि पूँछेउ नयनागर। (मा० २।१९१।१)

भ्राता-(सं०) भाई, बंधु। उ० विविध रूप भरतादिक भ्राता। (मा० ७।८१।४)

भ्रू-(सं०)-भौंह। उ० सोह प्रभु भ्रू बिलास सगराखा। (मा० ७।७२।१)

# म

मँगा-(सं० मार्गक) माँगनेवाला, दरिद्री, भिखारी। उ० जायो कुल मंगन, बधावनो बजायो सुनि। (क० ७।७३)

मंगल-(सं०)-१ कुशल, कल्याण, शुभ, २ मांगलिक कार्य, ३ एक प्रसिद्ध ग्रह, ४ मंगलवार, ५ आनंद, सुख, ६ मंगल के गीत, ७ शुभ अवसर। उ० १ शुभ दिन रच्यो स्वयंवर मंगलदायक। (जा० ३) २ राम सुमंगल हेतु सकल मंगल किए। (जा० १२८) ५ सुरविन्द मंगल गाए राम चन्द्रवाहन हो। (रा० ३) ६ होहिं मंगल सुभ मंगल जनु कहि दीन्हे। (जा० ३४) मंगलाचरन-मंगलों के। उ० मंगलानां च कर्तारौ वंदे वाणी विनायकौ। (मा० १।१। श्लो० १)

मँगलचार-(सं० मंगलाचार) स्त्रियाँ शुभ काम में होनेवाले गीत, बधावा आदि मांगलिक कार्य। उ० घर-घर मंगल चार एक रस हरषित रंक गनी। (गी० ७।२०)

मंगला-(सं०)-पार्वती। उ० बर प्रथम बिधा बिधि बिरचो मंगला मंगल मई। (पा० १८)

मंगलामुखी-(सं० मंगल + मुखी)-रंडी, वेश्या।

मंगलु-दे० 'मंगल'। उ० १ यदि अवसर मंगलु परम सुनि रहँसेउ रनिवासु। (मा० २।७)

मँगाइ-(सं० मार्गण) मँगाकर। मँगाई-१ मँगाया मँगवाया, २ मँगाकर। मँगाए-मँगवाए। मँगावा-मँगवाया। मँगि-माँग। उ० दिव्य दह इच्छा जीवन जग विधि मनाइ मँगि माँगि। (गी० ३।१६)

मंच-(सं०)-ऊँचे की ऊँची जगह। मंचन्ह-मचों। उ० सब मंचन्ह तें मंचु एक सुन्दर विसद बिसाल। (मा० १।२४४)

मंचु-दे० 'मंच'। दे० ऊपर।

मंजरि-दे० 'मंजरी'। उ० मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा। (मा० १।१४६।१)

मंजरिय–दे० 'मंजरी'। उ० मरकत मय साखा, सुपत्र मंजरिय लच्छ जेहि। (क० ७।११५)
मंजरी–(सं०)–तुलसी आदि कुछ विशेष पौदों के फूल, बौर। उ० उरसि वनमाल सुविशाल, नव मंजरी भ्रात श्रीवत्स-लांछन उदारम्। (वि० ६१)
मँजा–(सं० मार्जन)–माँजा, माँजा हुआ।
मंजिर–(सं० मंजीर)–१ पैर का बजनेवाला गहना, पाजेब, नूपुरयुक्त पाजेब, २ करधनी, घुँघरदार करधनी, ३ घुँघरू।
मंजीर–(सं०)–दे० 'मंजिर'। उ० १ मंजीर नूपुर कलित कंकन ताल गति बर बाजहीं। (मा० १।३२२। छं० १) २ हाटक घटित जटित मनि कटितट रट मंजीर। (गी० ७।२१)
मंजु–(सं०)–१ मनोहर, सुन्दर, २ मधुर, ३ अच्छा। उ० १ बाल मृग मंजु-खंजन विलोचनि, चन्द्रवदनि, लखि कोटि रति मार लाजै। (वि०१२) मंजुतर–अधिक सुंदर। उ० मंजुतर मधुर मधुरकर गुंजारे। (गी० १।३५)
मंजुल–(सं०)–सुन्दर, मनोहर। उ० मंजुल प्रसून माथे मुकुट जटनि के। (क० २।१६) मंजुलौ–दोनों सुन्दर। उ० कोसलेंद्र पद कंज मंजुलौ कोमलावब्ज महेश वंदितौ। (मा० ७।१। श्लो० २)
मंजुलता–(सं०)–सुन्दरता।
मंजुलताई–दे० 'मंजुलता'। उ० तन की दुति स्याम सरोरुह, लोचन कंज की मंजुलताई हरैं। (क० १।२)
मंजूषा–(सं०) संदूक, पिटारा।
मँझारि–(सं० मध्य)–बीच, में। उ० कियो लीन सुआपु मैं हरि राजसभा मँझारि। (वि० २१७)
मँझारी–दे० 'मँझारि'।
मंड–(सं०)–माँड़, भात का पानी।
मंडन–दे० 'मंडन'। उ० २ दिनेश वंश मंडन। (मा० ३। ४। छं० ४) मंडन–(सं०)–१ शृंगार करना, सजाना, २ भूषण, अलंकार, ३ खंडन का उलटा। उ० २ मुनि रंजन महि मंडल-मंडन। (मा० ६।११५।२)
मंडप–(सं०)–१ विश्राम का स्थान, २ बारहदरी, ३ उत्सव आदि के लिए बना स्थान, रंगभूमि, ४ शामियाना। उ० ३ कपट नारि-बर-बेष बिरंचि मंडप गईं। (जा० १७०)
मँडरानी–दे० 'मंडरानी'।
मंडल–(सं०)–१ सूर्य या चंद्र के बाहर की परिधि, २ घेरा, ३ गोल वृत्ताकार, ४ चक्र, ५ समाज, ६ सैनिकों की स्थिति विशेष, ७ समूह, संघात, ८ ग्रहों के घूमने का कक्ष, ९ शरीर, १० ऋग्वेद के खंड। उ० ३ पुनि नभ धनु मंडल सम भयऊ। (मा० १।२६१।३) ८ जनु उडुगन-मंडल वारिद पर नवग्रह रची अथाई। (वि० ६२) मंडलिहि–मंडली को, समूह का। उ० करि प्रनामु मुनि मंडलिहि, बोले गदगद बैन। (मा० २।२१०) मंडलीं–मंडली में समूह में। उ० खल मंडलीं बसहु दिनु राती। (मा० ५।४६।३) मंडली–(सं०)–१ समूह, समाज, २ बिल्ली, ३ सूर्य, ४ वट वृक्ष। उ० १ दे० 'मंडलीक'।

मंडलीक–(सं०)–राजा, राजाओं का राजा। उ० मंडलीक-मंडली प्रताप दाप दालि री। (क०१।१२)
मंडि–(सं० मंडन)–विभूषित करके, शोभा बढ़ाकर। उ० मंडि मेदनी को मंडलीक लीक लोपिहैं। (मा० ६।१)
मंडै–१ रचे, २ सुशोभित करे। उ० १ जाय सो सुभट समर्थ पाइ रन रारि न मंडै। (क० ७।११६)
मंडित–(सं०)–सजाया हुआ, भूषित, सुशोभित। उ० रत्न हाटक जटित मुकुट मंडित मौलि भानु सुत-सदृस-उद्योत कारी। (वि० ५१)
मंडूक–(सं०)–१ मेढक, २ एक मुनि।
मंत–दे० 'मंत्र'। उ० १ मंदमति कंत सुनु मंत म्हाको। (क० ६।२१)
मंत्र–(सं०)–१ रहस्यपूर्ण बात, भेद की बात, १ अ परामर्श, राय, २ गुरु का उपदेश, ३ तंत्र के वे शब्द या शब्द समूह जिनके द्वारा देवताओं को प्रसन्न करते हैं या किसी कार्यादि की सिद्धि करते हैं। ४ इच्छा। उ० १ अ अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही। (मा० ३।१३।२) ३ यंत्र मंत्र भंजन, प्रबल कल्मषारी। (वि० ११) ४ मंडलीक मनि रावन राज करइ निज मंत्र। (मा० १।१८२ क) मंत्रराजु–मंत्रों का राजा, राम का नाम। उ० मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। (मा० २।१२९।३) मंत्राभिचार–मंत्रों का प्रयोग।
मंत्रिन्हि–मंत्रियों, मंत्रियों के। उ० मंत्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा। (मा० ४।४।२) मंत्रिहि–मंत्री को। उ० मंत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा। (मा० २।९५।१) मंत्री (सं० मंत्रिन्)–परामर्श देनेवाला, राज्य-सचिव, अमात्य। उ० मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी। (मा० २।५।३)
मंत्रु–दे० 'मंत्र'। उ० १ अ चले साथ अस मंत्रु दृढ़ाई। (मा० २।८४।४)
मंथरा–(सं०)–कैकेयी की दासी जिसके बहकाने से कैकेयी ने दशरथ से राम को वन भेजने तथा भरत को राज्य देने का अनुरोध किया था। उ० नाम मंथरा मंद मति, चेरी कैकइ केरि। (मा० २।१२)
मंद–(सं०)–१ जो तेज न हो, सुस्त, २ नीच, दुष्ट, ३ मूर्ख, ४ पापी, ५ गहरा, ६ धीमा, धीरे धीरे चलनेवाला। उ० १ मंदमति कंत सुनु मंत म्हाको। (क० ६। २१) २ मदन-मौलि-मनि, सकल-साधनहीन। (वि० २११) ६ सीतल सुगंध सुमंद मारुत। (मा० १।८६। छं० १) मंदतर–१ अधिक नीच, २ अधिक मूर्ख। उ० १ होहिं विषय रत मंद मंदतर। (मा० ७।१२१।६) मंदेहि–मंद को, बुरे को। उ० मलेहि मंद मंदेहि भल करहू। (मा० १।१३७।१)
मंदर–दे० 'मंदर'। मंदर–(सं०)–१ मंदराचल नाम का पर्वत, २ पर्वत। उ० २ गहि मंदर दंदर भालु चले। (क०६।३४)
मंदरु–दे० 'मंदर'। उ० १ मंदरु मेरु कि लेहिं मराला। (मा० २।७२।२)
मंदा–दे० 'मंद'। बुरा, जो अच्छा न हो। उ० जोग वियोग भोग भल मंदा। (मा० २।९२।३)
मंदाकिनि–दे० 'मंदाकिनी'। उ० सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि। (मा० २।१३२।३)

मदारी-(अर० मदार)-बाजीगर, तमाशा दिखानेवाले।
मदिरा-(सं०)-शराब, दारू। उ० नहिंप मद करि मदिरा पाना। (मा० १।१४।१)
मद्य-(सं०)-शराब।
मधु-(सं०)-१ शहद, २ शराब, ३ वसंत ऋतु, ४ चैत का महीना, ५ मीठा, ६ दूध, ७ पानी, ८ एक राक्षस का नाम जिसे विष्णु ने मारा था। उ० १ देखि मनहुँ मधु माहुर घोरी। (मा० २।२२।२) २ मनि भाजन मधु, पारई पूरन अमी निहारि। (दो० ३५१) ३ जनु मधु मदन मध्य रति लसई। (मा०२।१२३।२) ८ महा मंगल मूल मोद-महिमायतन मुग्ध मधु-मथन मानद अमानी। (वि० ५६)
मधुकर-(सं०)-भौंरा। उ० सुक-पिक-मधुकर मुनिवर-विहारु। (वि० २३) मधुकरन-भौंरा का समूह। उ० विकसे सरसिज बहु कल गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा। (मा० १।८६।छं०१)
मधुकरी-(सं० मधुकर)-वह भिक्षा जिसमें केवल पका अन्न लिया जाता हो। उ० माँगि मधुकरी खात ते, सोवत गोड़ पसारि। (दो० ४६४)
मधुप-(सं०)-भौंरा, भ्रमर। उ० आनन सरोज कच मधुप पुंज। (वि० १४)
मधुपर्क-(सं०)-दही, घी, जल, शहद और चीनी का मिश्रण जो देवताओं को चढ़ाया जाता है। उ० मधुपर्क मंगल द्रव्य जो जहि समय मुनि मन महुँ चहै। (मा० १।३२३। छं० १)
मधुपुरी-(सं०)-मथुरा नगरी। उ० ब्रज बसि रास बिलास, मधुपुरी चेरी सों रति मानी। (कृ० ४७)
मधुबन-(सं०)-१ सुग्रीव के बाग का नाम, २ मथुरा का एक वन। उ० १ तब मधुबन भीतर सब आए। (मा० ५।२८।४) २ अब नंदलाल-गवन सुनि मधुबन रानहि राजत महि बार लगाइ। (कृ० २५)
मधुमास-(सं०)-चैत का महीना।
मधुमासा-दे० 'मधुमास'। उ० भौंमी भौन भार मधुमासा। (मा० १।३४।३)
मधुर-(सं०)-१ मीठा, छः रसों में एक, २ सुंदर, ३ कोमल, ४ सुनने में भला, ५ धीरे धीरे। उ० ३ मंगल मूरति लोचननिधि मधुर मनोहर वेष। (प्र० ४।४।४) ४ बैन बिसद बानी मधुर, मन कटु, करम मलीन। (दो० १५३) ५ मधुर सुनाइ मंददायनी। (गी० १।१५) मधुरतर-अधिक मीठा। उ०भ्रमत आमोदबस मत्तमधुकर निकर मधुरतर मुखर कुर्वन्ति-गान। (वि० ५१) मधुरी-१ मीठी, रसीली, २ माधुर्य, सौंदर्य। मधुरे-१ मीठे, २ सुंदर। उ० २ मधुरे दसन राजत जब चितवत मुख मोरी। (गी० ७।०)
मधुरता-१ मीठापन, माधुरी, २ सुंदरता, ३ मृदुलता। उ० १ कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहि। (मा० ७।१२०क)
माधुकरी-दे० 'मधुकरी'।
मध्य-(सं०)-१ बीच, माँझ, २ मध्यम, जो न उत्तम हो और न खराब ३ कमर, ४ १६ से ३० वर्ष तक की आयु। उ० १ और मदंधि-मदन-निर्मथन मरात मध्य
दुष्टाटवी भ्रमित चिंता। (वि० ५८) मध्यदिवस-दोपहर। उ० मध्यदिवस निमि ससि सोहई। (मा०१।१६।२)
मध्यम-(सं०)-१ मध्य का, बीच का २ न बड़ा न छोटा, ३ एक स्वर। उ० १ हित अनहित मध्यम भ्रमफंदा। (मा० २।९२।३) २ उत्तम मध्यम नीच लघु निज निज थल अनुहारि। (मा० १।२४०)
मध्यस्थ-(सं०)-१ तटस्थ, उदासीन, २ बिचवई, बिच वैत। उ० १ सत्रु मित्र मध्यस्थ तीनि ये मन कीन्हें बरिआई। (वि० १२४)
मध्याह्न-(सं०)-दोपहर, दिन का मध्य।
मन (१)-(सं० मनस्)-अंतःकरण, चित्त, जी। उ० श्री रामचंद्र कृपालु भजु मन हरण भवभय दारुणं। (वि०४५) मनहिं-१ मन को, २ मन में। उ० १ लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यों गरे आसा डोरि। (वि० १९८) मनहि-दे० 'मनहिं'। मनही-मन ही, जी ही। उ०मनहीं मन मागहिं बरु एहू। (मा० २।१२४।२) मनहूँ-मन में भी। उ० मनहूँ अकाम बानी ऐसो कौन बाम है? (क० ५।२२)
मन (२)-(?)-चालीस सेर की तौल।
मनक-(सं० मनाक्) मन भर। उ० रविन के आश्रित प्रापति मनक की। (क० ७।२०)
मनजात-(सं०)-कामदेव। उ० हरा कीन्हेउ मनहुँ तब कच्छु हटकि मनजात। (मा० २।१० क)
मनतोउ-(सं० मानन)-मानता। उ० पिता वचन मनतेउँ नहिं ओहू। (मा० १।६१।६)
मनन-(सं०)-१ चिंतन, सोचना, २ अच्छी भाँति अध्ययन करना।
मननशील-(सं०मननशील)-विचारशील चिंतन करनेवाला।
मननशीला-दे० 'मननशील'। उ० गावति सर चरित गुर चित्र श्रुति सेस सुक संभु सनकादि मुनि मननसीला। (वि० ५२)
मनमथ-(सं० मन्मथ)-कामदेव।
मनमाना-यथेच्छ, मन के अनुकूल, मन भर। उ० स्याम गवन निरखत मनमाना। (मा० १।२०।१) मनमानी-मन के अनुकूल। उ० करी है भली बात सब के मनमानी। (कृ० ४३)
मनरंजन-(सं० मनस्+रंजन)-मन को प्रसन्न करनेवाला। उ० तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नयन सु खंजन-जातक से। (क० १।१)
मनसा-(सं०)-१ इच्छा, कामना, २ सम्मति, राय, सलाह।
मनसहिं-इच्छा में, मन में। उ० प्रभु मनसहिं लयलीन मनु चलत बाजि छबि पाव। (मा० १।३१६) मनसहुँ-१ मन में भी, २ कल्पना में भी। उ० १ सुनि मनसहु तें अगमत चढ़ि आवड मनु। (दो० १८) मनसा (१) (सं० मनस्)-मन। उ० मनसा बचन राम-पद-रति रहै है। (गी० १।६८) मिलि परदार निरत मनसा है। (मा० १।६४।२) मनसि-मन में, हृदय में। उ० बसतु मनसि मम कानन चारी। (मा० ३।११।६)
मनसा (२)-दे० 'मनसा'। उ० १ मारे मिलि मरै तुलसी, मन की मनसा जिन्है दिन मार। (क० ७।४२)

मनसिज–(स०)–कामदेव। उ० धरी न काहूँ धीर सब के मन मनसिज हरे। (मा० १।८५)
मनसिजु–दे० 'मनसिज'।
मनस्वी–(स० मनस्विन्)–१ बुद्धिमान, २ स्वेच्छाचारी, स्वतंत्र।
मनहर–(स० मनस्+हर)–मनोहर, सुंदर। उ० मेड़ी लटकन मसि बिंदु मुनि मनहर। (गी० १।३०)
मनहरण–मनोहर, सुंदर।
मनहरनि–मन हरनेवाली। उ० तोतरी बोलनि, बिलोकनि मोहनी मनहरनि। (गी० १।२५)
मनहुँ–(स० मानन)–मानो। उ० मनहुँ आदि अंभोज बिराजत सेवित सुरमुनि भृंगनि। (गी० २।५०) मनियत–१ मानता हूँ, अंगीकार करता हूँ, २ मान, स्वीकार करे, ३ माने जाते हैं। उ०३ नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं। (वि० १७४) मनिहैं–मानेंगे। उ० हँसि करिहैं परतीत भगत की भगत सिरोमनि मनिहैं। (वि० ६५) मनु (१)–(स० मानन)–मानों। उ० मनु दोउ गुरु सनि कुज आगे करि ससिहि मिलन तम के गन आए। (गी०१।२३) मनो–मानो, मानहु लो। उ० गहि मंदर बंदर भालु चले सो मनो उनये घन सावन के। (क० ६।३४)
मना (१)–(अर०)–१ रोक, वर्जन, ममानियत, २ रोकना, मना करना।
मना (२)–(स० मनस्)–मन। उ० तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठ मना। (मा० २।६०।छं० १)
मनाइ–(स० मानन)–१ विनती करके, प्रार्थना करके, २ मनौती करके। उ० १ ईस मनाइ असीसहिं जय जस पावहु। (जा० ३२) मनाइय–स्तुति कीजिए, प्रार्थना करनी चाहिए। उ० आदि सारदा गनपति गौरि मनाइय हो। (रा० १) मनाई–१ मनाया, २ स्तुति या प्रार्थना की। मनाए–१ मनाया, २ प्रार्थना करने पर, मनाने पर। उ० १ नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए। (मा० १।२६०।२) मनाव–मनाते हैं, प्रार्थना करते हैं, मनौती करते हैं। उ० बिधिहि मनाव राउ मन माहीं। (मा० २।४४।३) मनावउँ–मनाऊँ, प्रार्थना करूँ। मनावत–१ मनाते हैं, २ मनाता हूँ, ३ मनाते हुए, प्रार्थना करते हुए। उ० २ हौं तिनसों करि परम बैर हरि तुम सों भलो मनावत। (वि० १८५) ३ सुर तीरथ तासु मनावत आवत। (क० ७।३४) मनावति–मनौती करती हैं। उ० बैठी सगुन मनावति माता। (गी० ६।१६) मनावन–मनाना, प्रार्थना करना। मनावहिं–मनाते हैं, प्रार्थना करते हैं। उ०खरभर नगर नारि नर बिधिहि मनावहिं। (जा०१८२) मनावहीं–प्रर्थना करते हैं। उ० जग जननि लोचन लाहु पाय सकल सिवहि मनावहीं। (जा० ६१) मने–मनाई हो गइ। उ० जानि नाम अजानि लीन्हें नरक जमपुर मने। (वि० १६०)
मनाक–(स० मनाक्)–थोड़ा, किंचित्। उ० होत न बिगाड़ ओत पाइ न मनाक सो। (क० ५।२५)
मनाकु–दे० 'मनाक'। उ० जो दसकंठ दियो बाँवों, जेहि हर गिरि कियो है मनाकु। (गी० १।८७)
मनाग–दे० 'मनाक'। उ० तदपि मनाग मनहिं नहिं पीरा। (मा० १।१४५।२)
मनि–दे० 'मणि'। उ० मरकत गिरिन्ह बिबिध मनिखानी। (मा० ७।२३।४) २ अस बिचारि रघुबसमनि, हरहु बिषम भवभीर। (मा० ७।१३० क) मनिन्ह–मणियाँ। मनिमय–मणियों से युक्त। उ०सिंधुर मनिमय सहज सुहाई। (मा० १।२८८।४) मनिहिं–मणि को। उ० पीर कछू न मनिहिं जाके बिरह बिकल भुअंग। (कृ० २४)
मनिआरा–दे०'मनियारा'।
मनिकर्निका–(स० मणिकर्णिका)–काशी नगर में स्थित एक पवित्र स्थान जहाँ इसी नाम का एक कुंड है। यात्री इसमें स्नान करते हैं। उ० मनिकर्निका-बदन ससि सुंदर, सुरसरि सुख सुषमा सी। (वि० २२)
मनियारा–मणियों से युक्त या पूर्ण। उ० बन कुसुमित गिरिगन मनियारा। (मा० १।१६१।२)
मनी (१)–(स० मान)–गर्व, अहंकार। उ० होय भलो ऐसे ही अजहुँ गये रामसरन परिहरि मनी। (गी० ५।३६)
मनी (२)–(स० मणि)–१ धन, २ मणि।
मनीषा–(स०)–अक्ल, बुद्धि।
मनु (२)–(स० मनस्)–मन, चित्त, जी। उ० देखि कृपा जनक की कहिबे को मनु भो। (गी० १।६४)
मनु (३)–(स०)–१ मनुष्यों के आदि पुरुष, २ एक ऋषि जिन्होंने मनुस्मृति का प्रणयन किया।
मनुज–(स०)–आदमी, मनुष्य। उ० मनु दनुज तनुज बन दहनमंदन मही। (गी० ७।६) मनुजा–मनुष्यों को। उ० कलिकाल बेहाल किए मनुजा। (मा० ७।१०२।३)
मनुजाद–(स० मनुज+अद)–राक्षस, मनुष्यभक्षक। उ० चित्त बैताल मनुजाद मन, प्रेतगन रोग, भोगौघ वृश्चिक-विकारम्। (वि० ५६)
मनुजादा–दे० 'मनुजाद'। उ० भएसि कालबस खल मनुजादा। (मा० ६।३३।३)
मनुष्य–(स०)–आदमी, मानव।
मनुसाई–(स०मनुष्य)–१ पुरुषार्थ, पराक्रम, बल, २ भल मनसी, आदमियत। उ० १ सोउ नहिं नाथेउ असि मनुसाई। (मा० ६।३६।१)
मनुहार–(?)–१ मनौवा, खुशामद, २ विनय, प्रार्थना।
मनुहारि–दे० 'मनुहार'। उ० २ तापसी कहि कहा पठवति नृपति को मनुहार। (गी० ७।२६)
मनुहारी–दे० 'मनुहार'। उ० १ क्यों सौंप्यो सारंग हारि हिय करी है बहुत मनुहारी। (गी० १।१००)
मनोगति–मन की चाल। उ० तीरे तुरग मनोगति चंचल पौन के गौनहुँ तें बढ़ि जाते। (क० ७।४४)
मनोज–(स०)–१ कामदेव, २ चंद्रमा। उ० १ अनु मनु राज मनोज-राज रजधानिय। (पा० ८८) २ कुमुदी बिकसत मित्र छबि सकुचत देखि मनोज। (म० ६८३)
मनोभव–(स०)–कामदेव। उ० मनहुँ मनोभव फंद सँवारे। (मा० १।२८६।१)
मनोभूत–कामदेव। उ० मनोभूत कोटि प्रभा श्रीशरीरम्। (मा० ७।१०८।३)

फिरि पछि मरै मरो सो। (वि०१७१) मर्‌यो-मरा। उ० नाचत ही निसि दिवस मर्‌यो। (वि०९१)
मरकट-दे० 'मर्कट'। बंदर। उ० जहँ तहँ मरकट कोटि पराइहि। (मा० ४।४।२)
मरकत-(सं०)-पन्ना नाम की मणि। उ० मरकत मृदुल कलेवर स्यामा। (मा० ७।७६।३)
मरघट-(सं०)-श्मशान।
मरजाद-(सं० मर्यादा)-१ मान, प्रतिष्ठा, २ सीमा, हद। उ० २ चले धरम मरजाद मेटाइ। (मा० २।२२८।२)
मरजादा-दे० 'मरजाद'। उ० २ मरजाद चहुँ ओर चरन बर सेवत सुरपुर बासी। (वि० २२)
मरद-(फ़ा० मर्द)-१ पुरुष, मर्द, २ समर्थ। उ० २ कासी करामाति जोगी जागत मरद की। (क० ७।१४८)
मरदहिं-(सं० मर्दन)-कुचल डालते हैं। उ० मरदहिं मोहि जानि अनाथा। (वि० १२५)
मरन-(सं० मरण)-मरना, मौत, मृत्यु। उ० सोइ गति मरन-काल अपने पुर देत सदासिव सबहिं समान। (वि० ३)
मरना-दे० 'मरन'। उ० उभय भाँति देखा निज मरना। (मा० ३।२६।३)
मरनिहार-मरनेवाला, मरणासन्न। उ० अब गहु मरनिहार भा साँचा। (मा० १।२७४।२)
मरनु-दे० 'मरन'।
मरम-(सं० मर्म)-१ चुभनेवाले, मर्मभेदी, २ रहस्य, भेद, ३ प्राणियों का वह स्थान जहाँ आघात से पीड़ा अधिक होती है। उ० १ मरम बचन जब सीता बोला। (मा० ३।२८।३) २ बिदित बिसेषि घट घट के मरम। (वि० २४१)
मरमु-दे०'मरम'। उ०३ मरमु पाँछि जनु माहुर देई। (मा० २।१६०।४)
मरायल-(सं०मारण)-मार खानेवाले, पीटे जानेवाले। उ० सखहु सदा तुम्ह मोर मरायल। (मा० ६।३७।३)
मराए-(सं मारण) मरवाया। मराएन्हि-मरवा डाला। उ० पुनि खबेरि मराएन्हि ताही। (मा० १।७२।४)
मरल-दे० 'मराल'। मराल-(सं०)-१ हंस, २ हंस की भाँति विवेकी। उ० १ कुअत मंजु मराल मुदित मन। (मा० २।२३६।३) २ सुमिरे कृपालु के मराल होत खूसरो। (क० ७।१६) मरालन्द-मरालों, हंसों।
मराला-दे० 'मराल'। उ० मसक मेरु कि लेहिं मराला। (मा० २।७२।२)
मरालिके-हे हंसिनी। उ० देखिए कुमारी मुनि-मानस मरालिके। (क० ७।१७३) मराली-१ हंसिनी, २ हंस की। उ० १ सराहइ मानि मराली। (मा० २।२०।२) २ चली मराली चाल। (दो० २३३)
मरिजाद-दे० 'मरजाद'।
मरीच-दे० 'मारीच'। उ० बाहुक-सुबाहु नीच लीचर मरीच मिलि। (क० ६१)
मरीचि-(सं०)-१ किरण, रश्मि, २ एक ऋषि जो ब्रह्मा के १ पुत्रों में प्रथम थे।
मरीचिका-(सं०)-मृगतृष्णा। किरणों में जल का भ्रम।
मरु (२)-(सं०)-१ ऊसर २ मरुस्थल, रेतीली ज़मीन, ३ मारवाड़। उ० २ मरु मालव महिदेव गवासा। (मा० १।६।४)
मरुत-(सं० मरुद्)-पवन, वायु। उ० चलेउ बराह मरुत-गति भाजी। (मा० १।१५७।१)
मरुतु-दे० 'मरुत'।
मरुत्-दे० 'मरुत'। उ० जयति मरुदजना मोद-मंदिर। (वि० २७)
मरोरी-(?)-मरोड़कर, ऐंठकर। उ० गहि पटकत भजे भुजा मरोरी। (मा० ६।६८।५)
मर्कट-(सं०)-बंदर। उ० रिच्छ मर्कट सुभट उद्भट। (वि० ५०)
मर्द-(फ़ा०)-१ पुरुष, २ साहसी वीर।
मर्दइ-(सं०मर्दन) मर्दन करता है, मींजता है। उ०गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा। (मा०५।११।३) मर्दहिं-मलते हैं, नाश करते हैं। मर्दहु-नाश करो, मलो। मर्दा-मला, नाश किया। मर्दि-मलकर, नाश करके। उ० कतहुँ बाजि सों बाजि मर्दि गजराज करवरत। (क० ६।४७) मर्देसि-मसल डाला। उ० कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि धरि धूरि।(मा० २।१८)
मर्दन-(सं०)-१ मलना, मसलना, मींजना, २ मर्दन करनेवाले, नष्ट करनेवाले, कुचलनेवाले। उ० २ जाहि दीन पैर नेह करउ कृपा मर्दन मयन। (मा० १।१।सो०४)
मर्म (सं०)-१ रहस्य, भेद २ शरीर का वह स्थान जहाँ चोट पहुँचना बड़ भयावह होता है। उ० १ पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म। (मा० ३।३९ क)
मर्मबचन-कलेजे में घुसनेवाली बात।
मर्मज्ञ-(सं०)-भेद जाननेवाला।
मर्मी-(सं० मर्मिन्)-भेद जाननेवाला, मर्मज्ञ। उ० मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। (मा० ६।१२०।७)
मर्याद-(सं० मर्यादा)-१ मान, प्रतिष्ठा, २ सीमा, हद, ३ नियम। उ० २ विश्व विख्यात विश्वेश विश्वायतन विश्व मर्याद व्यालादगामी। (वि० ५४)
मल-(सं०)-१ मैल, २ विष्ठा, पाखाना, ३ पाप, ४ दूषण, प्रेम विकार। उ० १ छूटइ मल कि मलहिं के धोएँ। (मा० ७।४९।३) ३ कलिमल मथन नाम ममता हन। (मा० ७।५१।२) मलहि-(सं० मल)-मल से ही, मैल से ही। उ० करम-कीच जिय जानि सानि चित चाहत कुटिल मलहि मल धोयो। (वि० २४५)
मलय-(सं०)-१ सफ़ेद चंदन, २ मलय पर्वत जो दक्षिण भारत में है। उ० १ काटइ परसु मलय सुनु भाई। (मा० ७।३७।४) २ मलयाचल है संत जन, तुलसी दोष बिहून। (वै० १८)
मलाइ-(फ़ा० बालाई)-दूध का सार भाग जो औटने पर ऊपर जम आता है। साढ़ी। उ० खउ सुगवास मोचे दूध की मलाई है। (क० ७।७७)
मलान-(सं० म्लान)-उदास, मलिन। उ० भाइ बाप पुनि देखिउँ मनु जनि करसि मलान। (मा० २।५२)
मलाना-दे० 'मलान'। उ० मसिरस्थी मृदु दीख मलाना। (मा० २।१२४।२)

मलानि–थकी, कुम्हलाईं। उ० राम सद्गुन-धाम परमिति भईं कसुर मलानि। (गी० ७।२८)

मलार (सं० मल्लार)–वर्षा ऋतु का एक राग।

मलिंद–(सं० मिलिंद)–भौंरा।

मलिन–(सं०)–१ मैला, २ उदास, दुखी, ३ पापी, ४ अपवित्र, अशुद्ध। उ० ३ मिलइ न मलिन सुभाउ अभगू। (मा० १।७।२) ४ नयन मलिन परनारि निरखि, मन मलिन विषय सँग लागे। (वि० ८२)

मलिनाई–मलीनता, मैलेपन का भाव।

मलिनिया–(सं०मालिन्) मालिन। उ० बतिया के सुघरि मलिनिया सुंदर गातहि हो। (रा० ७)

मलीन–दे० 'मलिन'। उ० ३ ते सुरतरु-तर दारिदी, सुरसरि तीर मलीन। (दो० ४१४)

मलीनता–अपवित्रता, अशुचि, गदगी। उ० सूधो सत भाय कहे मिटति मलीनता। (वि० २६२)

मलीना–दे० 'मलिन'। उदास। उ० हृदयँ दाहु अति बदन मलीना। (मा० २।६४।३) मलीनी–मलिन, उदास।

मलीने–दे० 'मलीना'। उ०तन कृस मन दुखु बदन मलीने। (मा० २।७६।२)

मलु–(सं०मल) १ गदगी, २ पाप। उ०२ मिटइ सकल मलु मोद भाषा मलु। (वि २४)

मलेछ–(सं०म्लेच्छ)–१ नीच, २ अहिंदू, ३ जिनकी भाषा समझ में न आए।

मल्ल–(सं०) पहलवान।

मल्लजुद्ध–बाहुयुद्ध। उ० द्वौ भिरे अतिबल मल्लजुद्ध बिरुद्ध एकु एकहि हनै। (मा० ६।६७।छं० १)

मल्हावति–(सं० मल्ल)–पुचकारती है, चुमकारती है। उ० बाल चलनि किलकनि हँसि दै दै देतुरियाँ लटी। (गी०१।२०) मल्हावहीं–प्यार करती हैं, पुचकारती हैं। उ० मधुर झुलाइ मल्हावहीं, गावैं उमँगि उमँगि अनुराग। (गी० १।११)

मवास–(सं०)–१ रक्षास्थल, शरण, २ किला, गढ़। मवासे–दे० 'मवास'। उ०२ सिंधु तरे बड़ बीर दले खल, जारे हैं लंक से बंक मवासे। (ह० १८)

मशक (सं०)–मच्छर, दंश।

मष–सं०) खुर, मीन। उ० स सब हँसे मष करि रहहु। (मा० २।१७।४)

मसक–दे० 'मशक'। उ० मसक दंस बीते हिम त्रासा। (मा० ४।१७।४) मसकहि–मच्छर को। उ० मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन। (मा० ७।१२२ख)

मसखरा–(?)–फजूल, विदूषक होना। उ० तुलसी बदरि मिथु मेरु मसखरा है। (क० ६।१६)

मसखरी–(अ० मसखरा)–हँसी, दिल्लगी, मजाक। उ० सो सब करि मसखरी जाना। (मा० ७।६८।१)

मसान–(सं० श्मशान)–१ मरघट, श्मशान, २ रणभूमि। उ० १ घर मसान परिजन जनु भूता। (मा० २।८३।४) २ हरत बिमान चढ़ कौतुक मसान के। (क० ६।४८)

मसानु–दे० 'मसान'। उ० कपट सयानि न कहति कछु जागति मनहुँ मसानु। (मा०२।२६) मु० मसानु जागना–मसान जगा रही हो, श्मशान में बैठकर मंत्र सिद्ध कर रही हो। उ० दे० 'मसानु'।

मसि–(सं०)–कालिख, स्याही। उ० मसि करि लिखु मसि सत लेखनी बनाइ। (बै० ३५)

मसीत–(फा० मस्जिद)–मुसलमानों के पूजा का स्थान। उ० माँगि कै खैबो मसीत को सोइबो। (क० ७।१०६)

मस्तक–(सं०)–सिर, माथा। मस्तके–मस्तक पर।

महँ–(सं० मध्य)–में। उ० तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी। (मा० १।१२।२)

महँगे–(सं० महार्घ)–बहुमूल्य, अधिक दाम के। उ० मनि मानिक महँगे किये, सहँगे तृन जल नाज। (दो० ५०३)

महँगो–महँगा। उ० सो तुलसी महँगो किया राम गरीब निवाज। (दो० १०८)

मह–दे० 'महँ'।

महक–(?)–वास, गंध।

महत (१)–(सं० महत्)–बड़ा, महान।

महत (२)–(सं० मथन)–१ मथते हुए, २ मथता है। उ० १ बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल। (वि०१११) महिबे–मथना पड़ेगा। उ० मति महुकी मगन भरि एव हित मनहीं मन महिबे हो। (कृ० ४०) महो (?) मथी, मथन किया।

महतत्व–(सं०)–१ परब्रह्म, परमात्मा, २ सांख्य में प्रकृति का पहला विकार। उ०२ प्रकृति, महतत्व, शब्दादि गुन देवता, व्योम मरुदग्नि अमलांबु उर्वी। (वि० ५४)

महतारि–दे० 'महतारी'। उ० दूलह के महतारि देखि मन हरषइ हो। (रा० ११)

महतारी–(सं० माता)–मां, जननी। उ० रावन की रानी मेघनाद-महतारी है। (ह० २०)

महत्–(सं०)–श्रेष्ठ, बड़ा।

महन–(सं०मथन) १ मथनेवाला, २ नाश करनेवाला। उ० २ महन मय पुर दहन गहन अरि। (क० ३।१०)

महनु–दे० 'महन'। उ० २ [illegible] महनु है। (क० ७।१६०)

महर–(सं० महत्)–१ प्रधान, बड़ा, २ सेठ। उ० १ ब्रज का बिरद महर नंद का। (कृ० ३८)

महरि–'महर' की स्त्री। यशोदा। उ० [illegible] लिए गोद करौं बलभो ब्रज जीवै। (कृ० ७)

महर्षि–(सं०) बड़ा ऋषि।

महल–(अ०)–१ गृह, घर, भवन, २ प्रासाद, राजभवन। उ० १ [illegible] महल सहल [illegible] मो। (वि० १४७)

महाँ–दे० 'महँ'। उ० [illegible] (कृ० ७८)

महा–(सं०)–१ अत्यंत, बहुत, अधिक, २ बड़ा, भारी, ३ उत्तम, श्रेष्ठ, सर्वोत्कृष्ट। उ० १ [illegible] (वि० ३८) २ महा [illegible] (वि० १०) ३ गुन की [illegible] बरौं। (मा० १।१४०।१)

महानद–(सं०)–बड़ी नदी।

महानदु–दे० 'महानद'। उ० मिलेउ महानदु सो न सुहा घन। (मा० १।४०।१)
महाजन–बड़े लोग। उ० सचिव महाजन सकल बोलाए। (मा० २।१६१।४)
महातम–(स० माहात्म)–महात्म, महत्व, गौरव। उ० कहत महातम अति अनुरागा। (मा० २।१०६।२)
महात्मा–(स० महात्मन्)–जिसकी आत्मा बहुत उच्च हो, सन्यासी, साधु।
महादेव–(स०)–शंकर, शिव। उ० जयति मर्कटाधीस मृग-राज विक्रम महादेव मुदमंगलालय कपाली। (वि० २६)
महान–(स० महान्)–१ बहुत बड़ा, विशाल, २ विष्णु, केशव। उ० २ अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान। (मा० ६।१५ क)
महानाटक–(स०)–बड़ा नाटक जिसमें १० अंक होते हैं। उ० महानाटक निपुन, कोटि-कवि कुल तिलक, गान गुन गर्व गंधर्व जेता। (वि० २६)
महाप्रलय–(स०)–वह काल जब सपूर्ण सृष्टि का विनाश हो जाता है।
महाबल–(स०)–अत्यंत बलवान। उ० सारियो त्रिकाल न त्रिलोक महाबल भो। (ह० ७)
महाबाहु–बड़ी भुजावाले। उ० साँवरे गोरे सरीर महाबाहु महाबीर। (गी० १।७२)
महाबीर–(स० महावीर)–१ बहुत वीर, २ हनुमान। उ० १ महाबीर बिनवउँ हनुमाना। (मा० १।१७।२)
महाराज–बड़े राजा, बड़े। उ० महाराज बाजी रची प्रथम न हति। (वि० २४६)
महिँ–(स० मध्य)–में। उ० जितिहहिं राम न ससय या महिं। (मा० ६।२७।३)
महि (१)–(स०)–पृथ्वी। उ० देव! महिदेव महि धेनु सेवक-सुजन सिद्ध-मुनि सफल-कल्यान-हेतू। (वि० ४०)
महि (२)–(स० मध्य)–में। उ० तुलसी अति प्रेम लगीं पलकैं पुलकीं लखि राम हिये महि हैं। (क० २।२२)
महिदेव–ब्राह्मण। उ० देव! महिदेव-महि धेनु-सेवक-सुजन सिद्ध-मुनि सकल-कल्याम हेतू। (वि० ४०)
महिधरु–(स० महीधर)–पर्वत। उ० जो सहस सीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी। (मा० २।१२६।छ० १)
महिप–(स०)–राजा, नृप। उ० मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्हीं। (मा० १।३३१।२)
महिपति–दे० 'महिप'।
महिपाल–दे० 'महिप'। उ० तहाँ राम रघुबंस मनि सुनिअ महा महिपाल। (मा० १।२६२)
महिपालक–दे० 'महिप'। उ० कहेउ सप्रेम पुलकि मुनि सुनि महिपालक। (जा० ५१)
महिपाला–दे० 'महिप'। उ० आपु तहँ अगनित महिपाला। (मा० १।१३०।३)
महिपालु–दे० 'महिपाल'।
महिपु–दे० 'महिप'।
महिमा–(स० महिमन्)–१ महत्व, माहात्म, बड़ाई, २ इज्जत, ३ प्रभाव, प्रताप, ४ एक सिद्धि। उ० १ मुनि महिमा सुनि रानिहि धीरजु आयउ। (जा० ८०)
महिष–(स०)–१ भैंसा, २ महिषासुर नाम का राक्षस जिसे काली ने मारा था। उ० १ महिष मत्सर क्रूर, लोभ सूकर रूप। (वि०५९) २ महिष मद-भग करि अंग तोरे। (वि० १५)
महिषमती–(स०)–सहस्रबाहु की राजधानी का नाम। उ० महिषमती को नाथ साहसी सहसबाहु। (क० ६।२४)
महिषीं–१ भैंसें, २ रानियाँ। उ० १ महिषीं धेनु बस्तु बिधि नाना। (मा० १।३३३।४) महिषी–(स०)–१ भैंस, २ रानी, पटरानी। उ० २ जनक पाट महिषी जगजानी। (मा० १।२३४।१)
महिषेस–(स० महिषेश)–१ महिषासुर, २ यमराज। उ० १ तुलसि अभिमान-महिषेस बहु कालिका। (वि० ४८)
महिषेसा–दे० 'महिषेस'।
महिषसु–दे० 'महिषेस'।
महिसुर–(स०)–ब्राह्मण। उ० सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। (मा० १।२७३।३) महिसुरन्ह–ब्राह्मणों को। उ० सब प्रसंग महिसुरन्ह सुनाई। (मा० १।१७४।४)
महीं–(स०मया)–मैं ही। उ०महीं सकल अनरथ कर मूला। (मा० २।२६२।२)
मही ( )–(स०)–१ पृथ्वी, २ मिट्टी। उ० १ परिये पुनीत सैल सर सरि मही है। (गी० २।४१)
महीधर–(स०)–१ पर्वत, २ शेषनाग। उ० १ प्रबल अहंकार दुर्घट महीधर। (वि ५६)
महीप–(सं०)–राजा, नरेश। उ० लखी महीप कराल कठोरा। (मा० २।३१।२) महीपन्ह–राजाओं।
महीपति–दे० 'महीप'। उ० सुनहु महीपति मुकुटमनि तुम सम धन्य न कोउ। (मा० १।२९१)
महीपा–दे० 'महीप'।
महीरुह–वृक्ष, पेड़।
महीस–(स० महि + ईश)–राजा। उ० तकि तकि तीर महीस चलाया। (मा० १।१५७।२)
महीसा–दे० 'महीस'।
महीसु–दे० 'महीस'। उ० पाइ असीस महीसु अनंदा। (मा० १।३३१।३)
महीसुर–(स०)–ब्राह्मण। उ० मारग मारि महीसुर मारि, कुमारग कोटिक कै धन लीयो। (क०७।१७६) महीसुरन्ह–ब्राह्मणों।
महुँ–(स० मध्य)–में, बीच। उ० भट महुँ प्रथम लीक जग जासू। (मा० १।१८०।४)
महु–दे० 'महुँ'।
महूँ–(स० मया)–मैं भी, मैंने भी। उ० महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कही न बैन। (मा० २।२६०)
महेश–(स०)–शिव, महादेव। उ० महेश चाप खडन। (मा० ३।४। छं० ४)
महेशानि–पार्वती, उमा। उ० महामारी महेशानि महिमा की खानि। (क० ७।१७४)
महेस–दे० 'महेश'। उ० गई समीप महेस तब हँसि पूछी कुसलात। (मा० १।५५) महेसहि–महादेव को, महेश को। उ० सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी। (मा० २।४४।४)
महेसा–दे० 'महेश'।

बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न मागउँ बर आना। (मा० १।२११।३) मागसि-माँगता। उ० काहे न मागसि अस बरदाना। (मा० ७।८४।१) मागहिं-मागते हैं। उ० मनहीं मन मागहिं बर एहू। (मा० २।२२४।२) मागहु-माँगो, याचना करो। उ० मागहु आसु जुड़ावहु छाती। (मा० २।२२।३) मागा-याचना की। उ० बर दूसर अस मजस मागा। (मा० २।३२।२) मागु-दे० 'माँगु'। उ० देवि मागु बरु जो रुचि तोरे। (मा० १।१५०।२) मागे-माँगा, याचना की। मागेसि-माँगी। उ० मागेसि नीद मास पट केरी। (मा० १।१७७।४)

मागध-(स०)-१ मगध देश का, २ भाट, यश बखानने वाला। उ० २ मागध सूत बंदिगन गायक। (मा० १।१९४।३)

माघ-(स०)-एक महीना जो पूस और फागुन के बीच में पड़ता है। उ० माघ मकरगत रबि जब होई। (मा० १।४४।२)

माचल-(?)-मचला मचलनेवाला, ज़िद्दी।

माचहीं-(?)-मचाते हैं। उ० तुलसी मुदित रोम रोम मोद माचहीं। (क० १।१४) माची-मची, फैली। उ० कीरति जासु सकल जग माची। (मा० १।१६।२)

माछी-(स० मक्षिका)-मक्खी। उ० जिमि निज बल अनुरूप ते माछी उड़इ अकास। (मा० ६।१०१ क)

माजहि-(?)-माजा (पहली वर्षा का फेन) को। उ० माजहि खाइ मीन जनु मापी। (मा० २।५४।२)

माझ-दे० 'माँझ'। उ० पहुचाएसि छन माझ निकेता। (मा० १।१७१।४)

माझा-दे० 'माँझ'। उ० कैकइ करत जननी जग माझा। (मा० २।१६२।२)

माट-(स० मट्टक)-मटका, बर्तन। उ० स्वामि दसा लखि लषन सखा कपि, पिघले हैं आँच माट मानो घिय के। (गी० ४।१)

माणिक-(स० माणिक्य)-मानिक, लाल।

मात (१)-(अर०)-हार, पराजय।

मात (२)-(स० मातृ)-माता, जननी। उ० काक धार मरि मगलहि कमल करहि लिएँ मात। (मा० १।३४६) मातन्ह-माताओं से। उ० लछिमन सब मातन्ह मिलि हरषे आसिष पाइ। (मा० ७।६ ख)

मातलि-(स०)-इंद्र का सारथी। उ० हरष सहित मातलि लै आया। (मा० ६।८६।१)

मातहिं-(स० मत्त)-मस्त हो जाते हैं मतवाले हो जाते हैं। उ० जो अपर्बत नृप मातहिं तेई। (मा० २।२३१।४) माति-मतवाली होकर। उ० करमभूमि कलि जनम कुसंगति मति बिमोह मद माति। (बि०२३३) माती-१ मतवाली हुई २ मतवाली होकर। उ० १ सहित समाज प्रेम मति माती। (मा०२।२७२।३) माते-१ मत वाले हुए मत्त हुए, २ मतवाले। उ० २ कूजत पिक मानहुँ गज माते। (मा० ३।३८।३) मात्यो-मतवाले हुए। उ० मोह मद-मात्यो, रात्यो कुमति कुनारि सों। (क० ७।८२)

माता-दे० 'मात'। उ० कामकलि-पाप-संताप-संकुल-सदा प्रनत तुलसीदास तात माता। (बि० २८)

मातु-दे० 'मात'। उ० मोहि कहु मातु तात दुख कारन। (मा० २।४०।३)

मातुल-(स०)-माता का भाई, मामा। उ० मातुल मातुल की न सुनी सिख का तुलसी कपि लंक न जारी। (क० ६।५)

मात्र-(स०)-१ केवल, २ थोड़ा, कुछ। उ० १ अस्थि मात्र होइ रहे सरीरा। (मा० १।१४५।२)

माथ-(स० मस्तक)-सिर, ललाट, भाल। उ० माथ नाइ पूछत अस भयऊ। (मा० ४।१।३) मु० माथ नाइ-सर नवाकर। उ०दे० 'माथ'। माथहि-१ माथ को, २ माथ पर, ३ माथ से। माथे-मस्तक पर, माथे पर। उ०सेहि रघुनाथ हाथ माथे दियो, को ताकी महिमा भनै। (गी० ५।४०)

माथा-दे० 'माथ'। उ० जहँ बस श्रीनिवास श्रुति माथा। (मा० १।१२८।२)

माधव-(स०)-१ विष्णु, २ कृष्ण, ३ बैसाख का महीना, ४ बिंदुमाधव नामक काशी का तीर्थ। उ० १ माधव! अब न द्रवहु केहि लेखे। (बि० ११३) ३ जनु सग मधु माधव लिए। (जा० ३६)

माधुरि-दे० 'माधुरी'।

माधुरी-(स०)-१ मधुरता, मिठास, २ सौंदर्य, शोभा, ३ मद्य, शराब। उ० १ भायप भक्ति पहु मधु की जल माधुरी सुबास। (मा० १।४२)

माधुय-दे० 'माधुरी'।

मान-(स०)-१ आदर, इज्जत, २ परिमाण, तोल, ३ समान, तुल्य, बराबर, ४ माना, मानता, ५ मान लो, मानो, ६ घमंड। उ० १ मान लोक बेद राखिबे को पन रघुबर को। (क०७।१२०) ४ बिनय न मान खगेस सुनु। (मा० ५।५८) ५ मान सही ले। (बि० ३२) ६ जय ताड़का-सुबाहु मथन, मारीच मान हर। (क० ७।११२) मानइ-दे० 'मानई'। मानई-मानती है, अनुभव करती है। उ० उर लाइ उमहिं अनेक बिधि जलपति जननि दुख मानई। (पा० १२१) मानउँ-१ मानूँ, २ प्रेम करूँ, ३ आदर करूँ। मानत-दे० 'मानता'। मानता-मानता है मानते हैं। उ० मानत मनहुँ मनदित ललित घन। (गी० ३।१) मानति-मानती है। मानब-मानिएगा। उ० देवि करौं कछु बिनय सो बिलगु न मानब। (पा० ४८) मानबि-मानिएगा। उ० जदि सिय पद कह सासु बिनय मृदु मानबि। (पा० १२७) मानसि-मानता है। उ० मूढ़ परम सिख देउँ न मानसि। (मा० ७।११२।७) मानहि-मानते हैं, मान लेते हैं। मानहि-मानो, मान लो। उ० मन मेरे मानहि सिख मेरी। (बि० १२६) मानहीं-दे० 'मानहिं'। मानहुँ-१ मानो, जैसे, २ मान लो। उ० १ पट पीत मानहुँ तड़ित रुचि सुचि। (बि० ४५) मानहु-१ मान लो, २ मानो, जैसे। माना-१ स्वीकार किया, मान लिया, २ मान। दे० 'मान'। उ० १ गनिय न मधु औगुन तुम्हार अपराध मोर मैं माना। (बि० ११४) मानि-मानकर। उ० सकल-सौभाग्य-सुख-खानि-जिय जानि, सठ! मानि बिस्वास बद बेद सार। (बि० ४६) मानिबहि-१ मानो २ मानेगा। मानिबी-दे० 'मानबि'। उ० तुलसी सील सनेह लखि निज किंकरी करि मानिबी।

मारा, २ मारना। उ० २ मिले रहैं मार्‌यौ चहैं कमादि सँघाती। (वि० १४७)
मार (२)-(स०)-कामदेव। उ० मार-करि मत्त मृगराज त्रय नयन हरे। (वि० ४१) मारन (२)-कामदेवों, काम देवों का समूह।
मारकंडेय-दे० 'मार्कंडेय'। उ० मारकंडेय मुनिवर्य हित कौतुकी। (वि० ६०)
मारखी-(?)-परपरागत। उ० लोक लखि बोलिए पुनीत रीति मारखी। (क० १।१४)
मारग-दे० 'मार्ग'। उ० हरि मारग चितवहिं मति धीरा। (मा० १।३८८।२)
मारगन-(स० मार्गण)-बाण, तीर। उ० राम मारगन गन चले लहलहात जनु ब्याल। (मा० ६।६१)
मारगु-दे० 'मारग'।
मारतंड-दे० 'मार्तंड'। उ० बेग जीत्यौ मारुत प्रताप मार तंड कोटि। (क० ५।६)
मारव-(स० मालव)-मालव देश। उ० मरु मारव महिदेव गवासा। (मा० १।६।४)
मारा (२)-(स० मार)-कामदेव। उ० तुम जो कहा हर जारेउ मारा। (मा० १।६०।३)
मारीच-(स०)-एक राक्षस जो ताड़का राक्षसी का पुत्र तथा रावण का अनुचर था। उ० चतुर्दश-सहस सुभट मारीच-संहारकर्ता। (वि० ४३) मारीचहिं-मारीच को।
मारीचा-दे० 'मारीच'।
मारु (१)- स० मार)-कामदेव।
मारु (२)-(स० मारण)-चोट। उ० मोटी रोटी मारु। (दो० ४२१)
मारुत-(स०)-वायु, हवा। हनुमान वायु के पुत्र थे। उ० मारुतनदन मारुत को मन को खगराज को बेग लजायो। (क० ६।५४)
मारुति-(स)-मारुत के पुत्र हनुमान। उ० जाको मारुति दूत। (दो० १७६)
मारू (२)-(स० मार)-कामदेव। उ० मथै पानि पकज निज मारू। (मा० १।२४७।४)
मार्कंडेय-(स०)-एक अमर ऋषि।
मार्ग-(स०)-पथ, रास्ता।
मार्जार-(स०)-बिलार। उ० मोह-मूषक-मार्जार। (वि० ११)
मार्तंड-(स०)-सूर्य।
माल-दे० 'माल'। माल (१)-(स० माला)-१ हार, माला, २ पंक्ति, ३ समूह। उ० १ उरग-नर-मौलि उर मालधारी। (वि० ११) २ पावन गग तरग माल से। (मा० १।३२।७) मालनि-मालाओं मे। उ० मालनि मानो है देहनि तें दुति पाई। (गी० १।२७)
माल (२)-(स० मल्ल)-पहलवान।
मालवान-दे० 'माल्यवंत'। उ० मालवान! रावरे के बावरे से बोल हैं। (क० ५।२१)
माला-(स०)-१ हार, २ पंक्ति,३ समूह। उ०२ सुहृत पुंज मंजुल अलि माला। (मा० १।३७।४)
मालिका-(सं०)-१ माला धारण करनेवाला, २ माला, पंक्ति, पंचली। उ०१ विभावर तरग मालिका। (वि० १७) २ सुभग सौरभ धूप दीप वर मालिका। (वि० ४८)
मालिनि-(स० मालिनी)-माली की स्त्री। उ० मदाकिनि मालिनि सदा सींच। (वि० २३)
माली-(स०)-१ फूल या उपवन आदि सींचनेवाला। २ जो माला पहने हो। उ० १ माली मेघमाल, बन माल विकराल भट। (क० ५।२) २ नाम दिव सेखर किरणमाली। (वि० ५५)
मालुम-(अर० मालूम)-विदित, मालूम। उ० नायहि नीके मालुम जेते। (वि० २४३)
माल्यवंत-(स०)-रावण का नाना और मत्री। इसका दूसरा नाम 'माल्यवान' भी था। उ० माल्यवंत अति सचिव सयाना। (मा० ५।४०।१)
माष-(स० मख)-क्रोध।
माषी-(स० मख) क्रोधित हुई। माषे-क्रोधित हुए। उ० तुलसी लखन माषे, रोषे राखे राम रुख। (गी०१।८२)
मास (१)-(सं०)-३० दिनों का एक समय विभाग, महीना। उ० मास दिवस महँ नाथु न आवा। (मा० ५।२७।३)
मास (२)-(स० मांस)-गोश्त।
मासा (१)-दे० 'मास (१)'।
मासा (२)-दे० 'मास (२)'।
मासु (१)-दे० 'मास (१)'।
मासु (२)-दे० 'मास (२)'।
मासू (१)-दे० 'मासु (१)'।
मासू (२)-दे० 'मास (२)'।
माहँ-दे० 'माँह'। उ० जाई राजघर ब्याहि आई राजघर माहँ। (क० २।४)
माहली-(अर० महल)-महल में रहनेवाले। उ० कौने ईस किए की समालु खास माहली। (क० ७।२३)
माहिं-(स० मध्य)-में।
माहिष्मती-(स०)-सहस्रबाहु की राजधानी।
माहीं-दे० 'माँह'। उ० त्रिभुवन तीनि काल जग माहीं। (मा० २।२।२)
माहुर-(स० मधुर)-विष, ज़हर। उ० अमिय सजीवन माहुर मीचू। (मा० १।६।३)
माहुरु-दे० 'माहुर'। उ० अमिअ सजीवनु माहुरु मीचू। (मा० १।६।३)
माहूँ-(स०मध्य)-में। उ०सोचै जनि मन माहूँ। (वि०२७५)
मिटइ-(स० मृष्ट)-मिट जाता है। उ० सुमिरत जाहि मिटइ श्रम भारु। (मा०२।८७।४) मिटत-मिटता है, नष्ट होता है। उ०तजे चरन अजहूँ न मिटत नित। (वि०८७) मिटति-मिटती है, मिट जाती है। मिटहिं-मिटती हैं, मिट जाते हैं। उ० करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जगजाल। (मा० २।१३) मिटहिं-१ मिटना है, २ मिटेगा। मिटा-मिट गया। मिटि-मिटकर। मिटिहहिं-मिटेंगे। मिटिहि-मिटेगा, मिट जाएगा। मिटी-मिट गई। उ० मिटी मीचु लहि लक सक गई। (गी० ५।३०) मिटे-मिट गए, समाप्त हो गए। उ०मिटे दाष दुख दारिद दावा। (मा० २।१०२।१) मिट्यो-मिटा, दूर हुआ। उ०

मीनता–मछलीपन । उ० सीतापति भक्ति-सुरसरि-नीर मीनता । (वि० २६२)
मीना–दे० 'मीन' । उ० १ पाय पयोनिधि जन मन मीना । (मा० १।२७।२)
मीनु–दे० 'मीन' ।
मीला–(स०मिल) १ मिल करके, २ मिला । उ० १ खेल गरुड़ जिमि अहि गन मीला । (मा० ६।६६।१)
मीसी–(स० मिश्रित)–एक से अधिक अनाज से बनी । उ० छोटी मोटी मीसी रोटी । (क० २)
मुंज–(सं०)–सरपत, सरई, मूँज । उ० परम पावन पापपुंज मुंजाटवी अनल-इव निमिष निर्मूलकर्ता । (वि० ५५)
मुंड–(स०)–१ कटा सिर, कटा हुआ कपाल, २ सिर, ३ शुंभ राक्षस का सेनापति जिसे दुर्गा ने मारा था । उ० १ रुंड मुंड मय मेदिनि करहीं । (मा० २।११२।१) ३ मुंड मद भंग करि अंग तोरे । (वि० १५)
मुंडित–(स०) मूँड़े हुए । उ०मुंडित सिर खंडित भुज बीसा । (मा०५।११।२)
मुँदरी–(स० मुद्रिका)–अँगूठी । उ० नाथ हाथ माथे धरेउ, प्रभु-मुँदरी मुँह मेलि । (म० ३।७।१)
मुँह–(स०मुख)–१ वदन, आनन, २ मुख विवर । उ० २ नहि न जीह मुँह परेउ न कीरा । (मा० २।१६२।१) मु० बोलौं बात मुँह भरि–प्रेम से बोले, भली भाँति बोले । (गी० ७।२७) मुँह मसि लाई–मुँह में कालिख लगाकर । (मा० १।२६६।४) मुँह मीठ–मधुर बोलनेवाला । (मा० २।१७)
मुई–(स० मरण)–मरी, मर गई, कष्ट सहा । उ० जननी कत भार मुई दस मास । (क० ७।४०) मुए–१ मरे, २ मरने पर, ३ मृतक । उ० १ मुए मरत मरिहैं सकल । (दो० २२४) मुएहु–मरने पर भी । उ० मुएहु न मिटैगो मेरो मानसिक पछिताउ । (गी० २।५७)
मुकता–(स० मुक्ता)–मोती ।
मुकतावहिंगे–(स० मुक्त)–छुड़ावेंगे । उ० लोकपाल सुरनाग मनुज सब परे बंदि थव मुकतावहिंगे । (गी० ५।१०)
मुकताहल–(स० मुक्ताफल)–मोती ।
मुकति–दे० 'मुक्ति' ।
मुकुंद–(स०)–१ कृष्ण, २ विष्णु । उ० २ तीन त्रिगुन पर परम पुरुष श्रीरमन मुकुंद । (वि० २०३)
मुकुट–(स०)–शिरोभूषण, ताज । उ० रत्न हाटक जटित मुकुट मंडित मौलि । (वि० ५१)
मुकुत–(स० मुक्ति)–मोक्ष मुक्ति । उ० मुकुत जात नर होइ । (दो० ५३१)
मुकुता–(स० मुक्ता)–मोती मौक्तिक । उ० मनि मानिक मुकुता छबि जैसी । (मा० १।११।१)
मुकुति–(सं० मुक्ति)–मोक्ष, अपवर्ग । उ० मुकुति मनोहर मीतु । (दो० २२२)
मुकुर–(स०) शीशा, दर्पण । उ० काई विषय मुकुर मन लागी । (मा० १।११५।१)
मुखरा–दे० 'मुँह' ।
मुक्त (स०) बंधनरहित जन्म मरण रहित । उ० नित्य निर्भय नित्य मुक्त निर्मान हरि । (वि० ५३)
मुक्तये–मुक्ति के लिए, छुटकारे के लिए ।

मुक्ताफल–(स०)–मोती ।
मुक्ताहल–दे० 'मुक्ताफल' ।
मुक्ति–(स०)–१ छुटकारा, २ मोक्ष, निर्वाण । उ० २ भुक्ति मुक्ति दायिनि भयहरण कालिका । (वि० १६)
मुख–(स०) मुँह आनन । उ० का घूँघट मुख मूँदहु नवला नारि । (बा० १६) मुखनि–मुखों से । मुखहिं–मुख से । उ० मुखहिं निसान बजावहिं भेरी । (मा० ६।३६।५)
मुखर–(स०)–१ अप्रिय बोलनेवाला, २ बकवादी, बहुत बात करनेवाला, ३ आवाज़, रव, ध्वनि । उ० २ गिरा मुखर तनु अरधभवानी । (मा० १।२४७।३) ३ मधुकर मुखर सोहाए । (वि० ६२)
मुखागर–(स० मुखाग्र)–ज़बानी, मुँह से । उ० कहेउ मुखागर मूढ़ सन मम सदेस उदार । (मा० ५।५२)
मुखिया–(स० मुख्य)–सरदार, राजा, प्रधान पुरुष । उ० मुखिया मुख सो चाहिए खान पान को एक । (मा०२।३१५)
मुखु–दे० 'मुख' ।
मुख्य–(स०)–प्रधान, खास । उ० मुख्य रुचि होत बसिबे की पुर रावरे । (वि० २१०)
मुग्ध–(स०)–१ मोहित, २ विस्मित, ३ मूर्ख, ४ अल्प वयस्क, ५ सुंदर । उ०१ मुग्ध-मधुमथन मानद अमानी । (वि० ५६)
मुचत–(स० मोचन)–छूटते हैं । उ० अति मुचत स्रम कन मुखनि । (गी० ७।१८)
मुट्ठी–(स० मुष्टि)–१ हाथ की मूठी, २ किसी हथियार आदि की मुठिया ।
मुठभेर–(?)–सामना होना ।
मुठभेरी–(?)–आमने सामने से । उ० चूक न घात मार मुठभेरी । (मा० २।१३३।२)
मुठिकन्ह–(स० मुष्टिक)–मूठों से, घूसों से । उ० मुठिकन्ह लातन्ह दातन्ह काटहिं । (मा० ६।५३।२) मुठिका–घूसा, मुक्का । उ० तब मारुत सुत मुठिका हन्यो । (मा० ६।६५।४)
मुड़ाइ–(स० मुंड)–मुड़ाकर, मुँडन कराकर । उ० मूड़ मुड़ाइ होहिं सन्यासी । (मा० ७।१००।३)
मुद–(स०)–हर्ष, आनंद । उ० पद्माकरी प्रान मुद माधव । (वि० २२)
मुदा–(स० मुद)–प्रसन्न । उ० नहि ते सब सेवक होत मुदा । (मा० ७।१४।छं० ७)
मुदित–(स०)–प्रसन्न, हर्षित । उ०विपुल मज्जत मुदित मन समाजा । (वि० ४७)
मुदिता–प्रसन्नता । उ० मुदिता मथै विचार मथानी । (मा० ७।११७।८)
मुद्रिक–दे० मुद्रिका । उ०द्युति मोद मुद्रिक न्यारी । (गी०६३)
मुद्रिका–(स०)–अँगूठी । उ० तब देखी मुद्रिका मनोहर । (मा० ५।१३।१)
मुधा–(स०)–व्यर्थ, निष्प्रयोजन । उ० मुधा भेद जद्यपि कृत माया । (मा० ७।७८।४)
मुनिंद्रा–(सं० मुनींद्र)–मुनियों में श्रेष्ठ । उ० मुनगु सभासद सकल मुनिंद्रा । (मा० १।६५।१)
मुनि–(स०) १ साधु, ऋषि, महात्मा, तपस्वी, २ सात

की संख्या, ३ सप्तमी, ४ सातवाँ। उ० १ मुनि माँगत मधु पार्ही। (वि०४)२ मुनि प्रथमादिक बार। (दो०४२८) मुनिन्ह-मुनियों को, मुनिगण को। उ० कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना। (मा० ३।०६।१) मुनिहिं-१ मुनि को, २ मुनि ने।

मुनिपट-मुनियों का वस्त्र, वल्कल, भोजपत्र। उ० मुनिपट भूषन भाजन आनी। (मा० २।०३।१)

मुनिहुँ-मुनि को भी। उ० मुनिहुँ मनोरथ को अगम अलभ्य लाभ। (गी० २।३२)

मुनी-दे० 'मुनि'। उ० १ मातु भयो प्रभु रूप नहीं तु है नाथ बिरंचि महेस मुनी को। (क० ७।१२१)

मुनीश-(सं० मुनीश)-मुनियों में श्रेष्ठ। मुनीसन्ह-श्रेष्ठ मुनियों ने। उ० भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए। (मा० १।३३।४)

मुनीसा-दे० 'मुनीस'। उ० करहु कृपा अब आनि मुनीसा। (मा० १।१८।३)

मुनीसु-दे० 'मुनीस'।

मुमुक्षु-(सं०)-मोक्ष की इच्छा रखनेवाला।

मुयहु-(सं० मरण)-मरने पर भी। उ० मुयहु न माँगत मीच। (दो० ३३५) मुये-१ मरे हुए, मुर्दे, २ मर। उ० १ मनु बोलत और मुये धरि देहीं। (क० ७।२६) मुयेहि-मरने पर, मरने पर भी।

मुर-(सं०)-एक दैत्य जिसे कृष्ण ने मारा था, इसके पाँच सिर थे।

मुरछा-(सं० मूर्च्छा)-बेहोशी, वह अवस्था जिसमें चेतना नहीं रह जाती।

मुरछि-मूर्च्छित होकर।

मुरछित-जिसे मूर्च्छा आ गई हो, बेहोश।

मुरा-(सं०मुरण)-हिचका, झिझका। उ० गयउ सभाँ मन नेकु न मुरा। (मा० ६।११।४) मुरि-१ मुड़कर, २ झिझककर। मुरे-दे० 'मुरेउ'। उ० २ अबो वाम कन्या की रति को जहँ तहँ मदिप मुरे। (गी० १।८०) मुरेउ-१ मुड़ गए, विमुख हो गए, २ हिचक गए। उ० १ मुरउ न मन तनु टरेउ न टारे। (मा०६।६२।३) मुरै-१ मुड़े, मुड़, २ हिचके।

मुरारि-(सं०)-'मुर' राक्षस को मारनेवाले, कृष्ण। उ०कस न करहु करुना हरे! दुख हरन मुरारि! (वि० १०२)

मुरारे-हे कृष्ण! उ० जदपि मैं अपराध भवन दुख समन मुरार। (वि० ११०)

मुरारी-दे०'मुरारि'। उ०मातु उमीद भाए मुरारी। (ह०२२)

मुरुखाई-(सं० मूर्ख)-मूर्खता। उ० यह करब 'मुरुखाई महा'। (पा० २४)

मुरुछा-मूर्च्छा, बेहोशी। उ० रह मुरछा रामहि सुमिरि नृप फिरि करवट लीन्ह। (मा० २।४२)

मुरुछि-मूर्च्छित होकर।

मुरुछित-(सं० मूर्च्छा)-बेहोश, मूर्च्छित। उ० लागी चकटक भए पतितन्हि मुरत रहि मुरुछित भई। (मा० १। ८०। छं० २)

मुष्ट-(सं०) घूसा, मुक्का। उ० मुष्टि प्रहार हनत सब भागा। (मा० ६।१८०४)

मुसलाधार-(सं० मुसल)-मूसल के समान मोटी धार का। उ० बरषें मुसलाधार बार बार घारि कै। (क० २।११)

मुसुकान-(सं० मुस्कान)-मुस्कराकर, हँसकर। मुसुकाई-मुस्कराकर। उ० जागबलिक बोले मुसुकाई। (मा० १। ४७।१) मुसुकाता-मुस्कराते हुए। उ० भगिनी मिली बहुत मुसुकाता। (मा० १।१३।१)

मूँठि-(सं० मुष्टि)-मूठी, मुट्ठी। मूँठि मारि दी-टोना कर दिया। उ० काहु देवतानि मिलि मोटी मूँठि मारि दी। (क० ७। १८३)

मूँड़-(सं० मुंड)-कपाल, सर। उ० मूँड़ के कमंडलु खपर किए कोरि कै। (क० ५।२०) मु० मूँड़ परे-गुलाम हो गए। (वि० २४१) मूँड़ मारि-परेशान होकर, दिमाग लड़ाकर। (वि० २०६)

मूँदि-(सं० मुद्रण)-बंद करके।

मू मूल नक्षत्र। उ० भा भ ध मू गुरु साथ। (दो० ४४७)

मूक-(सं०)-१ चुप, २ गूँगा, न बोलनेवाला, ३ दीन, ४ प्रेत, ५ मत्स्य। उ० २ सुधापान करि मूक कि स्वाद बखानै ? (जा० ४०)

मूकिये-(सं० मूक)-चुप रहिए। उ० पाखे तरे दूर को पहुँ मूक मूकिये न। (क० ३४)

मूकी-(सं० मुक्त)-छोड़ दी, त्याग दी। उ० सब मानि गलानि कुबानि न मूकी। (क० ७।८८)

मूठि-दे० 'मुट्ठी'। उ०२ मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। (मा० २।३१।१)

मूठी-दे० 'मुट्ठी'। उ० १ भरि भरि मूठी मेलिए। (दो० ४५)

मूड़हि-(सं०मुंड) सिर पर। उ० मूँड़ लाए मूड़हि चली कलहु कहि तिनि तु सूपी करि पाई। (कृ०८)

मूढ़-(सं० मूढ़)-मूर्ख। उ० मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई। (मा० २।२६।३)

मूढ़ता-मूर्खता, बेवकूफी। उ० आनि त्याग मूढ़तागुरुता थी हरे। (वि० ७४)

मूत-(सं०) पेशाब मूत। उ० सोनित मुरीष जा मूत मल कृमि। (वि० १३६)

मूदि-दे० 'मूँदि'। उ० अवन मूदि न त चलिय पराई। (मा० ११६४।२)

मूर-(सं० मूल)-१ जड़, २ मूलधन, जमा, पूँजी। उ० २ फिरइ वनिक जिमि मूर गँवाई। (मा० २।१११।४)

मूरत-दे० 'मूरति'। उ० मूरत मधुकर रहइ। (मा० ३।१)

मूरति-(सं० मूर्ति)-१ मूर्ति, प्रतिमा २ शरीर, देह ३ आकृति स्वरूप, ४ चित्र, तसवीर। उ० १. मरम मूरति माधव मरण। (वि० ३३) २ मूरति मनोहर चारि बिरचि बिरंचि। (गी० १।२)

मूरि-(सं० मूल)-जड़, जड़ी। उ० मूरख सजीवनि मूरि सुहाई। (मा० १।२।१७)

मूरुख दे० 'मूर्ख'। उ० मूरुख हृदय न चेत। (दो० ४७८)

मूर्ख-(सं०) बेवकूफ अनजान मूढ़।

मूर्च्छा-(सं०)-बेहोशी अचेतनता।

मूर्च्छन (सं०)-बेहोश, बेसुध।

मूल-(सं०)-१ जड़, २ कारण, हेतु, ३ मूल नाम का १९ वाँ नक्षत्र, ४ प्रधान। उ० १ तथा ३ मूल-मूल सुर बीथि-बेलि। (गी० १।१६) २ सकल अमंगल मूल निकंदन। (वि० ३६)
मूलक-(सं०)-मूली। उ० सकौं मेरु मूलक जिमि तोरी। (मा० १।२५३।३)
मूलिका-(सं०)-जड़ी, औषधि की जड़। उ० बलिदान पूजा मूलिका मनि साधि राखी आनि कै। (गी० ७।१९)
मूषक-(सं०)-चूहा। उ० मोह-मूषक मार्जार। (वि० ११)
मूसर-(सं० मुशल)-अनाज कूटने का डंडा। उ० कल्पद्रुम काटत मूसर को। (क० ७।१०३।३)
मृग-(सं०)-१ पशु, २, हरिण, ३ हाथी, ४ मृगशिरा नक्षत्र, ५ खोज, ढूँढ़, तलाश। उ० १ खग मृग ब्याध पषान बिटप जड़। (वि० १०१) २ चारु जनेउ माल मृग छाला। (मा० १।२६८।४) ४ स्तुति-गुन कर-गुन पु-जुग मृग। (दो० ४५६)
मृगछाला-(सं० मृग+छाल)-मृगचर्म, हरिन का चमड़ा। उ० दे० 'मृग'।
मृगजल-दे० 'मृगतृष्ना'। उ० मृगजल रूप बिषय कारन। (वि० ११६)
मृगतृष्ना-(सं० मृगतृष्णा)-धूप में जल का भान। मृग बारि। उ० मृगतृष्ना सम जग जिय जानी। (वै० १४)
मृगनयनी-(सं० मृग+नयन)-मृग की तरह सुंदर आँख वाली सुंदरी, स्त्री। उ० मृगनयनी के नयन सर, को अस लाग न जाहि? (दो० २६२)
मृगपति-(सं०)-पशुओं का राजा, सिंह। उ० मृगपति सरिस असक। मा० ६।११ ख)
मृगबारि-(सं० मृगवारि)-झूठा जल, तृष्णा का जल। उ० बूड़ो मृगबारि, खायो जेंवरी कौ साँप रे! (वि० ७३)
मृगमद-(सं०)-कस्तूरी। उ० मृगमद चंदन कुंकुम कीचा। (मा० १।१९४।४)
मृगया-(सं०)-शिकार, आखेट। उ० मृगया कर सब साजि समाजा। (मा० १।१५६।२)
मृगराऊ-दे० 'मृगराज'। उ० कलुष पुंज कुंजर मृगराऊ। (मा० २।१०६।१)
मृगराज-(सं०)-जानवरों का राजा सिंह। उ० अतुल मृगराज बपु धरित बिदरित अरि। (वि० ५२)
मृगलोचनि-(सं० मृग+लोचन)-मृग की तरह सुंदर आँखवाली स्त्री। उ० बिधुबदनीं सब सब मृगलोचनि। (मा० १।३१८।१)
मृगांक-(सं०)-१ वैद्यक की एक दवा, सोने का भस्म, २ चंद्रमा। उ० १ रतन जतन जारि किया है मृगांक सो। (क० ५।२५)
मृगा-(सं० मृग)-१ हरिण, २ पशु। उ० १ देखि मृगा मृगनैनी कहे। (क० ३।१)
मृगी-(सं०)-हरिणी। उ० मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू। (मा० २।२५।२)
मृड-(सं०)-महादेव।
मृणाल-दे० 'मृनाल'।
मृत-(सं०)१ मरा हुआ, २ मिट्टी।
मृतक-(सं०)-मरा हुआ। उ० मृतक जिआवनि गिरा सुहाई। (मा० १।१५२।४)
मृत्तिका-(सं०)-मिट्टी। उ० यथा पट-तंतु घट-मृत्तिका। (वि० ५४)
मृत्युंजय-(सं०)-महादेव, शंकर।
मृत्यु-(सं०)-मौत, मरण। उ० मृत्यु उपस्थित आइ। (वि० १२०)
मृदंग-(सं०)-पखाउज नामक बाजा। उ० बाजहिं मृदंग डफ ताल बेनु। (गी० ७।२२)
मृदु-(सं०)-१ मधुर, २ कोमल, नरम। उ० २ तरुन अरुन अंभोज चरन मृदु। (वि० ६३)
मृदुता-(सं०)-कोमलता, सुकुमारता। उ० बिटप फूलि फलि तृन मृदुता हीं। (मा० २।३११।४)
मृदुल-(सं०)-कोमल, नरम। उ० मृदुल बनमाल उर भ्राजमान। (वि० ५१)
मृनाल-(सं० मृणाल)-कमल का डंठल, कमलनाल। उ० तौ सिवधनु मृनाल की नाईं। (मा० १।२५२।४)
मृषा-(सं०)-झूठ, मिथ्या। उ० मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई। (मा० ६।२६।१)
में-(सं० मध्य)-बीच, मध्य।
मेंढक-दे० 'मेढक'।
मेंढुक-दे० 'मेढक'। उ० मेंढुक मर्कट बनिक बक, कथा सत्य उपखान। (दो० ३६८)
मे-(सं०)-मेरे लिए, मुझे, मुझको। उ० मुखांबुज श्री रघुनंदनस्यमे सदाऽस्तु सा मंजुलमंगलप्रदा। (मा० २।१। श्लो० २)
मेकल(सं०)-विंध्य पर्वत का एक भाग जिससे नर्मदा नदी निकली है। उ० मेकलसुता गोदावरि धन्या। (मा० २.१३८।२) मेकलसुता-(सं०)-नर्मदा नदी। उ० दे० 'मेकल'।
मेखल-दे० 'मेखला'। उ० १ कनक जटित मनि नूपुर मेखल। (वि० ६२)
मेखला-(सं०)-१ करधनी, कटिसूत्र, २ जनेऊ, ३ पहाड़ का ढाल, ४ नर्मदा नदी। उ० १ मणि-मेखला कटि प्रदेश। (वि० ६१)
मेघु-दे० 'मेघ'। उ० २ मनहुँ बिधि जुग जलज बिरचे ससि सुपूरन मेघु। (गी० ७।१)
मेघ-(सं०)-१ बादल, अभ्र, २ कपास। उ० १ कहिं मेघ तहँ-तहँ नभ छाया। (मा० ३।७।३)
मेघडंबर-(सं०)-रावण का छत्र विशेष। उ० छत्र मेघडंबर सिरधारी। (मा० ६।१३।३)
मेघनाद-(सं०)-मेघ के समान गरजनेवाला इंद्रजित् जो रावण का पुत्र था। उ० मेघनाद कहुँ पुनि हँकारा। (मा० १।१८२।१)
मेचक-(सं०)-१ काला, श्याम, २ मोरपंख की चंद्रिका। उ० १ धूप धूम नभु मेचक भयऊ। (मा० १।२४७।१)
मेचकताई-कालिमा, श्यामता। उ० कह प्रभु ससि महँ मेचकताई। (मा० ६।१२।२)
मेटत-(सं० मृष्ट)-मिटाते हैं, नष्ट करते हैं। उ० मेटत कठिन कुअंक भाल के। (मा० १।३२।१) मेटहु-मेट,

हैं, बहाती हैं। उ० मंजु बिलोचन मोचति बारी। (मा० २।२८८।४) मोचहिं–१ छोड़ती हैं, २ दूर करती हैं। उ०१ उमा मातु मुख निरखि नयन जल मोचहिं। (पा० १२१)
मोचन–(सं०)–१ छुड़ाना, छुटकारा देना, २ दूर करने वाला, छुटकारा देनेवाला। उ० २ गए कौसिक आश्रमहिं विप्रभय मोचन। (जा० ४१) मोचनि–मोचनेवाली, छुड़ानेवाली। उ० ससि मुख कुंकुम बरनि सुलोचनि मोचनि सोचनि बेद बखानी। (गी० ६।२०)
मोचिनि–(?)–जूता सीनेवाली। उ० मोचिनि बदन सँको चिनि हीरा माँगन हो। (रा० ७)
मोच्छ–(सं० मोक्ष)–मुक्ति, मोक्ष। उ० ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना। (मा० ३।१६।१)
मोट–(दे० 'मोटरी')–१ गठरी, मोटरी, २ बोझ, ३ स्थूल, मोटा, ४ अमीर, धनी। उ० १ चोट बिनु मोट पाइ भयो न निहाल को। (क० ७।१७) ३ भूमि सयन पट मोट पुराना। (मा० २।२२४।३)
मोटरी–(तैलंग मूटारी)–गठरी, पोटली। उ० निज निज मरजाद मोटरी सी डार दी। (क० ७।१८३)
मोटा–(सं०पुष्ट)–१ दबीज, पतला का उलटा, २ मजबूत, पुष्ट, ३ अधिक। मोटी–'मोटा' का स्त्रीलिंग। उ० २ काहू देवतनि मिलि मोटी मूठि मार दी। (क०७।१८३) मोटेऊ–मोटे भी। उ०छोटे बड़े खोटे खरे मोटेऊ दूबरे। (वि०२४६)
मोती–(सं० मौक्तिक)–एक बहुमूल्य रत्न जो सीपी से निकलता है। उ० कमल दलन्हि बैठे जनु मोती। (मा० १।११३।१)
मोद–(सं०)–प्रसन्नता, हर्ष। उ० देखत बिषाद मिटै मोद करषतु हैं। (क० ६।५८)
मोदक–(सं०)–१ लड्डू, २ आनंद देनेवाला। उ० १ मोदक मरै जो ताहि माहुर न मारिए। (ह० २०) मोदकन्हि–लड्डुओं से। उ० मन मोदकन्हि कि भूख बुताई। (मा० १।२५६।१)
मोदु–दे० 'मोद'। उ० नृपहिं मोदु सुनि सचिव सुभाषा। (मा० २।२।४)
मोर (१)–(सं० मम+प्रा० केरा)–मेरा, मेरी। मोरि–मेरी, हमारी। उ० लघु मति मोरि चरित अवगाहा। (मा० १।८।३) मोरें–मेरे में, मुझमें। उ० मुनि मन हरष रूप अति मोरें। (मा० १।१३२।३) मोरे (१)–१ मेरे, अपने, २ मुझको। उ० २ सुंदर मुख मोहि दिखाउ। (कृ० १)
मोर (२) (सं० मयूर)–मयूर, एक सुंदर पक्षी। उ०१ मोर सिखा बिनु मूरिहु पलुहत गरजत मेह। (दो० ३११)
मोरा (१)–मेरा। उ० गत परिहास होइ हित मोरा। (मा० १।३।१) मोरी (१)–मेरी। उ० तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी। (मा० १।१२।२)
मोरा (२)–(सं० मयूर)–मोर, मयूर। उ० जाचक चातक दादुर मोरा। (मा० १।३४७।३)
मोरी (२)–(सं० मुरण)–मोड़कर। उ० बोली बिहँसि नयन मुँहु मोरी। (मा० २।२७।४) मोरेहु–मेरे भी। उ० मोरेहु मन अस आव। (पा०११) मोरे (२)–१ मोड़ हुए, २ मोड़ने पर।
मोल–(सं० मूल्य)–१ क़ीमत, दाम, २ क्रय, खरीद, ३ दर, भाव, ४ खरीद कर। उ० १ गज गुन मोल अहार बल। (दो० ३८०)
मोला–दे० 'मोल'। उ० ४ हास बिलास लेत मनु मोला। (मा० १।२३३।३)
मोह–(सं०)–१ अज्ञान, भ्रम, २ प्रेम, मुहब्बत, ३ माया, ४ मूर्छा, बेहोशी। उ० १ मान-मद-मदन-मत्सर-मनो रथ-मथन मोह अंभोधि-मंदर मनस्वी। (वि० ५५) ३ तुलसिदास प्रभु मोह शृंखला छुटहि तुम्हारे छोरे। (वि० ११४)
मोहइ–(सं० मोह)–मोहता है। उ० लोचन भाल बिसाल बदनु मन मोहइ। (पा०७५) मोहई–मोहित हो जाते हैं। उ० सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहिं मोहई। (मा० २।३५।छं० २) मोहहिं–१ मोहते हैं, मोहित हो जाते हैं, २ मोह को प्राप्त होते हैं। उ० २ जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे। (मा०२।१२७।४) मोहहीं–दे० मोहहिं। उ० १ बनिता पुरुष सुंदर चतुर छबि देखि मुनि मन मोहहीं। (मा० १।६४। छं० १) मोहा–दे० 'मोह'। १ अज्ञान, २ मोह लेता है। उ० २ ब्रह्म अमययदु मुनि मनु मोहा। (मा० २।१०२।४) मोहि (१)–मोहकर, अज्ञानवश होकर। मोही–मोह लिया, मोहित कर लिया। मोहे–मोहित हो गए। उ० देखत रूप सकल सुर मोहे। (मा० १।१००।३) मोहेउ–मोहित हो गए। उ० नैन नीर तनु पुलक रूप मन मोहेउ। (जा २०) मोहेहु–दे० 'मोहेउ'।
मोहन (सं०)–१ मोहनेवाला, २ कृष्ण। उ० १ सब भाँति मनोहर मोहन रूप। (क० २।१८)
मोहनिहारु–मोहनेवाला। उ० बदन सुषमा सदन सोभित मदन-मोहनिहारु। (गी० ७।८)
मोहनी–(सं०)–१ मोहनेवाली, २ विष्णु का वह स्त्री रूप जो उन्होंने अमृत बाँटते समय असुरों को छलने के लिए धारण किया था। ३ वशीकरण मंत्र। उ० १ तोतरी बोलनि बिलोकनि मोहनी मन हरनि। (गी० १।२५) ३ सिलमोहनी करि मोहनी मन हर्यो मूरति साँवरी। (जा० १६२)
मोहिं–(सं० मम)–१ मुझको, २ मुझ में ३ मेरा। उ० २ तोहि मोहि नाते अनेक मानिए जो भावे। (वि० ७१) ३ कहेउ भूप मोहिं सरिस सुकृत किए काहु न। (पा० १७)
मोहि (२)–मुझे, मुझको। उ० देहि मा ! मोहि प्रण प्रेम यह नेम निज राम घनश्याम, तुलसी पपीहा। (वि १५०)
मोहित–१ मुग्ध, २ मूर्छित, अचेत। उ०२ काम मोहित गोपिकनि पर कृपा अतुलित कीन्ह। (वि० २१४)
मोहिनी–दे० 'मोहनी'।
मोही–मुझे। दे० 'मोहिं'।
मोही–मुझे, मुझसे। उ० कहिअ सुभाइ कृपा निधि मोही। (मा० १।४६।२)
मोहु–मुझ, मुझ। उ० माई मे कहुँ कबहुँ कोउ तिन्ह कहौ कौसलराज। (वि० २११)
मोहु (१)–दे० 'मोह'। उ० १ कोहु मोहु ममता मदु त्यागी। (मा० १।३५१।३)
मोहु (२)–मुझ। दे० 'मोहिं'।

मिटाओ। उ० मेटहु कुल कलंक कोसलपति। (गी० २।७१) मेटि मिटा, मिटाकर। उ० मेटि को सकइ। (पा० ७१)
मेंढुकन्हि-(सं० मडूक) मेढकों को। उ० जौं मृगपति बध मेंढुकन्हि भल कि कहइ कोउ ताहि। (मा० ६।२३ ग)
मेंढक-(सं० मडूक)-दादुर, मेघा। उ० तेरे देखत सिंह को सिसु-मेंढक लीले। (वि० ३२)
मेंढ़ी-(सं० वेणी)-तीन लड़ियों की गुथी चोटी। उ० मेंढ़ी लटकन मनि-कनक-रचित। (गी० १।११)
मेद-(सं०)-१ वसा, चरबी, मज्जा, २ मोटी, भारी। उ० २ मेद महिमा निजगन गुन ज्ञान के निधान हो। (ह०१४)
मेदिनी-(सं०)-पृथ्वी। उ० मदि मेदिनी को मडलीक लीक लोपिहैं। (क० ६।१)
मेध-(सं०)-यज्ञ। उ० कोटिन बाजि मेध प्रभु कीन्हे। (मा० ७।२४।१)
मेधा-(सं०)-बुद्धि, धारण करनेवाली बुद्धि, समझ। उ० मेधा महि गत सो जल पावन। (मा० १।३६।४)
मेर-दे० 'मेल'।
मेरवनि-(सं० मेल)-मेल की, मिली। उ०कटि निपग परिकर मेरवनि। (गी० ३।५)
मेरियै-मेरी ही। उ० चूक चपलता मेरियै तू बड़ो बड़ाई। (वि० ३५) मेरियौ-मेरी भी। उ० पै मेरियौ टेव कुटेव महा है। (क० ७।१०१) मेरी-(सं० मया+प्रा० केरा)-मम, मदीय, हमारी। उ० जिनके भाल लिखी लिपि मेरी। मेरे-मेरे, हमारे। उ० मेरे मन मान है न हर को न हरि को। (ह० ४२)
मेरु (१)-(सं०)-१ सुमेरु पर्वत जो सोने का कहा गया है, २ पर्वत, ३ माला की बड़ी मनिया। उ० १ सकौं मेरु मूलक इव तोरी। (मा० १।२५३।२) २ घोर धकानि सों मेरु हले हैं। (क० ६।३३)
मेरु (२)-(सं० मेल)-मेल, मिलाप। उ० करत मेरु की बतकही। (गी० ७।६)
मेरू (१)-दे० 'मेरु (१)'। सुमेरु पर्वत। उ० सकइ उठाइ सुरासुर मेरू। (मा० १।२५२।४)
मेरू (२)-दे० 'मेरु (२)'।
मेरो-(सं० मया+प्रा० केरा)-हमारा, मेरा। उ० मेरो अनुचित न कहत लरिकाई बस। (गी० १।८३) मेरोइ-मेरा ही। उ० मेरोइ हिय कठोर करिबे कहँ। (गी० २।८४) मरोइ-दे० 'मेरोइ'।
मेल-(सं०) मिलने की क्रिया या भाव संयोग, भेंट।
मेलइ-(सं० मेल) मेलता है डालता है। मेलत-डालते हैं। मेलहीं-पहनते हैं, डालते हैं। उ०धरि गाल फारहिं उर बिदारहिं गल अँतावरि मेलहीं। (मा० ६।८१।छं० ७) मेला-१ डाला, २ कर लिया। उ० २ तुरत बिभीषन पाछे मेला। (मा० ६।६४।१) मेलि-डालकर। उ० मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना। (मा० ७।९९।१) मेलिहि-डालेगी। उ० मेलेहि सीय राम उर माला। (मा० १।२४५।२) मेली-१ डाल दी २ डालकर। उ० १ सुता बोलि मेली मुनि चरना। (मा० १।६६।४) मेल-डाल, गिराये। उ० पद-सरोज मेले दोउ भाइ। (मा० १।२६०।३) मेलें-(मा० मेल)-१ मेलते हैं, मिलाते हैं २ डालते हैं। उ० १ मेलैं गरे छुरा धार सों। (क० ४।११) मेलै-डाले, डाल दे। उ०नो बिलोकि रीझै कुअँरि तब मेलै जयमाल। (मा० १।१३१)
मेष-(सं०)-१ भेंड़, मेढ़, २ पहली राशि। उ० १ वृक बिलोकि जिमि मेष बरूथा। (मा० ६।७०।१) २ मेषादिक क्रम ते गनहिं। (दो० ४५६)
मेह-(सं० मेघ)-बादल, घटा। उ० राम नाम नव नेह मेह को मन हठि होहि पपीहा। (वि० ६५)
मैं-(सं०मया)-१ उत्तम पुरुष एक वचन सर्वनाम, हम, २ अहंकार। उ० १ मैं अरु मोर तोर तैं माया। (मा० ३।१५।१) २ मैं तैं मेट्यो मोहतम। (वै० ३३)
मैत्री-(सं०)-मित्रता, दोस्ती, स्नेह।
मैथिली-(सं०)-जानकी, सीता। उ० मीलव सम पावक प्रवेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली। (मा० १।१०१।छं०१)
मैथुन-(सं०) स्त्रीप्रसंग सहवास, भोगविलास। उ० भय निद्रा मैथुन अहार सब के समान जग जाए। (वि०२०१)
मैन-(सं० मदन)-१ मोम २ कामदेव, ३ प्रेम। उ० १ मैन के दसन कुलिस के मोदक। (कृ० २१) २ मुनि बप बनाए हैं मैन। (गी० २।२४) ३ ग्वालि मैन मन मोए। (कृ० ११)
मैना-(सं० मनका या मदन)-पार्वती की माता। उ० सकल सखीं गिरिजा गिरि मैना। (मा० १।६८।२)
मैनाक-(सं०)-एक पर्वत का नाम। उ० तैं मैनाक होहि श्रमहारी। (मा० ५।१।५)
मैया-(सं० मातृ)-माता, माँ। उ० सुनु मैया तेरी सौं करौं। (कृ० ८)
मैला-(सं० मलिन)-१ गंदा, मलिन, २ उदास। उ० १ पठए बालि होहिं मन मैला। (मा० ४।१।३)
मों-(सं० मध्य)-में, बीच। उ० मम मों न बस्यो जग बालक जौं। (क० १।५)
मो (१)-(सं० मम)-मैं मेरा मेरे। उ० मो पर कीबी तोहि जो करि लहि भिया रे। (वि० ३३) मोऊँ-दे० 'मोको'। उ०नाहिन नरक परत मोकहँ डर जद्यपि हौं अति हारो। (वि० ९४) मोको मुझको मेरे लिए। उ० मोको और ठौर न सुटेक एक तोरिए। (वि०१८१) मोतें-मुझसे, मेरी अपेक्षा। उ० २ को जग मंद मलिन मति मोतें। (मा० १।२८८।६)
मो (२)-(सं०मध्य)-में। उ० पर निंदक न जग मो बगरे। (मा० ७।१०२।५)
मोइ-(?)-१ भिगोई, २ मोह ली। उ० २ कहुक देखमायों मति मोई। (मा०२।८९।३) मोए-भिगोए, डुबोए। उ० सिखकी है ग्वालि मैन मन मोए। (कृ० ११)
मोक्ष-(सं०)-मुक्ति, निर्वाण, अपवर्ग। उ० मोक्ष बितरनि, बिदरनि भ्रमजाल की। (क० ७।१८२)
मोखे-(सं० मुख)-खिड़कियाँ। उ० नयन बीस मंदिर कैसे मोखे। (गी० ५।१२)
मोचक-(सं०)-छुड़ानेवाले।
मोचत (सं० मोचन)-छोड़ते हैं, बहाते हैं। उ० बारिज लोचन मोचत बारी। (मा०२।१३७।२) मोचति-छोड़ती

हैं, बहाती हैं। उ० मजु बिलोचन मोचति बारी। (मा० २।२८८।४) मोचहिं–१ छोड़ती हैं, २ दूर करती हैं। उ०१ उमा मातु सुख निरखि नयन जल मोचहिं। (पा० १२१)
मोचन–(स०)–१ छुड़ाना, छुटकारा देना, २ दूर करने वाला, छुटकारा देनेवाला। उ० २ गए कौसिक आश्रमहिं बिप्रभय मोचन। (जा० ४१) मोचनि–मोचनेवाली, छुड़ानेवाली। उ० ससि मुख कुकुम बरनि सुलोचनि मोचनि सोचनि बेद बखानी। (गी० ६।२०)
मोचिनि–(?)–जूता सीनेवाली। उ० मोचिनि बदन सँकोचिनि हीरा माँगन हो। (रा० ७)
मोच्छ–(स० मोक्ष)–मुक्ति, मोक्ष। उ० ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना। (मा० ३।१६।१)
मोट–(दे० 'मोटरी')–१ गठरी, मोटरी, २ बोझ, ३ स्थूल, मोटा, ४ अमीर, धनी। उ० १ खोट बिनु मोट पाइ भयो न निहाल को। (क० ७।१७) ३ भूमि सयन पट मोट पुराना। (मा० २।२५।३)
मोटरी–(तैलग मूटारी)–गठरी, पोटली। उ० निज निज मरजाद मोटरी सी डार दी। (क० ७।१८३)
मोटा–(स०पुष्ट)–१ दबीज, पतला का उलटा, २ मजबूत, पुष्ट, ३ अधिक। मोटी–'मोटा' का स्त्रीलिंग। उ०२ काहू देवतनि मिलि मोटी मूठि मार दी। (क०७।१८३) मोटेऊ–मोटे भी। उ०छोटे बड़े खोटे खरे मोटेऊ दूबरे। (वि०२४६)
मोती–(स० मौक्तिक)–एक बहुमूल्य रत्न जो सीपी से निकलता है। उ० कमल दलन्हि बैठे जनु मोती। (मा० १।१६६।१)
मोद–(स०)–प्रसन्नता, हर्ष। उ० देखत विषाद मिटै मोद करषतु है। (क० ६।४८)
मोदक–(स०)–१ लड्डू, २ आनंद देनेवाला। उ० १ मोदक मरै जो ताहि माहुर न मारिए। (ह० २०) मोदकन्हि–लड्डुओं से। उ० मन मोदकन्हि कि भूख बुताई। (मा० १।२४६।१)
मोदु–दे० 'मोद'। उ० नृपहि मोदु सुनि सचिव सुभाषा। (मा० २।२।४)
मोर (१)–(स० मम+प्रा० केरा)–मेरा, मेरी। मोरि–मेरी, हमारी। उ० लघु मति मोरि चरित अवगाहा। (मा० १।८।३) मोरें–मेरे में, मुझमें। उ० मुनि मन हरष रूप अति मोरें। (मा० १।१३३।३) मोरे (१)–१ मेरे, अपने, २ मुझको। उ० २ सुंदर मुख मोहि दिखाउ। (कृ० १)
मोर (२)–(स० मयूर)–मयूर एक सुंदर पक्षी। उ०१ मोर सिखा बिनु मूरिहू पलुहत गरजत मेह। (दो० ३११)
मोरा (१)–मेरा। उ० मन परिहास होइ हित मोरा। (मा० १।९।१) मोरी (१)–मेरी। उ० तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी। (मा० १।१२।२)
मोरा (२)–(स० मयूर)–मोर, मयूर। उ० जाचक चातक दादुर मोरा। (मा० १।३४७।२)
मोरी (२)–(स० मुरण)–मोड़कर। उ० बोली बिहँसि नयन मुँहु मोरी। (मा० २।२७।४) मोरहु–मेरे भी। उ० मोरेहु मन अस आव। (पा०११) मोरे (२)–१ मोड़ हुए, २ मोड़ने पर।
मोल–(स० मूल्य)–१ कीमत, दाम, २ क्रय, खरीद, ३ दर, भाव, ४ खरीद कर। उ० १ गज गुन मोल अहार बल। (दो० ३८०)
मोला–दे० 'मोल'। उ० ४ हास बिलास लेत मनु मोला। (मा० १।२३३।३)
मोह–(स०)–१ अज्ञान, भ्रम, २ प्रेम, मुहब्बत, ३ माया, ४ मूर्च्छा, बेहोशी। उ० १ मान-मद-मदन-मत्सर-मनोरथ-मथन मोह अंभोधि-मंदर मनस्वी। (वि० ५५) ३ तुलसिदास प्रभु मोह शृंखला छुटिहि तुम्हारे छोरे। (वि० ११४)
मोहइ–(स० मोह)–मोहता है। उ० लोचन भाल बिसाल बदनु मन मोहइ। (पा०७५) मोहई–मोहित हो जाते हैं। उ० सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहिं मोहई। (मा० ४।२५।छं० २) मोहहिं–१ मोहते हैं, मोहित हो जाते हैं, २ मोह को प्राप्त होते हैं। उ० २ जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे। (मा०२।११२७।४) मोहहीं–दे० मोहहिं। उ० १ बनिता पुरुष सुंदर चतुर छबि देखि मुनि मन मोहहीं। (मा० ११४। छं० १) मोहा–दे० 'मोह'। १ अज्ञान, २ मोह लेता है। उ० २ छबु अखयबटु मुनि मनु मोहा। (मा० २।१०४।४) मोहि (१)–मोहकर, अज्ञानवश होकर। मोही–मोह लिया, मोहित कर लिया। मोहे–मोहित हो गए। उ० दसरथ रूपु सकल सुर मोहे। (मा० १।१००।३) मोहेउ–मोहित हो गए। उ० नैन नीर तनु पुलक रूप मन मोहेउ। (जा २०) मोहेहु–दे० 'मोहेउ'।
मोहन (स०)–१ मोहनेवाला, २ कृष्ण। उ० १ सब भाँति मनोहर मोहन रूप। (क० २।१८)
मोहनिहारु–मोहनेवाला। उ० बदन सुषमा सदन सोभित मदन-मोहनिहारु। (गी० ७।८)
मोहनी–(स०)–१ मोहनेवाली, २ विष्णु का वह स्त्री रूप जो उन्होंने अमृत बाँटते समय असुरों को छलने के लिए धारण किया था। ३ वशीकरण मंत्र। उ० १ तोतरी बोलनि बिलोकनि मोहनी मन हरनि। (गी० १।२५) ३ सिलमोहमी करि मोहनी मन हर्यो मूरति साँवरी। (जा० १६२)
मोहि–(स० मम)–१ मुझको, २ मुझ में, ३ मेरे। उ० २ तोहि मोहि नाते अनेक मानिए जो भावै। (वि० ७६) ३ कहेउ भूप मोहि सरिस सुकृत किए काहु न। (जा० १७) मोहि (२)–मुझे, मुझको। उ० देहि मा! मोहि प्रण प्रेम यह नेम निज राम घनश्याम, तुलसी पपीहा। (वि १५०)
मोहित–१ मुग्ध, २ मूर्छित, अचेत। उ०२ काम-मोहित गोपिकनि पर कृपा अतुलित कीन्ह। (वि० २१४)
मोहिनी–दे० 'मोहनी'।
मोहीं–मुझे। दे० 'मोहि'।
मोही–मुझे, मुझसे। उ० कहिअ तुम्हाइ कृपा निधि मोही। (मा० १।४६।२)
मोहुँ–मुझे, मुझ। उ० मोहुँ से कहुँ कतहुँ कोउ तिन्ह कह्यो कोसलराज। (वि० २११)
मोहु (१)–दे० 'मोह'। उ० १ कोहु मोहु ममता मदु त्यागी। (मा० १।३५।३)
मोहु (२)–मुझे। दे० 'मोहि'।

मोहू (१)-दे० 'मोह'। उ० १ अस बिचारि, प्रगटउँ निज मोहू। (मा० ।१४६।१)
मोहू (२)-मुझ। उ० अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर। (मा० ५।७)
मौंगा-(सं० मौन)-चुप। उ० सुनि खग कहत अब मौंगी रहि समुझि प्रेम पथ न्यारो। (गी० २ ६६)
मौक्तिक-(सं०)-मुक्ता, मोती।
मौन-(सं०)-१ चुप, मूक, २ चुप्पी, मूकता। उ० १ नाहिं त मौन रहब दिनु राती। (मा० २।१६।२) मौनै-मौन में, चुप्पी में। उ० रूप प्रेम परमित न पर सकहि बिथकि रही मति मौनै। (गी० १।१०५)
मौनु-दे० 'मौन'। उ० २ हेतु अपनपउ जानि जियँ थकित रहे धरि मौनु। (मा० २।१६०)
मौर-(सं० मुकुट)-१ शिरोभूषण, मुकुट, २ विवाह के अवसर पर पहना जानेवाला सेहरा, ३ बौर, मंजरी। उ० २ कनक रतन मनि मौर लिहे मुसुकातहि हो। (रा०७)
मौलि- सं०)-चोटी, सिर। उ० स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा। (मा० ७।१०८।३)
मौसी-(सं० मातृश्वसा)-माता की बहिन। उ० मातु मौसी बहिनिहूँ तें सासु तें अधिकाइ। (गी० ७।३४)
म्लान (सं०)-दुखी, उदास, सूखा।
म्लेच्छ-(सं०)-१ वे जातियाँ जिनमें वर्णाश्रम धर्म न हो। २ मुसलमान, ३ गदा, ४ अपवित्र, ५ नीच, पापी।
म्हाको-(?) १ मेरा, २ मुझको। उ० १ मदमति कत! सुनु मत म्हाको। (क० ६।२१)

# य

य-(सं०) जिसको, जिसके।
यंता-(सं० यन्तृ)-सारथी।
यंत्र-(सं०)-१ तांत्रिकों के अनुसार कुछ विशिष्ट प्रकार से बने कोष्ठक, जंतर, २ औज़ार, मशीन, ३ बाजा, ४ ताला। उ० १ डाकिनी-शाकिनी खेचर भूचर यंत्रमंत्र भंजन प्रबल कल्मषारी। (वि० ११)
यंत्रणा-(सं०)-१ क्लेश, दुःख, २ दंड, यातना।
यंत्रिका-(सं०)-छोटा ताला।
यंत्रित-(सं०)-१ कैद, बद्ध, बंद, २ नियमित, ३ ताला लगा हुआ, ताले में बंद। उ० ३ जयति निरुपाधि, भक्ति भाव यंत्रित-हृदय, बंधुहित चित्रकूटाद्रिचारी। (वि० ३९)
यंत्री-(सं० यन्त्रिन्)-चाँदी-सोने का तार खींचने का यंत्र। दे० 'जंत्री'।
य -(सं०) जो।
यक्ष-(सं०)-१ एक देवयोनि। ये लोग कुबेर के सेवक तथा उनकी निधियों के रक्षक माने जाते हैं। २ कुबेर। उ० १ यक्ष गंधर्व मुनि किन्नरोरग दनुज मनुज मज्जहिं सुकृत पुंज जुत कामिनी। (वि० १८)
यक्षराज-(सं०)-यक्षों के स्वामी कुबेर।
यक्ष्मा-(सं० यक्ष्मन्)-क्षय नामक रोग तपेदिक।
यगण-(सं०)-छंद शास्त्र में आठ गणों में एक जो एक लघु और दो गुरु मात्राओं का होता है।
यगन-दे० 'यगण'। उ० तिनहिं यगन कैसे लहइ परे सगन के बीच। (स० २८१)
यच्छेस-(सं० यक्षेश)-यक्षों के राजा कुबेर। उ० तीरथपति अंकुर-सरूप, यच्छेस रच्छ तेहि। (क० ७।११५)
यजन-(सं०)-१ यज्ञ करना, २ पूजा, ३ बलिदान।
यजमान-(सं०)-यज्ञकर्ता, यष्टा।
यजु -दे० 'यजुर्वेद'।
यजुर-दे० 'यजुर्वेद'।
यजुर्वेद-(सं०)-चार प्रसिद्ध वेदों में एक जिसमें यज्ञकर्म आदि का वर्णन है।
यज्ञ-(सं०)-एक धार्मिक कृत्य जिसमें हवन बलिदान आदि होता है। यजन, अध्वर, क्रतु। यज्ञ कई प्रकार के होते हैं, जिनमें पंचमहायज्ञ, राजसूय यज्ञ, देवयज्ञ, नरमेध यज्ञ, अश्वमेघ यज्ञ तथा गोमेघ यज्ञ आदि प्रधान हैं। उ०साप बस-मुनि बधू मुक्तकृत,विप्र हित-यज्ञ रच्छन-दच्छ पच्छकर्ता। (वि० ५०)
यज्ञपुरुष-(सं०) विष्णु, नारायण।
यज्ञेश-(सं०)-विष्णु नारायण।
यज्ञोपवीत-(सं०)-१ जनेऊ, यज्ञसूत्र, २ एक संस्कार जो द्विजातियों में प्रचलित है। अध्ययन आरम्भ करने के पूर्व यह होता है, इसी समय बालक सर्वप्रथम जनेऊ पहनता है। उ० १ यज्ञोपवीत बिचित्र हेम मय, मुक्तामाल उरसि मोहिं भाई। (गी० १।१०६)
यतत-(सं०यत) यत्न करते हैं।
यतन-(सं० यत्न)-प्रयास, यत्न, कोशिश।
यति-(सं०)-सन्यासी, त्यागी, योगी।
यती-दे० 'यति'।
यत्-(सं०)-१ जितना, २ जहाँ तक, ३ जो, ४ जिसका, ५ जिससे। उ० ३ धर्म-वर्मासि धनु-बाण-तूणीरधर, सत्रु संकट-समन यत्प्रनामी। (वि० ४०) ४ यत्पाद प्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां। (मा० १।१। श्लो० ६)
यत्न-(सं०)-१ उपाय, जतन, तदबीर, २ चिकित्सा, इलाज।
यत्र-(सं०)-जहाँ, जिस जगह। उ० यत्र तिष्ठति तत्रैव अज शर्व हरि सहित गच्छति क्षीराब्धिवासी। (वि० ५७)
यथा-(सं०)-जिस प्रकार, जैसे, ज्यों। उ० पारिजात चक्र कौमोदकी जलज दर सरसि जो परि यथा राजहंसम्। (वि० ६१) यथाअर्थ-यथार्थ, ठीक, सत्य। उ० श्री मुख

पट दीन्हें रहे, यथारथ भापत। (वै० ११) यथाथिति-(स० यथा + स्थिति)-१ जैसी स्थिति, यथार्थ, सत्य, २ जैसे का तैसा, पूर्ववत। यथामति-अपनी बुद्धि के अनुसार। उ० सिय-रघुबीर बियाहु यथामति गावौं। (जा० २) यथायोग्य-जैसा उचित हो, यथोचित। यथाजोग-दे० 'यथायोग्य'। उ० यथाजोग जेहि भाग बनाई। (मा० १।१८१।४) यथाविधि-विधिपूर्वक, विधि से।

यथारथ-(स० यथार्थ)-तत्वत, जैसा होना चाहिए, ठीक।

यथार्थ-(स०)-१ ठीक, वाजिब, उचित, २ ज्यों का त्यों, जैसा का तैसा।

यथेष्ट-(स०)-१ इच्छानुसार, यथेच्छ, २ प्रचुर, पर्याप्त, अधिक।

यथोचित-(स०यथा + उचित)जैसा उचित हो, जैसा चाहिए।

यदपि-दे० 'यद्यपि'।

यदा-(स०)-जब, जिस समय।

यदि-(स०)-अगर, जो।

यदुपति-(स०)-१ श्रीकृष्ण, २ राजा ययाति।

यद्यपि-(स०)-अगरचे, हालाँ कि।

यम-(स०)-१.प्रसिद्ध देवता जो मृत्यु तथा न्याय या धर्म के अधिष्ठाता कहे गए हैं और यमराज, तथा धर्मराज आदि नामों से पुकारे जाते हैं। २ इंद्रियादि को रोकना, निग्रह, संयम, ३ जोड़ा। उ० १ प्रबल-चंद्रार्क-वरुणाग्नि-वसु मरुत यम। (वि० १०) २ नियम यम सकल सुरलोक-लोकेस। (वि० ४८)

यमदग्नि-(स०)-एक ऋषि जो परशुराम के पिता थे।

यमदूत-(स०)-यमराज के गण जो पापियों को यमलोक या नरक में ले जाते हैं और वहाँ तरह-तरह की यातना देते हैं।

यमधार-(स०)-ऐसी तलवार जिसके दोनों ओर धार हो।

यमधारि-(स०)-यमराज की सेना।

यमन (१)-(स०)-संयम, बाँधना, रोकना।

यमन (२)-(स० यवन)-१ एक राग, २ म्लेच्छ, मुसलमान। कुछ लोगों का मत है कि यवन मूलतः यूनानियों का नाम था पर यथार्थत यवन मुसलमानों और यूनानियों दोनों ही से भिन्न जाति का नाम था। मध्य युग में इस शब्द का प्रयोग मुसलमानों के लिए हुआ है। उ० २ गाँव गँवार नृपाल महि, यमन महा-महिपाल। (दो० ४४१)

यमपुर-(स०)-यमराज के रहने का स्थान, यमलोक।

यमनगर-दे० 'यमपुर'।

यमभट-दे० 'यमदूत'।

यमराज-(स०)-यम। दे० 'यम'।

यमल-(स०)-१ युग्म, जोड़ा, २ साथ उत्पन्न होनेवाली संतान या कोई वस्तु, यमज।

यमलार्जुन-(स०)-गोकुल के दो अर्जुन वृक्ष जो पुराणों के अनुसार कुबेर के पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव थे और नारद के शाप से जड़ हो गए थे। कृष्ण ने बालक्रीड़ा में इन्हें उखाड़कर इनका उद्धार किया।

यमुना-(स०)-एक प्रसिद्ध नदी जो ब्रज में से होकर बहती है। इसका पानी नीला है। यमुना सूर्य की पुत्री और यमराज की बहिन है। यमराज के वरदान से जो यमुना की शरण में जाता है उसे यमदूत दंड नहीं देते, अर्थात् वह मुक्त हो जाता है।

यम्-दे० 'य'। उ० यमाश्रि तो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते। (मा० १।१। श्लो० ३)

ययाति-(स०)-राजा नहुष के छः पुत्रों में एक। ययाति शुक्र के शाप से वृद्ध हो गए तो इनके छोटे पुत्र पुरु ने अपनी जवानी देकर इन्हें पुन युवा बनाया था।

यव-(स०)-जौ नाम का अन्न।

यवन-(स०)-१ मुसलमान, २ यूनानी। दे० 'यमन'। उ० १ स्वपच खल भिल्ल यवनादि हरि लोक-गत नाम बल विपुल मति मलिन-परसी। (वि० ४६)

यवास-(स०)-जवास नाम का कँटीदार पौदा।

यश-(स०)-१ कीर्ति, नेकनामी, २ बड़ाई, प्रशंसा, महिमा।

यशस्वी-(स०यशस्विन्)-जिसका यश खूब फैला हो, कीर्तिमान, नामवर, यशी।

यशुमति-दे० 'यशोदा'।

यष्टी-(स० यष्टि)-लाठी, लकड़ा, छड़ी, सोटा। उ० परम दुर्घट पथ, खल असंगत साथ, नाथ नहिं हाथ वर बिरति यष्टी। (वि० ६०)

यस्य-(स०)-जिसका जिस किसी का। उ० यस्य गुण गण गनति विमल मति शारदा निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी। (वि० ११)

यह-(सं० एष)-निकट की वस्तु का निर्देश करनेवाला एक सर्वनाम जिसका प्रयोग वक्ता और श्रोता को छोड़कर और सब मनुष्यों, जीवों तथा पदार्थों के लिए होता है। उ० ताकी पैज पूजि आई यह रेखा कुलिस पषान की। (वि० ३०) यहउ-यह भी। उ० यहउ कहत भल कहिहि न कोऊ। (मा० २।२०७।१) यहु-यह, यह भी, इस। उ० मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजे। (मा० २।३।१) यहै-यही, यह ही। उ०तुलसी यहै भांति सहिदानी। (वै०२१)

यहाँ-(स० इह)-इस जगह, इस स्थान पर। यहँ-यहीं इसी स्थान पर। उ० राम लषन मेरी यहँ भेंट, बलि जाउँ जहाँ मोहिं मिलि लीजै। (गी० २।१२)

याहि-(स० इह)-यह, इस। उ० तुलसिदास भवत्रास मिटै तब जब मति यहि सरूप अटकै। (वि० ६३)

याँचा-(स० याचन)-माँगा।

या (१)-(फा०)-अथवा, या।

या (२)-(सं० इह)-यह, इस। उ० या ब्रज में लरिका घने, हौं ही अन्याई। (कृ० ८) याकी-इसकी। उ० सुनु मैया! तेरी सौं करौं याकी टेव लरन की, सकुच बेंचि सी खाइ। (कृ० ८) याके-इसके। उ० सोचैं सब याके अघ कैसे प्रभु छमिहैं। (क० ७।७१) याको-इसको। यातें-इससे। उ०यातें सबै सुधि भूलि गई। (क०१।१७) यामहिं (१)-(स० इह) इसमें। उ० मेरे कहौं थाकु गोरस, को नवनिधि मंदिर यामहिं। (कृ० ४ याहि-१ इसको, इसे २ इसी। उ० १ याहि कहा मैया मुँह लावति। (कृ० १२) याही-दे० 'याहि'। उ० २ सब परिवार मेरो याही लागि, राजाजू। (क० २।८)

याग-(सं०)-यज्ञ, हवन।
याचक-(स)-माँगनेवाला, भिखारी।
याचकता-(सं०)-भिखारीपन।
याचत-(सं० याचन)-माँगता है। याचन-माँगना, पाने के लिए प्रार्थना करना। याचने-माँगने, जाचना करने। याचहिं-माँगते हैं।
याचना-दे० 'याचन'।
यातना-(सं०)-कष्ट, तकलीफ, पीड़ा।
याता-(सं० यातृ)-चलनेवाला, गमन करनेवाला।
यातुधान-(सं०)-राक्षस, निशिचर। यातुधानी-राक्षसी, 'यातुधान' का स्त्रीलिंग। उ० अमित बल परम दुर्जय निसाचर निकर सहित षड्वर्ग गो-यातुधानी। (वि० ४८)
यात्रा-(सं०)-सफर, जाना।
यादव-(सं०)-राजा यदु के वंशज, अहीर।
यादवराय-(सं० यादव+राजन्)-यदुवंशियों के स्वामी, श्रीकृष्ण।
यान-(सं०)-१ गाड़ी, रथ, वाहन, विमान, २ शत्रु पर चढ़ाई करना।
यापन-(सं०)-१ चलाना,निवाह,२ कालक्षेप,समय बिताना।
याप्य-(सं०)-निंदनीय, बुरा, अधम।
याभ्यां-(सं०) जिन दोनों को, जिनके। उ० याभ्यां विना न पश्यन्ति। (मा० १।१।श्लो० २)
याम (१)-(सं०)-१ तीन घंटे का समय, पहर, जाम, २ समय, काल, ३ एक प्रकार के देवता।
याम (२)-(?)-संयम, परहेज।
यामहिं (२)-(?)-दिन को।
यामिक-(सं०)-पहरू, पहरेदार।
यामिनी-(सं०)-रात, निशा।
यावक-(सं०)-महावर, लाल रंग।
यावत्-दे०'यावद्'। यावद्-(सं०) जब तक, जहाँ तक। उ० न यावद् उमानाथ पादारविंदं। (मा० ७।१०८।७) यावज्जीवन-आजीवन, जीवन भर।
युक्त-(सं०)-१ एक साथ किया हुआ, जुड़ा हुआ, साथ, २ उचित, ठीक, वाजिब। उ० १ मिलित जलपात्र अज युक्त हरिचरन रज। (वि० १८)
युक्ति-(सं०)-१ उपाय, ढंग, २ योग, मिलन, ३ कौशल, चातुरी, ४ एक अलंकार।
युग-(सं०)-१ जोड़ा, युग्म, २ समय, काल, ३ सतयुग, त्रेता, द्वापर आदि चार युग, ४ योग, विधान, विधि।
युगम-दे० 'युग्म'।
युगल-(सं०)-युग्म, जोड़ा, दो, दोनों। उ० युगल पद पद्म सुख सद्म पद्मालयं। (वि० ४१)
युग्म-(सं०)-जोड़ा, दो, युग।
युत-(सं०)-युक्त को, सहित का। उ० पायोनाराच चाप कपि निकर युत बंधुना सेव्यमानं। (मा० ७।१।श्लो० १)
युत-(सं०)-मिला हुआ, युक्त, सहित। उ० तुलसी या संसार में सो विचार युत संत। (वै० ११)
युद्ध-(सं०) लड़ाई, संग्राम, रण।
युधिष्ठिर-(सं०)-पाँच पांडवों में सबसे बड़े। ये बड़े सत्यवादी और धर्मपरायण थे।
युवक-(सं०)-तरुण, जवान, युवा।
युवति-(सं०)-तरुणी, नवयौवना, युवती। उ० श्याम धारा भक्ती प्रथम रेखा प्रकट, शुद्ध-मति-युवति-पतप्रेम पागी। (वि० ३६)
युवती-दे० 'युवति'।
युवराज-(सं०)-राजकुमार, राजा का वह लड़का जो राज्य का उत्तराधिकारी हो।
युवा-(सं० युवन्)-जवान, तरुण।
यूथ-(सं०)-१ झुंड, गरोह, दल, २ तिर्यक योनिवाले जीवों का समुदाय। उ० १ साकिनी-डाकिनी-पूतना प्रेत बैताल भूत प्रमथ जूथ जंता। (वि० २६)
यूथप-(सं०)-सेनापति, दलपति।
यूथा-दे० 'यूथ'।
यूहा-(सं० यूथ)-झुंड, समूह।
ये (१)-(सं०)-जो, जो लोग। उ० पश्यंति ये सव इदं। (मा० ३।४।छं० १२)
ये (२)-यह का बहुवचन, ये लोग। दे० 'यह'। उ० ऐसो मनोहर मूरति ये। (क० २।२०)
येतु-(?)-१ जो, २ किंतु परंतु। उ० १ येतु भवदंघ्रि पल्लव-समाश्रित सदा भक्तिरत विगत संसय मुरारी। (वि० ४७)
येन-(सं०)-१ जिस को, २ जिससे। उ०१ येन श्रीराम नामामृत पानकृतमनिशमनवद्यमवलोक्य काल। (वि० ४६) येनकेन-जिस किसी, किसी भी। उ० येनकेन विधि दीन्हें ही दान करै कल्यान। (दो० २६१)
येह-यही। येहि-इसको, इस। येहु-ये भी। उ० आली अवलोकि लेहु, नयननि के फलु येहु। (गी० १।२०)
यों-(सं०इत्थं)१ इस प्रकार, ऐसे,२ सहज ही, आसानी से,३ निष्प्रयोजन, बे मतलब। उ० १ यों सुधारि सनमानि जन किय साधु सिरमौर। (मा० २।२६६) १ मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो। (क० ६।२४)
योग-(सं०)-१ कुछ विशेष अवसर, २ उपाय, युक्ति, तदबीर, ३ समाधि, ४ मेल, संयोग मिलन, ५ संबंध, लगाव, ६ कवच, बख्तर ७ चित्त की वृत्तियों को रोकने का उपाय, ८ धोखा, छल, ९ प्रयोग, १० औषधि, ११ वैराग्य, १२ तपस्या, १३ अवसर, सुभीता, १४ एक शास्त्र जिसके प्रतिपादक पतंजलि कहे जाते हैं।
योगक्षेम-(सं०)-अप्राप्य की प्राप्ति और प्राप्त की रक्षा करना।
योगिनी-(सं०)-१ रण पिशाचिनी, २ योगाभ्यासिनी, तपस्विनी, ३ भूतिनी, ४ नारायणी, गौरी, शाकंभरी, भीमा चामुंडा तथा पार्वती आदि ६४ योगिनियाँ, ५ ब्रह्मपुत्री, चंद्रघंटा तथा चंडिका आदि ८ देवियाँ, ६ देवी, योगमाया।
योगींद्र-(सं०)-१ योगियों के स्वामी, योगेश्वर, बड़ा योगी, २ ईश्वर, परमात्मा, ३ शिव, महादेव।
योगी-(सं० योगिन्)-योगसाधक, तपस्वी, योगाभ्यासी।
योगीश-(सं० योगीश)-१ बड़ा योगी, २ ईश्वर, परमात्मा, ३ शिव।

योगू (१)–(सं० योग्य)–योग्य, लायक।
योगू (२)–(सं० योग)–दे० 'योग'।
योग्य–(सं०)–१ काबिल, लायक, २ श्रेष्ठ, अच्छा, ३ प्रवीण, चतुर।
योग्यता–(सं०)–१ काबिलियत, लायकियत, २ श्रेष्ठता, अच्छाई, ३ चतुराई, प्रवीणता।
योजन–(सं०)–दूरी की एक नाप जो किसी मत से दो कोस की, किसी मत से चार कोस की तथा किसी मत से आठ कोस की होती है।
योजना–(सं०)–१ व्यवस्था, आयोजन, विन्यास, २ जोड़, मेल, मिलाप।
योद्धा–(सं०)–वीर, शूर, बहादुर, लड़ाका।
योधन–(सं०)–युद्ध, लड़ाई, संग्राम।
योनि–(सं०)–१ स्त्रियों की जननेंद्रिय, भग, २ स्थान, ३ कारण, हेतु, ४ प्राणियों के विभाग, वर्ग या जाति। योनियाँ ८४ लाख कही गई हैं।
योवन–दे० 'यौवन'।
योषा–(सं०)–नारी, स्त्री।
योषित–दे० 'योषिता'।
योषिता–(सं० योषित्)–स्त्री, नारी।
यौं–(सं० इत्थं)–इस प्रकार, ऐसे।
यौतुक–(सं०)–वह धन जो ब्याह में कन्या पक्ष से वर पक्ष को मिले। दहेज, दायज।
यौवन–(सं०)–जवानी, तरुणाई।

# र

रँए–दे० 'रए'। उ० ते धन्य तुलसीदास आस विहाइ जे हरि रँग रँए। (मा० ३।४६।छं० १)
रंक–(सं०)–१ धनहीन, ग़रीब, २ कृपण, कंजूस। उ० १ ऊँचे, नीचे, बीच के, धनिक रंक राजा राय। (क० ७।१७५) रंकतर–अत्यंत दरिद्र। उ० कबहुँ दीन मतिहीन रंकतर, कबहुँ भूप अभिमानी। (वि० ८१) रंकन–'रंक' का बहुवचन, ग़रीब लोग। उ० तिन रंकन को नाक सँवारत। रंक निवाज–(सं० रंक+फ़ा० निवाज़)–ग़रीबों पर कृपा रखनेवाला, दीनों का रक्षक। उ० रंक निवाज रंक राजा किये, गये गरब गरि गरि गनी। (गी० ५।३६) रंकन्ह–ग़रीबों ने। उ० लहि जनु रंकन्ह सुरमनि ढेरी। (मा० २।११५।३) रंकन्हि–दे० 'रंकन्ह'। रंकहि–रंक को ग़रीब को। उ० कहु केहि रंकहि करौं नरेसू। (मा० २।२६।१)
रंका–दे० 'रंक'। उ० १ मानहुँ पारसु पायउ रंका। (मा० २।२३८।२)
रंकु–दे० 'रंक'। उ० १ सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ। (मा० २।९२)
रंग–(सं०)–१ वह पदार्थ जिसका व्यवहार रँगने के लिए होता है, २ बदन और चेहरे की रंगत, ३ तमाशा, ४ मौज, विलास, आनंद, ५ हर्ष, प्रसन्नता, ६ वह स्थान जहाँ नृत्य संगीत या अभिनय आदि हो, ७ रणक्षेत्र ८. राँगा, ९ वर्ण। उ० १ भूषन प्रसून बहु विविध रंग। (वि० १४) ४ मगन पतित पाखंड पापरत, अपने अपने रंग रए हैं। (वि० १३)
रंगभूमि–(सं०)–१ वह स्थान जहाँ कोई जलसा हो, २ युद्धस्थल, ३ नाट्यशाला, ४ अखाड़ा। उ० १ रंगभूमि पुर कौतुक एक निहारहि। (जा० १३)
रँगमगे–(सं० रंग+मग्न)–रंग में मग्न हुए, रँगे हुए। उ० सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रँगमगे सृंगनि। (गी० २।५०)
रँगा–दे० 'रंग'। उ० १ कुसुमित विविध विटप बहुरंगा। (मा० १।१२६।१)
रँगीले–१ रँगे हुए, रंगवाले, २ रसिया, रसीले, रसिक। उ० १ तिहूँ काल तिनको भलो जे राम रँगीले। (वि० ३२)
रँगौ–रँग ले, रँगे। उ० चरन चोंच लोचन रँगौ, चलौ मराली चाल। (दो० २३३)
रंच–(सं० न्यंच, प्रा० णंच)–अल्प, थोड़ा। उ० रिपु रिन रंच न राखब काऊ। (मा० २।२२९।१) रंचौ–बिलकुल, थोड़ी भी, जरा भी। उ० बिरचे बिरंचि बनाइ बाँची, रुचिरता रंचौ नहीं। (जा० ३६)
रंचक–थोड़ा, कुछ। उ० सग लिए बिधु बैनी बधू रति को जेहि रंचक रूप दियो है। (क० २।१६)
रंजन–दे० 'रंजन'। उ० १ मुनींद्र संत रंजन। (मा० ३।४।छं० ४) रंजन–(सं०)–१ प्रसन्न करनेवाला, २ प्रसन्न करने की क्रिया, ३ सुन्दर। उ० १ जनरंजन भंजन सोक भय। (मा० ६।१११।छं० ३) रंजनि–प्रसन्न करनेवाली। उ० बुध बिश्राम सकल जन रंजनि। (मा० १।३१।३)
रंजित–(सं०)–१ जिस पर रंग चढ़ा या लगा हो, रँगा हुआ, २ प्रसन्न, ३ अनुरक्त, प्रेम में पड़ा हुआ। उ० १ तुलसी मन रंजन रंजित अंजन नयन सुखंजन जातक से। (क० १।१)
रंतिदेव–(सं०)–एक पौराणिक राजा जो अपने दान के लिए प्रसिद्ध हैं।
रंध्र–(सं०)–छेद सूराख़। उ० भरत रंध्र अहिगन समाना। (मा० १।११३।१)
रंभा–(सं०)–१ पुराणों के अनुसार एक वेश्या, २ केला। उ० १ रंभादिक सुरनारि नवीना। (मा० १।१२६।२)
रइनि–(सं० रजनी)–रात, निशा।
रई (१)–(सं० रय) दही आदि मथने की मथानी।
रई (२)–(सं० रज)–भूसी, गेहूँ की भूसी।

रँई (३)-(स० रंग)-रँगी, रँगी हुई। उ० प्रजा पतित पाखंड पापरत, अपने अपने रंग रँई है। (वि० १३९) रए-(स०रंग)-रँग गए। उ०सकल लोक एक रंग रए। (गी० १।३)

रई (४)-(स० रंजित)-आनंदित, प्रसन्न।

रउरें-अपने हृदय में, आप में। उ० राम मातु मत,जानब रउरें। (मा० २।१८।१) रउरे-(स०राजपुत्र)-१ आप, २ आपका, आपके। उ०२ रउरे अंग जोगु जग को है। (मा० २।२८४।३) रउरेहि-आपको। उ० भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा। (मा० २।१६।१)

रकतबीज-(स० रक्तबीज)-दे० 'रक्तबीज'। उ० रकत बीज जिमि बाढ़त जाहीं। (वि० १२८)

रक्त-(स०)-१ रुधिर, खून, २ कुंकुम, केसर, ३ लाल, अरुण।

रक्तबीज-दे० 'रतकबीज'। एक दैत्य का नाम जिसके परा क्रम का पार नहीं था। युद्ध में इसके शरीर से रक्त की जितनी बूँदें बनती थीं, उतने ही योद्धा तैयार होते थे। काली ने इसका संहार किया।

रक्षक-(स०)-रक्षा करनेवाला, पालक।

रक्षण-(स०)-बचाव, रखवाली।

रक्षा-दे० 'रक्षण'।

रक्षित-(स०)-रखा हुआ, बचाया हुआ, रक्षा किया हुआ।

रख-(स० रक्षण, प्रा० रक्खण)-रखो, रखलो। रखि-१ रक्षा करके,२ रखकर। रखिअहिं-१ रखिए, रखवें, २ रखेंगे। उ०१ रखिअहिं लखनु भरतु गवनहिं बन। (मा० २।२८७।१) रखिहउँ-रखूँगा, रक्षा करूँगा। रखिहहिं-रखेंगे, रक्षा करेंगे।

रखवार-रक्षक, रखवाला। उ० होनिहार का करतार को रखवार जग खरभरु परा। (मा० १।८४।छं०१)

रखवारा-रक्षक, बचानेवाला। उ० तिन्ह कें कोप न कोउ रखवारा। (मा० १।१६४।२) रखवारे-रक्षा करनेवाले। उ० तेहि एहि ताल चतुर रखवारे। (मा० १।३८।१)

रखवारी-१ रखवाली, रक्षा करना, २ रक्षा। उ० १ दुखि नयन कृत रखवारी। (मा० १।२२।३) २ अबला अनघ अनवसर अनुचित होति, हेरि करिहै रखवारी। (कृ० ६०)

रखवारो-रक्षक, रखवाला। उ० तुलसी सबको सीस पर रखवारो रघुराउ। (दो० २२४)

रगरि-(स घर्षण)-हठ, घपण, टेक। उ० जन्म कोटि लगि रगर हमारी। (मा० १।८१।३)

रघु-(स०)-राजा दिलीप के पुत्र। राम का जन्म इन्हीं के वंश में हुआ था और इन्हीं के नाम पर राम को राघव, रघुनाथ, रघुनंदन तथा रघुराई आदि नामों से पुकारा जाता है। रघु के नाम के आधार पर तुलसी द्वारा प्रयुक्त राम के अन्य नाम रघुकुल-कमल-रविहरि,रघुकुल-मनि, रघुकुल दीप, रघुवंसमनि, रघुकुलतिलक, तथा रघुकुल कैरवचंद आदि हैं। उ० आइ दीख रघुवंसमनि नरपति निपट कुसाजु। (मा० २।३९)

रघुकुल-(स०) महाराजा रघु का कुल जिसमें राम पैदा हुए थे। उ० रघुकुलकुमुद सुखद चारु चंद। (गी०१।२८) रघुकुलदीप-रामचंद्र। रघुकुलदीपहि-रघुकुल के दीप को, रामचंद्र को। उ० रघुकुलदीपहि चलेउ लेवाई। (मा० २।३३।४)

रघुनंद-(स०)-रामचंद्र। दे० 'रघु'।

रघुनंदन-दे० 'रघुनंद'। उ० तिन्ह कें मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ। (मा० २।१२९) रघुनंदनस्य-राम का। उ० मुखांबुज श्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मंजुल मंगलप्रदा। (मा० २।१। श्लो० २)

रघुनंदनु-दे० 'रघुनंदन'।

रघुनंदू-दे० 'रघुनंद'। उ० बोले उचित बचन रघुनंदू। (मा० २।२९३।२)

रघुनाथ-(स०)-राम। उ० जानकीनाथ रघुनाथ रागादि तम-तरणि, तारुण्यतनु तेजधाम। (वि० ५१) रघुनाथहिं-राम को। उ० तुलसी अजहुँ सुमिरि रघुनाथहिं तरो गयंद जाके एकै नायँ। (वि० ८३)

रघुनाथा-दे० 'रघुनाथ'। उ० गुर आगमनु सुनत रघुनाथा। (मा० २।९।१)

रघुनाथु-दे० 'रघुनाथ'।

रघुनायक-रघुनायक को, राम को। रघुनायक-राम। उ० बहुत बधु सिय सह रघुनायक। (मा० २।१२८।४) रघुनायकहि-राम को। उ० बार बार रघुनायकहि सुरति कराएहु मोरि। (मा० ७।११क)

रघुपति-(स०)-राम। उ०बंदौ रघुपति करुनानिधान। (वि० ६४) रघुपतिहिं-१ राम को, रघुपति का, २ राम का। रघुपतिहि-१ रघुनाथ को, राम को, २ राम का। उ० १ तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे। (मा० २।१६१।१) रघुपतिही-दे० 'रघुपतिहिं'। रघुपतिहु-१ राम का २ राम को भी। उ० १ छुअत टूट रघुपतिहु न दोसू। (मा० १।२७२।२) रघुपते-हे राम। उ० नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा। (मा० ५।१। श्लो० २)

रघुपुंगव (स०)-राम। उ० भक्तिप्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे कामादिदोष रहितं कुरु मानसं च। (मा०५।१। श्लो० २)

रघुवंशनाथम्-रघुवंश के नाथ राम को। उ० नमामि रामं रघुवंशनाथम्। (मा० ५।१। श्लो० ३)

रघुबंस-(स० रघुवंश)-रघु का वंश या कुल। उ० रघुबंस कुमुद सुखप्रद निसेस। (वि० ६४) रघुबंसभूषन-(स० रघुवंश+भूषण)-राम। उ० पाहि रघुबंसभूषन कृपा कर कठिन काल विकराल-कलि-त्रासत्रस्तम्। (वि० ५१) रघुबंसमनि-(स० रघुवंशमणि)-राम। उ० मुनि बिनय सानु प्रबोधि तरु रघुबंसमनि पितु पहिं गए। (जा० १८३)

रघुबंसराय-(स० रघुवंशराज)-राम। उ० सुन न पुलकि तनु, कहे न मुदित मन, किए जे चरित रघुबंसराय। (वि० ८३)

रघुबर-(स० रघु + वर)-राम। उ० रघुबर सब उर अंतर जामी। (मा० १।११४।१) रघुबरहिं-१ राम को, २ राम की। रघुबरहि-राम की। उ० मुनि मनहिं मान बचन मुनि रघुनंदि प्रसन्न। (मा०२।४) रघुबरी-ये दोनों

रघुवर, राम और लक्ष्मण। उ० माया मानुष रूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ। (मा० ४।१।श्लो० १)

रघुबीरं-रघुबीर को। रघुबीर-(सं० रघुवीर)-राम। उ० रघुबीर जस मुकुता बिपुल सब भुवन पटु पेखक भरे। (जा० १७) रघुबीरहि-राम को, रघुबीर को। उ० लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि। (मा० १।२४८) रघुबीरही-दे० 'रघुबीरहि'। रघुबीरै-रघुबीर को, राम को। उ० हृदय घाउ मेरे, पीर रघुबीरै। (गी० ६।१५)

रघुबीरा-दे० 'रघुबीर'। उ० नृपहि प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा। (मा० २।७३।२)

रघुबीरु-दे० 'रघुबीर'।

रघुबीरू-दे० 'रघुबीर'। उ० जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरू। (मा० २।१४४।३)

रघुराई-(सं० रघुराज)-राम। उ० दीनबंधु सुखसिंधु कृपा कर, कारुनीक रघुराई। (वि० ८१)

रघुराउ-राम। उ० प्रेम प्रपंचु कि झूठ-फुर जानहिं मुनि रघुराउ। (मा० २।२६१)

रघुराऊ-दे० 'रघुराउ'। उ० बिसमय हरष रहित रघुराऊ। (मा० २।१२।२)

रघुराज-(सं०)-१ राम, २, दशरथ, ३ राम का राज्य। उ० २ रघुराज-साज सराहि लोचन-लाहु लेत अघाइ के। (गी० १।५)

रघुराजु-दे० 'रघुराज'।

रघुराजू-दे० 'रघुराज'। उ० सरल सबल साहिब रघुराजू। (मा० १।१३।४)

रघुराया-(सं० रघुराज)-राम, रघुराज। उ० तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया। (मा० २।१३०।१)

रघुरैया-रघुकुल के राजा। उ० मोद-कंद-कुल-कुमुद-चंद्र मेरे रामचंद्र रघुरैया। (गी० १।१७)

रचइ-(सं० रचना)-रचता है। उ० मिलइ रचइ परपंचु बिधाता। (मा० २।२३२।२) रचत-रचते हैं, रचता है। उ० हरष न रचत, बिषाद न बिगरत, डगरि चले हँसि खेलि। (कृ० २६) रचहिं-रचते हैं, तैयार करते हैं। रचहु-रचो, तैयार करो। उ० रचहु बिचित्र बितान बनाई। (मा० १।२८७।३) रचा-रचना की, बनाया। उ० यह सँजोग बिधि रचा बिचारी। (मा० ३।१७।४) रचि-१ निर्माणकर, बना कर, २ रचे हैं, बनाए हैं, ३ सजाकर। उ० २ कंकन चारु बिबिध भूषन बिधि रचि निज कर मन लाई। (वि० ६२) रचिबे-रचने, रचना करने। उ० रचिये को बिधि जैसे पालिबे को हरिहर। (ह० ११) रची-निर्माण की, बनायी। उ० कहत पुरान रची केसव निज,कर-करतूति-कला सी। (वि०२२) रचु-१ सजा कर, २ सज्जित कर दे। उ० २ आनि काठ रचु चिता बनाई। (मा० २।१२।२) रचे-रचा, सजाया, सज्जित किया। रचेउ-रचा, बनाया। उ० इहाँ हिमाचल रचेउ बितामा। (मा० १।६४।१) रचेन्हि-१ रचा बनाया, किया, २ रचना चाहिए। उ० १ जेहि रिपुछय सोइ रचेन्हि उपाऊ। (मा० १।१७०।४) रचेसि-रचा, किया। उ० मरमु रानि मन रचेसि उपाई। (मा० १।८१।३) रचै-१ रचना करे, बनाये, २ रचता है, बनाता है, ३ रचा दिए हैं। उ० २ उर बसि प्रपंच रचै पंचबान। (वि० १४) रच्यो-रचना की, बनाया। उ० सुभ दिन रच्यो स्वयंबर मंगल दायक। (जा० ३)

रचना-(सं०)-१ बनावट, निर्माण, २ संसार की उत्पत्ति, जगत का निर्माण ३ पैदा की हुई चीज़, ४ सजावट, ५ ग्रंथ लिखना। उ० २ देखत तव रचना बिचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए। (वि० १११)

रचित-(सं०)-निर्माण किया हुआ, बनाया हुआ। उ०वपुष ब्रह्मांड सो, प्रवृत्ति-लंका दुर्ग रचित मन-दनुज मय रूप धारी। (वि० ५८)

रच्छ-(सं० रक्षण)-१ रक्षा करे, रखवाली करे, २ रक्षा कीजिए। उ० १ तीरथपति अंकुर-सरूप, यच्छेस रच्छ तेहि। (क० ७।११५) रच्छहीं-रक्षा करते हैं, रखवाली करते हैं। उ० करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं। (मा० ५।३।३)

रच्छक-दे० 'रक्षक'। उ० रच्छक कोटि जच्छपति केरे। (मा० १।१७९।१) रच्छकनि-(सं० रक्षक)-रक्षकों को, रखवालों को। उ० वाटिका उजारि अच्छ रच्छकनि मारि। (क० ६।२४)

रच्छन-दे० 'रक्षण'। उ० जयति सुग्रीव सि च्छादि-रच्छन निपुन, बालि-बलसालि-बध मुख्य हेतू। (वि० २५)

रच्छा-(सं० रक्षा)-रक्षा, हिफ़ाज़त। उ० लगे पढ़न रच्छा ऋचा ऋषिराज बिराजे। (गी० १।६)

रज (१)-(सं०)-१ धूल, रेत, मिट्टी, २ रजोगुण, ३ आसव, कुसुम, ऋतु ४ पृथ्वी। उ० १ मिलित जल पात्र अज-युक्त हरिचरन रज। (वि० १८) २ रावन सो राजा रज तेज को निधान भो। (क० ५।२२) ४ रज अप अनल अनिल नभ जद जानत सब कोइ। (स० २०३) रजहिं-रज पर, धूल पर। उ० गुर पद रजहिं लाग छरु-भारु। (मा० २।३१२।४)

रज (२)-(सं० रजक)-धोबी, कपड़ा धोनेवाला। उ० तिय निंदक मतिमंद प्रजा रज निज नय नगर बसाई। (वि० १६५)

रजक-(सं०) धोबी, कपड़ा धोनेवाला।

रजत-(सं०)-चाँदी, रूपा। उ० रजत सीप महुँ भास जिमि जथा भानुकर बारि। (मा० १।११७)

रजधानिय-(सं० राजधानी)-राजधानी, मुख्य नगर। उ० जनु ऋतुराज मनोज-राज रजधानिय। (पा० ६८)

रजधानी-दे० 'रजधानिय'। उ० राजा रामु अवध रज धानी। (मा० १।२५।३)

रजनि-दे० 'रजनी'। उ० १ याके उए बरति अधिक अँग अँग दव, वाके उए मिटति रजनि-जनित जरनि। (कृ० ३०)

रजनिचर-(सं० रजनीचर)-१ राक्षस, २ भूत, ३ चोर, ४ पहरेदार। उ० १ असुर सुर नाग नर यच्छ गंधर्व खग रजनिचर सिद्ध ये चापि अन्ये। (वि० ५०)

रजनी-(सं०)-१ रात, निशा, २ हल्दी, ३ लाख, ४ नील का पेड़। उ० १ पुरी बिराजति राजति रजनी। (मा० १।३५८।२)

आभूषण। उ० १ रतन हाटक-जटित मुकुट मण्डित मौलि भानुसत-सदृस-उद्योतकारी। (वि० ५१)
रत्नाकर-(स०)-रत्नों की खानि, समुद्र।
रथ-(स०)-स्यदन, यान, गाड़ी। एक विशिष्ट प्रकार की पुरानी गाड़ी जिसमें घोड़े जोते जाते थे। उ० जयति भीमार्जुन-व्याल सूदन-गर्वहर धनजय रथ त्रान केतू।(वि० २८) रथगामी-(स० रथगामिन्)-रथ पर चढ़कर चलने वाला। उ० सारथि पगु, दिव्य रथ-गामी। (वि० २)
रथहिं-रथ को। उ० चले अवध लेइ रथहि निषादा। (मा० २।१४४।१)
रथांग-(स०)-१ रथ का पहिया, २ चकवा, चक्रवाक। उ० २ पिक रथांग सुक सारिका सारस हस चकोर। (मा० ४।८३)
रथी-(स० रथिन्)-रथ पर चढ़ा हुआ, रथारूढ़। उ० रथी सारथिन्ह लिए बोलाई। (मा० २।१६।४)
रथु-दे० 'रथ'।
रद (१)-(स०)-दाँत, दत। उ० अधर अरुन रद सुन्दर नासा। (मा० १।१४७।१)
रद (२)-(अर०)-१ नष्ट, खराब, २ तुच्छ, फीका।
रदन-(स०)-दाँत।
रदपट-(स०)-ओष्ठ, अधर। उ० रदपट फरकत नयन रिसौंहे। (मा० १।२५२।४)
रदपुट-दे० 'रदपट'।
रन-(स० रण)-युद्ध, लड़ाई। उ० महावीर विदित, जितैया बड़े रन के। (वि० ३०)
रनबाँकुरो-(स० रण+वक्र)-रण में कुशल योद्धा, शूर वीर। उ० धीर रघुबीर को बीर रन-बाँकुरो। (क० ६।४६)
रनवास-दे० 'रनिवास'।
रनिवास-(स० राज्ञी+वास)-रानियों का महल, हरम, अतःपुर। उ० जुवति जूथ रनिवास रहस-बस यहि विधि। (जा० १००)
रनिवासा-दे० 'रनिवास'।
रनिवासु-दे० 'रनिवास'।
रनिवासू-दे० 'रनिवास'। महल की रानिया। उ० आयउ जनक राज रनिवासू। (मा० २।२८१।२)
रनी-(स० रण) योद्धा, वीर, लड़ाका। उ० कनुप-कलक कलेस कोस भयो जो पद पाय रावन रनी। (गी० ५। ४६)
रबि-दे० 'रवि'। उ० १ रबि आतप भिन्नाभिन्न जथा। (मा० ६।१११।८) ० रबि हर दिसि गुन रस नयन। (दो० ४५८)-रबिहिं-रवि का सूर्य का। उ० रबिहि राउ, राजहि प्रजा, बुध ब्यवहरहिं बिचारि। (दो०२०५) रबिहिं-१ सूर्य का २ सूर्य को, ३ सूर्य ने।
रबिकर-(स०) सूर्य की किरण। उ० महा मोह तम पुंज जासु बचन रबिकर निकर। (मा० १।१। सो० ५)
रबिकुल-(स०)-सूर्यकुल, सूर्यवश। इसी कुल में राम का जन्म हुआ था। उ० रबिकुल-कैरव चद भो आनद-सुधा को। (वि० १५२) रबिकुलनदन-सूर्यकुल के पुत्र या सूर्य कुल को प्रसन्न करनेवाले। रामचद्र। उ० दिय भूमि रबि रबिकुलनदन। (मा० १।३३१।३)

रबितनुजा-(स०)-यमुना नदी। उ० रबितनुजा कइ करत बड़ाई। (मा० २।११२।१)
रबिनदनि-दे० 'रविनदिनी'। उ० करम कथा रबिनदनि बरनी। (मा० १।२।५)
रबिमनि-(स० रविमणि)-सूर्यकात मणि। उ० जिमि रवि मनि द्रव रविहि बिलोकी। (मा० ३।१७।३)
रबिसुत-(स० रविसुत)-अश्विनीकुमार। उ० निरखत हौ नयननि निरुपम सुख रबिसुत मदन सोम-दुति निदरति। (गी० ७।१७)
रबिसुता-(स०रविसुता)-यमुना। उ० जनु रबिसुता सारदा सुरसरि मिलि चलीं ललित त्रिबेनी। (गी० ७।१५)
रम-(स०रमण)-१ रम जाना, मिल जाना, लीन हो जाना, २ रम गया, मिल गया। उ० २ जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम। (मा० १।८०) रमु-रमणकर, क्रीड़ा कर। उ० राम राम रमु, राम राम रटु। (वि०६५) रमेउ-रम गया, लीन हो गया। उ० रमेउ राम मनु देवन्ह जाना। (मा० २।१३३।३)
रमण-(स०)-१ आनदोत्पादक क्रिया, क्रीड़ा, २ मैथुन, सहवास, ३ रमण करनेवाला, पति, ४ कामदेव, ५ जार, ६ गर्दभ।
रमणी-(स०)-स्त्री, सुन्दरी।
रमणीक-(स० रमणीय)-सुन्दर, मनभावन।
रमणीय-(स०)-सुन्दर, मनोहर। उ० तरुण रमणीय राजीव लोचन बदन राकेश कर निकर हासम्। (वि० ६०)
रमन-दे० 'रमन'। रमन-दे० 'रमण'। रमण करनेवाले, पति। उ० विज्ञान-भवन गिरिसुता रमन। (वि० १३)
रमनि-दे० 'रमणी'।
रमनीय-दे० 'रमणीय'। उ० निरखत मनहिं हरत हठि हरित अवनि रमनीय। (गी० ७।१६)
रमा-(स०)-१ लक्ष्मी कमला, श्री, २ स्त्री। उ० १ सिद्ध सची सारद पूजहिं, मन जोगवति रहति रमा सी। (वि० २३)
रमानाथ-(स०)-लक्ष्मी के पति, विष्णु। उ० रमानाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ। (मा० ७।२६)
रमानिकेत-(स०) विष्णु।
रमानिकेता-दे० 'रमानिकेत'। उ० हरषि मिले उठि रमा निकेता। (मा० १।१२८।३)
रमानिवास-(स०) विष्णु, लक्ष्मीपति।
रमानिवासा-दे० 'रमानिवास'। उ० पुजमन्जु करि रमा निवासा। (मा० ३।१२।१)
रमापति-(स०)-विष्णु। उ० का अपराध रमापति कीन्हा। (मा० १।१२५।४)
रमाबिलासु-(स० रमा + विलास)-लक्ष्मी का विलास, भोग और ऐश्वर्य। उ० रमाबिलासु राम अनुरागी। (मा० २। ३२४।४)
रमारमन-(स० रमा + रमण) विष्णु। उ० जय राम रमा रमन समन। (मा० ७।१४।१)
रमित-(स० रमण) सर्वव्यापी। उ० एक रमित परमात्मा सह प्रकार प्रिय रूप। (स०१५)

रमेश-(स०)-विष्णु।
रमेस-दे० 'रमेश'। उ० साहिब महेस सदा, संकित रमेस मोहिं। (क० ५।२१)
रमैया-(स०रमण) सर्वत्र रमण करनेवाला, सब के हृदय में वास करनेवाला। उ० जहाँ सब संकट दुर्घट सोच तहाँ मेरो साहब राखै रमैया। (क० ७।५६)
रम्य-दे० 'रम्य'। उ० सदा शंकर शम्प्रद सज्जनानंदद, शैलकन्यावर परमरम्य। (वि० १२) रम्य-(स०)-मनोहर, सुंदर, रमणीय। उ० परम रम्य उत्तम यह धरनी। (मा० ६।२।२)
रम्यता-(स०) शोभा, रमणीयता। उ० पुर रम्यता राम जब देखी। (मा० १।२१२।३)
रये-(स० रत)-रँग गये। रयो-रँग गये, रँगे, मिले। उ० धनि भरत! धनि भरत! करत भयो मगन मौन रह्यो मन अनुराग रयो है। (गी० ६।११)
ररिहा-(स० रटन)-१ झगड़ालू, रार करनेवाला, २ मगन, भिक्षुक।
रव-(सं०)-ध्वनि, गुंजार, शब्द, आवाज़। उ० कटितट रटति चारु किंकिनि, रव अनुपम बरनि न जाई। (वि० ६२)
रवन-दे० 'रमण'। उ० ३ रवन गिरिजा, भवन भूधराधिप सदा। (वि० ११)
रवनि-(स० रमणी)-१ स्त्री, सुंदरी, २ पत्नी, भार्या। उ० २. रति सी रवनि, सिंधु-मेखला-अवनिपति। (क० ७।१४)
रवनी-दे० 'रवनि'। उ० २ गर्जत गर्भ स्रवहिं सुररवनी। (मा० १।१८२।३)
रवा-(फा०)-उचित, योग्य, ठीक। उ० राम को किंकर सो तुलसी समुझेहि भलो कहिबो न रवा है। (क० ७।२६)
रवि-(स०)-१ सूर्य, २ मदार का पेड़, ३ अग्नि ४ नायक, सरदार, ५ रविवार, इतवार, ६ १२ की संख्या, ७ द्वादशी। उ० १ बानि विनायकु अंब रवि, गुरु हर रमा रमेस। (प्र० १)
रवत-(स० रव)-शब्द करता हुआ। उ० सखि नव नील पयोद रवित सुनि रुचिर मोर जोरी जनु नाचति। (गी० ७।१७)
रवितनया-(स०)-यमुना नदी।
रविनंदिनी-(स०)-सूर्य की पुत्री, यमुना नदी।
रविसुवन-(स० रविसूनु)-दे० 'रविसुत'। उ० सरद बिधु रवि-सुवन मनसिज-मान-भंजनिहार। (गी० ७।८)
रश्मि-(स०)-किरण।
रस-(स०)-१ अर्क, सार, २ स्वाद के छ रस-मीठा, खट्टा, खारा, चरपरा, कड़ुवा तथा कसैला, ३ आनंद, स्वाद, ४ प्रेम, प्रीति, ५ काव्य के शृंगार, वीर, शांत, करुण, अद्भुत, हास्य, भयानक, बीभत्स और रौद्र नामक नौ रस, ६ पारा, ७ छ की संख्या, ८ जल, ९ मकरंद। उ० ३ जयति सीतेस-सेवा सरस, विषय रस निरस, निरुपाधि, धुरधर्मचारी। (वि० ३८) ७ सुभग सगुन उनचास रस, रामचरितमय चारु। (प्र० ६।७।७) ९ गुंजत मंजु मधुप रस भूले। (मा०२।११५।४) रसपागी-रस में पगी। उ० बोली बचन नीति रसपागी। (मा० २।२६१।२) रस रस-धीरे धीरे। उ० रस रस सूख सरित सर पानी। (मा० ४।१६।२) रसानां-रसों की, नव रसों की। उ० वर्णानामर्थसंघानां रसानां छंदसामपि। (मा० १।१।श्लो० १)
रसग्य-दे० 'रसज्ञ'।
रसज्ञ-(स०)-रसिक, रस को जाननेवाला। उ० अति रसज्ञ सूच्छम पिपीलिका बिनु प्रयास ही पावै। (वि० १६७)
रसन-दे० 'रसना'। उ० कहै कौन रसन मौन जानै कोइ कोई। (कृ० १)
रसना-(स०)-१ जीभ, जिह्वा, २ करधनी। उ० १ गिरि हरहिं रसना संसय नाहीं। (मा० ६।३३।५) २ रसना रचित रतन चामीकर। (गी० ७।१७)
रसभंग-रस या आनंद में भंग, आनंद की समाप्ति, मज़ा किरकिरा होना। उ० रावन सभा ससंक सब देखि महा रसभंग। (मा० ६।१३ ख)
रसमि-दे० 'रसमि (२)'।
रसमि (१)-(स० रश्मि)-किरण, मरीचि। उ० रसमि विदित रवि रूप लघु सीत सीतकर जान। (स० ५५२)
रसमि (२)-(अर० रस्म)-रीति, रिवाज।
रसराज-(स०)-१ सब रसों का राजा, शृंगार रस, २ पारद, पारा। उ० १ जनु बिधु-मुख-छबि अमिय को रच्छक राखे रसराज। (गी० १।११) २ रावन सो रसराज सुभट रस सहित लंक खल खलतो। (गी० ५।१३)
रसरी-(स० रसना, प्रा० रसणा)-रस्सी, डोरी।
रसहीन-आनंद या रसरहित, नीरस। उ० जेहि किये जीव निकाय बस रसहीन दिन दिन अति नई। (वि० १३६)
रसा-(स०)-१ पृथ्वी, ज़मीन, २ जीभ। उ० १ रसा रसातल जाइहि तबहीं। (मा० २।१७१।१)
रसातल-(स०)-पाताल, पृथ्वी के नीचे का लोक। उ० तुलसी रसातल को निकसि सलिल आयो। (क० ५।१)
रसायन-(स०)-वैद्यक में एक प्रकार की दवा जो अपेक्षाकृत अधिक महँगी और शीघ्र लाभ पहुँचानेवाली होती है।
रसायनविद्या-वह विद्या जिसमें धातुओं को शोधना तथा भस्म करना एवं पदार्थों के तत्त्वों और उन तत्त्वों के परमाणुओं आदि का विवेचन रहता है।
रसायनी-रसायन शास्त्र का ज्ञाता। उ० राम की रजाय तें रसायनी समीर सूनु। (क० ५।२५)
रसाल-(स०) १ आम, २ पनस कटहल, ३ ऊख, ४ अन्न, ५ रसीला, सरस, रसयुक्त, ६ मधुरभाषी। उ० १ नव रसाल बन बिहरन सीला। (मा० २।६३।४) ४ जहाँ जनम जग मरन अपि मनुजहिं सुगति रसाल। (प्र० १६०) ६ राम निज-सेवक सनेही साधु सुमुख रसाल। (गी० ७।१)
रसाला-दे०'रसाल'। उ० १ नवपल्लव पुष्पफल फलहिं रसाला। (मा०१।२२७।४) ५ सुनौ पवन हरिकथा रसाला। (मा० ११०।२)
रसिक-(स०)-१ रस जाननेवाला, रसिया, रस का प्रेमी, २ भुकाट ३ प्रेमी, ४ मौजी, मस्त, ५ कवि, काव्य की रचना करनेवाला। उ० १ कवित रसिक न रामपद नेहू।

(मा० १।६।२) ६ चद किरन रस रसिक चकोरी। (मा० २।५६।४)

रसु-दे० 'रसु'।

रसेस-(स० रसेश)-रसों में शिरोमणि, नमक। उ० रुचिर रूप-जल मो रसेस ह्वै मिलि न फिरन की बात चलाई। (कृ० २५)

रसोई-(स० रस)-१ पका हुआ खाना, भोजन, २ चौका, पाकशाला। उ० १ माया मय तेहिं कीन्हि रसोई। (मा० १।१७३।१)

रस्मि-(स० रश्मि)-किरण, मरीचि।

रहँट-(स० अरघट्ट)-कुएँ से पानी निकालने का एक यंत्र। उ० सोइ सींचिबे लागि मनसिज के रहँट नयन नित रहत न हेरी। (गी० २।४६)

रहँसेउ-(स० हर्ष)-हर्षित हो उठा। उ० एहि अवसर मंगलु परम सुनि रहँसेउ रनिवासु। (मा० २।७)

रह-(?)-१ ठहर, थम्ह, रुक, २ रुक गया, ३ एकांत, निर्जन। उ० २ लोचन जलु रह लोचन कोना। (मा० १।२५६।१) रहइ-रहता, रहता है। उ० कहि देखा हर जतन बहु रहइ न दच्छकुमार। (मा० १।६२) रहई-रहता है। उ० एहि विधि जग हरि आश्रित रहई। (मा० १।११८।१) रहउँ-रहूँ, रह जाऊँ। रहउ-१ रहे, २ रहो। उ० १ पुनि न सोचु तनु रहउ कि जाऊ। (मा० २।४।३) रहऊँ-रही हूँ। उ० जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ। (मा० २।५६।३) रहत-१ रहता है, ठहरता है, २ रुकता है, बंद होता है, ३ रहते हुए। उ० २ नयननि बारि रहत न एक छन। (गी० २।१७)३ लखी राम रुख रहत न जाने। (मा० २।७८।१) रहति-१ रहती है, २ रहते हुए। उ० १ सिद्ध सची सारद पूजहिं मन जोगवति रहति रमा सी। (वि० २२) रहन-१ चाल, रीति, रहने का ढंग, २ स्वभाव, प्रकृति, ३ रहना। उ० ३ तुलसिदास निज भवनद्वार प्रभु दीजे रहन परयो। (वि० ६१) रहनि-दे० 'रहन'। उ० १ तुलसी रहिए एहि रहनि, सत जनम को काम। (वै० १७) रहब-१ रहोगे, रहियेगा, २ रहना, ३ रहा करेंगे, रहूँगा। उ० १ दरसनु देत रहब मुनि मोहू। (मा० १।३६०।४) २ भयउ बहोरि रहब दिन चारी। (मा०२।२७३।१) ३ नाहिं त मौन रहब दिनु राती। (मा० २।१६।२) रहसि-रहा, रही। रहहिं-रहते हैं। उ० नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषें। (मा० २।२।२) रहहि-रहता है, रहा। रहहीं-रहते हैं। उ० प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं। (मा० ७।२५।१) रहहु-रहो, रहोगी। उ० सो घर रहहु न आन उपाई। (मा० २।६।४) रहहू-रहो। रहा-१ रह गया, रुका, २ था, ३ शेष रहा। उ० २ रहा बालि बानर मैं जाना। (मा० ६।२१।२) ३ रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग। (मा० ७।१। दो० १) रहि-१ रहकर, २ रह, ३ रह रही हो। उ० ३ अजप सहित सुगरेत हहु मई रहि सब्रि घबड़ताई। (वि० ६२) रहिअ-रहा जाय। उ० इहाँ रहिअ रघुबीर सुजाना। (मा० १।२१४।३) रहिउँ-रही, थी। उ० सात जनम लगि रहिउँ कुमारी। (मा०१।१७।२) रहियो-रहना। उ० सौंनौं, मातु! आपु भीके रहियो। (गी० ५।१४) रहिय-१ रहो, रहिए, २ रहना, रुकना, ३ रहे, रुके। रहिहउँ-रहूँगा। उ० रहिहउँ निकट सैल पर छाई। (मा० ४।१२।४) रहिहहिं-रहेंगे। उ० सीय कि पिय सँगु परिहरिहि लखनु कि रहिहहिं धाम। (मा० २।४६) रहिहि-रहेगी, रहेगा। उ० जो चलिहैं रघुनाथ पयादेहि सिला न रहिहि अवनी। (गी० १।५६) रहिहु-तुम थी, थी। उ० जात रहेउँ कुबेर गृह रहिहु उमा कैलास। (मा० ७।६०) रहीं-रह गई, रुकीं, थीं। रही-१ रह गई, २ थी। उ० २ तौ कत विप्र ब्याध गनिकहिं तारेहु? कछु रही सगाई? (वि० ११२) रहु-रहो। उ० सुकी रानि अब रहु अरगानी। (मा० २।१४।४) रहे-१ थे, टिके थे, ठहरे, ठहरे थे, रुके, २ शेष बचे, बाकी रहे। उ० १ कराल हैं, रहे कहाँ, समाहिंगे कहाँ मही। (क० ६।८) रहेउँ-१ रहा, २ अड़ा रहा। उ० १ मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी। (मा० ४।६।४) २ भगति पच्छ हठ करि रहेउँ दीन्हि महारिषि साप। (मा०७।११४ख) रहेउ-रहा, था। रहेऊँ-मैं था, मैं मौजूद था। उ० तेहिं समाज गिरिजा मैं रहेऊँ। (मा०१।१८५।२) रहेऊ-रहा, था, रुका। रहेसि-रहा, रह गया। उ० जौं तै जिअत रहसि सुरद्रोही। (मा० ६।८४।२) रहेहु-दे० 'रहेउ'। रहै-१ रहे, रहता है, २ रहने। उ० १ रहै जहाँ विचरै तहाँ, कमी कहूँ कछु नाहिं। (स० ५५७) २ आपुनु उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा। (मा० १।१८३।छं० १) रहैगो-रहेगा, ठहरेगा। रहों-रहा हूँ, रहा। उ० चाटत रह्यों स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो। (वि० २२६) रह्यो-था, रहा। उ० अचवहिं दीन्हें पान गवने बास जहँ जाको रह्यो। (मा० १।६६।छं० १) रह्यौ-रहा। उ० कहे बिनु रह्यौ न परत। (वि० २५६)

रहसि (२)-(स० रहस्)-एकांत में, गुप्तस्थान में। उ० रहसि जोरि कर पति पग लागी। (मा० २।२६।३)

रहम-(अर०)-करुणा, दया। उ० सबको भलो है राजा राम के रहम ही। (क० ६।८)

रहस-(स० हर्ष)-आनंद, प्रसन्नता। उ० कौसल्या कैकयी सुमित्रा रहस बिबस रनिवास। (गी० १।२)

रहसहिं-(स० हर्ष)-प्रसन्न होते हैं, हर्षित होते हैं। उ० बर दुलहिनिहि बिलोकि सकल मन रहसहिं। (पा० १४३) रहसि (१)-प्रसन्न होकर, खुश होकर। रहसी-प्रसन्न हुई। उ० रहसी चेरि घात जनु फाबी। (मा० २।१७।२) रहसे-प्रसन्न हुए। रहसेउ-प्रसन्न हुए।

रहस्य-(स०)-१ गुप्त भेद, गोप्य विषय, २ वह जो सामान्य से समझ में न आ सके। उ० १ यह रहस्य काहूँ नहिं जाना। (मा० १।१४६।१) २ यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानइ कोइ। (मा० ७।११६ क)

रहित-(स०)-हीन, शून्य, खाली। उ० मदन मदन मदा रहित माया रहित मनुमानाथ पाथोज पानी। (वि०५६)

राँक-(स० रङ्क)-रंक, भिखारी। उ० राँक सिरोमनि काकिनि भाग बिलोकत लोकप को करदा है। (क० ७।१५५) राँकनि-१ रंकों को, २ रंकों ने। उ० १ राँकनि नाकप रीझि करै। (क० ७।१२३)

राँकु-दे० 'राँक'। उ० धनु तोरै सोइ बरै जानकी राउ होइ की राँकु। (गी० १।८७)
राँची-(सं० रचना)-रची, निर्माण की।
राँचो-(सं० रंजन) चाहा, प्यार किया। उ० मन जाहि राँचो मिलहि सो बर सहज सुंदर साँवरो। (मा० १।२३६।छं०१)
राँड़-(सं० रंडा)-१ विधवा, बेवा, २ वेश्या, कसबी। उ० १ स्याल लंका खाईं कपि राँड की सी झोपरी। (क० ६।२७)
राँधा-(सं० रंधन)-पकाया। राँधे-पकाने से। उ० हाँडी हाटक घटित चरु राँधे स्वाद सुनाज। (दो०१६७) राँध्यो-पकाया, चुराया। उ० लंक नहिं खात कोउ भात राँध्यो। (क० ६।४)
राइ-(सं० राजा, प्रा० राया)-छोटा राजा, राय। उ० राइ दसरत्थ के समत्थ राम राजमनि। (क० ७।२०)
राई-(सं०,राजा) राजा, प्रधान। यह शब्द प्रायः शब्दों के बाद में लगता है। जैसे रघुराइ, यदुराइ तथा ऋषिराइ आदि। उ० जेहि मन जाइ रहत रघुराई। (मा०२।१०४।२) गवने तुरत तहाँ रिपिराई। (मा० १।१३३।२)
राउ-(सं० राजा)-१ राजा भूपति, २ स्वामी, ३ प्रधान, सरदार। उ० १ कह्यो राज, बन दियो नारियस, गरि गलानि गयो राउ। (वि० १००)
राउत-(सं० राज+पुत्र)-सरदार, शूरवीर। उ० राउत राउत होत फिरि के जूझे। (वि० १७६)
राउर-(सं० राज+पुत्र)-१ आपका, तुम्हारा, २ राजा, राजकुमार। उ०१ जौं राउर आयसु मैं पावौं। (मा० १।२१८।३) २ राउर नगर कोलाहलु होई। (मा०२।२३।४) राउरि-आपकी।
राऊ-दे० 'राउ'। उ० २ जद्यपि अखिल लोक कर राऊ। (मा० २।२०७।३)
राकस-(सं० राक्षस)-राक्षस, निशिचर। राकसनि-राक्षसों ने। उ० खायो हुतो तुलसी कुरोग राढ़ राकसनि। (ह० ३२)
राका-(सं०)-१ पूर्णिमा की रात, पूर्णमासी, २ रात, ३ नदी, ४ खुजली, ५ प्रथम रजोवती स्त्री। उ० १ प्रभु बिस्वासु अवधि राका सी। (मा० २।३२५।२)
राकापति-(सं०)-पूर्णमासी का चंद्रमा, राकेश। उ० राकापति षोड़स उअहिं तारा गन समुदाइ। (मा० ७।७८ख)
राकेश-(सं०)-पूर्णमासी का चंद्रमा।
राकेस-दे० 'राकेश'। उ० भूमिकुल-कुमुद-राकेस राधारमा कंस-बंसाटवी धूमकेतू। (वि० ५२)
राक्षस-(सं०)-१ निशाचर, दैत्य, असुर,२ पापी, हिंसक।
राख (१)-(?)-भस्म, खाक।
राख (२)-(सं० रक्षण)-१ रखवाली करो, २ रख लिया, रखता है ३ रक्षा करे, ४ रक्खो। उ० २ सबु सयानो सलिल ज्यों राख सीस रिपुनाउ। (दो० ५२०) ३ जेहि राख राम राजिव नयन। (क०७।११०) राखइ-१ रखता है, २ रक्षा करता है। राखउँ-१ रखूँ, २ रक्षा करूँ। राखत-१ रखता है, २ रखवाली करता है, रक्षा करता है। उ० २ बय पितु मन, तन दहत दया तजि, राखत रवि ह्वै नयन बारिधर। (कृ० ३१) राखति-१ रखती है, २ रखती हूँ। उ० २ राखति मान बिचारि दहत मन। (गी० ५।६) राखन-१ रखने के लिए, २ रखना। उ० १ रायँ राम राखन हित लागी। (मा० २।७६।१) राखब-१ रक्खूँगा, २ रखना चाहिए। उ० २ रिपु रन रंच न राखब काऊ। (मा० २।२२१।१) राखबि-रखना, रक्खिएगा। उ० तात तजिय जनि छोह मया राखबि मन। (जा० १८८) राखहिं-१ रक्षा करते हैं, २ रखते हैं। उ० १ राखहिं सोइ है बरियाई। (कृ० ५६) राखहु-रखो, रक्षा करो। उ० राखहु राम कान्ह यहि अवसर, दुसह दसा भइ आइ। (कृ० १८) राखा-रक्खा। उ० तनु धनु तजेउ बचन पनु राखा। (मा० २।३०।४) राखि-दे० 'राखी'। उ० १ करि करि बिनय कछुक दिन राखि बरातिन्ह। (जा० १८१) २ दले मलिन खल, राखि मख, मुनि सिष आसिष दीन्हि। (प्र० ४।६।३) राखिबे-रक्षा करने, बचाने। उ० मख राखिबे लागि दसरथ सों माँगि आश्रमहिं आने। (गी० १।५४) राखिय-१ रखिए, २ रक्षा कीजिए, रक्षा करनी चाहिए। राखिये-१ रक्षा कीजिए, २ रखिए। उ० १ मकर मिस पुर राखिये चिते सुलोचन-कोर। (दो० २२६) २ राखिये नीके सुधारि, नीच को डारिए मारि। (वि० २५८) राखिहहिं-रक्खेंगे, रक्षा करेंगे। राखिहि-रखेगा। उ० तुलसिदास एहि त्रास सरन राखिहि जेहि गीध उधार्यो। (वि० २०२) राखिहैं-रखेंगे, रक्षा करेंगे। उ० राखिहैं राम कृपालु तहाँ, हनुमान से सेवक हैं जेहि केरे। (क० ७।५०) राखिहौ-रखोगे, घर ही रखोगे। उ० जो हठि नाथ राखिहौ मो कहँ तौ सँग प्रान पठइहौंगी। (गी० २।६) राखी (?)-१ रखकर, २ रक्षा करके, ३ रक्खी ४ रखने। राखु-रक्षा करो। उ० भूप सदसि सब नृप बिलोकि प्रभु राखु कह्यो नर-नारी। (वि० ६१) राखे-रक्खा, रख लिया। उ० ठाएँ ठाय राखे करि प्रीती। (मा० २।१ ।२) राखेउँ-रक्खे हैं। उ० राखेउँ प्रान जानकिहि लाइ। (मा० २।५१।१) राखेउ-रक्खा, रक्खा है। उ० मेटि को सकइ सो आँकु जो बिधि लिखि राखेउ। (पा० ७१) राखेसि-रक्खा। उ० लै राखेसि गिरिखोह महुँ मायाँ करि मति भोरि। (मा० १।१७१) राखेसु-१ रक्खा, २ रक्खा गया। राखेहु-रक्खा था। उ० सो भुज बल राखेहु उर घाली। (मा० ६।२६।४) राखैं-१ रखते हुए, २ रक्खें। उ० १ नीच ज्यों टहल करैं राखैं रुख अनुसरैं। (गी० १।१००) २ राखैं सुगा नीके राखैं, आगे हू को बेद भाखैं। (वि० ७६) राखै-१ रक्षा करता है २ रखने। उ० १ जहाँ सब संकट दुर्घट सोच तहाँ मेरो साहब राखै रमैया। (क० ७।५३) राख्यो-१ रक्खा है, रख लिया है, २ रक्षा की। उ० १ जद्यपि है दारुन बड़वानल राख्यो है जलधि गँभीर धीरधर। (कृ० ३१) २ प्रथम ताड़का हति सुबाहु बधि, मख राख्यो द्विज हितकारी। (गी० ७।१८) राख्यौ-दे० 'राख्यो'।
राखनहार-रक्षा करनेवाला। उ० राखनहार तुम्हार अनुग्रह घर बन। (जा० २८)

राखी (२)-(?)-राख, भस्म।
राग-(सं०)-१ मोह, प्यार, आसक्ति, २ मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष, ३ संगीत के भैरव, मलार आदि राग, ४ विषयासक्ति। उ० १ राग बस भो विरागी पवनकुमार सो। (क० ५।१) २ निसि दिन पर-अपवाद वृथा कत रटि रटि राग बढ़ावहि। (वि० २३८) ३ उघटहि छंद प्रबंध गीत पद राग तान बधान। (गी० १।२) ४ राग को न साज। (क० ७।६६) राग-रंग-हँसी खुशी, गाना बजाना, आनंद। उ० सब की सुमति राम-राग-रंग रई है। (गी० २।३७) रागहि-प्रेम में, राग में। उ० रोष न प्रीतम दोष लखि, तुलसी रागहि रीझि। (दो० २८४) रागऊ-राग भी, आसक्ति या प्रेम भी। उ० रागऊ विराग, भोग जोग जोगवत मन। (गी० १।८४)
रागा-दे० 'राग'। उ० १ तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। (मा० २।३२४।४)
रागिन-रागी लोग। दे० 'रागी'। उ०रागिन पै सीठि डीठि बाहरी निहारिहै। (क०७।१४०) रागिहि-रागी को,सांसारिक विषयों के प्रेमी को। उ० रागिहि सीठ बिसेषि थलु, विषय विरागिहि मीठ। (प्र०२।६।१) रागी-(सं०रागिन्)-जो विरक्त न हो, संसार से प्रेम रखनेवाला। उ० राजा रंक रागी औ विरागी, भूरि भागी ये। (क० ७।८३)
रागु-दे० 'राग'।
रागे-(सं० राग)-गाए, गाना आरंभ किया। उ० गायक सरस राग रागे। (गी० ७।२)
राघव-(सं०) १ रघु के वंशज, रामचंद्र, २ समुद्र में रहने वाली एक प्रकार की बड़ी मछली। उ० १ जय द्रवै दीन दयालु राघव साधु-संगति पाइए। (वि० १३६)
राघौ-दे० 'राघव'। उ० १ राघौ गीध गोद करि लीन्हों। (गी० ३।१३)
राचहीं-(सं० रंजन)-अनुरक्त होते हैं, मुग्ध होते हैं। उ० बरषै सुमन सुर रूरे रूप राचहीं। (क० १।१४) राचा (१)-अनुरक्त हो गया, लुब्ध हो गया। उ० सो बरु मिलिहि जाहिं मनु राचा। (मा०१।२३६।४)
राचा (२)-(सं० रचना)-रचना की, रचा।
राच्छस-दे० 'राछस'। राच्छसी-राक्षसी, राक्षस की स्त्री। उ० त्रिजटा नाम राच्छसी एका। (मा० ५।११।१)
राछस-(सं० राक्षस)-निशिचर, असुर। उ० राछस अधउ रहा मुनि ग्यानी। (मा० १।१७३।६)
राज (१)-(सं० राज्य)-राज्य, राजा का प्रदेश।
राज (२)-(राजन्)-१ राजा, नरेश, २ राजगीर, थवई ३ बड़ा। उ० १ राज अजिर राजत रुचिर। (प्र० ५।२।६)
राज (३)-(सं० राजन)-राजित, शोभित। उ० ललित लसलाट पर राज रजनीश कल। (वि० ११)
राजलखन-(सं० राजन्+लक्षण)-राजा के लक्षण। उ० राजलखन सब अंग तुम्हारें। (मा० २।११२।२)
राजऋषि-दे० 'राजर्षि'। उ० राजऋषि पितु ससुर, प्रभु पति, तू सुमंगल खानि। (गी० ७।३२)
राजकिसोर-(सं० राजकिशोर) राजा का लड़का राजपुत्र। उ० भूप सभा भव चाप दलि, राजत राजकिसोर। (प्र० ५।७।२)
राजकुअँरि-(सं० राजकुमारी)-राजा की पुत्री। उ० रीझिहि राजकुअँरि छबि देखी। (मा० १।१३४।२)
राजकुमार-(सं०)-राजपुत्र, राजा का लड़का। राजकुमारी-(सं०)-राजा की पुत्री। उ० सत रमा सोइ राजकुमारी। (मा० १।१३६।२)
राजकुमारा-दे० 'राजकुमार'। उ० तेहि पठए बन राज कुमारा। (मा० २।११३।२)
राजकुमारि-(सं० राजकुमारी)-राजपुत्री। उ० आनि देखाई नारदहि, भूपति राजकुमारि। (मा० १।१३०)
राजडगर-(सं० राज+ ?)-राजमार्ग, सीधी और बड़ी सड़क। राज डगरो-दे० 'राजडगर'। उ० गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहिं लगत राज-डगरो सो। (वि० १७३)
राजत-(सं० राजन)-राजता है, सुशोभित होता है। उ० बसे हैं बनाइ नीके राजत निषंग हैं। (क०२।१४) राजति-शोभती है, सुन्दर लगती है। उ० पुरी बिराजति राजति रजनी। (मा०१।३४८।२) राजहिं-सुंदर लगती हैं, सुशोभित हैं। उ०मन्दिर महँ सब राजहिं रानी। (मा०१।११०।४) राजहि-सुन्दर लगता है। राजे (१)-(सं० राजन्)-विराजे शोभित हुए। राजैं-शोभा देती हैं, शोभा दे रही हैं। उ० पंकज-पानि पहुँचियाँ राजैं। (गी० १।२८)
राजधानी-(सं०)-किसी राज्य का वह प्रधान नगर जहाँ राजा तथा उसके कोष एवं कार्यालय आदि रहते हैं। उ० जयति सौमित्र-सीता-सचिव-सहित चले पुष्पकारूढ़ निज राजधानी। (वि० ४३)
राजन-हे राजा। उ० राजन राउर नामु जसु सब अभिमत दातार। (मा० २।३)
राजनय-(सं०)-राजनीति।
राजपूत-(सं० राजपुत्र)-श्रेष्ठ पुत्र। उ० राज-पूत पाए हैं न सुख लहियतु है। (क० २।४)
राजमराल-दे० 'राजहंस'।
राजमराला-दे०'राजमराल'। उ०सकर मानस राजमराला। (मा० ३।८।१) राजमरालिनि-राजहंसिनी, राजमराल की मादा। उ० देखि बधिक-बस राजमरालिनि लखन लाल छिनि लीजै। (गी० ३।७)
राजमहिषी-(सं०) पटरानी, रानी। उ०बारहि मुकुता रतन राजमहिषी पुर-सुमुखि समान। (गी०१।२)
राजमारग-(सं० राजमार्ग)-बड़ी सड़क, शासन की ओर से बना प्रधान मार्ग। उ० मो निबह्यो नीके जो जनमि जग राम-राजमारग चल्यो। (गी० ५।४२)
राजरोग-(सं० राज+रोग)-वह रोग जो असाध्य हो, तपेदिक, क्षय। उ० रावन सो राजरोग बाढ़त बिराट उर। (क० ५।२४)
राजरिषि-दे० 'राजर्षि'।
राजर्षि-(सं०)-वह ऋषि जो जन्म से राजा या राज्य कुल का हो।
राजसता-(सं०)-रजोगुण, राजसीपन। उ० राजत राजसता अनुज मदद घानि घर धीर। (म० १२३)
राजहंस-(सं०)-एक हंस जिसकी चोंच और पैर लाल होते हैं। उ० तुलसी प्रभु के विरह बधिक हठि राजहंस से जोर। (गी० २।८६)

राजा-(सं० राजन्)-१ नरेश, नृप, भूप, २ सम्राट्, चक्रवर्ती राजा, ३ क्षत्रिय, ४ प्रभु, स्वामी, ५ चद्रमा। उ० १ सुनत राजा की रीति, उपजी प्रतीति प्रीति। (गी० १।६४)
राजाधिराज-राजाओं के राजा। उ० खेलत बसत राजाधिराज। (गी० ७।२२)
राजि-दे०'राजिका'। उ०कुसुमित नव तरु राजि बिराजा। (मा० १।८६।३)
राजिका-(सं०)-पंक्ति, कतार।
राजित-(सं०) १ विराजित, शोभित, २ आसीन, बैठे हुए।
राजिव-दे० 'राजीव'। उ० राजिव दल-नयन, कोमल कृपा अयन, मयननि बहु छवि अगनि दूरति। (गी० ५।४७)
राजी (१)-(अर० राज़ी)-१ सम्मत, तैयार, २ प्रसन्न। उ० १ तुलसी को न होइ सुनि कीरति कृष्ण कृपालु भगति पथ राजी? (कृ० ६१)
राजी (२)-दे० 'राजिका'।
राजीव-(सं०)-कमल, पद्म। उ० अरुन कर चरन मुख नयन राजीव, गुन अयन, बहु-मयन शोभानिधानं। (वि० ४६)
राजु-दे० 'राज (१)'। राजा का प्रदेश, राज्य। उ० राजु आहिं बन राजु तजि होइ सकल सुरकाजु। (मा० २।११)
राजू-दे० 'राजु' तथा 'राज (२)'।
राजेंद्र-(सं०)-राजों का राजा, श्रेष्ठ राजा। उ० जयति राज राजेंद्र राजीवलोचन राम नाम-कलिकामतरु, साम शाली। (वि० ४४)
राजे (२)-(सं० रजन)-प्रसन्न हुए।
राज्य-(सं०)-साम्राज्य, किसी एक शासन के अधीन देश।
राट्-(सं०)-राजा बादशाह। उ० भाले बाल विधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्। (मा० २।१।श्लो० १)
राइ-दे० 'राय'। उ० १ अग-गुन-मोच, अहार, बल, महिमा जान कि राइ? (दो० ३८०)
राढ़-(सं०राटि)-१ झगड़ालू, रार, दुष्ट, २ झगड़ा, झंझट, ३ कायर। उ० १ आपनी न बूझि, ना कहे को राढ़ रोर रे! (वि० ७१) राढ़उ-कायर भी। उ० राढ़उ राउत होत फिरि कै जूझै। (वि० १०६)
रात-(सं० रात्रि)-रजनी, निशा।
राता (१)-(सं० रत)-अनुरक्त हुआ, लगा, प्रीतियुक्त हुआ। उ० जिन्ह कर मन इन्ह सन नहिं राता। (मा० १।२०४।१) राती (१)-१ प्रीतियुक्त, अनुरक्त, २ अनुरक्त हुई। राते (१)-प्रीतिमान हुए, अनुरक्त हुए। उ० ऐसे भए तौ कहा तुलसी जु पै जानकीनाथ के रंग न राते। (क० ७।२४) रातेउ (१)-दे० 'राते (१)' रातो-(सं० रत)-१ रत हो जाओ, लीन हो, २ लीन होते, अनुरक्त हो जाते। उ० २ जो मन प्रीति प्रतीति सों राम नामहिं रातो। (वि० १२१) रात्यो-(सं० रत)-१ आसक्त लीन, २ लीन हुआ। उ० १ जीवन जुपति-सँग रंग रात्यो। (वि० १३६)
राता (२)-(सं०रक्त)-लाल, अरुण। राती (२)-लाल,सुर्ख। राते (२)-लाल, १ सुर्ख, २ लाल हो गया। उ० १ भृकुटी कुटिल नयन रिस राते। (मा०१।२६८।३) रातेउ (२)-दे० 'राते (२)'।
राति-दे० 'रात'। रातिहिं-रात में ही। उ० रातिहिं घाट घाट की तरनी। (मा० २।२२१।१)
रातिचर-(सं० रात्रि+चर)-राक्षस, निशिचर। उ० मारे रन रातिचर, रावन सकुल दल। (क० ६।५८)
राती (१)-दे० 'रात'। उ० होइ अकाजु कवनि विधि राती। (मा० २।१३।२)
रात्रि-(सं०)-रात, सूर्यास्त से सूर्योदय तक का समय।
राधा-(सं०)-१ वृषभानु गोप की पुत्री और कृष्ण की प्रेयसी, २ विशाखा नक्षत्र, ३ अधिरथ की पत्नी जिसने कर्ण को पाला था।
राधारमन-(सं० राधारमण)-राधा के प्रेमी कृष्ण। उ० वृष्णिकुल-कुमुद-राकेश राधारमन कंस-वंसाटवी धूमकेतु। (वि० ५२)
राधो-(सं० आराधना)-आराधना की। उ० साधो कहा करि साधन तें जो पै राधो नहीं पति पारवती को? (क० ७।१२६)
राना-(सं० राट्)-राजा। उ० बापुरे बराक और राजा राना रंक को। (ह० १२)
रानि-दे० 'रानी'। उ० हँसि कह रानि गालु बड़ तोरें। (मा० २।१३।४)
रानिन-रानियों ने। उ० रानिन दिए बसन मनि भूषन, राजा सहन भँडार। (गी० १।२) रानिन्ह-दे० 'रानिन'। रानिहिं-दे० 'रानिहि'। रानिहि-रानी का। उ० कोउ कह नृपन रानिहि नाहिन। (मा० २।२२१।३) रानी-(सं० राज्ञी)-राजपत्नी, महिषी। उ० चेरि छाड़ि अब होब कि रानी। (मा० २।१६।३)
रामं-राम को। उ० नीलांबुज श्यामकोमलांग सीतासमारोपितवामभागं पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं। (मा० ७।१।श्लो० १) रामः-राम। उ० सतत श सनोतु मम रामः। (मा० २।११।८) राम-(सं०)-१ रामचंद्र, भगवान, २ बलराम, ३ परशुराम। उ० १ लछिमन रामचरन रति मानी। (मा० १।१६८।२) २ रामहु राम का इ यदि अपसर दुमद दमा मद्ग भाइ। (कृ० १८) ३ बार बार मुनि बिप्रबर कहा राम सन राम। (मा० १।२८२) रामहिं-राम को। उ० रामहिं सुमिरत, रन भिरत, देत, परत गुरु पाय। (दो० ४२) रामहि-राम को। उ० परम रम्य आरामु यहु जो रामहि सुख देत। (मा० १।२२७) रामो-राम भी। उ० प्रिय रामनाम तें जाहि न रामो। (वि० २२८)
रामकहानी-१ लंबी कहानी, २ रामायण।
रामघाट-(सं०राम+घट)-वह घाट या नदी के किनारे का स्थान जहाँ राम ने स्नानादि किया था। उ० रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू। (मा० २।१३७।२)
रामगिरि-(सं०)-चित्रकूट पर्वत। उ० भरतु रामगिरि बन तापस बद्ध। (मा० २।२८०।४)
रामचंद-दे०'रामचंद्र'। उ० रामचद मुखचदु निहारी। (मा० २।११६)

रामचंदु-दे० 'रामचंद्र'। उ० रामचदु पति सो बैदेही। (मा० २।१११४)
रामचंद्र (स०)अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र। इनकी माता का नाम कौशल्या और स्त्री का नाम सीता था। लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न इनके भाई थे, जिनमें इन पर विशेष स्नेह लक्ष्मण का रहता था। राम की कथा के प्रथम लेखक वाल्मीकि हैं। संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा हिंदी के विभिन्न ग्रंथों में राम की कथा विभिन्न रूपों में मिलती है। उ० रामचंद्र मुख चंद चकोरा। (मा० २।११२।३)
रामजिउ-रामचंद्र जी। उ० काहे रामजिउ साँवर, लछिमन गोर हो। (रा० १२)
रामपुर-(स०-)राम का नगर, अयोध्या। उ० पहुँचे दूत रामपुर पावन। (मा० १।२६०।१)
रामपुरी-दे० 'रामपुर'। उ० रामपुरी बिलोकि तुलसी मिटत सब दुख-द्वंद। (गी० ७।२३)
रामबोला-राम शब्द बोलनेवाला। कहा जाता है कि तुलसी का यही नाम था। तुलसी के अनुसार राम ने ही यह नाम रखा था। उ० राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम। (वि० ७६)
रामा (१)-(स०)-१ सुंदर स्त्री, स्त्री, २ नदी, ३ सीता, जानकी, ४ रुक्मिणी, ५ राधा, ६ लक्ष्मी। उ० ६ रूप-सुख शील-सीमासि भीमासि रामासि वामासि वर बुद्धि बानी। (वि० १५)
रामा (२)-राम, रामचंद्र। दे० 'राम'। 'रामचंद्र'। उ० कह तुलसिदास सुनु रामा। (वि० १२५)
रामायणं-दे० 'रामायण'। उ० श्री मद्रामपदाब्ज भक्ति-मनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्। (मा० ७।१३१।श्लो० १)
रामायण-(स०)-राम के चरित्र से संबंध रखनेवाला ग्रंथ। सामान्यतः वाल्मीकि कृत रामायण और तुलसी कृत रामचरितमानस रामायण कहे जाते हैं। रामायणे-रामायण में। उ० रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि। (मा० १। श्लो० ७)
रामायन-(स० रामायण)-१ राम के चरित्र से संबंध रखनेवाला ग्रंथ, २ रामकथा। उ० १ रामायन अनुहरत सिख जग भयो भारत रीति। (दो० ५५५)
रामु-दे० 'रामू'। उ० मंगलमूल रामु सुत जासू। (मा० २।२।३)
रामू-दे० 'राम'। रामचंद्र। उ० अपने बस, करि राखे रामू। (मा० १।२६।३)
रामेस्वर-(स० रामेश्वर)-दक्षिण भारत के समुद्रतट का शिवलिंग। उ०जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। (मा०६।३।१)
राय-(स० राजन्)-१ राजा, २ श्रेष्ठ, ३ नायक, सरदार। उ० १ राउर राय रजायसु होई। (मा० २।२५६।४)
रायमुनीं-(स० राजन्+मुनि)-लाल नामक पक्षी की मादाएँ। उ० जनु रायमुनीं तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपने। (मा० ६।१०२।छं० २)
राया-दे० 'राय'। उ० २ सत सहज सुभाउ खगराया। (मा० ७।१२१।७)
रार-(स० राढ़)-लड़ाई, झंझट, विरोध।
रारि-दे०'रार'। उ० घोर रारि हेरि त्रिपुरारि बिधि हारे हिये। (क० ६।२६)
रारी-दे० 'रार'। उ० बरषा घोर निसाचर रारी। (मा० १।४२।३)
राव-दे० 'राय'।
रावण-(स०)-लंका का प्रसिद्ध राजा जो राक्षसों का नायक था और जिसे सीता को चुराने के कारण राम ने मारा था। दस मुख होने के कारण इसे 'दसानन' आदि भी कहते हैं। इसे २०भुजाएँ थीं। कुंभकर्ण तथा विभीषण, इसके भाई, मंदोदरी इसकी स्त्री तथा मेघनाद इसका पुत्र था। उ० नमत पद रावणानुज निवाजा। (वि० ४३)
रावन-दे० 'रावण'। उ० कुंभकरन रावन सुभट सुर बिजई जगजान। (मा० १।१२२) रावनहिं-रावण को। रावनहि-रावण को। उ० सहित सहाय रावनहि मारी। (मा० ५।२०।५) रावनो-रावण भी। उ० भाजे बीर धीर, अकुलाइ उठ्यो रावनो। (क० ५।८)
रावनु-दे० 'रावन'। उ० रावनु जातुधान कुल टीका। (मा० ६।३८।३)
रावर-(स० राजपुत्र)-तुम्हारा, आपका। रावरि-तुम्हारी, आपकी। उ० रघुबर! रावरि यहै बड़ाई। (वि० १६५) रावरियै-आपही की। उ० मेरे रावरियै गति है रघुपति बलि जाउँ। (वि०१४३) रावरी-दे० 'रावरि'। उ० रावरी पिनाक मैं सरीकता कहा रही। (क० १।१६) रावरीयै-आपही की। उ०आस राव रीयै, दास रावरो बिचारिए। (ह० २१) रावरे-१ आप, २ आपके। उ० १ तुलसी के हैं राम रावरे सों साँची कहौं। (क० २।८) रावरेऊ-१ आप भी, २ आप के भी। उ० १ रावरेऊ जानि जिय कीजिये जु अपने। (क० ७।७८) रावरेहु-आपके, तुम्हारे। उ० रावरेहु सतानंद पूत भए माय के। (गी० १।६५)
रावरा-दे० 'रावरो'।
रावरो-(स० राजपुत्र)-आपका, तुम्हारा। उ० हित लागि कहौं सुभाय सो बड़ बिषम बैरी रावरो। (पा० ४७)
रावरोइ-आपका ही। उ० पेट भरौं राम रावरोइ गुन गाइकै। (क० ७।६१)
राशि-(स०)-१ ढेर, समूह, २ ज्योतिष की १२ राशियाँ, ३ अनाज का ढेर।
राषा-(स० रक्षण)-रख लिया। राष-रक्षा।
रास-(स०)-नाच। एक विशेष प्रकार की नाच जो कृष्ण गोपियों के साथ करते थे। उ० नहिंन रास रसिक रस चाख्यो तातें डम सो वारो। (कृ० ३४)
रासभ-(स०)-१ गदहा, गर्दभ, २ खच्चर, अश्वतर। उ० १ पुरोडास चह रासभ खाया। (मा० १।२६१।३)
रासभी-१ गदही, २ खच्चरी। उ० १ बेचिये बिबुध धेनु रासभी बेसाहिए। (क० ७।३३)
रासि-दे० 'राशि'। उ० १ बालि बल-मत्त गजराज-इव केसरी सुहृद सुग्रीव दुखरासि-भग। (वि० ५०) रासिन्ह-राशियों, ढेरों। उ० जनु अँगार रासिन्ह पर मृतक धूम रह्यो छाइ। (मा० ६।२३) रासिहि-समूह का, राशियों

को। उ० यह यामना मसक हिमरासिहि। (मा० ७।३०।४)
रासी–दे० 'रासि'। उ० १ चेतन अमल सहज सुखरासी। (मा० ७।११७।१)
रासीन्द–दे० 'रासिन्ह'।
राहु–(स०) पुराणानुसार १ ग्रहों में एक। समुद्र मथन से निकले अमृत को पीने के लिए जब देवता बैठे तो उनमें एक असुर भी बैठ गया था। ज्यों ही उसने अमृतपान किया चन्द्रमा तथा सूर्य यह भेद जान गए और उन लोगों के संकेत से विष्णु ने चक्र से असुर को काट डाला। पर, वह अमृत भी चुका था अत उसके दोनों कटे भाग जीवित रहे और वे राहु-केतु कहलाये। तभी से राहु चन्द्रमा तथा सूर्य को ग्रसता है जिसे चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण कहते हैं। राहु की माता सिंहिका थी जो समुद्र में रहती थी और छाया द्वारा जीवों को पकड़ लेती थी। उ० भ्रमत स्रमित निसि दिवस गगन महँ रिपु राहु बड़ेरो। (वि०८७)
राहू–दे० 'राहु'। उ० लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। (मा० २।२४।१)
रिक्त–(स०)-शून्य, खाली, खोखला, रीता।
रिगु–(स० ऋक)–ऋग्वेद, प्रथम वेद।
रिच्छ–(स० ऋक्ष)-रीछ, भालू। उ० रिच्छ मर्कट विकट सुभट उद्भट। (वि० ५०)
रिच्छेस–दे० 'रिच्छेस'।
रिच्छेस–(स० ऋक्षेश)-भालुओं का राजा, जांबवान्। उ० तब कपीस रिच्छेस बिभीषन। (मा० ६।३६।२)
रिच्छेसा–दे० 'रिच्छेस'।
रिछेस–दे० 'रिच्छेस'।
रिछेसा–दे० 'रिच्छेस'। उ० जरठ भयउँ अब कहइ रिछेसा। (मा० ४।२६।४)
रिझये–(स० रञ्जन)-रिझाया, रिझा लिया, मोह लिया। उ० कर-कमलनि विचित्र चौगानैं, खेलन लगे खेल रिझये। (गी०१।४२) रिझवै–१ रिझाये, प्रसन्न करे, २ रिझाती है, प्रसन्न करती है। उ० २ सो कमला तजि चंचलता करि कोटि कला रिझवै सुरमौरहि। (क० ७।२६)
रिझाइ–(स० रंजन) प्रसन्न करके खुश करके। उ० ऐसे गुन गाइ रिझाइ स्वामि सों पाइहै जो मुँह मागिहै। (वि० २२४) रिझाइबो–प्रसन्न करना। उ० उपदसियो रिझाइबो तुलसी उचित न होइ। (दो०४८१) रिझाइ–रिझाया, प्रसन्न किया। रिझाएँ–रिझाने से। उ० कहहु कवनि सिधि लोक रिझाएँ। (मा० १।१६२।१) रिझाए–रिझाया, प्रसन्न किया। रिझावौं–रिझा सकूँ, प्रसन्न कर सकूँ। उ० तुलसिदास प्रभु सो गुन नहिं जेहि सपनेहु तुमहिं रिझावौं। (वि० १४२)
रितइ–(स० रिक्त)-रिक्त कर दिया, खाली कर दिया। उ० (दीबे वादि बेलि न तो बलि, नदी मोद मङ्गल रितई है। (वि० १६६) रितए–१ खाली कर दिये, २ खाली करने पर। उ० १ उमगि चल्यौ आनन्द लोक तिहुँ देत सबनि मन्दिर रितए। (गी० १।२) रितवहिं–(स० रिक्त)-खाली करते हैं। उ० भरहिं सब रितवहिं। (वा० ८१) रितवै–खाली करे। उ० रितवै पुनि को हरि जौ भरिहै। (क० ७।४७) रितौ–खाली करके। उ० सींच रूप सुधा भरिव कहँ नयन कमल कल कलस रितौ री। (गी० १।७४)
रितु–दे० 'ऋतु'। मौसम। उ० बरषा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास। (मा० १।१९)
रितुराज–(स० ऋतुराज)–वसंत ऋतु। उ० सोह मदनु मुनि बेष जनु रति रितुराज समेत। (मा०२।१३३)
रितुराजू–दे० 'रितुराज'। उ० सो मुद मङ्गलमय रितुराजू। (मा० १।४२।२)
रिद्धि–दे० 'ऋद्धि'। उ० रिद्धि सिद्धि संपति सुख नित नूतन अधिकाइ। (मा० १ ६४)
रिध–दे० 'रिद्धि'।
रिन–(स० ऋण)-कर्ज। उ० रिपु रिन रंच न राखब काऊ। (मा० २।२२९।१)
रिनियाँ–कर्जदार। उ० देबे को न कछू रिनियाँ हौं धनिक तु पत्र लिखाउ। (वि० १००)
रिनी–दे० रिनियाँ'। उ० तेरो रिनी कह्यो हौं कपीस सों, ऐसी मानिहि को सेवकाइ। (वि० १६४)
रिनु–दे० 'रिन'।
रिपु–(स०) दुश्मन। उ० सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान। (मा० १।१४ क) रिपुहि–शत्रु को। उ० रिपुहि जीति आनिबी जानकी। (मा० ५।१३।२)
रिपुता–(स०) शत्रुता।
रिपुदवन (सं० रिपु+दमन) शत्रुओं का नाश करनेवाले शत्रुघ्न। उ० पवन-सुवन रिपुदवन भरतलाल लखन दीन की। (वि० २७८)
रिपुदवनू–(स० रिपु+दमन)-शत्रुघ्न। उ० सिय समीप राखे रिपुदवनू। (मा० २।२४३।१)
रिपुदन–शत्रुघ्न। उ० सुनि रिपुदन लखि नखसिख खोटी। (मा० २।१६३।४)
रिरिहा–(?)-गिड़गिड़ाकर माँगनेवाला। उ० रटत रिरिहा आरि और न कौर ही तें काज। (वि० २१९)
रिषय–(स० ऋषि)-ऋषि लोग। उ० सुनत बचन बिहसे रिषय गिरि संभव तव देह। (मा० १।७८)
रिषि–(स० ऋषि)-मुनि, तपस्वी, ऋषि। उ० मुनु खगेस नहिं कछु रिषि दूषन। (मा० ७।११२।१) रिषिन–दे० रिषिन्ह'। रिषिन्ह–ऋषि लोग, ऋषि लोगों ने। उ० रिषिन्ह गौरि देखी तहँ कैसी। (मा० १।७८।१) रिषिहि–ऋषियों के। उ० बैठे आसन रिषिहि समता। (मा० २।१२८।३)
रिष्ट–(सं० हृष्ट)–१ प्रसन्न, २ मोटा-ताजा। रिष्ट पुष्ट–स्वस्थ, मोटा-ताजा। उ० रिष्ट-पुष्ट कोउ अति तन खीना। (मा० १।९९।४)
रिष्यमूक–दे० 'ऋष्यमूक'। उ० रिष्यमूक पर्वत नियराया। (मा० ४।१।१)
रिस–(स० रुष)–क्रोध, गुस्सा। उ० दास तुलसी रहत क्यों रिस निरखि मदनकुमार। (कृ० १७) रिसरातीं–गुस्से में लाल। उ० कुटिल नयन रिसराती। (मा० १।२६८।३)
रिसाइ–(सं० रुष)–क्रोधित होकर। उ० मुनि रिसाइ बोले मुनि कोही। (मा० १।२७०।१) रिसाई–क्रोधित होकर। उ० सुनत दसानन उठा रिसाई। (मा०२।४१।१) रिसाते–कोप से लाल होते हैं, क्रोधित हैं। उ० सहजहुँ चितवत

मनहुँ रिसाने। (मा० १।२६८।३) रिसान-रिसाया, क्रोधित हुआ। उ० सुनि दसकंठ रिसान अति तेहिं मन कीन्ह विचार। (मा० ६।२६) रिसाना-रुष्ट हुआ, क्रोधित हुआ। रिसानि-रिसाई, रुष्ट हुई। उ० केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि नेवारई। (मा० २।२५। छं० १) रिसानी-१ क्रोधित हुई, २ क्रोध करना। उ० २ घोर धार भृगुनाथ रिसानी। (मा० १।४१।२) रिसाने-१ क्रोधित हुए, २ क्रोधित होकर, ३ क्रोध करने से। उ० २ टूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने। (मा० १।२७८।१) रिसाहिं-क्रोधित हो जाते हैं, रुष्ट हो जाते हैं।

रिसि-दे० 'रिस'। उ० लखन राम बिलोकि सप्रेम महा रिसि ते फिरि आँखि दिखाए। (क० १।२२)

रिसिआइ-क्रोधित होकर। उ० कबहुँ रिसिआइ कहैं हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरै। (क० १।४)

रिसौंहैं-(सं० रुष)-क्रोधित, नाराज़। उ० रदपट फरकत नयन रिसौंहैं। (मा० १।२५२)

री-(सं०)-अरी, एरी। उ० सोहत गौरि-प्रसाद एक तें, कौसिक कृपा चौगुनो भो री। (गी० १।१०२)

रीछ-(सं० ऋक्ष) भालू। उ० असुभ होइ जिनके सुमिरे तें बानर रीछ बिकारी। (वि० १६६)

रीछपति-(सं० ऋक्षपति)-जामवंत। उ० कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। (मा० ४।३०।२)

रीछराज-दे० 'रीछपति'। उ० रीछराज कपिराज नील नल बोलि बालिनंदन लये। (गी० ५।२२)

रीछा-दे० 'रीछ'। उ० जहँ तहँ भागि चले कपि रीछा। (मा० ६।५०।४)

रीझ-(सं० रञ्जन)-१ खुशी, प्रसन्नता, २ प्रसन्न होकर। उ० १ बावरे बड़े की रीझ बाहन-बरद की। (क० ७।१५८) रीझइ-१ प्रसन्न होता है, २ प्रसन्न हो। रीझत-प्रसन्न होता है। उ० तुलसी जेहि के रघुनाथ से नाथ, समर्थ सुसेवत रीझत थोरे। (क० ७।४६) रीझहु-१ प्रसन्न हो जाओ, २ प्रसन्न हो जाते हैं। उ० २ सुनहु रीझहु सनेह सुठि थोरें। (मा० १।३४२।२) रीझि-१ प्रसन्नता, खुशी, २ प्रसन्न होकर। उ० २ राँकनि नाकप रीझि करै। (क० ७।१२३) रीझिहि-रीझेगी। उ० रीझिहि राजकुँअरि छबि देखी। (मा० १।१३४।२) रीझिहु-प्रसन्न हो जाते हो, प्रसन्न हो जाते हैं। रीझेउँ-रीझ गया। उ० रीझेउँ देखि तोरि चतुराई। (मा० ७।८५।३) रीझै-रीझे, प्रसन्न हो। उ० जो बिलोकि रीझै कुअँरि तब मेलै जयमाल। (मा० १।१३१)

रीति-(सं०)-नियम, परिपाटी, व्यवहार, ढंग, चाल। उ० यह दिनकर कुल रीति सुहाई। (मा० २।१५।२)

रीती (१)-दे० 'रीति'। उ० लोकहुँ बेद सुसाहब रीती। (मा० १।२८।३)

रीती (२)-(सं० रिक्त)-खाली। उ० जोगि जन मुनि मंडली मों जाइ रीति ढारि। (कृ० ४१) रीते-(सं० रिक्त)-१ खाली, जो भरा न हो, शून्य, २ तुच्छ, व्यर्थ, सारहीन। उ० १ भये दुप सुर नृपति रीते। (मा० १।८२।१)

रीष-दे० 'रिस'।

रुंड-(सं०)-धड़, कबंध, मुंडरहित शरीर। उ० धावहिं जहँ तहँ रुंड प्रचंडा। (मा० ६।८३।४) रुंडन-रुंडों, धड़ों। उ० रुंडन के झुंड झूमि झूमि झुकरे से नाचैं। (क० ६।३१)

रु-(सं० अपर)-और।

रुख-(फा० रुख़)-१ सम्मुख, सामने, ओर, २ इच्छा, ३ इशारा, ४ अनुमति, मर्जी, ५ मुख। उ० १ मनहुँ मघा जल उमगि उदधि रुख चले नदी नद नारे। (गी० १।६६) ३ जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपा निधान की। (मा० ३।१३६।छं० १)

रुखान-(?)-बढ़इयों का एक हथियार। उ० सुजन सुतरु बन ऊख सम खल टंकिका रुखान। (दो० ३४२)

रुगदैयाँ-दे० 'रोगदैया'।

रुचि-(सं०)-चाह, इच्छा। उ० रामकथा पर रुचि मन माहीं। (मा० १।१०३।४)

रुचिर-(सं०)-सुन्दर, अच्छा। उ० रेखें रुचिर कंबु कल गीवाँ। (मा० १।२४३।४)

रुचिरता-(सं०)-सुन्दरता। उ० भाल तिलक रुचिरता निवासा। (मा० १।२२७।५)

रुचिराई-सुन्दरता, शोभा। उ० बाहेर नगर परम रुचिराई। (मा० ७।२९।४)

रुचीं-(सं० रुचि)-अच्छी लगीं, सोहाईं। उ० चातक बतियाँ ना रुचीं अनजल सींचे रूख। (दो० ३११) रुची-अच्छी लगी, भली लगी। उ० राम-रोष-इरषा बिमोह बस रुची न साधु-समीति। (वि० २३४) रुचै-१ अच्छा लगे, २ अच्छा लगता है। उ० १ जेहि जो रुचै करो सो। (वि० १७३)

रुज-(सं०)-वेदना, कष्ट, रोग। उ० समन सकल भव रुज परिवारू। (मा० १।१।१)

रुजा-दे० 'रुज'। उ० रुत दूरि महामहि भूरि रुजा। (मा० ७।१४।२)

रुदन-(सं०)-रोना, रोने की क्रिया। उ० आवत निकट हँसहिं प्रभु भाजत रुदन कराहिं। (मा० ७।७७ क)

रुदनु-दे० 'रुदन'। उ० घर घर रुदनु करहिं पुरबासी। (मा० २।१४६।३)

रुदित-(सं०)-रोता हुआ, उदास। उ० हित मुदित अनहित रुदित मुख छबि कहत कबि धनु जाग की। (जा० ११७)

रुद्ध-(सं०)-रुका हुआ।

रुद्र-(सं०)-१ एक प्रकार के गण देवता जो संख्या में ११ होते हैं। ये शिव के रूप हैं। २ भयंकर शिव। उ० पाहि भैरवरूप रामरूपी रुद्र, बंधु गुरु जनक जननी बिधाता। (वि० ११) रुद्रहिं-दे० 'रुद्रहि'। रुद्रहि-रुद्र को। उ० रुद्रहि देखि मदन भय माना। (मा० १।८६।२)

रुद्राणी-(सं०)-पार्वती।

रुद्राष्टक-(सं०)आठ श्लोकों का शिवस्तोत्र। उ० रुद्राष्टक मिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये। (मा० ७।१०८।१)

रुधिर-(सं०)-खून, लोहू। उ० दलित दसन मुख रुधिर प्रचारू। (मा० २।१६३।१)

रुधिरु-दे० 'रुधिर'।

रुनझुनु-(अनु०)-घुँघरू की आवाज़। उ० कटि किंकिनी पैंजनी पाँयनि बाजति रुनझुनु मधुर रेंगाए। (गी० १।२६)
रुमा-(सं०)-सुग्रीव की स्त्री।
रुष-(सं० रोष)-क्रोध। उ० सरुष समीप दीखि कैकेई। (मा० २।४०।१)
रुष्ट-(सं०)-नाराज, रूठा।
रुह-(सं०)-उत्पन्न होनेवाला। यह दूसरे शब्दों के साथ प्रायः लगता है, जैसे भूरुह तथा जलरुह आदि। उ० जल थल रुह फल-फूल सलिल सब करत प्रेम पहुनाई। (गी० १।२३)
रूँधहु-(सं० रुद्ध)-१ काँटों से घेरो, घेरो, रक्षा करो, २ रोको। उ० १ रूँधहु करि उपाय बर बारी। (मा० २।१७।४) रूँधिबे-घेरने, रक्षा करने। उ० रूँधिबे को तारिहि सुरतरु काटियतु है। (क० ७।६६) रूँधो-१ घेरा किया, छेंक लिया, २ घिरा हुआ। रूँध्यो-दे० 'रूँधो'।
रूख (१)-(सं० वृक्ष) पेड़। उ० रूख कलपतरु सागरु खारा। (मा० २।११६।२)
रूख-(२)-(सं० रूक्ष)-१ रूखा, सूखा, २ कठोर ३ निर्दय। उ० १ रूख बदन करि बचन मृदु बोले श्री भगवान। (मा० १।१२८)
रूखा-दे० 'रूख (२)'। उ० १ मनोज मयन फेयु मुख करि रूखा। (मा० ७।८८।३) रूखी-दे० 'रूख (२)'। 'रूखा' का स्त्रीलिंग। उ० उतरु न देइ दुसह रिस रूखी। (मा० २।२९।१)
रूखु-दे० 'रूख'। पेड़।
रूखे-दे० 'रूख (२)'। उ० धरम धुरीन विषय रस रूखे। (मा० २।२०।२)
रूठहिं-(सं० रुष्ट)-क्रुद्ध होते हैं। रूठा-१ नाराज, अप्रसन्न, २ नाराज़ हुआ। उ० १ अजहुँ सो देव मोहि पर रूठा। (मा० ६।६१।४) रूठे-नाराज हुए।
रूप-दे० 'रूप'। उ० १ निगुण सगुण विषम सम रूप। (मा० ३।११।६) रूप-(सं०)-१ आकार, सूरत, स्वरूप, २ सौंदर्य, शोभा। उ० १ व्यापक विस्वरूप भगवाना। (मा० १।१३।२) २ गुण के निधान रूपधाम सोम काम को। (क० १।६) रूपहिं-रूप को। रूपादि-रूप, रस, शब्द, गंध तथा स्पर्श ये पाँच विषय। उ० रूपादि सब सब स्वामी। (वि० २१)
रूपा-दे० 'रूप'। उ० १ राम ब्रह्म परमारथ रूपा। (मा० २।९३।४)
रूपिनी-(सं० रूपिणी)-रूपवाली। उ० सब विग्यान रूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ। (मा० ७।११७ ख) रूपी-रूपवाला। उ० तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि। (मा० ३।४३)
रूपु-दे० 'रूप'।
रूरा-(सं० रूढ़)-सुन्दर, अच्छा। उ० कीरति सरित छहूँ रितु रूरी। (मा० १।४२।१) रूरे-अच्छे, सुन्दर। उ० राज समाज बिराजत रूरे। (मा० १।२४१।२)
रूरो-अच्छा, सुन्दर। उ० पवन को पूत रजपूत रूरो। (ह० ३)
रेंगाई-(सं० रिंगण)-चलाई, चढ़ाई। उ० अस कहि संमुख फौज रेंगाई। (मा० ६।७९।६) रेंगाए-चलाया, ज़मीन से सटकर चलाया।
रेंड़-(सं० अरंड)-रेंडी अरंडी का पेड़। उ० तुलसी बिहाइ कै बबूर रेंड़ गोड़िये। (क० ७।२५)
रे-(सं०)-एक निरादर या प्रेमसूचक संबोधन। उ० रे हत भाग्य भाग्य अभिमानी। (मा० ७।१०७।१)
रेख-दे० 'रेखा'। उ० १ अलप अवित सुरेख इंदु महँ रहि तजि चंचलताइ। (वि० ६२) रेखैं-रेखाएँ। उ० ललित कंध बर भुज बिसाल उर लेहिं कंठरेखैं चित चोरे। (गी० ३।२)
रेखा-(सं०)-१ लकीर, चिह्न, सतर, २ भाग्यरेखा, भाग्य, प्रारब्ध, ३ गिनती। उ० १ सुमिरत रामचरन जिन्ह रेखा। (मा० २।३०।४)
रेखु-दे० 'रेखा'। उ० १ भृकुटि भाल बिसाल राजत रुचिर कुंकुम रेखु। (गी० ७।६)
रेणु-(सं०)-धूल, बालू। उ० भरत-राम-सीता चरण रेणु। (वि० ४०)
रेत-(सं० रेतजा)-धूल, बालू, कण। उ० दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अबर्त बहति भयावनी। (मा० ६।८७। छं० १)
रेता-दे० 'रेत'। उ० उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता। (मा० २।१०२।१)
रेनु-दे० 'रेणु'। उ० रेनु रजु बग्त। (वि० १२४)
रेनू-दे० 'रेणु'। उ० बिधि हरि हर बंदित पद रेनू। (मा० १।१४६।१)
रेला-(?)-१ बाढ़, नदी का तेज़ प्रवाह, २ धक्का।
रेवा-(सं०)-नर्मदा नदी। उ० बीच बिंध्य रेवा सुभग यह बसे हैं परन गृह छाइ। (गी० २।८१)
रेषु-रेखा। दे० 'रेखा'। उ० छाँपि न सकै लोक-बिलपी तुम आसु अनुज-कृत-रेषु। (गी० ६।१)
रेषू-दे० रोष। उ० कबहुँ न कियहु सवतिआ रेषू। (मा० २।१९।२)
रैन-दे० 'रजनि'। रात। उ० अति बल जल बरषत दोउ लोचन दिन अरु रैन रहत एकहि तक। (गी० २।६)
रैनि-दे० 'रैन'। उ० कहत कथा सिय राम लषन की बैठेहि रैनि बिहानी। (गी० २।६८)
रैयत-(अर०)-प्रजा, रिआया। उ० रैयत राज-समाज घर तन धन धरम सुबाहु। (दो० ४२१)
रोगदैया-दे० 'रागदैया'।
रोद-(सं० रुदन)-रोदन, रुदन कर। उ० सो हौं बारहि बार प्रभु कत दुसह सुनायौं रोइ। (वि० २१७) रोइहै-रोयगा, रोया करेगा। उ० जननि जीवनि जुग जुग जग रोइहै। (वि० ६८) रोई-१ रोकर, २ रोना प्रारम्भ किया, रुदन किया। उ० १ निज संताप सुनाएसि रोई। (मा० १।१८९।४) रोए-रो दिए, रुदन किए। रोवत-१ रोता है, २ रोते हुए। उ० २ रोवत करहिं प्रताप बखाना। (मा० ६।१०४।२) रोवनि-रोना, रुदन करना। उ० रोवनि धोवनि अनखानि अनरसनि डिठि मुठि निठुर नसाइहौं। (गी० १।१८) रोवहिं-रोते हैं। रोवहीं-रोते हैं। रोया-१ रोया,

रुदन किया, २ रो रही हो। उ० २ जीन नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा। (मा० ७।११।३)
रोक-(सं० रोधक)-बाधा, अटकाव, रुकावट। उ० तासु पथ को रोक न पारा। (मा० ६।२६।२)
रोकनिहारा-(सं० रोधक)-रोकनेवाला।
रोकहिं-(सं० रोधन)-रोकते हैं। उ० धावहिं बाल सुभाय बिहँग मृग रोकहिं। (जा०३७) रोका-रोक दिया। रोकि-रोककर। उ० जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू। (मा० १।२७४।४) रोकिहौं-रोक लूँगा। उ० रोकिहौं नयन बिलोकन औरहिं। (वि० १०४) रोकी-१ रोका, २ रोकने से। उ० २ अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी। (मा० १।२०।४) रोके-रोक लिए। रोक्यौ-रोका। उ० रोक्यौ पर लोक लोक भारी भ्रम भानि कै। (क० ६।२६)
रोखा-(सं० रोष)-क्रोध।
रोग-(सं०)-व्याधि, मर्ज़। उ० रोग भयो भूत सो कुसूत भयो तुलसी को। (क० ७।१६७) रोगनि-रोगों ने। उ० घेरि लियो रोगनि कुजोगनि कुजोगनि ज्यौं। (ह० ३५)
रोगदैया-(?)-अन्याय, बेइमानी। उ० खेलत खात परसपर डहकत, छीनत कहत करत रोगदैया। (कृ० १६)
रोगा-दे० 'रोग'। उ० सुनहु तात अब मानस रोगा। (मा० ७।१२१।१४)
रोगिहि-रोगी को। उ० सुधा कि रोगिहि चाहहि। (पा० ५२) रोगी-रोगग्रस्त, बीमार। उ० एहि बिधि सकल जीव जग रोगी। (मा० ७।१२२।१)
रोगु-दे० 'रोग'।
रोगू-दे० 'रोग'। उ० भरत दरस मेटा भव रोगू। (मा० २।२१७।१)
रोचन-(सं०)-१ रोचक, सुन्दर, २ लाल, ३ हल्दी, ४ गोरोचन, ५ काम के पाँच बाणों में एक। उ० ३ दल फल फूल दूब दधि रोचन घर घर मंगलचार। (गी० १।२)
रोचना-दे० 'रोचन'। उ० ३ दधि दूब अच्छत रोचना। (जा० २०७)
रोटिहा-(?)-केवल रोटी पर काम करनेवाला। उ० कहिहौं बलि रोटिहा रावरो बिनु मोल ही बिकाउँगो। (गी० ५।३०)
रोटी-(?)-चपाती, फुलका। उ० रोटी लूगा नीके राखै। (वि० ७६)
रोदति-(सं० रुदन)-रोती है। उ० रोदति बदति बहु भाँति करुना करत संकर पहिं गइ। (मा० १।८७। छं० १)
रोदन-(सं०)-रुदन, रोना। उ० केहि हेतु सिसु रोदन करे। (वि० १३६)
रोपहु-(सं० रोपण)-रोप दो, लगा दो। उ० रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा। (मा० २।६।३) रोपा-१ फैलाया, पसारा, २ लगाया, रोपित किया। उ० १ चरन नाइ सिर अपनु रोपा। (मा० ६।६।२) रोपि-१ रोपकर, २ फैलाकर। रोपी रोपकर, दृढ़कर। उ० सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी। (मा० ६।२३।४) रोपे-१ लगाये, २ फैलाए। उ० १ रोपे बकुल कदंब तमाला। (मा० १।३४४।४) रोपैं-लगाते हैं, लगाते थे। उ० रोपैं सफल सपल्लव मंगल तरुवर। (जा० २०६) रोप्यो-जमाया। उ० रोप्यो पाँउ, चपरि चमू को चाउ चाहिगो। (क० ६।२३)
रोम-(सं० रोमन्)-लोम, बाल, रोयाँ। उ० रोम-रोम छबि निंदति सोभ मनोजनि। (जा० १०६)
रोमपट-(सं०रोमन्+पट) ऊनी वस्त्र, कंबल।
रोमांच-(सं०)-पुलक, आनंद से रोमों का उभर आना। उ० जयति रामायण श्रवण संजात रोमांच-लोचन सजल सिथिल बानी। (वि० २६)
रोर-(सं० रवण)-हुल्लड़, हल्ला। उ० कुलिस कठोर तनु जोर परै रोर। (ह० १०)
रोवनिहारा-(सं० रुदन)-रोनेवाला। उ० रहा न कोउ कुल रोवनिहारा। (मा० १०३।५)
रोवाइ-(सं० रुदन)-रुलाकर। कबहुँक बाल रोवाइ पानि गहि मिस करि उठि उठि धावहिं। (कृ० ४)
रोष-(सं०)-१ क्रोध, कोप, २ नसरता। उ० १ राग न रोष न दोष दुख दास भये भव पार। (दो० ६४)
रोषा-(सं० रोष)-१ क्रोध, २ क्रोध किया। उ० १ भयउ न नारद मन कछु रोषा। (मा० १।१२७।१) रोषि-क्रोध करके। उ० रोषि बाम काढ्यो न दसैया दससीस को। (क० ६।२२) रोषे-१ क्रोधित हुए, २ क्रोधित होने पर। उ० २ काहे की कुसल रोषे राम बामदेवहू के। (क० ५।१६)
रोषु-दे० 'रोष'। उ० १ कहु तजि रोषु राम अपराधू। (मा० २।३२।३)
रोस-दे० 'रोष'।
रोसा-दे० 'रोष'। उ० २ सर्बस देउँ आजु सह रोसा। (मा० १।२०८।२)
रोसु-दे० 'रोष'। उ० १ प्रभुहि सेवकहि समरु कस तजहु बिप्रबर रोसु। (मा० १।२८१)
रोहिणी-(सं०)-१ नक्षत्र विशेष, २ बलराम की स्त्री, ३ चंद्रमा की स्त्री।
रोहित-(सं०)-'रोहू' नाम की एक मछली।
रोहिनि-दे० 'रोहिणी'। उ० जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही। (मा० २।१२३।२)
रोहू-दे० 'रोहित'।
रौंदि-(?)-मर्दन करके, कुचलकर। उ० भरि भरि रेलि पेलि रौंदि रौंदि डारहीं। (क० ५।१५)
रौताई-(सं० राजपुत्र)-१ ठकुराई, २ रजपूती। उ० २ होइ कि खेम कुसल रौताई। (मा० २।३५।३)
रौद्र-(सं०)-१ भयंकर, रुद्र, प्रचंड, २ साहित्यशास्त्र के अनुसार एक रस।
रौर-(सं०रवण) १ शोर, हल्ला, २ ख्याति, प्रसिद्ध।
रौरव-(सं०) एक बहुत कष्टदायक नरक। उ० रौरव नरक परहिं ते प्रानी। (मा०७।१२१।१३)
रौरा-(सं०राजपुत्र)-आपका। रौरेहि-आप ही की, तुम्हारी ही। उ० करहि छोहु सब रौरिहि नाईं। (मा० २।३।२) रौरे-आपके। उ० हित सब ही कर रौरे हाथा। (मा० २।२६०।३) रौरेहि-आपकी ही आपही। उ० जो सोचहि ससि कलहि सो सोचहि रौरेहि। (पा० ६१)

# ल

लंक (१)-(सं०)-कमर, कटि। उ० लंक मृगपति ठवनि, कुँवर कोसलधनी। (गी० ७।१८)
लंक (२)-(सं०)-लंका, रावण का राज्य। उ० मकदाहु देखे न उछाहु रह्यो काहुन को। (क० ६।१)। लंकहि-लंका को। उ० लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी। (मा० ५।१।१)
लंका-(सं०)-रावण की राजधानी, लंकापुरी। उ० जग बिख्यात नाम तेहि लंका। (मा० १।१७८।४)
लंकिनी-(सं०)-लंका की एक राक्षसी। उ० लंकिनी ज्यों लात घात ही मरोरि मारिए। (ह० २२)
लंकेस-(सं० लंकेश)-रावण। उ० सुनु लंकेस सकल गुन तोरें। (मा० ६।२४।१)
लंगर-(?)-नटखट, ढीठ। उ० लोकरीति लायक न लंगर लबार है। (क० ७।९७)
लंगरि-(?)-ढीठ स्त्री। उ० गनति किए लंगरि कगराउ। (कृ० १२)
लँगूर-(सं० लांगूल)-१ बंदर, बड़ी पूँछवाला एक विशेष बंदर, २ पूँछ। उ० २ खोरि खोरि धाइ धाइ बाँधत लँगूर हैं। (क० ५।३)
लंगूर-दे० 'लँगूर'।
लंगूल-दे० 'लँगूर'।
लँघि-(सं० लंघन)-लाँघकर। उ० जलधि लँघि, दहि लंक। (वि० २१) लँघेउ-लाँघा, लाँघ गए। उ० तुलसी प्रभु लँघेउ जलधि। (प्र० ५।१।७)
लंपट-(सं०)-१ व्यभिचारी, कामी, लुच्चा, २ झूठा, लबार। उ० १ लंपट कपटी कुटिल बिसेषी। (मा० १।११२।१)
लंबित-(सं०)-लंबा। उ० सोभित स्रवन कनक-कुंडल कल लंबित बिबि भुजमूले। (गी० ७।१२)
लइ-लेकर। दे० 'लइ'। लई-(सं० लभन, हिं० लहना)-१ लिया, ग्रहण किया, पाया, २ लेकर, ३ लिवाकर। उ० २ मगन भरथ बाँधहे लेते चले लई। (पा० १२८)
लउ-दे० 'लव'।
लकड़ी-(सं० लगुड)-पेड़ का कोई स्थूल अंग, काठ। उ० लकड़ी डौवा करछुली सरस काज अनुहारि। (दो० ४२६)
लकीर-(सं० रेखा ?)-धारी, रेखा।
लकुट-(सं० लगुड)-लकड़ी, छड़ी, लाठी। उ० निपटहिं बाँगति निठुर ज्यों, लकुट कर तें दाद। (कृ० १४)
लकुटि-दे० 'लकुट'।
लकुटी-लकड़ी, छड़ी लाठी। उ० डारि दे घर-धर्मी लकुटी बेगि करतें। (कृ० १०)
लक्ष-(सं० लक्ष)-लाख, लक्ष, सौ हजार। उ० लक्ष में पक्खर तिक्खन तेज जे सूर समाज में गाज गने हैं। (क० ६।३३)
लक्खन (१)-दे० लक्ष्मण। उ० ते रन तीर्थनि लक्खन लाखन-दानि ज्यों दारिद दाबि दले हैं। (क० ६।३३)
लक्खन (२)-(सं० लक्षण)-चिह्न, लच्छन, लक्षण।
लक्खौ-(सं० लक्ष)-देखो।
लक्ष (१)-(सं०)-एक लाख, सौ हजार।
लक्ष (२)-(सं० लक्ष्य)-१ ध्येय, २ निशाना।
लक्षण (१)-चिह्न, पहचान।
लक्षण (२)-(सं० लक्ष्मण)-राम के भाई लक्ष्मण।
लक्षित-(सं०)-१ बतलाया हुआ, निर्दिष्ट, २ जाना हुआ, विदित।
लक्ष्मण-(सं०)-दशरथ के चार पुत्रों में से दूसरे जो शेष के अवतार कहे जाते हैं। इनका विवाह उर्मिला से हुआ था। ये राम और सीता के साथ बन में गए थे, जहाँ इन्हें शक्ति लगी थी। सुमित्रा इनकी माता तथा शत्रुघ्न छोटे भाई थे। उ० जयति लक्ष्मण, अनंत भगवंत भूधर, भुजगराज, भुवनेश भूभार हारी। (वि० ३८)
लक्ष्मिनिवास-(सं० लक्ष्मीनिवास)-विष्णु।
लक्ष्मी-(सं०)-१ विष्णु की पत्नी जो धन की अधिष्ठात्री देवी हैं। इनकी उत्पत्ति समुद्र-मथन से हुई थी। २ धन, समृद्धि, संपदा।
लक्ष्य-(सं०)-१ निशाना, २ उद्देश्य, ध्येय, ३ हीला, बहाना।
लख-(सं० लक्ष)-१ लक्ष्य, निशाना, २ लखो, देखो। लखइ-१ देखता है, २ दिखाई देता है। लखत-१, देखता है, निहारता है, २ देखकर, ३ देखते ही। उ० १ सुनत लखत श्रुति नयन बिनु रसना बिनु रस लेत। (वै० ३) २ तुलसी लखत राम-रावन बिबुध, बिधि। (क० ६।४१) लखहिं-देखते हैं। लखहु-१ देखो, २ देखते, देखती। उ० १ लखहु न भूप कपट चतुराई। (मा० २।१४।१) लखा-१ देखा, अवलोका, २ जाना, देखा भाला, ज्ञात। उ० १ सो सरूप नृपकन्याँ देखा। (मा० १।१३४।१) लखि-१ देख, देखकर, २ देखा, अवलोका। उ० १ रघुबर बिकल बिहग लखि, सो बिलोकि दोउ बीर। (दो० २२१) लखियत-देखी जाती है, दिखाई पड़ती है। लखी-१ देखी, जानी, २ समझा, समझ गए, भाँप लिया। उ० १ लखी श्री लगाई हृदा किए सुभ माँग। (गी० २।२१) लखु-देख, देखो। उ० अद पथ मिलै यदि देव करी, मरनी लखु की धानीयर की। (क० ७।२७) लखे-१ देखे, पहिचाना, जाना, २ देखने पर, जानने पर। उ० १ सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दए। (मा० १।३२१।छं० १) लखेउ-१ लखा, २ पहिचाना। लखै-देखे, जाने, समझे। उ० लखै अघानो भूख ज्यों, लखै जीति में हारि। (दो० ४७१) लख्यो-देखा। उ० जानकी नाम को नेह लख्यो, पुलको तनु, बारि बिलोचन बाढ़े। (क० २।१२)
लखन-दे० 'लक्ष्मण'। उ० राम लखन सम प्रिय तुलसी के। (मा० १।२०।२)
लखाउ-(सं० लक्ष)-निशानी, पहचानने का। उ० भाई

मोरिबे जोग कपार, किधौं कछु काहू लखाइ दियो है। (क० ७।१५७) लखाई-दिखाई, दिखाया। उ० सखी ज्यौं लखाई इहाँ किए सुभ सामैं। (गी०२५) लखाए-दिखाया।
लखाउ (स० लक्ष्य)-१ गुप्त भेद, रहस्य, २ लखने योग्य, जानने योग्य, ३ पहचान, चिह्न रूप में दिया गया पदार्थ, ४ पता, पता लगना, प्रकट होना। उ० १ जान कोउ न जानकी बिनु अगम अलख लखाउ। (गी०७।२५) २ दियो सीय प्रबोध मुँदरी दियो कपिहि लखाउ। (गी० ५।४) लखाऊ-दे० 'लखाउ'। उ० ३ और एक तोहि कहउँ लखाऊ। (मा० १।१६८।२) ४ आएहु बेगि न होइ लखाऊ। (मा० २।२७१।४)
लगं-(स० लग्न)-तक, लौं, पास।
लगत-(स० लग्न)-१ लगते ही, २ लगता है, जुटता है। उ० १ सरद चंद चंदिनि लगत जनु चकई अकुलानि। (मा० २।७८) लगति-लगती है। लगनि-लगना, लग्ना। उ० नहिं बिसरति वह लगनि कान की। (गी०२।११) लगहिं-१ लगते हैं, २ लगे, समझ पड़े। उ० २ तेहि लघु लगहिं भुवन दस चारी। (मा० १।२८१।४) लगि (१)-१ तक, पर्यंत, २ लगकर, ३ लगे, ४ लिए, वास्ते। उ० १ जदुपति मुखछबि कलप कोटि लगि कहि न जाइ जाके मुख चारी। (कृ० २२) २ जिन्ह लगि निज परलोक बिगार्‌यो ते लजात होत ठाढ़े ठायँ। (वि० ८३) लगिहहु-लगेगा, लगोगे लगेंगे। लगी-लग गई, जुट गई। उ० तुलसी अति प्रेम लगीं पलकैं। (क०२।२३) लगी-लग गई। लगु-लगो। लगें-दे० 'लगे'। उ० १ आजु लगें अरु जग में भयऊँ। (मा० १।१६७।२) लगे-१ तक, पर्यंत, २ लग गए, चिमट गए, ३ आरंभ किया। उ० १ जीव चराचर जहँ लगे है सब को हित मेह। (दो०२५४) २ सकुचि लगे जननी उर धाई। (कृ० १३) ३ निदरि लगे बदि काढ़न। (वि० २१) लग्यो-१ लगा, लग गया, २ आरंभ किया ३ लगा हुआ। उ० १ लग्यो मन बहु भाँति तुलसी होइ क्यों रस भंग। (कृ० ५४) २ द्रुपदसुता को लग्यो दुसासन नगन करन। (वि० २१३)
लगन-(स० लग्न)-१ समय, २ उचित समय, लग्न, साइत, मुहूर्त, ३ टीका, ४ लगना, ध्यान लगाना, ५ प्रेम, ६ मेल, ७ संबंध, ८ विवाहादि होने के दिन। उ० २ जोग लगन ग्रह बार तिथि, सकल भए अनुकूल। (मा० १।१६०)
लगनवट-(स० लग्न+वट)-राही या पथिक से प्रेम। उ० पाही खेती लगनवट ऋन कुब्याज, मग खेत। (दो०४७८)
लगाइ-(स० लग्न)-लगाकर। उ० लिए उठाइ लगाइ उर लोचन मोचति बारि। (मा० २।१६४) लगाइय-१ लगाया, २ लगाकर, ३ लगाइए। लगाई-१ लगाया, लगा लिया, २ लगाकर। उ० १ कौसल्याँ लिए हृदय लगाई। (मा० २।१६७।१) लगाउ-१ संबंध, नाता, २ लगाओ, जोड़ो। लगाऊ-१ संबंध, मिलाप, २ साथी, जो लगा हो, ३ लगाओ। उ० २ जस जस चलिय दूरि तस तस निज बास न भेंट लगाऊ रे। (वि० १८९) लगाए-लगाया, जुटाया। लगावत-लगाते हैं। लगावति-लगाती है, लगाती हैं। लगावहिं-लगाते हैं। लगाया-लगाया, सटाया। उ० कपि उठाइ प्रभु हृदय लगाया। (मा० ५।३३।२)
लगाव-(स० लग्न)-संबंध, वास्ता, रिश्ता।
लगि (२)-(सं० लगुड)-१ लग्गी, बाँस, २ मछली पकड़ने की बंसी। उ० २ नाम-लगि लाइ, लासा-ललित बचन कहि। (वि० २०८)
लग्न-(स०)-दे० 'लगन'।
लघिमा-(सं० लघिमन्)-१ आठ सिद्धियों में चौथी जिसको प्राप्त कर लेने पर मनुष्य बहुत छोटा या हलका बन सकता है। २ लघुत्व, लाघव, छुटाई।
लघिष्ट-(स०)-छोटा, नीच, अत्यंत छोटा।
लघु-(स०)-१ छोटा, तुच्छ, २ हलका, जो भारी न हो, ३ शीघ्र, तुरत ४ थोड़ा, ज़रा सा, कम, ५ निकृष्ट, नीच, ख़राब, ६ ह्रस्व वर्ण, एकमात्रिक स्वर। उ० १ सब लघु लगे लोकपति लोक। (मा० २।२१५।१) लघुन्ह-छोटे, छोटे आदमी। उ० बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं। (मा० १।१६७।४) लघुहिं-लघुओं पर, छोटों पर। उ० बड़ रतहिं लघु के गुनहिं तुलसी लघुहिं न देत। (स० ६३४)
लघुतहि-लघुता को, छोटाई को। उ० जो लघुतहि न मितैहो (वि० २७०) लघुता-(स०)-१ छोटापन, तुच्छता, छोटाई २ हलकापन। उ० १ रावरी राम बड़ी लघुता, जस मेरो भयो सुखदायक ही को। (क० ७।५६)
लच्छ (१)-(स० लक्ष्मी)-लक्ष्मी, श्री, विष्णु की स्त्री। उ० मरकतमय साखा, सुपत्र मंजरिय लच्छ जेहि। (क० ७।११५)
लच्छ (२)-(स० लक्ष)-एक लाख, सौ हज़ार। उ० चार लच्छ बर धेनु मगाई। (मा० १।३३१।१)
लच्छ (३) (सं० लक्ष्य) निशान। उ० मनहु महिप मृदु लच्छ समाना। (मा० २।४१।१)
लच्छन-(स० लक्षण)-१ निशान, लक्षण, २ शुभ गुण, अच्छे लक्षण। उ० २ लच्छन धाम रामप्रिय सकल जगत आधार। (मा० १।११७)
लच्छा-(स० लक्ष)-लाख, एक लाख। उ० सत्य-मध पुरि सर लच्छा। (मा० ६।६८।२)
लच्छि-(सं० लक्ष्मी)-१ रमा, लक्ष्मी, २ धन। उ० १ एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता सुखमूल। (मा० १।२४७)
लच्छिनिवास-दे० 'लच्छिमनिवास'।
लच्छिनिवासा-दे० 'लच्छिमनिवास। उ० दुमदिनि सौ गे लच्छिनिवासा। (मा० १।१२५।२)
लछि-दे० 'लक्ष्मी'।
लछिमन-दे० 'लक्ष्मण'। उ० एक जीभ कर लछिमन दूसर सेष। (ब० २७) लछिमनहि-लक्ष्मण को। उ० प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई। (मा० २।२७।४) लछिमनहु-लक्ष्मण भी। लछिमनहूँ-लक्ष्मण भी। उ० लछिमनहूँ यह मरमु न जाना। (मा० ३।२४।३)
लछिमनु-दे० 'लक्ष्मण'।
लजाइ-(स० लज्जा)-१ लज्जित होकर, लजाकर, २ लज्जित होती है। उ० १ उपमा बरनत लजाइ भारती

लजाइ। (जा० १९८) लजाइ-दे० 'लजाइ'। लजाए-१ लज्जित कर दिए, २ लज्जित हो गए। उ० १ दस रथपुर छवि आपनी सुरनगर लजाए। (गी० ११६) लजात-लजाता है शर्मिंदा होता है। उ० जिन्ह लागि निज परलोक बिगर्‌यो ते लजात होत ठाढ़ ठायँ। (वि० ८३) लजान-लजा गया, शर्मा गया। उ० विधि बस बलउ लजान। (जा० ६७) लजाना-लजा गया। लजानि-लजा गई, शर्मा गई। लजानी-दे० 'लजानि'। लजाने-लज्जित हुए। उ० मन्न को विरह, अरु सग मदर को, कुवरिहि बरत न नेकु लजाने। (कृ० ३८) लजायो-१ लज्जित किया, २ लज्जित हुआ। लजावै-१ लज्जित करे, २ लज्जित हो। लजाहि-लज्जित होता। उ० ताको कहाय कहै तुलसी तू लजाहि न माँगत कूकुर कौरहि। (क० ७।२६) लजाहीं-लजाते हैं, लज्जित होते हैं। उ० देखि दसा मुनिराज लजाहीं। (मा० २।३२१।२) लजै-लज्जित होता है। उ० तदपि अधम विचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजै। (वि० ८९)

लजारू-दे० 'लजालू'। उ० २ जनकवचन छुए बिरवा लजारू के से। (गी० ११८२)

लजालु-(सं० लज्जालु)-१ शर्मीला, लजानेवाला, २ लज्जावती घास, लजानेवाला पौदा।

लजावनिहारे-लजानेवाला, लज्जित करनेवाले। उ० कोटि मनोज लजावनिहारे। (मा० २।११७।१)

लज्जा-(सं०)-शर्म, लाज।

लज्जित-(सं०)-लज्जायुक्त, शर्मिंदा।

लट (१)-(सं० लट)-दुबला होकर, कमजोर होकर। उ० तौ लटि लिपट निरादर निसिदिन रटि लट एसो घटि को तो। (वि० १६१)

लट (२)-(सं० लट्वा)-केशपाश, लटूरी, सर के उलझे बालों का समूह। उ० त्रिविध भाँति के लपट बर बिघट न लट परमान। (स० ३२२) लटैं-लट का बहुवचन, बालों के उलझे गुच्छे। उ० घुँघुरारी लटैं लटकैं मुख ऊपर, कुंडल लोल कपोलन की। (क० १।५)

लट (३)-(सं० लट् लकार)-आजकल, वर्तमान समय में। उ० तुलसी लट पद तें भन्क अटक अपि तु नहि ज्ञान। (स० ३०१)

लटकन-(सं० लटन)-१ मस्तक पर पहनने का गहना जिसे झूमर कहते हैं। २ अन्य कोई भी गहना जो लटकाकर पहना जाता हो, ३ लटकना, लटकने की क्रिया। उ० १ गभुआरी अलकावली लसी, लटकन ललित ललाट। (गी० १।१९) ३ मेरी लटकन मनि कनक-रचित, बाल-भूषन बनाइ आछे अग अग ठए हैं। (गी० १।११)

लटकैं-(सं० लटन)-लटकती हैं। उ० दे० 'लटैं'।

लटत-(सं० लट)-१ लड़खड़ाता है, २ कटता है, दुबला होता है, ३ हिम्मत हारता है, झुक जाता है, ४ गुर भाता है, ५ आसक्त होता है, रत होना है, ६ मरता है। उ० १ परिहरि सुरमनि सुनाम गुजा लखि लटत। (वि० १२९) ३, मरट विकट भट लुरत कटत न लटत तन जर्जर भए। (मा० ६।४१३।छं० १) लटा-१ दुबला, निर्बल, अशक्त, असमर्थ, २ लट गया, दुर्बल हो गया।

लटि-१ लटकर, थककर, २ दुर्बल होकर, ३ लटा हुआ, थका, हैरान। उ० १ श्री रघुवीर निवारिए पीर, रहौं दरबार परो लटि लूलो। (क० ३६) लटी-१ थक गई, हैरान हो गई, २ दुर्बल, कमजोर, ३ बुरी या झूठी बात उ० १ रटत रटत रसना लटी तृषा सूखि गे अग। (दो० २८०) लटे-१ पतित, नीचे गिरे, २ दुर्बल, शिथिल। उ० १ लटे लटपटनि को कौन परि गहैगो? (वि० २२६) लटयो-१ फँसा हुआ, सना हुआ, २ दुर्बल, कमजोर। उ० १ कल बिमोह लटयो फट्यो गगन-मगन सियत। (वि० १३२)

लटपटा-(सं० लट + पट) १ गिरता पड़ता, लड़खड़ाता हुआ, २ ढीला, जो चुस्त हो, ३ जीर्ण-शीर्ण, टूटा-फूटा, ४ अस्त-व्यस्त, अड-बड, ५ अशक्त, बेबस।

लट्टू-(सं० लडन)-मुग्ध, मोहित, आसक्त। उ० आ मुख की लालसा लट्टू सिव, सुक सनकादि उदासी। (गी० १।८)

लटूरीं-(सं० लट्वा)-छोटे छोटे बालों की उलझी लटें। उ० लटकन लसत ललाट लटूरीं। (गी० १।२८)

लड़काई-(?)-लड़कपन, बचपन।

लड़ाइ-(सं० लालन, लाड)-लाड़कर, प्यार कर। प्रमुदित महा मुनिवृंद बदे पूजि प्रेम लड़ाइ कै। (मा० १।३२१। छं० १)

लड़ाई-(सं० रणन)-युद्ध, समाम, संगर।

लड़ी-(सं० यष्टि, प्रा० लट्ठि) पंक्ति, माला।

लत-(सं० रति)-आदत, बान, टेव।

लता-(सं०)-१ बेलि, लतर, बल्ली, २ सुंदर स्त्री। उ० १ श्रीफल कुच कचुकि लताजाल। (वि० १४)

लताभवन-लताओं का भवन, कुंज लतामंडप। उ० लता भवन तें प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाइ। (मा० १।२३२)

लतिका-(सं०) छोटी और कोमल लता।

लतिया-(सं० रति)-बुरी चाल का, कुचाली।

लत्ता-(सं० लक्तक)-फटा पुराना कपड़ा, चिथड़ा।

लपक-(अनु० लप)-१ ज्वाला, लपट, लौ, २ प्रकाश, ३ शोभा, आभा।

लपट-(?)-१ आग की लौ, ज्वाला, २ गंध, महक। उ० १ कपट लपट भरे भवन भँडारही। (क० २।२२) लपटैं-१ ज्वालाएँ, अग्निशिखाएँ, २ गंध, महक। उ० १ बार धुआ चहुँ ओर चलीं, लपटैं झपटैं सो तमीचर तौंकी। (क० ७।१४३)

लपटाइ-१ लिपटकर, २ लपेटे हुए। लपटाई-१ लिपट जाता है, लिपटता है, २ लपटाकर, ३ लपटाना, लपटती। उ० १ भ्रमत अभ्रम अभ्यास निरत चित अधिक अधिक लपटाई। (वि० ८२) लपटानि-लिपटी हुई, सनी हुई। उ० परमारथ-पहिचानि मति लसति विषय लपटानि। (दो० २५३) लपटाने-१ लपटे हुए, २ लिपट गए। लपटावहिं-१ लिपटाते हैं, २ लपटे रहते हैं, लपटाए रहते हैं। उ० २ भाँग धतूर अहार, छार लपटावहिं। (पा० २७)

लपत-(अनु० लप)-लपकते हैं, लेना चाहते हैं। उ० साधन बिनु सिद्धि सकल बिकल लोग लपत। (वि० १३०)

लपेट-(सं० लिप्त)१ लपेटने की क्रिया या भाव, २ बंधन

का चक्कर, ३ घुमाव, फेर, ४ घेरा, ५ उलझन, जाल। लपेटनि-लपेटों में। उ० वानर भालु चपेट चपेटनि मारत त्यय ह्वै है पछितायो। (गी० ६।४)

लपेटन-(सं० लिप्त)-१ लपेटनेवाली वस्तु, वेठन, वेष्टन, २ उलझनेवाली वस्तु, ३ एक घास जो लिपट जाती है। ४ झरबेरी, या करील आदि लपटनेवाले पौधे। उ० ३ कांट कुरायँ लपेटन लोटन ठाँवहि ठाँउँ बझाऊ रे। (वि० १८९)

लपेटि-१ लपेटकर, लिपटाकर, १ लपेट में। उ० १. आँधी लूम ललत लपेटि पटकत भट। (क० ६।४०) २ लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू। (मा० २।२३०।१)लपेटे-१ लपेटा लपेट लिया, २ लपेटे हुए। उ० २ मुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे। (मा० २।१००)

लबार-(सं० लपन)-झूठा, मिथ्यावादी, गप्पी। उ० साँचेहु मैं लबार भुज बीहा। (मा० ६।३४.४)

लबारा-दे० 'लबार'।

लबारु-दे० 'लबार'। उ० नोकरीति-लायक न, लगार लबारु है। (क० ७।६७)

लबेद-(बेद के अनु०)-बेद के विरुद्ध, अवैदिक। उ० साम दान भेद विधि, बेदहु लबेद सिद्धि। (ह० २८)

लब्ध-(सं०)-प्राप्त उपार्जित।

लब्धि-(सं०)-प्राप्ति, लाभ हाथ में आना।

लभ्य-(सं०)-प्राप्त, प्राप्ति के योग्य।

लय-(सं०)-१ लगन, प्रेम, २ स्वर ताल युक्त ध्वनि, ३ चित्त की वृत्तियों को किसी एक चीज़ पर लगाना, एकाग्रता, ४ विनाश, प्रलय, ५ लीन, लयलीन। उ० १ साधक नाम जपहिं लय लाएँ। (मा० १।२२।२) ४ भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। (मा० १।२८।२)

लयउ-(सं० लभन)-१ लगा, २ लिया। उ० १ आपन नाम कहत तब लयउ। (मा० १।१६३।४) लये-लिया। लयो-लिया, ग्रहण किया, फाटकर लिया। उ० तेरे राज राय दसरथ के लयो। (वि० १६१) लयौ-१ पाया है, लिया है, २ रखा है।

लयकारी-(सं० लयकारिन्) लय या प्रलय करनेवाला।

लयलीन-(सं० लय + लीन) निमग्न, पूर्णत: लीन। उ०मधु मनसहि लयलीन मनु चलत बाजि छवि पाय। (मा० १।३१६)

लरखरनि-(?)-लड़खड़ाना, डगमगाना। उ०बसति तुलसी हृदय प्रभु किलकनि ललित लरखरनि। (गी० १।२४) लरखरे-लड़खड़ाए, लड़खड़ाकर गिरे। उ० गजेंड सी गर्जि घोर धुनि सुनि भूमि भूधर लरखरे। (जा० ११०)

लरत-(सं०रणन)-लड़ते हुए। उ०कोउ न हमारें कटक अस तो सन लरत जो सोह। (मा०६।२३ ख) लरन-लड़ना। उ० तेरी सौं कहौं ताकी टेव लरन की। (ह० ८) लरनि-लड़ाई, लड़ना। उ० देखो देखो लखन लरनि हनुमान की। (क० ६।४०) लरहिं-लड़ते हैं, २ लड़ें। उ० २ लरहिं सुखेन कालु किन होऊ। (मा० १।१८४। १) लरहीं-दे० 'लरहिं'। लरि-लड़कर। उ० दोवहिं परसपर रामकरि संग्राम रिपुदल लरि मरयो। (मा० ३।२०।छं० ४) लरिबे-लड़ने, लड़ाई करने। लरौं-लड़ता हूँ, तकरार करता हूँ। उ० जल सीकर सम सुनत लरौं। (वि० १४१)

लराई-(सं० रणन)-युद्ध, लड़ाई। उ० हारे सुर करि बिबिध लराई। (मा० १।८२।४)

लरिकई(?)-लड़कपन। उ० कैधौं कुल को प्रभाव कैधौं लरिकई है? (गी० १।८५)

लरिकनी-(?)-लड़की। उ० बधू लरिकनीं पर घर आईं। (मा० १।३५५।४) लरिकनी-बच्ची, लड़की।

लरिकन्ह-१ लड़कों पर, २ लड़कों ने। उ० १ करम सदा लरिकन्ह पर छोहू। (मा० १।३६०।४) २ बात प्रसि लरिकन्ह कही। (मा० १।३२।छं० १)

लरिकपन-लड़कपन। उ० खेलत खात लरिकपन गो चलि। (वि० २३४)

लरिकवनि-लड़कों से। उ०कहै मिथ्याप लरिकवनि बूझत। (गी० १।६०)

लरिकहि-१ लड़के को, २ लड़के से।

लरिका-(?)-लड़का। उ० या मज में लरिका घने हौंही अन्याई। (कृ०८) लरिकै-बाल कही, लड़का ही। लरिको-लड़के भी। उ० जाके जिए सुप सोच करिहैं न लरिको। (ह० ४२)

लरिकाइय-लड़कपन ही। उ० जौ यर लागि करहु सबु सौ लरिकाइय। (पा०२१) लरिकाई-लड़कपन में।

लरिकाइ-लड़कपन। उ० लरिकाई बीती अचेत चित। (वि० ८३)

लरिकिनी-दे० 'लरिकनी'।

ललक-(सं० ललन)-प्रबल अभिलाषा, इच्छा। उ० ऐसेहु लाभ न ललक जो तुलसी नित हित हानि। (दो० ३७)

ललकत-(सं० लसता) लालयित होते हैं ललचाते हैं। उ० ललकत लखि ज्यों कँगाल पातरी सुनाज की। (क० ६।३०) ललकि-लालच में पड़कर लालायित होकर, दौड़कर। उ० सुत ललाम लखिहु लजित लेहु ललकि फल चारि। (प्र० ४।४।३)

ललचानी-(सं० लालसा)-लालच की, लोभे। उ० राम प्रसाद माल जूँठनि लगि त्यों न ललकि ललचानी। (वि० १००) ललचानि-लालच किए। ललचायो-लालच किया। उ० नाथ हाथ कछु नाहिं लग्यो लालच ललचायो। (वि० २०६)

ललन-(सं०)-१ प्यारा, २ बच्चा, प्यारा पुत्र ३ कौतुक, तमाशा। उ० २ ललन लोने लेरुआ बलि मैया। (गी० १।१७) ३ बार बार भरि अंक गोद लै ललन कौन सों करिहौं। (गी० २।४)

ललना-(सं०)-१ स्त्री, सुंदर स्त्री २ बच्चा। उ० १ छवि ललनागन मध्य जनु सुषमा तिय कमनीय। (मा० १।३२१) २ मातु दुलारहिं कहि प्रिय ललना। (मा० १।१६८।४)

लला-(सं० लालक)-प्यार से बालक आदि के लिए संबोधन, दुलारा, प्यारा। उ० रामलला कर नहछू गाइ सुनाइ हम हौं। (रा० १)

ललाइ-(सं० लालसा)-ललचाकर, तरस-तरस कर। उ० नहि लालची ललाइ कै। (गी०२।२८) ललाई (?)-लाल-

पाया, प्राप्त किया। उ० नारि बिरह दुख लहेउ अपारा। (मा० १।४६।७) लहेऊ–दे० 'लहेउ'। लहैं–१ पावें, प्राप्त करें, २ प्राप्त करते हैं, पाते हैं। उ० २ जाके बिलोकत लोकप होत बिसोक लहैं सुर लोग सुगौरहि। (क० ७। २६) लहै–पावे, प्राप्त करे, प्राप्त करता है। उ० जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै। (मा० १।१६२।छं० २) लहो–पाया, प्राप्त किया। उ० नाहीं काहू लहो सुख प्रीति करि इक अंग। (कृ० २४) लहौं–पाऊँ प्राप्त करूँ। लहौंगो–प्राप्त करूँगा। उ० चारि तिहारो निहारि मुरारि भए परसे पद पाप लहौंगो। (क० ७।१३७) लह्यो–पाया, प्राप्त किया। उ० हौं तो बलि जाउँ राम नाम ही ते लह्यो हौं। (वि० २६०)

लहकौरि–(सं० लाभ + कवल)-विवाह की एक रीति जिसमें दूल्हा और दुलहिन एक दूसरे के मुँह में कौर डालते हैं। उ० लहकौरि गौरि सिखाय रामहि सीय सन सारद कहैं। (मा० १।३२७छं० २)

लहर–(सं० लहरी) तरंग, हिलोरा।

लहरि–दे० 'लहर'। उ० दुखद लहरि कुतर्क बहु भाता। (मा० ७।६३।६)

लहरी–मनमौजी, मस्त।

लहलहात–(अनु०)-१ लहलहाते हुए, २ लहलहाता है। उ० १ राम मारगन गन चले लहलहात जनु ब्याल। (मा०६।९१) लहलहे–सरसता से भरे। उ०लहलहे लोयन सनेह सरसई है। (गी० १।६४)

लहालहे–(अनु०)-हरे भरे। उ० दखि मनोरथ सुरतरु ललित लहालहे। (जा० ११८)

लांगल–(सं०)-खेत जोतने का हल।

लांगूल–(सं०)-पूँछ।

लाँघि–(सं० लघन)–लाँघकर, कूदकर। उ० जलधि लाँघि बहि लक प्रबल बल। (वि० ३२) लाँघे–कूदे, पार हुए।

लांछा–(सं०)-१ कलंक, दोष, २ निशान, चिह्न। उ० २ भ्राज श्रीवत्स लांछन, उदारम्। (वि० ६१)

ला–(सं० लभन ?)-ले आ। लाइ–१ लगा, लगा दे, २ लगाकर, लगा, ३ ले आकर। उ० २ राम कुचरघा करहि सब सीतहि लाइ कलक। (प्र० ६।६।४) लाइए–लगा दीजिए। उ० सकल गिरिनि दव लाइए बिनु रवि राति न जाइ। (दो० ३८६) लाइय–१ लाइए, २ लगाइए। लाइयत–लगाते हैं। उ० मधुर पहेरे को बनाय बाग लाइयत। (क० ७।६६) लाइयो–लगाया, लगा लिया। उ० सब भाँति अधम निषाद सो हरि भरत ज्यो उर लाइयो। (मा० ६।१२१।छं०२) लाइहउँ–दे० 'लाइहौं'। लाइहौं–१ लगाऊँगा, २ लाऊँगा। उ० १ कृपानिकेत पद मन लाइहौं। (मा० ३।२६।छं० १) लाई (१)–१ ले आई २ लगा दी ३ डाल दी ४ लगाकर। उ० १ काम्ह हमारी लाइ। (कृ० ८) ४ राखेउँ मान लाज निहि लाई। (मा० २।२४।१) लाउब–लायेंगे। उ० तिन निज ओर न लाउब भोरा। (मा० १।६।१) लाएँ–लाकर, लगाकर। उ० पियत जो लोचन अंजुलि लाएँ। (मा० १।११०।२) लाय (१)–१ लाकर, लगाकर। लायउ–लगाया। उ० मुनि मनसहु ते अगम तपहि लायउ मनु। (पा० ३८) लाया–१ ले आया, २ लगाया। लाये–१ लगाए, २ ले आए ३ पकड़े हुए। उ० १ तरु जे जानकी लाये ज्याये हरि करि कपि। (गी० ३।६) २ कौसल्या कल कनक अजिर महँ सिखवति चलन अँगुरियाँ लाये। (गी० १।२३) लायो–१ लगाया हुआ, २ लगा रखा है। उ० २ भजहि न अजहुँ समुझि तुलसी तेहि जेहि महेस मन लायो। (वि० २००) लावतीं–लगाती हैं, मिलाती हैं। उ० चद की किरन पीवैं पलकौं न लावतीं। (क० ११।२) लावहिं–लगाते हैं, लाते हैं। उ० रज सिर धरि हियँ नयनन्हि लावहिं। (मा० २।२३८।२) लावहि–१ लाता है, २ ला। उ० २ बाद बिबाद स्वाद तजि भजि हरि सरस चरित चित लावहि। (वि० २३७) लावहु–लाओ, लगाओ। उ० गदरु जनि लावहु। (जा० ३२) लावा (१)–लाया।

लाई (२)–(सं० लग्न)–लिए, वास्ते।

लाक (१)–(सं० लक)-कमर, कटि।

लाक (२)–(?)–भूसा।

लाकरी–(सं० लगुड)-लकड़ी। उ० पावक परत निषिद्ध लाकरी होति अनल जग जानी। (कृ० ४१)

लाख (१)–(सं० लक्ष)-सौ हजार। उ० आकर चारि लाख चौरासी। (मा० १।८।१) लाखन–लाखों, बहुतेरों, बहुत। उ० १ हने भट लाखन लखन जातुधान के। (क०६।४८) लाखनि–लाखों। उ० राम नाम ललित ललाम कियो लाखनि को। (क० ७।६८)

लाख (२)–(सं०)–लाह, लाही।

लाग–(सं० लग्न)–१ प्यार, २ बैर, ३ मेल, ४ लगा, लगे, संयुक्त हो, ५ होड़, बराबरी, ६ तक, ७ लिए। उ० ४ सचिव योनि सठ लाग बचा घन। (मा० २।२६।२) लागइ–१ लगता है, २ लग। लागई–दे 'लागइ'। लागउँ–लगता हूँ। उ० बार बार पद लागउँ बिनय करउँ दससीस। (मा० २।२१ क) लागत–लगता है। उ०प्रसुरग कटे नभि लागत जग अँधियार। (ब०३१)लागति–लगती है। लागहिं–लगती हैं। लागहि–लगता है। लागहीं–१ लगती हैं, लगते हैं, २ लगते थे। उ० २ सधानि धनु सर निकर छाड़ेसि उरग जिमि उड़ि लागहीं। (मा०६।८२।छं०१)लागहु–१ लागो, लगो, २ लगा। लागा–लगा। उ०भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा। (मा०२।१५।१) लागि–दे०'लागी'। उ०४ लघु लागि बिधि की निपुनता। (?) ७ और बरहि लागि तप कीन्हा। (मा०१।८७।१) लागिअ–लगा जाय, आक्रमण किया जाय। उ०कहि बिधि लागिअ करहु बिचारा। (मा० ६।३४।१) लागिहि–१ लगा, २ लगेगा। उ० २ नहि लागिहि प्रभु दाप तुम्हारे। (मा० २।५०।१) लागी–क लाग का स्त्रीलिंग, दे० 'लाग', ख विरोधी। उ० क ४ जमुना ज्यों ज्यों लागी बाढ़न। (वि० २१) क ७ जनम अनत जननि दुख लागी। (मा० ७।११६।५) लागु–१ लग जा, २ लग गया। उ० १ जा प्रिय पहसि परम सुख ता बहि मारग लागु। (वि०२०३)२ जहि चनुराग लागु चितु सोइ हितु आपन।

जाता था। उ० नीच निरादर भाजन कादर कूकर टूकन लागि ललाई। (क० ७।२७) ललात-१ तरसता, मिहकता, ललकता, ललचाता, २ प्रेमकरता है, ३ ललचानेवाला। उ० १ कृस गात ललात जो रोटिन को। (क० ७।४६)
ललाई (२)-(सं० लाल)-लाली, सुर्खी।
ललाट-(सं०)-भाल, कपाल। उ० ससि ललाट सुंदर सिर गंगा। (मा० १।६२।२)
ललाम-(सं०)-१ सुंदर, अच्छा, २ भूषण, ३ रत्न। उ० राम नाम ललित ललाम कियो लाखनि को। (क० ७।६८) ललामो-ललाम को भी, रत्न को भी। उ० उलटे पुलटे नाम महातम गुंजनि जितो ललामो। (वि० २२८)
ललामा-दे० 'ललाम'। उ० २ परम सुंदरी नारि ललामा। (मा० १।१७६।१)
ललित-(सं०)-१ सुंदर, अच्छा, मनोहर, २ चचल, हिलता डोलता, ३ कोमल, ४ विश्वास, ५ रागिनी विशेष, ६ एक नृत्य। उ० १ ललित ललाट पर राज रजनीश कल। (वि० ११)
ललिताई-शोभा, सुंदरता। उ० दच्छभाग अनुराग सहित इंदिरा अधिक ललिताई। (वि० ६२)
लली-(सं० लालक)-बालिका, लड़की।
लल्लाट-दे० 'ललाट'। उ० दे० 'ललित'।
लव-(सं०)-१ थोड़ा, रंच, २ समय का अत्यंत थोड़ा भाग, ३ राम का बड़ा पुत्र। उ० २ लव निमेष परमानु जुग बरष कलप सर चंड। (मा० ६।१। दो० १)
लवण-(सं०)-१ नमक, २ लवणासुर नाम का राक्षस जिसे शत्रुघ्न ने मारा था। उ० जयति लवणांबुनिधि कुंभसम्भव। (वि० ४०)
लवन-दे० 'लवण'। उ० अस कहि लवन सिंधु तट आई। (मा० ४।२६।१)
लवनि (१)-(सं० लवन)-पके खेत की कटाई की मजदूरी जो फसल (बोझ) रूप में ही दी जाती है। उ० रूप रासि बिरची बिरंचि मनो, सिला लवनि रति-काम लही री। (गी० १।१०४)
लवनि (२)-(सं० लवण)-सुंदरता।
लवलीन-(सं० लय + लीन)-लीन, व्यस्त, मग्न।
लवलेश-(सं०)-लेशमात्र, अत्यल्प।
लवलेसा-दे० 'लवलेश'। उ० नहि तहँ मोह निसा लव लेसा। (मा० १।११६।३)
लवा-(सं० लावा)-बटेर नाम का पक्षी। उ० लवा ज्यौं लुकात तुलसी झपेटे बाज के। (क० ६।१)
लवाइ-(सं० लभन)-लिवाकर, लाकर। उ० चले लवाइ समेत समाजहिं। (मा० २।२७२।४)
लवाई (१)-हाल की ब्याई हुई गाय। उ० निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई। (मा० ७।६।१)
लवै-(सं० लवन)-काटे, लुने। उ० पाप पुन्य द्वै बीज हैं बवै सो लवै निदान। (वै० ४)
लषन-दे० 'लक्ष्मण'। उ० सिय लघु भगिनि लषन कहँ रूप-उजागरि। (जा० १७२) लषनहि-लक्ष्मण को।
लषनु-दे० 'लषन'।
लषहीं-(सं० लक्ष्य) देखते हैं। लषिहौं-१ देखूँगा, २ देखकर।

लसंत-(सं० लसन)-विराजमान है। लस-शोभा देता है। उ० लस भासि बिंदु बदन बिधु नीको। (गी० १।२१)
लसई-शोभा देता है। उ० जनु मधु मदन मध्य रति लसई। (मा० २।१२३।२) लसत-शोभा देता है, शोभित है। उ० तड़ित अभोग सर्वांग सुंदर लसत। (वि० ११)
लसति-सोहती है, फबती है। उ० लसति हृदय भरत सी। (गी० ७।१९) लसंसि-तू शोभायमान होती है। उ० ईससीस ससि त्रिपथ लससि नभ पताल धरनि। (वि० २०) लसहिं-शोभा देते हैं। उ० कहत बचन रद लसहिं दसन जनु दामिनि। (जा० ८०) लसी-शोभित हुई, चमकी। उ० मानों लसी तुलसी हनुमान हिय जग जीति जराय की चौकी। (क० ७।१४३) लसै-सुशोभित है, शोभा देता है। उ० स्रम-सीकर साँवरि देह लसै मनो रासि महातम तारक मै। (क० २।११) लस्यो-शोभित हुआ। उ० कागर-कीर ज्यौं भूषन चीर सरीर लस्यो तजि नीर ज्यौं काई। (क० २।२) लस्यौ-दे० 'लस्यो'।
लसत्-दे० 'लसत'। उ० लसत् भाल बालेंदु कंठे भुजंगा। (मा० ७।१०८।३)
लसम-(?)-खोटा, दूषित। उ० लसम के खसम तुही पै दसरत्थ के। (क० ७।२४)
लसित-शोभित। उ० कनक-चुनिन सों लसित नहरनी लिये कर हो। (रा० १०)
लह-(सं० लभ्य)-१ प्राप्त, लब्ध, २ पाता। उ० २ रामकृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्राम। (दो० १२१)
लहइ-प्राप्त करता है, पाता है। उ० सादर जासु लहइ नित नासा। (मा० २।१२९।१) लहइ-प्राप्त करता है, पाता है। लहऊँ-प्राप्त करता हूँ। उ० सिसु क्रीड़ा बिलोकि सुख लहऊँ। (मा० ७।११४।७) लहत-पाता है। उ० सकल बड़ाई सब कहाँ तें लहत। (वि० २२६)
लहतो-पाता, प्राप्त करता। उ० लहतो जो जोई जोई लहतो, सो सोई सोई। (वि० २४६) लहब-पावेंगे। उ० सो फलु सुरत लहब सब काहू। (मा० १।६४।१) लहहिं-पाते हैं। उ० लहहिं सकल सोभा अधिकाई। (मा० १।१।१) लहहि-१ पाता है, २ पायगा। लहहीं-१ पाते हैं, २ पायेंगे। लहा-पाया, प्राप्त किया। उ० झूठे है झूठो है झूठो सदा जग संत कहत जे अंत लहा है। (क० ७।३१) लहि-पाकर। उ० नै लाहु लहि जनम सफल करि लेखहि। (जा० २१०) लहिअ-मिलता, पाया जाता। उ० लहिअ न कोटि जोग जप साधें। (मा० १।७०।४) लहिबो-पाना, पाओगी। उ० सानुज सेन समेत स्वामिपद निरखि परम मुद मगल लहिबो। (गी० ५।१४) लहिय-मिलता, पाया जाता है। उ० सुख कि लहिय हरि भगति बिनु। (दो० १२७) लहिहैं-पावेंगे। उ० फल लोचन आपन तौ लहिहैं। (मा० २।२२३) लहिहौं-पाऊँगा। लही-पाई, प्राप्त की। उ० अघनि पारि उधारि कियो सठ केवट मीत, पुनीत सुकीति लही। (क० ७।१०) लहे-प्राप्त किए। उ० कहु कहु लहे फल रसाल बबुर-बीज बयत। (वि० १३१) लहेउँ-मैंने पाई, पाया। उ० तुम्हरी कृपा लहेउँ बिस्रामा। (मा० ७।११२।४) लहेउ

पाया, प्राप्त किया। उ० नारि बिरह दुख लहेउ अपारा। (मा० १।४६।३) लहेऊ–दे० 'लहेउ'। लहैं–१ पावें, प्राप्त करें; २ प्राप्त करते हैं, पाते हैं। उ० २ जाके बिलोकत लोकप होत बिसोक लहैं सुर लोग सुठौरहि। (क० ७। २६) लहै–पावे, प्राप्त कर, प्राप्त करता है। उ० जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै। (मा० १।१६२।छं० २) लहो–पाया, प्राप्त किया। उ० नाहिंनै काहू लहो सुख प्रीति करि इक अंग। (कृ० ४४) लहौं–पाऊँ प्राप्त करूँ। लहौंगो–प्राप्त करूँगा। उ० यारि तिहारो निहारि मुरारि भए परसे पद पाप लहौंगो। (क० ७।१५७) लह्यो–पाया, प्राप्त किया। उ० हौं तो बलि जाउँ राम नाम ही ते लह्यो हौं। (बि० २६०)

लहकौरि–(सं० लाभ+कवल)–विवाह की एक रीति जिसमें दूलहा और दुलहिन एक दूसरे के मुँह में कौर डालते हैं। उ० लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सन सारद कहैं। (मा० १।३२७।छं० २)

लहर–(सं० लहरी) तरंग, हिलोरा।

लहरि–दे० 'लहर'। उ० दुसह लहरि कुतर्क बहु ब्राता। (मा० ७।६३।३)

लहरी–मनमौजी, मस्त।

लहलहात–(अनु०)–१ लहलहाते हुए, २ लहलहाता है। उ० १ राम मारगन गन चले लहलहात अनु ब्याल। (मा० ६।६१) लहलहे–सरसता से भरे। उ० लहलहे लोयन सनेह सरसई है। (गी० १।६४)

लहालहे–(अनु०)–हरे भरे। उ० देखि मनोरथ सुरतर ललित लहालहे। (जा० ११८)

लांगल–(सं०)–खेत जोतने का हल।

लांगूल–(सं०)–पूँछ।

लाँघि–(सं० लंघन)–लाँघकर, कूदकर। उ० जलधि लाँघि बदि लक प्रयत्न बल। (बि० ३२) लाँघे–कूदे पार हुए।

लांछन–(सं०)–१ कलंक, दोष, २ निशान, चिह्न। उ० २ आज श्रीवत्स-लांछन, उदारम्। (बि० ६१)

ला–(सं० लभन ?) ले आ। लाइ–१ लगा, लगा दे, २ लगाकर, लगा, ३ ले आकर। उ० २ राम कुँवरचा करहिं सब सीतहिं लाइ कलंक। (प्र० ६।६।४) लाइए–लगा दीजिये। उ० सकल गिरिन्ह दव लाइए बिनु रबि राति न जाइ। (दो० ३८६) लाइय–१ लाइए, २ लगाइए। लाइयत–लगाते हैं। उ० मधुर बहेरे को बनाय बाग लाइयत। (क० ७।६६) लाइयो–लगाया, लगा लिया। उ० सब भाँति अधम निषाद सो हरि भरत ज्यों उर लाइयो। (मा० ६।१२१।छं०२) लाइहउँ–दे० 'लाइहौं'। लाइहौं–१ लगाऊँगा, २ लाऊँगा। उ० १ कृपानिकेत पद मन लाइहौं। (मा० ३।२६।छं० १) लाई (१)–१ ले आई २ लगा दी ३ डाल दी, ४ लगाकर। उ० ३ कान्ह ठगौरी लाइ। (कृ० ८) ४ राखउँ प्रान लाव किहि लाई। (मा० २।५६।१) लाउब–लावेंगे। उ० तिन निज ओर न लाउब भोरा। (मा० १।६।१) लाएँ–लाकर, लगाकर। उ० बितए जो लोचन अगुनि लाएँ। (मा० १।११०।२) लाय (१)–१ लाकर, लगाकर। लायउ–



लगाया। उ० मुनि मनसहु ते अगम तपहि लायउ मनु। (पा० ४८) लाया–१ ले आया, २ लगाया। लाये–१ लगाए, २ ले आए, ३ पकड़े हुए। उ० १ तरु जे जानकी लाये ज्याये हरि करि कपि। (गी० ३।६) २ कौसल्या कल कनक अजिर महँ सिखवति चलन अँगुरियाँ लाये। (गी० १।२६) लायो–१ लगाया हुआ, २ लगा रखा है। उ० २ भजहि न अजहुँ समुझि तुलसी तेहि जेहि महेस मन लायो। (बि० २००) लावतीं–लगाती हैं, मिलाती हैं। उ० चंद की किरन पीवैं पलकैं न लावतीं। (क० १।१२) लावहिं–लगाते हैं, लाते हैं। उ० रज सिर धरि हियँ नयनन्हि लावहिं। (मा० २।२३८।२) लावहि–१ लाता है, २ ला। उ० २ बाद बिबाद-स्वाद तजि भजि हरि सरस चरित चित लावहि। (बि० २३७) लावहु–लाओ, लगाओ। उ० गहरु जनि लावहु। (जा० ३२) लाया (१)–छाया।

लाई (२)–(सं० लग्न)–लिए, वास्ते।

लाक (१)–(सं० लक)–कमर, कटि।

लाक (२)–(?)–भूसा।

लाकरी–(सं० लगुड)–लकड़ी। उ० पावक परत निषिद्ध लाकरी होति अनल जग जानी। (कृ० ४६)

लाख (१)–(सं० लक्ष)–सौ हजार। उ० आकर चारि लाख चौरासी। (मा० १।८।१) लाखन–लाखों, बहुतेरों, बहुत। उ० १ हने भट लाखन लखन जातुधान के। (क० ६।४८) लाखनि–लाखों। उ० राम नाम ललित ललाम कियो लाखनि को। (क० ७।६८)

लाख (२)–(सं०)–लाह, लाही।

लाग–(सं० लग्न)–१ प्यार, २ बैर, ३ मेल, ४ लगा, लगे, संयुक्त हो, ५ होड़, बराबरी, ६ तक, ७ लिए। उ० ४ सचिव बोलि सठ लाग बचाव। (मा० ५।५६।५) लागइ–१ लगता है, २ लगे। लागई–दे० 'लागइ'। लागउँ–लगता हूँ। उ० बार बार पद लागउँ बिनय करउँ दससीस। (मा० ५।३५ क) लागत–लगता है। उ० असुरन्ह कहँ लन्नि लागत जग अँधियार। (ब० ३५) लागति–लगती है। लागहिं–लगती हैं। लागहि–लगता है। लागहीं–१ लगती हैं लगते हैं, २ लगते थे। उ० २ सधानि धनु सर निकर छाड़सि उरग जिमि उड़ि लागहीं। (मा० ६।८२।छं० १) लागहु–१ लागो, लगो, २ लगा। लागा–लगा। उ० भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा। (मा० २।१४।१) लागि–दे० 'लागी'। उ० ४ लघु लागि बिधि की निपुनता। (?) ७ यौरे करहि लागि सब पीन्हा। (मा० १।६७।१) लागिअ–लगा जाय, आक्रमण किया जाय। उ० केहि बिधि लागिअ करहु बिचारा। (मा० ६।३६।१) लागिहि–१ लगा, २ लगेगा। उ० २ महि लागिहि कपु हाथ तुम्हारे। (मा० २।२०।३) लागी–क लाग का स्त्रीलिंग, दे० 'लाग', ख विरोधी। उ० क. ४ जमुना ज्यों ज्यों लागी बाढ़न। (बि० २१) ख ७ अनभल जगत जननि दुख लागी। (मा० ७।११६।५) लागु–१ लग था, २ लग गया। उ० १ जो बिब बढ़सि परम मुख गा बहि मारग लागु। (बि० २०२) २ जहि अनुराग लागु चितु सोइ हित आपन।

(पा० ३७) लागे–१ लगे, २ लगे हुए, ३ लगने पर, ४ लगने से, ५ वास्ते, लिए। उ० १ बोलि सुमंत्र कहन अस लागे। (मा० २।८१।३) लागेउँ–१ लगे, २ लगा, ३ लगने से। लागेउ–दे० 'लागे'। लागेसि–१ लगा, २ लगा है, उ० १ लागेसि अधम पचारै मोही। (मा० ६।७५।३) २ लागेसि अधम सिखावन मोही। (मा० २।२४।२) लागेहु–लगने से ही। उ० तुलसिदास यवे भाग मम लागेहु तें सब सुख पूरति। (कृ० २८) लागै–लगे, लगता है। उ० जौं पाँचहि मत लागै नीका। (मा० २।५।२) लाग्यो–लगा, लगा है। उ० तनु-तड़ाग बल बारि सूखन लाग्यो परी कुरूपता काई। (कृ० २६)

लागू–१ आधार, सहारा, २ शत्रुता, दुश्मनी, ३ पीछे चलनेवाला। उ० १ राम सखा कर दीन्हें लागू। (मा० २।२१६।२)

लाघव–फुरती से। उ० अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा। (मा० १।२६१।३) लाघव–(सं०)–१ लघुता, हलकापन, २ फुर्ती, शीघ्रता, ३ पटुता, सफाई।

लाघौ–दे० 'लाघव'। उ० ३ धावत दिखावत है लाघौ राघौ बान के। (क० ६।४८)

लाज–(सं० लज्जा)–१ शर्म, लज्जा, २ इज्जत, मर्यादा। उ० १ लाज गाज उनवनि कुचाल कलि। (कृ० ६१)

लाजत–लज्जित होता, शमाता है। उ० काछे मुनि बेष धरे लाजत अनंग हैं। (क० २।१५) लाजहिं–लज्जित होते हैं। उ० लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम। (मा० १।१४६) लाजि–लज्जित होकर। उ० तुलसी ज्यों रवि के उदय, तुरत जात तम लाजि। (दो० ६१) लाजे–लज्जित हुए, शर्मिदा हुए। उ० गनि त्रिलोक खगनायक लाजे। (मा० १।३१६।४) लाजवन–लज्जाशील। उ० लाजवंत तव सहज सुभाऊ। (मा० ६।२३।३)

लाजा (१)–दे० 'लाज'। उ० रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा। (मा० ६।२८।४)

लाजा (२)–(सं०)–धान का लावा, खील। उ० अच्छत अंकुर रोजन लाजा। (मा० १।३४६।३)

लाटी–(?)–वह अवस्था जिसमें गर्मी थकावट या बीमारी आदि से मुँह का थूक तथा होंठ आदि सूख जाते हैं। उ० सूखहिं अधर लागि मुँह लाटी। (मा० २।१४५।२)

लाड़–(सं० लालन)–प्यार, दुलार।

लाड़िले–(सं० लालन)–दुलारा, दुलरुवा। उ० ललन लाड़िले लखन हितु हौ जन के। (वि० ३७)

लाडू–(सं० लड्डुक)–लड्डू, मोदक। उ० सुख के निधान पाए हिय के पिधान लाए ठग के से लाडू खाए प्रेम मधु छाके हैं। (गी० १।६२)

लात–(?)–पैर, पद, गोड़। उ० लकिनी ज्यों लात घात ही मरोरि मारिए। (ह० २१) लातन्ह–लातों, लातों से। लातन्हि–लातों से। उ० लातन्हि हति हति चले पराई। (मा० ६।७६।२)

लाता–दे० 'लात'। उ० ताहि हृदय महुँ मारेसि लाता। (मा० ६।४१।४)

लाभ–(सं०)–नफा, फायदा, मुनाफा। उ० आ विचारि व्यवहरइ जग, खरच लाभ अनुमान। (दो० ४७१)

लाभु–दे० 'लाभ'। उ० हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अप-जसु बिधि हाथ। (मा० २।१७१)

लामी–(सं० लय)–लगी, पड़ी। उ० तुलसी की बाँह पर लामी लूम फेरिए। (ह० ३४)

लाय (२)–(सं० अलात)–जलाकर। उ० गोपद पयोधि करि, होलिका ज्यों लाय लंक निपट निसंक पर पुर गल बल भो। (ह० ६)

लायक–(अर० लायक)–योग्य, समर्थ। उ० सेवक-सुख दायक, सबल सब लायक। (वि० ३७)

लाल (१)–(सं० लालक)–१ दुलारा, प्यारा, २ पुत्र, बेटा, प्यारा बालक। उ० १ लाल लाड़िले लखन हित हौ जन के। (वि० ३७)

लाल (२)–(सं०)–१ एक रत्न, २ रक्तवर्ण, सुर्ख। उ० २ पल कदनि जघ पद कमल लाल। (वि० १४)

लालच–(सं० लालसा)–लोभ, तृष्णा। उ० नाथ हाथ कछु नाहिं लग्यो लालच ललचाया। (वि० २७६)

लालचिन–लालच करनेवाला का। उ० रतिन के लालचिन प्रापति मनक की। (क० ७।२०) लालची–(सं० लालसा) लोभी, तृष्णा वाला। उ० तिन्ह की मति रिस राग मोह मद लोभ लालची लीलि लई है। (वि० १३६)

लालत–(सं० लालन)–प्यार करता है, दुलारता है। उ० लाल कमल जनु लालत बाल मनोजनि। (जा० ७१)

लालन–१ बच्चा, प्यारा, २ पालन करना, पोसना। उ० २ लालन जोग लखन लघु लाने। (मा० २।२००।१) लालहीं–प्यार करते हैं, रक्षा करते हैं। उ० पितु मातु प्रिय परिवार हरषहिं निरखि पालहिं लालहीं। (पा० ६)। लालि–लालन करके प्यार करके। उ० कोटिक उपाय करि लालि पालियत देह। (क० ७।११६) लाली (१)–लाला, प्यार किया, पालन किया, रक्षा की। उ० कल्पबेलि जिमि बहु बिधि लाली। (मा० २।५६।२) लाले–लालन किया, पाला, प्यार किया। उ० लाले पाले पोषे तोषे आलसी अभागी अघी। (वि० २५२)

लालसा–(सं०)–प्रबल इच्छा, मनोरथ। उ० एक लालसा बड़ि उर माहीं। (मा० १।१४६।२)

लाला–(सं० लाल)–लाल, अरुण। उ० नील सघन पल्लव फल लाला। (मा० २।२३७।२)

लालित–दुलारा, प्यारा, प्यार किया या पाला हुआ। उ० जनक सुता कर पल्लव लालित विपुल बिलास। (गी० ७।२१)

लालित्य–(सं०)–सुन्दरता, मनोहरता।

लाली (२)–सुर्खी, अरुणिमा।

लावक–(सं०)–लवा पक्षी। उ० तीतर लावक पदचर जूथा। (मा० ३।३८।४)

लावण्य–(सं०)–सुन्दरता। उ० अखिल लावण्य गृह। (वि० ५०)

लावण्यता–(सं०)–सुन्दरता।

लावनिता–सुन्दरता, लावण्य। उ० तुलसी तेहि औसर लाव निता दस, चारि नौ, तीनि इकीस सबै। (क० १।७)

लावन्य–दे० 'लावण्य'। उ० नीलकंठ लावन्य निधि सोह बाल बिधु भाल। (मा० १।१०६)

लावा (२)–(स०)–लवा नाम का पक्षी, बटेर। उ० जनु सचान बन झपटेउ लावा। (मा० २।२९।३)

लावा (३)–(स० लाजा)–खील, लावा विवाह की एक रीति में भी काम आता है। कहीं कहीं उस रीति को भी 'लावा' कहते हैं। उ० सिंदुर बंदन होय लावा होन लागीं भाँवरी। (जा० १६२)

लासा–(स० लस)–एक चिपकनेवाली वस्तु, गोंद। उ० नाम-लगि लाइ, लासा-ललित-बचन कहि। (वि० २०८)

लाह (१)–(स० लाक्षा)–पेड़ों की लाख, गोंद। उ० आछी आँध बबहूँ लसत लक लाह सी। (क० ६।४३)

लाह (२)–(स० लाभ)–लाभ, प्राप्ति, फ़ायदा।

लाहु–दे० 'लाह (२)'। उ० सुवन लाहु उछाहु दिन दिन। (गी० ७।२२)

लाहू–दे० 'लाहु'। उ० मुदित भए लहि लोयन लाहू। (मा० २।१०८।४)

लिंग–(स०)–१ पुरुष का चिह्न २ शिवलिंग। उ० २ ज्योति रूप लिंग लई आनित लिंग भई। (क० ७।१८२) २ लिंग थापि करि बिधिवत पूजा। (मा० ६।२।३)

लिए (१)–(स० लभन)–लिए हुए, साथ लेकर। उ० गे जनवासहि कौसिक राम लषन लिए। (जा० १२६) लिय (१)–१ लिया, ग्रहण किया, २ लगाया। लिया–१ ले लिया, ग्रहण किया, २ कहा। उ० २ पायो खोंची माँगि मैं तेरो नाम लिया रे। (वि० ३३) लिये (१)–१ लेने पर, ले लेने पर, २ लिया। उ०१ लिये लाय मन साथ। (मा० २।११८) लियो–लिया, प्राप्त किया। उ० लियो सकल सुख हरि बग सग को। (कृ० २५) लिहे–लिये, लिये हुए। उ० दराजिनि गोरे गात लिहे कर जोरा हो। (रा० ६) ली–'लिया' की स्त्रीलिंग। उ०का न कृपालु मैं सबै के जी की थाह ली। (क० ७।२२) लीजत–लेते, लेते हैं। उ० लीजत क्यों न लपेटि लया से। (ह०१८) लीजिए–अपना कर, ग्रहण कीजिए। उ० यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिए। (मा०४।१०।छं०२) लीजे–लीजिए। लीजै–लीजिए। उ० असमंजस में मगन हौं लीजै गहि बाहीं। (वि० १४७) लीन (१)–लिया। लीन्ह–लिया, ग्रहण किया। लीन्हा–लिया, ग्रहण किया। लीन्हि–ली, ले ली। उ० लीन्हि परीछा कवन बिधि कहहु सत्य सब बात। (मा० १।५५) लीन्ही–दे० 'लीन्हि'। लीन्हे–१ लिए, २ लेने पर। उ० १ बोलि सकल सुर सादर लीन्हे। (मा० १।१००।१) लीन्हेउ–१ लिए, २ लेने पर, लेने पर भी। लीन्हेसि–लिया, ले लिया। उ० कौतुक हीं कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ। (मा० १।१७९) लीन्हों–लिया, ले लिया। उ० लीन्हों छीनि दीन देख्यो दुरित दवत हौं। (वि० ७६) लीबी–लीजिए। उ० याते विपरीत अनहितन की जानि लीबी। (गी० १।५४) लीबो–लेना है। उ० अब लौं करनि कान्ह के कातय, गुन्ह हौं हँसति कहा करि लीबो? (कृ० १)

लिए (२)–(सान)–वास्ते।

लिखइ–(स० लिखन)–लिखता है। लिखत–लिखते हुए। उ० लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। (मा० २।५५।१) लिखा–१ लिखा हुआ २ लिख दिया। उ० १ जो बिधि लिखा लिलार। (मा० १।९८) २ जो बिधि लिखा लिलार। (मा०१।६८) लिखि–लिख। उ०लिखत सुधाकर गालिखि राहू। (मा०२।५५।१) लिखिय–लिखिए, लिखना चाहिए। लिखी–१ लिखी हुई, २ लिखा। लिखे–१ लिखा, २ लिखने पर, ३ लिखा हुआ। उ० ३ चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े। (मा० २।१३५।३)

लिखाइ–(स० लिखन)–लिखाकर। उ० ललित लगन लिखाइ कै। (पा० ६२)

लिखित–(स०)–लिखा हुआ। उ० चित्र लिखित कपि देखि डेराती। (मा० २।६०।२)

लिपि–(स०)–अक्षर, लेख। उ० तेरे हेरे लोपै लिपि बिधिहू गनक की। (क० ७।२०)

लिय (२)–१ लिए वास्ते, २ वजह, कारण। उ० १ कहि प्रनामु कछु कहन लिय, सिय भइ सिथिल सनेह। (मा० २।१५२)

लिये (२)–१ वास्ते, २ कारण।

लिलाट–(स० ललाट)–मस्तक, भाल, ललाट।

लिलार–दे० 'लिलाट'। उ० दुख सुख जो लिखा लिलार हमरे जाउ जहँ पाउब तहीं। (मा० १।६७। छं० १)

लीक–(स० लिख्)–१ रेखा, लकीर, २ नियम, परंपरा, ३ सड़क, पगडंडी, ४ गाड़ी के पहिए का निशान, ५ निश्चय, ६ मर्यादा। उ० १ मानो मतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी, कपि यों धुकि धायो। (क ६।५४) ५ आगम निगम पुरान कहत करि लीक। (ब० ६०)

लीका–दे० 'लीक'। उ० ६ अजहुँ गाय श्रुति जिन्हकी लीका। (मा० १।१४२।१)

लीख–दे० 'लीक'। पक्की बात, लकीर। उ० बिस्वभर श्रीपति त्रिभुवन पति बेद बिदित यह लीख। (वि० १८)

लीचर–(?)–१ सुस्त, काहिल, निकम्मा, २ जल्दी न छोड़नेवाला, ३ लीचरपन, अशक्ति, शिथिलता। उ० ३ बाहुक-सुबाहु नीच, लीचर मरीच मिलि। (ह० ३१)

लीन (२)–(स०)–तन्मय, निलीन, मग्न। उ० सब बिधि हीन मलीन दीन अति लीन बिषय कोउ नाहीं। (वि० ११४)

लीलहिं–(स० लीला)–१ लीला को, तमाशा को कामी को, कृत्य को २ खेल में। उ० १ जो मन लाइ न सुन हरि लीलहिं। (मा० ७।१२८।२) २ अति उतंग गिरि पादप लीलहिं लेहिं उठाइ। (मा० ६।१) लीलहि–१ लीला में, तमाशा में, खेल में, २ लीला को। लीला–(स०)–१ क्रीड़ा, तमाशा, खेल, कौतुक, २ विचित्र काम। उ० १ निज इच्छा लीला बपु धारिनि। (मा० १। १८८।२)

लुक–(स० उल्का)–गरम हवा, लू।

लुकाइ–(स० लोप)–१ लुकाकर, छिपकर, २ छिपे, ३ छिपना है। लुकाई–१ लुकता है, छिपता है, २ लुककर, छिपकर। उ० २ तरु पल्लव महँ रहा लुकाई। (मा० ५। १०।१) लुकात–छिप जाता है। उ० ज्यों त्यों लुकात लुक्यो झपेट बात के। (क० ६।१) लुकाने–छिप गए, लुके। उ०

कपटी भूप उलूप लुकाने। (मा० २।५२।१) लुके-छिप गए। उ० उदित भानुकुल-भानु लखि, लुके उलूक नरेस। (प्र० ११६।६)
लुगाई-(स० लोक)-स्त्री। उ० थकित होहिं सब लोग लुगाई। (मा० १।२०४।४)
लुटत-(?)-लोट रहा है। उ० धनु महि लुटत सनेह समेटा। (मा० २।२४३।३)
लुटि-(स० लुट)-लूट में। उ० नयन लाभ लुटि पाई। (गी० १।८३)
लुनाइ-(स० लावण्य)-सौंदर्य। उ० दे० 'लुनाइ'।
लुनिअ-(?)-काटो, लूनो। उ० बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा। (मा० २।१६।३) लुनिए-काटिए। उ० हौंहूँ रहौं मौन ही, बयो सो जानि लुनिए। (ह० ४४) लुनिहै-काटेगा। उ० लुनिहै सोई सोई जोइ जेहि बई है। (गी० १।८४)
लुप्त-(स०)-छिपा हुआ, गुप्त।
लुबधक-(स० लुब्ध)-लालची, लोभी।
लुबुध-(स० लुब्ध)-लालची, लोभी। उ० लुबुध मधुप इव तजइ न पासू। (मा० १।१७।२)
लुब्ध-(स०)-लालची, लोभी। उ० जाके पद-कमल लुब्ध मुनि-मधुकर। (वि० २०७)
लुभाइ-(स० लोभ)-लुब्ध होकर, लालच करके। उ० बदन-मनोज सरोज-लोचननि रही है लुभाइ लुनाई। (गी० १।८३) लुभान-लोभ गया, मोह में पड़ा। लुभाने-१ लुब्ध रहते हैं, २ लोभ में पड़कर, मोहित होकर। उ० मुक्ति निरादर भगति लुभाने। (मा० ७।११९।४) लुभाहिं-लुभाते हैं, लोभ करते हैं। उ० जे परम सुगतिहु लुभाहिं न। (वि० २०७)
लूक-(स० उल्का)-१ टूटा तारा, २ चिनगारी, लपट। उ०१ सुमिरि राम, तकि तरकि तोयनिधि लंक लूक सो आयो। (गी० ५।१)
लूकट-(स०उल्का) अधजला।
लूका-(स० उल्का)-१ जलती आग, लपट, २ चिनगारी।
लूगा-(?)-कपड़ा, वस्त्र। उ० रोटी लूगा नीके राखै, आगे हू की वेद भाखै। (वि० ७६)
लूट-(स० लुट)-छीनना, अपहृत करना।
लूटक-लूटनेवाले, हरनेवाले। उ० सून कटि मुनिपद लूटक पटनि के। (क० २।१६)
लूटन-(स० लुट)-लूटने, लगे, छीनने। उ० चले रंक जनु लूटन सोना। (मा० २।१३२।१) लूटीं-लूट लीं, ले लीं। उ० रकन्ह राय रासि जनु लूटीं। (मा०२।११७।२) लूटे-लूट लिए, छीन लिए।
लूनिहै-(?)-काटेगा, पायेगा।
लूम-(स०)-पूँछ, दुम। उ० अतु लूम लसति सरिता सी। (वि० २२)
लूरति-(स० लुलन)-लटकती है, झूलती है। उ० उरसि रुचिर बन माल लूरति। (गी० ३।४७)
लूलो-(स० लून) कटे पाँव या हाथ का, खंज, असमर्थ, बेकार। उ० यहाँ दरबार पुरो लटि लूलो। (ह० ३६)
लेइ-(स० लभन)-लेती है। उ० उतरु देइ न लेइ उसासू। (मा० २।१३।३) लेइहउँ-लेऊँगा, लूँगा। लेइहहिं-लेंगे। उ०२निदरहिं भवा कि लेइहहिं साथा। (मा२।७०।३) लेइहहि-लेगी। उ० जानेहु लेइहि मागि चबेना। (मा०२।३०।३) लेई-१ लेकर, २ लिया, ले लिया। लेउँ-लूँ, ले लूँ। लेउ-लो, ला। उ० जानि लेउ जो जाननि हारा। (मा० २।१२७।१) लेऊँ-लूँ, मास करूँ। उ० आजु राम सेवक जसु लेऊँ। (मा० २।२३०।२) लेत-लेता है, प्राप्त करता है। उ० लेत कोटि गुन भरि सो। (वि० ३६७।३) लेति-लेती हैं। उ० बारहिं बार लेति उर लाई। (मा० १।७२।४) लेन-लेने। उ० चले लेन सादर अग वाना। (मा० १।६६।१) लेना-ले लेना, ग्रहण करना। उ० कूपइ लेना कूपइ देना। (मा० ७।३३।४) लेब-लेंगे। उ० लेब भली विधि लोचन लाहू। (मा० १।३१०।२) लेवा-१ लेता है, २ लूँगा। उ० १ जाइ अवध अब यहु सुखु लेवा। (मा० २।१३६।३) २ सो प्रसादु मैं सिर धरि लेवा। (मा० २।१०२।४) लेहउँ-लूँगा। उ० लेहउँ दिनकर बंस उदारा। (मा० १।१८७।१) लेहिं-लेते हैं। उ० जरहिं बिषमजर लेहिं उसासा। (मा० २।५१।२) लेहि-१ लेवे, ले ले, २ लो, ले लो। उ० १ मोपर कीमे तोहि जो करि लेहि भिया रे। (वि० ३३) लेहीं-१ लेते हैं, २ लें। लेहु-लो, ग्रहण करो। उ० लेहु अब लेहु सब कोउ न सिखायो मानो। (क० ५।१७) लेहू-दे० 'लेहु'। लै-१ लेकर, ग्रहण कर, २ स्वागत करके, अगवानी करके। उ० १ पानि सरासन सायक लै। (क०२।२७) २. दुलहिनि लै गे लच्छि निवासा। (मा० १।१३४।२) लैहैं-१ लेंगे, २ जायँगे। उ०२ सहज कृपालु विलंब न लैहैं। (गी० २।५१) लैहौं-लूँगा, लगाऊँगा। उ० रामलखन उर लैहौं। (गी० ६।१६)
लेख-(स०)-लिखा हुआ, रचना।
लेखई-(स०लेखन)-१ लिखता है, २ देखता है, समझता है, ३ अनुमान करता है। उ० २ तुलसी नृपति भवितव्य तापस काम कौतुक लेखई। (मा०२।२२।छं०१) लेखऊँ-१ लिखूँ, २ समझूँ, जानूँ। लेखति-जानती है, समझती है। लेखहिं-गिनते हैं, समझते हैं। उ०साधन सकल सफल करि लेखहिं। (मा०२।१३४।४)लेखहि-जाने, गिने, समझे, मान। लेखहीं-जान रहे हैं, जानते हैं, समझते हैं। उ० अवलोकि रघुकुल कमल रवि छवि सुफल जीवन लेखहीं। (मा० १।३१६।छं०१) लेखहू-देखो। लेखा-(स० लेख)-१ गणित, हिसाब, २ गणना, गिनती, ३ लकीर, ४ देवता, ५ आदर, ६ देखा, समझा, ७ समझकर। उ० २ करि न सकहिं प्रभु गुन गन लेखा। (मा०२।२००।४) ७ आदर कीन्ह पिता सम लेखा। (मा० २।३१।३)
लेखि-१ देखकर, २ गिनकर, ३ जानकर, समझकर। उ० ३ नीक कै निकाई देखि जनमन सफल लेखि। (गी० २।२२) लेखिय-देखिए, समझिए। लेखी-दे० 'लेखि'। उ० ३ मुदित सफल जग जीवन लेखी। (मा०१।३४४।२) लेखें-१ देखे, २ जाने, ३ गिनती में, गणना में। उ० ३ भयउँ भाग भाजन जन लेखें। (मा०२।८८।३) लेखौं-

देखूँ, जानूँ, समझूँ। उ० तब निज जन्म सफल करि लेखौं। (मा० ७।११०।७)
लेखक-(सं०)-लिखनेवाला, ग्रंथकर्ता।
लेखन-१ लिखना, चित्र आदि बनाना, २ देखना। उ० १ सो समाज चित चित्रसार लागी लेखन। (गी० १।७३)
लेखनी-(सं०)-कलम। उ० महि पत्री करि सिंधु मसि तरु लेखनी बनाइ। (वै० ३५)
लेरुआ-(सं० लेह)-बछड़ा। उ० ललन लोने लेरुआ बलि मैया। (गी० १।१७)
लेवैया-(सं० लभन)-लेनेवाला। उ० तहाँ बिनु कारन राम कृपालु बिसाल भुजा गहि काढ़ि लेवैया। (क० ७।५२)
लेश-(सं०)-थोड़ा, अल्प। उ० प्रजापाल अति वेद बिधि कतहुँ नहीं अघलेस। (मा० १।१५३)
लेसइ-(सं० लेश्य)-जलावे, बारे। लेसै-जलावे। उ० एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यान मय। (मा०७। ११७घ)
लेसु-दे० 'लेश'।
लेसा-दे० 'लेश'। उ० नहिं तहँ मोहनिसा लवलेसा। (मा० १।११६।३)
लैं-दे० 'लौं'।
लोइ-(सं० लोक)-लोग। उ० तेज होत तम तरनि को अचरज मानत लोइ। (वै० ५५)
लोई-दे० 'लोइ'। उ० हम नीके देखा सब लोई। (वै० ४०)
लोक-(सं०)-१ संसार, २ संसार की रीति, ३ तीन लोक, स्वर्ग, मृत्युलोक और पाताल, ४ लोग। उ० २ लोक कि बेद बड़ेरो। (वि० २७२) ३ लोकगन सोक सताप हारी। (वि० २५) ४ बिकल बिलोकि लोक काल कूट पियो है। (क० ७।१७२। लोकउ-लोक भी। उ० पाइहि लोकउ बेदु बड़ाई। (मा० २।२०७।१) लोकहि-लोक को। उ० निज लोकहि बिरंचि गे देवन्ह इहइ सिखाइ। (मा० १।१८७) लोकहुँ-लोक में भी। उ० लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा। (मा० २।२१८।३) लोकहु-दे० 'लोकहुँ'। लोकै-लोक में, इस संसार में। उ० भजतीह लोक परेवा नराणां। (७।१०८।७)
लोकप-(सं०)-१ राजा, २ दिग्पाल। उ० १ लोकप होहिं बिलोकत जासू। (मा० २।१४०।४)
लोकपति-दे० 'लोकप'।
लोकपाल-दे० 'लोकप'।
लोका-दे० 'लोक'। उ० ३ चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका। (मा० १।२७।१)
लोकि-(सं० लोकन) लोकना, झपटकर। उ० नाग जरे सब लोक बिलोकि त्रिलोचन सों बिनु लोकि लिया है। (क० ७।१५७)
लोकु-दे० 'लोक'।
लोकू-दे० 'लोक'। उ० हरष बिषाद निबस सुरलोकू। (मा० २।८।२)
लोग-(सं० लोक) मनुष्य, जन। उ० नगर लोग सब अति हरषाने। (मा० १।६१।१) लोगन्ह-लोगों, -लोग। लोगन्हि-लोगों से। उ० पूँछेउ मगु लोगन्हि मृदु बाना। (मा० २।११८।३)
लोगा-दे० 'लोग'। उ० देखि हरष बिसमय बस लोगा। (मा० २।२१९।४)
लोगाइ-(सं० लोक)-स्त्रियाँ। उ० वृंद वृंद मिलि चलीं लोगाईं। (मा० १।१९४।२) लोगाई-स्त्री, औरत। उ० कहहिं परसपर लोग लोगाई। (मा० २।११।२)
लोगु-दे० 'लोग'।
लोगू-दे० 'लोग'। उ० सुनि कठोर कवि जानिहि लोगू। (मा० २।३१८।१)
लोचन-दे० 'लोचन'। आँखवाले। उ० प्रफुल्ल कंज लोचन। (मा०३।४।२) लोचन-(सं०)-आँख। उ० लोचन सिसुन्ह देहु अमिय घूटी। (गी० २।२१)
लोचना-आँखोंवाली। उ० सारंग सावक लोचना। (जा० २०७)
लोचनि-दे० 'लोचना'। उ० बिधु बदनीं मृग सावक लोचनि। (मा० १।२१७।१)
लोचहिं-(सं० लोचन)-देखते हैं खोजते हैं, इच्छा रखते हैं। उ०गिरजा जोग जुरहि बर अनुदिन लोचहिं। (पा०१०)
लोटन-(?)-झाड़ी झुरमुट।
लोटा-(सं० लोष्ठ)-सिल पर पीसने के लिए पत्थर, बट्टा। उ० फोरहि सिल लोढ़ा सदन लागे अढ़कु पहार। (दो० ५६०)
लोथिन-(सं० लोष्ठ)-शवों, लाशों। उ० लोथिन सों लोहू के प्रबाह चले जहाँ तहाँ। (क० ६।४६)
लोन-(सं० लवण)-१ नमक, २ सुंदरता, ३ सुंदर। उ० ३ करि सिंगार अति लोन तो बिहँसति आई हो। (रा० १०)
लोना-दे०'लोन'। उ० ३ साँवर कुअँर सखी सुठि लोना। (मा० १।२२३।४)
लोनाई-सुंदरता। उ० देखत लोनाई लघु लागत मदन हैं। (गी० २।२६)
लोनी-(सं० लवण)-सुन्दर।
लोनु-दे० 'लोन'।
लोने-सुन्दर। उ० लालन जोग लखन लघु लोने। (मा० २।२१०।१)
लोप-१ नाश, क्षय, २ गुप्त होना, अदृश्य होना, ३ लुप्त हो गया। उ० ३ कौन पाप कोप लोप प्रगट प्रभाव को। (ह० ३१) लोपत-(सं० लुप्त)-लुप्त कर देता है। लोपति-१ मेटती है, २ मिट जाती है। उ०२ लोपति बिलोकत कुलिपि भोंडे भाल की। (क० ७।१८२) लोपिहैं-लिप्त दंग। लोपी-लुप्त कर दी है लोप दी है। उ० कलि सकोप लोपी सुचाल। (वि० १६५) लोपैं-मिट जाते हैं, लुप्त हो जाते हैं। उ० हेरे हर लोपैं लिपि बिधिहू गनक की। (क० ७।२०)
लोपित-लुप्त, अदृश्य, नष्ट। उ० लोपित बलि, लोपित मगन-मगु। (वि०२४)
लोभ-(सं०)-लालच तृष्णा। उ० लोभ मोह काम कोह कलिमल घेरे हैं। (क० ७।१०४)

कपटी भूप उलूप लुकाने। (मा० २५५।१) लुके–छिप गए। उ० उदित भानुकुल भानु लखि, लुके उलूक नरेस। (प्र० १।५।५)

लुगाइ–(स० लोक)–स्त्री। उ० थकित होहिं सब लोग लुगाई। (मा० १।२०४।४)

लुटत–(?)–लोट रहा है। उ० जनु महि लुटत सनेह समेटा। (मा० २।२४३।३)

लुटि–(स० लुट)–लूट में। उ० नयन लाभ लुटि पाइ। (गी० १।५३)

लुनाई–(स० लावण्य)–सौंदर्य। उ० दे० 'लुनाई'।

लुनिश्र–(?)–काटो, लूनो। उ० यवा सो लुनिश्र लहिश्र जो दीन्हा। (मा० २।१६।३) लुनिए–काटिए। उ० हौंहूँ रहौं मौन ही, बयो सो जानि लुनिए। (ह० ४४) लुनिहै–काटेगा। उ० लुनिहै सोई सोइ जोइ जेहि बई है। (गी० १।८४)

लुप्त–(स०)–छिपा हुआ, गुप्त।

लुबधक–(स० लुब्ध)–लालची, लोभी।

लुबुध–(स० लुब्ध)–लालची, लोभी। उ० लुबुध मधुप इव तजइ न पासू। (मा० १।१७।२)

लुब्ध–(स०)–लालची, लोभी। उ० जाके पद-कमल लुब्ध मुनि-मधुकर। (वि० २०७)

लुभाइ–(स० लोभ)–लुब्ध होकर, लालच करके। उ० पदम मनोज सरोज-लोचननि रही है लुभाइ लुनाई। (गी० १।५३) लुभान–लोभ गया मोह में पड़ा। लुभाने–१ लुब्ध रहते हैं, २ लोभ में पड़कर, मोहित होकर। उ० मुक्ति निरादर भगति लुभाने। (मा० ७।११३।४) लुभाहिं–लुभाते हैं, लोभ करते हैं। उ० जे परम सुगंधिहु लुभाहि न। (वि० २०७)

लूक–(स० उल्का)–१ टूटा तारा, २ चिनगारी, लपट। उ०१ सुमिरि राम, तकि तरकि तोयनिधि लंक लूक सो आयो। (गी० ५।१)

लूकट–(स०उल्का) अधजला।

लूका–(स० उल्का)–१ जलती आग, लपट, २ चिनगारी।

लूगा–(?)–कपड़ा, वस्त्र। उ० रोटी लूगा नीके राखैं, आगे हू की वेद भाषैं। (वि० ७६)

लूट–(स० लुट्)–छीनना, अपहृत करना।

लूटक–लूटनेवाले, हरनेवाले। उ० मूल कटि मुनिपद लूटक पर्नति क। (क० २।१६)

लूटन–(स० लुट्)–लूटने, लेने, छीनने। उ० चले रंक जनु लूटन सोना। (मा० २।१२५।१) लूटीं–लूट लीं, ले लीं। उ० रंकन्ह राय रासि जनु लूटीं। (मा०२।११७।२) लूटे–लूट लिए छीन लिए।

लूनिहै–(?)–काटेगा, पायेगा।

लूम–(स०)–पूँछ, दुम। उ० जनु लूम लसति सरिता सी। (वि० २२)

लूरति–(स० लुलन)–लटकती है, झूलती है। उ० उरसि रुचिर बन माल लूरति। (गी० ५।४७)

लूलो–(स० लून) कटे पाँव या हाथ का, खंज, असमर्थ, बेकार। उ० गहौं दरबार पुरो लटि लूलो। (ह० ३६)

लेइ–(स० लभन)–लेती है। उ० उतरु देइ न लेइ उसासू। (मा० २।१३।३) लेइहउँ–लेऊँगा, लूँगा। लेइहहिं–लेंगे। उ०रखिहहिं भवन कि लेइहहिं साथा। (मा२।७०।३) लेइहि–लेगी। उ० जानेहु लेइहि मागि चबेना। (मा०२।३०।३) लेई–१ लेकर, २ लिया, ले लिया। लेउँ–लूँ, ले लूँ। लेउ–लो, लो। उ० जानि लेउ जो जाननि हारा। (मा० २।१२७।१) लेऊँ–लूँ, प्राप्त करूँ। उ० आजु राम सेवक जसु लेऊँ। (मा० २।२३०।२) लेत–लेता है, प्राप्त करता है। उ० लेत कोटि गुन भरि सो। (वि० २६४।३) लेति–लेती है। उ० बारहिं बार लेति उर लाई। (मा० १।७२।४) लेन–लेने। उ० चले लेन सादर अगवाना। (मा० १।६५।१) लेना–ले लेना, ग्रहण करना। उ० झूठइ लेना झूठइ देना। (मा० ७।३९।४) लेब–लेंगे। उ० लेब भली बिधि लोचन लाहू। (मा० १।३१०।३) लेबा–१ लेता है, २ लूँगा। उ० १ आइ अवध अब यहु सुख लेबा। (मा० २।१४६।३) २ सो प्रसादु मैं सिर धरि लेबा। (मा० २।१०२।४) लेहउँ–लूँगा। उ० लेहउँ दिनकर बंस उदारा। (मा० १।१८७।१) लेहिं–लेते हैं। उ० जरहिं विषमजर लेहिं उसासा। (मा० २।५११।३) लेहि–१ लेवे, ले ले, २ लो, ले लो। उ० १ मोपर कीबे तोहि जो करि लेहि भिया रे। (वि० ३३) लेहीं–१ लेते हैं, २ लें। लेहु–लो, ग्रहण करो। उ० लेहु अब लेहु तब कोउ न सिखाओ मानो। (क० ५।१७) लेहू–दे० 'लेहु'। लै–१ लेकर, ग्रहण कर, २ स्वागत करके, अगवानी करके। उ० १ पानि सरासन सायक लै। (क०६।२७) २ दुलहिन लै गे लच्छि निवासा। (मा० १।१३५।२) लैहैं–१ लेंगे, २ लायेंगे। उ०२ सहज कृपालु बिलंब न लैहैं। (गी० ५।५१) लैहौं–लूँगा, लगाऊँगा। उ० रामलखन उर लैहौं। (गी० ६। १६)

लेख–(स०)–लिखा हुआ, रचना।

लेखई–(स०लेखन)–१ लिखता है, २ देखता है, समझता है, ३ अनुमान करता है। उ० २ तुलसी नृपति भवितव्य तायस काम कौतुक लेखई। (मा०२।२५।छं०१) लेखऊँ–१ लिखूँ, २ समझूँ, जानूँ। लेखति–जानती है, समझती है। लेखहि–गिनते हैं, समझते हैं। उ०साधन सकल सफल, करि लेखहिं। (मा०२।१३५।४)लेखहि–जाने, गिने, समझे, माने। लेखहीं–जान रहे हैं, जानते हैं, समझते हैं। उ० अवलोकि रघुकुल कमल रवि छवि सुफल जीवन लेखहीं। (मा० १।२१३।छं०१) लेखहू–देखो। लेखा–(स० लेख)–१ गणित, हिसाब, २ गणना, गिनती, ३ लकीर, ४ देवता, ५ आदर, ६ देखा, समझा, ७ समझकर। उ० २ करि न सकहिं प्रभु गुन गन लेखा। (मा०२।२००।४) ७ आदर कीन्ह पिता सम लेखा। (मा० २।३६।२)

लेखि–१ देखकर, २ गिनकर, ३ जानकर, समझकर। उ० ३ नीके कै निकाइ देखि जनमन सफल लेखि। (गी० २।२२) लेखिय–देखिए, समझिए। लेखी–दे० 'लेखि'। उ० ३ मुदित सफल जग जीवन लेखी। (मा०१।३४६।२) लेखें–१ देखे, २ जाने, ३ गिनती में, गणना में। उ० ३ भयउँ भाग भाजन जन लेखें। (मा०२।८८।३) लेखौं–

देखूँ, जानूँ, समझूँ। उ० सब निज जन्म सफल करि लेखौं। (मा० ७।११०।७)
लेखक-(स०)-लिखनेवाला, ग्रंथकर्ता।
लेखन-१ लिखना, चित्र आदि बनाना, २ देखना। उ० १ सो समाज चित चित्रसार लागी लेखन। (गी० १।७३)
लेखनी-(स०)-कलम। उ० महि पत्री करि सिंधु मसि तरु लेखनी बनाइ। (वै० ३४)
लेरुआ-(स० लेह)-बछड़ा। उ० ललन लोने लेरुआ बलि मैया। (गी० १।१७)
लेवैया-(स० लभन)-लेनेवाला। उ० तहाँ बिनु कारन राम कृपालु बिसाल भुजा गहि काढ़ि लेवैया। (क० ७।४२)
लेश-(स०)-थोड़ा, अल्प। उ० प्रजापाल अति बेद बिधि कतहुँ नही अघलेस। (मा० १।१५३)
लेसइ-(स० लेश्य)-जलावे, बारे। लेसै-जलावे। उ० एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यान मय। (मा०७।११७घ)
लेसु-दे० 'लेश'।
लेसा-दे० 'लेश'। उ० नहि तहँ मोहनिसा लवलेसा। (मा० १।११६।३)
लौं-दे० 'लौं'।
लोइ-(स० लोक)-लोग। उ० तेज होत तम तरनि को अचरज मानत लोइ। (वै० ४४)
लोई-दे० 'लोइ'। उ० हम नीके देखा सब लोई। (वै० ४०)
लोक-(स०)-१ संसार,२ संसार की रीति, ३ तीन लोक, स्वर्ग मृत्युलोक और पाताल, ४ लोग। उ० २ लोक कि वेद बड़ेरो। (वि० २७२) ३ लोकगन सोक संताप हारी। (वि० २४) ४ बिरुझत बिलोकि लोक काल छूट बियो है। (क० ७।१७२। लोकउ-लोक भी। उ० पाइहि लोकउ बेदु बड़ाई। (मा० २।२०७।१) लोकहि-लोक को। उ० निज लोकहि बिरंचि गे देवन्ह इहइ सिखाइ। (मा० १।१८७) लोकहुँ-लोक में भी। उ० लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा। (मा० २।२१८।३) लोकहु-दे० 'लोकहुँ'। लोके-लोक में, इस संसार में। उ० भजतीह लोके परे वा नराणां। (७।१०८।७)
लोकप-(स०)-१ राजा, २ दिग्पाल। उ० १ लोकप होहिं बिलोकत जासू। (मा० २।१४।७)
लोकपति-दे० 'लोकप'।
लोकपाल-दे० 'लोकप'।
लोका-दे० 'लोक'। उ० ३ चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका। (मा० १।२७।१)
लोकि-(स० लोकन) लोककर, झपटकर। उ० जात नरे सब लोक बिलोकि त्रिलोचन सों बिष लोकि लिया है। (क० ७।१५७)
लोकु-दे० 'लोक'।
लोगू-दे० 'लोग'। उ० हरष बिषाद बिबस सुरलोगू। (मा० २।८१।२)
लोग-(स० लोक)-मनुष्य, जन। उ० नगर लोग सब अति हरषाने। (मा० १।६६।१) लोगन्ह-लोगों,-लोग। लोगन्हि-लोगों से। उ० पूँछेउ मगु लोगन्हि मृदु बानी। (मा० २।११८।३)
लोगा-दे० 'लोग'। उ० देखि हरष बिसमय बस लोगा। (मा० २।२१२।४)
लोगाई-(स० लोक)-स्त्रियाँ। उ० बृंद बृंद मिलि चलीं लोगाईं। (मा० १।१६४।२) लोगाई-स्त्री, औरत। उ० कहहिं परसपर लोग लोगाई। (मा० २।११।२)
लोगु-दे० 'लोग'।
लोगू-दे० 'लोग'। उ० सुनि कठोर कबि जानिहि लोगू। (मा० २।२१८।१)
लोचन-दे० 'लोचन'। आँखवाले। उ० प्रफुल्ल कंज लोचनं। (मा०३।४।३) लोचन-(स०)-आँख। उ० लोचन सिसुन्ह देहु अमिय घूटी। (गी० २।२१)
लोचना-आँखोंवाली। उ० सारंग सावक लोचना। (आ० २०७)
लोचनि-दे० 'लोचना'। उ० बिधु बदनीं मृग सावक लोचनि। (मा० १।२६७।१)
लोचहिं-(स० लोचन)-देखते हैं, खोजते हैं, इच्छा रखते हैं। उ०गिरजा जोग जुरहि बर अनुदिन लोचहिं। (पा०१०)
लोटन-(?)-झाड़ी झुरमुट।
लोढ़ा-(सं० लोष्ठ)-सिल पर पीसने के लिए पत्थर, बट्टा। उ० फोरहि सिल लोढ़ा सदन लागे अढ़ुक पहार। (दो० ४६०)
लोथिन-(स० लोष्ठ)-शवों, लाशों। उ० लोथिन सों लोहू के प्रबाह चले जहाँ तहाँ। (क० ६।४६)
लोन-(स० लवण)-१ नमक, २ सुंदरता, ३ सुंदर। उ० ३ करि सिंगार अति लोन तो बिहँसति आई हो। (रा० १०)
लोना-दे०'लोन'। उ० ३ साँवर कुअँर सखी सुठि लोना। (मा० १।२२३।४)
लोनाइ-सुंदरता। उ० देखत लोनाई लघु लागत मदन हैं। (गी० २।२६)
लोनी-(स० लवण)-सुन्दर।
लोनु-दे० 'लोन'।
लोने-सुन्दर। उ० लालन जोग लखन लघु लोने। (मा० २।२१०।१)
लोप-१ नाश, क्षय, २ गुप्त होना, अदृश्य होना, ३ लुप्त हो गया। उ० ३ कौन पाप कोप लोप प्रगट प्रभाव को। (ह० ३१) लोपत-(स० लुप्त)-लुप्त कर देता है। लोपति-१ मेटती है, २ मिट जाती है। उ०२ लोपति बिलोकत कुलिपि भोंडे भाल की। (क० ७।१८२) लोपिहैं-मिटा देंगे। लोपी-छुप कर दी है, लोप की है। उ० कलि सकोप लोपी सुचाल। (वि० १४५) लोपै मिट जाते हैं, लुप्त हो जाते हैं। उ० ढेरे ढेरे लोपे लिपि बिधिहू गनक की। (क० ७।२०)
लोपित-लुप्त, अदृश्य, नष्ट। उ० कोपित कलि, लोपित मंगल-मगु। (वि०२४)
लोभ-(स०)-लालच, तृष्णा। उ० लोभ मोह काम कोह कलिमल घेरे हैं। (क० ७।१०४)

वंदित-दे० 'वंदित'। उ० मनोज वैरि वंदित। (मा० ३। ४। छं० ४) वंदित-(सं०)-पूज्य, आदरणीय। उ० केशव क्लेशह केश-वंदित-पदद्वंद-मंदाकिनी-मूल भूत। (वि० ४६) वंदिता-'वंदित' का स्त्रीलिंग। पूज्या। वंदिते-हे पूजनीया। उ० मुकुंदमनि-वंदिते! लोकत्रयगामिनी। (वि० १८) वंदितौ-वंदना किए गए दोनों। उ० कोस लेन्द्र पद कंज मंजुलौ कोमलावजमहेश वंदितौ। (मा० ७।१। श्लो० २)
वंदिनी-(सं०)-१ पूज्या, २ जो कैद में हो। 'वंदी' का स्त्रीलिंग।
वंदे-नमस्कार या वंदना करता हूँ। उ० भवानी शंकरौ वंदे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ। (मा० १।१। श्लो० १)
वंद्य-(सं०)-वंदनीय, वंदना करने योग्य।
वंद्यते-(सं०)-वंदित होता है, वंदन किया जाता है। उ० 'यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चंद्रः सर्वत्र वंद्यते। (मा० १।१। श्लो० ३)
वंश-(सं०)-१ बाँस २ संतान, संतति, ३ कुल, परिवार, ४ बाँसुरी। उ० ३ भनु दीनबंधु दिनेश दानव-दैत्य वंश निकंदनं। (वि० ४५)
वंशी-(सं०)-१ मुरली, बाँसुरी, २ खान्दानवाला।
व(१)-(सं०)-१ वायु, २ समुद्र, ३ वरुण, ४ कल्याण, क्षेम।
व (२)-(सं० वा)-१ अथवा, किंवा, या, २ और।
वक-(सं०)-एक पक्षी, बगला।
वकुल-(सं०)-मौलश्री का पेड़ या पुष्प।
वक्ता-(सं०)-बोलने या व्याख्यान देनेवाला।
वक्त्र-(सं० वक्त्र)-मुख। उ० वक्त्र आलोक त्रैलोक्य सोका पहं, माररिपु-हृत्य मानस-मराल। (वि० ५१)
वक्रः-(सं०)-१ टेढ़ा, कुटिल, २ टेढ़ापन, कुटिलाई। उ० १ यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चंद्रः सर्वत्र वंद्यते। (मा० १। १। श्लो० ३)
वक्रोक्ति-(सं०)-१ टेढ़ी बात, ताना, व्यंग्य, २ एक अलंकार जिसमें काकु या श्लेष से अर्थ में परिवर्तन हो जाता है।
वक्षस्थल-(सं० वक्ष स्थल)-छाती, सीना।
वचांसि-(सं० वचन)-बहुत से वचन। उ० विनिश्चित वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे। (मा० ७।१२२ग)
वचन-(सं०)-१ वाणी, वाक्य, कथन, उक्ति, २ बात, बोल, ३ व्याकरण के अनुसार शब्द के रूप में वह विधान जिससे एकत्व और बहुत्व का बोध हो। उ० २ कंठ दर, चिबुक वर, वचन गंभीरतर, सत्य संकल्प सुर त्रास नास। (वि० ५१)
वच्छलता-दे० 'वत्सलता'।
वज्र-(सं०)-१ इंद्र का एक अस्त्र, जो दधीचि की हड्डी का बना था। २ बिजली, ३ हीरा, ४ अनिरुद्ध का पुत्र, ५ भाला, ६ फौलाद, ७ मुद्गर।
वज्रसार-(सं०)-अत्यंत कठोर, हीरे का हीर।
वट-(सं०)-बरगद का पेड़। दे० 'बट'।
वटिका-(सं०)-टिकिया, बटी, गोली।
वटी-दे० 'वटिका'।
वटु-(सं०)-१ ब्रह्मचारी, २ बालक। उ० १ बटु वेष पेखन पेमपन व्रत नेम ससि सेखर गए। (पा० ४२)
वत्-(सं०)-समान, तुल्य।
वत-दे० 'वत्'। उ० युगल पद नूपुरा मुखर कलहंस वत। (वि० ६१)
वत्सलं-वात्सल्य रखनेवाले को। उ० १ नमामि भक्त वत्सलं। (मा० ३।४। छं० १) वत्सल-(सं०)-१ प्यार करनेवाला, प्रेमी, वत्सवत् प्यार करनेवाला, बच्चे के प्यार से भरा हुआ, २ दयालु, कृपालु।
वत्सलता-(सं०)-१ पुत्रप्रेम, स्नेह, छोह, २ दया, कृपा।
वद-(सं० वद्)-१ कहो, कह, बोलो, २ कहते हैं, ३ कहकर। उ० १ मानि विस्वास वद वेदसार। (वि० ४६) वदति-१ कहता है, कहती है, २ कहती हुई। उ० १ वदति इति अमल मति दास तुलसी। (वि० ५७) वदामि-मैं कहता हूँ। उ० निश्चित वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे। (मा० ७।१२२) नान्या स्पृहा रघुपते हृदये ऽस्मदीये सत्य वदामि च भवानखिलांतरात्मा। (मा० ५। १। श्लो०२) वदि (१) १ कहकर, २ शर्त बदकर।
वदन-(सं०)-१ मुँह, मुख, २ अगला भाग, ३ कथन, बात कहना। उ० १ रवन गिरिजा, भवन भूधराधिप सदा, श्रवण कुंडल, वदन-छवि अनूप। (वि० ११)
वदनि-(सं० वदन)-मुखवाली।
वदि (२)-(सं० अवदिन)-कृष्ण पक्ष।
वध-(सं०)-हत्या, जान से मार डालना।
वधिक-(सं० वधक)-हिंसक, ब्याधा।
वन-(सं०)-१ जंगल, विपिन, २ उपवन, ३ जल, ४ आलय, घर। उ० १ प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा नमम्ले वनवास दुःखत। (मा० २।१। श्लो० २)
वनचर-(सं०)-१ वन में रहनेवाले, जंगली, २ बंदर, ३ मछली आदि जलचर।
वनज-(सं०)-१ कमल, २ चंद्रमा।
वनदेव-(सं०)-वन का अधिष्ठाता देवता।
वनमाल-(सं०)-दे० 'वनमाल'।
वनमाला-दे० 'वनमाल'।
वनवास-(सं०)-वन या जंगल में रहना, वन में जाना। उ० प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवास दुःखतः। (मा० २।१। श्लो० २)
वनिज-(सं० वाणिज्य)-व्यापार, रोजगार।
वनिता-(सं०)-१ स्त्री, महिला, २ स्त्री, पत्नी।
वन्य-(सं०)-वनैला, जंगली, वनचर।
वपत-दे० 'वपन'।
वपन-(सं०)-१ बीज बोना, २ केश-मुंडन।
वपुष-(सं० वपुस्)-दे० 'वपु'।
वपुष-दे० 'वपु'। उ० वपुष ब्रह्मांऽसो, प्रवृत्ति-लंका दुर्ग रचित मन-दनुज-मय रूपधारी। (वि० ५८)
वपु-(सं० वपुस्)-शरीर, देह। उ० कंबु-कर्पूर-वपु-धवल निर्मल मौलि। (वि० ४९)
वमत-दे० 'वमन'।
वमन-(सं०)-१ उल्टी, कै, उगलना, २ उगलने वाला।
वयं-(सं०)-हम लोग, हम सब। उ० धीर-गंभीर-मन-पीर कारक तत्र क बराका वयं विगत सारा। (वि० ६०)

वय-(सं० वयस)-अवस्था, उम्र।
वयस-दे० 'वय'।
वर-श्रेष्ठ को। उ० वन्देऽहं करुणाकर रघुवर भूपाल चूडा मणिम्। (मा० २।१। श्लो० १) वर-श्रेष्ठ। उ० सुरवर सवाधिप सर्वदा। (मा० २।१। श्लो० १) वर-(सं०)-१ श्रेष्ठ, उत्तम, २ पति, दूल्हा, ३ सुन्दर, ४ वरदान, किसी देवता या बड़े से माँगा हुआ मनोरथ। उ० १ शोभाढ्यौ वर धन्विनौ। (मा० ४।१। श्लो० १) वरौ-दोनों श्रेष्ठ को। उ० माया मानुष रूपिणौ रघुवरौ सद्धर्म वर्मौ हितौ। (मा० ४।१। श्लो० १)
वरजित-दे० 'वर्जित'।
वरण (१)-(सं०)-१ चुनना, २ निमन्त्रण देना, ३ विवाह करना।
वरण (२)-(सं० वर्ण)-१ जाति, २ रंग।
वरद-(सं०)-वर देनेवाला, जो वर दे।
वरदान-(सं०)-वर, किसी देवता या बड़े का प्रसन्न होकर कोई सिद्धि या अभिलषित वस्तु देना।
वरन (१)-(सं० वर्ण)-१ रंग, २ जाति, ३ अक्षर।
वरन (२)-(सं० वरण)-दे० 'वरण (१)'।
वरनसंकर-दे० 'वर्णसंकर'।
वरनि (१)-१ वर्णन करनेवाली, २ वर्णन करना।
वरनि (२)-(सं० वर्ण)-रंगवाली।
वरनि (३)-(सं० वरण)-पतिवाली, सधवा।
वरहि-दे० 'बर्हि'।
वराह-दे० 'वराह'।
वराहु-दे० 'वराह'।
वराक-(सं०)-१ बेचारा, दीन, २ तुच्छ, नाचीज।
वराट-(सं०)-कौड़ी।
वराटिका-(सं०)-कौड़ी।
वरासन-(सं०)-श्रेष्ठ आसन, उच्चासन।
वरिष्ठ-(सं०)-श्रेष्ठ, पूजनीय।
वरुण-(सं०)-१ जल के देवता, २ पानी, ३ सूर्य, ४ एक पेड़। उ०१ मन्मेन्द्र चन्द्रार्क वरुणाग्नि-वसु-मरुत-यम। (वि० १०)
वरुणा-(सं०)-एक नदी जो काशी के पास है।
वरुणालय-(सं०)-समुद्र।
वरूथ-(सं०)-१ सेना २ समूह।
वरूथिनी-(सं०)-सेना, फौज।
वर्ग-(सं०)-१ एक ही प्रकार के जीव या चीज़ों का समूह, कोटि, श्रेणी, २ परिच्छेद, प्रकरण।
वर्जित-(सं०)-मना किया हुआ, मना, निषिद्ध।
वर्ण-(सं०)-१ रंग, २ अक्षर, हर्फ, ३ ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि, ४ वर्ग, जाति। उ० ३ जयति वर्णाश्रमाचार-पर-नारि नर। (वि० ४४)
वर्णसंकर-(सं०)-दोगला, अपने पिता से इतर का पुत्र।
वर्णन-(सं०)-१ बखानना, कहना, २ चित्रण, रँगना, ३ गुणकथन, तारीफ।
वर्णानाम्-वर्णों का। उ० वर्णानामर्थ संघानां रसानां छंदसामपि। (मा० १।१।श्लो० १)
वर्णित-(सं०)-१ वर्णन किया हुआ, कथित, २ प्रशंसित।
वर्त्तमान-(सं०)-उपस्थित समय, जो समय चल रहा है।
वर्ति-(सं०)-१ बत्ती, दीपक की बत्ती, २ सुरमा लगाने की सलाई, ३ वाला, रहनेवाला। उ० ३ यन्मायावश वर्तिविश्वमखिल ब्रह्मादि देवासुरा। (मा० १।१।श्लो०६)
वर्तिका-दे० 'वर्ति'। उ० १ कुसुम सुभकर्म घृत-पूर्ण दस वर्तिका। (वि० ४७)
वर्त्म-(सं०)-पथ, राह, रास्ता।
वर्द्धन-(सं०)-१ वृद्धि, उन्नति, २ उन्नति करनेवाला, बढ़ानेवाला। उ०२ सज्जनानंद वर्द्धन खरारी। (वि०५२)
वर्द्धित-(सं०)-बढ़ा हुआ, उन्नत।
वर्धन-दे० 'वर्द्धन'।
वर्म-(सं०)-१ कवच, ज़िरहबख्तर, २ घर। उ० १ वर्म चर्मासि धनु-बाण-तूणीरधर। (वि० ४०) वर्मौ-वर्म का द्विवचन। दे० 'वर्म'। उ० माया मानुष रूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ। (मा० ४।१।श्लो० १) वर्मधारी-कवचधारी, जिरहबख्तर पहननेवाला।
वर्य-(सं०)-श्रेष्ठ।
वर्ष-(सं०)-१ साल, सम्वत, २ वर्षा।
वर्षण-(सं०)-पानी बरसना, पानी पड़ना।
वर्षा-(सं०)-१ बारिश, वृष्टि, २ वर्षाकाल, बरसात।
वर्षाशन-(सं०वर्ष + अशन)-वर्ष भर पर भोजन करनेवाला।
वर्हि-दे० 'बर्ही'।
वर्हिण-दे० 'बर्ही'।
वर्ही-(सं० बर्हिन्)-मोर, मयूर।
वलय-(सं०)-१ कंकण, २ चूड़ी, ३ वेष्टन।
वलाहक-(सं०)-१ बादल, घटा, २ पर्वत।
वलि-(सं०)-१ बलिदान, २ बलिदान की सामग्री, ३ एक दैत्य जिसे विष्णु ने वामन अवतार धारण कर छला था।
वल्कल-(सं०)-छाल, बोकला।
वल्मीकि-(सं०)-१ बाँबी, बिल, २ दीमकों का लगाया मिट्टी का ढेर, ३ वाल्मीकि मुनि।
वल्लभं-प्रिय को, प्यारे को। उ० भजामि भाव वल्लभं। (मा० ३।४। श्लो १०) वल्लभ-(सं०)-प्यारा, प्रियतम। उ० वल्लभ उरमिला के, सुलभ सनेहबस। (वि०३७) वल्लभां-वल्लभा को, प्यारी को, प्रिया को। उ० सर्व श्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्। (मा० १।१। श्लो० ५) वल्लभा-(सं०)-प्यारी, स्त्री।
वल्लि-(सं०)-लता, बँवर।
वश-(सं०)-काबू, अधिकार। उ० यन्मायावशवर्ति विश्व मखिल ब्रह्मादि देवासुरा। (मा० १।१।श्लो० ६)
वशवर्ति-वशवर्ती, वशीभूत। उ० यन्माया वशवर्ति विश्व मखिल ब्रह्मादि देवासुरा। (मा० १।१।श्लो० ६)
वश्य-(सं०)-१ वश में, काबू में, २ वश में आने या रहनेवाला।
वसंत-(सं०)-वर्ष की छः ऋतुओं में प्रधान जिसके अन्तर्गत चैत और वैसाख के महीने आते हैं।
वसन-(सं०)-वस्त्र, कपड़ा। उ० वर वसन नील नूतन तमाल। (वि० १४)
वसिष्ठ-दे० 'वसिष्ठ'।

वसीले-(अर० वसीला)-१ अवलंब, सहारा, २ जरिये, द्वारा। उ० २ साहेब कहूँ न राम से, तोसे न वसीले। (वि० ३२)
वसुंधरा-(सं०) दे० 'वसुधा'।
वसु-(सं०)-१ आठ देवताओं का एक गण, २ आठ की संख्या, ३ रत्न, ४ ध्रुव, ५ सोम, ६ किरण, ७ कुबेर, ८ शिव, ९ विष्णु, १० सूर्य।
वसुधा-(सं०)-पृथ्वी, धरा।
वस्तु-(सं०)-पदार्थ, चीज, द्रव्य।
वस्त्रं-वस्त्र को, कपड़े को। उ० शोभाढ्यं पीत वस्त्रं सर सिजनयनं। (मा० ७।१।श्लो० १) वस्त्र-(सं०)-कपड़ा, वसन।
वह-वहन करनेवाला, ढोनेवाला।
वह-(सं० अन,‌ प्रा० ओह) एक सर्वनाम जिससे तीसरे व्यक्ति या किसी अन्य की ओर संकेत किया जाता है। उ० वह सोभा समाज सुखकहत न बनइ खगेस। (मा० ७।१२ क) वहि-वही। उ० तुलसी जासों हित लगै वहि अहार वहि देह। (दो०३१३)
वहित्र-(सं० वहित्य)-नाव, जहाज। उ० सर्वदा दास तुलसी-त्रासनिधि वहित्र। (वि० ५०)
वह्नि-(सं०)-आग।
वांछा-(सं०)-इच्छा, अभिलाषा।
वांछित-(सं०)-चाहा हुआ, इच्छित।
वा (१)-(सं०)-अथवा, या। उ० तिनके सम वैभव वा विपदा। (मा० ७।१४।७)
वा (२)-(सं०अवछ)-उस। उ०तारीगी पै राज वा विराज माम बिरदहिं। (क० ७।१७७) वाके-उसके। उ० वाके उए मिटति रजनि-जनित जरनि। (कृ० ३०) वाहि-उसे, उसको। उ०वाहि न गनत बात कहत करेरी सी। (क० ६।१०)
वाक्य-(सं०)-जुमला, बात। उ०वाक्य ज्ञान अत्यंत निपुन भवपार न पावै कोई। (वि० १२३)
वागीश-(सं०)-१ बृहस्पति, २ ब्रह्मा।
वाच-(सं० वाच्)-वाणी, भाषा।
वाचक-(सं०)-शब्द, अर्थबोधक। उ० सिद्धि साधक साध्य वाच्य वाचक रूप। (वि० ५३)
वाच्य-(सं०)-स्पष्ट अर्थ अर्थ। उ० दे० 'वाचक'।
वाजी-(सं० वाजिन्)-घोड़ा।
वाटिका-(सं०)-बगीचा, उपवन।
वाणप्रस्थ-(सं० वानप्रस्थ)-तीसरा आश्रम।
वाणी-(सं०)-१ सरस्वती शारदा २ बोली वचन। उ० १ मंगलानां चकर्त्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ। (मा० १।१।श्लो० १)
वात-(सं०)-वायु हवा। उ० दे० 'वातजातं'।
वातजातं-(सं०) वायु के पुत्र हनुमान को। उ० रघुपति प्रियभक्तं वातजातं नमामि। (मा० ५।१।श्लो० ३)
वात्सल्य-(सं०)-बड़ों का छोटों के प्रति प्रेम भाव, माता पिता का संतति के प्रति प्रेम।
वाद-(सं०) विवाद, शास्त्रार्थ।
वानर-(सं०)-बंदर। वानराणाम्-बंदरों के। उ० सकल गुण निधानं वानराणामधीशं रघुपति प्रियभक्तं वातजातं नमामि। (मा० ५।१।श्लो० ३)
वानीर-(सं०)-बेंत। उ०हरित गभीर वानीर दुहुँ तीर वर। (वि० १८)
वापी-दे० 'वापिका'।
वापिका-(सं०)-बावली, छोटा जलाशय।
वाम-(सं०)-१ बायाँ, २ कुटिल, टेढ़ा। उ०१ सीता समारोपित वामभागम्। (मा० २।१।श्लो० ३)
वामता-(सं०)-टेढ़ाई, कुटिलता।
वामदेव-दे० 'वामदेव'। उ० १ काम मद मोचन तामरस लोचन वामदेव भजे भावगम्य। (वि० १२) वामदेव-(सं०)-१ शंकर, २ एक ऋषि।
वामन-(सं०)-विष्णु का ५वाँ अवतार जो बलि को छलने के लिए हुआ था। उ०वेद विख्यात वर देस वामन विरज। (वि० ५५)
वायस-(सं०)-कौआ, काक।
वारण-(सं०)-रोकना, निषेध, मनाही।
वारपार-(सं० वार+पार)-आदि अंत, ओर छोर। उ० जहँ वार भयकर वार न पार न बोहित नाव न नीक खेवैया। (क० ७।५२)
वाराणसी-(सं०)-काशी, बनारस।
वारापार-(सं० वार+पार)-अंत, ओर छोर। उ० महिमा अपार काहू बोल को न वारापार। (क० ७।१२६)
वारि-(सं०)-पानी।
वारिचर-(सं०)-मछली आदि पानी के जीव।
वारिज-(सं०)-कमल।
वारिद-(सं०)-बादल, मेघ।
वारिधर-(सं०)-१ बादल, २ समुद्र।
वारियहिं-(?)-न्यौछावर करेंगे, उतारा करेंगे।
वारीश-(सं०)-समुद्र।
वारे-(?)-वाले। उ० विकट भृकुटि कच घूघर वारे। (मा० १।२३३।२)
वाल्मीकि-(सं०)-आदि कवि, रामायण के प्रथम लेखक। पहले ये किरातों के संग में चोरी, लूट आदि करते थे। एक बार सप्तर्षियों के सदस से इन्हें ज्ञान हुआ और तब से ये भगवान के भक्त हो गये।
वास-(सं०)-१ स्थान, रहने का स्थान, २ बू महक, ३ रहना, निवास। उ० ३ वनवास दु खतः। (मा०२।१। श्लो०२)
वासर-(सं०)-दिन।
वासव-(सं०)-१ इंद्र, २ कृष्ण।
वासवधनु-इंद्रधनुष।
वासा-(सं० वास)-निवास। दे० 'जनवासा'।
वासिन्ह-निवासी लोग। उ० विविक्त वासिन्ह सदा। (मा० ३।७।छं० ८) वासिन्ह-वासियों, निवासियों। वासी-(सं० वासिन्)-निवासी।
वासुदेव-(सं०)-वसुदेव के पुत्र कृष्ण।
वास्तव-(सं०)-यथार्थ, ठीक।
वाहिनी-(सं०)-१ नदी, २ सेना।
विंदु-(सं०)-१ बूँद, २ शून्य, सिफर, ३ बिंदी।

२ प्रसार, फैलाव।

रूप बाहु विक्रम। (मा० ३।

(स०)-१ बल, ताक़त, पराक्रम, २

रोकना, २ व्याघात, बाधा।

१ बुरी तरह नष्ट करना, २ बुरी तरह

(स०)-प्रसिद्ध, मशहूर।

(स०)-कीर्ति, ख्याति।

(स०)-१ बीता हुआ, २ रहित, शून्य।

-दे० 'विग्रह'। उ० २ विशुद्ध बोध विग्रह। (मा० १।३।श्लो० २) विग्रह-(स०)-१ लड़ाई, झगड़ा, २ शरीर, स्वरूप।

विघटन-(स०)-तोड़ना, नष्ट करना।

विघटित-(स०)-तोड़ा हुआ, नष्ट किया हुआ।

विघातक-(स०)-नष्ट करनेवाला।

विघ्न-(स०)-बाधा, व्याघात, अंतराय।

विचक्षण-(स०)-चतुर, पंडित, निपुण।

विचल-(स०)-चंचल।

विचार-(स०)-भावना, ख़याल।

विचित्र-(स०)-अद्भुत, असाधारण, विलक्षण।

विच्छेद-(स०)-१ अलगाव, अलग होना, वियोग, भेद, २ नाश।

विजन-(स०)-निर्जन, जनशून्य।

विजय-(स०)-१ जीत, फ़तह, २ भगवान के एक द्वारपाल का नाम।

विजयी-(स० विजयिन्)-जयी, जीतनेवाला।

विज्ञ-(स०)-पंडित, चतुर, प्रवीण।

विज्ञता-(स०)-प्रवीणता, कुशलता।

विज्ञान-(स०)-विशेष ज्ञान। उ० विज्ञान धामावुभौ। (मा० ४।१।श्लो० १) विज्ञानी-दोनों विज्ञान स्वरूप, दोनों विज्ञान। उ० वंदे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वरकपी श्वरौ। (मा० १।१।श्लो० ४)

विज्ञानी-(स० विज्ञानिन्)-विज्ञान जाननेवाला, विशेष ज्ञानी।

नीच, धूर्त, खल, २

-पेड़।

(स०)-१ पाखंड, मक्कारी, धूर्त

विडंबना-(स०)-१ नकल उतारना, ... करना, २ निंदा, अपमान।

विड-दे० 'विट'।

विडाल-(स०)-बिल्ली।

वितरण-(स०)-१ दान, ... होना, तरण।

वितर्क-(स०)-तर्क, विशेष

वितान-(स०)-१ मंडप,

वित्त-(स०)-धन।

विद-(स०विद्) १

विदग्ध-(स०)-विद्वान्

विदित-(स०)-ज्ञात,

विदिशा-(स० विदिशा)-दिशा ... आदि चार कोण।

विदीर्ण-(स०)-फाड़ा हुआ चीरा हुआ।

विदुर-(स०)-धृतराष्ट्र के छोटे भाई जिनका ... दासी से हुई थी। ये बड़े धर्मात्मा थे। जब ... पांडवों से मेल कराने के लिए कृष्ण हस्तिनापुर आए ... दुर्योधन का निमंत्रण अस्वीकार कर इन्हीं के घर रूखा सूखा भोजन किया था।

विदुष-(स०)-प्रवीण, पंडित, जानकार। विदुषी-(स०)-विद्यावती स्त्री।

विदूषक-(स०)-१ निंदक, २ मसखरा, भाँड़, नकल करनेवाला।

विदेश-(स०)-परदेश, अन्य देश।

विदेह-(स०)-जनक।

विद्-(स०)-जाननेवाला।

विद्ध-(स०)-छेदा हुआ।

विद्यमान-(स०)-उपस्थित, मौजूद।

विद्या-(स०)-१ ज्ञान, शास्त्रज्ञान, २ शिक्षा।

विद्याधर-(स०)-एक प्रकार के देवता।

विद्यार्थी-(स०)-छात्र, पढ़नेवाला।

विद्यालय-(स०)-स्कूल, पाठशाला।

विद्युत्-(स०)-बिजली। उ० मौलि संकुल जटामुकुट विद्यु च्छटा। (वि० १०)

विद्रुम-(स०)-मूँगा प्रवाल।

विद्वान्-(स०)-पंडित, विद्यावान।

विधवा-(स०)-पति ... स्त्री, राँड़।

विधाता-(स०)-ब्रह्मा ... -ब्रह्मा की स्त्री।

विधान-(स०)-नियम ... प्रणाली।

विधायक-(स०)-वि ... नियामक।

विधि-(स०)-१ वे ... की आज्ञा धर्मशास्त्र देते हैं। २ ब्रह्मा, ३ ... । विधिवत-नियमानुसार, यथोचित। ... में। उ० मोहांभोधर ... । (मा० ३।... श्लो० १)

विधु -(स०)-चंद्रमा, शशि । उ० भाले बालविधुर्गले च गरलं । (मा० २।१।श्लो० १)
विध्वंस-(स०)-नाश, विनाश ।
विनता-(स०)-दक्ष की कन्या और कश्यप की स्त्री । गरुड़ इनके पुत्र थे।
विनय-(स०)-विनती, शील, नम्रता ।
विनष्ट-(स०)-नष्ट, खराब ।
विनश्वर-(स०)-नष्ट होनेवाला ।
विना-(स०)-बिना, विहीन, नहीं । उ० याभ्यां विना न पश्यंति सिद्धा स्वांतस्थमीश्वरम् । (मा० १।१।श्लो० २)
विनायक-(स०)-गणेश । विनायकौ-गणेश की । उ० वंदे वाणी विनायकौ । (मा० १।१।श्लो० १)
विनाश (स०)-नाश, ध्वंस ।
विनिंदक-(स०)-विशेष निंदा करनेवाला ।
विनिपात-(स०)-१ पतन अध पात, २ दु ख, विषाद ।
विनिमय-(स०)-लेनदेन, बदल-बदल ।
विनिश्चितं-(स०)-निश्चित, तय । उ०विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे । (मा० ७।१२२ ग)
विनीत-(स०)-नम्र, सुशील ।
विनोद-(स०)-१ हँसी, मजाक, २ मनोरंजन, ३ तमाशा, कौतुक ।
विपक्ष-(स०)-विमुख, विपरीत पक्ष ।
विपत्ति-(स०)-दु ख, आफत ।
विपथ-(स०)-बुरा रास्ता ।
विपद-(स० विपद्)-दु ख, आपदा ।
विपरीत-(स०)-उलटा, विरुद्ध, प्रतिकूल ।
विपर्यय-(स०) विरोध, उलटा, इधर-उधर ।
विपश्चित-विद्वान्, बुद्धिमान् ।
विपाक-(स०)-परिणाम, फल ।
विपिन-(स०,-१ जंगल, वन, २ उपवन, वाटिका ।
विपुल-(स०) १ प्रचुर, अधिक, बहुत, २ गंभीर, अगाध । उ० १ कलिमल विपुल विभंजन नामः । (मा० ३।११।८)
विप्र-(स०)-१ ब्राह्मण, द्विज, अजामिल, ३ शुक्राचार्य, ४ विश्वामित्र । उ० १ शोभाढ्यौ पर धन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृंद प्रियौ । (मा० ४।१। श्लो० १) विप्रेण-ब्राह्मण द्वारा, ब्राह्मण से । उ० रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये । (मा० ७।१०८। श्लो० २)
विफल-(स०)-निष्फल, व्यर्थ ।
विबुध-(स०)-देवता ।
विभंग-(स०)-१ नाश, नष्ट, २ उपल, पत्थर, ३ चपल ।
विभंजन-(स० -१ नाश करना, २ तोड़नेवाला, नष्टकर्ता । उ० २ कलिमल विपुल विभंजन नाम । (मा० ३।११।८)
विभक्त-(स०) बँटा हुआ ।
विभव-(स०)-१ संपदा, धन, ऐश्वर्य, २ मोक्ष ।
विभा-(स०)-१ प्रकाश, आभा, २ शोभा, ३ किरण ।
विभाग-(स०)-भाग, हिस्सा, खंड ।
विभाति-(स० विभा)-शोभित है, शोभायमान है । उ० यस्यांके च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके । (मा० २।१ श्लो० १)

विभीषण-(स०)-रावण का भाई । यह राम का भक्त था और रावण की मृत्यु के बाद लंका का राजा बनाया गया था ।
विभुं-विभु को, सर्वव्यापक को । उ० वेदांतवेद्यं विभुम् । (मा० ४।१ श्लो० १) विभु-(स०)-सर्वव्यापी, प्रभु । विभो-हे विभु, हे भगवान् ।
विभूति-(स)-संपत्ति, ऐश्वर्य ।
विभूषण -विभूषित, शोभायमान । उ० सोऽयं भूति विभूषणः सुरवरः सर्वाधिप सर्वदा । (मा०२।१।श्लो० १) विभूषण- स०)-१ गहना, २ शोभा ।
विभेद-(स०)-दुर्भाव, फूट ।
विभ्रम-(स०)-घबराहट ।
विमर्श-(स०)-विचार, परामर्श ।
विमल-दे० 'विमल' । उ० माया मोह मलापह सुविमलं । (मा० ७। अंतिम श्लोक)
विमल-(स०)-शुद्ध, साफ, निर्मल ।
विमलता-(सं०)-निर्मलता, स्वच्छता ।
विमत्त-(स०)अधिक उन्मत्त ।
विमाता-(स० विमातृ)-दूसरी माँ, मैभा ।
विमात्र-(स० विमातृ)-सौतेला ।
विमान-(स०)-हवाई जहाज, वायुयान ।
विमुख-(स०) विरोधी, प्रतिकूल ।
विमोह-(स०)-विशेष मोह, अज्ञान ।
वियत-(स०)-आकाश ।
वियोग-(स०)-जुदाई, विरह ।
वियोगिनि-विरह से पीड़ित स्त्री । वियोगी-(स०वियोगिन्) विरही, अपनी प्रियतमा से छूटा हुआ ।
विरंचि-(स०)-ब्रह्मा ।
विरक्त-(स०)-वैरागी, त्यागी संसार से उदास ।
विरचित-(स०)-बनाया, निर्मित ।
विरज-(सं०)-रजोगुण से रहित, शुद्ध, निर्दोष ।
विरत-(स०) निवृत्त, विरक्त, वैरागी ।
विरति-(स०)-वैराग्य, त्याग, उदासीनता ।
विरद-(स०)-१ यश, कीर्ति, २ ख्याति, प्रसिद्धि ।
विरस-(स०)-रसहीन, नीरस ।
विरह-(स०)-वियोग, जुदाई ।
विराग-(स०)-वैराग्य, उदासीनता ।
विराट (१)-(स० विराट्)-ब्रह्म का वह रूप जिसका शरीर संपूर्ण विश्व है ।
विराट (२)-(स०)-१ एक देश, २ मत्स्य देश के राजा जिनके यहाँ अज्ञातवास के समय पांडव थे ।
विराध-(स०)-एक राक्षस जिसे लक्ष्मण ने मारा था ।
विरुज-(स०)-स्वस्थ, रोगरहित ।
विरुद-(स०)-यशगान, प्रशस्ति ।
विरुद्ध-(स०)-प्रतिकूल, विपरीत, विरोधी ।
विरोध-(स०)-१ शत्रुता, झगड़ा २ वैर, अनैक्य ।
विलंब-(स०)-देर अतिकाल ।
विलंबित-(स०)-जिसमें देर हुई हो ।
विलक्षण-(सं०) विचित्र, असाधारण ।
विलसद्-(स० वि+लसत्) सुशोभित, सुंदर लगता हुआ,

शोभायमान। उ० केकीकंठाभनील सुरवर विलसद्विप्र पादाब्ज चिह्न। (मा० ७।१।श्लो० १)
विलाप-(सं०)-रोना, रुदन।
विलास-(सं०)-१ प्रसन्न करनेवाली क्रिया, २ आनंद, ३ भोगविलास, ४ हिलना डोलना, ५ हाव भाव, नाज़ नखरा।
विलासिनी-(सं०)-१ विलास करनेवाली, नारी, २ वेश्या।
विलीन-(सं०)-१ नष्ट, २ लुप्त।
विलोचन-(सं०)-आँख, नेत्र।
विलोम-(सं०)-उलटा, विपरीत।
विलोल-(सं०)-१ विशेष चंचल, २ सुंदर, ३ लालची।
विवर-(सं०)-बिल, छेद।
विवरण-(सं०)-१ बयान, बखान, २ गुण कथन।
विवर्ण-(सं०)-रंगहीन, फीका, बदरंग।
विवर्धं-(सं०)-१ बढ़ा हुआ, २ बढ़ जाता है।
विवर्द्धन-(सं०) १ वृद्धि करनेवाला, २ बढ़ना।
विवश-(सं०)-१ लाचार, मजबूर, २ वशीभूत, परवश।
विवाद-(सं०)-वाक्कलह, शास्त्रार्थ।
विवाह-(सं०)-ब्याह, शादी।
विविक्त-(सं०)-एकांत, निर्जन। उ० विविक्त वासिनं सदा। (मा० ३।४।छं० ८)
विविध-(सं०)-अनेक प्रकार का।
विविचार-(सं०)-विशेष विचार।
विबुध-(सं०)-देवता।
विवेक-(सं०)-ज्ञान, विचार, सत्यासत्य का विचार। उ० मूलं धर्मतरोर्विवेक जलधे पूर्णेन्दुमानंदद। (मा० ३।१।श्लो० १)
विवेकी-(सं० विवेकिन्)-विचारवान, ज्ञानी।
विशद-(सं०)-१ विस्तीर्ण, विस्तृत, बड़ा, २ साफ़, स्पष्ट, व्यक्त, ३ सुंदर।
विशालं-दे० 'विशाल'। उ० १ चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं। (मा० ७।१०८।श्लो० ४) विशाल-(सं०)-१ बड़ा, फैला हुआ, २ सुंदर, अच्छा, ३ प्रसिद्ध।
विशिख-(सं०)-तीर, बाण।
विशिखासन-(सं०)-धनुष।
विशुद्ध-(सं०)-अधिक शुद्ध। उ० विशुद्ध बोध विग्रहं। (मा० ३।४।छं० ५)
विशेष-(सं०)-१ जो सामान्य या साधारण न हो, २ अधिक।
विशोक-(सं०) १ शोक रहित, २ विशेष शोकयुक्त।
विश्राम-(सं०)-आराम, चैन।
विश्वंभर-(सं०)-विष्णु।
विश्वं-(सं०)-संसार, जगत्। उ० यन्माया वशवर्ति विश्व मखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा। (मा० १।१।श्लो० ६)
विश्वनाथ-(सं०)-१ संसार के स्वामी, २ महादेव, शंकर।
विश्वस्त-(सं०) विश्वास के योग्य।
विश्वात्मा-(सं०)-विष्णु।
विश्वास-(सं०)-१ यकीन, एतबार, २ भरोसा, सहारा। उ० १ भवानी शंकरौ वंदे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ। (मा० १।१।श्लो० २)

विष-(सं०)-ज़हर, गरल।
विषम-(सं०)-१ जो सम न हो, असमान, २ कठिन, ३ तीव्र, ४ भयंकर, विकट। उ० १ निगुण सगुण विषम समरूप। (मा० ३।११।६)
विषमता-(सं०)-१ असमानता, २ कठिनता, दारुणता।
विषय-(सं०)-१ वस्तु, चीज़, २ भोग विलास, वासना, ३ जो इंद्रियों से जाना जाय।
विषयक-(सं०)-संबंधी, विषय का।
विषया-(सं०) भोग की वस्तुएँ।
विषयी-(सं० विषयिन्)-भोग में रत, विलासी, कामुक।
विषाण-(सं०)-सींग।
विषाद -विषाद का, दुखः का। उ० शमन सुकर्कश तर्क विषाद। (मा० ३।११।छं० ५) विषाद-(सं०)-दुःख, खेद।
विष्टा-(सं०)-मल, पाखाना।
विष्णु-(सं०)-परमात्मा का एक रूप जो सृष्टि का पालन करता है। इनकी स्त्री लक्ष्मी हैं। विष्णु के २४ अवतार कहे गए हैं। उ० विष्णु-पदकंज मकरंद इव अंबु वर बहसि। (वि० १८)
विस्तर-दे० 'विस्तार'।
विस्तार-(सं०)-फैलाव, प्रसार।
विस्तृत-(सं०)-लंबा चौड़ा, फैला हुआ।
विस्मय-(सं०)-आश्चर्य, अचंभा।
विस्मित-(सं) आश्चर्यान्वित।
विस्मृति-(सं०) भूल, बिसरना।
विस्व-(सं० विश्व)-संसार।
विहग-(सं०)-१ पक्षी, चिड़िया, २ बादल, ३ बाण, ४ सूर्य, ५ चाँद, ६ कागभुशुंडि।
विहगम-(सं०)-पक्षी, चिड़िया।
विहगिनि-(सं०)-मादा पक्षी।
विहरण-(सं०)-घूमना, भ्रमण।
विहार-(सं०)-खेल, क्रीड़ा।
विहारी-(सं० विहारिन्)-विहार करनेवाला। विहारिणौ-दोनो विहार करनेवालों को। उ० सीताराम गुणग्राम पुण्यारण्य विहारिणौ। (मा० १।१।श्लो० ४)
विहित-(सं०)-उचित, जिसका विधान किया गया हो।
विहीन-(सं०)-रहित, शून्य।
विह्वल-(सं०)-१ व्याकुल, घबराया, २ प्रसन्न।
वीचि-(सं०)-तरंग, लहर। उ० वितर्क वीचि संकुले। (मा० २।१।श्लो० ७)
वीणा-(सं०)-सितार की तरह का एक बाजा।
वीथिका-दे० 'वीथी'।
वीथी-(सं०)-गली, मार्ग, सड़क।
वीर-(सं०)-१ शूर, बहादुर, २ सहेली, सखी, ३ भाई, भ्राता।
वीरता-(सं०)-बहादुरी, शूरता।
वीरभद्र-(सं०)-शंकर का एक अनुचर।
वीर्य-(सं०)-१ बीज, बीया, २ शक्ति, पराक्रम, ३ प्रताप, तेज, ४ शुक्र, रेतस्।
वीर्यवान-(सं०)-शक्तिशाली।

वृंद-(सं०)-समूह, झुंड । उ० सुरारि वृंद भंजन । (मा० ३।४।छ० ४)
वृंदाकानन-दे० 'वृंदावन' ।
वृंदारक-(सं०)-देवता ।
वृंदावन-(सं०)-मथुरा के पास का एक प्रसिद्ध तीर्थ ।
वृक-(सं०)-१ भेड़िया, २ गीदड़, ३ कौवा, ४ क्षत्रिय, ५ आग ।
वृकोदर-(सं०)-जिसके उदर में 'वृक' नाम की आग हो । भीम ।
वृत्र-(सं०)-एक असुर जिसे इंद्र ने दधीचि की हड्डियों के वज्र से मारा था ।
वृत्तांत-(सं०)-समाचार, हाल ।
वृत्त-(सं०)-१ गोल, घेरा, २ पैदा हुआ, ३ श्लोक, ४ बीता, व्यतीत, ५ जीवनी, चरित्र, ६ दृढ़, कठिन ।
वृत्ति-(सं०)-१ रोजी, आजीविका, २ मन का ससरथा, मनोवृत्ति, ३ सूत्र का अर्थ, टीका ।
वृथहि-व्यर्थ ही । उ० यदि भय वृथहि प्रतीति । (वि०२२७)
वृथा-(सं०)-व्यर्थ, बेमतलब । उ० सुख साधन हरि विमुख वृथा । (वि० ८४)
वृद्ध-(सं०)-१ बूढ़ा, पुराना, जरठ, २ पंडित, ३ शिला जीत ।
वृद्धि-(सं०)-बढ़ती, लाभ, उन्नति ।
वृश्चिक-(सं०)-बिच्छू ।
वृष-(सं०)-१ बैल, साँड़, २ एक राशि, ३ चूहा, ४ अंडकोश ।
वृषकेतु-(सं०)-महादेव ।
वृषभ-(सं०)-बैल, साँड़ । उ० दहन इव धूमध्वज वृषभ-यान । (वि० १०)
वृषभानु-(सं०)-राधिका के पिता ।
वृषली-(सं०)-१ दुराचारिणी, कुलटा, २ वह कुमारी जो रजस्वला हो गई हो ।
वृषासुर-(सं०)-भस्मासुर नाम का राक्षस ।
वृष्टि-(सं०)-वर्षा, बारिश ।
वृष्णि-(सं०)-१ यादववंश, कृष्ण के वंश का नाम, २ उस वंश का आदि पुरुष ।
बृहत्-(सं०)-बड़ा, भारी, महान् ।
वेग-(सं)-१ प्रवाह, बहाव, २ तेजी, शीघ्रता, ३ बल, ताकत ।
वेणी-(सं०)-चोटी ।
वेणु-(सं)-१ बाँस, २ बाँसुरी, ३ एक राजा का नाम ।
वेतस-(सं०)-बेंत ।
वेताल-(सं०)-१ एक प्रकार के भूत, पिशाच, २ शिव के गण, ३ द्वारपाल, संतरी ।
वेत्ता-(सं०)-जाननेवाला, जानकार ।
वेद-(सं०)-हिंदुओं के आदि धर्म-ग्रंथ जो संख्या में ऋक्, साम, यजुः, और अथर्वन्—चार हैं । उ० विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं । (मा० ७।१०८।१)
वेदांत-(सं० -वेद के अंतिम भाग जिनमें उपनिषद् तथा आरण्यक हैं । इनमें आत्मा, परमात्मा तथा जगत का निरूपण है । उ० वेदांत वेद्यं विभुम् । (मा० ५।१। श्लो० १)
वेद्य-जानने योग्य को । उ० वेदांत वेद्य विभुम् । (मा० ५।१। श्लो० १)
वेश-(सं०)-पोशाक, कपड़ा-लत्ता ।
वेष-दे० 'वेश' ।
वै (१) (?)-१ एक अव्यय जो 'निश्चय' या 'भी' या 'ही' अर्थ में लगाया जाता है । उ०१ गज बाजिघटा भले भूरि भटा, बनिता सुत भौंह तकैं सब वै । (क०७।४१)
वै-(२)-वे । दे० 'वह' ।
वैकुंठ-(सं०)-१ स्वर्ग, २ विष्णु, ३ मोक्ष ।
वैतरणी-(सं०)-एक पौराणिक नदी जो यम के द्वार पर है ।
वैताल-(सं०)-भाट, बंदीजन ।
वैदर्भि-(सं०)-विदर्भ नगरवाली, रुक्मिणी ।
वैदिक-(सं०)-१ वेद सम्बन्धी, २ वेद विधि के अनुसार ।
वैदेही-(सं०)-सीता ।
वैद्य-(सं०)-दवा करनेवाला ।
वैनतेय-(सं०) विनता की संतान, गरुड़ ।
वैभव-दे० 'वैभव' । उ० प्रभोऽप्रमेय वैभव । (मा० ३।४। छ० ३) वैभव-(सं०)-ऐश्वर्य, धन, संपदा ।
वैराग्य-(सं०)-विषय-त्याग, विरक्ति । उ० वैराग्याम्बुज भास्करं ह्यघघनध्वांतापहं तापहम् । (मा० ३।१। श्लो० १)
वैरि-दे०'वैरी' । उ० मनोज वैरि वंदितं । (मा०३।४।छ० ५)
वैरी-(सं०)-शत्रु, दुश्मन ।
वैरोचन-(सं०)-राजा बलि के पिता का नाम ।
वैशेषिक-(सं०)-छ दर्शनों में एक । इसमें पदार्थों का विचार और द्रव्यों का निरूपण है ।
वैष्णव-(सं०)-विष्णु का भक्त ।
वैसा-(वह+सा)-उसके समान ।
व्यंग्य-(सं०)-१ ताना, चुटकी, बोली, २ विकलांग, ३ अंगहीन ।
व्यंजन-(सं०)-१ पकवान, खाने की अच्छी अच्छी चीजें, २ स्वरहीन वर्ण, जैसे क न् आदि, ३ अंग, अवयव, ४ चिह्न, निशान ।
व्यक्त-(सं०)-प्रकट, स्पष्ट ।
व्यक्ति-(सं०) प्राणी, मनुष्य ।
व्यग्र-(सं०)-व्याकुल, परेशान ।
व्यतिक्रम-(सं०)-१ उलट-फेर २ विघ्न, बाधा ।
व्यतिरेक-(सं०)-१ अभाव, छोड़कर, बिना २ भेद, अलगाव, पृथकता, ३ दोष, अपराध ।
व्यतीत-(सं०)-बीता, गत, गुजरा ।
व्यथा-(सं०)-पीड़ा कष्ट ।
व्यथित-(सं०) पीड़ित, दुखी ।
व्यभिचार-(सं०)-लंपटता, छिनाई, दूसरे की स्त्री या दूसरे के पति के साथ संभोग ।
व्याध-(सं०)-१ बध, २ मार्ग, पथ ।
व्यर्थ-(सं०)-निरर्थक, बेकार ।
व्यलीक-(सं०)-१ अपराध, कसूर, २ दुःख, ३ खोट कपट ।

व्यवस्था–(स०)–१ प्रबंध, २ धर्म-निर्णय, धर्मशास्त्र निर्णय, ३ धार्मिक कानून।
व्यवहार–(स०)–१ बरताव, आपस का बरताव, २ रोजगार, ३ लेन-देन, ४ झगड़ा।
व्यसन–(स०)–१ विपत्ति, आफत, २ विषयों के प्रति आसक्ति, ३ कुटेव, बुरी आदत, ४ किसी प्रकार का शौक।
व्यसनी–(स० व्यसनिन्)–जिसे किसी चीज का व्यसन या शौक़ हो। नशेबाज।
व्यस्त–(स०)–१ व्याकुल, घबराया, २ काम में लीन।
व्याघ्र–(स०)–बाघ, शेर। व्याघ्रिणी–शेरनी, बाघिन।
व्याध–(स०)–१ शिकारी, बहेलिया, २ वाल्मीकि मुनि।
व्याधि–(स०)–रोग, बीमारी।
व्यापक–व्यापक को। उ० विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं। (मा० ७।१०८।१) व्यापक–(स०)–जो दूर तक फैला हो, असीमित।
व्याप्त–(स०)–समाया, फैला, घुसा।
व्याप्य–(स०)–व्यापने योग्य।
व्याल–(स०)–१ सर्प, २ हाथी, ३ दुष्ट, शठ, ४ शेषनाग। उ० १ काल व्याल कराल भूषणधर। (मा० ६।१।श्लो० २)
व्यालफेन–(स०)–अफ़ीम।
व्यालराट्–(स०)–शेषनाग। उ० भाले बाल विधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्। (मा० २।१।श्लो० १)
व्यालारि–(स०)–गरुड़।
व्याली–(स०)–१ सर्पिणी, २ महादेव, शंकर।
व्यास–(स०)–१ महाभारत लिखनेवाले ऋषि, २ खेत के बीच की या गोल लकीर।
व्योम–(स०)–आकाश, गगन।
व्रजति–(स०)–जाते हैं। उ० व्रजति नात्र संशयं। (मा० ३।४।छं०१२)
व्रज–(स०)–मथुरा के आस पास का प्रदेश।
व्रजन–(स०)–घूमना, अटन।
व्रण–(स०)–घाव, फोड़ा।
व्रत–(स०)–१ उपवास, लंघन, २ प्रण, अनुष्ठान, ३ संयम, परहेज।
व्रतबंध–(स०)–जनेऊ, यज्ञोपवीत।
व्रात–(स०)–समूह, दल, झुंड।
व्रीड़ा–(स०)–लाज, लज्जा, संकोच।

# श

श–(स०)–१ कल्याण, मंगल, २ सुख, ३ शांति। उ० १ सतत शं तनोतु मम रामः। (मा० ३।११।८)
शंक–दे० 'शंका'।
शंकर–दे० 'शंकर'। उ० सदा शंकरं, शंप्रदं, सज्जनानंददं, शैलकन्यावरं, परमरम्यं। (वि० १२) शंकर–शंकर, शिव। उ० खलानां दंड कृद्योऽसौ शंकरः शंतनोतु मे। (मा० ६।१। श्लो०३) शंकर–(स०)–१ कल्याणकारी, २ शिव, महादेव, ३ शंकराचार्य। उ० २ वंदे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रूपिणम्। (मा० १।१। श्लो० ३)
शंका–(स०)–१ खौफ़, खटका, २ आशंका, संशय, शक।
शंकित–(स०)–डरा हुआ, भयभीत।
शंख–(स०)–एक समुद्री जीव जो बड़े घोंघे की तरह का होता है और पूजा आदि के समय बजाया जाता है, कंबु। उ० शंखेन्द्वाभमतीव सुन्दरतनुं शार्दूल चर्माम्बरं। (मा० ६।१। श्लो० २)
शंबर–(स०)–एक राक्षस जो इंद्र के बाण से मारा गया था।
शंबरारि–(स०)–शंबर का शत्रु कामदेव, मदन।
शंबल–(स०)–राहखर्च।
शंभु–(स०)–१ शंकर, शिव, २ ब्रह्मा। उ० शंभु आयासि जय-जय भवानी। (वि०१४) शंभुना–शिव ने, शंकर ने। उ० यत्पूर्वं प्रभुणाकृतं सुकविना श्री शंभुना दुर्गमं। (मा० ७।१३१। श्लो० १) शंभो–हे शंभु! हे शंकर! उ० प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो। (मा० ७।१०८।८)
शकुन–(स०)–१ किसी काम के समय दिखाई देनेवाले लक्षण जो उस कार्य के सम्बन्ध में शुभ या अशुभ माने जाते हैं। २ पक्षी, खग, ३ शुभ लक्षण।
शकुनि–(स०)–पक्षी, चिड़िया।
शक्ति–(स०)–१ बल, ज़ोर, सामर्थ्य, २ भगवती, देवी, ३ बरछी।
शक्र–(स०)–१ इंद्र, मघवा, २ कुरैया का वृक्ष।
शक्रजित–(स० शक्रजित्)–मेघनाद, इंद्रजीत। दे० 'इंद्र'।
शचि–(स०) इंद्र की पत्नी, इंद्राणी।
शची–दे० 'शचि'। उ० शची पति प्रियानुज। (मा० ३।४।६)
शठ–(स०)–१ दुष्ट, पाजी, २ ठग, कपटी, वंचक, ३ मूर्ख, बेवकूफ़।
शत–(स०)–सौ, एक सैकड़ा। उ० शिरसि संकुलित कलकूट पिंगल जटा-पटल शत कोटि विद्युच्छटाभं। (वि० ११)
शत्रु–(स०)–१ वैरी, दुश्मन, रिपु।
शत्रुघ्न–(स०)–राम के भाई। शत्रुघ्न सुमित्रा के पुत्र तथा लक्ष्मण के सगे भाई थे। इनका विशेष प्रेम भरत पर था। इनकी स्त्री का नाम श्रुतकीर्ति था।
शत्रुसूदन–(स०)–शत्रु को नाश करनेवाला, शत्रुघ्न। उ० जयति दाशरथि समर समरथ सुमित्रासुवन शत्रुसूदन राम भरत बंधो। (वि० ३८)
शत्रुहन–दे० 'शत्रुसूदन'।

शत्रुसाल–दे० 'शत्रुसूदन'।
शपथ–(सं०)–१ कसम, सौगंद, २ प्रतिज्ञा, प्रण, ३ शाप।
शब्द–(सं०)–१ ध्वनि, नाद, रव, वह जो कान से ग्राह्य हो। तर्कशास्त्र में शब्द गुण के २४ भेदों में एक है। २ वचन, बोल।
शब्दब्रह्म–(सं०)–१ वेद, श्रुति, २ ब्रह्मा। उ० १ शांत निरपेक्ष निर्मम निरामय अगुन शब्द-ब्रह्मैक परब्रह्म ज्ञानी। (वि० ५७)
शम–(सं०)–१ शांति, चैन, २ मोक्ष, ३ मन को विषयों की ओर से रोकना, ४ क्षमा, ५ उपचार, दवा। उ० १ सत्य-शम-दम-दया दान-शीला। (वि० ४४)
शमनं–शमन करनेवाले को, नाशक को। उ० वंदे ब्रह्मकुल कलंक शमन श्री राम भूप प्रियम्। (मा० ३।१। श्लो० १)
शमन–(सं०)–१ दूर करना, शांत करना, २ शमन करने वाला, दूर करनेवाला। उ० २ जयति ऋषि-मख-पाल, शमन सज्जन शाल, शापवश मुनि वधू-पापहारी। (वि० ४३) शमनि–संहार करनेवाली, शांत करनेवाली।
शयन–(सं०)–१ निद्रा लेना, सोना, २ शैया, सेज, पलंग, ३ सोनेवाले। उ० २ मील पर्यंक कृत शयन। (वि० १८)
शर–(सं०)–१ बाण, तीर, २ सरकंडा, सरपत। उ० १ चम असि शूल धर, डमरु शर चाप कर। (वि० ११) शरेण–(सं०)–बाण से, तीर से।
शरण–(सं०)–१ बचाव, रक्षा, २ घर, मकान, ३ आश्रम, सहारा, ४ शरणागत। उ० ४ दास तुलसी शरण सानुकूल। (वि० १२)
शरद–(सं०)–एक ऋतु जिसमें क्वार और कार्तिक के महीने होते हैं।
शरम–(फा० शर्म)–लाज, हया।
शरासनं–(सं०)–धनुष, चाप। उ० पाणौ बाण शरासन कटि लसत्तूणीर भार वरम्। (मा० ३।१। श्लो० २)
शरीर–शरीर में। उ० मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीर। (मा० ७।१०८।३) शरीर–(सं०)–देह, बदन, गात।
शर्करा–(सं०) चीनी, शक्कर।
शर्म (१)–(फा०)–लाज, लज्जा।
शर्म (२) (सं०)–कल्याण, सुख। उ० अंभोजकर चक्रधर तेज-बल शर्म-राशी। (वि० ६०)
शर्वः–(सं०)–संहारकर्ता। उ० शर्वं सर्वगतः शिव शशिनिभ श्री शंकर पातु माम्। (मा० २।१। श्लो० १) शर्व–(सं०)–संहार करनेवाला, शंकर।
शर्वरी–(सं०)–१ रात, निशा, २ स्त्री, ३ हल्दी। उ० १ सघन-तम घोर-संसार-भर-शर्वरी। (वि० ५५)
शर्वरीनाथ–दे० 'शर्वरीश'।
शर्वरीश–(सं०)–चंद्रमा। उ० मंगल-मुद-सिद्धि सदनि, पर्व शर्वरीश-वदनि। (वि० १६)
शव–(सं०)–लाश, मुर्दा।
शवर–(सं०)–कोल किरात आदि जंगली जातियाँ।
शवरी–(सं०)–प्रसिद्ध भीलनी स्त्री जिसने जूठे बेर से राम का स्वागत किया था।
शशांक–(सं०)–चंद्रमा, शशि। उ० गंगा शशांक प्रियम्। (मा० ६।१। श्लो० २)
शशि–(सं० शशिन्)–चंद्रमा। उ० शर्वं सर्वगत शिव शशिनिभ। (मा० २।१। श्लो० १)
शशिन–दे० 'शशि'।
शशी–दे० 'शशि'।
शस्त–(सं०)–प्रशंसित।
शस्त्र–(सं०)–१ हथियार, आयुध, २ उपाय। उ० १ तप्त कांचन-वस्त्र शस्त्र विद्या निपुन सिद्धसुर-सेव्य पाथोज नाभ। (वि० ५०)
शांत–(सं०)–१ स्थिर, अचंचल, स्थिरचित्त, २ नम्र, विनीत, ३ नवरसों में से एक। उ० १ शांत निरपेक्ष निर्मम निरामय अगुण। (वि० ५७)
शांतये–शांति के लिए। उ० मत्वा तद्रघुनाथ नाम निरत स्वान्तस्तम शांतये। (मा० ७।१३१। श्लो० १) शांति–(सं०)–शांत रहने का भाव, स्थिरचित्तता। उ० न तापरसुख शांति सताप नाश। (मा० ७।६।७)
शांतिपाठ–(सं०)–किसी कार्य के आरम्भ में मंत्र आदि का देवताओं के आशीर्वाद के लिए पढ़ा जाना।
शाक–(सं०)–१ हरी तरकारी, सब्जी, २ एक द्वीप का नाम।
शाकिनि–(सं०)–डाइन, चुड़ैल।
शाखा–(सं०)–डाली, डार।
शाखामृग–(सं०)–बंदर।
शाप–(सं०)–अभिशाप, सराप, श्राप। उ० शापवश मुनि वधू-पापहारी। (वि० ४३)
शायक–(सं०)–बाण, तीर।
शारङ्ग–(सं० सारंग)–विष्णु का धनुष। उ० जयति सुभग शारंग-सु-निखंग-सायक-सक्ति चारु-चर्मासि-वर वर्मधारी। (वि० ४४)
शारदी–(सं० शरद)–शरद ऋतु की।
शार्ङ्ग–(सं०)–विष्णु का धनुष।
शार्ङ्गधर–(सं०)–विष्णु।
शार्दूल–(सं०)–१ सिंह, बाघ, २ उत्तम, श्रेष्ठ, ३ राक्षस। उ० १ शत्रुनाममतीन सुन्दर तनु शार्दूल चर्माम्बर। (मा० ६।१। श्लो० २)
शाल–(सं०)–एक वृक्ष।
शालि–(सं०)–धान।
शाली–(सं० शालिन्)–वाला, भरा।
शालूर–(सं०)–मेढक।
शाल्मली–(सं० शाल्मलि)–सेमल वृक्ष।
शाश्वत–शाश्वत को, अमर को। उ० जगद्गुरुं च शाश्वतं। (मा० ३।४। श्लो० ४) शाश्वत–(सं०)–१ लगातार, २ नित्य, अमर।
शासन–(सं०)–१ आज्ञा, आदेश, २ राज्य, अधिकार, ३ दंड।
शास्त्र–(सं०)–धर्मग्रंथ, कुछ लोग न्याय, सांख्य, योग आदि ६ दर्शनों को शास्त्र तथा कुछ लोग शिक्षा, कल्प, व्याकरण अर्थशास्त्र आदि १८ को शास्त्र कहते हैं।
शिंशपा–(सं०)–१ शीशम का पेड़, २ अशोक का वृक्ष, ३ शीशा।
शिक्षा–(सं०)–१ सीख, उपदेश, २ विद्या, पढ़ाई।
शिखर–(सं०)–चोटी, शृंग।

शिखा-(सं०)-चोटी ।
शिखी-(सं०)-मोर ।
शिथिल-(सं०)-१ ढीला, २ खुला, ३ सुस्त, थका, ४ निबल, ५ विह्वल ।
शिर-(सं०)-सिर, कपाल । शिरसि-सिर पर, कपाल पर । उ० शिरसि संकुलित कलजूट पिंगल जटा । (वि० ११)
शिरा-(सं०)-नाड़ी, नस ।
शिरोमणि-(सं०)-उच्च, श्रेष्ठ ।
शिला-(सं०)-१ पत्थर, पाषाण, २ गौतमी, अहल्या ।
शिलीमुख-(सं०)-१ तीर, २ भौंरा, भ्रमर ।
शिल्प-(सं०)-कला, विद्या, कारीगरी, हुनर ।
शिव-दे० 'शिव'। उ० २ शर्व सर्वगत शिव शशिनिभ श्री शंकर पाहुमाम्। (मा० ३।१। श्लो० १) शिव-(सं०)-१ शंकर, महादेव, २ कल्याण करनेवाले, ३ मंगल, कल्याण । शिवकरं-कल्याणकारी । उ० पुण्य पापहर सदा शिवकर विज्ञान भक्ति-प्रद । (मा० ७। अंतिम श्लो०)
शिवि-(सं०)-एक पौराणिक धर्मात्मा राजा जो अपनी दानशीलता के लिए प्रसिद्ध हैं ।
शिविर-(सं०)-छावनी, पड़ाव, रावटी, तंबू ।
शिशुपाल-(सं०)-एक राजा जो कृष्ण की बूआ के पुत्र थे ।
शिष्ट-(सं०)-सदाचारी, शीलवान, सभ्य ।
शिष्य-(सं०)-जो शिक्षा ग्रहण करे, विद्यार्थी, चेला ।
शीघ्र-(सं०)-तुरत, सत्वर, जल्द ।
शीत-(सं०)-१ ठंढा, सर्द, २ जाड़ा, सर्दी ।
शीतल-(सं०)-१ ठंढा, सर्द, २ शांत, स्थिर ।
शीर्ष-(सं०)-शीश, सर, माथा ।
शील-(सं०)-१ उत्तम स्वभाव, शिष्टता, २ लज्जा, संकोच, ३ चाल, मवृत्त । उ० ३ कृपालु शील कोमल । (मा० ३।४।छं० १)
शीश-(सं०)-सर, कपाल । उ० सहस शीशावली स्रोत सुरस्वामिनी । (वि० १८)
शुंभ-(सं०)-एक दैत्य जिसे दुर्गा ने मारा था । उ० शुंभ निःशुंभ कुंभीश रणकेशरिणि । (वि० १५)
शुक-(सं०)-१ तोता, २ शुकदेव मुनि ।
शुक्र-(सं०)-१ शुक्रवार, २ शुक्राचार्य जो दैत्यों के गुरु थे । ३ वीर्य, ४ अग्नि ।
शुक्ल-(सं०)-श्वेत, सफेद ।
शुचि-(सं०)-१ पवित्र, शुद्ध, २ सफेद, ३ निष्कपट, छलहीन । उ० १ पटपीत मानहु तड़ित रुचि शुचि नौमि जनकसुता-वर । (वि० ४५)
शुचिता-(सं०)-पवित्रता ।
शुद्ध-(सं०)-१ स्वच्छ, पवित्र, २ निर्दोष, अवगुण रहित, ३ निष्कपट, छलरहित ।
शुद्धता-(सं०)-पवित्रता ।
शुद्धि-(सं०)-शोधन, सफाई ।
शून्य-(सं०)-रिक्त, खाली ।
शुभ-मंगलमय, शुभ । उ० माया-मोह मलापह सुविमल प्रेमांबुपूर शुभम् । (मा० ७। अंतिम श्लो०) शुभ-(सं०)-१ मंगल, कल्याण, भला, २ श्रेष्ठ, उत्तम, ३ छाग, बकरा ।
शुभ्र-(सं०)-१ निर्मल, स्वच्छ, सफेद, २ पवित्र, शुद्ध ।
सुषेण-(सं०)-एक वैद्य जिन्होंने शक्ति लगने के बाद लक्ष्मण का उपचार किया था । बालि की स्त्री तारा इनकी पुत्री थी ।
शुष्क-(सं०)-सूखा, नीरस ।
शूकर-(सं०)-वराह, सूअर । शूकरी-मादा सूअर ।
शूद्र-(सं०)-चौथा वर्ण ।
शूर-(सं०)-वीर, बहादुर ।
शूरता-(सं०)-वीरता, बहादुरी ।
शूर्प-(सं०)-सूप, छाज ।
शूर्पणखा-(सं०)-एक प्रसिद्ध राक्षसी जो रावण की बहन थी । लक्ष्मण ने इसके नाक कान काटे थे । इसके नाखून सूप की तरह थे ।
शूल-(सं०)-१ बरछे की तरह का एक अस्त्र, २ दर्द ३ झंडा, पताका, त्रिशूल । उ० १ चर्म असि शूलधर । (वि० ११) २ दे० 'शूलिन' ।
शूलिनं-(सं०)-त्रिशूलधारण करनेवाले । उ० लोकनाथ शोकशूल निर्मूलिनं, शूलिनं मोहतम भूरि-भानु । (वि० १२)
शूलिन्-(सं०)-त्रिशूलधारी शंकर ।
शृंखला-(सं०)-१ जंजीर, २ बेड़ी, ३ क्रम, सिलसिला, ४ कतार, श्रेणी । उ० २ मोह शृंखला छुटिहि तुम्हारे छोरे । (वि० ११५)
शृंग-(सं०)-१ सींग २ पहाड़ की चोटी, शिखर ।
शृंगवेरपुर-(सं०)-एक प्राचीन स्थान जहाँ राम के समय में निषादराज की राजधानी थी । यह स्थान प्रयाग के पास है ।
शृंगार-(सं०)-१ बनाव सजना, साज-बाज । शरीर के शृंगार १६ प्रकार के कहे गये हैं २ काव्य का एक रस । उ० २ जयति शृंगार-सर-तामरस-दाम-द्युति देह । (वि० ४४)
शृंगी-(सं० शृंगिन्)-एक प्रसिद्ध ऋषि जो लोमश के शिष्य थे । इन्हीं के शाप से परीक्षित को सर्प ने काटा था ।
शृगाल-(सं०)-गीदड़, सियार ।
शेखर-(सं०)-१ सिर, माथा, कपाल, २ मुकुट, किरीट, ३ सिर पर रक्खी जानेवाली माला ।
शेष-(सं०)-१ बची, बाकी, २ सर्पराज जिनके सहस्र फन कहे गये हैं । ३ लक्ष्मण, ४ बलराम । उ० २ शेष सर्वेश आसीन आनंदवन, प्रणत-तुलसीदास-त्रासहारी । (वि० ११)
शैल-(सं०)-पर्वत, पहाड़ । उ० हेमशैलाभदेहं दनुजवन कृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् । (मा० ५।१।श्लो० ३)
शैलकुमारी-(सं०)-पार्वती ।
शैव-(सं०)-शिव का भक्त ।
शैवाल-(सं०)-सेवार ।
शैशव-(सं०) लड़कपन ।
शोक-(सं०)-चिंता, सोच, खेद, दुःख । उ० जरत सुर

असुर नरलोक शोकाकुलं मृदुलचित अजित कृत गरल पान। (वि० ११)
शोण-(सं०)-१ शोणभद्र नाम का महानद, २ एक फूल, ३ लाल रंग।
शोणभद्र-(सं०)-नदी विशेष।
शोणित-(सं०)-खून, रुधिर।
शोथ-(सं०)-सूजन, फूलना।
शोध-(सं०)-१ खोज, अनुसंधान, तलाश, २ बदला, ३ ऋण चुकाना।
शोभा-(सं०)-सुंदरता, सौंदर्य, कांति, दीप्ति। उ० आज विबुधापगा आप पावन परम मौलिमालेव शोभा विचित्र। (वि० ११)
शोषक-(सं०)-१ शोषण करनेवाला, सोखनेवाला, २ वायु ३ सूर्य।
शौर्य-(सं०)-१ शूरता, वीरता, २ बल, पराक्रम।
श्मशान-(सं०)-मरघट, मसान।
श्याम-(सं०)-१ काला, साँवला, २ कृष्ण, ३ रात, ४ हल्दी। उ० १ श्याम नव-तामरस दाम-द्युति वपुष छवि। (वि० ६०)
श्यामकर्ण-(सं०)-काले कान का घोड़ा।
श्यामल-(सं०)-श्यामवर्ण, साँवला। उ० नीलांबुज श्यामलकोमलांग। (मा० २।१।श्लो० ३)
श्यामा-(सं०)-१ सोलह वर्षीया सुंदरी, २ पक्षी विशेष, ३ यमुना नदी, ४ रात, ५ साँवली।
श्येन-(सं०)-बाज़।
श्रग-दे० 'स्रग'।
श्रद्धा-(सं०)-आदर, विश्वास मिश्रित सम्मान का भाव। उ० भवानी शंकरौ वंदे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ। (मा० १।१ श्लो० २)
श्रम-(सं०)-१ परिश्रम, मेहनत, २ थकावट, ३ पसीना। उ० ३ भवश्रम सोषक तोषक तोषा। (मा० १।४३।२)
श्रमहारी-थकावट दूर करनेवाला। उ० सैं मैनाक होहि श्रमहारी। (मा० ५।१।५)
श्रमकण-दे० 'श्रमबिंदु'।
श्रमबिंदु-(सं० श्रमबिंदु)-पसीना। उ० भाल तिलक श्रम बिंदु सुहाए। (मा० १।२३३।२)
श्रमित-(सं०)-थका, श्रांत। उ० श्रमित भूप निद्रा अति आई। (मा० १।१७०।१)
श्रवण-(सं०)-१ कान, २ सुनना, ३ टपकना, गिरना, ४ कान से भगवान के गुण सुनना। इसका नवधा भक्ति में स्थान है। उ० २ जयति रामायण श्रवण-संजात रोमांच लोचन सजल सिथिल वाणी। (वि० २९)
श्रवन-दे० 'श्रवण'। उ० १ श्रवन-नयन-मन मग लग। (वि० २७६) ४ श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं। (मा० ३।१६।४)
श्रवनपूर-(सं० श्रवण+पूर)-कान का गहना, कर्णफूल। उ० जब ते श्रवनपूर महि खसेऊ। (मा० ६।१४।२)
श्रांत-(सं०)-थका, श्रम।
श्राद्ध-(सं०)-पिंडदान, मृत्यु के बाद का धार्मिक तर्पण आदि।
श्राप-(सं० शाप)-सराप, अभिशाप। उ० सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी। (मा० १।१२५।२)
श्री-(सं०)-१ लक्ष्मी, २ संपत्ति, धन, ३ कल्याण, ४ सौंदर्य, ५ वाणी। उ० १ श्री बिमोह जिसु रूपु निहारी। (मा०१।१३०।२) ४ सकल-सौभाग्य-संयुक्त त्रैलोक्य श्री। (वि० ६१)
श्रीखंड-(सं०)-चंदन। उ० बेनु करील श्रीखंड बसंतहिं दूषन मृषा लगावै। (वि० ११४)
श्रीनिवास-(सं०)-१ विष्णु, २ बैकुंठ। उ० १ जहँ बस श्रीनिवास श्रुति माथा। (मा० १।१२८।२)
श्रीपति-(सं०)-विष्णु। उ० विश्वंभर, श्रीपति, त्रिभुवन पति वेद बिदित यह लीख। (वि० १८)
श्रीफल-(सं०)-१ बेल, सिरफल, २ नारियल। उ० १ श्रीफल कुच कंचुकि लताजाल। (वि० १४)
श्रीमत्-(सं०)-श्रीमान्, शोभायुक्त। उ० श्रीमच्छम्भु मुखेंदु सुंदरवरे संशोभित सर्वदा। (मा० ४।१। श्लो० २)
श्रीरंग-दे०'श्रीरमण'। उ० देहि सतसंग निज अंग श्रीरंग, भवभंग-कारन, सरन-सोकहारी। (वि० ५७)
श्रीरमण-(सं०)-लक्ष्मी के पति, विष्णु।
श्रीरमन-दे० 'श्रीरमण'। उ० तीन त्रिगुन-पर परम पुरुष श्रीरमन मुकुंद। (वि० २०३)
श्रीवत्स-(सं०)-१ विष्णु के वक्षस्थल का चिह्न २ विष्णु। उ० १ सुभग श्रीवत्स केयूर कंकनहार किंकिनी-रटनि कटितट रसाल। (वि० ५०)
श्रीहत-तेजहीन, निष्प्रभ। उ० श्रीहत भए भूप धनु टूटे। (मा० १।२६३।३)
श्रुत-(सं०)-सुना हुआ। उ० तदपि जथा श्रुत जसि मति मोरी। (मा० १।११४।३)
श्रुति-(सं०)-१ वेद २ कान, ३ सुनना, ४ ध्वनि, शब्द। उ० १ जहँ बस श्रीनिवास श्रुतिमाथा। मा०१।१२८।२) २ कल कपोल श्रुति कुंडल लोला। (मा० १।२४३।२)
श्रेणि-दे० 'श्रेणी'।
श्रेणी-(सं०)-१ पंक्ति, कतार, २ समूह, ३ गली, वीथी।
श्रेनि-दे० 'श्रेणी'।
श्रेनी-दे० 'श्रेणी'। उ० १ जनु तहँ बरिस कमल सित श्रेनी। (मा०१।२३२।१) २ देव दनुज किंनर नर श्रेनीं। (मा० १।४४।२)
श्रेयस-(सं०)-कल्याणकर। श्रेयस्करी-कल्याण करनेवाली को। उ० सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्। (मा० १।१।श्लो०५)
श्रेष्ठ-(सं०)-१ उत्तम, अच्छा, उत्तम, २ जेठ, बड़ा।
श्रोता-(सं० श्रोतृ)-सुननेवाला, सुनवैया। उ० ते श्रोता बकता समसीला। (मा० १।३०।२)
श्रोत्र-(सं०)-कान, कर्ण।
श्लाघा-(सं०)-१ प्रशंसा, तारीफ़, २ इच्छा, चाह।
श्लेष-(सं०)-१ मिलाप, संयोग, २ एक अलंकार।

श्वपच–(सं०)–चांडाल, डोम। उ० श्वपच खल भिल्ल यवनादि हरिलोक-गत नाम बल विपुल मति मलिन परसी। (वि० ४६)

श्वशुर–(सं०)–पति या पत्नी का पिता।

श्वास–(सं०)–१ साँस, दम, २ प्राण, प्राणवायु।

श्वेत–(सं०)–उज्ज्वल, शुक्ल, सफ़ेद।

## ष

ष–(सं०)–१ श्रेष्ठ, उत्तम, २ केश, बाल, ३ हृदय, उर।

षट–दे० 'षट्'। उ० मागेसि नींद मास षट केरी। (मा० १।१७७।४) षटविकार–(सं० षट्+विकार)–काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या और अहंकार, ये छः विकार कहे जाते हैं। उ० षट विकार जित अनघ अकामा। (मा० ३।४५।४) षटरस–(सं० षट+रस)–मीठा, तीता, खट्टा, खारा, कड़ुआ और कसैला ये छः व्यंजन के रस हैं। उ० षटरस बहु प्रकार भोजन कोउ दिन अरु रैनि बखानै। (वि० १२३)

षटपद–(सं० षट्पद)–भ्रमर, भौंरा।

षटवदन–(सं० षट्वदन)–महादेव के पुत्र कार्तिकेय। उ० तब जनमेउ षटवदन कुमारा। (मा० १।१०३।४)

षट्–(सं०)–गिनती में ६, छः।

षडंग–(सं० षट्+अंग)–वेद के ६ अंग शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छंद।

षडंघ्रि–(सं०)–जिसके छः चरण हों। भ्रमर, भौंरा। उ० चिक्कन चिकुरावली मनो षडंघ्रि-मंडली। (गी० १।२२)

षडवर्ग–दे० 'षड्वर्ग'।

षडानन–(सं०)–दे० 'षटवदन'। उ० जय गजबदन षडानन माता। (मा० १।२३५।३)

षड्वर्ग–छः विकार। दे० 'षटविकार'। उ० छुठि षड्वर्ग करिय जय जनकसुता पति लागि। (वि० २०३)

षड़ानन–दे० 'षडानन'।

षण्मुख–दे० 'षन्मुख'।

षन्मुख–(सं० षट्+मुख)–कार्तिकेय। दे० 'षटवदन'। उ० षन्मुख जन्मु सकल जग जाना। (मा० १।१०३।४)

षष्ठ–(सं०)–छठाँ, छठवाँ।

षीर–(सं० क्षीर)–१ दूध, २ पानी।

षेम–(सं० क्षेम)–कुशल, कल्याण।

षेमा–दे० 'षेम'।

षोडश–(सं०)–सोलह, १६।

षोड़स–(सं० षोडश)–सोलह, १६। उ० राकापति षोड़स उवहिं, तारागन समुदाइ। (दो० २८६)

## स

सं–(सं० सम्)–१ सम्यक् प्रकार से, २ कल्याण, भला।

संक–(सं० शंका)–१ संदेह, शंका, २ भय, डर। उ० १ सोच बिकल कपि भालु सब, दुहुँ दिसि संकट संक। (प्र० ४।१।२)

संकट–(प्रा०)–विपत्ति, आफ़त, मुसीबत, क्लेश, दुःख। उ० जयति गतराज-दातार, हरतार-संसार-संकट, दनुज दर्पहारी। (वि० २८) संकटनि–संकटों का समूह। उ० सोच संकटनि सोच संकट परत, जर। (क० ७।७४) संकटहारी–संकटों को हरनेवाला, दुःखों को दूर करने वाला। उ० सुमिरे संकटहारी, सकल सुमंगलकारी, पालक कृपालु आपने पन के। (वि० ३७)

संकर–दे० 'संकर'। संकर (१)–(सं० शंकर)–१ कल्याण कारी, २ शिव, महादेव। उ० २ संकर सरोष महामारि ही तें जानियत। (क० ७।१८३) संकरहिं–महादेव को, शंकर को। उ० जिमि संकरहि गिरिराज गिरिजा, हरिहि श्री सागर दई। (जा० १६२) संकरहिं–१ शंकर से, २ शिव को। उ० १ तहँहुँ सती संकरहि बिवाहीं। (मा० १।६८।२)

संकर (२)–(सं०)–मिला हुआ, दो के मिश्रण से बना हुआ।

संकलप–दे० 'संकल्प'। उ० २ कन्यादान बिधान संकलप कीन्हेउ। (जा० १६१)

संकलित–(सं०)–१ इकट्ठा किया हुआ, संगृहीत, २ चुना हुआ। उ० १ दीनता प्रीति संकलित मृदुबचन सुनि। (गी० ५।४३)

संकल्प–(सं०)–१ दृढ़ विचार, पक्का इरादा, प्रण, प्रतिज्ञा, इकरार, २ किसी पुण्य कार्य को आरंभ करने के पूर्व एक निश्चित मंत्र का उच्चारण करते हुए अपना दृढ़ विचार प्रकट करना।

संकल्पि–संकल्पपूर्वक दान करके। दे० 'संकल्प'। उ० संकल्पि सिय रामहि समर्पी सील सुख सोभा मई। (जा० १६२)

संकष्ट–(सं० सं+कष्ट)–सब प्रकार का कष्ट, आपदा, क्लेश। उ० भक्त संकष्ट अवलोकि पितुवाक्य-कृत गमन किय गहन बैदेहि भर्ता। (वि० ४८)

संका-(सं० शंका)-१ संशय, संदेह, २ भय, डर। उ० २ देखि प्रताप न कपि मन संका। (मा० ५।२०।४)
संकाश-(सं०)-समान, सदृश। उ० तुषाराद्रि संकाश गौर गभीरं। (मा० ७।१०८।३)
संकास-दे० 'संकाश'।
संकि-(सं० शंका)-शंकित होकर, डरकर। उ० साँसति संकि चली, डरपे हुते किंकर ते करनी मुख मोरे। (क० ७।४८)
संकित-(सं० शंकित)-डरा हुआ, शंकित। उ० साहिब महेस सदा, संकित रमेस मोहिं। (क० ५।२१)
संकुचित-(सं०)-सिकुड़ा हुआ, संकोच युक्त। उ० सेष संकुचित संकित पिनाकी। (क० ६।४४)
संकुल-(सं०)-१ संकीर्ण, घना, २ भरा हुआ, आपूर्ण, ३ पूरा, समस्त, बिलकुल, ४ युद्ध, लड़ाई ५ भीड़, ६ असंगत वाक्य। उ० २ काल कलि-पाप-संताप-संकुल-सदा प्रनत-तुलसीदास-तात-माता। (वि० २८)
संकुलित-(सं०)-१ भरा हुआ २ घना ३ बँधा हुआ। उ० ३ शिरसि संकुलित कलकूट पिंगल जटा पटल शत कोटि विद्युच्छटाभं। (वि० ११)
संकुला-(सं०)-भरी हुई। संकुले-भरे हुए में, पूर्ण में। उ० वितर्क वीचि संकुले। (मा० ३।४।छं०७)
संकेत-(सं०)-इशारा, इंगित। उ० सुरुख जानकी जानि कपि, कहे सकल संकेत। (प्र० ५।३।१)
सँकेला-(सं० सकल)-एकत्र किया। उ० प्रथम कुमत करि कपटु सँकेला। (मा० २।३०२।२) सँकेलि-एकत्र करके, बटोर करके। उ०बिरची बिधि सँकेलि सुषमा सी। (मा० २।२३७।३)
सँकोच-(सं०)-१ सिकुड़ने की क्रिया, खिंचाव, २ लज्जा, शर्म, ३ भय, ४ आगा-पीछा, हिचकिचाहट, ५ कमी, न्यूनता। उ०५ नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल सँकोच। (मा० २।२५२)
सँकोची-१ संकोच करनेवाला, लज्जायुक्त स्वभाववाला, २ संकोच में डाल दिया। उ० १ सुनहि रहे रघुनाथ सँकोची। (मा० २।२७०।२) २ बार बार गहि चरन सँकोची। (मा० २।१२।३)
सँकोचु-दे० 'सँकोच'।
सँकोचू-दे० 'सँकोच'। उ० २ छाड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू। (मा० २।७०।४)
संक्षेप-(सं०) थोड़े में, मुख्तसर। संक्षेपहिं-थोड़े में, थोड़े में ही।
संख-दे० 'शंख'। उ० झाँझि मृदंग संख सहनाई। (मा० १।२६३।१)
सँग-दे० 'संग (१)'। उ० १ खग मृग मुदित एक सँग बिहरत सहज बिषम बड़ बैर बिहाई। (गी० २।४६)
संग-(१)-(सं०)-१ साथ, २ सोहबत, मेल, ३ विषयों के प्रति होनेवाला अनुराग, ४ वासना, आसक्ति, ५ वह स्थान जहाँ नदियाँ मिलती हैं। उ० १ पुरवासी नृप रानिन संग दिये मन। (जा० ३१) ४ मम रागादि संग़ु मनोरथ सकल संग मकल्प-वीची विरामं। (वि० ५८)

संग (२)-(फा०)-पत्थर।
संगत-(सं० संगति)-१ साथ, मित्रता, २ उचित बात।
संगति-(सं०)-१ संग, साथ, २ मैत्री, दोस्ती। उ० १ प्रभु सुजस संगति भनिति भलि होइहि सुजन मन भावनी। (मा० १।१०।छं० १)
संगम-(सं०)-१ दो वस्तुओं के मिलने की क्रिया, मिलाप, संयोग, २ नदियों के मिलने का स्थल। उ० १ संगम करहिं तलाव तलाईं। (मा० १।८५।१)
संगमु-दे० 'संगम'। उ० २ संगमु सिंहासन सुठि सोहा। (मा० २।१०५।४)
संगा-दे० 'संग (१)'। उ० ४ बैठे हृदयँ छाड़ि सब संगा। (मा० ३।८।४)
संगिनि-साथ देनेवाली। उ० मातु विपति संगिनि तैं मोरी। (मा० ५।१२।१)
संगिनी-मित्र, संगी, साथी। उ० जानकी कर सरोज लालितौ चिंतकस्य मनभृंग संगिनी। (मा० ७।१।श्लो०२)
संगी-(सं० संग)-साथी, मेली, मित्र। उ० निज संगी निज सम करत, दुर्जन मन दुख दून। (वै० १८)
सँगु-दे० 'संग'। उ० १ सीय कि पिय सँगु परिहरिहि लखनु कि रहिहहिं धाम। (मा० २।४६)
संग्या-दे० 'संज्ञा'। उ० पेखि रूप संग्या कहब गुन सु-बिबेक बिचार। (स० ४६३)
संग्रह-(सं०)-एकत्रीकरण, बटोरना, ग्रहण। उ० संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने। (मा० १।६।१)
संग्रहिय-जमा करना चाहिए, सुरक्षित रखना चाहिए। उ० का छाँड़िय का संग्रहिय कहहु बिबेक बिचारि। (दो० ३२१) संग्रहे-संग्रह करने से, ग्रहण करने से। उ० जग हँसिहैं मेरे संग्रहे, कत एहि डर डरिए। (वि० २७१)
संग्रह्यो-१ अपना लिया, अपने साथ रक्खा, २ संग्रह किया। उ० १ को तुलसी से कुसेवक संग्रह्यो, सठ सब दिन साईं द्रोहै। (वि० २२०)
संग्रही-(सं० संग्रहिन्)-१ एकत्र करनेवाला, संग्रह करने वाला, २ भविष्य के लिए रखनेवाला। उ० २ नहिं जाचत नहिं संग्रही, सीस नाइ नहिं लेइ। (दो० २६०)
संग्राम-(सं०)-युद्ध, लड़ाई। उ० जिन्हके गुमान सदा सालिम संग्राम को। (क० ११६)
संघ-(सं०)-१ समूह, ढेर, २ दल। संघानाम्-समूहों के। उ० वर्णानामर्थसंघानां रसानां छंदसामपि। (मा० १।१।श्लो० १)
संघट-(संघट्ट)-१ संयोग, मिलन, संघटन, जमघट, जमा-वड़ा, २ संघर्ष, रगड़, झगड़ा, ३ दैवयोग, संयोग, इत्तफ़ाक़, ४ व्यूहाकार। उ० १ सकल संघट पोच, सोच बस सर्वदा दास तुलसी विषम-गहन ग्रस्तम्। (वि० ५१) ४ सुभट-मर्कट भालु-कटक-संघट सजत। (वि० ४३) संघट-विधाई-(सं० संघट्ट+विधान) एकत्र करनेवाला। उ० रिपु-कपि-कटक-संघटविधाई। (वि० २५)
संघटन-दे० 'संघट्ट'।
संघटित-(सं०संघटन)-टकराते, टकराते हैं। उ०सुर बिमान हिमभानु भानु संघटित परस्पर। (क० १।११)

घट्ट-(सं०)-१ मिलावट, मिलन, सयोग, २ गढ़ना, बना वट, रचना।
घट्टन-१ मिलना, सयोग, साथ, २ रचना, गढ़ना।
घरपन-दे० 'सघर्पण'। उ० अति सघरपन जौं कर कोई। (मा० ७।१११।८)
घर्पण-(सं०)-रगड़, घिसाव।
घर्षन-दे० 'सघर्पण'।
घात-(सं०)-१ समूह, ढेर, २ सबध, मेल, साथ। उ० १ दुष्ट विबुधारि सघात महिभार अपहरन अवतार कारन अनूप। (वि० ४०)
घाता-दे० 'सघात'। उ० १ सोइ जल अनल अनिल सघाता। (मा० १।७।६)
ँघाती-'सघात)-साथी, साथ देनेवाला, सगी। उ० ब्रह्म जीव सम सहज सँघाती। (मा० १।२०।२)
ंघार-दे० 'सहार'।
ँघारा-१ दे० 'सघार', २ मार डाला। उ० २ अनुज निसाचर कटकु सँघारा (मा० १।२०८।३) सँघारि-दे० सघारि'।
ंघारा-स०सहार १ दे० 'सघार', २ नाश किया। उ० १ तप बल सभु करहिं सघारा। (मा० १।१६३।२) सघारि-मारकर, नाशकर। उ० सकुल सघारि जातुधान धारि, जबुकादि। (क० ६।२) संघारे-सहार किए, नाश किए। उ० ते सब सुरन्ह समर सघारे। (मा० १।१७३।१)
संचय-(सं०)-समूह, राशि, ढेर।
संचरत-(सं० सचरण)-१ उत्पन्न करती है, २ प्रकाशित होती है, ३ फैलती है। उ० ३ सरद चाँदनी सचरत चहुँ दिसि आनि। (ब० ४१)
संचहिं-(सं० सचय)-जमा करती हैं। उ० जोगिनि भरि भरि खप्पर सचहिं। (मा० ६।८८।४) संचहीं-एकत्र करते हैं। उ० कटकटहिं जबुक भूत प्रेत पिसाच खर्पर सचहीं। (मा० ३।२०।छं० १)
संचार-(सं०)-१ गमन, चलना, भ्रमण, पर्यटन, २ प्रचलन। उ० १ पग अतर मग अगम जल जलनिधि जन सचार। (स० १२६)
संचालन-(सं०)-१ चलाना, परिचालन, २ फैलाना।
संचित-(सं०)-एकत्र किया हुआ, इकट्ठा किया हुआ।
सँछेप-दे० 'सक्षेप'।
संछेप-दे० 'सक्षेप'। उ० ताते मैं सछेप बखानी। (मा० १।६५।२) संछेपहि-दे० 'सक्षेपहिं'। उ० तेहि हेतु मैं वृप केतु सुत कर चरित सछेपहिं कहा। (मा० १।१०३।छं०१)
संजम-(सं० सयम)-नियम, परहेज़, बुरी वस्तुओं से दूर रहना। उ० तुलसी सब सजमहीन सबै इक नाम अधार सदा जन को। (क० ७।८७)
सजात-(सं०)-१ उत्पन्न, पैदा, २ पुत्र, ३ प्राप्त। उ० १ भूमिजा-दु:ख-सजात रोषांतकृत् जातनाजतु-कृत जातु धानी। (वि० २६)
सजाता-दे० 'सजात'।
सजीवनी-(सं०)-एक प्रकार की कल्पित औषधि। कहते हैं कि इसके सेवन से मरा हुआ मनुष्य जी उठता है। उ० जयति संजीवनी-समय-सकट हनूमान धनु धान महिमा बखानी। (वि० २६)
सजुक्त-(सं० सयुक्त)-सहित, समेत। उ० जय प्रनतपाल दयाल प्रभु सजुक्त सक्ति नमामहे। (मा० ७।१३।छं० १)
संजुग-(सं० सयुत)-सग्राम, युद्ध। उ० जानत जे रीति सब सजुग समाज की। (क० ६।३०)
सजुत-(सं० सयुक्त)-जुड़ा हुआ, साथ। उ० स्रुति-समत हरि भक्ति पथ, सजुत बिरति बिबेक। (दो० ५५५)।
सँजोइल-(सं० सज्जा)-सावधान, तैयार, सुसज्जित।
सँजोऊ-(सं० सज्जा)-सजाओ, ठीक करो। उ० बेगहु भाइहु सजहु सँजोऊ। (मा०२।१९०।१)सँजोया-सजाया, परोसा। सँजोवन-सामान सजाने, तैयारी करने। उ० अस कहि अँट सँजोवन लागे। (मा० २।१९३।१)
सजोग-(सं० सयोग)-मौका, अवसर, सयोग। उ० अस सजोग ईस जब करई। (मा० ७।११७।४)
सँजोगू-सयोग, अवसर। उ० जौं बिधि बस अस बनै सँजोगू। (मा० १।२२२।४)
सज्ञा-(सं०)-नाम।
सँड़स-(सं० सदश)-सँड़सी, छड़ों की बनी विशेष वस्तु जिससे चूल्हे पर से गरम बर्तन आदि उतारते हैं।
सत-(सं० सत्)-साधु सन्यासी, विरक्त, भक्त। उ० सत सतापहर बिस्व बिश्राम कर राम कामारि अभिराम कारी। (वि० ५५) सतन-सत का बहुवचन, सतों। उ० पवनतनय सतन हितकारी। (वि० ३६) सतराज-सतो में श्रेष्ठ। उ० सतराज सो जानिए, तुलसी या सहिदानु। (वै० २३)
सतत-(सं०)-सर्वदा, लगातार, निरतर। उ० महामोह सरिता अपार महँ सतत फिरत बह्यो। (वि० ९२)
सतति-(सं०)-१ बालबच्चे, सतान, २ प्रजा, रिआया।
संतप्त-(सं०)-१ तपा, जला, दग्ध, २ दुखी, पीड़ित, ३ थका। उ० १ रामबिरहार्क सतप्त-भरतादि नरनारि सीतलकरन-कल्प साखी। (वि० २७)
सताप-(सं०)-१ जलन, आँच, २ दुःख, कष्ट, व्यथा, ३ मानसिक कष्ट। उ० २ दहि अघलव करकमल कमला रमन दमनदुख समन सताप-भारी। (वि० ४८) ३ सोवत सदने सह संसृति-सताप रे। (वि० ७३)
संतुष्ट-(सं०)-जिसको सतोष हो गया हो, तृप्त। उ० सत्य कृत सत्यरत सत्यव्रत सर्वदा पुष्ट सतुष्ट सकटहारी। (वि० ५३)
सतोष-(सं०)-सतुष्टि, सब्र, कनाअत, तोष, तुष्टि। उ० बिगत दुखदोष, सतोष सुख सर्वदा, सुनत गावत राम-राज लीला। (वि० ४४)
सतोषि-सतोष देकर, तुष्ट करके। उ० जाचक सकल सतोषि सकरु उमा सहित भवन चले। (मा० १।१०२।छं० १)
सँतोषु-दे० 'सतोष'।
सतोषु-दे० 'सतोष'। उ० रामनाम-प्रभाव सुनि तुलसिहुँ परम सतोषु। (दो० १९६)
सत्रास-(सं०+त्रास) सब प्रकार का भय, डर। उ०त्यागि सब आस सत्रास भवपास असि निसित हरिनाम जपु दास तुलसी। (वि० ४६)

सदग्ध-(सं०)-अच्छी तरह जला हुआ। उ० जयति घर्मांसु सदग्धसपति-सकुन-सदा मनत तुलसीदास तात माता। (वि० २८)
सदीपनी-(सं०)-उद्दीप्त करनेवाली। उ० यह बिराग-सदीपनी, सुजन सुचित सुनि लेहु। (वै० ६२)
सदेश-(सं०)-हाल, खबर, सवाद।
सँदेस-(सं० सदेश)-हाल, खबर, सवाद। उ० तुव दरसन, सँदेस सुनि हरि को बहुत भई अवलव प्रान की। (गी० ५।११)
सँदेसु-दे० 'सँदेस'। उ० पितु सँदेसु सुनि कृपानिधाना। (मा० २।६७ १)
सँदेसू-दे० 'सँदेस'। उ० कह सुमत्रु पुनि भूप सँदेसू। (मा० २।६६।३)
सँदेह-दे० 'सदेह'।
सदेह-(सं०)-सशय, शका, शक, अनिश्चय। उ० शोक सदेह-पाथोद पटलानिल। (वि० ४१)
सँदेहा-दे० 'सदेह'। उ० जाइअ बिनु बोलेहुँ न सँदेहा। (मा० १।६२।३)
सदेहू-दे० 'सदेह'। उ० मिलन कठिन मन भा सदेहू। (मा० १।६८।३)
सदोह-(सं०)-समूह, ढेर। उ० सुख सदोह मोह पर ग्यान गिरा गोतीत। (मा० १।१६६)
सध-(?)-१ प्रतिज्ञा, २ मर्यादा, ३ स्थिति, ४ बैठा हुआ, ५ युक्त, ६ प्रतिज्ञावाले। उ० ६ सत्यसध तुम्ह रघुकुल माहीं। (मा० २।३०।२)
सँधान-दे० 'सधाना' उ० भौंह कमान सँधान सुठान जे नारि-बिलोकनि-बान तें बाँचे। (क० ७।११८)
सधाना-(सं० सधान)-धनुष पर बाण चढ़ाने की क्रिया। उ० तुरत कीन्ह नृप सर सधाना। (मा० १।१५७।१)
सधाने-चढ़ाया, जोड़ा। उ० सुमन चाप निज सर सधाने। (मा० १।८७।१)
सँधानो-(सं० सधानिका)-अँचार, चटनी। उ० पान, पकपान बिधि नाना को, सँधानो सीधो। (क० ५।२३)
सधि-(सं०)-१ मेल, मिलाप, जोड़, २ दरार, छेद, ३ षड्यत्र, प्रपच। सधिहि-सधि में। उ० प्रसइ राहु निज सधिहिं पाई। (मा० १।२३८।१)
सध्या-(सं०)-१ शाम, साँझ, सायकाल, २ एक विशेष प्रकार का मत्रजाप जो प्रात प्रात और साय किया जाता है। उ० २ सध्या करन चले दोउ भाई। (मा० १।२३७।३)
सन्यासी-(सं०)-विरक्त, साधु। उ० जैसें बिनु बिराग सन्यासी। (मा० १।२२१।२)
सपत-दे० 'सपति'।
सपति-(सं० सपत्ति)-धन, दौलत। उ० क्यों कहौं चित्र कूट गिरि सपति महिमा मोद मनोहरताई। (गी० २।५१)
सपत्ति-(सं०)-धन, दौलत। उ० सिद्धि सिद्धि सपत्ति सुख नित नूतन अधिकाइ। (मा० १।१४)
सपदा-(सं० सपद्)-१ धन, दौलत, २ ऐश्वर्य, वैभव। उ० १ सपदा सकल सुर मानस को घर है। (क० ७। १३६)
सपन्न-(सं०)-१ पूरा किया हुआ, पूर्ण, सिद्ध, २ धनी, मालदार। उ० १ सब लच्छन सपन्न कुमारी। (मा० १।६७।२)
सपाति-(सं०)-एक गीध का नाम जो गरुड़ का ज्येष्ठ पुत्र और जटायु का भाई था। उ० सुनि सपाति बंधु कै करनी। (मा० ४।२७।६)
सपाती-दे० 'सपाति'। उ० जनु जरि पख परेउ सपाती। (मा० २।१४८।४)
सपादन-(सं०)-१ करना, पूरा करना, २ प्रदान करना, ३ ठीक करना। उ० २ सुख सपादन समन बिषादा। (मा० ७।१२०।१)
सपुट-(सं०)-१ डिब्बा, डिबिया, पात्र, २ अजुलि। उ० १ सपुट भरत सनेह रतन के। (मा० २।३१६।३) २ सिरु नाइ देव मनाइ सब सन कहत कर सपुट किएँ। (मा० १।३२६।१)
सपूर्ण-(सं०)-समस्त, पूरा, परिपूर्ण।
सप्रति-(सं०)-इस समय।
सप्रद-(सं० श+प्रद)-कल्याण के दाता।
सबध-(सं०)-लगाव, सपर्क, वास्ता।
सबत-दे० 'सबत्'।
सबर (१)-(सं० शबल)-कलेवा, पाथेय, रास्ते का खर्चा। उ० सबर निसबर को, सखा असहाय को। (वि० ६६)
सबर (२)-दे० 'शबर'। उ० मनहु सबरारि मारि, ललित मकर-जुग बिचारि। (गी० ७।७)
सबल-दे० 'सबर'। उ० धर्म कल्पद्रुमाराम, हरिधाम-पथि सबल, मूलमिदमेव एक। (वि० ४६) सबल-दे० 'सबर'। उ० जे श्रद्धा सबल रहित नहिं सतन्ह कर साथ। (मा० १।३८)
सबाद-(सं० सवाद)-बातचीत, वार्तालाप। उ० कहिहउँ सोइ सबाद बखानी। (मा० १।३०।१)
सबुक-दे० 'शबुक'। उ० मुकुता प्रसव कि सबुक काली। (मा० २।२६१।२)
सभव-(सं०)-१ उत्पत्ति, जन्म, पैदाइश, २ मुमकिन, होने लायक, ३ उचित, ४ उत्पन्न, पैदा। उ० ४ श्रुति सभव नाना सुभ कर्मा। (मा० ७।४६।१)
सँभार-(सं० सभार)-१ रक्षा, बचाव, हिफाजत, सहाय मदद, २ स्मरण, सुधि, याद, ३ गणना, गिनती ४ सँभालते हैं। उ० १ करि सँभार, कोसलराय। (वि० २२०) ४ सुमिरत सुलभ, दास दुख सुनि हरि चलत तुरत पट पीत सँभार न। (वि०२०६) सँभारहि-१ सँभालते हैं देख-रेख करते हैं। उ० १ सुनु सठ-सदा रक के धन ज्यों छन छन प्रभुहि सँभारहि। (वि० ८५) सँभारा-१ दे० 'सँभार', २ सँभाल लिया। उ० १ रघुनायक करहु सँभारा। (वि० १२५) सँभारि-१ सँभाल कर, २ यादकर। उ० २ करि बिलापु रोदति बदति सुता सनेहु सँभारि। (मा० १।६६) सँभारिए-१ सँभालिए, २ याद कीजिए। उ० २ दसरीकुमार यह आपनो सँभारिए। (ह० २२) सँभारिय-दे० 'सँभारिए'। उ० १ क्षामों रारि निवारिए, समय सँभारिय आपु। (दो० ४६२) सभारी-१ सँभालकर, २ सभाकर, सुसज्जित

पर। उ० १ देहु जाहि जोइ चाहिए सनमानि सँभारी। (गी० १।६) सँभार-१ सँभालकर, सावधानी से, २ सँभाल दिए। उ० १ जे गावहिं यह चरित सँभारे। (मा० १।३८।१) सँभारेहु-१ सँभाल दिये, २ सँभाल। सँभारो-सँभाला, रक्षा की। उ० जानत निज महिमा मेरे अघ तदपि न नाथ सँभारो। (वि० ६४) सँभार्‌यो-१ सँभाला, २ स्मरण किया। उ० २ सम दम दया दीन पालन सीतल हिय हरि न सँभार्‌यो। (वि० २०२)

सँभारन-(सं० संभार)-सँभालना, सँभालने उ० लगे सँभारन निज निज अनी। (मा० ६।४४।२)।

संभावना-(सं०)-१ कल्पना, भावना, २ किसी बात के हो सकने का भाव, मुमकिन होना, ३ दुविधा, संदेह, अनिश्चय।

संभावित-(सं)-विख्यात, प्रसिद्ध, प्रतिष्ठित। उ० संभावित कहुँ अपजस लाहू। (मा० २।३२।४)

संभाषन-(सं० संभाषण)-बातचीत, कथोपकथन। उ० कियो न संभाषन काहूँ। (वि० २७४)

संभु-(सं० शंभु)-शंकर, महादेव।

संभूत-(सं०)-उत्पन्न, पैदा। उ० जयति अंजनी-गर्भ अंभोधि संभूत विधु। (वि० २५)

संभ्रम-(सं०)-१ जल्दी, आतुरता, २ भ्रम, धोखा, ३ उत्साह, हौसला, ४ घबराहट व्याकुलता, ५ आदर, मान, गौरव। उ० ४ संभ्रम चलि आईं सब रानी। (मा० १।१६३।१) ५ जा दिन बँध्यौ सिंधु त्रिजटा सुनु तू संभ्रम आनि मोहिं सुनैहै। (गी० ५।५०)

संभ्राज-(सं०संभ्राज)-पूर्णत सुशोभित। उ०राम संभ्राज सोभा-सहित सर्वदा तुलसि मानस-रामपुर विहारी। (वि० २७)

संमत-(सं० सम्मत)-अनुमत, स्वीकृत। उ० स्रुति-गुरु साधु सुमृति-संमत यह दृश्य सदा दुखकारी। (वि० १२०)

संमति-(सं०सम्मति)-राय, इच्छा, विचार।

संमुख-(सं०सम्मुख)-सामने, आगे।

संमोह-(सं०सम्मोह)-भारी या पूर्ण मोह। उ० परमानंद संदोह अपहरन-संमोह अज्ञान-गुन संनिपातं। (वि० ५३)

संयम-(सं०)-१ परहेज़, त्याग, २ इंद्रियनिग्रह, ३ बाँधना, बंधन। दे० 'संजम'।

संयमी-संयम या परहेज़ रखनेवाला।

संयुक्त-(सं०)-मिला हुआ लगा हुआ, समेत, साथ। उ० सकल-सौभाग्य-संयुक्त-त्रैलोक्य श्री, दक्षदिसि रुचिर वारीश कन्या। (वि० ६१)

संयुग-(सं०)-लड़ाई, युद्ध।

संयुत-सहित को। उ० सीता लक्ष्मण संयुतं पथिगतं रामा भिरामं भजे। (मा० ३।१। श्लो० २) संयुत-(सं० संयुक्त)-युक्त, मिला हुआ, मिश्रित। संयुता -युक्त होकर। उ० त्वदीय भक्ति संयुताः। (मा० ३।४। छं०१२)

संयोग-(सं०)-१ मेल, लगाव, सम्बन्ध, २ दैवयोग, इत्तफ़ाक़, ३ होमहार। दे० 'संजोग'

संवत्-(सं०)-वर्ष, साल संवत्सर।

संबर-(सं० संबल)-राहख़र्च, कलेवा।

सँवराए-(सं० संवर्णन)-सुधरवाए, सजवाए। उ० प्रथमहिं गिरि बहु गृह सँवराए। (मा० १।६४।४)

संवाद-(सं०)-बातचीत, कथोपकथन।

सँवारत-(सं०संवर्णन)-१ रचते समय सँवारते समय २ सँवारता है, सुधारता है, बनाता है, ३ सँवारते हुए, सजाते हुए। उ० १ मनहुँ भानु-मंडलहि सँवारत धर्‌यो सूत विधि-सुत विचित्र मति। (गी० ७।१७) सँवारब-सँभालूँगा, सिद्ध करूँगा, बनाऊँगा। उ० सब विधि तोर सँवारब काजा। (मा० १।१६१।३) सँवारहिं-१ सँवारते हैं, ठीक करते हैं, २ सँभालकर, रचकर। उ० थकि जनि उठहि बहोरि, कुजुगुति सँवारहिं। (पा० ७३) सँवारा-रचा, बनाया, ठीक किया। सँवारि-सँभालकर, सँवारकर, रचकर। उ० काहे को कहत बचन सँवारि। (कृ० ४३) सँवारित-ठीक बनाया हुआ, जड़ा हुआ, रचा हुआ। उ० सुतिय सुभूपति भूषियत लोह-सँवारित हेम। (दो० ४०६) सँवारी-सुधारी, सजाई, बनाई। उ० रूपरासि विधि नारि सँवारी। (मा० ३।२२।४) सँवारें-१ सजाकर, २ सजाए, रचे। उ० १ इच्छामय नर बेष सँवारें। (मा० १।१५२।१) सँवारे-सँवारा, सुधारा, शृंगार किया, चिकनाया। उ० लिए बसन गज बाजि साजि सुभ साज सुभाँति सँवारे। (गी० १।४४) सँवारेउ-१ दे० 'सँवारेहु', २ सँवारा। सँवारेहु-सँवारिएगा, बनाइएगा। उ० काजु सँवारेहु सजग सबु सहसा जनि पतिआहु। (मा० २।२२)

संशय-(सं०)-१ संदेह, शंका, शुबहा, २ भय, डर, ३ चिंता। उ० १ दास तुलसी चरण शरण संशयहरण देहि अवलंब वैदेहि भर्ता। (वि० ४४)

संशोभित-पूर्णरूप से शोभित। उ० श्रीमच्छम्भु मुखेन्दु सुन्दरवरे संशोभित सर्वदा। (मा० ४।१।श्लो० २)

संसउ-दे० 'संशय'। उ० १ नाथ एक संसउ बड़ मोरे। (मा० १।४५।४)

संसय-दे० 'संशय'। उ० १ प्रेम तांबूल, गतसूल संसय सकल विपुल भवबासना-बीज-हारी। (वि० ४७)

संसर्ग-(सं०)-१ संग, साथ, २ संबंध, लगाव, ३ स्त्री पुरुष का सहवास। उ० १ संत संसर्ग त्रय वर्ग पर परम पद प्राप्य, नि प्राप्य गति त्वयि प्रसन्ने। (वि० ५७)

संसर्गा-दे० 'संसर्ग'। उ० १ प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। (मा० ७।४६।४)

संसार-(सं०)-जगत, दुनिया, जग। उ० संसार कसार अति घोर गंभीर घन गहन तरु कर्म-संकुल मुरारी। (वि० ५६)

संसारा-दे० 'संसार'।

संसारी-(सं० संसारिन्)-संसार का, संसार में रहनेवाला, जिसे आवागमन तथा सुख-दुःख की यातना सहनी पड़े। उ० तब ते जीव भयउ संसारी। (मा० ७।११७।२)

संसारु-दे० 'संसार'।

संसारू-दे०'संसार'। उ०होइहि सब उजारि संसारू। (मा० १।१७७।४)

संस्रुत-(सं०)-जमा हुआ। उ० संस्रुत मूल सूलप्रद नाना। (मा० ७।७४।३)

संसृति-(सं०)-१ आवागमन, जन्ममरण, २ संसार। उ० १ कियो कृपालु अभय कालहु तें गइ संसृति साँसति घनी। (गी० ५।३६)
संस्कृत-(सं०)-१ जिसका संस्कार किया गया हो, शुद्ध किया गया, २ संस्कृत भाषा, देववाणी। उ० २ का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिए साँच। (दो० ५७२)
संहरता-दे० 'संहर्ता'।
संहर्ता-(सं० संहर्तृ)-संहार करनेवाला, नाशकर्ता। उ० जो कर्ता पालक संहर्ता। (मा० ६।७।२)
संहार-(सं०)-नाश, प्रलय, ध्वंस। उ० उद्भवस्थिति संहार कारिणीं, क्लेशहारिणीम्। (मा० १।१।श्लो० ५)
संहारा-(सं० संहार)-१ दे० 'संहार', २ नाश किया। संहारि-मार करके। उ० सिंहिका संहारि, बलि, सुरसा सुधारि छल। (ह० २७) संहारे-नष्ट किये, मारे। उ० हाथिन सों हाथी मारे, घोड़े घोड़े सों संहारे। (क० ६। ४०)
सः-(सं०)-यह। उ० सोऽयं भूति विभूषणः सुरवर सर्वाधिप सर्वदा। (मा० २।१।श्लो० १)
स-(सं०)-१ सहित, समेत, २ शिव, ३ विष्णु, ४ वायु, ५ सर्प, ६ जीवात्मा, ७ चन्द्रमा, ८ कांति, प्रभा, ९ पक्षी, १० तुल्य, बराबर, ११ सम्मुख, सामने। उ० १ साजिकै सनाह गज गाह सउछाह दल। (क०६।३१)
सइल-(सं० शैल)-पर्वत, पहाड़। उ० मत्त भट-मुकुट-दस कंध-साहस सइल-सृंग बिद्दरनि जनु बज्र टाँकी। (क० ६। ४४)
सई-(?)-१ वृद्धि, बढ़ती, २ एक नदी जो गोमती से मिलती है, ३ सिफारिश, ४ उद्योग, कोशिश। उ० १ परमारथ स्वारथ-साधन भए अफल सकल नहिं सिद्धि सई है। (वि० १३९) २ सई तीर बसि चले बिहाने। (मा० २।१८९।१)
सक (१)-(अर०शक)-शुबहा, संदेह। उ० राम चाप तोरब सक नाहीं। (मा० १।२४५।१)
सक (२)-(सं० शक्य)-सकेगा, समर्थ है, सकते हैं। उ० सक सर एक सोषि सत सागर। (मा० ३।२६।१) सकइ-सकता है, समर्थ है। उ० करि न सकइ कछु निज प्रभुताई। (मा० ७।११६।४) सकउँ-सकूँ, सकता हूँ, सकती हूँ। उ० परउँ कूप तुअ बचन पर सकउँ पूत पति त्यागि। (मा० २।२१) सकत-सकता है, समर्थ है। सकति (१)-१ सकती है। सकसि-समर्थ हो, सके। उ०जौं मम चरन सकसि सठ टारी। (मा०६।३४।५) सकहिं-सकते हैं। उ० सकहिं न छोइ एक महि माया। (मा०२।२७६।२) सकही-दे० 'सकहिं'। सकहु-सको। सकिय-सकें, सकती। उ० सुधि बल सकिय जीति जाही सों। (मा० १।६।३) सके-१ सका, २ हो सका। सकेउ-सका। उ० बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। (मा० २।२६१।१) सकै-दे० 'सकेउ'। सकै-सके, सकता है। उ०बिपति सकै को टारी? (वि० १२०) सक्यो-समर्थ हुआ, सका। उ० नाम सक्यो नहिं धोइ। (दो० ५३१)
सकति (२) (सं० शक्ति)-ताकत, बल। उ० सकति धारो कियो चाहत मेघहू को वारि। (कृ० ५३)

सकरुण-(सं०)-करुणा के साथ, दीनता के साथ।
सकरुन-दे० 'सकरुण'।
सकलंक-(सं० स+कलंक)-कलंक के साथ, जिसमें कोई दाग हो। उ० जनमु सिंधु पुनि बंधु बिषु दिन मलीन सकलंक। (मा०१।२३७)
सकलंकु-दे० 'सकलंक'।
सकलंकू-दे० 'सकलंक'। उ० जेहिं ससि कीन्ह सरुज सकलंकू। (मा० २।११३।२)
सकल-(सं०) सर्व, समस्त, कुल। उ० यहि कलि काल सकल साधन तरु हैं स्रम फलनि फरो सो। (वि० १७३)
सकाई-(सं० शक्य)-सके, समर्थ हो। उ० जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। (मा० ७।११६।३) सकाहिं (१)-सकते हैं।
सकाना-(सं० शंका)-डरा, डर गया। उ० छत्रिय तनु धरि समर सकाना। (मा० १।२८४।२) सकानी-१ सकुचाई, २ सशंकित हुई, डरी। उ० २ कोलाहलु सुनि सीय सकानी। (मा० १।२६७।३) सकाने-१ सकुचाए, २ डरे। सकाहिं (२)-१ शंकित होते हैं, डरते हैं, २ सकुचते हैं। उ० १ राम सीय सनेह बरनत अगम सुकबि सकाहिं। (गी० ७।२६)
सकाम-(सं० स+काम)-कामना सहित, किसी इच्छा के साथ। उ०जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं। (मा०७।१५।२)
सकारे-(सं० सकाल)-प्रात काल, सवेरे। उ० अवधेस के द्वारे सकारे गई सुत गोद कै भूपति लै निकसे। (क० १।१)
सकिलि-(?)-सिमटकर, बटुरकर, इकट्ठा होकर, सरककर। उ० सकिलि श्रवन मग चलउ सुहावन। (मा० १।३६।४)
सकुच-(सं० संकोच)-१ लाज, संकोच, २ डर, भय, ३ सकुचकर। उ० १ बहुत सकुच गृहँ जनु भजि पैठे। (मा० २।२०६।३) सकुचउँ-सकुचता हूँ, संकोच करता हूँ। सकुचत-१ सकुचते हुए, संकोच करते हुए, २ लज्जित होता है, संकोच करता है, ३ सिकुड़ता है, बटुरता है। उ० १ सकुचत बोलत बचन सिरा से। (मा०२।३०३।२) २ मिले मुदित बूझि कुसल परसपर सकुचत करि सनमान हैं। (गी० ५।३५) सकुचति-सकुचती है, संकोच करती है। सकुचनि-१ संकोच करने का भाव, २ संकोचवश, संकोच में, ३ संकोच का बहुवचन। उ० २ कहि न सकति कछु सकुचनि सिय हिय सोचइ। (जा० ११२) सकुचब-सकुचैगा, सकुचना। सकुचहिं-संकोच करते हैं, सकुचाते हैं। उ० सकुचहिं मुनिहि सभीत बहुरि फिरि जाचहिं। (जा० ३८) सकुचाइ-१ सकुचाकर, संकोच कर, २ सकुचाता है संकोच करता है। उ०१ चाँच पय उफनात सींचत सलिल ज्यों सकुचाइ। (गी० ७।३६) सकुचाई-१ सकुचाये, २ संकोचवश। उ०१ मृदु बचनि मागत सकुचाई। (मा० १।१७४।३) सकुचाउँ-सकुचाता हूँ, संकोच खाता हूँ। उ० पैंड़हु मोहि कि रहैं कहूँ मैं पैंड़त सकुचाउँ। (मा० २।१२७) सकुचाउँगो-सकुचाऊँगा, लज्जित होऊँगा। उ० सरनागत मुनि बेगि बोलिहैं, हौं निपटहि सकुचाउँगो। (गी० २।३०) सकु-

चात-१ सकुचाता, २ सकुचाते हैं, सकोच करते हैं। सकुचान-१ सकुचाए, २ सकोच करना। सकुचाना-सकुच गया, सकोच करने लगा। उ० अगद वचन सुनत सकुचाना। (मा० ६।२१।२) सकुचानि-१ सकुचाए हुए, २ सकुचाई। उ० २ रामहि मिलत कैकई हृदयँ बहुत सकुचानि। (मा० ७।६क) सकुचानी-दे० 'सकुचानि'। सकुचाने-दे० 'सकुचानी'। सकुचाहिं-दे० 'सकुचाहीं'। सकुचाही-१ सकुचाते, २ सकोच करते हैं। सकुचाहु-सकुचाता हूँ, सकोच करता हूँ। उ० विलोकि अब तें सकुचाहु सिहाहूँ। (वि० २७५) सकुचि-१ लज्जित होकर, सकोच करके, २ डरकर, ३ सिकुड़कर। उ० १ सुनि सकुचि सोचहिं जनक गुरु पद यदि रघुनदन चले। (जा० १०८) सकुचिहि-सकुचाएगा, सकोच करेगा। सकुची-सकुचित हो गया, संकोच में पड़ गया। सकुचे-सकोच में पड़े। सकुचेउ-सकुचित हुए, शर्माए। सकुच्यो-दे० 'सकुचेउ'।

सकुन-दे०'सकुनि'। उ० १ सदन सकुन जनु नीड़ बनाए। (मा० १।३४६।३)

सकुनि-(स० शकुनि)-१ पक्षी, चिड़िया, २ दुर्योधन का मामा। उ० २ सभा सुजोधन की सकुनि, सुमति सरा हन जोग। (दो० ४१८)

सकुल-(स०)-कुल के सहित, खान्दान के साथ। उ० सकुल निरमूल करि दुसह दुख हरहुगे। (वि० २११)

सकृत-(स०)-१ एक बार, २ केवल, एक मात्र। उ० १ सकृत प्रनामु किहें अपनाए। (मा० २।२९९।२) २ जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल। (मा० २।२८१)

सकेलि-(स० सकेल)-खींचकर, बटोरकर। उ० उपजी, सकेलि, कपि, खेलही उखारिए। (ह० २४) सकेली-एकत्र करके, बटोरकर। उ० आयउँ इहाँ समाजु सकेली। (मा० २।२३८।३)

सकोच-(स० सकोच)-१ सकोच, २ लाज, शर्म, ३ घटती, कमी। उ०२ सदा अभागी लोग जग कहत सकोचु न सक। (म० ६।६।४)

सकोचइ-(स०सकोच)-१ सकोच करती है, २ डरती है। उ० १ गौरि गनेस गिरीसहिं सुमिरि सकोचइ। (जा० ११२) सकोचहीं-१ भय खाते, भय खाते हैं, २ सकोच करते थे। उ० १ नर नारि हरष विषाद बस हिय सकल सिवहिं सकोचहीं। (जा० ६०)

सकोचा-दे० 'सकोच'।

सकोचु-दे० 'सकोच'।

सकोप-कोप के साथ, क्रोध के साथ। उ० अरुन नयन भृकुटी कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप। (मा० १।२६७)

सकोपा-दे० 'सकोप'।

सकोरे-(स० सकुचन)-सिकोड़े, चढ़ाए। उ० तकत सुभौंह सकोरे। (गी० ३।२)

सकोहा-(स० स+क्रोध)-दे० 'सकोप'। उ० रावन आवत सुनेउ सकोहा। (मा० १।१८२।३)

सक्ति-(स० शक्ति)-१ शक्ति, बल, २ एक अस्त्र, बरछी। उ० २ सक्ति चाप-चर्मासि बरवर्म धारी। (वि० ४७) सक्तिन्ह-१ शक्तियों २ बरछियों।

सक्र-(स० शक्र)-इंद्र मघवा। उ० बहुरि सक्र सम बिन वउँ तेही। (मा० १।४।५) सक्रहिं-इंद्र को। सक्रहि-इंद्र को।

सक्रजित्-(स०)-इंद्रजीत, मेघनाद।

सक्रारि-(स०)-इंद्र का शत्रु मेघनाद, इंद्रजित्। उ० कुंभ करन अस बधु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि। (मा० ६।२७)

सखन्ह-(स० सखिन्)-सखाओं को। उ० प्रथम सखन्ह अन्हवायहु जाई। (मा० ७।११।१) सखहिं-मित्र को। उ० सखहिं सनेह बिबस मग भूला। (मा० २।२३८।३) सखहि-सखा को, मित्र को। सखा-मित्र, दोस्त। उ० सखा वचन मम मृषा न होइ। (मा० ४।७।१२) सखाउ-सखा भी, मित्र भी। उ० सिसुपन ते पितु मातु बधु गुरु सेवक सचिव सखाउ। (दो० ४५६)

सखि-(स० सखिन्)-सगिनी, सहेली।

सखिन-१ सखियों को, २ सखिया। उ०१ तब सुबाहु सूदन जस सखिन सुनायउ। (जा० ८७) सखिन्ह-दे०'सखिन'।

सखी-(स० सखिन्)-सहेली, सगिनी। उ० सुनि प्रियवचन सखी मुख गौरि निहारे। (मा० ४३)

सगर-(स०)-एक प्रतापी राजा। इनके ६०हज़ार पुत्र कपिल के शाप से भस्म हो गये थे। उन्हीं की मुक्ति के लिए गगा पृथ्वी पर लाई गई। उ० जह्नु कन्या धन्य, पुण्यकृत सगर सुत। (वि० १८)

सगरे-(स० सकल)-सब, सम्पूर्ण। उ० तनु पोषक नारि नरा सगरे। (मा० ७।१०२।५)

सगर्भ-(स० स+गर्भ)-तात्पर्य युक्त, जिसमें कुछ भीतर हो। उ० नारद वचन सगर्भ सहेतू। (मा० १।७२।२)

सगा-(स० स्वक्)-स्वजन, अपना।

सगाई-१ ब्याह, २ सबध नाता, सगापन। उ०२ निबहै भरि देह सनेह सगाई। (क० ७।४८)

सगुण-(स०)-परमात्मा का वह रूप जो सत, रज, तम आदि गुणों से युक्त रहता है। अवतार लेने पर या साकार होने पर भगवान सगुण कहे जाते हैं। यह रूप निर्गुण का उलटा है।

सगुन (१)-दे० 'सगुण'। उ० अमल अनवद्य अद्वैत निगुन सगुन ब्रह्म सुमिरामि नर भूप रूप। (वि० ५०) सगुनहिं-सगुन में, दे 'सगुण'। ३ सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। (मा० १।११६।१)

सगुन (२)-(स० शकुन) शकुन, शुभ लक्षण, शुभ। उ० उठे भूप आमरषि सगुन नहिं पायउ। (जा० ६८) सगुननि-शकुनों, शकुनों ने। उ० सगुननि साथ दयो। (गी० १।४५)

सगुनिअन्ह-शकुन जाननेवालों ने। उ० कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाए। (मा० २।११२।२)

सगे-(स० स्वक)-सबंधी लोग, अपने लोग, परिवार के। उ० सजन सगे प्रिय लागहिं जैसें। (मा० १।२२२।१)

सघन-(स०)-घना, गझिन। उ० सघन तम घोर-ससार भर। (वि० ५५)

सच-(स० सत्य)-सत्य, तथ्य, सही।

सचराचर-(सं०) स्थावर और जगम सहित । उ०जो सहस सीसु अहीसु महि धरु लखनु सचराचर धनी । (मा० २।१२६छं० १)
सचाई-(सं०सत्य) सत्यता, सच्चाई ।
सचान-(सं० सचान)-बाज पक्षी । उ० जनु सचान बन झपटेउ लावा । (मा० २।२९।१)
सचि (१) -दे० 'सची' ।
सचि (२)-(सं० सचित)-सचित करके । उ० राखी सचि कूबरी पीठ पर । (कृ० ४१)
सचिव-(सं०)-मंत्री, अमात्य । उ० उपल किये जलजान जेहि सचिव सुमति कपि भालु । (मा० १।२८ क) सचिवन्ह-मंत्रियों । सचिवहि-मंत्री को ।
सची-(सं० शची)-इंद्राणी । उ० जिमि बासव बस अमर पुर सची जयत समेत । (मा० २।१४१)
सचु-(१)-आनंद, प्रसन्नता । उ० हँसहि सभुगन अति सचु पाएँ । (मा० १।१३४।२)
सचेत-चेतयुक्त, सावधान, होशियार । उ० हनुमान पहिचानि भये सानंद सचेत हैं । (क० ५।२९।१)
सचेतन-(सं०स + चेतन) १ चेतनायुक्त, बुद्धिमान्, २ चेतन जीव । उ०२ को कहि सकइ सचेतन करनी । (मा०१।८४।२)
सचेता-दे० 'सचेत' ।
सच्चिदानद-(सं०)-सत्, चित् और आनंद स्वरूप भगवान् । उ० कुंद-इंदु-कर्पूर-गौर, सच्चिदानंद घन । (क० ७।१२०)
सच्चिदानंदा-दे० 'सच्चिदानंद' ।
सच्चिदानंदु-दे० 'सच्चिदानंद' ।
सज-(सं० सज्जा)-सजा रहे हैं, तैयार कर रहे हैं । उ० मोकहँ तिलक साज सज सोऊ । (मा० २। १८२।१) सजत-सजता है, बनता है, सँवरता है । उ० सुभट मर्कट भालु-कटक-सघट-सजत । (वि० ४३) सजन-१ सजने, २ सजाने । सजहिं-सजाते हैं । उ० सजहिं सुमंगल साज । (जा० १४६) सजहीं-सजते हैं । सजहि-सजता है । सजहु-सजो, तैयार हो जाओ । सजि-१ सज कर, २ सजाकर, ३ जमाकर । उ० ३ सजि प्रतीति बहु बिधि गढ़ि छोली । (मा० २।१७।२) सजे-सज गए, तैयार हो गए । सजेउ-१ दे० 'सजे', २ सजाया । उ० २ भूप सजेउ अभिषेक समाजू । (मा० २।८।१)
सजग-(सं० स + जागरण)-होशियार, चैतन्य । उ० होहु सजग सुनि आयसु मोरा । (मा० १।२६०।१)
सजन-(सं० स्वजन)-१ प्रिय, प्रियतम २ संबंधी, नातेदार । उ० सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे । (मा० १।२४२।१)
सजनी-(सं० सत् + जन)-सहेली, सखी । उ० जहाँ सजनी रजनी रहिहैं । (क० २।२३)
सजल-(सं स + जल)जलयुक्त, अश्रुपूर्ण । उ०सजल कठौता कर गहि कहत निषाद । (ब० २२)
सजाइ (१)-(सं० सज्जा)-सजाकर । उ० भूप भूषन बसन बाहन राज साज सजाइ । (गी० ७।१६) सजायउ-सजाया, तैयारी की । उ० भूधर भार बिदा करि साज सजायउ । (पा० १२२)
सजाइ (२)-(फ़ा० सज़ा)-दंड, सज़ा ।
सजाइ (१)-दे० 'सजाइ (१)' ।
सजाई (२)-दे० 'सजाइ (२)' । उ० तौ बिधि देइहि हमहि सजाई । (मा० २।१३।१)
सजाति-सजातीय, कुटुंबी ।
सजाय-दे० 'सजाइ (२)' । उ० पैहहि सजाय नतु कहत बजाय तोहि । (ह० २६)
सजीव-(सं०) जीता, जीवसहित । उ० जे सजीव जग अचरचर नारि पुरुष अस नाम । (मा० १।८४)
सजीवन-(सं०संजीवन)-सजीवनी जड़ी जो जीवन प्रदान करनेवाली कही गई है । उ० गौरि सजीवन मूरि मोरि जिय जानवि । (पा० १२७)
सजीवनि-दे० 'सजीवन' ।
सजोइल-दे० 'सँजोइल' । उ० सूर सजोइल साजि सुबाजि, सुसेल धरे बगमेल चले हैं । (क० ६।३३)
सज्जन-(सं० सत् + जन)-अच्छा व्यक्ति, अच्छे लोग । उ० सज्जन चल कल निकेत भूषन मनिगन समेत । (गी० ७।४)
सज्या-(सं० शय्या)-बिछौना, सेज । उ० बलकल भूषन फल असन तृन सज्या द्रुम प्रीति । (दो० १६२)
सटुकि-दे० 'सुटुकि' ।
सठ-(सं० शठ)-दुष्ट, पाजी । उ० सठ सहि साँसति पति लहत सुजन कलेस न काय । (दो०३६२) सठन्ह-१ शठों, दुष्टों, २ दुष्टों को । सठन्हि-शठों को । उ० कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को । (मा० २।३२६।छं० १) सठहि-शठ को, दुष्ट को । सठहु-१ शठ को भी, दुष्ट को भी, २ अरे मूर्खो । उ० २ सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई । (मा० ६।८८।२)
सठई-शठता, दुष्टता । उ० मदनदहन हो निपट करी सठई । (कृ० ३६)
सठु-दे० 'सठ' ।
सठता-दे० 'सठई' । उ० सो सुनि गुनि तुलसी कहत, हठ सठता की रीति । (दो० २०३)
सठताई-दुष्टता, शठता ।
सडसिन्ह-(सं० सदंश)-सड़सियों से । उ० प्रति उपार सडसिन्ह मनहुँ काटत भट दससीस । (मा० ६।२३ ख०)
सत (१)-(सं० सप्त)-सात । उ० सत पच चौपाइ मनोहर जानि जो नर उर धरे । (मा० ७।१३०।छं० ३)
सत (२)-(सं० शत)-१ सौ, सैकड़ा, २ बहुत, अधिक । उ० १ सत कोटि नाम फल पायउ । (जा० १२०) २ कहिसि कथा सत सवति कै । (मा० २।१८)
सत (३)-(सं० सत्य)-१ सत्य, २ अच्छा, सुंदर । उ० २ उतपति पांडुतनय की करनी सुनि सतपथ डर्यो । (वि० २३६)
सतत-(सं०)-सर्वदा, हमेशा । उ० धन्यास्ते कृतिन पिबति सतत श्रीराम नामामृतम् । (मा० ४।१ श्लो०२) सततु-दे० 'सतत' ।
सतपत्र-(सं० शतपत्र)—कमल ।
सतरंज-(फ़ा० शतरंज)-एक प्रसिद्ध खेल, शतरंज । उ० सतरंज को सो राज, काठ का सबै समाज । (वि० २४६)
सतर-(सं० सत्वर)-शीघ्र, तुरत ।

सतरौहैं (सं० सतर्ग+न भू) कुपित, क्रोधयुक्त। उ० बातहु पर सतरौहैं, महरि मनहिं विचारु। (कृ० १४)
सतराइ-(सं०सतर्ज १) भकभकर, क्रोधित होकर। उ० सोई सतराइ जाइ जाहि जाहि रोकिए। (क० ५।१७)
सतरूपादि-सतरूपा ने, सतरूपा को। सतरूपा-(सं० शत रूपा) स्वायंभू मनु की स्त्री का नाम। उ० स्वायंभू मनु अरु सतरूपा। (मा० १।१४२।१)
सतर्प-(सं०)-सावधान, सचेत।
सतसंगति-(सं०सत+संगति) अच्छी संगति, अच्छों का संग। उ० सत संगति संसति कर अंता। (मा०७।४५।३)
सतां-(सं०)-सज्जनों का, सज्जनों की। उ० यो ददाति सतां शंभुः कैवल्यमपि दुर्लभम्। (मा० ६।श्लो० ३)
सताइहै-(?)१ सतायेगा, कष्ट देगा। उ०सुरतरु तर तोहिं दुःख दारिद सताइहै। (वि० ६८) सतावहिं-सताते हैं। सतावै-सताता है, कष्ट देता है। उ० जेहि अनुभव बिनु मोह-जनित दारुन भव विपति सतावै। (वि० ११६)
सतानंद-(सं० शतानंद)-महाराज जनक के गुरु और पुरोहित का नाम। उ० सतानंद पद बंदि प्रभु बैठे गुर पहिं जाइ। (मा० १।२३९)
सतावन-(?)-सतानेवाला, कष्टदायक। उ० मानव-दानव देव-सतावन रावन घाटि रच्यो जग माहीं। (क० ७।१३२)
सतासी-(सं०सप्त)-सत्तासी, अस्सी और सात। उ० बीतें संवत सहस सतासी। (मा० १।६०।१)
सति-(सं० सत्य)-१ सत्य, सच्चा, २ सीधा, सरल, ३ अच्छा। उ० १ लखि नहिं सकति कपट सतिभाऊ। (कृ० १२) २ बहुरि बंदि खल गन सतिभाएँ। (मा० १।४।१)
सतिहिं (१)-१ सच्चे को,२ सच्चे ने
सतिहिं (२)-१ पार्वती को, २ पार्वती ने। सती-(सं०)-१ साध्वी, पतिव्रता, २ दक्ष प्रजापति की कन्या जिनका विवाह शिव से हुआ था। ३ मरे पति के साथ जलनेवाली स्त्री। उ० १ परम सती असुराधिप नारी। (मा० १।१२३।४) ३ घर ही सती कहावती जरती नाह वियोग। (दो० २५४)
सतुआ-(सं० सक्तुक)-भुने अन्न का चूर्ण। उ० सोनित सों सानि सानि गूदा खात सतुआ से। (क० ६।५०)
सतोगुन-सत्त्व गुण, तीनों गुणों में प्रथम और श्रेष्ठ। उ० त्याग पावक सतोगुन प्रकास। (वि० ४७)
सत्-(सं०)-१ सत्य, २ अच्छा, सुंदर। उ० सच्चिदानंद घन कर नर चरित उदार। (मा० ७।२५) सत्कर्म-अच्छा काम, पुण्य कार्य।
सत्कार-(सं०)-आदर, खातिरदारी।
सत्तरि-(सं०)-सत्तर, साठ और दस। उ० जोजन सत्तरि नगरु तुम्हारा। (मा० १।१५३।४)
सत्य-(सं० सत्+य)-सत्य और शुभ।
सत्य-(सं०)-यथार्थ सच। उ० सत्य संकल्प सुरत्रास नाम। (वि० ५१)
सत्यकेतु-(सं०)-कैकय का राजा जिसके पुत्रों के नाम प्रतापभानु तथा अरिमर्दन थे। उ० सत्यकेतु तहँ बसइ नरेसू। (मा० १।१५३।१)
सत्यता-(सं०)-सच्चाई, यथार्थता। उ० जासु सत्यता तें जड़ माया। (मा० १। ११७।४)
सत्रु-(सं० शत्रु)-वैरी, दुश्मन। उ० सत्रु न काहू करि गनै। (वै० १३)
सत्रुसमन-(सं० शत्रु+शमन)-शत्रुघ्न। उ० राम भरत लछिमन ललित सत्रुसमन शुभ नाम। (प्र० ४।६।२)
सत्रसालु-शत्रुघ्न। उ० तैसेइ सुभग सँग सत्रसालु। (गी० १।४०)
सत्रुसूदनु-शत्रुघ्न। उ० लखनु सत्रुसूदनु एक रूपा। (मा० १।२११।४)
सत्व-(सं०)-१ सत्ता, अस्तित्व, २ सार, तत्व, ३ सत्व गुण, उ०३ सुद्ध सत्व समता बिग्याना। (मा०७।१०४।१)
सत्वर-(सं०)-शीघ्र, जल्द।
सत्वात्-सत्ता से। उ० यस्सत्वादमृषैव भाति सकलं। (मा० १।१। श्लो० ६)
सद-(सं० सत्)-अच्छा, श्रेष्ठ। उ० सद्गुन सुरगन अंब अदिति सी। (मा० १।३१।७)
सदई-(सं० सदा)-नित्य ही, हमेशा ही। उ० उथपे थपन उजार-बसावन गई-बहोर बिरद सदई है। (वि० १३९)
सदन-(सं०)-१ घर, मकान, धाम, २ पानी, ३ विराम, स्थिरता, ४ एक प्रसिद्ध कसाई भक्त। उ० १ करउँ अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभ गुन सदन। (मा० १।१। सो० १) सदननि-घरों में, मकानों में, स्थानों में। उ० सुर-सदननि तीरथ, पुरनि निपट कुचालि कुसाज। (दो० ५५८) सदनि-'सदन' (=मकान, भवन, स्थान) का स्त्रीलिंग। उ० मंगल-मुद सिद्धि-सदनि। (वि० १६)
सदनु-दे० 'सदन'।
सदय-(सं०) दयालु, दयायुक्त। उ०सदय-हृदय तप निरत प्रणतानुकूलम्। (वि० ६०)
सदल-(सं०) सेना सहित। उ० सदल सलखन हैं कुसल कृपालु कोसलराउ। (गी० ५।४)
सदसि-सभा में। उ० जनक नृप-सदसि-सिवचापभंजन। (वि० ५०)
सदस्य-(सं०)-सभासद, मेंबर।
सदा-(सं०)-१ नित्य, हमेशा, सर्वदा, २ निरंतर, लगातार। उ० १ रवन गिरिजा भवन भूधराधिप सदा। (वि० ११) सदाई-सदा ही, सर्वदा ही। उ० विषय भोग पर प्रीति सदाई। (मा० ७।११८।८)
सदाचार-(सं०)-उत्तम आचरण, अच्छा आचार। उ० सदाचार जप जोग बिरागा। (मा० १।८४।४)
सदाशिव-(सं० सदाशिव)-शंकर, महादेव।
सदृस-(सं० सदृश)-समान, अनुरूप, तुल्य, बराबर। उ० भानुसत-सदृस उद्योतकारी। (वि० ५१)
सदैव-(सं०)-सर्वदा, हमेशा। उ०जद्यपि अवध सदैव सुहावनि। (मा० १।२९६।२)
सद्म-(सं०)-घर, धाम। उ० युगल पद-पद्म सुखसद्म पद्मालयं। (वि० ५१)
सद्य-(सं०)-तुरत, शीघ्र, आज ही, अभी। उ० मनहुँ विरह के सद्य घाय हिये लखि तकि तकि धरि धीरज तारति। (गी० ५।१६)

सधवा-(सं० स+धव) सुहागिन, वह स्त्री जिसका पति जीवित हो।
सन (१)-(सं० शण)-एक प्रसिद्ध पौधा जिसकी छाल की रस्सियाँ आदि बनती हैं। उ० सन इव खल पर बंधन करई। (मा० ७।१२१।६)
सन (२)-(सं० सग)-१ साथ, २ से। उ० २ मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सुसूकरखेत। (मा० १।३० क)
सनक-(सं०)-ब्रह्मा के चार मानस पुत्रों में से एक। उ० सिद्ध सनकादि योगीन्द्रवृन्दारका। (वि० १२)
सनकार-(सं० संकेत)-इशारा करना, संकेत करना। उ० समय सुकरुना सराहि सनकार दी। (क० ७।१८३)
सनकारे-इशारा किया। उ० सनकारे सेवक सकल चले स्वामि रुख पाइ। (मा० २।१६६)
सनमान-(सं० सम्मान)-आदर, सत्कार, प्रतिष्ठा। उ० केहि करनी जन जानि कै सनमान किया रे। (वि० ३३)
सनमानत-१ आदर करते हुए, २ आदर करते हैं। उ० १ जनकहि एक सिहाहि देखि सनमानत। (जा० १४)
सनमानहिं-आदर करती हैं। उ० बार-बार सनमानहिं रानी। (मा० १।३२१।४) सनमाना-१ आदर किया, २ सनमान, सम्मान, आदर। उ० १ सहित बरात राउ सनमाना। (मा० १।३०६।३) सनमानि-आदर करके। सनमानी-१ आदर किया, २ आदर करके। उ० १ दच्छ त्रास काहुँ न सनमानी। (मा० १।६३।१) सनमाने-सम्मान किया। उ० ते भरतहि भेंटत सनमाने। (मा० १।२६।७) सनमानेउ-आदर किया। उ० नृप सुनि आगे आइ पूजि सनमानेउ। (जा० १३१)
सनमानु-सम्मान, आदर। उ० कीन्ह संभु सनमानु जनम फल पाइन्हि। (पा० ८४)
सनमानू-दे० 'सनमान'।
सनमुख-(सं० सम्मुख)-सामने, सम्मुख। उ० जेहि न होइ रन सनमुख कोई। (मा० १।१८०।४)
सनाए-(सं० सधम्)-सनवा दिए, मिलवा दिए। उ० भरि भरि सरवर बापिका अरगजा सनाए। (गी० १।६)
सनातन-(सं०)-१ शाश्वत, नित्य, २ ब्रह्मा के पुत्र एक ऋषि।
सनाथ-(सं०)-१ नाथ सहित, सुरक्षित, २ कृतार्थ, कृत कृत्य। उ० २ भए देव सकल सनाथ। (मा० ६।११३।२)
सनाथा-दे० 'सनाथ'। उ० २ निरखि बदन सब होहिं सनाथा। (मा० ४।२२।१)
सनाह-(सं० सन्नाह)-बख्तर, कवच। उ० साजि कै सनाह गज गाह सउछाह दल। (क० ६।२१)
सनाहु-दे० 'सनाह'। उ० सुमिरि राम मागेउ तुरत तरकस धनुष सनाहु। (मा० २।१६०)
सनाहे-(सं० स+नाथ)-पतिया सहित। उ० जस अमर नाग-नर-सुमुखि सनाहे। (गी० ७।१३)
सनि-(सं० शनि)-१ शनिश्चर, २ शनिश्चर दिन।
सनीचरी-(सं० शनैश्चर)-शनिवार। मु० मीनकी सनीचरी-मीन राशि पर शनीचर का आना जो अशुभ है। इससे राजा और प्रजा की हानि होती है। उ०पोद में भी साजु सी सनीचरी है मीन की। (क० ७।१७७)
सनेह-(सं० स्नेह)-प्रेम, प्यार। उ० सुख सनेह सब दियो दसरथहिं खरि खलेल थिर थानी। (गी० १।४)
सनेहा-दे० 'सनेह'। उ० भए मगन सिव सुनत सनेहा। (मा० १।८२।२)
सनेही-१ स्नेही, प्रेमी, २ तेल युक्त। उ० १ जे तुलसी के परम सनेही। (वि० ३६) २ पेरत कोल्हू मेलि तिल तिली सनेही जानि। (दो० ४०३)
सनेहु-दे० 'सनेह'।
सनेहू-दे० 'सनेह'।
सन्निपात-(सं०)-१ त्रिदोष, सरसाम, २ समूह, ढेर। उ० २ पूरनानंद-संदोह अपहरन-संमोह अज्ञान-गुन सन्नि-पात। (वि० ५३)
सन्मान-(सं० सम्मान)-आदर, सम्मान।
सन्मुख-(सं० सम्मुख)-१ सामने, आगे, २ साक्षात्, प्रत्यक्ष, ३ अनुकूल।
सन्यपात-दे० 'सन्निपात'। उ० गुनकृत सन्यपात नहिं केही। (मा० ७।७१।१)
सन्यास-दे० 'सन्यास'।
सपत-दे० 'सप्त'। उ० सपत ऋषिन्ह बिधि कहेउ बिलंब न लाइय। (पा० १२६)
सपच्छ-(सं० स+पक्ष)-पंखवाला, पक्षयुक्त। उ० जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा। (मा० ३।१८।२)
सपच्छा-दे० 'सपच्छ'।
सपथ-(सं० शपथ)-सौगंद, कसम। उ० तोहिं स्याम की सपथ जसोदा आइ देखु गृह मेरे। (कृ०३) सपथनि-कसमों से, शपथों से। उ० क्यों हीं आजु होत सुचि सपथनि कौन मानिहै साँची? (गी० २।६२)
सपदि-(सं०)-तुरन्त, उसी समय। उ० सपदि होहि पच्छी चंडाला। (मा० ७।११२।८)
सपन-(सं० स्वप्न)-सपना, स्वप्न। उ० सपनेहुँ सपन यह नींक न होई। (मा० २।२२६।४) सपनेहुँ-सपने में भी। उ० मेरे ही सुख सुखी सुख अपनो सपनेहुँ नाँहि। (गी० ७।२६)
सपना-दे० 'सपन'। सपने-स्वप्न, सपना। उ० सपने के सौतुक सुख-सरस सुर सींचत देत निराइ कै। (गी० २।२८) सपनेहुँ-दे० 'सपनेहुँ'। उ० सपनेहुँ दोस न लेसु न काहू। (मा० २।२६१।३) सपनेहु-सपने में भी। सप नेहू-स्वप्न में भी। उ० सोवत सपनेहुँ सहै संसृति संता प रे। (वि० ७३)
सपनो-दे० 'सपन'। उ० सपनो सो अपनो न कछू। (गी० ४।३०)
सपरन-(सं० स+पर्ण)-पर्णों सहित।
सपरब-(सं०स+पर्व)-गाँठों सहित। उ०सरल सपरब परहिं नहिं चीन्हे। (मा० १।२८८।१)
सपुर-(सं०स+पुर) पुरवासियों के साथ। उ० दुखि सपुर परिवार जनक हिय हारेउ। (जा० १००)
सपूत-(सं० सु+पुत्र)-योग्य पुत्र, सुपुत्र। उ० सूर, सुजान सपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई। (वि० १७२)
सपेला-(सं० सर्प)-साँप का बच्चा। उ० इरपाव नहिं स्वपन सपेला। (मा० ६।२१।७)

सपोल-दे० 'सपेला'।
सप्त-(स०)-सात। उ० सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी। (मा० ७।१२१।७)
सप्तक-(स०)-सात वस्तुओं का समूह। उ० प्रथम सर्ग जो सेष रह दूजे सप्तक होइ। (प्र० १)
सप्तदीप-(सं० सप्तद्वीप)-पुराणानुसार—जंबु, कुश, प्लक्ष, शाल्मलि, क्रौंच, शाक और पुष्कर नामक सप्तद्वीप। उ० सप्तदीप भुजबल बस कीन्हे। (मा० ७।१४१।४)
सप्तधातु-(स०)-रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सप्तधातुएँ हैं जिनसे शरीर बना है। उ० सातें सप्तधातु निर्मित तनु करिय विचार। (वि० २०३)
सप्तरिषि-दे० 'सप्तर्षि'। उ० तबहिं सप्तरिषि सिव पहिं आए। (मा० १।७७।४)
सप्तर्षि-(स०)-कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, यमदग्नि और वसिष्ठ, ये सात ऋषि।
सप्तसागर-(स०)-लवण, इक्षु, दधि, क्षीर, मधु, मदिरा, और घृत के सात समुद्र। उ० भूमि सप्तसागर मेखला। (मा० ७।२२।१)
सप्तावरन-(स० सप्त+आवरण)-आत्मा के जल, पवन, अग्नि, आकाश, अहंकार, महत्तत्व और प्रकृति नामक सात आवरण। उ० सप्तावरन भेद करि जहाँ लगें गति मोरि। (मा० ७।७१ ख)
सफरी-(स० शफरी)-मछली। उ० सफरी सनमुख जल प्रवाह सुरसरी बहै गज भारी। (वि० १६७)
सफल-(स०)-१ कृतकार्य, कामयाब, २ फलयुक्त। उ० १ नैन लाहु लहिं जनम सफल करि लेखहिं। (जा० २११) २ सफल पूगफल कदलि रसाला। (मा० १।३४४।४)
सब-(स० सर्व)-सभी, पूरे, संपूर्ण। उ० सब सोच विमोचन चित्रकूट। (वि०२३) सबइ-सभी, सब ही। सबनि-१ सबने, २ सबको, ३ सब पर, ४ सब, सभी। उ० १ मंगल कलस सबनि साजे। (गी० ६।२३) सबन्ह-दे० 'सबन्हि'। सबन्हि-सब, सभी। उ० पत मिस लोचनलाहु सबन्हि कहँ दीन्हेउ। (जा० ७२) सबहीं-सबको। सबहिं-१ सबको, २ सबने। उ० १ सबहिं समरथहिं सुखदप्रिय। (दो० ७४) २ आपन आपन साज सबहिं बिलगायउ। (पा० १०३) सबहि-१ सभी, २ सबको। उ० १ सबहि को पाप बहावौं। (गी० ६।८) सबहीं-दे० 'सबही'। सबही-१ सभी, २ सभी को। उ० १ बायस इव सबही सन डरईं। (मा० ७।११२।७) २ कपि बाप्यो सो मालुम है सबही। (क० ७।१०२) सबै (१)-१ सभी, २ सभी का, ३ सबमें। उ० १ दिये जगत जहँ लगि सबै सुख गज रथ घोरे। (वि०८) ३. तुलसी तेहि औसर लावनिता दस चारि नौ तीन इकीस सबै। (क० १।७)
सबद-(स० शब्द)-शब्द आवाज। उ० डोलै लोल बूभत सबद ढोल तूरमा। (क० ७।१४८)
सबदी-(स० शब्द)-संतों के उपदेश। उ० साखी सबदी दोहरा कहि किहनी उपखान। (दो० ५५४)
सबरि-(स० शबरी)-शबरी नामक भीलनी। उ० कीस, केवट, उपल, भालु, निसिचर, सबरि, गीध सम-दम-दया दान हीने। (वि० १०६)
सबरी-दे० 'सबरि'।
सबल-(स०)- बलवान, बलयुक्त। उ० सेवक सुखदायक सबल सब लायक। (वि०३७)
सबील-(अर०)-१ प्रबंध, २ रास्ता, मार्ग। उ० १ कहै 'मैं बिभीषन की कछु न सबील की'। (क० ६।२२)
सबु-दे० 'सब'। सबुइ-सभी, सब। उ० बगि बिलंबु न करिअ नृप साजिअ सबुइ समाजु। (मा० २।४)
सबेर-दे० 'सबेरो'।
सबेरा-दे० 'सबेरो'।
सबेरे-दे० 'सबेरो'।
सबेरो-(स+वेला)-प्रात, सबेरा। उ० सनेह सों राम को होइ सबेरो। (क० ७।३२)
सबै (२)-(स० सवय)-एक उमर के। उ० सखा सब बीर सबै। (क० १।७)
सब्द-(स०शब्द)-१ शब्द, २ आवाज, ३ वाक्य, बोल।
सभ-(स० सर्व+ही)-सब, सभी। उ० सभ कै सकति सधु धनु भानी। (मा० १।२६२।३) सभहिं-सभी को।
सभदरसी-(स०सर्व+दर्शिन्) सर्वदर्शी, सर्वज्ञ।
सभहि-सभा को। उ० सकल सभहि हठि हटकि तब। (मा० १।६३) सभा-(स )-मंडली, पंचायत, समाज। उ०सत सभा चहुँदिसि चँवराईं। (मा० १।३७।६)
सभासद-(स०)-सभा में बैठनेवाले, दरबारी। उ० राज समाज सभासद समरथ। (छ० ६०)
सभीत-(सं०) डरा हुआ, भयभीत। उ० समुझाये डर लाइ आनि सनेहँ सभीत। (मा० २।७२)
सभीता-दे० 'सभीत'।
सम-विषमतारहित को। उ० सम सुसेव्य मन्वह। (मा० ३।४छं० १०) सम-(स०)-१ समान, तुल्य, बराबर, २ सीधा ३ ठीक, समदर्शी, ४ एकसा सीधा, ६ मन का विषयों से रोकना, ७ एकरस। उ० २ परसा सेल पाँस सम करहीं। (मा० २।१६१।३) ४ तुम्ह सम सील धीर मुनि ग्यानी। (मा० १।२७७।२)
समउ-(स० समय)-समय, वक्त। उ० दव देखि भउ समउ मनोज बुलायउ। (पा० २८)
समक्ष-(स०)-सामने, सम्मुख।
समग्र-(स०)-सारा, संपूर्ण।
समचर-(स०) समान आचरण करनेवाला। उ०नाद निठुर समचर सिखी सलिल सनेह न सूर। (वि० १६१)
समझ-(हिं)-१ बुद्धि, अक्ल, २ सम्मत, राय।
समझत-१ समझता है, विचारता है, २ जानने में।
समता-(स०)-१ सम या बराबर होने का भाव, २ सब को बराबर समझना। उ० २ तुलसी यह मत सत को थोड़े समता माहि। (वै० १३)
समत्थ-समर्थ। उ० समत्थ हाथ पाथ को, सहाय असहाय को। (ह० ३१)
समदरसी-(सं०समदर्शिन्) सबको बराबर समझनेवाला। उ० समदरसी जानहि हरि लीला। (मा० ११३०।३)
समदि-(हिं)-१ आदर-सत्कार करके, २ पूजा करके।

उ० १ सब विधि सबहि समदि नर नाहू। (मा० १। ३२४।१)

समदक–समदर्शी। उ० दृग, समदक स्वदक विगत अति स्वपर मति परमरति तव विरति चक्रपानी। (वि० ५७)

समधी–(स० सबधी)–१ पति और पत्नी के पिता आपस में समधी होते हैं। २ सबधी। उ० १ सम समधी देखे हम आजू। (मा० १।३२०।३) २ समधी सकल सुआसिनि गुरु तिय पावनि। (जा० २१४)

समन–दे० 'समन'। उ० १ जय राम रमा रमन समन। (मा० ७।१४।छ० १) समन–(स० शमन)–१ शमन करनेवाला, २ नाश, ध्वस, ३ यमराज। उ० ३ मातु मृत्यु पितु समन समाना। (मा० ३।२।२) समनि–नाश करनेवाली। उ० सगर सुवन साँसति समनि। (वि० २०)

समनी–दे० 'समनि'। उ० तुलसिदास कल कीरति गावत जो कलिमल समनी। (गी० ७।२०)

समय–(स०)–१ काल, अवसर, वेला, २ समय पर, ३ मुहूर्त, साइत। उ० १ समय न चोखो लैहौं। (गी० ३।१३) २ समय सब ऋषिराज करत समाज साज समीति। (गी० ७।३२) समयन–समयों पर, समय पर। उ० तिन्ह समयन लखा दइ, यह रघुवर की रीति। (दो० १६२) समयहि–समय ने ही। उ० समयहि साधे काज सब। (दो० ४४८)

समर–(स०)–सग्राम, लड़ाई। उ० ऐसे समय समर सकट हौं तज्यो लखन सो भ्राता। (गी० ६।७)

समरत्थ–(स० समर्थ)–सामर्थ्यवान, समर्थ। उ० असुर सुर सर्व सरि समर समरत्थ सूरे। (ह० ३)

समरथ–सामर्थ्यवान। उ० समरथ को नहिं दोष गोसाईं। (ह० ४७)

समरपित–(स० समर्पित)–दी हुई, समर्पित, अर्पित। उ० सुधन समरपित कीन्हि। (प्र० ४।६।३)

समरपी–समर्पित किया, दिया। उ० भवहि समरपीं जानि भवानी। (मा० १।१०१।१) समरपेउ–समर्पित कर दिया। उ० मनसहि समरपेउ आपु गिरिजहि, वचन मृदु बोलत भए। (पा० ४५)

समर्त्थ–सामर्थ्यवान, समर्थ। उ० स्वामी सुसील समर्त्थ सुजान सो तोसों तुही दसरत्थ दुलारे। (क० ७।१२)

समर्थ–(स०)–१ सामर्थ्यवान, शक्तिशाली, योग्य, २ शक्ति, बल।

समपइ–(स०समर्पण) सौंपती है, देती है। उ०सेए सोक सम पेंई, बिगुन भए अभिराम। (दो०२२८) समर्पि–सौंपकर। उ०प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं। (मा०७।१०२।१) समर्पी–समर्पण कर दी। उ० सकलिप सिय रामहि समर्पी सील सुख सोभा मई। (जा० १६२) समर्पे–समर्पित किया। समर्पै–१ समर्पित किया, दिया २ अर्पण करे।

समसीला–समान शीलवाले। उ०ते श्रोता बकता समसीला। (मा० १।३०।३)

समस्त–(स०)–सब, कुल, सपूर्ण। उ० सुचि सेवक तुम राम के रहित समस्त विकार। (मा० १।१०४)

समा–(स० समान)–समान, बराबर। उ० ससार महँ पूरुष त्रिविध पाटल रसाल पनस समा। (मा० ६।१०। छ० १)

समाइ–(स० समावेश)–घुसता है, समाता है। उ० सो सहेतु ज्यों वक्रगति व्याल न बिलै समाइ। (दो० ३३४) समाइ–घुसी, घुसती है। उ० उपमा हिय न समाई। (वि० ६२) समाउँ–समाऊँ, समाऊँगा। उ० ठाउँ न समाउँ कहाँ सकल निरपनो। (क० ७।७८) समाउ–१ घुसता है, घुसे, २ प्रवेश, ३ शक्ति, बल ४ समता, साम्य। उ० १ इतौ न अमत समाउ। (वि० १००) ४ पै हिये उपमा को समाउ न आयो। (क० ६।२४)

समात–१ समाता, अँटता, २ लय हो जाता। उ० १ योछे मनुकरि दइयत प्रेम न हृदय समात। (मा० १।११५।५)२ तेहि में समात मातु भूमिधर वालि के। (क०७।१७३) समाता–समा जाता, अँटता। समाति–समाती, समाती थी। उ० मिलनि परसपर बिनय अति,प्रीति न हृदयँ समाति। (मा० १।२४०) समाती–दे० 'समाति'। उ० याचत प्रीति न हृदयँ समाती। (मा०१।१६१।३) समाते समाता है। उ० कौसल्या के हर्ष न हृदय समाते हो। (रा० २) समातो–१ समाता, अटता, स्थान पाता, २ आदर पाता। उ० २ सीतापति-सनमुख सुखी सब ठाँव समातो। (वि० १५१)

समान(१)–(स० समावेश)–प्रवेश किया। समाना–(१)–घुसा,पैठा। समानी–घुसी,पैठी। समाने–१ घुसे, पैठे, २ पैठे हुए। उ० २ नीकेई लागत मन रहत समाने। (कृ०३८) समाहिं–समाते हैं, समा जाते हैं, डूब जाते हैं। उ० सुमिरि सोच समाहिं। (गी० ७।२६) समाहिंगे–समा जाएँगे, डूबेंगे, अँटेंगे। उ० समाहिंगे कहाँ मही। (क० ६।८) समाहीं–१ प्रवेश पाते, प्रवेश पाते हैं, २ सायुज्य मुक्ति पाते हैं। उ० २ वेद विदित तेहि पद पुरारिपुर कीट पतग समाहीं। (वि० ४) समैहैं–डूब जाएँगे, समा जायँगे। समैहै–(स० समावेश)–समा जाएगा, डूब जाएगा। उ० निरखि हृदय आनद समैहै। (गी० २।२०)

समागत–(स०)–१ समा २ आए हुए लोग।

समागम–(स०)–१ आगमन, आना, २ मिलना, ३ समुदाय, समाज। उ० २ मुनि सुनि आसु समागम तोरे। (मा० १।१०२।१) ३ गावत सुरमुनि सत समागम। (मा० ७।२१।३)

समाचार–(स०)–वृत्तांत, हाल। उ० समाचार सब सखिन जाइ घर घर कहे। (पा० २३)

समाज–(स०)–१ लोगों का समूह, २ समूह, ३ सभा, मडली, परिषद ४ उत्सव, जलूस या कोई अन्य समारोह, ५ तैयारी, ६ सामान। उ० ३ राजत राज समाज महँ कोसल राज किसोर। (मा० १।२४२) ४ सिय समाज जब देखन लाग। (मा० १।२२१।२) समाजहिं–१ समाज को, २ समाज में।

समाजा–दे० 'समाज'।

समाजी–किसी समाज या मडली के लोग। उ० बरषि सुमन सुरगन गावत जस हरषमगन मुनि सुजन समाजी। (कृ० ६१)

समाजु–दे० समाज'।। उ० १ सब समाजु मजि सिधि पनु माहीं। (मा० २।२१४।४)

समाजू–दे० 'समाज'। उ० ४ बरनय राम बिबाह समाजू। (मा० १।४२।२) ५ बेगि करिअ बन गवन समाजू। (मा० २।६८।२)
समाधान–(सं०)–१ ढाढ़स, धीरज, शांति, २ प्रश्न या शंका का यथोचित उत्तर। उ० १ समाधान तब भा यह जाने। (मा० २।२२७।३) समाधानु–दे० 'समाधान'।
समाधि–(सं०)–१ ध्यान में लीन, गहरा ध्यान, आसन लगाकर ध्यानस्त होना, २ नींद, ३ मृत व्यक्ति को ज़मीन में गाड़ना। उ० १ मुनि गुनगान समाधि बिसारी। (मा० ७।४२।४) ३ समाधि कीजै तुलसी को जानि जन फुरकै। (ह० ४३)
समाधी–दे० 'समाधि'। उ० १ सहज बिमल मन लागि समाधी। (मा० १।१२५।२)
समान (२)–(सं०)–१ बराबर, एकसा, २ पाँच प्राणों में एक। उ० १ चलइ जाक जिमि बमगति जद्यपि सलिल समान। (दो०२१७)
समाना (२)–बराबर, समान। उ० पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना। (मा० १।४।५)
समाप्त–(सं०)–खतम, पूरा।
समाप्ति–(सं०)–अंत, नाश।
समारोह–(सं०)–१ भीड़, जमावड़ा, २ उत्सव।
समास–(सं०)–संक्षेप में, खुलासा। उ० कपि सब चरित समास बखाने। (मा० ६।६०।१)
समिति–(सं०)–१ मित्रता, २ सभा, बैठक, ३ समाज।
समिती–दे० 'समिति'।
समिध–(सं०)–१ आग, २ होम की लकड़ी जो चार प्रकार की कही गई है—१ आम, २ पीपल, ३ ढाक, ४ छाकर।
समिधि–दे० 'समिध'। उ० २ समिधि सेन चतुरंग सुहाई। (मा० १।२८३।२)
समीचीन–(सं०)–१ प्राचीन, पुराना, २ सच्चा, ३ उत्तम, अच्छा। उ० ३ गनिहिं गुनिहिं साहिब लहै सेवा समीचीन को। (वि० २७४)
समीचीनता–१ उत्तमता, अच्छाई, २ पुरानापन, प्राचीनता, ३ सच्चाई, श्रेष्ठता। उ० १ सनमुख होत सुनि स्वामि समीचीनता। (वि० २६२)
समीति–(सं० समिति)–१ सभा, समाज, समूह २ मेल, मैत्री। उ० १ रागद्वेष इरषा बिमोह बस रुची न साधु समीति। (वि० २३४)
समीती–दे० 'समीति'।
समीप–(सं०) नजदीक, पास, सन्निकट। उ० यह भरत खल समीप सुरसरि थल भलो संगति भली। (वि० १३५)
समीपा–दे० 'समीप'।
समीर–(सं०)–१ हवा, वायु २ प्राण। उ० १ बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी। (मा० १।११८।८) । समीरन–प्राणा, प्राणों को।
समीरा–दे० 'समीर'।
समीहा–(?)–इच्छा, चाहा। उ० उतपति पालन प्रलय समीहा। (मा० ६।१५।३)
समुचित–(सं०)–१ योग्य २ यथार्थ।
समुझ–(?)–१ बुद्धि, अक्ल, २ समझो, ३ समझे। समुझइ–समझता है। समुझउँ–समझूँ। समुझत–समझते हैं। समुझनि–समझना। समुझब–समझूँगा, समझिएगा। समुझि–(?)–१ बुद्धि, ज्ञान, २ समझ करके, जान करके, ३ समझो, ४ याद करके, ५ बुद्धि में। उ० २ जाको बालबिनोद समुझि जिय डरत दिवाकर भोर को। (वि० ३१) ५ समुझि परत न। (वि० १३४) समुझिबो–समझ लेना, समझलो। समुझिहि–समझ ले। समुझिय–समझिए, समझना चाहिए। समुझिहहिं–समझेंगे। समुझी–समझा, बूझा। समुझु–बूझो, समझो। समुझे–समझे, जाने। उ० बिनु समुझे निज अघ परिपाकू। (मा० २।२६१।३) समुझै–समझे।
समुझाइ–(?)–१ समझाकर, २ समझाया। समुझाइबी–समझाइएगा, समझा देना। उ० प्रीति रीति समुझाइबी नतपाल कृपालुहि परमिति पराधीन की। (वि० १७८) समुझाइय–समझाता हूँ। (वि० ११६) समुझाई–दे० 'समुझाइ'। समुझाउ–समझाओ। समुझाएसि–समझाया। समुझाय–समझाकर, बुझाकर। समुझायऊ–समझाया। समुझाव–समझाओ, समझाना। समुझावत–समझाता है। समुझावति–समझाती है। समुझावहिं–समझाते हैं। समुझावा–समझाया, बतलाया। उ० एहि बिधि राम सबहि समुझावा। (मा० २।८३।१) समुझैहैं–समझायेंगे। उ० के समुझैबो कै वे समझैहैं हारेहु मानि सहीजै। (कृ० ४५)
समुदाइ–दे० 'समुदाय'। उ० राकापति षोडस उअहिं तारागन समुदाइ। (दो० ३८६)
समुदाई–दे० 'समुदाय'। उ० बेद पढ़हिं जिमि बटु समुदाई। (मा० ४।१५।१)
समुदाय–(सं०) समूह, झुंड।
समुद्भव–उत्पन्न पैदा। उ० ब्रह्माम्भोधि समुद्भव। (मा० ४।१।श्लो०) समुद्भव–(सं)–१ उत्पत्ति, जन्म, २ उत्पन्न।
समुद्र–(सं०)–सागर, सिंधु। उ० छुभि समुद्र हरि रूप बिलोकी। (मा० १।१४८।३)
समुहाइ–(सं० सम्मुख)–१ सामने, आगे, २ चले। उ० अतिसय ग्रसित न कोउ समुहाई। (मा० ६।६२।५)
समुहान–१ सामने की ओर, आगे, २ चलने को तैयार। उ० १ जनु दुकाल समुहान। (प्र० ५।७।२)
समुहानी–सामने की ओर चली, सम्मुख हुई। उ० राम सरूप सिंधु समुहानी। (मा० १।४०।२) समुहाहि–दे० 'समुहाहीं'। समुहाहीं–सामने आती हैं या आते हैं। उ० तिन्हहिं न पापपुंज समुहाहीं। (मा० २।११४।३)
समूल–(सं०)–जड़ से।
समूला–दे० 'समूल'। उ० भरत करिनि जिमि हतठ समूला। (मा० २।२३१।४) समूलें–जड़ से। उ० अपडर डरउँ न सोच समूलें। (मा० २।२६७।२)
समूह–(सं०)–झुंड, ढेर, समुदाय। उ० धूम समूह निरखि चातक ज्यों। (वि० ९०)
समूहा–दे० 'समूह'।

समृति-स्मृति, स्मरण ।
समृद्ध-(स०)-धनवान, ऐश्वर्यशाली ।
समृद्धि-(स०)-बढ़ती, उन्नति । उ०सुरराज सो राज समाज समृद्धि बिरंचि धनाधिप सो धन भे। (क० ७।४२)
समेत-(स०)-सहित, संयुक्त। उ० फिरि आवइ समेत अभिमाना । (मा० १।३६।२)
समेता-दे० 'समेत' ।
समेते-दे० 'समेत' । उ० खगमृग सुर नर असुर समेते। (मा० १।१८।२)
समै-(स० समय)-समय, वक्त, अवसर। उ० सुनि कै सुचित तेहि समै समैहैं । (गी० २।३७)
समोइ-(?)-मिलाकर । उ० करत कछु न बनत हरि हिय हरष सोक समोइ । (गी० २।४) समोइ-मिला, लगा । उ० तामें तन मन रहे समोइ । (वै० ४२)
समौ-(स० समय)-समय, अवसर, प्रसंग । उ० देहिं गारि लहकौरि समौ सुख पावहिं । (जा० १६७)
सम्यक-(स० सम्यक)-१ अच्छी प्रकार, अच्छी तरह से, २ पूरा, सब । उ० २ सम्यक ग्यान सकृत कोउ लहई । (मा० ७।४४।२)
सय-(स० शत)-सौ । उ० दिन दिन सयगुन भूपति भाऊ । (मा० १।३६०।२)
सयन (१)-(स० शयन)-१ सोनेवाला, २ सोना, शयन, ३ शय्या, सेज । उ० १ करउ सो मम उर धाम सदा छीर सागर सयन । (मा० १।१। सो० ३)
सयन (२)-(स०संज्ञपन)-इशारा, संकेत । सयनहिं-इशारे से, संकेत से । उ० सयनहिं रघुपति लखनु नेवारे । (मा० १।२४४।२)
सयान-(स० सज्ञान)-१ चतुर, होशियार, २ उम्र में अधिक । उ० १ जो भजै भगवान सयान सोई । (मा० ७।३३।३) सयाने-दे० 'सयान' १ चतुर लोग, २ बूढ़े लोग ।
सयानप-चतुरता, होशियारी, विवेक । उ० भूप सयानप सकल सिरानी । (मा० १।२२६।३)
सयाना-दे० 'सयान' । सयानी- 'सयाना' का स्त्रीलिंग ।
सयानि-दे० 'सयानी' । उ० २ भूप लखि कुँवरि सयानि बोलि गुरु परिजन । (जा० ८)
सयानो-दे० 'सयान' ।
सयुत-(स० संयुक्त)-संयुक्त, समेत ।
सयो-(स० शत)-सौओं की । उ० पाँचहि मारि न सौ सकै सयो सँघारे भीम । (दो० ४२८)
सर (१)-(स० सरस)-ताल, तालाब । उ० तुलसीदास कब तृषा जाय सर खनतहि जनम सिराम्यो । (वि० ८८) सरनि-तालाबों में । उ० सरनि विकसित कंज । (गी० १। ४५)
सर (२)-(स० शर)-१ बाण, तीर, २ चिता । उ० १ तिलक ललित सर भृकुटी काम कमानै । (जा० ४०) २ नदि बिधि सर रचि । (मा० ३।८।४) सरनि-बाणों से । उ० सरनि मारि कीन्हेसि जमर तन । (मा० ६।७३।५) सरन्ह-बाणों, तीरों ।
सर (३)-(फ़ा०)-सिर, शीश ।
सरई-(स० सरण)-पूर्ण होगी, पूर्ण हो जायगी । उ० योरे धनुष चाँड़ नहि सरई । (मा०१।२६६।२) सरत-पूरा होता, निकलता । उ० आगम विधि जप जाग करत नर सरत न काज खरो सो । (वि० १७३) सरै-पूरा पड़े, होवे, बने । सरो-हो, हो जाय, पूरा हो । उ० प्रीति प्रतीति जहाँ जाकी तहँ ताको काज सरो । (वि० २२६)
सरक-(?)-शराब की खुमार । उ० सरक सहेतु है । (क० ७।८२)
सरकस(फा०)-प्रबल, उद्दंड ।
सरखत-(फा०)-१ परवाना, आज्ञापत्र, २ ऋण की लेन देन संबंधी कागज । उ० १ तुलसी निहाल कै कै दियो सरखतु है । (क० ६।२८)
सरग-(स० स्वर्ग)-१ नाग, वैकुंठ, देवलोक, २ आकाश । उ० १ पात पाव को सींचियो न कद सरग तरु हेत । (दो०४५२) २ चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहार । (ब० १६)सरगहुँ-स्वर्ग में भी । उ०सहुँ गये मद मोह लोभ अति सरगहुँ मिटति नसावत । (वि० १८५)
सरगु-दे० 'सरग' । उ० १ सरगु नरकु जहँ लगि व्यवहारु । (मा० २।६२।४)
सरजु-सरयू नदी । उ०सरजु तीर सम सुखद भूमि थल,गनि गनि गोइयाँ बाटि लये । (गी० १।४३)
सरजू-(स० सरयू)-सरयू नदी जिसके किनारे अयोध्या नगरी है । उ०मज्जहिं सज्जन वृंद बहु पावन सरजू नीर । (मा० १।३४)
सरद-(स० शरद)-एक ऋतु, क्वार और कार्तिक का महीना । उ० बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई । (मा० १। ४२।३)
सरन-(स० शरण)-१ शरण, पनाह, सरंक्षता, २. शरणागत का रक्षक, शरण देनेवाला, ३ शरणागत, जो शरण में आये । उ० १ असित कलि व्याल राख्यो सरन सोऊ । (वि० १०६) २ सबही को तुलसी के साहिब सरन मो । (क० ६।२६) ३ सरन सोकहारी । (वि० ४७) सरनहिं-१ शरण में, २ शरण को ।
सरना-दे० 'सरन' । उ० १ तब ताकिसि रघुनायक सरना । (मा० ३।२६।१)
सरनाई-(स०शरण)-शरण, पनाह । उ० आ सभीत आवा सरनाई । (मा० ५।४४।४)
सरनागत-(स०शरणागत) शरण में आया हुआ । उ०सरनागत पालक कृपालु । (गी० ५।२२)
सरनाम-(फा०) प्रसिद्ध, मशहूर । उ० तुलसी सरनाम गुलाम है राम को । (क० ७।१०६)
सरपि-(स०सर्पिस्)-घी, घृत । उ०सुरभी सरपि सुंदर स्वाद पुनीत । (मा० १।३२८)
सरब-(स० सर्व)-सब, सभी, सर्वस्व । उ० जग दरबार है गरब तें सरब हानि । (वि० २६२)
सरबग्य-(स०सर्वज्ञ)सब कुछ जाननेवाला, सर्वज्ञ । उ०अंतर जामी रामु सिय तुम्ह सरबग्य सुजान । (मा० २।२५६)
सरबर-(स० सरोवर)-सागर, तालाब । उ० भूमि भूमित बिराजहि तेहिं सरबर दीन्ह दहाइ । (मा० १।१५८)

सरवस-दे० 'सरवसु'।
सरवसु-(सं० सर्वस्व)-सब, सब कुछ, पूरा। उ० प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरें। (मा० २।२६।३)
सरभंग-(सं० शरभंग)-एक ऋषि जिनका दर्शन वनवास के समय राम ने किया था। उ० सादर पान करत अति धन्य जन्म सरभंग। (मा० ३।७)
सरभंगा-दे० 'सरभंग'। उ० पुनि आए जहँ मुनि सरभंगा। (मा० ३।७।४)
सरम-(फ़ा० शर्म)-लाज, शर्म। उ० तेहि प्रभु को होहि जाहि सबही की सरम। (वि० १३१)
सरयू-(सं०)-एक प्रसिद्ध नदी जिसके किनारे अयोध्या है।
सरल-(सं०)-१ सीधा, जो टेढ़ा न हो, २ सच्चा, ईमानदार। उ० १ राउर सरल सुभाउ। (मा० २।१७) सरलै-१ सज्जन को भी, २ सरल ही को, सीधे या सच्चे ही को। उ० १ तुलसी सरलै संत जन। (वै० ८)
सरलता-(सं०)-सिधाई, सज्जनता।
सरव-दे० 'सर्व'। उ० सरव करहिं पाइक फहराहीं। (मा०१।३०२।४)
सरवदा-दे० 'सर्वदा'।
सरवर-(सं० सरोवर)-तालाब। उ० सभा सरवर लोक कोकनद कोकगन। (गी० १।७१)
सरवरी-(सं० शर्वरी)-रात, निशा।
सरवरीनाथ-(सं० शर्वरीनाथ)-चंद्रमा, शशि।
सरवाक-(सं० शरावक)-प्याला, संपुट। उ० उतरि पयोधि पार सोधि सरवाक सो। (क० ५।२१)
सरषत-दे० 'सरखत'।
सरस-(सं०)-१ रसीला, रसयुक्त, २ तालाब, ३ प्रेम के साथ, ४ श्रेष्ठ, उत्तम, ५ रसिक, ६ भीगा, सिक्त, ७ अनुरक्त, ८ सुंदर। उ० १ सुरुचि सुबास सरस अनुरागा। (मा० १।१।१) ६ राम सनेह सरस मन जासू। (मा० २।२७७।२) ८ पहिरे पटभूषन सरस रंग। (गी० ७।२२)
सरसइ (१)-सरसता है, हरा भरा होता है।
सरसइ (२)-(सं० सरस्वती)-सरस्वती। उ० सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या। (मा० २।१३८।२)
सरसइ-(सं० सरस)-१ बढ़ानेवाली, २ सरसता, ३ कृपा। उ० १ सुखन की सुखमा सुखद सरसइ है। (गी० १।८४)
सरसाइ-१ अधिकता, २ उत्तमता, ३ सरसता, रसीलापन।
सरहना-(सं० श्लाघन)-सराहना, प्रशंसा। उ० गिरिवर सुनिय सरहना राउरि तहँ तहँ। (पा० १६)
सरसि-दे० 'सरसी'।
सरसिज-(सं०)-कमल, नीरज। उ० मनहुँ साँझ सरसिज सकुचानो। (मा० १।२३३।१)
सरसी-(सं०)-तालाब। उ० सरसी सीपि कि सिंधु समाई। (मा० २।२५७।२)
सरसीरुह-(सं०)-कमल, पद्म। उ० धर्म सकल सरसीरुह बृंदा। (मा० ३।४४।३)
सराध-(सं० श्राद्ध)-मृत पुरुष के लिए किया गया श्राद्ध, पिंडदान आदि।
सराधा-दे० 'सराध'। उ० द्विज भोजन मख होम सराधा। (मा० १।१८३।४)
सराप-(सं० शाप)-श्राप, शाप, बद्दुआ। उ० तिन्हहि सराप दीन्ह अति गाढ़ा। (मा० १।१३५।४)
सराफ-(अर० सर्राफ़)-सोने चाँदी का व्यापारी। उ० बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते। (मा० ७।२८।छं० १)
सरावग-(सं० श्रावक)-बौद्ध संन्यासी। उ० स्नान सरावग के लहे लघुता लहै न गग। (दो० ३८३)
सरासन-(सं० शरासन)-धनुष। उ० सुभग सरासन सायक जरेगो ये दिनकर-बंस दिया रे। (गी० १।६६)
सरासनु-दे० 'सरासन'।
सरासुर-(सं० शरासुर)-बाणासुर। उ० सकइ उठाइ सरासुर मेरू। (मा० १।२५१।४)
सराह-(सं० श्लाघन)-१ सराहते हैं, सराहना करते हैं, २ सराहना की। उ० १ देखि सराह महामुनि राऊ। (मा० १।३६०।२) सराहइ-१ सराहते हैं, २ सराहना करने लगी। उ० १ बकिहि सराहइ मानि मराली। (मा० २।२०।२) सराहत-सराहते हैं, सराहती हैं, सराहते हुए। सराहन-सराहने, सराहना करने। सराहसि-१ सराहना करती रही, २ सराहना करती थी, ३ सराहना करती है। उ० २ सुठि सराहसि करसि सनेहू। (मा० २।३।२४) सराहहिं-सराहते हैं, सराहना करते हैं। उ० देखि प्रेम प्रत नेमु सराहहिं सज्जन। (पा० ४०) सराहा-सराहना की। सराहि-सराहना करके, सराह कर। उ० सुमन बरपि हरषे सुर मुनि मुदित सराहि सिहात। (गी० ३।१७) सराहिय-१ सराहिए, २ सराहना की जाती है। उ० २ सुधा सराहिय अमरता गरल सराहिय मीचु। (दो० ३३८) सराहियत-सराहना की जाती है। सराहिबे-सराहने, सराहना करने के लिए। उ० साँकरे के सेइबे सराहिबे सुमिरबे को। (क० ७।२२) सराही-सराहा, सराहना की, २ सराहना करके। उ० २ या करहि निज सुकृत सराही। (मा० १।३११।३) सराहु-सराहना करो, प्रशंसा करो। उ० सुकृत निज सियराम रूप बिरंचि मतिहु सराहु। (गी० १।११) सराहू-दे० 'सराहु'। सराहे-सराहा, सराहना की। उ० न्हाइ कियो गीध का सराहे फल सबरी के। (क० ७।१२) सराहेहु-सराहा। सराहैं-सराहना करते हैं। उ० सुनि सत्रु सुसाहिब सील सराहैं। (क० ७।१०)
सरि-दे० 'सरिता'। उ० निरखि सैलसरि बिपिन बिभागा। (मा० १।१२५।१) सरिहिं-१ नदी में, २ नदी को।
सरिही-दे० 'सरिहिं'।
सरित-दे० 'सरिता'। उ० जासु समीप सरित पय तीरा। (मा० २।२२४।३) सरितन्ह-नदियाँ। सरितहिं-१ नदी को, २ नदी में।
सरिता-(सं० सरित्)-नदी। उ० लूम लसति सरिता सी। (वि० २२)
सरिवरि-(सं० सरि+प्रति)-बराबरी, प्रतियोगिता।

उ० हमहिं तुम्हहिं सरिवरि कसि नाथा। (मा० १।२८२।३)
सरिस-(स० सदृश)-समान, तरह। उ० कीट जटिल तापस सम सरिस-पानिका। (वि० १७)
सरिसा-दे० 'सरिस'। उ० कुवलय विपिन कुंत यन सरिसा। (मा० २।११।२)
सरिसु-दे० 'सरिस'।
सरी-(स०)-१ तालाब, २ चरमा, झरना, ३ नदी। उ० ३ यह समीप सुरसरी सुहावनि। (मा० ३।१२४।१)
सरीर-(स० शरीर)-देह, वदन, शरीर। सरीर लस्यौं तजि नीर ज्यों काइ। (क० २।२) सरीरन्हि-शरीरों, शरीरों पर, शरीरों से। सरीरहिं-शरीर को। सरीरहीं-दे० 'सरीरहिं'। सरीरै-शरीर को। उ० पाइ सजीवन जागि कहत यों प्रेमपुलकि बिसराय सरीरै। (गी० ६।१४)
सरीरा-दे० 'सरीर'। उ० सजल बिलोचन पुलक सरीरा। (मा० २।११४।२)
सरीरु-दे० 'सरीर'।
सरीरू-दे० 'सरीर'। उ० जनु कठोरपनु धरें सरीरू। (मा० २।४१।२)
सरीसा-दे० 'सरिस'। उ० सुनहु लखन भल भरत सरीसा। (मा० २।२३१।४)
सरु-(स० सरस)-तालाब, सरोवर। उ० सफल-सुकृत सर सिज को सरु है। (वि० २२४)
सरुख-(स० स+रोष)-क्रोधयुक्त। उ० दीन्ही मोहि सरुख सजाइ। (गी० ७।३०)
सरीकता-(अर० शरीक)-साझा, साझीपन। उ० रावनी पिनाक में सरीकता कहाँ रही। (क० १।४६)
सरुष-दे० 'सरुख'। उ० बोले भृगुपति सरुष हँसि। (मा० १।२८२)
सरुहाए-(?)-चंगा किया, ठीक किया। उ० समुझि रहनि सुनि कहनि बिरह व्रन चनप अमिय औषध सरुहाए। (कृ० ४०)
सरूप (१)-(स०)-रूपयुक्त, आकारवाला।
सरूप (२)-(स० स्वरूप)-स्वरूप, रूप, देह, आकार। उ० जब मति यहि सरूप अटकै। (वि० ६३)
सरूपा-दे० 'सरूप'।
सरेन-दे० 'शरेण'। उ० मृग लोग कुभोग सरेन हिए। (मा० ७।१४।४)
सरोज-(स०)-कमल, अरविंद। उ० सेवहु सियपरन-सरोज रेनु। (वि० १३) सरोजनि-कमलों, कमलों से। उ० काक पच्छ ऋषि परसत पानि सरोजनि। (जा० ७१)
सरोजा-दे० 'सरोज'। उ० बीरि कोरि पथि रचे सरोजा। (मा० १।२८८।२)
सरोरुह-(स०)-कमल। उ० नाम प्रभाउ सही जो कहै कोउ सिला सरोरुह जामो। (वि० २२८)
सरोवर-(स०) तालाब, ताल। उ० पुनि प्रभु गए सरोवर तीरा। (मा० ३।३४।३)
सरोष-(स० स+रोष)-क्रोध के साथ। उ० मुनि सरोष भृगुनायक आए। (मा० १।२६६।१)



सरोषा-दे० 'सरोष'। उ० यहाँ खल जल सेस सरोषा। (मा० १।४।४)
सर्गे-(?)-डंड, कसरत।
सर्करा-(स० शर्करा)-चीनी, शक्कर। उ० ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ। (वि० १६७)
सर्ग (१)-(स० स्वर्ग)-बैकुंठ, नाक।
सर्ग (२)-(स०)-खंड, भाग। उ०प्रथम सर्ग जो सेप रह। (प्र० १)
सर्प-(स०)-साँप, अहि। उ० रूपादि सब सर्प स्वामी। (वि० ५६)
सर्पराज-(स०)-शेषनाग। उ० जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अविचल पावनी। (मा०२।३२। छं० १)
सर्पि-घी, घृत।
सर्पी-(स०सर्पिस्)-दे० 'सर्पि'। उ० ललित सर्पी समान। (क० ४।२०)
सर्ब-(स० सर्व)-सब, कुल, पूरा। उ० कृपा करहु अब सर्ब। (मा० ३।७ घ)
सर्बग्य-(स० सर्वज्ञ)-सब कुछ जाननेवाला। उ० त्रिकालग्य सर्बग्य तुम्ह। (मा० १।६६)
सर्बसु-(स० सर्वस्व)-सब, कुल। उ० हरि लीन्हेसि सर्बसु अरु नारी। (मा० ४।६।६)
सर्बा-दे० 'सर्ब'।
सर्बरीनाथ-दे० 'सरबरीनाथ'। उ० सरद सर्बरीनाथ मुखु सरद सरोरुह नैन। (मा० २।११६)
सर्म-(स० शर्म)-कल्याण, सुख।
सर्व-दे० 'सर्ब'। सर्व-(स०)-सब, कुल। उ० सर्व सर्बस सर्वाभिराम। (वि० ५३)
सर्वज्ञ-(स०)-सब कुछ जाननेवाला। उ० शुद्ध सर्वज्ञ स्वच्छंदचारी। (वि० ५६)
सर्वतोभद्र-(स०)-सब प्रकार से कल्याण स्वरूप। उ० सकल सौभाग्यप्रद सर्वतोभद्र निधि। (वि० ५३)
सर्वत्र-(स०)-सब कहीं। उ० यद्यः सर्वत्र यदतं। (मा० १।१ श्लो० ३)
सर्वथा-(स०)-सब प्रकार से।
सर्वदा-(स०)-हमेशा, सदा। उ० सर्वदा राम भद्रानुगंता। (वि० ३८)
सर्वरि-दे० 'सर्वरी'।
सर्वरी-(स० शर्वरी)-रात, निशा।
सर्वरीश-(स० शर्वरीश)-चंद्रमा।
सर्वस-दे० 'सर्बस'। उ० जासु नाम सर्वस सदासिव पार्वती के। (गी० १।१२)
सर्वस्व-(स०)-सब कुछ, पूरा।
सर्वा-दे० 'सर्व'। उ० बधुन समेत चले सुर सर्वा। (मा० १।६१।१)
सलज्ज-(स०)-लज्जा के साथ। उ० कह अंगद सलज्ज जग माहीं। (मा० ६।२१।३)
सलभ-(स० शलभ)-भुनगा, उड़नेवाला छोटा कीड़ा। उ० आवहिं जासु समीप, जरहिं मदादिक सलभ सब। (मा० ७।११७ घ)

सरबस–दे० 'सरबसु'।
सरबसु–(स० सर्वस्व)–सब, सब कुछ, पूरा। उ० प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरें। (मा० २।२६।३)
सरभंग–(स० शरभंग)–एक ऋषि जिनका दर्शन वनवास के समय राम ने किया था। उ० सादर पान करत अति धन्य जन्म सरभग। (मा० ३।७)
सरभंगा–दे० 'सरभग'। उ० पुनि आए जहँ मुनि सर भगा। (मा० ३।७।४)
सरम–(फ़ा० शर्म)–लाज, शर्म। उ० तेहि प्रभु को होहि जाहि सबही की सरम। (वि० १३१)
सरयू–(स०)–एक प्रसिद्ध नदी जिसके किनारे अयोध्या है।
सरल–(स०)–१ सीधा, जो टेढ़ा न हो, २ सच्चा, ईमानदार। उ० १ राउर सरल सुभाउ। (मा० २।१७) सरलै–१ सज्जन को भी, २ सरल ही को, सीधे या सच्चे ही को। उ० १ तुलसी सरलै संत जन। (वै० ८)
सरलता–(स०)–सिधाई, सज्जनता।
सरव–दे० 'सर्व'। उ० सरव करहिं पाइक फहराहीं। (मा० १।३०२।४)
सरवदा–दे० 'सर्वदा'।
सरवर–(स० सरोवर)–तालाब। उ० सभा सरवर लोक कोकनद कोकगन। (गी० १।७१)
सरवरी–(स० शर्वरी)–रात, निशा।
सरवरीनाथ–(स० शर्वरीनाथ)–चन्द्रमा, शशि।
सरवाक–(स० शरावक)–प्याला, सपुट। उ० उतरि पयोधि पार सोधि सरवाक सो। (क० ५।२१)
सरषत–दे० 'सरसत'।
सरस–(स०)–१ रसीला, रसयुक्त, २ तालाब, ३ प्रेम के साथ, ४ श्रेष्ठ, उत्तम, ५ रसिक, ६ भीगा, सिक्त, ७ अनुरक्त, ८ सुंदर। उ० १ सुरुचि सुबास सरस अनुरागा। (मा० १।१।१) ६ राम सनेह सरस मन जासू। (मा० २।१७७।२) ८ पहिरे पटभूषन सरस रग। (गी० ७।२२)
सरसइ (१)–सरसता है, हरा भरा होता है।
सरसइ (२)–(स० सरस्वती)–सरस्वती। उ० सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या। (मा० २।१३८।२)
सरसई–(स० सरस)–१ बढ़ानेवाली, २ सरसता, ३ कृपा। उ० १ मुखन की सुखमा सुखद सरसई है। (गी० १।८४)
सरसाई–१ अधिकता, २ उत्तमता, ३ सरसता, रसीलापन।
सरहना–(स० श्लघन)–सराहना, प्रशसा। उ० गिरिवर सुनिय सरहना राउरि जहँ तहँ। (पा० १६)
सरसि–दे० 'सरसी'।
सरसिज–(स०)–कमल, नीरज। उ० मनहुँ साँझ सरसिज सकुचाने। (मा० १।२३३।१)
सरसी–(स०)–तालाब। उ० सरसी सीपि कि सिंधु समाई। (मा० २।२५७।२)
सरसीरुह–(स०)–कमल, पद्म। उ० धर्म सकल सरसीरुह वृन्दा। (मा० ३।४४।३)
सराध–(स० श्राद्ध)–मृत पुरुष के लिए किया गया श्राद्ध, पिंडदान आदि।
सराधा–दे० 'सराध'। उ० द्विज भोजन मख होम सराधा। (मा० १।१८३।४)
सराप–(स० शाप)–श्राप, शाप, बददुआ। उ० तिन्हहि सराप दीन्ह अति गाढ़ा। (मा० १।१३९।४)
सराफ–(अर० सर्राफ)–सोने चाँदी का व्यापारी। उ० बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते। (मा० ७। २८।छ० १)
सरावग–(स० श्रावक)–बौद्ध संन्यासी। उ० स्नान सरावग के लहे लघुता लहै न गग। (दो० ३८३)
सरासन–(स० शरासन)–धनुष। उ० कुसुमित सरासन सलभ जरैगो ये दिनकर ग्रस दिया रे। (गी० १।९६)
सरासनु–दे० 'सरासन'।
सरासुर–(स० शरासुर)–बाणासुर। उ० सकइ उठाइ सरासुर मेरू। (मा० १।२५२।४)
सराह–(स० श्लाघन)–१ सराहते हैं, सराहना करते हैं, २ सराहना की। उ० १ देखि सराह महामुनि राऊ। (मा० १।२६०।२) सराहइ–१ सराहते हैं, २ सराहना करने लगी। उ० १ चकिहि सराहइ मानि मराली। (मा० २।२०।२) सराहत–सराहते हैं, सराहती हैं, सराहते हुए। सराहन–सराहने, सराहना करने। सराहसि–१ सराहना करती रही, २ सराहना करती थी, ३ सराहना करती है। उ० २ मुहँ सराहसि कालि सनेहू। (मा० २।३२।७) सराहहिं–सराहते हैं, सराहना करते हैं। उ० देखि प्रेम मत नेमु सराहहिं सज्जन। (पा० ५०) सराहा–सराहना की। सराहि–सराहना करके सराह कर। उ० सुमन बरषि हरषे सुर मुनि मुदित सराहि सिहात। (गी० ३।१७) सराहिअ–१ सराहिए, २ सराहना की जाती है। उ० २ सुधा सराहिअ अमरता गरल सराहिय मीचु। (दो० ३३८) सराहियत–सराहना की जाती है। सराहिबे–सराहने, सराहना करने के लिए। उ० साँकरे के सेइबे सराहिबे सुमिरबे को। (क० ७।२२) सराही–सराहा, सराहना की, २ सराहना करके। उ० २ ग्राम करहिं निज सुकृत सराही। (मा १।३४१।३) सराहु–सराहना करो, प्रशसा करो। उ० सुकृत निज सियराम रूप बिरचि मतिहु सराहु। (गी० १।९५) सराहू–दे० 'सराहु'। सराहे–सराहा, सराहना की। उ० सराहे कियो गीध को सराहे फल सबरी के। (क० ७।१५) सराहेहु–सराहा। सराहैं–सराहना करते हैं। उ० मुनि सबु सुसाहिब सील सराहैं। (क० ७।१०)
सरि–दे० 'सरिता'। उ० निरखि सैलसरि बिपिन बिभागा। (मा० १।१२५।१) सरिहिं–१ नदी में, २ नदी को।
सरिही–दे० 'सरिहिं'।
सरित–दे० 'सरिता'। उ० जासु समीप सरित पय तीरा। (मा० ३।२२५।३) सरितन्ह–नदियाँ। सरितहिं–१ नदी को, २ नदी में।
सरिता–(स० सरित्)–नदी। उ० सुम समति सरिता सी। (वि० २२)
सरिपरि–(सं० सरि+प्रति)–बराबरी, प्रतियोगिता।

उ० हमहिं तुम्हहिं सरिबरि कसि नाथा । (मा० १।२८२।३)
सरिस-(सं० सदृश)-समान, तरह । उ० कीट जटिल तापस सब सरिस-पालिका । (वि० १७)
सरिसा-दे० 'सरिस' । उ० कुबलय विपिन कुंत बन सरिसा । (मा० ५।१५।२)
सरिसु-दे० 'सरिस' ।
सरी-(सं०)-१ तालाब, २ चश्मा, झरना, ३ नदी । उ० ३ यह समीप सुरसरी सुहावनि । (मा० १।१२५।१)
सरीर-(सं० शरीर)-देह, बदन, शरीर । सरीर लस्यौं तजि नीर ज्यौं काई । (क० २।२) सरीरन्हि-शरीरों, शरीरों पर, शरीरों से । सरीरहिं-शरीर को । सरीरहीं-दे० 'सरीरहिं' । सरीरैं-शरीर को । उ० पाइ सजीवन जागि कहत यों प्रेमपुलकि बिसराय सरीरैं । (गी० ६।१५)
सरीरा-दे० 'सरीर' । उ० सजल बिलोचन पुलक सरीरा । (मा० २।११४।२)
सरीरु-दे० 'सरीर' ।
सरीरू-दे० 'सरीर' । उ० जनु कठोरपनु धरें सरीरू । (मा० २।४१।२)
सरीसा-दे० 'सरिस' । उ० सुनहु लखन भल भरत सरीसा । (मा० २।२३१।४)
सरु-(सं० सरस्)-तालाब, सरोवर । उ० सकल-सुकृत सर सिज को सरु है । (वि० २२५)
सरुख-(सं० स+रोष)-क्रोधयुक्त । उ० दीन्ही मोहि सरुख सजाइ । (गी० ७।३०)
सरीकता-(अर० शरीक)-साझा, साझीपन । उ० रावनी पिनाक में सरीकता कहाँ रही । (क० १।२६)
सरुप-दे० 'सरूप' । उ० बोले मृगपति सरुप हँसि । (मा० १।२८२)
सरुहाए-(?)-चंगा किया, ठीक किया । उ० मनुमि रहनि सुनि कहनि बिरह ब्रन अनय अमिय औषध सरुहाए । (कृ० ५०)
सरूप (१)-(सं०)-रूपयुक्त, आकारवाला ।
सरूप (२)-(सं० स्वरूप)-स्वरूप, रूप, देह, आकार । उ० जब मति यहि सरूप अटकै । (वि० ६३)
सरूपा-दे० 'सरूप' ।
सरेन-दे० 'शरेण' । उ० मृग लोग कुभोग सरेन हिए । (मा० ७।१४।४)
सरोज-(सं०)-कमल, अरविंद । उ० सेवहु सियपरन-सरोज रेनु । (वि० १३) सरोजनि-कमलों, कमलों से । उ० काक पच्छ अपि परसत पानि सरोजनि । (जा० ७१)
सरोजा-दे० 'सरोज' । उ० बीरि कोरि पचि रचे सरोजा । (मा० १।२८८।२)
सरोरुह-(सं०)-कमल । उ० नाम प्रभाउ सही जो कहै कोउ सिला सरोरुह जामो । (वि० २२८)
सरोवर-(सं०) तालाब, ताल । उ० पुनि प्रभु गए सरोवर तीरा । (मा० ३।४१।३)
सरोष-(सं० स+रोष)-रोष के साथ । उ० सुनि सरोष भृगुनायक आए । (मा० १।२६३।१)
सरोषा-दे० 'सरोष' । उ० बदौं खल जस सेस सरोषा । (मा० १।४।४)
सर्ग-(?)-दंड, कसरत ।
सर्करा-(सं० शर्करा)-चीनी, शक्कर । उ० ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ । (वि० १६७)
सर्ग (१)-(सं० स्वर्ग)-बैकुंठ, नाक ।
सर्ग (२)-(सं०)-खंड, भाग । उ०प्रथम सर्ग जो सेप रह । (प्र० १)
सर्प-(सं०)-साँप, अहि । उ० रूपादि सब सर्प स्वामी । (वि० ५६)
सर्पराज-(सं०)-शेषनाग । उ० जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अविचल पावनी । (मा०२।३२। छं० १)
सर्पि-घी, घृत ।
सर्पी-(सं०सर्पिस्)-दे० 'सर्पि' । उ० ललित सर्पी समान । (क० ५।२०)
सर्व-(सं० सर्व)-सब, कुल, पूरा । उ० कृपा करहु अब सर्व । (मा० १।७ घ)
सर्वग्य-(सं० सर्वज्ञ)-सब कुछ जाननेवाला । उ० त्रिकालग्य सर्वग्य तुम्ह । (मा० १।६६)
सर्वसु-(सं० सर्वस्व)-सब, कुल । उ० हरि लीन्हेसि सर्वसु अरु नारी । (मा० ४।६।६)
सर्वा-दे० 'सर्व' ।
सर्वरीनाथ-दे० 'सर्वरीनाथ' । उ० सरद सर्वरीनाथ मुखु सरद सरोरुह नैन । (मा० २।११६)
सर्म-(सं० शर्म)-कल्याण, सुख ।
सर्व-दे० 'सर्व' । सर्व-(सं०)-सब, कुल । उ० सब सर्वस सर्वाभिराम । (वि० ५३)
सर्वज्ञ-(सं०)-सब कुछ जाननेवाला । उ० शुद्ध सर्वज्ञ स्वच्छंदचारी । (वि० ५६)
सर्वतोभद्र-(सं०)-सब प्रकार से कल्याण स्वरूप । उ० सकल सौभाग्यप्रद सर्वतोभद्र निधि । (वि० ५३)
सर्वत्र-(सं०)-सब कहीं । उ० यद्दः सर्वत्र पश्यते । (मा० १।१। श्लो० ३)
सर्वथा-(सं०)-सब प्रकार से ।
सर्वदा-(सं०)-हमेशा, सदा । उ० सर्वदा राम भद्रानु गता । (वि० ३८)
सर्वरि-दे० 'सर्वरी' ।
सर्वरी-(सं० शर्वरी)-रात, निशा ।
सर्वरीस-(सं० शर्वरीश)-चंद्रमा ।
सर्वस-दे० 'सर्वस्व' । उ० जासु नाम सर्बस सदाशिव पार्वती के । (गी० १।१२)
सर्वस्व-(सं०)-सब कुछ पूरा ।
सर्वा-दे० 'सब' । उ० मधुप ममत चले सुर सर्वा । (मा० १।६१।१)
सलज्ज-(सं०)-लज्जा के साथ । उ० कह अंगद सलज्ज जग माहीं । (मा० ६।२१।३)
सलभ-(सं० शलभ)-फतिंगा, उड़नेवाला छोटा कीड़ा । उ० जातहिं जासु समीप, जरहिं मदादिक सलभ सब । (मा० ७।११० घ)

सलाक-(सं० शलाका)-सलाइ, शलाका। उ० कनक सलाक कला ससि दीप सिखाउ। (ब० ३१)
सलिल (सं०)-पानी, जल। उ० धरन सलिल सब भवन सिंचावा। (मा० १।६६।४)
सलिलु-दे० 'सलिल'।
सलीले-(सं० स+लील)-क्रीड़ा में, खेल में, तमाशा में। उ० झपटै पटकै सब सूर सलीले। (क० ६।३२)
सलोक-(सं० श्लोक)-१ छंद, २ यश, कीर्ति।
सलोना-(सं० स+लावण्य)-सुन्दर, अच्छा। सलोनि-दे० 'सलोनी'। उ० रूप सलोनि तँबोलिनि। (रा० ६) सलोनी-अच्छी। सलोने-अच्छे, सुन्दर। उ० सलोने से सवाइ हैं। (गी० १।६६)
सवँदरसी-(सं० समदर्शी)-सबको बराबर समझनेवाला। उ० सवँदरसी कामहि हरि लीला। (मा०१।३०।३)
सवँराए-(सं० सज्जा)-सँवारा, साजा।
सव-(सं० शव)-मुर्दा लाश। उ० जीवत सव समान तेइ मानी। (मा० १।११३।३)
सवति-(सं० सपत्नी)-सौत, सपत्नी। उ० जरि तुम्हारि चह सवति उपारी। (मा० २।१७।४)
सवतिग्रा-सवत का, सौत का। उ० दे० 'रेख'।
सवर-(सं० शबर)-एक जाति।
सवरि-दे० 'सवरी'। उ० कीस, केवट, उपल, भालु निसिचर सवरि गीध सम। (वि० १०६)
सवरिका-दे० 'सवरि'।
सवरी-(सं० शबरी)-एक भीलनी। दे० 'शबरी'। उ० सवरी के आश्रम पगु धारा। (मा० ३।३४।३)
सवाँग-(सं० सु+अंग)-नकल बनाना, नाटक। उ० हिलि मिलि करत सवाँग समारस खेलि हो। (रा० १८)
सवाई-(सं० सपाद)-सवाया, सवा गुना। उ० दोना याम करनि सलोने से सवाइ हैं। (गी० १।६६)
सवार-(फा०)-चढ़ा हुआ, घोड़े पर चढ़ा हुआ।
सवारी-(फ़ा०)-वाहन, यान।
सवारे-(सं० स+वेला)-सवेरे। उ० नगावति कहि प्रिय वचन सवारे। (गी० २।२२)
सविता-(सं०)-१ सूर्य, २ आक, मदार, ३ बारह की संख्या। उ० १ अनु जननी सिंगार सविता है। (गी० ७।१३)
सवेरे-(सं० स+वेला)-१ प्रात, २ पहले से, जल्दी। उ० २ जो चितवनि सौंधी लगे चितइये सवेरे। (वि० २७३)
सवेरो-दे० 'सवेरे'। उ०२ तातें कहत सवेरो। (वि०१७३)
ससक-(सं०स+शंका)-शंका के साथ। उ० मूले अघ सिय परिहरी तुलसी साईं ससक। (दो० १६६)
ससकित-डरा हुआ। उ० सब लक ससकित सोर मचा। (क० ६।१५)
ससंका-सशंकित हो गया। ससकेउ-शंकायुक्त हुआ। उ० सिवहि बिलोकि ससकेउ मारू। (मा० १।८६।१)
सस (१)-(सं० शशि)-चन्द्रमा।
सस (२)-(सं० शशक)-खरगोश। उ० जिमि हरि-बधुहि छुद सस चाहा। (मा० ३।२८।८)
ससक-(सं० शशक)-खरगोश। उ० सिंह बधुहि जिमि ससक सिधारा। (मा० २।६७।४)
ससांक-(सं० शशांक)-चन्द्रमा। उ० विगत सर्वरी ससांक किरन हीन। (गी० १।३५)
ससि (१)-(सं० शशि)-१ चन्द्रमा, २ चन्द्रवार, ३ एक। उ०१ ससि ललाट सुन्दर सिर गंगा। (मा० १।१२।२) २ ससि सुरसरि सुर गाइ। (प्र० ११।१२) ३ ससि सर नव दुइ। (दो० ४५६) ससिहिं-चन्द्रमा को। ससिहि-दे० 'ससिहिं'।
ससि (२)-(सं० शस्य)-खेती। उ० परसुधर विप्र ससि जलदरूप। (वि० ५२)
ससिसेखर-(सं० शशिशेखर)-शिव, शंकर। उ० बदु बेष पेखन पेमपन व्रत नेम ससि सेखर गए। (पा०७५)
ससु-दे० 'सस'।
ससुर-(सं० श्वसुर)-पति या पत्नी का पिता। उ० सिव कृपासागर ससुर कर सतोषु सब भाँतिहि कियो। (मा० १।१०१। छं० १)
ससुरारि-(सं० श्वशुर+आलय)-ससुर का घर। उ० ससुरारि पिआरि लगी जब तें। (मा० ७।१०१।३)
ससुरारी-दे० 'ससुरारि'।
ससुरें-ससुराल में। उ० महकें ससुरें सकल सुख। (मा० २।६६)
सस्त्र-(सं० शस्त्र,-हथियार। उ० अस्त्र-शस्त्र छाँड़ेसि बिधि नाना। (मा० ६।६२।२)
सस्त्री-(सं० शस्त्रिन्)-शस्त्रधारी। उ० सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। (मा० ३।२६।२)
सहँगे-(सं० सुलभाध्य)-सस्ता, जो महँगा न हो। उ० मनि मानिक महँगे किए सहँगे तृन जल नाज। (दो० ५०३)
सह (१)-(सं० सहन)-सह, सह सके। सहइ-सहता है, सहे। सहई-सहता है। सहउँ-सहूँ, सहन करूँ। सहऊँ-सहूँ, सहा करूँ, सहता हूँ। सहत-१ सहते हैं, २ सहते हुए, ३ सहता। उ० ३ सहत हीं। (वि० ७१) सहतेउ-सहता। सहनि-सहना, झेलना। उ० मीच गहनि सबकी सहनि। (वि० १०) सहहिं-सहते हैं। सहहु-सहो। सहहू-१ सहो, २ सहते हो। सहि-सहकर। सहिबे-सहना। सहियतु-सहना पड़ता। सही-सहा, बर्दाश्त किया। उ० भय बनि मय सही है। (कृ० ३२) सहे-सहा, बर्दाश्त किया। सहैगो-सहन करेगा। उ० तुलसी परमसुर न सहैगो। (कृ० ४२) सहै-सह, सहना। उ० बाली रिपु बल सहै न पारा। (मा० ४।६।२)
सह (२)-(सं०)-सहित, समेत। उ० बसहु बधु सिय सह रघुनायक। (मा० २।१२८।४)
सहगामिनिहि-सहगामिनी को। दे० 'सहगामिनी'। उ० ३ सहगामिनिहि बिभूषन जैसे। (मा०२।३०।४) सहगामिनी-(सं०)-१ स्त्री, २ पतिव्रता, ३ जो पति के साथ सती हो।
सहचर-(सं०)-साथ रहनेवाला। सहचरी-१ पत्नी, २ सहेली।
सहज-(सं०)-१ सहोदर भाइ, सगा भाई, साथ का पैदा, २ आसान, सरल, ३ स्वभाविक, स्वभाव के। उ० ३

चेतन अमल सहज सुख रासी। (मा० ७।११७।१)
सहजहिं-स्वभाव से ही, बिना किसी विशेषता के। उ० सहजहिं चले सकल जग स्वामी। (मा० १।२५५)
सहजेहिं-दे० 'सहजहिं'।
सहदानि-(?)-निशान, चिह्न। उ० 'मातु कृपा कीजै सह दानि दीजै' सुनि सीय। (क० ५।२६)
सहन (१)-(सं०)-सहन करना, बर्दाश्त।
सहन (२)-(अर०)-आँगन, स्थान।
सहनभँडार-कोष, खजाना। उ०जिम की परी सँभार सहन भँडार को। (क० ५।१२)
सहनाइन्ह-शहनाइयों से। उ० सुघर सरस सहनाइन्ह गावहिं। (गी० ७।२१) सहनाई-(फा० शहनाइ)-एक बाजा, नफ़री। उ० झाँझ मृदंग संख सहनाई। (मा० १।२६३।१)
सहम-(फ़ा०)-१ डर, २ डरकर। उ० १ समुझि सहम मोहिं अपडर अपने। (मा० १।२८६।१) २ मुख सूखत सहम ही। (क० ५।१८) सहमत-डर जाते हैं। उ० सुनत सहमत सूर। (क० ६।४३) सहमि-डरकर, भयभीत होकर। उ० कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी। (मा० २।२०।१) सहमी-१ डरी, २ सकुचा सा गया। उ० सहमी सभा। (गी० १।८३) सहमे-१ डर गए, २ सकुच गए। सह मेउ-दे० 'सहमे'। उ० जनु सहमेउ करि केहरि नादा। (मा० २।१६०।२) सहमैं-१ डर गए, २ डर जाते हैं।
सहर-(सं० शहर)-नगर, शहर। उ० बूझिए न ऐसी गति संकर सहर की। (क० ७।१७०)
सहरी-(सं० शफरी)-मछली। उ० पात भरी सहरी, सकल सुत बारे-बारे। (क० २।८)
सहरु-दे० 'सहर'।
सहल-(सं० सरल)-आसान, सुगम।
सहवासी-(सं०सह + वास)-१ साथी, २ पड़ोसी। उ० २ सहवासी काचो गिलहिं। (दो० ४०४)
सहस-(सं० सहस्त्र)-हजार। उ० भूप सहस दस एकहिं बारा। (मा०१।२५१।१) सहसमुख-शेषनाग। सहसबाहु-सहस्रार्जुन जिसे परशुराम ने मारा था। सहसभुज-दे० 'सहसबाहु'। उ० सहसभुज मत्त गजराज रनकेसरी। (क० ६।१७) सहसानन-शेषनाग।
सहसा-(सं०)-एकाएक, अकस्मात्। उ० सहसा जनि पति-आइ। (मा० २।२२)
सहसाखी-हजार नेत्रों से, सहस्र आँखों से। उ० जो परदोष लखहिं सहसाखी। (मा० १।४।२)
सहस्र-(सं०)-हजार। उ० कमन उर्वधर करत जेहि सहस्र सीहा। (गी०१।५।२)
सहाइ-(सं० सहाय)-१ सहायता, २ सहायक, ३ सहा यता पाकर। उ० १ पाइ सो सहाइ नाम। (क०७।१४२)
सहाई-दे० 'सहाइ'। उ० १ ईस्वर करिहि सहाइ। (मा० १।८३।१)
सहाय-(सं०)-१ सहायता, २ सहायक। उ० १ करिहहिं बीस सहाय तुम्हारी। (मा० १।१३०।४) २ राम सहाय सही दिन गाढ़े। (क० ७।२५)
सहाया-दे० 'सहाय'।
सहारा-(सं० सहाय)-योगदान, आश्रय।
सहावहु-(सं० सहन)-सहन करा दीजिए। सहावै-सहन कराता है। उ० तुलसी सहावै बिधि सोई सहियतु है। (क० २।४)
सहि (२)-(फ़ा० सहीह)-सत्य, सचमुच। उ० देखौं सपन कि सौंतुख ससि सेखर सहि। (पा० ७७)
सहित-साथ, समेत। सहित-(सं०)-साथ, समेत। उ० बरसत सुमन सहित सुर सैयाँ। (कृ० १६)
सहिदानी-(?)-निशान, चिह्न। उ० तुलसी यहै साँति सहिदानी। (वै० ५१)
सहिदानु-दे० 'सहिदानी'। उ० तुलसी या सहिदानु। (वै० ३३)
सही-(फ़ा० सहीह)-१ ठीक, २ सच्चा, सत्य। उ० २ सौ जानिहौं सही सुत मोरे। (गी०२।११) मु० सही भरी-गवाही दी। (क० १।१६)
सहेली-(सं० सह + एली)-सखी, साथ में रहनेवाली। उ० गावहिं छबि अवलोकि सहेली। (मा० १।२६४।४)
सहोदर-(सं०)-सगा भाई। उ० मिलै न जगत सहोदर भ्राता। (मा० ६।६१।४)
साँइ-(सं० स्वामी)-१ मालिक, २ पति, ३ भगवान्। उ० १ स्वामी की सेवक हितता सब, कछु निज साँइ दोहाई। (वि० १७१)
साँकरे-(सं० संकीर्ण)-१ संकट में, कष्ट पड़ने पर, २ कठिनाई, संकट। उ० १ साँकरे सबै पै राम रावरे कृपा करी। (क० ७।६७) २ साँकरे समय। (वि० ३४)
सांख्य-(सं०)-कपिल रचित एक दर्शन जिसमें प्रकृति को विश्व का मूल कारण माना गया है। उ० सांख्य सास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना। (मा० १।१४२।४)
साँग-(?)-बर्छी, सेल। उ० गोली साँग सुमग्र सर। (दो० ५१६)
साँगि-दे० 'साँग'। उ० लागत साँगि बिभीषन ही। (गी० ६।५)
साँगी-दे० 'साँग'।
साँच-(सं० सत्य)-१ सत्य, ठीक, २ उचित, वाजिब। साँचि-सच्चे।
साँचही-(सं० संचय)-जमा करते हैं, एकत्र करते हैं।
साँचा-दे० 'साँच'। उ० २ तुम जो कहहु करहु सब साँचा। (मा० २।१२७।४) साँची-सच्ची। उ० साची कहीं कलि काल। (क० ७।१०१)
साँचि-सच्ची, सत्य। उ० साँप सनेह साँचि रुचि जो हठि फेरइ। (पा० ६६) साँचिय-सच्ची ही। उ० कहहिं हम साँचिय। (पा० ११६) साँचियै-सचमुच। उ० साँचिय पईगो सही। (वि० २२४)
साँचु-दे० 'साँच'।
साँचो (१)-सच्चा।
साँचो (२)-(?)-साँचा, मिट्टी या लकड़ी का साँचा जिससे दूसरी चीजें बनाई जाती हैं। उ०मोमा को साँचो। (गी० २।२०)
साँझ-(सं०संध्या)-शाम, संध्या। उ० मनहुँ साँझ सरसिरुह सोना। (मा० १।३२८।१)

साँठे-(?)-१ अड़े रहे, २ सटे रहे। उ० १ नाथ सुनी भृगु नाथ कथा बलि बालि गए चलि बात के साँठे। (क०६।२८)
सांत-दे० 'शांत'। उ० १ धरे सरीर सांत रस जैसे। (मा० १।१०७।१)
सांति-१ दे० 'शांति', २ दे० 'शांतिपाठ'। उ० २ सांति पढ़हिं महिसुर अनुकूला। (मा० १।३१६।३)
साँती-दे० 'सांति'।
सांद्र-(सं०)-सघन, घन, जलयुक्त। उ० सांद्रानंद पायोद सौभाग तनुं पीतांबर सुंदर। (मा० ३।१।श्लो० २)
साँधा-(सं० संधान)-१ साधा, संधान किया, निशान मिलाया, २ मिला दिया। उ० १ ब्रह्म अस्त्र तेहि साँधा। (मा० ५।२।१६) २ तेहि महँ विप्र मांस खल साँधा। (मा० १।१७३।२) साँध्यो-दे० 'साँधा'।
साँप-(सं० सर्प)-सर्प, व्याल। उ० भइ गति साँप छुछूँदरि केरी। (मा० २।५५।२) साँप छछूँदरि गति-ऐसी दशा जिसमें किसी ओर भी जाना खतरे से खाली न हो। दे० 'साँप'। साँपनि-साँपों। उ० साँपनि सो खेलैं। (क० ५।११) साँपिनि-सर्पिणी। उ० रसना साँपिनि बदन बिल। (दो० ४०)
साँपसभा-(सं० सर्प+सभा)-दिव्य परीक्षा जिसमें आग आदि द्वारा किसी के निर्दोष होने का निश्चय किया जाता है। उ० साँप-सभा साबर लबार भए। (वि० ७१)
साँवर-(सं० श्यामल)-काले रंग का, श्यामल। उ० साँवर कुँअर सखी सुठि लोना। (मा० १।२२३।४) साँवरे-दे० 'साँवर'। साँवरेहि-साँवर को, कृष्ण को। उ० दीठी करि दाँवरी बावरी साँवरेहि देखि। (कृ० १६)
साँवरि-दे० 'साँवरी'।
साँवरी-श्यामली, काली। उ० बिदेहु मूरति साँवरी। (मा० १।३२४।छं० ४)
साँवरो-दे० 'साँवर'।
साँस-(सं० श्वास)-श्वास, प्राण।
साँसति-(सं० शासन)-१ ताड़ना, २ कष्ट, यातना, दुर्दशा। उ० १ साँसति करि पुनि करें पसाऊ। (मा० १।८४।२) २ साँसति भय भारी। (वि० ३४)
सांसारिक-(सं०)-संसार संबंधी।
सा-(सं०)-वह (स्त्रीलिंग)। उ० सा मञ्जुल मंगलप्रदा। (मा० २।१।श्लो० २)
साईं-(सं० स्वामी)-१ भगवान, २ स्वामी, मालिक, ३ पति, भर्ता। उ० २ पापसि रोमनि साईं दोहाईं। (मा० २।१८६।२)
साइँ-दे० 'साईं'। उ० सब सब दिन साइँ सोहै। (वि० २३०)
साउज-(?)-आखेट जानवर। उ० सरूप कलुप फलि साउज नाना। (मा० २।१३३।२)
साक-(?)-सहित। उ० सौमि श्रीराम सौमित्र साक। (वि० ५१)
साक-(सं० शाक)-साग, तरकारी। उ० करहिं अहार साक फल कंदा। (मा० १।१४४।१) साकबनिक-तरकारी बेचनेवाला, कुँजड़ा। उ० साकबनिक मनि गुन गन जैसे। (मा० १।३।६)

साका-(सं० शाका)-१ संवत्, २ प्रसिद्धि, ३ कीर्ति, ४ वीरता। साके-दे० 'साका'। उ० २ जुग जुग जग साके के। (कृ० ६१) साको करिहै-वीरता का काम करेगा। उ० लरिहै मरिहै करिहै कछु साको। (क० १।२०)
साक्षी-(सं०)-गवाह।
साकार-(सं०)-आकार सहित।
साकिनि-दे० 'शाकिनि'। उ० पूतना पिसाच प्रेत डाकिनि साकिनि समेत। (वि० १६)
साख-(सं० शाखा)-१ डाली, शाखा, २ बात, विचार। उ० १ बरषहिं तरु साखा। (मा० १।८२।४) २ को करि तर्क बढ़ावइ साखा। (मा० १।५२।४)
साखामृग-(सं० शाखामृग)-बंदर। उ० सब साखामृग जोरि सहाई। (मा० ६।२८।१)
साखि (१)-(सं० साक्षी)-गवाही। उ० साखि निगमम भने। (वि० १६०)
साखि (२)-(सं० शाखिन्)-पेड़।
साखी (१)-(सं० साक्षी)-१ गवाही, २ संतों के दोहे। उ० २ साखी सबदी दोहरा। (दो० ५५४)
साखी (२)-(सं० शाखिन्)-पेड़।
साखोचारु-दे० 'साखोच्चार'। उ० जोरि साखोचारु दोउ कुल गुर करें। (मा० १।३२४।३)
साखोच्चार-(सं० शाख+उच्चार)-वंशवर्णन।
साग-दे० 'साग'।
सागर-(सं०)-समुद्र, उदधि। उ० सागर ज्यों बल बारि बढ़े। (क० ६।६)
सागरु-दे० 'सागर'।
सागु-(सं० शाक)-साग, भाजी। उ० सागु खाइ सत बरस गँवाए। (मा० १।७४।२)
साच-दे० 'साँच'।
साज-(सं० सज्जा)-१ सामान, २ ठाट-बाट, ३ समाज, तरह। उ० १ दुर्लभ साज सुलभ करि पावा। (मा० ७।४४।४) २ बिघटे मृगराज के साज खरे। (क० ६।३६)
साजक-सजानेवाले, सँभालनेवाले। उ० साजक बिगर साज के। (गी० ५।२६)
साजत-(सं० सज्जा)-साजते हैं, साजते। उ० साजत भए। (जा० १८४) साजहिं-साजते हैं। उ० साजहिं साजू। (मा० २।१८२।३) साजा-१ सजाया, २ साज। उ० २ दे० 'साजन (२)'। साजि-सजाकर। उ० साजि साजि। (जा० ६) साजिय-साजिए, साजना चाहिए। साजी-१ सजाया, सज्जित किया, २ सजाकर। उ० २ बरषहिं सुमन सुअंजुलि साजी। (मा० १।१६१।४) साजु-साजो। साजू-१ दे० 'साज', २ साजो। साजे-साजे, सजाया। उ० मंगल बिटप बनहुँ दिसि साजे। (मा० १।६१।४)
साजन (१)-(सं० सज्जन)-१ पति, प्रियतम।
साजन (२)-(सं० सज्जा)-तैयारी, बनाना, सजाना। उ० लगे चलन के साजन साजा। (मा० २।३१८।३)
सायुज्य-दे० 'सायुज्य'। उ० सो सायुज्य मुक्ति नर पावहिं। (मा० ६।३।१)

साटक-(?)-भूसी, छिलका, निकम्मी वस्तु। उ०सब फोकट साटक है तुलसी। (क० ७।४१)
साटि-(?)-सटाकर, जोड़कर। उ० चार कोटि सिर काटि साटि लटि रावन संकर पै लई। (गी० ५।३८)
साठ-(सं० षष्ठि)-तीस का दूना, ६०।
साढ़साती-(सं० स+अर्द्ध+सप्त)-साढ़े सात वर्ष की शनि की दशा। यह दशा जिस पर आती है उसकी बड़ी बुरी दशा होती है। उ० समय साढ़साती सरिस नृपहिं प्रजहिं प्रतिकूल। (प्र० ३।२।४)
साढ़ी (?)-मलाई जो दूध औटने पर ऊपर जम जाती है। उ० आपु काढ़ि साढ़ी लई। (गी० ५।२७)
सात-(सं० सप्त)-७, छ से एक अधिक। उ० छली न होइ स्वामि सनमुख ज्यों तिमिर सात हय जान सों। (गी० ५।३३)
सातइँ-(सं० साप्तमी)-सप्तमी, सप्तमी तिथि।
सातव-(सं० सप्त)-१ सातवाँ, २ सातो।
साती-सात। दे० 'साढ़साती'।
सातैं-सप्तमी, सातवीं तिथि। उ० सातैं सप्त धातु निर्मित तनु। (वि० २०३)
सात्विक-(सं०)-सत्वगुण से युक्त सतोगुणी, सीधा, सचा। उ० सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। (मा० ७।११७।५)
साथ-(सं० सहित)-संग, सहित, समेत। उ० खल असगत साथ। (वि० ६०)
साथरी-(?)-बिछौना, कुश आदि का बना बिछौना। उ० साथरी को सोइबो ओढ़िबो। (क० ७।१२५)
साथा-दे० 'साथ'।
साथी-(सं० सहित)-संगी, मित्र, साथ में रहनेवाला। उ० स्वारथ के साथी मेरे हाथ सों न लेवा देई। (वि० ७५)
साथु-दे० 'साथ'।
साथू-दे० साथ'। उ० केहि सुकृती सन होइहि साथू। (मा० २।५८।२)
सादर-(सं०)-आदर के साथ। उ० सदा सुनहिं सादर नर नारी। (मा० १।३८।१)
सादे-(फा० सादः)-सीधे, साधारण। उ० सहित समाज साज सब सादे। (मा० २।३११।२)
साध (१)-(?)-इच्छा, लालसा। उ० व्याध अपराध की साध राखी। (वि० १०६)
साध (२)-(सं० सिद्ध)-सिद्ध करना, सिद्ध होना। उ० सीय स्वयंबर समउ भल सगुन साध सब काज। (प्र० १।४।१) साधत-साधते हैं, सिद्ध करते हैं। साधा-१ सिद्ध किया, २ मिलाया। उ० १ अब लगि तुम्हहिं न काहूँ साधा। (मा० १।१२७।२) साधि-साधकर, सिद्धकर। साधी-१ सिद्ध की, २ साधने योग्य। उ० २ करम अनादि सुसासुम्हि साधी। (मा० १।२।११) साधे-सिद्ध करने से साधना करने से। साधे-१ सिद्ध किये २ प्राप्त किये। उ० १ पितु साधे सिधि होइ। (दो० १०१) साध्यो-सिद्ध किया। उ० सुर काज न साध्यो। (गी० २।३)
साधक-(सं०)-साधना करनेवाला, सिद्धि प्राप्त करने के लिए तप करनेवाला। उ० साधक कलेस सुनाइ सब गौरिहिं निहोरत धाम को। (पा० ३६) साधको-साधक भी। उ० सुनत सिद्धांत सब सिद्ध साधु साधको। (क० ७।६८)
साधन-(सं०)-१ उपाय, यत्न, अभ्यास २ कारण। उ० १ साधन करिय विचारहीन मन। (वि० ११५) २ तुलसी देखु कलाप गति साधन घन पहिचान। (दो० ५२५)
साधना-(सं०)-१ किसी कार्य को सिद्ध करने की क्रिया, २ योग आदि का अभ्यास, तपस्या, संयम।
साधु-(सं०)-१ सज्जन, २ भक्त, विरक्त, संत, साधक, ३ सच्चा, ४ सीधा, भोला, ५ धन्य। उ० १ खल अघ अगुन साधु गुन गाहा। (मा० १।६।१) २ साधु समाज तजि। (वि० २४१) ४ साधु भयो चाहत। (कृ० ३) ५ साधु साधु कहि ब्रह्म बखाना। (मा० १।१८५।४) साधुन्ह-साधुओं। साधु साधु-धन्य धन्य, वाह वाह। उ० साधु साधु बोले मुनि ज्ञानी।(मा० २।१२६।४)
साधुता-सज्जनता, साधुपना।
साधू-दे० 'साधु'।
साध्य-(सं०)-सिद्ध होने योग्य, सुगम। उ० सिद्ध साधक साध्य वाच्य-वाचक रूप। (वि० ५३)
सानद-(सं०)-आनद के साथ। उ० साँझ समय सानद नृपु गयउ कैकेई गेहँ। (मा० २।२४)
सान-(सं० शाण)-१ वह पत्थर जिस पर अस्त्र तेज़ करते हैं, २ तेज, धार। उ० १ धरी कूबरी सान बनाई। (मा० २।३१।१)
साना-(सं० संधम्)-सना हुआ, मिला हुआ। उ० विधि प्रपंचु गुन अवगुन साना। (मा० १।६।२) सानि-मिला कर, सानकर। उ० बोलीं गिरिजा बचन बर मनहुँ प्रेम रस सानि। (मा० १।११६) सानी-मिली हुई, सनी हुई। उ० सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरत ब्याकुल भए। (मा० २।१७६। छं० १) साने-१ सने हुए, २ मान दिए। उ० १ जे जड़ जीव कुटिल कायर खल केवल कलि मल साने। (वि० २३५) सान्यो-१ सन गया, २ मान दिया। उ० १ जनम अनेक किए नाना विधि करम-कीच चित सान्यो। (वि० ८८)
सानुकूल-दे० 'सानुकूल'। सानुकूल-(सं० स+अनुकूल)-१ प्रसन्न, राजी, २ मुआफिक, ३ कृपालु। उ० २ सानुकूल बह त्रिविध बयारी। (मा० १।३०३।२) सदासो सानुकूल रह मोपर। (मा० १।१७।४)
साप-(सं० शाप)-बददुआ, शाप, श्राप। उ० साप अनुग्रह होइ जेहि नाथ थोरेहीं काल। (मा० ७।१०८ घ)
सापत-(सं० शाप) शाप देता है। सापे-१ शाप देते हैं, २ शाप देने से।
सापा-दे० 'साप'।
साबर-(सं० शाबर)-१ शिव, २ एक मृग।
साम-(सं० सामन्)-१ तीसरा वेद सामवेद, २ राजा के चार उपायों में से एक जिसमें मीठी बातों द्वारा शत्रु को अपने पक्ष में करते हैं। ३ सन्ध्या, ४ घना, ५ मेल, संधि, ६ समर्थ। उ० १ साम गावामी। (वि० २०)

२ फलि कामतरु साम साली। (वि० ४४) २ राम सों साम किए नित है हित। (क० ६।२८)
सामग्रा-(सं०)-चीज, वस्तु, सामग्री।
सामक्ष-दे० 'सामक्षि'
सामक्षि-(?)-समक्ष, बुद्धि, ज्ञान।
सामध-(सं० सवर्धी)-समधियों का, समधियों को। उ० सामध देखि देव अनुरागे। (मा० १।३२०।२)
सामरथ-दे० 'सामर्थ्य'।
सामर्थ्य-(सं०)-शक्ति, योग्यता, पराक्रम। उ० यह सामर्थ्य अछत मोहिं त्यागहु नाथ तहाँ कछु चारो ? (वि० ६४)
सामीप्य-(सं०)-समीपता, घनिष्ठता।
सामुक्षि-दे० 'सामक्षि'। उ० अकथ अनादि सुसामुक्षि साधी। (मा० १।२१।१)
सामुहँ-(सं० सम्मुख)-सामने, सम्मुख। उ० हूँ न सकत सामुहँ सकुच बस। (गी० ७।७०)
सामुहो-(सं० सम्मुख)-सामने, सम्मुख। उ० तुलसी स्वारथ सामुहो। (दो० ४८१)
सामै-मेल ही, संधि करना ही। उ० इहाँ किये सुभ सामै। (गी० ५।२२)
सामो-(फा० सामान)-सामान, सामग्री। उ० बालिमीकि अजामिल के कछु हुतो न साधन सामो। (वि० २२८)
साय-( )-जाय या शांत हो। उ० कृपासिंधु बिलोकिए जन मन की साँसति साय। (वि० २२०)
सायक-दे० 'सायक'। सायक-(सं०)-१ बाण, तीर, २ तलवार। उ० १ सुनत नृपहि जनु लागहिं सायक। (मा० २।३७।३) सायकन्हि-बाणों, शरों।
सायका-दे० 'सायक'।
सायकु-दे० 'सायक'।
सायर-(सं० सागर)-समुद्र, सागर। उ० चलित महि मेरु उच्छलित सायर सकल। (क० ६।४४)
सायुज्य-(सं०)-मुक्ति का एक भेद जिसमें आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है।
सारँग-दे० 'सारंग'। सारँगधर-दे० 'सारंगधर'। सारँगपानि-दे० 'सारंगपानि'।
सारंग-(सं०)-१ धनुष, २ विष्णु का धनुष, ३ मृग, ४ बादल, ५ एक राग, ६ साँप, ७ मोर की बोली, ८ शंख। उ० २ चक्र सारंग-दर-कंज-कौमोदकी अति विसाला। (वि० ४१) ३ सारंग सावक लोचना। (जा० २०७) सारंगधर-(सं०)-विष्णु। उ० चलेउ सुमिरि सारंगधर आनिहि सिद्धि सकेलि। (प्र० ३।७।१) सारंगपानि-उ० सुमिरत श्री सारंगपानि छन में सब सोच गयो। (गी० १।४५)
सार-(सं०)-१ तत्व, हीर, गूदा सत २ खबरदारी, ३ पशु, ४ खबरदारी, ५ पलंग शय्या, ६ बल, पराक्रम। उ० १ पर उपकार सार श्रुति को। (वि० २०२) २ भरत सौगुनी सार करत हैं। (गी० २।८०) ३ उनकी कहु क्यों करिहै न सँभार जो सार करै सचराचर की। (क० ७।२०)

सारखी-दे० 'सारिखी'। उ० राम से न वर दुलही न सीय सारखी। (क० १।१५)
सारथि-दे० 'सारथी'। उ० सारथि पंगु दिव्यरथ गामी। (वि० २)
सारथिन्ह-सारथियों। सारथी-(सं०)-रथ हाँकनेवाला। उ० तैसी बरेटी कीन्हि पुनि मुनि सात स्वारथ सारथी। (पा० १२१)
सारद (१)-(सं० शारदा)-१ सरस्वती, भारती, २ काव्य, कविता। उ० १ सिद्ध सची सारद पूजहिं। (वि० २२)
सारद (२)-(सं० शरद्)-शरद का। उ० सारद ससि सम मुख। (गी० ७।१६)
सारदा (१)-दे० 'सारद (१)'। उ० १ अहि सारदा गन पति गौरि मनाइय हो। (रा० १)
सारदा (२)-दे० 'सारद (२)'।
सारदी-(सं० शरद्)-शरद ऋतु में होनेवाली। उ० कहुँ कहुँ वृष्टि सारदी थोरी। (मा० ४।१६।५)
सारदूल-(सं० शार्दूल)-बाघ, व्याघ्र। उ० सारदूल को स्वाँग कर कूकर की करतूति। (दो० ४१२)
सारस-(सं०)-१ एक बड़ा पक्षी, २ चंद्रमा, ३ कमल। उ० १ पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर। (मा० ३।८३) ३ जटा मुकुट सिर सारस नयननि। (गी० ३।३)
सारा (१)-(सं० सरण)-किया, पूरा किया। उ० आवहिं राम तिलक तेहि सारा। (मा० २।२४।१) सारो-पूरा किया। सार्यो-बनाया, पूरा किया, सँभारा। उ० काज कहा नरतनु धरि सार्यो। (वि० २०२)
सारा (२)-(सं० सार)-सार, तत्व। उ० अति पावन पुरान श्रुति सारा। (मा० १।१०।१)
सारा (३)-सब, समस्त, पूरा।
सारा (४)-सार, सभार। उ० करिहहिं सासु ससुर सम सारा। (मा० २।६६।१)
सारिका-(सं०)-मैना पक्षी। उ० सुक सारिका जानकी ज्याये। (मा० १।३३८।१)
सारिखी-(सं० सदृश)-तरह, सदृश। सारिखे-दे० 'सारिखी'। उ० तुम सारिखे गलित अभिमाना। (मा० १।१६१।१)
सारिखो-दे० 'सारिखी'।
सारी (१)-(सं०) सारिका पक्षी, मैना। उ० साधु असाधु सदन सुक सारी। (मा० १।७।५)
सारी (२)-(सं० शाटिका)-साड़ी, धोती। उ० सोह नवल तनु सुंदर सारी। (मा० १।२४८।१)
सारु-दे० 'सार'।
सारो-(सं० सारी)-मैना पक्षी। उ० सुक सों गहबर हिये कहै सारो। (गी० २।६६)
सार्वभौम-(सं०)-संपूर्ण पृथ्वी का।
साल (१)-(सं० शूल)-कष्ट, दुःख। सालति-दुःख देती है, चुभती है। उ० सुरभि सुखद असुरनि उर सालति। (गी० ७।१७) साला (१)-कष्ट दिया।
साल (२) (सं० शाला)-मकान, घर, स्थान। उ० हिंडोल साल बिलोकि सब अंचल पसारि पसारि। (गी० ७।१८)

साल (१)-(सं०)-शाल वृक्ष जो लंबा होता है। उ० साख ते बिसाल। (क० २।१३)
साला (२)-दे० 'साल (२)'।
साली (१)-दे० 'शाली'। उ० चले सकोच महाबल साली। (मा० ६।७०।३)
साली (२)-(सं० शालि)-धान। उ० ईति भीति जस पाकत साली। (मा० २।२४३।१)
सालु-(सं० शूल)-दर्द, पीड़ा। दे० 'साल'। उ०भा कुबरी उर सालु। (मा० २।१३)
सालव-(सं० शूल)-कष्ट देनेवाला, दुखदाई।
सावँकरन-(सं० श्यामकर्ण)-वह घोड़ा जिसका सारा शरीर सफ़ेद और एक कान काला होता है। उ० साँवकरन अगनित हय होते। (मा० १।२९९।३)
सावँत-(सं० सामंत)-वीर, सामंत, पराक्रमी। उ० सावँत गो मन भावत भोरे। (क० ६।४७)
सावक-(सं० शावक)-१ बच्चा, शिशु, २ मृग तथा चिड़िया आदि का बच्चा। उ० २ केहरि सावक जन मन बन के। (मा० १।३२।४)
सावज-(?)-बनैला पशु जिसका शिकार किया जाता है। उ० पातक के व्रात घोर सावज सँहारिहैं। (क० ७।१४२)
सावत-(सं० सपत्नी)-डाह, ईर्ष्या। उ० छोभ अति सरगहूँ मिटत न सावत। (वि० १८५)
सावधान-(सं०)-सचेत, सतर्क, चौकस। उ० सावधान सुनु सुमति भवानी। (मा० १।१२२।२)
सावधानी-चौकसी, सावधानता।
सावन-(सं० श्रावण)-सावन का महीना। उ० सावन सरित सिंधु रुख सूप सों घेरइ। (पा० ६६) सावनो-१ सावन में भी, २ सावन के महीने को भी। उ० १ जलद ज्यों न सावनों। (क० ४।८)
साषि-(सं० साक्षी)-गवाह, साक्षी।
साष्टांग-(सं०)-हाथ, पैर, जाँघ, हृदय, आँख सिर वचन और मन ये आठ अंग। इन आठ अंगों से भूमि पर लेटकर प्रणाम करना साष्टांग प्रणाम कहलाता है।
सासक-दे० 'सासकु'।
सासकु-(सं० शासक)-दंड देनेवाला, शासन करनेवाला। उ० सबको सासकु सब में सब जामें। (गी० ५।२५)
सासति-१ शासन, २ शिक्षा करना, ३ दंड देना। उ० ३ सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। (मा० १।८३।२)
सासनु-(सं० शासन)-आज्ञा। उ० सुरपति सासनु घन मनो मारुत मिलि धाए। (गी० १।६)
सासु-(सं० श्वश्रू)-पति या पत्नी की माँ। सासुन्ह-सासु गण।
सासू-दे० 'सासु'। उ० पोनि न सकहिं प्रेम बस सासू। (मा० १।३३६।४)
सास्त्र-(सं० शास्त्र)-वेदांत योग तथा न्याय आदि ग्रंथ। दे० 'सांख्य'।
सास्वत-(सं० शाश्वत) अमर।
साह-(फा० शाह)-स्वामी बड़ा, मालिक। उ० साह ही को गोत-गोत होत है गुलाम को। (क० ७।१०७)
साहनी-(सं० सेनानी ?)-१ घुड़साल के अध्यक्ष, २ नौकर, चाकर, ३ पारिषद, ४ दारोगा, ५ सेनापति। उ० १ भरत सकल साहनी बोलाए। (मा० १।२९८।२)
साहब-(अर० साहिब)-स्वामी, मालिक।
साहस-(सं०)-हिम्मत, हौसला। उ० साहस अनृत चपलता माया। (मा० ६।१६।२)
साहसिक-साहसी, हिम्मती। उ० दीनबंधु कृपा सिंधु साहसिक सील सिंधु। (गी० १।५०)
साहसी-हिम्मती, निर्भीक, निडर। उ० वीर रघुवीर को समीर सूनु साहसी। (क० ७।४३)
साहि-(फ़ा० शाह)-बादशाह, स्वामी। उ० राम बोला नाम हौं गुलाम राम साहि को। (क० ७।१००)
साहिब-दे० 'साहब'। उ० साहिब सरोष दुनी दिन दिन दारदी। (क० ७।८३) साहिबहिं-साहब को, स्वामी को। साहिबिनि-साहब की स्त्री। उ० मेरी साहिबिनि सदा सीस पर बिलसति। (क० ७।१३६)
साहिबी-स्वामित्व, मालिकपन। उ० सुलभ सिद्धि सब साहिबी सुमिरत सीताराम। (दो० ५७०)
साहित-(सं० सहित)-१ मिलना, प्रेम करना, २ सामग्री, ३ साहित्य। उ० १ साहित प्रीति प्रतीति हित। (प्र० ७।१।१)
साहु-दे० 'साह'। उ० तुला पिनाक साहु नृप। (गी० २।१२)
साहेब-दे० 'साहब'। स्वामी, मालिक। उ० साहेब सुभाय कपि साहेब सँभारिए। (ह० २०)
साहेबी-(अर० साहब)-प्रभुता, ठकुराई, हाकिमी।
साहैं-(सं० सम्मुख)-दरवाज़े के बाजू। उ० द्वार बिसाल सोहाई साहैं। (गी० ७।१३)
सिंगरौर-(सं० शृङ्गवेरपुर)-एक स्थान। उ० भो आगिनि सिंगरौर गवाँई। (मा० २।१२१।१)
सिंगार-(सं० शृङ्गार)-शृङ्गार, सजावट। उ० सिंगार सिंधु तरु। (गी० १।२४)
सिंगारा-दे० 'सिंगार'।
सिंगारु-दे० 'सिंगार'।
सिंगारू-दे० 'सिंगार'।
सिंघल-दे० 'सिंहल'। उ० जनु सिंघल बासिन्ह भयउ। (मा० २।२२३)
सिंघिनिहि-(सं० सिंह) १ सिंहिनी को २ सिंहिनी के लिए। उ० १ सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि मनहुँ वृद्ध गजराजु। (मा० २।२५)
सिंचाई-(सं० सिंचन)-सिंचवाया। सिंचावा-सिंचवाया, छिड़काया। उ० चरन सलिल सबु भवनु सिंचावा। (मा० १।६६।४) सिंचि-सिंचित होकर, सींचो जाकर।
सिंदूर-(सं०)-एक लाल रंग जिसे सौभाग्यवती हिंदू स्त्रियाँ माँग में लगाती हैं। सिंदूरबंदन-माँग में सिंदूर डालने की रीति। उ०सिंदूरबंदन होम लावा होन लागी भाँवरी। (जा० १६२)
सिंधु-(सं०)-समुद्र सागर। उ० सिंधु मेखला अवनि पति। (ह० १) सिंधुसुत-१ जलंधर दैत्य, २ चंद्रमा। उ० १ सिंधुसुत गर्व गिरि बज्र गौरी रमन दक्ष मख भंजित त्रिपुर कर्ता। (वि० ४१) सिंधुसुता-लक्ष्मी।

सिंधो-हे सिंधु। उ० काव्य कौतुक कला कोटि सिंधो। (वि० २८)
सिंधुर-(स०)-हाथी। उ० सिंधुर मनि माल। (गी० १।८८)
सिंसुपा-(स० शिंशपा)-शीशम का पेड़। उ० तरु सिंसुपा मनोहर जाना। (मा० ३।८६।२)
सिंह-(स०)-१ श्रेष्ठ, उत्तम, २ शेर, बबर। उ० २ सिंह बधुहि जिमि ससक सियारा। (मा० २।६७।४)
सिंहल-(स०)-लंका।
सिंहासन-(स०)-राजा या देवता के बैठने का आसन। उ० सुभग सिंहासनासीन सीतारमन। (गी० ७।६)
सिंहिका-(स०)-एक राक्षसी जो राहु की माता थी यह समुद्र में रहती थी और छाया से जीवों को पकड़कर खा जाती थी। उ० सिंहिका सँहारि, बलि, सुरसा सुधारि छल। (ह० २७)
सिअनि-(स० सीवन)-सिलाई, सीवन। उ० सिअनि सुहा वनि टाट पटोरे। (मा० १।१४।६)
सिअरें-(स० शीतल)-ठंढे, शीतल। उ० सिअरें बचन सूखि गए कैसें। (मा० २।७१।४)
सिकता-(सं०)-बालू, रेत। उ० बारि मथे घृत होइ सिकता ते बरु तेल। (मा० ७।१२२ क)
सिकोरी-(स० संकुचन)-सिकोड़ी।
सिखंड-(स० शिखंड)-मोर पक्षी। उ० सिरनि सिखंड सुमन दल मंडन। (गी० १।४४)
सिख (१)-(स० शिक्षा)-उपदेश, शिक्षा। उ० सिख आसिष हित दीन्हि सुहाई। (मा० २।२८७।३)
सिख (२)-(सं० शिखा)-चोटी, शिखा। उ० नख सिख देखि राम कै सोभा। (मा० १।२३४।२)
सिखइ-(स० शिक्षा)-१ सिखाकर, २ सीख रहा है। उ० २ सिखइ धनुष विद्या बर बीरू। (मा० २।४१।२)
सिखइअ-शिक्षा दीजिए। सिखई-सिखाई है, सिखा रहा है। उ० कै ये नइ सिखी सिखई हरि निज-अनुराग बिछोहीं। (क० ४१) सिखन-सीखने को। उ० नगर रचना सिखन को विधि। (गी० ७।२३) सिखब-१ सीखूँगा, सीखिएगा। सिखयो-१ सिखाया, २ सिखाया हुआ। उ० २ देत सिख, सिखयो न मानत, मूढ़ता असि मोरि। (वि० १२८) सिखवो-सिखाओ, शिक्षा दो। सिखि-सीख। उ० जौ लौं हौं सिखि लेउँ बन रिषि रीति बसि दिन चारि। (गी० ७।२१) सिखे-१ सीखे, २ सीखने से।
सिखर-(स० शिखर)-१ चोटी, पर्वत की चोटी, २ मकान का ऊपरी भाग। उ० १ यहु मनि सुत गिरि नील-सिखर पर कनक बसन रुचिराई। (वि० ६२) सिखरनि-शिखरों, शिखरों पर।
सिखा-(स० शिखा)-चोटी। उ० अरुनसिखा धुनि कान। (मा० १।२२६)
सिखाइ-(सं० शिक्षा) शिक्षा देकर, सिखलाकर। उ० जनक जानकिहि भेटि सिखाइ सिखावन। (जा० १११) सिखाई-सिखाया, सिखलाया। सिखाए-सिखलाए, बतलाए। सिखाय-१ सिखलाते हैं, २ सिखाओ। सिखावत-१ सिखाते हुए, २ सिखाते हैं। सिखावहि-सिखाता, सिखा जाता है। सिखावहिं-सिखाते हैं, सिखलाती हैं। उ० चतुर नारि बर कुँवरिहि रीति सिखावहिं। (जा० १६७) सिखा वहु-सिखलाओ, बतलाओ। सिखाया-१ उपदेश, २ उपदेश दिया। उ० १ मनु हठ परा न सुनइ सिखाया। (मा० १।७८।३)
सिखावन-शिक्षा देना, उपदेश देना। उ० राजकुमारि सिखा वन सुनहू। (मा० २।६१।१)
सिखि (१)-(स० शिखिन्)-मोर, सिखिन-मोर गण। सिखिनि-मोरनी। उ० मनहुँ सिखिनि सुनि बारिद बानी। (मा० २।२६४।२)
सिखि (२)-(स० शिक्षा)-उपदेश। उ० जौं लौं हौं सिखि लेउँ। (गी० ७।२१)
सिखी (१)-सिखी हुई।
सिखी (२)-(स० शिखिन्)-१ मोर, २ आग।
सिगरि-(स समग्र)-सब, संपूर्ण। सिगरियै-संपूर्ण को ही, सबको ही। उ० सिगरियै हौं हीं लैहौं। (कृ० २)
सित-(स०)-१ श्वेत, सफेद, २ उज्वल, चमकीला, ३ साफ, ४ शुद्ध, ५ चाँदी, ६ शुक्ल। उ० १ सित सुमन हास लीला समीर। (वि० १४) ६ सित पाख बाढ़ति चंद्रिका। (पा० ३)
सितलाई-(सं० शीतल)-शीतलता। उ० गोपद सिंधु अनल सितलाई। (मा० ५।५।१)
सिथिल-दे० 'शिथिल'। उ० ४ रोमांच लोचन सजल सिथिल बानी। (वि० २१)
सिद्ध (१)-(स०)-१ जिसका साधन हो चुका हो, प्राप्त, २ मुक्त, ३ परिपक्व, पका, ४ ज्ञानी, महात्मा, ५ एक देव जाति। उ० ४ मुनिधीर योगी सिद्ध संतन। (मा० १।५१। छं० १) ५ हहरि हहरि हर सिद्ध हँसे हेरि कै। (क० ६।४२) सिद्धा-सिद्ध लोग। उ० याभ्यां बिना न पश्यंति सिद्धाः स्वांतस्थमीश्वरम्। (मा० १।१ श्लो० २)
सिद्ध (२)-(?)-सीधा, भोजन बनाने की आटा, दाल आदि सामग्री। (मा० १।१३३।२)
सिद्धांत-(स०)-मत, उसूल, नियम। उ० बरनहुँ रघुबर बिसद जसु श्रुति सिद्धांत निचोरि। (मा० १।१०९)
सिद्धि-(स०)-१ आठ सिद्धियाँ-अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व, २ काम पूरा होना, सफलता, कामयाबी, ३ मंत्र की सिद्धि। उ० १ जोग सिद्धि फल समय जिमि जतिहि अविद्या नास। (मा० २।२४)
सिधरिहहिं-(?)-जाएँगे, सिधारेंगे। उ० ते सनु तजि मम लोक सिधरिहहिं। (मा० ६।३।१)
सिधाई-(?)-गई, चली गई। उ० पुनि त्रिजटा निज भवन सिधाइ। (मा० ६।१००।१) सिधाए-गए, चले गए। उ० सब मुनीस आसमनि सिधाए। (मा० १।४५।२) सिधायो-गया। उ० बहुरि बिभीषन भवन सिधायो। (मा० ६। ११०।२) सिधावहिं-जाते हैं। सिधावहीं-जाते हैं। सिधा वहु-जाओ। सिधाया-गया चला गया। सिधैहैं-जायेंगे। सिधारेंगे। उ० सहित कुमार निज नगर सिधैहैं। (गी० २।२१)

सिधारहिं-(?)-आयेंगे, सिधारेंगे। सिधारहि-चली जावे, चली गई। उ०भइ यदि बार थालि कहुँ काज सिधारहि। (पा०७३) सिधारि-चला जा। सिधारिए-जाइए, चले जाइए। सिधारा-गया। सिधारी-चली गई, गमन किया। सिधारे-गए, चले गए। उ० गौतम सिधारे गृह गौनो सो लिवाइ के। (क० २१६)

सिधि-दे० 'सिद्धि'। उ० १ रिधि सिधि सपति नदी सुहाई। (मा० २।२।२)

सिबि-दे० 'सिवि'। उ० सिबि दधीचि हरिचद कहानी। (मा० २।४८।३)

सिमिटि-(?)-सिकुड़ना, बटुरना। उ० होत सिमिट इक पासा। (वि० ६२)

सिय-(स० सीता)-सीता, जानकी। उ० सिय भ्राता के समय भौम तहँ आयउ। (जा० १६६) सियरमन-(स० सीता+रमण)-राम।

सियत-(स० सीवन)-१ सीता है, २ सीने में। उ० २ सियत मगन। (वि० १३२) सियनि-सिलाई। उ० अप निहि मति विलास अकास महँ चाहत सियनि चनाई। (कृ० ४१) सियो-मिलाया, बनाया, सिला, टाँका। उ० तुलसिदास विहरयो अकास सो कैसे जात सियो है। (गी० ६।१०)

सियरे-(स० शीतल)-१ ठडा, २ छाँह, छाया, ३ कच्चा। उ० २ सुन्दर वदन ठाढ़े सुरतरु सियरे। (गी० १।४१)

सिया-(स० सीता) जानकी, सीता। उ० तेरे स्वामी राम से स्वामिनी सिय। रे? (वि० ३३)

सियार-(स० शृगाल)-स्यार, गीदड़। उ० खर सियार बोलहिं प्रतिकूला। (मा० २।१५८।३)

सिर-(स० शिरस्)-१ शीश, सर, २ श्रेष्ठ, ३ चोटी। उ० १ सिर का काँधे ज्यों बहत। (वि० १३३) सिरउ-सिर भी। सिरनि-सिरों पर। उ० गिरि निज सिरनि सदा तृन धरहीं। (मा० १।१६७।४) सिरन्ह-सिरों, सिरा पर। सिरन्हि-दे० 'सिरन्ह'। सिरसि-सिर पर। उ० सिरसि टिपारो लाल। (गा० १।४१)

सिरजहिं-(स० सृजन) बनाते हैं, बनायें। उ० जगदीस युवति जिनि सिरजहि। (पा० २४) सिरजा-बनाया, निर्माण किया। उ० सायर मत्र जान जिन्ह सिरजा। (मा० १।१५।३)

सिरताज-(सं० शिरस्+फा० ताज)-शिरोमणि, श्रेष्ठ। उ० जनयामेहि गवने मुदित सकल भूप सिरताज। (मा० १। ३२६)

सिरमनि-शिरोमणि, श्रेष्ठ। उ० पुरजन सिरमनि राम लला। (गी० १।१६)

सिरमोर-दे० 'सिरमौर'।

सिरमौर-(स० शिरस्+मुकुट)-१ सरताज, शिरोमणि, श्रेष्ठ, २ स्वामी, ३ राजा। उ० १ जैसे सुने सैमेइ कुँवर सिरमौर है। (गी० १।७१)

सिरसद-(स० शिरोरुह)-बाल। उ० विपुरित सिरसद-वरूथ कुचित विच सुमन जूथ। (गी० ७।३)

सिरस-(स० शिरीष)-एक पेड़ जिसका फूल अत्यत कोमल होता है। उ० सिरस सुमन कन बेधिअ हीरा। (मा० १। २५८।३)

सिरा-(स० शिरस्)-१ सिर, २ अत, छोर, ३ नाक। उ० १ भटन्ह के उर भुज सिरा। (मा० ३।२०। छं० १)

सिराइ-(स० शीतल ?)-१ शांत होगा, २ समाप्त होगा, ३ शांत होता है, शीतल होता है। उ० २ पाप तेहि परिताप तुलसी उचित सहे सिराइ। (गी०७।३०) सिराई-१ चुके, खतम हो, २ शांत हो ठढा, हो। सिराओं-१ समाप्त करूँ, २ शीतल करूँ। सिराति-१ ठढी होती, शीतल होती, २ बीतती। उ० २ भई जुग सरिस सिराति न राती। (मा० २।१५१।२) सिराती-दे० 'सिराति'। सिरान-१ शीतल हो गया, २ पूरा हो गया। उ० १ सब दुख दुकृत सिरान हमारा। (मा० २। ७०।२) सिराना-१ शीतल हो गया, २ बीत गया, ३ पूरा हो गया। सिरानी-बीती, समाप्त हुई। उ० राम कृपा भवनिसा सिरानी। (वि० १०५) सिराने-१ शीतल हुए, २ डूबे, ३ समाप्त हुए। सिरानो-समाप्त हो गया, तय हो गया। उ० चले कहत चाय सों सिरानो पथ छन में। (क० ५।३१) सिरान्यो-बीत गया। उ० सर खनतहिं जनम सिरान्यो। (वि० ८८) सिरावइ-दे० 'सिरावै'। सिरावै-१ ठढा करे, शीतल करे, २ शांत करे। उ० १ बुद्धि सिरावै ज्ञान घृत। (मा० ७।११७) सिरावौं-१ सतोष कर लेता हूँ २ शांत करता हूँ। सिराहिं-१ बीतते हैं, २ पूरे होते हैं, ३ शांत होते हैं। सिराहि-१ बीते, २ ठढा हो। सिराहीं-१ बीते, व्यतीत हो, २ शांत हो, ३ नाश हो। उ० १ रघुबर चरित न बरनि सिराहीं। (मा० ७।५२।२) ३ करतहुँ सुकृत न पाप सिराहीं। (वि० १२८)

सिरिजा-(स० सृजन)-रचा, बनाया, उत्पन्न किया। उ० ताकर दूत अनल जेहि सिरिजा। (मा० ५।२३।४)

सिरिस-दे० 'सिरस'।

सिरु-दे० 'सिर'।

सिरोमनि-दे० 'शिरोमणि'। उ० भगत सिरोमनि भनिहैं। (वि० ६५) सिरोमने-हे शिरोमणि, हे श्रेष्ठ।

सिल-(स० शिला)-१ पत्थर, २ वह पत्थर का टुकड़ा जिस पर लोढ़े से चीजें पीसते हैं। उ० २ फोरहिं सिल लोढ़ा सदन लागे अढुक पहार। (दो० ४६०) सिलनि-शिलाओं पर, पत्थरों पर। उ० सीतल सुभग सिलनि पर तापस करत जोग जप तप मन लाई। (गी० २।४६)

सिला-(स० शिला)-१ पत्थर, २ सिल, सिलौटी, ३ अहिल्या। उ० १ सिला सभ्रम भई है। (गी० २।७८) ३ कौसिक सिला जनक सकट हरि। (गी० ५।३०)

सिलिपि-(स० शिल्प)-शिल्पकारी, कारीगरी। उ० खेती बनि विद्या बनिज सेवा सिलिप सुकाज। (प्र०७।२।७)

सिलीमुख-(स० शिलीमुख)-१ बाण, २ भ्रमर, ३ भौंरा। उ० १ या ३ धनि रघुबीर सिलीमुख धारी। (मा० ६।१ २।४)

सिलोक-(स० श्लोक)-श्लोक। उ० पुन्यसिलोक तात सर तोरें। (मा० २।२६३।१)

सिल्पि–(सं० शिल्पी)–शिल्पी। उ० सिल्पि कम जानहिं नल नीला। (मा० ६।२३।२)

सिव–दे० 'शिव'। उ० सेप सिव देव ऋषि अखिल मुनि तत्वदरसी। (वि० ४७) सिवहिं–शिव को।

सिवता–(सं० शिवता)–शिवत्व, कल्याणकरता।

सिवा–(सं० शिवा)–पार्वती, गौरी। उ० सिवा समेत सभु सुक नारद। (वि० ३६)

सिवि–(सं० शिवि)–एक राजा। दे० 'शिवि'।

सिविका–(सं० शिविका)–पालकी, डोली।

सिष–(सं० शिक्षा)–१ सीख, शिक्षा, २ शिष्य। उ० २ सुचि सेवक सिष निकट बोलाए। (मा० २।२१३।२)

सिष्य–(सं० शिष्य)–शिष्य, चेला। उ० साथ लागि मुनि सिष्य बोलाए। (मा० २।१०१।२)

सिसकत–(अनु० सी सी)–रोता है, सिसकता है। उ० सिसकत सुर बिधि हरिहर हैं। (गी० २।४५)

सिसिर–(सं० शिशिर)–शिशिर ऋतु, माघ-फागुन का महीना। उ० सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू। (मा० १।४२।१)

सिसु–(सं० शिशु)–१ लड़का, बालक, बच्चा, २ छोटा। उ० १ सिसु अरनि बरो। (वि० २२६) २ सिसु तरु फरयो है अद्भुत फरनि। (गी० २४) सिसुन्ह–लड़को, लड़कों को। उ० लोचन सिसुन्ह देहु अमिय घूटी। (गी० २।२१)

सिस्न–(सं० शिश्न)–लिंग, पुरुषेंद्रिय। उ० सिस्नोदर पर जमपुर त्रासन। (मा० ७।४०।१)

सिहाई–(सं० ईर्ष्या ?)–ईर्ष्या करते थे, ललचते थे। उ० अवधराजु सुरराजु सिहाई। (मा० २।३२४) सिहाउँ–सिहाता हूँ, ललचाता हूँ। सिहाऊ–१ बड़ाई करे, २ ईर्ष्या करे। उ० १ थापिय जन सब लोग सिहाऊ। (मा० २।८८।४) सिहात–१ प्रसन्न होते हैं, २ ईर्ष्या करते हैं, ३ प्रशंसा करते हैं। उ० १ चक्रपानि चढीपति चडिका सिहात। (क० ६।४१) ३ बिबुध सिद्ध सिहात। (ह० २) सिहाहिं–१ प्रसन्न होते हैं, २ ईर्ष्या करते हैं, ३ सराहना करते हैं। उ० ३ लोकप सकल सिहाहिं। (गी० १।२) सिहाहि–ईर्ष्या करती है। उ० रति सिहाहि लखि रूप गान सुनि भारति। (पा० १२१) सिहाहीं–१ ईर्ष्या करते हैं, २ सराहना करते हैं। सिहाहूँ–प्रसन्न होता हूँ। उ० बिलोकि अब तें सकुचाहु सिहाहूँ। (वि० २०५)

सिहोरे–(सं० सेहुंड)–एक कँटीला पेड़। उ० तुलसी दखि रूँख्यो चहैं सठ साखि सिहोरे। (वि० ८)

सींक–(सं० इषीका)–पतला तृण। उ० सीक धनुष हित सिखन सकुचि प्रभु लीन। (ब० १६)

सींच–(सं० सिंचन)–१ सींचती है, २ सींचनेवाली। उ० १ मदाकिनि मालिनि सदा सींच। (वि० २२) सींचत–१ सींचता है, २ सींचने से। उ० २ बाँध चय उफनात सींचत। (गी० ७।३६) सींचति–छिड़कती है, सींचती है। सींचा–छिड़का, जल से [illegible] किया। सींचि–१ सींचकर, छिड़ककर २ सींच[illegible] सींचि, सुगंध सुमगन्न गावहिं। (जा० [illegible] पानी दीजिए। [illegible] दिया सींची चतुर [illegible] ९) सींचु [illegible]

सींचो–१ सींचा, २ जो सींचा गया हो, पाला-पोसा। उ० १ बोरत न बारि ताहि जानि आपु सींचो। (वि० ७२)

सींव–(सं० सीमा)–हद, सीमा, मर्यादा। उ० नेह देह सुधि सींव गई। (गी० २।३८)

सी (१)–(सं० सीवन)–सीकर, सी। उ० सेवक को परदा फटे तू समरथ सीले। (वि० ३२)

सी (२)–(सं० सम)–समान, तरह। उ० मन ओगवति रहति रमा सी। (वि० २२)

सी (३)–(सं० सीता)–सीता, वैदेही। उ० मूल दुहूँ को दयालु दूलह सी को। (वि० १७६)

सीक–दे० 'सींक'।

सीकर–(सं)–जल की बूँद, छींट। उ० जल सीकर महि रज गनि जाहीं। (मा० ७।९२।२) सीकरनि–बूँदों से। उ० कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीर सिंधु बिनसाइ। (मा० २।२३१।१)

सीख–(सं० शिक्षा)–शिक्षा, पाठ, उपदेश। उ० छमा रोष के दोष गुन सुनि मनु मानहिं सीख। (दो० ४२७)

सीखि–(सं० शिक्षा)–१ दे० 'सीख', २ सीखकर, ३ सीखो। उ० १ सीखि लई। (क० ७।६२)

सींचा–(सं० सिंचन)–सींचा, सींच दिया। सीचेउ–सींचा।

सीझे–(सं० सिद्ध)–तपे, आँच सहे। उ० लै करसी प्रयाग कब सीझे। (वि० २४०)

सीठ–(सं० शिष्ट)–नीरस, फीका, सिट्ठी। उ० रागिहि सीठ बिसषि खलु। (प्र० २।६।१) सीठि–दे० 'सीठ'। उ० सीली सुधा सहस सम राम भगति सुठि सीठि। (दो० ८३) सीठे–दे० 'सीठ'। उ० ह्वै जाते सब सीठे। (वि० १६६)

सीत–(सं० शीत)–१ शीतल, ठंढा, २ पाला, ३ जाड़ा, ४ ओस। उ० ३ सीता सीत निसा सम आई। (मा० २।३६।४)

सीतल–(सं० शीतल)–१ ठंडा, २ शीतल, शांत। उ० १ सुनि प्रसंगु भए सीतल गाता। (मा० २।४२।४) २ तुलसी प्रेमै सीतल सदा। (वै० ४७)

सीतलता–(सं० शीतलता)–शीतलता, ठंडक। उ० सीतलता ससि की रहि सब जग छाइ। (ब० ४२)

सीतलताई–दे० 'सीतलता'। उ० तन पूजियो होत सीतल ताई। (क० ७।४८)

सीतहिं–सीता को। सीतहि–१ सीता को, २ सीता ने। सीतां–सीता को। उ० सर्वश्रेयस्करीं सीतां। (मा० १।१। श्लो० ५) सीता–(सं०)–जनक की पुत्री और राम की स्त्री। एक बार जनक के राज्य में वर्षा नहीं हुई। उन्होंने यज्ञ किया और अपने हाथ से हल चलाया। हल जोतते समय एक घड़ा निकला जिसमें एक अपूर्व कन्या प्राप्त हुई। हल की रेखा को सीता कहते हैं। उसमें से निकलने के कारण कन्या का नाम 'सीता' पड़ा। उ० सीतान्वेषण तत्परौ पथि गतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः। (मा० ४।१। श्लो० १)

सीतापति–रामचंद्र। उ० सीतापति सनमुख समुझि। (दो० १०१) सीतारतिहिं–राम को। सीतारमण–रामचंद्र।

सीते–हे सीता। उ० सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा। (मा० [illegible] ।११।२) सीतेस–(सं० सीतेश)–रामचंद्र। उ० [illegible] सेवा सरस। (वि० ३८)

सीदत-(सं० सीदति)-दुख पाता है। उ० तुलसिदास सीदत निसदिन देखत तुम्हारि निठुराई। (वि० ११२) सीदहिं-दुखी होते हैं, कष्ट पाते हैं। उ० फूलैं फलैं खल सीहिं साधु पल पल। (क० ७।१७१)
सीदमान-दुःखी, संतप्त। उ० साधु सीदमान जानि रीति पाप पीन की। (क० ७।१७७)
सीध-(सं० सिद्ध ?)-बेपका अन्न। आटा, चावल, दाल आदि। उ० तहँ तहँ सीध चला बहु भाँती। (मा० १।३३३।२)
सीधा-(?)-सरल, सामने, सादा, भोला। सीधे-दे० 'सीधा'। उ० लिए छरी बेंत सीधे विभाग। (गी० ७।२२)
सीधो-दे० 'सीधा'। उ० पान पकवान बिधि नाना को सधानो सीधो। (क० ५।२३)
सीप-(सं० शुक्ति, प्रा० सुत्ति)-सीपी, एक समुद्री जीव। उ० हृदय सिंधु मति सीप समाना। (मा० १।११।४)
सीपर-(फा० सिपर)-ढाल। उ० लागति सांगि बिभीषन पर सीपर आपु भये हैं। (गी० ६।५)
सीपि-दे० 'सीप'। उ० सरसीं सीपि कि सिंधु समाई। (मा० २।२५७।२)
सीपी-दे० 'सीप'।
सीम-(सं० सीमा)-हद, अवधि, मर्याद।
सीमा-दे०'सीम'। उ०रूप सुख शील सीमाऽसि भीमासि। (वि० १५)
सीय-(सं० सीता)-जानकी, सीता। उ० सीय ज्यौंही त्यौंही रहीं। (गी०२।७) सीयरवन-(सं०सीता+रमण)-रामचंद्र।
सीया-दे० 'सीय'।
सील-दे० 'शील'। उ० १ सील-समता भवन विषमता मति समन। (वि० ४५) ३ धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ। (मा०१।२१४।२) सीलन्ह-शीलों। सीलहिं-शील को।
सीलता-(सं०शीलता) परायणता, आचरण करना।
सीला (१)-दे० 'शील'। उ० १ हेतु रहित परहित रत सीला। (मा० ३।४६।४)
सीला (२)-(सं० शिला)-अहल्या। उ० कौन कियो समाधान सनमान सीला को। (वि० १८०)
सीलु-दे० 'सील'।
सीवँ-दे० 'सीव (१)'।
सीव (१)-(सं० सीमा)-सीमा, हद, मर्यादा। उ० धर्म सीव सुख सीव। (वि० ६१)
सीव (२) (सं० शिव) शिव।
सीस-(सं० शीश) सिर, शीश। उ० सीस उघारि दिखाई चाहैं। (गी० ७।१३) सीसनि-सिरों पर। सीसन्ह-सिरों पर। उ० देहिं सुलोचन सगुन कलस लिए सीसन्ह। (पा० ३०)
सीसा-दे० 'सीस'। उ० पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा। (मा० २।११११।२)
सीसु-दे० 'सीस'।
सीसू-दे० 'सीस'।
सुंड-(सं० शुंड)-सूँड़, हाथी का हाथ और नाक। उ० नाग सुंड सम भुज चारी। (वि० ६३)
सुंदर-दे० 'सुदर'। उ० शिव सुंदर सच्चिदानंद कंद। (वि० १२) सुदर-(सं०)-अच्छा, बढ़िया, उमदा, खूबसूरत, रुचिर, रमणीय। उ० मनिकर्निका बदन ससि सुंदर। (वि० २२)
सुंदरता-(सं०)-खूबसूरती, अच्छाई, सौंदर्य। उ० जेहिं तुम्हहि सुंदरता दई। (मा० १।१६।छं० १) सुदरताहु-सुंदरता को। उ० नयन सुखमा अयन हरत सरोज सुंदरताहु। (गी० १।६५)
सुंदरताई-सुंदरता, खूबसूरती। उ० हरि सन मागौं सुंदर ताई। (मा० १। १३२।१)
सुदरि-१ सुंदरी, अच्छी, २ स्त्री, सुंदर स्त्री, ३ सुंदरियाँ। ३ गावहिं मधुर स्वर देहिं सुंदरि बिंग्य बचन सुनावहीं। (मा० १।६६।छं० १)
सुंदरी-१ अच्छी, खूबसूरत, २ सुंदर स्त्रियाँ। उ० २ सुर सुंदरी करहिं कल गाना। (मा० १।६१।२)
सु-(सं०)-सुंदर, अच्छा। सुंदरता या अच्छाई बोधक एक उपसर्ग जो अन्य शब्दों के पूर्व लगाया जाता है। जैसे सुगति, सुकाल, सुगाम, सुमय, सुगेह तथा सुगुरु आदि। उ० बाजहिं निसान सुगान नभ चढ़ि बसह बिधु भूषन चले। (पा० १०८)
सुअ-(सं० सुत)-पुत्र लड़का। उ० कैकेई सुअ कुटिलमति राम बिमुख गतलाज। (मा० २।१०८)
सुअन-(सं० सुत)-पुत्र, लड़का, बेटा।
सुअर-(सं० शूकर)-सूयर, शूकर। उ० खर स्वान सुअर सृकाल मुख। (मा० १।१३।छं० १)
सुआरा-(सं० सूपकार)-रसोइया। उ० लागे परुसन निपुन सुआरा। (मा० १।६६।४)
सुआसिनि-(?)-सौभाग्यशालिनी, सधवा। उ० जूथ जूथ मिलि चलीं सुआसिनि। (मा० १।३४२।३)
सुक-(सं० शुक)-सुग्गा, तोता। उ० चारु भ्रू नासिका सुभग सुक आननी। (गी० ७।५)
सुकंठ-(सं०)-सुग्रीव। उ० फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली। (मा० १।२६।३)
सुकल-(सं० शुक्ल)-१ श्वेत, सफ़ेद, २ उजेला। उ० २ सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता। (मा० १।१।१)
सुकिय-दे० 'सुकृत'। उ० गये निघटि फल सकल सुकिय के। (गी० ४।१)
सुकुमार-(सं०)-कोमल अंगवाला। उ० सुठि सुकुमार कुमार दोउ। (मा०२।८१)सुकुमारी-(सं०)-कोमल शरीर वाली। उ० तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। (मा० २।५८।४)
सुकुमारि-दे० 'सुकुमारी'। उ० सुठि सुकुमार कुमार दोउ जनक सुता सुकुमारि। (मा० २।८१)
सुकृत-(सं०) पुण्य कर्म, अच्छा काम। उ० सुकृत सुनेत सुरस मानि पूनि परिगे। (गी० २।३२)
सुकृती-पुण्य कर्म करनेवाला। उ० चढ़ि सुकृती मन होहिं साधू। (मा० २।१८८।२)
सुकृतु-दे० 'सुकृत'।

सुकेत-(स०)-ताड़का का पिता। उ० रिषि हित राम सुकेत सुता की। (मा० २४।२)
सुकेतु-दे० 'सुकेत'। सुकेतुसुता-ताड़का।
सुक्र-(स० शुक्र)-१ वीर्य, बीज, २ शुक्राचार्य। उ० १ दुख सुक्रसंभव यह देही। (मा०१।६४।२)
सुख-(स०) आराम, दुःख का उलटा। उ०तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा। (मा०१।७३।१) सुखकारी-सुख देनेवाला। सुखद-सुख देनेवाला। सुखदाइ-सुख देनेवाला। सुखदायक-सुख देनेवाला। सुखदाता-सुख देनेवाला। सुखदायनी-सुख देनेवाली। सुखमय-सुखयुक्त, सुख से भरी। उ० सुखमय ताहि सदा सब आसा। (मा० ७।४६।२) सुखहि-सुख को। सुखहिं-सुख को। सुखेन-सुखपूर्वक। उ० लरहिं सुखेन कालु किन होऊ। (मा० १।२६५।१)
सुखमा-दे० 'सुषमा'। उ० सुखमा सुरभि छीर दुहि मयन अमिय मय कियो दही री। (गी० १।१०४)
सुखाई-(स० शुष्क)-सूखे, सूख जाय। सुखानी-सूख गई। उ० कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी। (मा० २।२०।१) सुखानेउ-१ सूखे हुए भी, २ सूखे। सुखाने-सूख गए, सूखे। सुखाहीं-सूखते हैं, सूख जाते हैं। सुखाहिं-दे० 'सुखाहीं'।
सुखारी-(स० सुख)-सुखी, प्रसन्न। उ० सब बिधि सब पुर लोग सुखारी। (मा० २।१।२) सुखारे-सुखी।
सुखी-आनंदित, प्रसन्न। उ०होइ सुखी जौं एहिं सर परई। (मा० १।३५।४)
सुगंध-(स०)-अच्छी महँक। उ० छिरकैं सुगंध भरे मलय रेनु। (गी० ७।२२)
सुगढ़-अच्छे गढ़े हुए। उ० सुगढ़ पुष्ट उन्नत कृकाटिका। (गी० ७।१७)
सुगति-(स०)-१ मरने के उपरांत होनेवाली अच्छी गति, मोक्ष। उ० सुगति साधन भई उदर भरनि। (वि०१८४) सुगतिहु-मोक्ष से भी। उ० सुगतिहु सुभाहि न। (वि० २००)
सुगम-(स०)-सरल, आसान। उ० मुनि-मन अगम सुगम माइ बाप सो। (वि० ७१)
सुगमु-दे० 'सुगम'।
सुगाइ-(?)-संदेह करता है संदेह करेगा। उ० सुगइहि सुगाइ मातु कुटिलाइ। (मा० २।१८४।२)
सुग्रीवँ-सुग्रीव ने। सुग्रीव-(स०)-बालि का भाई जो राम का भक्त था। उ० कारन कवन बसहु बन मोहि कहहु सुग्रीव। (मा० ४।५) सुग्रीवहि-१ सुग्रीव को, २ सुग्रीव ने। सुग्रीवहु-सुग्रीव भी। सुग्रीवपुर-किष्किंधा पुरी।
सुग्रीवाँ-दे० 'सुग्रीव'। १ सुग्रीव ने, २ सुग्रीव को।
सुचाली-अच्छी चालवाला, सदाचारी। उ० मैं साधु सुचाली। (मा० १।२६१।२)
सुचि-(स० शुचि)-पवित्र। उ० सुचि अवनि सुहावनि आलबाल। (वि० २३)
सुचित-(स० सु + चित) १ सावधान, २ निश्चित, ३ ध्यान से। उ०१ सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी। (मा० १।२६।१)
सुचितई-निश्चितता। उ० सफल मनोरथ भो सुचितई है। (गी० १।६४)
सुचिता-दे० 'शुचिता'। उ० मकरंदु जिन्ह को संभु सिर सुचिता अवधि सुर बरनई। (मा० १।३२४।छं० २)
सुचिमत-(स० शुचि + व्रत)-पवित्र।
सुच्छम-(स० सूक्ष्म)-छोटी, छोटी सी। उ० अति सूच्छम पिपीलिका बिनु प्रयास ही पावै। (वि० १६७)
सुछंद-(स० स्वच्छंद)-स्वतंत्र, स्वाधीन, मौजी। उ० करहिं जोग जप जाग तप आलमनि सुछंद। (मा०...) जो दुख मैं...
सुजनी-(स० सु + जन)-सखी, सजनी। उ० यह ... सुजनी। (कृ० २५)
सुजान-(स० सज्ञान)-चतुर, सयाना। उ० ... सुनु सिव सुजान। (वि० १४)
सुजाना-दे० 'सुजानु'।
सुजानि-दे० 'सुजान'।
सुजानु-दे० 'सुजान'। उ० आगे को गोसाइँ सुजानु है। (क० ७।८०)
सुजानू-दे० 'सुजान'।
सुजोधन-(स० सुयोधन) दुर्योधन। युधिष्ठिर ... इसी नाम से पुकारते थे।
सुजोर-(स० सु + फ़ा० ज़ोर)-मजबूत, सुदृ... बिसाल बिराजहीं बिद्रुम खंभ सुजोर। (गी० ...)
सुझाउ-(?)-१ सुझाओ, लखाओ, २ ... सुझाउ सो ... २ तेरेहि सुझाए सूझै असुझ सुझाउ सो। उ० ...
सुझाए-सुझाने से, बतलाने से। उ० दे०...
सुटुकि-(?)-पतली छड़ी से मारकर। उ... हय सुटुकि नृप हाँकि न होइ निबाहु।
सुठान-(?)-भली प्रकार से। उ० भाँह ... (क० ७।११८)
सुठारी-(?)-सुंदर। उ० अँगुरियन्ह ... (रा० १५)
सुठि-(स० सुष्ठु)-सुंदर, मनोहर, ... रय मयउ गारि मोहइ सुठि। (पा... उ०
सुढर-(स० धार)-अनुकूल। ... सुढर सुदाय के। (गी० १।६५)
सुतंत्र-(स० स्वतंत्र)-आज़ाद, स्व... सकल सुत्र गानी। (मा० ७।४...
सुत-(स०)-लड़का, बेटा। उ० ... की। (वि० २६८)-सुतन-१ ... सुतह-पुत्रों। उ० आव्रत ... २०७) सुतहि-सुत को, पुत्र...
सुता-(स०)-लड़की, पुत्री। ... दाहू। (मा० २। २४।४)
सुतहार-(स० सूत्र + हार)-... कनक रतन मय पालनो र... १।१६)
सुतु-दे० 'सुत'।
सुदरसन-(स० सुदर्शन)-...

विष्णु का हथियार है। उ० १ नकुल सुदरसन दरसनी छेमकरी श्ररु चाप। (दो० ४६०)
सुदरसनपानि-(स० सुदर्शनपाणि)-विष्णु। उ० ज्यों धाए गजराज उधारन सपदि सुदरसनपानि। (गी० ६।१)
सुदाम-दे० 'सुदामा'। उ० ध्रुव प्रह्लाद विभीषन कपिपति जड़ पतग पांडव सुदाम को। (वि० ९१) सुदामहिं-सुदामा को।
सुदामा-(स०)-एक दीन ब्राह्मण जो कृष्ण का सहपाठी था। उ० साखि सखा सब सुबल सुदामा। (कृ० १२)
सुदामिनि-दे० 'सुदामिनी'।
सुदामिनी-(स० सौदामिनी)-बिजली। उ० साँवरे गोरे के बीच भामिनी सुदामिनी सी। (क० २।१४)
सुदि-(स० शुक्ल + दिवस)-उजाला पाख। उ० जय सबत फागुन सुदि पाँचै गुरु दिनु। (पा० ५)
सुदृद-(स० सु + दृढ़)-मजबूत, अच्छा। उ० सुदृढ़ ज्ञान अवलबि। (गी० ५।१)
सुद्ध-दे० 'शुद्ध'। उ० १ सर्वदा सुद्ध सवज्ञ स्वच्छदचारी। (वि० ५६)
सुद्धता-(स० शुद्धता) पवित्रता। उ० सुद्धता लेस कैसो। (वि० १०६)
सुद्धि-(स० शुद्धि,-शुद्ध होने का भाव, सफाई। उ० सुद्धि हेतु स्रुति गावै। (वि० ८२)
सुध-(?)-स्मृति, स्मरण, याद, चेत।
सुधरत-(स० शोधन ?)-सुधरता है, सँभलता है। सुधरहिं-सुधर जाते हैं। उ० सठ सुधरहिं सतसगति पाइ। (मा० १।३।५) सुधरै-सुधर गया। सुधरैगी-सुधर जायगी।
सुधरिए-सुधारिए। उ० अब मेरियो सुधरिए। (वि० २७१)
सुधा-(स०)-अमृत। उ०मुए करै का सुधा तड़ागा। (मा० १।२६१।१)
सुधाइहु-(?)-सीधेपन से भी। उ० कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू। (मा० १।२८१।३)
सुधाइ-सीधापन, सिधाई। उ० देखि तात सब सहज सुधाई। (मा० १।१६३।२)
सुधाकर-(सं०)-१ चद्रमा, २ कपूर। उ० १ जय दम रघ कुल कुमुद सुधाकर। (मा० ७।२१।३)
सुधाकरु-दे० 'सुधाकर'।
सुधार-(स० शोधन ?)-बनाव, ठीक करना, दुरुस्तगी।
सुधारत-(स० शोधन ?)-सुधारता है, सँभालता है। उ० मयन सुधारत सायक। (पा० ६४) सुधारा-ठीक किया, सँभाला। सुधारि-१ सुधार कर, २ सुधारते। उ० १ सुधारि धाए। (वि० २७१) सुधारिए-सँभालिए। उ० सुधारिए भागिलो काज। (गी० १।८२) सुधारिबी-सुधारिएगा। सुधारिहि-सुधारेंगे। सुधारे-ठीक किए, सँभाले।
सुधि-(स०)-स्मरण, याद। उ० हृदय कप तन सुधि कछु नाहीं। (मा० १।५५।३)
सुधी-(सं० सु + धी) बुद्धिमान, पडित, विज्ञ। उ०साहिब सुधी सुसील-सुधाकर हैं। (वि० २५२)
सुन-(स० श्रवण)-सुनो। सुनइ-सुनता है। उ० जो जहँ सुनइ धुनइ सिर सोई। (मा० २।४६।४) सुनउँ-सुनूँ, सुनता हूँ। सुनऊँ-सुनता हूँ। सुनत-१ सुनता है, २ सुनते हुए, ३ सुनने से। उ० ३ सुनत समुझियत थोरे। (कृ० ४४) सुनतहिं-सुनते ही। सुनतहि-दे० 'सुनतहिं'। सुनति-१, सुनती, २ सुनते हुए। सुनतिउँ-मैं सुनती। सुनतेउँ-मैं सुनता। सुनहि-१ सुना, २ सुनेगा। उ० १ सुनहि सती तव नारि सुभाऊ। (मा० १।५१।३) सुनहीं-सुनते हैं। सुनहु-सुनो, श्रवण करो। उ० सुनहु तात मायाकृत। (मा० ७।४५) सुना-श्रवण किया। सुनि-१ सुनो, २ सुन कर। उ० २ सुनिकै सुचित तेहि समै। (गी०२।३७) सुनिअ-१ सुनो, २ सुना जाता है। उ०२ सुनिअ सुधा देखिअहिं गरल। (मा०२।२८१) सुनियत-सुना जाता है। सुनियति-सुनी जाती है। सुनिहहिं-सुनेंगे। सुनिहहुँ सुनूँगा। सुनी-सुना, श्रवण किया। सुनु-सुनो। सुने-१ सुना, २ सुनने पर, ३ सुनते ही। उ० २ काल कराल नृपालन के धनुभंग सुने फरसा लिए धाए। (क० १।२२) सुनेउ-सुना, श्रवण किया। सुनेउ-सुना। सुनेऊ-सुना। सुनेहि-सुना। उ०२ सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा। (मा० १।२७२।२)
सुनाइ-(स० श्रवण)-सुनाकर, श्रवण कराकर। उ० अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई। (मा० ४।३८) सुनाइय-१ सुना कर, २ सुनाया। सुनाई-१ सुनाकर, २ सुनाया। उ० १ दे० 'सुनाइ'। सुनाउ-सुनाओ। सुनात-सुनाई पड़ता। सुनाऊ-सुनाओ। सुनाएसि-सुनाया। सुनाएहु-सुनाना। सुनायउ-सुनाया। सुनायहु-१ सुनाया, २ सुनाना। सुनाये-१ सुनाया, २ सुनाने पर। सुनायेउ-सुनाया। सुनायेहि-१ सुनाने पर, २ सुनाया। सुनायो-सुनाया। सुनाव-सुनाओ। सुनावत-सुनाते हैं। सुनावहीं-सुनाते हैं। सुनावहु-सुनाओ। सुनावा-सुनाया। उ० का सुनाइ विधि काह सुनावा। (मा०२।४८।१)
सुनैया-सुननेवाला। उ० जनम फल तोतरे बचन सुनैया। (गी० १।६)
सुपच-(स० श्वपच)-भगी, मेहतर।
सुपन-(स० स्वप्न)-स्वप्न।
सुपनखा-(स० शूर्पणखा)-रावण की बहन ने। उ०आइ सुपनखा रावन प्रेरा। (मा० ३।२१।३)
सुपास-(?)-१ सुख देनेवाला, २ सुख, सुभीता। उ० २ बसै सुवास सुपास होहि सब। (कृ० ४८)
सुपासा-दे० 'सुपास'।
सुपासी-दे० 'सुपास'।
सुपासू-दे० 'सुपास'। उ० १ तुम्ह कहँ बन सब भाँति सुपासू। (मा० २।७२।४)
सुपेती-(फ़ा० सफेदी)-१ सफेदी, उज्ज्वलता, २ सफेद चादरें। उ० २ कामरु बलित सुपेती नाना। (मा० १।३५६।१)
सुफल-(स० सफल)-कामयाब, सफल। उ० चले मोक लोचननि सुफल करत है। (क० २।१७)
सुफलक-(स० श्वफलक)-अक्रूर के पिता। सुफलकसुत-अक्रूर। उ०है मराल सुफलकसुत से गयो छीर नीर बिलगाई। (कृ० २५)
सुबट्ट-(स० सु + वर्त्म)-सुंदर मार्ग। उ० पब्बइट्ट-दट्ट सुबट्ट बीथी। (मा० ५।३। छ० १)

सुवरन-(स० सुवर्ण)-सोना, स्वर्ण। उ० हौं सुवरन कुवरन कियो। (वि० २६६)

सुवस-(१)-(स०स+वास)-अच्छा निवास,सुंदर स्थान। उ०सुवस वसउ फिरि सहित समाजा।(मा० २।२७३।७)

सुवस (२)-(?)-सुख पूर्वक। उ० समाधानु करि सुवस वसाए। (मा० २।३२३।३)

सुवाहु-(स०)-१ धृतराष्ट्र का पुत्र और चेदि का राजा, २ सेना, ३ एक राक्षस जो रावण का अनुचर था। उ० २ वन धन धरम सुवाहु। (दो० ४२१) ३ पावक सर सुवाहु पुनि मारा। (मा० १।२१०।३)

सुवेल-(स०)-एक पर्वत। उ० इहाँ सुवेल सैल रघुवीरा। (मा० ६।११।१)

सुभ-दे० 'शुभ'। उ० १ असुभ-सुभ कर्म घृत पूर्ण दस वर्तिका। (वि० ४७) सुभद-कल्याणदाइ। सुभदाई-कल्याणदाई।

सुभग-(स०)-सुंदर, मनोहर। उ० नील नव वारिधर सुभग सुभ कांतिकर। (वि० ४१)

सुभगता-(स०)-सुंदरता, सौंदर्य। उ० जागइ मनोभव मुएहुँ मन वन सुभगता न परै कही। (मा० १।८६। छं० १)

सुभाइ-(स० स्वभाव)-१ स्वभाव, २ स्वाभाविक, सहज। उ० २ जुवति जुत्थ महँ सीय सुभाइ विराजइ। (जा० १२८)

सुभाउ-दे० 'सुभाइ'। उ०१ सुनि सीतापति सील सुभाउ। (वि० १००)

सुभाऊ-दे० 'सुभाइ'।

सुभाए-स्वभाव स, स्वाभाविक रीति से। उ० सुभग सुवेस सुभाए। (गी० १।२४)

सुभागी-सौभाग्यवती, सधवा। उ० सील सनेह सुभाय सुभागी। (मा० २।२२२।४)

सुभायँ-स्वभाव से ही। उ० सुभायँ सुहाए। (मा० २। २४१।४) सुभाय-(स० स्वभाव)-आदत, प्रकृति, स्व भाव। उ० सुभाय सही करि। (वि० २७७)

सुभाव (१)-(स० स्वभाव)-स्वभाव, प्रकृति। उ० कहौं सुभाव न कुलहि प्रसंसी। (मा० १।२८४।२) सुभावहिं-स्वभाव से ही।

सुभाव (२)-(स० सु+भाव)-अच्छा विचार। उ०सुभाव कहै तुलसी। (क० ७।४२)

सुभावु-दे० 'सुभाव (१)'।

सुभ्र-(स० शुभ्र) निर्मल, सफेद। उ० फटिक सिला अति सुभ्र सुहाई। (मा० ४।१३।२)

सुमंत-(स० सुमन्त्र)-राजा दशरथ का मंत्री और सारथी।

सुमन्त्र-दे० 'सुमंत'। उ० गए सुमन्त्र तब राउर माहीं। (मा० २।३८।२)

सुमंत्रु-दे० 'सुमंत'। उ० सेवक सचिव सुमंत्रु बोलाए। (मा० २।४।१)

सुमन-(सं०)-फूल। उ०सुमन बरसि सुर घन करि छाहीं। (मा० २।३११) सुमननि-फूलों से।

सुमरन-(स० स्मरण)-१ याद, स्मरण, २ भजन।

सुमित्रहि-१ सुमित्रा को, २ सुमित्रा से। सुमित्रा-(स०)-दशरथ की रानी और लक्ष्मण शत्रुघ्न की माता। उ० सुमित्रा सुवन शत्रु सूदन राम भरत बंधो। (वि० ३८)

सुमिर-(स० स्मरण)-१ यादकर, २ याद करो। सुमिरत-१ स्मरण करते ही, स्मरण करते हुए, २ स्मरण करता है। उ० १ सुमिरत सकट सोच विमोचन। (वि० ३०)

सुमिरन-सुमिरना, याद करना। सुमिरहिं-स्मरण करते हैं। सुमिरहीं-स्मरण करते हैं। सुमिरहु-याद करो। उ० हियँ सप्रेम सुमिरहु सब भरतहि। (मा० २।६६।४) सुमिरामि-स्मरण करता हूँ। सुमिरि-याद करके। उ० सुमिरि अवधपति। (मा० ४।१।३) सुमिरिवे-स्मरण करने। उ० साँकरे क सेइबे सराहिबे सुमिरिबे को। (क० ७।२२) सुमिरिये-याद कीजिए। सुमिरु-याद करो। सुमिरे-स्मरण करने से। उ० सुमिरे सहाय। (ह० ४४) सुमिरेसि-याद किया। सुमिरेसु-स्मरण करना। उ०सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोही। (मा० ७।८८।१) सुमिरेहु-याद करना। सुमिरौं-याद करता हूँ। उ० पद-सरोज सुमिरौं। (वि० १४१)

सुमुखि-१ सुंदर मुखवाली, सुंदरी, २ हे सुंदरी। उ० २ तस मैं सुमुखि सुनावउँ तोही। (मा० १।१२१।३)

सुमृति-(सं०स्मृति) स्मृति ग्रन्थ, धर्मशास्त्र। उ० सोधि सुमृति सब वेद पुराना। (मा० २।१००।२)

सुमेर-दे० 'सुमेरु'। उ० गिरि सुमेर उत्तर दिसि दूरी। (मा० ७।५६।४)

सुमेरु-(स०)-१ एक पर्वत, २ माले की बड़ी मनियाँ। उ० गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। (मा० ४।४।२)

सुमेरू-दे० 'सुमेरु'।

सुयोधन-(स०)-दुर्योधन। दे० 'सुजोधन'।

सुर-(स०)-देव, देवता। उ० सिद्ध सुर मुनि मनुज सेव्यमान। (वि० १०) सुरआपगा-गंगा नदी। सुरगाय-कामधेनु। सुरगुरु-बृहस्पति। उ० सुर गुरु सग पुरंदर जैसे। (मा० १।३०२।१) सुरतरु-कल्प वृक्ष। उ० जौ मन भयौ चहै हरि सुरतरु। (वि० २०५) सुरघालन-१ रावण, २ असुर। सुरधनु-इंद्र धनुष। सुरन-देवों, देवोंने। सुरन्ह-देवों ने, सुरगण। उ० सहे सुरन्ह बहु काल विषादा। (मा०२।२६४।३) सुरनदी-१ गंगा, २ आकाश गंगा। सुरनाथ-इंद्र। सुरनायक-इंद्र। सुरप-इंद्र। सुरपति-इंद्र। उ० तौ सुरपति कुरुराज वालि सों। (वि० ९७) सुरपाल-इंद्र। उ० भगत सिरोमनि भरत तें जनि डरपहु सुरपाल। (मा० २।२१४) सुरपुर-(स०)-१ स्वर्ग,२ इंद्र पुरी। उ०१ नरक परौ बरु सुरपुर जाऊ। (मा० २।९५।१) सुरवीथि-आकाश गंगा। उ० स्यामि सुरवि सुरबीथि विभागी। (मा० २।३२४।३) सुरवेलि-कल्पलता। उ०पुरी सुरबेलि केलि काटत किरात कलि। (क०७।१६६) सुरराज-(स०)-इंद्र। सुरराजु-दे० 'सुरराज। उ०रामु सनेह सकोच बस कह ससोच सुरराजु। (मा० २।२२१४) सुररूख-(स० सुर+वृक्ष)-कल्पवृक्ष। उ० निज संपति सुररूखमाए। (मा० १।२२०।२)

सुरति-(स० स्मृति)-याद, स्मरण। उ० गुरु के बचन सुरति करि रामचरन मन लाग। (मा० ७।११० क)

सुरधुनी-(स०)-गंगा। उ० भरत सभा सादर सनेह सुर-धुनी में। (क० ७।२१)
सुरभि-(स०)-१ सुगंध, २ चैत का महीना, ३ गाय, ४ सुंदर, ५ सुगंधित। उ० १ सुरभि पल्लव सो कटु किमि पावै। (वि० ११४) ३ स्याम सुरभि पय बिसद अति। (मा० १।१० ख) ५ सीतल मंद सुरभि बह बाऊ। (मा० १।१६१।२)
सुरभी-दे० 'सुरभि'।
सुरमनि-(स० सुर + मणि)-१ चिंतामणि, २ कौस्तुभ मणि। उ० १ परिहरि सुरमनि सुनाम गुंजा लखि लटत। (वि० १२६)
सुरस-(स० सु + रस)-रसीला और सुस्वादु। उ० कंद-मूल फल सुरस अति। (मा० ३।२४)
सुरसरि-(स०)-गंगा। उ० सुरसरि तरंग निर्मल। (वि० १७०) सुरसरिहीं-गंगा में।
सुरसरी-गंगा। उ० जयति जय सुरसरी जगदखिल पावनी। (वि० १८)
सुरसा-(स०)-एक प्रसिद्ध नागमाता, जिसने हनुमान को समुद्र पार करने के समय रोका था। उ० सुरसा नाम अहिन की माता। (मा० ५।२।१)
सुरा-(स०)-मदिरा, शराब। उ० असुर सुरा बिष संकरहि आपु रमा मनिचारु। (मा० १।१३६)
सुराई-(स० शूर)-वीरता, शूरता। उ० हमरे कुल इन पर न सुराई। (मा० १।२७३।३)
सुराती-(स० सु + रात्रि)-सुंदर रात, पूर्णमासी की रात। उ० ससि समाज मिलि मनहुँ सुराती। (मा० १।१२५।५)
सुरुचि-(स०)-१ अच्छी रुचि, २ राजा उत्तानपाद की छोटी स्त्री जिसके कारण वे ध्रुव का अनादर करते थे। उ० १ सुरुचि सुबास सरस अनुरागा। (मा० १।१।१) २ सुरुचि कह्यो सोइ सत्य तात। (वि० ८६)
सुरेश-(स०)-१ इंद्र, २ देवों के स्वामी।
सुरेस-दे० 'सुरेश'। उ० १ सुनिगति देखि सुरेस डेराना। (मा० १।१२५।३) सुरेसहि-इंद्र को। उ० देखि प्रभाउ सुरेसहि सोचू। (मा० २।२१७।४)
सुरेसा-दे० 'सुरेश'। उ० हिय हरषे तब सकल सुरेसा। (मा० १।१०१।२)
सुलगइ-(?)-जलती है, सुलगती है। उ० उर्वी अनल इव सुलगइ छाती। (मा० १।१६०।४)
सुलच्छन-१ अच्छे लक्षण का, २ दे० 'सुलच्छनि'। उ० २ सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी। (मा० १।६७।४)
सुलच्छनि-(स० सु + लक्षण)-अच्छे लक्षणों या गुणों वाली।
सुलभ-(स०)-सहज में मिलने योग्य। उ० सब बिधि सुलभ जपत जिसु नामू। (मा० १।११२।२)
सुलारि-(फ़ा० सुराख़)-छेद करके। उ० और भूप परखि सुलाखि तौलि ताइ लेत। (क० ७।२४)
सुलोचनि-सुंदर आँखोंवाली, सुंदरी। उ० बार बार मृदु राउ सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि। (मा० २।२५)
सुवन-(स० सुत)-पुत्र, लड़का। उ० सुवन स्वाद उपाद दिन दिन देवि अनहित हानि। (गी० ७।१२)
सुवरन-(सुवर्ण)-सोना, कंचन।
सुवार-दे० 'सुआर'।
सुशील-(स० सु + शील)-अच्छे स्वभाव का, शांत।
सुषमा-(स०)-सुंदरता। उ० नयन सुषमा निरखि नागरि सफल जीवन लेखु। (गी० ७।६)
सुषुप्ति-(स०)-जीव की चार अवस्थाओं में से एक।
सुषेण-(स०)-एक वानर जो वरुण का पुत्र, बालि का ससुर और सुग्रीव का वैद्य था।
सुसील-(स० सु + शील)-अच्छे स्वभाववाला। उ० सुंदर सहज सुसील सयानी। (मा० १।६७।१)
सुसीलता-अच्छा स्वभाव। उ० मुनि सुसीलता आपनि करनी। (मा० १।१२७।२)
सुसीला-दे० 'सुसील'।
सुँसीलु-दे० 'सुसील'। उ० समुझि सुमित्राँ रामसिय रूपु सुसीलु सुभाउ। (मा० २।७३)
सुसुकत-(अनु० सी सी)-सिसकी भरता है। उ० कछु न कहि सकत, सुसुकत सकुचत। (कृ० १७) सुसुकि-सिसकी भरकर। उ० सुसुकि सभीत सकुचि रूखे मुख। (कृ० ६)
सुहव-(?)-सूहा राग। उ० सारंग गुंड मलार सोरठ सुहव सुघरनि बाजहीं। (गी० ७।१६)
सुहाइ-(स० शोभा)-शोभित हो, अच्छा लगे। सुहाई-१ अच्छा लगनेवाला, २ अच्छा लगता है। उ० २ रूपरासि गुन सील सुहाई। (मा० २।५२।१) सुहाई-अच्छी लगी। सुहाउँगो-अच्छा लगूँगा। उ० ज्यों साहिबहि सुहाउँगो। (गी० ५।३०) सुहाए-अच्छा लगे, अच्छा लगते हैं। उ० बिनयी बिजयी रघुबीर सुहाए। (क० १।२२) सुहाती-अच्छी लगती। सुहान-अच्छी लगी, अच्छा लगा। सुहाना-अच्छा लगा। सुहाने-१ अच्छे, २ अच्छे लगे। सुहावा-अच्छा लगा, अच्छा लगता है। उ० आश्रम परम पुनीत सुहावा। (मा० १।१२५।१) सुहाहिं-अच्छे लगते हैं। सुहाहीं-अच्छे लगते हैं।
सुहावन-अच्छा, सुंदर। सुहावनि-अच्छी, सुंदर। उ० बह समीप सुरसरी सुहावनि। (मा० १।१२५।१)
सुहृद-(स० सुहृत्)-१ शुद्ध हृदयवाला, २ मित्र। उ० १ भूप सुहृद सो कपट सयाना। (मा० १।१६०।३) २ सब धन भवन सुहृद परिवारा। (मा० ५।४८)
सूकर-(स० शूकर)-१ वाराह अवतार, २ सूअर। उ० १ मीन कमठ सूकर नरहरी। (मा० ६।११०।४) २ सूकर स्वान सृगाल सरिस जन। (वि० १४०)
सूकरखेत-(स० शूकर + क्षेत्र)-एक पवित्र स्थान जो मथुरा जिले में है। सोरों। उ० मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत। (मा० १।३० क)
सूको-(स० शुष्क) सूख गया। उ० पिता भय साँसति सागर सूको। (क० ७।१०)
सूक्ष्म-(स०)-१ थोड़ा, अल्प, २ छोटा, ३ पतला।
सूख-(स० शुष्क)-१ सूखे, सूख जाय, २ सूख गया। उ० कटु सुख सुख बाम न बामी। (मा० २।५२।१) सूखत-१ सूख जाता है, २ सूखने के समय। उ० २ अनु जलचर गन सूखत पानी। (मा० २।५१।३) सूखहिं-सूखते हैं, सूख जाते हैं। सूखि-१ सूखकर, २ सूख

उ० २ सहसि सूखि सुनि सीतलि बानी। (मा० २।२४।१)
सूग-(?)-१ शंका, २ चिंता।
सूच-(सं० सूचना)-सूचना दे दी। उ० धन अहिवात सूच जनु भावी। (मा० २।२२।४) सूचत-सूचना होती है, सूचित करते हैं। सूचति-प्रकट करती है। उ०सूचति कटि केहरि गति मराल। (वि० १४)
सूचक-(सं०)-बतलानेवाला। उ० प्रभु प्रभाव सूचक मृदु बानी। (मा० १।२३८।४)
सूच्छम-(सं० सूक्ष्म)-दे० 'सूक्ष्म'।
सूझ-(?)-सूझना है। उ० सूझ जुआरिहि आपन दाऊ। (मा०२।२४८।१) सूझइ-सूझता है दिखाई देता है। उ० मोहिं अस सूझइ। (पा० ४०) सूझत-दिखाई देता है। सूझहि-दे० 'सूझइ'। उ० सूझत रंग हरो। (वि०२२६) सूझि-१ सूझकर, २ सूझने का भाव। सूझै-दिखाई पड़े, दिखाई पड़ता है। उ० नहिं सूझै कछु धमधूसर को। (क० ७।१०३)
सूत (१)-(सं०)-१ एक जाति, २ सारथी। उ० १ नट भाट मागध सूत जाचक। (जा० १८०) २ सूत वचन सुनतहि नरनाहू। (मा० २।१४३।३)
सूत (२)-(सं० सूत्र)-डोरा, तागा। उ० धर्यो सूत बिधि सुत बिचित्र मति। (गी० ७।१७)
सूत (३)-(सं० शयन)-सोता है। उ० जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना। (मा० ६।४०।३) सूतत-सोने से, सोकर। उ० सूतत जागू। (मा० ६।४६।४) सूतहिं-सोते हैं। उ० जेहि निसि सकल जीव सूतहिं। (वि०११६) सूता (१)-सोया। सूतिहौं-सोऊँगा। उ० पसारि पाँय सूतिहौं। (क० ७।६६)
सूता (२)-दे० 'सूत (१)' तथा 'सूत (२)'।
सूत्रधर-दे० 'सूत्रधार'। उ० राम सूत्रधर अंतरजामी। (मा० १।१०५।३)
सूत्रधार-(सं०)-प्रधान नट, नाटक का आरंभ में सामने वाला पात्र।
सूदन-(सं०)-नष्ट करनेवाला। उ० नय कबंध सूदन। (क० ७।११४)
सूदनु-दे० 'सूदन'।
सूद्यो-(सं० सूदन)-मारा, नष्ट किया। उ० ससि समर सूद्यो राहु। (गी० १।६४)
सूद्र-(सं० शूद्र)-अन्त्यज अछूत, हरिजन।
सूद्रु-दे० 'सूद्र'। उ० सोचिअ सूद्र बिप्र अवमानी। (मा० २।१७२।३)
सूध-(?)-सीधा, सरल। उ० सूध दूध मुख करिअ न कोहू। (मा० १।२७७।१) सूधिये-सीधे, साफ़ साफ़। उ० सूधिये कहतु हौं। (क०७।१६७) सूधी-सीधी, सरल, स्पष्ट। उ० सूधी करि पाई तू। (कृ० ८) सूधे-१ सीधे, सरल, २ शुद्ध। उ०२ सूधे मन सूधे बचन। (दो० १४२)
सूधो-दे० 'सूधे'। उ० १ सूधो सत भाय कहे मिटति मली मता। (वि० २६२)
सून-(सं० शून्य)-१ खाली, रिक्त, २ निर्जन, एकांत। उ० १ सूने परे सून से मनो मिटाए आँक के। (गी० १।६२)
सूना-(सं० शून्य)-१ खाली, रिक्त, २ शून्य, उजाड़।
सूने-दे० 'सूना'। उ० सूने सकल दसानन पारा। (मा० १।८२।४)
सूनु-(सं०)-पुत्र, बेटा। उ० राम की रजाय तें रसायनी समीर सूनु। (क० ५।२५)
सून्य-(सं० शून्य)-खाली, रिक्त। उ० सून्य भीति पर चित्र रंग नहिं। (वि० १११)
सूप (१)-(सं० शूर्प)-अनाज फटकने का पात्र। उ० भरि गे रतन पदारथ सूप हजार हो। (रा० १६)
सूप (२)-(सं०)-१ दाल, २ रसोई। उ० १ सूपोदन सुरभी सरपि। (मा० १।३२८) २ सूपसास्त्र जस कछु व्यवहारा। (मा० १।९९।२)
सूपकार-(सं०)-रसोइया, पाचक।
सूपकारी-दे० 'सूपकार'। उ० बोलि सूपकारी सब लीन्हें। (मा० १।३२८।४)
सूपनखा-(सं० शूर्पणखा)-एक राक्षसी जो रावण की बहन थी। उ० सूपनखा कुरूप कीन्ही। (गी० ७।३८)
सूपसास्त्र-(सं० सूपशास्त्र) खाना बनाने की विद्या। उ० दे० 'सूप (२)'।
सूर (१)-(सं०)-१ सूर्य, रवि, २ अंधा। उ० १ बिष्य की दवारि कैधौं कोटि सत सूर हैं। (क० ५।३)
सूर (२)-(सं० शूर)-वीर। उ० गरम गुनरासि सरबग्य सुकृती सूर। (वि०१०६) सूरनि-वीरों। उ० सूरनि उछाह कूर कादर डरत हैं। (क० ६।४६)
सूरति (१)-(सं० स्मृति)-याद, स्मरण। उ० भई है मगन नहिं तनिको सूरति। (गी० ५।४७)
सूरति (२)-(फा०)-१ शक्ल, रूप, २ सौंदर्य, ३ प्रकार। उ० २ शेष नहिं कहि सकत अंग अंग सूरति। (कृ० २८)
सूरा-दे० 'सूर'।
सूर्य-(सं०)-रवि, भास्कर।
सूल-(सं०)-१ दर्द, कष्ट, पीड़ा, २ त्रिशूल। उ० १ समय गये चित सूल भई। (कृ० २४) २ अनायास अनुकूल सूलधर। (गी० ५।२८)
सूलधर-(सं० शूलधर)-शंकर। उ० दे० 'सूल'।
सूलपानि-(सं० शूलपाणि)-शंकर।
सूला-दे०'सूल'। उ० १ मिटी मलिन मन कलपित सूला। (मा० २।२६७।१)
सूली-(सं० शूलिन्)-शंकर।
सृंखला-दे० 'शृंखला'।
सृंग-(सं० शृंग)-१ सींग, २ पर्वत-शिखर। उ० २ भुजा बिटप सिर सृंग समाना। (मा०६।६६।२) सृंगनि-सींगें चोटियाँ। सृंगहु-दे० 'सृंगनि'।
सृंगबेरपुर-दे० 'शृंगबेरपुर'। उ० सृंगबेरपुर पहुँचे जाई। (मा० २।८७।१)
सृंगार-(सं० शृंगार)-बनाव, शोभा।
सृंगी-(सं० शृंगी)-१ एक बाजा, २ एक ऋषि। उ० २ सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा। (मा० १।१८९।२)

सृजइ-(सं० सृजन)-बनाता है, उत्पन्न करता है। उ० तपबल तें जग सृजइ बिधाता। (मा०१।१६३।१) सृजत-बनाता है, रचता है। उ० सुभग सेज कत सृजत बिधाता। (मा०२।११६।४) सृजति-रचती है। सृजि-रचकर। उ० सृजि निज अस सुर तरु तुलसी कह अभिमत फरनि फरत को। (गी० ६।१२) सृजे-रचे, बनाये। सृजेउ-रचा, उत्पन्न किया। सृज्यो-रचा। उ० घोर हृदय कठोर करतब सृज्यो हौं बिधि बाँय। (गी० ७।३१)

सृष्टि-(सं०)-संसार, जगत। उ० मग्न जापक जाप्य सृष्टि स्रष्टा। (वि० ६३)

सेंत-(सं० सहति)-बिना मूल्य का, मुफ्त। सेंतिहुँ-मुफ्त भी। उ० कूर कुसाहिब सेंतिहुँ खारे। (क०७।१२)

सेंदुर-दे० 'सिंदुर'।

से-(सं०सम)-समान, तरह, सा। उ० रघुबर के से चरित। (वि० ११)

सेइ-(सं०सेवा)-सेवा करके, सेकर। उ० जाके चरन बिरंचि सेइ सिधि। (वि० ८६) सेइअहिं-सेवा करेंगे। सेइबे-सेवा करने। सेइय-सेइए। सेई-सेवा की है। उ० नाहिन साधु सभा जेहि सेई। (मा० २।२२३।४) सेए-१ सेवा की २ सेवा करने से। उ० १ सेए सीताराम नहिं। सेयो-सेवा की। (दो० ६६)

सेख-(सं० शेष)-सर्पराज।

सेखु-दे० 'सेख'। उ० निगम सेखु सुक संकर भारति। (गी० ७।१६)

सेज-(सं० शय्या)-सेज, पलंग। उ० जौं अहि सेज सयन हरि करहीं। (मा० १।६६।३)

सेत-(सं० श्वेत)-सफ़ेद, धवल। उ० मन मेचक तनु सेत। (वि० १६०)

सेतु-(सं०)-१ पुल, २ मर्यादा। उ० १ सेतु भवसागर को हेतु सुख सार को। (वि० ६६)

सेतुबंध-(सं०)-१ एक तीर्थ जिसे राम ने बनाया था। २ सेतु का बनाना। उ० २ कृत सेतुबंध बारिधि-दमन। (क० ७।११४)

सेतू-दे० सेतु'।

सेन (१)-दे० 'श्येन'। उ० बिबिध चितवृत्ति खग निकर सेनोलूक काक बक गृध्र आमिष अहारी। (वि० ५१)

सेन-(सं० सेना)-फ़ौज। उ० हिय हरषे सुरसेन निहारी। (मा० १।६५।२)

सेनप-(सं०) सेनापति। उ० सेवक सेनप सचिव सब। (मा० २।२४२)

सेना-(सं०)-फ़ौज। उ० जातुधान सेना सब मारी। (मा० ४।११।२)

सेनापति-(सं०)-फ़ौज का मालिक। उ० जथा जोग सेना पति कीन्हे। (मा० ६।३६।३)

सेनानी-(सं०)-सेनापति।

सेमर-(सं० शाल्मलि) एक वृक्ष या उसका फूल। इसके फल के सौंदर्य को देखकर तोता उस पर चोंच मारता है पर उसमें रुई देखकर निराश हो जाता है। उ० चमत बिनहिं पास सेमर-सुमन आस। (वि० १६०)



सेर-(सं० सेटक)-एक तौल। १६ छटाँक। उ० कहिय सुमेरु कि सेर सम। (मा० २।२८८)

सेल (१)-(सं० शल)-भाला, बरछा, साँग। उ० फरसा बाँस सेल सम करहीं। (मा० २।१९१।३)

सेल (२)-(?)-साफा।

सेला (१)-दे० 'सेल (१)' उ० १ सनमुख राम सहेउ सो सेला। (मा० ६।६७।१)

सेला (२)-दे० 'सेल (२)'।

सेल्ही-दे० सेल (२)'। उ० आँतनि की सेल्ही बाँधे। (क० ६।५०)

सेव-सेवा करते हैं, सेवा करती है। उ० अधम सो नारि जो सेव न तेही। (मा० ३।५।३) सेवइ-सेवा करती है, सेवा करता है। सेवउँ-सेवा करूँ। सेवत-सेवा करते हैं। उ० सेवत सुरपुर बासी। (वि० २२) सेवतहूँ-सेवा करने पर भी। सेवहिं-१ सेवा करते हैं, २ सेवन करते हैं, ३ खाते हैं। उ० ३ पल्लवन लगे सुचार बिबुध जन सेवहिं। (पा० १५३) सेवहि-सेवा कर। उ० सेवहि तजे अपनपौ चेते। (वि० १२६) सेवहु-सेवा करो। उ० सेवहु सिव चरनसरोज। (वि० १३) सेवि-१ सेवनीय, २ सेवित, ३ सेवा करके।

सेवक-(सं०)-नौकर, दास। उ० सेवक सकुच सोच उर अपने। (मा० २।२६६।३) सेवकनि-सेवकों, सेवकों को, सेवकों ने। सेवकन्ह-दे०'सेवकनि'। सेवकहिं-सेवक को। सेवकहि-सेवक पर। उ० को साहिब सेवकहि नेवाजी। (मा० २।२६६।३) सेवकि-सेविका, नौकरानी। उ० सेवकि जासु रमा घर की। (क० ७।२७)

सेवकाइ-१ (सं० सेवक)-नौकरी, चाकरी, २ उपासना, सेवा। उ० २ करि पूजा सब बिधि सेवकाई। (मा० १।२१७।४)

सेवकिनी-दासियाँ। उ० जद्यपि गृहँ सेवक सेवकिनी। (मा० ७।२४।३)

सेवकी-दासी। उ० हय गय सुसेवक सेवकी। (पा० १४७)

सेवकु-दे० 'सेवक'।

सेवा-(सं०)-१ नौकरी, टहल, चाकरी, २ उपासना। उ० १ ऐसेहु साहब की सेवा सों होत चोर रे। (वि० ७१) २ कर मुनि मनुज सुरासुर सेवा। (वि० २)

सेवार-(सं० शैवाल)-एक घास। उ० सपुरु भेक सेवार समाना। (मा० १।३८।२)

सेवाल-दे० 'सेवार'।

सेवित-दे० 'सेवित'। सेवित-(सं०)-सेवा किया गया। उ० सिद्ध सुर वृंद योगींद्र सेवित सदा। (वि० २१)

सेवी-(सं०सेविन्) १ दास, २ पुजारी, भक्त। उ० १ गुन गुरु बिप्र धेनु सुर सेवी। (मा० १।२४४।२)

सेव्य-उपासना या सेवा करने योग्य को। उ० ब्रह्मा-शम्भु-फणीन्द्र सेव्यमनिशं। (मा० ५।१।श्लो० १)

सेव्य-(सं०)-सेवा करने योग्य,उपासना करने योग्य। उ० सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि। (मा० ७।११९ क)

सेव्यमान-सेवित, सेवा किये गए। उ० सिद्ध सुर मुनि मनुज सेव्यमानं। (वि० १०)

सेष-(स० शेष) १ बाकी, शेष, २ सर्पराज, ३ थोड़ा, न्यून। उ० १ सप्त सप्त तजि सेष को। (प्र० १) २ जिनके विमल विवेक सेस महेस न कहि सकत। (वै० ३४) सेषसयन-(स० शेष+शयन)-विष्णु।
सेषा-दे० 'सेष'।
सेषु-दे० 'सेष'।
सेस-दे०-'सेष'।
सेसू-दे० 'सेष'। उ० २ सकल धरम धरनीधर सेसू। (मा० (२।३०६।१)
सैं-(प्रा० संतो)-से। उ० करम कवन विधि रिपु सैं जूझा। (मा० ६।८८।४)
सैंतति-(स० सचय)-भर भर कर रख छोड़ती है। उ० लेत भरि भरि अंक सैंतति। (गी० १।२५)
सै-(स० शत)-सौ। उ० सवत सोरह सै एकतीसा। (मा० १। ३४।२)
सैन (१)-(स० संज्ञपन)-इशारा, संकेत। उ० बरज्यौ प्रिय बधु नयन की सैन। (गी० १।८७) सैनहिं-इशारे से। उ० सैनहिं कह्यो चलहु सजि सैन। (गी० ५।२१)
सैन (२)-(स० शयन)-सोना। उ० सैन किए देखा कपि तेही। (मा० ५।४।४)
सैन्य-(स०)-सेना, कटक।
सैना-दे० 'सेना'।
सैयाँ-(स० स्वामी)-पति, मालिक, राजा। उ० बरसत सुमन सहित सुरसैयाँ। (कृ० १६)
सैल-दे० 'शैल'। उ० समर सैल-सकास रिपु त्रासकारी। (वि० ५०)
सैलकुमारी-(स० शैलकुमारी)-पार्वती। उ० बोले मुनि सुनु सैलकुमारी। (मा० १।७८।१)
सैलजहि-पार्वती को। उ० जाइ बियाहहु सैलजहि। (मा० १।७६) सैलजा-(स० शैलजा)-पार्वती।
सैलनंदिनि-(स० शैल+नंदिनी)-पार्वती। उ० अनिमादि सारद सैलनंदिनि। (गी० १।५)
सैलराज-(स० शैलराज) हिमालय पर्वत। उ० सैलराज बड़ आदर कीन्हा। (मा० १।६६।२)
सैला-दे० 'सैल'। उ० मार्गों तुरत तजौं यह सैला। (मा० ४।१।२)
सैवल-(स० शैवाल)-पानी की एक घास। उ० रोम राजि सैवल छबि पावति। (गी० ७।१७)
सैसव-(स० शैशव)-शिशुता, लड़कपन, ५ से १० वर्ष की उम्र। उ० कौमार सैसव अरु किसोर। (वि० १३६)
सों (१)-(प्रा० सुंतो)-द्वारा, से। उ० सोनित सों सानि सानि। (क० ६।२०)
सों (२)-(स० सम)-समान। उ० समरथ कोउ न राम सों। (दो० ४४८)
सोंधे-(स० सुगंध)-अच्छे, सोंधा महँकते हुए। उ० स्वात सुनसात सोंधे दूध की मलाई है। (क० ७।७४)
सौंही (१)-(स० सम्मुख)-सामने, आगे, प्रत्यक्ष।
सोंही (२)-स शोभा)-सुंदर लगते हैं।
सो (१)-(स० सः)-१ वह, वही, २ वैसी। उ० १ सो बल गयो किधौं भए अब गर्ब गहीले। (वि० ३२)
सो (२) (?)-इस कारण से। उ० सायक है भृगुनायक सो धनु। (क० १।२२)
सो (३)-(स० सम)-समान, तरह। उ० मनियत महामुनी सो। (क० ७।७२)
सोआइहौं-(स० शयन)-सुलाऊँगा, सुलाऊँगी। उ० सब सुमुख सोआइहौं। (गी० १।१८)
सोइ (१)-(स० सः)-वही। उ० सोइ कछु करहु मदन मद मोचन। (मा० १।८६।३)
सोइ(२)-(स० शयन) सोकर। सोइबो-१ सोना, २ सोओगे। उ० १ सोइबो जो राम के सनेह की। (क० ७।८३) सोइये-सो जाइए। उ० सोइये लाल लाड़िले रघुराइ। (गी० १।१६) सोइहै-सोवेगा। सोइहौं-सोऊँगा। सोई (१)-सो गई। सोउ-सो आओ। सोए-१ सो गए, २ सोते हुए, ३ सोने में। उ० ३ बैठे-उठे जागत बागत सोए सपने। (क० ७।७८) सोय-सोकर। सोयो-सोया, सोता रहा। उ० मोहमय कुहू निसा बिसाल काल विपुल सोयो। (वि० ७४) सोव-सोता। उ० सो किमि सोव सोच अधिकाई। (मा० १।१७०।१) सोवइ-सोता है। सोवत-१ सोया हुआ, सोते, २ सोते समय। उ० २ अब सब सोवत सोचु नहिं भीख मागि भव खाहिं। (मा० १।७१) २ सोवत सपनेहु सहै ससृति सताप रे। (वि० ७३) सोवतहि-सोते ही में। उ० पहुँचे हरैं सोव तहि निकेता। (१।१६३।४)
सोइ (२)-(स० स )-वही। उ० सोई सेंवर तेइ सुवा। (दो० २५६)
सोउ-(२)-(स० स )-वह भी। उ० तुलसी साज राख्यो सोउ। (वि० २१४)
सोऊ-(२)-(स० सः)-वह भी। उ० राख्यो सरन सोऊ। (वि० १०६)
सोक-(स० शोक)-रज, गम, क्षोभ। उ० समनि सोक सताप पाप रुज। (वि० २२)
सोकहत-(स० शोकहत)-शोक का मारा हुआ। उ० सकल लोक अवलोकि सोकहत सरन गए भय हारी। (वि० १६६)
सोका-दे० 'सोक'।
सोकु-दे० 'सोक'।
सोकू-दे० 'सोक'।
सोख-(स० शोषण) सोखने या सुखानेवाला। उ० भव हित सोनित सोख सो। (दो० ४००)
सोखइ-(स० शोषण)-१ सोखता है, २ सुखाता है। सोखउँ-सोखूँ, सोख लूँ। सोखा-सोख लिया। सोखि-सोखकर। उ० सोखि के खेत के बाँधि सेतु करि उतरिबो उदधि न बोहित चहिया। (गी० ५।१४) सोखि-सोख लिये। उ० पुरपति सागर सखे सने घर मोरे। (गी० ५।१२) सोखेउ-सोखे, सोख लिए।
सोग-(स० शोक)-दुःख, चिंता, शोक। उ० जागे भोगी भोग ही, बियोगी रोगी सोग बस। (क० ७।१०४)
सोच-(स० शोच)-१ चिंता, फिक्र, २ ध्यान, ख्याल, ३ सोचने का भाव। उ० १ सोच सहित परिवार बिदह महीपहि। (जा० १११)

सोचइ-(स० शोच) सोचता है। सोचत-१ सोचते हैं, २ सोचते हुए, चिंता करते हुए। उ० सोचत बंधु समेत प्रभु। (दो० २२७) २ सोचत भरतहि रैनि बिहानी। (मा० २।२४३।४) सोचति-१ सोचते हुए, २ सोचती है। सोचतु-सोचते हैं। उ० कुलगुरु सचिव साधु सोचतु बिधि को न बसाइ उजारो ? (गी० २।६६) सोचन-१ सोचने की क्रिया, सोचना, २ सोचने। उ० २ तनु धरि सोच लागु जनु सोचन। (मा० २।२१४) सोचनि-१ 'सोच' का बहुवचन, सोचों को चिंताओं को, २ सोचने का भाव। उ० १ सोचनि सोचनि वेद बखानी। (गी० ६।२०) सोचहिं-सोचते हैं। सोचहि-१ सोचता है, २ ध्यान रखता है। उ०१ तथा२ जो सोचहि ससिकलहि सो सोचहि रौरेहि। (पा०६१) सोचहीं-सोचती हैं। उ०छिनु छिनु निरखि रामहिं सोचहीं। (जा० ६०) सोचा-१ दे० 'सोच',२ सोच किया, चिंता की,३ विचारा। सोचि-सोच कर। सोचिअ-१ सोचिए,समझिए,२ सोच करना चाहिए। उ०१ सब बिधि सोचिय पर अपकारी। (मा० २।१७३।२)

सोचनीय-सोचने योग्य, विचारने योग्य। उ० सोचनीय सब ही बिधि सोइ। (मा० २।१७३।२)

सोचाई-(स० शोच)-विचार कराया, गौर कराया। उ० सुदिनु सुनखतु सुघरी सोचाइ। (मा० १।६१।२)

सोचु-दे० सोच'।

सोचू-दे० 'सोच'। उ० १ सो सुनि भयउ भूप उर सोचू। (मा० २।४०।४)

सोदर-(स०सहोदर) सहोदर, एक माँ-बाप के लड़के।

सोध-(स० शोध)-१ खोज, तलाश, २ तलाश करना। उ० १ सीय सोध कपि भालु सब। (प्र० ३।६।३) सोधा-खोजा, छान डाला। उ० तात धरम मतु तुम सबु सोधा। (मा० २।६४।१) सोधि-खोजकर, ढूँढ़कर, देखवाकर। उ० सुदिन सोधि सब साज सजाई। (मा०२।३१४) सोधिय-देखो। उ० आगे करि मधुकर मधुरा कहँ सोधिय सुदिन सयानी। (कृ०४१) सोधेउँ-खोज डाला, खोजा। उ० सोधेउँ सकल बिस्व मन माहीं। (मा० २।२१२।१) सोध्यो-शोध दिया, शुद्ध कर दिया। उ० अजनीकुमार सोध्यो रामपानि पाक हैं। (ह० ४०)

सोधक-(स० शोधक)-शोध करनेवाला। उ० चोरी अना यास, साधु सोधक अपान को। (गी० १।८६)

सोधाइ-(स० शोध)-ठीक कराकर, विचार द्वारा निश्चित कराकर। उ०मुख पाइ बात चलाइ सुदिनु सोधाइ गिरिहि सिखाइ कै। (पा० ६२) सोधाए-देखवाया, शोधवाया। उ०नामकरन रघुबरनि के नृप सुदिन सोधाए। (गी०१।६)

सोधु-(स० शोध)-१ पता, २ पता लगानेवाले। उ० १ अब लगि नहिं सिय सोधु लह्यो है। (गी० ४।२)

सोधें (१) (स० सुगंध)-अनेक प्रकार की सुगंधित वस्तुएँ।

सोधें (२) (स० शोध)-रास्ता।

सोन (१)-(स० शोणभद्र)-सोन नदी।

सोन (२)-(स० शोण)-लाल, रक्तवर्ण। उ० सुभग सोन सरसीरुह लोचन। (मा० १।२१४।२)

सोन (३)-(स० स्वर्ण) सोना, सुवर्ण, कंचन। उ० सान सुगंध सुधा ससि सारू। (मा० २।२८८।१)

सोना-दे०'सोन (२)'। उ० मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना। (मा० १।३२४८।१)

सोनित-(स० शोणित)-खून, रुधिर। उ० बमन सकल सोनित-समल। (प्र० ३।२।२)

सोने-(स०स्वर्ण) सोना, स्वर्ण। उ० इन्ह तें लही दुति मरकत सोने। (मा० २।११६।४)

सोनो-(स० स्वर्ण)-सोना, सुवर्ण। उ० गोरे को बरन देखे सोनो न सलोनो लागै। (क० २।१६)

सोपान-(स०)-सीढ़ी, नसेनी। उ० विष्णु सिवलोक-सोपान सम सर्वदा बदति तुलसीदास बिसद बानी। (वि० ४६)

सोपाना-दे०'सोपान'। उ० एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना। (मा० ७।१२६।२)

सोपि-वह ही, वह भी। उ० सो दासी रघुबीर कै समुझें मिथ्या सोपि। (मा० ७।७१ ख)

सोभ-(स० शोभा)-शोभायमान।

सोभत-शोभित होता है। उ० सोभत लखि बिधु बदत जिमि। (मा० २।७) सोभति-शोभायमान होती है। सोभिहैं-शोभायमान होंगे। उ० अनुज सहित सोभिहैं कपिन महँ। (गी० ५।२०)

सोभा-(स० शोभा)-सौंदर्य, शोभा। उ० पुर सोभा अब लोकि सुहाई। (मा० १।६४।४)

सोभित-(स० शोभित)-शोभित, सुशोभित। उ० पुरजन पूजोपहार सोभित ससि धवल धार। (वि० १७)

सोम-(स०)-१ चंद्रमा, २ अमृत, ३ एक प्रकार का यज्ञ, ४ एक लता जिसके रस का पहले पान किया जाता था। उ० १ राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम। (मा० ३।४२ क) ३ कौन धौं सोमजाजी अजामिल अधम। (वि० १०६)

सोमदिन-सोमवार, चंद्रवार। उ० राम अनुग्रह सोमदिन, प्रमुदित प्रजा सुराज। (प्र० ७।१।४)

सोय-(स०स ) वह, वही।

सोर-(फा० शोर)-शोर हल्ला। उ० धायौ धायौ धायौ सोई बानर बहोरि भयो सोर चहुँ ओर। (क० ६।१)

सोरठ-(स० सौराष्ट्र)-एक राग। उ० सारंग गुड मलार सोरठ सुहव सुघरनि बाजहीं। (गी० ७।१८)

सोरठा-(स० सौराष्ट्र)-४८ मात्राओं का एक छंद जो अपने स्वरूप में दोहे का उलटा होता है। उ० छंद सोरठा सुंदर दोहा। (मा० १।३७।३)

सोरह-(स० षोडश)-सोलह। उ० सोरह भाँति पूजि सन-माने। (मा० २।६।२)

सोरा-दे० 'सोर'। उ० रिपुदल बधिर भयउ सुनि सोरा। (मा० ६।६८।१)

सोरु-दे० 'सोर'।

सोरू-दे०'सोर'। उ० गे रघुनाथ भयउ अति सोरू। (मा० २।८६।१)

सोवनिहारा-सोनेवाला। उ० मोह निसाँ प्रिय सोवनिहारा। (मा० २।९३।१)

सोष (स० शोषण)-सोखनेवाला। उ० अनहित सोनित सोष सो, सोहित सोपनहार। (दो० ४००)

सेष-(स० शेष) १ बाकी, शेष, २ सर्पराज, ३ थोड़ा, न्यून। उ० १ सप्त सप्त तजि सेष को। (प्र० १) २ जाके बिमल बिवेक सेस महेस न कहि सकत। (वै० ३४) सेषसयन-(स० शेष+शयन)-विष्णु।

सेषा-दे० 'सेष'।

सेषु-दे० 'सेष'।

सेस-दे०-'सेष'।

सेसू-दे० 'सेष'। उ० २ सकल धरम धरनीधर सेसू। (मा० (२।३०६।१)

सैं-(प्रा० संतो)-से। उ० करब कवन बिधि रिपु सैं जूझा। (मा० ६।८।४)

सैंतति-(स० सचय)-भर भर कर रख छोड़ती है। उ० लेत भरि भरि अक सैंतति। (गी० १।२१)

सै-(स० शत)-सौ। उ० सवत सोरह सै एकतीसा। (मा० १।३४।२)

सैन (१)-(स० सज्ञपन)-इशारा, सकेत। उ० बरज्यो प्रिय यहु नयन की सैन। (गी० १।८७) सैनहिं-इशारे मे। उ० सैनहिं कह्या चलहु सजि सैन। (गी० ५।२१)

सैन (२)-(स० शयन)-सोना। उ० सैन किए देखा कपि तेही। (मा० ५।५।४)

सैन्य-(स०)-सेना, कटक।

सैना-दे० 'सना'।

सैयाँ-(स० स्वामी)-पति, मालिक, राजा। उ० बरसत सुमन सहित सुरसैयाँ। (कृ० १९)

सैल-दे० 'शैल'। उ० समर सैल-सकाम रिपु त्रासकारी। (वि० ४०)

सैलकुमारी-(स० शैलकुमारी)-पार्वती। उ० बोले मुनि सुनु सैलकुमारी। (मा० १।७८।१)

सैलजहि-पार्वती को। उ० जाइ बियाहहु सैलजहि। (मा० १।७६) सैलजा-(स० शैलजा)-पार्वती।

सैलनंदिनि-(स० शैल+नदिनी)-पार्वती। उ० अनिमादि सारद सैलनदिनि। (गी० १।५)

सैलराज-(स० शैलराज) हिमालय पर्वत। उ० सैलराज बड़ आदर कीन्हा। (मा० १।६६।२)

सैला-दे० 'सैल'। उ० मागों तुरत तजौं यह सैला। (मा० ४।१।३)

सैवल-(स० शैवाल)-पानी की एक घास। उ० रोम राजि सैवल छबि पावति। (गी० ७।१७)

सैसव-(स० शैशव)-शिशुता, लड़कपन, ५ से १० वर्ष की उम्र। उ० कौमार सैसव अरु किसार। (वि० १३६)

सों (१)-(प्रा० सुंतो)-द्वारा, से। उ० सोनित सों सानि सानि। (क० ६।४०)

सों (२)-(स० सम)-समान। उ० समरथ कोउ न राम सों। (दो० ४४८)

सोंधे-(स० सुगंध)-अच्छे, सोंधा महँकते हुए। उ० सास सुनमात सोंधे दूध की मलाई है। (क० ७।७४)

सोंही (१)-(स० सम्मुख)-सामने, आगे, प्रत्यक्ष।

सोंही (२)-(स० शोभा)-सुंदर लगते हैं।

सो (१)-(स० स )-१ वह, वही, २ वैसी। उ० १ सो मन गयो किधौं भये सब गये गहीले। (वि० ३२)

सो (२) (?)-इस कारण से। उ० सायक है मृगुनायक सो धनु। (क० १।२२)

सो (३)-(स० सम)-समान, सरह। उ० मनियत महामुनी सो। (क० ७।७२)

सोआइहौं-(स० शयन)-सुलाऊँगा, सुलाऊँगी। उ० सब सुमुख सोआइहौं। (गी० १।१८)

सोइ (१)-(स० स )-वही। उ० सोइ कछु करहु मदन मद मोचन। (मा० १।८६।३)

सोइ(२)-(स० शयन) सोकर। सोइयो-१ सोना, २ सोओगे। उ० १ सोइयो जो राम के सनेह की। (क० ७।८३) सोइये-सो जाइए। उ० सोइये लाल लाडिले रघुराई। (गी०१।१६) सोइहै-सोवेगा। सोइहौं-सोऊँगा। सोई (१)-सो गई। सोउ-सो जाओ। सोए-१ सो गए, २ सोते हुए ३ सोने में। उ० ३ बैठे-उठे जागत बागत सोए सपने। (क० ७।०८) सोय-सोकर। सोयो-सोया, सोता रहा। उ० मोहमय कुहू-निसा बिसाल काल बिपुल सोयो। (वि० ७४) सोव-सोता। उ० सो किमि सोव सोच अधिकाई। (मा० १।१७०।१) सोवइ-सोता है। सोवत-१ सोया हुआ सोते, २ सोते समय। उ० २ श्रय सब सोवत सोचु नहिं भीख मागि भव खाहिं। (मा० १।७१) २ सावत सपनेहु सहै ससृति सताप रे। (वि० ७३) सोवतहिं-सोते ही में। उ० पहुँचे दुइ सोच सहि नियेता। (१।१६३।४)

सोई (२)-(स० सः)-वही। उ० सोई सँवर तेइ सुवा। (दो० २४६)

सोउ-(२)-(स० सः)-वह भी। उ० तुलसी साम राख्यो सोउ। (वि० २१४)

सोऊ-(२)-(स० सः)-वह भी। उ० राख्यो सरन सोऊ। (वि० १०६)

सोक-(स० शोक)-रज, गम, क्षोभ। उ० समनि सोक सताप पाप रुज। (वि० ३२)

सोकहत-(स० शोकहत)-शोक का मारा हुआ। उ० सकल लोक अवलोकि सोकहत सरन गए भय हारी। (वि० १६६)

सोका-दे० 'सोक'।

सोकु-दे० 'सोक'।

सोकू-दे० 'सोक'।

सोख-(स० शोषण)-सोखने या सुखानेवाला। उ० भ्रम हित सोनित सोख सो। (दो० ५००)

सोखइ-(स० शोषण)-१ सोखता है, २ सुखाता है। सोखि-सोखकर-सोखूँ, सोख लूँ। सोखा-सोख लिया। सोखि-सोखकर। उ० साखि के सेतु कै बाँधि सेतु करि उतरिबो उदधि न बोहित चहियो। (गी० ५।१४) सोखे-सोख लिये। उ० पुरपनि सागर सबै सूखे भए सोखे। (गी० ५।१२) सोखेउ-सोखे, सोख लिए।

सोग-(स० शोक)-दुःख, चिंता, शोक। उ० आगे भोगी भोग ही, वियोगी रोगी सोग बस। (क० ७।१०४)

सोच-(स० शोच)-१ चिंता, फिक्र, २ ध्यान, ख्याल, ३ सोचने का भाव। उ० १ सोच सहित परिवार बिदह महीपहिं। (जा० १११)

सोचइ-(स० शोच)-सोचता है। सोचत-१ सोचते हैं, २ सोचते हुए, चिंता करते हुए। उ० सोचत बंधु समेत प्रभु। (दो० २२७) २ सोचत भरतहि रैनि बिहानी। (मा० २।२२३।४) सोचति-१ सोचते हुए, २ सोचती है। सोचतु-सोचते हैं। उ० कुलगुरु सचिव साधु सोचतु बिधि को न बसाइ उजारो? (गी० २।६६) सोचन-१ सोचने की क्रिया, सोचना, २ सोचने। उ० २ तनु धरि सोच लाग जनु सोचन। (मा० २।२८४।४) सोचनि-१ 'सोच' का बहुवचन, सोचों को चिंताओं को, २ सोचने का भाव। उ० १ मोचनि सोचनि बेद बखानी। (गी० ६।२०) सोचहिं-सोचते हैं। सोचहि-१ सोचता है, २ ध्यान रखता है। उ०१ तथा२ जो सोचहि ससिकलहि सो सोचहि रौरहि। (पा०६१) सोचहीं-सोचती हैं। उ०छिनु छिनु निरखि रामहिं सोचहीं। (जा० ६०) सोचा-१ दे० 'सोच',२ सोच किया, चिंता की,३ विचारा। सोचि-सोच कर। सोचिअ-१ सोचिए, समझिए,२ सोच करना चाहिए। उ०१ सब बिधि सोचिअ पर अपकारी। (मा० २।१७३।२)

सोचनीय-सोचने योग्य, विचारने योग्य। उ० सोचनीय सब ही बिधि सोई। (मा० २।१७३।२)

सोचाई-(स० शोच)-विचार कराया, गौर कराया। उ० सुदिनु सुमंगलु सुधरी सोचाइ। (मा० १।६१।२)

सोचु-दे० 'सोच'।

सोचू-दे० 'सोच'। उ० १ सो सुनि भयउ भूप उर सोचू। (मा० २।४०।४)

सोदर-(स०सहोदर) सहोदर, एक माँ-बाप के लड़के।

सोध-(स० शोध)-१ खोज, तलाश, २ तलाश करना। उ० १ सीय सोध कपि भालु सब। (प्र० ३।६।३) सोधा-खोजा, छान डाला। उ० तात धरम मतु तुम सबु सोधा। (मा० २।६२।१) सोधि-खोजकर, ढूँढ़कर, देखभालकर। उ० सुदिन सोधि सब साज सजाई। (मा०२।३१।४) सोधिय-देखो। उ० आगे करि मधुकर मधुरा कहँ सोधिय सुदिन सयानी। (कृ०४१) सोधेउँ-खोज डाला, खोजा। उ० सोधेउँ सकल बिस्व मन माहीं। (मा० २।२१२।१) सोध्यो-शोध दिया, शुद्ध कर दिया। उ० अजनीकुमार सोध्यो रामपानि पाक हैं। (ह० ४०)

सोधक-(स० शोधक) शोध करनेवाला। उ० छोरी अना यास, साधु सोधक अपान को। (गी० १।८६)

सोधाइ-(सं० शोध)-ठीक कराकर, विचार द्वारा निश्चित कराकर। उ०सुख पाइ बात चलाइ सुदिनु सोधाइ गिरिहि सिखाइ कै। (पा० ४२) सोधाए-दिखवाया, शोधवाया। उ०नामकरन रघुबरनि के नृप सुदिन सोधाए। (गी०१।६)

सोधु-(स० शोध)-१ पता, २ पता लगानेवाले। उ० १ अब लगि नहिं सिय सोधु लह्यो है। (गी० ४।२)

सोधैं (१) (स० सुगंध)-अनेक प्रकार की सुगंधित वस्तुएँ।

सोधै (२)-(स० शोध)-रास्ता।

सोन (१)-(स० शोणभद्र)-सोन नदी।

सोन (२)-(स० शोण)-लाल, रक्तवर्ण। उ० सुभग सोन सरसीरुह लोचन। (मा० १।२१४।३)

सोन (३)-(स० स्वर्ण) सोना, सुवर्ण, कंचन। उ० सोन सुगंध सुधा ससि सारू। (मा० २।२८८।१)

सोना-दे०'सोन (२)'। उ० मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना। (मा० १।३२८।१)

सोनित-(स० शोणित)-खून, रुधिर। उ० बमन सकल सोनित-समल। (प्र० ३।२।२)

सोने-(स०स्वर्ण) सोना, स्वर्ण। उ० इन्द्र तें लही दुति मरकत सोने। (मा० २।११६।४)

सोनो-(स० स्वर्ण)-सोना, सुवर्ण। उ० गोरे को बरन देखे सोनो न सलोनो लागै। (क० २।१६)

सोपान-(स०)-सीढ़ी, नसेनी। उ० विष्णु सिवलोक-सोपान सम सर्वदा बदति तुलसीदास बिसद बानी। (वि० ४६)

सोपाना-दे०'सोपान'। उ० एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना। (मा० ७।१२६।२)

सोपि-वह ही, वह भी। उ० सो दासी रघुबीर कै समुझें मिथ्या सोपि। (मा० ७।७१ ख)

सोभ-(स० शोभा)-शोभायमान।

सोभत-शोभित होता है। उ० सोभत लखि बिधु बढ़त जिमि। (मा० २।७) सोभति-शोभायमान होती है। सोभिहैं-शोभायमान होंगे। उ० मनुज सहित सोभिहैं कपिन महँ। (गी० ५।२०)

सोभा-(स० शोभा)-सौंदर्य, शोभा। उ० पुर सोभा अव लोकि सुहाई। (मा० १।६४।४)

सोभित-(स० शोभित)-शोभित, सुशोभित। उ० पुरजा पूजोपहार सोभित ससि धवल धार। (वि० १७)

सोम-(स०)-१ चंद्रमा, २ अमृत, ३ एक प्रकार का यज्ञ, ४ एक लता जिसके रस का पहले पान किया जाता था। उ० १ राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम। (मा० ३।४२ क) ३ कौन धौं सोमजाजी अजामिल अधम। (वि० १०६)

सोमदिन-सोमवार, चंद्रवार। उ० राम चतुमह सोमदिन, प्रमुदित प्रजा सुराज। (प्र० ७।१।४)

सोय-(स०स ) वह, वही।

सोर-(फा० शोर)-शोर, हल्ला। उ० आयो आयो आयो सोई बानर बहोरि भयो सोर चहुँ ओर। (क० ६।६)

सोरठ-(सं० सौराष्ट्र)-एक राग। उ० सारंग गुंड मलार सोरठ सुहव सुघरनि बाजहीं। (गी० ७।१६)

सोरठा-(स० सौराष्ट्र)-४८ मात्राओं का एक छंद जो अपने स्वरूप में दोहे का उलटा होता है। उ० छंद सोरठा सुंदर दोहा। (मा० १।३७।३)

सोरह-(स० षोडश)-सोलह। उ० सोरह भाँति पूजि सन माने। (मा० २।६।२)

सोरा-दे० 'सोर'। उ० रिपुदल बधिर भयउ सुनि सोरा। (मा० ६।६८।१)

सोरु-दे० 'सोर'।

सोरू-दे०'सोर'। उ० गे रघुनाथ भयउ अति सोरू। (मा० २।८६।१)

सोवनिहारा-सोनेवाला। उ० मोह निसाँ सबु सोवनिहारा। (मा० २।६३।१)

सोष-(स० शोषक)-सोखनेवाला। उ० अनहित सोनित सोष सो, सो हित सोषनहार। (दो० ४००)

सोपक-(स०शोषक)-सोखनेवाला। उ०सोपक भानु कृसानु महि पवन एक घन दानि। (दो० ३४६)
सोपनहार-सोखनेवाला। उ० दे० 'सोष'।
सोषहिं-(स० शोषण)-सोखते हैं। सोषिहैं-सोखेंगे। उ० समुद्र सातो सोषिहैं। (क० ६।२)
सोसि-(स० स'+असि)-सो हो। उ० जोसि सोसि तव चरन नमामी। (मा० १।१६१।३)
सोह-(स० शोभा)-शोभा पाये, शोभायमान हो। उ० कोउ न हमारें कटक अस तोसन लरत जो सोह। (मा० ६। २३ ख) सोहइ-शोभा पाता है। उ० कुँअरि लागि पितु काँध ठाढ़ि भइ सोहइ। (पा० १३) सोहई-शोभित हो, विराजमान हो। उ० सुरधेनु ससि सुरमनि सहित मानहुँ कलपतरु सोहई। (जा० १७१) सोहत-शोभित होत है, शोभा दे रहे हैं। उ० सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रँगमगे सृंगनि। (गी० २।५०) सोहहिं-सोहते हैं, शोभा देते हैं। सोहहीं-शोभित हैं, शोभा दे रही है। उ० जनु दमक दामिनि, रूप रति मृदु निदरि सुन्दरि सोहहीं। (जा० ८१) सोहा-सुशोभित है, सोहते हैं। उ० सोह बहुरंग कमल कुल सोहा। (मा०२।२७।२) सोहिहैं-शोभित होंगे। उ० को सोहिहैं और को लायक रघुनायकहि बिहाय कै। (गी० १।६८) सोहीं-सुशोभित हो रही है, शोभित हैं। उ० भरी प्रमोद मातु सब सोहीं। (मा० १। ३५०।३)
सोहर-(स० शोभन ?)-१ शोभा दिखाने का समय, २ एक राग जो बच्चा पैदा होने पर गाया जाता है। उ०१ लखि लौकिक गति सभु जानि बड़ सोहर। (पा० १२४)
सोहाइ-(स०शोभा)-सुंदर लगता है। सोहाए-अच्छे लगे। सोहाति-अच्छी लगती है। सोहातो-दे०'सोहाति'। सोहाते-दे० 'सोहातो'। उ० दे० 'सोहातो'। सोहातो अच्छा लगते, सुहाते है। उ० राम सोहाते तोहिं जौ तू सबहिं सोहातो। (वि० १५१) सोहान-रुचा, अच्छा लगा। उ० सभु दीन्ह उपदेस हित नहिं नारदहि सोहान। (मा० १।१२७) सोहाना-अच्छा लगा। उ०माँगेउँ जो कछु मोहि सोहाना। (मा०२।४०।४) सोहानि-अच्छी लगी। उ० सिय सीतलि हित मधुर मृदु सुनि सीतहि न सोहानि। (मा० २।७८) सोहानी-अच्छी लगी। उ० एक बात नहिं मोहि सोहानी। (मा० १।११२।४) सोहावा-अच्छा लगा। सोहाहीं-१ अच्छे लगते हैं, २ शोभा देते हैं। उ० १ रामहि से सपनेहुँ न सोहाहीं। (मा० १।१०४।३)
सोहाग-(स० सौभाग्य)-१ सिंदूर २ सधवा रहने की अवस्था। उ० १ अनुराग भाग सोहाग सील सरूप बहु भूषन भरीं। (जा० १८)
सोहागिनि-(स०सौभाग्य)-सौभाग्यवती, सधवा। उ०स्वामि सोहागिनि, भाग बड़, पुत्र काजु कल्यान। (प्र० ५।१।२)
सोहावन-(स० शोभा)-सुन्दर, शोभायमान। उ० नगर सोहावन लागत बरनि न जाते हो। (रा० २) सोहावनि-अच्छी लगनेवाली। उ० जेंवत दहेउ अनद सोहावनि सोनिमि। (पा० १०६)
सोहिलो-(?)-मंगल गीत, बधावा। उ०सहेली सुनु सोहिलो रे। (गी० १।२)
सोहैं-(स० सम्मुख)-सामने। उ० सरजु तीर निगसहु समि सोहैं। (गी० ७।४)
सौं-(स० सौगध)-शपथ, सौगद। उ० बलिराम रावरी सौं रही रावरी चहत। (वि० २५६)
सौंघाइ-(स० स्वर्घ)-सस्ती। उ० एक करहिं पैलिव सौंघाइ। (मा० १।८८।२)
सौंघे-(स० स्वर्घ) सस्ते। उ० महँगे मनि कचन किये सौंघे जग जल नाज। (दो० ११६)
सौंज-(स० सज्जा)-सामान। उ० तुलसी समिध सौंज लक-जग्यकुंड लखि। (क० ५।७)
सौंतुख-(स०सम्मुख)-सामने, सम्मुख, साक्षात। उ० देखौं सपन कि सौंतुख ससि सेखर, सहि। (पा० ७७)
सौंदर्य-(स०)-सुन्दरता, सुघराई। उ० सकल-सौभाग्य सौंदर्य-सुषमारूप। (वि० ४४)
सौंधी-(स० सुगध)-अच्छी, भली, रुचिकर। उ० जौं चित चनि सौंधी लगै चितइए सबेरे। (वि० २७३)
सौंपि-(स० समर्पण)-सौंपकर। उ० पतिहि सौंपि बिनती अति कीन्हीं। (मा०१।३३६।४) सौंपिय-सौंपिए, दे दीजिए। सौंपिये-समर्पण कीजिए, सुपुर्द कीजिए। सौंपी-समर्पण की, दी। सौंपु-समर्पण करो। उ० अजहुँ यहि भाँति सौंपु सीता। (क० ६।१७) सौंपे-दिये, दे दिए, समर्पण किये। सौंपेसि-सौंपा, दिया। उ० सौंपेसि मोहि तुम्हहि गहि पानी। (मा०६।६१।८) सौंपिहु-सौंपा, दिया। सौंप्यो-सुपुर्द किया, समर्पण कर दिया।
सौंह (१)-(स० सौगध)-शपथ, कसम। उ० हौं किये कहौं सौंह साँची सीय पीय की। (वि० २६३)
सौंह (२)-(स०सम्मुख) सामने। उ०राम की सौंह भरोसा है राम को। (क० ७।३६)
सौंहें-दे० 'सौंह (१)'। उ० तुलसी न दूसर सो राम प्रीतमु कहतु हौं सौंह किएँ। (मा० २।२०१। छं० १)
सौंगंद-(स० सौगध)-कसम, शपथ।
सौच-(स० शौच)-शुद्धता, शौच। उ० सकल सौच करि जाय नहाये। (मा० १।२२७।१)
सौज-(स० सज्जा)-घर का सामान, सामग्री। उ० एक काढ़ै सौज एक धौंज करै कहा है द। (क० ६।१६)
सौजन्य-(स०)-सज्जनता, शराफत।
सौ-(स० शत)-एक शत, १००। उ० राम के रोष न राखि सकैं तुलसी बिधि, श्रीपति, सकर सौ र। (क० ६।१२)
सौति-(स० सपत्नी)-दूसरी माता विमाता। उ० मैं न छरी सौति सखी! भगिनी ज्यों सई है। (क० २।६)
सौतुख-दे० 'सौंतुख'।
सौदा-(अर०)-क्रय विक्रय की वस्तु। उ० सुहृद-समाज दगाबाजि ही को सौदा सूत। (वि०२६४) मु०सौदा सूत-लेन देन का व्यवहार। उ० दे० 'सौदा'।
सौदामिनी-(स०)-बिजली।
सौध-(स०)-भवन, प्रासाद। उ० प्रबय सौध सत सालि पद्राग। (मा० ३।६३।४)
सौभग-सुन्दर, अच्छा। उ० सान्द्रानन्दपयोद सौभगतनुं पीताम्बरं सुंदर। (मा० ३।१। श्लो० १)

सौभागिनीं-सौभाग्यशालिनी स्त्रियाँ। उ०सौभागिनीं विभूषन हीना। (मा० ७।११ ३)
सौभाग्य-(स०)-१ अच्छा भाग्य, २ सोहाग, अहिवात, ३ सुख, ४ कल्याण, कुशल। उ० १ सकल सौभाग्य सुख खानि जिय जानि सठ। (वि० ४६)
सौमित्र-(स०)-सुमित्रा के पुत्र, लक्ष्मण। उ० भरत अनुज सौमित्र समेता। (मा० ७।१६।१)
सौमित्रि-सौमित्र की, लक्ष्मण की। उ० सिय सौमित्रि राम छबि देखहिं। (मा० २।१२४।४)
सौर-(स०)-सूर्य सम्बन्धी।
सौरज-(स० शौर्य)-वीरता, शूरता। उ० सौरज धीरज तेहि रथ चाका। (मा० ६।८०।३)
सौरभ-(स०)-१ सुगंध, २ केशर ३ आम का पेड़। उ० १ सुभग सौरभ धूपदीप वर मालिका। (वि० ४८) ३ सौरभ पल्लव सुभग सुठि किए नील मनि कोरि। (मा० १।२८८)
सौंहीं-(स० सम्मुख)-आगे, सामने। उ० तोहि लाजन गाल बजावत सौंहीं। (क० ६।१३)
स्कंध-(स०)-१ कंधा, २ पेड़ का धड़, ३ व्यूह, ४ युद्ध।
स्तंभ-(स०)-१ खंभा, थूनी, २ रुकाव, अटकाव।
स्तंभन-(स०)-रुकाव अटकाव।
स्तन-(स०) पयोधर, चूची।
स्तब्ध-(स०)-१ चुप, स्तब्ध, हक्का-बक्का, २ रुका, कुंठित ३ स्थिर, दृढ़।
स्तवं-(स०) स्तुति को, प्रशंसा को। उ० पठति स्तव ये इदं। (मा० ३।४। छं० १२)
स्तुति-(स०)-प्रार्थना, स्तव।
स्तुत्य-(स०)-प्रशंसनीय, बड़ाई के योग्य।
*स्तोत्र-(स०)-स्तव, प्रार्थना, स्तुति।*
स्त्री-(स०)-१ नारी, औरत, २ पत्नी।
स्थल-(स०)-भूमि, जगह।
स्थाणु-(स०)-१ ठूँठा वृक्ष, २ शिव, महादेव।
स्थान-(स०)-जगह, ठौर, ठिकाना।
स्थापन-(स०)-बैठाना, जमाना, थापना।
स्थापित-(स०)-जिसकी स्थापना की जा चुकी हो।
स्थावर-(स०)-अचल, जड़।
स्थित-(स०)-ठहरा, टिका, बैठा।
स्थिति-(स०)-१ ठहराव, होना, स्थित होना, २ स्थित रखना, पालन। उ० २ उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्। (मा० १।१। श्लो० ५)
स्थिर-(स०)-अचल अटल।
स्थूल-(स०)-मोटा।
स्नेह-(स०)-१ प्रेम, प्यार, २ तेल घी।
स्नेहता-(स०)-प्रेम करने का भाव स्नेह।
स्पर्श-(स०)-छूना।
स्पष्ट-(स०)-खुला, साफ़।
स्पृहा-(स०)-इच्छा वांछा, अभिलाषा। उ० नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये। (मा० २।१। श्लो० २)
स्फटिक-(स०) बिल्लौर पत्थर।
स्फुरत्-(स०स्फुरण)-१ काँपता है,२ सुशोभित है। उ०२ स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा। (मा० ७।१०८।३)
स्मर-(स०)-१ कामदेव, २ स्मरण, याद।
स्मरण-(स०)-याद, सुधि, स्मृति।
स्मरामहे-स०)-हम याद करते हैं।
स्मृति-(स०)-१ याद, स्मरण, २ धर्मशास्त्र।
स्यंदन-(स०)-रथ, वाहन। उ० स्यंदन, गयंद, बाजिराजि भले भले भट। (क० ७।११६)
स्य-(स०)-का, की। उ० मुखांबुज श्री रघुनंदनस्य। (मा० २।१। श्लो० २)
स्यानी-(स० सज्ञान)-चतुर, होशियार। उ० स्यानी सखी हठि हौं बरजी। (क० ७।१३३)
स्याम-(स० श्याम)-१ कृष्ण, २ काला, ३ काला बादल। उ० १ क्यों न सुजोधन बोध कै खाण स्याम सुजान? (दो० ४८३) २ स्याम घन गुन बारि छबि मनि मुरलि तान तरङ्ग। (कृ० २४)
स्यामता-(स० श्यामता)-कालापन, नीलिमा। उ० सब मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास। (मा० १। १२ क)
स्यामल-(स० श्यामल)-काले रङ्ग का। उ० स्यामल गौर किसोर मनोहरता निधि। (जा० ३५)
स्यामा-दे० 'श्यामा'। उ० २ स्यामा बाम सुतरु पर देखी। (मा० १।३०३।४)
स्यार-(सं० शृगाल)-गीदड़, सियार।
स्यों-(?) सहित। उ० तेहि उर क्यों समात बिराट बपु स्यों महि सरित सिंधु गिरि भारे। (कृ० १७)
स्रक-(स० स्रक्)-पुष्पमाल माला। उ० स्रक चंदन बनि तादिक भोगा। (मा० २।२१५।४)
स्रग-दे० 'स्रक। उ० स्रग सुगंध भूषित छबि छाए। (मा० १।३११।१)
स्रजत-(स० सृजन)-१ बनाता है, २ बनाता हुआ, ३ बनाते ही।
स्रद्धा-दे० 'श्रद्धा'।
स्रम-(स० श्रम)-१ परिश्रम, २ थकावट, ३ तपस्या, ४ पसीना। उ० १ करम धर स्रम-फूल रघुबर चिनु। (वि० २६४)
स्रमकन-(स० श्रमकण)-पसीने की बूँदें। उ० अति सुपत स्रमकन सुररनि। (गी० ७।१८)
स्रमबिंदु-(स० श्रमबिंदु) पसीने की बूँद। उ० स्रमबिंदु मुख राजीव लोचन। (मा० १।७१। छं० १)
स्रमित-(स० श्रमित)-थका हुआ। उ० स्रमित भूप निद्रा अति आई। (मा० १।१७०।१)
स्रमु-दे० 'स्रम'। उ० १ तौ अभिमत फल पावहिं करि स्रमु साधन। (पा० ३५)
स्रव-(स० स्रवण)-बहता हो, बहु। उ० अनु स्रव तीन गोद की धारा। (मा० ३।१८।१) स्रवत-बहता है, गिरता है। स्रवत-गिरता है। उ० रजनिचर घात भए गर्भ-अर्भक स्रवत। (क० ६।४४) स्रवहिं-१ टपकते हैं, गिरते हैं २ बहती हैं। उ० १ गर्भ स्रवहिं अवनिप रवनि। (मा २०१) २ स्रवहिं सकल सरिता-सुत धारा।

१६१।२) स्रवै-१ बरसायें, बरसाने लगें, २ गिरे। उ० बिधु बिष चवै स्रवै हिमु आगी। (मा० २।१६१।१)
स्रवन-(स० श्रवण)-१ कान, २ सुनना। उ० १ स्रवन कुंडल मनहुँ गुरु कवि करत वाद बिसेषु। (गी० ७।६)
स्रवनन्हि-कानों। उ० मुख नासा श्रवनन्हि की बाटा। (मा० ७।६७।२)
स्रष्टा-(स०) १ रचनेवाला, २ ब्रह्मा। उ० १ ब्रह्म जापक जाप्य सृष्टि स्रष्टा। (वि० ५३)
स्राद्ध-दे० 'श्राद्ध'। उ० स्राद्ध कियो गीध को। (क० ७। १५)
स्राप-(स० शाप)-शाप, बद्दुआ।
स्री-(स० श्री)-१ लक्ष्मी, २ धन, ३ ऐश्वर्य।
स्रुति-(स० श्रुति)-१ कान, २ वेद, ३ श्रवण से आगे तीन नक्षत्र। उ० २ स्रुति समत हरि भक्ति पथ। (दो० ५५५) ३ स्रुति-गुन कर-गुन पु-जुग मृग हय। (दो० ४५६)
स्रुवा-(स०)-हवन आदि में आहुति देने के लिए बनी लकड़ी की कलछी। उ० चाप स्रुवा सर आहुति जानू। (मा० १।२८३।१)
स्रेनि-(स० श्रेणी)-पंक्ति, कतार। उ० नील कमल सर स्रेनि मयन जनु डारइ। (जा० ५२)
स्रेनी-दे० 'स्रेनि'। उ०जनु तहँ बरिस कमल सित स्रेनी। (मा० १।२६२।१)
स्रोत-(स०)-सोता, धारा, प्रवाह। उ० जनु सहस सीसा चली स्रोत सुरस्वामिनी। (वि० १८)
स्रोता-(स० श्रोतृ)-सुननेवाला, कथाप्रेमी।
स्वः-(स०)-१ आकाश, २ स्वर्ग। उ० १ स्वः सभय शक्र। (मा० ३।१। श्लो० १)
स्व-(स०)-अपना, निज का। उ० जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना। (मा० १।१२१।२)
स्वई-(स० स )-सोही, वही।
स्वक-(स०)-स्वकीय, अपनी। उ० मर्यादि से गति स्वक। (मा० ३।४।८)
स्वच्छंद-(स०)-स्वतंत्र, स्वाधीन। उ० बुद्ध सर्वज्ञ स्वच्छंद चारी। (वि० ५६)
स्वच्छ-(स०)-निर्मल, साफ़।
स्वच्छता-(स०)-सफाई, निर्मलता। उ० सोइ स्वच्छता करइ मलहारी। (मा० १।३६।३)
स्वजन-(स०)-१ बंधु सबंधी, २ मित्र।
स्वतंत्र-(स०)-स्वाधीन, स्वच्छंद। उ० परम स्वतंत्र न सिर पर कोई। (मा० १।१३७।१)
स्वत -(स०)-अपने से।
स्वपच-(स० श्वपच)-चांडाल, डोम। उ० स्वपच सबर खस जमन जड़। (मा० २।१९४)
स्वपर-(स० स्व+पर)-अपना पराया, मेरा तेरा। उ० स्वपर मति परमति तव बिरति चक्रपामी। (वि० ५०)
स्वप्न-(स०)-सपना ख्वाब।
स्वभाव-(स०)-प्रकृति, आदत। उ० रामनाम सो स्वभाव अनरागिहै। (वि० ७०)

स्वय-(स०)-आप, अपने आप। उ० स्वय सिद्ध सब काज नाथ मोहि आदर दियउ। (मा० ६।१७ ख)
स्वयंबर-दे० 'स्वयबर'। उ० सीय स्वयबर कथा सुहाइ। (मा० १।४१।१)
स्वयंभू-(स०)-अपने से होनेवाला, ब्रह्मा।
स्वयबर-(स०)-कन्या को अपने आप वर चुनने के लिए रचा गया उत्सव विशेष। उ० सोकि स्वयबर आनहि बालक बिनु बल। (जा० ८६)
स्वर-(स०)-१ ध्वनि, शब्द, रव, २ अकार आदि वे वर्ण जो व्यंजनों से भिन्न हैं।
स्वरग-दे० 'स्वर्ग'।
स्वरूप-(स०)-१ रूप, आकार, २ सुंदरता, ३ अपना रूप। स्वरूपहि-अपने रूप को, आत्म को। उ० कर्म कि होहिं स्वरूपहि चीन्हें। (मा० ७।११२।२)
स्वर्ग-(स०)-देवलोक, वह लोक जहाँ मोक्ष प्राप्त करने पर आत्माएँ जाती हैं। उ० स्वर्ग सोपान विज्ञान ज्ञानप्रदे। (वि० १८) स्वर्गउ-स्वर्ग भी। उ० स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई। (मा० ७।४४।१)
स्वर्ण-(स०)-सोना, सुवर्ण।
स्वर्णकार-(स०)-सोनार।
स्वर्न-दे० 'स्वर्ण'। उ० स्वर्न सैल-सकास कोटि रवि-तरुन तेज घन। (ह० २)
स्वल्प-(स० -१ थोड़ा, ज़रा, तनिक, २ छोटा। उ० १ बहुरज स्वल्प सत्व कछु तामस। (मा० ७।१०४।२) २ डरपावै गहि स्वल्प सपेला। (मा० ६।५१।७) स्वल्पउ-थोड़ा भी। उ० एहि स्वल्पउ नहिं ब्यापिहि सोई। (मा० ७।१०३।४)
स्वबस-दे० 'स्ववश'। उ० १ राजा रामु स्वबस भगवानू। (मा० २।२२४।१)
स्ववश-(स०)-१ स्वतंत्र, स्वच्छंद, २ अपने वश में।
स्वस्ति-(स०)-कल्याण हो, मंगल हो।
स्वाँग-(?)-१ अनुकरण, बनावटी वेश नकल २ भँड़ौती, ३ तमाशा। उ० १ स्वाँग सूधो साधु को, कुचालि कलि ते अधिक। (वि० २६२)
स्वांतः-अपना अंतःकरण। उ० स्वांत सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा। (मा० १।श्लो० ७)
स्वाँति-दे० 'स्वाति'। उ० स्वाँति सनेह सलिल सुख चाहत। (वि० १६१)
स्वागत-(स०)-१ सत्कार, २ कुशल-क्षेम। उ० २ स्वागत पूँछि निकट बैठारे। (मा० ३।२१।६)
स्वाति-(स०) एक नक्षत्र। उ० स्वाति सारदा कहहिं सुजाना। (मा० १।११।२)
स्वाती-दे० 'स्वाति'।
स्वाद-(स०)-जायका, सवाद। उ० स्वाद तोष सम सुगति सुधा के। (मा० १।२०।४)
स्वादित-स्वाद पाए हुए। उ० बस जो ससि-उछंग सुधा स्वादित कुरंग। (वि० १६०)
स्वादु (१)-(स० स्वाद)-जायका, सवाद।
स्वादु (२)-(स०)-मधुर, मीठा।

स्वाधीन-(स०)-स्वतंत्र, मुक्त। उ० पराधीन देव ! दीन्हौं, स्वाधीन गुसाइँ। (वि० १४६)

स्वान-(स० श्वान)-कुत्ता। उ० स्वान कहे तें कियौ पुर बाहिर, जती गयंद चढ़ाइ। (वि० १६२)

स्वाना-दे० 'स्वान'। उ० रोवहिं खर सृकाल बहु स्वाना। (मा० ६।१०२।४)

स्वामि-दे० 'स्वामी'। उ० १ भलो निबाहेउ सुनि समुझि स्वामि धर्म सब भाँति। (दो० २०४)

स्वामिनि-दे० 'स्वामिनी'। उ० २ जब तें कुमत सुना मैं स्वामिनि। (मा० २।२१।३)

स्वमिनी-(स०)-१ मालकिन, २ हे मालकिन। उ० १ समस्त लोक स्वामिनी, हिम शैलबालिका। (वि० १६)

स्वामिहि-स्वामी को, मालिक को। स्वामी-(स०स्वामिन्)-१ मालिक, २ प्रभु, ईश्वर, ३ पति, भर्तार। उ० १ स्वामी की सेवक हितता सब, कछु निज साँइ दोहाई। (वि० १७१)

स्वायंभुव-(स०)-पहले मनु जो ब्रह्मा से उत्पन्न कहे गए हैं।

स्वायंभू-दे० 'स्वायंभुव'। उ०स्वायंभू मनु अरु सतरूपा। (मा० १।१४२।१)

स्वारथ-दे० 'स्वार्थ'। उ० स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती। (मा० ४।१२) स्वारथहि-स्वार्थ ही। उ० स्वारथहि प्रिय स्वारथ सो काते, कौन बेद बखानई। (वि० १३२)

स्वारथी-स्वार्थी, मतलबी। उ० अति आरत अति स्वारथी अति दीन दुखारी। (वि० ३४)

स्वारथु-दे० 'स्वारथ'।

स्वार्थ-(स०)-अपना भला, अपना मतलब।

स्वास-(स० श्वास)-साँस। उ० छाड़इ स्वास कारि जनु साँपिनि। (मा० २।१३।४)

स्वाहा-(स०)-एक शब्द जिसका प्रयोग देवताओं को हविष्य देने के समय किया जाता है। उ० स्वाहा महा हाँकि हाँकि हुनैं हनुमान हैं। (क० ५।७)

स्वीकार-(स०)-अंगीकार, मंजूर।

स्वेच्छा-(स०)-१ अपनी अभिलाषा, २ स्वाधीनता।

स्वेद-(स०)-पसीना। उ० सरद परब बिधु बदन बर लसत स्वेद कन जाल। (मा० २।११५)

स्वेदज-(स०)-पसीने से उत्पन्न होनेवाले जूँ आदि जीव।

स्वै-(स० स्व)-वह, वही। उ० सो प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहँ। (क० २।५)

स्वैर-(स०) स्वेच्छानुसार बर्तनेवाला, दुराचारी।

स्वैरी-(स० स्वैरिन्)-स्वेच्छाचारिणी, व्यभिचारिणी।

स्वैहैं-(स० शयन)-सोवेंगे। उ० बारि बयारि बिषम हिम आतप सहि बिनु बसन भूमितल स्वैहैं। (गी० ६।१८)

## ह

हँकरावा-(स० हक्कार) बुलवाया, बुलाया। उ० मेघनाद कहुँ पुनि हँकरावा। (मा० ६।१८२।१)

हँकार-(स० हक्कार)-आवाज़ लगाकर बुलाने की क्रिया या भाव, हाँक, पुकार।

हकारहीं-बुला रहे हैं। उ० आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हकारहीं। (मा० ७।२९। छं० १) हँकारा-१ बुलाया, २ बुलाया। उ० १ गुरु बसिष्ठ कहँ गयउ हँकारा। (मा० १।१६३।४) हँकारि-बुलाकर। उ० जाचक लिए हँकारि दीन्हि निछावरि कोटि बिधि। (मा० १।२९५) हँकारी-१ बुलाकर, २ बुलाइ, बुलाया, ३ बुलाई हुई। उ० २ सुचि सेवक सब लिए हँकारी। (मा० १।२४०।४) हँकारे-बुलाए।

हंता-(स० हन्तृ)-मारनेवाला, वधिक, नाशक। उ० जयति दसकंठ-घटकरन-बारिदनाद-कदन-कारन, कालनेमि-हंता। (वि० २५)

हंस-(सं०)-१ बतख के आकार का एक जल पक्षी। मराल। यह नीर क्षीर विवेक तथा मोती चुगने के लिए प्रसिद्ध है, २ आत्मा, ३ परमात्मा, ४ सूर्य, ५ सफेद, ६ श्रेष्ठ। उ० १ संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार। (मा० १।६) ४ हंस बंसु दसरथु जनकु राम लखन से भाइ। (मा० २।१६१) हंसहि-हंस को। उ० उ० हंसहि बक दादुर चातक ही। (मा०१।६।१) हंसिनि-हंस पक्षी की मादा। उ० जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु। (मा०२।१२८)

हँसत-(स० हसन)-१ हँसते हैं, २ मज़ाक उड़ाते हैं। उ० २ आप महापातकी हँसत हरि हरहू को। (क० ७।६६)

हँसनि-हँसना, हँसने की क्रिया, या भाव। उ० अरुन अधर द्विज पाँति अनूपम ललित हँसनि जनु मन आकरषति। (गी० ७।१७) हँसब-हँसना। उ० हँसब ठठाइ फुलाउब गाला। (मा० २।३५।३) हँसहिं-१ हँसते हैं, २ हँसेंगे। उ० १ हँसहिं मलिन खल बिमल बतकही। (मा० १।९।१) हँसहि-हँसता है। हँसा-मुस्कराया, प्रसन्न हुआ, हँसने लगा। उ० कहि अस बचन हँसा दससीसा। (मा० ६।२४।५) हँसि-हँसकर, प्रसन्न होकर। उ० गाधि सुनु कह हृदयँ हँसि मुनिहि हरिअरइ सूझ। (मा० १।२७५) हँसिबे-हँसने। उ० हँसिबे जोग हँसें नहिं खोरी। (मा० १।९।२) हँसिहहिं-हँसेंगे, मुस्कराएँगे। उ० हँसिहहिं कूर कुटिल कुबिचारी। (मा० १।८।५) हँसिहहु-हँसोगे। उ० हँसिहहु सुनि हमारि जड़ताई। (मा० १।७८।२) हँसिहै-हँसेगा, हँसी उड़ावेगा। उ० जग हँसिहै मेरे संग्रहे, कत एहि डर डरिए ! (वि० २०१) हँसे-हँसने लगे, मुस्कराए। उ० ते सब हँसे मष्ट करि रहहू। (मा०

२।२७।४) हँसेउ-हँसे, हँसने लगे। हँसेहु-१ हँसे, हँसी की, २ हँसना। उ० १ या २ हँसेहु हमहि मा जेहु फल बहुरि हँसेहु मुनि कोउ। (मा० १। १३५) हँसैहौं-हँसी कराऊँगा। उ० परयस आनि हँस्यो इन इन्द्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं। (वि० १०५) हँस्यो-१ हँसा, २ मेरी हँसी उड़ाइ गई। उ० २ परवस जानि हँस्यो इन इंद्रिन निज बस ह्वै न हँसैहौं। (वि० १०५)

हंसा-दे० 'हंस'। उ० १ जो सुसुंडि मन मानस हंसा। (मा० १।१४६।३)

हंसी-हंसिनी हंस की स्त्री। उ० स्वीर नीर विवरन गति हंसी। (मा० २।३१४।४)

हइ (१)-(सं० हत)-मार गया, मारा। उ० कलप बेलि बन बढ़त विषम हिम जनु हइ। (पा० ३२) हई-(सं० हत)-मारी, नाश कर दी। उ० बेद-मरजाद मानो हेतु बाद हई है। (गी० १।८४) हए-१ बजाए गए, बजे, २ पीटे, मारे, नाश किए ३ मारे हुए। उ० १ सदन-सदन सोहिलो सोहावनो नभ अरु नगर निसान हए। (गी० १।३) २ संग्राम अंगन सुभट सोवहिं रामसर निकरहि हए। (मा० ६।८८। छं० १)

हइ (२)-(सं० भवन, प्रा० होत)-है। उ० बरनि सकै छवि अतुलित अम कवि को हइ? (जा० १२०)

हगि-(?)-मल करके, विष्टा करके। उ० काक अभागे हगि मर्‍यो महिमा भई कि थोरि। (दो० ३८७)

हटक-(?)-रोक, निषेध, डाँट।

हटकहु-(?)-मना करो, रोको, रोक दो। उ० तुम्ह हटकहु जौं चहहु उबारा। (मा० १।२७४।२) हटकि-१ मना करके, बरजकर, रोककर, २ डाँटकर। उ० १ डेरा की हेउ मनहुँ तय फरकु हटकि मन जात। (मा० ३।३७ ख) २ सकल सभहि हठि हटकि तब बोलीं बचन सकोप। (मा० १।६३) हटके-मना किया, बरजा। उ० बिहँसि हिय हरषि हटके लखन राम। (गी० १।८३) हटकेउ-दे० 'हटके'। हटक्यौ-रोका, बरजा। उ० करत राम बिरोध सो सपनेहु न हटक्यौ ईस। (नि० २१६)

हटत-(?)-१ हटता है, हटता जाता है, २ मना करता है। उ० २ लालच लघु तेरो लखि तुलसी तोहि हटत। (वि० १२१) हटि-रोककर, मनाकर। उ० नयन नीरु हटि मंगल जानी। (मा० २।१।१)

हट्ट-(सं०)-१ हाट, बाज़ार, २ दूकान, ३ रास्ता। उ० १ चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहुबिधि बना। (मा० ५।३। छं० १)

हठ-(सं०)-१ अड़, ज़िद, २ ज़बरदस्ती, ज़ोरावरी। उ० १ बिनु बाँधे निज हठ सठ परबस पर्‍यो कीर की नाईं। (वि० १२०) हठनि-हठ, हठ का बहुवचन। उ० हठनि बजाय करि डीठि पीठि दई है। (क०७।१७२) मु० हठनि बजाय-हठ करके। उ० दे० हठनि'।

हठजोग-(सं० हठयोग) हठ से चित्त की वृत्ति को रोकना। एक योग जिसमें कठिन कठिन आसनों और मुद्राओं का विधान है। उ० द्रवहिं हठजोग दिए भोग बलि प्रान की। (नि० २०१)

हठसील-(सं० हठ + शील)-हठी, हठीला। हठसीलहि-हठी को। दे० 'हठसील'। उ० यह न कहिय सठ ही हठ सीलहि। (मा० ७।१२८।२)

हठहि-हठ करते हैं, हठते हैं। हठि-१ मना कर दो, बाद दो, २ हठ करके, ज़िद करके, ३ बलपूर्वक। उ० २ बसु जनक हठि बालकु एहू। (मा० १।२८०।३) ३ नाहिं त सम्मुख समर महि तात करिअ हठि मारि। (मा०६। ६) हठे-१ हठ करने से, २ हठ करने में। उ० १ हिये हेरि हठ तजहु हठे दुख पैहहु। (पा० ६२)

हठी-(सं० हठिन्)-हठ करनेवाला, ज़िद्दी, टेकी। उ० तुम कहि रहे, हमहुँ पचि हारी, लोचन हठी तजत हठ नाहीं। (कृ० ४८)

हठीले-दे० 'हठी'। उ० भूमि परे भट घूमि कराहत, हाँकि हने हनुमान हठीले। (क० ६।३२)

हठीलो-दे० 'हठी'। उ० तुलसी को साहिब हठीलो हनुमान भो। (ह० ११)

हड़ावरि-(सं० अस्थि + आवलि)-हड्डियों का समूह। उ० राम-सरासन तें चले तीर रहे न सरीर हड़ावरि फूटी। (क० ६।३१)

हत-(सं०)-१ वध किया हुआ, मारा गया, २ शून्य, विहीन। उ० २ मयउ तेजहत श्री सब गई। (मा० ६।३५ २)

हतइ-(सं० हत)-१ मारा २ मारते, ३ मारता है। उ० १ प्रभु ताते उर हतइ न तेही। (मा०६।११।७) हतई-मारता है। हतउँ-हतूँ, मारूँ। उ० तेहि सर हतउँ मूढ़ कहँ काली। (मा० ४।१८।३) हतहिं-मारते हैं। हतहु-मारो, मारिए। उ० हतहु नाथ खल नर अपराधी। (मा० २। ६०।३) हति (१)-मारकर, हतकर। उ०प्रथम ताड़का हति सुबाहु बधि, मख राख्यो द्विज हितकारी। (गी० ७।३८) हते (१)-मारे नष्ट किये। उ० सुकृत न भये हते भग वाना। (मा० १।१२३।१) हतेउ-मारा, नष्ट किया। उ० फरत करिनि जिमि हतेउ समूला। (मा० २।२१।४) हतेसि-मार डाला। उ० बालि हतसि मोहि मारिहि आई। (मा०४।६।४) हतै-मार। उ० सत्पुरुष हतै गिरा-सर पैना। (वै० ४१) हतो (१)-मारा। हत्यो-मारा। उ० अतुलित बल मृगराज-मनुज तनु दनुज हत्यो श्रुति मागी। (वि० ४३)

हतभागी-दे० 'हतभाग्य'। उ० मानहुँ मोहि जानि हत भागी। (मा० २।१२।५)

हतभाग्य-(सं०)-भाग्यहीन, अभागा। उ० भाग-रहित हत भाग्य सुरभि पल्लव सो कहुँ कहँ पावै। (वि० १९७)

हताश-(सं०)-निराश, नाउम्मेद।

हति (२)-(सं० भू) थी हुती। उ० महाराज बाजी रची प्रथम न हति। (नि० २१६) हते (२)-थे। हतो (२)-था।

हथवाँसहु-(सं० हस्त + वास) कब्जे में कर लो, हाथ में कर लो। उ० हथवाँसहु बोरहु तरनि कीजिय घाटारोहु। (मा० २।१८६)

हथा-(सं० हस्त) हाथ जिसमें थापा लेकर दीवार पर थापा जाता है। उ० जपमा मेवन निम हया, तिम एतहि तिन मीति। (बा० ११७)

हथिसार-(सं०हस्तिन्+शाला)-हाथी बाँधने का घर। उ० हाथी हथिसार जरे घोरे घोरसारहीं। (क० ५।२३)
हथेरी-(स० हस्त+तल)-हथेली, गदोरी। उ० हाथ लका लाइहैं तो रहैगी हथेरी सी। (क० ६।१०)
हद-(अर०)-सीमा, मर्यादा। उ० कायर कूर कपूतन की हद तेउ गरीब नेवाज नेवाजे। (क० ७।१)
हन-(स० हनन)-१ ध्वंस, क्षय, नाश, २ मार, चोट, हिंसा, ३ मारना। हनइ-१ मारता है, २ मारे, ३ मार डालेगा। उ० ३ लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते। (मा० ५।४४।४) हनत-१ मारता है, हनता है, २ मारता हुआ। उ० १ हनत गुनत गनि गुनि हनत जगत ज्योतिषी-काज। (दो० २४१) हनहिं-१ मारते हैं, २ पीटते हैं, बजाते हैं। उ० २ सुमन बरिसि सुर हनहिं निसाना। (मा० १।३०१।२) हनि-१ मारकर, २ बजा कर। उ० १ खेत केहरि को बयर ज्यों भेक हनि गोमाय। (वि० २२०) २ हनि देव दुदुभी हरपि बरषत फूल। (गी० १।४४) हनिय-१ मारिए, २ मारना चाहते। उ० २ निकट बोलि न बरजिए बलि जाउँ हनिय न हाथ। (वि० २२०) हनी-नष्ट किया, मारा। उ० कनक कलप बर बेलि बन मानहुँ हनी तुसार। (मा० २।११६) हने-१ मारे, २ बजाए ३ मारने से, ४ बजाने से। उ० २ हरषि हने गहगहे निसाना। (मा० १।२६६।१) हनेउ-मारा मारा हो। उ० दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू। (मा०२।२६।३) हनेऊ-मारा, मार डाला। हनेसि-मारी। उ० अस कहि हनेसि माझ उर गदा। (मा० ६।६४।४) हन्यो-मारा, हना। उ० सँभारि श्री रघुबीर धीर पचारि कपि रावनु हन्यो। (मा० ६।६५।छं० १)
हनन-(स०)-मारना, वध करना, हत्या करना।
हनु (१)-(स०)-जबड़ा, दाढ़ की हड्डी।
हनु (२)-(स० हनन)-मारनेवाला, नाश करनेवाला।
हनुथल-(सं० हनु+स्थल) ठोढ़ी के नीचे का भाग। उ० मजुल चिबुक मनोरम हनुथल, कल कपोल नासा मन मोहति। (गी० ७।१७)
हनुमत-दे० 'हनुमान'। उ० हनुमत हृदि विमल-कृत परम मंदिर सदा दास तुलसी सरन सोकहारी। (वि० २१)
हनुमंतहि-हनुमान को। उ० प्रभु हनुमंतहि कहा बुझाई। (मा० ६।१२१।१)
हनुमंता-दे० 'हनुमान'। उ० कोउ कह यहँ अगद हनुमंता। (मा० ६।४३।१)
हनुमत-दे०'हनुमान'। उ० हनुमत जन्म सुफल करि माना। (मा० ५।२३।६)
हनुमद्-दे० 'हनुमान'।
हनुमान-(स०हनुमत्)-महावीर, जो केसरी नाम के बदर की स्त्री अजना के गर्भ से पवन के पुत्र थे। एक मत से शकर के वीर्य से इनकी उत्पत्ति हुई थी। हनुमान बड़े वीर और पराक्रमी कहे गये हैं। सीता को खोजना, लंका जलाना तथा सजीवनी बूटी के लिए पूरा पर्वत उठा लाना इनके मुख्य कार्य हैं। राम के ये अनन्य भक्त थे। उ० दुसह साँसति सहन को हनुमान ज्यायो जाय। (गी० ७।३१)
हनुमाना-दे० 'हनुमान'। उ० महावीर बिनऊँ हनुमाना। (मा० १।१७।१)
हनुमानू-दे० 'हनुमान'। उ० जिमि जग जामवंत हनुमानू। (मा० १।७।४)
हनू-१ दे० 'हनु'। २ हनुमान। उ० २ जय कृपाल कहि कपि चले अगद हनू समेत। (मा० ५।४४)
हनूमंत-दे०'हनुमान'। उ० रघुपति ! देखो आयो हनूमंत। (गी० ५।१६)
हनूमान-दे० 'हनुमान'। उ० हनूमान अगद रन गाजे। (मा० ६।४७।३)
हवि-(स० हविस्)-हविष्य, हवन करने की सामग्री। उ० यह हवि बाँटि देहु नृप जाई। (मा० १।१८६।४)
हबूब-(अर० हबाब)-१ पानी का बबूला, बुल्ला, २ निस्सार बात, तत्त्वहीन बात। उ० १ बातें झूँठी साँची कोटि उठत हबूब हैं। (क० ७।१०८)
हम-(स० अहम्)-१ हम सब, २ अहकार का भाव। उ० १ हम सब सत्य मरमु किन कहहू। (मा० १।७८।२) हमहिं-हमें। उ० कत सिख देइ हमहि कोउ माई। (मा० २।१४।१) हमहीं-हमें, हमको। उ० तहँ तह ईसु देउ यह हमहीं। (मा० २।२४।३) हमहुँ-हमें भी, हमको भी। उ० हमहुँ निठुर निरुपाधि नेह निधि निज भुजबल तरिबे हो। (कृ० ३६) हमहू-मैं भी, हम भी। उ० हमहू उमा रहे तेहिं सगा। (मा० ६।८९।१) हमें-हमको हमें। उ० अब तौ दादुर बोलिहैं, हमें पूछिहै कौन ? (दो० ५६४)
हमरि-(प्रा० अम्ह करको)-१ हमारी, मेरी, २ हम सब की। उ० १ हमरि बेर कस भयो कृपिनतर। (वि० ७)
हमरिऔ-हमारी भी। उ० तुलसी सहित बन बासी मुनि हमरिऔ। (गी० २।३४)
हमरें-हमारे। उ० हमरें बयर तुम्हउ बिसराई। (मा० १।६२।१) हमरे-हमारे, हम लोगों के। उ० जे हमरे अरि मित्र उदासी। मा० २।३।१) हमरेउ-हमारा मेरा। उ० जाकरि तैं दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई। (मा० १।१८४।छं० १)
हमार-(प्रा०अम्ह करको)-हमारा,मेरा। उ०सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार। (मा० १।१३२)
हमारा-मेरा, हम लोगों का। उ० पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा। (मा० २।११।२) हमारी-दे० 'हमारि'। उ० छमिअ देवि बड़ि चूक हमारी। (मा० २।१६।४) हमारें-हमारे में, मेरे में। उ०ज्या तिपु कूड हमारें माएँ। (मा० २।११२।३) हमारे-मेरे, हम लोगों के। उ० नहिं भलि बात हमारे भाएँ। (मा० १।६२।४)
हमारि-हमारी, मेरी। उ० हँसिहहु सुनि हमारि जड़ताई। (मा० १।७८।२)
हय-(स०)-१ घोड़ा, अश्व, २ इन्द्र। उ० १ रागेउ बाधि निमुन्द हयसाला। (मा० ६।२४।७) २ हय गुन-गुन कान-गुन, पु गुन गुन हय रेनी मनाउ। (दो० ४२६)
हये-(स० हत)-१ मार, नष्ट किए, २ पीटे, बजाए। उ० १ गए गँवाइ गम्भर पनि, धनु मिस हये मरम। (प्र०१।२।२)
हयो-दे० 'हयो'। उ० किप मुठी कहि याना मुया सम प्रभु तुम्हारें रिपु हयो न (मा० ६।१०१।छं० १)

हस्तामलक-(स०)-हाथ में आँवले की तरह, स्पष्ट।
हस्तिनी-(स०)-हथिनी, मादा हाथी। उ० मस्ती हस्ती हस्तिनी देति न पति रति दानि। (स० १६५)
हस्ती-(स०)-हाथी, गज। उ० दे० 'हस्तिनी'।
हहर-(?)-डर, भय, त्रास।
हहरत-(?)-डरकर, घबराकर। उ० हहरत हारत रहित यदि रहत धरे अभिमान। (स० ३६४) हहरि-घबराकर, चौंककर, भौचक्का होकर, डरकर। उ० हहरि हहरि हर सिद्ध हँसे हेरि कै। (क०६।४२) हहरी-भयभीत हो गई, घबरा गई। उ० नाथ भलो रघुनाथ मिले, रजनीचर-सेन हिये हहरी है। (क० ६।२१) हहरु-घबराओ, डराओ। उ० तुलसी तू मेरो हारि हिये न हहरु। (वि० २२०) हहरे-घबराए, डरे। उ० सब सभीत सपाति लखि हहरे हृदय हरास। (प्र० ३।७।५) हहर्‌यो-घबड़ा गया, डर गया। उ० तौ मन में अपनाइए तुलसिहि कृपा करि, कलि बिलोकि हहर्‌यो हौं। (वि० २६७)
हहरात-(?)-१ डरते हैं, भयभीत, होते हैं, २ डरते हुए, हाय हाय करते हुए। उ० १ देखे हहरात भट काल तें कराल भो। (क० ५।४) २ उछरत उतरात हहरात मरि जात। (क० ७।१७६) हहरानी-१ घबरा गई, २ डरी हुई, घबराई। उ० २ हहरानी फौजें भहरानी जातुधान की। (क० ६।४०) हहरानु-घबराया, डर गया। उ० पाहरु रहइ चोर हेरि हिय हहरानु है। (क० ७।८०) हहराने-हहराने लगी, ज़ोर से चलने लगी। उ० लपट झपट झहराने हहराने बात। (क० ५।१८)
हहा-(अनु०)-१ बिनती, चिरौरी, गिड़गिड़ाहट, २ प्रसन्नता का शब्द, अहा, ३ ठठाकर हँसने का शब्द। उ० १ दुरित दहन दखि तुलसी हहा करी। (क० ७।१६७) २ नाचत बानर भालु सबै तुलसी कहि हा रे! हहा भइया, हो रे! (क०६।२७) ३ तुलसी सुनि केवट के बर बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है। (क० २।७)
हहिं-(स० भवन्, प्रा० होन, हिं० होना)-हैं, अहहिं। उ० हहिं पुरारि तेउ एक नारि व्रत-पालक (जा० १०४) हहु-हो। उ० जानति हहु बस नाहु हमारें। (मा० २।१४।३)
हा (१)-था। उ० एक जनम कर कारन एहा। (मा० १।२४।२) ही (१)-थी। उ० यही अवलय ही सो चले तुम तोरि कै। (क० ५।२६)
हाँइ-(?)-१ लिए २ भाँति। उ० १ साहि बाँधिबे को धाइ, ग्वालिनी गोरस हाँई। (कृ० १७)
हाँक-(स० हुंकार)-१ पुकार, चिल्लाहट, २ युद्धनाद, ललकार, ३ गर्जन, ४ हाँककर, साथ लेकर ५ बुला कर, पुकार कर। उ० २ हाँक सुनत दसकंध के भए बंधन ढीले। (वि० ३२) ३ हनुमान हाँक सुनि बरषि फूल। (गी० ५।१६) ५ सुम्ह सौं काहु हाँक जनु लाया। (मा० १।२७२।१) हाँकहु-१ हाँको, २ पुकारो, ३ ललकारो। हाँकि-१ हाँक लगाकर, पुकारकर, २ ललकार कर, ३ ललकारा, ४ गमन करके, ५ साथ लेकर। उ० २ भूमि पर भट घूमि कराहत हाँकि हने हनुमान हठीले। (क० ६।३२) ३ घर्घर घमेड हय सुद्दरि नृप हाँकि न होइ नियाहु। (मा० १।१२६) हाँकी-हाँक, आगे बढ़ा, चला। उ० सोक सिथिल रथु सकइ न हाँकी। (मा० २।१४३।२) हाँके-१ ललकारने पर, २ हाँक कर आगे बढ़ाया, हाँका। उ० २ कौन की हाँक पर चौंक चडीस बिधि, चढ़कर थकित फिरि तुरँग हाँके। (क० ६।४५) हाँकेउ-हाँका, आगे बढ़ाया। उ० रथु हाँकेउ हय राम तन हेरि हेरि हिहिनाहिं। (मा० २।९९)
हाँड़ी-(स० भांड)-हँडिया, मिट्टी की बटलोई। उ० हाँडी हाटक घटित चरु राँधे स्वाद सुनाज। (दो० १६७)
हाँती-(स० हात)-दूर, समाप्त, ख़तम। उ० भीर प्रतीति भीति करि हाँती। (मा० २।३१।३)
हाँसा-हँसी, मुस्कान। उ० कुमुदबंधु कर निंदक हाँसा। (मा० १।२४३।३) हाँसी-(स० हास)-हँसी, ठट्ठा।
हा (२)-(स०)-१ दुःख या शोकसूचक शब्द, २ आश्चर्यसूचक शब्द, ३ हनन करनेवाला, मारनेवाला, नाश करनेवाला। उ० १ हा जग एक बीर रघुराया। (मा० ३।२६।१) ३ रघुबंस बिभूषन दूषन हा। (मा० ६।१११। छं० ४)
हाई-(स० घात) १ दशा, अवस्था, २ ढंग, घात, तौर, ३ टूटा, खंडित। उ० ३ परम कृपाल जो नृपाल लोक पालन पै, जब धनु हाइ ह्वै है मन अनुमानि कै। (क० ६।२६)
हाट-(स० हट्ट)-बाज़ार, दूकान। उ० हाट बाट नहिं जाइ निहारी। (मा० २।१२६।१)
हाटक-(स०)-१ सोना, स्वर्ण, २ धतूरा। उ० १ रत्न हाटक-जटित मुकुट मंडित मौलि भानुसत सदृस उद्योत कारी। (वि० ५१)
हाटकपुर-(स० हाटक+पुर) सोने की नगरी लंका। उ० नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। (मा० ५।३३।४)
हाटकलोचन-(स० हाटक+लोचन)-हिरण्याक्ष। दे० 'हिरण्याक्ष'। उ० कनककसिपु अरु हाटकलोचन। (मा० १।१२२।२)
हाड़-(स० हड्ड)-१ हड्डी, अस्थि, २ वंश या जाति की मर्यादा, कुलीनता। उ० निज गुन मानिक सम दसन, भूमि परे ते हाड़। (दो० ३३०)
हाड़ा-दे० 'हाड़'। उ० १ बिष्टा पूय रुधिर कच हाड़ा। (मा० ६।१२।२)
हाता (१)-(स० हरण)-हरनेवाले, नष्ट करनेवाले। उ० जयति पाथोधि पाषान जलजान-कर जातुधान प्रचुर हरष हाता। (वि० २६)
हाता (२)-(अर० इहात)-अहाता, घेरा।
हाता (३)-(स० हात)-१ अलग दूर किया हुआ, हटाया हुआ। हाते-अलग, दूर। उ० नात सब हाते करि राखत राम सनेह-सगाइ। (गी० १६४)
हाती-(स० हत)-मारी, नष्ट कर डाली।
हातो-दूर, अलग। उ० हातो कीजै हीय तें भरोसो भुज बीस को। (क० ६।२२)
हाथ-(स० हस्त)-कर, पाणि, हस्त। पाँच कर्मेन्द्रियों में से एक। उ० कृपापाथनाथ लोकनाथ नाथ सीतानाथ, तजि रघुनाथ हाथ और काहि ओड़िए? (क० ७।२५) मु० देहिं हाथहिं-सहारा देते हैं। उ० करहिं काम मुनि

नयन देहिं जनु हाथहिं । (जा० ११३) मु० हाथ मींजिबो–हाथ मलना, पछताना । उ० हाथ मींजिबो हाथ रह्यो । (गी० २।८४)

हाथा–दे० 'हाथ' । उ० रघुकुलतिलक जोरिं दोउ हाथा । (मा० २।५२।१)

हाथी–(सं० हस्तिन्)-एक प्रसिद्ध दीर्घकाय जानवर जिसे एक लंबी सूँड़ होती है । करी, कुंजर ।

हाथु–दे० 'हाथ' । उ० बढ़इ न हाथु दहइ रिस छाती । (मा० १।२७८।१)

हान–दे० 'हानि' ।

हानि–(सं०)-१ क्षति, नुकसान, २ नाश, क्षय, अभाव, ३ अनिष्ट, अपकार, बुराई । उ० १ पूजा लेत देत पलटे सुख हानि-लाभ अनुमाने । (वि० २३६) हानिकर–(सं०)-हानि करनेवाला, जिससे नुकसान पहुँचे । उ० मुक्ति जन्म महि जानि ध्यान खानि अघ हानिकर । (मा० ४।१।सो० १)

हानी–दे० 'हानि' । उ०१ जिन्ह कें सूझ लाभु नहिं हानी । (मा० १।११४।२)

हाय–(सं० हा)-दुःख और शोक सूचित करनेवाला एक शब्द । उ० हाय हाय सब सभा पुकारा । (मा० १।२७६।३)

हायन–(सं०)-वर्ष, संवत्सर ।

हार (१)–(सं० हारि)-१ पराजय, शिकस्त, विरोधी की जीत, २ शिथिलता, श्रांति, थकावट, ३ कष्ट, पीड़ा ।

हार (२)–(सं०)-माला । उ० संसार-सार, भुजगेंद्रहार । (वि० १३)

हार (३)–(?)-१ वन, जंगल, २ चरागाह, गोचारण भूमि । उ० १ बानर बिचारो बांधि आन्यो हठि हार सो । (क० ५।११)

हारत–(सं० हारि)-१ हारता है, २ हारते हुए । उ० २ हारत हू न हारि मानत, सखि, सठ सुभाय कंदुक की नाईं । (कृ० २१) हारति–हार जाती है, थक जाती है । उ० मिटति न दुसह ताप तउ तनु की, यह बिचारि अंत गति हारति । (गी० २।१३) हारहिं–हारते हैं, हार जाते हैं । उ० हारहिं अमित सेष सारद श्रुति गिनत एक एक छन के । (वि० ४६) हारहि–हारे, नष्ट करे, खोवे । उ० हारहि जनि जनम जाय गाल गूल गपत । (वि० १३०) हारा–हार गया, हार चुका । उ० अब मैं जन्मु ससु हित हारा । (मा० १।८१।१) हारि (१)–(सं० हारि)-१ हार, पराजय, २ पराजित होकर, हारकर, ३ हारो, पस्त हिम्मत हो । उ० १ हारत हू न हारि मानत । (कृ० २१) २ जग जिति हारे परसुधर, हारि जिते रघुराउ । (दो० ४३३) ३ राम सुमिरि साहसु करिय, मानिय हिय न हारि । (प्र० ५।१।३) हारी (१)–(सं० हारि)-१ हार गया, २ हारकर, पराजित होकर, ३ हार, पराजय, ४ थकावट । उ० १ फिरहिं रामु सीता मैं हारी । (मा० २।२४।२) २ चले चाप कर बायस हारी । (मा० ३।२१।२) ४ मोहि मग चलत न होइहि हारी । (मा० २।६७।१) हारे–१ हार गए, पराजित हो गए, २ हारने पर । उ० १ जग जिति हारे परसुधर, हारि जिते रघुराउ । (दो० ४३३) २ हारे हरष होत हिय भरतहि । (गी० १।४३) हारेउँ–हार गया । उ० हृदयँ हेरि हारेउँ सब ओरा । (मा० २।२६१।४) हारेउ–१ हार गया, २ हारने पर भी । उ० १ सखि न परेउ तप कारन बटु हिय हारेउ । (पा० ४३) हारेहु–दे० 'हारेउ' । उ० २ या रिपु सों हारेहु हँसी, जिते पाप परितापु । (दो० ४२२) हारो–१ हारा, हार गया, २ हारा हुआ, पराजित । उ० २ नाहिं न नरक परत मोकहँ डर, जद्यपि हौं अति हारो । (वि० ९४) हार्‌यो–दे० 'हारो' । उ० १ हौं हार्‌यो करि जतन बिबिध बिधि अतिसय प्रबल अजै । (वि० ८९)

हारि (२)–(सं० हरण)-हरनेवाला । उ० विमल विपुल बहसि बारि सीतल त्रयताप हारि । (वि० १७)

हारिणीम्–हरनेवाली को । उ० उद्भवस्थिति संहारकारिणीं क्लेशहारिणीम् । (मा० १।१।श्लो० ५)

हारिनि–हरनेवाली ।

हारिनी–(सं० हारिणी)-हरनेवाली, दूर करनेवाली । उ० भक्त-हृदि भवन अज्ञान-तम हारिनी । (वि० ४८)

हारी (२)–(हारिन्)-हरनेवाला, दूर करनेवाला । उ० मंगल भवन अमंगलहारी । (मा० १।१०।१)

हाल–(अर०)-१ दशा, अवस्था, २ समाचार । उ० १ जैसी हाल करी यहि ढोटा छोटे निपट अनेरे । (कृ० ३)

हाला–दे० 'हाल' । उ० १ कनककसिपु कर पुनि अस हाला । (मा० १।७३।१)

हालिहैं–(सं० हल्लन)-हिलेगा, कँपेगा । उ० मसक हैं कहैं 'भार मेरे मेरु हालिहैं' । (क० ७।१२०)

हाव–(सं०)-भाव, हाव भाव, नखरा ।

हास–दे० 'हास्य' । उ० ४ तरुण रमणीय राजीव लोचन बदन राकेश, कर-निकर हासम् । (वि० ५०) हास–(सं०)-१ हँसना, हँसने की क्रिया, २ विनोद, मजाक, ३ हँसी, ४ मुस्कान, ५ उपहास, ६ काव्य का एक रस, हास्य रस । उ० १ अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास । (मा० १।४२) ३ सित सुमन हास लीला समीर । (वि० १४) ६ तिन्ह कहँ सुखद हास रस एहू । (मा० १।९।२)

हासा–दे० 'हास' । उ० ४ इंदुकर-कुंदमिव मधुर हासा । (वि० ६१)

हाहा–(अनु०)-हाय हाय, हा । उ० हाहा करी दीनता कही द्वार द्वार बार बार । (वि० २७९)

हाहाकार–(सं०)-कुहराम, भय और घबराहट की चिल्लाहट । उ० हाहाकार भयउ जग भारी । (मा० १।८७।४)

हाहाकारा–दे० 'हाहाकार' । उ० भयउ सकल मख हाहाकारा । (मा० १।६४।४)

हिंकरि–(?) हिनहिनाकर, हींसकर । उ० हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही । (मा० २।१४३।४)

हिंडोरा–दे० 'हिंडोल' । उ० पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा । (मा० २।६१।३)

हिंडोल–(सं० हिंदोल)-झूला, हिंडोला । उ० हिंडोल साज बिलोकि मद मधुप भ्रमरि भ्रमरि । (गी० ७।१८)

हिंडोलना–(सं० हिन्दोल)-झूले, हिंडोले । उ० पूर पुर रच हिंडोलना महि गच काँच सुधार । (गी० ७।१९)

हिंस-(?)-घोड़ों के बोलने का शब्द । उ०रथरथ बाजि हिंस चहुँ ओरा । (मा० १।३०१।१)
हिंसक-(स०)-मारनेवाला, बधिक । उ० कृपारहित हिंसक सब पापी । (मा० १।१७६।४)
हिंसा-(स०)-१ जीवहत्या, बध, २ पीड़ा देना, सताना, ३ हानि पहुँचाना, अनिष्ट करना । उ० १ हिंसारत निषाद तामस बपु पसु समान बनचारी । (वि० १६६)
हिंस्र-(स०)-हिंसा करनेवाला, बधिक ।
हि (१)-(स० हृदय)-हृदय, दिल ।
हि (२)-१ निश्चय ही, अवश्य, २ को । उ० १ वैराग्यां बुज भास्कर ह्यघघनध्वांतापहं तापहम् ।(मा०३।१।श्लो०१) २ हसहि बक दादुर चातकही । (मा० १।६।१)
हिआउ-(स० हृदय)-हिम्मत, साहस । उ० कासों कहौं काहू सों न बढ़त हिआउ सो । (वि० १८२)
हितं-दे० 'हित' । हित-(स०)-१ लिए, निमित्त, २ उपकार, भलाइ, नेकी, ३ मित्र, सखा, सबधी, कल्याणकर्त्ता, ४ प्यारा । उ० १ सीक धनुष, हित सिखन, सकुचि प्रभु लीन । (ब० १६) २ भूत द्रोह कृत मोहबस्य हित आपन मैं न बिचारों । (वि० ११७) ३ उपजी प्रीति जानि प्रभु के हित, मनहुँ राम फिरि आए । (गी० २।६३) ४ तिय सो जाय जेहि पति न हित (क० ७।११६) हितकर-कल्याणकारी, लाभकर । हितनि-१ हितैषियों, भलाई चाहनेवाला, २ भलाइयों, नेकियों । उ० १ हितनि के लाह की, उछाह की विनोद मोद । (गी० १।६४) हितौ-कल्याण करनेवाले दोनों । उ० माया मानुष रूपिणौ रघुबरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ । (मा० ४।१।श्लो० १)
हितकारि-दे० 'हितकारी' । उ० बहुरि तिहि विधि आइ कहिहैं साधु कोउ हितकारि । (गी० ७।२६)
हितकारी-(स० हितकारिन्) उपकारी, हितैषी, भलाइ करने वाला । उ० समय साँकरे सुमिरिए समरथ हितकारी । (वि० ३४)
हितता-(स०)-भलाई, उपकार । उ० स्वामी की सेवक-हितता सब कछु निज साँइ द्रोहाई । (वि० १७१)
हितु-(स० हित)-भलाई चाहनेवाला, मित्र, सबधी । उ० तात, मात गुरु सखा तू सब बिधि हितु मेरो । (वि०७६)
हितू-दे० 'हितु' । उ० कुदिन हितू सोहित सुदिन, हित अन हित किन होइ । (दो० ३२२)
हितै-दे० 'हितु' । उ० विनय करौं अपभयहुँ ते तुम्ह परम हितै हौ । (वि० २७०)
हितैहै-(स० हित)-प्रेमयुक्त करेगी, ललचायेगी लालायित करेगी । उ० अनुज सहित सोचिहैं कपिन महँ, तनु-छवि कोटि मनोज हितैहैं । (गी० ४।५०) हितैहौं-अच्छा लगूँगा, अनुकूल पड़ूँगा, हितकारी हूँगा । उ० माखन ज्यों उगिल्यो उरगारि हौं त्यों ही तिहारे हिये न हितैहौं । (क०७।१०२)
हिम-(स०)-१ पाला, तुषार, ओस,२ बर्फ ३ ठढ, जाड़ा, ४ हेमत ऋतु, ५ शीतल, ठढा, ६ जाड़े की ऋतु । उ० २ या ४ हिम (४) हिम (२) सैल सुता सिव ब्याहू । (मा० १।४२।१) ५ सुर बिमान हिमभानु भानु सघटित परस्पर । (क० १।११) ६ मोहमदमदन-पाथोज-हिम जामिनी । (वि० १८) हिमउपल-वज्र का पत्थर, ओला । उ० जिमि हिम उपल कृषी दल गरहीं । (मा० १।४।४)
हिमकर-(स०)-चद्रमा । उ० हेतु कृसानु भानु हिमकर को । (मा० १।१६।१)
हिमगिरि-(स०)-हिमालय पर्वत । उ० हिमगिरि गुहा एक अति पावनि । (मा० ११२४।१)
हिमवतु-दे० हिमवान' । उ० कह मुनीस हिमवत सुनु जो विधि लिखा लिलार । (मा० १।६८)
हिमवतु-दे०'हिमवान' । उ०१ तब मयना हिमवत अनदे । (मा० १।६६।१)
हिमवान-(स० हिमवत्)-१ हिमाचल, पार्वती के पिता, २ हिमालय पर्वत, ३ कैलाश पर्वत, ४ सुमेरु पर्वत, ५ चद्रमा । उ० ५ पावक, पवन पानी, भानु, हिमवान, जम, काल लोकपाल मेरे डर डाँवाडोल है । (क० ५।३१)
हिमवाना-दे० 'हिमवान' । उ० सब कर बिदा कीन्ह हिम वाना । (मा० १।१०२।१)
हिमाचल-(स०)-१ हिमालय पर्वत, २ पार्वती के पिता,हिम वान । उ० २ जनमी जाइ हिमाचल गेहा । (मा०१।८३।१)
हिमु-दे० 'हिम' । उ० १ बिधु बिष चवै स्रवै हिमु आगी। (मा० २।१६६।१)
हियँ-(स० हृदय)-हृदय में । उ० हर हियँ रामचरित सब आए । (मा० १।१११।४) हिय-१ हृदय, दिल, २ मन, चित्त । उ० १ निर्मल पीत दुकूल अनूपम उपमा हिय न समाई । (वि० ६२) हिये-हृदय में । उ० नाग नर किन्नर बिरचि हरि हर हेरि, पुलक सरीर हिये हेतु हरषतु हैं । (क० ६।४८) हियो-दे० 'हियौ' । उ० १ तौ अतुलित अहीर अबलनि को हठि न हियो हरि ले हो । (कृ० ३६)
हियौ-१ हृदय, २ हृदय भी ।
हियरे-हृदय पर, हृदय में । उ० जानि परै सिय हियरे जब कुँभिलाइ । (ब० ५)
हिया-हृदय, दिल । उ० जो तो सों हो तौ फिरौ मेरो हेतु हिया रे । (वि० ३३) हियाउ-दे० 'हिआउ' ।
हियाव-दे० 'हिआउ' ।
हिरण्य-(स०)-सोना ।
हिरण्यकशिपु-(स०)-प्रह्लाद का पिता एक दैत्य जिसे विष्णु ने नृसिंह अवतार धारण कर मारा था । दे० 'प्रह लाद' तथा 'नृसिंह' ।
हिरण्यगर्भ-(स०)-जिसके पेट में सुवर्ण हो, ब्रह्मा ।
हिरण्याक्ष-दे० 'हिरन्याच्छ' ।
हिरदय-(स० हृदय)-हृदय, चित्त, मन । उ० जनु हिरदय गुन-ग्राम थूनि थिर रोपहि । (जा० ६५)
हिरन्य-दे० 'हिरण्य' ।
हिरन्याछ-दे० 'हिरन्याच्छ' । उ० हिरन्याछ भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान । (दो० ११५)
हिरन्याच्छ-(स० हिरण्याक्ष)-एक दैत्य जो हिरण्यकशिपु का भाई था । उ० हिरन्याच्छ भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान । (मा० १।६।४८ क)
हिराइ-(स० हरण)-खो जाता है, गायब हो जाता है ।
हिलि-(स०हल्लन)-हिलकर मिलजुल कर । उ० बार बार हिलि मिलि दुहुँ भाई । (मा०२।२२०।३)

हिलोर-(सं० हिल्लोल)-लहर तरंग, वीचि।
हिलोरे-हिलोरा ले, तरंगित हो। उ० राम प्रेम बिनु नेम जाय जैसे मृग जल जलधि हिलोरे। (वि० १६४)
हिसक-दे० 'हिसका'।
हिसका-(सं० ईर्ष्या)-१ ईर्ष्या, डाह, २ देखादेखी, स्पर्द्धा, बराबरी का भाव।
हिसिषा-दे० 'हिसका'। उ० २ जौं अस हिसिषा करहिं नर जड़ विवेक अभिमान। (मा० १।६९)
हिहिनात-(अनु०)-हिनहिनाते हैं। उ० बार बार हिहिनात हेरि उत जो बोलै कोउ द्वारे। (गी० २।८६) हिहनाहिं-दे० 'हिहिनाहीं'। उ० रथु हाँकेउ हय राम तन हेरि हेरि हिहिनाहिं। (मा० २।९९) हिहिनाहीं-हिनहिनाते हैं। उ० देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं। (मा० २।१४ २।४)
हीं-१ में, २ ही। उ० १ हाथी हथिसार जरे घोरे घोर सारहीं। (क० ५।२३)
हींचे-(सं० कषण, हिं खींचना) खींच लिए, खींचा, बटोरा, सिकोड़ा।
हींस-(?)-घोड़े के हिनहिनाने का शब्द।
ही (२)-(?)-१ था, २ निश्चयवाचक शब्द, अवश्य, उ० १ हसहि बक दादुर चातकही। (मा० ११।१) २ पुलक सरीर सना कात फहराही। (क० ६।८)
ही (३)-(सं० हृदय) हृदय, दिल। उ० दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु करम वचन अरु ही तें। (वि० १९८)
हीचे-हिचकती है, दुबकती है। उ० कहत सारदहु कर मति हीचे। (मा० २।२८३।२)
हीन-(सं०)-१ रहित, शून्य, खाली बिना, २ दरिद्र, कंगाल, ३ त्यक्त, छोड़ा, ४ अधम, निंदित, ५ लघु, छोटा थोड़ा। उ० १ मनि बिनु फनि, जलहीन मीन तनु त्यागइ। (पा० ६७)
हीनता-(सं०)-१ शून्यता, रहितता, २ कमी, ३ क्षुद्रता, ४ ओछापन, बुराई। उ० २ होइगी न साईं सों सनेह हित हीनता। (वि० २६२)
हीनमति-मूर्ख, बेवकूफ। उ० कुरु हौं हीन मलीन हीनमति बिपति जाल घति घेरो। (वि० १४३)
हीना-दे० 'हीन'। उ० १ अगुन अमान मातु पितु हीना। (मा० १।६७।४) हीनी-दे० 'हीन'। उ० १ कहँ हम लोक बेद बिधि हीनी। (मा० २।२२३।३)
हीनू-दे० 'हीन'। उ० १ सकल कला सब बिद्याहीनू। (मा० १।१।४)
हीने-हीन थे, रहित थे। उ० सबरि गीधसम दम-दया दान-हीने। (वि० १०६)
हीय-(सं० हृदय)-हृदय, दिल। उ० मूँदे आँखि हीय में, उघारे आँखि आगे ठाढ़ो। (क० ५।१७)
हीर-(सं०)-१ हीरा नाम का रत्न २ सार, गूदा। उ० २ करत बरत तेइ फल बिनु हीर। (वि० १६७)
हीरक-(सं०)-दे० 'हीरा'। उ० मिलनि हेम हीरक-मानिक मय मुकुट प्रभा सब भुवन प्रकासति। (गी० ७।१७)
हीरा-(सं० हीरक)-एक बहुमूल्य पत्थर जो अपनी चमक और कड़ाई के लिए प्रसिद्ध है, वज्रमणि। उ० गज मो तुरग हेम गो हीरा। (मा० १।१९६।४) हीरे-हीरे का। उ० सोभा सुख दुति लाहु भूप कहँ, केवल कांति मोल हीरे। (गी० ६।१२)
हुँ (१)-(?)-भी। उ० ऐसे हौहुँ जानति भृंग। (कृ० २४)
हुँ (२)-(सं० भू)-हूँ, स्वीकारसूचक शब्द, हाँ।
हुँकरि-(सं० हुंकार)-शब्द करके, हुंकार करके। उ० हरे न हुँकरि भरे फल न रसाल। (गी० ३।१)
हुंकार-(सं०)-गर्जन, डरावना शब्द। उ० दिन असुर रव सवत थन हुकार करि धावत भई। (मा० ७।६। छं० १)
हुँति-दे० 'हुति'। उ० १ सासु ससुर सन मोरि हुँति, बिनय करबि परि पायँ। (मा० २।९८)
हु-(?)-हू, भी।
हुआहिं-हू हू शब्द करते हैं। उ० स्वाहिं हुआहिं अघाहिं दपटहिं। (मा० ६।८८।१)
हुत-होम किया आहुति दिया। उ० तेन तप्त हुत दत्त मेवाखिलं तेनसर्वंकृतं कर्मजालं। (वि० ४६) हुत-(सं०)-१ आहुति दिया हुआ, २ आहुति की घृत आदि वस्तुएँ, ३ आग।
हुताशन-(सं० हुताशन)-अग्नि, आग। उ० राम प्रताप हुतासन कच्छ विपच्छ समीर समीरदुलारो। (ह० ११)
हुति-(प्रा० हिंतो)-१ ओर से, तरफ से, २ की।
हुते (१)-(सं० भवन)-थे। उ० सग सुभागिनि भाइ भलो, दिन द्वै जनु औधहु ते पहुनाई। (क० २।२) हुतो (१)-था, रहा। उ० जनु हुतो पुरारि पढ़ायो। (गी० २।११) हे (१)-थे। उ० हे हम समाचार सब पाए। (कृ० ५०) हे-१ एक आश्चर्यसूचक शब्द, २ सम्मति या निषेधसूचक शब्द, ३ है का बहुवचन। उ० ३ हैं दयालु दुनि दस दिसा दुख-दोष-दलन छम। (वि० २०५) है-'होना' का वर्तमानकालिक एक वचन रूप। उ० मातु काज लागी लखि डाटत, है बायो दियो घर नीके। (कृ० १०) हो (१)-१ होवे, २ था। उ० २ सब में मजु मनोरथ हो, री! (गी० १।१०२) होइ-१ होय, होवे, २ होकर, ३ होती है। ४ होगी। उ० २ होइ मगन दीन्ह उर सिय पद निज। (वि० ०) होइअ-होइए, हो लीजिए। उ० होइअ नाथ अस्व अम पारा। (मा० २।२०३।३) होइहउ-होऊँगा। उ० होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारे। (मा० १।१५२।१) होइहहिं-होंगे। उ० भय जे अहहिं न होइहहिं आगे। (मा० १।१४।३) होइहहु-होगा, हो। जाओगे। उ० होइ हहु सुकृत न पुनि सारा। (मा० १।१२१।४) होइहि-होगे। होइहि-होगा। उ० होइहि सोइ जो राम रचि राखा। (मा० १।१२।४) होइ-दे० 'होइ'। उ० १ काजु हमार तासु हित होई। (मा० ६।१७।४) होउँ-होऊँ, हूँ। उ० कवि न होउँ नहि बचन प्रबीनू। (मा० १।९।४) होउ-दे० 'होइ'। उ० १ एहि बिधि होइ रखाई। (मा० २।४६।२) होऊ-दे० 'होइ'। उ० १ सब सापन भूप करेइ होऊ। (मा० १।१६२।१) होण्डु-था, होना। उ० होएहु सतत विचरि बिहारी। (मा० १।१३४।२) होत-

(सं० भवन)–१ शक्ति, सामर्थ्य, २ होते हुए, ३ होता है, बन जाता है, हो जाता है, हो रहा है। उ० २ जिन्ह लगि निज परलोक बिगारयो ते लजात होत ठाढ़ ठायँ। (वि० ८३) ३ जलचरवृंद जाल अंतरगत होत सिमिटि इक पासा। (वि० ९२) होति–होती है। उ० काल-व्याल हेरि होति हिय घनी घिन। (वि० २५३) होती–१ होती थी, हो जाती थी, २ रहती। उ० २ होती जो आपने बस रहती एक ही रस। (वि० २४६) होते–१ थे, २ रहते। उ० १ सायँकरन अगनित हय होते। (मा० १। २१६।३) होतेउँ–होता हुआ, होता, बनता। उ० तौ पुनि करि होतेउँ न हँसाई। (मा०१।२५२।३) होतो–होता, हो जाता। उ०जो तोसों होतो फिरौं मेरो हेतु हिया रे। (वि० ३३) होन–होना, होने। उ०सिंदूर बदन होम लाया होम लागीं भाँवरी। (जा० १६२) होनउ–दे० 'होनेउ'। होने–१ होंगे, होनेवाले हैं, २ होनहार, जिनका भविष्य अच्छा हो। उ० १ देखि तियनि के नयन सफल भए, तुलसीदासहू के होने। (गी० १।१०५) २ होत हरे होने बिरवानि दल सुमति कहति अनुमानिहैं। (गी० १।७८) होनेउ–होना ही, होने का ही। उ०भयउ न है कोउ होनेउ नाहीं। (मा० १।२१४।३) होनो–होना, हो जाना। उ० होनो दूजी ओर को, सुजन सराहिय सोइ। (दो० ३६१) होब–१ होऊँगा, होऊँगी, २ होगा, हो जायगा, ३ हो जाओगे। उ०१ चेरि छाड़ि अब होब कि रानी। (मा० २। १६।३)होयहु–होगा, हो जाएगा। होसि–होवो, हो जायो, बनो। उ०जनि दिनकर कुल होसि कुठारी। (मा०२।३५।३) होहिं–१ होते हैं, २ हों, ३ होंगे। उ० १ मूढ़ मोह बस होहिं जनाइ। (मा० २।२२८।१) होहिंगे–होयेंगे। उ० हैं गये, हैं जे होहिंगे आगे तेइ गनियत बड़ भागी। (वि०६५) होहि–१ हो जा, बन जा, २ हो। उ० १ राम मास-नव नेह-मेह को मन हठि होहि पपीहा। (वि० ६५) होहीं–१ हैं होती हैं, हो रही हैं, २ हों। उ० १ मधुकर काहू कहा ते न होहीं। (कृ० ४१) होही–१ होवे, हो, २ हो जाओ, हो। उ० २ सुनहि सुमुखि जनि बिकल होही। (गी० २।११) होहु–होओ, हो जाओ। उ० होहु प्रसन्न देहु बरदानू। (मा० १।१४७) होहू–हो, होओ, बनो। उ० सोक कलंक कोठि जनि होहू। (मा० २।५०।१) हौं (१)–(सं० भवन, प्रा० होन)–१ हूँ २,हो, होवे।उ०१ जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि यहु जातना सरीर। (मा० २।१४६) हौ–१ हो, २ हो, होवो। ह्वै–१ होकर, हो करके, २ रहकर, ३ हो। उ० १ करि आठ सो जीवन, जानकीनाथ जियै जग में तुम्हरो बिन ह्वै। (क० ७।४०) २ पथकुटी करि हौ कित ह्वै ? (क०२।११) ३ सौ भयरस, षटरस-रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे। (वि० १६६) ह्वै हैं–होंगे, हो जायँगे। उ० ह्वै हैं सिला सब चंद्रमुखी परसे पद मंजुल-कंज तिहारे। (क० २।२८) ह्वैहै–हो जायगा, होगा। उ० ह्वैहै जब तब तुम्हहि सँ तुलसी को भलो रो। (वि० २७२) ह्वैहौं–१ होऊँगा, हो जाऊँगा। उ० १ ओरे हौं मातु मते मेरे ह्वै हौं। (गी० २।६२)

हुते (२)–(सं०हुत)–होमकर दिए, जला दिए। हुतो (२)

आहुति दी, जलाया। हुनिए–हवन कीजिए, जलाइए। उ० बिषम बियोग अनल तनु हुनिए। (कृ० ३७)हुने–जलाए, हवन किए। उ० हुने अनल अति हरष बहु बार साखि गौरीस। (मा० ६।२८) हुनै–१ हवन करते हैं, २ हवन करना, होमना। उ० १ स्वाहा महा हाकि हाकि हुनै हनुमान हैं। (क० ५।७)

हुनर–(फा०)–१ कारीगरी, कला, २ चातुरी, चतुराइ। उ० १ इन्हकर हुनर न कवनिहुँ थोरा। (मा० ७। ३१।३)

हुमकि–(?)–उमग से, उछलकर, कूदकर।

हुमगि–दे०'हुमकि'। उ० १ हुमगि लात तकि कूबर मारा। (मा० २।१६३।२)

हुलसत–(सं० उल्लास)–उल्लसित होता है, प्रसन्न होता है। उ० सुमिरत हिय हुलसत तुलसी अनुराग उमँगि गुन गाए। (गी० ७।१४) हुलसति–उल्लसित होती है, प्रसन्न होती है। उ० खल बिलसत हुलसत हुलसति खलइ है। (वि०१३६) हुलसि–प्रसन्न होकर, हुलास में आकर। उ० हुलसि हुलसि हिये हुलसिहैं गाय हैं। (गी० १।७२) हुलसी–१ सुखी, २ खुशी, उल्लास, ३ तुलसीदास की माता का नाम, ४ उत्साहित हुई, प्रसन्न हुए सुखी हुई, ५ विकसित हुई, उदित हुई। उ० ३ तुलसिदास हित हियँ हुलसी सी। (मा० १।३१।६) ५ सत्रु प्रसाद सुमति हिय हुलसी। (मा० १।३६।१) हुलसे–आनंदित हुए, प्रसन्न हुए। उ०राम सुभाय सुने तुलसी हुलसे अलसी हमसे गलगाने। (क० ७।१) हुलसै–१ क्रीड़ा करता है, २ उमड़ता है, उल्लसित होता है। उ० १ स्याम सरीर पसेउ लसै, हुलसै तुलसी छबि सो मन मोरे। (क० २। २६) २ राखिहैं राम सो जासु हिये तुलसी हुलसै बल आखर दू को। (क० ७।६०) हुलस्यो–उमँग उठा, उल्लसित हुआ। उ० सुख मूल दूलहु देखि दंपति पुलकतन हुलस्यो हियो। (मा० १।३२४। छं ३)

हुलसानी–१ आनंदित हो उठीं, २ उमगित हो गई, उमड़ आई। उ० २ भगत बछलता हियँ हुलसानी। (मा० १।२१८।२)

हुलास–१ आनंद हर्ष, २ उत्साह, उल्लास।

हुलासा–दे० 'हुलास'। उ० चले सबन मन परम हुलासा। (मा० ६।१०८।५)

हुलासु–दे० 'हुलास'। उ० १ मुदित मातु परिछन चलीं उमगत हृदय हुलासु। (प्र० १।०।१)

हुलासू–दे० 'हुलास'। उ० १ दहु सेदु सब सपति हुलासू। (मा० २।२३।३) २ प्रीति कहत कवि हियँ न हुलासू। (मा० २।३२०।१)

हूँ (१)–(सं० अहम्)–मैं।

हूँ (२)–(?)–भी। उ० ज्यों सब भाँति कुदव कुठाकुर सेए बपु बचन हिय हूँ। (वि० १००)

हूँ (३)–१ स्वीकृतिवाचक शब्द।

हू (?)–भी। उ० धर्म हू के कम, निदान हू के [illegible] (क० ७।१२६)

हूक–(सं० हिक्का) पीड़ा, कसक।

[illegible] (– –)–जुनाना, मालूम।

हूह-दे० 'हूहा'। उ० जय जय जय रघुबसमनि धाए कपि दै हूह। (मा० ६।६६)
हूहा-प्रसन्नता का शब्द। उ० सुनि कपि भालु चले करि हूहा। (मा० ६।३।५)
हृद-(स० हृद्)-१ हृदय, दिल, २ कुंड। हृदि-१ हृदय में, मन में, २ कुंड में। उ० १ हर हृदि मानस बाल मराल। (मा० ३।११।४)
हृदउ-दे० 'हृदय'। उ० हृदउ न विदरेउ पंक जिमि बिछुरत प्रीतमु नीरु। (मा०२।१४६)
हृदयँ-हृदय में, मन में। उ० कहहु नाथ गुन दोष सब एहि के हृदयँ विचारि। (मा० १।१३०) हृदय-(स०)-दिल, कलेजा। उ० सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। (मा० १।३६।२) हृदये-हृदय में, मन में। उ० नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये। (मा० ५।१।श्लो० २)
हृदयेश-(स०)-१ हृदय का स्वामी, पति, प्यारा, २ अंतर्यामी, हृदय की बात जाननेवाला।
हृदयेसा-दे० 'हृदयेश'। उ० २ अज अद्वैत अगुन हृदयेसा। (मा० ७।१११।२)
हृषीकेस-(स० हृषीकेश)-इंद्रियों के स्वामी, विष्णु। उ० हृषीकेस सुनि नाउँ जाउँ बलि, अति भरोस जिय मोरे। (वि० ११६)
हृष्ट-(स०)-प्रसन्न, आनंदित। उ० हृष्ट पुष्ट तन भए सुहाए। (मा० १।१४२।४)
हे (२)-(स०)-संबोधन का चिह्न। उ० हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। (मा० ३।३०।५)
हेठ-(?)-१ नीचे, अधः, २ नीच, अधम। उ० १ हेठ दाबि कपि भालु निसाचर। (मा० ६।७१।४)
हेत-दे 'हेतु (१)'। उ० १ है एकै दूजो नहीं द्वैत ग्यान के हेत। (स० १६२)
हेता-दे० 'हेतु (१)'। उ० १ जग माहीं विचरत एहि हेता। (वै० ६)
हेति-(स० हा+इति)-इस प्रकार, हाय इस प्रकार। उ० गगन सिद्ध सुर त्रासित हा हेति पुकारि। (मा० ६।७०)
हेतु (१)-(स)-१ कारण, लिए, २ उत्पादक, पैदा करनेवाले ३ प्रयोजन, मतलब। उ० १ भरउ समय जेहि हेतु जेहि सुनु मुनि मिटिहि बिषाद। (मा० १।४७)
हेतु (२)-(स० हित)-स्नेह प्रेम। उ० पुलक सरीर हिये हेतु हरषतु हैं। (क० ६।५८)
हेतुवाद-(स०-हेतुवाद)-१ तर्क वितर्क, तर्क विद्या, २ नास्तिकता। उ० २ बेद मरजाद मानी हेतुवाद हई है। (गी० १।८४)
हेतू (१)-दे० 'हेतु (१)'। उ० १ सहित सहाय जाहु मम हेतू। (मा० १।१२२।१)
हेतू (२)-दे० 'हेतु (२)'। उ० अस्तुति सुरन्ह कीन्हि अति हेतू। (मा० १।८३।४)
हेमंत-(स०)-छः ऋतुओं में एक जो अगहन और पूस में पड़ती है। शीतकाल।
हेम-(स०)-सोना, स्वर्ण। उ० हेम कलज कल कलित मध्य जनु मधुकर मुखर सोहाई। (वि० ६२)
हेय-(स०)-छोड़ने योग्य, त्याज्य।
हेरंब-(स०)-गणेश। उ० छमुख हेरंब अंबासि जगदंबिके। (वि० १५)
हेरइ-(?)-देखती है। उ० सीय सनेह-सकुच-बस पिय तन हेरइ। (जा० १२१) हेरत-१ देखता है, ढूँढ़ते हैं, २ देखने पर, ३ देखते ही ४ ढूँढ़ते हुए, खोजते हुए। उ० २ जिय की जरनि हरत हँसि हेरत। (मा० २।२३८।४) ४ बालक भभरि भुलान फिरहिं घर हेरत। (पा० ११६) हेरनि-देखना, देखने का भाव या क्रिया। उ० हेरनि हँसनि हिय लिये हैं चोराइ। (गी० २।४०) हेरहिं-देखते हैं, खोजते हैं। उ० ग्रहकि परहिं फिरि हेरहिं पीछें। (मा० २।१४३।३) हेरा-१ देखा, २ खोजा, ढूँढ़ा। उ० १ धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। (मा० २।३८।२) हेरि-१ ढूँढ़कर, खोजकर, २ देख, देखकर, ३ विचारकर। उ० १ जो बरी नटनागर हेरि हलाहरी। (क० ७।१२४) २ काल घालि हेरि होति हिये घनी घिन। (वि० २५३) हेरिये-१ देखिये, निहारिए २ खोजिये, ढूँढ़िए। उ० १ अपनी ओर हेरिये। (ह०३४) २ समर समर्थ, नाथ! हेरिये हलक में। (क० ६।२५) हेरी-देखी, देखा। उ० पल्लव-सालन हेरी, प्राग बल्लभा न टेरी। (गी० ३।१०) हेरे-१ इसे देखा, २ देखते हैं, ३ खोजा ढूँढ़ा, ४ देखने पर, कृपादृष्टि डालने पर, ५ खोजने पर। उ० ४ सेरे हेरे लोपै लिपि विधिहू गनक की। (क० ७।२०) ५ तुम सम ईस कृपालु परम हित पुनि न पाइहौं हेरे। (वि० १८७) हेरैं-१ ढूँढ़े, खोजे, २ देखते हैं। उ० २ बार बार हेरैं मुख औध मृगराज के। (क० ११८) हेरो-१ देखो, २ देखा। उ० २ ओछट उलटि न हेरो। (वि० २७२)
हेराई-दे० 'हिराई'। उ० जहि जामें जग जाइ हेराई। (मा० १।११२।१)
हेल-(स० हेला)-१ अवहेलना, तिरस्कार, २ त्याग।
हेलया-सहज ही में खेल ही में। उ० हेलया दलित भूभार भारी। (वि० ४४) हेलाँ-खेल में ही। उ० जेहिं बारीस बँधायउ हेलाँ। (मा०६।१।२) हेला-(सं०)-१ तिरस्कार, अनादर, २ क्रीड़ा, खनवाड़, दिल्लगी, ३ खेल में ही। उ०३ जेहिं जलनाथ बँधायउ हेला। (मा० ६।७०।१)
हेली-(स० हेला)-१ हे सखी २ सहेली, सखी, ३ बुला कर। उ० २ हरि हेरि, हेरि! हेली दिय के हरन हैं। (गी० २।२६)
हैल-(स० हस्तन)-पार हो, तैर जा।
हो (२)-संबोधन का एक चिह्न। उ० प्रेमपियूष रूप उड़ पति बिनु कैसे हो! अलि पैयत रवि पादौं। (कृ० ४८)
होड़-(?)-बाज़ी, शर्त बदना। उ० सुख चंद सों चंद सों होड़ परी है। (क० ७।१८०)
होता-(स० होतृ)-हवन करनेवाला।
होनहार-(स० भवन)-१ होनेवाला, भविष्य, भावी, २

अच्छे लक्षणवाला। उ० १ होनहार सहजान सब बिमव बीच नहिं होत। (स० १२६)

होनिहार-दे० 'होनहार'। उ० १ होनिहार का करतार को रखवार जग खरभरु परा। (मा० १।८४।छं० १)

होनिहारा-दे० 'होनहार'। उ० १ जानत हौं कछु भल होनिहारा। (मा० १।१२६।४)

होनी-(स० भवन)-१ उत्पत्ति, २ होना, ३ होनेवाली। उ० १ निज निज मुखनि कही निज होनी। (मा०१।३।२) ३ बीती है वय किसोरी, जोवन होनी। (गी० २।२२)

होम-(स०)-हवन, यज्ञ। उ० तरपन होम करहिं विधि नाना। (मा० २।१२६।४)

होरी-(स० होलिका)-१ होली का त्योहार, २ घास फूस का वह समूह जो होली के पूर्व रात में जलाया जाता है। ३ एक राग। उ० १ कानन दलि होरी रचि बनाइ। (गी० २।१६)

होलिका-(स०)-१ होली नाम का त्योहार, २ घास आदि का वह समूह जो होली में जलाया जाता है। उ० २ गोपद पयोधि करि, होलिका ज्यां लाय लक। (ह०६)

होलिय-दे० 'होलिका'। उ० २ त्रिविध सूल होलिय जरै। (वि० २०३)

हौं (२)-(स० अहम्)-मैं, हम। उ० यह मारिए मोहिं, बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू। (क० २।६) हौंहूँ-मैं भी।

ह्याँ-(स० इह)-यहाँ, इस जगह। उ० ऊधो! यह ह्याँ न कछू कहिबे ही। (कृ० ४०)

ह्रद-(स०)-बड़ा ताल, कुंड, सरोवर। उ० जनम कोटि को कँदेलो ह्रद हृदय थिरातो। (वि० १५१)

ह्रस्व-(स०)-१ लघु मात्रा, २ छोटा।

ह्रास-(स०)-१ घाटा, टोटा, नुक्सान, हानि, २ अवनति, ३ थकावट, ४ क्षय, नाश।

ह्लाद-(स०)-आनंद, खुशी, प्रसन्नता।

ह्लन-(स०)-१ चलना, २ महादेव, ३ ब्रह्मा, ४ विष्णु, ५ सरस्वती, ६ गणेश, ७ लक्ष्मी, ८ दुर्गा।